।। कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ।।

।। अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ।। ।। गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ।।

।। योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।। ।। चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

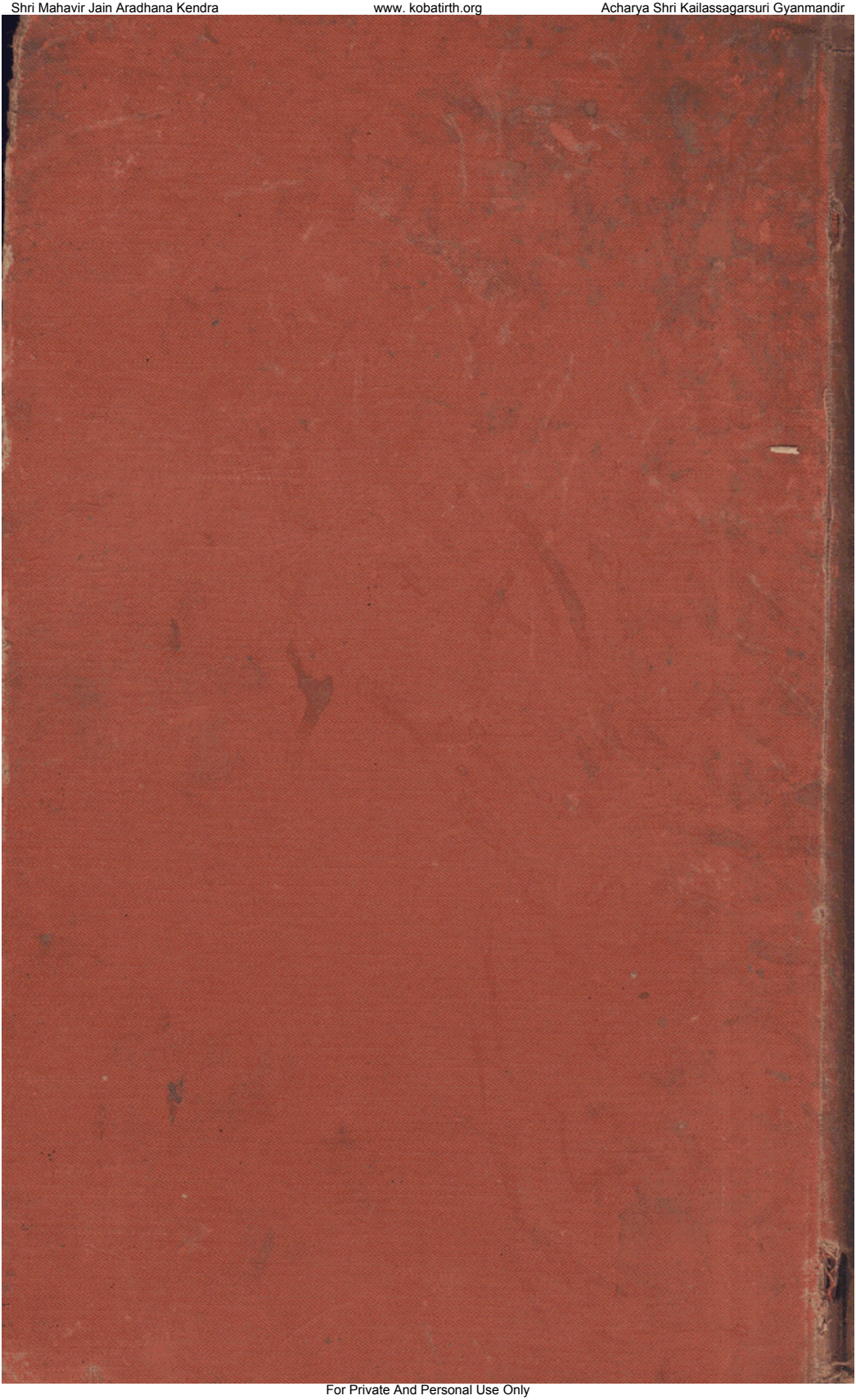

For Private And Personal Use Only

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोबा. (गांधीनगर) पि. ३८२००९

श्री मोहनलालजी जैन ज्ञान भंडार
इन्दौर सिटी
पीपली बाजार

॥ श्रीः ॥

* श्रीमद्वाग्भटविरचित *

अष्टाङ्गहृदय।

* अर्थात् *

वाग्भट।

मथुरानिवासि-श्रीकृष्णलाल कृत भाषानुवाद

सहित।

* जिसको *

किशनलाल द्वारका प्रसाद ने

"बंबई भूषण" यंत्रालय में छापकर

प्रकाशित किया।

सन् १९१०

Printer B. Kishanlal

Bombay Bhushan Press

MUTTRA.

Registered under Act XXV of 1867.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निवेदन।

मैं उस सर्वशक्तिमान परमात्मा को धन्यवाद देता हूं जिसने अपनी अपार कृपासे आज वह दिन दिखाया है, जिसको मैं खपुष्पवत् समझता था जिसके लिये केवल स्वप्नदर्शन का सा आभास होता था। चरक-संहिता और सुश्रुतसंहिता का अनुवाद छपजाने के पश्चात् कई दैवी दुर्घटना ऐसी होगई, जिनसे संसार शून्यवत् प्रतीत होने लगा, मेरी लेखनी भी थकित और उत्साह भंग होकर गाढ निद्रा में प्रलीन होगई। परंतु इस दशा में बैठे बैठे जी और भी अधिक बेचैन हो उठा तब अपनी चिरजात इच्छा को पूरी करने के लिये संकल्प करके 'अष्टांगहृदय' का अनुवाद करने में प्रवृत हुआ। वह इच्छा भगवत्कृपा से आज पूर्ण हुई।

चरक सुश्रुत वाग्भटादि ग्रंथों के विषय में कुछ लिखना वा उनकी प्रशंसा से पत्रके पत्र भरदेना सूर्य को दीपक दिखाना है, क्योंकि पठित आर्यसंतान कोई भी ऐसी न होगी जो इनके नामसे, वा इनके गुण से परचित न हो, रहा अनुवाद, उसकी तारीफ करना अपने मुंह मियां मिट्ठू बननाहै. उसका गुण दोष तो विद्वानों के हाथों में पहुंचने पर ही विदित होगा, क्योंकि स्वर्ण की परीक्षा कसौटी पर ही होती है।

अब सब सज्जन महाशयों से यही प्रार्थना है कि आप इसको ग्रहण कर अन्य ग्रंथों के प्रकाश करने में भी मेरा उत्साह बढावेंगे।

आपका
श्रीकृष्णलाल

पुस्तक मिलने का पता—

पं० श्रीधरशिवलाल जी ज्ञानसागर प्रेस बंबई	किशनलालद्वारका प्रसाद बंबईभूषण छापाखाना मथुरा (यू. पी.)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ ओ३म् ॥

वाग्भट का परिचय।

महात्मा तुलसीदासजी ने अपने सर्वमान्य रामायण ग्रंथ में लिखा है "पडा भूमि चह गहन अकाशा" वही दशा मेरी भी है, ऊपर का शीर्षक देकर मुझे लज्जास्पद होना पडता है कि मैं वाग्भट का क्या परिचय दूंगा, मैं भी केवल अपने पूर्वजों के शब्दों का हेरफेर करके आपके सामने रखदूंगा। जब हमारे ऋषि महात्माओं की यही प्रणाली थी कि वे अपना परिचय किसी भांति में अपनी लेखनी से नहीं देते थे अपने होने का समय अपने पिता, पितामह, माता मतामही आदि का नाम लिखते ही न थे, अपने जन्मस्थान का परिचय देनाही नितान्त अनावश्यक समझते थे। इस दशा में उनका परिचय प्राप्त करना तीक्ष्ण कृपाण की धार पर पांव रखना है, इस सबका कारण यही प्रतीत होताहै कि वे संसार को तुच्छ समझते थे, उनकी दृष्टि में प्रतिष्ठा शूकरी विष्टाके समानथी, उन्हें वन वास में ही परमानन्द का आभास होताथा, तपश्चर्या ही संपूर्ण संसार का विभव था।

इस दशा में वाग्भट के जन्म, काल आदि का परिचय देना महा कठिन ही नहीं किन्तु दुःसाध्य भी है। इतना अवश्य है कि वाग्भट के नामको भारतवर्ष के संपूर्ण विद्वान् चिकित्सक अच्छी तरह जानते हैं और उनकी बनाई हुई अष्टांगहृदय संहिताका पश्चिमीय भारत में अच्छी रीति से पठन पाठन होता है।

वाग्भट के जन्म के विषय में अद्भुत अद्भुत किंवदन्तियां प्रचलित हैं "कोई इन्हें साक्षात धन्वन्तरि का अवतार मानते हैं, कोई समुद्रमथन से उत्पन्न हुए रत्नों में से बतलाते है और कोई इनको कलियुग का महर्षि गाते हैं "आत्रिः कृतयुगे चैव, द्वापरे सुश्रुतो मतः कलौवाग्भट नामाच, यह अत्रि संहिता में लिखा हुआ है।

कोई कोई इन्हें गौत्तमबुध का अवतार कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि यह एक बडा क्लैण ब्राह्मण था और किसी नीच जाति की स्त्री के प्रेम में फंसगया था।

माधव, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त और भावमिश्र वाग्भट को बडा प्रामाणिक मानते हैं और इन लोगों ने बहुधा अपने ग्रंथों में वाग्भट के वाक्य उद्धृत किये हैं, इससे यह जाना जाता है कि वाग्भट उक्त ग्रंथकारों से पहिले हुआ है कहते हैं कि माधव ऋक्संहिता के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसिद्ध टीकाकार सायणाचार्य का भाई था और वह प्रायः नौसौ वर्ष हुए होंगे विजयानगर के किसी राजा का प्रधान मंत्री था। इससे यह जाना जाता है कि वाग्भट नौसौ वर्षसे पहिले किसी समय में हुआ था। इसने अपने ग्रंथ में कई स्थान पर जिन भगवान् के प्रयोगों का वर्णन किया है इससे जानने में आता है कि इसका जन्म बुद्धदेव के पीछे किसी समय में हुआथा।

कोई २ कहते हैं कि वाग्भट बौद्धमतावलंबी था परंतु इसका निराकरण इस बातसे होता है कि एक स्थल पर वाग्भट ने लिखाहै "न चैत्यं गच्छेत्" अर्थात् बौद्धों के मंदिर में कदापि न जाना चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो मंत्र इसमें लिखे गये हैं वे सब वैदिक हैं इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बौद्धमत की अपेक्षा वह वैदिक धर्म में दृढ विश्वास रखता था।

उसने स्वयं अपने जन्म का परिचय इस भांति दिया है कि

भिषाग्वरो वाग्भट इत्यभून्मे पितामहो नामधरोस्मियस्य।
सुतो भवत् तस्य च सिंहगुप्तस्तस्याप्यहं सिंधुषु जातजन्मा॥

अर्थात मेरे पितामह का नाम वाग्भट था, मेरे पिता का नाम सिंहगुप्त था मैंने अपना नाम भी वाग्भट ही रक्खा और मेरा जन्म सिंधु देश में हुआथा।

वाग्भटालंकार, काव्यकल्पतरु और रसरत्नसमुच्चयादि ग्रंथ इसी के बनाये हुएहैं।

उक्त बातों के सिवाय वाग्भट के विषय में और कोई बात जाननेमें नहीं आती है।

श्रीकृष्णलाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रव्यों की तोल ।

हमने अपने इस ग्रन्थ में द्रव्यों के प्रमाण के नाम संस्कृत ही में रहने दिया है अब यहां सबके समझने के लिये अकारादिक्रमसे लिखते हैं ।

अक्ष	१ तोला	तिण्डुक .... —	१ कर्ष
अष्टमान	१६ तोला	तुला .... —१०—पल वा४०० तोला	
अष्टीमका	२ तोला	तोलक	९६ रत्ती
अर्मण—द्रोण	१६ सेर	दंक्षण	आधातोला
माषक	५ रत्ती	द्रोण	१६ सेर
आढक	४ सेर	द्रोणी	६४ सेर
आम्र = एकपल	४ तोला	धारण .... पलदशमांश	१४ रत्ती
अंडका	४ यव	धान्य	४ तिल
अंजली	१६ तोला	धानक	१६ जौ
उन्मान = द्रोण	१६ सेर	निष्क	पावतौला
उदुम्बर	१ तोला	पल	४ तोला
कर्ष	१ तोला	पलार्द्ध	२ तोला
कलश = द्रोण	१६ सेर	पाणितल	१ तोला
कवलग्रह, कवड वा कवडग्रह	१ तोला	पात्र	४ सेर
कुडव	१६ तोला	पिचु	१ तोला
कुम्भ	३२ सेर	प्रकुंच	४ तोला
कोल .... —	आधातोला	प्रस्थ	१ सेर
कंस = १आढक	४ सेर	प्रसृत .... —	८ तोला
खारी = २द्रोण	२५६ सेर	बदर — —	८ माषा
गद्यालक	६४वा४८रत्ती	वाह —	३२ सूर्प
गद्याणक	६४वा४८रत्ती	विडालपद	२ तोला
गुंजा	१ रत्ती	बिल्व —	१ पल
घट—द्रोण —	१६ सेर	वंशी — —	३० परिमाणु
चतुर्थिका — —	१पल	भारीवाभार २० तुला वा २९० सेर	
तंडुल	८ सर्षप	मरीचि — —	६: शीर्ष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मानिका	एक सेर
माषक	एकमासा
मुष्टि	एकपल
यव	छःसर्षप
रक्तिका	१ रत्ती
लव्वन	१ द्रोण
शराव	१ सेर
शरावार्द्ध	आधासेर
शाण	४ मासा
शुक्ति	४ तोला
षोडाशिका	१ पल
सर्षप	३राई
सुवर्ण	१ कर्ष
सूर्प	३२ सेर
हेम	१ मासा
त्रसरेणु	३० परिमाणु

मानविषयमें ठाकुर साहब ने एक, उत्तम चक्र दिया है उसे लिखते है । यह बहुत सहायक होगा ।

६ त्रसरेणु	१ मरीचि
६ मरीचि	१ राजिका
३ राजिका	१ सर्षप
३ सर्षप	१ यव
४ यव	१ गुंज
४ गुंजा	१ माषा
४ माषा	१ शाण
२ शाण	१ कोल
२ कोल	१ कर्ष वा तोला
२ कर्ष	१ अर्द्धावपाद
२ अर्द्धावपाद	१ पल
२ पल	१ प्रसृति
२ प्रसृति	१ अंजलि
२ अंजलि	१ मानिका
२ मानिका	१ प्रस्थ
४ प्रस्थ	१ आढक
४ आढक	१ द्रोण
२ द्रोण	१ सूर्प
२ सूर्प	१ द्रोणी
४ द्रोणी	१ खारी
१०० पल	१ तुला
२००० पल	१ भार

यहां १ तोला अंग्रेजी तौल से १८० ग्रेन का होता है ।

कालिङ्गमान का चक्र ।

१२ सर्षप	१ यव
२ यव	१ गुंजा
३ गुंजा	१ वल
८ गुंजा	१ माषक
४ माषक	१ शाण
६ माषक	१ गद्याणक
१० माषक	१ कर्ष
४ कर्ष	१ पल
२ पल	१ कुडव

माषक–सुश्रुतकेमतसे मागधमानमें माषा५रत्ती काहै चरक के मतसे छःवा आठ रत्ती काहै सुश्रुत के मत से कालिंगमान ५ वा ७ वा ८ रत्ती काहै अन्य वैद्यक ग्रन्थों में १० रत्ती काहै ज्योतिषें और स्मृतिमें १२ रत्ती का माना है — बंगाली वैद्य १२ रत्ती का मानकर काम चलातेहै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओ३म

अष्टांगहृदय की अनुक्रमणिका।

सूत्रस्थानम्।

विषय	पृष्ठांक.
मंगलाचरण	१
अयुष्कामीयनाम प्रथमोऽध्यायः	
आयुर्वेद जाननेका कारण	२
आयुर्वेद की उत्पत्ति	,,
इसग्रंथ के बनानेका कारण	,,
आठअंगों के नाम	३
तीनोंदोषों का वर्णन	,,
दोषों की शक्ति	,,
व्यापकदोषों के स्थान	४
दोषका काल	,,
जठराग्नि का स्वरूप	,,
चार प्रकार के कोष्ठ	,,
प्रकृति का स्वरूप	५
बालादिदोषों के गुण	,,
धातुओं का वर्णन	,,
मलों के नाम	६
वृद्धि और अपचय	,,
रसों का वर्णन	,,
रसों के गुण	,,
द्रव्य को त्रिविधत्व	७
द्रव्य की वीर्य	,,
द्रव्य का विपाक	,,
द्रव्य के गुण	,,
रोगका कारण	,,
रोगारोग्यलक्षण तथा भेद	८
रोग का अधिष्ठान	,,
मानसिकरोग का हेतु	,,
रोग परीक्षा	,,
रोगविशेष की परीक्षाका उपाय	९
देश भेद	,,

विषय	पृष्ठांक
भूमिदेश का वर्णन	९
औषधयोजन का काल	१०
औषध के भेद	,,
औषध का विषय	,,
मानसिकदोष को परमौषध	,,
चिकित्स के चार पाद	,,
वैद्यके चार गुण	११
औषध के चारगुण	,,
परिचारक के चारगुण	,,
रोगी के चारगुण	,,
सुखसाध्य व्याधि	,,
कृच्छसाध्य व्याधि	१२
याप्यव्याधि	,,
प्रत्याक्षेप व्याधि	,,
त्याज्यरोगी के लक्षण	,,
अध्यायों का अनुक्रम	,,
सूत्रस्थान के नाम	,,
शारीरस्थान के अध्याय	१४
निदानअध्याय के नाम	,,
चिकित्सितस्थान के अध्याय	,,
कल्पस्थान के अध्याय	,,
उत्तरस्थान के अध्याय	१५
दिनचर्य्यानाम द्वितीयोऽध्यायः।	
उठनेका समय निरूपण	१५
दन्तधावन विधि	१६
दन्तधावन निषेध	,,
नेत्रोंमें सुर्माकी विधि	,,
रसौतआंजने का विधान	,,
नस्यादि कर्म	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
तांबूलके अयोग्य मनुष्य	१६
अभ्यंग विधि	,,
अभ्यंग का निषेध	,,
व्यायाम के गुण	१७
व्यायाम का निषेध	,,
व्यायाम की योज्यना और काल	,,
व्यायाम के पीछे कर्त्तव्य कर्म	,,
अति व्यायाम के अवगुण	,,
अति जागरणादि से हानि	,,
उवटने के गुण	,,
स्नान के गुण	,,
गर्म जलसे स्नानके गुणागुण	१८
स्नान का निषेध	,,
मूत्रादि वेगों के रोकने को निषेध	,,
धर्म पर दृढता	,,
मित्र शत्रु का विवेक	,,
हिंसादि पापों का त्याग	,,
प्राणि मात्र पर समदृष्टि	,,
अन्य उपयोगी कर्म	१९
सुखदुख में समभाव	,,
बोलने आदि पर उपदेश	,,
अन्य के साथ वर्त्ताव	,,
इन्द्रियों का नियम	,,
कर्म की रीति	२०
अन्य नियमोपनियम	,,
त्याग के योग्य अन्यकर्म	२१
लोक अनुसार काम की विधि	२२
सद्व्रत के लक्षण	,,
रात्रिदिन का विचार	,,
आचार का फल	,,

ऋतुचर्य्या नाम तृतीयोऽध्यायः

छः ऋतुओं के नामादि	,,
बल का आदान और विसर्ग काल	२३
बल विसर्ग का कारण	,,
ऋतु परता से बल की प्राप्ति	,,
हेमंत में जठराग्नि का प्राबल्य	,,
हेमंत में सेवनीय रस	,,
हेमंत की दिन चर्य्या	,,
अभ्यंगादि	२४

विषय	पृष्टांक.
स्नानादि	२४
भोजनादि	,,
स्त्रीसेवन	,,
रहने का घर	,,
शिशिर चर्य्या	२५
वसंत चर्य्या	,,
कफ जीतने के उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
वसंत का मध्यान्यकाल	,,
वसंत में त्याज्यरस	२६
ग्रीष्म चर्या	,,
ग्रीष्म के कर्त्तव्य कर्म	,,
ग्रीष्म का भोजन	,,
ग्रीष्म में पानविधि	,,
ग्रीष्म में जलपान	२७
ग्रीष्म में रात्रि भोजन	,,
ग्रीष्म का मध्यान्ह काल	,,
ग्रीष्म की रात्रिका विधान	२८
वर्षा चर्य्या	,,
वर्षा ऋतुमें भोजनादि की विधि	,,
वर्षा में अन्यविधि	२९
वर्षा में अकर्त्तव्य कर्म	,,
शरद चर्य्या	,,
शरद में भोजन	,,
हंसोदक	,,
शरद का सायंकाल	३०
शरद में त्याज्य	,,
ऋतु चर्य्या का संक्षिप्त वर्णन	,,
संक्षिप्त भोजन विधि	,,
ऋतु संधि	,,

रोगानुत्पाद नीयनाम चतुर्थोऽध्यायः

वेगों के रोकने का प्रतिषेध	३१
वात रोध में रोग	,,
वमन रोकने के रोग	,,
मूत्ररोध के रोग और उपाय	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
मलरोध में उपाय	३२
मूत्ररोध में उपाय	,,
डकार के रोग	,,
छींक रोकने के रोग	,,
तृषा के रोग	,,
भूख के रोग	,,
निद्रा के रोग	,,
खांसी के रोग	३३
श्वास के रोग	,,
जंभाई के रोग	,,
आंसुओं के रोग	,,
वमन रोकने के रोग	,,
वीर्य और मूत्र रोकने के रोग	,,
त्यागने के योग्य रोगी	३४
वेगरोध अन्यरोगों में कर्तव्य	,,
रोकने के योग्य वेग	,,
वातादि का यथाकाल शोधन	,,
रसायन प्रयोग	,,
पथ्यादि विधि	३५
पूर्वोक्त क्रम का फल	,,
आगन्तुक रोगों का उपाय	,,
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	,,
द्रव द्रव्य विज्ञानीय नाम पंचमोऽध्यायः	
गंगावु के गुण	३६
गांग तथा सामुद्रजलके लक्षण	३७
गांग जलके प्रभाव में कर्त्तव्यता	,,
न पीने योग्य जल	,,
अपेय आंतरीक्ष जल	,,
नदियों का जल	३८
जलपान के अयोग्य रोगी	,,
भोजन में जल पीनेके गुणागुण	३९
शीतल जलपान के गुण	,,
उष्ण जल के गुण	,,
कांचित शीतल जलके गुण	३९
नारियल के जल के गुण	,,
क्षीरवर्गः	,,
दूधके सामान्य लक्षण	,,

विषय	पृष्टांक.
गौ के दूधके गुण	४०
भैंस के दूधके गुण	,,
बकरी के दूधके गुण	,,
ऊंटनी के दूधके गुण	,,
स्त्री के दुग्ध के गुण	,,
भेड़के दुग्ध के लाभ	,,
हथनी और घोड़ी के दूध	,,
कच्चे पक्के दूधके गुण	,,
दही के गुण	४१
तक्र के गुण	,,
दही के तोडके गुण	,,
नवनीत के गुण	,,
दूधके माखन के गुण	,,
घृतके गुण	४२
पुराने घृतके गुण	,,
किलाटादि के गुण	,,
गौ के दूध को उत्कृष्टता	,,
इक्षु के गुण	,,
अन्य गुण	,,
अन्य ईखके गुण	,,
गुडकी राव के गुण	,,
गुड़ के गुण	४३
मिश्री आदि के गुण	,,
जवासे की शर्करा के गुण	,,
अन्य शर्कराओं के गुण	,,
शर्करा और फाणित के अन्तर	,,
मधुके गुण	,,
उष्ण मधु के गुण	४४
शहद का विधान	,,
तैल वर्गः	,,
तैलके सामान्य गुण	,,
अरंडी के तैल के गुण	,,
लाल अरंड के गुण	४५
सरसों का तैल	,,
बहेड़े का तेल	,,
नीम का तैल	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय—	पृष्ठांक
अलसी और कसूम का तैल	४५
वसादि के गुण	,,
मद्य के सामान्य गुण	,,
नये पुराने मद्य के गुण	,,
मद्यपान का निषेध	४६
सुरा के गुण	,,
वारुणी के गुण	,,
वहेड़े का मद्य	,,
यवसुरा के गुण	,,
अरिष्ट के गुण	,,
द्राक्षा रस का मद्य	,,
खजूर का मद्य	,,
शर्करा के मद्य	४७
गुड़ का मद्य	,,
सीधुमद्य के गुण	,,
महुआ का मद्य	,,
शुक्त के गुण	,,
अन्य शुक्त	,,
शांडा की का गुण	,,
कांजी के गुण	४८
गौ आदि के मूत्र के गुण	,,
अध्याय का उप संहार	,,
अन्नस्वरूप विज्ञानीय नाम षष्ठोऽध्यायः	
चांवल का वर्णन	४८
चांवलों के गुण	४९
अन्य चांवलों के गुण	,,
साठी चांवल के गुण	,,
चांवलों की अन्य जाति	,,
पाटल के गुण	,,
तृणधान्यों के गुण	५०
कंगु और कोद्रव के गुण	५०
जौ के गुण	,,
जौ की अन्य जाति	,,
गेहूं के लाभ	,,
गेहूं के भेद	,,
शिंबी धान्यों के सामान्य गुण	,,

विषय	पृष्ठांक
मूंग के लाभ	५१
कुलथी के गुण	,,
राजशींबी के गुण	,,
उरद के गुण	,,
कटभी और कोंच के गुण	,,
तिल के गुण	,,
अलसी और कसूम के बीज के गुण	,,
नये धान्यादि	५२
मण्ड के गुण	,,
पेया के गुण	,,
विलेपी के गुण	,,
भात के गुण	,,
मांसरस के गुण	५३
मूंगके यूष के गुण	,,
कुलथी के यूष के गुण	,,
तिल के पदार्थों का गुण	,,
शिखंड के गुण	,,
पानक के गुण	,,
धाना के गुण	५४
पृथुकादि के गुण	,,
सत्तू के गुण	,,
विष्याक के गुण	,,
वेसवार के गुण	,,
रोटी आदि के गुण	,,
मांस वर्गः मृग वर्गः	५५
विष्किरों के नाम	,,
प्रतुदनर्ग और बिलेशय	,,
प्रसह वर्ग	,,
महा मृगों के नाम	,,
जलचर वर्ग	,,
मत्स्य वर्ग	,,
मिश्र वर्ग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक	विषय	पृष्टांक
जांगलादिक संज्ञा	५६	कलम्बादि	६१
जांगल वर्ग के गुण	,,	बिल्ली शाक के गुण	,,
शशक मांस	,,	जयन्ती और अरणी	,,
तीतरादि के मांस का गुण	,,	साठी आदि के गुण	,,
अन्य पक्षीयों का मांस	,,	करंजादि के गुण	,,
बिलेशयादि का मांस	५७	शतावरी के अंकुर	,,
महामृगादि के गुण	,,	बांस के अंकुर	,,
बकरेके मांसका गुण	,,	पत्तर	६२
भेड़का मांसके गुण	,,	कासमर्द	,,
गोमांस के गुण	,,	कसूम का शाक	,,
भैंसाके मांसका गुण	,,	सरसों का शाक	,,
वाराहमांस के गुण	,,	मूली के गुण	,,
मत्स्यमांस के गुण	५८	पिण्डालु के गुण	,,
सर्वोत्तम मांस	,,	कुठेरादि	,,
त्याज्यात्याज्य मांस	,,	तुलसी के गुण	६३
नरमादा का मांस	,,	हरे धनिये के गुण	,,
शाकवर्ग, शाकोके गुण	,,	लहसन के गुण	,,
ऊपरके शाकोके के विशेष गुण	,,	पलांडु के गुण	,,
मकोय और चांगेरी	५९	गाजर के गुण	,,
पटोलादि के गुण	,,	जमीकंद के गुण	,,
परवल और दोनोंकटेरी	,,	पत्ते आदि के गुण	,,
अडूसा के गुण	,,	शाकों को बराबरत्व	,,
करेले के गुण	,,	फलवर्ग-द्राक्षा	६४
बैंगन के गुण	,,	अनार के गुण	,,
करील के गुण	,,	मोच फलादि	,,
तोरई और बाघची	,,	ताल फलादि के गुण	,,
चौलाई और सुजात	६०	बेलगिरी के गुण	,,
पालकपोई चंचु	,,	कैथ के गुण	६५
बिदारीकंद	,,	जामन के गुण	,,
जीवंती के गुण	,,	आम के गुण	,,
कूष्मांडादि के सामान्य गुण	,,	वृक्षाम्ल के गुण	,,
कूष्मांड और खीरा	,,	शम्या और पील	,,
तूंबीआदि के गुण	,,	बीजौरे के गुण	,,
शीर्णवृंत के गुण	,,	भिलावे के गुण	,,
कमलनाल का गुण	६१	पालेवतादि	६६
		दाख और फालसे	,,
		कोलादि	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
इमली आदि	६६
लकुच को अधरत्व	,,
त्यागने के योग्य शाक फलादि	,,
विविधि औषध वर्ग-लक्षण	,,
सैंधानमक	६७
संचल नमक	,,
विडनमक	,,
सामुद्रनमक	,,
उद्भिद नमक	,,
काला नमक	,,
काच नमक	,,
लवण का प्रयोग	,,
जवाखार के गुण	,,
सर्जकादिक्षार	६८
हींग के गुण	,,
हरड के गुण	,,
आमले के गुण	,,
बहेडे के गुण	,,
त्रिफला के गुण	,,
चातुर्जात और त्रिजात	६९
मिरच के गुण	,,
पीपल के गुण	,,
सोंठ के गुण	,,
अदरख के गुण	,,
चव्य पीपलामूल	,,
चीते के गुण	,,
पंचकोल	,,
महापंचमूल	७०
लघुपंचमूल	,,
मध्यम पंचमूल	,,
जीवन पंचमूल	,,
तृण पंचमूल	,,
उध्याय का उपसंहार	,,

सप्तमोऽध्यायः ।

वैद्यका स्थान	७१
विष से अन्नपान की रक्षा	,,
विषदूषित भातके लक्षण	७१
विषदूषित शाक	,,
विषदूषित अन्य पदार्थों की परीक्षा	,,
विष देनेवाले के लक्षण	७२
विषदूषित अन्नकी अग्नि में परीक्षा	,,
पक्षियों द्वारा विषपरीक्षा	,,
विषस्पर्श का फल	७३
मुखमें लगा हुआ विष	,,
आमाशयस्थविष	,,
ताम्रचूर्ण प्रयोग	७४
हेमचूर्ण के गुण	,,
विरुद्ध भोजन	,,
दुध के विरुद्ध फल	,,
दुग्ध विरुद्ध धान्य	,,
दुग्ध विरुद्ध शाक	७५
अन्य विरुद्ध मांसादि	,,
पीपल के विरुद्ध पदार्थ	,,
अन्य विरुद्ध द्रव्य	,,
दूध के विरुद्ध	,,
शहत के विरुद्ध	,,
असमान शहत घी	७६
तिलकलक और पोई	,,
बगुला के विरुद्ध पदार्थ	,,
तीतरादि मांस और अंडे	,,
हारित और हारिद्र	,,
विरुद्ध का शमन	,,
विरुद्ध सेवन के योग्य शरीर	७७
विरुद्ध भोजन के योग्य	,,
पथ्यापथ्य की सेवन त्याग विधि	,,
सहसा पथ्या पथ्य के त्याग का फल	,,
क्रमका फल	७८
अहिता हार सेवन का परित्याग	,,
दीर्घायु की विधान	,,
आहार योजना	,,
निद्रा की आवश्यकता	,,
अनियमत निद्रा का फल	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
रात्रिजागरणादि	७८
दिनमें सोने का परिणाम	७९
निद्रा का निषेध	,,
कुसमय निद्रा का परिणाम	,,
अति निद्रा की चिकित्सा	,,
निद्रा नाशका परिणाम	,,
अर्द्ध निद्रा का विधान	,,
मंद निद्रा वालोंका कर्त्तव्य	८०
ब्रह्मचर्य का वर्णन	,,
काम सेवा का समय	८१
अन्यथा स्त्री गमन	,,
नियमानुसार स्त्री गमन	,,
ऋतौद में कर्तव्य	,,
वैद्य को शरीर का स्वामित्व	,,
अष्टमोऽध्यायः ।	
मिताहार का विधान	,,
गुरु लघु द्रव्यों की मात्रा	८२
हीनाति मात्रा का फल	,,
अति मात्रा का फल	,,
अलसक का लक्षण	,,
विशूचिका का लक्षण	८३
विशूचिका में उपद्रव	,,
अलसक दंडालसक	,,
आम विष का लक्षण	,,
अलसक में चिकित्सा	,,
प्रबल विसूचिका में उपाय	८४
अजीर्ण वाले का उपाय	,,
औषध का समय	,,
औषध का भेद	,,
औषध की यथा योग्यता	,,
अन्य रोगों में चिकित्सा क्रम	८५
अजीर्ण की व्याधियां	,,
त्रिविध अजीर्ण की चिकित्सा	,,
विलंबिका रोग की उत्पत्ति	८६
रसशेषा जीर्ण के लक्षण	,,

विषय	पृष्टांक
अजीर्ण के सामान्य लक्षण	८६
अजीर्ण के अन्य हेतु	८७
आमवर्द्धक अन्य द्रव्य	,,
भोजन का क्रम	,,
त्याज्य भोजन	,,
किलाटादि का निषेध	,,
सेवन योग्य द्रव्य	,,
भोजन के आदि मध्यांत में कर्तव्य	८८
भोजन का प्रमाण	,,
भोजन के पश्चात् अनुपान	,,
अनुपान का संक्षिप्तवर्णन	८९
अनुपान का कर्म	,,
अनुपान के अयोग्य रोग	,,
पानके अयोग्य रोगी	,,
भोजन का समय	,,
नवमोऽध्यायः ।	
द्रव्य की प्रधानता	९०
द्रव्य की अनेक रसत्व	,,
रसों में गुर्वादि गुण	,,
पार्थिवद्रव्य के गुण	,,
जलीय द्रव्य के गुण	९१
अग्नेयद्रव्य	,,
पवनात्मक द्रव्य	,,
आकाशात्मक द्रव्य	,,
द्रव्यों का अंधो ध्वंगमित्व	,,
वीर्य की प्रबलता	,,
चरका चार्य्य का मत	,,
गुर्वादिकोंकोंवीर्य का प्रतिपादन	९२
रसादि में अवीर्यत्व	,,
अन्य आचार्यों का मत	,,
सयुक्ति कारण	,,
उभयवीर्य के लाभ	,,
विपाक का लक्षण	,,
रसों का विपाक	,,
भिन्नभिन्नविपाकों के कर्म	९३
रसादि में उत्कर्षता	,,
प्रभाव का लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
प्रभाव का निदर्शन	९३
ग्रंथकार का वचन	९४
दशमोऽध्यायः ।	
रसादि की उत्पत्ति	९४
छःरसों के लाभ	९५
मधुरस के कर्म	,,
अम्लरस के गुण	९६
लवणरस के गुण	,,
तिक्तरस के गुण	,,
कटुरस के गुण	,,
कषायरस के गुण	९७
मधुरवर्ग के द्रव्यों के नाम	,,
अम्लवर्ग के द्रव्य	,,
लवणवर्ग के नाम	,,
तिक्तवर्ग के नाम	,,
कटुवर्ग के नाम	९८
कषायवर्ग के नाम	,,
मधुरद्रव्यों के लाभ	,,
अम्ल और लवणवर्ग	,,
तिक्तकटु वर्ग	,,
कषायवर्ग के नाम	,,
रसों में शीतोष्णवीर्यता	,,
रसों की रूक्षता	,,
रसों की स्निग्धता	९९
रसका भारीपन	,,
रसका हल्कापन	,,
रसका संयोग	,,
रससंयोग के भेद	,,
तिरेसटरस भेदों का वर्णन	१००
रसकी सूक्ष्म कल्पना	,,
एकादशोऽध्यायः ।	
वातादिदोषों के कर्म	,,
धातु का कर्म	१०१
मलका कर्म	,,
वृद्धवायु का कर्म	,,
वृद्धपित्त का कर्म	,,

विषय	पृष्टांक.
वृद्धकफ का कर्म	१०१
वडेहुएरसरक्त का कार्य्य	१०२
वृद्धमांस का कर्म	,,
वृद्धमेद का कर्म	,,
वृद्धअस्थि का कर्म	,,
वडीहुई मज्जा का कर्म	,,
वडेहुएवीर्य का कर्म	,,
वडेहुएपुरीष का कर्म	,,
वडेहुए मूत्रका कर्म	,,
वढेहुए पसीने	,,
अन्यमल	१०३
क्षीणवातादि के लक्षण	,,
रसादि की क्षीणता	,,
मलकी क्षीणता	,,
घ्राणादिमल की क्षीणता	१०४
दोषादि की सामान्य क्षयवृद्धि	,,
मलकी क्षीणता का उपद्रव	,,
दोषों का आश्रय	,,
क्षयवृद्धि का उपचार	१०५
रक्तादि की चिकित्सा	१०६
पुरीषादि की चिकित्सा	,,
धातु क्षयवृद्धि का कारण	१०७
क्षयवृद्धि की परंपरा	,,
दोषादि विगडने का क्रम	१०७
ओजका लक्षण	,,
ओज का क्षय	,,
ओज की वृद्धि	,,
वृद्धि और क्षय की सामान्यचिकित्सा	१०८
वृद्धि क्षय का कारण	,,
अन्य लक्षण	,,
दोषों को समान रखना	१०९
द्वादशोऽध्यायः ।	
वायु का स्थान	,,
पित्त का स्थान	,,
कफ का स्थान	,,
प्राणवायु	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
उदान वायु	११०
व्यान वायु	,,
समान वायु	,,
अपान वायु	,,
पित्त के भेद	,,
रंजकादि पित्त	,,
कफके भेदादि निरूपण	१११
उपसंहार	११२
वायु का चय कोपशमन	,,
पित्त का चय कोपादि	,,
कफका चयकोपादि	,,
चयादि के लक्षण	,,
दोषके संचय आदिका काल	११३
दोष संचय का हेतु	,,
दोष संचयादिका अन्य कारण	११४
दोष की व्याप्ति और निवृत्ति	,,
दोष कोप के अन्य हेतु	,,
रोग के अन्य हेतु	,,
हीनमिथ्यादि योग का स्वरूप	११५
कालका हीन मिथ्यादि रोग	,,
कर्म का हीन मिथ्यादि रोग	,,
दोष का निदान	११६
बाह्यभाग में होनेवाले रोग	,,
कोष्ठगत रोग	,,
मध्यमरोग मार्ग	,,
वायु के कर्म	,,
वायु के कर्म	११७
कफके कर्म	,,
रोगी को बार बार देखने का कारण	,,
व्याधि की उत्पत्ति का प्रकार	११८
उक्त तीनों के लक्षण	,,
त्रिविध व्याधि की चिकित्सा	,,
व्याधि के प्रकारान्तर	,,
स्वतंत्रादि व्याधि के लक्षण	,,
परतंत्र व्याधियों की शमनोपाय	११९

विषय	पृष्टांक.
नामरहित रोग	११९
रोगों के नाम न होने का कारण	,,
विकारानुसार चिकित्सा	,,
रोगकी दश विधि परीक्षा	,,
गुरुलघु व्याधि की परीक्षा	१२०
कुवैद्य की भूल	,,
हीन मात्र संशोधन	,,
अल्प व्याधि में गुरु औषध का निषेध	,,
अवश्य रोग नाशक औषध	,,
दोष की वृद्धि के भेद	,,
क्षीणदोष के गुण	१२१
क्षयवृद्धि और समता के भेद	१२२
दोष भेदों में असंख्यता	,,
त्रयोदशोऽध्यायः ।	
वायु का उपचार	१२३
पित्त का उपचार	,,
कफका उपचार	,,
दोषों के उपचार की विधि	१२४
अन्य उपचार	,,
उपचार का काल	१२५
विरोधी चिकित्सा न करने का कारण	,,
शाखाओं में दोषों का आना जाना	,,
कोष्ठ में दोषों का कर्म	१२६
दोषों के कुपित होने का कारण	,,
परस्थान गत दोष की चिकित्सा	,,
तिर्य्यक स्थानगत दोष	,,
साम तथा निराम मलके लक्षण	,,
आम का लक्षण	१२७
अन्य मत	,,
साम का अर्थ	,,
बाहर न निकालने योग्य सामदोष	,,
आम दोष में कर्तव्य	,,
दोषों के निकट वर्त्ती स्थान	१२८
दोषों के रोकने का निषेध	,,
बहिर्गमनोन्मुख दोषों में कर्त्तव्य	,,
दोष शोधन का काल	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
संचय काल में दोष शुद्धि का निषेध	,,
शोधन का अन्य काल	१२९
अति शीतोष्ण काल में कर्त्तव्य	,,
औषध का समय	,,
रोग परत्व से औषधि काल	१३०
चतुर्दशोऽध्याय ।	
दो प्रकार के उपचार	,,
स्नेहआदि कर्म को द्विविधत्व	१३१
अपतर्पण के भेद	,,
संशोधन के लक्षण और भेद	,,
शमन के लक्षण	,,
वायु आदि का शमन	,,
वृंहण के योग्यमनुष्य	१३२
वृंहण औषध	,,
लंघन के योग्य मनुष्य	,,
शोधन का निरूपण	,,
वृंहणीय और लंघनीय	१३३
वृंहित लंघित के लक्षण	,,
लंघित के लक्षण	,,
लंघन वृंहण की अनपेक्षित मात्रा	,,
अति स्थाल्यादि का वर्णन	,,
अति स्थौल्यादि की चिकित्सा	१३४
अन्य औषध	,,
अति लंघन से उत्पन्न रोगों का वर्णन	,,
कृशता को श्रेष्टत्व	१३५
दूसरा कारण	,,
कृश की औषध	,,
मांस खाने से स्थूलता	१३६
स्थूलकृश की सामान्य चिकित्सा	,,
चिकित्सा को द्विविधत्व	,,
पंचदशोऽध्यायः ।	
वमन कारक द्रव्य	१३६
वैरेचनिक द्रव्य	१३७
निरूहण द्रव्य	,,
शिरोविरेचन द्रव्य	,,
वातनाशक द्रव्य	,,

विषय	पृष्टांक.
पित्तनाशक द्रव्य	१३७
कफनाशक द्रव्य	,,
जीवनीय गण	,,
विदारी गण	१३८
सारिवादि गण	,,
दुग्ध वर्धक द्रव्य	,,
तृषादिनाशक औषध	,,
विषादि नाशक	,,
कफादि नाशक द्रव्य	,,
गुडूच्यादि गण	१३९
आरग्वधादि गण	,,
असनादि गण	,,
वरणादि गण	,,
ऊषकादि गण	,,
बिरतरादिगण	१४०
रोधादिगण	,,
अर्कादिगण	,,
सुरसादिगण	,,
मुश्ककादिगण	,,
वत्सकादिगण	१४१,
बचहारिद्रादिगण	,,
प्रियंग्वादि, अंबष्ठादि	,,
मुस्तादिगण	,,
न्यग्रोधादिगण	,,
एलादिगण	१४२
श्यामादिगण	,,
प्रयोगाविधि	,,
पानादि प्रकार से रोगनाशत्व	१४३
षोडशोऽध्यायः ।	
स्नेह विरूक्षण का स्वरूप	,,
स्नेहनमें घृतादि की उत्तमता	,,
घृतादि को पित्तनाशकता	,,
घृतकी अपेक्षा तैलादिको गुरुत्व	१४४
यमकस्नेहादि का निरूपण	,,
स्नेहनयोग्यों का निरूपण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक,
स्नेहन के अयोग्य व्यक्ति	,,
चारोंस्नेह का हितकारित्व	,,
भिन्नभिन्नस्नेहन का काल	१४५
रात्रिमें स्नेहन विधि	,,
स्नेह के उपयोग की विधि	,,
स्नेह की ६४ विचारणा	,,
अकल्पेय स्नेह	१४६
स्नेह की त्रिविध मात्रा	,,
बुभुक्षित को स्नेहोपयोग	१४७
रसादिसहस्नेह प्रयोग	,,
स्नेहपान का फल	,,
उष्णोदकपान विधि	,,
स्नेहपानान्तर भोजनादि	१४८
स्नेहपान की विधि	१४८
स्निग्ध के लक्षण	१४८
स्नेह के अनुचित प्रयोग का फल	,,
स्नेह विधि विभ्रंश में कर्त्तव्य	,,
विरूक्षण के कृतातिकृत लक्षण	,,
स्नेहन के पीछे का कर्म	,,
मांसल स्नेह योग्यों का निरूक्षण	१५०
वातवद्धादि का सद्यः स्नेहकरण	,,
अनुद्वेजक योगों का वर्णन	,,
कुष्ठादि में निषेध	,,
कुष्ठादि की स्नेहन विधि	१५१
बारबार स्नेह का फल	,,

सप्तदशोऽध्यायः।

स्वेद के चार प्रकार	,,
तापस्वेद का लक्षण	,,
उपनाहस्वेद के लक्षण	,,
स्वेदो पायभूतचर्मपट्टादि	१५२
ऊष्माद्रव्य भेद	,,
द्रवस्वेद	१५३
अवगाहन स्वेद	,,
स्वेदविधि	,,
कफरोग में स्वेद विधि	,,
आमाशयादि व्याधि में स्वेद विधि	१५४

विषय	पृष्टांक'
वंक्षणादि स्थान में स्वेद विधि	१५४
स्वेदित पुरुषों का कर्त्तव्य	,,
अतिस्वेद से हानि	,,
स्वेदन स्तंभन औषधि	,,
स्तंभन औषधि का रस	१५५
स्तंभित के लक्षण	,,
अति स्तंभित के लक्षण	,,
अस्वेद्यरोगी	,,
अग्निरहित स्वेद	१५६
स्वेदनका मुख्य कर्म	,,

अष्टादशोऽध्यायः।

वमनाविरेचन विधि	,,
वमनोपयोगी रोगी	,,
अवमनीय रोगी	१५७
विष में वमन विधान	,,
उत्करोगियों को गंडूषादि निषेध	,,
विरेचन के अयोग्य रोगी	१५८
विरेचन के योग्य रोगी	,,
वमन करने की विधि	,,
वमन करने वाले को परिचर्य्या	१५९
दोषानुसार वमन विधि	,,
वमन के हीन वेगमें कर्त्तव्य	,,
अयोग का लक्षण	१६०
सम्यक् योगा तियोग का लक्षण	,,
सम्यक् वमन का पश्चात् कर्म	,,
वमित व्यक्ति के लिये पथ्य	,,
पेयादि का क्रम	,,
पेयादि क्रम का फल	१६१
वमन विरेचनादि के वेग का नियम	,,
वमन विरेचन का अन्त	,,
वमन विरेचन का माप	१६२
वमित को विरेचन	,,
कोष्ठा नुसार विरेचन क्रम	,,
वातादि दोष में विरेचन	,,
विरेचन होने में कर्त्तव्य	,,
अहृष्ट कोष्ठ में कर्त्तव्य	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक,
विरेचन का अयोगायोग लक्षण	१६३
विरेचन के अतियोग का लक्षण	,,
विरेचन के पीछे का उपचार	,,
औषधि सेवनान्तर उपनाहादि	,,
संशोधन के पीछे पेयादि	,,
पेयादि क्रम के अयोग्य रोगी	१६४
औषधि के वचने की अनावश्यकता	,,
वमन विरेचन की विरुद्धता में कर्त्तव्य	,,
स्वतः विरेचन का उपचार	,,
दुर्बल की औषधि	,,
दुर्बल के अल्पदोष की चिकित्सा	१६५
मंदाग्नि और कूट कोष्ट का शोधन	,,
रूक्षादि का विरेचन	,,
विष पीडित व्यक्ति का विरेचन	,,
विरेचन का प्रकार	,,
स्नेहादि का बार बार प्रयोग	,,
शोधन औषध द्वारा मलका निकालना	१६६
स्नेह स्वेद विना शोधन से हानि	,,
संशोधन का फल	,,

एकोनविंशोऽध्याय ।

वस्ती के भेद	,,
निरुहण वस्ती के अयोग्य रोगी	१६७
अनुवासन के योग्य रोगी	,,
निरूह तथा अनुवासन यंत्र के लक्षण	,,
नेत्र की लंबाई	१६८
नेत्र की मुटाई	,,
नेत्र के छिद्र का प्रमाण	,,
नेत्रमें कर्णिका आदिकी योजना	१६९
यस्तिके अभाव में कर्तव्य	,,
निरूहवस्ति की मात्रा	,,
अनुवासनवस्तिकी मात्रा	,,
अनुवासन का प्रकार	,,
बस्ति प्रयोग की विधि	१७१
वस्ति के पीछे की क्रिया	,,
स्नेह निवृति	,,
स्नेह निवृति के पीछे का कर्म	,,

विषय	पृष्टांक;
स्नेह निवृति का काल	,,
स्नेह के न निकलने पर कर्त्तव्य	,,
अनुवासन का काल	१७२
निरूह का काल	,,
निरूह की कल्पना	१७६
दोष परता में स्नेह का प्रमाण	,,
अन्य नियमादि	,,
वस्ति की योजना	१७३
अन्यमत	,,
निरूहण के पीछे का कर्म	,,
निरूह की अवधि	,,
स्वयं निरूह के निकलने पर कर्त्तव्य	१७४
निरूह के लक्षण और पथ्यादि	,,
पथ्य का कारण	,,
अनुवासन देने का काल	,,
अनुवासित के लक्षण	,,
अनुवासन का सम्यक् योग	,,
अनुवासन की संख्या	१७५
अनुवास्तनवस्ति वाले का भोजन	,,
वातरोग में वस्ति	,,
पित्तरोग में वस्ति	,,
कफरोग में वस्ति	,,
सन्निपात में वस्ति	,,
चौथी वस्ति का निषेध	,,
अन्य कारण	,,
उभयपक्ष में प्रमाणत्व	१७६
ग्रंथकार का मत	,,
कर्म वस्तियों की संख्या	,,
काल वस्ति तथा योग वस्ति	,,
एक प्रकारकी वस्तिओंके सेवनका योग	,,
उपसंहार	,,
मात्र वस्ति के लक्षणादि	१७७
उत्तर वस्ति का विधान	,,
उत्तर वस्ति के नेत्र का परिमाण	,,
उत्तर वस्ति की मात्रा	,,
उत्तर वस्ति के प्रयोग की विधि	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
उत्तरवस्ति की संख्या	१७८
स्त्रियों को उत्तर वस्ति	,,
नेत्र का परिमाण	,,
उत्तरवस्ति की मात्रा	,,
स्त्रियों को उत्तर वस्ति की विधि	,,
फिर वस्ति का प्रयोग	१७९
वस्ति देने का नियम	,,
बस्ति का प्रयोजन	,,
वायु का प्राधान्य	,,
वस्ति को वायु का शमनत्व	,,
वस्ति का महत्व	,,
विंशोऽध्यायः ।	
नस्य साध्य विकार	१८०
नस्य के भेद	,,
विरेचन नस्य	,,
बृंहण नस्य	,,
शमन नस्य	,,
नस्य की औषधें	,,
नस्य के अन्य भेद	१८१
अब पीड नस्य	,,
प्रधाननस्य	,,
मर्शस्नेह का परिमाण	,,
नीचेलिखे मनुष्यों को नस्यदेनी चाहिये	,,
नस्य के अयोग्य रोगी	१८२
नस्य को काल और दोष	,,
ऋतु परता से नस्य काल	१८३
दोष परत्व से नस्य काल	..
नस्य का विधि	..
नस्य की मात्रा	..
नस्य जन्य मूर्छा का प्रतिकार	१८४
विरेचन नस्य के पीछे के कर्म	..
नस्य के सम्यक् योग का लक्षण	,,
नस्य का रनक्ष योग	,,
अनिस्निग्धता के लक्षण	,,
सुविरिक्त और दुर्विरिक्त	,,
प्रतिमर्श का विषय	१८५

विषय.	पृष्ठांक.
प्रतिमर्श का काल और मात्रा	१८५
प्रतिमर्श का फल	,,
पय परत्व से नस्यादि का नियम	,,
प्रतिमर्श का सदा सेवन	,,
प्रतिमर्श में तेल को श्रेष्ठत्व	१८६
मर्श और प्रतिमर्श का अंतर	,,
अणु तैल	,,
नस्य सेवन के गुण	१८७
एकविंशतितमोऽध्यायः ।	
धूमपानकी आवश्यकता	,,
धूमपान के भेद	,,
धूम के अयोग्यरोगी	,,
धूमपान के उपद्रव और उनकी चि०	१८८
धूमपान का काल	,,
धूमपान की नली का स्वरूप	,,
धूमपान के नेत्र की लंबाई	,,
धूमपानकी विधि	१८९
धूमपान का क्रम	,,
धूमपान का नियम	,,
दिनमें धूमपान की संख्या	,,
मृदु का धूमपान	..
मध्यम धूमपान के द्रव्य	..
तीक्ष्ण धूमपान के द्रव्य	१९०
धूमबत्ति का विधान	,,
धूमपान का अन्य प्रकार	,,
धूमपान का फल	,,
द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।	
गंडूष के भेद और विधि	१९१
दंत हर्षादि रोग में गंडूष	,,
सामान्य गंडूष	,,
ऊषादाहादिक में गंडूष	,,
मधु गंडूष धारण के गुण	,,
धान्याम्ल गंडूष के गुण	,,
अलवण धान्याम्ल के गुण	,,
क्षारजल के गंडूष	१९२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
सुखोष्णोदक गंडूष	१९२
गंडूषधारण प्रकार	,,
गंडूषधारणका प्रकार	,,
मन्यारोगादि की चिकित्सा	,,
प्रतिसारण के भेद	,,
मुखलेप के भेद और प्रयोग	,,
मुखलेप के प्रमाणादि	,,
मुखलेप के अयोग्यरोग	१९३
सुयोजित मुखलेप के गुण	,,
ऋतुः परता से छः लेप	,,
मुखलेप का फल	,,
सिरमें तेल के चार प्रकार	,,
अभ्यंगादि का प्रयोग	१९४
शिरोवस्ति की विधि	,,
पीछे का कर्त्तव्य कर्म	,,
कर्णपूरण	,,
मात्रा का प्रमाण	१९५
मूर्द्ध तैल के गुण	,,
त्रयोविंशोऽध्यायः ।	
नेत्ररोग में आश्चोतन	,,
आश्चोतन की विधि	,,
अन्युष्ण आश्चोतन के रोग	,,
युक्ति पूर्वक प्रयुक्त औषध का फल	१९६
अंजन प्रयोग	,,
अंजन के भेद	,,
अंजन की शलाका का प्रकार	,,
अंजन की त्रिविध कल्पना	,,
तीक्ष्णादि चूर्ण का प्रमाण	१९७
रात्र्यादि में अंजन का निषेध	,,
अन्य आचार्यों का मत	,,
अन्य मत में दूषण	,,
इसमें दृष्टांत	१९८
रात्रि में तीक्ष्णांजन का निषेध	,,
अंजन के अयोग्यव्यक्ति	,,
न लगाने योग्य अंजन	,,
अंजन के पीछे का कर्त्तव्य	,,

विषय.	पृष्ठांक.
क्षालन विधि	१९९
शोधन प्रकार	,,
कंडू आदि में तीक्ष्ण अंजन	१९९
चतुर्विंशोऽध्यायः ।	
तर्पण की योजना	,,
नेत्र में घृत डालना	२००
रात्र्यंध में कर्त्तव्य कर्मादि	,,
अपांग देशमें व्याकरणादि	,,
वातादि रोगमें प्रतिदिन तर्पण	,,
तर्पण के लक्षण	,,
पुटपाक का विधान	२०१
वातादि में स्नेहनादि पुटपाक	,,
स्नेहपुटपाक की कल्पना	,,
लेखन पुटपाक की कल्पना	,,
प्रसादनपुट पाक की कल्पना	,,
पुटपाक की कल्पना	,,
पाकान्त में कर्त्तव्यादि	२०२
अंजनादि के प्रयोग की आवश्यकता	,,
पंचविंशोतितमोऽध्यायः ।	
यंत्रों का स्पष्टविवरण	,,
यंत्रों के रूप और कर्म	,,
स्वस्तिक यंत्र	,,
कंकमुख, सिंहास्य, ऋक्षमुख, काकमुख तरक्षु मुख	
संदंश यंत्र	२०४
मुखंडी यंत्र ताल यंत्र	,,
नाड़ी यंत्र	,,
अन्य नाड़ी यंत्र	२०५
शल्य निर्घातनी नाड़ी	,,
शल्यदर्शनार्थ अन्य नाडी	,,
अर्शोयंत्राणि	,,
भगंदर यंत्र	२०६
अर्शोयंत्र	,,
शमी यंत्र	,,
नासा यंत्र	,,
अंगुलिस्फोटक यंत्र	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
योनिव्रण क्षण यंत्र	,,
षडंगुल यंत्र	२०७
उदकोदर में नलिका यंत्र	,,
धूमादि यंत्र	,,
शृंगी यंत्र	,,
तुंबी यंत्र	,,
घंटी यंत्र	२०८
शलाका यंत्र	,,
शंकुयंत्र	,,
गर्भशंकु	,,
सर्वक्षण यंत्र	,,
शरपुंख यंत्र	,,
छः प्रकार की शलाका	२०९
क्षाराग्नि कर्मो पयोगी शलाका	,,
क्षार कर्म में शलाका	,,
मेढ्रशोधन शलाका	,,
उन्नीस प्रकार के अनुयंत्र	,,
यंत्रों के कर्म	२१०
कंकमुखयंत्रों की प्रधानता	,,
षडविंशोऽध्यायः।	
शस्त्रों का वर्णन	,,
मंडलाग्र शस्त्र	२११
वृद्धिपत्रादि के शस्त्र	,,
सर्पास्यशस्त्र	,,
एषण्यादि शस्त्र	,,
कुशपत्रादि	२१२
कुठारी शस्त्र	,,
शलाका शस्त्र	,,
अंगुलि शस्त्र	२१३
बडिश यंत्र	,,
करपत्र शस्त्र	,,
कर्तरी शस्त्र	,,
नखशस्त्र	,,
दंतलेखनशस्त्र	,,
सूचीशस्त्र	,,
कूर्चशस्त्र	२१४
मंडशस्त्र	,,

विषय.	पृष्ठांक.
कर्णव्यध शस्त्र	२१५
आराशस्त्र	,,
कर्णवेधनी सूची	,,
अलोहशस्त्र	,,
शस्त्रों का कार्य	,,
शस्त्रों का दोष	,,
शस्त्रोंके पकडने की विधि	२१६
शस्त्रकोश	,,
जलौका विधान	,,
सविष जोक	,,
निर्विष जोक	,,
त्यागनेयोग्य जोक	२१७
जोकके लगाने का नियम	,,
जोकका स्वभाव	,,
जोकका वमन विधान	,,
जोकोंका अनेकपात्रों में रखना	२१८
अशुद्धरक्त में कर्तव्य	,,
अशुद्धरक्तका फिर निकालना	,,
अलाबु और घटिका यंत्रप्रयोग	,,
शृंग का प्रयोग	,,
प्रच्छान विधि	,,
प्रच्छानादि के अन्य प्रयोग	२१९
गरमघृत का सेवन	,,
सप्तविंशोऽध्यायः।	
शुद्धलोहित का स्वरूप	,,
दूषितरुधिर के विकार	,,
सिराव्यध का निषेध	२२०
रोगविशेषमें शिरा विशेषका वेधन	,,
सिराव्यध के पहिले का कर्तव्य	२२१
वेधन विधि	२२२
व्रीहिमुख से फिर वेधना	,,
उपनाभि का सिराव्यध	,,
जिह्वास्थासिरा का व्यध	,,
ग्रीवास्थित सिराव्यध	,,
हाथकी सिराका वेधन	,,
पसली और मेढ्रकी सिरा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
पाद सिराव्यध	२२३
मांसलदेश में ग्रीहिमुखयंत्र	,,
अतिविद्धाविद्ध के लक्षण	,,
रक्तस्राव न होने के हेतु	,,
सम्यग्मिथ्यक स्रावमें हेतु	,,
दूषितरक्त का स्राव	,,
शुद्धरक्त का अस्राव	२२४
मूर्छामें यंत्रका खोलना	,,
वातादिदोषों से रक्तके लक्षण	,,
अशुद्धरक्त के स्रावका परिमाण	,,
अतिस्रुत में उपाय	,,
रक्तस्राव का पश्चात्कर्म	,,
पुनः स्राव	,,
स्रावमें संशयका प्रतिकार	२२५
शेषरक्त का उपाय	,,
रक्त न रुकने पर स्तंभनक्रिया	,,
अन्य उपाय	,,
रक्तस्राव के पीछेका कर्म	,,
अग्निकी रक्षाकी आवश्यकता	,,
रोगोंके स्वस्थानमें जानेके लक्षण	२२६

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

शल्यों की पांचगति	,,
शल्य के जानने की रीति	,,
त्वचा और मांसगत शल्यके लक्षण	,,
पेशीस्नायु और सिरागतशल्य	,,
स्रोत, धमनी और अस्थिगतशल्य	२२७
अस्थ्यादिगत शल्य	,,
शल्य का रोहिणादि	,,
त्वचामें नष्टशल्य का परिज्ञान	२२८
मांसादि नष्टशल्य का परिज्ञान	,,
शल्यस्थान की सामान्य परीक्षा	,,
अदृष्टशल्य की आकृति	,,
शल्यकर्षण के उपाय	,,
अनिपातनीय शल्य	२२९
न निकालने योग्य शल्य	,,
हस्तादि में लगेहुए शल्योंका निकालना	,,

विषय	पृष्टांक.
अदृश्य शल्यों के यंत्र	२२९
अन्य यंत्रों का प्रयोग	,,
शस्त्र से छेदन	,,
सिरादिस्थ शल्यों का निकालना	,,
अस्थ्यादिके शल्योंके निकालनेकीरीति	२३०
फूले हुए शल्य का निकालना	,,
अन्य रीति	,,
विरेक चूर्णेणादि से निकालना	,,
कंठ स्रोतो गत शल्य	२३१
अन्य शल्य	,,
केश गुच्छ से शल्य निकालना	,,
मुखनासिका और कंठ के शल्य	,,
अक्षिगत शल्य	,,
उदर से जल निकालना	,,
कानसे जल निकालने का उपाय	,,
कान से कीडे निकालना	२३२
लाख के शल्य का निकालना	,,
काष्ठादि शल्य का न निकालना	,,
विषाणादि शल्य का अविलयन	,,
मांस व गाढ का निकालना	,,
शल्य निकालने में ज्ञान	,,

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

सूजन का उपचार	२३३
आमशोफ का लक्षण	,,
पच्यमान शोफ का लक्षण	,,
शोफ की पक्वावस्था	,,
अनिलादि विना शूलादि असंभव	,,
अत्यंत पाक में छिद्रादि	२३४
रक्त पाक के लक्षण	,,
सूजन में दारणादि	,,
आमशोफ के छेदन में उपद्रव	,,
अंतस्थ शयको सिरादाहकता	,,
असमीक्षा कारी वैद्य की निंदा	,,
शस्त्रकर्म से पूर्वकर्त्तव्य	२३५
शस्त्रकर्म की विधि	,,
व्रण का प्रदेश	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
वैद्य का शस्त्र कर्म में शौर्यत्व	२३६
तिर्यक छेदन के योग्य स्थान	,,
शस्त्र कर्म में रोगी को अश्वासन	,,
घाव में बत्ती का प्रवेश	,,
घाव के पीछे का कृत्य	,,
घाव में पट्टी आदि का फल	२३७
व्रण का रक्षण	,,
गरम जल के उपचारादि	,,
व्रण में वर्ज्य कर्म	,,
घाव में भोजनादि	,,
पथ्य का हितकारित्व	,,
व्रण में नव धान्यादि	२३८
घाव में बालोशीर व्यंजनादि	,,
घाव के धोने का नियम	,,
अतिस्निग्धादि बत्तियों का निषेध	,,
घाव में बत्ती लगाने का कारण	२३९
कच्चों में नश्तर लगाने का उपचार	,,
चौड़े मुख वाले व्रणो का सेवन	,,
सीने के पूर्व कर्म	,,
रोगी को अश्वासन	२४०
घाव का फिर सीमना	,,
पट्टी बांधने का स्वरूपादि	,,
कफादि अन्य व्याधि में बंधन	,,
बंधन का प्रकार	,,
बंधनों का गाढा वा ढीला बांधना	२४१
पित्तरक्तोत्थ घावों में बंधन	,,
पट्टी न बांधने का फल	,,
बंधन के गुण	,,
पांच प्रकार के व्रण	२४२
स्थिरादि व्रणों का वर्णन	,,
न बांधने के योग्य व्रण	,,
कृमि वाले घावों का वर्णन	,,
कृमियों की चिकित्सा	,,
भीतर दोषवाले घाव	२४३
रोपित व्रण में वर्जितकर्म	,,
वैद्य को उपदेश	,,

विषय.	पृष्ठांक.
त्रिंशोऽध्यायः ।	
क्षारकर्म को श्रेष्ठत्व	२४३
क्षार के उपयुक्त विषय	२४४
क्षार का निषेध	,,
क्षार की क्रिया	,,
मृदुतीक्ष्ण क्षार	२४५
उक्त क्षारों का प्रयोग	२४६
क्षार के गुण	,,
अंतरानुग व द्वार से क्षार के गुण	,,
क्षार सुयोग की विधि	,,
क्षार के मार्जन की विधि	२४७
क्षारकर्म में भोजनादि	,,
क्षार दग्धस्थान पर लेप	,,
व्रणरोपण तिलकल्क	,,
सम्यक् दग्धादि के लक्षण	,,
अतिदग्ध गुदा के उपद्रव	२४८
क्षारातिदग्ध नाक कान	,,
क्षारदग्ध में कांजी आदि की उपयोगिता	,,
क्षार से अग्निकर्म को श्रेष्ठता	,,
त्वचा में अग्निदाह	,,
मांसदाह	२४९
सिरादाह	,,
अग्निदाह के अयोग्यस्थान	,,
सुदग्ध में कर्त्तव्य	,,
सुदग्ध के लक्षण	,,
दुर्दग्ध के लक्षण	,,
प्रमाद दग्ध के चार भेद	,,
तुत्थ दग्ध की चिकित्सा	२५०
दुर्दग्ध की चिकित्सा	,,
सम्यक् दग्ध की चिकित्सा	,,
अतिदग्ध की चिकित्सा	,,
स्नेह दग्ध की चिकित्सा	,,
सूत्रस्थान की समाप्ति	,,

शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।	
गर्भ होने का कारण	२५२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
गर्भाशय में जीवकी वृद्धि	२५२
गर्भाशय में गत जीवका न दीखना	२५३
जीवकी अनेक योनि में दृष्टांत	,,
स्त्रीपुंसादि का जन्म	,,
एक काल में अनेक गर्भ	,,
विकृत गर्भ का कारण	,,
प्रतिमास में रजास्राव	२५४
वीर्यवान संतानोत्पत्ति में कारण	,,
शुक्रार्तव संयोग में गर्भकी अनुत्पत्ति	,,
वातादि दोषज शुक्र का ज्ञान	,,
शुक्रार्तव का साध्यासाध्य विचार	२५५
वातादिसंसृष्ट शुक्रार्तव की चिकित्सा	,,
कुणप की चिकित्सा	,,
ग्रंथिसंसृष्ट शुक्रकी चिकित्सा	२५६
पूय शुक्र की चिकित्सा	,,
क्षीण शुक्र की चिकित्सा	,,
पुरीष संसृष्ट शुक्र की चिकित्सा	,,
ग्रंथ्यार्तव की चिकित्सा	,,
कुणप पूय शोणित की चिकित्सा	,,
शुद्धशुक्रार्तव के लक्षण	२५७
गर्भस्थित होने के पहिले कर्तव्यता	,,
पुरुष का उपक्रम	,,
स्त्री का उपक्रम	,,
गर्भग्रहण का काल	,,
ऋतुकाल से पीछे योनिसंकोच	२५८
वायुकी कारणता	,,
ऋतुकाल में स्त्रीका वर्तन	,,
ऋतुकाल का परिमाण	,,
पुत्रेष्टियज्ञ	२५९
स्त्रीका गुप्तसेवन	,,
दंपती के पुत्रचिंतन का प्रकार	,,
पुत्रविधि का पश्चात्कर्म	,,
मंत्रपाठ	,,
मंत्र पाठान्तरकर्म	२६०
सुयोगभा के लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठांक.
गर्भकी अवस्था	२६०
पुंसवन प्रयोग	२६१
अन्य प्रयोग	,,
सफेदकटेरी की जड़	,,
पुत्रोत्पादन में अन्य प्रयोग	,,
गर्भिणी का उपचार	,,
गर्भिणी को त्याज्यकर्म	,,
वातलादि अहार का निषेध	२६२
मृदु औषधों का सेवन	,,
गर्भके दूसरे मासके लक्षण	,,
त्यक्तगर्भ के लक्षण	,,
गर्भिणी के हिताहित पथ्यका विचार	,,
तीसरे महिने में गर्भका लक्षण	२६३
गर्भके बढाने का प्रकार	,,
चौथेसे सातवें महिनेतक गर्भकीदशा	,,
गर्भिणी के कष्टवादि	,,
उक्तकाल में उपचार	२६४
अष्टममांस में तेज संचार	२६४
अष्टममांस का उपचार	,,
गर्भप्रसव का काल	२६५
नवममास का उपचार	,,
पुत्रादि होने के लक्षण	,,
नपुंसक होने के लक्षण	,,
गर्भिणी का सूतिकाग्रह में आश्रय	२६६
आसन्न प्रसवा के लक्षण	,,
उपस्थितगर्भा के साथ कर्तव्य	,,
शुक्तकर्म का फल	२६७
गर्भिणी का खट्वारोपादि	,,
गर्भसंग में धूपनादि	,,
अनुवासनादि	२६८
मकल्लरोग में उपाय	,,
प्रसूती का उपचार	२६९
पेयपान की विधि	,,
विशित का अनुपयोग	,,
प्रसूती का यत्नपूर्वक उपचार	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
उक्तविधि सेवन का काल	,,
द्वितीयोऽध्यायः ।	
गर्भिणी के पुष्पदर्शन में कर्तव्य	२७०
स्त्रीकी स्नान विधि	,,
तीनमहीनेके भीतर पुष्पदर्शनमें कर्तव्य	२७१
गर्भपात के पीछे के कर्तव्य	,,
सुसाविष्टकगर्भ के लक्षण	२७२
नागोदरगर्भ के लक्षण	,,
उक्तगर्भों में उपचार	,,
क्लीनगर्भों की चिकित्सा	,,
विपरीत आचरण का फल	२७३
उदावर्त का उपाय	,,
उदर में मृतगर्भ के लक्षण	,,
मृतगर्भों का उपचार	,,
शस्त्रद्वारा मूढगर्भ का उपाय	२७४
गर्भकी छेदन की विधि	,,
मूढ गर्भ की सामान्य चिकित्सा	२७५
जीवित गर्भके छेदन का निषेध	,,
उपेक्षा के योग्य मूढ गर्भ	,,
स्नान के पीछे चूर्णादि का प्रयोग	,,
मूढगर्भों का कर्तव्य	२७६
बला तेल	,,
गर्भरक्षा के सात योग	२७७
अष्टमादि मास में गर्भरक्षा	,,
गर्भ विषय में अन्यानों का मत	,,
तृतीयोऽध्यायः ।	
अंगों के भाग	२७८
पंच महा भूतों के गुण	,,
महा भूतों के देह के उत्पत्ति	,,
देहमें मातृज पितृज भाग	२७९
सात्म्यज निरूपण	,,
रसज निरूपण	,,
रक्तसे सात त्वचाओं की उत्पत्ति	२८०
कलाओं का वर्णन	,,
आशयों का वर्णन	२८१

विषय.	पृष्ठांक.
जीवन के दश स्थान	२८२
शरीर में जालादि की संख्या	,,
अस्थियों की संख्या	२८३
धन्वंतरि और आत्रेय का मत	२८४
स्नायु और पेशी की संख्या	२८५
सिराओं का संख्या	२८६
शाखागतअवेध्यसिराओं का वर्णन	२८७
कोष्ठगत अवेध्यसिराओं का वर्णन	२८८
जत्रुसे ऊपर की सिराओं का वर्णन	,,
ग्रीवा की अवेध्यसिरा	,,
हनुगत अवेध्य सिरा	,,
जिह्वा गत अवेध्य सिरा	,,
नासागत अवेध्य सिरा	२८९
नेत्रगत अवेध्य सिरा	,,
ललाट गत अवेध्य सिरा	,,
कान की अवेध्य सिरा	,,
मूर्द्धागत अवेध्य सिरा	,,
अवेध्यसिराओं की संक्षिप्त वर्णन	,,
सिराओं से रक्तादि का वहना	,,
वातादि जुष्टसिराओं का लक्षण	२९०
शुद्ध रक्तके लक्षण	,,
नाभि संबंध सिराओं का वर्णन	,,
दृश्य अदृश्य श्रोतों का निरूपण	१९१
स्रोतों की आकृति	,,
आहारादि से स्रोतों का दूषित होना	,,
स्रोतों की दुष्टिका लक्षण	२९२
स्रोतों के द्वार	,,
स्रोतोंव्यधक अवगुण	,,
धन्वंतरि और अत्रेय का मत	,,
ग्रहणी का वर्णन	,,
पक्व अन्न के गुण	२९३
ग्रहणी और अग्नि का अयोन्य संबंध	,,
अग्निद्वारा अन्नपान	,,
शरीर में पाक का प्रकार	,,
अग्निसमीपस्थ अन्न की अवस्था	२९४
अन्य अग्नियों के कर्म	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
मूल गुणों का पोषण	,,
पक्व अन्नके भेद	,,
रसादि की उत्पत्ति का क्रम	२९५
रसादि की उत्पत्ति का क्रम	,,
रसादि धातुओं का किट्ट	,,
रसादि धातुओं को द्विविधत्व	,,
आहार की परिणति का काल	,,
योग्यधातुओं की वृणवृत्ति	,,
वृष्यपदार्थों को सद्यवीर्योत्पादकता	२९६
अहोरात्रस्यकर्म कर्त्तव्य	,,
जठराग्नि द्वारा आहार की प्रेरणा	,,
दोषों का भी एक देशमें प्रकोपम	,,
जठराग्नि के पालनादि कर्म	,,
जठराग्नि के पालनादि कर्म	,,
जठराग्नि के चार भेद	२९७
चतुर्विधि अग्नि के लक्षण	,,
बलके भेद और लक्षण	,,
देशको त्रिविधत्व	२९८
देह में मज्जादि का प्रमाण	,,
सात प्रकार की प्रकृति	,,
वातको प्रधानता	,,
वात प्रकृति के लक्षण	२९९
पित्त प्रकृति के लक्षण	,,
कफ प्रकृति के लक्षण	३००
द्वंन्द्व प्रकृति के लक्षण	३०१
सात्वादि प्रकृति का निरूपण	,,
सात्वादि प्रकृतियों का ज्ञान	,,
शरीर का परिमाण और लक्षण	३०२
पीठ आदि के लक्षण	,,
शरीरके शुभलक्षण	३०३
बल के प्रमाण का ज्ञान	,,
सत्वादि प्रकृति वाले को सुख का-अनुभव	,,
शरीर का प्रधान फलदायी लक्षण	३०४

चतुर्थोऽध्यायः ।

मर्मों की संख्या	,,
विशिष्ट संज्ञा वाले मर्म	,,

विषय.	पृष्ठांक.
गुल्फ संध्यादि में मर्म	,,
गंधादि के मर्मों के नाम	,,
हाथों के मर्म के नाम	३०५
स्थूलांत्र बद्ध के नाम	,,
वस्त्यारव्य मर्म	,,
हृदय के मर्म	,,
स्रोतों के मर्म	३०६
वक्षस्थल के पार्श्व में मर्म	,,
पीठ के बांसे के मर्म	,,
पीठ के बांसे के पार्श्व में मर्म	,,
कटि वा पार्श्व के मर्म	,,
नितंब मर्म	,,
पार्श्व संधि मर्म	३०७
वृहती मर्म	,,
अंसफल का मर्म	,,
अंस मर्म	,,
नील और मन्या मर्म	,,
मातृ का मर्म	,,
कुकाटि का मर्म	,,
विधुर का मर्म	,,
फण मर्म	३०८
अपांग मर्म	,,
शंख मर्म	,,
उत्क्षेप और स्थपनी मर्म	,,
शृंगाटक मर्म	,,
सीमंत मर्म	,,
अधिपमर्म	,,
मर्मोंके सामान्य लक्षण	,,
मांसप्रमेह से मर्मके लक्षण	३०९
मर्मों की अनेकता	,,
मांसगत मर्मों की संख्या	,,
अस्थिगत आठ मर्म	,,
स्नायुंमर्मों के नाम	,,
धमनीगत मर्मों के नाम	,,
सिराश्रित मर्मोंके नाम	,,
संधिमर्मों के नाम	३१०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
अन्य आचार्यों के मत	३१०
मांसादि मर्मों का व्यध लक्षण	,,
अस्थिमर्म विद्ध के लक्षण	,,
स्नायुमर्म विद्ध के लक्षण	,,
धमनीगतमर्म विद्ध के लक्षण	,,
सिरामर्म विद्ध के लक्षण	,,
संधिमर्म विद्ध के लक्षण	३११
जीवित नाश में काल का नियम	,,
अपस्तंभादि मर्मों का काल	,,
अंगवैकल्य कारक मर्म	,,
वेदना कारक मर्म	३१२
मर्मों का यथायथ प्रमाण	,,
अन्य मर्मों का प्रमाण	,,
मर्माभिघात में मरण विधि	,,
मर्माभिघात में चिकित्सा	३१३
अमर्मविद्धका जीवन	,,
मर्माहत में सावधानी	,,
पंचमोऽध्याय ।	
मृत्यु का चिन्हरिष्ट	,,
रिष्टों के लक्षण	३१४
कृष्णात्रेय का मत	,,
रिष्ट के लक्षण	,,
केशादि में रिष्टके चिन्ह	,,
इन्द्रियविकृति में रिष्टचिन्ह	,,
ओष्ठादि में रिष्ट चिन्ह	,,
शिर आदि में रिष्ट चिन्ह	३१५
ललाटादि में रिष्टचिन्ह	,,
सिरादि में रिष्टचिन्ह	,,
मूर्धादि में रिष्टचिन्ह	,,
वक्षःस्थल में रिष्टचिन्ह	३१६
आकस्मिक रिष्टाचिन्ह	,,
यूकादि के चिन्ह	,,
पिटकादि युक्त के चिन्ह	३१७
विपरीत चिन्हों का वर्णन	,,
अरुंधतियों का चिन्ह	,,
श्रोत्रेन्द्रिय में विकृतिके चिन्ह	,,

विषय	पृष्ठांक
गंधादि विपर्यय चिन्ह	३१८
स्वरविकृति का निरूपण	,,
छाया का द्विरूपता	३१९
प्रतिच्छाया का वर्णन	,,
पंचमहाभूतों की छाया	,,
प्रभाके सात भेद	,,
छाया और प्रभा का अन्तर	३२०
छाया और प्रभाकी व्याप्ति	,,
अन्यरिष्ट चिन्ह	,,
ग्रीवादि में शीतल स्वेद	३२१
अलक्ष्मीयादि	,,
स्वभाव में विपरीतिसों	,,
भक्त्यादि के निवर्तन चिन्ह	,,
कचोत्पाटनादि चिन्ह	,,
सहसाविकार के चिन्ह	३२२
ज्वरविकार में चिन्ह	,,
रक्तपित्त में विकृति के चिन्ह	,,
श्वासकास में चिन्ह	,,
राज्यक्ष्मा के चिन्हें	,,
धमन से मृत्युका लक्षण	,,
तृषा से मृत्यु के चिन्ह	३२३
मदात्यय चिन्ह	,,
अर्श चिन्ह	,,
अतिसार के विकार	,,
अश्मरी के चिन्ह	,,
प्रमेह चिन्ह	,,
पिटिका चिन्ह	३२४
गुल्म चिन्ह	,,
उदरव्याधि निमित्त रिष्ट	,,
पांडुरोग के रिष्ट	,,
शोफ के रिष्ट	,,
ज्वरादिकों को मृत्युचिन्ह	३२५
पादस्थ शोथ के चिन्ह	,,
मुख्यादि में शेष चिन्ह	,,
कुष्ठ में चिन्ह	,,
विसर्प चिन्ह	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
वायु के चिन्ह	३२५
सर्वरोग चिन्ह	,,
वातादि रोगी	,,
वलमांस क्षयादि	३२६
वाताष्ठीला के चिन्ह	,,
अंगविशेष में वायु के चिन्ह	,,
नाभ्यादिगत वायु	,,
पर्शुकाग्रस्थ वायु	,,
ह्रादितिज्वर संतापादिक	,,
लेपज्वरादि के चिन्ह	,,
पिटिकाद्वारा मृत्युचिन्ह	३२७
विस्फोटक चिन्ह	,,
कामलादि चिन्ह	,,
विवृष्टव्रण के चिन्ह	,,
वातजव्रण के चिन्ह	३२७
भगंदर के चिन्ह	,,
जानुघट्टनादि चिन्ह	,,
रोगी की चेष्टादि	,,
तिलव्यंगादि चिन्ह	३२८
उर्ध्वश्वास के चिन्ह	,,
सहस्राविकारादि	,,
वैद्यके चिन्ह	,,
औषधि के चिन्ह	,,
औषधादि का वर्ण विपर्यय	,,
मृत्यु के अन्य चिन्ह	,,
आत्रेय का मत	३२९
मृत्यु सूचक वाक्यों का निषेध	,,
चिकित्सा के निष्फल होने में कर्तव्य	,,
रिष्टज्ञानादर में हेतु	,,
पुण्यादि क्षयसे मरण	,,
षष्ठोऽध्यायः ।	
पाखंडादि दूतों की शुभाशुभ सूचना	,,
निषिद्ध दूतों का वर्णन	३३०
वैद्यके लक्षणों से मृत्युकी सूचना	,,
वेश विशेष से दूत विचार	,,
रोगी के दूतकी चेष्टा	३३१

विषय	पृष्टांक
दूतके आनेका अशुभकाल	३३१
दूतकी वातों के समय अशुभनिमित्त	,,
अन्य अशुभ निमित्त	,,
अन्य अशुभ चिन्ह	३३२
पुरुषादि पक्षियों का शुभाशुभत्व	,,
खगमृगादि का शुभाशुभत्व	,,
अशुभ पक्षियों का वर्णन	,,
कोलादिकों का कर्त्तिम में शुभत्व	३३३
इन्द्रधनुष का शुभाशुभत्व	,,
अग्नि पूर्ण पात्रोंका शुभाशुभत्व	,,
ग्रहप्रवेश में शुभाशुभ निमित्त	,,
वैद्यको उपदेश	,,
आरोग्यता के लक्षण	,,
स्वप्न कथनम्	३३४
स्वप्न में मद्यपान से अशुभत्व	,,
रक्तपित्त से मृत्यु	,,
यक्ष्मा के हेतु	,,
कटकादि को अशुभत्व	,,
नग्नता से अशुभत्व	,,
प्रमेह से मरण	३३५
उन्माद से मरण	,,
मृगीरोग से मरण	,,
गर्दभादियात से मृत्यु	,,
मृत्यु के अन्य स्वप्न	,,
अन्य अशुभ स्वप्न	,,
स्वप्न में कृष्णादिस्त्रियों को देखना	३३६
स्वप्न भेद	,,
उक्तस्वप्नों का फलाफलत्व	३३७
अशुभ स्वप्न में दानादि	,,
दुःखस्वप्न के पीछे सुखस्वप्न	,,
सौम्य स्वप्नों का वर्णन	,,
आरोग्य के लक्षण	३३८
शारीरस्थान की निरुक्ति	,,
निदानस्थानम् ।	
प्रथमोऽध्यायः ।	
रोगके पर्य्यायवाची शब्द	३३९
रोगविज्ञान के पांच प्रकार	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
निदानके पर्य्याय	३३९
आमरूप के लक्षण	,,
रूपके लक्षण पर्य्यादि	३४०
उपशय के लक्षण	,,
अनुपशय के लक्षण	३४१
संप्राप्ति के लक्षण	,,
संप्राप्ति के भेद	,,
विकल्प लक्षण	३४२
प्राधान्य लक्षण	,,
बलाबल कथन	,,
व्याधि का काल	,,
रोगोत्पत्ति का हेतु	३४३
तीन प्रकार का अहित सेवन	,,
वायुके कोप का कारण	,,
पित्तके कोप का कारण	,,
कफके कोप का कारण	,,
सन्निपात का कारण	३४४
दोषों का विकारकारित्व	,,
द्वितीयोऽध्यायः।	
ज्वर का निर्देश	,,
ज्वर के भेद	३४५
ज्वर की संप्राप्ति	,,
ज्वरका पूर्वरूप	३४६
वातज ज्वर के लक्षण	,,
पित्तज्वर के लक्षण	३४७
कफज्वर के लक्षण	,,
दोषों के सामान्य लक्षण	,,
सामान्य से भिन्न दो लक्षण	,,
संसर्गज ज्वर के लक्षण	,,
वात पित्तज ज्वर के लक्षण	३४८
वात कफ के लक्षण	,,
कफ पित्तज्वर के लक्षण	,,
सन्निपात ज्वर के लक्षण	,,
साध्यासाध्य लक्षण	३४९
अन्य प्रकार का सन्निपात ज्वर	,,
सन्निपात के भेद	,,
शीतादि और दाहादि ज्वर का अंतर	,,

विषय	पृष्ठांक
आगंतुज ज्वर के चार भेद	३५०
अभिघातज के लक्षण	,,
अभिषंगज के लक्षण	,,
ग्रहादि ज्वर में सन्निपात	,,
शापाभिचारज ज्वर	,,
मंत्रोत्पन्न ज्वर के लक्षण	,,
संक्षेप से ज्वर के दो भेद	३५१
शारीर मानस ज्वर	,,
सौम्य और तीक्ष्ण ज्वर	,,
अंतःबहिराश्रय ज्वर	,,
प्राकृत वैकृत ज्वर के लक्षण	,,
वर्षादि ऋतुओं में ज्वर का कारण	३५२
बसंत में ज्वर का कारण	,,
साध्यासाध्य ज्वर के लक्षण	,,
सामज्वर के लक्षण	,,
पच्यमानज्वर के लक्षण	३५३
निरामज्वर के लक्षण	,,
ज्वर के पांच भेद	,,
संततज्वर की संप्राप्ति के लक्षण	,,
ज्वरकी स्थिति और अवधि	३५४
संतत ज्वर में दीर्घ कालकी अनुवृत्ति	,,
विषमज्वर के सामान्य लक्षण	,,
दोषकी प्रवृत्ति निवृत्ति	३५५
ज्वरकी रसादि में लीनता	,,
उक्त विषय में युक्ति	,,
विषमज्वर का स्वरूप	,,
रक्ताश्रय दोष को संततज्वर के करत्व	३५६
अन्येद्यु में विषमज्वर के लक्षण	,,
तृतीयक ज्वर	,,
चतुर्थक ज्वरकी उत्पत्ति	,,
विषमज्वर के तीनभेद	३५७
दोषों के बलाबल से ज्वर	,,
ज्वर मोक्षकाल का लक्षण	,,
विगत ज्वर के लक्षण	,,
तृतीयोऽध्यायः।	
रक्तपित्त के दूषित होने का कारण	३५८
रक्त की विकृति	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक;
अधिक रक्तका कारण	३५८
रक्तपित्त के पूर्वरूप	,,
रक्तपित्त के तीन भेद	,,
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त के कर्त्तव्य	३५९
अधोगामी रक्तपित्त को याप्यत्व	,,
उभयगामी रक्तपित्त को असाध्यत्व	,,
उक्त कथन का कारण	,,
रक्तपित्त में संशमन का अभाव	३६०
दोषानुगमन के लक्षण	,,
कास को आशुकारित्व	,,
खांसी के पांच भेद	,,
खांसी को क्षयोत्पादक	,,
कास का पूर्णरूप	३६१
कास रोग की संप्राप्ति	,,
खांसी में अनेक शब्द	,,
वात कास का निदान	,,
पित्त कास का निरूपण	,,
कफ की खांसी का निरूपण	६२
क्षतकास का निदानादि	,,
क्षतकास का लक्षण	,,
अन्य खांसीयों का साध्यासाध्य	३६३
कास रोग में शीघ्रता	,,

चतुर्थोऽध्यायः।

श्वास के निदानादि	,,
पंचविधि श्वास की संप्राप्ति	,,
श्वास का पूर्व रूप	३६५
क्षुद्र श्वास के लक्षण	,,
तमक श्वास के लक्षण	,,
प्रतमक श्वास के लक्षण	,,
छिन्न श्वास के लक्षण	,,
महा श्वास के लक्षण	,,
उर्ध्व श्वास के लक्षण	,,
श्वास का साध्यासाध्यत्व	,,
हिक्मा का स्वरूप	,,
भक्तोद्वेषा के लक्षण	,,
क्षुद्रा के लक्षण	३६६

विषय	पृष्टांक,
यमला के लक्षण	३६६
महा हिक्मा के लक्षण	,,
गंभीरा के लक्षण	,,
हिचकियों में साध्या साध्यत्व	,,
उक्तरोगों में चिकित्सा कर्त्तव्य	३६७

पञ्चमोऽध्यायः।

राज यक्ष्मा के चार नाम	,,
राजयक्ष्मादि संज्ञाओं का कारण	,,
राजयक्ष्मा के हेतु	३६८
उक्तचार हेतुओं में वायु का प्रधानता	,,
राजयक्ष्मा का पूर्व रूप	,,
राजयक्ष्मा के ग्यारहरूप	,,
पीनसादि के सात उपद्रव	३६९
यातादि के लक्षण	,,
धातु क्षय में युक्ति	,,
यक्ष्मा रोगी का पुरीषाधार जीवन	३७०
यक्ष्मा का साध्या साध्य विचार	,,
स्वरभेद के छः प्रकार	,,
वातस्वर भेद के लक्षण	,,
पित्तजस्वर भेद	,,
कफजस्वर भेद	,,
त्रिदोषजस्वर भेद	,,
क्षयजस्वर भेद	,,
मेदोजस्वर भेद	३७१
स्वर भेद में साध्या साध्यत्व	,,
अरुचि की उत्पति	,,
वातजादि अरोचक के लक्षण	,,
छर्दिका निदान	,,
छर्दिका पूर्वरूप	,,
वातज वमन	,,
पित्तज वमन	३७२
कफज वमन	,,
सन्निपातज वमन	,,
द्विद्यर्थ योगज वमन	,,
कृम्यादिजन्य छर्दि का प्रकरण	,,
हृद्रोग लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक.
वातज हृद्रोग लक्षण	३७२
पित्तज हृद्रोग के लक्षण	३७३
कफज हृद्रोग	,,
त्रिदोषज हृद्रोग	,,
कृमिज हृद्रोग	,,
तृषा रोग का निरूपण	,,
तृषा की उत्पत्ति	,,
तृषा का सामान्य लक्षण	३७४
वातज तृषा का लक्षण	,,
पित्तज तृषा	,,
कफज तृषा	,,
त्रिदोषज तृषा	,,
वात पित्तज तृषा	,,
पित्तजा तृषा	,,
कफजा तृषा	३७५
क्षयजा तृषा	,,
उपसर्गजा तृषा	,,
षष्ठोऽध्याय : ।	
मदात्यय का निदान	,,
मद्य के गुण	,,
चेतोविकार का प्रकार	,,
मद की निंदनीय अवस्था	३७६
उक्त अवस्था में दुर्गति	,,
मदकी तीसरी अवस्था	,,
मद्य से धर्मा धर्म का अज्ञान	,,
अति मद्यपान का फल	,,
मद्य से त्रिवर्ग का नाश	३७७
मद्य का पेयत्व	,,
उक्त लक्षणों से विपरीत का फल	,,
चार प्रकार के मदात्यय	,,
मदात्यय के सामान्य लक्षण	,,
वातिक मदात्यय	३७८
पैत्तिक मदात्यय	,,
श्लैष्मिक मदात्यय	,,
त्रिदोषज मदात्यय	,,
ध्वंसक विक्षय व्याधि	,,

विषय	पृष्ठांक.
ध्वंसक के लक्षण	३७८
विक्षय के लक्षण	,,
मद्यपान न करने का फल	,,
तीन प्रकार के रोग	,,
मद के भेद	३७९
वातज मद	,,
पित्तज मद	
कफज मद	
सन्निपातज मद जेवा,	
रक्तज मद	,,
मद्यजमद	,,
विषज मद	,,
रक्तादि में वातादि की पहिचान	,,
वातज मूर्च्छा का लक्षण	,,
पित्तज मूर्च्छा का लक्षण	३८०
कफज मूर्च्छा के लक्षण	,,
सन्निपात से निश्चेष्टता	,,
सन्यास के लक्षण	,,
सान्निपातिक सन्यास	,,
शीघ्र चिकित्सा से जीवन	,,
मद्य से मद्य का उपसंहार	३८१
अन्य युक्ति	,,
सप्तमोऽध्याय : ।	
अर्श का नाम निर्वचन	,,
अर्श के दो भेद	,,
गुदा की अवलियों का वर्णन	,,
उक्त कथन में हेतु	३८२
अर्श रूक्षादि गुण	,,
उत्तरजात अर्श के भेद	,,
अर्श की उत्पत्ति	,,
अर्श का पूर्वरूप	३८३
अर्श रोगी का लक्षण	,,
वातार्श के लक्षण	३८४
पित्तज अर्श के लक्षण	३८५
कफज अर्श के लक्षण	,,
सहज और निज अर्श	३८६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
रक्तज अर्श	३८६
मुद्गादि सेवन से वातादि का प्रकोप	,,
अर्श का साध्यासाध्यत्व	३८७
कृच्छ्रसाध्य अर्श	,,
सुखसाध्य अर्श	,,
मेढ्रादि अन्य अर्श के लक्षण	,,
नाभिज अर्श	,,
चर्मकील के लक्षण	,,
वातजादि चर्मकील	,,
अर्श में उपाय	,,
अष्टमोऽध्यायः ।	
अतिसार के छः भेद	३८८
अतिसार की उत्पत्ति	,,
अतिसार का पूर्वरूप	,,
वातज अतिसार के लक्षण	,,
पित्तातिसार के लक्षण	३८९
कफातिसार के लक्षण	,,
सान्निपातिक अतिसार	,,
भयज और शोकज अतिसार	,,
अतिसार के दो भेद	,,
साम के लक्षण	,,
निरामातिसार	,,
ग्रहणीरोग के लक्षण	,,
अतिसार और ग्रहणी में अंतर	३९०
ग्रहणीदोष का स्वरूप	,,
ग्रहणी के भेद	,,
ग्रहणी का पूर्वरूप	,,
ग्रहणी का सामान्य लक्षण	,,
वातज ग्रहणी	,,
पित्तज ग्रहणी	३९१
कफज ग्रहणी	,,
सान्निपातज ग्रहणी	,,
ग्रहणी में अग्निको हेतुत्व	,,
ग्रहणी के महारोग	,,
नवमोऽध्यायः ।	
एकाश्रित में शरीरावयव	३९२

विषय	पृष्टांक
मूत्राघात की उत्पत्ति	३९२
वातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण	,,
पित्तज मूत्राघात	,,
कफज मूत्राघात	,,
त्रिदोषज मूत्राघात	,,
अश्मरी के लक्षण	,,
अश्मरी का पूर्वरूप	३९३
अश्मरी के सामान्य लक्षण	,,
वातअश्मरी के लक्षण	,,
पित्तज अश्मरी	,,
कफाश्मरी के लक्षण	,,
उक्तअश्मरियों की बालकों में उत्पत्ति	३९४
शुक्राश्मरी की उत्पत्ति	,,
शर्करा का लक्षण	,,
वातबस्ति का लक्षण	,,
बाताष्ठिला का लक्षण	३९५
वातकुंडलिका का लक्षण	,,
मूत्रातीत के लक्षण	,,
मूत्रजठ का स्वरूप	,,
मूत्रोत्सर्ग का स्वरूप	,,
मूत्रग्रंथि का स्वरूप	३९६
विड्विघात का लक्षण	,,
ऊष्णघात का लक्षण	,,
मूत्रक्षय का स्वरूप	,,
मूत्रसाद का स्वरूप	,,
अध्याय का उपसंहार	३९७
दशमोऽध्यायः ।	
प्रमेह के भेद	,,
प्रमेह की उत्पत्ति	,,
कफ से प्रमेहोत्पत्ति	,,
पित्तसे प्रमेहोत्पत्ति	,,
वातसे प्रमेहोत्पत्ति	,,
प्रमेह का साध्यासाध्य विभाग	३९८
प्रमेह के सामान्य लक्षण	,,
प्रमेह के भेदों की कल्पना	,,
उदकमेह के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक,
इक्षुमेह के लक्षण	३९८
सांद्रमेह के लक्षण	३९९
सुरामेह के लक्षण	,,
पिष्टमेह के लक्षण	,,
शुक्रमेह के लक्षण	,,
सिकतामेह के लक्षण	,,
शीतमेह के लक्षण	,,
शनैर्मेही के लक्षण	,,
लालामेह के लक्षण	,,
क्षारमेह के लक्षण	,,
नीलमेह के लक्षण	,,
कालमेह के लक्षण	,,
हरिद्रामेह के लक्षण	,,
मांजिष्ठामेह के लक्षण	,,
रक्तमेह के लक्षण	,,
वासामेह के लक्षण	४००
मज्जामेह के लक्षण	,,
हस्तिमेह के लक्षण	,,
मधुमेह का वर्णन	,,
मधुमेहका कष्ट साध्यत्व	,,
सबको मधुमेहत्व	,,
कफजमेह का उपद्रव	,,
पित्तजप्रमेह का उपद्रव	,,
वातिक मेह के उपद्रव	४०१
प्रमेह पिटिकाओं के नाम	,,
शराधिका के लक्षण	,,
कच्छपिका के लक्षण	,,
जालिनी के लक्षण	,,
विनता के लक्षण	,,
अलजी के लक्षण	,,
मसूरिका के लक्षण	४०२
सर्षपा के लक्षण	,,
पुत्रणी के लक्षण	,,
विदारिका के लक्षण	,,
विद्रधि के लक्षण	,,
पिटकाओं का साध्यासाध्यत्व	,,
प्रमेह से पिटिकाओं में दोषोद्रेक	,,
प्रमेह से पिटिकाओं की उत्पत्ति	४०२
रक्त पित्त में हरिद्रर्ण	,,
प्रमेह का पूर्वरूप	४०३
प्रमेह में द्विविध विचार	,,
मेप्रेहों का साध्यासाध्यत्व	,,
एकादशोऽध्यायः ।	
विद्रधि के छः भेद	४०४
छः प्रकार की विद्रधि के दो भेद	,,
विद्रधि के स्थान	,,
पातज विद्रधि के लक्षण	,,
पित्तज विद्रधि के लक्षण	,,
कफज विद्रधि के लक्षण	४०५
त्रिदोषज विद्रधि	,,
वातव्यांना विद्रधि का विभाग	,,
रक्तज विद्रधि के लक्षण	,,
क्षतज विद्रधि के लक्षण	,,
विद्रधियों में उपद्रव विशेष	,,
विद्रधि को शोफतुल्यता	४०६
उत्पत्तिस्थान भेद से विद्रधि	,,
विद्रधि में व्रण के समान दोषोद्रेक	,,
विद्रधि का साध्यासाध्य विभाग	,,
स्त्रियोंकी स्तन विद्रधि	,,
वृद्धिरोग का वर्णन	,,
वृद्धि रोग की संख्या	४०७
वातज वृद्धि के लक्षण	,,
पित्तज वृद्धि	,,
कफज वृद्धि	,,
रक्तज वृद्धि	,,
मेदोज वृद्धि	,,
मूत्रज वृद्धि	,,
अंत्रज वृद्धि	,,
गुल्म के लक्षण और भेद	४०८
गुल्म निदान	,,
वात गुल्म के लक्षण	४०९
वातगुल्म के उपद्रव	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
पित्त गुल्म के लक्षण	४०९
कफजगुल्म के लक्षण	४१०
गुल्म को रुक्षकरत्व	,,
द्वंद्वज गुल्म	,,
त्रिदोषज गुल्म	,,
रक्तज गुल्म की उत्पत्ति	,,
रक्त गुल्म के उपद्रव	,,
रक्त गुल्म में विलक्षणता	४११
गुल्म और विद्रधि का भेद	,,
आनाह के लक्षण	,,
अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला	,,
तूनी प्रतूनी के लक्षण	४१२
गुल्म के पूर्व रूप	,,
द्वादशोऽध्याय ।	
उदर की उत्पत्ति	,,
उदर रोग की संप्राप्ति	,,
उदर रोग के आठ भेद	,,
उदर रोग पीडित के लक्षण	४१३
उदर रोग का पूर्व रूप	,,
अतोय उदर के लक्षण	,,
वातोदर के लक्षण	४१४
पित्तोदर लक्षण	,,
कफोदर का लक्षण	,,
त्रिदोषज उदर रोग	,,
प्लीहोदर के लक्षण	४१५
प्लीहोदर में वातादि	,,
यकृति के लक्षण	,,
वद्धोदर के लक्षण	,,
छिद्रोदर के लक्षण	४१६
दकोदर के लक्षण	,,
उदर रोग में जलकी उत्पत्ति	४१७
उदर रोगमें कृच्छसाध्यासाध्यत्व	,,
वद्धक्षतोदर का मारकत्व	,,
सर्वजात सलिलस्यमारकत्व	,,
जन्मसे उदर रोग को कृच्छता	,,

विषय	पृष्टांक.
त्रयोदशोऽध्यायः ।	
पांडुरोग के लक्षण	४१८
पांडुरोग के भेद	,,
पांडुरोगके पूर्वरूप	४१९
वातज पांडुरोग का लक्षण	,,
पित्तज पांडुरोग	,,
कफज पांडुरोग	,,
सान्निपातज पांडुरोग	४१९
पांडुरोग के कारणादि	,,
कामला की उत्पत्ति	४२०
कुंभ कामला	,,
हलीमक के लक्षण	,,
शोफ का वर्णन	,,
सूजन की उत्पत्ति	,,
सूजन के नौ भेद	४२१
सूजन को द्विविधत्व	,,
शोफ का सामान्य हेतु	,,
स्थान विशेष में शोफोत्पत्ति	,,
शोफ का पूर्वरूप	४२२
वातज शोफ	,,
पित्तज शोफ	,,
कफज शोफ	,,
द्वंद्वज शोफ	४२३
सान्निपातज शोफ	,,
अभिघातज शोफ	,,
विषज शोफ	,,
शोफ को साध्या साध्यत्व	,,
विसर्प का निदान	,,
विसर्प का अधिष्ठान	४२४
विसर्प में दोषों का विसर्पण	,,
अंतराश्रित विसर्प	,,
वातज विसर्प	,,
पित्तज विसर्प	,,
कफज विसर्प	,,
विसर्प की उपेक्षा का फल	,,
द्वंद्वज विसर्प के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
ग्रंथिविसर्प के लक्षण	४२६
कर्दम विसर्प	,,
सन्निपातज विसर्प	,,
विसर्प के कारण	,,
विसर्पों का साध्यासाध्य विचार	,,
चतुर्दशोऽध्यायः।	
कुष्ठकी उत्पत्ति	४२७
कुष्ठनाम का कारण	,,
कुष्ठ के भेद	,,
दोषानुसार कुष्ठके नाम	,,
कोष्ठ का पूर्वरूप	४२८
कापालकुष्ठ के लक्षण	,,
उदुंबर के लक्षण	,,
मंडल के लक्षण	,,
विचर्चिकाके लक्षण	४२९
ऋक्षजिह्व के लक्षण	,,
चर्मकुष्ठ के लक्षण	,,
एककुष्ठ के लक्षण	,,
किटिभ के लक्षण	,,
सिध्म कुष्ठ	,,
अलसक के लक्षण	,,
विपादिका के लक्षण	४३०
वद्रुके लक्षण	,,
शतारुन के लक्षण	,,
पुंडरीक के लक्षण	,,
विस्फोटक के लक्षण	,,
पामा के लक्षण	,,
चर्मदल के लक्षण	,,
काकण के लक्षण	,,
कुष्ठमें दोषोंकी अधिकता	४३१
कुष्ठविशेष में चिकित्सा त्याग	,,
कुष्ठमें साध्यासाध्य विचार	,,
त्वचादिगत के लक्षण	,,
रक्तादि में यथापूर्व लक्षण	,,
श्वित्रकुष्ठ का निरूपण	४३२
वातजादिशुक्ल के लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठांक.
कृच्छ्रसाध्य श्वित्रके लक्षण	४३२
श्वित्रका साध्यासाध्यत्व	,,
सबरोगों को संचारित्व	,,
कृमियोंके दो भेद	४३३
जन्म से कीडोंके चारभेद	,,
बाह्यकीडों का वर्णन	,,
आभ्यंतर कृमि	,,
पुरीषज कृमि	,,
कफजकृमियों का निरूपण	,,
रक्तज कृमि	४३४
विड्भेदादि पांच प्रकार के कृमि	,,
पंचदशोऽध्यायः।	
अर्थानर्थ में वायुका हेतुत्व	,,
वायुके हेतुरूप होने में कारण	,,
वातका कर्म	४३५
वायुका कोप	,,
वातव्याधि को कष्टसाध्यता	,,
आमाशय के उपद्रव	,,
श्रोत्रादि और त्वचा के उपद्रव	,,
रक्तके उपद्रव	४३६
मांसमेदोगतवायु के उपद्रव	,,
अस्थिगत वायु	,,
मज्जागत वायु	,,
शुक्रागत वायु	,,
सिरागत वायु	,,
स्नायुगत वायु	,,
संधिगत वायु	,,
सर्वांगगत वायु	,,
धमनीगत वायु	,,
अपतंत्रक वायु	४३७
अपतानक की उत्पत्ति	,,
अंतरायाम के लक्षण	,,
बहिरायाम के लक्षण	,,
प्रणायाम के लक्षण	४३८
गतवेग में स्वस्थता	,,
हनुस्तंभ के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
जिह्वास्तंभ के लक्षण	४३८
अर्दित के लक्षण	,,
सिरामह के लक्षण	४३९
एकांग रोग का लक्षण	,,
सर्वांग रोग का लक्षण	,,
पक्षाघात् असाध्यत्व	,,
दंडक का लक्षण	,,
अवबाहुक का लक्षण	४४०
विश्वाचीक के लक्षण	,,
खंज और पंगु	,,
कटाय खंज	,,
उरुस्तंभ का निदान	,,
कोष्टुशीर्षक का निदान	४४१
वातकंटक का निदान	,,
प्रभ्रंसी का निदान	,,
खल्लीवात का निदान	,,
पादहर्ष का निदान	,,
पाददाह का निदान	,,
षोडशोऽध्यायः ।	
वातरक्त का निदान	,,
वातरक्त का लक्षण	४४२
वातरक्त का सब देह में फैलना	,,
वातरक्त के दो भेद	,,
उत्तान के लक्षण	,,
गंभीर के लक्षण	,,
वाताधिक वातरक्त	४४३
रक्ताधिक्य वातरक्त	,,
पित्तानुविद्ध वातरक्त	,,
कफानुविद्ध वातरक्त	,,
द्वंदज वातरक्त	,,
वातरक्त का साध्यत्व	,,
वातरक्त को मारकत्व	,,
प्राणवायु का कर्म	४४४
उदान वायुका कर्म	,,
व्यानवायु का कर्म	,,
समान वायुके कर्म	,,
अपानवायु के कर्म	,,
सामसिरास वायु का लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठांक
वायुके अवरण का वर्णन	,,
पित्तावरण के लक्षण	४४५
कफावृत वायु	,,
रक्तावृत वायु	,,
मांसावृत वायु	,,
मेदसावृत वायु	,,
अस्थ्यावृत वायु	,,
मज्जावृत वायु	,,
शुक्रावृत वायु	४४६
अन्नावृत वायु	,,
मूत्रावृत वायु	,,
पुरीषावृत वायु	,,
सर्वधात्वा वृत वायु	,,
पित्तावृत उदान वायु	,,
पित्तावृत पान वायु	,,
पित्तावृत समान वायु	,,
पित्तावृत अपान वायु	,,
कफावृत प्राण वायु	४४७
कफावृत उदान वायु	,,
कफावृत समान वायु	,,
प्राणादि वायुका परस्पर आवरण	,,
आवरण के चिन्ह	,,
उदानावृत प्राणके लक्षण	,,
आवरणों का दिग्दर्शन	४४८
प्राणादि वायु का जिवित्व	,,
आवरणों को कष्ट साध्यत्व	,,
आवरणों से विद्रधि की उत्पत्ति	,,

चिकित्सितस्थानम् ।

प्रथमोऽध्याय. ।

ज्वरादिमें लंघन	४४९
बलकी रक्षा के हेतु	,,
लंघन के गुण	,,
सामज्वर में वमन	,,
वमनकारक द्रव्य	४५०
वमन में विशेषण	,,
ज्वरी को उपवास	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
वात कफ ज्वर में उष्ण जल पान	४५०
पित्तज्वर में ऊष्ण जल का निषेध	४५१
उद्रिक्त पित्त में शीतल जल	,,
ज्वर में पित्त विरुद्ध का त्याग	,,
ज्वर में स्नानादि का निषेध	,,
सामज्वर में शूलघ्न औषधि का निषेध-	४५२
उदर्दादि ज्वर में स्वेद	,,
स्नेह विधि पालन	,,
मलों के पाचक द्रव्य	,,
ज्वर में लंघन का अपवाद	,,
अब लंघित और लंघित की पहचान	४५३
ज्वर रोगी का पेया द्वारा उपचार	,,
पेयाका उपक्रम	,,
अन्यरोगों में पेया	४५४
हिध्मादि में पेयापान	,,
विबद्ध कोष्ठ में पेया	,,
परिकीर्तन कोष्ठ में पेया	,,
रसादि करण विधि	,,
विशेष स्थल में पेया निषेध	४५५
मद्यमदादि में कर्त्तव्य	,,
उक्त तर्पण के जीर्णहोने पर कर्त्तव्य	,,
छः दिन की विधि	,,
कषाय का प्रयोग	,,
पित्तज्वर में तिक्त कषाय	४५६
तरुण ज्वर में कषाय निषेध	,,
औषध के प्रयोग में मतभेद	,,
औषध देने में कारण	,,
औषध के प्रयोग का काल	४५७
औषध विधि	,,
उक्त कषायों का यथायोग प्रयोग	,,
संततादि ज्वर की चिकित्सा	,,
वातज ज्वर में औषध	,,
पित्तज्वर में कषाय	,,
कफज्वर में औषध	४५८
वात कफज्वर में औषध	,,

विषय.	पृष्ठांक.
वात पित्तज्वर में औषध	४५८
ज्वर और दाह की औषध	,,
कफवात में औषध	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
कफ पित्तज्वर में औषध	४५९
सन्निपातज ज्वर की चिकित्सा	,,
वात कफाधिक्य ज्वर में चिकित्सा	,,
सर्व ज्वर पर कषाय	,,
अन्य कषाय	,,
जीर्ण औषध में कर्त्तव्य	,,
तंत्रकार का मत	,,
ज्वर में रक्तादि चांवल	४६०
कफाधिक्य ज्वर में पथ्य	,,
ज्वर को ओदन विधि	,,
ज्वर नाशक यूष	,,
ज्वर में हितकारी रस	,,
अवस्था विशेष में सितामधुयुक्त रस	,,
रुचिकर व्यंजन	४६१
ज्वर में अनुपान	,,
ज्वर में भोजनकाल	,,
यथोचित काल में भोजन	४६१
घृतपान का काल	,,
जीर्ण ज्वर को अनुवृत्ति	,,
जीर्ण ज्वर में घृतपान	४६२
वात पित्तोत्तर जीर्ण ज्वर में घृत	,,
ज्वरोष्मा में घृत	,,
मलानुसार सघृत कषाय का प्रयोग	,,
अन्य क्वाथ	,,
अन्य प्रयोग	,,
वातज पित्तज ज्वर में घृत	४६३
कफज्वर में घृत	,,
जीर्णज्वर नाशक पांचस्नेह	,,
परिणत रसमें घृत भोजन	,,
वातपित्त नाशक रस	,,
शमनाभाव में लंघन	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
त्रिफलादि द्वारा विरेचन	४६४
दूध के साथ त्रिफला	,,
विरेकादि का संसर्गी कर्तव्य	,,
ज्वरोल्लिष्ट मलकी उपेक्षा	,,
आम संग्रह का निषेध	,,
आमज्वर में आम हरण का निषेध	,,
ज्वर क्षीण में कर्तव्य	४६५
क्षीणोचित को क्षीर	,,
देह धारण में दूध को उत्कृष्टता	,,
संस्कृत दूध का ग्रहण	,,
शुंठयादि द्वारा संस्कृत दूध	,,
द्राक्षादि संस्कृत दूध	,,
पंचमूल संस्कृत दूध	४६६
एरंड सिद्ध दूध	,,
शोफ पर शुंठयादि दुग्ध	,,
अन्य दुग्ध	,,
पक्वाशय गत दोष में निरूह	,,
विरेचनादि प्रयोग	,,
अनुवासन का प्रयोग	,,
ज्वर नाशक वस्ति	,,
अन्य वस्ति	४६७
ज्वर में अनुवासन	,,
अन्यवस्ति	,,
विरेचन नस्य	,,
धूमादि प्रयोग	,,
अरुचिनाशक द्रव्य	,,
स्वगाश्रित जीर्ण ज्वर में कर्तव्य	४६८
दाह में अभ्यंग	,,
दाह ज्वर में तैल विशेष	,,
उक्त तैलका मस्तक पर लेप	,,
अवगाहन विधि	,,
दाहनाशक औषध	,,
दाह ज्वर की औषध	४६९
तैल से अभ्यंजन	,,
पूर्वोक्त द्रव्यों का लेप	,,

विषय.	पृष्ठांक.
स्वेदादि विधि	४६९
सन्निपात की चिकित्सा	४७०
सन्निपात के अंत में कर्णमूल	,,
कर्णमूल की चिकित्सा	,,
कर्णमूल में सिरामोक्षण	,,
विषमज्वर में उक्त विधि	४७१
विषमज्वर नाशक क्वाथादि	,,
विषमज्वर में अन्य विधि	,,
विषमज्वर में अन्य प्रयोग	,,
विषमज्वर में त्रिफलादि घृत	,,
विषमज्वर में अन्य उपाय	,,
घृत से वमन	४७२
अन्य उपाय	,,
विषमज्वर में अंजन	,,
विषमज्वर में नस्य	,,
विषमज्वर में धूप	,,
अन्य धूप	,,
दैवव्यपाश्रय औषध	,,
विषमज्वर में सिराव्यध	,,
राजादि ज्वर में सर्पिष्पान	,,
अहोरात्रज्वर में कर्तव्य	४७३
औषधी गंधोदक	,,
क्रोधादि ज्वर का उपाय	,,
क्रोधज ज्वर	,,
शोकज ज्वर	,,
ज्वर रोग में अहारादि की कल्पना	,,
वातादि के कोप के अनुसार	,,
ज्वर के काल की स्मृति का नाश	,,
करुणार्द्र मन को ज्वर नाशकता	,,
ज्वर में व्यायामादि का त्याग	,,
ज्वर मुक्त को सर्व यत्न का निषेध	४७४
ज्वरी को उचित औषध	,,
औषधों को ज्वरघ्नत्व	,,
द्वितीयोऽध्यायः।	
ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त का उपचार	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
अधोगामी रक्त पित्त का यापन	,,
रक्त पित्त में चिकित्सा का विचार	४७५
रक्त पित्तज विरेचनादि	,,
ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त में रसादि	,,
अधोगामी में वृंहण	,,
उर्ध्वगामी में तर्पणादि	,,
अशुद्ध रक्तके धारण में निषेध	४७६
रक्त पित्त में अवलेह	,,
अन्य औषध	,,
अधोगामी रक्त पित्त की चिकित्सा	,,
शुद्ध होने के पीछे की विधि	,,
मंथ बनाने की विधि	,,
पेया की विधि	४७७
मांस के सिद्ध करने की रीति	,,
रक्त पित्त में शूक शिंबी धान्यादि	,,
पानी का प्रकार	,,
अजादि का मांस	,,
रक्त पित्त में वर्जित	४७८
अन्य उपाय	,,
रक्त पित्त में तीन क्वाथ	,,
ढाक की छाल का काढा	,,
ग्रथित रक्त पित्त में अवलेह	,,
अतिस्रावी रक्त पित्त की चिकित्सा	,,
रक्त पित्त नाशक कषाय	४७९
रक्त की अति प्रवृत्ति का उपाय	,,
इक्षुजल	,,
अन्य कषाय	,,
छागादि पय	,,
मूत्रमार्ग गामी रक्त की चिकित्सा	,,
पुरीष मार्ग गामी रक्त का उपाय	४८०
अन्य चिकित्सा	,,
कषाय पानांतर भोजन	,,
अन्य घृत	,,
रक्त पित्त पर अन्य घृत	,,
रक्त विशेष में उपाय	,,
अन्य अवलेह	,,

विषय.	पृष्ठांक.
गुदागामी रक्त में वस्ति	४८१
नासागामी रक्त में नस्य	,,
अन्य औषध	,,
साधारण उपाय	,,
तृतीयोऽध्यायः।	
कासश्लेहादि उपचार	,,
स्नेहो का वर्णन	४८२
अन्य घृत	,,
अन्य घृत	,,
कास पर विदार्यादि घृत	,,
कास पर अवलेह	,,
बिडंगादि चूर्ण	४८३
धातज कास में दुरालभादिलेह	,,
उक्त रोग पर दुःस्पर्शादि चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य उपाय	,,
कास पर धूम पान	,,
कास में आहार	,,
वातज कास में पेया	,,
अन्य पेया	४८४
मांसयुक्त पेया	,,
धातज खांसी में वास्तुकादि	,,
पित्तकास में वमन	,,
पित्तकास में निसोथ	,,
कृतदोष में पेयादि क्रम	,,
पित्तकास में अवलेह	४८५
अन्य अवलेह	,,
अन्य उपाय	,,
कफान्वित पित्त में शाल्यादि	,,
पित्तकास में काकोल्यादि	,,
अन्य चिकित्सा	,,
शाल्यादिरस	४८६
पित्तकास में अवलेह	,,
कफकास की चिकित्सा	,,
अन्य उपाय	,,
कफकास नाशक तीन प्रयोग	४८७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
अन्य प्रयोग	४८७
देवदार्वादिक तीन अवलेह	,,
दाडमादि चूर्ण	,,
गुडादि चूर्ण	,,
पथ्यादि पाचन	,,
दीप्याकादि क्वाथ	,,
अन्य प्रकार	,,
अन्य उपाय	४८८
अन्य प्रयोग	,,
बिडंगादि घृत	,,
पुनर्नवादि घृत	,,
कंटकारी घृत	,,
दुर्नामादिजित् अवलेह	,,
कफकासादि धूमपान	४८९
धूमपान की विधि	,,
तमक की चिकित्सा	,,
वात कफकी खांसी में कर्त्तव्य	,,
अन्य उपाय	,,
उरःक्षत चिकित्सा	,,
पार्श्वादि वेदना में कर्त्तव्य	४९०
उरःक्षत में दूध विशेष	,,
ज्वरदाह में पान	,,
कास में सर्पिशपान	,,
पर्वास्थिशूल युक्त खांसी	,,
पौष्टिक गुटका	,,
रक्त निष्ठीवन में सांठ का चूर्ण	४९१
मुखादि विस्रतरक्त में उपाय	,,
मूढ वात में कर्त्तव्य	,,
क्षामादि में चिकित्सा	,,
अन्य अवलेह	,,
मांसादि वर्द्धन औषध	,,
क्षतोरस्कादि में घृत विशेष	,,
अभ्यंगादि	४९२
जीवनीय घृत	,,
क्षतकास में घृत विशेष	,,
अमृत प्राश अवलेह	,,

विषय.	पृष्ठांक.
इक्षुदंष्ट्रादि घृत	४९३
रक्त गुल्मादि समसक्तु	,,
यक्ष्मादि नाशक घृत	,,
पित्ताधिक में अवलेह	,,
वीर्यवर्धक चूर्ण	४९४
कूष्मांडाख्य रसायन	,,
नागबलादि कल्प	,,
नागबला घृत	४९५
दीप्तग्न्यादि में कर्त्तव्य	,,
अगस्ति विहित रसायन	,,
वाशिष्ठोक्त रसायन	४९६
सैंधवादि चूर्ण	,,
खांड़व	४९७
क्षत में अन्य कर्त्तव्य	,,
धूम पान का विधान	,,
धूम वर्ति	,,
धूमपान की अन्य विधि	,,
अन्य विधि	,,
क्षयजादि कास में कर्त्तव्य	,,
विरेचन विधि	४९८
धातुक्षय में घृत	,,
मूत्रोपद्रव में चिकित्सा	,,
कासरोग में अनुवासन	,,
कासरोग में मांसादि सेवन	,,
अन्य कास नाशक घृत	,,
कासमर्दादि घृत	४९९
रसकल्पादि घृत	,,
क्षयकास पर चव्यादि घृत	,,
श्वास कास पर विशेष स्नेह	,,
अन्य प्रयोग	५००
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
क्षय खांसियों पर मूंगका यूष	,,
अन्य यूष	,,
क्षयकास में सानुपान धूमादि	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
सान्निपातक कास	५०१
चतुर्थोऽध्यायः।	
श्वास और हिध्मा की समानता	,,
श्वास और हिचकी में स्वेदन	,,
स्वेदन के पीछे आहारादि	,,
कफनिकलने पर सुख प्राप्ति	५०२
अन्य उपाय	,,
उक्त उपाय का फल	,,
उपरोक्त हेतुमें दृष्टांत	,,
धूमपान की विधि	,,
स्वेदन योग्यों का स्वेदन	५०३
उद्धत वायु में कर्त्तव्य	,,
उक्तरोगों में कषाय	,,
उक्तदशा में कर्त्तव्य	,,
मधुरादि द्रव्य का प्रयोग	,,
उक्तरोगों पर मांस यूष	,,
उक्तरोगों में पेया	५०४
कषाय और पेया	,,
अन्य औषध	,,
उक्त रोगों पर सक्तू	,,
उक्त औषध पर आहार	,,
उक्त रोगों पर पेयद्रव्य	,,
उक्त रोगों पर तक्र	,,
अन्य पेय औषध	५०५
अन्य पेय द्रव्य	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
जीवंत्यादि चूर्ण	५०६
शुंठ्यादि चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण और नस्य	,,
लशुनादि नस्य	,,
उक्त रोगों पर घृत विशेष	,,
अन्य उपाय	५०७
अन्य घृत	,,
अन्य उपाय	,,
हिचकी श्वासकी सामान्य चिकित्सा	,,

विषय.	पृष्टांक.
उक्त रोगों के शमन में हेतु	५०७
उक्त रोगों में परस्पर उपचार	५०८
पंचमोऽध्यायः।	
यक्ष्मा में शोधन कर्म	,,
वमनविधि	,,
राजयक्ष्मा में विरेचन	,,
बृंहणदीपनविधि	,,
राजयक्ष्मा में मांस सेवन	५०९
पित्त कफादि में हित द्रव्य	,,
पीनसादि में बकरे का मांसरस	,,
स्रोत शोधनार्थ जीर्ण मद्यपान	,,
राजयक्ष्मा पर घृत	,,
राजयक्ष्मा पर अन्यघृत	५१०
अन्यघृत	,,
अन्यघृत	,,
अन्यघृत	,,
गुल्मादि रोगपर घृत	,,
शोषरोग पर घृत	५११
अश्वगंधादि घृत	,,
मांसघृत	,,
रासायनिक घृत	,,
अन्य कर्तव्य	,,
त्वगेलादि चूर्ण	५१२
अन्य प्रयोग	,,
स्वरसाह में चिकित्सा	,,
क्षयीरोग वा बद्रीपत्र	,,
नस्यविधि	,,
उक्तरोग पर अनुपान	,,
पित्तोद्भवस्वरक्षय की चिकित्सा	,,
बलादिसिद्ध सर्पि	,,
पित्तजस्वरसादि में नस्यादि	५१३
कफजस्वरभेद में चिकित्सा	,,
अन्य उपाय	,,
उच्चभाषण से अभिहतस्वर	,,
अरोचक में उपाय	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
अरुचि में अन्य उपाय	५१३
अन्य उपाय	,,
वातजअरोचक में चिकित्सा	५१४
पैत्तिकअरोचक में उपाय	,,
कफजअरोचक में उपाय	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
तालीसपत्रादि चूर्ण	,,
वमन में लंघनादि	५१५
वमनरोग में विरेचनविधि	,,
वमनरोग में पथ्यविधि	,,
वातजवमन का उपचार	,,
नस्यादि का प्रयोग	५१८
रक्त मोक्षण	,,
राजयक्ष्मा में प्रदेह	,,
राजरोग में अभ्यंगादि	,,
अन्य उपाय	,,
राजयक्ष्मी में पुरीष की रक्षा	,,
यक्ष्मा का अनावकाश	,,
मद्यपानादि का विधान	,,
स्नानादि का नियम	५१७
पौष्टिक उबटना	,,
स्नानादि की उत्कृष्टता	,,
षष्ठोऽध्यायः ।	
वमन में लंघनादि	५१८
वमनरोग में विरेचन विधि	,,
वमन रोगमें पथ्य विधि	,,
वातज वमन का उपचार	,,
पित्तज वमन का उपचार	५१९
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
कफज वमन का उपचार	,,
द्विदोषार्थ वमन का शमन	५२०
कृमिज वमन	,,
छर्दि में स्तम्भन बृंहण	,,
वातज हृद्रोग में तैलपान	,,

विषय	पृष्ठांक.
सैंधवादि युक्त तैल	५२०
अन्य तैल	५२१
शुंठियादि घृत	,,
सौवर्चलादि घृत	,,
पंचकोलादि घृत	,,
वातज हृद्रोग में स्वेदादि	,,
पंचमूलादि साधित जल	,,
वातज हृद्रोग में चिकित्सा	५२२
हृद्रोग में अन्य तैल	,,
महास्नेह घृत	,,
दीप्ताग्नि हृद्रोग में कर्त्तव्य	,,
हृद्रोग में वर्जित द्रव्य	,,
कफानुबंधी हृद्रोगरोग में कर्तव्य	,,
पैत्तिक हृद्रोग	,,
पित्तज हृद्रोग में घी	५२३
अन्यघृत	,,
कफज हृद्रोग में वमनादि	,,
अन्यविधि	,,
कफज हृद्रोग में वमनादि	,,
अन्यचिकित्सा	,,
अन्यउपाय	५२४
शूलयुक्त हृद्रोग में उपाय	,,
शूल में विरेचन	,,
वायुका अनुलोमन	,,
कृमिज हृद्रोग की चिकित्सा	,,
तृषा रोगमें उपाय	५२५
तृषारोग में चिकित्सा	,,
वातजतृषा की चिकित्सा	,,
पित्तजतृषा की चिकित्सा	,,
कफज तृषा की चिकित्सा	५२६
आमज और सन्निपातज तृषा	,,
अन्नात्मज तृषा का चिकित्सा	,,
श्रमजन्य तृषा में कर्त्तव्य	,,
आतपजन्य तृषा	,,
शीतस्नान जन्य तृषा	५२७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
मद्यज तृषा	५२७
तीक्ष्णाग्नि में शीतल जल	,,
अजीर्ण की तृषा में गरम जल	,,
स्निग्धतृषा में कर्त्तव्य	,,
गुरु अन्न की तृषा में कर्त्तव्य	,,
क्षयज तृषा में कर्त्तव्य	,,
कृशादि को तृषा में चिकित्सा	,,
ऊर्ध्वगात में चिकित्सा	,,
उपसर्गजरोग में चिकित्सा	,,
तृषा की चिकित्सा में प्रधानता	,,
सप्तदशोऽध्यायः ।	
मदात्यय में चिकित्सा विधि	५२८
उक्त विधि में हेतु	,,
मद्यज व्याधि में मद्य से शांति	,,
मद्य से मद्य की शांति में शंका	,,
विधि पूर्वक मद्यपान की उत्कर्षता	५२९
उक्त कार्य्य में हेतु	,,
मद्य को धातु सामान्य करत्व	,,
पानात्यय औषध का काल	,,
रोगानुसार औषध	,,
वातज मदात्यय का चिकित्सा	५३०
पित्तज मदात्यय	,,
पित्तज मदात्यय में भोजन	,,
पित्तज मदात्यय में वमनादि	५३१
कासान्वित उक्त रोग में चिकित्सा	,,
वातपित्त की अधिकता में कर्त्तव्य	,,
तृषामें अल्प मद्यपान	,,
जलीयधातु की क्षीणता में कर्त्तव्य	,,
मदात्यय में मुखालेप	५३२
अन्य उपाय	,,
कफाधिक्य मदात्यय में कर्त्तव्य	,,
अन्य उपाय	,,
उक्तरोग में भोजनादि	,,
यथाग्नि पथ्यादि	,,
कफप्रायमदात्यय में अष्टांगलवण	५३३
कफज मदात्यय में जागरणादि	,,

विषय	पृष्टांक
सन्निपातजमदात्यय में चिकित्सा	,,
सब मदात्ययों में रुच्यपानक	५३४
मदात्यय में हर्षणी क्रिया	,,
मदात्यय में दूध	,,
मद्यक्षीण में दूधका कारण	,,
अल्प मद्य विधि	,,
विद्रक्षयादि में कर्त्तव्य	,,
मद्य संयोग में कारण	,,
सुरा के गुण	५३५
विधियुक्तमद्य के गुण	३३६
निगदमद्यपान की विधि	,,
भुक्तमांस में मद्यपान	,,
पुनःमद्य की विशेषता	५३७
मद्यके गुण	,,
मद्यको उत्कृष्टता	,,
मद्यको पेयत्व	,,
मद्यपान की विधि	,,
मद्यपान के पीछेका कर्म	५३८
मद्यकी प्रशंसा	,,
मद्यपान के पीछे शयन	,,
मद्यपान की देशस्पृहणीयता	,,
व्यवस्था पूर्वकमद्यपान	,,
धनीलोगों की विधि	५३९
मद्यपान से विरति	,,
वाताधिक्य में मद्यविधि	,,
पित्ताधिक्य में मद्यपान	,,
कफाधिक्य में मद्यपान	,,
वातादि में मद्यपान	,,
मद्यपान का काल	,,
मदमें वातपित्तनाशनी क्रिया	,,
उक्तरोगों में उपचार	,,
प्रसक्तरोग में कर्त्तव्य	५४०
दोषबलानुसार क्रिया	,,
मदादि में नस्यादि	,,
सन्यासोक्त क्रिया	,,
सन्यस चिकित्सा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
अन्य उपाय	५४१
अष्टमोऽध्यायः ।	
अर्शमें यंत्रप्रयोग	,,
बहवर्श में कर्तव्य	५४२
सुदग्धअर्श के लक्षण	,,
वस्तिशूल में कर्तव्य	,,
विष्टा और मूत्रके प्रतीघातमें चिकित्सा	,,
दोहयोग्य गुदकीलक में कर्तव्य	,,
अर्शमें धूमपानादि	५४४
अर्शमें बत्ती	,,
अन्य बत्ती	,,
अर्श पर लेप	,,
अन्य लेप	५४५
अन्य लेप	,,
अनुवासिक लेप	,,
अभ्यंजनादि	,,
धूनी से बिगडे रुधिर का निकालना	,,
मस्सों से रुधिर निकालना	,,
रक्तनिकालने का कारण	,,
अर्शमें गोरस पानादि	,,
अन्य पानादि	,,
अन्य उपाय	,,
अर्शमें यवशाकु	५४६
तक्र की उपयोगिता	,,
तक्रके प्रयोग का काल	,,
तक्रका त्रिविध प्रयोग	,,
तक्र प्रयोग के गुण	५४७
तक्रके पीछे अन्नादि सेवन	,,
तक्रविशेष का सेवन	,,
तक्रके अरिष्ट का पान	,,
तक्रविशेष की विधि	,,
अन्य विधि	,,
जठराग्नि से दीपनस्नेहादि	५४८
गाढपुरीष की चिकित्सा	,,
अर्श पर कंजेके पत्ते	,,
सगुड शुंठीपान	,,

विषय	पृष्टांक
अन्य प्रयोग	५४८
अन्य औषध	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	५४९
बलतर्द्धक पान	,,
अन्य प्रयोग	५४९
अभ्यारिष्ट	,,
वृन्ताकारिष्ट	५५०
दुरालभारिष्ट	,,
भोजन से पहिले घृतादि	,,
अन्य घृत	,,
पलाशयादि घृत	,,
पंचकोलादि घृत	,,
चांगेर्यादि घृत	५५१
मांसरसादि का प्रयोग	,,
मंदाग्नि की चिकित्सा	,,
पान विधि	,,
अर्श में अनुलोमन का विधान	५५२
अर्श में अनुवासन	,,
अनुवासन की विधि	,,
निरूह का प्रयोग	,,
रक्तार्श का वर्णन	,,
वातकफानुबंध के लक्षण	५५३
दूषित रक्त में लंघनादि	,,
दोषों की कलुषता में रक्त स्राव	,,
रक्तस्रुति के पीछे तिक्तद्रव्य का सेवन	,,
रक्तस्राव में चिकित्सा	,,
पित्ताधिक्य रक्त का स्तंभन	,,
कफानुगत रक्त में कर्त्तव्य	,,
अन्य औषध	५५४
उत्क्लेश पर अवलेह	,,
अन्य अवलेह	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रयोग	५५५
अन्य प्रयोग	,,
यवान्यादि चूर्ण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
उक्त द्रव्य द्वारा सिद्ध	५५५
अन्य घृत	,,
अन्य औषध	,,
अर्श पर पेयादि	,,
वाताधिक्य अर्श में कर्त्तव्य	५५६
अर्श में शीतोपचार	,,
अन्य उपाय	,,
पिच्छावस्ति	,,
अनुवासन विधि	,,
मधुकादि घृत	,,
व्यत्यास में मधुराम्ल योजना	५५७
उदावर्त में स्वेदादि	,,
गुदा में उक्त द्रव्यों चूर्ण	,,
सिताधःवस्ति प्रयोग	,,
कल्याणक क्षार	,,
अन्य उपाय	५५८
मस्सों की चिकित्सा	,,
अर्श पर चुक्र	,,
अर्श नाशक औषध	५५९
अन्य प्रयोग	,,
अन्य उपाय	,,
त्रिकुटाद्य वलेह	५६०
अर्श पर जमीकंद	,,
गुडादि गुटका	,,
जमीकंद का अन्य प्रयोग	,,
अन्य चूर्ण	,,
कलिंगादि वटिका	,,
तक्रपान	,,
शुष्क अर्श पर औषध	५६१
औषध विचार	,,
अग्नि की रक्षा कर्त्तव्य	,,

नवमोऽध्यायः ।

विषय	पृष्ठांक
अतिसार में लंघन	,,
अतिसार में वमन	५६१
दोष विशेष में पथ्यसेवन	५६२
संग्राही औषध की निषेध	,,
विबद्ध दोष मे चिकित्सा	,,
मध्य दोषातिसार में चिकित्सा	,,
अल्पदोषातिसार में कर्त्तव्य	,,
बचादि पक्व जल	,,
क्षुल्लामातिसार में पथ्य	५६३
अतिसार पर पान	,,
अतिसार रोगी को भोजनादि	,,
कफ पित्ताधिक अतिसार में पेया	,,
बहुदोषातिसार में चिकित्सा	,,
आमातिसार में चिकित्सा	,,
पक्वातिसार पर यवागू	५६४
प्रवाहिका की औषध	,,
अन्य औषध	,,
अन्य प्रयोग	५६५
बाल बिल्वादि लेह	,,
अन्य प्रयोग	,,
क्षीर सौहित्य का उपयोग	,,
वेदना युक्त आम की दवा	५६६
प्रवाहिका पर पिप्पल्यादि चूर्ण	,,
निरामरूप में घृतपान	,,
तैल प्रयोग	,,
अन्य तैल	,,
अन्य तैल	,,
वायु की विगुणता का हेतु	५६७
तैल का ही सेवन	,,
घृत का प्रयोग	,,
घृत का अन्य प्रयोग	,,
गुदशूल में स्नेह वस्त्यादि	,,
अनुवासन वस्ति	,,
पानाभ्यंग द्वारा तैल प्रयोग	५६८
पित्तज गुदभ्रंश में चिकित्सा	,,
पित्तातिसार में चिकित्सा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक,
पित्तातिसार में अष्टांग जलपान	५६८
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	५६९
पक्वातिसार पर काढा	५६९
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
निरामातिसार में दूध	,,
अन्य प्रयोग	,,
त्रायमाण पर प्रयोग	५७०
शूल में अनुवासन	,,
पिच्छा वस्ति	,,
पित्तातिसार में वस्ति	,,
सर्वातिसार पर प्रयोग	,,
अन्य औषध	,,
अतिसार में रस विशेष	५७१
अन्य प्रयोग	,,
पित्तातिसार में अन्य प्रयोग	,,
अन्य रसादि	,,
रक्तातिसार पर पेया	,,
बलिष्ठ रक्त में उपाय	,,
अन्य उपाय	५७२
सान्निपातक अतिसार	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
गुददाहादि में उपाय	,,
रक्तातिसार में पिच्छा वस्ति	,,
अन्य प्रयोग	,,
अनुवासन वस्ति	५७३
रक्तातिसार में अवलेह	,,
अन्य अवलेह	,,
ऊर्ध्व रक्त में उपाय	,,
कफातिसार में कर्त्तव्य	,,
अन्य प्रयोग	,,
कफातिसार पर अन्य औषध	,,
अन्य उपयोग	५७४

विषय	पृष्ठांक;
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
कपित्थाष्टक चूर्ण	,,
दाडिमाष्टक चूर्ण	,,
कफातिसार पर खल	,,
अन्य उपाय	५७५
वातकफ विबंध में पिच्छाबस्ति	,,
कफवातार्त में अनुवासन	,,
क्षीणककादि में कर्त्तव्य	,,
वातनाशक क्रियाओं का वर्णन	,,
शांतोदर के लक्षण	,,

दशमोऽध्यायः ।

ग्रहणी में अजीर्ण के उपचार	५७६
भोजन के समय यवागू आदि	,,
आम में पेयादि	,,
ग्रहणी में तक्र विधि	,,
आमनाशक पानादि	५७७
आमपुरीष में उपाय	,,
छर्दादि में उपाय	,,
अग्निवर्द्धक पिप्पल्यादि चूर्ण	,,
पाचनगुटिका	,,
तालीस पत्रादि चूर्ण	,,
वात ग्रहणी रोगकी चिकित्सा	५७८
अनुवासन प्रयोग	,,
घृतका प्रयोग	५७९
अन्य घृत	,,
अभ्यंग के लिये तैल	,,
उक्तद्रव्यों का चूर्ण	,,
पित्तज ग्रहणी की चिकित्सा	,,
पित्तज ग्रहणी पर चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	५८०
नागरादि चूर्ण	,,
चंदनादि घृत	,,
कफज ग्रहणी में चिकित्सा	,,
कफज ग्रहणी में पेया	,,
कफज ग्रहणी में आसव	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
अन्य आसव	५८१
अन्य आसव	,,
ग्रहणी पर क्षार	,,
अन्य क्षार	,,
अन्य क्षार	,,
अन्य वटिका	५८२
मातुलुंगादि चूर्ण	,,
कफज ग्रहणी में घृत	,,
अन्य घृत	,,
सन्निपातज ग्रहणी में कर्त्तव्य	,,
प्रतिदोषानुसार चिकित्सा	५८३
स्नेह की उत्कृष्टता	,,
घृतका अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
रौक्ष्य में स्नेहपान	५८४
स्नेह से हुई मंदाग्नि के उपाय	,,
उदावर्त्त में उपाय	,,
दोषाधिक्य में मंदाग्नि	,,
व्याधियुक्त मंदाग्नि	,,
मार्गादि भ्रमण में मंदाग्नि	,,
दीर्घकाल की मंदाग्नि	,,
स्नेहादि अग्नि वर्द्धक	,,
अग्नि वर्धन में दृष्टांत	,,
भोजनाजीर्ण भोजन में नष्टाग्नि	५८५
अग्निवर्धक प्रकार	,,
भस्मक अग्नि का शमनोपाय	,,
अजीर्ण में भोज्यादि	,,
मेदका मांस	,,
दुधका विधान	,,
चिकित्सा का संक्षेप वर्णन	५८६
उक्त कथन का हेतु	,,
विरुद्ध अन्नका वर्णन	,,

एकादशोऽध्यायः।

मूत्राघात में स्वेदादि	५८७
शूल नाशक तैल	,,
अन्य प्रयोग	,,
उक्तरोग पर मद्यपान	,,

विषय	पृष्ठांक,
पैत्तिक मूत्राघात में उपाय	५८७
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
कफज मूत्राघात में उपाय	,,
अन्य प्रयोग	५८८
अन्य अवलेह	,,
सान्निपातक मूत्राघात	,,
अश्मरी में कर्त्तव्य	,,
पथरी के पूर्वरूप में कर्त्तव्य	,,
अश्मरी में स्नेह विधि	,,
बाताश्मरी का भेदन पान	५८९
पित्ताश्मरी की चिकित्सा	,,
कफज अश्मरी की चिकित्सा	,,
क्षाणादि विधि	,,
शर्करा का उपाय	,,
शर्करा का अन्य उपाय	,,
अश्मरी पर चूर्ण	५९०
अश्मरी पर क्वाथ	,,
अश्मरी पर क्षार	,,
अश्मरी पर कपोतवंका	,,
मूत्राघात में क्रिया विभाग	,,
सब प्रकार के मूत्राघात की चिकित्सा	,,
वेधदार्वादि पान	,,
धन्वयासरसादि पान	,,
अन्य उपाय	५९१
अन्य उपाय	,,
शुक्राश्मरी की चिकित्सा	,,
अश्मरी के इलाज में राजाज्ञा	,,
प्रश्न की रीति	,,
शस्त्र कर्म में कर्त्तव्य	,,
रोगी को स्नानादि	५९२
मूत्र संशोधन	५९३
व्रण प्रक्षालन	,,
व्रण पर स्वेदन	,,
अन्य उपचार	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
अश्मरी में वर्जित अंग	५९३
द्वादशोऽध्यायः ।	
प्रमेह में वमन विरेचन	५९४
अनुबंध की रक्षा में शमनादि	,,
शमन का प्रयोग	,,
शमन औषध	,,
कफ पर तीन तीन योग	,,
पित्तज प्रमेह पर तीन प्रयोग	५९५
प्रमेह पर अन्नपान विधि	,,
वात प्रमेह में चिकित्सा विधि	,,
प्रमेह में पथ्य विधि	,,
सक्तुपानादि	,,
कफपित्त प्रमेह पर पान	,,
प्रमेह पर तैलादि	५९६
धान्वन्तर घृत	,,
रोध्रासव	,,
अयस्कृति	५९७
प्रमेह में उद्वर्तनादि	,,
प्रमेह पर रसायन	,,
निर्धन प्रमेही का उपाय	,,
कृश की औषधि	५९८
प्रमेह पिटका की चिकित्सा	,,
विद्रधिका के पूर्वरूप में कर्त्तव्य	,,
तैलादि विधि	,,
पाठादि अवलेह	,,
प्रमेह पर शिलाजीत	,,
त्रयोदशोऽध्यायः ।	
विद्रधि की चिकित्सा	५९९
वातज विद्रधि की चिकित्सा	,,
व्रणरोपिणी क्रिया	,,
पैत्तिक विद्रधि	,,
कफज विद्रधि	,,
रक्तादिजन्य विद्रधि	,,
अंतर विद्रधि में पान	,,
अन्य प्रयोग	,,

विषय	पृष्ठांक
अन्य उपाय	६००
विद्रधि पर शार्यत्यादि काढा	,,
अन्यघृत	,,
अन्यघृत	,,
शृंगादि रक्तमोक्षण	,,
विद्रधि में उपनाह	,,
विद्रधि का भेदन	६०१
भीतर की विद्रधि के चिन्ह	,,
विद्रधि में दोष विशेष की अपेक्षा	,,
विद्रधि पर यूष	,,
दशदिन पीछे शोधनादि	,,
उत्करोग में गुल्मवत चिकित्सा	,,
विद्रधि पर गुग्गुलुयोग	,,
पाक निवारण	६०२
स्तनविद्रधि में उपाय	,,
वृद्धि चिकित्सा	,,
वातनाशक निरूहादि	,,
पित्तज वृद्धि का उपाय	,,
कफजवृद्धि में उपाय	,,
मेदोजवृद्धि में उपाय	६०३
मुष्नजवृद्धि में उपाय	,,
अंत्रजवृद्धि में उपाय	,,
सुकुमारनामक रसायन	,,
उत्करोग में नस्यादि	६०४
अग्निकर्म में मिश्रमत	,,
चतुर्दशोऽध्यायः ।	
वातजगुल्म की चिकित्सा	,,
गुल्म में स्नेहपान	६०५
वातिकगुल्म में बृंहण	,,
गुल्म में सानुवासन निरूहण	,,
गुल्म पर वस्ति कर्म	,,
वातगुल्म पर घृत	,,
अन्य घृत	६०६
दाधिक घृत	,,
अन्यघृत	६०७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
अन्यघृत	६०७
वातगुल्म नाशक घृत	,,
वातज गुल्म में स्फोदमन	,,
शूलादि में क्वाथादि	,,
अन्य चूर्ण	,,
कफ वातगुल्म में वाटिका	६०८
हिंग्वादि चूर्ण	,,
लवणादि चूर्ण	,,
शार्दूल चूर्ण	६०९
सिंधूत्थ चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य प्रयोग	,,
शुंठ्यादि चूर्ण	,,
अन्य प्रयोग	,,
गुल्म में विरेचनादि	६१०
अन्य प्रयोग	,,
गुल्म पर तैल	,,
अर्कादि क्वाथ	,,
पुष्करादि क्वाथ	,,
अन्य प्रयोग	,,
शिलाजीत का प्रयोग	,,
अन्य घृत	६११
निलिनी घृत	,,
गुल्म पर कुक्कुटादि	,,
पथ्य विधि	,,
पैत्तिक गुल्म में विरेचन	,,
पित्तगुल्म में संशमन	,,
आस्थापिक गुल्म में विरेचन	६१२
अन्य घृत	,,
द्राक्षादि पान	,,
अन्य प्रयोग	,,
पैत्तिक गुल्म में अभ्यंगादि	,,
विदाह पूर्व गुल्म	,,
रक्त मोक्षण में कारण	,,
कृतदोष में घृतपान	६१३

विषय	पृष्टांक.
पाकोन्मुख गुल्म में कर्त्तव्य	६१३
पित्तज गुल्म में उपाय	,,
कफज गुल्म में उपाय	,,
कफज गुल्म का संशोधन	,,
अन्य घृत	,,
भल्लातक घृत	६१४
स्वेदन विधि	,,
स्नेह स्वेदन की उत्कृष्टता	,,
कफ गुल्म प्रलेपादि	,,
मिश्रित स्नेह	,,
नीलिका घृत	,,
दंत्यादि चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
गुल्मनाशक निरूह	,,
क्षार प्रयोग	६१६
कफाधिक्य गुल्म में क्षार	,,
अन्य क्षार	,,
क्षारद्वारा कफका अधःपतन	,,
आसवादि का प्रयोग	,,
पथ्याविधान	,,
अन्य प्रयोग	६१७
गुल्म में दाह	,,
दाह विधान	,,
आमान्वय में कर्त्तव्य	,,
स्त्रीको स्नेह विरेचन	,,
रक्तज गुल्म में तिल का काढ़ा	६१८
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
योनि विरेचन	,,
योनि विरेचन विधि	,,
अवर्त्तमान रुधिर कर्त्तव्य	,,
प्रवृत्त रक्त में कर्त्तव्य	,,
पंचदशोऽध्यायः।	
उदर रोग में विरेचन	६१९
उदर रोग में स्निग्ध विरेचन	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
विरेचन विधि	,,
अन्य घृत	,,
अन्य प्रयोग	६२०
अन्य घृत	,,
अन्य घी	,,
घृतपान के पीछे विरेचन	,,
अन्य चूर्ण	,,
गवाक्षादि चूर्ण	,,
नारायण चूर्ण	,,
हपुषादि चूर्ण	६२१
नीलिन्यादिक चूर्ण	,,
उदर रोग में दुग्धपान	,,
अन्य चूर्ण	,,
स्नुही घृत	६२२
अन्य घृत	,,
अन्य विधि	,,
पेया पान	,,
घृत पचने पर कर्त्तव्य	,,
बार बार घृत प्रयोग	,,
घी के प्रयोगका विधान	,,
आनाह पर घी	६२३
दोष दूर होने पर पथ्य	,,
उदर रोग में हरीत की सेवन	,,
अन्य प्रयोग	,,
प्रवृद्ध उदर की चिकित्सा	,,
उदर रोग में भोजन	,,
पार्श्वशूलादि की चिकित्सा	,,
अरण्डी के तैलका प्रयोग	६२४
उदर पर प्रलेप	,,
उदर का परिषेक	,,
उदर वेष्टन	,,
आध्मान में निरूहण	,,
आध्मान में वस्ति	,,
उदर चिकित्सा की समाप्ति	,,
वातोदर की चिकित्सा	,,
संसर्ग के पीछे दूधपान	,,

विषय	पृष्टांक
उदर रोगमें वस्ति प्रयोग	६२५
उदररोग में अनुवासन	,,
पित्तज उदर रोग में चिकित्सा	,,
दुर्बल को अनुवासन वस्ति	,,
दूध और वस्ति का बार बार प्रयोग	६२६
कफोदर की चिकित्सा	,,
कफोदर में निरूहादि	,,
कफोदर रोग पर क्षार	,,
उदर रोग में अरिष्टपान	,,
उदर रोग में उपनाह	६२७
सन्निपातोदर की चिकित्सा	,,
त्रिदोषज जठर में चिकित्सा	,,
स्थावर विषका प्रयोग	,,
हृतदोष में कर्त्तव्य	,,
जठर में हथनी का दूध	६२८
प्लीहोदर की चिकित्सा	,,
उक्तरोग में क्षार पानादि	,,
गरम जल के साथ चूर्ण	,,
विडगादि सेवन	,,
अन्य प्रयोग	,,
कमलादि रोगों पर दवा	,,
अन्य प्रयोग	६२९
प्लीहा पर तैल	,,
अन्य प्रयोग	,,
पैत्तिक प्लीहा का उपाय	,,
यकृत की चिकित्सा	,,
वद्धोदर की चिकित्सा	,,
छिद्रोदर की चिकित्सा	,,
उदकोदर की चिकित्सा	६३०
अन्य चिकित्सा	,,
उदकोदर शस्त्र प्रयोग	,,
अस्त्र प्रयोग विधि	,,
अन्य जलोदरों का उपाय	६३१
जलोदर की अन्य चिकित्सा	,,
आहार में वर्ज्य वर्ज्य	,,
सर्वोदर चिकित्सा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
उदर रोग में पथ्य	६३२
उदर में यवागूआदि	,,
उदर रोग त्याज	,,
उदर में पान व्यवस्था	,,
वातकफादि में तक्र को श्रेष्ठता	,,
तक्र का प्रयोग	,,
दूध को श्रेष्ठता	६३३
षोडशोऽध्यायः ।	
पांडुरोग में कल्याणक घृत	,,
अन्य घृत	,,
पांडुरोग में वमनादि	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	६३४
अन्य प्रयोग	,,
अन्य अवलेह	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
त्र्योषादि चूर्ण	,,
पांडुरोग पर वटिका	,,
अन्य गुटिका	६३५
तार्क्ष्यादि चूर्ण	,,
काट्यादि चूर्ण	,,
द्राक्षादि अवलेह	६३६
अन्य प्रयोग	,,
पांडुरोग की सामान्य चिकित्सा	,,
दोषानुसार चिकित्सा	,,
अन्य विधि	,,
मृत्तिका के पांडुरोग में उपाय	,,
केसरादि घृत	६३७
अन्य उपाय	,,
दोषानुसार औषध का प्रयोग	,,
कामला में पित्तनाशक घृत	,,
कामला पर घृत	,,
अन्य औषध	,,
अन्य चूर्ण	,,
अन्य प्रयोग	,,

विषय.	पृष्ठांक.
अन्य प्रयोग	६३८
अन्य प्रयोग	,,
अन्य चिकित्सा	,,
कुंभ कामला की चिकित्सा	,,
हलीमक की चिकित्सा	६३९,
पांडुरोग में सूजन की चिकित्सा	,,
सप्तदशोऽध्यायः ।	
सूजन में चिकित्सा क्रम	,,
मन्दाग्नि में तक्रपान	,,
अन्य प्रयोग	६४०
शोफ पर घृत	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	६४१
सूजन में पथ्य	,,
सूजन पर पेया	,,
सूजन पर अभ्यंजनादि	,,
एकांग शोफ पर लेप	६४२
वातज सूजन की चिकित्सा	,,
पित्तज सूजन की चिकित्सा	,,
पित्तज सूजन पर क्वाथादि	,,
कफज सूजन पर तैल	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रलेपादि	६४३
सूजन पर स्नान विधि	,,
एकांग शोफ पर लेप	,,
दोषानुसार शुद्धि	,,
त्रिदोषज शोफ में चिकित्सा	,,
अन्य प्रयोग	,,
क्षतोत्थ शोफ में कर्त्तव्य	,,
शोफ में वर्जित मांसादि	६४४
अष्टदशो ऽध्यायः ।	
विसर्प में लंघनादि	,,
विसर्प में वमनादि	,,
विसर्प में विरेचनादि	,,
अल्प दोष में शमनविधि	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
दुरालभादि पान	६४४
दार्व्यादि सेवन	६४५
विसर्प में रक्त मोक्षण	,,
घृत सेवन	,,
विसर्प पर लेपादि	,,
वात विसर्प की चिकित्सा	,,
पैत्तिक विसर्प की चिकित्सा	,,
अन्य लेप	,,
कफ विसर्प पर लेप	६४६
अन्य लेप	,,
उक्त द्रव्यों द्वारा सेकादि	,,
सामवायु में लेप	,,
संसृष्ट दोष में कर्त्तव्य	,,
अग्नि विसर्प की चिकित्सा	,,
ग्रंथि विसर्प की चिकित्सा	,,
ग्रंथि विसर्प में परिषेक	,,
अन्य प्रलेपादि	६४७
दंत्यादि लेप	,,
ग्रंथि के भेदन का उपाय	,,
ग्रंथि के शांत न होने में दाह	,,
ग्रंथि में रक्त मोक्षण	६४८
व्रण के समान चिकित्सा	,,
रक्त हरण में हेतु	,,
विसर्प में हेतु	,,
विसर्प में घृत का निषेध	,,

एकोनविंशोऽध्यायः ।

कुष्ठ में स्नेहपान	,,
वातोत्तर कुष्ठ में तैलादि	,,
पित्त कोढ का उपाय	६४९
महा तिक्तक घृत	,,
कफ प्रधान कुष्ठ की चिकित्सा	,,
सर्व कुष्ठ चिकित्सा	६५०
अन्य चिकित्सा	,,
कुष्ठ पर अभ्यंजन	,,
कुष्ठ में शोधनादि	,,
कुष्ठ में शिराव्यधन	,,

विषय.	पृष्ठांक.
कुष्ठ में आप्यायन	६५०
वज्रक घृत	,,
महा वज्रक घृत	,,
वैरेचनिक घृत	६५१
अन्य उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
कोढ में पथ्य	,,
अन्य औषध	,,
जितेंद्रियों की कोढ का उपाय	६५२
अन्य प्रयोग	,,
कुष्ठ पर त्रिफलादि लेह	,,
त्वचा रोग पर काढा	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	६५२
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
कृच्छ्र कुष्ठ की चिकित्सा	,,
कोढ पर रसायन	,,
चंद्रशकला गुटिका	,,
अन्य प्रयोग	६५४
शशांकलेखा अवलेह	,,
पथ्यादि गुटिका	,,
विडंगादि प्रयोग	,,
कुष्ठ पर सितादि अवलेह	,,
कुष्ठ पर चूर्ण	,,
कुष्ठ पर लेप	,,
कुष्ठ पर क्षार प्रयोग	,,
कुष्ठ विशेष में लेप	६५५
कुष्ठ में स्वेदन	,,
अन्य प्रयोग	,,
मुस्तादि क्वाथ	,,
अन्य क्वाथ	६५६
अन्य लेप	,,
अन्य लेप	,,
कुष्ठ में उद्वर्तन	,,
दद्रु नाशक चूर्ण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक.
विसर्पिका की चिकित्सा	६५७
अन्य प्रयोग	,,
सिध्म पर लेप	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
वज्रक तैल	६५८
महावज्रक तैल	,,
अन्य तैल	,,
कछ्वादि की औषध	,,
लाक्षादि लेप	,,
चित्रकादि लेप	६५९
पित्तकफ कुष्ठ पर लेप	,,
कुष्ठ पर घृत विशेष	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
लेपों की सिद्धि का कारण	,,
कुष्ठ को साध्यता	,,
बहुदोष कुष्ठ को संशोधनत्व	६६०
कुष्ठ रोगी का वमनादि काल	,,
कुष्ठ रोगी का दोष हरण	,,
कुष्ठ में घृतादि	,,
विंशोऽध्यायः।	
श्वित्र को भयानकत्व	,,
श्वित्र में शोधनादि	६६१
फोडों का कांटों से भेदन	,,
उक्त रोग पर कल्क	,,
उक्त रोग में गोमूत्रपान	,,
अन्य प्रयोग	,,
उक्त रोग पर लेप	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	६६२
भिलावे का प्रयोग	,,
अन्य लेप	,,
सवर्ण कारक लेप	,,
अन्य लेप	,,

विषय.	पृष्ठांक.
मल्लातकादि लेप	६६२
कृमि चिकित्सा	६६३
मूर्धागत कृमि की चिकित्सा	,,
कृमि रोग में पेयापान	,,
कृमिरोग में शिरीषादि रस	६६४
अन्य अवलेह	,,
नस्यार्थ चूर्ण	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
तैल प्रयोग	,,
पुरीषज कृमि में चिकित्सा	,,
ककज कृमिरोग में कर्त्तव्य	,,
रक्तज कृमि की चिकित्सा	६६५
कृमिरोग में क्षीरादि	,,
एकविंशोऽध्यायः।	
वातव्याधि में स्नेहोपचार	,,
स्वेदन के गुण	,,
उक्त विषय पर दृष्टांत	,,
हर्षादि का शमन	६६६
स्नेह प्रयोग का फल	,,
अन्य प्रयोग	,,
औषध का प्रयोग	,,
वातरोग पर घृत	,,
वायु के अनुलोमन में हेतु	,,
विरेचन के योग्य को निरूहण	,,
आमाशय गतवायु में कर्त्तव्य	,,
ऊर्ध्व नाभिस्थ वायु में अवपीडक	६६७
कोष्ठस्थ वायु में कर्त्तव्य	,,
हृदयादि गत वायु में कर्त्तव्य	,,
त्वचागामी वायु में कर्त्तव्य	,,
रक्तस्थ वायु में कर्त्तव्य	,,
मांस मेदस्थ वायु मे कर्त्तव्य	,,
अस्थि मज्जागत वायु	,,
शुक्रस्थ वायु में कर्त्तव्य	,,
रुद्धमार्ग शुक्र में कर्त्तव्य	६६८
वायु द्वारा शुष्क गर्भ में कर्त्तव्य	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
स्नायु गतवायु में कर्त्तव्य	६६८
अंग के संकुचित होने पर कर्त्तव्य	,,
रक्तस्राव में लेप	,,
अपतानक में चिकित्सा	,,
उत्करोग में नस्यादि	,,
वात नाशक स्नेह स्वेद	,,
वेगांतर में शिरोविरेचनादि	६६९
वाता धिक्य में घृत	,,
वात नाशक अन्य घृत	,,
अन्यविधि	,,
शुद्ध अपतानक की चिकित्सा	,,
कफयुक्त अपतानक की चिकित्सा	,,
आयाम में चिकित्सा	६७०
विवर्णता का फल	,,
मंदवेग में चिकित्सा	,,
जिह्वास्तम्भ की चिकित्सा	,,
अर्दित रोग की चिकित्सा	,,
पक्षाघात में चिकित्सा	,,
अंसबाहु में नस्यादि	,,
ऊरुस्तंभ में नस्यादि	,,
उक्त रोग में लेहादि	६७१
अन्य प्रयोग	,,
वायु के शमन का प्रयोग	,,
उक्त रोग में व्यायामादि	,,
शेष अंगों की चिकित्सा	६७२
अन्य प्रयोग	,,
रास्नादि घृत	,,
अन्य प्रयोग	,,
शिरोगत वायु में नस्य	,,
अन्य प्रयोग	६७३
अन्य तैल	,,
अन्य तैल	,,
अन्य प्रयोग	,,
वात कुंडलिकादिनाशक तैल	,,
बला तैल	६७४
उक्त तैलों पर फल	,,

विषय.	पृष्ठांक.
वस्ति प्रयोग	६७५
द्वाविंशोऽध्यायः ।	
वात रक्त में रक्त हरण	,,
रुधिर निकालने की विधि	,,
रुधिर निकालने का निषेध	,,
वातरक्त में विरेचन	,,
वात प्रधान वात रक्त घृत	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	६७६
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
पित्तजवातरक्त की चिकित्सा	,,
वातरक्त में विरेचन	,,
अन्य प्रयोग	,,
वातरक्त में क्षीर वस्ति	,,
कफो ल्वण वातरक्त में चिकित्सा	,,
स्नेहन के पीछे रूक्षण	६७७
शूलयुक्त वातरक्त की चिकित्सा	,,
अन्य क्वाथ	,,
खुडरोग पर प्रयोग	,,
बाह्य चिकित्सा का विधान	,,
पकाई हुई राल	,,
पिंड तैल	,,
दशमूलादि घृत	,,
स्तंभादिमें उपाय	,,
अन्य प्रयोग	६७८
अन्य प्रयोग	,,
परिषेक की औषध	,,
दाद नाशक उपाय	,,
वातरक्त में लेप	,,
वातरक्त में उपनाहन	,,
अन्य उपनाह	,,
अन्य लेप	६७९
अन्य लेप	,,
अन्य घृत	,,
अन्य प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा	६७९
वातकफाधिक्य की चिकित्सा	,,
यातकफाधिक्य में परिषेक	,,
उत्तान वातरक्त की चिकित्सा	,,
गंभीर वातरक्त की चिकित्सा	,,
वातकफोत्तर में लेप	,,
पित्तरक्तोत्तर में लेप	,,
वातरक्त में तैल	६८०
अन्य तैल	,,
वातरक्त में स्नेहनादि	,,
घ्राणादि चिकित्सा	,,
शुद्धवात की चिकित्सा	,,
अंगशोषादि में चिकित्सा	६८१
पित्तावृतवायु में कर्त्तव्य	,,
उत्क्लेश में वस्ति	,,
उत्क्लेश में परिषेक	,,
कफावृतवायु में चिकित्सा	,,
संसृष्ट वायु का उपाय	,,
रक्तसंसृष्ट वात का उपाय	,,
मांसावृत वायु	६८२
आढ्यवात की चिकित्सा	,,
रेतसावृतवायु की चिकित्सा	,,
अन्नावृत में कर्त्तव्य	,,
मूत्रावृत में कर्त्तव्य	,,
वर्चसा वृत में कर्त्तव्य	,,
विमार्ग वायु का स्वमार्गानयन	६८३
पित्तरक्त वर्जित सर्व वरण	,,
पित्तावृत में चिकित्सा	,,
रक्तावृत में चिकित्सा	,,
आयुर्वेद की फलभूत चिकित्सा	,,
औषध के पर्य्याय	,,

कल्पस्थानम् ।

वमन विरेचन की प्रधान औषध	६८४
व्याधि के योग से जीमूत की विशिष्टता	,,
वमन में मैन फल का योग	,,
मैन फल के सेवन की विधि	६८४
अन्यप्रयोग	६८५
हृद्दाह में फल	,,
कफछर्द्यादि में मैनफल	,,
कफाभिभूत अग्नि में वमन	,,
वमन में लेह विशेष	,,
अन्य उपाय	,,
फूल सूंघने से वमन	६८६
अन्य फल	,,
जीमूतादि का प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
तुंबीआदि की कल्पना	,,
पित्तकफज्वर में चूर्णादि	६८७
पित्तज्वर में पानादि	,,
इक्ष्वाकु का प्रयोग	,,
इक्ष्वाकु के दुग्ध का प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
मंथ का प्रयोग	,,
अन्यप्रयोग	६८८
अन्य प्रयोग	,,
अवलेह का प्रयोग	,,
पित्त सह कफ में कर्त्तव्य	,,
विषरोग पर धान्यादि कल्क	,,
अन्य प्रयोग	,,
स्वेद का प्रयोग	,,
आनूप मांस का प्रयोग	३८९
अन्य प्रयोग	,,
कुटज का प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
वमन में अन्याभन्य औषध	,,

द्वितियो ऽध्यायः ।

निक्लोथ का स्वरूप	६८९
निक्लोथ को सर्व रोग जितत्व	६९०
निक्लोथ की जड के दो भेद	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
श्यामा के लक्षण	६९०
निसोथ की जड लाने की रीति	,,
घात रोग में निसोथ का प्रयोग	,,
वैरेचनिकलेह	,,
अन्य अवलेह	६९१
विरेचन में ईख की गंडेली	,,
विरेचनार्थ चूर्ण	,,
गुल्मादि रोग पर अवलेह	,,
कल्याणकगुड	,,
अन्य गोली	६९२
अन्यविरेचन	,,
शरद ऋतु में विरेचन	,,
हेमंत में विरेचन	,,
ग्रीष्म में विरेचन	,,
स्निग्ध के लिये विरेचन	,,
रूक्ष पुरुषों को विरेचन	,,
ज्वर में राजवृक्ष का प्रयोग	६९३
अन्य प्रयोग	,,
अमलतास का ग्रहणादि	,,
अमलतास के प्रयोग की विधि	,,
अमलतास का काढा	,,
अन्य प्रयोग	,,
अमलतास का अन्य प्रयोग	,,
लोध का अवलेह	६९४
थूहर के दूध का निषेध	,,
थूहर का प्रयोग	,,
सुधा गुटका	,,
घृत के साथ निसोथपान	,,
त्र्योषादि सेवन	,,
कफरोग में चिकित्सा	,,
अन्य प्रयोग	६९५
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
विसर्प की चिकित्सा	,,
त्रिवृतादि की प्रधानत्व	,,
हरीतकी का ग्रहण	,,
विरेचन के लिये मोदक	६९६

विषय.	पृष्ठांक
संदंशेषादि में कर्त्तव्य	६९६
विरेचन में तृषा और केसर	,,
तृतियो ऽध्यायः ।	
अधोगत वमन में पुर्नवमन	,,
अजीर्ण में पूर्ववत कर्त्तव्य	६९७
विना स्वेदनके स्वेदनकी औषध निषेध	,,
उत्कलष्ट त्रिदोष में अनुशासन	,,
आध्यमान में कर्त्तव्य	६९८
शूलनाशिनी यवागू	,,
प्रवाहिकादि में विधल्यादि	,,
कुपितवात के कर्म	,,
उक्त अवस्था में वमन प्रयोग	,,
अति वमन का उपाय	६९९
वातनाशक स्वेदादि का प्रयोग	,,
विरेचनादि योग में कर्त्तव्य	,,
विरेचनातियोग में चिकित्सा	,,
विरेकाति योग नाशक औषध	,,
वमनाति योग की चिकित्सा	,,
जिह्वा के भीतर घुसजाने में चिकित्सा	,,
वाग्ग्रहादि में यवागू	७००
जीवरक्त की परीक्षा	,,
तृषादि में प्राण रक्षण क्रिया	,,
उक्त रोग में दुग्धपान	,,
गुदभ्रंश की चिकित्सा	७०१
संज्ञानाश में गायन श्रवण	,,
चतुर्थो ऽध्यायः ।	
सर्वगदप्रमाथी वस्ति	,,
निरूहण वस्ति	,,
बलादि निरूहण	७०१
अन्य प्रयोग	,,
पित्तरोग नाशिनी वस्ति	,,
अन्य वस्ति	,,
कफज रोगों में निरूहण	७०३
सुकुमारों को निरूहण	,,
वात नाशक वस्ति	७०४
वात नाशक वस्ति	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
अभिष्यान्दादि नाशक वस्ति	७०४
विट्संगादि नाशक वस्ति	,,
शुक्र कारक वस्ति	,,
सिद्ध वस्तियों का वर्णन	,,
प्रमेह नाशक वस्ति	,,
नेत्रों को हितकारक वस्ति	,,
पाव्वादि रोग नाशक वस्ति	७०५
निरूहण की कल्पना	,,
युक्तरथ नामा वस्ति	,,
दोष नाशक वस्ति	,,
सिद्ध वस्ति	,,
कफाद नाशक वस्ति	,,
शुक्रवर्द्धक वस्ति	७०६
मयूरादि की कल्पना	,,
तीतरादि की कल्पना	,,
गोधादि की वस्ति	,,
केंचकी फली के साथ पथ्य	,,
स्नेह वस्ति	७०७
अन्य स्नेह वस्ति	,,
आनूप जीवों की वसा	,,
अन्य तैल	,,
अन्य घृत प्रयोग	,,
पौष्टिक अनुवासन	७०८
अन्य अनुवासन	,,
कफ नाशक तैल	,,
तीक्ष्णादि वस्ति	,,
वस्ति को मृदु तीक्ष्णत्व	,,
सिद्ध वस्ति का फल	७०९
वस्ति योजना का प्रकार	,,
विशोधन के योग्य	,,
पंचमोऽध्यायः।	
अस्निग्ध देह में वस्ति का प्रयोग	,,
उक्त दशा में कर्त्तव्य	७१०
वस्ति से वायु रोध	,,
फल वर्त्ति का प्रयोग	,,
वेग संरोध में वस्ति का फल	,,

विषय.	पृष्ठांक.
उक्त अवस्था में कर्त्तव्य	,,
अभ्युष्ण वस्ति का फल	७११
पैत्तिक में कर्त्तव्य	७१२
स्नेहानुवासन का वर्णन	,,
वाताधिक योग में चिकित्सा	,,
पित्तावृत वस्ति में उपाय	७१३
कफावृत स्नेह वस्ति में उपाय	,,
अन्यशनावृत स्नेहवस्ति का उपाय	,,
पुरीषावृत स्नेह वस्ति	,,
अयुक्तादि में स्नेह वस्ति	,,
अपक्वस्नेह में उपाय	७१४
अन्य उपाय	,,
शीघ्र प्रणीति में चिकित्सा	,,
पीड्यमान वस्ति में चिकित्सा	,,
अति पीडित वस्ति पुरुष	७१५
दमनादि में रक्ष	,,
उक्तदशा में चिकित्सा	,,
विकृत को प्रकृति पर लाना	,,
प्रकृति गत के लक्षण	,,
षष्ठोऽध्यायः।	
प्रशस्त भेषज के लक्षण	,,
औषध लाने की विधि	७१६
पयआदि का ग्रहण प्रकार	,,
कषाय योनि पांचरस	,,
स्वरस के लक्षण	,,
कल्क के लक्षण	७१७
क्वाथ के लक्षण	,,
शीतकषाय के लक्षण	,,
फाट के लक्षण	,,
योजना विधि	,,
स्वरस का मध्यम पान	,,
कल्कादि का मध्यम पान	,,
क्वाथ का प्रमाण	,,
शीत कषाय का प्रमाण	,,
फाट का प्रमाण	७१८
स्नेह पाक का प्रमाण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
शौनक का मत	७१८
पाक के लक्षण	,,
स्नेह पाक का अन्य लक्षण	,,
पाक के तीन भेद	,,
मान संज्ञा	७१९
गीले सूखे द्रव्यों की योजना	,,
अनुक्त द्रव में पानी की योजना	,,
द्रव्य में अनुक्त परिमाण में कर्तव्य	,,
वाटकादि संज्ञा	,,
शैल भेद से द्रव्य विशेष	७२०

उत्तरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ॥

जनाने ही बालक का शोधन	७२१
स्वस्थीभूत बालक के कर्म	,,
तालु उठाने की विधि	,,
अन्य अवलेह	७२२
गर्भांग वमन	,,
बालक का जात कर्म	,,
स्तन्य प्रवर्तन में हेतु	,,
बालक का प्रथम दिन का वर्त्तन	,,
दूसरे तीसरे दिन की विधि	,,
उत्तम स्तन्यका प्रकार	,,
स्तन्यनाश का कारण	७२३
दूधको रोग का हेतुत्व	,,
दूधके अभावमें कर्तव्य	,,
छटीरात का विधान	,,
दसवें दिनका कर्त्तव्य	,,
आयु परीक्षा	,,
बालक का मणिधारण	७२४
पांचव छटे महिने में कर्त्तव्य	,,
कर्ण व्यध का काल	,,
कर्णव्यध कीरीति	,,
सिराव्यध में रागादि	,,
रागादि की चिकित्सा	७२५
उचित स्थान में विधने का फल	,,
सूत्रस्थापन	७२५
दांत निकलने पर कर्त्तव्य	,,
बालक को मोदक	,,
सोम्यौषध	,,
बालक को त्रास निषेध	,,
वस्त्रादि द्वारा रक्षण	,,
घृत पान विधि	७२६
अन्य प्रयोग	,,
सारस्वत घृत	,,
अन्य घृत	,,
चार योग	,,
वचादि का प्रयोग	,,

द्वितीयोऽध्यायः ।

त्रिविध बालक	७२७
शुद्ध दूधके लक्षण	,,
वातदुष्टदूध के लक्षण	,,
पित्तदुष्ट के लक्षण	,,
कफ दुष्ट दूध के लक्षण	,,
सान्निपातक दूधके लक्षण	,,
उक्त दूध पीने के लक्षण	,,
रोने से पीडा का ज्ञान	,,
अवयव विशेष में रोग	,,
सिर की पीड़ा का ज्ञान	७२८
धात्री का उपचार	,,
वातनाशक घृत	,,
बालक के लिये अवलेह	,,
पित्त दूषित स्तन्य में चिकित्सा	,,
घी और अवलेह	७२९
कफात्मक स्तन्य की चिकित्सा	,,
घाव की वमन	,,
त्रिदोष दुष्टस्तन्य के उपद्रव	,,
उक्त रोग में चिकित्साक्रम	,,
अन्य उपाय	,,
पाठादि का प्रयोग	७३०
अनुबंधानुसार चिकित्सा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
दंतोद्भेद को रोगों का हेतुत्व	७३०
दंतोद्भव में पीड़ा पर दृष्टांत	,,
दोषानुसार प्रयोग	,,
बालक की चिकित्सा	,,
बालकों को मृदु वचन	,,
स्तन्य तृप्तको वमन	,,
पेया पान वाले को वमन	७३१
विरेचन साध्य में कर्त्तव्य	,,
स्तन्य दोष नाशक लेह	,,
दंतपाली का प्रतिसारण	,,
लावादि चूर्ण	,,
दांतो के निकलने में घी	,,
रजन्यादि चूर्ण का लेह	,,
अन्य प्रयोग	,,
दंतोद्भव में अति यंत्रणा का निषेध	७३२
बालक को अरोचकादि	,,
उक्तअवस्था में उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य घृत	,,
अन्य घृत	,,
अन्य प्रयोग	७३३
अभ्यंजन के लिये तैल	,,
बालक की खांसी आदि में लेह	,,
लाक्षादि तैल	,,
अन्य अवलेह	,,
अन्य घी	७३४
दांत वाले बालक की चिकित्सा	,,
तालुकंटक	,,
उक्त रोग में उपाय	,,
अन्य औषध	,,
तालु कंटक की दवा	,,
वमनादिक रोग	,,
उक्त रोग कर्त्तव्य	७३५
व्रण लेपन	,,
अन्य लेह	,,
अन्य प्रयोग	,,

विषय	पृष्ठांक.
तृतीयोऽध्यायः।	
बारह प्रकार के ग्रह	७३६
ग्रहों के नाम	,,
ग्रहों द्वारा ग्रहणी के लक्षण	,,
ग्रहों का सामन्य रूप	,,
स्कंद गृहीत के लक्षण	,,
विशाखा गृहीत के लक्षण	,,
मेष गृहीत के लक्षण	७३७
पूर्वग्रह गृहीत के लक्षण	,,
पित्त ग्रह गृहीत के लक्षण	,,
शकु निग्रह के लक्षण	,,
पूतनाग्रह के लक्षण	७३८
शीत पूतना के लक्षण	,,
अंध पूतना के क्षलण	,,
मुखमंडिता के लक्षण	,,
रेवती के लक्षण	,,
शुष्क रेवती के लक्षण	,,
ग्रहों के असाध्य लक्षण	,,
शुष्करेवती द्वारा वध	७३९
ग्रहग्रहण के लक्षण	,,
हिंसात्मक ग्रह के लक्षण	,,
रतिकामी ग्रहोंके लक्षण	,,
अर्चाकामी ग्रहोंके लक्षण	,,
उक्त रोगों की चिकित्सा	७४०
धूपन विधि	,,
अन्य धूप	,,
दशांग धूप	,,
अन्य धूप	,,
अन्य प्रयोग	७४१
अन्य घृत	,,
अन्य घृत	,,
अन्य धूप	,,
भूत विद्याके द्रव्य	,,
स्नानार्थ जल	,,
बाल रोग में उपचार विधि	७४२
चतुर्थोऽध्यायः।	
भूतग्रह के लक्षण	,,
भूत ग्रह के भेद	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
भूतोनुषंग में हेतु	,,
ग्रह के ग्रहण में हेतु	,,
भूत ग्रहण का काल	७४३
दैव गृह गृहीत के लक्षण	,,
दैत्य ग्रह के लक्षण	,,
गंधर्व ग्रह के लक्षण	७४४
सर्प ग्रह के लक्षण	,,
यक्ष ग्रह के लक्षण	,,
ब्रह्मराक्षसके लक्षण	,,
पिशाचगृहीत के लक्षण	७४५
पिशाच के लक्षण	,,
प्रेत गृहीत के लक्षण	,,
कुष्मांड गृहीत के लक्षण	,,
निषाद गृहीत के लक्षण	,,
औकिरण के लक्षण	७४६
वेताल गृहीत के लक्षण	,,
पित्तगृह के लक्षण	,,
सामान्य लक्षण	,,
असाध्य लक्षण	,,
पंचमोऽध्यायः ।	
अहिंसक भूतों का उपाय	,,
ग्रहनाशक प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	७४७
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	७४८
स्कंदादिनाशक धूनी	,,
भूतरावाहव्रयं घृत	,,
महाभूत राव घृत	,,
ग्रह ग्रहण में बलदानादि	७४९
ग्रहनुसार दानादि	,,
अन्य द्रव्यों का दान	,,
विशेष विधि	,,
देवताओं की बलि	७५०
घृतपानमें ग्रह मोचन	,,
ग्रह मोचनार्थ नस्यांजन	,,
वैश्य ग्रह की शांति	,,

विषय	पृष्ठांक
नागग्रहों की बलि	,,
यक्षों की बलि	,,
अन्य प्रयोग	,,
ब्रह्मराक्षसों की बलि	७५१
घृत का प्रयोग	,,
रक्षों की बलि	,,
नस्यांजन प्रयोग	,,
घृत का प्रयोग	,,
पिशाचग्रह की बस्ति	,,
घृत का प्रयोग	,,
नस्य प्रयोग	७५२
वर्ज्या वर्ज्य	,,
ग्रहों में प्रति कूला चरण निषेध	,,
सर्व गृहार्थ जयाविशेष	,,
महा विद्या श्रवण	,,
भूतेश की पूजादि	,,
अन्य हितकारक कर्म	७५३
षष्ठोऽध्यायः ।	
उन्माद के छः भेद	,,
उन्माद का स्वरूप	,,
वातज उन्माद के लक्षण	,,
पित्तज उन्माद के लक्षण	,,
कफज उन्माद के लक्षण	७५४
सन्निपातज उन्माद	,,
पित्तज उन्माद	,,
विषज उन्माद	,,
वातज उन्माद में उपाय	,,
कफ पित्तज उन्माद	,,
तीक्ष्ण नस्यांजन प्रयोग	७५५
अन्य घृत	,,
माक्षी घृत	,,
कल्याणक घृत	,,
महा कल्याणक घृत	७५६
महा पैशाचिक घृत	,,
अन्य प्रयोग	,,
उन्माद में अघ पीडन	७५७
अन्य प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
अन्य धूनी	७५७
पैत्तिक उन्माद में उपाय	,,
उन्माद में सिराव्यध	,,
निर्जल कूप में डालना	,,
उक्त क्रियाओं का विधान	७५८
इष्ट विनाश जन्य उन्माद	,,
कामादिज उन्माद में कर्त्तव्य	,,
भूतोन्माद में कर्त्तव्य	,,
उन्माद में बलि प्रदान	,,
उन्माद की असाध्यता	७५९
विगत उन्माद के लक्षण	,,
सप्तमोऽध्यायः ।	
अपस्मार के भेद	,,
अपस्मार का पूर्व रूप	,,
वातज अपस्मार के लक्षण	७६०
पित्तज अपस्मार	,,
कफज अपस्मार	,,
वमनादि प्रयोग	,,
दोषानुसार विरेचनादि	७६१
संशमन औषधियों का विधान	,,
अपस्मार नाशक घृत	,,
महत्पंचगव्य घृत	,,
उन्माद पर अन्य घृत	,,
उक्त रोग पर तेल	,,
वात पित्तज अपस्मार का उपाय	७६२
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
नस्यका प्रयोग	,,
अन्य तैल प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
धूम प्रयोग	,,
लशुनादि तेल	,,
असाध्य की चिकित्सा	७६३
कुत्सित वाक्यों का निषेध	,,
अष्टमोऽध्यायः ।	
नेत्ररोग की संप्राप्ति	,,

विषय	पृष्ठांक
कृच्छोन्मील के लक्षण	७६३
निमेषाख्य रोग	७६४
वात हत रोग	,,
कुंभी संज्ञक पिटिका	,,
पित्तोत्क्लिष्ट रोग	,,
पक्ष्मसात के लक्षण	,,
पोथकी का लक्षण	,,
कफोत्क्लिष्ट रोग	,,
लगण रोग	,,
उत्संग के लक्षण	,,
उत्क्लिष्ट वर्त्मरोग	७६५
नेत्रार्श के लक्षण	,,
आंजन पिटका	,,
विसवर्त्म के लक्षण	,,
उत्क्लिष्टवर्त्म	,,
श्यावर्त्म के लक्षण	,,
शिलस्थवर्त्म के लक्षण	,,
सिकतावर्त्म	,,
कर्दम रोग	७६६
बहल रोग का वर्णन	,,
कुकूणक का लक्षण	,,
वर्त्म संकोचादि	,,
अलजीनामक ग्रंथि	,,
अर्बुदका लक्षण	,,
वर्त्म संश्रयी रोगों की संख्या	,,
उक्त व्याधियों का साध्या साध्य त्व	,,
पक्ष्म बन्धन का उपाय	७६७
नवमोऽध्यायः ।	
कृच्छोन्मीलन की चिकित्सा	,,
कुंभीका वर्त्म का उपाय	,,
वर्त्म के विलेखन की रीति	,,
सुलिखित वर्त्म के लक्षण	७६८
अतिलेखन के उपद्रव	,,
अतिलेखन में उपाय	,,
अन्य उपाय	,,
कठोर पिटिकाकी चिकित्सा	,,
उक्त कर्मका विधान	७६९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक;
पित्त रक्तोत्क्लिष्ट में कर्त्तव्य	७६९
पक्ष्मसातकी चिकित्सा	,,
पक्ष्मसात में अंजन	,,
कफोत्क्लिष्ट का उपाय	,,
लगण का उपाय	,,
कुकूणक का उपाय	७७०
उक्त रोगमें विरेचन	,,
कुचौपरलेप	,,
क्वाथ पान	,,
लिखित वर्त्म में परिषेक	,,
वमन को श्रेष्टत्व	,,
वमन की विधि	,,
वमन विरेचन	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य वर्त्ती	७७१
पक्ष्म रोधमें चिकित्सा	,,
अशांति में दाहादि	,,
सांधिरोगो का वर्णन	७७२
कफस्रावका लक्षण	,,
उपनाह के लक्षण	,,
रक्त स्राव के लक्षण	,,
पर्व्वणी के लक्षण	,,
पूयास्राव के लक्षण	,,
इयालस के लक्षण	,,
अलजी के लक्षण	,,
कृमि ग्रंथि के लक्षण	७७३
शस्त्र साध्या साध्य रोग	,,
शुक्ति का रोग	,,
शुक्लार्मक के लक्षण	,,
बलास ग्रथित के लक्षण	,,
पिष्टक के लक्षण	,,
शिरोत्पात के लक्षण	,,
सिरा हर्ष का लक्षण	,,
सिराजाल का लक्षण	७७४
शोणितार्म के लक्षण	,,

विषय	पृष्टांक,
अर्जुन के लक्षण	७७४
प्रस्तर्यर्म के लक्षण	,,
प्रस्तारयर्म के लक्षण	,,
स्नायवम के लक्षण	,,
अधिमांसार्म के लक्षण	,,
सिरासंक्षक पिटिका	,,
उक्त तेरह रोगों की साधन विधि	,,
वर्जित रोग	,,
क्षत शुक्रक का लक्षण	७७५
शुद्ध शुक्र के लक्षण	,,
आज का लक्षण	,,
सिरा शुक्र के लक्षण	,,
तीव्र वेदना युक्त शुक्र	,,
वर्ज्य शुक्र	७७६
कृष्ण मंडलगत रोगों की संख्या	,,
उपनाह की चिकित्सा	,,
संधिरोग लेखादि	,,
पूयालस की चिकित्सा	७७७
अन्य प्रयोग	,,
कृमि ग्रंथि का उपाय	,,
शुक्लाख्य रोग का उपाय	,,
कफ ग्रंथित और पिष्टक	,,
अन्य प्रयोग	,,
शिरोत्पात का उपाय	,,
उक्तरोगों में विशेषता	,,
अर्म की चिकित्सा	७७८
अर्म में शस्त्र चिकित्सा	,,
छेदन की रीति	,,
छेदनान्तर बंधनादि	,,
तिमिरादि पर अंजन	७७९
तिमिर नाशक अंजन	,,
सिराजाल की चिकित्सा	,,
शुक्र की चिकित्सा	,,
क्षत शुक्र में पकघृत पानादि	,,
क्षत शुक्र नाशक वर्त्ती	७८०
दांतों का वर्त्ती	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक.
सर्व शुक्र नाशक वर्त्ति	७८०
अन्य अंजन	,,
निम्नशुक्रोन्नमन	,,
शुद्ध शुक्र में कर्त्तव्य	,,
शुक्र नाशक गोली	,,
अन्य प्रयोग	७८१
शुक्र पर घर्षण	,,
फुली पर अंजन	,,
शुक्र हर्षण में अंजन	,,
मुद्रांजन	,,
हृष्ट शुक्र नाशक वटिका	,,
शुक्र का लेखन	,,
सिरा शुक्र की चिकित्सा	,,
अन्य वर्ति	७८२
शस्त्र प्रयोग	,,
असाध्य अजका में कर्त्तव्य	,,
असाध्य शुक्र में अंजन	,,
अजक में बंधनादि	,,
पक्व घृत प्रयोग	,,

द्वादशोऽध्यायः ।

तिमिररोग के लक्षण	७८३
दूसरे पटल में प्राप्त हुए के लक्षण	,,
तृतीय पटलगत के लक्षण	,,
चतुर्थ पटल के लक्षण	७८४
वातज तिमिर के लक्षण	,,
वात से द्रक सिरा संकोचन	,,
पित्तज तिमिर के लक्षण	,,
कफज तिमिर के लक्षण	,,
रक्तज पित्त के लक्षण	७८५
संसर्गज तिमिर के लक्षण	,,
मकुलांध के लक्षण	,,
विषादर्शन में युक्ति	,,
उष्ण विदग्धा दृष्टि	,,
विदग्धाम्ला दृष्टि	७८६
धूमर रोग के लक्षण	,,

विषय	पृष्ठांक.
औपसर्गक कर्दम नाशक	७८६
दृष्टि मंडल के २७ रोग	,,

त्रयोदशोऽध्यायः ।

तिमिर की चिकित्सा में शीघ्रता	७८७
तिमिर नाशक के घृत	,,
काच नाशक घृत	,,
त्रिफला घृत	७८८
महा त्रैफल घृत	,,
गारुडी दृष्टि प्राप्त करने का अवलेह	,,
तिमिर रोग पर त्रिफला	,,
अन्य प्रयोग	,,
तिमिर रोग में पायस	,,
सर्व तिमिर नाशक अंजन	७८९
तिमिरादि शांति कारक अंजन	,,
कफामय नाशक चूर्ण	,,
सर्व रोग पर अंजन	,,
भास्करांजन	,,
द्वितीय भास्करांजन	७९०
दृष्टि वर्द्धक नीलाथोथा	,,
सीसे की शलाका	,,
गिद्ध दृष्टि कारक योग	,,
मिश्रतार नेत्र का चूर्ण	७९१
अंधे को भी दृष्टि प्रदान	,,
अंधों को दृष्टि वर्द्धक रक्त क्रिया	,,
अप्रतिसाराख्य अंजन	,,
तिमिर नाशक गोली	,,
तिमिर नाशक योग	,,
दृष्टिरोग नाशक चूर्ण	७९२
दृष्टि बल कारक नस्य	,,
नेत्र रोग में स्नेहादि	,,
वृथक चिकित्सा का उपदेश	,,
वातज तिमिर का चिकित्सा	,,
ऊर्ध्व जत्रु नाशक नस्य	,,
अन्य प्रयोग	७९३
अंजन में व्याघ्र की वसा	,,
तिमिर नाशक प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
तर्पण प्रयोग	७९३
तर्पण में घृत को श्रेष्ठता	,,
अन्य तर्पण	,,
अन्य प्रयोग	,,
पुटपाक विधि	७९४
वातज तिमिर में अनुवासनादि	,,
पैत्तज्ञा तिमिर की चिकित्सा	,,
उक्त रोग में विरेचन	,,
नेत्र रोग में परिषेकादि	,,
सारिवादि वर्ती	,,
अन्य अंजन	,,
पक्वघृत की नस्य	,,
कफज तिमिर की चिकित्सा	,,
तैल की नस्य	,,
कोकिला वर्ती	७९५
तिमिर शुक्र नाशनी वर्त्ती	,,
रक्तज तिमिर की औषध	,,
रक्तज तिमिर का उपाय	,,
संसर्गज तिमिर की चिकित्सा	,,
नस्य और मुखलेप	,,
नस्य और शिरो वस्ति	,,
अन्य अंजन	७९६
सान्निपातज तिमिर में अंजन	,,
काच रोग में कर्त्तव्य	,,
अंजन का चयापान	,,
रंतोध का अंजन	,,
रंतोध नाशक वर्ती	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	७९७
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य उपाय	,,
धूमरादि रोग की चिकित्सा	,,
अन्य अञ्जन	,,
घृत की नस्य	,,

विषय	पृष्टांक
अन्य प्रयोग	७९७
अन्य प्रयोग	,,
उक्त रोग चिकित्सा	७९८
अन्य नेत्ररोगों में कर्त्तव्य	,,
नेत्ररक्षा कारक	,,
नेत्ररोग में त्रिफला	,,
नेत्ररोग में अहिताशन त्याग	,,
चतुर्दशो Sध्यायः ।	
कफजन्यलिंगनाश में कर्त्तव्य	७९९
वेधन का हेतु	,,
श्लेष्मादिकलिंगनाशक के लक्षण	,,
आर्वत की दृष्टि	,,
शर्करा दृष्टि	,,
राजीमती दृष्टि	,,
विषमा दृष्टि	,,
चंद्र की दृष्टि	,,
छत्र की दृष्टि	,,
अबिद्ध दृष्टि	,,
दक्षिणादि व्यध प्रकार	८००
सुविद्ध के लक्षण	,,
सात दिन तक वर्जित कर्म	८०१
शक्ति के अनुसार लंघनादि	,,
अति सूक्ष्म दर्शन निषेध	,,
मुख प्रलेप	,,
अन्य प्रयोग	,,
आश्चोतन विधि	८०२
अन्य प्रयोग	,,
सिरामोक्षादि	,,
विद्धनेत्र में वर्ति	,,
विद्धनेत्र में पिंडाञ्जन	,,
अन्य प्रयोग	,,
पञ्चदशो Sध्यायः ।	
वातज नेत्राभिष्यंद के लक्षण	८०३
अधिमंथ में कर्णनाड़ादि	,,
हताधि मंथ	,,
अन्यतोवातके लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
वात विपर्य्य के लक्षण	८०३
पित्ताभिष्यंद के लक्षण	,,
पित्ताधिमंथ के लक्षण	८०४
कफाभिष्यंद के लक्षण	,,
रक्ताधिमंथ के लक्षण	,,
अधिमंथ की विशेषता	,,
सूजनवाला नेत्रप्रयोग	,,
अक्षि पाकात्य रोग	८०५
अम्लोषित के लक्षण	,,
सर्व नेत्ररोगों की संख्या	,,
असाध्य रोग	,,
दृष्टिनाशक में काल परिमाण	,,
षोडशो ऽध्यायः ।	
प्रारूप में कर्त्तव्य	८०६
दाहशांति में विडालादि कारण	,,
चूर्ण व गुटन	,,
अन्य चूर्ण	,,
नेत्र में औषध धारण	,,
सर्व दोषों में परिषेक	८०७
नेत्रपीड़ा पर सहजने का रस	,,
नेत्ररोग पर सक्तु पिण्डिका	,,
वातज अभिष्यंद में आश्चोतन	,,
रक्त पित्ताभिष्यंद की औषध	,,
दाहादि नाशक रोग	,,
पित्तादिनाशक प्रयोग	,,
कफाभिष्यंद में कर्त्तव्य	८०८
त्रिदोषज अभिष्यंद में कर्त्तव्य	,,
अन्य प्रयोग	,,
लेपादि प्रयोग	,,
तिमिरादि में यथायोग चिकित्सा	,,
भ्रुवादि दाह	,,
वातादि रोग नाशिनी वर्ती	,,
पित्तरक्त नाशिनी वर्ति	,,
कफाक्षिरोगनाशिनी वर्ति	,,
पाशु पात नामक योग	८०९
शुष्काक्षिपाक की चिकित्सा	,,
उक्त रोगमें अंजन	,,

विषय	पृष्ठांक
श्रेष्ठाञ्जन	८०९
सिरा व्याधादि	,,
शूल नाशक परिषेक	,,
आश्चोतन में क्वाथ	,,
संधाव प्रयोग	८१०
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
दाह नाशक प्रयोग	,,
शोधनाशक प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
आश्चोतन	,,
घर्षादिनाशक गुटिका	,,
शोफनाशक अन्य प्रयोग	८११
अम्लोषित की चिकित्सा	,,
उत्क्लिष्टादिक १८ रोग	,,
पिल्लीभूत की सामान्य चिकित्सा	,,
पिल्लनाशक सेक	,,
पिल्ल में अंजन	८१२
अन्य अंजन	,,
अन्य प्रयोग	,,
पिल्ल शुक्रनाशक वर्ति	,,
अन्य प्रयोग	,,
पिल्लमें रोमवर्द्धक चूर्ण	,,
पिल्ल रोपण काजल	,,
अन्य कर्त्तव्यादि	,,
स्वस्थनेत्र में सेवनविधि	८१३
वेग संरोधादिक वर्जन	,,
पाद शिराओं कीनेत्रों संलग्नता	,,
उपानहादि सेवन	,,
सप्तदशोऽध्यायः ।	
कान में दर्द का हेतु	८१४
पित्त से दाहादि	,,
कफज कर्णरोग	,,
रक्तज कर्ण शूल	,,
सान्निपातज कर्ण शूल	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
कर्णनाद के लक्षण	८१४
बधिरत्व का कारण	,,
प्रतीनाह का लक्षण	८१५
कंडू शोफ रोगों के लक्षण	,,
पूति कर्ण के लक्षण	,,
कृमिकर्णकके लक्षण	,,
कर्ण विद्रधि	,,
कर्णाश और कर्णार्बुद	,,
कूचिकर्ण रोग	,,
कर्ण पिप्पली	,,
विदारिका के लक्षण	,,
पाली शोष	८१६
संग्रका के लक्षण	,,
परिपोट के लक्षण	,,
उत्पात के लक्षण	,,
गम्भिर के लक्षण	,,
दुः खवर्द्धन के लक्षण	,,
लेहा के लक्षण	,,
साध्यासाध्य विचार	,,
अष्टादशोऽध्यायः ।	
वातज कर्णशूल में कर्त्तव्य	८१७
कर्णशूल पर महा स्नेह वेल	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
पित्तज शूल में कर्त्तव्य	,,
शूल नाशक तेल	,,
कर्ण लेपन	,,
कफजकर्ण शूल की चिकित्सा	,,
कर्ण पूरण प्रयोग	,,
शूल नाशक रस	,,
बिजोरे का रस	,,
अन्य प्रयोग	,,
रक्तजकर्ण शूलकी चिकित्सा	८१९
पक्व कर्णशूलकी चिकित्सा	,,
पिचुवर्तिका प्रयोग	,,

विषय	पृष्टांक
शूलादिनाशक विधि	८१९
स्राव नाशक प्रयोग	,,
नाद बाधिर्य का उपाय	,,
अन्य तेल	,,
वेदनादि नाशक तेल	,,
अन्य तेल	८२०
अन्य प्रयोग	,,
कर्ण सुप्तीकी चिकित्सा	,,
अन्य उपाय	,,
वर्जित रोगी	,,
प्रतिनाह में कर्ण शोधन	,,
कटूष्ण लेपन	,,
पूति कर्णादका उपाय	,,
कर्ण विद्रधि का उपाय	८२१
अर्शार्बुदकी चिकित्सा	,,
कर्ण विदारिका का उपाय	,,
पाली पुष्टतेल	,,
अन्य प्रयोग	,,
पाली छेदन	,,
अन्य विधि	,,
उत्पात में शीतल लेप	,,
अभ्यंजनमें तैलादि	,,
उन्मथकी चिकित्सा	८२२
दुर्विद्ध में पाली सेचन	,,
परिलेहिका की चिकित्सा	,,
छिन्नकर्ण की चिकित्सा	,,
कर्ण रोगविधान	८२३
कर्ण बर्धन की रीति	,,
कर्ण वर्धन अभ्यंग	,,
नासा संधान	,,
छिन्नोष्ठ में कर्त्तव्य	,,
एकोन विंशोऽध्यायः ।	
दोषों को प्रति इषाय जनकत्व	८२४
वातज प्रति इषाय के लक्षण	,,
पित्तज प्रतिइषाय के लक्षण	,,
कफज प्रतिइषाय के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
त्रिदोषज प्रतिश्याय	८२४
दूषितरक्त से प्रतिश्याय	८२५
दुष्ट प्रतिश्याय के लक्षण	,,
पक्व प्रतिश्याय के लक्षण	,,
भृश क्षवके लक्षण	,,
नासिका शोष के लक्षण	,,
नासानाह के लक्षण	८२६
घ्राण पाक	,,
घ्राणस्राव रोग	,,
अर्पानस रोग का लक्षण	,,
दीप्ति के लक्षण	,,
पूंति नासा के लक्षण	,,
पूय रक्त के लक्षण	,,
पूट के लक्षण	,,
अर्शोऽर्बुद के लक्षण	८२७
उक्त रोगों के उपद्रव	,,
दुष्ट पीनस कोयापनत्व	,,
विंशोऽध्यायः ।	
पीनस में स्नेहनादि	,,
पीनसादि नाशक औषध	,,
धूमपान विधि	,,
स्नानादि निषेध	८२८
वातज प्रतिश्याय में कर्त्तव्य	,,
पित्तरक्तज प्रतिश्याय	,,
नस्यकर्म का प्रयोग	,,
कफज प्रतिश्याय में उपाय	,,
सान्निपातक प्रतिश्याय	,,
दुष्ट पीनस की चिकित्सा	,,
नासिका द्वारा धूमपान	,,
पुटपाक का उपाय	८२९
क्षवपुट नाशक प्रयोग	,,
नासा शोष का उपाय	,,
नासा पाकादि का उपाय	,,
पूति नासा का उपाय	,,
वमन प्रयोग	,,

विषय.	पृष्ठांक.
अन्य प्रयोग	८२९
नवीन पूयरक्त का उपाय	,,
अर्शोबुद चिकित्सा	,,
एक विंशोऽध्यायः ।	
मुख रोग का हेतु	८३०
खंडौष्ठ के लक्षण	,,
ओष्ठ की स्तब्धता	,,
पित्त दूषित ओष्ठ	,,
कफदूषित ओष्ठ	,,
सन्निपात दूषित ओष्ठ	,,
रक्तोपसृष्ट ओष्ठ के लक्षण	८३१
मांसोपसृष्ट ओष्ठ के लक्षण	,,
मेदो दुष्ट ओष्ठ के लक्षण	,,
गंडालजी के लक्षण	,,
शीतरोग	,,
दंत हर्ष के लक्षण	,,
दंत भेद के लक्षण	,,
चालाख्य रोग	,,
कराल रोग	८३२
अधिदंत के लक्षण	,,
पूतिगंध रोग के लक्षण	,,
कपालिका के लक्षण	,,
श्याव के लक्षण	,,
प्लुनका लक्षण	,,
शीतादं के लक्षण	,,
उपकुश के लक्षण	,,
दंत पुप्पुट के लक्षण	८३३
दंत विद्रधि के लक्षण	,,
सुषिर के लक्षण	,,
महा सुषिर रोग	,,
अधिमांसक रोग	,,
पांच प्रकार की मति	,,
वातादि दूषित जिह्वा के लक्षण	८३४
अलसके लक्षण	,,
अधि जिह्वा के लक्षण	,,
उप जिह्वा के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
तालु पिटका के लक्षण	८३४
गल शुंडिका के लक्षण	,,
तालु संहति	८३५
अर्बुद के लक्षण	,,
कच्छपके लक्षण	,,
पुप्पुट के लक्षण	,,
तालु पाक के लक्षण	,,
तालु शोष के लक्षण	,,
रोहिणी के लक्षण	,,
वात रोहिणी के लक्षण	,,
पित्त रोहिणी का कर्म	८३५
कफजरोहिणी का कर्म	,,
रक्तजरोहिणी का कर्म	,,
सन्निपातक रोहिणी का कर्म	,,
कंठशालूक रोग	८३६
वृन्दा रोग	,,
तुंडि केटिका रोग	,,
गलौघ का रोग	,,
गलय रोग	,,
गलायु का रोग	,,
शतघ्न रोग	,,
गल विद्रधि रोग	,,
गलार्बुद रोग	८३७
वातगलगंड रोग	,,
कफजगलगंड रोग	,,
मेदोगल गंड	,,
श्लेष्म गलगंड	,,
मुखपाक का लक्षण	,,
ऊर्ध्वगद	८३८
पित्तज मुखपाक के लक्षण	,,
रक्तजमुखपाक	,,
कफजमुखपाक	,,
कफज अर्बुद	,,
सन्निपातक मुखपाक	,,
मुखदुर्गंधि	,,
रोगों की संख्या	,,

विषय	पृष्ठांक.
असाध्य रोगों का वर्णन	८३८
द्वाविंशोऽध्यायः ।	
खंडोष्ठ चिकित्सा	८३९
अन्य उपाय	,,
नस्य प्रयोग	,,
वातज ओष्ठकोप का उपाय	,,
महास्नेह द्वारा प्रतिसारण	,,
वातोष्ठ में स्वेदन	,,
उत्करोग में नस्यादि	८४०
पित्तज ओष्ठकोप में रक्तस्राव	,,
उत्करोग में प्रतिसारण	,,
उत्करोग में अभ्यंजन	,,
अन्यविधि	,,
रक्तज ओष्ठ प्रकोप का उपाय	,,
मेदोज ओष्ठ कोप का उपाय	,,
जलार्बुद की चिकित्सा	,,
अलजी का उपाय	,,
शीतदंत की चिकित्सा	,,
दंतभेदादि का उपाय	,,
दांतों के हिलने का उपाय	८४१
अधिक दंतका उपाय	,,
शर्करा नाशक उपाय	,,
कपालिका का उपाय	,,
कृमिदंत का उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
गंडूष विधि	८४२
अन्य उपाय	,,
नस्य प्रयोग	,,
दांत उखाडने का उपाय	,,
शीतादं का उपाय	,,
उपकुश का उपाय	,,
दंतपुप्पुट का उपाय	,,
दंतविद्रधि का उपाय	,,
सौषिर का उपाय	,,
अधिमांस का उपाय	,,
विदर्भ का उपाय	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
दंतवाली का उपाय	८४३	कंठरोग नाशक गोली	,,
वातकंटक की चिकित्सा	८४४	सर्व रोग नाशक तैल	८४९
पित्त जिह्वा का उपाय	,,	मुख का उद्वर्तन	,,
कफज जिह्वा कंटक	,,	अन्य गुटका	,,
नवीन जिव्हालसका उपाय	,,	अन्य तैल	८५०
अधि जिह्वा का उपाय	,,	अन्य प्रयोग	,,
उप जिह्वा का उपाय	,,	मुख नाशक अन्यप्रयोग	,,
धुंडिका का उपाय	,,	उक्त रोगों पर चूर्ण	,,
वृद्धगल धुंडिका का उपाय	,,	कालक चूर्ण	८५१
सम्यक छिन्न में कर्त्तव्य	८४५	पीतक चूर्ण	,,
पुप्पादि का उपाय	,,	गल रोग नाशनी गुटिका	,,
अपक्व तालु पाक की चिकित्सा	,,	हरीत की सेवन	,,
पक्व तालु पाक का उपाय	,,	मुखपाक नाशक क्वाथ	,,
तालु शोष में कर्त्तव्य	,,	मुख रोग नाशक कषाय	,,
कंठरोग में कर्त्तव्य	,,	मुखपाक नाशक प्रयोग	८५२
कंठरोग में प्रतिसारण	,,	अन्य प्रयोग	,,
उक्त रोग पर लेप	,,	दंत दृढी करण गंडूष	,,
वातज रोहिणी का उपाय	८४६	मुखरोग में रक्तस्राव	,,
पित्तजरोहिणी की चिकित्सा	,,	उक्त रोगों में संशोधन	,,
रक्तज रोहिणी का उपाय	,,	मुखरोगों में पथ्य	,,
कफज रोहिणी का उपाय	,,	मुखरोग के उपाय में शीघ्रता	,,
वृन्दादि की चिकित्सा	,,	त्रयो विंशोऽध्यायः।	
विद्रधि की उपाय	,,	शिरो रोगं का कारण	८५३
वातज गलगंड की चिकित्सा	,,	वातज शिरो रोग	,,
गलगंड में तैल पान	८४७	अद्धा भेदक के लक्षण	,,
कफज गलगंड का उपाय	,,	कफज शिरोऽभिताप	,,
उक्तरोग में क्षार पानादि	,,	रक्तज शिरोभिताप	८५४
मेदोभव गलगंड का उपाय	,,	सन्निपातक शिरो भिताप	,,
अशान्ति में कर्त्तव्य	,,	सिरकंप के लक्षण	,,
मुखपाक का उपाय	,,	पित्तप्रधान दोषों के रोग	,,
वातज मुखपाक का उपाय	,,	सूर्यावर्त के लक्षण	,,
रक्तज और कफज मुखपाक	८४८	कमाल गत नेत्ररोग	८५५
पिटिकाओं का विलेखन	,,	उपशीर्षिक रोग	,,
सन्निपातक मुखपाक	,,	पिटिकादि के लक्षण	,,
नवीन अर्बुद का उपाय	,,	दारुणक के लक्षण	,,
पूति मुख का उपाय	,,	इन्द्रलुप्त के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक.
खलित के लक्षण	८५५
वातज खलित	,,
पलितका कारण	८५६
पलित के लक्षण	,,
शिरो रोग पलित	,,
असाध्य खलितादि	,,
पलितादि में रसायन	,,
चतुर्विंशोऽध्यायः ।	
वातजशिरोभि तापकी चिकित्सा	,,
अन्य उपाय	,,
शिरो रोग में नस्य	८५७
उक्त रोगमें घृतपान	,,
अन्य नस्य	,,
रक्त पित्तज शिरोरोग	,,
अर्द्धव भेदक का उपाय	,,
उक्तरोग में नस्यादि	,,
सूर्यावर्तकी चिकित्सा	८५८
पित्तज शिरोभि तापका उपाय	,,
रक्तज शिरो रोगका उपाय	,,
कफज शिरो रोगकी चिकित्सा	,,
कृमि शिरोरोगका उपाय	,,
नस्य विधि	,,
कृमि नाशक योजना	,,
नस्य द्रव्यों का धूआं	,,
रक्त मोक्षण का निषेध	८५९
कंपकी चिकित्सा	,,
पित्तज शिरोभितापका उपाय	,,
आमादि का उपाय	,,
अरुंषिका का उपाय	,,
अन्य प्रयोग	,,
उक्त रोग में तैल मर्दन	,,
उक्त रोगमें वमनादि	,,
दारुणाक का उपाय	,,
इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा	८६०
अन्य औषध	,,

विषय.	पृष्ठांक.
श्वेत केशों की चिकित्सा	८६०
जल सेकका निषेध	,,
केश वर्धन प्रयोग	,,
अन्य उपाय	,,
पलित नाशक नस्य	८६१
अन्य प्रयोग	,,
अन्य लेप	,,
अन्य प्रयोग	,,
केश वर्धन प्रयोग	,,
पलित में चूर्णादिक	,,
अन्य प्रयोग	,,
शिरारोग नाशक तैल	,,
अन्य नस्य	८६२
मायूर घृत	,,
महा मायूर घृत	,,
अन्य प्रयोग	८६३
रोगोंकी संख्या	,,
उक्त रोगकी चिकित्सा में शीघ्रता	,,
वैद्य को उपदेश	,,
पंचविंशोऽध्यायः ।	
व्रणको द्विविध त्व	,,
दुष्ट व्रणकी आकृति	,,
दुष्टव्रण के भेद	८६४
वातज व्रणके लक्षण	,,
पित्तज व्रणके लक्षण	,,
कफज व्रण के लक्षण	,,
रक्तज व्रणके लक्षण	,,
संसर्ग व्रण के लक्षण	८६५
शुद्ध व्रणके लक्षण	,,
व्रणको दुस्साध्यत्व	,,
सुसाध्य के लक्षण	,,
कष्टसाध्य घाव	,,
अत्यदुस्साध्य व्रण	,,
असाध्य व्रण	,,
साध्य व्रण को असाध्यता	,,
घाव भरने के लक्षण	८६६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
घाव में शोधन	८६६
शोफावस्था में शीतोपचार	,,
सूजन और घाव में रक्त हरण	,,
स्राव के पीछे लेपादि	,,
शोफनाशक प्रदेह	,,
दाहादि नाशक लेप	८६७
मेद वेदना में स्वेदादि	,,
सूजन पर उपनाहादि	,,
उपनाहन में सत्तू का गोला	,,
सूजन में विदारण प्रयोग	,,
पक्व शोफ में विदारक द्रव्य	,,
पूय गर्भ सूजन का पीडन	,,
लेप विशेष	८६८
कलायादिक प्रपीडन	,,
अन्य प्रयोग	,,
व्रण में धोने में क्वाथ	,,
घाव के शुद्ध करने वाला लेप	,,
घाव के शोधन में वर्त्ती	,,
वातज व्रणों में धूपन	,,
पित्तादि व्रण में कर्त्तव्य	,,
गंभीर व्रण में उत्साहनादि	,,
अन्य अवसादन	८६९
उत्सन्न व्रणों का शोधन	,,
घाव में अग्निकर्म	,,
घाव को पुराने वाले द्रव्य	,,
घाव तिलका कल्क	,,
तिलकी श्रेष्ठता	,,
जौ का कल्क	८७०
घाव में घृत का प्रयोग	,,
रोपण तैल	,,
घाव में चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
त्वचा को शुद्ध करनेवाला लेप	,,
सर्वण कारक लेप	,,
रोमोद्भव लेप	,,
घाव में पथ्य	,,

विषय.	पृष्ठांक.
वाताधिक्य में वात नाशक प्रयोग	८७१
व्रण में यथायोग्य औषध	,,
घृत का प्रयोग	,,
षडविंशोऽध्यायः ।	
व्रण जुष्ट आठ प्रकार के अंग	,,
आठों के लक्षण	,,
सद्योव्रण में सेचन	८७२
घाव की गर्मी पर लेप	,,
आपंत व्रण की चिकित्सा	,,
संसरभ व्रण का शोधन	,,
घृष्टादि की चिकित्सा	,,
विक्षत में स्नेहपानादि	,,
सात दिन के पीछे का विधान	,,
घृष्ट व्रण में चूर्ण	८७३
अवकृत्त की चिकित्सा	,,
अविलंबित का उपाय	,,
स्फुटित नेत्र में कर्त्तव्य	,,
नेत्र रोग पर घृत	,,
नेत्र का अन्य प्रयोग	,,
कान में सीमन	,,
छिन्नकृ कटिका में सीमन	,,
उक्त रोग में घृत परिषेक	८७४
हाथमें सीवनादि	,,
विलंबि मुष्कस्य सीवनादि	,,
उक्त रोग में तेल	,,
छिन्नशाखा का दग्ध करना	,,
सिर में वर्ति प्रयोग	,,
शल्य निकलने पर स्नेह वस्ति	८७५
गहरे घावों का उपाय	,,
भिन्न कोष्ट में उपाय	,,
आमाशयस्थ रुधिर में कर्त्तव्य	,,
पक्वाशयस्थ रुधिर	,,
अभिन्नाशय का रुधिर से भरना	,,
अंत र्लोहितादि का वर्णन	,,
आमाशयस्थरक्त में वमनादि	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
अन्य विधि	८७६
रक्तपान विधि	,,
कोष्ठ भेदन में दो विधि	,,
भिन्न कोष्ठ में जीवन के लक्षण	,,
अंत्र प्रवेश में मत	,,
अंत्र के भीतर प्रवेश करने का विधि	,,
अंत्र व्रण सीवन	,,
अन्य उपाय	,,
मेदोवर्ति के निकलने मे कर्त्तव्य	८७७
घाव में रोपण तैल	,,
गूढ प्रहार में कर्त्तव्य	,,
तैल को द्रोणी में निवास	,,

सप्तविंशोऽध्यायः ।

भंग के दो भेद	८७८
दुःसाध्यभंग	,,
अन्य वर्जित अस्थि	,,
अन्य वर्जित अस्थिभंग	,,
दुर्न्यास में वर्जन	८७९
अन्य दुःसाध्य	,,
भंग में चिकित्सा की रीति	,,
मध्यम प्रकार के बंधन की रीति	,,
शिथिल और गाढ बंधन	,,
ऋतु विशेष में मोचन काल	,,
संधि पर परिषेक	८८०
चक्र तैक पर प्रयोग	,,
शीतल परिषेक	,,
गृष्टि क्षीर पान	,,
सव्रण भग्नकी चिकित्सा	,,
व्रण का संधान	,,
व्रण पर अवचूर्णन	,,
साध्या साध्य घाव	,,
संधिकी स्थरता का काल	,,
कस्यादि भग्न में कर्तव्य	८८१
पट्टी खोलने की विधि	,,
विश्लिष्ट संधि में स्नेहन	,,

विषय.	पृष्ठांक.
असंधि भग्न में कर्त्तव्य	८८१
भग्न के न पकने का उपाय	,,
भग्न में स्नेह प्रयोग	,,
भग्न में मांसादि द्वारा उपचार	,,
भग्न में निषिद्ध द्रव्य	८८२
वात पित्तज दोषों पर गंधतैल	,,

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

भगंदर के लक्षण	८८३
भगंदर की क्रिया	,,
भगंदर के भेद	,,
पिटिका और भगंदर का अन्तर	,,
भगंदर जनक पिटका	,,
वातज पिटिका के लक्षण	,,
पित्तज पिटिकाके लक्षण	,,
कफज पिटिकाके लक्षण	८८४
वात पित्तज पिटिका	,,
वात कफज पिटिका	,,
त्रिदोषज पिटिका	,,
उक्त पिटिकाओं में प्रमाद का फल	,,
उष्ट्रग्रीव भगंदर	,,
परिस्रावी भगंदर	,,
परिक्षेपी भगंदर	,,
ऋजु संज्ञक भगंदर	,,
अर्शो भगंदर	८८५
शंबुकावर्त भगंदर	,,
उन्मार्गी भगंदर	,,
भगंदर में वेदनादि	,,
भगंदर का साध्या साध्य विचार	,,
पिटकाके न पकने का यत्न	,,
भगंदर का अवलोकन	,,
अंतर मुखादि में उपाय	८८६
शत पोनक भगंदर का यत्न	,,
परिक्षेपी का उपाय	,,
अर्शोभगंदर की चिकित्सा	,,
बहुछिद्र भगंदर	,,
गोतीर्थादि के लक्षण	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
भगंदर में अग्निदाह	८८६
भगंदर में कोष्ठ की शुद्धि	,,
घाव पर लेप	८८७
अभ्यंगार्थ तेल	,,
अन्य तेल	,,
भगंदर पर लेह	,,
पिटिकादि पर औषध	,,
स्वायं भुवाख्य गूगल	,,
वातरोग नाशक औषध	८८८
अन्य प्रयोग	,,
अन्य भगंदरों की यथायोग्य चिकित्सा	,,
रूढ भगंदर में वर्जित कर्म	,,
एकोनत्रिंशोऽध्यायः।	
ग्रंथि की उत्पत्ति	,,
ग्रंथि के नौ भेद	८८९
वातज ग्रंथि	,,
पित्तज ग्रंथि	,,
कफज ग्रंथि	,,
दोष दुष्टरक्त की ग्रंथि	,,
दूषित मांस की ग्रंथि	,,
मेदो ग्रंथि के लक्षण	,,
अस्थि ग्रंथि के लक्षण	८९०
सिरा ग्रंथि के लक्षण	,,
व्रण ग्रंथि	,,
साध्या साध्य ग्रंथियों का वर्णन	,,
अर्बुद के भेदादि	,,
रक्तार्बुद के लक्षण	,,
श्लीपद के लक्षण	८९१
वातज श्लीपद	,,
पित्तज और कफज श्लीपद	,,
श्लीपद का साध्या साध्य बिचार	,,
हाथ में श्लीपद	,,
गंडमाला की उत्पत्ति	,,
असाध्य गंडमाला	८९२
नाड़ी विज्ञान	,,
नाड़ी के भेद	,,

विषय.	पृष्ठांक.
वातज नाड़ी के लक्षण	८९२
पित्तज नाड़ी के लक्षण	,,
कफज नाड़ी के लक्षण	,,
त्रिदोषज नाड़ी	,,
शल्यज नाड़ी	,,
त्रिंशोऽध्यायः।	
अपक्व ग्रंथि की चिकित्सा	८९३
ग्रंथि पर स्नेहादि	,,
ग्रंथि का स्वेदादि	,,
अपक्व ग्रंथि का छेदनादि	,,
ग्रंथि में अग्निकर्म	,,
मारुज ग्रंथि	,,
मेदोज ग्रंथि का उपाय	,,
सिरा ग्रंथि की चिकित्सा	,,
अर्बुद की चिकित्सा	८९४
वातज श्लीपद का उपाय	,,
पित्तश्लीपद की चिकित्सा	,,
कफजश्लीपद की चिकित्सा	,,
अपची की चिकित्सा	,,
अपक्व ग्रंथियों पर लेप	,,
लेप की विधि	८९५
पाकोन्मुख ग्रंथि का उपाय	,,
गंड माला की चिकित्सा	,,
अपची पर तेल	,,
कुष्ठादिनाशक तैल	,,
अपची नाशक अन्यतैल	,,
अन्य प्रयोग	८९६
अन्य तैल	,,
तेल का लेप	,,
दाहविधि	,,
निमि मुनि का मत	,,
सुश्रुत का मत	,,
अन्य आचार्यों का मत	,,
वात नाड़ी में शस्त्र प्रयोग	८९७
पित्तज नाड़ी	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय.	पृष्ठांक.
कफज नाड़ी	८९७
शल्यजा नाड़ी	,,
छेदना योग्य नाड़ी का दारण	,,
नाड़ी का उपाय	,,
नाड़ी व्रण पर लेप	,,
नाड़ी व्रण पर कल्क	,,
गतिनाशक उपाय	,,
एक त्रिंशोऽध्यायः ।	
अज गल्लिका के लक्षण	८९८
यव प्रख्या	,,
कच्छपी पिटिका	,,
पनसिका के लक्षण	,,
पाषाण गर्दभ	,,
मुख दूषिका के लक्षण	,,
पद्म कंटका के लक्षण	८९९
विवृता पिटिका	,,
मसूरिका के लक्षण	,,
विस्फोटा के लक्षण	,,
विद्रधि के लक्षण	,,
गर्दभी पिटिका	,,
गर्दभीकक्षा	,,
पित्तज कक्षा	,,
गंधनामा पिटिका	,,
राजिका के लक्षण	,,
जालगर्दभ पिटिका	९००
अग्निरोहिणी के लक्षण	,,
हरि वेल्लिका	,,
विदारी पिटिका	,,
शर्कराबुर्द के लक्षण	,,
वल्मीक पिटिका	,,
कदर के लक्षण	,,
रूढ़ गुद के लक्षण	९०१
अक्षतरोगों के लक्षण	,,
कुनख के लक्षण	,,
अलस के लक्षण	,,
तिलकालक के लक्षण	,,
माष के लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठांक.
चर्म कील के लक्षण	९०१
जतु मणि के लक्षण	,,
लांछन के लक्षण	,,
व्यंग और नीलिका	,,
वातादि दोष जन्य व्यंग के लक्षण	९०२
प्रसुप्ति के लक्षण	,,
कोढ के लक्षण	,,
छत्तीस क्षुद्ररोग	,,
द्वात्रिंशोऽध्यायः ।	
अजगल्लिका का उपाय	,,
यव प्रख्या का उपाय	,,
पाषण गर्दभ का उपाय	९०३
मुख दूषिका की चिकित्सा	,,
पद्मकंटक में उपाय	,,
विवृतादि की चिकित्सा	,,
गालक गर्दभ में कर्त्तव्य	,,
विदारिका की चिकित्सा	,,
शर्कराबुर्द की चिकित्सा	,,
वल्मीक को असाध्यता	,,
अन्य वल्मीक रोग पर लेप	,,
पक्ववल्मीक का उपाय	९०४
कदर का उत्कर्तनादि	,,
क्षिप्र की चिकित्सा	,,
दुष्टकुनख में कर्त्तव्य	,,
अलसक की चिकित्सा	,,
तिलकालकादि की चिकित्सा	,,
चर्मकील और जतुमणि	,,
लांछनादि का उपाय	,,
व्यंगादि में लेपन	,,
व्यंगनाशक लेप	,,
अन्य लेप	९०५
अन्य लेप	,,
सर्वण कारक लेप	,,
उबटना	,,
अभ्यंग	,,
अन्य अभ्यंग	,,
नीलिकादि नाशक नस्य	९०६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
व्यंगादि नाशक औषध	९०६
नस्य प्रयोग	,,
प्रसुप्ति की चिकित्सा	,,
उत्कोठ की चिकित्सा	,,
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।	
उपदंशादि २३ रोग	९०७
उपदंश के भेद	,,
वातज उपदंश के लक्षण	,,
पित्तज उपदंश	,,
कफज उपदंश	,,
रक्तजउपदंश	,,
त्रिदोषज उपदंश	,,
उपदंश में साध्यासाध्यता	९०८
मांस कीलक का वर्णन	,,
सर्षपिका पिटिका	,,
अवमंथ के लक्षण	,,
कुंभी का पिटिका	,,
अलजी के लक्षण	,,
उत्तम पिटिका	,,
पुष्करिका के लक्षण	,,
संव्यूढ पिटिका	९०९
मृदित के लक्षण	,,
अष्ठीलिका के लक्षण	,,
निवृतसंज्ञक रोग	,,
अक्षपाटिका	,,
निरुद्धमणि रोग	,,
ग्रंथितास्य रोग	,,
स्पर्शहानि रोग	,,
शतपोनक के लक्षण	,,
त्वक्पाक रोग	,,
मांसपाक रोग	,,
रक्तार्बुद	९१०
मांसार्बुद के लक्षण	,,
तिलकालक के लक्षण	,,
षर्जिहरोग	,,

विषय	पृष्ठांक,
योनिके २० भेद	९१०
योनिसंबंधीवात की व्यापत	,,
अतिचारण योनि	९११
प्राक्करण	,,
उदावृत्ता व्यापत्	,,
जातघ्नी व्यापत	,,
अंतर्मुखी योनि	,,
सूचीमुखी योनि	,,
शुष्कव्यापत्	,,
वामनी के लक्षण	,,
षंडसंज्ञक योनि	९१२
महायोनि	,,
पैत्तिकी व्यापत्	,,
रक्तयोनि	,,
श्लेष्मकी व्यापत्	,,
लोहितक्षया	,,
परिप्लुता व्यापत्	,,
उपप्लुता योनि	९१३
विप्लुता योनि	,,
कर्णिनी के लक्षण	,,
सन्निपात का व्यापत्	,,
गर्भके ग्रहण करने का कारण	,,
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।	
नवीन उपदंश की चिकित्सा	,,
धौने का क्वाथ	९१४
उपदंश पर लेप	,,
उपदंश पर रोपण	,,
प्रतिदोष चिकित्सा	,,
पाक के अभाव में अलियरन	,,
छिन्नदग्ध में उपदंशवत क्रिया	,,
अवमंथ की चिकित्सा	,,
कुंभीका की चिकित्सा	,,
अलजी की चिकित्सा	९१५
उत्तमा की चिकित्सा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
पुष्कर व्यूढकी चिकित्सा	९१५
लकपाक की चिकित्सा	,,
मृदित की चिकित्सा	,,
अष्ठीला की चिकित्सा	,,
निर्वृतरोग की चिकित्सा	,,
अवपाटिका में कर्त्तव्य	,,
निरुद्धमार्ग की चिकित्सा	,,
ग्रंथित की चिकित्सा	९१६
शतपोनक का उपाय	,,
रक्तार्बुद का उपाय	,,
अवस्थानुसार उपचार	,,
योनिव्यापत् में चिकित्सा	,,
उक्त क्रिया में हेतु	,,
बलातैलादि का प्रयोग	,,
वमनादि का प्रयोग	९१७
घृतका प्रयोग	,,
अन्य औषध	,,
वृषकादि पान	,,
रास्नादि दुग्ध	,,
योनिमें परिषेक	,,
योनि में पिचु प्रयोग	,,
पित्तल योनियों का उपाय	९१८
योनिदोष पर अवलेह	,,
रोगनाशक घृत	,,
वातपित्त योनि रोग	,,
रक्तयोनि की चिकित्सा	,,
पुष्यानुग चूर्ण	९१९
कफदूषित योनि का उपाय	,,
योनिशूलनाशक तेल	,,
यवान्नादि प्रयोग	,,
विशदता कारक चूर्ण	९२०
दुर्गंधादि युक्त योनिका उपाय	,,
मृदुता कारक प्रयोग	,,
दुर्गंधित योनि में काढा	,,
कफ दुष्ट योनि में वस्ति	,,

विषय	पृष्टांक
सन्निपातज योनि रोग	९२०
शुद्धयोनि में गर्भाधान	,,
दुष्ट शुक्र की परीक्षा	,,
योनिशुक्र दोष पर घृत	,,
पंचत्रिंशोऽध्यायः ।	
विषकी उत्पत्ति	९२१
स्थावर विष का वर्णन	,,
जंगम विषका वर्णन	,,
विष और गर का अन्तर	,,
विषके गुण	९२२
विषको प्राणनाशकत्व	,,
प्राणनाशका हेतु	,,
प्रथम वेगके लक्षण	,,
दूसरा वेग	,,
तीसरा वेग	,,
चौथा वेग	,,
पंचम वेग	९२३
छटा वेग	,,
सातवां वेग	,,
प्रथम वेग की चिकित्सा	,,
द्वितीय वेग की चिकित्सा	,,
तीसरे वेग की चिकित्सा	,,
चौथा वेग	,,
पांचवां वेग	,,
छटा वेग	,,
सातवां वेग	,,
सर्व विषनाशक यवागू	,,
पेया का विधान	९२४
चन्द्रोदय औषध	,,
दूषी विष पीडित के लक्षण	,,
रसस्थ विषके लक्षण	९२५
दूषी विष पीडित के लक्षण	,,
दूषी विष पर अवलेह	,,
दूषी विष नाशक औषध	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
विष लिप्त शस्त्र से विद्ध के लक्षण	९२५
शल्याकर्षण में कर्त्तव्य	९२६
विष लिप्त शस्त्रविद्ध की चिकित्सा	,,
दुर्गश्रित व्रण का उपाय	,,
विषदेने वालों का वर्णन	,,
गरके लक्षण	,,
गर पीडित के लक्षण	,,
गर पीडित का नाश	९२७
गर पीडित का कृत्य	,,
गर विष पर अवलेह	,,
गरो पहतामि का उपाय	,,
विष जन्य तृषा का उपाय	,,
सौमें एक को जीवन	,,
क्षुधादि द्वारा विषकी वृद्धि	९२८
शरद में विष की मंद वीर्यता	,,
वैद्य को उपदेश	,,
कफज विषमें कर्त्तव्य	,,
पैत्तिक विष में कर्त्तव्य	,,
वातिक विष का उपाय	,,
विष में घृत को उत्तमता	९२९
विषको साध्यासाध्यत्व	,,

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सर्पों के तीन भेद	,,
दर्वीकरादि के विष के गुण	,,
विषोल्बणता का काल	,,
दर्वी कर सर्पों के लक्षण	,,
मंडली के लक्षण	,,
राजिमान के लक्षण	९३०
गोधर के लक्षण	,,
व्यंतरा के लक्षण	,,
सर्प के काटने का कारण	,,
कारणानुसार चिकित्सा	,,
व्यंतर सर्पका मार्ग में बैठना	,,
दष्टका साध्यासाध्य विचार	,,

रक्त में मिलकर विषका बढना	९३१
सर्पागाभिहत के लक्षण	,,
शंकी विषके लक्षण	,,
सविषनिर्विष दंश के लक्षण	,,
दर्वीकरादि का प्रथम वेग	,,
दर्वीकर के द्वितीय वेग	,,
मण्डलिदष्ट के वेगों का लक्षण	९३२
राजिमान् के वेगों के लक्षण	,,
वेगों का साध्या साध्यत्व	,,
जल के सर्पों का वर्णन	,,
त्याज्य विष दष्ट के लक्षण	,,
अन्य लक्षण	९३३
अन्य लक्षण	,,
अन्य लक्षण	,,
विषकी शांति में शीघ्रता	,,
विषके जलने का काल	,,
दंश का उत्कर्तन	,,
दष्टपुरुष का कर्तव्य	९३४
दंशस्थान पर बंधन	,,
दंशका उद्धरण	,,
दंश दहनादि	,,
अगद से बारबार लेपन	,,
विषकैलने पर सिराव्यध	,,
सविषरुधिर के लक्षण	९३५
अदष्यसिराओं में रक्तमोक्षण	,,
स्रुतशेषरक्त का स्तंभन	,,
अस्रकक्षादि रक्तमें मूर्च्छा	,,
स्कन्नरुधिर में शांति	,,
विषशांतहोने पर घृतपान	,,
विषार्त को वमन	,,
सुजंग दोषानुसार क्रिया	,,
दर्वीकरदष्ट में पानादि	९३६
कालेसांप की दवा	,,
राजिमान् सर्पोंकी दवा	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक;
मण्डलीसर्पों की औषध	९३६
हिमवान औषध	,,
मंडलीदष्ट पर पान	,,
गौनसविष की औषध	,,
राजीमान् सर्पोंकी दवा	९३७
कांडचित्रा का दंश	,,
व्यंतरदष्ट की चिकित्सा	,,
भुजंगदष्ट पर पानादि	,,
तक्षकदष्ट पर पान	,,
दर्वीकरके प्रथमवेग की चिकित्सा	,,
द्वितीयवेग की चिकित्सा	,,
तृतीयवेग की चिकित्सा	,,
मंडलीसर्पके वेगों का उपाय	९३८
राजिमान् के वेगोंमें कर्त्तव्य	,,
अनुक्तवेगों में कर्त्तव्य	,,
गर्भिण्यादि की चिकित्सा	,,
सर्पविषनाशक पान	,,
आंखों का अंजन	,,
प्रलेपादि	,,
विषापगम में कर्तव्य	९३९
शंकाविष में कर्तव्य	,,
कर्कोतनादि धारण	,,
लताादि धारण	,,

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

चार प्रकार के कीट	,,
वातजकीट के लक्षण	९४०
पैत्तिककीटदष्ट के लक्षण	,,
कफजकीट के दंशके लक्षण	,,
सान्निपातिककीटों का लक्षण	,,
कीटदष्टके वेगोंका वर्णन	,,
सर्वदंशों में कर्णिकादि	,,
वृश्चिकदंश के लक्षण	,,
तीनप्रकार के विच्छू	,,
षड्विध विच्छूओं के लक्षण	,,

विषय	पृष्टांक,
मध्यमविष विच्छुओं के लक्षण	९४१
महाविषविच्छुओं के लक्षण	,,
महाविषदष्ट के लक्षण	,,
उष्णधूमक विच्छू	,,
कीडों को दोष परता	,,
दोषानुसार चिकित्सा	,,
वातिकविषं के लक्षण	,,
पित्तोल्वणविष के लक्षण	९४२
कफाधिक्यविष के लक्षण	,,
वातिकविष का उपाय	,,
पैत्तिकविष में उपाय	,,
श्लैष्मिकविष में उपाय	,,
त्रिविधकीटों की चिकित्सा	,,
विषमधूपन	,,
विषनाशक विधि	९४२
कीटवृश्चिक का उपाय	,,
कीटविष में पान	,,
कीट विषनाशक लेप	९४३
अन्य लेप	,,
विष नाशक औषध पान	,,
वृश्चिक दंश पर चक्र तैल	,,
घृत परिषेक	,,
दंश पर उपनाह	,,
चूर्ण द्वारा प्रतिसारण	,,
दंश पर लेपादि	,,
वृश्चिक विषनाशक औषध	,,
अन्य गोली	९४४
दंश लेपन	,,
दारुण पीडा पर लेप	,,
उग्र विष पर घृत पान	,,
बिछू के विष पर लेप	,,
उच्चाटिंग की चिकित्सा	,,
अन्य उपाय	,,
अन्य प्रयोग	९४५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्ठांक
विषसंक्रांति कृत अगद	९४५
मकड़ियों की संख्या	,,
उक्त विषय में हेतु	,,
लूता विषका साध्यासाध्यत्व	,,
पैत्तिक दंश के लक्षण	,,
कफज दंश के लक्षण	,,
वातिक दंश के लक्षण	,,
दोषानुसार विभाग लक्षण	९४६
असाध्य के लक्षण	,,
असाध्य के तीन भेद	,,
मकडी के दंश के लक्षण	,,
मकडी के श्वास से विष	,,
मकड़ी के श्वास से विष वमन	,,
मकड़ी आदि के दंश स्थान	,,
मकड़ी के प्रथम दिनका लक्षण	९४७
दूसरे दिनका लक्षण	,,
चतुर्थ दिनका प्रकार	,,
पंचम दिन का प्रकार	,,
छटे सातवें दिनका प्रकार	,,
तीक्ष्ण विष के उक्त लक्षण	,,
विष शमन का काल	,,
मकड़ी के दंशोद्धरण	,,
दंश छेदन का निषेध	,,
दग्ध दंश पर लेप	९४८
रक्त हरणादि	,,
पद्मक नामक अगद	,,
चंपक नामक औषध	,,
अन्य प्रयोग	,,
मंदर और गंध मादन	,,
विष नाशक विशोधन	,,
कफ में वमन	,,
उक्त रोग में विरेचन	,,
दाद निवृति में कर्त्तव्य	९४९
अन्य प्रयोग	,,

विषय	पृष्ठांक
सैंधवादि प्रयोग	,,
कर्णिका पात में वृंहण	,,
लूता विष में स्नेहन	,,
लूता विष पर तीन प्रयोग	,,
लूता नाशक पानादि	९५०
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।	
चूहों के अठारह भेद	,,
चूहों के विष की प्राप्ति	,,
चूहे के विष में सर्वदेह का फैलना	,,
मूषक विष के असाध्य लक्षण	,,
आखु दूषित वर्ज्य के लक्षण	९५१
पावले कुत्ते के लक्षण	,,
पावले कुत्ते के काटने के लक्षण	,,
पावले शृगालादि	,,
सविष दंश के लक्षण	,,
रोगीका मरण	,,
त्रास संज्ञ दष्ट का निषेध	,,
आखु विष पर दाह	९५२
दग्ध देश का विस्राव	,,
चूहे का विषनाशक लेप	,,
दंश का धोना	,,
उक्त रोग में वमन	,,
वमनकारक चूर्ण	,,
अन्य चूर्ण	,,
उक्तरोग पर विरेचन	,,
उक्तरोग में अंजन	,,
उक्त रोग पर अवलेह	,,
पक्व घृत पान	९५३
अन्य क्वाथ	,,
उक्त रोग पर चूर्ण	,,
आखु विष नाशक कल्क	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य उपाय	,,
अन्त प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक
अन्य प्रयोग	९५३
अन्य प्रयोग	,,
चिकित्सा की विधि	,,
कुत्ते के काटने पर लेप	९५४
उक्त रोग पर विरेचन	,,
अन्य उपाय	,,
विष मालकै भेदक पान	,,
रोगी को स्नान	,,
चतुस्यदादिकों का दंश	,,
उक्त रोग पर लेप	,,

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

रसायन से दीर्घ जीवनादि	९५५
रसायन प्रयोग	,,
रसायन का निष्फल होना	,,
रसायन के दो प्रयोग	,,
रसायन में स्थान	,,
रसायनरूप में कर्त्तव्य	,,
विरेचन विधि	९५६
यावक प्रयोग	,,
रसायन प्रयोग	,,
ब्राह्म रसायन	,,
अन्यरसायन	९५७
अन्य रसायन	,,
च्यवन प्राश	९५८
त्रिफला रसायन	,,
अन्य रसायन	९५९
अन्य प्रयोग	,,
पंचार विद् रसायन	,,
अन्य प्रयोग	,,
वार्द्धक्य नाशक रसायन	९६०
अन्य अवलेह	,,
शक्ति वर्द्धक प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,

विषय	पृष्टांक
अन्य प्रयोग	९६१
अन्य प्रयोग	,,
चीते का प्रयोग	,,
चीते का प्रयोग	,,
अन्य अवलेह	,,
भल्लातक प्रयोग	,,
भल्लातक स्वरसप्रयोग	९६२
अमृतरस तुल्यपाक	,,
कुष्ठ नाशक तैल	९६३
अन्य भल्लातक प्रयोग	,,
अमृतकल्प भल्लातक	,,
भिलावे की प्रशंसा	,,
भल्लातक में वर्जित द्रव्य	,,
सर्व कुष्ठ नाशक तैल	९६४
अन्य प्रयोग	,,
द्विशतायुस्कर तेल	,,
सर्वकुष्ठ नाशक तेल	९६५
अन्य प्रयोग	,,
द्विशता युस्कर तेल	,,
त्रिशतायुस्कर तैल	९६५
पिप्पल प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
कासादि नाशक प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
शुंठी प्रयोग	,,
रसायन कोद्री गुण प्रकर्ष	९६६
बाकुची अवलेह	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
लहसन की विधि	,,
लहसन को श्रेष्टत्व	९६७
लहसन के सेवन का काल	,,
लहसन को प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
वेदना में स्वेदादि	९६७
शेपरस का पान	९६८
शीतल लेपादि	,,
लहसन की मात्रा का परिमाण	,,
लहसन पर पथ्य	,,
तृषा में मद्यादि सेवन	,,
लहसन के कल्क का सेवन	,,
लहसन के सेवन का अन्य प्रकार	,,
लहसन की उत्तमता	,,
लहसन को विषघ्नकत्व	९६९
लहसन के प्रयोग में विरेचन	,,
शिलाजीत का कल्क	,,
शिलाजीत के लक्षण	,,
उत्तम शिलाजीत के लक्षण	,,
शिलाजीत की भावना विधि	,,
भावना की विधि	,,
शिलाजीत का प्रयोग	९७०
शिलाजीत का विविध प्रयोग	,,
शिलाजीत को रसायनत्व	,,
शिलाजीत को सर्वरोग नाशकता	,,
कुटीप्रवेश विधि	,,
वातातप विधि	९७१
ठंडेजल का पीना	,,
हरीत का सेवन	,,
अन्य प्रयोग	,,
जरा विकार नाशक लेह	,,
तारुण्यादि कारक योग	,,
बलकारक अवलेह	,,
विडंग प्रयोग	९७२
अन्य प्रयोग	,,
जरानाशक प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
मूर्वादि प्रयोग	९७२
विकार नाशक घृत	,,
असगंध का प्रयोग	,,
काले तिलों का प्रयोग	९७३

विषय	पृष्टांक
बालों का काला करने वाला अवलेह	९१३
अन्य प्रयोग	,,
शिलाजतु प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
मंडक पर्णी प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	९७४
नरसिंह घृत	,,
अन्य प्रयोग	९१५
अन्य प्रयोग	,,
साध्यासाध्य रसायन	,,
भृष्ट रसायन में कर्त्तव्य	,,
रसायन रूप पुरुष	,,
रसायन सेवी के लक्षण	९७६
शास्त्रानुसारी रसायन	,,

चत्वारिंशोऽध्यायः ।

वाजी करण औषध का फल	,,
वाजीकरण का अर्थ	,,
ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता	,,
स्निग्ध को निरूहणादि	,,
व्यवायकाल	९७७
स्निग्ध को निरूहणादि	,,
अपत्यहीन की निंदा	,,
अपत्यलाभ का महत्व	,,
वाजीकरण के योग्य देह	,,
वाजीकरण प्रयोग	,,
शतावरी चूर्ण	९७८
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	९७९
अन्य चूर्ण	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय	पृष्टांक.
अन्य प्रयोग	९७९
दही की मलाई का प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	९८०
पौष्टिक प्रयोग	,,
संभोग विधि	,,
शब्दस्पर्शादि का सेवन	,,
शब्दादि युक्त स्त्री सेवन	,,
योग्य स्त्रीके लक्षण	,,
काम शास्त्रोक्त रतिचर्य्या	,,
स्त्रीकरण प्रयोग	९८१
[illegible]त्पादक प्रयोग	,,
आत्मरक्षण	,,
अग्निवेश का प्रश्न	९८२
प्रश्न का स्वरूपय	९८३
प्रश्न का उत्तर	,,
उक्त उत्तर में दृष्टांत	,,
उपायसाध्यों को सिद्धत्व	९८४
दैववैगुण्यसे सिद्धत्व न होना	,,
उक्तसिद्धांत का प्रतिपादन	,,
चिकित्सा तंत्रके फलत्व में हेतु	९८५
चिकित्सा में संशय त्याग	,,
शस्त्र का अकांड मृत्यु पाश छेदनत्व	,,
चिकित्सा शस्त्र को अमरत्व	,,
भिषक् पाश का त्याग	,,
सुवैद्यों की भद्रता	,,
चिकित्सा शास्त्र का मंत्र षत्प्रयोग	९८६
उक्त ग्रंथ का फल	,,
इस ग्रंथ को श्रेष्ठत्व	,,
उक्त कथन में हेतु	,,
आद्य ग्रंथों के पाठ से लाभ न होना	९८७
उक्त कथन में कारण	,,
उक्त कथन में अन्य युक्ति	,,
सुभाषित ग्रंथ का आदर	,,
संसार का मंगल कामना	,,

इतिश्री अष्टांगहृदयानुक्रमणिका समाप्ता ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

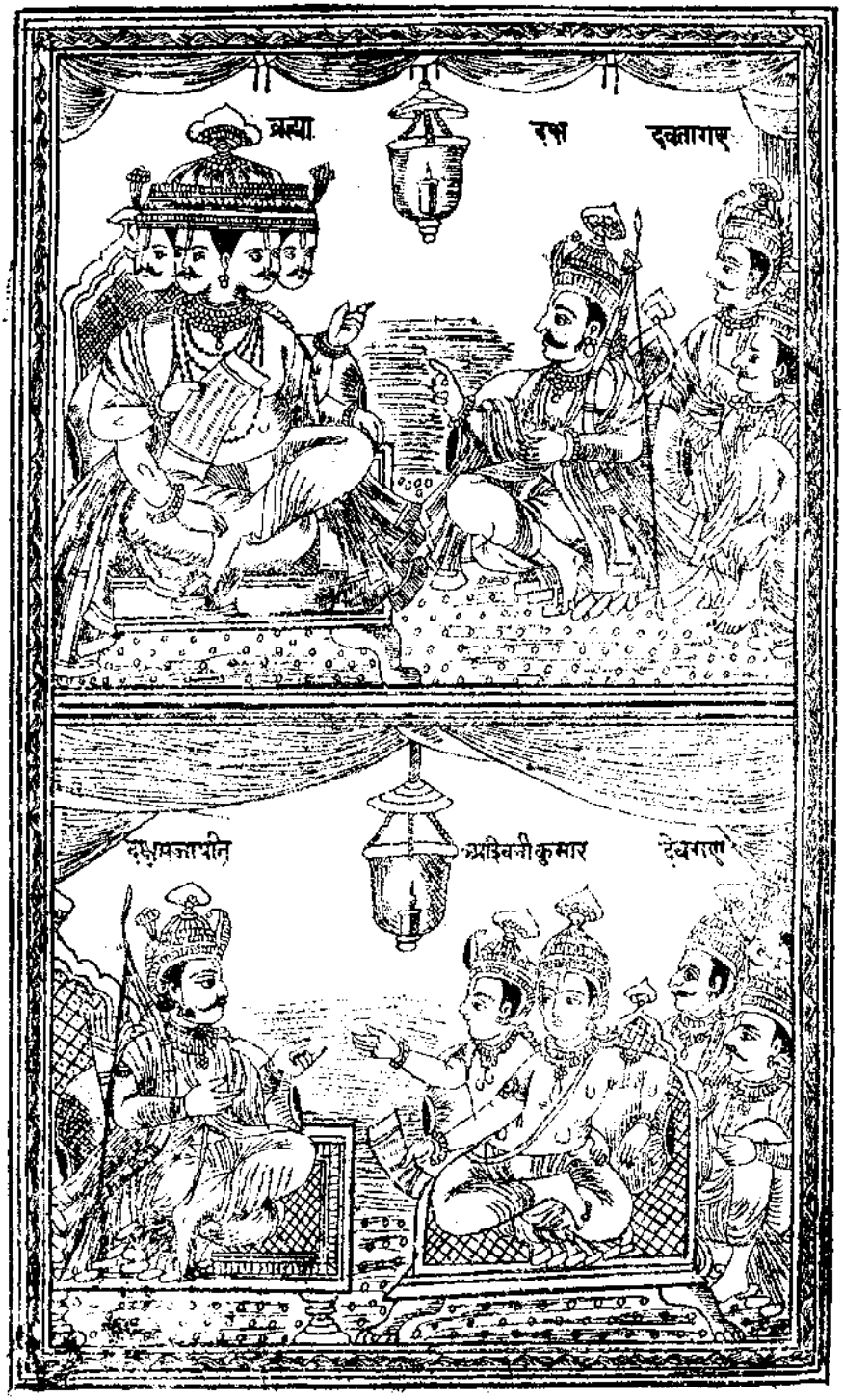

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

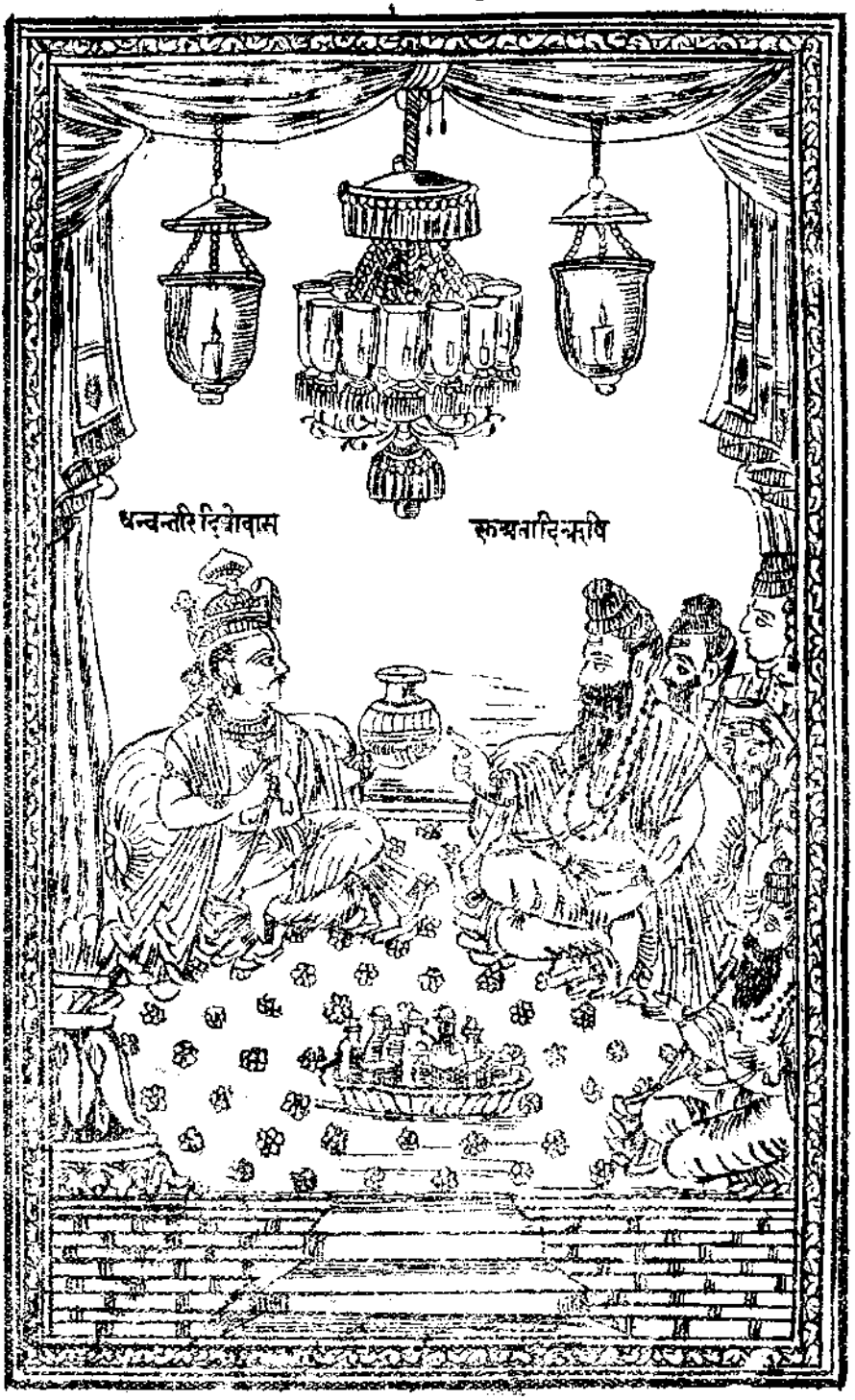

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिंहास्ययंत्र

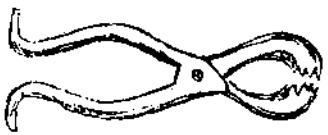

व्याघ्रमुखयंत्र

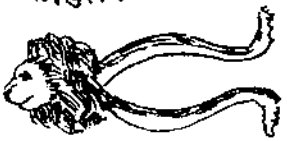

कंकास्ययंत्र

वृकास्ययंत्र

काकमुखयंत्र

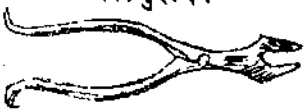

वृक्षास्ययंत्र

कुरास्ययंत्र

द्वीपिमुखयंत्र

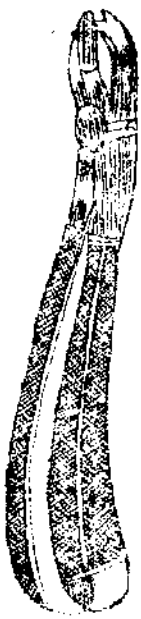

मार्जारमुखयंत्र

शूकरमुखयंत्र

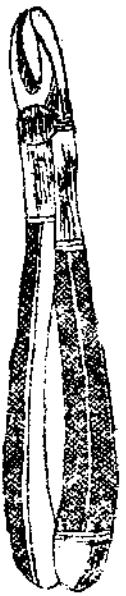

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एवोरुकयंत्र

मृगमुखयंत्र

नारसिंहमुखयंत्र

अजगरतोमुखयंत्र

बिल्वमुखयंत्र

मन्थिपुरिवयंत्र

अलुकास्यंत्र

दंतास्यंत्र

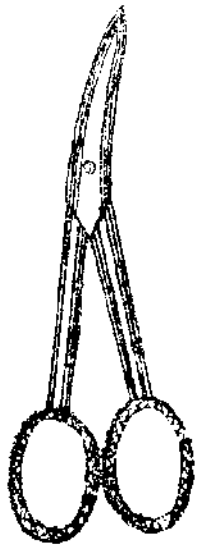

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

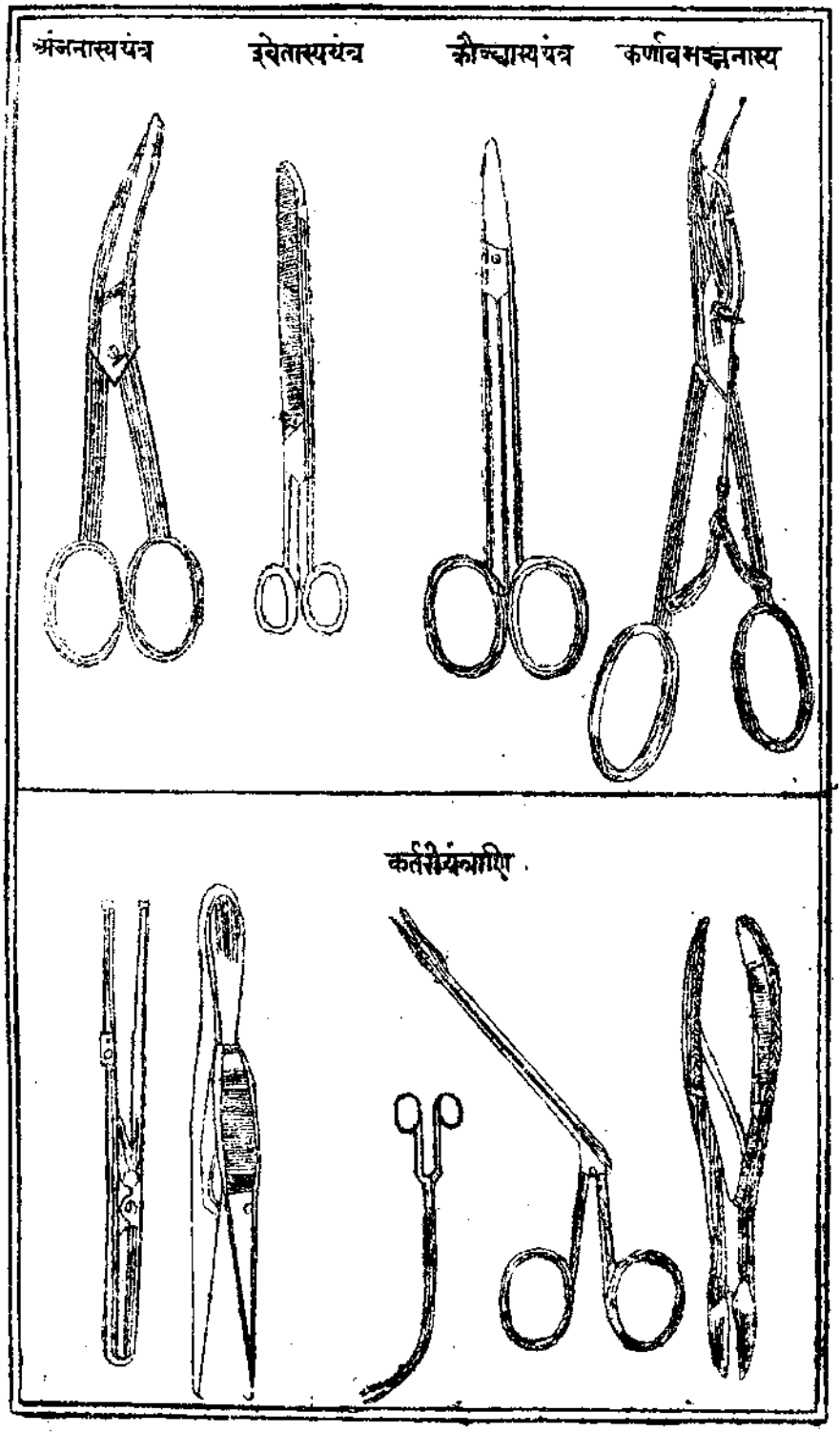

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भिन्न भिन्नस्थान के बन्धन

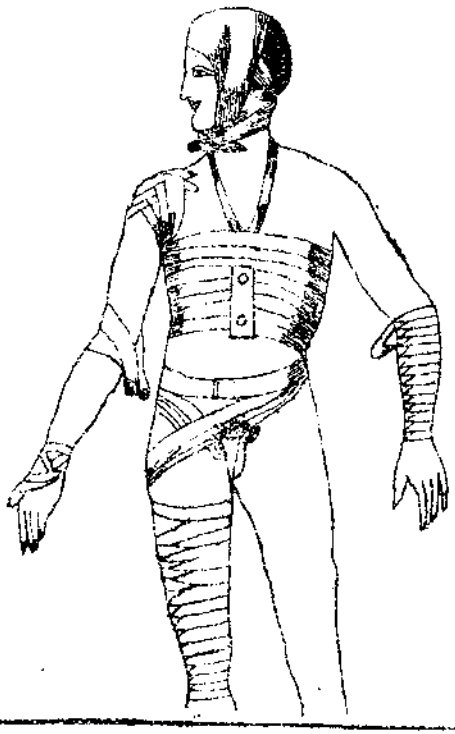

तिग्मोषेणं बन्धनसेलर बांधना.

द्विगुणं कोणबंधन.

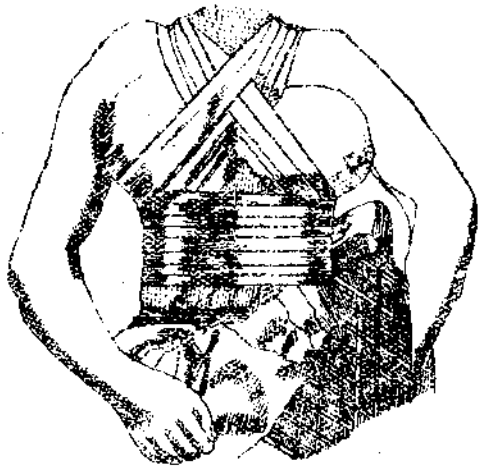

फेसटेल्ल बैन्डेज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कक्षाबन्धन

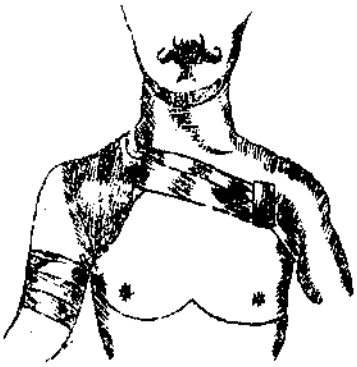

द्वितीयहस्तबन्धन

बहुबन्धनविधि

हस्तबन्धन

मणिबन्धबन्धनविधि

ग्रीवा के पश्चिम भागका बन्धन

कर्णीपबन्धन

नासिकाबन्धन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

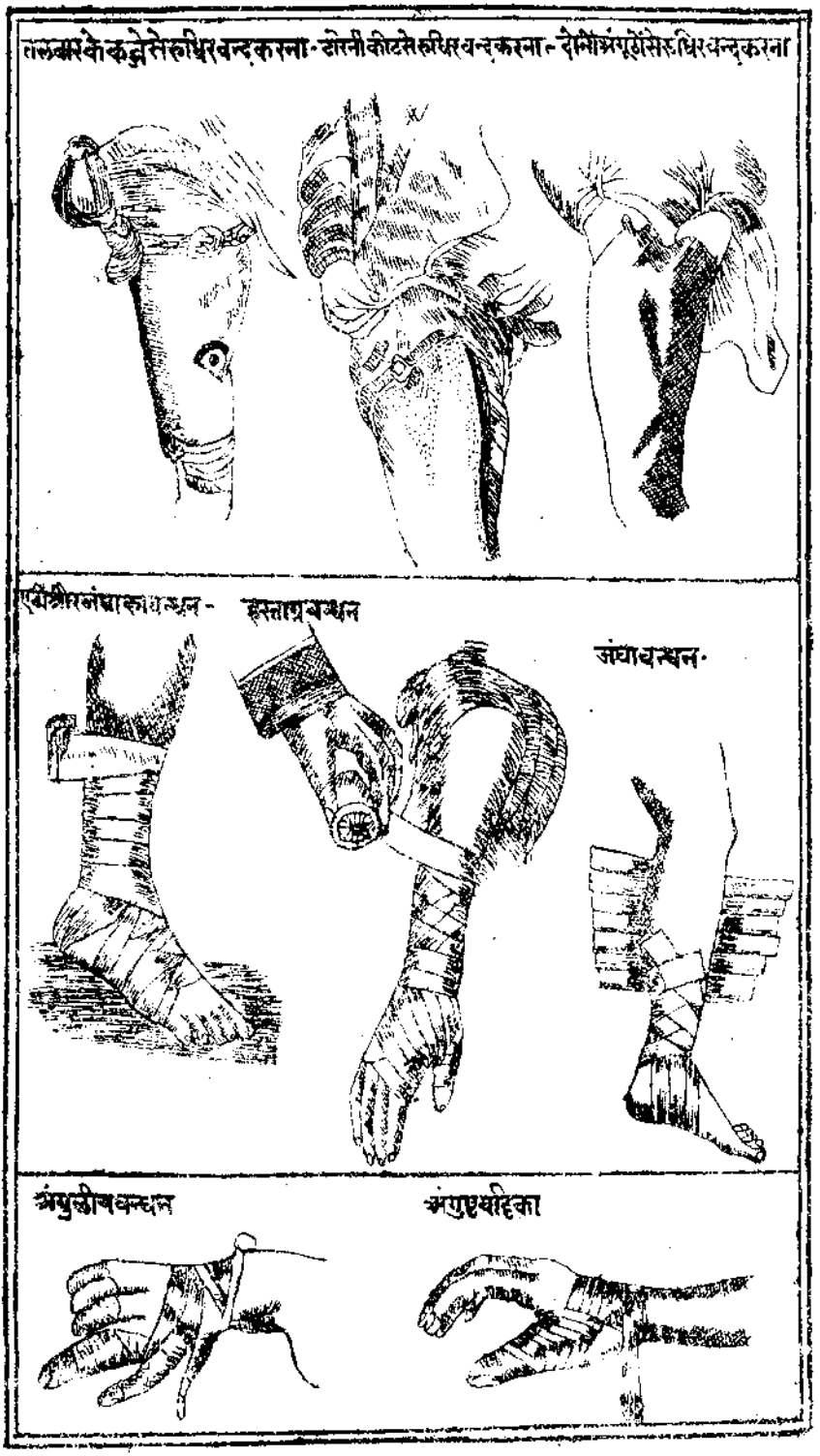

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वाङ्गुलीयबन्धन

कपूनिस्सारकविधि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बोध.

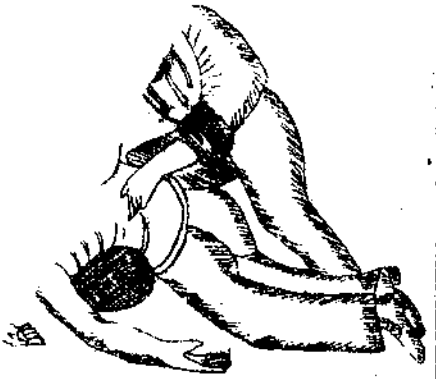

शस्त्रक्रिया विधि

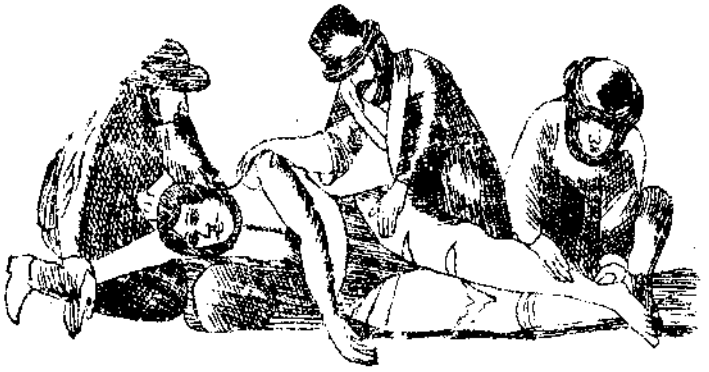

कर्तरीयंत्राणि

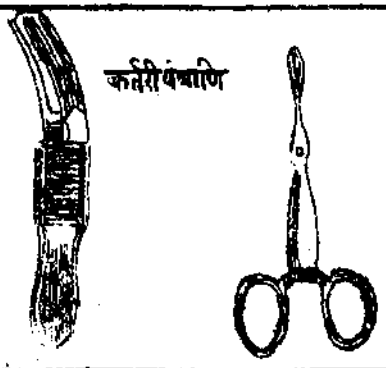

शस्त्रपत्र.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ॐ

॥ श्रीहरिर्वन्दे ॥

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ।

॥ अष्टाङ्गहृदयम् ॥

❀ भाषाटीका समेतम् ❀

सूत्रस्थानम् ॥

❀ मङ्गलाचरण ❀

नत्वा श्रीस्वर्गसद्वैद्यान् धन्वन्तरिमुखान्मुहुः गुरुहृदयप्रकाशाख्यान्महर्षींश्चकृपार्णवान्॥ गीर्वाणभाषा सुकुमारबुद्धयोयेऽधीष्टुकामास्तदृषिभिर्विनिर्म्मितान्, ग्रन्थानहं जातुकृतेचतादृशाम् व्याख्यामितान्मर्त्यगिरायथामति ॥ १ ॥

ग्रंथकारका मंगलाचरण ।

रागादिरोगान् सततानुषक्ता
नशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदान् जघान
योऽपूर्ववैद्यायनमोऽस्तुतस्मै ॥१॥

अर्थ—मन और देह दोनोंको सन्ताप पहुंचानेवाले राग, द्वेष और लोभादि रोग, जो स्वाभाविकही निरन्तर प्राणियोंके संग लगेहुए हैं और जो संपूर्ण शरीरमें व्याप्तहोगयेहैं अथवा गजतुरगोरगादि सबशरीरमें विशेष रूपसे व्याप्त होगयेहैं और जो औत्सुक्य (विषयोत्कंठा), मोह (कार्यकी अनभिज्ञता), और अरति (अनवस्थिति) देनेवालेहैं ऐसे रागादि अशेष अर्थात् समूल रोगोंको जिसने नाशकर दियाहै उस अपूर्व वैद्यको नमस्कार करताहूं १

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातआयुष्कामीयमध्यायंव्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

अर्थ—तदनन्तर आत्रेयादिक महर्षि कहने लगे कि अब हम यहांसे आयुष्कामीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

(१) **अथ** शब्द आनन्तर्यार्थ बोधकहै अर्थात् पहिले किसी अन्य प्रकरण पर व्याख्यान होरहाथा उसके अनन्तर आयुष्कामीय प्रसंग पर व्याख्यान प्रारंभहुआ (२) अथ शब्द अधिकार बोधकहै अर्थात् अब यहांसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो कुछ व्याख्यान कियाजायगा उस सबमें आयुको स्थिर करने की इच्छा करने वालोंके लिये हितकारी उपायोंका वर्णन कियाजायगा (३) अथ शब्द मंगलसूचकहै, कहाभी है " ओंकारश्चाथशब्दश्चद्वावेतौ ब्रह्मणःपुरा । गण्डौ भित्त्वाविनिर्यातौ तेनैौमांगल्यौ स्मृतौ " ओंकार और अथ ये दोनों शब्द प्रथमही ब्रह्मके कंठको भेदकर निकलेहैं इसलिये ये दोनों मंगलसूचक हैं । ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थके प्रारंभमें अथ शब्दका प्रयोग इस ग्रन्थके पढने पढानेवालोंकी मंगलकामनाके लिये कियाहै ।

आत्रेय धन्वन्तरि आदि महर्षियोंका नाम लेनेसे ग्रन्थकारका यह प्रयोजनहै कि जो कुछ इस ग्रन्थमें कहागयाहै वह आगमप्रामाण्यसे कहागयाहै, लोक पर अनुकंपा करके जो कुछ उक्त महर्षियोंने कहाहै उसीका क्रममात्र बदलकर इसग्रन्थमें वर्णन कियाहै अपनी ओरसे एक मात्राभी न्यूनाधिक नहीं कीहै और न कोई बात कपोलकल्पितलेखीहै ।

ग्रन्थकारने उक्त वाक्यमें प्रथम मंगलाचरण करके प्रस्तुत अध्यायका विषय और प्रस्तुत विषयमें आत्रेयादि ऋषियोंका प्रमाण ये तीन बातें दिखाईहैं । इन तीन बातोंको पुरस्सर करके ग्रन्थके अधिकारियोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये कहताहै ।

आयुर्वेद जाननेका कारण ।

आयुः कामयमानेनधर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥२॥

अर्थ—धर्मअर्थ और सुख इन तीनकी प्राप्ति आयुसे होतीहै । इस आयुकी इच्छा करनेवाले अर्थात् धर्म अर्थ और सुखकी प्राप्तिके निमित्त दीर्घजीवनकी अभिलाषा करनेवालोंको आयुर्वैदिक शास्त्रोंके उपदेशों पर अत्यन्त आदर रखना उचितहै अर्थात् उसमें कहेहुए उपदेशों को अच्छी तरह समझकर उनके अनुसार व्यवहार करनेसे आयु बढतीहै और आयुके बढने से धर्मअर्थ और (तात्कालिक तथा आत्यन्तिक) दोनों सुखोंकी प्राप्ति होतीहै ।

अब आयुर्वेदका गौरव प्रतिपादनके लिये आगमशुद्धि दिखातेहैं :—

आयुर्वेदकी उत्पत्ति ।

ब्रह्मास्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ॥ ३ ॥ तेऽग्निवेशादिकांस्तेतुपृथक्तंत्राणिसेनिरे ।

अर्थ—प्रथमही ब्रह्माने आयुर्वेदका स्मरण करके दक्षप्रजापतिको समझाया, दक्षने अश्विनीकुमारोंको, अश्विनीकुमारने इन्द्रको, इन्द्रने अत्रिपुत्रधन्वन्तरि, निमि, काश्यपादिको पढाया इन अत्रिपुत्रोंने अग्निवेशादि छःमुनियोंको पढाया और इन छः मुनियोंने अपने अपने नामसे अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण पराशर, हारीत और क्षारपाणि नामकी जुदी जुदी संहिता रचीं ।

इस ग्रन्थके बनानेका कारण ।

तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः ॥ ४ ॥ क्रियतेऽष्टांगहृदयंनाति संक्षेपविस्तरम् ।

अर्थ—ऊपर कहेहुए बडे २ ग्रन्थोंके विद्यमानहोने इस ग्रन्थके बनानेका यह कारणहै । कि उक्त ग्रन्थोंका विषय बहुत भिन्न२है एक बात एकग्रन्थमें लिखीहै तो दूसरी बात दूसरे ग्रन्थमें लिखीहै जैसे शल्यचिकित्सा सुश्रुतमें

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिखीहै वैसी अग्निवेशमें नहींहै; ऊर्ध्वांगचिकित्सा जैसी जनक प्रणीत ग्रन्थ में वर्णित है वैसी सुश्रुतादिमें नहीं है। इत्यादि कारणों से इन सब ग्रन्थोंसे सार सार विषयोंका संग्रह करके न बहुत विस्तारपूर्वक न बहुत संक्षेपसे यह "अष्टांगहृदय" नामक ग्रन्थरचाहै। इस ग्रन्थका यह नाम 'यथानाम तथा गुण' के अनुसारहै, यथा शरीरके सब अवयवोंमें हृदय प्रधानहै वैसेही अष्टांग आयुर्वेदमें यह ग्रन्थ प्रधानहै अथवा अष्टांग आयुर्वेदके प्रत्येक अंग का सार सार ग्रहणकरके यह ग्रन्थरचाहै सो यहसब अंगोंका सारभूत अष्टांगहृदयहै।

आठ अंगोंके नाम।

कायबालग्रहोर्ध्वांगशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावंगानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिता॥

अर्थ-कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रह चिकित्सा, ऊर्ध्वांगचिकित्सा, शल्यचिकित्सा दंष्ट्राचिकित्सा, जराचिकित्सा, और वाजीकरण ये आयुर्वेद के आठ अंग हैं। जिसअवस्थामें दोष, धातु, और मलका अच्छी तरह संचय होजाता है उस अवस्थामें देहकी काय संज्ञा होती है। इस तरह संपूर्ण शरीरके उपतापक आमाशय और पक्वाशय स्थानोंसे उत्पन्नज्वर, रक्त, पित्त, अतिसार आदि रोगों के शमन करनेके उपाय जहां लिखे हैं उसे कायचिकित्सा कहते है। संपूर्ण बल, सत्व और धातुओंसे युक्त होनेके कारण यौवनावस्थाका उपयोगी अंग सब से प्रथम कहा गया है।

असंपूर्ण बलधातुवाला अपक्व अवस्थावाले बालकोंके होनेवाले रोग और उनकी शान्ति के उपायवाला बालचिकित्सा नामक दूसरा अंग पृथक् कहागयाहै इसके पृथक् करनेका कारण यहहै कि बालक और युवावस्थाकी देह के रोगोंके हेतुओंमें बड़ा अंतरहै और उनके उपायोंमें भी बड़ा अंतरहै।

इसी तरह प्रसंगानुसार एकके पीछे एकअंग वर्णन कियागयाहै।

तीनों दोषोंका वर्णन।

वायुःपित्तंकफश्चेतित्रयोदोषाःसमासतः६

अर्थ--वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष संक्षेपसे कहे गयेहैं, और संसर्ग, सन्निपात, क्षय, समता, आदि भेदोंसे ये दोष अगणित हैं। कोई कोई कहतेहैं कि ये देहमें प्रस्तुत रहतेहैं इससे इनको धातु कहना उचितहै। ऐसाही हो, किन्तु रसादिकोंके दूषित होनेही से ये बिकार उत्पन्न कर सकतेहैं, यही दिखानेके लिये वातादिक की दोष संज्ञाहै। चरकसंहितामें भी इनकी दोष संज्ञाही लिखीहै "वायुःपित्तंकफश्चोक्तः शरीरदोषसंग्रहः"। मूल ग्रन्थमें वायु, पित्त और कफ, ये तीनों पद अलग अलग दियेहैं इससे इन तीनोंकोही प्राधान्यहै। कोई कोई कहतेहैं कि जैसे दोषोंके स्थान, लक्षण, कार्य, विकार और चिकित्सा कहेगयेहैं वैसेही रक्तके भीहैं इसलिये रक्तकी चौथे दोषमें गणना होनी चाहिये परन्तु यह बात ठीक नहींहै क्योंकि वातादिक स्वतंत्रहैं इसीसे इनको प्रधानताहै और इसीसे ये रक्तादि को दूषित करतेहैं परन्तु रसादिक परतंत्र होने से कुछ भी नहीं कर सकते।

दोषोंकी शक्ति।

विकृताऽविकृता देहं घ्नंति ते वर्तयंति च।

अर्थ--जब वातादिक दोष बिगड जातेहैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तब मनुष्यके जीवनका नाश करदेतेहैं और जब विकार रहित होजातेहैं तब फिर देहको स्वस्थावस्थामें ले आतेहैं ।

व्यापक दोषोंके स्थान ।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ ७ ॥

अर्थ–ये वातादिक दोष संपूर्ण देहमें व्यापकहैं तथापि उनके विशेष स्थान इस रीति सेहैं–वायुका स्थान नाभिसे नीचे के अंगोंमें है, नाभि और हृदयके बीचमें पित्तका स्थान है और कफका स्थान हृदयसे ऊपरके अंगों में है ।

दोषका काल ।

वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेंऽतमध्यादिगाः क्रमात् ।

अर्थ–ये दोष सदाही देहमें रहतेहैं परन्तु इनमें विशेषता इस प्रकार होतीहै, यथा मनुष्यकी आयुके पिछले भागमें वायुका कोपकाल होताहै मध्य भागमें पित्तका और आदि भाग में कफका कोपकाल होताहै । इसी प्रकार दिन और रात्रिके पिछले भागमें वायुका, मध्य भागमें पित्तका और प्रथम भागमें कफका कोपकाल होताहै । इसीतरह भोजन करनेके पीछे आहार के पचनेकी अवस्थामें वायुका, पचने से पहिले विदाही अवस्थामें पित्तका और भोजनके करतेही जिसमें आहारका मधुरीभाव रहताहै कफका कोपकाल होताहै । यद्यपि जठराग्निके संयोगसे आहारकी बहुतसी सूक्ष्म अवस्थाओंका होना संभवहै परन्तु इन्हीं का बहुत उपयोग होनेसे इन तीनोंकाही वर्णनहै और येही तीन अवस्था अपने अपने कामको दिखलातीहै ।कहा भी है " आदौ षड्समप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् । फेनीभूतं कफं वातं विदाहादम्लतां ततः ॥ पित्तमामाशयात्कुर्य्याच्छ्यवमानं च्युतं पुनः । अग्निना शोषितं पक्वं पिंडितं कटुमारुतं " ॥

जठराग्निका स्वरूप ।

तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णोमंदश्चाग्निःसमैःसमः ८

अर्थ–वातादिक दोषोंके संसर्गसे जठराग्नि चार प्रकारका होताहै, जैसे वातके उत्कर्षसे अग्नि **विषम**, पित्तके उत्कर्षसे **तीक्ष्ण**,कफ के उत्कर्षसे **मंद** और दोषोंकी समानता से अग्नि **सम** होताहै । जहां एकही कालमें दो दोषोंका उत्कर्ष होताहै वहां वैद्यको अपनी बुद्धिसे विचारना उचितहै जैसे वातपित्त इन दो दोषोंके उत्कर्षसे वायुके योगवाही होनेके कारण अग्नि तीक्ष्ण, वात और कफके उत्कर्षसे मन्द और कफ तथा पित्तका उत्कर्ष होने से आहारके अनुसार कभी तीक्ष्ण और कभी मंद होताहै ।

चारप्रकारका कोष्ठ ।

कोष्ठःक्रूरोमृदुर्मध्योमध्यःस्यात्तैःसमैरपि ।

अर्थ–वातादि दोषोंसे कोष्ठ क्रमसे क्रूर, मृदु और मध्य होताहै, जैसे वातके उत्कर्षसे क्रूर, पित्तके उत्कर्षसे मृदु, कफके उत्कर्ष से मध्य तथा जब तीनों दोष समान भाव होतेहैं

(१) योगवाहीका यह अर्थ है कि वायु जिससे जा मिलता है उसीके गुणकी वृद्धि करता है जैसे वायुके उत्कर्ष में अग्नि तीक्ष्ण है परन्तु जब वह मन्दप्रकृतिवाले कफसे मिलता है तो उसकी मन्दताको बढाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तब कोष्ठ मध्य होताहै । इनके विशेष लक्षण आगे वमनविरेचन विधिमें वर्णन कियेजांयगे ।

प्रकृतिका स्वरूप ।

शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेवविषक्रिमेः।९। तेश्चतिस्रः प्रकृतयोहीनमध्योत्तमाःपृथक् । समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निंद्या द्विदोषजाः ॥ १० ॥

अर्थ—जन्मसे पहिले गर्भाधानकालमें पिताके वीर्यकी दो तीन बूंदोंसे माताके आर्तव (रजोधर्म संबंधीरक्त) की दो तीन बूंदोंके संयोगकालमें वातादिक तीनों दोष रहतेहैं पर वे गर्भका नाश नहीं करतेहैं जैसे विषसे उत्पन्न हुए कीडेको विष नहीं मारताहै और वे तीनों दोष गर्भकी प्रकृतिको अपने अपने अनुसार करलेतेहैं । जब वीर्य और रुधिरमें वायुकी अधिकता होतीहै तब प्राणी की हीन प्रकृति, पित्तकी अधिकतासे मध्यप्रकृति, और कफकी अधिकतासे उत्तम प्रकृति होतीहै । तथा गर्भाधानके समय जो वीर्य और रुधिरमें तीनों दोष समानहों तो समप्रकृति होतीहै । इन सब प्रकृतियोंमें समप्रकृति सबसे उत्तम होतीहै परन्तु वातापित्त, वातकफ और कफपित्त इन दो दो दोषोंसे उत्पन्न हुई प्रकृति निन्दित होतीहै क्योंकि ऐसी प्रकृतिवाले शरीर रोगादि उपद्रवों के स्थान बने रहतेहैं ।

वातादि दोषों के गुण ।

तत्ररूक्षोलघुःशीतःखरःसूक्ष्मश्चलोऽनिलः। पित्तंसस्नेहतीक्ष्णोष्णंलघुविस्रंसरंद्रवम् ११ स्निधः शीतो गुरुर्मंदः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः । संसर्गः सान्निपातश्च तद्वित्रिक्षयकोपतः ॥ १२ ॥

अर्थ—इन तीनों दोषोंमें वायु रूक्ष, लघु (हलका) ठंडा, कठोर, सूक्ष्म (छोटे से छोटे छिद्रोंमें प्रवेश करनेवाला,) चल (एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमनशील है) योगवाही होने पर भी दोनों कामकरती है कहा है " योगवाहः परंवायुः संयोगादुभयार्थकृत । दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् ,, वायुका स्वभाव शीतलहै इसलिये दाहोदय होने पर भी अपने शीतल गुणको नहीं त्यागतीहै और उष्ण उपचारसे उष्ण न होकर शांत होजातीहै ।

पित्त—कुछ चिकनाई लिये होताहै, तीक्ष्ण (सुईकीतरह भेदनकरनेवाला तेज,) गर्म, हलका, विस्र (मत्स्यमांसके सदृश दुर्गन्धित) सर (ऊपर नीचे गमनशील) और पतलाहै।

कफ—चिकना, शीतल, भारी, मन्द (देर में कार्यकरनेवाला,) श्लक्ष्ण (लहसदार) मृत्स्न (उंगलीसे चिपटनेवाला पिच्छिलगुण युक्त) और स्थिर होताहै । इन तीनों दोषों में से दो दो दोष अपने प्रमाण से बढकर वा घटकर मिलें तो इनके मिलने को संसर्ग कहते हैं और जो तीनों दोष अपने प्रमाण से न्यून वा अधिक होकर मिलेंतो सन्निपात कहलाताहै ।

धातुओं का वर्णन ।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः । सप्त दूष्याः—

अर्थ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सातों की धातु संज्ञा है क्योंकि ये शरीरको धारण करतीहै और वातादिकदोष इनको दूषित कर देतेहैं इसलिये इन को दूष्य भी कहते हैं । याद रखने की बात

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है कि रसादिकों के बिना वातादिकों की दोष संज्ञा नहीं हो सक्ती और वातादिकों के बिना रसादिक दूष्य नहीं कहला सकते इनके ये नाम अन्योन्याश्रय हैं ।

मलोंके नाम ।

मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपिच १३

अर्थ–मूत्र, विष्टा और स्वेदादिक की मल संज्ञा है और इनकी दूष्य संज्ञा भी है क्योंकि ये रसादिक धातुओंसे दूषित होते हैं । जैसे रसादिक धातुसंज्ञक और दूष्यसंज्ञक हैं वैसेही मूत्रादिक भी मलसंज्ञक और दूष्यसंज्ञक है।

वृद्धि और अपचय ।

वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ।

अर्थ–शरीरमें स्थित संपूर्ण दोष धातु और मलादिक तुल्यसद्भावसे और अपने अपने प्रमाणमें होंतो इनकी वृद्धि होती है और जो अपने अपने प्रमाण से बढबढ जाते हैं तौ इनका क्षय होता है । कहा भी है सर्वेषां सर्वदा वृद्धिस्तुल्यकर्मगुणक्रियैः । भावैर्भवति भावानां विपरीतैः विपर्ययः ॥ समान द्रव्य गुण क्रियावाले पदार्थों से पदार्थों की वृद्धि होती है और विपरीत गुणद्रव्य क्रियावाले पदार्थों से उनका क्षय होता है । जैसे जलात्मकजल जलात्मक कफकी वृद्धि करता है । वैसे ही दूधसे उत्पन्न घृत वीर्यको बढातहै इसी तरह और भी जानना चाहिये ।

रसोंका वर्णन ।

रसाःस्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः ॥ १४ ॥ षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलोत्तराः ।

[illegible] मिष्ठ), अम्ल (खट्टा), लवण (नमक), तिक्त (कड़वा), ऊषण (कड़वा), कषाय (कसैला) ये छः रसहैं और ये छःओं रस पंचभूतात्मक अर्थात् पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाशमें रहतेहैं । इनमेंसे यथापूर्व प्राणियों को बल देनेवालेहैं जैसे कषायसे ऊषण, ऊषणसे तिक्त, तिक्तसे लवण, लवणसे अम्ल और अम्लसे मधुर बलदायकहै । ये रसनेन्द्रिय (जिव्हा) से ग्रहण किये जातेहैं इसलिये रस कहलातेहैं । गुड बूरा आदि मधुरहै, इमली, बिजौरा आदि खट्टे; सेंधा, सांभर आदि नमकीन; नीम आदि तिक्त; कुटकी मिरच आदि ऊषण और हरड आदि कषाय होतेहैं ।

रसोंके गुण ।

तत्राद्यामारुतं घ्नंति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥१५॥ कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ।

अर्थ–इन रसोंमेंसे पहिले तीन स्वादु, अम्ल और लवण वातको नष्टकरतेहैं और पिछले तीन तिक्त, ऊषण और कषाय वातको कुपित करतेहैं । तिक्त, ऊषण, कषाय यह तीनों कफको नष्ट करतेहैं और स्वादु, अम्ल, लवण ये तीनों कफको प्रकुपित करतेहैं । कषाय, तिक्त और मधुर ये तीनों पित्तको नष्टकरतेहै । शेष तीन अम्ल, लवण और कटुक पित्तको प्रकुपित करतेहैं ।

इसका सारांश यह हुआ कि मधुररस वात तथा पित्तका नाश करनेवाला और कफको बढानेवालाहै । अम्लरस वातनाशक और कफ तथा पित्तका वर्द्धकहै । लवण वातनाशक और कफपित्तवर्द्धकहै । तिक्त कफपित्तनाशक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और वातवर्द्धकहै उष्ण कफनाशक और वात पित्तवर्द्धकहै, कषाय कफपित्तनाशक और वात वर्द्धकहै ।

द्रव्यको त्रिविधत्व !

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमितित्रिधा

अर्थ--द्रव्य शमन कोपन और स्वस्थहित इन भेदोंसे तीन प्रकारका होताहै । अन्य प्रकारसे तो दो अथवा अनेक प्रकारका होता है । जो पित्तादिक दोषोंको शमन करताहै वह **शमन** कहलाताहै । जैसे तेल स्नेह, औदार्य और गौरव गुणोंके योगसे विपरीत गुणवाले वायुका शमन करताहै । घृत मधुर, शीतल और मन्द गुणोंके योगसे विपरीत गुणवाले पित्तको शमन करताहै । मधु रौक्ष्य, तीक्ष्ण कषाय गुणोंके योगसे तद्विपरीत गुणवाले कफ को शमन करताहै ।

जो द्रव्य वातादिक दोष, रसादिक धातु और मूत्रादिक मलोंको प्रकुपित करताहै वह **कोपन** कहलाताहै जैसे:--यवक पटलादि ।

जो द्रव्य दोष, धातु, और मलोंको अपने प्रमाणमें स्थित रखकर स्वस्थताका अनुवर्तन करताहै वह **स्वस्थहित** अर्थात् तन्दुरुस्त पुरुषोंके लिये हितकारी होताहै जैसे रक्तशाली, साठीचांवल, जौ, गेंहूं, जांगलमांसादिक ।

द्रव्यका वीर्य ।

॥ ११ ॥ उष्णशीतगुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधा स्मृतम् ।

अर्थ--द्रव्यमें अनेक गुण होतेहैं, परन्तु संपूर्ण जगत् अग्नि और सोमात्मक इनदोही गुणोंसे व्याप्तहै, इसलिये संपूर्ण वस्तुओंके मुख्यदोही विभाग होसकतेहैं उष्ण और शीत । अन्य गुणोंके होनेपर भी उष्ण और शीत गुणके उत्कर्षसे द्रव्यमें दोही प्रकारका वीर्य कहाहै एक उष्णवीर्य, दूसरा शीतवीर्य ।

द्रव्यका विपाक ।

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥ १७ ॥

अर्थ--यद्यपिरस छःहैं परन्तु द्रव्योंका विपाक स्वादु, अम्ल और कटुक इन तीनही प्रकारका होताहै । " जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसांतरम् । रसानांपरिणामान्तो स विपाक इति स्मृतः" ॥ जाठराग्निके योगसे रसोंके परिणामान्तमें जो अन्य रस उत्पन्न होताहै उसे **विपाक** कहतेहैं । मधुर और लवण रसका विपाक मधुर; अम्लरसका अम्ल और तिक्त कटु कषायका कटुविपाक होता है

द्रव्यके गुण ।

गुरुमंदहिमस्निग्धश्लक्ष्णसांद्रमृदुस्थिराः। गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः ॥ १८ ॥

अर्थ--१गुरु, २ मन्द, ३ हिम, ४स्निग्ध, ५ श्लक्ष्ण, ६ सान्द्र, ७ मृदु, ८ स्थिर, ९ सूक्ष्म और १० विशद । तथा इनमें से प्रत्येकके विपरीत गुणवाले ११ लघु, १२ तीक्ष्ण, १३ उष्ण, १४ रूक्ष, १५ खर, १६ द्रव, १७ कठिन, १८ सर, १९ स्थूल आर २० पिच्छिल इस तरह सब मिलाकर द्रव्यमें बीस गुण होते हैं ।

रोग का कारण ।

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकः । सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् ॥ १९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–शीत, उष्ण और वर्षा इन भेदों से काल तीन प्रकार का हैं । शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, ये पंचभूतात्मक इन्द्रियों के विषय हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक ये इन्द्रियोंके कर्म हैं। इन काल अर्थ और कर्मों का हीन, मिथ्या और अतियोग रोगों के कारण हैं। और इनका समान योग आरोग्यताका कारण है। कालका हीनमिथ्यातियोगः-- हीन शीतता, [सर्दी की ऋतु में कम सर्दी होना] मिथ्याशीतता [शीतकालमें गर्मी होना] अतिशीतता [जितनी सर्दी होनी चाहिये उससे अधिक सर्दी] ये रोगके कारण हैं। इसीतरह हीनउष्णता, मिथ्याउष्णता, अतिउष्णता, हीनवर्षा, मिथ्यावर्षा, अतिवर्षा, ये सब रोग के प्रधान कारण हैं। और इनका समानयोग समानशीतता, समान उष्णता, और समानवर्षा, आरोग्यताके कारण हैं। इसी तरह इन्द्रियोंका अपने २ विषयों से हीन मिथ्यातियोग रोगों का कारण हैं और सम्यक् योग आरोग्यताका कारण हैं। जैसे जिव्हाके साथ रसका हीनातिमिथ्यायोग अर्थात् कमस्वाद आना, वा सर्वथा न आना अथवा अधिक आना रोगका कारण है और जिव्हा तथा रसका सम्यक् योग आरोग्यता का कारणहै। इसी तरह कर्मों में हीनप्रवृत्ति, अतिप्रवृत्ति और मिथ्या प्रवृत्ति रोगका कारण है और समान प्रवृत्ति आरोग्यताका कारणहै। हीन भाषण, मिथ्याभाषण(खाने पीनेमें बोलना) अतिभाषण (अत्यन्त चिल्ला चिल्लाकर बोलते रहना) ये रोगके कारणहै तथा समान भाषसे भाषण आरोग्यताका कारणहै इसी तरह कायिक और मानसिक हीनातिमिथ्या योगों को जानना चाहिये ।

रोगारोग्यलक्षण तथाभेद ।

रोगस्तुदोषवैषम्यंदोषसाम्यमरोगता।निजागंतुविभागेन तत्ररोगाद्विधास्मृताः ।

अर्थ–वातादिक दोषोंके अपने प्रमाणसे घटजाने तथा बढजानेको **रोग** कहतेहैं । और दोषोंकी समता अर्थात् अपने प्रमाणमें रहनेका नाम **अरोग** है । इनमेंसे निज और आगंतुक इन दो भेदोंसें रोग दो प्रकारके होते हैं । जो रोग वातादि दोषोंसे उत्पन्न होतेहैं उन्हें **निज** और जो बाह्य हेतुओंसे उत्पन्न होतेहैं उन्हें **आगन्तु** कहतेहैं । आगन्तु रोग शस्त्राघात चोट आदिसे शरीरके बाहर उत्पन्न होकर पीछे वातादिक दोषोंको कुपित करके शरीरको कष्ट पहुंचातेहैं ।

रोगका अधिष्ठान ।

तेषांकायमनोभेदादधिष्ठानमपिद्विधा२०

अर्थ–इन निज और आगन्तु रोगोंके शरीर और मन दो अधिष्ठानहैं । ज्वर, रक्तपित्त खांसी आदिका स्थान शरीरहै । मद, मूर्च्छा, सन्यास, ग्रह, भूत, उन्माद, अपस्मार, राग, द्वेषादिका अधिष्ठान मनहै ।

मानसिक रोगको हेतु ।

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ ।

अर्थ– रज, और तम ये दोनों मानसिक दोष हैं ये अविद्यासे उत्पन्न होतें हैं और वातादिक दोष भी मनमें विकार उत्पन्नकरके उन्मादादिक रोगों को उत्पन्न करते हैं ।

रोग परीक्षा ।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैःपरीक्षेताथरोगिणम्२१

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–देखने छूने और पूछने से रोगी की परीक्षा करै। जैसे खांसी प्रमेह आदि रोगों की परीक्षा उनका रंग देखने से, ज्वर गुल्म आदि नाडी देखने तथा टटोलने से शूल रोचक आदि का वृत्तान्त रोगी से पूछने पर जाना जाता है।

रोगविशेष की परीक्षा का उपाय।

रोगं निदानपूर्वरूपलक्षणोपशयाप्तिभिः।

अर्थ--निदान, पूर्वरूप, लक्षण, उपशय और संप्राप्ति इन पांच प्रकारों से रोग की परीक्षा करनी चाहिये। रोगके कारण वा हेतु को निदान कहते हैं। यह निदान आसन्न (निकटवर्ती) और विप्रकृष्ट (दूरवर्ती) इन भेदों से दो प्रकार का है। आसन्न निदान के भी दो भेद हैं एक निकट, दूसरा अतिनिकट। जैसे किसी पदार्थ के खाने से वात दोष कुपित होकर विकार करता है सो वह पदार्थ निकट का कारण है और वात दोष अतिनिकट का कारण है। इसी तरह अजीर्ण में भोजन करना आमवात का कारण है। परन्तु उस भोजन से पहिले अजीर्ण, पीछे अतिसार और पीछे आमवात उत्पन्न होता है। इस से यह दूर का कारण है।

व्याधि का अप्रकाशित चिन्ह उसका पूर्वरूप है जैसे ज्वर व्याधि है और ज्वर से पहिले होने वाले आलस्य, अंगडाई, नेत्रदाहादिक पूर्वरूप है। व्याधि के प्रकाशित अर्थात् स्फुटरूप को लक्षण कहते हैं जैसे ज्वर में देहका गर्म होना ज्वर के लक्षण हैं।

सुखानुबन्धी आहार के उपयोगका नाम उपशय है। जैसे कोई कहै कि एक समय भोजन करने से हमारी प्रकृति ठीक रहती है तो इस से जाना गया कि उस के मंदाग्नि है। अत एव एक समय खाना उपशय है।

प्राप्ति, निवृत्ति, संप्राप्ति, आगति और जातिये संप्राप्तिके पर्य्यायवाची शब्द हैं जैसे अमुकदोष अमुकरीतिसे दूषित होकर अमुकस्थान में स्थित होगया है, अथवा अमुक मार्गसे अमुक कुचेष्टा होनेसे रोग उत्पन्न हुआहै इस कल्पना का नाम संप्राप्ति है

देशभेद।

भूमिदेहप्रभेदेन देशमाहुरिह द्विधा ॥२२॥

अर्थ--आयुर्वेद के आचार्यों ने देश दो प्रकार के कहे हैं एक देह देश, दूसरा भूमि देश। हाथ, पांव, सिर, आदि में देहदेश हैं।

भूमिदेश का वर्णन।

जाङ्गलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्बणम्। साधारणं सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् २३

अर्थ--भूमिदेश तीन प्रकार का होता है जिस देश में जल, वृक्ष, पर्वत, थोडे होते हैं उसे **जांगलदेश** कहते हैं। जांगलदेश में वादी बहुत होती है और इस देश में उत्पन्न होने वाले पशु पक्षी औषधादिक वातप्रधान होते हैं।

जहां जल और वृक्ष बहुत होते हैं, वायु कम चलती है, धूप कम आती है उसे **आनूपदेश** कहते हैं. यह देश कफप्रधान होता है तथा यहां उत्पन्न होने वाली औषधादिक कफकारक होती हैं।

जिस के लक्षण जांगल और आनूपदेश दोनों के मिले हुए हैं, जहां वातादिक दोष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समान रीति पर स्थित हैं उसे **साधारणदेश** कहते हैं ।

औषधयोजन का काल ।

क्षणादिर्व्याध्यवस्था च काले भेषजयोगकृत्

अर्थ–आयुर्वेद में औषधों की सम्यक् योजना के लिये दो प्रकार का काल कहा गया है एक क्षणादि, दूसरा व्याधि की अवस्था का काल ।

क्षणादि से लव, त्रुटि, मुहूर्त, याम, दिन, रात, पक्ष, महिना, ऋतु, अयन और संवत्सर का ग्रहण है । यथाः– "पूर्वाह्णे वमनं देयं मध्यान्हे तु विरेचनं । मध्यान्हे किंचिदावृते वस्तिं दद्याद्विचक्षणः" ।

साम, निराम, मृदु, मध्य, तीक्ष्णआदि से औषध्यादिक का प्रयोग व्याधि अवस्था का कालहै, जैसे लंघनं स्वेदनंकालो यवागूस्तिक्तको रसः । मलानां पाचनानि स्युर्यथा वस्थं क्रमेणवा ॥ ज्वरेपेयाः कषायादच सर्पिः क्षीरं विरेचनं । अहं वा षडहं युंज्याद्वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ मृदुर्ज्वरो लघुर्देहः चालिताश्च मलायदा । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं योजयेत्तदा" ॥

औषधके भेद ।

शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा२४

अर्थ–औषधोंके अनेक भेद होनेपर भी संक्षेप रीतिसे शोधन और शमन दोही प्रकार कहै । जो औषध प्रकुपित दोषको बाहर निकाल कर रोगको शान्त करदेताहै उसे **संशोधन औषध** कहतेहैं और जो वहांका वहीं रोगको शान्त करदेताहै उसे **संशमन** कहतेहैं ।

औषध का विषय ।

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् । वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु ।२५

अर्थ–शरीरमें उत्पन्न होनेवाले वातादिक दोषोंकी शोधनकर्ता तीन प्रधान औषधहैं यथा, वादीका शोधन करनेवाला तेल वा क्वाथादिक की पिचकारी गुदामें लगाना । पित्तका शोधन करनेवाली औषध विरेचनिक औषधहैं जो मुखद्वारा पीनेसे भीतरवाले मवादको गुदाद्वारा बाहर निकाल देतीहैं । कफको शोधन करनेवाली वमन करानेवाली औषधि हैं जो मुखद्वारा पीनेसे उसीके द्वारा दोषको बाहर निकालकर फेंकदेती है ।

शमनकर्ता, जैसे वादीको तेल, पित्तको घी, और कफको शहद मुख्य औषध हैं ।

मानसिक दोषको परमौषध ।

धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ।

अर्थ–मनके रज और तम दोषोंके लिये बुद्धि और धैर्य परम औषध हैं और आत्मिक विकारोंके लिये योगाभ्यास, समाधि, परमात्माके स्वरूप आदिका विज्ञान परम औषध हैं । भला बुरा, हित अनहित इनका विवेक बुद्धिसे होताहै । चित्तको दृढ रखना धैर्यसे होताहै । इर्ष्या, मद, मोह, कामादि जन्यादि विकारोंकी गणना मानासिक विकारोंमें है ।

चिकित्सा के चार पाद

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्२६ चिकित्सितस्य निर्दिष्टं प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ।

अर्थ–चिकित्सा के चार प्रधान अंग हैं, (१) वैद्य, (२) औषध, [३] परि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चारक, और (४) रोगी। और इनमें से हर एक चार चार गुणवाला है। इस तरह वैद्यरोग चिकित्सा को सोलहगुणवाली कहते हैं (इन में से एक भी ठीक न होने से चिकित्सा में अंतर आजाता है।

वैद्यके चार गुण।

दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थोदृष्टकर्म्मा शुचिर्भिषक्

अर्थ--दक्षः (अपने काममें चतुर), तीर्थात्तशास्त्रार्थः (गुरुसे अच्छी तरह शास्त्र को पढा हुआ), दृष्टकर्मा [सैकड़ों प्रकार के रोगी और रोगोंको देखकर अभ्यास प्राप्त किया हुआ, अर्थात् अनुभवी] शुचि [मन वाणी शरीर से मलीन व्यापार न करने वाला अर्थात् धनोपार्जन के लिये चिकित्सा न करनेवाला और केवल धर्म के लिये चिकित्सा करनेवाला] ये वैद्य के चार गुण हैं।

औषध के चार गुण।

बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम्।

अर्थ--बहुकल्प [स्वरस, क्वाथ, चूर्ण आदि अनेक प्रकार के रोगनाशक कल्पजिससे बन सकते हैं] बहुगुण (अनेक रोगों को नाश करनेवाले गुरु मन्दादिक अनेक गुणों से युक्त], संपन्न [प्रशस्त भूमिदेश में उत्पन्न हुई अनेक पाकादि संस्कारकी संपत्ति युक्त] और योग्य [व्याधि, देश, काल, दोष, दूष्य, देह, बयबल आदि को जानकर देने योग्य] । ये चार गुण औषध के हैं।

परिचारक के चार गुण।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षो बुद्धिमान्परिचारकः २८

अर्थ--अनुरक्त (रोगी से प्रेम रखने वाला, शुचि (मन, वाणी और शरीर से पवित्र,) दक्षः [सब काम में चतुर] और बुद्धिमान [प्रवीण] ये परिचारक के चार लक्षण हैं।

रोगी के चार गुण।

आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्ववानपि

अर्थ--रोगी के चार गुण हैं:--आढ्य (धनवान), भिषग्वश्य (वैद्यका आज्ञाकारी), ज्ञापक (रोग, आहार, विहार के फेरफार तथा निदान आदि को वैद्य से कहने में समर्थ); तथा सत्ववान (धीरजवाला और मोह रहित)।

सुखसाध्य व्याधि।

सर्वौषधक्षमे देहे यूनः पुंसो जितात्मनः।२९।
अमर्म्मगोऽल्पहेत्वग्ररूपरूपोऽनुपद्रवः।
अतुल्यदूष्यदेशर्तुप्रकृतिः पादसम्पदि।३०।
ग्रहेष्वनुगुणेष्वेकदोषमार्गो नवः सुखः।

अर्थ-- (१) उस रोगी के देह में उत्पन्न हुई व्याधि सुख साध्य है जिसका शरीर तीक्ष्ण, मध्य, मृदुरूप, अनेक देशों में उत्पन्न हुई, संशमन कर्ता, संशोधन कर्ता और विपक्षादि, प्रयोग को सहसक्ता है। (२) तरुण अवस्था वाला रोगी। (३) रोगी पुरुष हो स्त्री न हो (स्त्रियों का निषेध इस लिये है कि ये डरोकनी और मूर्ख होती है इस लिये रोगीके यथोक्त गुण नहीं होते और सुकुमार होने के कारण तीक्ष्ण उष्ण आदि औषधियों को नहीं सह सकती); (४) जिसने अपना मन अपने बस में कर रक्खा हो और विषयादि की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभिलाषा छोडदी हो । (५) अमर्मगः (जिसका रोग सिर हृदय बस्ति आदि मर्म स्थानों में न पहुंचाहो) । (६) अल्प हेरूपप्रकृरूपः (जिस व्याधि में निदान, पूर्वरूप और लक्षण थोड़े और कम उपद्रव करने वालेहों) (७) अनुपद्रव (जिस व्याधि में कोई उपद्रव न हुआहो, एक रोग में दूसरे रोगका खड़ा होजाना उपद्रव कहलाता है कहाभी है व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तरकालजः । उपक्रम विघातीच सह्यु पद्रव उच्यते) (८) अतुल्य दूष्यदेशर्तु प्रकृतिः * (जिसकी दूष्य, देश, ऋतु और प्रकृति समान नहों) (९) पादसंपदि (जहां चार चार गुण वाले वैद्य औषध, परिचारक और रोगीहों) । (१०) ग्रहेष्वनुगुणेषु (सूर्यादिक ग्रहोंका अनुकूल होना) (११) एक दोष मार्गः (जो व्याधि वातादिक तीन दोषोंमेंसे किसी एक दोषके कारण शास्त्रोक्त बाह्य, अभ्यंतर और मध्य मार्गों में से एक मार्ग द्वारा उत्पन्न होतीहै) (१२) नवः (जो बहुत दिनकी पुरानी न हुई हो) ये सब व्याधियां सुखपूर्वक चिकित्सा के योग्य । हैं

कृच्छ्रसाध्य व्याधि ।

शस्त्रादिसाधनः कृच्छ्रः सङ्करे च ततो गदः ३१

अर्थ—जो रोग शस्त्रादि से अच्छा होनेके योग्य हैं वह कृच्छ्रसाध्य होतेहैं । शस्त्रादि साधन से चीरने फाड़ने का प्रयोजनहै इसे अंगरेजी में ऑपेरशन(Operation)कहतेहैं । जो रोग कठिन और बड़े बड़े उपायों से बहुत काल में अच्छे होतेहैं वे कृच्छ्रसाध्य कहलाते हैं । मूल में जो आदि शब्द दिया गया है उससे क्षारकर्म, अग्नि कर्म और विषलेपादिका ग्रहण है अर्थात् जिन रोगोंमें क्षारकर्म (तेजाब लगाना अर्थात् Caustic (काष्टिक) का प्रयोग कियाजाता है, अग्निकर्म गर्म लोहशलाका आदिसे दग्ध करना) और विषलेपादिका प्रयोग किया जाताहै वे भी कृच्छ्रसाध्य होते हैं । इसी तरह पूर्वोक्त साध्य लक्षणों की संकीर्णता (अल्पता) वा विपर्य्यय होनेपर भी रोग कृच्छ्रसाध्य होताहै । इसी तरह रोगी युवाहो पर मनको वश में न रख सकताहो अथवा

* इस विषय में हम सर्वांग सुन्दरा टीका के वाक्य उद्धृत करते हैं:—"यथा दूष्ये मेदोमज्जादावनूपदेशे शीतर्तावातुरो वातप्रकृतिस्तस्य कुपितं पित्तं सुखसाध्यमिति । अतुल्यदूष्यो यथा श्लेष्मणाशीतेन रक्तमुष्णं दूषितं । अतुल्य देशो व्याधिर्यथा । अनूपदेशे पित्तसंभूतं । अतुल्यर्तुयथा । शरदि कफोद्भवः । अतुल्य प्रकृतिर्यथा पित्त प्रकृतेः श्लेष्मोद्भवो व्याधिः । नन्वतुल्य दूष्यदेशर्तुप्रकृतित्वादसौ कृच्छ्रसाध्यो यथा वा प्राप्तो न सुखसाध्योऽनेकसुखोपक्रमसाध्यत्वात् । यतो दूष्यादीनामतुल्यत्वात्प रस्परमन्य एवोपक्रमः । एक सुखोपक्रमः सुखसाध्यो व्याधिः अतएव साध्यत्याज्या मेहाः श्लेष्म पित्त वातोत्थाः समासमक्रियतया महात्ययत्वत्यापि चेत्येवं निर्दिशति । अत्रोच्यते । तथा प्रभावत्वात्प्रमेहाण्यस्य व्याधेर्यदुत श्लेष्म प्रमेहः समक्रियत्वात्साध्यः । पित्त प्रमेहो विषमक्रियत्वाद्याप्यः । महात्ययत्वाच्च वातप्रमेहः प्रत्याख्येयः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनको बशमें रखभी सकताहो पर रोग मर्म स्थानमें होय तोभी रोग कृच्छ्रसाध्यहोताहै।

याप्य व्याधि।

शेषत्वादायुषो याप्यः पथ्याभ्यासाद्विपर्य्यये

अर्थ—जो रोगी की आयु शेषहो और वह निरन्तर पथ्यसेवन अर्थात् हितकारी आहार विहार करताहै तो साध्यलक्षणों से विरुद्ध लक्षण वाला रोगभी याप्य होजाता है।

मत्याक्षेय व्याधि।

अनुपक्रम एव स्यात् स्थितोऽत्यन्तविपर्ययेऽर औत्सुक्यमोहारतिकृदरिष्टोक्षनाशनः।

अर्थ—ऊपर कहे हुए याप्य लक्षणोंके अत्यन्त विपर्य्ययहोने से अर्थात् आयुके शेष न रहने पर, हितकारी आहार विहारादिके नियमोंकी रक्षा न करने पर और मज्जा शुक्रादि गंभीर धातुओंमें रोगके पहुंचने पर अथवा मर्मस्थानमें रोगके होने पर व्याधि अचिकित्स्व होजाती है। इसी तरह औत्सुक्य (गर्वादि विषयोंकेठा), मोह (चित्तकी अस्थिरता) और अरति (उठने बैठने आदिमें चैन न पडना) पैदाकरने वाली व्याधि भी अचिकित्स्य होती है। तथा जिसरोगमें रिष्ट अर्थात् मरणसूचक चिन्ह दिखाई देतेहों अथवा जिसरोगके होतेहीं आंख कान नाक आदि इन्द्रियोंका नाश होगयाहो, ये सब रोग असाध्य होते हैं इन रोगों की अच्छी तरह परीक्षा करके चिकित्सा करना आरंभकरै, ऐसा न करने से वैद्यके स्वार्थ और यश की हानिहो तीहै कहाभी है " व्याधि पुरा परीक्षैव मार भेत ततः क्रियाम्। स्वार्थविद्यायशोहानि. मन्यथा ध्रुवमाप्नुयात्" ॥

त्याज्य रोगी के लक्षण।

त्यजेद्वार्त्ते भिषग्भूपैर्द्विष्टं तेषां द्विषं द्विषम्३३ हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम्। चण्डं शोकातुरं भीरुं कृतघ्नं वैद्यमानिनम्३४

अर्थ—वैद्य और राजा जिससे द्वेष करते हैं, वा जो वैद्य और राजा से द्वेष करता हो, जो आपही अपना शत्रु हो, जो चिकित्साके योग्य उपकरणों से हीन हो जिसका चित्त बहुत से कार्यों में लगा हो, जो वैद्यकी आज्ञाका पालन न करता हो, जिसकी जीवन शक्ति क्षीण हो गई हो, इसी तरह क्रूर कर्म करने वाला, शोकातुर, डरपोक, कृतघ्न (उपकार को न माननेवाला), और वैद्याभिमानी चिकित्सा शास्त्रको न जानकर भी अपने को वैद्य मानने वाला)। ऐसे रोगियों की चिकित्सा करना कदापि उचितै नहीं है।

अध्यायों का अनुक्रम।

तन्त्रस्यास्य परिज्ञातो वक्ष्यतेऽध्यायसंग्रहः।

अर्थ—अब हम इस तंत्रके अध्यायों का संग्रह अर्थात् उनके नाम लिखते हैं।

सूत्रस्थान के नाम।

आयुष्कामदिनर्त्वीहारोगानुत्पादनद्रवाः ३५ अन्नज्ञानान्नसंरक्षामात्राद्रव्यरसाश्रयाः। दोषादिज्ञानतद्भेदतद्भिक्तित्सायुपक्रमः।३६ शुद्ध्यादिस्नेहनस्वेदरेकास्थापननावनम्। धूमगण्डूषषट्कसेकतृतियन्त्रकशस्त्रकम्।३७। शिराविधिः शल्यविधिः शस्त्रक्षाराग्निकर्मकाः सूत्रस्थान इमेऽध्यायास्त्रिंशत् शारीरमुच्यते

(१) आयुष्कामीय २ दिनचर्या ३ ऋतुचर्या ४ रोगानुत्पादनीय ५ द्रवद्रव्यविज्ञानीय ६ अन्नस्वरूपविज्ञानीय ७ अन्नरक्षा ८ मात्राशितीय ९ द्रव्यादिविज्ञानीय १०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसभेदीय ११ दोषादिविज्ञानीय १२ दोषभेदीय १३ दोषोपक्रमणीय १४ द्विविधोपक्रमणीय १५ शोधनादिगणसंग्रह १६ स्नेहविधि १७ स्वेदविधि १८ वमनविरेचनविधि १९ वस्तिविधि २० नस्यविधि २१ धूमपानविधि २२ गंडूषादिविधि २३ आश्चोतनांजनविधि २४ तर्पणपुटपाकविधि २५ यंत्रविधि २६ शस्त्रविधि २७ शिराव्यधविधि २८ शल्याहरणविधि २९ शस्त्रकर्मविधि ३० क्षाराग्निकर्म्मविधि इस प्रकार सूत्रस्थान के ये तीस अध्याय हैं ।

शारीरस्थान के अध्याय ।

गर्भावक्रान्तिशारीरमङ्गमर्मविभागिकम् । विकृतिर्दूतजं षष्ठम्,

(१) गर्भावक्रांतिशारीर २ गर्भव्याकरणशारीर ३ अंगविभागशारीर ४ मर्म्मविभाग शारीर ५ विकृतिविज्ञानीयशारीर ६ दूतादिविज्ञानीयशारीर ये छः अध्याय शारीरस्थान में हैं ।

निदानअध्याय के नाम ।

निदानं सार्वरोगिकम्।३९।
ज्वरासृग्वरकुष्ठासयक्ष्मादिमदाग्यर्शोतिसारिणाम्
मूत्राघातप्रमेहाणां विद्रध्याद्युदरस्य च ।४०।
पाण्डुकुष्ठानिलार्त्तीनां वातासृस्य च षोडश,।

(१) सार्वरोगनिदान २ ज्वरनिदान ३ रक्तपित्तकासनिदान ४ श्वासहिक्कानिदान ५ राजयक्ष्मादि विदान ६ मदात्ययनिदान ७ अर्शोनिदान ८ अतीसारग्रहणीनिदान ९ मूत्राघातनिदान १० प्रमेहनिदान ११ विद्रधिवृद्धिगुल्मनिदान १२ उदरनिदान १३ पांडुशोफविसर्पनिदान १४ कुष्ठश्वित्रकृमिनिदान १५ वातव्याधिनिदान १६ वातशोणित निदान इस तरह से १६ अध्याय निदानस्थान में ।

चिकित्सित स्थान के अध्याय

चिकित्सितं ज्वरे रक्ते कासे श्वासे च यक्ष्मणि
वर्मौ मदात्यये ऽर्शःसु विशि द्वौ द्वौ च मूत्रिते ।
विद्रधौ गुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्पिषु ।४२।
कुष्ठश्वित्रनिलव्याधिवातासृग्वसु चिकित्सितम्
द्वाविंशतिरिमेऽध्यायाः,कल्पसिद्धिरतःपरम्

(१) ज्वरचिकित्सित २ रक्तपित्तचिकित्सित ३ कासचिकित्सित ४ श्वसहिक्काचिकित्सित ५ राजयक्ष्मादिचिकित्सित ६ छर्दिद्वेगचिकित्सित ७ मदात्ययचिकित्सित ८ अर्शश्चिकित्सित ९ अतिसारचिकित्सित १० ग्रहणीदोषचिकित्सित ११ मूत्राघातचिकित्सित १२ प्रमेहचिकित्सित १३ विद्रधिवृद्धिचिकित्सित १४ गुल्मचिकित्सित १५ उदरचिकित्सित १६ पांडुचिकित्सित १७ श्वयथुचिकित्सित १८ विसर्पचिकित्सित १९ कुष्ठचिकित्सित२० श्वित्रकृमिचिकित्सित २१ वातव्याधिचिकित्सित २२ वातशोणितचिकित्सित इस तरह इन २५ अध्यायों को चिकित्सितस्थान कहते हैं इस के अनंतरकल्पस्थान है ॥

कल्पस्थान के अध्याय ।

कल्पो वमेर्विरेकस्य तत्सिद्धिर्बस्तिकल्पना
सिद्धिर्बस्त्याप्यदोषघ्नो, द्रव्यकल्पोऽतउत्तरम्

(१) वमनकल्प २ विरेचनकल्प ३ वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिकल्प ४ दोषहरणसाकल्यबस्तिकल्प ५ बस्तिव्यापत्सिद्धिकल्प ६ भेषजकल्प ऐसे ये छः अध्याय कल्पस्थान में हैं इस के आगे उत्तरस्थान है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्तर स्थान के अध्याय।

बालोपचारे तद्वधार्थौ तद्गृहे द्वौ च भूतगौ
उन्मादेऽथ स्मृतिभ्रंशे द्वौ द्वौ वर्त्मसु सन्धिषु
दृक्तमोलिङ्गनाशेषु त्रयो द्वौ द्वौ च सर्वगौ।
कर्णनासामुखशिरोव्रणे भग्ने भगन्दरे ॥४६॥
ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे पृथग्द्वयम्॥
विषे भुजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रसायने ॥४७॥
चत्वारिंशोऽनपत्यानामध्यायो बीजपोषणः।

(१) बालोपचरणीय २ बालामयप्रतिषेध ३ बालग्रहप्रतिषेध ४ भूतविज्ञान ५ भूतप्रतिषेध ६ उन्मादप्रतिषेध ७ अपस्मारप्रतिषेध ८ वर्त्मरोगविज्ञानीय ९ वर्त्मरोगप्रतिषेध १० संधिसितासितरोगविज्ञानीय ११ संधिसितासितप्रतिषेध १२ दृष्टिरोगविज्ञानीय १३ तिमिरप्रतिषेध १४ लिंगनाशप्रतिषेध १५ सर्वाक्षिरोगविज्ञान १६ सर्वाक्षिरोगप्रतिषेध १७ कर्णरोगविज्ञानीय १८ कर्णरोगप्रतिषेध १९ नासारोगविज्ञानीय २० नासारोगप्रतिषेध २१ मुखरोगविज्ञानीय २२ मुखरोगप्रतिषेध २३ शिरोरोगविज्ञानीय २४ शिरोरोगप्रतिषेध २५ व्रणविज्ञानीय प्रतिषेध २६ सद्योव्रणप्रतिषेध २७ भंगप्रतिषेध २८ भंगदरप्रतिषेध २९ ग्रंथ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीविज्ञान ३० क्षुद्ररोगविज्ञान ३१ क्षुद्ररोगप्रतिषेध ३२ गुह्यरोगविज्ञान ३३ गुह्यरोगप्रतिषेध ३४ विषप्रतिषेध ३५ ग्रंथ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीप्रतिषेध ३६ सर्पविषप्रतिषेध ३७ कीटलूतादिविषप्रतिषेध ३८ मूषिकालर्कविषप्रतिषेध ३९ रसायन, और ४० वाजीकरणअध्याय। इस तरहसे चालीस अध्याय उत्तरस्थान में है।

इत्यध्यायशतं विंशं षड्भिः स्थानैरुदीरितम्॥४८

इस तरह सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सितस्थान, कल्पस्थान और उत्तरस्थान इन छः स्थानोंमें १२० अध्याय है।

इति श्री अष्टाङ्गहृदये भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम यहांसे दिनचर्यानामक अध्यायका व्याख्यान करेंगे, इस तरह आत्रेयादिक महर्षि कहने लगे।

उठनेका समयादिनिरूपण

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः १

निरोग मनुष्यको उचित है कि ब्राह्म * मुहूर्त, अर्थात् चार घडी रात्रिरहेसे दो घडी रात्रि रहेतक अपनी आयुकी रक्षाके लिये सदा उठै, पीछे जीर्ण और अजीर्ण निरूपण आदि शरीर चिंतासे निवृत होकर मूत्र और मल आदिके त्यागकी विधि करै; समदोष सम अग्नि समधातु मल क्रियावाले पुरुषको स्वस्थ कहते हैं॥ १॥

× (नोट) जब पिछली चार घडी रात रह जाती है उसे ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं क्यों कि यह समय ब्रह्मके ध्यानकरने तथा वेदाध्ययन करनेका होता है एक मुहूर्तमें दोघडी होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दन्तधावन विधि

अर्कन्यग्रोधखादिरकरञ्जकुकुभादिकम् ॥
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् २
भक्षयेद्दन्तधावनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥

पीछे आक–बढ–खैर–करंजा–कौह आदि वृक्षकी दांतन प्रतिदिन प्रातःकाल करै। दांतन करनेसे पहिले उसके अग्रभाग को दांतोंसे चबाकर बहुत नर्म कूंची बनालेजिससे दांतों की जड और मसूडे में किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचे। दांतनका स्वाद कसेला, कडवा और तीखा होना चाहिये जिस से मुखकी विरसता जातीरहे ।

दन्तधावन निषेध ।

नाया दजीर्णवमथु श्वासकासज्वरार्दितौ ।३
तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत् ॥

जिसको अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, तृषा, मुखपाक, हृद्रोग, शिरके रोग, कर्णरोग हों वह मनुष्य दंतधावन न करै।

नेत्रोंमें सुर्माकी विधि ।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्तदा भजेत् ४

पीछे प्रतिदिन सुरमाका अंजन नेत्रों में आंजतारहै क्योंकि यह अंजन नेत्रोंके लिये हितकारी होता है ।

रसौत आंजने का विधान ।

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मणो भयम्
योजयेत्सप्तरात्रेऽस्मात्क्षाद्रजार्थं रसाञ्जनम्

अर्थ–नेत्र तेजोमय होतेहैं अर्थात् इनमें अग्निका स्वरूप होता है इसलिये कफका भय अधिक रहताहै इसीसे नेत्रोंमें से पानी निकालनेके लिये प्रत्येक सातवीं रातको रसौत आंजतारहै (दारुहलदीके काथमें बकरीका दूध पकाले इसीसे रसौत बनती है)

नस्यादिकर्म ।

ततो नावनगण्डूषधूमताम्बूलभाग्भवेत् ॥

अर्थ–तदनन्तर नावन (सूंघने योग्य द्रव्य सूंघना) गंडूष (कुल्ले आदि करना) धूम (हुक्का आदि पीना) और तांबूल भक्षण करै (इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे लिखा जायगा) ।

तांबूल के अयोग्य मनुष्य ।

ताम्बूलं क्षतपित्तास्रूक्षोत्कुपितचक्षुषाम् ६
विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं शोषिणामपि ॥

अर्थ–क्षयी, रक्तपित्त, रूक्ष, उत्कुपित चक्षु (नेत्रों का दूखना), विषभक्षण, मूर्च्छा, मद (शराब पीना), राजयक्ष्मा इन रोगों से पीडित मनुष्य को पान खाना उचित नहीं हैं ।

अभ्यंग विधि ।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा ।७॥
दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।८॥

अर्थ मनुष्यको उचित है कि प्रतिदिन अभ्यंग अर्थात् तैलमर्दन करतारहै क्योंकि इससे बुढापा, थकावट तथा वातरोग नष्ट होजाते हैं दृष्टि निर्मल बनीरहती है शरीर पुष्ट रहताहै आयु बढतीहै निद्रा सुखपूर्वक आतीहै, त्वचा सुन्दर और दृढ होजाती है । परन्तु इस तैलका प्रयोग सिर, कान, और पैर में विशेषता से करता रहै । ।

अभ्यंग का निषेध ।

वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्धवर्जाजीर्णिभिः

अर्थ--जो मनुष्य कफ से ग्रस्त है, अथवा वमनविरेचन (जुल्लाब) देकर शुद्ध किया

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गयाहै अथवा जो अजीर्ण से पीडित है उस को तैलमर्दन न करै ॥

व्यायाम के गुण ।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥१०॥

अर्थ–कसरत करने से शरीर में हलकापन, होता है काम करने की सामर्थ्य बढती है अर्थात् देह में फुर्ती और चुस्ती आजाती है, जठराग्नि प्रबल होजाती है, मेद का क्षय होता है, अंग के अवयव सुडौल और पुष्ट होजाते हैं ।

व्यायाम का निषेध ।

वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत् ॥

अर्थ–जो मनुष्य वात पित्त रोगसे पीडित है, तथा बालक वृद्ध और अजीर्ण वाले को कसरत करना उचित नहीं है ।

व्यायाम की योग्यता और काल ।

अर्धशक्त्यानिलेघ्नस्तुबलिभिःस्निग्धभोजिभिः
शीतकाले वसंते च मेदस्येव ततोऽन्यदा ॥

अर्थ–बलवान् और स्निग्धभोजियों (चिकना पदार्थ खाने वाले) को उचित है कि अपनी आधी शक्ति के अनुसार कसरत करें अर्थात् इतनी कसरत न करै जिस से थकावट होजाय । कसरत करने का ठीक समय जाड़े का मौसम और वसंत ऋतु है । इन से अन्य ऋतुओं में थोडी कसरत करना उचित है ।

व्यायाम के पीछे कर्तव्य कर्म ।

तं कृत्वाऽनु सुखं देहं मर्दयेच्च समंततः ॥१२॥

अर्थ–व्यायाम करने के पीछे शरीर के चारों ओर ऐसी रीति से धीरे धीरे मर्दन करै जिस से देह को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचे ।

अति व्यायाम के अवगुण ।

तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः कलमः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते

अर्थ–अत्यन्त कसरत करने से तृषा, क्षय, प्रतमक (श्वास रोग का भेद) रक्त पित्त, थकावट, क्लान्ति, खांसी, ज्वर और वमनरोग पैदा होजाते हैं ।

अति जागरणादि से हानि ।

व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यातिसाहसैः ।
गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नतिविनश्यति ॥१४॥

अर्थ–अत्यन्त कसरत करना अत्यन्त जागना, बहुत मार्ग चलना, अत्यन्त स्त्री संग, अत्यन्त हंसना बोलना, अकस्मात् साहस के काम कर बैठना ! ऐसे २ कामों के करने वाला ऐसे नष्ट होजाता है जैसे हाथी को खींचने से सिंह नष्ट होजाता है ।

उबटने के गुण ।

उद्वर्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम् ॥
स्थिरीकरणमंगानां त्वक्प्रसादकरं परम्॥१५॥

अर्थ–उबटना (पिट्ठी आदि में सुगंधित द्रव्य मिलाकर शरीर पर मलने का नाम उबटना है) करने से कफ जाता रहता है मेद रोग दूर होजाता है अंग दृढ़ होजाते हैं और शरीर की त्वचा बडी सुशोभित हो जाती है ।

स्नान के गुण ।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम् ॥
कंडूमलश्रमस्वेदतंद्रातृड्दाहपाप्मजित्॥१६॥

अर्थ–स्नान करने से जठराग्नि प्रदीप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होती है, वीर्य और आयु बढते हैं उत्साह और बल वृद्धि पाते हैं, तथा खुजली, मैल, थकावट, पसीना, तन्द्रा, तृषा, दाद और पाप रूप दूर हो जाते हैं ।

गर्म जल से स्नान के गुणागुण ।

उष्णांबुनाधःकायस्य परिषेको बलावहः ॥
तेनैव चोत्तमांगस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् १७

अर्थ–यदि नीचे के अंग पर गर्म जल का तरेड़ा दिया जाय तो बल की वृद्धि होती है और मस्तक पर गर्म पानी का सेचन करना बाल और नेत्रों का बलनाशक है ॥

स्नान का निषेध ।

स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ॥
आध्मानपीनसाजीर्णिभुक्तवत्सु च गर्हितम्१८

अर्थ–अर्दित नामक वात रोगी को तथा जिस के नेत्र, मुख और कान में कोई रोग हो, तथा जिस को अतिसार, पेट में अफरा, और अजीर्ण हो तथा जो भोजन करके चुका हो उन को स्नान नहीं करना चाहिये ।

मूत्रादि वेगोंके रोकनेको निषेध ।

जीर्णे हितं मितं चाद्यान्न वेगानीरयेद्बलात् ॥
नवेगितोऽन्यकार्यःस्यान्नाजित्वासाध्यमामयम्

अर्थ–पूर्व खाये हुए अन्न के अच्छी तरह पचजाने पर भी शरीर की प्रकृति के अनुसार हितकारी और प्रमाणयुक्त भोजन करना चाहिये । बलपूर्वक मलमूत्रादि के वेगों को न करै (अर्थात् दस्त की इच्छा न हो तो बलपूर्वक दस्त को न जाय) अथवा जिस को मलमूत्रादि का वेग हो रहा हो वह किसी दूसरे काम के करने में प्रवृत्त न हो। इसी तरह साध्य रोगको दूर किये विना किसी दूसरे काम में न लगे क्योंकि उस की उपेक्षा करने से वह असाध्य हो जाता है ।

धर्म पर दृढता ।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्२०

अर्थ–संपूर्ण प्राणियों की सब प्रवृत्तियां सुख के निमित्त होती हैं, और वह सुख विना धर्म के नहीं मिलता, इस लिये सदा धर्म में तत्पर रहना उचित है ।

मित्र शत्रु का विवेक ।

भक्त्या कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ॥

अर्थ–अपनी भलाई चाहने वाले मित्रों का प्रेम से सेवन करे और शत्रुओं को दूर ही से त्यागदे ।

हिंसादि, पापों का त्याग ।

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशून्यं परुषानृते ।२१
संभिन्नालाप्यव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम् ॥
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।२२

अर्थ–हिंसा (प्राणियों का बध) स्तेय (चोरी करना,) अन्यथाकाम (अगम्या स्त्रियों का समागम) ये तीन कायिक पाप हैं । पैशुन्य (चुगली) परुष (कठोर वचन,) अनृत (मिथ्या भाषण,) संभिन्नालाप (अमर्याद बोलना, ये चार वाचिक पाप है । व्यापाद (औरों के अनिष्टका विचार,) अभिध्या (पराये उत्कर्ष को न सहना,) दृग्विपर्यय (शास्त्र में कुतर्क) इन दस पापों को शरीर वाणी और मन से त्याग देना चाहिये ।

प्राणिमात्र पर समदृष्टि ।

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुवर्तेत शक्तितः ॥
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्२३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--जीविकारहित, व्याधिग्रस्त, और शोकपीडित मनुष्यों की यथाशक्ति सहायता करता रहै। कीडेमकोडे और चींटीपर्य्यन्त सब को सदा अपने ही समान देखे।

अन्य उपयोगी कर्म।

च वयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन्॥
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्।
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ॥

अर्थ--देव, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध (वयोवृद्ध, शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध,) वैद्य, राजा और अतिथि (भोजन के समय आनेवाला परदेशी मनुष्य) इनका यथा योग्य सन्मान करता रहै। याचकों को विमुख न जाने दे और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार भी न करै। जो शत्रु भी अपने साथ बुराई करने में तत्पर हो तो भी उस के साथ उपकार करता रहै।

सुखदुख में समभाव।

'संपद्विपत्त्वेकमना हेतावीर्ष्यैत्फले न तु २५

अर्थ--संपत्ति और विपत्ति में सदा एकसा मन रखना चाहिये, संपत्ति में तो हर्षसे फूलकर मदांध न होवे और विपत्ति में शोकातुर और दीन न बन जाय। ईर्ष्या हेतुपर करना उचित है फल पर न करनी चाहिये। इसका यह तात्पर्य है कि विद्यादिक गुणों से मान मिलता है तो उसके मान भंग करने की इच्छा न रखकर उस मान का हेतु जो विद्या है उसको अपने में लाकर उसके बराबर होने की इच्छा रखना उचित है। इस तरह करी हुई ईर्ष्या दुर्गुण नहीं किन्तु गुणरूप है।

बोलने आदि पर उपदेश।

काले हितं मितं ब्रूयात्प्रियसंवादि पेशलम्॥
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः २६
नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शंकितः।
न कंचिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः॥

अर्थ--प्रसंग आनेपर हितकारी, थोडे, सत्य, कामों को प्यारे और मीठे वचनों से बोलना चाहिये। अपने पास आनेवालों के साथ प्रथम आपही बोले उसके बोलने की अपेक्षा न करै। सदा हँसमुख रहै, सुशील, दयार्द्र और कोमल चित्तवाला रहै। अकेला ही सुख भोगने की इच्छा न रक्खै, सब में विश्वास और सबमें ही अविश्वास न रक्खै। किसी के साम्हने प्रकट न करे कि में अमुक मनुष्य का शत्रु हूं और अमुक मनुष्य मेरा शत्रु है। अपना निरादर वा अपने मालिक की अपने ऊपर प्रीति घटने का किसी के सन्मुख प्रकाश न करै।

अन्य के साथ वर्ताव।

जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति २८
तं तथैवानुवर्तेत परा राधनपंडितः॥

अर्थ--मनुष्य की प्रकृतिको जानकर जो जैसे प्रसन्न हो सक्ता हो उसको वैसेही प्रसन्न करने का उपाय करै। जो दूसरे को प्रसन्न करलेता है वही चतुर है।

इन्द्रियों का नियम।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्२९

अर्थ--जिव्हा आदि इन्द्रियों को कुत्सित अन्नादि के भक्षण से अत्यन्त पीडित न करै और न बहुमूल्य भोजनादि से उनका लाड प्यार करै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्म की रीति ।

त्रिवर्गशून्यं नारंभं भजेत्तं चाविरोधयन् ॥

अर्थ–धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंको लक्ष्य में रखकर काम का प्रारंभ करे और इन तीनों में परस्पर किसी प्रकार का विरोध पैदा न हो ऐसी रीति से काम करना उचित है । जैसे धर्मका काम करने में अर्थहानि और कामहानि न होने पावे, इसीतरह अर्थ प्राप्त करने में धर्महानि वा कामहानि न हो और काम साधन में धर्महानि वा अर्थहानि न हो

अन्य नियमोपनियम ।

अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ३७।
नीवरोमनखश्मश्रुनिर्मलांश्चिमलायनः ॥
स्नानशीलः सुरुचिभिः सुवेषोऽनुल्बणोज्ज्वलः
धारयेत्सततं रत्नसिद्धमंत्रमहौषधीः ॥

अर्थ–संपूर्ण धर्मों के आचरण में मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये । बाल, नख, डाढी, मूछ आदि को कटवा छटवा और मुडवाकर ठीक और स्वच्छ रक्खे और हाथ, पांव, नाक, कान, आदि का मैल दूर कर के साफ़ रक्खै प्रतिदिन स्नान करके सुगंधित द्रव्यों को धारण किये रहै, स्वच्छ, निर्मल और उज्वल वस्त्रादि से भले आदमियों का सा सुन्दर वेष धारण रक्खै, उद्धत वेष धारण करके छैला बना न फिरे। रत्नाभरण, अपराजितादिक सिद्ध मंत्र और सहदेवी आदि महा औषधियों को सदा धारण करे ।

छातपत्रवदृष्टाग्रो विचरेद्युगमात्रदृक् ॥३२॥
निशि वात्यधिके कार्ये दंडी मौली सहायवान्,

अर्थ–छत्री लगाकर और जूता पहनकर अपने आगे की चार हाथ पृथ्वी को देखता हुआ मार्ग में निकले । रात्रि में अथवा किसी संकट के काम में जब बाहर जाने की आवश्यक्ता हो तो लाठी लेकर सिरपर साफा बांधकर दो चार सहायकों को संग लेकर निकले, किसी आचार्य ने लाठी बांधने की प्रशंसामें लिखा है कि "स्खलतः संप्रतिष्ठानं शत्रूणां निषेधनम् । अवष्टंभनमायुष्यं भयघ्नं दंडधारणम् ॥ गिरते हुए को सहारा देने वाली, शत्रुओं को निवारण करने वाली, आधार देनेवाली, आयुवर्द्धक और भयनाशक लाठी होती है ।

चैत्यपूज्यध्वजाश्वत्थच्छाया भस्मतुषाशुचीन्
नाक्रामेच्छर्करालोष्टवलिस्नानस्रुवोऽपि च ।
नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कंधमभिव्रजेत् ३४
संदिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानवत् ॥

अर्थ–देवस्थानका वृक्ष, गुरुपुत्रादि पूज्य मूर्ति, ध्वजा, चांडालादिक की छाया, भस्म का ढेर, अपवित्र विष्ठादि कंकरीलीरेत, मिट्टी, बलिदान और स्नान करके स्थानों का उल्लंघन न करै । बाहुबल से नदी के पार न जाय, अग्नि के समूह के सन्मुख न जाय, जैसे खोटी सवारी पर नहीं चढते हैं वैसेही संदेह पड़ जानेपर नाव वा वृक्ष पर न चढे ।

ताम्रवृतमुखः कुर्यात्सुतिलाज्यविदूषभम् ३५
नारिष्टां न विकुर्वीयान्नाकस्माद्विलिखेद्भुवम्
जांगश्चेष्टेत विगुणं नार्तनोत्कटकस्थितः ३६
देहवाक्चेतसां सेवाः प्राक् श्रमाद्विनिवर्तयेत्
नार्द्रजातुदिवं तिष्ठेन्नक्तं सेवेत न द्रुमम् ३७
तथा चत्वरचैत्यांतश्चतुष्पथसुरालयान् ॥
सूनाटवीशून्यगृहद्रमशानानि दिवापि न ३८

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--मुख को हाथ वा वस्त्र से ढके विना छींक लेना, हंसना वा जंभाई लेना उचित नहीं है। नासिका का मल निकालने के समय के सिवाय कभी नासिका को न खेंचे। निष्प्रयोजन ठाली बैठे पृथ्वी पर लकीर न खींचे वा न खोदे। हाथ पांव आदि अंगों से कुत्सित चेष्टा न करै। उकडू आसन से न बैठे। थकावट पैदा होने से पहिले ही देह, वाणी और चित्त के व्यापार को बन्द कर देना उचित है पैरों को ऊंचा करके बहुत देर तक न बैठा रहै। रात में पेड के नीचे न सोवे क्योंकि रात्रि के समय पेड में से जाइट्रोजिन निकलती है जो प्राणघातक होती है। चौराहा, देवस्थानका वृक्ष, बौद्धोंका मठ, तिराहा, और देवालय इन स्थानोंमें रात्रि को न रहना चाहिये। वधस्थान, निर्जन स्थान, सूने घर और परघर में दिन में भी न रहना चाहिये।

सर्वथेक्षेत नादित्यं न भारं शिरसा वहेत्॥
नेक्षेत प्रतनं सूक्ष्मदीप्तामेध्याप्रियाणि च ३९
" मद्यविक्रयसंधानदानादानानि नाचरेत्॥

अर्थ--सूर्यकी ओर किसी प्रकार से भी न देखे क्योंकि ऐसा करने से दृष्टिपर आघात पहुंचता है, बोझ को सिरपर लादकर न जाय, बहुत सूक्ष्म (छोटी) और अत्यन्त चमकीली वस्तुओं को न देखे इससे दृष्टिमारी जाती है। अप्रिय और घिनौनी अपवित्र वस्तुओं को न देखै इससे चित्त में विकार होकर अनेक रोग पैदा होजाते हैं। शराब बेचना, फलों का आसवनिकालना वा अन्य मादक द्रव्योंका लेना देना सर्वथा वर्जित है।

त्याग के योग्य अन्य कर्म।

पुरोवातातपरजस्तुषारपरुषानिलान्॥४०॥
अनृजुः क्षवधूद्गारकासस्वप्नान्नमैथुनम्॥
कूलच्छायानृपद्विष्टव्यालदंष्ट्रिविषाणिनः ४१
हीनानार्यातिनिपुणसेवां विग्रहमुत्तमैः॥
संध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिंतनम् ४२
शत्रुसत्रगणाकीर्णगणिकापाणिकाशनम्॥
गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यं हस्तकेशावधूननम्॥४३॥
तोयाग्निपूज्यमध्येन यानं धूमं शवाश्रयम्॥
मद्यातिसक्तिं विश्रंभस्वातंत्र्ये स्त्रीषु च त्यजेत्

अर्थ--पूर्व की वायु, तेज धूप, उडती हुई धूल, तुषार कर्कश पवन इनका सेवन न करै। शरीर को टेढा तिरछा किये विना समान सुधारी बैठे छींक, डकार और खांसी निषिद्ध है, सोना भोजन करना और मैथुन करना भी बुरा है। नदी के करारे की छायामें बैठना, राजा से बैर करना अथवा राजा के बैरी से मेल रखना, सर्प खिलाना, दांत वाले तथा सींगवाले जानवरों से सदा बचता रहै। नीच, अशिष्ट, और अत्यन्त चतुर की सेवा, और उत्तम मनुष्यों के साथ लडाई त्याग देनी चाहिये। संध्याकाल में भोजन स्त्रीसंग, शयन, पठनपाठन और किसी विषय का चिंतवन छोड़ देवै। शत्रु का दिया भोजन, यज्ञ का भोजन, भाट चारणादि का भोजन, वेश्याका भोजन, और दुकानदारका भोजन न करै। शरीर मुख और नखों को न बजावै,। हाथ से सिर के बालों को पकड़ पकड़ कर न खींचे, जल के बीच में, अग्नि के बीच में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा गुरुजनों के बीच में होकर न निकले मुर्दे के धूंएका सेवन न करै । शराब बहुत पीना छोडदे, स्त्रियों में बहुत विश्वास छोड दे और उन को स्वतंत्र न छोड़े ॥

लोक के अनुसार काम की विधि ।

" आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीक्षकः ४५

अर्थ—संसार के सब कामों में लोक ही बड़ा आचार्य है इस लिये संसार के व्यवहार को देखकर बुद्धिमान मनुष्य को उचित है कि जैसे अन्य लोग काम चलाते हों वैसे ही आपभी चलावै ॥

सद्व्रत के लक्षण ।

आर्द्रसंतानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः । स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ४६

अर्थ--संपूर्ण प्राणियों पर दयालुता, दान शीलता, मन, वचन और शरीर का बस में रखना, पराये काम में ऐसी बुद्धि रखना कि यह मेरा ही काम है । ऐसे आचरण वाले पुरुष सद्व्रत कहलाते हैं ।

रात्रि दिन का विचार ।

नक्तंदिनानि मे यांति कथंभूतस्य संप्रति । दुःखभाङ्न भवत्येवं नित्यं संनिहितस्मृतिः ४७

अर्थ--जो आदमी नित्य प्रति यह विचारते रहते हैं कि मेरे दिन और रात किस किस काम के करने में बीतते हैं वे कभी दुख के भागी नहीं होते ।

आचार का फल ।

इत्याचारः समासेन संप्राप्नोति समाचरन् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकांश्च शाश्वतान् ४८

अर्थ--इस तरह संक्षेप रीति से मनुष्यों के आचार व्यवहारका वर्णन किया गया है । जो इन नियमों के अनुसार चलते वे आयु, आरोग्यता, ऐश्वर्य, और यश प्राप्त करते हैं और मरने पर सद्गति को प्राप्त होते हैं ।

इत्यष्टाङ्गहृदये सूत्रस्थाने भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात ऋतुचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ--तदनन्तर आत्रेयादिक महर्षि कहने लगे कि अब हम ऋतुचर्याध्याय की व्याख्या करते हैं ।

छः ऋतुओं के नामादि ।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैःक्रमात्षड्ऋतवःस्मृता शिशिरोऽथ वसंतश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः । शिशिराद्यास्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम् । आदानं च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम् ॥२॥

अर्थ--माघ आदि दो दो महिने की एक एक ऋतु होती है जैसे माघ और फाल्गुन में शिशिर ऋतु, चैत्र वैसाख में वसंत, ज्येष्ठ आषाढ में ग्रीष्म, श्रावण भाद्रपद में वर्षा आश्विन और कार्तिक में शरद तथा अगहन, पौष में हेमन्त ऋतु होती है । इन में से शिशिर वसंत और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं का उत्तरायण काल कहलाता है यह पुरुष के बलका आदान काल है अर्थात् उत्तरायण में सूर्य प्रति दिन मनुष्य के बलको हरण करताहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बलका आदान और विसर्ग काल।

तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्णरूक्षा मार्गस्थभावतः
आदित्यपवनः सौम्यानक्षयंतिगुणान् भुवः३
तिक्तः कषायःकटुको बलिनोऽत्रसाक्रमात्।
तस्मादादानमाग्नेयम्
ऋतवो दक्षिणायनम् ॥४॥
वर्षादयोविसर्गश्च यद्बलं विसृजत्ययम्।

अर्थ--उत्तरायण काल में सूर्य का मार्ग बदलेने के कारण से सूर्य और पवन अत्यन्त प्रचंड, गर्म और रूक्ष होजाते हैं और पृथ्वी के सौम्य गुणों को नष्ट कर देते हैं और क्रम से इन ऋतुओं में तिक्त, कषाय और कटु ये तीन रस बलवान् होजाते हैं अर्थात् शिशिर में तिक्त, वसंत में कषाय, और ग्रीष्म में कटु रस बलवान् होजाते हैं। इस कहे हुए ऋतु से बलका आदान अग्निरूप है, तथा इसके विपरीत वर्षा, शरद और हेमन्त ये तीन ऋतु दक्षिणायन कहलाती हैं। इन तीन ऋतुओं में पुरुष का बल पीछा आता है इसी से इस को विसर्गकाल कहते हैं।

बलविसर्ग का कारण।

सौम्यत्वादत्र सोमो हि बलवान् हीयते रविः
मेघवृष्ट्यनिलैः शीतैः शांततापे महीतले।
स्निग्धाश्चेहाम्ललवणमधुरा बलिन रसाः६

अर्थ--मेघ की वृष्टि और ठंडे पवन के चलने से पृथ्वी पुष्ट और शीतल होजाती है और इस शीतलता के कारण चन्द्रमा बलवान् होजाता है और सूर्य हीनता को प्राप्त होता है और इस ऋतु में खट्टे खारे और मधुर रस बलवान् होजाते हैं जैसे वर्षा में खट्टा, शरद में लवण और हेमंत में मधुर रस बलवान् होजाते हैं।

ऋतुपरता से बल की प्राप्ति।

शीतेऽग्र्यं वृष्टिघर्मेऽल्पं बलं मध्यं तु शेषयोः।

अर्थ--शीतकाल अर्थात् हेमन्त और शिशिर में उत्तम बल की प्राप्ति होती है। वर्षा और ग्रीष्म में अल्पबल तथा शरद और वसंत काल में मध्यम बल की प्राप्ति होती है।

हेमंत में जठराग्नि का प्राबल्य।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमंते प्रबलोऽनलः।७।
भवत्यल्पेंधनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः।

अर्थ-हेमंत ऋतु में बलवान पुरुष की जठराग्नि प्रबल होजाती है, क्योंकि बाहर चारों ओर शीत रहने के कारण अग्नि भीतर रुकी रहती है। इसलिये इस समय में जो थोड़ा आहार मिले तो वह आहार रूप ईंधन वायुप्रेरित अग्नि की प्रबलता से जलकर धातुओं को जला देता है॥

हेमन्त में सेवनीय रस।

अतोहिमेऽस्मिन्सेवेतस्वाद्वम्ललवणान्रसान्

अर्थ--इसलिये हेमन्त ऋतु में धातु पाक विरोधी मधुर अम्ल और लवण रसोंका सेवन करता रहै।

हेमन्त की दिनचर्या।

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः।
अवश्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु।९।

अर्थ--हेमन्त ऋतु में रात्रि बड़ी होतीहै इस लिये प्रातःकालही भूख लगती है। भुक्त द्रव्य प्रायः अजीर्ण नहीं रहताहै, अतएव प्रातःकालही मलमूत्र त्याग आदि अवश्य कार्य करके दिनचर्य्या में कहेहुए दन्त धांवन, अभ्यंगादि संपूर्ण कामोंको करै। आवश्यक कामोंको करके पीछे यथोक्त कामकरै; यद्यपि ऐसा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहा है तथापि भूखेको पहिले भोजन करना चाहिये" कहाभीहै "आहार काले संप्राप्ते योनभुंक्ते बुभुक्षितः । तस्य सीदति कायाग्नि र्निरंधन इवानल इति"

अभ्यंगादि ।

वातघ्नतैलैरभ्यंगं मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम् ।
नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः १०

अर्थ–शीतकाल में वातनाशक बलातैलादिका शरीर पर मर्दन करै । मस्तक पर विशेष रूपसे तैल लगावै । कुश्ती लड़नेवाले प्रवीण मनुष्यके साथ कुश्ती करै और युक्तिपूर्वक पादाघात (एकप्रकार की पांवोंकी कसरतहै) करै । युक्तिपूर्वक इस लिये कहाहै कि जबतक शरीर में थकावट नहो तबतक इन कामोंको करै ।

स्नानादि ।

कषायापहृतस्नेहस्ततः स्नातो यथाविधि ।
कुंकुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ।११।

अर्थ–कसरत करनेके पीछे लोध्रादिकषाय द्वारा शरीरकी चिकनाई दूर करके विधिपूर्वक स्नान करै, पीछे कुंकुम कस्तूरी का शरीरपर लेप करके अगरकी धूपसे शरीरको धूपितकरै अर्थात् अगरकी लकड़ी अग्निमें जलाकर उसका धूंआं ग्रहण करै ।

भोजनादि ।

रसान्स्निग्धान्पलं पुंस्तौडमच्छसुरां सुराम्
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः शुभाः १२
नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम् ।
प्राग्शाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम् १३
उष्णस्वभावैर्बहुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ।
युवत्याकीर्णगात्रस्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥

अर्थ–स्नानादिसे निवृत्त होकर स्निग्ध रस अर्थात् मधुराम्ललवण रसों के बने हुए पदार्थ, मोटे पशुओं का मांस, गुड़का बना हुआ मद्य, अच्छसुरा (सुरामंड) मदिरा का सेवन करै । गेंहू, साठीचांवल, उरद, ईख, और दूध के बनाये हुए अनेक प्रकार के सुन्दर पदार्थों का भक्षण करै । नया अन्न, शुद्धमांसका स्नेह जिसे चर्बी कहते हैं, और तेलका सेवन करै । शौचादिकक्रिया अर्थात् हाथ पांव के धोने के लिये गरम जल काम में लावै । गलीचा, मृगछाला, रेशमी वस्त्र अथवा कोमल कम्बल बिछाकर हलका और गर्म वस्त्र वा रुई की सौड़ ओढकर सोवै । सुहानी हुई धूप में बैठै । थोड़ा पसीनाले, और सदा जूते पहनता रहै ।

स्त्री सेवन ।

पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः ।
हरंति शीतमुष्णांग्यो धूपकुंकुमयौवनैः ।१५।

अर्थ– जिनके ऊरु (जंघा) और श्रोणिदेश पुष्ट, स्तन पीनोन्नत, हों जो जवानी के मदसे मत्त, प्रेमासक्त, अगर आदिके धूआं से धूपित, कुंकुमआदिसे लेपित, तरुणाई की गर्मीसे गरम विलासिनी कामिनी हेमन्तके शीतको हरतीहै अर्थात् इस कठिन शीतकाल में ऐसी स्त्रियोंका सेवन उचितहै ।

रहने का घर ।

अंगारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिणः ।
शीतपारुष्यजनितो नदोषो जातु जायते १६

अर्थ– जो हेमन्तकालमें प्रज्वलित अंगारों से संतप्त गर्भगृह अथवा भूगर्भ में रहते हैं उनके कठोर जाड़े से होनेवाला कोई रोग उत्पन्न नहीं होसकताहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घरके भीतर जो घर होताहै गर्भगृह और पृथ्वीके नीचे जो घर होताहै उसे भूगृह वा पातालघर कहतेहैं।

शिशिरचर्या।

"अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम्।

अर्थ– हेमन्तकालकी अपेक्षा शिशिरऋतु में जाड़ा विशेष पड़ताहै, आदानकालकी रूक्षता विशेष होतीहै, इसलिये इस ऋतुमें हेमन्तऋतु की कही हुई दिनचर्याका अधिकरूपसे व्यवहार करना उचितहै।

वसन्तचर्या।

कफश्चितो हि शिशिरे वसंतेऽर्कांशुतापितः हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्।

अर्थ– शिशिरऋतुमें मधुर और स्निग्ध भोजनोंके करनेसे शरीरमें कफ अतिशय संचित होजाताहै और वही वसंत ऋतुमें सूर्य के प्रभावसे पिघलकर जठराग्निका नाश करताहै और रोगोंको उत्पन्न करताहै इससे कफको जीतनेका शीघ्र उपाय करना चाहिये।

कफ-जीतने के उपाय।

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनः। व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वाश्लेष्माणमुल्बणम् स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचंदनागुरुकुंकुमैः। पुराणयवगोधूमरूक्षौद्रजांगलशूल्यभुक् ॥२०॥ सहकाररसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रिययार्पितान्। प्रियास्यसंगसुरभीन् प्रियानेत्रोत्पलांकितान्। सौमनस्यकृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिबेत्। निर्गंधासवारिष्टसीधुमाद्वर्कमाधवान् २२

अर्थ–तीक्ष्ण वमन और तीक्ष्ण नस्यादि (नस्यविरेचन) लेवै। हलके और रूखे भोजन करै, कसरत, तैलमर्दन (उबटना) शरीरमर्दन आदि से बढ़े हुए कफका नाश करै। पीछे स्नानकरके चन्दन, कपूर, अगर, कुंकुम आदि सुगंधित द्रव्यों का लेपन करै तदनन्तर पुराने जौ या गेंहूं की रोटियां खाय, शहत और जांगल देश के पशु पक्षियों के मांस का शूल्य (कांटे पर भुना हुआ मांस अर्थात् कबाब) सेवन करै पीछे उत्तम सौरभयुक्त आम्ररसमिश्रित, अपनी प्रिया से आस्वादित (चाखा हुआ), तथा अपनी प्रिया के ओष्ठों के स्पर्श से सुगन्धीकृत और अपनी प्रणयिनी के नेत्र कमलों से प्रतिबिम्बित (प्रियाके नेत्रों के समान ललाई लिये हुए) आसव, अरिष्ट, सीधु (ईखके रसका बना हुआ), माद्वीक (द्राक्षारस) और माधव (शहत का बना हुआ) आदि प्रिया के हाथ से दिये हुए निर्दोष मद्य समान अवस्थावाले बन्धु बान्धव और मित्रों के साथ बैठकर प्रसन्न चित्त होकर पान करै।

अन्य उपाय।

"शृतांबुरांबु सारांबु मध्वंबु जलशंबु वा।

अर्थ-सोंठका काथ, असन चन्दनादि डालकर सिद्ध किया हुआ जल, मधुमिश्रित जल अथवा मोथा डालकर पकाया हुआ जल पानकरै।

वसन्त का मध्याह्नकाल।

दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलवाहिषु ॥२३॥ अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिहर्म्यकांतिषु। परपुष्टविघुष्टेषु कामकर्मांतभूमिषु ॥ २४ ॥ विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु। "गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत्सुखी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जिस स्थानमें सुशीतल दक्षिणका वायु मन्द मन्द बहताहो, जिसके चारों ओर जलकी नालियां बहतीहों, जहां किसी जगह वृक्षोंकी शाखा प्रशाखाओं में होकर सूर्यकी किरणें पड़तीहों अथवा बिलकुलही न पड़ती हों, जहां वज्र मरकतादि मणियोंकी कांतिके समान झिलमिलाहट करनेवाली सचिक्कण शिला पड़ीहों, जहां कोकिलोंके समूह कुहू कुहू शब्द करते हुए मधुर गानकर रहेहों, जहां कामकेलिके उपयुक्त सुन्दर भूमिहों, जहां अनेक प्रकारके मनोहर पुष्पोंके वृक्ष सुशोभित हो रहेहों और जिनकी सुगन्धिसे संपूर्ण उपवन महक रहाहो ऐसे उपवनमें राग द्वेषादिसे रहित अनेक प्रकारकी आमोद प्रमोद जनक बातें करताहुआ मध्यान्ह कालको आनन्दसे व्यतीतकरै।

बसंत में त्याज्य रस।

गुरुशीतदिवास्वप्नस्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत्।

अर्थ–इस बसंत ऋतु में गुरु, शीतल, स्निग्ध, अम्ल और मधुर रसका सेवन तथा दिनमें सोना त्याग देना चाहिये।

ग्रीष्मचर्या।

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत्
प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते।
अतोऽस्मिन्मधुरं स्निग्धं लघ्वन्नं शीतलं द्रवम्

अर्थ–ग्रीष्म ऋतु में सूर्यदेव जगत के स्नेहपदार्थ अर्थात् सारांश को हरने के निमित्तही अत्यन्त तीक्ष्ण किरणों द्वारा पृथ्वी पर उतरते हैं। इसी से प्रतिदिन कफ का नाश और वायु की वृद्धि होती है। इसी से इस काल में तिक्त, कटु और अम्ल रसों का परित्याग उचित है तथा कसरत करना धूप में चलना फिरना छोड देना चाहिये।

ग्रीष्म के कर्तव्य कर्म

भजन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम्।
सुशीतलांभसिक्तांगोल्लिह्यात्सक्तूनसशर्करान्
मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं सुबहु वारि वा।
अन्यथा शोफदौर्बल्यदाहमोहान् करोतितत्

अर्थ–इस ग्रीष्मकाल में मधुर, अन्न तथा हलका, स्निग्ध, ठंडा और द्रव पदार्थ सेवन करना चाहिये। ठंडेजल से स्नान करके जलमें सत्तू घोलकर शकर डालकर पीना चाहिये।

इस ऋतुमें मद्यपान निषिद्ध है, वातकफ प्रकृति वाले को वातके क्षयके लिये पीना ही पडे तो बहुतसा जल मिलाकर बहुत थोडा पीना चाहिये। इस के विपरीत आचरण करने से शोथ (सूजन) शैथिल्य (देहमें शिथिलता) दाह और अज्ञानता उत्पन्न होते हैं।

ग्रीष्म का भोजन।

कुंदेंदुधवलं शालिमश्नीयाज्जांगलैः पलैः।

अर्थ–कुंदके फूल और चन्द्रमाके समान सफेद शालीचांवल बनके पशुपक्षियों के मांसके साथ खाना चाहिये।

ग्रीष्म में पान विधि।

पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागखांडवौ ३०
पानकं पंचसारं वा नवमृद्भाजनस्थितम्।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लंमृन्मयशुक्तिभिः३१

अर्थ–न बहुतगाढा न पतला मांसरस, रसाला, राग, खांडव, और पंचसार नामक पानक मिट्टीके नये पात्रमें भरकर अम्लरस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिलाकर केला और फनसके पत्तों में निकालकर मिट्टीके प्याले में भर भरकर पीना चाहिये।

इन सबके लक्षण अन्य ग्रन्थों में इस प्रकार लिखे हैं " सितामध्वादिमधुरारागगास्तान्छकांतयः। ते साम्लाः खांडवा लेह्याः पेयाक्षांशुकगालिताः। स्वाद्वम्लपटु कट्वाद्याः प्रलेहास्तत्र खांडवाः। गुडदाडिममांसाद्यारागाक्षांशुकगालिताः। हृद्यावृष्यारुचिकरा ग्राहिणो रागखांडवा इति। तथा। द्राक्षामधूक्षखर्जूरकाश्मर्यैः सपरूषकाः तुल्यांशैः कल्पितं पूतं शीतं कर्पूर वासितं। पानकं पंचसाराख्यं दाहतृष्णानिवर्तकम्। अन्यत्र चोक्तम् यथा।गुडदाडिमादियुक्ताविज्ञेया रागखांडवाः त्रिजातमरिचाद्यैस्तु संस्कृताःपानकास्तथेति। अर्थात् राग और खांडव पीने तथा चाटने के पदार्थ होते हैं। शक्कर दाहद आदि मधुर द्रव्यों का राग बनता है, इसी में इमली की खटाई डालने से खांडव बन जाता है। जो इनको गाढा रक्खे तो चाटने के योग्य होते हैं और पानी डाल कर वस्त्र में छान कर काम में लाया जाय तो पेय होते हैं। राग और खांडव तृप्त वृष्य रुचिकर और ग्राही होते हैं। दाख, मुलहटी, खिजूर खंभारी और परूषक समान भाग लेकर मसल कर छान ले और कर्पूरादि द्रव्यों से सुगंधित करले तो यह पंच साराख्य पानक कहाता है। यह दाह और प्यास मिटाता है दही, कुंकुम चीनी, शहत और कपूर को मिलाकर वस्त्र में छान लेने से रसाला बनती है

ग्रीष्म में जलपान।

" पाटलावासितं वांभः सकर्पूरं सुशीतलम्

अर्थ– पाटलके पुष्पोंसे सुवासित और कपूरसे सुगंधित मिट्टीके पात्रमें भरा हुआ जल पीनेके योग्यहै।

ग्रीष्म में रात्रि भोजन।

शशांककिरणान्भक्ष्यान्रजन्यांभक्षयन्पिबेत् ससितं माहिषं क्षीरं चंद्रनक्षत्रशीतलम् „।

अर्थ– रात्रिके समय शशांककिरण (कर्पूरनालिका) नामक भक्ष्य पदार्थ खाकर ऊपरसे भैंसका दूध पीवे। यह दूध चन्द्रमा और तारागण की ज्योतिके नीचे रखकर अच्छी तरह ठंडा करलिया जाय और इसमें सफेद चीनी डाली जाय।

ग्रीष्म का मध्यान्ह काल।

अभ्रंकषमहाशाल तालरुद्धोष्णरश्मिषु॥३३॥ वनेषु माधवी शिष्ट द्राक्षा स्तवकशालिषु। सुगंधिहिमपानीयसिच्यमानपटालिके॥३४॥ कायमाने क्षिते चूतप्रवालफललुंबिभिः। कदलीदलकह्लारमृणालकमलोत्पलैः॥ ३५॥ कल्पिते कोमलैस्तल्पे हृतक्लुसुमपल्लवे। मध्यदिनेऽर्कतापार्तः स्वप्याद्वारागृहेऽथवा पुत्रस्त्रीस्तनहस्ताग्यप्रबुद्धोशीरवारिणि।

अर्थ– जिस स्थानमें मेघोंका स्पर्शकरने वाले अर्थात् बड़े ऊंचे ऊंचे शाल और ताडके वृक्षोंसे सूर्यकी किरणें रुकीहुईहैं। जहां दाखोंके गुच्छोंमें माधवी लता गुथरहीहै ऐसे उपवनमें बांसोंका मंडप बनावे, उस मंडप के चारों ओर परदे पड़े हों जिनपर पानी सींचा जाताहो और उस मंडपके चारों ओर आमके वृक्षोंके फल फूल और पत्ते पवनसे झोटे लेरहे हों ऐसे मंडपके भी-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तर केलेके पत्ते, कल्हार, कमलतन्तु, और पद्म पुष्पोंसे रचित शय्यापर सूर्यतापार्त व्यक्ति मध्यान्ह कालके समय शयन करै । अथवा धारागृहमें शयन करै । धारागृह उसे कहतेहैं जहां फव्वारे चलतेहों । लकडी वा धातुका फव्वारा जिसका मुख स्त्रीके स्तन, वा हाथ वा मुखके सदृश हो और उसमेंसे निरंतर उशीरका सुवासित जल निकले उसे पुस्त कहते हैं ।

ग्रीष्म की रात्रिका विधान ।

"निशाकरकराकीर्णेसौधपृष्ठेनिशासुच्च॥३७॥
आसना स्वस्थचित्तस्य चंदनार्द्रस्य मालिनः
निवृत्तकामतंत्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः॥३८॥
जलार्द्रैस्तालवृंतानि विस्तृताःपद्मिनीपुटाः ।
उत्क्षेपाश्चमृदूत्क्षेपाजलवाहिहियानिलाः३९।
कर्पूरमल्लिकामाला हाराः सहरिचंदनाः ।
मनोहरकलालापाःशिशवःसारिकाशुकाः॥४०
मृणालवलयाःकान्ताःप्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वला
जंगमाइवपदमिन्योहरंतिदयिताःक्लमम्॥४१।

अर्थ– रात्रिके समय कामतंत्रसे निवृत्तहो स्वस्थचित्तसे ऐसे मकान की छत पर बैठे जहां चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही हो, वहां शरीर पर चन्दन लगावै गलेमें पुष्पोंका हार डाले, बहुत पतले वस्त्र ओढे । जलसे भीगे हुए ताड़के अथवा कमलके पत्तोंके पंखेसे मंदी मंदी हवा होतीहो । ये पंखे ऐसे हों जिनके हिलानेमें कुछ परिश्रम न पडता हो, छोटे छोटे जलबिन्दु उनमेंसे उडतेहों कपूर और मोगराके फूलोंका हार, हरिचन्दन चर्चित मुक्ताहार, मनोहर अव्यक्त मधुरभाषी शिशु, शुक और शारिका पक्षी, विकसित कमलवत कमनीय कमलकंकणको दक्षिण हस्तमें धारण किये हुऐ इतस्ततःपादाविक्षेप करती हुई कामिनीगण कमलपरिपूरित सजीव सरोवरके सदृश उपरोक्त हर्म्यतलस्थ व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक तापोंको दूर करती हैं ।

वर्षाचर्या ।

"आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोपिसीदति ।
वर्षासु दोषैःदुष्यंति तैर्बुलंवांवुदैऽभरे ॥ ४२
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च
भूवाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेनचवारिणा॥४३॥
वह्निनैव च मंदेन तेष्वित्यन्योन्य दूषिषु ।
भजेत्साधारणंसर्वमूष्मणस्तेजनंचयत्॥४४॥

अर्थ– आदान अर्थात् उत्तरायणकालमें मनुष्यका देह क्लान्त होजाताहै और कालके स्वभावसे अग्निभी मंद पडजातीहै वह अग्नि वर्षाऋतुमें वातादिक दोषोंके कारण और भी मंद पडजातीहै । और इसी वर्षाऋतुमें आकाश बादलोंसे ढक जातेहैं, वायु जलकणोंसे मिलने के कारण एकाएक शीतल होजातीहै तथा पृथ्वी की गर्मीको लियेहुऐ जलभी कीचडयुक्त और मलीन होजाताहै । इन कारणों से विपाक खट्टा होताहै और अग्नि मन्द पडजातीहै इन्हीं कारणोंसे वातादिक तीनों दोष वर्षाकालमें एक साथ कुपित होजातेहैं इसतरह एक दूसरे को दूषित करनेवाले दोषोंका शमन करनेके लिये साधारण तथा अग्निवर्द्धक उपायों को करना चाहिये ।

वर्षाऋतु में भोजनादि विधि ।

आस्थापनंशुद्धतनुर्जीर्णेधान्यंरसान्कृतान्,।
जांगलंपिशितंयूषान्मध्वरिष्टं चिरंतनं॥४५॥
मस्तुतोयंचलाजं वा पंचकोलवचूर्णितम् ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिव्यंकौपंशृतंचांभोभोजनंत्वतिदुर्दिने॥४६॥
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु।

अर्थ—वमन विरेचनादि से शरीर को शुद्ध करके निरूह वस्तिका प्रयोग करै। जौ, गेंहूं आदि पुराने अन्न, घी, कालीमिरच, सोंठ डालकर तयार किए हुए मांसरस, बनके पशु पक्षियों का मांस, मूंग और दाडिम आदिका यूष, पुराना द्राक्षाका मद्य और अरिष्ट, संचल नमक और पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) डालकर दही, वर्षाका जल, कुआका जल, तथा औटायाहुआ, जल पीना चाहिये। अत्यन्त वर्षा और बादलके दिन बहुत थोडा नमक, और घी मिलाकर मधुमिश्रित हलका और सूखा भोजन करना उचित है।

वर्षा में अन्य विधि।

अपादचारीसुरभिः सततंधूपितांवरः॥४७॥
हर्म्यपृष्ठे वसेद्वाष्पशीतशीकरवर्जिते।

अर्थ—वर्षाऋतु में नंगे पांव घरसे बाहर न निकले, सुगंधित द्रव्योंका व्यवहार करता रहै। निरंतर धूपदिया हुआ वस्त्र धारण कर तारहै। भूवाष्प आर्द्र और जलकणों से वर्जित स्थानमें निवास करै।

वर्षा में अकर्तव्य कर्म।

नदीजलोथमन्थाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत्॥४८॥

अर्थ—नदीका जल, उदमन्थ, दिनमें सोन, व्यायाम और धूपका सेवन छोडदेना चाहिये। (जलमें आलोडित घी मिलेहुए सत्तूको उदमन्थ कहते हैं।

शरदचर्या।

वर्षाशीतोचितांगानां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानांसंचितंवृष्टौपित्तंशरदिकुप्यति॥४९॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम्।

अर्थ—वर्षाऋतुका शीत मनुष्यों के शरीर के सात्म्य होजाताहै और शरत्कालमें एकदम सूर्यकी किरणोंसे संतप्त होजाताहै। इसलिये वर्षाऋतु में संचित हुआ पित्त शरतकाल में प्रकुपित होजाता है। इसको शमन करने के लिये तत्काल शास्त्रोक्त तिक्त घृतका सेवन विरेचन तथा रक्तमोक्षण (फस्द खुलवाना) उचित है।

शरद में भोजन।

तिक्तंस्वादुकषायंच क्षुधितोऽन्नंभजेल्लघु॥५०॥
शालिमुद्गसिताधात्रीपटोलमधुजांगलम्।

अर्थ—इस ऋतुमें अच्छी तरह भूखलगने पर तिक्त मधुर और कषाय रस युक्त हलका अन्न, शाठीचांवल, मूंग, चीनी, आंवला, पटोल, मधु और वन के पशुपक्षियों का मांस सेवन करना उचित है।

हंसोदक।

तप्तंतप्तांशुकिरणैःशीतंशीतांशुरश्मिभिः॥५१॥
सभतादप्यहोरात्रमगस्त्योदय निर्विषम्।
शुचिहंसोदकंनाम निर्मलंमलजिज्जलम्॥५२॥
नाभिष्यंदिनवा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्।

अर्थ—जो जल दिनभर सूर्यकी किरणों से तपता है और रात्रिमें चन्द्रमा की शीतल किरणों से ठंडा होता है तथा अगस्त्य नक्षत्रके उदयसे निर्विष होजाता है उसे आयुर्वेद ग्रन्थकार हंसोदक कहते हैं। यह जल पवित्र, निर्मल, वातादि दोषनाशक अनाभिष्यन्दि (श्लेष्मा का उत्पन्न न करने वाला) और रूक्षतारहित होता है। पीने में यह जल अमृत के तुल्य होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरद का सायंकाल ।

चंदनोशीरकर्पूरमुक्ताम्लवसनोज्ज्वलः॥५३॥
सौधेषु सौधधवलां चंद्रिका रजनीमुखे ।

अर्थ–सांयकालके समय चन्दन, उशीर (खस) तथा कपूरादि सुगंधित द्रव्यों का लेपन करै, मोतियोंका हार तथा सफेद वस्त्र धारण करै । और महलके ऊपर चन्द्रमाके समान उज्वल चांदनीमें बैठे (सायंकाल पीछे न बैठे क्योंकि जाड़ा पड़ने लगताहै)

शरद में त्याज्य ।

"तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसातपान्॥५४॥
तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् परित्यजेत् ॥

अर्थ–शरत्कालमें ओस, जवाखारादि क्षार द्रव्य, पेट भरकर भोजन, दही, तेल, चर्बी, धूप, तीक्ष्णमद्य दिनमें सोना तथा पूर्वदिशाका पवन इन सब बातोंका सेवनकरे ।

ऋतुचर्या का संक्षिप्त वर्णन

शीतेवर्षासुचाद्यान्स्त्रीन्वसंतेऽन्यान्रसांभजेत् ।
स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ।

अर्थ–अब संक्षेपसे ऋतुचर्या कहतेहैं:– शीत और वर्षा कालमें मधुर अम्ल और लवण रसका सेवन करै । बसन्त ऋतु में पिछले तीन कटु, तिक्त और कषाय रसका सेवन करै । ग्रीष्ममें मधुर रस, और शरत्काल से मधुर, तिक्त और कषाय रसका सेवनकरै ।

संक्षिप्त भोजन विधि ।

शरद्वसंतयो रूक्षं शीतंघर्मघनान्तयोः॥५६॥
अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ।

अर्थ–शरद और वसंत ऋतुमें रूक्ष अन्नपान सेवनकरै तथा अन्य हेमन्त, शिशीर वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमें स्निग्ध अन्नपान का सेवन गुणकारी है । ग्रीष्म और शरदमें शीतल अन्नपान गुणकारी है तथा हेमन्त शिशिर वसंत और वर्षा ऋतुओं में उष्ण अन्न पानका सेवन लाभदायक होताहै ।

नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ

अर्थ–छओं रसोंके सेवनका अभ्यास सदा रखना चाहिये परन्तु जिस ऋतुमें जिस रस का विधान कियागयाहै उस रसको उस ऋतु में विशेष रूपसे सेवन करना उचित है । ऐसा करना उचित नहीं है कि जिस ऋतुमें जिसका विधान कियाहै उसी रसको सेवन करता रहे अन्य रसोंको सर्वथा त्यागदे ।

ऋतुसंधि ।

ऋत्वोरंत्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः ।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरःक्रमात्
असात्म्यजा हिरोगाः स्युः सहसात्यागशीलनात्

अर्थ–दोनों ऋतुओंके बीच वाले पन्द्रह दिनको ऋतुसंधि कहतेहैं अर्थात् पहिली ऋतुका पिछला सप्ताह और आने वाली ऋतु का पहिला सप्ताह ये दोनों सप्ताह ऋतुसंधि कहलातेहैं । इस समय में क्रम क्रम से पहिली ऋतुकी कही हुई विधिका त्याग और आने वाली ऋतुकी कही हुई दिनचर्याका अभ्यास करता रहै । कारण यह है कि पूर्व अभ्यस्त विधिको सहसा त्याग करनेसे और अनभ्यास विधिका सहसा सेवन करनेसे असात्म्यजानित रोग उत्पन्न होजाते हैं । इस लिये अभ्यस्त विधिका त्याग और अनभ्यस्त का सेवन क्रमक्रम से करना चाहिये ।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां

तृतीऽध्यायः ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातो रोगानुत्पादनीयाध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से रोगानुत्पादनीय नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे। अर्थात् इस अध्यायमें उन बातोंका वर्णन है कि किन किन कामोंके करने न करनेसे रोग उत्पन्न होनेके पीछे उनकी शान्ति किस प्रकार करनी चाहिये।

वेगोंके रोकनेका प्रतिषेध।

"वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम्।
निद्राकासश्रमश्वासजृम्भाश्रुच्छर्दिरेतसाम् १

अर्थ—अधो वायु, मल, मूत्र, छींक, प्यास, भूख, निद्रा, खांसी, श्रमश्वास (मिहनत से चढाहुआ श्वास जिसे हांफनी कहते हैं) जंभाई, आंसू, वमन और वीर्यपात, इनके वेगोंको रोकना न चाहिये।

वातरोधमें रोग।

अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरुक्क्लमाः।
वातमूत्रशकृत्संगरुग्दृष्ट्यग्निवधहृद्गदाः॥ २॥

अर्थ—अधोवायुके रोकनेसे गुल्म, उदावर्त, नाभि आदि स्थानोंमें वेदना, क्लान्ति, वात, मूत्र, और मलकी रुकावट, दृष्टिनाश, जठराग्नि नाश और हृद्रोग उत्पन्न होतेहैं।

वातरोधमें रोग।

स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च।
पाननिरूहयश्चैवशस्तंवातानुलोमनम्॥३॥

अर्थ—अधोवातके वेगके रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें स्नेह विधि, स्वेद विधि, फलवर्ती, वातनाशक भोजन, किंचित् उष्ण जलपान, वस्तिकर्म तथा और भी वातानुलोमनकर्म (वे उपाय जिनसे अधोवायु होनेलगे) करना चाहिये।

वमन रोकने के रोग।

शुक्रतः पिंडिकोद्वेष्टप्रतिश्यायशिरोरुजः।
ऊर्ध्ववायुःपरीकर्तो हृदयस्योपरोधनम्॥४॥
मुखेनविड्प्रवृत्तिश्चपूर्वोक्ताश्चामयाःस्मृताः।

अर्थ—मलके वेगको रोकनेसे पिंडिकोद्वेष्टन (जांघके पिछले भाग अर्थात् कूल्हेके मांसमें ऐंठा), प्रतिश्याय (मुख और नासिकासे जलस्राव), शिरोवेदना ऊर्ध्ववायुः (हिचकी डकार आदि वायुका ऊपरको जाना), परीकर्त (गुदामें कैंचीसे काटनेकीसी वेदना), हृदयोपरोध (छातीमें भारापन), मुखसे विष्टाका निकलना, और वातनिरोध में कहेहुए गुल्मादिक रोग भी होजातेहैं।

मूत्ररोध के रोग और उपाय

अंगभंगगुदभ्रंशबस्तिमेढ्रवंक्षणवेदनाः॥ ५॥
मूत्रस्य रोधात्पूर्वं च प्रायोरोगाःतद्दौषधम्।
वर्त्यभ्यंगावगाहाश्चस्वेदनंबस्तिकर्म च॥६॥

अर्थ—मूत्रका वेग रोकनेसे हड़फूटन, पथरी, बस्ति (पेडू) मेढ्र (शिश्नेन्द्रिय) और अंडकोषोंमें वेदना होने लगती है और बहुधा वात और मलके रोकने से उत्पन्न हुए रोगभी उत्पन्न होजाते हैं। इन रोगोंकी शान्तिके लिये फलवर्तियोंका प्रयोग, वातनाशक तेलोंका मर्दन, अवगाह (वातनाशक द्रव्योंके काथसे भरीहुई नाद में नाभि पर्य्यन्त बैठना) और स्वेदन तथा वस्तिकर्म करने चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मलरोध में उपाय

भक्तपानं च विड्भेदि विड्रोधोत्थेषुयत्नवत् ।

अर्थ—मलके वेगको रोकनेसे हुए रोगोंमें मलभेदक (मलको पतला करनेवाले) अन्न पान तथा ऊपर कहे हुए फलवर्ती आदि उपाय करने चाहियें ।

मूत्ररोधमें उपाय ।

मूत्रजेषु च पानेच प्राग्भक्तंशस्यतेघृतम् ॥७॥
जीर्णान्तिकं चोत्तमयामात्रयायोजनाद्वयम् ।
अवपीडकमेतच्च संज्ञितं

अर्थ—मूत्रके वेगके रोकनेसे उत्पन्नहुए रोगों में उत्तम मात्रासे प्राग्भक्त घृतपान, जीर्णान्तिक घृतपान ठीक कहाहै भोजन करने के पहिले जो घृतपान किया जाता है उसे प्राग्भक्त घृतपान कहते हैं, । इसी तरह पूर्व आहार के अच्छी तरह पच जाने पर जो घृतपान किया जाता है उसे जीर्णान्तिक घृतपान कहते हैं । इस प्राग्भक्त घृतपान और जीर्णान्तिक घृतपान की दो प्रकार की घृतयोजनाको अवपीडक कहते हैं । जो मात्रा एक दिन रात में पच जाती है उसे उत्तम मात्रा कहते हैं ।

डकार के रोग

धारणात्पुनः ॥८॥
उद्गारस्यारुचिः कंपो विबंधो हृदयोरसोः ।
आध्मानकासहिध्माश्चाहिध्मावत्तत्रभेषजम् ९

अर्थ उद्गार अर्थात् डकारका वेग रोकने से अरुचि, कंपन, हृदय और छाती में रुकावट, अफरा, खांसी, और हिचकी आदि रोग उत्पन्न होते है । इनसब रोगों में हिध्मा के तुल्य औषध करना चाहिये (यह प्रकरण आगे आवेगा) ।

छींक रोकने के रोग ।

शिरोतीन्द्रिय दौर्बल्यमन्यास्तंभार्दितंक्षुतेः ।
तीक्ष्णधूमांजनाघ्राणनावनार्कविलोकनैः ।१०।
प्रवर्तयेत्क्षुतिंतत्रां स्नेहस्वेदौच शीलयेत् ।

अर्थ—छींकका वेग रोकनेसे सिरमें दर्द, इन्द्रियोंमें दुर्बलता, मन्यास्तम्भ (ग्रीवाके पिछले भागकी दो नसोंका जकड़ना) और अर्दित ये रोग उत्पन्न होजाते हैं इसलिये इन रोगोंमें तीक्ष्ण धूम, तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण घ्राण (सिरचादिक सूंघना) तीक्ष्ण नस्य और सूर्यकी ओर देखना इन उपायोंसे छींकलाने का यत्नकरै । तथा स्नेह विधि और स्वेद विधि में कहेहुए उपायोंको करै ।

तृषा के रोग ।

शोषांगसादश्रवधिर्यसंमोहभ्रमहृद्रुजः ॥ ११ ॥
तृष्णायानिग्रहात्तत्र शीतः सर्वोविधिर्हितः ।

अर्थ—तृषाके रोकनेसे, शोषरोग, अंगमें शिथिलता, बहरापन, मूर्च्छा, भ्रम और हृदयके रोग उत्पन्न होजाते हैं । इन रोगों में सब प्रकारके शीत उपचार उपयोगी होतेहैं ।

भूख के रोग ।

अंगभंगारुचिग्लानिःकार्श्यशूलभ्रमाःक्षुधः १२
तत्र स्नेहोल्पलघुस्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ।

अर्थ—क्षुधा रोकनेसे अंगभंग, अरुचि, ग्लानि, कृशता, और पक्वाशय में दर्द और भ्रम उत्पन्न होजाताहै । इसमें हलका, स्निग्ध, गर्म और थोडा भोजन करना चाहिये, (वैवर्ण्यचक्षुषस्तत्र स्निग्धोभोजनमितिपाठान्तरम्)

निद्रा के रोग ।

निद्रायामोहमूर्धाक्षिगौरवालस्यजृंभिकाः १३
अंगमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नःसंवाहनानि च ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--निद्राका वेग रोकनेसे मोह (ज्ञानेन्द्रियोंमें शून्यता) होताहै, मस्तक और आंखों में भारापन होताहै, आलस्य, जंभाई, और अंगमर्द (अंगडाई) होते हैं । इसमें गहरी नींद और धीरेधीरे हाथ पांवोंका दवाना हितकारी होताहै ।

खांसी के रोग ।

कासस्यरोधात्तद्वृद्धिःश्वासारुचिहृदामयाः१४
शोषोहिध्माचकार्योऽत्रकासहासुतरांविधिः ।

अर्थ--खांसीके रोकनेसे खांसी बढती है, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोषरोग, हिचकी आदि रोग उपजतेहैं । इस में खांसीकी चिकित्सा विशेष रूपसे करनी चाहिये ।

श्वास के रोग ।

गुल्महृद्रोगसंमोहाःश्रमश्वासाद्विधारितात् १५
हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्च क्रियाक्रमः ।

अर्थ-परिश्रमसे उत्पन्न हुए श्वासको रोकनेसे गुल्म, हृद्रोग और मोह उत्पन्न होते हैं । इस में विश्राम लेना तथा वातनाशक उपायोंका करना हितकारक है ।

जंभाई के रोग ।

जृंभायाःक्षवद्रोगाःसर्वेचानिलजिद्विधिः १६

अर्थ-- जो रोग छींक रोकनेसे होतेहैं वे ही सब जंभाईके रोकनेसे भी होतेहैं इस में वायुनाशक उपायोंका करना हितकारकहै ।

आंसुओं के रोग ।

पीनसाक्षिशिरो हृद्रुङ्मन्यास्तंभारुचिभ्रमाः ।
सगुल्माश्चाश्रुजस्तस्यमोक्षेप्रियाःकथाः १७

अर्थ-- आंसुओंका वेग रोकनेसे पीनस, आंख, सिर और हृदयमें वेदना, मन्यास्तंभ, अरुचि, भ्रम, और गुल्मरोग होजातेहैं ।

नींदलेना, मद्यपान और रोचक कहानियां इसमें हितकारकहैं ।

वमनरोकने के रोग ।

विसर्प कोठ कुष्ठाक्षि कंडूपांडूवामयज्वराः
सकासश्वासहल्लासव्यंगश्वयथवोवमेः॥१८॥
गंडूषधूमानाहारान् रुक्षं भुक्त्वा तदुद्वमः ।
व्यायामःस्रुतिरस्रस्यशस्तं चात्रविरेचनम् ॥
सक्षारलवणंतैलमभ्यंगार्थं च शस्यते ।

अर्थ-- वमनका वेग रोकनेसे विसर्परोग, कोठ (पित्ती शरीर पर लाल चकत्ते) कोढ नेत्ररोग, कंडूरोग, पांडुरोग, ज्वर, खांसी श्वास, हृल्लास (जी मिचलाना), व्यंग और सूजन ये रोग उत्पन्न होजातेहैं । इसमें गंडूषविधि, धूमपान, उपवास, रूक्ष अन्न खाकर वमनद्वारा निकालना, व्यायाम, रक्तस्राव (फस्द खोलना), विरेचन तथा क्षार और लवणमिश्रित तेलका मर्दन विशेष लाभकारकहैं ।

वीर्य और मूत्र रोकने के रोग।

शुक्रात्तत्स्रवणं गुह्यवेदनाश्वयथुर्ज्वरः ॥२०॥
हृद्व्यथा मूत्रसंगांगभंगवृद्ध्यश्मषंढताः ।
तान्रचूडसुराशालिबस्त्यभ्यंगावगाहनम् २१
बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धंभजेत्क्षीरंप्रियाःस्त्रियः ।

अर्थ-- वीर्यका वेग रोकनेसे वीर्यका झरना अर्थात् धीरे २ निकलते रहना, गुह्यवेदना, सूजन, ज्वर, और हृदयमें व्यथा ये रोग होतेहैं । मूत्रका वेग रोकनेसे अंगभंग, अंडवृद्धि, पथरी और नपुंसकता ये रोग होतेहैं । इन सब रोगोंमें मुर्गेका मांस, सुरापान, शालीचांवल, बस्तिकर्म, तैलमर्दन, अवगाहन, तथा बस्तिके शुद्ध करने वाले,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कूष्मंडादि द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दूध और मनोरमा स्त्रियोंका सेवन उचित है ॥

त्यागने योग्य रोगी ।

तृट्शूलार्तेत्यजेत्क्षीणंविड्वमंवेगरोधिनम् २२

अर्थ–ऊपर कहे हुए दोनों प्रकारके वेगों को रोकने से उत्पन्न हुए रोगों से आक्रान्त रोगी यदि तृषा तथा शूल चुभने की सी वेदना से युक्त, और क्षयीरोगसे पीडित हो तथा विष्ठाकी यमन करता हो तो उसकी चिकित्सा नहीं करना चाहिये ।

वेगरोधजन्य रोगों में कर्तव्य ।

रोगाः सर्वेऽपि जायंते वेगोदीरणधारणैः ।
निर्दिष्टसाधनंतत्रभूयिष्ठंयेतुतान्प्रति ॥ २३ ॥
ततश्चा नेकधाप्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति ।
अन्नपानौषधंतत्रयुंजीतातोऽनुलोमनम् ।२४।

अर्थ–इसी तरह मलमूत्रादि स्वाभाविक वेग न होने पर भी जो बलपूर्वक मलमूत्रादि का उत्सर्ग करते हैं उन मनुष्यों के सब प्रकारके रोग उत्पन्न होजाते हैं । इन वेगों के धारण करने से जो सब प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्सा और साधन कहे गये हैं तथा इनके सिवाय जो अनेक प्रकार की अन्य व्याधियां उत्पन्न होती हैं उनमें वायु का प्रकोप विशेष दिखाई देता है इसलिये इन सब रोगों में वायु का अनुलोमन करनेवाले अन्नपान और औषधों का प्रयोग कर्तव्य है ।

रोकने योग्य वेग ।

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च ।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनांजितेन्द्रियः।२५।

अर्थ–जो इस लोक और परलोक दोनों की हितकामना चाहते हैं उनको उचित है कि वे जितेन्द्रिय होकर लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सरता, और रागादि के वेगों को रोकें ।

वातादि का यथाकाल शोधन ।

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति ।
अत्यर्थसंचितास्तेहिकुद्धाःस्युर्जीवितच्छिदः
दोषाः कदाचित्कुप्यंन्ति जितालंघनपाचनैः ।
येतुसंशोधनैःशुद्धा नतेषां पुनरुद्भवः ॥ २७॥

अर्थ–वायु पित्त कफ और पुरीषादि मलों का शोधन उचित्त कालमें करना चाहिये (वमन विरेचनादि में विशेष ध्यान रखना चाहिये अर्थात् जिस मलके शोधनके योग्य जो काल है उस मलका उसी कालमें शोधन करना चाहिये नहीं तो मल अत्यन्त इकट्ठे और कुपित होकर अन्तमें प्राणोंका नाश कर देते हैं) वातादि दोष लंघन और पाचन द्वारा प्राकृतिक दशा पर पहुंच जानेपर भी कदाचित कुपित होजाते हैं परन्तु जो संशोधन द्वारा शोधित होतेहैं वे कदापि फिर प्रकुपित नहीं होते ।

रसायन प्रयोग ।

यथाक्रमं यथायोगमत ऊर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
रसायनानिसिद्धानि वृष्ययोगांश्चकालवित्

अर्थ–शोधनके पश्चात् देश, काल, बल, शरीर, आहार, सात्म्य, सत्व और प्रकृति की परीक्षा करके यथायोग्य प्रत्यक्षफल देनेवाली रसायन और पौष्टिक औषधियों का सेवन करै ।

पथ्यादि विधि, ।

भेषजक्षपिते पथ्यमाहारैर्बृंहणं क्रमात् ।
शालिषष्टिकगोधूममुद्गमांसघृतादिभिः ॥२९॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृद्यदीपनभैषज्यसंयोगाद्युचिपाकिभैः।
स्नाय्यगोद्वर्तनस्नाननिरूहस्नेहबस्तिभिः ॥३०॥

अर्थ–संशोधन करने वाली दवाइयों के सेवन से जो रोगी क्षीणदेह होजाता है उसे शालीचांवल, साठीचांवल, गेंहूं की रोटी पूरी, मूंगकी दाल, मांसयूष, घृतपक्व पदार्थ में अच्छी रीतिसे इलायची, दालचीनी आदि हृदय को हितकारी और अग्निसंदीपन मसाले डालकर रुचिवर्द्धक और जाठराग्निको वृद्धि करनेवाले पदार्थ शरीरकी पुष्टिके लिये क्रम क्रम से थोडे थोडे देवै, तथा तैलमर्दन, उबटना, स्नान, निरूहण वस्ति, अनुवासनवस्ति आदि क्रियाओं की यथारीति से व्यवस्था करै।

पूर्वोक्तक्रम का फल।

तथा स लभते शर्म सर्वपावकपाटवम्।
धीवर्णेंद्रियवैमल्यं वृषतांदैर्घ्यमायुषः ॥३१॥

अर्थ–उक्त प्रकार से अर्थात् प्रथम संशोधन, उससे पीछे वृंहण और फिर रसायनिक द्रव्यों का प्रयोग करने से मनुष्य स्वास्थ्य, आयुर्वृद्धि, स्त्रीसंगम सामर्थ्य, और जठराग्नि, धात्वग्नि आदि सब प्रकार की अग्निकाबल, इसी तरह बुद्धि, वर्ण और इन्द्रियों की प्रसन्नता प्राप्तकर सकता है।

आगन्तुक रोगों का वर्णन।

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादिसंभवाः।
कामक्रोधभयाद्याश्च तेस्युरागंतवोगदाः ३२

अर्थ--स्वास्थ्य रक्षा का विधिपूर्वक पालन करने पर भी भूतग्रह, विषाक्तवायु, अग्नि, घाव, चोट आदि से उत्पन्न तथा काम, क्रोध, और भयादि से जो रोग उत्पन्न होते हैं वे आगन्तुक अर्थात् बाहर से आनेवाले रोग कहलाते हैं।

आगन्तुक रोगों का उपाय।

त्यागःप्रज्ञापराधानामिंद्रियोपशमःस्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ३३
अथर्व विहिताशान्तिः प्रतिकूलग्रहार्चनम्।
भूतादिस्पर्शनोपायोनिर्दिष्टश्चपृथक्पृथक् ३४
अनुत्पत्त्यै समासेन विधिरेष प्रदर्शितः।
निजागन्तुविकाराणामुत्पन्नानांचशांतये ३५

अर्थ--असात्म्य आचरणों का त्यागना, आंखकान आदि इन्द्रियों का संयमन, स्मृति (होनहार आदिका विचार), देश, काल तथा आत्मविज्ञान, और सद्वृत्ति का अनुष्ठान, अथर्ववेदोक्त शान्ति, प्रतिकूल ग्रहों का पूजा पाठ, भूतादि के दूर करने का उपाय, जो अलग अलग बताये गये हैं, ये सब निज अर्थात् वातादि दोषों से उत्पन्न और आगन्तु अर्थात् अभिघातादिजन्य रोगों की अनुत्पत्ति अर्थात् उत्पन्न ही न होने देना और उत्पन्न हुओं की निवृत्ति के लिये ये सुगम और संक्षिप्त उपाय कहे गये हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

शीतोद्भवं दोषचयं वसंते
विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले।
घनात्यये वार्षिक माशु सम्यक्
प्राप्नोति रोगानृतुजान्नजातु ॥ ३६ ॥

अर्थ– जो मनुष्य शीतकालमें उत्पन्न हुए कफके इकट्ठे हुए दोषको बसंतकाल में ग्रीष्मकालके संचित वातदोषको वर्षाकाल में, और वर्षाकालके संचित पित्तदोष को शरत कालमें संशोधन द्वारा दूर करदेताहै उसको ऋतुजनित रोग कदापि नहीं होने पाते।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः,, ॥ ३७ ॥

अर्थ– जो नित्यप्रति हितकारी आहार विहार का सेवन करताहै । जो अच्छे बुरे का बिचार करके कर्ममें प्रवृत्त होताहै जो इन्द्रियादि विषयोंमें असक्त रहताहै जो दानी है सब जीवोंपर समान दृष्टि रखताहै, सत्य बोलनेका वृतीहै, क्षमाशीलहै, जो ऋषिमुनि आदि ज्ञानवृद्ध मनुष्योंका सेवापरायण है वह रोगरहित रहताहै ।

अर्थेष्वलभ्येष्वकृत प्रयत्नं
कृतादरं नित्यमुपायवत्सु ।
जितेन्द्रियं नानुपपत्तिरोगा—
स्तत्कालयुक्तं यदि नास्ति दैवम् ॥

अर्थ– जो अलभ्य वस्तुओंके प्राप्त करने में यत्न नहीं करताहै, और लभ्यवस्तुओंके प्राप्त करनेमें नित्य उपाय करताहै, जो जितेन्द्रियहै उसपर कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकताहै, परन्तु जो दैव प्रतिकूल होजाय तो ऐसे आदमी को भी तत्काल कोई ऐसा रोग होजाताहै ।

कालोनुकूलोविषयामनोज्ञा
धर्म्म्याःक्रियाः कर्म्मसुखानुबंधि ।
सत्संधिधैर्यावशदाचबुद्धि
मैवन्तिधीरस्यसदासुखाय ॥

अर्थ-जिसका कालअनुकूल है अर्थात् हीन मिथ्यादि योगों से रहित है रूप रसादि सब विषय मनोज्ञ अर्थात् हीन मिथ्यादि योगों से रहित है. सम्पूर्ण क्रिया अपने अपने कर्म में तत्पर है, वमन विरेचनादि रूप कर्म स्वास्थ्य करनेवाले है मन बुरे विचारों से शून्य है । बुद्धि विशद है ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य सदाही सुखी रहती है और कभी रोगादि से पीडित नहीं होता !!

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातोद्रवद्रव्यविज्ञानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहां से द्रवद्रव्य(पतलेपदार्थ) विज्ञानीय अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

॥ तोयवर्गः ॥

गंगांबु के गुण ।

"जीवनं तर्पणं हृद्यं हादि बुद्धिप्रबोधनम् ।
तन्वव्यक्तरसं मृष्टंशीतं लघ्वमृतोपमम् ।१
गगांबु नभसो भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केन्दुमारुतैः ।
हिताहितत्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते ॥२॥

अर्थ–अन्तरीक्ष से जो बर्षा का जल पडता है वह गंगांबु कहलाता है यह जल ओजको बढानेवाला, तृप्तिकारक, हृदयको हितकारक आल्हादजनक, बुद्धि-प्रतिभाकारक, स्वच्छ, अव्यक्तरस, (जिसमें मधुरादि छः रस व्यक्त नहीं) मृष्ट (स्वादमें प्रसन्नताकारक), शीतल, लघु (हलका) और अमृतोपम (त्रिदोषघ्न, धातुसाम्यकर आदि गुणों से युक्त) है ।

यह गंगांबु चन्द्र, सूर्य और वायुके योग से तथा भूमि और काल भेदसे हितका-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

री होजाता है अर्थात् जिस भूमिमें यह जल गिरता है उसी भूमिके गुणागुण इस जलमें आजाते हैं। इसी तरह कालभेदसे भी गुणागुण होजाते हैं जैसे आश्विन मासमें वर्षाका जल हितकारक तथा वर्षा और अन्यऋतुओं में अहित होता है।

गांग तथा सामुद्र जलके लक्षण

येनाभिवृष्टममलं शाल्यन्नं राजतास्थितम्।
अक्लिन्नमविवर्णं च तत्पेयं गांगम्
अन्यथा ॥ ३ ॥
सामुद्रं तन्न पातव्यं मासादाश्वयुजाद्विना।

अर्थ--चांदीके पात्रमें रक्खे हुए सफेद शालिचांवलों के ऊपर वर्षाका जल गिरे और यदि इस वर्षाके जल से अन्न क्लिन्न और मलीन नहो तो इस जलको गंगाजल कहते हैं और यह पीनेके योग्य होताहै तथा स्नान और अवगाहनमें भी यह हितकर है। इससे विपरीत अर्थात् यदि शाली अन्न क्लिन्न वा मलीन होजाय तो वह सामुद्र जल कहलाता है यह जल पीने के योग्य नहीं होता। किन्तु आश्विन मासमें सामुद्र जल पीने में कोई दोष नहीं है क्योंकि काल के स्वभाव से पथ्य होता है।

गांगजल के अभावमें कर्तव्यता।

पैद्रमंबुसुपात्रस्थमविपन्नंसदापिबेत् ॥ ४ ॥
तदभावे च भूयिष्ठमंतरिक्षानुकारि यत्।
शुचिपृष्ठ्वासिते श्वेते वेश्मेऽर्कपवनाहतम् ।५।

अर्थ--चांदी आदि के उज्वल पात्र में रक्खा हुआ आंतरीक्ष जल जो किसी तरह से बिगडा न हो सदा पीना चाहिये। यदि आंतरीक्ष जल न मिल सकता हो तो वैसे ही गुणों से युक्त स्वच्छ और निर्मल अन्य जल पीना उचित है। जो वापी वा सरोवर ऐसे स्थान में बने हों जो पवित्र और चौडे हों और जहां की मृत्तिका काले वा सफेद रंग की हो उस जलपर सूर्यकी किरणें पडती हों और वायु चलती हो, ऐसे स्थानका जल आन्तरीक्ष जलके समान गुणकारी होता है इसीलिये यह पीनेके योग्य है।

न पीने के योग्य जल।

न पिबेत्पंकशैवालतृणपर्णाविलास्तृतम्।
सूर्येंदुपवनादृष्टंमभिवृष्टं घनं गुरु ॥ ६ ॥
फेनिलं जन्तु मत्तं दंतग्राह्यतिशैत्यतः।

अर्थ--जो जल कीचड़, शैवाल, तृण और पत्ते आदि से व्याप्त और ढका रहता है, जिसपर सूर्य और चन्द्रमा की किरणें नहीं पडती है, पवन नहीं चलती है। जिस पर गाढे २ भारी झाग आ रहे हों, जिसमें बहुत प्रकार के कीडे हों, जो बहुत उष्ण हो, जो अत्यन्त ठंडा होने के कारण दांतों को जकड़ देता है अर्थात् निष्काम कर देता है, ऐसा जल पीने के योग्य नहीं है।

अपेयआंतरीक्ष जल।

अनार्तवं च यद्दिव्य मार्तवं प्रथमं च यत् ।६
लूतादितंतुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितं।

अर्थ– वर्षा ऋतुके जलके सिवाय अन्य ऋतुका जल न पीना चाहिये। वर्षाकालमें भी पहिली वृष्टिका जल पीनेके योग्य नहीं होता और जिस जलमें मकडी आदि विषैले जीवोंके तंतु, मल, मूत्र मिले हों वा उनके विष से दूषितहो वह भी पीने के योग्य नहीं होताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नदियोंका जल ।

पश्चिमोदधिगाःशीघ्रवहायाश्चामलोदकाः ८
पथ्याःसमासात्तानद्योविपरीतास्त्वतोऽन्यथा

अर्थ– जो नदी प्रबल वेगसे बहतीहुई पश्चिम समुद्रोंमें गिरतीहै और जिनका जल भी निर्मल है ऐसी तीन गुणोंसे युक्त नदियां हितकारी हैं, इससे विपरीत लक्षणवाली नदियां अपथ्यहैं ।

उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैःखेदितोदकाः
हिमवन्मलयोद्भूताःपथ्यास्तापघचास्थिराः ।
कृमिश्लीपद हृत्कंठ शिरोरोगान् प्रकुर्वते १०

अर्थ– हिमालय और मलयागिरिसे निकली हुई उन्हीं संपूर्ण नदियोंका जल पथ्यहै जो चटानोंके ऊपर प्रबल वेगसे टकराती हुई चली आतीहैं, इनसे विपरीत लक्षण वाली नदियां पथ्य नहीं होती किन्तु उनका जलपान करनेसे कृमिरोग, श्लीपद, हृद्रोग, कंठरोग और शिरोरोग उत्पन्न होजातेहैं ।

प्राच्याऽऽवंत्यपरांतेभ्यादुर्नामानिमहेन्द्रजाः।
उदरश्लीपदार्तिकान्सह्याद्विंध्योद्भवाःपुनः।११।
कुष्ठपांडुशिरोरोगान् दोषघ्न्यः पारियात्रजाः
बलपौरुषकारिण्यःसागरांभस्त्रिदोषकृत्।१२।

अर्थ– गौड़, मालव, और कौंकण देश की नदियोंका जल पीनेसे अर्शरोग होताहै । माहेन्द्र पर्वतोंसे निकली हुई नदियां उदर और श्लीपद रोगोंको करतीहैं, सह्याद्रि और विन्ध्याचलसे निकली हुई नादेयोंका नवीन जल पीनेसे कुष्ठरोग, पाण्डुरोग और शिरो रोग उत्पन्न होताहै, पारयात्र पर्वतोंसे निकली हुई नदियोंका जल त्रिदोषनाशक तथा बल और पौरुषकारक होताहै तथा समुद्रका जल त्रिदोषकारक होताहै ।

विद्यात्कूपतडागादीन्जांगलानूपशैलतः ।

अर्थ–जांगल, आनूप, और पार्वतीय देशों के गुणागुणके अनुसार उन उन देशों के कूप, सारस, तडाग, चौडच, झरना, नदी आदि के जलों का गुणागुण हो जाता है, जैसे जांगल देशीय कूपादि का जल हलका और अनूप देशीय जलाशयों का जल भारी होता है ॥

अन्य ग्रंथों से कूपादि जल के लक्षण लिखते हैं:–कौपं स्वादु त्रिदोषघ्नं लघु पथ्यं चसर्वदा । क्षारन्तु कफ वातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् । कषाय बहुलं श्लेष्म पित्तघ्नं वातकृच्चतत् । तृष्णाघ्नं सारसं बल्यं कषायं मधुरं लघु । औद्भिदं स्वादु पित्तघ्नं दीपनं गुरु किंचन । सक्षारं कटु वाप्यंतु पित्तलं कफ वाताजित् । विशदं वातलं रूक्षमनवस्थित लाघवम् ॥ इसी तरह सुश्रुतादि ग्रन्थों में भी इन सब के लक्षण विस्तार पूर्वक लिखे हैं ॥

जलपान के अयोग्यरोगी ।

नांबुपेयमशक्तथावास्वल्पमल्पाग्निगुल्मिभिः
पांडूदरातिसारार्शोग्रहणीदोषशोथिभिः ।
ऋतेशराच्छिदाघाभ्यांपिबेत्स्वस्थाऽपिचाल्पशः

अर्थ–अग्निमान्द्य, गुल्म, पांडु, उदररोग अतिसार, बवासीर, ग्रहणी और सूजन वाले रोगियों को जल पीना उचित नहीं है। और जो प्यास को बिलकुल न सह सकता हो तो थोड़ा थोड़ा पानी पीवे । शरद और ग्रीष्मऋतुओं को छोडकर अन्य ऋतुओं में सुस्थ मनुष्य को भी थोड़ा थोड़ा जल पीना उचित है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भोजन में जलपीनेके गुणागुण ।

समस्थूलकृशाभक्तमध्यांतप्रथमांबुपाः ।

अर्थ--भोजनके मध्य में जल पीने से मनुष्य सम शरीर अर्थात् न अत्यन्त कृश, न स्थूल होता है। भोजन के अन्त में जल पीने से शरीर स्थूल हो जाता है इसी तरह भोजन से पहिले जल पीने से शरीर कृश होता है।

शीतल जलपान के गुण ।

शीतंमदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान्।१५
तृष्णोष्णदाहपित्तासृग्विषाण्यंबु नियच्छति ।

अर्थ--शीतल जलपान करने से मदात्यय (मद्यजनित रोग) ग्लानि, मूर्छा, वमन, स्वेद, भ्रम (घुमेरी) तृष्णा, उत्ताप, दाह, रक्त पित्त और विषजनित रोग दूर होजातेहै।

उष्णजल के गुण ।

दीपनंपाचनंकंठ्यंलघूष्णंवस्तिशोधनम् ।१६।
हिध्माध्मानाऽनिलश्लेष्मसद्यःशुद्धेनवज्वरे ।
कासामपीनसश्वासपार्श्वरुग्रुचशस्यते ।१७।

अर्थ--उष्ण जल अग्नि संदीपन, पाचक, मूत्रशोधक, रुचिकर्ता और लघु होता है। तत्काल वमन विरेचनादि शोधन क्रियाओं के पीछे, नवीन ज्वर में, हिचकी, बात और कफजनित रोग, आध्मान (अफरा) खांसी, श्वास, नई पीनस, पसली का दर्द आदि रोगों में गर्म जल हितकारक है॥

क्वाथित शीतलजल के गुण ।

श्रमभिष्यंदि लघुचतोयं क्वथितशीतलम् ।
पित्तयुक्तेहितंदोषे व्यूषितंतत्रिदोषकृत् ।१८।

अर्थ--औटाया हुआ जल ठंडा होने पर कफकारी नहीं होता है। यह बहुत हलका हो जाता है। वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक, और सान्निपातक रोगों में बहुत हितकारी होजाता है। परंतु गरम किया हुआ जल बासी होने पर त्रिदोषकारक हो जाता है॥

नारियल के जल के गुण ।

नालिकेरोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमंलघु ।
तृष्णापित्तानिलहरंदीपनंबस्तिशोधनम् ।१५।

अर्थ--नारियलका जल स्निध, स्वादु, पौष्टिक, शीतल और हलका होता है तथा तृषानिवारक, पित्त और वातनाशक तथा मूत्राशयका शोधक होता है।

वर्षासु दिव्यनादेये परे तोये वरावरे ।

अर्थ--वर्षाकाल में अन्तरीक्ष जल सब-प्रकार के जलों की अपेक्षा उत्तम होता है परन्तु नदीका जल अति निकृष्ट होता है।

क्षीरवर्गः ।

गव्यंमाहिषमाजं चकारभंस्त्रैणमाविकम् ।२०।
ऐभमैकशफं चेति क्षीरमष्टविधं मतम् ।

अर्थ-- गौ, भैंस, बकरी, ऊंटनी, स्त्री, भेड़, हाथी, और घोड़ी का दूध इस तरह आठ प्रकार का होताहै।

दूधके सामान्य लक्षण ।

स्वादुपाकरसंस्निग्धमोजस्यंधातुवर्धनम् २१
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ।
प्रायः पयः

अर्थ-- सामान्य रीतिसे सब प्रकार के दूध मधुररसयुक्त और मधुरपाकी होतेहैं (परिपाक के पीछे जो रस उत्पन्न होता है उसे विपाक कहतेहैं), तथा स्निग्ध, बल कारक, धातुवर्द्धक, वातपित्तनाशक, वीर्यो-त्पादक, भारी और ठंडा होताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गौके दूधके गुण ।

अत्रगव्यंतुजीवनीयंरसायनम् ॥ २२ ॥
क्षतक्षीणहितंमेध्यंबल्यंस्तन्यकरंशरम् ।
श्रमभ्रममदालक्ष्मीश्वासकासातितृड्क्षुधः२३
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

अर्थ– इनमेंसे गौका दूध जीवनको हितकारी, रसायन, मेधवर्द्धक, बलकारक, साम्यजनक, और रंचक होताहै । यह श्रम, भ्रम, मत्तता, अलक्ष्मी, श्वास, अत्यन्त पिपासा, क्षुधा, जीर्णज्वर मूत्रकृच्छ्र और रक्तपितको नाश करताहै । उरःक्षत रोगीके लिये तो गौका दूध बहुतही हितकारी होताहै ।

भैंसके दूधके गुण ।

हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्योगरीयोमाहिषंहिमम् २४

अर्थ– भैंसका दूध उन लोगोंके लिये बड़ा हितकारी है जिनकी तीक्ष्णाग्निहै और नींद नहीं आतीहै । यह शीतवीर्य और गौ दुग्धकी अपेक्षा भारीहै ।

बकरीके दूधके गुण ।

अल्पांबुपानन्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजंशोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित् ५

अर्थ– बकरीका दूध हलका होताहै क्योंकि यह स्वाभाविक ही कम जल पीतीहै बहुत डोलती फिरतीहै और कड़वे तीखे घास पत्ते आदि खातीहै । बकरी का दूध धातु क्षयसे उत्पन्न शोषरोग, रक्तपित्त और अतिसार को दूर करताहै ।

ऊंटनी के दूधके गुण ।

ईषदुष्णोष्णलवणमौष्ट्रंदीपनलघु ।
शस्तंवातकफानाहकृमिशोफोदरार्शसाम् २६

अर्थ–ऊंटनी का दूध अग्निसंदीपन, हलका थोड़ा रूक्ष, उष्ण और लवणरस युक्त है । यह वादी, कफ, आनाह (मलमूत्र का अवरोध), कृमिरोग, शोथरोग, उदररोग और ववासीर में हितकारी है ।

स्त्रीके दुग्ध के गुण ।

मानुषं घातपित्तास्रगभिघातक्षिरोगजित् ।
तर्पणाश्चोतनैर्नस्यैः

अर्थ–स्त्रीका दूध, तर्पण, आश्चोतन और नस्यकर्म द्वारा प्रयुक्त किये जानेपर बातपित्त, रुधिरविकार, अभिघातज नेत्ररोगों को नाश करता है

भेड़ के दूध का गुण ।

अहृद्यंतूष्णमाविकम् ॥२७॥
घातव्याधिहरंहिध्माश्वासपित्तकफप्रदम् ।

अर्थ–भेड़का दूध हृदयको अहित, उष्णवीर्य, वात व्याधिनाशक है तथा हिचकी, श्वास और कफपित्त रोगों को करता है ।

हथनी और घोड़ी के दूध ।

हस्तिन्याःस्थैर्यकृत्
बाढमुष्णं त्वैकशफं लघु ॥ २८ ॥
शाखावातहरं साम्ललवणं जडताकरम् ।

अर्थ–हथनी का दूध देहमें स्थिरता करता है । घोड़ी का दूध अत्यन्त उष्णवीर्य, लघु, ईषत् अम्ल, लवणरस युक्त होता है । यह हाथ पांवकी बादी को दूर करता है और शरीर में जड़ता उत्पन्न करता है ।

कच्चे पक्के दूध के गुण ।

पयोभिष्यंदिगुर्वाम युक्तथाशृतमतोऽन्यथा
भवद्वरीयोऽतिशृतं धारोष्णममृतोपमम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कच्चा दूध श्लेष्मवर्द्धक और भारी होताहै। युक्तिपूर्वक औटाया हुआ दूध (आधा जल मिलाकर औटानेसे दूध शेष रहने पर) हलका और कफनाशक होताहै। अत्यन्त औटाया हुआ दूध बहुत भारी होता है। धारोष्ण (थनसे खींचा हुआ गर्म दूध) अमृतके समान गुणकारक होताहै।

दहीके गुण।

अम्लपाकरसंग्राहिगुरूष्णंदधिवातजित् ।३०।
मेदःशुक्रबलश्लेष्मपित्तरक्ताऽग्निशोफकृत्।
रोचिष्णुशस्तमरुचौशीतकेविषमज्वरे॥३१॥
पीनसेमूत्रकृच्छ्रे चरूक्षंतुग्रहणीगदे।
नैवाद्यान्निशिनैवोष्णंवसंतेोष्णशरत्सुन ।३२।
नामुद्गसूपंनाक्षौद्रंतन्नाघृतसितोपलम् ।
नचानामलकंनापिनित्यंनोमंदमन्यथा ॥३३॥
ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपांडुभ्रमप्रदम्।

अर्थ–दही अम्ल रस युक्त, अम्लपाकी, ग्राही, गुरु, उष्ण, और वातनाशक होता है। मेदाके रोग, वीर्य, बल, कफ, रक्तपित्त, अग्नि और सूजन का करनेवालाहै। यह अरुचि रोग, शीतक, विषमज्वर, पीनस, मूत्र कृच्छ्र रोगों में हितकारी है, । रूक्षदही (जिसका माखन निकाल लिया जाता है) ग्रहणी रोग में बड़ा हितकारी होता है। रात्रिमें दही न खाना चाहिये; गर्म करके दही खाना वर्जित है। वसन्त, ग्रीष्म और शरद ऋतुमें भी दही निषिद्धहै। मूंगकी दालका यूष, शहद घृत, खांड, आंवला इनमेंसे किसी एक के मिलाये बिना दही खाना उचित नहीं है। प्रतिदिन दही खाना ठीक नहींहै। मंद दधिका खाना भी निषिद्ध है। इन नियमों पर दृष्टि न करके दही खानेसे ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कोढ, पांडु रोग और भ्रमरोग उत्पन्न होजातेहैं।

तक्रके गुण।

तक्रंलघुकषायाम्लंदीपनंकफवातजित् ॥३४॥
शोफोदरार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहारुचीः।
प्लीहगुल्मघृतव्यापद्वरपांड्वामयान्जयेत् ३५।

अर्थ– तक्र लघु, कसेला, अम्लरसयुक्त दीपन और कफवातनाशकहै। यह शोथ उदररोग, अर्शरोग, ग्रहणी, मूत्रावरोध, अरुचि, प्लीहा, गुल्मरोग, अत्यन्त घृतपानसे उत्पन्न हुए रोग, विषरोग और पांडुरोगोंमें हितकारी है।

दहीके तोडके गुण।

तद्वन्मस्तु सरंस्रोतःशोधिविष्टंभाजिल्लघु।

अर्थ– दहीका तोड भी तक्रके समान ही गुणकारी होताहै। किन्तु यह तक्रकी अपेक्षा अधिकतर मलमूत्रके मार्गोंका शोधनकर्ताहै, विष्टंभनाशक तथा दस्तावरहै और हलका विशेष होताहै।

नवनीतके गुण।

नवनीतंनवंवृष्यंशीतंवर्णबलाग्निकृत् ॥ ३६॥
संग्राहिवातपित्तासृक्क्षयार्शोदितकासजित्

अर्थ– तत्काल निकाला हुआ माखन शुक्रवर्द्धक, शीतवीर्य्य, मलसंग्राहक, बल और वर्णका बढानेवाला, अग्निसंदीपन तथा वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, आर्दित और खांसी इन रोगोंका नाश करनेवालाहै।

दूधके माखनके गुण।

क्षीरोद्भवंतुसंग्राहिरक्तपित्तास्रनिरोगजित्।३७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– दूधमें निकाला हुआ माखन संग्राही, रक्तपित्तरोगनाशक तथा नेत्ररोगोंका जीतनेवाला है ।

घृत के गुण ।

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम् ।
बालवृद्धप्रजाकांतिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम् ॥
क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
घातपित्तविषोन्मादशोषाऽलक्ष्मीज्वरापहम्
स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम् ।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्धृतं कर्मसहस्रकृत् ४० ॥

अर्थ–घृत बुद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा, अग्नि, बल, आयु, वीर्य और नेत्र पक्ष में हितकारी है । बालक, वृद्ध, संतानाभिलाषी, तथा कान्ति, सुकुमारता, और स्वर के अभिलाषी को हितकारी है । क्षतक्षीण, परीसर्प, शस्त्र और अग्नि से पीडित, के लिये भी हितकारक है । वातपित्त, विष उन्माद, शोष, अलक्ष्मी और ज्वर इनका दूर करनेवाला है । सब प्रकार के स्नेह द्रव्यों में घृत सबसे उत्तम, शीतवीर्य और युवावस्था का संस्थापक है । विधिवत् प्रयुक्त किये जाने पर घृत अनेक प्रकार के बल वीर्य और अनेक प्रकार के कर्म करने वाला है ।

पुराने घृत के गुण ।

मदापस्मारमूर्छाशिरःकर्णाक्षियोनिजान् ॥
पुराणं जयति व्याधीन् व्रणशोधनरोपणम् ॥

अर्थ–पुराना घृत, मदरोग, अपस्मार, मूर्च्छा, शिरोरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, और योनिरोगों को नाश करता है । यह व्रण को शुद्ध करता है और उनका रोपण करने वाला है ।

किलाटादि के गुण ।

बल्याः किलाटपीयूषकूर्चिकामोरणादयः ।
शुक्रनिद्राकफकरा विष्टंभिगुरुदोषलाः॥४२॥

अर्थ–किलाट, पीयूष, कूर्चिका और मोरटादि दूध के विकार बलकारक तथा वीर्य, निद्रा और कफको बढाने वाले हैं । विष्टंभी भारी और दोषों को उत्पन्न करने वाले हैं । किलाटादि के लक्षण चरकसुश्रुतादि ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक लिखे हैं ।

गौके दूधको उत्कृष्टता ।

पथ्ये क्षीरघृते श्रेष्ठे निंदिते चाविसंभवे ।

अर्थ–गौका घी और दूध श्रेष्ट होते हैं और भेड़ के घी और दूध निन्दित हैं ।

इक्षुके गुण ।

इक्षो रसो गुरुः स्निग्धो बृंहणः कफमूत्रकृत्
वृष्यः शीतोऽस्रपित्तघ्नः स्वादुपाकरसः सरः
सोऽग्रे सलवणो दंतपीडितः शर्करासमः ४४

अर्थ–ईखका रस भारी, स्निग्ध, बलकारक, कफवर्द्धक, मूत्रकारक, शुक्र वर्द्धक, शीतळ, रक्तपित्तनाशक, स्वादुपाकी, मधुररस युक्त, और दस्तावर होताहै । ईखके अग्र भागका रस लवण रसयुक्त होताहै । दांतसे चबाये हुए ईखका रस शर्कराके समान मिष्ट होताहै ।

अन्य गुण ।

मूलाग्रजंतुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात् ।
किंचित्कालं विधृत्या च विकृतिं यातियांत्रिकः
विद्याही गुरुर्विष्टंभी तेनासौ
तत्र पौंड्रकः ।
शैत्यप्रसादमाधुर्यैर्वरस्तमनुवांशिकः ॥४६॥

अर्थ–ईखकी जड़, अग्रभाग और कीड़ोंसे खाया हुआ भाग एक साथ यंत्र (को-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ल्ह में डालकर पीसकर निकाला हुआ रस थोडेही कालमें बिगड़ जाता है क्योंकि उस में मैल रहताहै, यह विदाही, भारी और विष्टंभी होताहै। इनमें पौंड्र नामक (पौंडा) ईखका रस शीतल, मधुर और प्रसन्नता कारक होताहै वंशनामक ईखका रस इसके गुणोंमें कम होता है।

अन्य ईखके गुण।

शातपर्वककांतारनैपालाद्यास्ततः क्रमात्।
सक्षाराःसकषायाश्चसोष्णाःकिंचिद्विदाहिनः

अर्थ-शात पर्वक, कान्तार नैपालादि ईखों का रस क्रमसे क्षारयुक्त, कसेला और उष्ण होताहै तथा कुछ कुछ विदाही भी होताहै।

गुड़की रावके गुण।

फाणितं गुर्वभिष्यंदि चयकृन्मूत्रशोधनम्।

अर्थ-गुडकी राव भारी, कफकारक, त्रिदोषकारक और मूत्रशोधक होती है।

गुड के गुण।

नातिश्लेष्मकरो धौतः सृष्टमूत्रशकृद्गुडः ४८
प्रभूतकृमिमज्जासृङ्मेदोमांसकफोऽपरः।
द्वयः पुराणः पथ्यश्च नवः श्लेष्माग्निसादकृत्

अर्थ--निर्मल गुड़ कुछ कफ करने वाला और मल मूत्रका निकालने वाला है। अन्य गुड़ कृमिरोग, मज्जा, रक्त, मेद, मांस और कफकारक है। पुराना गुड़ हृदयको हितकारी और पथ्य है। नया गुड कफ वर्द्धक और जठराग्निको मन्द करनेवालाहै।

मिश्री आदि के गुण।

सृष्याः क्षतक्षीणहिता रक्तपित्तानिलापहाः।
मत्स्यंडिकाखंडसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः ५०

अर्थ-निर्मल राव, खांड और मिसरी ये तीनों गुड़की अपेक्षा क्रमपूर्वक अधिक गुण कारी है तथा ये बलवर्द्धक, क्षतक्षीणरोग में हितकारक एवं रक्तपित्त और वायुरोग नाशक हैं।

जवासे की शर्करा के गुण।

तद्गुणा तिक्तमधुरा कषाया यासशर्करा।

अर्थ-जवासे की शर्करा शर्करा के समान गुणयुक्त होती है तथा तिक्त मधुर और कषायरस से युक्त होती है इसे लोकमें यवासशर्करा कहते हैं।

अन्य शर्कराओं के गुण।

दाहतृट्छर्दिमूर्छासृक्पित्तघ्न्यः सर्वशर्कराः।

अर्थ-उक्त अनुक्त सब प्रकार की अन्य शर्करा दाह, तृष्णा, वमन, मूर्च्छा और रक्तपित्त को नाश करती है।

शर्करा और फाणित का अंतर।

शर्करेक्षुविकाराणां फाणितं च वराधरे।

अर्थ-ईखके रस से जितने द्रव्य बनाये जाते हैं उन सब में शर्करा सर्वोत्तम और फाणित बुरा है।

मधुके गुण।

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविषहिध्मारुचिपित्तनुत्
मेहकुष्ठकृमिच्छर्दिश्वासकासातिसारनुत्।
व्रणशोधनसंधानरोपणं पातलं मधु ॥५३॥
रूक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा।

अर्थ-मधु नेत्रों को हितकर, छेदन कर्ता, * और तृषा, कफ, विष, हिक्का, रक्तपित्त, मेह, कुष्ठ, कृमिरोग, वमन, श्वास, खांसी और अतिसारको दूर करता है, यह व्रण को शोधनकर्ता, + संधानकारक और

+ जो भीतर वा बाहर की ग्रन्थि को दूर करता है उसे छेदी कहते हैं।

+ जो दो वा अधिक घावों को मिला देता है उसे व्रणसंधानकर्ता कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रोपणकर्ता तथा बातल है । यह रूक्ष कषाय और मधुर होता है । मधु से बनाई हुई शर्करा मधु के समान गुणयुक्त होती है ।

उष्णमधु के गुण ।

उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहंति तत्।

अर्थ–गर्म शहद पीने से, वा स्वयं अग्न्यादि से तापकर, अथवा उष्णदेश, उष्णकाल वा उष्ण द्रव्यों के संयोग में शहद का सेवन मृत्युकारक होता है ।

शहद का विधान ।

प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न निवार्यते ।
अलम्बपाकमाश्वेव तयार्यस्मान्निवर्तते ५५॥

अर्थ वमनऔर निरूहणबस्तिमेंउष्णमधु वर्जित नहीं हैं, क्योंकि इन दोनों कर्म्मोंमें मधु पकने नहीं पाता है शीघ्रही बाहर निकल आता है ।

तैलवर्गः

तैल के सामान्य गुण

तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च ।
त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च ५६
कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च ।
बद्धविट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वदोषजित् ।

अर्थ–जिन जिन द्रव्यों से तेल निकलता है उन उन द्रव्यों के संपूर्ण गुण उस तेल में भी होते हैं । सब प्रकार के तेलों में तिल का तेल प्रधान होता है । यह तीक्ष्ण, व्यवायि (व्याप्त होने वाला) पीने से त्वचाके दोषों को नाशकरने वाला, नेत्रों को अहित, सूक्ष्म (सूक्ष्म छिद्रों में शीघ्रता से प्रवेश करने वाला), उष्ण वीर्य तथा कफ को उत्पन्न न करने वाला है । * कृश (दुबले) मनुष्य को स्थूल और स्थूल को कृश करने से लिये तैल उत्तम पदार्थ है । मल को कड़ा करता है, कीड़ों का नाश करता है । और जो तैल अन्य औषधों के संस्कार से तयार किया जाता है वह सब प्रकार के दोषों का नाश करने वाला है ॥

अरंडी के तेल का गुण

सरित्कोषणमैरंडं तैलं स्वादु सरं गुरु ।
वर्ध्मगुल्मानिलकफाञ्जुदरं विषमज्वरम् ५८।
रुक्शोफौ च कटीगुह्यकोष्ठपृष्ठाश्रयौ जयेत् ।

अर्थ–अरंडी का तेल कुछ कड़वा और तीखा होता है । वह मधुर, विरेचक और भारी भी होता है । बर्ध्म रोग, गुल्म रोग,

---

+ यहां प्रश्न उठता है कि एक ही वस्तु स्थूलताकारक और कृशताकारक कैसे हो सकती है । इसका समाधान इस तरह है कि कृश मनुष्य के स्रोत रुकजाते हैं और उन में तेल के सिवाय और कोई बृंहणकर्त्ता पदार्थ प्रविष्ट नहीं हो सकता है । तीक्ष्णादि गुणों से युक्त होने के कारण तेल प्रविष्ट होकर सोतों को खोल देता है और सोतों के शुद्ध होने से शरीर पुष्ट होने लगता है कहा भी है । स्त्रोतःसुतत्र शुद्धेषु रसोधातूनुपैतियः । तेनतुष्टिर्बलंवर्णः परंपुष्टिश्चजायते ॥ तथा स्थूल व्यक्ति के सूक्ष्म सोतों में प्रवेश करके अपने तीक्ष्णादि गुणों से मेदा को क्षीण करता है और मेदा के क्षीण होने से कृशता होती चली जाती है इस तरह तेल में दोनों गुण है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वात रोग, कफ, उदर रोग, विषमज्वर को दूर करता है तथा कमर, गुह्येन्द्रिय, कोष्ठ और पीठ की सूजन और दर्द को नाश करता है ॥

लाल अरंड के गुण।

तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरंडोद्भवं त्वति

अर्थ-लाल अरंड का तेल तीक्ष्ण, उष्ण, पिच्छिल और विशेष दुर्गन्धयुक्त होता है।

सरसों का तेल।

कटूष्णं सार्षपं तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम्।
लघुपित्तास्रकृत् कोठकुष्ठार्शोव्रणजंतुजित्॥

अर्थ-सरसों का तेल कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, लघु, रक्तपित्त कारक, कफ शुक्र और वायु-नाशक है। यह कोठ (पित्ती) कुष्ठ, कृमि और व्रण रोगों को दूरकरने वालाहै।

बहेड़े का तेल।

आक्षं स्वादु हिमं केश्यं गुरु पित्तानिलापहम्

अर्थ-बहेड़ेका तेल मधुर, ठंडा, सिर के केशों को बढ़ाने वाला, भारी तथा वात पित्त को दूर करने वाला है।

नीम का तेल।

नात्युष्णं निंबजं तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रणुत्॥

अर्थ-नीम का तेल अत्यन्त गरम नहीं होता है। परन्तु कड़वा, कीड़ों को दूर करनेवाला, भारी कफ और कुष्ठ को विशेष रूप से दूर करता है॥

अलसी और कसूम का तेल।

उमाकुसुंभजं चोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत्।

अर्थ-अलसी और कसूमके बीजोंका तेल गर्महैं तथा त्वग्दोष और कफपित्तको करतेहैं

वसादि के गुण।

वसा मज्जा च वातघ्नौ बलपित्तकफप्रदौ॥
मांसानुगस्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि तादृशम्।

अर्थ- सा और मज्जा ये दोनों वातनाशक तथा बल, पित्त और कफ को उत्पन्न करनेवाले होतेहैं तथा जिस प्राणीका जैसा मांस होताहै उसीके अनुसार गुणवाले वसा और मज्जा भी होते हैं और इन्हीं दोनोंके गुण मेदमें होतेहैं। शुद्ध मांसके स्नेहको वसा अर्थात् चर्बी कहते हैं।

मद्यके सामान्य गुण।

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम्॥
सस्वादुतिक्तकटुकमम्लपाकरसं सरम्।
सकषायं स्वरारोग्यप्रतिभावर्णकृल्लघु॥
नष्टनिद्राऽतिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम्।
कृशस्थूलाहितं रूक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम्।
वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं विषवदन्यथा।

अर्थ-सब प्रकारके मद्य अग्निसंदीपन, रुचिवर्द्धक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मनको तुष्टि और शरीरको पुष्टि देनेवाले हैं तथा कुछ कुछ मधुर, तिक्त और कटु होते हैं ये पाक और रसमें खट्टे होते हैं। रेचक, ईषत् कषाय, तथा स्वर आरोग्यता और कांतिको बढानेवाले और हलके हैं। जिनको नींद न आती हो वा जिनको अधिक नींद आतीहो उनके लिये हित हैं, रक्त पित्तको दूषित करनेवाला, कृश और स्थूल मनुष्यके लिये हितकारक, रूक्ष, सूक्ष्म और रोमकूपोंका शोधन कर्ता है। युक्तिपूर्वक पीनेसे वातकफ नाशकहै अन्यथा पीनेसे विषके समान होताहै।

नये पुराने मद्यके गुण।

गुरु श्लेष्मोपजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–नया मद्य भारी और त्रिदोषकारक होताहै और पुराना मद्य त्रिदोषनाशक तथा हलका होताहै ।

मद्यपानका निषेध ।

पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः ।
नात्यर्थतीक्ष्णमृद्वल्पसंभारं कलुषं न च ॥

अर्थ–गर्म पदार्थ के साथ, गर्म ऋतु में गरम प्रकृति वालेको अन्य गरम उपचारों के साथ मद्य पीना उचित नहीं है तथा विरेचन वाले और क्षुधापीडित को भी न पीना चाहिये । अति तीव्र अति मृदु, अल्प संभार (चाट) युक्त वा अस्वच्छ मद्य पीना भी उचित नहीं है ।

सुराके गुण ।

गुल्मोदरार्शोग्रहणीशोथहृत् स्नेहनी गुरुः ।
सुराऽनिलघ्नी मेदोसृक्कफन्यमूत्रकफावहा ।

अर्थ–सुरा नामक मद्य, गुल्म, उदररोग, बवासीर, संग्रहणी, और शोथ रोगको नष्ट करता है यह स्निग्ध कारक, भारी, वातनाशक है और मेद, रक्त, दूध, मूत्र, और कफ को बढाने वाला होता है ।

वारुणीके गुण ।

तद्गुणा वारुणी हृद्या लघुतीक्ष्णा निहन्ति च ।
शूलकासक्लमश्वासविबंधाध्मानपीनसान् ॥

अर्थ– वारुणीनामक मद्यमें सुराके समान गुण होतेहैं, यह हृदयको हितकारी, हलका, और तीक्ष्ण होताहै तथा शूल, खांसी वमन, श्वास, बद्धकोष्ठता, आध्मान (अफरा) और पीनस इनरोगों को दूर करताहै ।

बहेडेका मद्य ।

नातितीव्रमदा लघ्वी पथ्या वैभीतकी सुरा ।
व्रणे पांडवामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते ॥

अर्थ– बहेडेका मद्य अत्यन्त तीव्र मादक नहीं होताहै, यह हलका और हितकारी होताहै तथा व्रण, पांडुरोग, और कुष्ठरोगमें अन्य मद्योंकी तरह अवगुणकर्ता नहीं होताहै ।

यवसुराके गुण ।

विष्टंभिनी यवसुरा गुर्वी रूक्षा त्रिदोषला ।

अर्थ– यवसुरा विष्टंभी, भारी, रूक्ष, और त्रिदोषकारक होतीहै ।

अरिष्टके गुण ।

यथा द्रव्यगुणोऽरिष्टः सर्वमद्यगुणाधिकः ॥
ग्रहणीपांडुकुष्ठार्शःशोफशोषोदरज्वरान् ।
हंति गुल्मकृमिप्लीहान् कषायकटुवातलः ॥

अर्थ– जिस द्रव्यसे अरिष्ट बनाया जाता है उस द्रव्यका गुण उसमें रहताहै । मद्यके संपूर्ण गुण इसमें विशेष रूपमें रहतेहैं । ग्रहणी रोग, पांडुरोग, कुष्ट, अर्श, सूजन, शोषरोग, उदररोग, ज्वर, गुल्म, कृमिरोग, और तिल्ली इन सब रोगों को दूर करताहै, यह कषाय, तीखा और वादी करनेवाला होताहै ।

द्राक्षा रसका मद्य ।

माद्वीकं लेखनं हृद्यं नात्युष्णं मधुरं सरम् ।
अल्पपित्तानिलं पांडुमेहार्शःकृमिनाशनम् ॥

अर्थ– द्राक्षाके रसकामद्य (अंगूरीशराब) लेखन (कृशकारक), हृदयको हितकर, मधुर, रेचक, तथा पांडुरोग, प्रमेह, अर्श और कृमिरोगनाशकहै यह बहुत गरम नहीं होताहै तथा अन्य मद्योंकी अपेक्षा पित्त और वायुको थोडा उत्पन्न करताहै ।

खिजूरका मद्य ।

अस्माद्दल्पांतरगुणं खार्जूरं वातलं गुरु ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ- खिजूरका मद्य अंगूरी शराबके तुल्य ही गुणवालाहै, यह बातल और भारी होताहै ।

शर्करा का मद्य ।

शार्करः सुरभिः स्वादुर्हृद्यो नातिमदो लघुः ॥

अर्थ-- शर्करा (चीनी) से बनाया हुआ मद्य सुगंधित, मधुर, हृदयको हितकारी और हलका होताहै, इसमें अधिक नशा नहीं होता ।

गुडका मद्य ।

सृष्टमूत्रशकृद्वातो गौडस्तर्पणदीपनः ।

अर्थ-- गुडका मद्य मल मूत्रका प्रवर्तक, वातवर्द्धक, तृप्तिकर्ता और अग्नि संदीपनहै ।

सीधुमद्यके गुण ।

वातपित्तकरः सीधुः स्नेहश्लेष्मविकारहा ॥
मेदःशोफोदरार्शोघ्नस्तत्र पक्करसो वरः ।

अर्थ-ईख के रस से बनाये हुए मद्य को सीधु कहते हैं यह दो तरह का होता हैं । एक अपक्व दूसरा पक्व । अपक्व ईख से बनायाहुआ सीधु वात और पित्तको करताहै, इससे स्नेहजनित (विकार घी और तेल के अत्यन्त सेवन से हुए रोग) स्नेह और कफ के विकार नष्ट होजाते हैं । पक्व ईख के रस से बनाया हुआ सीधु मेद, शोथ, उदररोग, और बवासीर को दूर करता है यह अपक्व ईख के मद्य की अपेक्षा उत्तम होता है ॥

महुआ का मद्य ।

छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित्

अर्थ-महुआका मद्य छेदी (मलभेदक) और तीक्ष्ण है यह मेह, पीनस और खांसी को दूर करदेता है ॥

शुक्त के गुण ।

रक्तपित्तकफोत्क्लेदि शुक्तं वातानुलोमनम् ॥
मूशोष्णतीक्ष्णरूक्षाम्लहृद्यं रुचिकरं सरम् ॥
दीपनं शिशिरस्पर्शं पांडुकृच्छ्रकृमिनाशनम् ।

अर्थ-शुक्त रक्त पित्त और कफ को बाहर की ओर निकालने में प्रवृत करता है तथा वायु का अनुलोमन करनेवाला अत्यन्त उष्णवीर्य, अत्यन्त रूखा, खट्टा, हृदय को हितकारी, रुचिवर्द्धक' रेचक' अग्निसंदीपन तथा शीतस्पर्श है। और पांडरोग, कृमिरोग, तथा नेत्ररोग को दूर करता है । अनेक प्रकार के कन्द मूल और फलादि को नमक और तेल में डालकर जो पतला पदार्थ कई दिन पीछे तयार होता है उसे शुक्त कहते है अथवा बिगडा हुआ मद्य जब खट्टा होजाता है अथवा कोई और मिष्ट पदार्थ बिगड कर उठ आता है उसे भी शुक्त कहते हैं इसे भाषा में सिरका कहते हैं ॥

अन्य शुक्त ।

गुडेक्षुमद्यमार्द्वीकशुक्तं लघु यथोत्तरम् ७८॥
कंदमूलफलाद्यं च तद्वद्विद्यात्तदाऽऽसुतम् ।

अर्थ-गुड के शुक्त से ईख का शुक्त हलका होता है और ईख के शुक्त से मद्य का शुक्त हलका है और मद्य के शुक्त से द्राक्षा का शुक्त हलका होता है जो जो कन्दमूल, फल आदि जिस शुक्त में डाले जाते हैं वे भी उसी के तुल्य गुणयुक्त होजाते है ॥

शांडाकी का गुण ।

शांडाकी चासुतं चान्यत्कालाम्लं रोचनंलघु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–शांडाकी और अन्य आसुत जो काल पाकर खट्टे होजाते हैं ये रुचिकर और हलके होते हैं । (मूली और सरसोंके शाक उबाल कर उस में काला जीरा और राई डालकर थोडे दिन रख दियाजाय और जब वह खट्टा होजाय तब उसे शांडाकी कहते हैं । तथा आम हिसौडे आदि राई नमक मसाला डालकर रखदिये जातेहैं उन्हे आसुत अथवा आचार कहते हैं) ॥

कांजी के गुण ।

धान्याम्लंभेदितीक्ष्णोष्णंपित्तकृत्स्पर्शशीतलम् ।
श्रमक्लमहरं रुच्यं दीपनं वस्तिशूलनुत् ॥८०॥
शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातकफापहम् ।

अर्थ–धान्याम्ल भेदी, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्त कारक छूने में शीतल होता है तथा श्रम और ग्लानि को हरता है, रुचिकर है, दीपन है बस्ति के शूल को नष्ट करता है और आस्थापन कर्म्म में प्रशस्त है, हृदय को हितकारी हलकी और वात कफ को नाश करता है । तीसरे दिन पतला पदार्थ खट्टा होने पर कांजी अथवा धान्याम्ल कहलाता है ॥

गौ आदिके मूत्रके गुण ।

"मूत्रं गोऽजाविमहिषीगजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ।
पित्तलं रूक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु ।
कृमिशोफोदरानाहशूलपांडुकफानिलान् ॥८२॥
गुल्माऽरुचिविषश्वित्रकुष्ठार्शांसि जयेल्लघु ।

अर्थ– गौ, बकरी, भेड़, भैंस, हाथी, घोड़ा, ऊंट, गधा इनका मूत्र पित्तकर्त्ता, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, कुछ खारी तथा तीखा होताहै । ये कृमिरोग, सूजन, उदररोग, अफरा, शूल, पांडुरोग, कफ, वात, गुल्मरोग अरुचि, विषदोष, श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठअर्श,इतने रोगोंको दूर करदेताहै, तथा हलका होताहै ।

अध्यायका उपसंहार ।

तोयक्षीरेक्षुतैलानां वर्गैर्मद्यस्य च क्रमात् ॥८३॥
शति द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृतः ॥ ।

अर्थ– इस अध्यायमें तोयवर्ग, दुग्धवर्ग, इक्षुवर्ग, तैलवर्ग, मद्यवर्ग, में द्रव द्रव्योंका संक्षेपरीतिसे वर्णन किया गयाहै ।

इति श्रीअष्टांगहृदये भाषा टीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अथातोऽन्नस्वरूपविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ– अब हम यहांसे अन्न द्रव्यके स्वरूपका ज्ञान जिसमें वर्णन किया गयाहै उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे । अन्न दो प्रकार का हैताहै एक शूक, दूसरा शिंबी । इनमेंसे शूक धान्य अत्यन्त उपयोगी होनेसे प्रधानहै, इसलिये पहिले शूकधान्यका वर्णनहै।

चांदलका वर्णन ।

" रक्तो महान् सकलमरतृणकः शकुनाहृतः ।
सारामुखो दीर्घशूको रोधशूकः सुगंधकः ॥१॥
पांडुकः पुंडरीकश्च प्रमोदीगौरशालिकः ।
जांगलालोहवालाख्याः कर्दमाःशीतभीरुकाः ।
पतंगास्तपनीयाश्च ये चान्ये शालयःशुभाः ।
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः ।
कषायानुरसाः पथ्या लघवो मूत्रला हिमाः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–रक्त शालि (दाऊदखानी), महा शालि (राम शालि), कलम, तूर्णक (आजव), शकुनाहृत, कृष्णशूक, दीर्घशूक, लोध्रशूक, सुगन्धक, पुंडरीक, प्रमोदी, गौरशालि, जांगल, लोहवाल, कर्दम, शीतभीरु, पतंग और तपनीय आदि अन्य प्रकार के शालि धान्य भी हितकर, मधुर पाक और मधुररसयुक्त, स्निग्ध, शुक्रजनक, बद्ध और अल्प मलकारक, ईषत् कषाय, पथ्य, लघु, मूत्रकारक और शीतल होते हैं।

भिन्न २ देशोंके अनुसार चांवलोंके अनेक भेद होतेहैं और उनके नाम भी जुदे२ हैं। इनमें से कलम नामक विहार प्रान्त में होता है। महाशालि और तूर्णक काश्मीरमें, शकुनाहृत भी विहार प्रान्त में होते हैं। इस के विषय में यह कहागयी है कि बुद्धदेवके उत्पन्न होनेके समय हंस इनको चोंचमें दाबकर ले आयेथे, इनको बोनेसे बड़ा विस्तार हुआ, इसी लिये इनको शकुनाहृत या हंसराजभी कहते हैं।

चांवलों के गुण।

शूकजेषु वरस्तत्र रक्तस्तृष्णाविदोषहा ३ ॥
महांस्तस्यानुकलमस्तं चान्यनुततः परे ।

अर्थ–ऊपर जो सब प्रकार के शूकधान्य कहे हैं उनमें रक्तशालि सब में श्रेष्ठ होते हैं, ये तृषाको दूर करते हैं और त्रिदोष नाशक होते हैं। रक्तशालिकी अपेक्षा महाशालि हीनगुण होता है, महाशालि की अपेक्षा कलम, कलमकी अपेक्षा तूर्णकआदि उत्तरोत्तर गुणोंमें हीन होते हैं।

अन्य चांवलों के गुण।

यवका हायनाः पांसुवाष्पनैषधकादयः ४ ॥
स्वादुष्णागुरवःस्निग्धाःपाकेऽम्लाःश्लेष्मपित्तलाः। सशूमूत्रपुरीषाश्च पूर्वे पूर्वे च निंदिताः॥

अर्थ–यवक, हायन, पांसु, वाष्प, नैषधक, आदि चांवल मधुररस युक्त, उष्णवीर्य, भारी, स्निग्ध, अम्लपाकी, कफपित्तकारक, मलमूत्रनिःसारक होते हैं। ये पूर्व पूर्व निन्दित होते हैं अर्थात् यवक जाति के चांवल सब में गुणहीन होते हैं।

साठी चांवल के गुण।

स्निग्धो ग्राही लघु स्वादुस्त्रिदोषघ्नःस्थिरोहिमः षष्टिकोव्रीहिषु श्रेष्ठो गौरश्वालितगौरतः ६ ॥

अर्थ–व्रीहिधान्यों में साठीचांवल सर्वोत्तम होता है। साठीचांवल दो प्रकार का होता है गौर और कृष्णगौर। इनमें गौर उत्तम होता है। यह स्निग्ध, ग्राही, भारी, मधुर, त्रिदोषनाशक, शरीर को स्थिर करने वाला और शीतवीर्य होता है।

चांवलों की अन्य जाति।

ततः क्रमान्महाव्रीहिकृष्णव्रीहिजतूमुखः ।
कुक्कुटांडकपालाख्यपारावतकशूकराः ७ ॥
वरकोद्दालकोज्वालचीनिशारददुर्दुराः ।
गंधनाः कुरुविंदाश्च गुणैरल्पांतराः स्मृताः ॥

अर्थ–साठी चांवलोंसे महाव्रीहि, कृष्णव्रीहि, जतुमुख, कुक्कुटांड, कपाल, पारावतक, शूकर, वरक, उद्दालक, ज्वाल, चीनी, शारद, दर्दुर, गंधन, कुरुविन्द, ये उत्तरोत्तर गुणोंमें हीनहैं। इनके भिन्न२ नाम आकृति और देश भेदसे पड़गये हैं।

पाटलके गुण।

स्वादुरम्लविपाकोऽन्यो व्रीहिः पित्तकरोगुरु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुमूत्रपुरीषोष्मा त्रिदोषस्त्वेव पाटलः ॥

अर्थ–ऊपर कहेहुए व्रीहि धान्योंमें एक पाटलके फूलके रंगका धान्य और होता है इसे पाटल कहते हैं, यह मधुररस युक्त, अम्लविपाकी, पित्तकारक, भारी, बहुमूत्र कारक, मलनिःसारक, गर्मी बढानेवाला और त्रिदोषकारक होताहै।

तृणधान्योंके गुण।

" कंगुकोद्रवनीवारश्यामाकादि हिमं लघु।
तृणधान्यं पवनकृल्लेखनं कफपित्तहृत् १० ॥

अर्थ--कंगु (कांगनी) कोद्रव (कोदों) नीवार, शयामाक (सोंखिया) प्रभृति शीत वीर्य और लघु होते हैं। ये तृण धान्य वायु वर्द्धक, लेखन और कफ पित्तकारक होतेहैं।

कंगु और कोद्रव के गुण।

भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियंगुर्बृंहणी गुरुः ।
कोरदूषः परं ग्राही स्पर्शाशीतो विषापहः ॥

अर्थ--उक्त तृणधान्यों में कांगनी टूटी हड्डी को जोड़ देती है। यह पौष्टिक और भारी होती है। सुश्रुतमें कांगनी चार प्रकार की लिखी है। रक्तः पीताः कृष्णाश्च श्वेताश्चैव प्रियंगवः। यथोत्तर प्रधानाः स्युरूक्षाः कफहराः स्मृताः। लाल, पीली, काली, और सफेद ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती है तथा रूक्ष और कफनाशक होती है।

कोदों अत्यन्त संग्राही, स्पर्श करने से शीतल, और विषनाशक होती है।

जौ के गुण।

कक्षः शीतोगुरुःस्वादुःसरोविष्टवातकृद्यवः।
वृष्यःस्थैर्यकरोमूत्रमेदःपित्तकफान्जयेत्१२
पीनसश्वासकासोरुस्तंभकंठत्वगामयान्।

अर्थ–जौ रूक्ष, शीतवीर्य, भारी, मधुर, रेचक, मल और वायु उत्पन्न करने वाला, पौष्टिक, स्थिरताकारक, और मूत्र, मेद, पित्त तथा कफका जीतने वाला होता है। तथा पीनस, श्वास, खांसी, ऊरुस्तंभ, कंठ और त्वचा की व्याधियों को दूर करने वाला है।

जौ की अन्य जाति।

न्यूनोयवाद्न्ययवः
रूक्षोष्णोवंशजोयवः ॥ १३ ॥

अर्थ एक और प्रकार का क्षुद्रयव होता है यह जौकी अपेक्षा गुणहीन होता है एक प्रकार का जौ बांस में होता है उसे वंशज कहते हैं। कहते हैं यह रूक्ष और गरम होता है।

गेंहूके लाभ।

वृष्यःशीतोगुरुःस्निग्धोजीवनोवातपित्तहा।
संधानकारीमधुरोगोधूमः स्थैर्यकृत्सरः॥१४॥

अर्थ--गेंहू वीर्योत्पादक, शीतल, भारी, स्निग्ध, जीवन (ओज नामक धातुका बढाने वाला) वात पित्तनाशक, टूटे अंगको जोड़ने वाला, मधुर, स्थिरता कारक और रेचक होता है। रेचक से दस्तावर न समझना चाहिये केवल मलको नरम करदेता है।

गेंहूके भेद।

पथ्या नंदीमुखी शीता कषायमधुरा लघुः ।

अर्थ--एक प्रकारका गेंहू लंबा और पतला होताहै उसे नंदीमुख कहते हैं, यह ठंडा, कसेला, मधुर और लघु होताहै।

शिंबी धान्योंके सामान्य गुण।

मुद्गाढकीमसूरादिशिंबीधान्यंविबंधकृत् १५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कषायस्वादुसंग्राहिकटुपाकांहिमंलघु।
मेदःश्लेष्मास्रपित्तेषुहितंलेपोपसेकयोः ॥१६॥

अर्थ--मूंग, अडहर, मसूर आदि शिंबी-धान्य विबंधकारक होतेहैं। ये कसैले, मधुर, संग्राही, कटुपाकी, हिम और लघु होते हैं। तथा मेद, कफ, रक्त पित्तादिमें हितकारक हैं, तथा लेप और उपसेक में काम आतेहैं।

मूंगके लाभ।

वरोऽत्रमुद्गोऽल्पचलः कलायस्त्वपिवातलः
राजमाषोऽनिलकरोरूक्षोबद्धशकृद्गुरुः ॥१७॥

अर्थ- शिंबी धान्योंमें मूंग सबसे उत्तम है, यह अल्प वायुकारकहै। मटर अत्यन्त वायुकर्ताहै। चौला वायुकर्ता, रूक्ष, बद्ध-मलजनक और भारी होताहै।

कुलथीका गुण।

उष्णाःकुलत्थापाकेऽम्लाः शुक्राश्मश्वासपीन
सानकासार्शःकफवातांश्चघ्नंतिपित्तास्रदाःपरं

अर्थ- कुलथी उष्णवीर्य, अम्लपाकी, और वीर्य, पथरी, श्वास, पीनस, खांसी, ववासीर, कफ और वातको दूर करतीहै और रक्तपित्तको बहुत बढातीहै।

राजशिंबीके गुण।

निष्पावोवातपित्तास्रस्तन्यमूत्रकरोगुरुः
सरोविदाहीदृक्शुक्रकफशोफांवेषापहः॥१९॥

अर्थ- मौठ, वायु, पित्त, रुधिर, दूध और मूत्रको बढातीहै, भारी और रेचकहै पाकके समय विदाह करतीहै, नेत्र, वीर्य, कफ, सूजन, और विषदोषका नाश करतीहै।

उरदके गुण।

माषःस्निग्धोबलश्लेष्ममलपित्तकरःसरः।
गुरूष्णोऽनिलहास्वादुः शुक्रबृद्धिविरक्कृत्

अर्थ- उरद स्निग्धहै तथा बल, कफ, मल और पित्तको उत्पन्न करताहै, तथा रेचक, गरम, भारी, वायुनाशक, मधुर, वीर्यवर्द्धक और वीर्यनिःसारकहै।

कटभी और कोंचके गुण।

फलानिमाषवद्विद्यात्काकांडोलात्मगुप्तयोः।

अर्थ-कटभी और कोंचके फल उरदके समान गुणकारी होते हैं।

तिलके गुण।

उष्णस्त्वच्योहिमःस्पर्शेकेश्योबल्यस्तिलोगुरुः
अल्पमूत्रकटुः पाकेमेधाऽग्निकफपित्तकृत्।

अर्थ--तिल गरम तथा शरीरकी त्वचा को हितकारी होताहै, स्पर्श में शीतल है। केशों को हितकारी, बलवर्द्धक और भारी होताहै, मूत्रको कम करताहै, पाकके समय कटु होताहै, बुद्धि, जठराग्नि, कफ और पित्तको बढानेवाला है।

अलसी और कसूमके बीजके गुण।

स्निग्धोमास्वादुतिक्तोष्णाकफपित्तकरीगुरुः
दृक्शुक्रहृत्कटुःपाके

तद्बद्बीजंकुसुंभजं।

अर्थ- अलसी स्निग्ध, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, कफोत्पादक, और पित्तकारक नेत्र और वीर्यको हानि पहुंचाने वाली है तथा पाक में कटुहै। कसूमके बीज के गुण भी अलसीके समान होते हैं।

माषोऽत्रसर्वेष्ववरोयवकःशूकजेषुच ॥२३॥

अर्थ- शिम्बी धान्योंमें उरद और शूक धान्यों में यवक सबसे निकृष्ट होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नये धान्यादि।

नवंधान्यमभिष्यंदि लघुसंवत्सरोषितम्।
शीघ्रजन्मतथासूप्यंनिस्तुषंयुक्तिभर्जितम् २४

अर्थ--नवीन अन्न श्लेष्मा को बढाता है, वही अन्न एक बरस का होनेपर हलका होजाता है। जो थोड़े ही काल में तयार हो जाते हैं और जिनसे दाल बनती है ऐसे धान्य हलके होते हैं। तथा जिनके छिलके दूर करके युक्ति पूर्वक भूने जाते हैं वे भी हलके होते हैं॥

मण्ड के गुण।

मंडपेयाविलेपीनामोदनस्यचलाघवम्।
यथापूर्वंविशेषस्तत्रमंडोवातानुलोमनः॥ २५॥
तृड्ग्लानिदोषशेषघ्नःपाचनोधातुसाम्यकृत्
स्रोतोमार्दवकृत्स्वेदसंक्षयतिचानलम् २६

अर्थ--मंड, पेया, विलेपी और भात इनमें पूर्व पूर्व हलके होतेहैं अर्थात् भातसे विलेपी इससे पेया, पेयासे मंड हलका होताहै। इन में से मंड अत्यन्त हितकारक और वायु का अनुलोमन कर्त्ता है। तृषा, ग्लानि, दोष और शेष को हरता है। धातुओं को समानावस्था पर लानेवाला है। मल मूत्रादि के स्रोतों को मृदु करता है। पसीने लाता है और जठराग्नि को बढाता है। जो बिल्कुल पानीसा होताहै उसे मंड कहते हैं।

पेया के गुण।

क्षुत्तृष्णाम्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा।
मलानुलोमनीपथ्यापेयादीपनपाचनी॥२७॥

अर्थ--पेया भूख, तृषा, ग्लानि, दुर्बलता, कुक्षि के रोग और ज्वर को दूर करती है, बातादिक दोषों को अपने मार्ग पर लानेवाली है, यह हितकारी, अग्निसंदीपन और पाचनकर्ता है। चौगुने पानी में चांवल उबाल कर पतला कांजी के समान चिकनाई लिये हुए पानी सा निकाला जाता है उसे पेया कहते हैं।

विलेपी के गुण।

विलेपीग्राहिणीहृद्यातृष्णाघ्नीदीपनीहिता।
व्रणाक्षिरोगसंशुद्धदुर्बलस्नेहपायिनाम्॥२८॥

अर्थ--विलेपी संग्राही, हृदयको हितकारी, तृष्णा को दूर करनेवाली, अग्निसंदीपनी, और हितकारी होती है। व्रण, नेत्ररोग, वमनविरेचनादि से शुद्ध किये हुए के लिये, दुर्बल के लिये और जिसको स्नेह पान कराना हो उस के लिये हितकारी है।

भात के गुण।

सुधौतःप्रस्रुतःस्विन्नोऽत्यर्कोष्माचोदनोलघुः
यश्चाग्नेयौषधक्वाथसाधितोस्रष्टतंडुलः।२९।
विपरीतो गुरुः क्षीरमांसाद्यैश्चैव साधितः।

अर्थ--अच्छी तरह से धोये हुए चांवलों को रांधकर उनका मांड निकाल डाले, ऐसा भात जो बिलकुल ठंडा न होगया हो हलका होता है। जो चित्रादिक गरम औषधोंके संग भात बनाया जाता है वह बहुत हलका होता है। सेके हुए चांवलों का भात उससे भी हलका होता है। जो दूध वा मांसादि के साथ पकाया जाता है वह इससे भी विपरीत अर्थात् भारी होता है।

इतिद्रव्यक्रियायोगमानाद्यैःसर्वमादिशेत्।३०।

अर्थ--इस तरह द्रव्य, क्रिया, योग, और परिमाणादि द्वारा अन्न में हलकापनवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारापन हो जाता है। द्रव्यद्वारा यथाः-रक्तशाल्यादि का भात हलका और यावकादिका भारी होता है। क्रियाद्वारा यथाः-शूलपर भुना हुआ मांस हलका है और उबाला हुआ मांस भारी है। योगद्वारा, यथाः-चित्रकादि औषधों के साथ में सिद्ध किया हुआ भात हलका है, इससे अन्यथा भारी होता है। परिमाणद्वारा, यथाः-भारीअन्न थोड़ा खाने से हलका होता है और पेयादिलघु पदार्थ अधिक सेवन किये जाने पर भारी होते हैं।

मांसरस का गुण।

बृंहणःप्रीणनोवृष्यश्चक्षुष्योव्रणहारसः।

अर्थ-मांसरस पुष्टिकर्ता, आनंददायक, वीर्योत्पादक, नेत्रोंको हितकर, और व्रणनाशक होता है। मांसरस कृत और अकृत दो प्रकार का होता है, स्नेह, शुंठी आदि द्वारा सिद्ध किया हुआ कृत और इससे विपरीत अकृत होता है।

मूंग के यूषके गुण।

मौद्गस्तुपथ्यःससुद्धव्रणकंठाक्षिरोगिणाम्३१

अर्थ-मूंगका यूष पथ्य है, दोषों से शुद्ध हुए को, व्रणरोगीको, कंठरोगीको, और नेत्ररोगी को बहुत हितकारी है। मूंगका यूष भी संस्कृत और असंस्कृत दो प्रकार का होता है। संस्कृत यथाः--आठ तोले मूंग को सोलह गुने पानी में उबालकर चौथाई शेष रहजानेपर कपड़े में छानले और इस पानी में चार तोले दाडिम का रस, सेंधानमक, सोंठ, धनियां पीपल और जीरा प्रत्येक तीन मांशे डालकर पान करै। यह पित्त तथा कफनाशक है। इसी तरह भिन्न २ रोगोंमें भिन्न भिन्न रीति से पकाया जाता है।

कुलथी के यूष के गुण।

मौतानुलोमी कौलत्थोगुल्मतूनिप्रतूनिजित्।

अर्थ-कुलथी का यूष वायुको अनुलोमन करता है, यह गुल्मरोग तथा तूनि प्रतूनि रोगों को दूर करता है।

तिल के पदार्थों का गुण।

तिलपिण्याकीविकृतिःशुष्कशाकंविरूढकम्३२
शांडाकीवटकंदघ्नंदोषलंग्लपनं गुरु।

अर्थ-तिल के पदार्थ, पिण्याक के बने पदार्थ, सूखे शाक, अंकुरित अन्न शाडाकी में भिगोये हुए बड़े ये सब नेत्रों को अहित दोषकारक और ग्लानि उत्पन्न करने वाले हैं।

शिखंड के गुण।

रसालावृंहणीवृष्यास्निग्धावल्यारुचिप्रदा ३३

अर्थ--कालीमिरच, शर्करा आदि डालकर दही से बनाई हुई को रसाला, शिखंड वा लोक में सिखरन कहते हैं यह पौष्टिक, वीर्यजनक, स्निग्ध, और रुचिवर्द्धक है॥

पानक के गुण।

श्रमक्षुत्तृट्कलमहरंपानकंप्रीणनंगुरु।
विष्टंभिमूत्रलंहृद्यंयथाद्रव्यगुणंचतत्॥ ३४

अर्थ-- पानक श्रम, भूख, तृषा और थकावट को दूर करताहै, मनको प्रसन्न करनेवाला और भारी होताहै, मलवर्द्धक मूत्रनिःसारक और हृदयको हितकारकहै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा जो जो पदार्थ उसमें पडेहों उन्होंके गुणोंसे युक्त होता है ।

धानीका गुण ।

लाजास्तृट्छर्दितीसारमेहमेदःकफान्छिदः ।
कासपित्तोपशमना दीपना लघवो हिमाः॥३५

अर्थ– चांवलकी खील तृषा, वमन, अतीसार, प्रमेह, मेदरोग, तथा कफरोगनाशकहै । खांसी और पित्तको दूर करतीहै अग्निसंदीपन, लघु और शीतलहै ।

पृथुकादिके गुण !

पृथुका गुरवो बल्याः कफविष्टंभकारिणः ।
धाना विष्टंभिनी रूक्षा तर्पणी लेखनी गुरुः ।

अर्थ– हरे धान्यको निस्तुषकरके मूसल से कूटकर भून लेतेहैं उसे चिपिट कहतेहैं ये भारी बलकारक, कफकारी और विष्टंभी होतेहैं । जौ आदि धानी विष्टंभी, रूक्ष तृप्तिकर्ता, लेखनकर्ता और भारी होती है ।

सत्तूके गुण ।

सक्तवो लघवः क्षुत्तृश्रमनेत्रामयव्रणान् ।
घ्नंति संतर्पणाः पानात्सद्य एव बलप्रदाः ३७
नोदकांतरिता न द्विर्न निशायां न केवलान् ।
न भुक्त्वा न द्विजैरिछ्वा सक्तूनद्याच्चवावहून्

अर्थ– सत्तू हलका होताहै, तृषा, श्रम, नेत्ररोग, व्रणरोग, इनको दूर करताहै । तृप्ति करताहै, पानीमें घोलकर पीनेसे तत्काल बल बढाताहै सत्तू खानेके समय बीच बीचमें बार बार जल पीना उचित नहीं है एक दिनमें दो बार भी खाना उचित नहींहै घी वा शर्करा मिलाये विना सूखा सत्तू नहीं खाना चाहिये रात्रिमें नहीं खाना चाहिये भोजन करके, अथवा दांतन करके अथवा परिणामसे अधिक सत्तू खाना उचित नहींहै ।

पिण्याकके गुण ।

पिण्याको बल्यनो रूक्षो विष्टंभी दृष्टिदूषणः ।

अर्थ– तिलका कल्क अर्थात् खल बलनिकर्ता रूक्ष, विष्टंभी और नेत्रोंको हानि पहुंचानेवालाहै ।

वेसवारके गुण ।

वेसवारो गुरुः स्निग्धो बलोपचयवर्धनः।३९।
मुद्गादिजास्तु गुरवो यथाद्रव्यगुणानुगाः ।

अर्थ– वेसवार भारी, स्निग्ध, बलकारक और पौष्टिक होताहै मूंग आदि द्रव्योंसे बनाया हुआ वेसवार भारी होता है । जिस पदार्थका वेसवार बनाया जाता है, उस पदार्थ के गुण उसमें रहते हैं । निरस्थि मांस को कूटकर धनियां, जीरा, हींग और घृतादि डालकर पकाने से वेसवार बनता है तथा अदरखके छोटे छोटे टुकडे और मूंगकी पिट्ठी मिलाकर जो बनाया जाता है उसे मुद्गादिका वेसवार कहते हैं । इसका लौकिक नाम पूरण भी है ।

रोटी आदिके गुण ।

कुकूलकर्परभ्राष्ट्रकंडूंगारविपक्वितान् ।४०।
एकयोनींस्तथून्विद्यादपूपानुत्तरोत्तरम् ।

अर्थ– एकही प्रकारके अन्नकी रोटियां नीचे लिखी रीतिसे जुदी जुदी आग्नि पर बनाई जांय तो वे उत्तरोत्तर हलकी होतींहैं (ऊपले की आगसे पकाई हुई रोटियों से कर्पर (खीपडे) पर पकाई हुई हलकी होतींहै । कर्परपकसे भ्राष्ट्रपक्व, भ्राष्ट्रपकसे कंदुपक्व, कंदुपकसे अंगारपक्व, हलकी होती है । (कुकूलगोका गोवर । कर्पर अग्नि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से तप्त खीपडा। अंगार लकडीके कोयले)।

मांसवर्गः-मृगवर्गः ॥

हरिणैणकुरंगर्क्षगोकर्णमृगमातृकाः ॥ ४१॥
शशशंबरचारुष्कशरमाद्या मृगाः स्मृताः ।

अर्थ- हरिण, (सफेद हरिण) एण (कृष्णसार), कुरंग (चारुलोचन) ऋष्य (नीलांड), गोकर्ण (ताम्रवर्ण), मृगमातृका (कुरंगनी), शश (खरगोश , शंबर (सांबर) चारुक और शरभ ये मृगों के साधारण नामहैं। इनके अतिरिक्त काल-पुच्छा, पृषतादिक और भी बहुतसे हैं।

विष्किरोंके नाम।

लाववर्तीकवार्तीररक्तवर्त्मककुक्कुभाः॥४१॥
कपिंजलोपचक्राख्यचकोरकुरुवादवः ।
वर्तकोवर्तिकाचैवतित्तिरिःककरःशिखी॥४३॥
ताम्रचूडाख्यवकरगोनर्दगिरिवर्तिकाः ।
तथाशारपेदेन्द्राभवारटाश्चेतिविष्किराः ४४

अर्थ- लाव, बटेर, वार्तीर, रक्तवर्त्मक, कुक्कुभ, जंगली मुर्ग जिसकी आंख लाल होती है, सफेद तीतर, चकवा, चकोर, उत्कोश, मारुई, बटेर, तीतर, कृकर, मुर्गे, बगुला, कक, सारस, गिरवर्तिका, शारपद, इन्द्राभ और वारटा ये सब विष्किर अर्थात् पांवसे बखेरकर खानेवाले पक्षी होतेहैं।

प्रतुदवर्ग और बिलेशय।

जीवंजीवकदात्यूहभृंगाह्वशुकसारिकाः ।
लटवाकोकिलहारीतकपोतचटकादयः॥४५॥
प्रतुदा भेकगोधाहिश्वाविदाद्याविलेशयाः ।

अर्थ- जीवजीवक, दात्यूह (जलकाक) भृंगाह्व (भौंराविशेष), तोता, मैना, लाट, कोकिला, हारीत, कपोत, चिडिया, ये सब अपनी चोंचसे तोडकर खाते हैं इस लिये प्रतुद कहलाते हैं। मेंडक, गोधा, सर्प, सेह आदि बिलोंमें रहनेवाले बिलेशय कहलाते हैं

प्रसह वर्ग।

गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्षवानराः॥४६॥
मार्जारमूषकव्याघ्रवृकवभ्रुतरक्षवः ।
लोपाकजम्बुकश्येनचाषवान्ताद्वायसाः ४७
शशघ्नीभासकुररगृध्रोलूककुर्कुलिंगकाः ।
धूमिकामधुहाचेतिप्रसहामृगपक्षिणः ॥ ४८ ॥

अर्थ- गौ, गधा, खिचर, ऊंट, घोडा, द्वीपी, सिंह, रीछ, बंदर, बिल्ली, चूहा, बाघ भेडिया, नकुल, तरक्षु, लोपाक, गीदड, सिकरा, चील, कुत्ता, कौआ, शशघ्नी, भास, कुररी, गिद्र, उल्लू, कुर्कुलिंग, (चिडा), धूमिका, मधुहा, येसब बलपूर्वक खातेहैं इस से इन्हें प्रसह कहते हैं।

महामृगोंके नाम।

वराहमहिष्यंकुरुरुरोहितवारणाः ।
सृमरश्चमरःखड्गगोगवयश्चमहामृगाः॥४९॥

अर्थ-शूकर, भैंसा, न्यंकु, रुरु, रोहित हाथी, सृमर, गैंडा और रोझ ये महामृग कहलाते हैं।

जलचरवर्ग।

हंसस्सारसकादंबबककारंडवप्लवाः ।
बलाकोत्क्रोशचक्राह्वमद्गुक्रौंचादयोऽपचराः

अर्थ-हंस, सारस, कलहंस, बगुला, शुक्लहंस, कवाड, बलाका, उत्क्रोश, चक्रवाक जलकाक और क्रौंच ये सब जलचर, पक्षी हैं।

मत्स्यवर्ग।

मत्स्यारोहितपाठीनकूर्मकुंभीरकर्कटाः ।
शुक्तिशंखोडुशंबूकशफरीवर्मिचंद्रिकाः ।'५१।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चुल्लूकैनक्रमकरशिशुमारतिमिंगिलाः ।
राजीचिलिचिमाद्याश्च
मांसमित्याहुरष्टधा ॥ ५२ ॥

अर्थ–रोहित, पाठीन ये दो बडी मछलियां हैं) कच्छप, कुंभीर, केंकडा, शुक्ति शंख, उद्दू, शंबूक, शफरी, धर्मि, चन्द्रिका, चुल्लूकी, नक्र, मगर, शिशुमार, (सूंस), तिमिंगला, राजी और चिलचिमा ये सब मछली की जाति के कहलाते हैं। इसी तरह शास्त्रकारोंने आठ प्रकार का मांस कहा है।

मिश्रवर्ग ।

योनिष्वजावीष्वामिश्रगोचरत्वादनिश्चिते ।

अर्थ–भेडा और बकरा ये दोनों जांगल और आनूप दोनों में पाये जाते है इसलिये इनका आवास स्थान अनिश्चित है अतएव ये मिश्र देशीय कहलाते हैं।

जांगलादिक संज्ञा ।

आद्यान्त्याजांगलानूपामध्यौसाधारणौस्मृतौ

अर्थ–कहे हुए आठ प्रकार के जीवोंमें पहिले तीन मृग, विष्किर और प्रतुद जांगलदेशीय है पिछले तीन महामृग जलचर और मत्स्य ये आनूप देशीय हैं। बीचवाले दो विलेशय और प्रसह साधारण देशीय हैं।

जांगल वर्ग का गुण ।

तत्रवद्धमलाःशीतालघवोजांगलाहिताः ।
पित्तोत्तरेवातमध्येसान्निपातेकफानुगे ॥ ५४ ॥

अर्थ-इनमेंसे जांगल जीवोंकामांस हित कारी है यह मल को बांधता है शीतवीर्य और हलका होता है जिस मनुष्य को ऐसा सन्निपात होजाता है जिस में पित्त प्रधान वायु मध्यबल और कफ हीन बल होता है उनके लिये उपयोगी होता है।

शशक मांस ।

दीपनः कटुकः पाके ग्राहीरूक्षोहिमःशशः ।

अर्थ.खगोश का मांस अग्निसंदीपन कटुपाकी मलसंग्राही रूक्ष और शीतवीर्य होताहै।

तीतरादि के मांसका गुण ।

ईषदुष्णागुरुःस्निग्धा बृंहणावर्तकाद्ययः ॥५५
तित्तिरिस्तेष्वपिवरो मेधाग्निबलशुक्रकृत् ।
ग्राही वर्ण्योऽनिलोद्रिक्तसन्निपातहरः परम्

अर्थ– बटेर आदि का मांस कुछ गरम, भारी, स्निग्ध और बलकरक होता है। इन सबमें तीतर का मांस सबसे उत्तम होताहै, यह मेधा, जाठराग्नि, बल और वीर्यको बढाता है, तथा मलसंग्राही, कान्तीजनक, और वात प्रधान सन्निपात को दूर करता है।

अन्य पक्षिपों के मांस ।

नातिपथ्यःशिखीपथ्यः श्रोत्रस्वरवयोदृशाम्
तद्वच्च कुक्कुटो वृष्यः ग्राम्यस्तुश्लेष्मलोगुरुः
मेधाऽनलकरा हृद्याः कृकराः सोपचक्रकाः
गुरुः सलवणः काणकपोतः सर्वदोषकृत् ॥
चटकाःश्लेष्मलाःस्निग्धावातघ्नाःशुक्रलाःपरम्

अर्थ– मोर का मांस शरीर के पक्षमें अत्यन्त हितकर नहीं है, किन्तु, कान, स्वर, वयस्थापन और नेत्र पक्षमें हित होता है। जंगली मुर्ग मोर के समान गुणकारी है, यह बलकारकहै परन्तु, पालतू मुर्ग का मांस कफ व वर्द्धक और भारी होताहै कृकर और उपचक्र का मांस मेधा और अग्निवर्द्धक है तथा हृदयको हितकारी होता है। कालकपोत का मांस भारी कुछनमकीन, और सब दोषों का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करनेवाला है। चिडिया का मांस कफकारक, स्निग्ध, वात नाशक और अत्यन्त वीर्यवर्द्धक होता है।

बिलेशयादि का मांस।

गुरूण्यस्निग्धमधुरा वर्गाश्चातो यथोत्तरम्।
मूत्रशुक्रकृतो बल्या वातघ्नाः कफपित्तलाः।

यहां से आगे जो बिलेशयादि पांच वर्ग हैं उनके मांस यथाक्रम उत्तरोत्तर अधिकतर भारी चिकने और मधुर रस युक्त होते हैं। अधिकतर मूत्र, शुक्र और बलकारक होते हैं अधिकतर वातनाशक और अत्यन्तकफ और पित्तवर्धक होते हैं। अर्थात् बिलेशयवर्ग की अपेक्षा प्रसहवर्ग अधिक भारी, मधुर और स्निग्धादि गुणयुक्त होताहै। प्रसहकी अपेक्षा महामृगादि इसी तरह और भी जानो।

महामृगादि के गुण।

शीता महामृगास्तेषु कव्यादाः प्रसहाःपुनः॥
लवणानुरसाः पाके कटुका मांसवर्धनाः।
जीर्णशोषग्रहणीदोषशोषार्तानां परं हिताः॥

अर्थ-अब महामृगादि के विशेष गुण कहते है महामृगों में बाराहादि का मांस शीत वीर्य होता है प्रसहगण में बिल्ली गिद्ध आदि कव्य मांस खानेवालों का मांस किंचित् लवण रस युक्त कटुरसी और अतिशय मांसवर्द्धक होता है यह जीर्ण रोग, अर्श, ग्रहणी और शोषरोग में बहुत हितकारी होता है।

बकरे के मांसका गुण।

नातिशीतगुरुस्निग्धं मांसमाजमदोषलम्।
शरीरधातुसामान्यादनभिष्यंदिबृंहणं॥ ६३॥

अर्थ-बकरे का मांस अल्प शीतवीर्य अल्प गुरु अल्प स्निग्ध और ईषत् दोष प्रकोपक होताहै मनुष्य के शरीर की धातुओं के समान बकरे के धातु हैं इससे यह मांसपौष्टिक और अनभिष्यंदि हैं इस बात से मनुष्य के मांस के गुण भी जान लेना चाहिये यह समानता केवल धातुओं के गुण की जाननी चाहिये द्रव्य की नहीं॥

भेड़ के मांस के गुण।

विपरीतमतो ज्ञेयमाविकं बृंहणंतु तत्।

अर्थ-भेड़ का मांस बकरे के मांस से विपरीत गुणवाला होताहै। यह अत्युष्ण, अतिगुरु, अति स्निग्ध, अति दोषजनक, अभिष्यन्दि और मांसवर्द्धक होताहै।

गोमांस के गुण।

शुष्ककासश्रमाऽत्यग्निविषमज्वरपीनसान्।
कार्श्यं केवलवातांश्चगोमांसंसान्नियच्छति।

अर्थ-गोमांस सूखी खांसी, श्रम, अत्यग्नि, विषमज्वर, पीनस, शरीर की कृशता, अन्य दोषों से रहित केवल वात प्रकोप को दूर करता है।

भैंसा के मांस का गुण।

उष्णोगरीयान्महिषःस्वप्नदार्ढ्यबृहत्त्वकृत् ६५

अर्थ-भैंसे का मांस गरम, भारी, निद्रा लानेवाला, शरीर को दृढ और पुष्ट करने वाला है।

बाराह मांस के गुण।

तद्वद्वराहः श्रमहा रुचिशुक्रबलप्रदः।

अर्थ-शूकरके मांसके गुण भैंसे के समान ही होते हैं। विशेषता यहहै कि शूकर का मांस श्रमनाशक, रुचिवर्द्धक, तथा वीर्य और बलवर्द्धक होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मत्स्य मांस का गुण ।

मत्स्याः परं कफकराः

चिलिचीमस्त्रिदोषकृत् ।६६।

अर्थ–पीछे कह आये है कि विलेशय वर्ग के पीछे के वर्गों का मांस उत्तरोत्तर अति भारी, अति गरम, अति स्निग्ध, अति मधुर, अति मल-मूत्र-वीर्य वर्द्धक, अति वायुनाशक और अति कफ पित्तकारी है । परन्तु मत्स्य-वर्ग सब से पिछला है इस लिये ऊपर कहे हुए सब गुण मछलियों में विशेष रूप से हैं और यहां जो कफकरा लिखा गया है वह यही दिखाने के लिये लिखा है कि कफ का गुण तो बहुतही विशेष रूपसे है । चिलचीम मत्स्य का मांस तीनों दोषों का करने वाला है ।

सर्वोत्तम मांस ।

लावरोहितगोधैणाःस्वे स्वे वर्गेवराःपरम् ।

अर्थ–लवा - रोहित मछली, जलकी गोह और मृग इनका मांस अपने अपने वर्ग में सर्वोत्तम है ॥

त्याज्यात्याज्य मांस ।

"मांसंसद्योहतंशुद्धंवयःस्थंचभजेत्

त्यजेत् ॥ ६७ ॥

मृतं कृशं भृशं मेध्यव्याधिवारिविषैर्हतम् ।

अर्थ–तत्काल मारेहुए जीव का मांस खाने के योग्य होता है । तथा तरुण जानवर का मांस स्नायु आदिसे शुद्ध करके खाना चाहिये । इससे यह भी सिद्ध है कि बालक और वृद्ध का मांस नहीं खाना चाहिये । जो जानवर स्वयं मर गयाहो दुबला हो अति मेदवाला हो जो रोग से वा जल में डूबकर वा विष से मरा हो उनका मांस भी नहीं खाना चाहिये ॥

नरमादा का मांस ।

पुंस्त्रियोः पूर्वं पश्चार्धंगुरुणीगर्भिणी गुरुः६७

लघुर्योनिश्चतुष्पात्सुविहंगेषुपुनःपुमान् ।

शिरःस्कंधोरुपृष्ठस्थकट्याःसक्थ्नोदचगौरवम्

तथामपक्वाशययोर्यथापूर्वंविनिर्दिशेत् ।

क्षित प्रभृतीनांच धातूनामुत्तरोत्तरम् ६९

क्षुद्रशरीरोवृषणमेवृक्कयकृद्गुदम् ।

अर्थ– नरके शरीरका अगला भाग भारी तथा मादा का पिछला भाग भारी होताहै, गर्भिणी मादा अन्यसे भारी होती है । चौपायोंमें स्त्रीजातिका मांस हलका होताहै और पक्षियोंमें नर का मांस हलका होताहै सिर, कंधा, ऊरु, पीठ, कमर, साक्थि, आमाशय और पक्वाशय इनका मांस यथापूर्व भारी होताहै । रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र ये उत्तरोत्तर भारीहैं । मांसकी अपेक्षा अंडकोष, लिंग, अग्न्यासयकृत और गुह्यस्थान अधिक भारी होतेहैं ।

शाकवर्ग—शाकोंकेगुण ।

शाकंपाठासटीपूषासुनिषण्णसतीनजम् ।७१

त्रिदोषघ्नं लघुग्राहिसराजक्षववास्तुकम् ।

अर्थ– पाठा, शठी, पूषा, सुनिषण्ण, सतीनज, राजक्षव और बथुआ ये सब शाक त्रिदोषनाशक, हलके और ग्राही होतेहैं ।

ऊपरके शाकोंके विशेषगुण ।

सुनिषण्णोऽग्निकृद्वृष्यस्तेषु

राजक्षवःपरम् ॥७२॥

ग्रहण्यर्शो विकारघ्नः

वर्चोभेदितुवास्तुकम् ।

अर्थ– इनमेंसे सुनिषण्णक का शाक जठराग्निवर्द्धक और पौष्टिक होताहै । इसे स्वास्तिक कहतेहैं इसके पत्ते चांगेरीके सदृश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होतेहैं और यह पानीमें होताहै। राजक्षव ग्रहणी और अर्शविकार को दूर करताहै। बधुआ मटरेदी होताहै।

मकोय और चांगेरी।

हंति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्यासोष्णारसायनम्॥७३॥
काकमाची सरास्वर्या
चांगेर्यम्लाऽग्निदीपिनी।
ग्रहण्यर्शोऽनिलश्लेष्महितोष्णा ग्राहिणी लघुः

अर्थ– मकोय शुक्रवर्द्धक, उष्णवीर्य, रसायन, मलभेदक, और स्वरकारक है यह तीनों दोष और कुष्ठको दूर करतीहै। चांगेरी (चूका) जठराग्निवर्द्धक, ग्रहणी, अर्श, वायु, और कफ इन सबको दूर करती है गरमहै, ग्राही और लघुहै।

पटोलादिके गुण।

पटोलं सप्तलारिष्टशार्ङ्गेष्टावल्गुजाऽमृताः।
वेत्राम्बुहरीवासाकुंतलीतिलपर्णिका॥७५॥
मंडूकपर्णीकर्कोटकारवेल्लकपर्पटाः।
नाडीकलायगोजिह्वावार्ताकंवनतिक्तकम्॥७६
करीरकुलकंनंदीकुचेलाशकुलादनी।
कटिल्लकेम्बुकंशीतंसकेवातककर्कशम्॥७७।
तिक्तंपाकेकटुग्राहिवातलंकफपित्तजित्।

अर्थ– परवल, सातला, निंब, कटेरी, बावची, गिलोय, बेतकी कोंपल, वृहती, वासक, कुंतली (छोटे तिलकी जाति) तिलपर्णी, मंडूकपर्णी, ककोड़, करेला, पितपापड़ा, नाडी, मटर, गोभी, बेंगन, बनकरेला, करील, कुलक, नंदी, कुचेला, शकुलादनी, कठिल्ल, केंवुक, शीत, तोरई, ये सब सामान्य रीतिसे तिक्त, कटुपाकी मलसंग्राही, वायुजनक, और कफपित्तनाशकहैं।

परवल और दोनों कटेरी।

हृद्यंपटोलंकृमिनुत्स्वादुपाकंरुचिप्रदं॥७८॥
पित्तलंदीपनंभेदिवातघ्नंबृहतीद्वयम्।

अर्थ– परवल हृदयको हितकारी, कृमिनाशक, स्वादुपाकी, और रुचिवर्द्धक है। दोनों कटेरी पित्तकर्ता, अग्निसंदीपन, भेदी और वातनाशकहैं।

अडूसा के गुण।

वृष्यंतुवासिकास्वघ्नंरक्तपित्तहरंपरम्॥७९॥

अर्थ–अडूसा वमन, खांसी और रक्तपित्त को दूर करता है।

करेले के गुण।

कारवेल्लंसकटुकंदीपनंकफजित्परम्

अर्थ–करेला कुछ कडुआ और अग्निसंदीपन है, यह कफको अतिशय करके जीत लेता है।

बेंगन के गुण।

वार्ताकंकटुतिक्तोष्णंमधुरंकफवातजित्।८०।
सक्षारमग्निजननंहृद्यंरुच्यमपित्तलम्।

अर्थ बेंगन कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर, कफवात नाशक, ईषत् क्षारयुक्त, अग्निसंदीपन, हृदयको हितकारी, रुचिवर्द्धक और कुछ पित्तकर्ता है।

करील के गुण।

करीरमाध्मानकरंकषायस्वादुतिक्तकम्।८१।

अर्थ–करील अफरा करता है, तथा कषाय, मधुर, और तिक्त है।

तोरई और बावची।

कोशातकावल्गुजकौभेदनावाग्निदीपनौ।

अर्थ–तोरई और बावची मलभेदक और अग्निसंदीपन हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चौलाई और मुंजात।

तंडुलीयोऽहिमोरुक्षः स्वादुपाकरसोलघुः ।८१।
मदपित्तविषास्रघ्नः
मुंजातंवातपित्तजित् ।
स्निग्धंशीतंगुरुस्वादुबृंहणंशुक्रकृत्परम् ।८२।

अर्थ–चौलाई का शाक ठंडा, रूक्ष, पाक और रसमेंमधुर, हलका, तथा मद, पित्त, विष और रक्तविकारों को दूर करता है। मुंजातका शाक वायु और पित्त को जीतने वाला, स्निग्ध, ठंडा भारी, मधुर, पुष्टिकारक और अतिशय वीर्योत्पादक है।

पालक–पोई–चंचु।

गुर्वीसरातुपालक्या
मदघ्नीचाप्युपोदका।
पालक्यावत्स्मृतश्चंचुःसतुसंग्रहणात्मकः ८३

अर्थ–पालक का शाक भारी और रेचक है। पोई का शाक मदनाशक है। चंचु का शाक पालक के समान गुणकारक है केवल यह अंतर है कि यह मलको बांधती है।

विदारी कंद।

त्रिदारीवातपित्तघ्नीमूत्रला स्वादुशीतला।
जीवनीबृंहणीकंठ्यागुर्वीवृष्यारसायनम् ।८४।

अर्थ विदारीकंद वातपित्त नाशक, मूत्र निःसारक, मधुर, शीतल, जीवन गुणयुक्त, पौष्टिक, कंठको हितकारी, भारी, वीर्यजनक और रसायन है।

जीवंती के गुण।

चक्षुष्यासर्वदोषघ्नी जीवंतीनघुरहिमा।

अर्थ–जीवंती का शाक नेत्रपक्ष में हितकारी है, संपूर्ण दोषों को नाश करनेवाला, मधुर और शीतवीर्य है।

कूष्मांडादि के सामान्य गुण

कूष्मांडतुंबकालिंगकर्कारुवेर्वारुतिंडिशम् ।८६।
तथात्रपुसचीनाकचिर्भटंकफवातकृत्।
भेदिविष्टंभ्यभिष्यंदिस्वादुपाकरसंगुरु ।८७।

अर्थ– कूष्मांड (कोयला वा काशीफल) तुंब (तूमी) कालिंग (तरबूज) कर्कारु (कूष्मांडविशेष), काकडी, टिंडिश (ढेंढस), त्रपुस (खीरा), चीनाक, और चिर्भट (फूट) ये कफ वातकारक, भेदी, विष्टंभी, अभिष्यन्दी, पाक तथा रस में मधुर और भारी होते हैं। एक ही वस्तुमें भेदी और विष्टंभी दोनों गुण नहीं हो सकते हैं परन्तु यहां बहुत से द्रव्यहैं जिनमें कोई भेदी और कोई विष्टंभी है।

कूष्मांड और खीरा।

बहुफलानांप्रवरंकूष्मांडंवातपित्तजित्।
बस्तिशुद्धिकरंवृष्यम्
त्रपुसंत्वतिमूत्रलम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–वेल में लगनेवाले फलोंमें कूष्मांड उत्तम होता है, यह वात पित्तनाशक, बस्तिका शुद्ध करनेवाला तथा वीर्यजनक है,। खीरा मूत्रको बहुत निकालता है।

तूंबी आदिके गुण।

तुंबंरूक्षतरंग्राहिकालिंगंवीरुचिभेदम्।
बालंपित्तहरंशीतं विद्यात्पक्वमथोऽन्यथा ८९

अर्थ- तूंबी, बहुत रूक्ष और विबंधकारक है। तरबूजा, काकडी, और फूट अपक्व हों तो पित्तनाशक और ठंडे होते हैं और पकने पर पित्तवर्द्धक और गरम होते हैं।

शीर्णवृंतके गुण।

शीर्णवृंतंतुसक्षारंपित्तलंकफवातजित्।
रोचनंदीपनंहृद्यमग्निलाऽऽनाहशुद्धिषु ॥९०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ- शीर्णवृन्त (खरबूज) ईषत् क्षारयुक्त, पित्तजनक, कफवातनाशक, रुचिवर्द्धक, अग्निसंदीपन, हृदयको हितकारी और हलको होताहै। तथा अष्ठीला और अफरा को दूर करताहै।

कमलनालका गुण।

मृणालविशशालूककुमुदोत्पलकंदकम्।
नंदीमाषककेलूटशृंगाटककशेरुकम् ॥९१॥
क्रौंचादनंकलोड्यंचरूक्षंग्राहिहिमंगुरु।

अर्थ- कमलनाल दो प्रकार का होताहै एक पतला, दूसरा मोटा, पतले को मृणाल और मोटेको विश कहतेहैं। मृणाल, बीस, कमलकन्द, कमोदनी, लालकमल का कंद, नंदी, माषक, केलूट, सिंहाड़ा, कसेरू, क्रौंचादन, कमलककडी, ये रूक्ष, ग्राही, हिम और गुरु है।

कलंबादि।

कलंबनालिकामार्षकुटिंजरकुतुंबकम् ॥९२॥
चिल्लीलट्वाकलोणिकाकुरूटकगवधुकम्।
जीवंतशुंबेडगजयवशाकसुवर्चलम् ॥९३॥
आलुकानिचसर्वाणि तथास्पुष्पानिलक्ष्मणम्।
स्वादुरूक्षंसलवणं वातश्लेष्मकरंगुरु ॥ ९४ ॥
शीतलंसृष्टविष्मूत्रंप्रायोविष्टभ्यजीर्यति।
स्निग्धंनिष्पांडितरसंक्लेद्याढ्यंनातिदोषलम् ९५

अर्थ- कदंबपुष्प, कलंबीशाक, मारिस यवासशाक, घलघसियाशाक, गुग्गुल, लूनी पीतकोरटा, गवेधुक, (तृण धान्य), जीवंत, शुंबु, प्रपुन्नाट, यवशाक, सुवर्चला, सब प्रकारके आलू, मूंग उरदके पत्ते, मुलहटी, ये सब मधुर, रूक्ष, कुछ नमकीन, वातकफकारक, भारी, शीतल, मलमूत्र निःसारकहैं ये प्रायः गोला सा बनकर पचतेहैं इनको उबालकर पानी निकाल डालै फिर बहुतसा घी तेल डालकर छौंकले तो बहुत दोषकारक नहीं रहते।

चिल्ली शाक के गुण।

लघुपत्रातुयाचिल्लीसावास्तुकसमामता।

अर्थ-छोटे पत्तेवाली चिल्लीके गुण बथुए के समान होते हैं।

जयन्ती और अरणी।

तर्कारीवरणंस्वादुसतिक्तंकफवातजित् ९६

अर्थ-जयन्ती और वरणी ये दोनों मधुर कुछ कडवा, कफ तथा वायु को दूर करने वाले हैं।

साठी आदि के गुण।

वर्षाभ्वोकालशाकंचसक्षारंकटुतिक्तकम्।
दीपनंभेदनंहंतिगरशोफकफानिलान् ॥९७॥

अर्थ=दोनों प्रकार की साठी और कालशाक ईषत् क्षारयुक्त, कटु, तिक्त, दीपनकर्ता भेदी है तथा विषरोग, सूजन, कफ और बादी को दूर करते हैं।

करंजादि के गुण।

दीपनाःकफवातघ्नाश्चिराबिल्वांकुराःसराः।

अर्थ=कञ्जे के अंकुर अग्निसंदीपन, कफ वात नाशक, और दस्तावर होते है।

शतावरी के अंकुर।

शतावर्यंकुरास्तिक्तावृष्यादोषत्रयापहाः ॥९८

अर्थ-शतावरी के अंकुर तिक्त पौष्टिक और तीनों दोषों को दूर करनेवाले हैं।

बांस के अंकुर।

रूक्षोवंशकरीरस्तुविदाहीवातपित्तलः।

अर्थ-बांसके अंकुर रूक्ष, विदाही, और वातपित्तकारक होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पत्तूर ।

पत्तूरोदीपनस्तिक्तप्लीहार्शःकफवातजित् ९९

अर्थ--पत्तूर जिसे मत्स्याक्षक वा मछेली कहते हैं, यह अग्निसंदीपन, तिक्त, प्लीहा, अर्श, कफवात को जीतने वाली है ।

कासमर्द ।

कृमिकासकफोत्क्लेदान्कासमर्दोजयेत्सरः ।

अर्थ--कासमर्द कृमि, खांसी, कफ और इन्द्रियों के छिद्रों में भरे हुए मलको दूर करता है और रेचक है ।

कसूम का शाक ।

रूक्षोष्णमम्लंकौसुंभंगुरुपित्तकरंसरं ॥१००॥

अर्थ--कसूम का शाक रूक्ष, गरम, अम्ल, भारी, पित्तकारक और रेचक होता है ।

सरसों का शाक ।

गुरूष्णंसार्षपंबद्धविण्मूत्रंसर्वदोषकृत् ।

अर्थ-सरसों का शाक भारी, गरम, मल तथा मूत्र को रोकनेवाला और सब दोषोंको करने वालाहै ।

मूली के गुण ।

"यद्वालमव्यक्तरसंकिंचित्क्षारंसतिक्तकम् ॥
तन्मूलकंदोषहरंलघुसोष्णंनियच्छति ।
गुल्मकासक्षयश्वास व्रणनेत्रगलामयान् १०२
स्वराग्निसादोदावर्तपीनसांश्य
महत्पुनः ।
रसेपाकेचकटुकंमुष्णवीर्यंविदोषकृत् ॥१०३॥
गुर्वभिष्यंदिच
स्निग्धस्विन्नंतदपिवातजित् ।
वातश्लेष्महरंशुष्कंसर्वम्
आमंतुदोषलम् ॥ १०४ ॥

अर्थ--कच्ची मूली अव्यक्तरस होती है । अर्थात् मधुरादिरस स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं होतेहैं । यह ईषत् क्षारगुण विशिष्ट, सामान्य तिक्त है । तीनों दोषों को दूर करती है । लघु और कुछ उष्णवीर्य है, गुल्म, कास, क्षयी, श्वास, क्षतरोग, नेत्ररोग, कंठ-रोग, स्वर अग्निमांद्य, उदावर्त और पीनस इन रोगों को दूर करती है । बड़ी मूली रस और पाक में कटु होती है । उष्णवीर्य और गरम है, तीनों दोषों को उत्पन्न करनेवाली, भारी और अभिष्यन्दी है । तेल वा घी डालकर पकाई हुई मूली वातनाशक होती है । सूखी मूली वायु और कफ को दूर करती है । छोटी हो या बड़ी कच्ची मूली वातादिक दोषों को पैदा करती है ॥

पिण्डालु के गुण ।

कटूष्णोवातकफहापिंडालुःपित्तवर्धनः ।

अर्थ--पिंडालु कटु और उष्ण है, वात और कफ को दूर करता है तथा पित्त को बढाता है ।

कुठेरादि ।

कुठेराशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणम् ।१०५।
फणिज्झार्जकजंबीरप्रभृतिग्राहिशालनम् ।
विदाहिकटुरूक्षोष्णंहृद्यंदीपनरोचनम् ।१०६।
हृक्शुक्रकृमिहृत्तीक्ष्णंदोषात्क्लेशकरंलघु ।

अर्थ--श्वेत तुलसी, सहजना, कृष्णा-तुलसी क्षुद्रपत्री, दूसरी सफेद तुलसी, राई, गुह्य-वर्जक, सफेद मरुआ, अर्जक (स्वरपत्रक) जंभीरी आदि संग्राही और अन्न के साथ खाने के योग्य है । ये विदाही, कटु, उष्ण रूक्ष, हृदय को हितकारी, दीपन, रोचन है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नेत्ररोग, वीर्यरोग, और कृमिरोगको दूर करने वाले हैं। तीक्ष्ण होने से वातादि दोषों को उत्क्लेदित करते है और हलके हैं॥

तुलसी के गुण।

हिध्मकासभ्रमश्वासपार्श्वरुक्पूतिगंधहा१०७
सुरसःसुमुखोनातिविदाहीगरशोफहा।

अर्थ–काली, तुलसी हिचकी, खांसी, थकावट, श्वास, पसलीका दर्द, और दुर्गन्धि को दूर करती है। छोटे पत्तेवाली तुलसी कुछ विदाही विषरोग और सूजन को दूर करती है।

हरे धनिये का गुण।

आर्द्रिकातिकमधुरामूत्रलानच्यपित्तकृत् १०८

अर्थ–हराधनियां कुछ कडवा, मधुर, मूत्रवर्द्धक और पित्तकारक है।

लहसन के गुण।

लशुनोभृशतीक्ष्णोष्णःकटुपाकरसःसरः।
हृद्यःकेश्योगुरुर्बृष्यःस्निग्धोरोचनदीपनः १०९
भग्नसंधानकृद्बल्योरक्तपित्तप्रदूषणः।
किलासकुष्ठगुल्माऽर्शोमेहकृमिकफानिलान्
सहिध्मपीनसश्वासकासान्हंतिरसायनम्।

अर्थ–लहसन अत्यन्त तीक्ष्ण और उष्ण वीर्यहै, पाक और रसमें कटुहै, मलनिःसारकहै हृद्यहै, केशोंके लिये हितकारी, भारी, वीर्योत्पादक, स्निग्ध, रुचिकारक, अग्निसंदीपन, किलास, कोढ, गुल्म, अर्श, प्रमेह, कृमिरोग, कफ, वात, हिचकी, पीनस, श्वास खांसी, इन सब रोगों को दूरकरता है तथा रक्तपित्त को उत्पन्न करता है। अन्य ग्रन्थ में लिखाहै कि यह टूटी हड्डीको जोड देताहै)

पलांडु के गुण।

पलांडुस्तद्गुणन्यूनःश्लेष्मलोनाऽतिपित्तलः॥
कफवातार्शसांपथ्यः स्वेदेभ्यवह्नतौतथा।

अर्थ–प्याज लहसनकी अपेक्षा गुणों में न्यून होती है, यह कफकारक और पित्तोत्पादक है। यह कफ वात और अर्श रोगी के लिये पसीना देने और खाने में हितकारी है।

गाजर के गुण।

तीक्ष्णोगृंजनकोग्राहीपित्तिनांहितकृन्नसः ११२

अर्थ–गाजर तीक्ष्ण और ग्राही है तथा पित्त व्याधि वालों को हितकारी नहीं है।

जमीकंद के गुण।

दीपनःसूरणोरुच्यःकफघ्नोविशदोलघुः।
विशेषादर्शसांपथ्यः
भूकंदस्त्वतिदोषलः११३

अर्थ–जमीकंद अग्निसंदीन, रुचिकर्ता, कफनाशक, निर्मलकारक, हलका और बवासीर वालों को बड़ा हितकारी है। भूकन्द वातादिक दोष को बहुत प्रकुपित करता है।

पत्ते आदि के गुण।

पत्रेपुष्पेफलेनालेकंदेचगुरुताक्रमात्।

अर्थ–पत्रशाक से पुष्पशाक इस से फलशाक, फलशाक से नालशाक (डंडियों का शाक), और नालशाक से कन्दशाक क्रम से उत्तरोत्तर भारी होते हैं।

शाकों में वरावरत्व।

वराशाकेषुजीवंतीसर्षपास्त्ववरःपरम्॥११४॥

अर्थ–सब शाकों में जयंती अर्थात् जेंती का शाक सर्वोत्तम और सरसों का शाक अत्यन्त बुरा होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फलवर्ग - द्राक्षा ।

द्राक्षाफलोत्तमा वृष्याचक्षुष्यास्तृष्मूत्रविट्।
स्वादुपाकरसास्निग्धा सकषायाहिमा गुरुः
निहंत्यनिलपित्तास्रतिक्तास्यत्वमदात्ययान्।
तृष्णाकासश्रमश्वासस्वरभेदक्षतक्षयान् ११६

अर्थ-- सब फलोंमें दाख उत्तम होतीहै, यह वीर्यजनक, नेत्रपक्षमें हितकारी. मलमूत्रनिःसारक, पाक रसमें मधुर, स्निग्ध, कुछ कसीली, शीतवीर्य और भारी है। यह वात, रक्तपित्त, मुखका कडवापन, मदात्यय, तृषा, खांसी थकावट, श्वास, स्वरभेद, क्षतरोग, और क्षयी, इन रोगोंको दूर करने वालीहै।

अनारके गुण ।

उद्रिक्तपित्तान्जयति त्रीन्दोषान्स्वादुदाडिमम्
पित्ताविरोधि नात्युष्णमुष्णं वातकफापहम्।
सर्वं हृद्यं लघु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम् ॥

अर्थ- मीठा अनार पित्तकी अधिकता वाले तीनों दोषोंको जीतताहै। खट्टा अनार न तो पित्तको शमन करताहै न पैदा करताहै, अत्यन्त उष्ण नहींहै, वात और कफको दूर करताहै। सब प्रकारके अनार हृदयको हितकारी, हलके, स्निग्ध, ग्राही, रुचिकर्ता और अग्निसंदीपन होतेहैं।

मोचफलादि ।

मोचखर्जूरपनसनालिकेरफलूषकम् ॥
आम्रातताल काश्मर्यराजादनमधूकजम् ॥११८
सौवीरबदरांकोलफल्गुश्लेष्मांतकोद्भवम् ॥
वातामाभीषुकाक्षोडमृकूलकनिकोचकम् ॥
उरुमाणं प्रियालञ्च बृंहणं गुरु शीतलम् ॥
दाहक्षतक्षयहरं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥११९॥
स्वादुपाकरसं स्निग्धं विष्टम्भि कफशुक्रकृत्

अर्थ- केला, खिजूर, पनस, नारियल, फालसा, आम्रात, (अंबाडा), तालफल, खंभारी, खिरनी, महुआफल, बडाबेर, छोटा बेर, अंकोल, काकोडुम्बर, बादाम, पिस्ता, अखरोट, दंडीफल, निकोचक, चिरौंजी, ये सब फल बृंहणकर्ता, भारी और शीतल है। दाह, क्षत, और क्षयको दूर करतेहैं। रक्तपित्तको दूर करतेहैं। पाक और रसमें मधुर होतेहैं, स्निग्ध और विष्टंभी है तथा कफ और वीर्यको बढानेवाले हैं।

तालफलादिके गुण ।

फलन्तु पित्तलं तालं सरं काश्मर्यजं हिमम् ॥
शकृन्मूत्रविबंधघ्नंकेश्यंमेध्यंरसायनम् ११२
वातामादृष्णवीर्यंतुकफपित्तकरंसरम्।
परंवातहरंस्निग्धमनुष्णंतुप्रियालजम् ॥१२३॥
प्रियालमज्जामधुरोवृष्यः पित्तानिलापहः।
कोलमज्जागुणैस्तद्वत्तृडछर्दिकासजिच्चसः

अर्थ- तालफल पित्तकर्ताहै। खंभारी फल मलनिःसारक, शीतवीर्य और मलमूत्र की विबन्धता को दूर करताहै। केशवर्द्धक, बुद्धिवर्द्धक और रसायनहै। बादाम आदि फल उष्णवीर्य, कफपित्तकारक, मलनिःसारक, अत्यन्त वायुनाशक और स्निग्धहै। पियाल फलकी गिरी मधुर, वीर्यजनक, तथा पित्त और वातनाशकहै। बेरकी गिरी पियालकी गिरीके तुल्य गुणकारीहै तथा तृषा, वमन और खांसी को दूर करती है।

बेलगिरीके गुण ।

"पक्वंसुदुर्जरंविल्वंदोषलंपूतिमारुतम्।
दीपनंकफवातघ्नं बालंग्राहि युभयंहितत् ।१२५।

अर्थ- पकीहुई बेलगिरी दुष्पाच्य होतीहै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोषकारक और दुर्गन्धित वायुको उत्पन्न करतीहै कच्ची बेलगिरी अग्निसंदीपन, और कफवातनाशकहै। तथा कच्ची पक्की दोनों तरहकी मलसंग्राहक होती है।

कैथके गुण।

कपित्थमामंकंठघ्नंदोषलंदोषघातितु।
पक्वंहिध्मावमथुजित्सर्वग्राहिविषापहम् १२६

अर्थ– कच्चा कैथ कंठ अर्थात् स्वरको बिगाड़ताहै, पका हुआ कैथ त्रिदोष को दूर करताहै, हिचकी और वमनको रोकताहै, दोनों प्रकारके कैथ संग्राही और विषनाशक होतेहैं।

जामनके गुण।

जांबवंगुरुविष्टंभिशीतलंभूशवातलम्।
संग्राहिमूत्रशकृतोरकंठ्यंककफपित्तनुत्॥१२७॥

अर्थ– जामन भारी, विष्टंभी, शीतल, अतिशय वातकारक, मलमूत्रकी संग्राही, स्वरको बिगाडनेवाली और कफपित्तनाशक होती है।

आमके गुण।

वातपित्तास्रकृद्बालंबद्धास्थिकफपित्तकृत्।
गुर्वाम्लंवातजित्पक्वंस्वाद्वम्लंकफशुक्रकृत् १२८

अर्थ– कच्चा आम वायु और रक्तपित्त कारकहै। जिसमें गुठली पडगई हो ऐसा आम कफपित्तकारक होताहै। पका आम भारी वातनाशक, मधुर, अम्ल, कफ तथा वीर्यका बढानेवालाहै।

वृक्षाम्लके गुण।

वृक्षाम्लंग्राहिरूक्षोष्णंवातश्लेष्महरंलघु।

अर्थ– वृक्षाम्ल संग्राही, रूक्ष, उष्ण, वातकफनाशक और हलका होताहै।

शम्पा और पीलू

शम्यागुरूष्णंकेशघ्नंरूक्षपीलुतुपित्तलम् १२९
कफवातहरं भेदि प्लीहार्शःकृमिगुल्मनुत्।
सतिक्तं स्वादु यत्पीलु नात्युष्णं तद्त्रिदोषजित्

अर्थ– सेंगरी भारी, उष्ण, केशों को अहित और रूक्ष होतीहै। पीलू पित्तकारक कफवातनाशक, भेदी, प्लीहा, अर्श, कृमि और गुल्मरोग को दूर करताहै। पका पीलू कुछ तीखा और मीठा होताहै। यह बहुत गर्म नहीं होताहै और त्रिदोष को कम करनेवालाहै।

बिजौरे के गुण।

"त्वक्तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्यवातजित्
बृंहणं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ॥१३१॥
लघु तत्केसरं कासश्वासहिध्मामदात्ययान्।
आस्यशोषानिलश्लेष्मविबंधच्छर्दिरोचकान्।
गुल्मोदरार्शःशूलानि मंदाग्नित्वं च नाशयेत्।

अर्थ– बिजौरेका छिलका तिक्त, कटु, स्निग्ध और वायुनाशक होताहै। बिजौरेका गूदा बृंहण, मधुर, वातपित्तनाशक और भारी होताहै। बिजौरे की केसर हलकी, खांसी, श्वास, हिचकी, मदात्यय, मुखशोष, वात, कफ, विबंध, वमन, अरुचि, गुल्मरोग, उदररोग, अर्शरोग, शूल और मंदाग्निको दूर करतीहै।

भिलावे के गुण।

भल्लातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम्।
तदस्थ्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम्।

अर्थ– भिलावेकी छाल और गूदा बृंहण, मिष्ट और शीतल होतेहैं। उसकी गुठली अग्निके समान तीक्ष्णहै, मेधाको बढानेवाला, और अत्यन्त कफवातनाशकहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पालेवतादि ।

स्यादम्लं शीतमुष्णं च द्विधा पालेवतं गुरु ।
रुच्यमत्यग्निशमनं रुच्यं मधुरमारुकम् ॥
पक्कमाशु जरां याति नात्युष्णं गुरु दोषलम् ।

अर्थ–पालेवत या रेवतक दोप्रकार का होता है, एक खट्टा, दूसरा मीठा, मीठा पारेवत शीतवीर्य और खट्टा उष्णवीर्य होता है दोनों प्रकार के गुरुपाकी, रुचिवर्द्धक, और तीक्ष्णादि नाशक है । आरुक वा आड़ु रुचिवर्द्धक और मधुर होता है, पकाहुआ आरुक शीघ्र पचजाता है, यह बहुत गर्म नहीं है, तथा भारी और दोषकारक हैं ।

दाख और फालसे ।

द्राक्षापरूषकं चाम्लं पित्तकफप्रदम् ।
गुरूष्णवीर्यं वातघ्नं सरं च करमर्दकम् १३६

अर्थ–हरे दाख फालसा और करोंदा खट्टे, कफपित्तोत्पादक, भारी, उष्णवीर्य, वातनाशक और रेचक होते हैं ।

कोलादि ।

तथाऽम्लं कोलकर्कंधूलकुचाम्रातमारुकम् ।
पेरावतं दंतशठं सतूदं मृगलिंडिकम् १३७॥
नातिपित्तकरं पक्वं शुष्कं च करमर्दकम् ।

अर्थ–छोटे बडे बेर, लकुच अंबाडा आरुक, नारंगी, जंभीरी, नीबू, सहतूत, मृगलिंडिक दाखके तुल्य, गुणवाले और खट्टे होते हैं । पकाहुआ और सूखा करोंदा अतिशय पित्तकर्ता नहीं होता ।

इमली आदि ।

दीपनं भेदनं शुष्कमम्लीकाकोलयोः फलम् ।
तृष्णाश्रमक्लमच्छर्दि लघ्विष्टं कफवातयोः ।

अर्थ–इमली और बेर के सूखेफल अग्निसंदीपन और भेदी होते है, तृषा, थकावट और क्लांति को दूर करते हैं, । हलके और कफवातमें पथ्य होते हैं ।

लकुचको अवरत्व ।

फलानामवरं तत्र लकुचं सर्वदोषकृत् ।१३९

अर्थ–संपूर्ण फलोंमें लकुच अप्रधानहै, क्योंकि यह तीनों दोषों को करताहै ।

त्यागने के योग्य शाकफलादि

हिमानिलोष्णदुर्वातव्याललालादिदूषितम् ।
जंतुजुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्तवम् ।१४०॥
अन्यधान्ययुतं हीनवीर्यं जीर्णतयाऽपि च ।
धान्यं त्यजेत्तथा शाकं रूक्षसिद्धमकोमलम् ।
असंजातरसं तद्वच्छुष्कं चान्यत्र मूलकात् ।
प्रायेण फलमप्येवं तथामं बिल्ववर्जितम् ॥

अर्थ–जो धान्य हिम, वायु, आतप, विषैली हवा, सर्पकी लारसे दूषित, कीडों का खायाहुआ जलमें डूबाहुआ, अप्रशस्त पृथ्वी में उपजा हुआ, कुऋतुमें उत्पन्न, अन्य धान्यों से युक्त, हीनवीर्य, बहुत पुराना होगया है वह काममें नहीं लाना चाहिये इसी तरह से दूषित शाक बा विना तैलादि डाले केवल जलमें पकाये हुए, अकोमल, और जिसमें रस संपूर्ण न हुएहों ऐसे शाक छोड देने चाहियें । परन्तु सूखी मूली त्याज्य नहीं है । जो फल उक्त प्रकार से दूषित होगये हों वा कच्चे हों वे उपयोग में लाने नहीं चाहिये । केवल बेलगिरी कच्ची भी ग्राह्य होती है ।

विविध औषधवर्ग–लक्षण ।

विष्यंदि लवणं सर्वं सूक्ष्मं सृष्टमलं विदुः ।
वातघ्नं पाकि तीक्ष्णोष्णं रोचनं कफपित्तकृत्

अर्थ–सब प्रकार के नमक कफादि को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकालते हैं। सूक्ष्म स्रोतों में प्रविष्ट होजाते हैं। मलभेदक, वायुनाशक, अपक्व व्रणों को पकानेवाले, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रुचिकर तथा कफपित्तको बढाने वाले हैं।

सेंधानमक।

सैंधवं तत्र सस्वादु हृद्यं हृद्यं त्रिदोषनुत्।
लघ्वनुष्णं दृशः पथ्यमविदाह्यग्निदीपनम्॥

अर्थ- सेंधानमक कुछ मधुर, वीर्यजनक हृदयको हितकारी, त्रिदोषनाशक, हलका, कुछ गरम, दृष्टिको हितकारी, विदाही और अग्निसंदीपन है।

संचल नमक।

लघु सौवर्चलं हृद्यं सुगंध्युद्गारशोधनम्।
कटुपाकं विबंधघ्नं दीपनीयं रुचिप्रदम् १४५

अर्थ-संचल नमक, हलका, हृदय को हितकारी, सुन्दर सुगन्धियुक्त, डकारको शुद्ध करनेवाला, कटुपाकी बिबंधनाशक, अग्निसंदीपन, और रुचिवर्द्धक है।

बिडनमक।

ऊर्ध्वाधः कफवातानुलोमनं दीपनं बिडम्।
विबंधानाहविष्टंभशूलगौरवनाशनम्।१४६॥

अर्थ-बिडनमक ऊपर और नीचे को जानेवाले कफ और वात को स्वमार्गानुगामी कर देता है। अग्निसंदीपन, बिबंध, आनाह, विष्टंभ शूल और भारापन को दूर कर देता है।

सामुद्र नमक।

विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्मविवर्धनम्।

अर्थ-सामुद्र नमक स्वादुपाकी, भारी, और कफ बढानेवाला है।

उद्भिद नमक।

सतिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि औद्भिदम्

अर्थ-उद्भिद नमक (जो जमीन फोडकर निकलता है उसे उद्भिदनमक कहते हैं- खार वाले स्थान पर जो छोटी २ तह जमजाती है वही यह नमक है)। कुछ कडवा तीखा और खारा होता है यह तीक्ष्ण है और प्रकुपित दोष को शीघ्र स्थान च्युत करदेताहै।

कालानमक।

कृष्णे सौवर्चलगुणा लवणे गंधवर्जिताः।

अर्थ--काला नमक संचलनमक के तुल्य गुणकारी होताहै, किन्तु सुगन्धित नहीं होता

काचनमक।

रोमकं लघु पांसूत्थं सक्षारं श्लेष्मलं गुरु॥

अर्थ--काचका नमक हलका होता है। शोरा ईषत् क्षारयुक्त कफवर्द्धक और भारी होता है।

लवण का प्रयोग।

लवणानां प्रयोगे तु सैंधवादीन् प्रयोजयेत्।

अर्थ--जहां नमक के प्रयोग का वर्णन किया गया हो वहां प्रथम सेंधेनमक का ग्रहण करना चाहिये। जो दो नमक का कथन हो तो सेंधा और संचल ग्रहण करै तीन नमक का कथन हो तो सेंधा, संचल और बिडनमक का ग्रहण करै। इसी तरह और भी।

जवाखार के गुण।

गुल्महृद्ग्रहणीपांडुप्लीहानाहगलामयान्॥
श्वासार्शःकफकासांश्च शमयेद्यवशूकजः।

अर्थ--जवाखार गुल्म, हृद्रोग, ग्रहणी, पांडुरोग, प्लीहा, आनाह, कंठरोग, श्वास, ववासीर, कफ, खांसी इन रोगों को दूर करता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्जकादिक्षार ।

क्षारःसर्वश्च परमं तीक्ष्णोष्णः कृमिजिल्लघुः ।
पित्तासृग्दूषणः पाकी छेद्यहृद्यो विदारणः ।
अपथ्यः कटुलावण्याच्छुक्रौजःकेशचक्षुषाम्

अर्थ--सब प्रकार के खार अत्यन्त तीक्ष्ण अत्यन्त गरम, कृमिरोगनाशक, हलके, रक्तपित्त को दूषित करने वाले, पाकी, छेदी हृदय को अहित, ग्रन्थि को तोडने वाले हैं कटु और नमकीन होने से वीर्य, ओज, केश और चक्षुओं को अहित होते हैं ।

हींग के गुण ।

हिंगु वातकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ।
कटुपाकरसे रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ।१५२।

अर्थ--हींग वायु, कफ, आनाह और शूल को नष्ट करती है, पित्त को प्रकुपित करती है, पाक और रस में, कटु है, रुचि वर्द्धक' अग्निसंदीपन, पाचन और लघु है ।

हरड के गुण ।

कषाया मधुरा पाके रूक्षा विलवणा लघुः ।
दीपनी पाचनी मेध्या वयःसंस्थापनी परा ।
उष्णवीर्या सराऽभ्युष्णा बुद्धीन्द्रियबलप्रदा ।
कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्ययपुराणविषमज्वरान् ।१५४।
शिरोऽक्षिपांडुहृद्रोगकामलाग्रहणीगदान् ।
सशोषशोफातीसारमेदःमोहवमिकृमीन् १५५
श्वासकासप्रसेकार्शःप्लीहानाहगरोदरम् ।
विबंधं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तंभमरोचकम् १५६
हरीतकी जयेद्व्याधींस्तांस्ताश्च कफवातजान्

अर्थ--हरड़ कसीली होती है, यह पाक में मधुर है रूक्ष है, इस में नमक को छोड कर शेष पांचों रस मौजूद है, यह हलकी, अग्निसंदीपनी, पाचनकर्ता, बुद्धिको बढाने वाली, अवस्था को अत्यन्त दृढ करनेवाली, उष्णवीर्य, विरेचन करनेवाली, आयुकाहित करनेवाली, बुद्धि और इन्द्रियों में बल पहुंचाने वाली है । कुष्ठरोग, मुखकी विवर्णता, स्वर का बिगडना, जीर्णज्वर, विषमज्वर, शिरोरोग, नेत्ररोग, पांडुरोग, हृद्रोग, कामला, ग्रहणीरोग, मुखशोष, सूजन, अतीसार, उदररोग, मोह, वमन, कृमिरोग, श्वास, खांसी, प्रसेक, अर्श, प्लीहा, आनाह, विषरोग, सोतों का अवरोध, गुल्म ऊरुस्तंभ, अरुचि तथा कफ और वात से उत्पन्न होने वाली अन्य व्याधियों को दूर करदेती है ।

आमले के गुण ।

तद्वदामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् ।

अर्थ--जो जो गुण हरड में कहे गये है वेही आंवले में भी है, केवल अन्तर इतना है कि हरड उष्णहै, यह ठंडा है तथा इस का रस खट्टा तथा पित्त और कफ का नाश करने वाला है ।

बहेडे के गुण ।

कटु पाके हिमं केश्यमक्षमर्मोपघ्नं तद्गुणम् ।

अर्थ-- बहेड़ा पाक में कटु, शीतवीर्य, और केशों को हितकारी है तथा हरड और आंवले से गुणोंमें कुछ न्यूनहै ।

त्रिफलाके गुण ।

इयं रसायनवरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा१५
रोपणी त्वग्दकक्लेदमेदोमेहकफास्रजित् ।

अर्थ-- हरड़, बहेडा और आंवला इन तीनों को मिलाकर त्रिफला नामहै, यह उत्तम रसायनहै, नेत्ररोगोंको हितकारी है व्रणको रोपण करतीहै, कुष्ठादिक त्वचाके रोग, व्रणका झरना, मेदरोग, प्रमेह, कफ, और रक्त रोगोंको दूर करतीहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चातुर्जात और त्रिजात।

सकेसरं चतुर्जातंत्वक्पत्रैलं त्रिजातकम् ५
दीपनं पाचनं रुच्यं वातपित्तकफापहम्।

अर्थ– दालचीनी, तेजपात, और इलायची इन तीनोंको त्रिजातक कहते हैं। इन तीनों में केसर मिलादी जाय तो चातुर्जात होजाताहै, ये दोनों अग्निसंदीपन, पाचन रुचिकर्ता और वात, पित्त, कफ इन तीनों को नाश करनेवाली है।

मिरचके गुण।

पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं रूक्षं दीपनरोचनम्।
रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु॥

अर्थ– मिरच पित्तको प्रकुपित करताहै तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, दीपन और रोचकहै, रस और पाकमें कटुहै, कफनाशक और हलकी होतीहै।

पीपलके गुण।

श्लेष्मलास्वादुशीतार्द्रागुर्वीस्निग्धाचपिप्पली
सा शुष्का विपरीतातः स्निग्धा वृष्या रसे कटुः
स्वादुपाकाऽनिलश्लेष्मश्वासकासापहासरा
न तामत्युपयुञ्जीत रसायनविधिं विना।

अर्थ– हरी पीपल कफकारी, मधुररसयुक्त, शीतवीर्य, भारी और स्निग्ध होतीहै, सूखी पीपल ऊपर कहे हुए गुणोंसे विपरीत होतीहै, यह स्निग्ध, वृष्य, और रसमें कटु होतीहै। यह पाकमें मधुरहै। वात, कफ, श्वास, खांसी को दूर करतीहै तथा रेचकहै। इतने गुण युक्त होनेपर भी रासायनिक विधि के विना पीपल अधिक परिमाण से सेवन करना उचित नहींहै।

सोंठ के गुण।

नागरं दीपनं वृष्यं ग्राहि हृद्यं विबन्धनुत् १६१
रुच्यंलघुस्वादुपाकंस्निग्धोष्णं कफवाताजित्

अर्थ–सोंठ अग्निसंदीपन, वृष्य, ग्राही, हृदयको हितकारी और विबंधको दूर करती है। रुचिकर्ता, हलकी, मधुरपाकी, स्निग्ध, उष्ण और फक्तवात को दूर करनेवाली है।

अदरख के गुण।

तद्वदार्द्रकमेतच्च त्रयं त्रिकटुकं जयेत्॥१६२॥
स्थौल्याग्निसदन श्वासकासश्लीपदपीनसान्।

अर्थ–अदरख के गुण सोंठ के समान ही होते हैं। सोंठ, मिरच और पीपल इन तीनोंका नाम त्रिकुटाहै यह मोटापन, अग्निमांद्य, श्वास, खांसी, श्लीपद और पीनसको दूर करती है।

चव्य. पीपलामूल।

चविका पिप्पलीमूलं मरिचाल्पान्तरं गुणैः।

अर्थ–चव्य और पीपलामूल इन दोनों के गुणोंमें मिरचके गुणों से थोडा ही अंतर है, अर्थात् यह भी कटुरस,, कटुपाकी कफघ्न, लघु और उष्णवीर्य है।

चीते के गुण।

चित्रको ऽग्निसमः पाके शोफार्शः कृमिकुष्ठहा

अर्थ–चीता पाकावस्था में अग्नि के समान गरम है वह सूजन, अर्श, क्रमिरोग और कुष्ठ को दूर करता है।

पंचकोल।

पञ्चकोलकमेतच्च मरिचेन विना स्मृतम्१६४
गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं दीपनं परम्॥

अर्थ–त्रिकुटा, चव्य, पीपलामूल और चित्रा इनमें से मिरच को छोडकर बाकी पांचको पंचकोल कहते हैं, यह पंचकोल गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अफरा और शूल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को दूर करताहै, तथा जठराग्नि को अत्यन्त प्रदीप्त करते हैं ।

महापंचमूल ।

विल्वकाश्मर्यतर्कारीपाटलाटुण्टुकैर्महत् ॥
जयेत् कषायतिक्तोष्णं पञ्चमूलं कफानिलौ ।

अर्थ--बेल, खंभारी, अरनी, पाटला और श्योनक इन पांचों के मूल को महा वा बृहत्पंचमूल कहते हैं । यह कषाय, तिक्त और उष्ण है तथा कफ और वात को दूर करताहै ।

लघुपंचमूल ।

ह्रस्वं बृहत्यंशुमतीद्वयगोक्षुरकैः स्मृतम् १६६
स्वादुपाकरसं नातेशीतोष्णं सर्वदोषजित् ।

अर्थ--दोनों कटेरी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और गोखरू इनको लघुपंचमूल कहते हैं यह पाक और रसमें मिष्ट है न बहुत ठंडा है न बहुत गरम है तथा सब दोषों को दूर करने वाला है ।

मध्यमपंचमूल ।

बलापुनर्नवैरण्डशूर्पपर्णीद्वयेन तु ॥१६७॥
मध्यमं कफवातघ्नं नातिपित्तकरं सरम् ॥

अर्थ - खरैटी, सांठी, अरंड, मुद्गपर्णी और माषपर्णी इन पांचों की जड को मध्यम पंचमूल कहतेहैं। यहकफवातनाशकहै अतिशय पित्तकारक नहीं है, दस्तावर है ।

जीवनपंचमूल ।

अभीरुवीराजीवन्तीजीवकर्षभकैः स्मृतम् ॥
जीवनाख्यं च चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ।

अर्थ-सितावर, क्षीरकाकोली, जीवनी, जीवक और ऋषभक इन पांचोंकी जडको जीवन पंचमूल कहते हैं, यह नेत्रपक्ष में हितकर, वृष्य और वातपित्तनाशक होतहै ।

तृण पंचमूल ।

तृणाख्यं पित्तजिद्भेकासेक्षुशरशालिभिः ।

अर्थ--कुश, काश, इक्षु, शर और शाली धान्य इनकी जड़को तृण पंचमूल कहते हैं यह पित्तनाशक होता है ।

अध्यायका उपसंहार ॥

शूकशिंबीजपक्वान्नमांसशाकफलौषधैः।१७१।
वर्गैतैरन्नलेशोऽयमुक्तो नित्योपयोगिकः ।,,

अर्थ--नित्य व्यवहार में आने वाले शूक धान्यवर्ग, शिंबी धान्यवर्ग, पक्वान्नवर्ग, मांस वर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग और औषधवर्ग इन सबका संक्षेप रीति से इस अध्याय में वर्णन किया गया है । नित्य काम में न आनेवाले बहुत से द्रव्य रहगये हैं । पर यहां ग्रंथकर्ता ने सामान्य उपयोग पर लक्ष्य रखकर ही लिखा है । क्योंकि मात्रा, योग, क्रिया, देश, काल इत्यादि कारणों को लेकर कितनीही जगह द्रव्यों में उक्त गुणों से विपरीतता हो जाती है । जैसे मात्राः—तिल की मात्रा के तुल्य विष खाना भी अमृत के समान गुणकारी होजाता है । योगः—भिलावा कोढ उत्पन्न करताहै पर तिल के साथ खायाजाय तो कोढ जाता रहता है । क्रिया—सत्तू हलका होता है पर उसके लड्डू बनाकर खाने से भारी होजाता है । इत्यादि इत्यादि

इतिश्री अष्टाङ्गहृदये भाषा-टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सप्तमोऽध्यायः।

अथातोऽन्नरक्षाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—शरीर धारण के लिये अन्नपान की आवश्यक्ता है, उसके स्वरूप का बर्णन छटे अध्याय में करि चुकेहैं परन्तु अन्न विषोपहत होने से अनेक प्रकार के रोग वा मृत्यु का कारण होजाता है इस लिये इस अन्नरक्षाध्याय में अन्नकी रक्षा के उपायों का वर्णन किया जायगा।

वैद्य का स्थान।

" राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं निवेशयेत्। सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृविः। १।

अर्थ—राजा को उचित है कि वैद्यको राज महल के पास ही बसावै, ऐसा करनेसे वैद्य हर समय खाने पीने सोने बैठनेकी वस्तुओं पर ध्यान रखसकेगा।

विष से अन्न पानकी रक्षा।

अन्नपाने विषाद्रक्षेद्विशेषेण महीपतेः।
योगक्षेमौ तदायत्तौ धर्मार्था यन्निबंधनाः।२।

अर्थ—राजा के खाने पीने के पदार्थों को विशेष रूपसे विषसेरक्षा करनी चाहिये क्योंकि मनुष्य का योग (अलब्ध धनादिकी प्राप्ति) और क्षेम (कुशलता) का आधार राजा है। और अर्थ धर्म काम मोक्ष चतुवर्ग का आधार योग क्षेम है।

विषदूषित भात के लक्षण।

ओदनो विषवान् सांद्रो याति विस्राव्यतामिव।
चिरेण पच्यते पक्को भवेत्पर्युषितोपमः॥ ३॥
मयूरकंठतुल्याभो मोहमूर्च्छाप्रसेककृत्।
हीयते वर्णगंधाद्यैः क्लिद्यते चंद्रकांचितः।४।

अर्थ—विषदूषित भात रावडी की तरह चिकना होजाता है, इसमें से मांड नहीं निकल सकता है। रांधने में बहुत देर लगती है और रंध चुकने पर रात के रक्खे हुए बासी के समान प्रतीत होता है। विषदूषित भात से मोर के कंठ के समान अनेक प्रकार की भाफ उठती है और खानेवाले को मोह मूर्च्छा, और लालास्राव होता है। विष दूषित भात का रंग गंध, रस, स्पर्श सब हीन मालूम होते हैं, यह क्लिन्न होता है और इस में मोर पंख की चान्द्रिका के समान अनेक रंग के छींटे २ छींटे से दिखाई देते हैं।

विषदूषित शाक।

व्यंजनान्याशु शुष्यंति ध्यामकाथाति तत्र च।
हीनातिरिक्ता विकृता छाया दृश्येत नैव वा।५।
फेनोर्ध्वराजीसीमंततंतुबुद्बुदसंभवः।
विच्छिन्नविरसा रागाःखांडवःशाकमामिषम्

अर्थ—विषदूषित व्यंजन शीघ्रही सूख जाता है और इसके उबाले हुए पानी का रंग मैला होता है। इस क्वाथ में छोटी, बडी, विकृत आकार की छायां दिखाई देता है और कभी दिखाई नहीं देती। व्यंजनादि में फेन, खडीरेखा, फटी फटी रेखा, तंतु,आदि दिखाई देते हैं। कहीं कहीं राग, खांडव, शाक और मांसादि लाल रंग के और बेस्वाद होजाते हैं।

विषदूषित अन्य पदार्थों की परीक्षा।

नीला राजी रसे ताम्रा क्षीरे दधनि दृश्यते।
श्यावा पीताऽसिता तक्रे घृते पानीयसन्निभा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काली मद्याम्भसोः क्षौद्रे हरित्तैलेऽरुणोपमा
पाकः फलानामामानां पक्वानां परिशोषनम् ।
द्रव्याणामार्द्रशुष्काणांस्यात्तांम्लीनविवर्णते ।
मृदूनां कठिनानां च भवेत् स्पर्शविपर्ययः ॥
माल्यस्य स्फुटितात्रत्वं म्लानिर्गन्धान्तरोद्भवः
श्यामण्डलता वस्त्रे शदनं तन्तुपक्ष्मणाम् ॥
धातुमौक्तिककाष्ठाश्मरत्नादिषु मलाक्तता ॥
स्नेहस्पर्शप्रभाहानिः सप्रभत्वं तु मृन्मये ११॥

अर्थ–विषदूषित मांसरसमें नीली रेखा दिखाई देती है इसी तरह विषदूषित दूध में तांबे के रंगकी, दहीमें काले रंगकी, तक्रमें पीली कांली, घृत में पानी सी, मद्य और पानी में काली, शहद में हरी, तेल में लाल रेखा दिखाई पडती हैं। विषके संयोग से कच्चे फल पक्व जाते हैं और पके हुए सड़ जाते हैं। गीले पदार्थ सुरझा जाते हैं और सूखे विवर्ण होजाते हैं कोमल और कड़े पदार्थ छूने में कठोर और कोमल मालूम पड़ते हैं। फूल के अग्रभाग कुंमला जाते हैं मलीन होजाते हैं और उन की गंध नष्ट होकर दूसरी प्रकार की गंध आने लगती है वस्त्रों में काले गोल दाग पड़ जाते हैं उनके तंतु माे जाते हैं (धातु लोहा, काठ, पत्थर और रत्न विष के संयोगसे मलीन होजाते हैं उनकी चिकनाई, छूने में आल्हादकता और चमक दमक जाती रहती है। मिट्टी के पात्रों में विष के संयोग से चमक आजाती है ।

विषदेने वाले के लक्षण ।

विषदः श्यावशुष्कास्योविलक्षो वीक्षतेदिशः
स्वेदवेपथुमांस्त्रस्तो भीतः स्खलितजृंभते ॥

अर्थ–विषदेने वाले का मुख काला पड़ जाता है, तथा सूख जाता है लज्जा से चारों ओर भौचक्का होकर देखता है, किये हुए पाप के कारण उस के पसीने आजाते हैं, शरीर कांपने लगता है, भय भीत और डरा सा दिखाई देता है, चलने में ठोकर खाताहै और जंभाई लेता है। (वे प्रसंग हंसना असंबंधित उत्तर देना कहने की इच्छा होने पर भी चुप होजाना, उंगलियों का चटकाना, सिर खुजाना, ओष्ठ चाटना, पृथ्वी कुरेदना आदि भी लक्षण हैं)।

विष दूषित अन्नकी अग्निमें परीक्षा।

प्राप्याग्नं सविषं त्वाग्निरेकावर्तः स्फुटत्यति ।
शिखिकंठाभधूमार्चिरनर्चिर्वोग्रगंधवान् ।१३।

अर्थ–विषदूषित अन्न अग्नि में डालने से अग्नि बुझकर सुलगने लगती है और उस में चटचट शब्द होने लगता है। अग्नि में मोर के कंठ की सी वा इन्द्रधनुष की सी अनेक रंग की लोह उठने लगती है, कभी ज्वाला उठती ही नहीं है, और कभी सड़े हुए मांस के जलने की सी गंध आने लगती है। इस के धूंए से प्रसेक, रोमहर्षण, सिर-दर्द, पीनस, नेत्ररोगादि उत्पन्न होजाते है। घी तेल में लवणादि खार मिलाकर अग्नि में डालने से भी उक्त बातें हो जाती हैं इस लिये विषकी परीक्षा का अब दूसरा उपाय लिखते हैं।

पक्षियों द्वारा विष परीक्षा ।

म्रियंतेमक्षिकाःप्राश्यकाकःक्षापस्वरोभवेत् ।
उत्क्रोशंतिच दृष्ट्वैतच्छुकदात्यूहसारिकाः॥
हंसःप्रस्खलति ग्लानिर्जीवंजीवस्य जायते ।
चकोरस्याऽक्षिवैराग्यंकौचस्यस्यान्मदोदयः॥
कपोतपरभृद्वक्षचक्रवाका जहत्यसून् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उद्वेगं याति मार्जारः शकृन्मुंचति वानरः।१६।
दृष्ट्वेन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा मंदतेजो भवेद्विषम।
इत्यन्नं विषवज्ज्ञात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः।१७।
तथा तेन विषेणाऽपि न क्षुद्रजंतवः।

अर्थ—विषदूषित अन्न खाकर मक्खियां मर जाती है, कौआ क्षीणस्वर हो जाता है, तोता मैना जलमुर्ग अन्न को देखते ही चीख मारने लगते है। हंस चलने में लड़खडाता है, जीवंजीव को ग्लानि होती है, चकोर की आंख लाल हो जाती हैं, कौंच को नशा होता है, कपोत कोयल मुर्ग और चकवा शीघ्र मर जाते हैं, बिल्ली को घबडाहट होती है, बन्दर मलमूत्र त्यागने लगता है, मोर इसे देखकर प्रसन्न होता है और विष भी मंद होजाता है। इन लक्षणों द्वारा विषयुक्त अन्न की परीक्षा करके उस का त्याग ऐसी जगह पर करना चाहिये जिससे कोई क्षुद्र जीव भी न मरै।

विषस्पर्श का फल।

स्पृष्टे तु कंडूदाहोषाज्वरार्तिस्फोटसुप्तयः।१८।
नखरोमच्युतिः शोफः सेकाद्या विषनाशनाः।
शस्तास्तत्र प्रलेपाश्च सेव्यचंदनपद्मकैः।१९॥
खसोमवल्कतालीसपत्रकुष्ठामृतानतैः।

अर्थ—विष का स्पर्श करने से खुजली सर्वांगदाह, विष लगे हुए अंग में दाह, ज्वर, शूल, स्फोट, सुन्न होता है बाल और नख गिर पडते है, सूजन होजाती है, इन जगहों में सिरस आदि विषनाशक औषधियों के काथसे सेक आदि करने से विष जाता रहता है। तथा वेनामूल, रक्तचंदन, पद्माख, पपडियाखार, तालीसपत्र, कूठ, गिलोय और तगर इनका लेप करना उपकारी होता है।

मुख में लगाहुआ विष।

लालाजिह्वौष्ठयोर्जाड्यमूषा चिमिचिमायनम्
दंतहर्षो रसाज्ञत्वं हनुस्तंभश्च वक्त्रगे।
सेव्याद्यैस्तत्र गंडूषाः सर्वं च विषजिद्धितम्।२१

अर्थ—जो विष जिह्वा वा मुख के भीतर लग गया हो तो मुख से लार गिरने लगती हैं। जीभ और ओष्ठ जड़ होजाते हैं, मुखमें दाह और चिमचिमाहट होती है दांत खट्टे पड़ जातेहैं। जीभ से खट्टे मीठे का स्वाद जाता रहता है। हनुस्तंभ हो जाता है। ऐसे लक्षण उत्पन्न होने पर वेणीमूलादि ऊपर कहे हुए द्रव्यों के क्वाथसे कुल्ले करै। तथा अन्य विषनाशक औषधों का सेवन भी हित है।

आमाशयस्थ विष।

आमाशयगते स्वेदमूर्च्छाध्मानमदभ्रमाः।
रोमहर्षो वमिर्दाहश्चक्षुर्हृदयरोधनम्॥२२॥
विंदुभिश्चाचयोऽगानां पक्वाशयगते पुनः।
अनेकवर्णं वमति मूत्रयत्यतिसार्यते॥२३॥
तंद्रा कृशत्वं पांडुत्वमुदरं बलसंक्षयः।
तयोर्वांतविरिक्तस्य हरिद्रे कटभीं गुडम्।२४
सिंदुवारितनिष्पावबाष्पिकाशतपर्विकाः।
तंडुलीयकमूलानि कुक्कुटांडमवल्गुजम्।२५
नावनांजनपानेषु योजयेद्विद्वदांतये।

अर्थ—जो विष आमाशयमें पहुँच गया हो तो पसीने मूर्छा, पेट पर अफरा, मद, भ्रम, रोमहर्षण, वमन, दाह, नेत्ररोध, हृदयरोध, तथा छोटी छोटी शरीर पर अनेक प्रकारकी बूंद पड़जाती है। पेशाव होता है और दस्त भी होजातेहैं। आंखों में तन्द्रा, देहमें कृशता, शरीर में पीलापन, और उदर रोग पैदा होजातेहैं। बल क्षीण होजाता है यहां विष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिश्रित अन्नके आमाशयमें जाने पर रोगीको यथोपयुक्त वमन और पक्वाशय में जाने पर यथोपयुक्त विरेचन देवें । पीछे विष दोष की शान्ति के लिये दोनों हलदी, कुडाकी छाल, गुड़, संभालू, वरियाली, दूब, चौलाईकीजड़, कुक्कुटांड और बावची इनको नस्य अंजन और पान द्वारा प्रयोग करें ।

ताम्रचूर्ण प्रयोग ।

विषभुक्ताय दद्याच्च शुद्धायोर्ध्वमधस्तथा २६
सूक्ष्मांताम्ररजः काले सक्षौद्रं हृद्विशोधनम् ।
शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् २७

अर्थ–विषखाने वाले के लिये उसे वमन विरेचन द्वारा शुद्ध करके यथोपयुक्त काल में हृदय की शुद्धि के लिये शहत में मिलाकर बहुत सूक्ष्म तांबेका चूर्ण देना चाहिये हृदय शुद्ध होने के पीछे तीन माशे सुवर्ण का चूर्ण देवें (यहां वैद्य लोग तांबे और सोने की भस्म दिया करते हैं) ।

हेमचूर्ण के गुण ।

न सज्जते हेमपात्रे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ।
जायते विपुलं चायुर्गरेऽप्येष विधिः स्मृतः।

अर्थ–जैसे कमल के पत्ते पर जल नहीं ठहरता है वैसेही सुवर्ण के सेवन करने से शरीर में विष भी नहीं रहता है किन्तु उसकी आयु बढजाती है, विष दोष के नाश के लिये जो विधि कही गई है वही गर अर्थात् संयोगादिज विष में करना उचित है ।

विरुद्धआहार को विषतुल्यता ।

विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम् ।

अर्थ–विरुद्ध आहार विषके तुल्य होता है । जैसे विष और गर मृत्युकारक होते हैं वैसेविरुद्ध आहार भी प्राणनाशक है ।

विरुद्ध भोजन ।

आनूपमामिषं माषक्षौद्रक्षीरविरुद्धकैः ॥२९
विरुध्यते सह विल्वमूलकेन गुडेन वा ।
विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः

अर्थ–आनूपजीवों का मांस, उरद, शहत, अंकुरित द्रव्य, कमलनाल, मूली और गुड़ ये सात विरुद्ध हैं । दूधके साथ विशेष विरुद्ध है तथा चिलीचिम जाति की मछली तो अत्यन्तही विरुद्ध है (चिलीचिममछली के सब शरीर पर लोहितवर्ण की रेखा होती हैं और प्रायः यह भूमि पर रहती है) ।

दूध के विरुद्ध फल ।

विरुद्धमम्लेः पयसा सह सर्वं फलं तथा ।

अर्थ–सब प्रकारके खट्टे पदार्थ दूधके विरुद्ध हैं (सब से द्रव और अद्रव पदार्थ का ग्रहण है) इसका यह तात्पर्य है कि पतले वा गाढे खट्टे पदार्थ दूध में डालकर अथवा दूध पीनेसे पहिले वा पीछे खाना-उचित नहीं है पक्व वा अपक्व फल भी दूधके के साथ खाना विरुद्ध *है ।

दुग्ध विरुद्ध धान्य ।

तद्वत्कुलत्थवरककंगुवल्लमकुष्ठकाः ॥ ३१ ॥

अर्थ--इसी तरह कुलथी, वरक (एक प्रकार का चांवल है) कांगनी, वल्लम और मोठ ये दूध के विरुद्ध है ।

+ फल से फलमात्र का ग्रहण नहीं हैं नीचे लिखे हुए फल दूधके साथ विरुद्ध हैं यथा:--आम्राम्रातकलकुचकरमर्दमोचदन्तशठबदरकोशाम्रभव्यजांबवकवित्थातिंतडीगपालेवताक्षौडपनसनालिकेरदाडिमामल---कान्येवंप्रकाराणि चान्यानीति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुग्ध विरुद्ध शाक।

भक्षयित्वा हरितकं मूलकादि पयस्त्यजेत्।

अर्थ–हरी मूली खाकर दूध न पीना चाहिये। घी में छौंककर शाक बनाकर खानेके पीछे दूध पीना निषेध नहीं है। इसी तरह लहसन के साथ भी दूधका निषेध है परन्तु औषध में निषेध नहीं है क्योंकि अग्नि आदि के संस्कारसे दूध का द्रव्यान्तर होजाता है।

अन्य विरुद्ध मांसादि।

वाराहं श्वाविधा नाद्याद्धृग पृषतकुक्कुटौ॥
आममांसानि पित्तेन मांसमूलेन मूलकम्।
अर्वि कुसुंभशाकेन तिलैः सह विरुद्धकम् ३३
मांसमुपगुडक्षीरदध्याम्लैर्बिल्वकं फलम्।
फलं कदल्यास्तक्रेण दुग्धा तालफलेन वा ३४
कणोषणाभ्यां मधुना काकमाचीं गुडेन वा।
सिद्धां वा मत्स्यपचने पचने नागरस्य वा॥
सिद्धामन्यत्र वा पात्रे कामात्तान्नु वितां निशाम्

अर्थ– सेहके मांसके साथ शूकर का मांस, दहीके साथ पृषत हरिण और मुर्गा का मांस, पित्त के साथ कच्चा मांस, उड़द की दालके साथ मूली, कसूंभके शाक के संग भेड़का मांस, कमलनालके साथ अंकुरित अन्न, उरदकी दाल, गुड, दूध, दही वा घीके साथ लकुचफल, छाछ, दही वा तालफलके साथ केला, मिरच, पीपल, शहत वा गुड़के साथ मकोय, अथवा जिस पात्र में मछली पकाई गई हो उसमें पकाई हुई मकोय नहीं खाना चाहिये। अथवा सोंठके पात्रमें सिद्ध की हुई, वा अन्यपात्र में रांधी हुई वा रातकी बासी रक्खी हुई मकोय नहीं खानी चाहिये।

पीपलके विरुद्ध पदार्थ।

मत्स्यनिस्तलनस्नेहसाधिताः पिप्पलीस्त्यजेत्
कांस्ये दशाहमुषिते सर्पिरुष्णं त्वरुष्करे।

अर्थ–जिस तेलमें मछली पकाई गई हो उस तेलमें तलीहुई पीपल उपयोगमें लानी नहीं चाहिये। कांसीके पात्रमें दस दिनतक रक्खा हुआ काम में न लावै। भिलावे के साथ उष्णवीर्य वा उष्णस्पर्श द्रव्य सेवन नहीं करना चाहिये।

अन्यविरुद्ध द्रव्य।

भासो विरुध्यते शूल्यः कपिञ्जलस्तक्रसाधितः।

अर्थ–भासनामक पक्षी का शूलपर भुना हुआ मांस अर्थात् कबाब विरुद्धहै, तक्र में पकाया हुआ कपिंजल विरुद्धहै। संग्रह में विशेष लिखाहै कि सौवीर नामक संधानके साथ तिलका कल्क, दूधके साथ लवण, नवनीतके साथ शाक, नये के साथ पुराना द्रव्य, अपक्व द्रव्यके साथ एक द्रव्य, अग्नि से तापकर हरीतकी सेवन करना आदि सब विरुद्धहै।

दूधके विरुद्ध।

ऐकध्यं पायसक्षुद्रशाकाः परिवर्जयेत्।

अर्थ–खीर, मूंग और खिचड़ी एक साथ नहीं खाना चाहिये।

शहतके विरुद्ध।

मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि द्विशस्त्रिशः ३८।
एकत्र वा समांशानि विरुध्यंते परस्परम्।

अर्थ–शहत, घी, चर्बी, तेल और पानी इनमेंसे दो दो तीन तीन समान भाग में मिलाकर सेवन करनेसे विरुद्धहैं। दो दो जैसे:- शहत, घी। शहत चर्बी। शहततेल।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शहत पानी । घी चर्बी । घी तेल । घी पानी । आदि समान भागमें विरुद्ध हैं । तीन तीन जैसे शहत घी चर्बी । शहत घी तेल । शहत घी पानी । घी चर्बी तेल । घी चर्बी पानी आदि समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे विरुद्ध होतेहैं ।

असमान शहत घी ।

भिन्नांशोऽपि मध्वाज्ये दिव्यवार्यनुपानतः ॥
मधुपुष्करबीजं च मधुमैरेयशार्करम् ।
मंथानुपानः क्षैरेयो हारिद्रः कटुतैलवान् ४०

अर्थ–असमान भाग घी और शहत मिलाकर पीनेके पीछे आन्तरीक्ष जल का अनुपान विरुद्ध है । शहत और पुष्कर बीज मिले हुए विरुद्ध हैं । द्राक्षामद, खजूर का आसव और चीनी से बनाया हुआ शहत ये तीनों मिले हुए विरुद्ध हैं । दूधपाक खाकर मठा पीलेना विरुद्ध है ।

सरसों के तेल के साथ हारिद्रशाक विरुद्ध होता है ।

तिलकल्क और पोई ।

उपोदकातिसाराय तिलकल्केन साधिता ।

अर्थ--तिलके कल्कके साथ रांधा हुआ पोई का शाक अतिसार करता है ।

वगुला के विरुद्ध पदार्थ ।

बलाका वारुणीयुक्ता कुल्माषैश्च विरुध्यते॥
भृष्टा धाराहवसया सैव सद्यो निहंत्यसून् ।

अर्थ–वगुला का मांस वारुणी नामक मद्यके साथ विरुद्ध है । वही मूंग आदि के साथ पकायाहुआ भी विरुद्ध है । शूकर की चर्बीके साथ पकाया हुआ बगले का मांस तत्काल प्राणनाशक है ।

तीतरादिमांस और अरंड ।

तद्वत्तित्तिरिपत्राढ्यगोधालावककपिंजलाः ॥
ऐरंडेनाग्निना सिद्धास्तत्तैलेन विमूर्च्छिताः ।

अर्थ=इसी तरह तीतर, मोर, गोधा, लवा, कपिंजल पक्षियों का मांस अरंडकी लकडी में पकाये हुए अरंडी के तेलके साथ सिद्ध करके खाना विरुद्ध है ।

हारित और हारिद्र ।

हारीतमांसं हारिद्रशूलकप्रोतपाचितम्।४३।
हारिद्रवह्निना सद्यो व्यापादयति जीवितम् ।
भस्मपांशुपरिध्वस्तं तदेव च समाक्षिकम्।४४

अर्थ=हरीयल पक्षीका मांस हारिद्रवृक्ष की लकडी सलाई में लगाकर हारिद्र की लकडी की आगपर भूनै तो तत्काल प्राणनाशक होता है । अथवा हरियल का मांस राख वा धूल से मलीन होगया है और उस में शहत मिलाकर सेवन करै तो वह भी विरुद्ध है ।

विरुद्धका शमन ।

" यत्किंचिद्दोषमुत्क्लेश्य न हरेत्तत्समासतः।
विरुद्धं शुद्धिरत्रेष्टा शमो वा तद्विरोधिभिः।४५।

अर्थ–जो अन्न पान वा औषध वातादिके दोषों को अपने स्थान से चलायमान करके बाहर की ओर निकालने के लिये प्रस्तुत करै परन्तु निकाल न सकै, संक्षेपसे उन्हीं को विरुद्ध कहते हैं । इन विरुद्ध वस्तुओंके सेवन से हुए रोगोंको वमन विरेचनादिद्वारा शुद्ध करै । अथवा केवल वमन विरेचनादिद्वारा आरोग्यता प्राप्त नहो सकै तो उसके विपरीत गुणवाले द्रव्योंका प्रयोग करके उक्लिष्ट वातादिक दोष वा उनसे उत्पन्न हुए विकारों का शमन करै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरुद्ध सेवन के योग्य शरीर।

द्रव्यैस्तैरेव वा पूर्वं शरीरस्याऽभिसंस्कृतिः।

अर्थ–अथवा विरुद्ध द्रव्य सेवन के पहिले विपरीत गुण वाले द्रव्यों का सेवन करके शरीर को विरुद्ध आहार सेवन के योग्यबना लेवै। ऐसा करने से विरुद्ध अन्नादि के सेवन करने से भी रोग उत्पन्न नहीं हो सकते हैं, जैसे पित्त कफ नाशक शहत और हरड आदि का जो पहिले ही अच्छी रीति से सेवन कर रक्खा हो तो उसके शरीर में पितकफ कारी द्रव्यों का सेवन कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता है।

विरुद्ध भोजन के योग्य।

व्यायामस्निग्धदीप्ताग्निबयःस्थबलशालिनाम्॥
विरोध्यपि न पीडायै सात्म्यमल्पं च भोजनम्।

अर्थ–व्यायाम (कसरत) करने वाले को, स्निग्ध देह वाले को, दीप्ताग्निवाले को, बलवान् को, विरुद्ध भोजन पीड़ा नहीं कर सकता है अथवा जिसने विरुद्ध भोजन करने का नित्य अभ्यास कर रक्खा हो वा जो थोड़ा भोजन करता हो उसको विरुद्ध भोजन कुछ नहीं कर सकता है।

पथ्यापथ्य की सेवनत्याग विधि।

पादेनापथ्यमभ्यस्तं पादपादेन वा त्यजेत्॥७७
निषेवेत हितं तद्वदेकद्वित्र्यंतरीकृतम्।

अर्थ–अहित अन्न पान अथवा लंघन, प्लवन, जागरण वा शयनादि अपथ्य का अभ्यास होगया हो तो चौथाई २ कर के छोड़दे क्यों कि इनका फल अच्छा नहीं है। और यदि ये शरीरोचित हो गये हों तो भी परिणाम में अहित ही करते है गुण नहीं करते। यदि इन अहित कामों को चौथाई २ छोडने में शरीर को कष्ट प्रतीत होता हो तो पोडशांस कर करके छोडे।

जो अपथ्य सेवन का अभ्यास होगया है जैसे अपथ्य सेवनके त्यागने की विधि कही है उसी तरह धीरे धीरे एक एक दो दो तीन तीन दिनका अंतर देकर पथ्य सेवन का अभ्यास करै। यदि अभ्यस्त कुपथ्य का परित्याग और अनभ्यस्त पथ्य का सेवन एक साथ किया जायगा तो अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होजांयगे इस लिये इसकी सुगम विधि यह है कि प्रथम अभ्यस्त कुपथ्य का एक चतुर्थांश त्यागदे और अनभ्यस्त पथ्यका एक चतुर्थांश सेवन करै इस तरह एक दो दिन करता रहे फिर यह सात्म्य होनेपर अभ्यस्त कुपथ्यका आधा भाग त्याग कर उसके बदले में आधा अनभ्यस्त पथ्य सेवन करै इसी तरह दो दो तीन तीन बारका अंतर देकर कुपथ्य का सर्वथा त्याग करके सुपथ्य सेवन का अभ्यास कर लेना चाहिये।

सहसा पथ्यापथ्यके त्यागका फल।

अपथ्यमपि हि त्यक्तं शीलितं पथ्यमेव वा।४८।
सात्म्यासात्म्यविकारायजायतेसहसाऽन्यथा।

अर्थ–ऊपर कहे हुए क्रम पर लक्ष्य दिये बिना जो सहसा सात्म्य और अपथ्य को त्याग देतेहैं उनके सात्म्यजनित विकार होजातेहैं इसी तरह असात्म्य सुपथ्य का सहसा सेवन करनेसे असात्म्यजनित विकार होजातेहैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रमका फल ।

क्रमेणापचिता दोषाःक्रमेणोपचिता गुणाः४९
नाप्नुवंति पुनर्भावमप्रकंप्या भवंति च ।

अर्थ– पूर्वोक्त क्रमका पालन करनेसे अपथ्यका त्याग और पथ्यका सेवन करनेसे अपथ्य के अभ्यास से उत्पन्न हुए रोग धीरे धीरे नष्ट होजातेहैं और फिर होने नहीं पाते इसी तरह पथ्यके अभ्यास से उत्पन्न हुए गुण वृद्धि पाकर स्थिर होजातेहैं ।

अहिताहार सेवनका परित्याग ।

अत्यंतसन्निधानानां दोषाणां दूषणात्मनाम् ॥
अहितैर्दूषणं भूयो न विद्वान् कर्तुमर्हति ।

अर्थ–वातादिक दोष एक दूसरे के अत्यन्त निकटवर्ती हैं और इनका स्वभाव ही दूषण रूपहै, अतएव विद्वान्को उचित नहीं है कि अहित आहार के सेवनसे इनको अधिक दूषित करै ।

त्रीषणा का विधान ।

आहारस्वप्नब्रह्मप्रयुक्तैस्त्रिभिरेषणैः५२।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ।

अर्थ–आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य (स्त्री त्याग) इन तीनों की युक्ति पूर्वक योजना करने से शरीर बहुत काल तक टिका रहता है अर्थात् बहुत दिन तक जीता रहता है जैसे अच्छे खंभों से घर बहुत दिन तक ठहरा रहता है ।

आहार योजना ।

आहारो वर्णितस्तत्र तत्र च वक्ष्यते।५३॥

अर्थ–आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इन तीनों में से आहार का वर्णन ऋतुचर्य्या-स्थान में कर दिया गया है, तथा ज्वरचिकित्सा आदि प्रकरणों में प्रसंगानुसार वर्णन किया जायगा ।

यहां केवल निद्रा और ब्रह्मचर्य का वर्णन किया जाता है ।

निद्रा की आवश्यकता ।

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिःकार्श्यं बलाबलम् ।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ॥

अर्थ–सुख, दुख, पुष्टि, कृशता, बल, और अबल, पुरुषत्व और क्लीबत्व, ज्ञान और अज्ञान ये सब निद्रा के आधीन हैं, इसी तरह जीवन और मरण भी निद्रा ही के आधीन हैं ।

अनियमित निद्राका फल ।

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रा निषेविता ।
सुखायुषी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवाऽपरा५४

अर्थ–अकाल निद्रा (निद्राके उचित काल का परित्याग), अतिनिद्रा (योग्यकाल से अधिक सोना) अल्पनिद्रा (न सोना वा थोडा सोना) ये तीनों प्रकारकी निद्रा सुख और आयुका ऐसे नाशकरदेते हैं जैसे कालरात्रि सुख और आयुका नाश करती है ।

रात्रि जागरणादि ।

रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा ।
अरूक्षमनभिष्यंदि त्वासीनप्रचलायितम् ५५

अर्थ–रातमें जागना रूक्ष है और दिन में सोना स्निग्धहै । बैठे बैठे झोंका खाना वा ऊंघना न रूक्ष है न अभिष्यन्दी है । इस से यह समझ में आता है कि रूक्षता का हेतु रात्रिजागरण वातवर्द्धकहै और स्निग्धका हेतु दिनमें सोना कफकारी है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिनमें सोने का परिणाम।

ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्यरात्र्यल्पभावतः।
दिवास्वप्नोहितोऽन्यस्मिन्कफपित्तकरो हितः
मुक्त्वा तु भाष्ययानाध्वमद्यस्त्रीभारकर्मभिः।
क्रोधशोकभयैःक्लांतान्श्वासहिध्मातिसारिणः
वृद्धबालाबलक्षीणक्षतशूलपीडितान्।
अजीर्णामिहतोन्मत्तान् दिवास्वप्नोचितानपि
धातुसाम्यंतथाह्येषांश्लेष्माचांऽगानिपुष्यति।

अर्थ–ग्रीष्म काल में सोना हित है क्यों कि उस काल में वात का संचय होता है, आदान काल की रूक्षता होती है और रात्रि बहुत छोटी होती है जिससे नींद पूरी नहीं होने पाती। इस लिये दिनकी निद्राकी स्निग्धता से वायुकी शांति, रूक्षता का नाश और निद्रा की पूर्ति हो जाती है। ग्रीष्म के सिवाय अन्यऋतुओं में दिवानिद्रा अहित होती है अर्थात् कफ और पित्तको उत्पन्न करती है। परंतु जो अधिक बोला हो, सवारी पर चढा हो, मार्गमें बहुत चलाहो जिसने मद्यपान किया हो, स्त्री संगम किया हो, जो बोझ ढोने से थक गया हो, जो क्रोध, शोक और भय से क्लान्त हो गया हो, जो श्वास, हिचकी और अतिसार से पीडित हो, इसी तरह जो वृद्ध, बालक, दुर्बल, क्षीण, शस्त्रादिद्वारा क्षत, (जखमी) तथा शूलसे पीडित हो, जिसको अजीर्ण हो चोट लगी हो, जो उन्मत्त हो, जिस को दिनका सोना अनुकूल हो इन सबको क्योंकि दिनका सोना हित है, दिन के सोने से इनकी धातु साम्य हो जाती है और कफकी वृद्धिद्वारा शरीर पुष्ट होता है।

निद्रा का निषेध।

बहुमेदःकफाःस्वप्युःस्नेहनित्याश्च नाऽहनि॥
विषार्तःकंठरोगी च नैव जातु निशास्वपि।

अर्थ–मेद और कफ की वृद्धि वाले मनुष्य से तथा जो नित्यप्रति स्निग्ध पदार्थों का सेवन करता है उस को ग्रीष्म काल में भी दिन में न सोना चाहिये। विषपीडित और कंठरोगी को रात्रि में सोना निषिद्ध है।

कुसमय निद्रा का परिणाम।

अकालशयनान्मोहज्वरस्तैमित्यपीनसाः॥६०॥
शिरोरुक्पैशाफहल्लासस्रोतोरोधाग्निमंदताः।

अर्थ–कुसमय नींद लेनेसे मोह, ज्वर, देहमें शिथिलता, पीनस, शिरोरोग, सूजन हृल्लास, मलमूत्रादिके मार्गोंका अवरोध और अग्निकी मंदता होतीहै।

अतिनिद्राकी चिकित्सा।

तत्रोपवासवमनस्वेदनावनमौषधम्॥६१॥
योजयेदतिनिद्रायांतीक्ष्णं प्रच्छर्दनांजनम्।
नावनंलंघनंचिंता व्यवायं शोकभीक्रुधः६२
एभिरेव च निद्राया नाशःश्लेष्मातिसंक्षयात्

अर्थ–कुसमय निद्रासे उत्पन्न हुए रोगोंमें उपवास, वमन, स्वेदन (पसीनेलैना) नस्यकर्म का प्रयोग करै। जिसे नींद बहुत आतीहो उसे तीक्ष्णवमन, तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्णनस्य, उपवास, चिन्ता, स्त्रीसंग, शोक, भय, और क्रोध, ये हितकारी होते हैं, क्योंकि इनसे श्लेष्मा का नाश होनेके कारण निद्रा का नाश होजाताहै।

निद्रानाशका परिणाम।

निद्रानाशाद्भ्रमर्दार्दितरोगौरक्तपित्तभेदाः॥६३
जाड्यंग्लानिश्रमाधिक्यदौर्बल्यारोचकास्यवातजाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–निद्रा का नाश होनेसे अंगमर्द (अंगड़ाई), सिरमें भारापन, जंभाई, जड़ता, ग्लानि, भ्रम, अन्नका न पचना, तन्द्रा तथा अन्य वातजनक रोग पैदा हो-जातेहैं ।

अर्द्धनिद्राका विधान ।

यथाकालमतो निद्रां रात्रौ सेवेत सात्म्यतः॥ अकालात्म्याजागरार्धे प्रातः स्वप्याद्भुक्तवान्

अर्थ–इसलिये निद्राकालके समय का उल्लंघन न करना चाहिये । रात्रिमें एक दो वा तीन पहर तक शरीर की अनुकूलता के अनुसार सोना चाहिये । प्रकृतिके विरुद्ध जितने समय तक रातमें जागना पड़ाहो उससे आधा काल सवेरे के समय बिना कुछ खाये सो लेना चाहिये । जिनको स्वाभाविकही थोडी नींद आतीहै उनके लिये इन बातोंका कुछ बिचार नहीं है ।

मंदनिद्रावालों को कर्तव्य ।

शीलयेन्मंदनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान् दधि ॥ अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमूर्ध्वकर्णाक्षितर्पणम् । कांताबाहुलताश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता ॥ मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः । ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखानिस्पृहचेतसः ॥६७॥ निद्रा संतोषतृप्तस्य स्वं काले नातिवर्तते ।

अर्थ–अल्पनिद्रावालों के लिये दूध, मद्य, मांसरसादि, दही, अभ्यंग, उद्वर्तन (उबटना) स्नान, तथा मस्तक, नाक और कान का तर्पण ये सब हितकारी हैं । कांता की बाहुलताओं का आश्लेषमात्र (संगमकानिषेधहै) मनका विश्राम, कर्तव्यकर्म की समाप्ति,करके अनुकूल विषयोंकी उपलब्धि, ये सब यथेच्छ निद्रा के सुखको देनेवाले हैं । तथा जो व्यक्ति ब्रह्मचर्यका अभिलाषी है, जिसका मैथुन से चित्त हटगया है और जो संतोष से तृप्त है, उसके लिये निद्रा अपने काल का उल्लंघन नहीं करती है ठीक समय नींद अपने आप आजाती है ।

ब्रह्मचर्यका वर्णन ।

ग्राम्यधर्मे त्यजेन्नारीमनुत्तानां रजस्वलाम् । अप्रियामप्रियाचारां दुष्टसंकीर्णमेहनाम् । अतिस्थूलकृशां सूतां गर्भिणीमन्ययोषितम् ॥ वर्जिनीमन्ययोनिं च गुरुदेवनृपालयम् । चैत्यश्मशानाऽयतनचत्वरांबुचतुष्पथम् ॥ पर्वाण्यनंगं दिवसं शिरोहृदयताडनम् । अत्याशितोऽधृतिःक्षुद्वान्दुःस्थितांगःपिपासित बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम्।

अर्थ–ग्राम्यधर्म अर्थात् मैथुनकालमें करवटसे लेटीहुई, रजस्वला, अप्रिया, अप्रियचारिणी, दुष्टा, संकीर्ण योनि विशिष्ट, अतिस्थूला, अतिकृशांगी, सद्यः प्रसूता (जिस के हालही में बालक हुआ हो), गर्भवती, परस्त्री, ब्रह्मचारिणी, अन्ययोनि (अजा महिष्यादि) इनको त्यागदे । गुरुका घर, देव मंदिर, राजाका स्थान, चैत्य, स्मशान, दुष्टों के विग्रहका स्थान, चत्वर, जलाशय और चौराहे इन सब स्थानोंमें स्त्री संगम न करै इसीतरह संक्रान्ति अमावास्या व्यतीपातादि पर्वके दिन, योनिको छोडकर अन्य अंगोंमें तथा दिनमें मैथुनका त्याग करदे । मैथुन कालमें सिर और हृदयमें धक्का न पहुंचावै बहुत भोजन करके, अधैर्यतामें भूखमें, हाथ पांवको बिना उपयुक्त रीतिके स्थापन किये, अत्यन्त तृषामें, बालक, वृद्ध, अन्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेगोंसे पीडित और रोगीकोइन सब अवस्थाओं में मैथुन का परित्याग करदेना चाहिये।

कामसेवा का समय।

सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतां हिमे ॥
व्यहाद्वसंतशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः।

अर्थ–हेमन्त और शिशिर ऋतुमें वाजीकरण औषधोंके सेवन द्वारा तृप्त होकर यथेच्छ स्त्रीसंगमें प्रवृत्त होना चाहिये। बसन्त और शरदकालमें तीन तीन दिन पीछे ग्रीष्म और वर्षाकालमें पन्द्रह पन्द्रह दिनका अंतर देकर स्त्रीसंगमें प्रवृत्त होना चाहिये।

अन्यथा स्त्रीगमन।

भ्रमक्लमौ रुग्दौर्बल्यबलधात्विंद्रियक्षयः ॥
अपर्वमरणं च स्याद्बन्ध्यया गच्छतः स्त्रियम्।

अर्थ– पूर्वोक्त नियमोंका उल्लंघन करके जो स्त्रीगमन करताहै उसे भ्रम, क्लान्ति ऊरुदौर्बल्य, धातुक्षय, इन्द्रियक्षय, और अकालमृत्यु ये रोग होजातेहैं।

नियमानुसार स्त्रीगमन।

स्मृतिमेधायुरारोग्यबृंहींद्रिययशोबलैः।
अधिका मंदजरसो भवंति स्त्रीषु संयताः ॥

अर्थ–जो नियमपूर्वक स्त्रीसंगम करते है उनकी स्मरणशक्ति, मेधा, आयु, आरोग्यता, शरीर की पुष्टि, इन्द्रियशक्ति, यश और बल, ये सब वृद्धिको पातेहैं और बुढापाभी उनपर बहुत धीरे धीरे आक्रमण करताहै।

रतोंदमें कर्तव्य।

स्नानानुलेपनहिमानिलखंडखाद्य-
शीतांबुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः।
सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य
लब्ध्वैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम " ॥७५॥

अर्थ–मैथुन के पीछे स्नान, चंदनादि लेपन, शीतलवायु सेवन, मोदकादि भोजन, शीतल जल, दूध, मांसयूष, मुद्गादियूष, सुरा, अथवा प्रसन्नानामक मद्य पान करके नींद लेवै। ऐसा करने से रतिकर्म से उत्पन्न हुई दुर्बलता जाती रहती है और फिर नवीन बलका संचार देहमें होजाताहै।

वैद्यको शरीर का स्वामित्व।

श्रुतचरितसमृद्धे कर्मदक्षे दयालौ
भिषजि विरतुपंथं देहरक्षां निवेश्य।
भजति विपुलतेजाःस्वास्थ्यकीर्तिप्रभावः।
स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायुः ॥

अर्थ–जो राजा आयुर्वेद शास्त्रज्ञ, सदाचार, चिकित्साकुशल, और दयालु वैद्यके प्रति संपूर्णतया अपनी देहरक्षाका भार समर्पणकर देता है, वह अत्यन्त पराक्रमशाली, दीर्घायु तथा स्वस्थ, कीर्तिमान, और प्रतापी होकर कुशलफल का भोगने वाला होताहै।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातो मात्राशितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से मात्राशितीय अध्याय की व्याख्या करेंगे।

मिताहार का विधान।

'मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका।
मात्रां द्रव्याण्यपेक्षंते गुरूण्यपि लघून्यपि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सदा परिमिताहारी होना चाहिये अर्थात् निरोगतामें चाहै रोगावस्थामें, चाहै बाल्यकाल में, चाहै ग्रीष्मादिऋतुमें, चाहैदिन में चाहै रातमें सब समय थोडा आहार करना उचित है, क्योंकि मिताहार ही जठराग्निका बढाने वाला है, अग्निका बढनाही देहकी स्थितिका हेतु है क्योंकि कहाभी है "अग्निमूलं बलंपुंसां बलमूलं हि जीवितम्" इस लिये मात्रा प्रधान है। द्रव्य भारी हो वा हलका सब प्रकार के द्रव्य मात्रा की अपेक्षा करते हैं। गुरुद्रव्य, यथाः–पिष्टक, क्षीर, दाख, शहत, ईख, उरद और आनूप मांसादि। लघुद्रव्य यथाः– आंतरीक्ष जल, रक्तशालि, साठी चांवल, मूंग, लवा, कपिंजल, हिरण, खरगोश और शंबरादि।

गुरुलघुद्रव्यों की मात्रा ।

गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता ।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥२

अर्थ–भारी द्रव्य अर्द्धतृप्ति अर्थात् भूख से आधा और हलका द्रव्य पेट भरकर खा लेना चाहिये । जिसको जितना सुखपूर्वक पचजाय उतना ही उसकी मात्रा का असल परिमाण जानना चाहिये ।

हीनातिमात्रा का फल

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥३॥
अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।

अर्थ–हीनमात्रा भोजन शरीर के बल, पुष्टि और ओजकी वृद्धि का कारण न हो कर केवल वात रोगों का कारण हो जाता है। इसी तरह अतिमात्रा भोजन परिपाक को प्राप्त न होकर तीनों दोषों को प्रकुपित करता है ।

कुपित हुए तीनों दोष जिसतरह अलसक और विशूचिकादि व्याधियों को करते हैं वही बात दिखाते हैं ।

अतिमात्रा का फल ।

पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः ।
आमेनाश्रेम दुष्टेन तदैवाविश्य कुर्वते ।
विष्टंभयंतोऽलसकं च्यावयंतो विषूचिकाम् ॥
अधरोत्तरमार्गाभ्यां सहसैवाजितात्मनः ।

अर्थ–बिना पचे हुए दुष्ट आहार से वातादि तीनों दोष पीडयमान होकर मार्ग रुक जानेके कारण एक साथ प्रकुपित होकर उसी दुष्ट अन्न में प्रवेश करके और उसे गमन मार्ग में रोककर अलसक रोग को उत्पन्न करता है। अथवा सहसा उसी दुष्ट अन्न को ऊपर वा नीचे के मार्गद्वारा निकालता हुआ विशूचिका रोग को उत्पन्न करता है। ये दोनों रोग अजितात्मा अर्थात् भोजनलोलुपों को ही होते हैं।

अलसक का लक्षण ।

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः

अर्थ–जो आहार ऊपर के मार्ग अर्थात् मुखद्वारा नहीं निकलता है अधो मार्ग गुदा द्वारा भी नहीं निकलता है और न पचता ही है, केवल नाभि और स्तनों के मध्यवर्ती आमाशय नामक स्थान में अलसीभूत अर्थात् स्तब्ध भाव में रहता है उसे अलसक रोग कहते हैं जैसे अनुद्यमशील मनुष्य आलसी कहलाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशूचिका का लक्षण।

विविधैर्वेदनोद्वेदैर्वीप्स्वादिभृशकोपतः ॥७॥
सूचीभिरिव गात्राणि विध्यतीति विशूचिका।

अर्थ–वातादिकों के अत्यन्त प्रकुपित होने से अनेक प्रकार की वेदना और सुई छिदने की सी पीडा होती है उसे विशूचिका कहते हैं।

विशूचिका में उपद्रव।

तत्र शूलभ्रमाऽऽनाहकंपस्तंभादयोऽनिलात् ।८।
पित्तात्ज्वरातिसारांतर्दाहतृट्प्रलयादयः।
कफाच्छर्ध्यंगगुरुतावाक्संगष्ठीवनादयः ।९।

अर्थ–विशूचिका रोग में वात की अधिकता से शूल, भ्रम आनाह, कंपन, स्तंभता, अंगोद्वेष्टन और मुखशोषादि होते हैं। पित्त की अधिकता से ज्वर, अतीसार, अंतर्दाह, तृषा, मूर्च्छा और मदादि परिग्रह होते हैं, इसी तरह कफ की अधिकता से छर्दि, अंग में भारापन, मुखरोध, ष्ठीवन और छींक आदि रोग होजाते हैं

अलसक दंडालसक।

विशेषात्दुर्बलस्याऽल्पवह्नेर्वेगविधारिणः।
पीडितं मारुतेनाग्रं श्लेष्मणा रुद्धमंतरा।१०।
अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम्।
शूलादीन्कुरुते तीव्रांछर्यतीसारवर्जितान्।११
सोऽलसः

अत्यर्थदुष्टास्तु दोषा दुष्टामबद्धखाः।
यांतस्तिर्यक्तनुं सर्वां दंडवत्स्तंभयंति चेत् १२
दंडकालसकं नाम तत्त्यजेदाशुकारिणम्।

अर्थ–अब अलसक और दंडालसक के विशेष लक्षण लिखतेहैं। दुर्बल, मंदाग्नि और मलमूत्रादिका वेगरोकने वाले मनुष्यका भोजन किया हुआ अन्न वायुद्वारा अत्यन्त उत्पीडित और कफद्वारा आमाशयमें रुका हुआ अलस भावमें ठहरा हुआ वातादिक दोषोंसे क्षुभित होकर शल्यकी तरह रुकजाताहै और रुककर वमन और अतीसार से रहित तीव्र शूलादि रोगोंको उत्पन्न करताहै इसीको अलसक रोग कहतेहैं। उसी अलसकरोगमें यदि संपूर्ण वातादिक दोष अत्यन्त कुपित और दुष्ट तथा अपक्व भुक्त अन्न द्वारा रुद्धमार्ग होकर तिरछा मार्ग ग्रहण कर के सब देहको दंडकी तरह स्तंभित करदेता इसीसे इसे दंडालसक कहते हैं, यह शीघ्र प्राणनाशक है इसलिये इसकी चिकित्सा नहीं करना चाहिये।

आम विषका लक्षण।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विषलक्षणम् १३
आमदोषं महाघोरं विजयेद्विषसंज्ञकम्।
विषस्य गुणकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ।१४।

अर्थ–विरुद्धआहार अध्यशन (पहिला भोजन विना पचे और खा लेना), और अजीर्ण में भोजन करने वाले मनुष्य के विषलक्षण लालास्रावादि युक्तविषसंज्ञक जो अत्यन्त कष्टदायक आमदोष उत्पन्न करताहै वह विष के समान शीघ्र प्राणनाशक और चिकित्सा से विरुद्ध होता है इस लिये इस का इलाज न करै। विषमें शीतक्रियारूक्ष चिकित्सा और आममें उष्ण चिकित्सा की जाती है, किन्तु विषलक्षण युक्त आममें दोनों क्रिया ही विरुद्ध होती हैं इसलिये यह दुश्चिकित्स्य होता है।

अलसकमें चिकित्सा।

अथाऽममलसीभूतं साध्यं त्वरितमुल्लिखेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पीत्वा सोष्णापटुफलं वार्युष्णं योजयेत्ततः ॥
स्वेदनं फलवर्तिं च मलवातानुलोमनीम् ।
नाम्यमानानि चांगानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत्

अर्थ--अलसक रोगमें साध्यासाध्य का विचार करके साध्यलक्षणवाले अदुष्ट स्तब्धीभूत आम अर्थात् अपक्व अन्नको परिपाक काल की अपेक्षा विना किये ही वमन से शीघ्र निकाल देवै । वमन कराने के लिये वच, लवण और मेनफल गरम जलके साथ पिलाना चाहिये । पीछे स्वेदन क्रिया करै और गुदा में मल और वायुका अनुलोमन करने वाली फलवर्ती का प्रयोग करै । तथा आम दोष के कारण जो अंग संकुचित होगये हों उन्हें अत्यन्त स्वेदित करके कपड़े से लपेट देवै ।

प्रबल विसूचिका में उपाय ।

विसूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
तदहश्चोपवासेन विरिक्तवदुपाचरेत् ।१७।

अर्थ--जो विसूचिका अति प्रबल हो तो दोनों पांवोंकी पार्ष्णि में लोहे की शलाका से दग्ध करना उत्तम है । उस दिन रोगी को उपवास कराके विरेचन वाले की तरह पेयादि देकर चिकित्सा करै ।

अजीर्णवाले का उपाय ।

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी विदेच्छूलघ्नमौषधम् ।
आमलक्षोऽनलोन्नालंकर्तुदोषौषधाशनम् १८
निहन्त्यपि चिरेणेतां विधिः सहसाऽऽतुरम् ।

अर्थ—अजीर्ण वाला रोगी यदि तीव्र शूल से पीडित हो तो भी उस को शूलनाशिनी औषधि न देवै । यहां शूल उपलक्षणमात्रहै, विसूचिकामें छर्दि और अतिसार के दूर करने वाली औषध भी न देवै । कारण यह है कि आमद्वारा मंद हुई जठराग्नि वातादि दोषों को शूलादि नाशक औषध को और अन्न पेयादि भोजन को परिपाक करने में समर्थ नहीं है । किन्तु इनका सेवन करना अर्थात् इन तीनों की व्यापत्ति रोगी का शीघ्रही नाश कर देती है, इस लिये शूलादिनाशिनी औषध न देकर पूर्वोक्त वमनकारक औषध देवे ॥

औषध का समय ।

अजीर्णाशंके तु भैषज्यं युंज्यात् स्तब्धगुरूदरे १९
दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः संधुक्षणाय च ।

अर्थ—जब उपवासादि द्वारा अजीर्ण रोगी का पहिला किया हुआ भोजन पचजाय तब तथा उदर में भारापन और स्तब्धता हो तो अजीर्ण का बचा हुआ दोष पचाने के लिये और अग्नि के उद्दीपन करने के लिये औषध का प्रयोग करै ।

औषध का भेद ।

शांतिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात् २०

अर्थ—अपतर्पण (न खाना वा थोडा खाना) द्वारा आलस्य, जड़ता और अग्निमांद्यादि आम अर्थात् रोग की शान्ति होजातीहै

औषध की यथायोग्यता

त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ।
तत्राऽल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम् २१
प्रभूते शोधनं तत्र मूलादुन्मूलयेन्मलान् ।

अर्थ—तीन प्रकार के दोषों में देश, काल और अग्नि की परीक्षा करके तीन प्रकार की औषध देनी चाहिये । इन में से अल्पदोष में लंघन, मध्यदोष में लंघन पाचन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और महत् दोष में वमनादिरूप शोधन औषधों का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि शोधन द्वारा सब दोष जड़ से जाते रहते हैं।

अन्यरोगों में चिकित्सा क्रम।

एवमन्यानपि व्याधीन् स्वनिदानविपर्ययात्
चिकित्सेद्रुध्यते तु सति हेतुविपर्ययम्।
त्यक्त्वा यथायथं वैद्यो युञ्ज्याद्व्याधिविपर्ययम्
तदर्थकारि वा पक्के दोषे त्विद्धे च पावके।
हितमभ्यञ्जनस्नेहपानबस्त्यादियुक्तितः ॥२४॥

अर्थ-इसी तरह ज्वर, अतीसार आदि अन्य रोगों में निज निज उत्पत्ति के कारणों के विरुद्ध औषधों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये। जैसे रूक्ष अन्न के भोजन से उत्पन्न रोग में स्निग्धान्न, शीतजनित रोग में उष्णक्रिया इत्यादि। किन्तु इस तरह हेतु के विपरीत चिकित्सा द्वारा संपूर्ण रोग शान्त नहीं होते हैं इस लिये हेतुविपरीत औषध को छोड़कर यथायथ व्याधि के विपरीत औषधों का प्रयोग करै। जैसे ज्वर में मोथा, पितपापड़ा और प्रमेह में हलदी इस से यह समझना चाहिये कि अल्पबल-वाली व्याधि हेतुविपर्य्यय औषध द्वारा शान्त होजाती है। मध्यबल व्याधि हेतुविपर्य्यय औषध द्वारा संपूर्ण शान्त न होकर थोडी रहजाती है। वह व्याधि विपरीति औषध द्वारा जाती रहती है। किन्तु यदि व्याधि विपरीत औषध प्रयोग करने पर रोग शेष रहजाय तो तथा दोष का परिपाक और अग्नि की दीप्ति होय तो युक्तिपूर्वक तैलाभ्यंजन, घृतादि स्नेहपान और वस्तिप्रयोगादि हेतुव्याधि विपरीतार्थकारी औषध काप्रयोगकरे

अजीर्ण की व्याधियां।

अजीर्णे च कफादामं तत्र शोफोऽक्षिगंडयोः
सद्यो भुक्तस्य चोद्गारः प्रसेकोत्क्लेशगौरवम् ॥
विष्टब्धमनिलाच्छूलविबंधाध्मानसादकृत्।
पित्ताद्विदग्धं तृण्मोहभ्रमाम्लोद्गारदाहवत्।

अर्थ— कफकी अधिकता में आमाख्य अजीर्ण उत्पन्न होता है। आमाजीर्ण में आंख और गंडस्थल में सूजन हो जाती है, जैसा भोजन किया जाता है वैसी ही डकार आनेलगती है मुख से पानी आनेलगता है, दोषस्थान को छोड़ देते हैं और शरीर में भारापन हो जाता है।

वाताधिक्य में विष्टब्ध नामक अजीर्ण होता है, इससे शूल, मलबद्धता, उदरमें अफरा और देहमे शिथिलता होती है।

पित्ताधिक्य में विदग्ध नामक अजीर्ण उत्पन्न होता है, इससे तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रम, खट्टी डकार और दाह होता है।

त्रिविध अजीर्ण की चिकित्सा।

लंघनं कार्यमामे तु विष्टब्धे स्वेदनं भृशम्।
विदग्धे वमनं यद्वा यथावस्थं हितं भवेत् ॥२७॥

अर्थ—आमाजीर्ण में लंघन, विष्टब्ध अजीर्ण में यथेष्ट स्वेदन और विदग्धअजीर्ण में वमन कराना चाहिये। अथवा तीनों प्रकार के अजीर्ण में वातादि दोषों का बलाबल विचार कर जो पाचनादि औषध हितकारक हैं उनका प्रयोग करना चाहिये अथवा दोषादी अवस्थानुसार लंघन, स्वेदन और वमन में जो हितकारी हो वही देवै जैसे आमाजीर्ण में स्वेदन वमन और विदग्ध में लंघन स्वेदनादि।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिलंबिका रोग की उत्पत्ति ।

गरथिस्रो भवेल्लीनादामादेव बिलंबिका
कफवातानुबद्धामलिंगा तत्समसाधना।२८।

अर्थ–स्रोतों में अत्यन्त श्लिष्ट हो जाने से बिलंबिका नामक व्याधि उत्पन्न हो जाती है, यह व्याधि कफ और वातसे युक्त होती है और इसमें आमाजीर्ण के सब लक्षण प्रगट होते हैं, जैसे आंख और गंडस्थलमें सूजन भुक्तअन्न की डकार, प्रसेक, उत्क्लेश और गौरव आदि । इस में आमाजीर्ण के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये जैसे लंघनादि । पर इस बातपर विशेष ध्यान धरना चाहिये कि आमाजीर्ण में तो केवल कफ होता है और बिलंबिका में वायु और कफ दोनों का अनुबंध होता है, इसलिये कफ वातनाशक औषध का प्रयोग विवेचना पूर्वक करना चाहिये ।

रसशेषाजीर्ण के लक्षण ।

अश्रद्धा हृद्व्यथा शुद्धेऽनुद्गारे रसशेषतः ।
शयीत किंचिदेवात्र सर्वेश्वानादितो दिवा ।
स्व्यादजीर्णी संजातबुभुक्षोऽन्नमिलं लघु।

अर्थ–भुक्तान्न का रस धात्वग्नि द्वारा परिपाक को प्राप्तहोकर रक्तरूप में परिणत होता है उसी में से कुछ भाग अग्निकी दुर्बलता के कारण पाकको प्राप्त न हो और कुछ बचरहे उसीका नाम रसशेष है । इसीलिये रसशेषसे जो अजीर्ण होता है । उसेही रसशेषाजीर्ण कहते हैं । इसमें दुर्गंधित वा खट्टी डकार नहीं आती है किन्तु आहार में अनिच्छा और हृदय में शूल होता है , ऐसे रोगी को थोडी देर तक शयन करना चाहिये ! दिन में बिना कुछ भोजन करायें शयन कराना उत्तम है उठने के पीछे जो रोगी को क्षुधा लगे तो थोडा हलका भोजन करावै ।

अजीर्ण के सामान्य लक्षण ।

विबंधोऽतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिमारुतमूढता ३०
अजीर्णलिंगं सामान्यं विष्टंभो गौरवं भ्रमः ।

अर्थ–मलमूत्रादि की विबद्धता वा अति प्रवृत्ति, शरीर की ग्लानि वायुकी मूढता अर्थात प्रतिलोमभाव में पेट के भीतर वायुका इधर उधर भ्रमण, विष्टब्ध (भुक्तअन्न का गोलासा बनकर ठहर जाना), शरीर में भारापन और भ्रम ये सब अजीर्ण के सामान्य लक्षण हैं ।

अजीर्णके अन्य हेतु ।

न चातिमात्रमेवान्नमामदोषायकेवलम् ।३१।
द्विष्टविष्टंभिदग्धामगुरुरूक्षाहिमाशुचि ।
विदाही शुष्कमत्यंबुयुक्तं वान्नं न जीर्यति ३२
उपतप्तेन भुक्तं च शोककोधक्षुधादिभिः ।

अर्थ–केवल अतिमात्र भोजनही आम दोषका कारण नहींहै । किन्तु अप्रिय, विष्टंभी, दग्ध, अपक्व, गुरुपाकी, रूक्ष, शीतल अपवित्र, विदाही, शुष्क और बहुत जलसे मिला हुआ अन्न भी परिपाक को प्राप्त न होकर अजीर्ण करताहै । अजीर्णके केवल यही कारण नहींहै किन्तु शोक, क्रोध, भूख भूखके समय अन्नका न मिलना आदि कारणोंसे भी उत्तप्त मनुष्यका खाया हुआ अन्न नहीं पचताहै । आदि शब्दसे लोभ भय आदिभी जानना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आमवर्द्धक अन्न द्रव्य ।

मिश्रं पथ्यमपथ्यं च भुक्तं समशनं मतम् ३३
विद्याद्ध्यशनं भूयो भुक्तस्योपरि भोजनम् ।
अकाले बहु चाल्पं वा भुक्तं तु विषमाशनम् ।
त्रीण्यप्येतानिमृत्युंवाघोरान्व्याधीनसृजेतिवा

अर्थ—पथ्य और अपथ्यका मिलाकर खाना वैद्यक शास्त्रमें समशन कहलाताहै । भोजन करनेके थोडी देर पीछेही अर्थात् पाहिला आहार बिना पचेही फिर भोजन कर लेनेका नाम अध्यशनहै । कभी उचित काल में, कभी कुसमय, कभी थोड़ा और कभी बहुत खा लेना विषमाशन कहलाता है । ये तीनों ही मृत्यु वा घोर व्याधि को उत्पन्न करते हैं ।

भोजन का क्रम ।

कालेसात्म्यं शुचि हितंस्निग्धोष्णं लघुतन्मनाः
षड्रसं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलम्बितम् ।
ज्ञातः क्षुद्वान्विविक्तस्थो धौतपादकराननः ॥
तर्पयित्वापितॄन्देवानतिथीन्बालकान्गुरून् ॥
प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान् ॥
समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिन्द्यैरनुबन्धवम् ।
इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचिभक्तजनाहृतम् ३८

अर्थ—स्नानकरने के पीछे हाथ पांव और मुख धोकर, पित्रोंको पिंडदान, देवता गणों को अन्नव्यंजनादि निवेदन, अतिथि बालक और गुरुननोंको भोजन कराके तथा पशु पक्षी दास, दासी आदि प्रतिपाल्यगणों के आहार पर लक्ष्य रखकर अपने शरीरकी अवस्थाकी विवेचना करके आहार के उपर्युक्त कालमें एकान्त स्थानमें बैठकर शुद्ध आचरणवाले अनुरक्त मनुष्यद्वारा परोसाहुआ प्रकृति के अनुकूल पवित्र, सुपथ्य, घृतादि परिप्लुत, थोडागरम,पचने में हलका छः रसों से युक्त जिसमें मधुर रसकी अधिकताहो, पतला (जिसमें दही, दूध, यूषादि अधिकहों) हृद्य, अन्न, व्यंजन भूख लगने पर अपने परिवारके लोगों के साथ भोजन करे, भोजन करने में बहुत बोलना उचित नहीं है । भोजन करने में बहुत जल्दी वा बहुत विलंब भी न करै ॥

त्याज्य भोजन ।

भोजनं तृणकेशादिदुष्टमुष्णीकृतं पुनः ।
शाकान्नभूयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ३

अर्थ—जिस भोजन में तिनुके वा बाल पडे हों, अथवा पक्व भोजन शीतल होने पर फिर गरम किया गयाहो, अथवा दूषित शाक व्यंजनादि अथवा अति उष्ण वा अति नमकयुक्त भोजन नहीं करना चाहिये ।

किलाटादि का निषेध ।

किलाटदधिकूर्चीकाक्षारशुक्तामूलकम् ।
कृकलशुष्कवराहाविगोमत्स्यमहिषामिषम् ४०
मापनिष्पावशाकूकबिल्वपिष्टविरूढकम् ।
शुष्कशाकानियवकान्फाणितं च न शीलयेत्

अर्थ—किलाट, दही, कूर्चिका, क्षार, शुक्त कच्चीमूली, दुबलेजानवरका मांस, सूखा मांस इसी तरह शूकर, भेड़, गौ, मछली, और भैंसका मांस, चौरा, सेम, शाल्तूक, मृणाल, पिष्टक, अंकुरितअन्न, सूखेसाग, यवक और फाणित इनका सेवन न करै ।

सेवनयोग्य द्रव्य ।

शीलयेच्छालिगोधूमयवषष्टिकजाङ्गलम् ।
पथ्यामलकमृद्वीकापटोलीमुद्गशार्करा: ।४२ ।
घृतादिव्योदकक्षीरक्षौद्रदाडिमसैन्धवम् ॥
त्रिफलां मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्रबलाय च ४३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—दाऊदखानि आदि शाली चांवल, गेंहूं, जौ, साठी चांवल, जांगल, मांस हरड़, आमला, दाख, पटोली, मूंग, शर्करा, घृत, आंतरीक्ष जल, दूध, शहत, अनार, सेंधानमक, रात के समय नेत्रोंमें बल के निमित्त घृत और मधु सहित त्रिफला इन सब द्रव्यों का निरन्तर व्यवहार करना चाहिये। किसी पुस्तक में इतना पाठ विशेष है सुनि षण्णकशीवन्ती बालमूलकवास्तुकम् ।

स्वास्थ्यानुवृत्तिकृच्चय रोगोच्छेदकरंचयत् ।

अर्थ—उक्त सेवनीय द्रव्यों के अतिरिक्त दिनचर्या और ऋतुचर्याध्याय में कहे हुए स्वास्थ्य का अनुवर्तन करनेवाले और रोगों का नाश करने वाले द्रव्यों का सेवन करना उचित है ।

भोजन के आदिमध्यान्त में कर्तव्य ।

विसेक्षुशोचचोच्चाम्लोदकोत्कारिकादधिकम् ४४
अद्याद्द्रव्ये गुरु स्निग्धं स्वादु मन्दं स्थिरं पुरः ।
विपरीतमतश्चान्ते मध्येऽम्ललवणोत्कटम् ४५

अर्थ—आहार के आरंभ में कमलनाल, ईख, केला, कठोर, आम, मोदक, उत्कारिका (लप्स्यादि) तथा भारी, मधुर, स्निग्ध मृदु और संग्राही पदार्थों का सेवन करै । आहार के अन्तु में इन से विपरीत अर्थात् लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, और तीक्ष्ण और रेचक द्रव्यों का सेवन करै । आहार के बीच में अधिक खट्टे और अधिक नमकीन पदार्थों का सेवन करै । खरनाद में लिखा है " कटु लवणमम्लंवा पूर्वमाहारमाहरेत् । आहारो मधुरो ह्यग्रे गुरुर्विष्टंभ्यजीर्यति ,, ।

भोजन का प्रमाण ।

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौपाननेनैकं प्रपूरयेत् ।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ।४६ ।

अर्थ—जठर का आधा भाग अन्न से, चौथाई भाग पानी से भरै और वातादि के आश्रय के लिये चौथा भाग खाली रहने दे ।

भोजन के पश्चात् अनुपान ।

अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ॥
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे कोष्णं पिष्टमयेषु तु ४७
शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्काम्लकाञ्जिकम्
सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं स्थूलानां तु मधूदकम्
शोषे मांसरसो मद्यं मांसे स्वल्पे च पावके ।
व्याध्यौषधान्नभाग्यस्त्रीलंघनातपकर्मभिः ॥
क्षीणे वृद्धे च बाले पयः पथ्यं यथामृतम् ।

अर्थ—जौ और गेंहूं खाने के पीछे तथा दही, शहत वा मद्यपान करने के पीछे अथवा विष में ठंडा जल पीना हितकारी है । पर पिष्टक (पिसे हुए आटे के बने) पदार्थों के खाने के पीछे थोडा गरम जल पीना हित है । शाक और मूंग के बने हुए पदार्थों के पीछे दही का तोड़, तक्र और खट्टी कांजी हित है । दुबले मनुष्यों की पुष्टि के लिये सुरापान, मोटे को दुबला करने के लिये शहत मिला हुआ जल, शोष रोग में मांसरस, मांस खाने के पीछे वा मंदाग्नि में मद्यपान हितकर है । जो व्याधि, औषधसेवन मार्गभ्रमण, अतिभाषण, स्त्री संगम, लंघन, आतप सेवन और भारवह नादि से क्षीण होगया है तथा बालक और वृद्धों को दुग्धपान अमृत के समान गुणकारी है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुपान का संक्षिप्त वर्णन।

विपरीतं यदन्नस्य गुणैः स्यादविरोधि च।
अनुपानं समासेन सर्वदा तत्प्रशस्यते॥५१॥

अर्थ– खाद्य पदार्थों के विपरीत गुण-वाले अविकारी द्रव्यों का अनुपान सदा ही हितकारी है। जैसे रूक्ष का स्निग्ध, स्निग्ध का रूक्ष, गरम का ठंढा, ठंढे का रूखा, खट्टे का मीठा, मीठे का खट्टा इत्यादि। परन्तु ऐसा विपरीत सम्बन्ध न होना चाहिये जैसा दूध और खटाई का होता है।

अनुपान का कर्म।

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढांगताम्।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तिजरणानि च॥५२

अर्थ– अनुपान से उत्साह, तृप्ति, सब देह में अन्नरस का फैलना, दृढता, अन्न-संघात, शिथिलता, क्लिन्नता और परिपाक होता है।

अनुपान के अयोग्य रोग।

नोर्ध्वजत्रुगदश्वासकासहिक्षतपीनसे।
गीतभाष्यप्रसंगे च स्वरभेदे च तद्धितम्॥५३॥

अर्थ– जत्रु (ग्रीवा और वक्षःस्थल) के ऊपर वाले अंगों में होने वाले रोगों में अनुपान हितकारी नहीं होता, जैसे - श्वास खांसी, उरःक्षत, पीनस, अत्यन्त गाने वा बोलने के सम्बन्ध में वा स्वर भेद में अनुपान हितकारी नहीं है।

पान के अयोग्य रोगी।

प्रक्लिन्नदेहमेहाक्षिगलरोगव्रणातुराः।
पानं त्यजेयुः
सर्वेश्चभाष्याध्वशयनं त्यजेत्॥५४॥
पीत्वा भुक्त्वाऽऽतपं वह्निं यानंप्लवनवाहनम्।

अर्थ– जिन का शरीर विसर्पादि रोगों से क्लिन्न होगया है अथवा जो नेत्र रोगों और क्षत रोगों से पीडित हैं उनको पीने के पदार्थ छोड देने चाहियें और सुस्थ वा अस्वस्थ सब लोगों को पान और भोजन के पीछे बहुत बोलना, मार्ग चलना, नींद लेना, धूप में फिरना, अग्नि से तापना, सवारी पर चढना, पानी में तैरना, और घोडे आदि पर चढना। ये सब काम छोड देने चाहिये।

भोजन का समय।

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे।
विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति॥
तथाऽऽशुद्धिकरे विशदकरणे देहे च सुलघौ
प्रयुंजीताहारं विधिनियमितःकालःस हि मतः

अर्थ– मल मूत्र के त्याग से अच्छी तरह सुस्थ होचुका हो, हृदय निर्मल हो, वातादि सब दोष अपने अपने मार्ग में हो, डकार शुद्ध हो, क्षुधा चैतन्य हो, अधो-वायु ठीक होता हो, जठराग्नि और कायाग्नि उत्तेजित हों। सब इन्द्रियां विशद हों, देह में हलकापन हो उस समय आहार विधि में कही हुई रीति से भोजन करै। यही भोजन का ठीक समय है।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां
अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवमोऽध्यायः।

अथातोद्रव्यादिविज्ञानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ– अब हम यहां से द्रव्यादि विज्ञानीय अध्याय की व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रव्य की प्रधानता ।

" द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं ते हि तदाश्रयाः ।
पंचभूतात्मकं तत्तु
क्षामधिष्ठाय जायते ॥ १ ॥
अबग्नेयोन्यग्निपवननभसां समवायतः ।
तन्निर्वृत्तिर्विशेषश्च व्यपदेशस्तु भूयसा ॥२॥

अर्थ– रस, वीर्य, विपाकादि ये सब द्रव्य के आधीन है इसलिये द्रव्य ही प्रधान है । ये द्रव्य पंचभूतात्मक हैं अर्थात् द्रव्य पृथ्वी के आधार से उत्पन्न होता है जल उसकी उत्पत्ति का प्रधान कारण है, अग्नि वायु और आकाश ये भी उसकी उत्पत्ति के समवायि कारण हैं । इससे यह हुआ कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंचभूत सब द्रव्यों के समवायी कारण हैं । परन्तु इन भूत पदार्थों की अधिकता के अनुसार द्रव्यों में विशेषता होती है, जैसे जिस द्रव्य में पृथ्वी की अधिकता है वह पार्थिव. जिस में जल की अधिकता है वह जलीय इत्यादि और भी जानना चाहिये ।

द्रव्य को अनेक रसत्व ।

तस्माद्नैकरसं द्रव्यं भूतसंघातसंभवात् ।
नैकदोषास्ततो रोगास्तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः॥
अव्यक्तोऽनुरसः किंचिद्दंते व्यक्तोऽपि चेष्यते।

अर्थ– पंचभूत के संयोग से द्रव्यों की उत्पत्ति होती है, ये द्रव्य एकरस-विशिष्ट नहीं होते हैं किन्तु अनेक रसों से युक्त होते हैं । यहां भी अधिकता के अनुसार कोई मधुर, कोई अम्ल, कोई लवण, कोई कटु और कषाय होते हैं । जिस द्रव्य में जो रस जिव्हा द्वारा स्पष्ट रूप से मालूम होता है वह द्रव्य उसी रस से युक्त कहलाता है और जो रस रसनेन्द्रिय द्वारा स्पष्ट रूप से मालूम नहीं होता है उसे अनुरस कहते हैं तथा जो रस व्यक्त रसास्वादन के थोडी देर पीछे मालूम होता है उसे भी अनुरस कहते हैं क्योंकि सब द्रव्य एकरसविशिष्ट नहीं है इसलिये सब रोग भी एक दोष विशिष्ट नहीं होते। जिस हेतु से मधुरादि रसों के कारण बातादि दोष कुपित होते हैं । सुतरां सम्पूर्ण रोग त्रिदोष के कोप में अनुभव होते हैं तब जिस रोग में जिस दोष की अधिकता होती है वह रोग उसी दोष के नाम से कहलाता है ।

रसोंमें गुर्वादि गुण ।

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये ॥
रसेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः ।

अर्थ–पृथिव्यादि पंचभूतात्मक द्रव्य रसाश्रय है. इन मधुरादि रसों में साहचर्य से गुर्वादि गुण भी है । जैसे जिस द्रव्यमें मधुर रस है, उसी में गुरु गुण भी है, जो द्रव्य अम्ल है उस में लघु गुण है ।

पार्थिव द्रव्य के गुण ।

तत्र द्रव्यं गुरु स्थूलं स्थिरगंधगुणोल्बणम् ॥
पार्थिवं गौरवस्थैर्य संघातोपचयावहम् ।

अर्थ- पंचभूतात्मक द्रव्यों में गुरु, स्थूल, कठिन और गंधगुणबहुल हैं, इनके द्वारादेह में गुरुता, स्थिरता, निविडता और पुष्टि संपादन होती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जलीय द्रव्य के गुण ।

द्रवशीतगुरुस्निग्धमंदसांद्ररसोल्बणम् ॥६॥
आप्यं क्लेदनविष्यंदक्लेदप्रह्लादबंधकृत् ।

अर्थ-जलात्मक द्रव्य द्रव, शीतल, गुरु, स्निग्ध, मृदु, घन और रसगुण बहुल होते हैं, ये देहमें स्निग्धता, स्राव, क्लेद, आल्हाद और मलका विबंध करते हैं ।

आग्नेय द्रव्य ।

रूक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपगुणोल्बणम् ॥
आग्नेयं दाहभावर्णप्रकाशपचनात्मकम् ।

अर्थ—अग्नेय द्रव्य रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, विशद (सूक्ष्म स्रोतों में जाने वाले) और रूप गुण बहुल होतेहैं ये दाह, कान्ति वर्ण और पाककारक होते हैं ।

पवनात्मक द्रव्य ।

वायव्यं रूक्षविशदं लघुस्पर्शगुणोल्बणम् ।८।
रौक्ष्यलाघववैशद्यविचारग्लानिकारकम् ।

अर्थ—वायव्य द्रव्य रूक्ष, विशद, लघु, और स्पर्शगुणबहुल होते हैं, ये रूक्षता लाघव, निर्मलता और ग्लानि उत्पन्न करते हैं ।

आकाशात्मक द्रव्य ।

नाभसं सूक्ष्मविशदलघुशब्दगुणोल्बणम् ।९।
सौषिर्यलाघवकरं
जगत्येवमनौषधम् ।
न किंचिद्विद्यते द्रव्यं यदशास्त्रानार्थयोगयोः।१०

अर्थ—आकाशीय द्रव्य सूक्ष्म, विशद, लघु और शब्दगुणबहुल होते हैं ये पिंडाकार वस्तु को सछिद्र करनेवाले और लाघवता करनेवाले हैं । अतएव अनेक प्रकार के प्रयोजन और अनेक प्रकार की युक्तियों द्वारा जगत में ऐसा कोई द्रव्य दिखाई नहीं देता है जो औषधका काम न देता हो अर्थात् द्रव्यमात्र औषध का काम देते हैं ।

द्रव्यों का अधोर्ध्वगामित्व ।

द्रव्यमूर्ध्वगमं तत्र प्रायोऽग्निपवनोत्कटम् ।
अधोगामि च भूयिष्ठं भूमितोयगुणाधिकम्
इति द्रव्यं रसान्भेदैरुत्तरत्रोपदेक्ष्यते ।

अर्थ-जिन द्रव्यों में अग्नि और वायुका भाग अधिक होता है वे प्रायः ऊर्ध्वगामी होते है । जिन में पृथ्वी और जलका भाग अधिक होता है वे प्रायः अधोगामी होते हैं यहां तक द्रव्य के विषय में जो कुछ कहना था कहा गया है अब रसों के तिरेसठ भेदों का वर्णन करेंगे ।

वीर्य्य की प्रबलता ।

वीर्यं पुनर्वदंत्येके गुरुस्निग्धहिमं मृदु ।१२।
लघुरूक्षोष्णतीक्ष्णं च तदेवं मतमष्टधा ।

अर्थ—किसी किसी आचार्य के मतमें द्रव्याश्रित गुरु, स्निग्ध, हिम, मृदु, लघु, उष्ण, रूक्ष, और तीक्ष्ण इन गुणोंको ही वीर्य कहते हैं, इस लिये उन के मतानुसार वीर्य आठ प्रकार का होता है ।

चरकाचार्यका मत ।

चरकस्त्वाह वीर्यं तद्येन या क्रियते क्रिया ॥
नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्यकृता हि सा।

अर्थ=वीर्यके संबंधमें महर्षि चरकाचार्य भी कहते हैं कि जिसद्रव्यके जिसस्वभावसे कोई क्रिया करने में आती है उस स्वभावका नाम ही वीर्य है द्रव्यसे जो कर्म होता है उसी कर्मको वीर्यकृत समझना चाहिये । वीर्यहीन द्रव्य कोई कर्म नहीं करसक्ते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुर्वादिकोंमेंवीर्यकाप्रतिपादन।

गुर्वादिष्वेव वीर्याख्या तेनान्वर्थेति वर्ण्यते ॥
समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्षविवर्तिषु ।
व्यवहाराय मुख्यत्वाद्द्रव्यग्रहणादपि ॥१५॥

अर्थ–अन्य आचार्यों का भी यही मत है कि इन्हीं गुर्वादिक आठ गुणोंको ही वीर्यकहना चाहिये **कारण** यहहै कि संपूर्ण गुणोंमें ये आठ गुणही सारभूत औरअधिक शक्तिशाली होते हैं तथा व्यवहारमें भी ये ही मुख्य और अग्रगण्य हैं इसी हेतुसे इन आठ गुणोंका ही नाम वीर्य है।

रसादिमें अवीर्यत्व।

अतश्च विपरीतत्वात्संभवत्यपि नैव सा।
विलक्ष्यते रसाद्येषु वीर्यं गुर्वादयोहतः ।१६।

अर्थ–पूर्वोक्त कारणोंसे विपरीत होने पर रसादिमें वीर्य संज्ञा नहीं होसक्ती है जैसे रसमें सारत्व नहीं है क्योंकि जठराग्नि के संयोगसे अन्यरसकी उत्पत्ति होजाती है परन्तु गुर्वादि गें जठराग्नि के संयोगसे कुछ अंतर नहीं पडता है यों के त्यों बने रहते हैं इसहेतु से रसादिक में वीर्य संज्ञा नहीं है।

अन्य आचार्यों का मत।

उष्णं शीतं द्विधैवाऽन्ये वीर्यमाचक्षतेऽपि च

अर्थ–अन्य आचार्य वीर्यको शीत और उष्ण दो ही प्रकार का मानते हैं और इस का युक्ति सहित कारण बताते हैं।

सयुक्ति कारण।

नानात्मकमपि द्रव्यमग्नीषोमौ महाबलौ १७
व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामति जातुचित्

अर्थ–जैसे स्थूल वा सूक्ष्म कोई पदार्थ जगतका उल्लंघन नहीं करसक्ता है इसी तरह संपूर्ण द्रव्य नानात्मक होनेपरभी महाबलवान अग्नि और सोम इनदो गुणों का अतिक्रम नहीं करसक्ते हैं इसलिये कुछ द्रव्य उष्णवीर्य और कुछ शीतवीर्य होते हैं, जैसे दूधके साथ मछली नहीं खाना चाहिये। ये दोनों मधुर हैं और इनका पाकभी मधुर है परन्तु एक उष्णवीर्य है और दूसरा शीतवीर्यहै इस विरुद्धता के कारण रक्तको दूषित करतेहैं।

उभयवीर्य के गुण।

तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेदवाहाशुपाकिताः।
शमं च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः।
ह्लादस्तंभजीवनसंधानप्रसादरक्तपित्तयोः१९

अर्थ–इनमेंसे उष्णवीर्य भ्रम, पिपासा, ग्लानि, पसीना, दाह, शीघ्रपाक तथा वात और कफकी शान्ति करते हैं तथा शीतवीर्य आल्हाद, बल, रक्तादिकी गतिका अवरोध, रक्तपित्तकी विशुद्धता संपादन करते है!

विपाक का लक्षण।

आहारेणाऽग्निना योगाद्यदेति रसांतरम्।
रसानां परिणामांते स विपाक इति स्मृतः॥

अर्थ जठराग्निके संयोग से मधुरादि रसों का परिपाक होकर परिणाम में जो रसान्तर उत्पन्न होता है उसे विपाक कहते हैं।

रसों का विपाक।

स्वादुः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः
तिक्तोषणकषायाणां विपाकः प्रायशःकटुः२१

अर्थ–मधुर और लवण रसका विपाक मधुर होता है, अम्लका विपाक अम्ल, तथा तीक्ष्ण, कटु और कषाय रसोंका विपाक प्रायःकटु होता है प्रायःशब्दसे जाना जाता है कि कहीं कहीं विपरीत भी होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसे व्रीहि मधुररसयुक्त है पर इसका विपाक अम्ल है हरीतकी कषायरस युक्त होतीहै पर इसका विपाक मधुर है।सोंठ अदरख पीपल कटुरसयुक्त होनेपरभी मधुरपाकी है।

भिन्न २ विपाकों के कर्म।

रसैरसौ तुल्यफलस्तव द्रव्यं शुभाशुभम्।
किंचिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन वाऽपरम्॥२२
गुणांतरेण वीर्येण प्रभावेणैव किंचन।

अर्थ–जिह्वा से जानने योग्य मधुराम्ल कटुकादि स्वाभाविक रस जो कार्य करते हैं वही कार्य विपाकजनित वेही रस करते हैं जैसे मधुररसयुक्त शर्करा का मधुररस वायुनाशक होता है तैसेही कटुरसयुक्त पीपल का विपाक से उत्पन्न हुआ मधुररसभी वातनाशक है अतएव द्रव्य के स्वाभाविक मधुरादि रस विपाकजनित मधुरादि रसोंके साथ समानफलवाले होते है अब कितने ही द्रव्य रसद्वारा कितने ही विपाक द्वारा, कितने ही वीर्यद्वारा, कितने ही प्रभावद्वारा शुभ वा अशुभ कर्म करते हैं जैसे मधुर कषाय रसयुक्त होने के कारण पित्तका शमन करता है वही मधुरकटुविपाकी होने से कफको नष्ट करता है खट्टी कांजी रूक्षता से कफको दूर करती है, इत्यादि।

यद्यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्तते ॥२३॥
अभिभूयेतरांस्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते।
विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाऽल्पं हि जीयते॥

अर्थ–रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव इनमें से जो जो जिस जिस द्रव्यमें स्थितरहता है वह अन्य दुर्बल रसादिकों का पराभव करके अपने अनुसार कार्य करनेमें प्रबलहो जाता है। और जहां परस्पर विरुद्ध गुणवाले द्रव्योंका संयोग होजाता है वहां बलवान गुणवाला द्रव्य अल्पगुणवाले द्रव्यका पराभव कर देता है अर्थात् प्रबल अपने अनुसार काम करता है।

रसादिमें उत्कर्षता।

रस विपाकस्तो वीर्यं प्रभावस्तान्व्यपोहति।
बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम्॥२५

अर्थ–यदि रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव इनका बल समान हो तो (१) विपाक, रसको काम करनेमें कुंठित करदेताहै जैसे मधुका कटु विपाक उसके मधुर रसको पराभव करदेताहै इसलिये मधुरहेतुवाले वातनाशक कार्यको न करके कटुविपाक हेतु वाले वातप्रकोपन कर्मको करताहै। (२) वीर्य, रस और विपाक दोनोंको जीत लेताहै, जैसे भैंसका मांस उष्णवीर्य होनेसे उसके मधुररस और विपाक को जीत लेताहै और इसलिये पित्तको दूषित करदेताहै। (३) प्रभाव, रस, विपाक और वीर्य तीनों को जीत लेताहै जैसे अम्लरस विपाक और उष्णवीर्यवाली सुरा क्षीरको उत्पन्न करतीहै। यही रसादिका स्वाभाविक बलहै।

प्रभावका लक्षण।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम्।

अर्थ– रसादि की समता होनेपर भी जो भिन्न प्रकारका कर्म दिखाई देताहै वह प्रभावजनित होताहै। रसवीर्य और विपाक की अपेक्षा अतिशक्ति विशिष्ट जो द्रव्यका स्वभावहै उसीको प्रभाव कहते हैं।

प्रभावका निदर्शन।

दंती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी॥
मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– चीतेके रसवीर्य और विपाक के तुल्य होनेपर भी दंती विरेचनी होती है। इसीतरह महुआके रसादि के तुल्य होनेपर भी मुनक्का विरेचनी है किन्तु प्रभावके कारण चीता और महुआ विरेचक नहीं है। दूधके रसादिके तुल्य होनेपर भी घृत अग्निसंदीपनहै, परन्तु दूध अग्निसंदीपन नहींहै।

ग्रंथकारका वचन।

इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां चुलश्च तत् विचित्रप्रत्ययारब्धद्रव्यभेदेन भिद्यते।

अर्थ–इसतरह द्रव्यरस वीर्यादिकों का क्रम सामान्य रीतिसे वर्णन किया गयाहै। अब फिर अनेक प्रकारके विचित्र कारणों से उत्पन्न द्रव्यभेद में जैसा कर्मभेद होताहै, उसका वर्णन किया जायगा।

स्वादुर्गुरुश्च गोधूमो वातजिद्वातहृद्यवः२८
उष्णा मत्स्याःपयःशीतं कटुःसिंहो न शूकरः।
तस्माद्रसोपदेशेन न सर्वं द्रव्यमादिशेत्।२९।

अर्थ– ग्रन्थकार इस जगह कारणानुरूप कार्य और विचित्र कारणोत्पन्न द्रव्यभेदमें कर्मभेद का दृष्टान्त देकर कहते हैं कि मधुर रस और गुरु गुण ये दोनोंही वातनाशक हैं। गेंहू मधुररस और गुरुगुण युक्त होनेसे वातनाशकहै, इसलिये गेंहूका वातनाशक कर्म कारणानुरूपहै। किन्तु जौ में भी दोनों हीं मधुररस और गुरुगुणहैं परन्तु यह वातनाशक नहीं किन्तु वातवर्द्धकहै, इसलिये जौका कार्यभेद विचित्र कारणोत्पन्न द्रव्यभेद में ही है। अर्थात् जौ अनिर्वचनीय कारण में उत्पन्न हुआ है यह मधुररस और गुरु गुण युक्त होनेपर भी वातनाशक नहीं है किन्तु वातवर्द्धकहै। इसीतरह मछली और दूध दोनोंहीं मधुररस युक्तहैं इसलिये दोनोंहीं शीतवीर्य होने चाहिये परन्तु मछली उष्णवीर्य और दूध शीतवीर्य है। इसीतरह सिंह और शूकर दोनोंहीं मधुर रसयुक्त होनेके कारण दोनोंहीं मधुरविपाकी होने चाहिये परन्तु सिंह कटुविपाकी है और शूकरमधुर विपाकी है। इसलिये रससंबंधी जिन जिन बातोंका वर्णन किया गयाहै उसीके अनुसार संपूर्ण द्रव्योंका निर्देश करै। जिस जगह कारणानुरूप कार्य होताहै वहीं प्रयोग करना चाहिये, और जगह नहीं करना चाहिये॥

इति श्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां
नवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशमोऽध्यायः।

अथाऽतो रसभेदीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ– अब हम यहांसे रसभेदीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

रसादिका उत्पत्ति।

क्ष्मांभोऽग्निक्ष्मांऽबुतेजः खवाय्वग्न्यनिलगोऽनिलैः।
द्वयोल्बणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः॥१॥

अर्थ– पृथिव्यादि पंचमहाभूतों में से दो दो की अधिकता होनेसे क्रमपूर्वक मधुरादि छः रसोंकी उत्पत्ति होतीहै। जैसे भूमि और जलकी अधिकतासे मधुर, पृथ्वी और अग्निकी अधिकतासे अम्ल, जल और अग्नि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की अधिकतासे लवण, आकाश और वायु की अधिकतासे कटु, अग्नि और वायुकी अधिकतासे तिक्त, तथा भूमि और वायुकी अधिकतासे कषायरस उत्पन्न होताहै।

छःरसोंके गुण।

तेषां विद्याद्रसं स्वादुं यो वक्त्रमनुलिंपति।
आस्वाद्यमानो देहस्य ह्लादनोऽक्षप्रसादनः॥
प्रियःपिपीलिकादीनाम्
अम्लः क्षालयते मुखम्।
हर्षणो रोमदंतानामक्षिभ्रुवनिकोचनः॥३॥
लवणःस्यंदयत्यास्यं कपोलगलदाहकृत्।
तिक्तो विशदयत्यास्यं रसनं प्रतिहंति च॥४॥
उद्वेजयति जिह्वाग्रं कुर्वंश्चिमिचिमां कटुः।
स्रावयत्यक्षिनासास्यं कपोलौ दहतीव च॥
कषायो जडयेज्जिह्वां कंठस्रोतोविबंधकृत्।

अर्थ– इन छः रसोंमेंसे जिस रसका स्वाद लेनेसे मुखमें चिकनाहट, देहमें आल्हादकता, इन्द्रियों में प्रसन्नता होती है उसे **मधुररस** कहतेहैं यह रस चींटियों को अधिक प्रिय होताहै।

अम्लरस को जिह्वापर रखनेसे मुखमें पानी भर आताहै, रोमांच खडे हो जातेहैं, दांतोंमें खटाई आजाती है। आंख और भृकुटी संकुचित होजाती है।

लवणरस मुखमें स्राव तथा कपोल और कंठमें दाह करताहै। अन्नमें रुचिबढाताहै यह गुण प्रसिद्ध है इसलिये उसका यहां उल्लेख नहीं है।

तिक्तरस (तीखा वा चरपरा) मुखमें विशदता करता है और रसनेन्द्रिय को नष्टकरदेता अर्थात् उसमें दूसरे रसके ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती है।

कटुरस जिह्वा के अग्रभाग में अग्नि की ज्वालासी लगा देता है, सुखमें झलझलाहट होकर आंख नाक और मुखसे पानी टपकने लगताहै, कपोल जलने लगतेहै।

कषायरस (कसेला) जिह्वा में जड़ता करता है अर्थात् अन्य रसों का स्वाद लेनेमें जिह्वा शक्तिहीन होजाती है। कण्ठके सोतों में विरुद्धता होता है।

मधुरस के कर्म।

रसानामिति रूपाणि कर्माणि
मधुरो रसः॥६॥
आजन्मसात्म्यात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्।
बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेंद्रियौजसाम्॥७॥
प्रशस्तो बृंहणः कंठ्यःस्तन्यसंधानकृद्गुरुः।
आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविषापहः॥८॥
कुरुते ऽन्युपयोगेन स्थौल्याग्निसादसंन्यासमेहगंडार्बुदादिकान्।

अर्थ इस तरह मधुरादि छः रसोंके लक्षण संक्षेपसे कहे गये हैं, अब विशेष रूपसे उनके लक्षण कहते हैं।

मधुररस– धातुओंके बलको बढाता है क्योंकि वह जन्मकाल हीसे देह के सात्म्य होता है, जैसे बालकपन हीसे मधुररस युक्त दुग्धादि के सेवन से शरीरस्थ रस रक्तादि धातुओंमें बल बढतारहताहै, यह रस बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, व्यक्तिओं का बल बढाताहै, वर्ण, केश, इन्द्रियगण और ओज की वृद्धिमें अति प्रशस्तहै। यह पुष्टिकर्ता, कण्ठ को हितकारी, स्तनों में दुग्ध बढाने वाला, टूटी अस्थिको जोड़नेवाला, भारी, आयुवर्द्धक, जीवन, स्निग्ध तथा पित्त, वायु और विषकानाशकहै इस मधुररस का अत्यन्त सेवन मद रोग तथा कफज रोगको करताहै, तथा स्थूलता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अग्निमांद्य, सन्यास, प्रमेह, गंड, अर्बुद आदि रोगों को करता है ।

अम्लरस के गुण ।

अम्लोऽग्निदीप्तिकृत्स्निग्धो हृद्यः पाचनरोचनः
उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः प्रीणनो भेदनो लघुः१०
करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनम् ।
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोःकुर्याच्छैथिल्यंतिमिरंभ्रमम्
कंडुपांडुत्वविसर्पशोफविस्फोटतृड्ज्वरान् ।

अर्थ–अम्लरस अग्नि संदीपन, स्निग्ध, हृदय को हितकारी, पाचन, रोचन, उष्णवीर्य्य, स्पर्श में शीतल, प्रीणनकर्त्ता, भेदी और हलका है । कफ और रक्त पित्त को करता है । और कुपथगामी वातको अपने मार्ग पर लेआता है । इसका अधिक सेवन देह में शिथिलता, तिमिररोग, भ्रम, कंडू पांडुरोग, विसर्प, सूजन, विस्फोटक, तृष्णा और ज्वर इनको उत्पन्न करता है ।

लवणरस का गुण ।

लवणः स्तंभसंघातक्लेदाविष्यन्दनोऽग्निकृत् १२
स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेदभेदकृत् ।
सोऽतियुक्तोऽस्रपवनं खलतिं पलितं वलिम्
तृट्कुष्ठविषवीसर्पान् जनयेत्क्षपयेद्बलम् ।

अर्थ–लवणरस खाये हुए द्रव्यमें स्तब्धता, संघात, मलादि की प्रबलता को नष्ट करता है, यह अग्निसंदीपन, स्नेहजनक, पसीना लानेवाला, तीक्ष्ण, रोचक, ग्रन्थि आदि का छेदन करनेवाला और भेदक है । इसके अत्यन्त सेवन करने से वातरक्त, खल्लित (बालोंका गिरना) पलित (कुसमय बालोंका सफेद होना) वलि (देहकी त्वचामें झुर्री पड़जाना) तृषा कोढ़, विषरोग, विसर्प, इन रोगोंको उत्पन्न करता है तथा बलको क्षीण करता है ।

तिक्तरस के गुण ।

तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम् ।
कुष्ठमूर्च्छाज्वरक्लेशदाहपित्तकफान् जयेत्
क्लेदमेदोवसामज्जशुक्लमूत्रशोषशोषणः ॥ १५ ॥
लघुर्मेध्यो हिमो रूक्षः स्तन्यकंठविशोधनः ।
धातुक्षयाऽनिलव्याधीन्प्रकुपितयोगात्करोति सः

अर्थ–तिक्तरस स्वयं अरोचनशील है । परन्तु अरुचि को दूर करता है । यह कृमि तृष्णा, विष, कुष्ठ, मूर्च्छा, ज्वर, उत्क्लेश (जी मचलाना) दाह, पित्त और कफको दूर करता है । यह क्लेदता, मेद, वसा, मज्जा, मल और मूत्र का शोषक है । तथा यह लघु, मेधोपादक, हिम, रूक्ष, दूध का शोधन करनेवाला कंठको शुद्ध करनेवालाहै । इसका अत्यन्त सेवन करने से धातुक्षय और वात व्याधियां उत्पन्न होती है ।

कटुरस के गुण ।

कटुर्गलामयोदर्दकुष्ठालस्यकशोफजित् ।
व्रणावसादनस्नेहमेदःक्लेदोपशोषणः ॥ १७ ॥
दीपनः पाचनो रुच्यःशोधनोऽन्नस्य शोषणः ।
छिनत्ति बंधान् स्रोतांसि विवृणोति कफापहः
कुरुते सोऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम् १९
मूर्च्छामाकुंचनं कंपं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् १

अर्थ–कटुरस कण्ठरोग, उदर्द, कुष्ठ, आलसक और शोफको दूर करता है । घाव को भरताहै । स्नेह, मेद और क्लेदको सुखा देताहै । यह अग्निसंदीपन, पाचन, रुचिकर्ता, शोधक और अन्न का शोषणकर्ता है यह मलकी विबद्धता को दूर करता है । स्रोतों को खोलता है और कफनाशक है । इसका अत्यन्त सेवन करनेसे तृषा, बलक्षय, मूर्छा अंगसंकोच, कंपन, कमर और पीठमें दर्द उत्पन्न होताहै ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कषाय रसके गुण।

कषायः पित्तकफहा गुरुरक्तविशोधनः।
पीडनो रोपणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः२०
आमसंस्तंभनो ग्राही रूक्षोऽतित्वक्प्रसादनः
करोति शीलितः सोऽतिविष्टंभाध्मानहृद्रुजः।
वृद्धकार्श्यवैरुक्षस्रोतोरोधमलग्रहान्।,,

अर्थ–कषायरस पित्तकफनाशक, भारी रक्तशोधक, पीडक, (पीडापहुंचाने वाला) रोपणकर्ता, शीतल, क्लेद, और मेदका शोषणकर्ता, आमसंस्तंभक (आमको बाहर निकलने नहीं देता है), संग्राही, रूक्ष और त्वचाको अत्यन्त सुन्दर करने वाला है, । इसका अत्यन्त सेवन, करने से विष्टंभ, अफरा, हृद्रोग, तृषा, कृशता, पुंस्त्वकानाश, स्रोतोंका अवरोध, और मलकी रुकावट में रोग उत्पन्न होते हैं।

मधुरवर्ग के द्रव्यों के नाम

घृतहेमगुडाक्षोडमोचचोचपरूषकम्। २२।
अमीरुवीरावनस्पतिराजादनबलाबलम्।
मेदे चतस्रः पर्णिन्यो जीवंतीजीवकर्षभौ।२३।
मधूकं मधुकं विंवी विदारी श्रावणीयुगम्।
क्षीरशुक्ला तुगाक्षीरी क्षीरिण्यौ काश्मरीसहे
क्षीरेक्षुगोक्षुरक्षौद्रद्राक्षादिर्मधुरो गणः।

अर्थ–घृत, सुवर्ण, गुड, अखरोट, केला तालफल, फालसा, शतमूली, क्षीरकाकोली, पनस, खिरनी, वला, अतिवला, नागबला, मेदा, महामेदा, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवक, ऋषभक, महुआ, मुलहटी विंवी, विदारीकंद, श्रावणी, महाश्रावणी, क्षीरशुक्ला, वंशलोचन, क्षीरिणी, महाक्षीरिणी, खैभारी, महासहा, क्षुद्रसहा, दूध, ईख, गोखरू, शहत, दाख ये सब मधुर वर्ग हैं तथा इनसे आदि लेकर और भी जैसे तृण पंचमूल, मेदा, मज्जा, तैल, मीठाअनार, पुष्करबीज, सिंघाड़ा, असगंध, श्वदंष्ट्र, मृणाल, कसेरू, खिजूर आदि भी मधुरस्कंध में परिगणनीय हैं।

अम्लवर्ग के द्रव्य

अम्लो धात्रीफलाम्लीकामातुलुंगाम्लवेतसम्
दाडिमं रजतं तक्रं चुक्रं पालेवतं दधि।
आम्रमाम्रातकं भव्यं कपित्थं करमर्दकम्९६

अर्थ–आंवला, इमली, विजौरा, अम्लवेत, अनार चांदी, तक्र, चूका, पालेवत, दही, आम, अंबाडा, भव्य, कैथ, करौंदा ये सब अम्लवर्गके द्रव्य हैं इनके सिवाय, कोशाम्र, लकुच, कुवल, झाडीबेर, बडाबेर, दही का तोड़, धान्याम्ल, आदि संग्रहोक्त द्रव्य भी इसी वर्ग में हैं।

लवण वर्ग के नाम।

वरसौवर्चलं कृष्णं विडं सामुद्रमौद्भिदम्।
रोमकं पांसुजं शीसं क्षारश्च लवणो गणः२७

अर्थ–सेंधानमक, संचलनमक, कालानमक, विडनमक, सामुद्रनमक, औद्भिदनमक काचनमक, खारीनमक, सीसेकानमक, तथा जवाखारादि ये सब लवण वर्गके द्रव्य हैं।

तिक्त वर्ग के नाम।

तिक्तः पटोली त्रायंती बालकोशीरचंदनम्।
भूनिंबनिंबकटुकातगरागुरुवत्सकम् ॥२८॥
नक्तमालाद्विरजनीमुस्तमूर्वाटरूषकम्।
पाठादामार्गकांस्यायोगुडूचीधन्वयासकम्२९
पंचमूलं महद्व्याघ्रो विशालाऽतिविषा वचा।

अर्थ–पटोलपत्र, त्रायंती (त्रायमाणा,) वाला, उशीर, चन्दन, भूनिंब, नीम, कुटकी तगर, अगर, इन्द्रजौ, कंजा, हलदी, दारु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हलदी, मोथा, मरोड़फली, अडूसा, पाठा, ओंगा, कांसा, लोहा, गिलोय, दुरालभा, महापंचमूल, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, विशाला, अतीस और वच ये तिक्त वर्ग के द्रव्य हैं ।

कटु वर्ग के नाम ।

कटुको हिंगुमरिचकृमिजित्पंचकोलकम् ।३०।
कुठरात्रा हरीतकाः पित्तं मूत्रमरुष्करम् ।

अर्थ--हींग, मिरच, बायविडंग, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चीता, चव्य और सोंठ,) कुठेरादि, हरड़, बकरे का पित्त और मूत्र, भिलावा ये सब तिक्तवर्ग के द्रव्य हैं इन के सिवाय मनसिल, सरसों, कूठ आदि भी इसी गण में हैं ।

कषाय वर्ग के नाम ।

वर्गः कषायः पथ्याक्षं शिरीषः खदिरो मधु ॥
कदम्बोदुम्बरं मुक्ताप्रवालाञ्जनगैरिकम् ३२।
यालं कथित्थं खर्जूरं बिसपद्मोत्पलादि च ।

अर्थ--हरड़, बहेड़ा, सिरस, खैर, मधु, कदंब, गूलर, मोती, मूंगा, अंजन, गेरु, कच्चा कैथ, खिजूर, कमलनाल, पद्म, उत्पल तथा आदि शब्द से प्रियंगु, लोध, आदि ये कषाय वर्ग के द्रव्य हैं ।

मधुर द्रव्यों के गुण ।

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णंच्छालियवादृते ॥
मुद्गाद्गोधूमतःक्षौद्रात्तिताया जांगलामिषात्

अर्थ--मधुर द्रव्य प्रायः कफकारक होते हैं परन्तु पुराने चांवल, पुराने जौ, मूंग, गेंहूं, शहत, शर्करा, जांगल जीवों का मांस ये द्रव्य मधुर होने पर भी कफकारक नही होते हैं ।

अम्ल और लवण वर्ग ।

प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ।
अपथ्यं लवणं प्रायश्चक्षुषोऽन्यत्र सैंधवात् ॥

अर्थ--अनार और आमले को छोडकर शेष सब खट्टे पदार्थ प्रायः पित्तकारक होते है अर्थात् अनार और आमले तो खट्टे होने पर भी पित्तकारक नहीं होते । नमक वर्ग के सब द्रव्य प्रायः नेत्रों को अहित होते हैं पर सेंधा नमक अहित नहीं होता ।

तिक्त कटु वर्ग ।

तिक्तं कटु च भूयिष्ठमवृष्यं वातकोपनम् ।
ऋतेऽमृतापटोलीभ्यां शुंठीकृष्णारसोनतः ॥

अर्थ--तिक्त द्रव्यों में गिलोय और पटोल को छोड़कर सब प्रकार के तिक्त द्रव्य, और कटु द्रव्यों में सोंठ, पीपल और लहसनको छोड़कर बाकी सब पदार्थ अत्यन्त अवृष्य । और वात को प्रकुपित करने वाले होते हैं।

कषाय वर्ग के गुण ।

कषायं प्रायशःशीतं स्तंभनं चाऽभयामृते ।

अर्थ--हरीतकी के सिवाय सब कषाय पदार्थ प्रायः शीतवीर्य और मलस्तंभन होते है

रसोंमें शीतोष्णवीर्यता ।

रसाःकटुाम्ललवणा वीर्येणोष्णा यथोत्तरम्॥
तिक्तःकषायो मधुरस्तद्वदेव च शीतलः

अर्थ--कटु अम्ल और लवणरस उत्तरोत्तर उष्णवीर्य हैं अर्थात् कटुसे अम्ल और अम्ल से लवण उष्णवीर्य हैं । इसीतरह तिक्त, कषाय और मधुर प्रायः उत्तरोत्तर शीतवीर्य है

रसों की रूक्षता ।

तिक्तःकटुःकषायश्च रूक्षा बद्धमलास्तथा ॥

अर्थ--तिक्त, कटु और कषायरस प्रायःरूक्ष और मलको बांधनेवाले होते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसकी स्निग्धता।

षड्वम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविण्मूत्रमारुताः

अर्थ–लवण, अम्ल और मधुर प्रायः स्निग्ध और मलमूत्र और वायुको निकालनेवाले होतेहैं

रसका भारीपन।

पटोःकषायस्तस्माच्च मधुरःपरमं गुरुः॥

अर्थ लवणरस से कषाय और कषायसे मधुररस भारी होता है।

रसका हलकापन।

लघुरम्लः कटुस्तस्मात्तस्मादपि च तिक्तकः।

अर्थ–अम्लरससे कटु और कटुसे तिक्त हलका होता है।

रसका संयोग।

संयोगाःसप्तपंचाशत्कल्पना तु त्रिषष्टिधा॥
रसानां यौगिकत्वेन यथास्थूलं विभज्यते।

अर्थ- रसोंके आपसके संयोगसे सत्तावन भेद होते हैं इनकी कल्पना तिरेसठ होती है रस और अनुरसके संयोगसे रसके अनंत भेद होजाते हैं। परन्तु महा स्थूल अर्थात् व्यक्तरसोंके अनुसार कल्पना की गई है।

रससंयोग के भेद।

एकैकहीनांस्तान्पंच पंच याति रसा द्विके॥
त्रिकेस्वादुर्दशाम्लः षट्त्रीन्पटुस्तिक्तएककम्
चतुष्केषुदशस्वादुश्चतुरोऽम्लःपटुःसकृत्॥
पंचकेष्वेकमेवाम्लो मधुरः पंच सेवते।
द्रव्यमेकं षडास्वादमसंयुक्ताश्च षड्रसाः ४२

अर्थ--रसोंके भेद इसप्रकार हैं,यथाः- मधुरअम्ल,मधुरलवण, मधुरतिक्त, मधुरकटु, और मधुरकषाय इसतरह मधुरके संयोगसे पांच प्रकार होते हैं। फिर मधुररसको छोडकर अम्लरसके संयोगसे चारप्रकार होते हैं जैसे अम्लळवण, अम्लतिक्त, अम्लकटु, और अम्लकषाय। फिर अम्लको भी छोड देनेसे लवणरसके संयोगसे तीन जैसे लवणतिक्त, लवणकटु,लवणकषाय,फिर लवणकोभी छोड देने से दो जैसे तिक्तकटु और तिक्तकषाय फिरतिक्त को भी छोड देनेसे एक कटुकषाय होता है इसतरह दो दो के संयोग से रसों के पन्द्रह प्रकार होते हैं।

तीन तीन रसोंके संयोगमें मधुररसके संयोग से दसभेद जैसे मधुराम्ललवण, मधुराम्लतिक्त, मधुरम्लकटु, मधुराम्लकषाय, मधुरलवणातिक्त मधुरलवणकटु, मधुरलवणकषाय, मधुरतिक्त कटु मधुरतिक्तकषाय और मधुर कटुकषाय।

अम्लरस के संयोग से छः भेद होते हैं जैसे, अम्ललवणतिक्त, अम्ललवणकटु अम्ललवणकषाय, अम्लतिक्तकटु, अम्लतिक्तकषाय और अम्लकटुकषाय। लवण रस के संयोग से तीन भेद होते हैं जैसे लवणतिक्तकटु, लवणतिक्तकषाय और लवणकटुकषाय।

तिक्तरस–के संयोग से तिक्त कटुकषाय एकही भेद होता है। इस तरह तीन तीन रसों के संयोगवाले बीस भेद होते हैं। चारचार द्रव्यों के संयोग में मधुर रसके संयोग से दस भेद होते हैं जैसे मधुरअम्ललवण तिक्त, मधुराम्ललवणकटु, मधुराम्ललवणकषाय, मधुराम्लतिक्तकटु, मधुराम्लकटुकषाय, मधुर लवण तिक्तकटु, मधुर लवणतिक्तकषाय, मधुरलवणकटुकषाय, और मधुरतिक्तकटुकषाय।

मधुरको छोडकर अम्लके संयोग से चार भेद होते हैं जैसे अम्ललवणतिक्तकटु,अम्ल-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लवणतिक्तकषाय, अम्लतिक्तकटुकषाय । लवणरस के संयोग में एक होता जैसे लवणतिक्तकटुकषाय !

पांच पांच रसके मिलने से छः भेद होते हैं इसमें मधुर के संयोग से पांच होते हैं, यथा मधुर अम्ललवणतिक्त कटु, मधुर अम्ललवण तिक्त कषाय, मधुर अम्ललवण तिक्त कटु, कषाय ।

मधुर—को छोडकर अम्लके संयोग से एक जैसे अम्ललवण तिक्त कटुकषाय ।

छः रसके संयोग से एक मधुर अम्ललवणतिक्त कटुकषाय होता है । इस तरह कुल मिलाकर सत्तावन और जुदे जुदे छः रस इनसबका योग तिरेसठ होता है ।

तिरेसठ रस भेदों का विवरण ।

षट्पंचकाः षट् च पृथग्रसाः स्यु-
श्चतुर्द्विकौ पंचदशप्रकारौ ।
भेदास्त्रिका विंशतिरेकमेव-
द्रव्यं षडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ऊपर के भेदों का विवरण इस तरह है पांच पांच रसों के संयोगसे छः दोदो रस के संयोग से पन्द्रह भेद हैं । चार चार रस के संयोग से पन्द्रह भेद । तीनतीन रसके संयोग से बीस । छः रसों के संयोग से एक भेद होता है । इस तरह सब मिलकर तिरेसठ भेद होते हैं ।

रसकी सूक्ष्मकल्पना ।

ते रसाद्रसतो रसभेदा-
स्तारतम्यपरिकल्पनया च ।
संभवंति गणनां समतीता
दोषभेषजवशादुपयोज्याः ॥ ४४ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए रस के त्रेसठ भेदों की कल्पना केवल स्थूल भावमें वर्णन की गई है यदि इनकी कल्पना अनुरसों के तारतम्य से की जाय तो इन के इतने भेद होसकते हैं जो गिनती में भी नहीं आसकते । वातादि दोष और हरीतक्यादि औषध की विवेचना करके उक्त रस भेदों का प्रयोग करना उचित है ।

इति अष्टाङ्गहृदये भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो दोषादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहांसे दोषादिविज्ञानीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

वातादि दोषों के कर्म ।

" दोषधातुमलो मूलं सदा देहस्य तं चलः ।
उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टावेगप्रवर्तनैः १ ॥
सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवेन च ।
अनुगृह्णात्यविकृतः पित्तं पक्त्यूष्मदर्शनैः । २ ।
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः ।
श्लेष्मास्थिरत्वस्निग्धत्वसंधिबंधक्षमादिभिः

अर्थ—वातादि दोष, रसादि धातु, और मूत्र पुरीषादि मल, ये सब शरीर के मूलहैं अर्थात् जन्मसे मरण पर्य्यन्त अविकृत दोषादि देहको बनाये रखने के प्रधान हेतुहैं । अविकृत वायु, उत्साह, उच्छ्वास (श्वासको बाहर निकालना), निःश्वास (श्वास को भीतर खींचना), चेष्टा (मन, वाणी और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कायाका व्यापार), वेगप्रवर्तन (मलमूत्र अधोवायु आदि का शरीर से बाहर निकालना, धातुओं की सम्यक् गति, संपूर्ण इन्द्रियों की पटुता इन कर्मों को करता हुआ अविकृत वायु शरीर पर उपकार करता है इसीतरह अविकृत अर्थात् विनाविगडा हुआ पित्त परिपाक, ऊष्मा (शरीरोष्मा धातूष्मा, और जठराग्नि) पहुंचाना, दृष्टिशक्ति, क्षुधा, तृषा, रुचि, कांति, निश्चयात्मिका बुद्धि, ज्ञानात्मिका बुद्धि, पौरुष और देह में मृदुता इन कर्मों को करता हुआ शरीर पर उपकार करताहै। इसी तरह अविकृत कफ देह में स्थिरता, स्निग्धता संधिबन्धन और क्षमा उत्पन्न करके शरीर पर उपकार करते हैं।

धातुका कर्म।

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे। गर्भोत्पादश्च धातूनां श्रेष्ठं कर्मक्रमात्स्मृतम्

अर्थ–रसादि सात धातुओं के क्रमपूर्वक प्रीणनादि सातकर्म हैं। इनमें से भोजन करने से उत्पन्न हुआ रस इन्द्रियगणों में प्रविष्ट होकर उनको निर्मल करता हुआ मनमें प्रीणन अर्थात् तृप्ति करता है। रुधिर का कर्म जीवन अर्थात् प्राणधारण है। मांस का कर्म लेपन, बल और पुष्टि है। मेद का कर्म स्निग्धता अर्थात् तैल मर्दन की तरह देह में चिकनापन करना है अस्थिका कर्म देह धारण है। मज्जा का कर्म छिद्रों का पूरण करना और वीर्यका कर्म गर्भोत्पादन है। धातुओं के ये श्रेष्ठ क्रम से कहे गये हैं।

मलका कर्म

अवष्टंभः पुरीषस्य मूत्रस्य क्लेदवाहनम्। स्वेतस्य क्लेदविधृतिः।

अर्थ–पुरीष का कर्म देह को धारण करना, मूत्र का कर्म भीतर के छेद को बाहर निकालना और पसीनों का काम क्लेद धारण करना है क्योंकि जो शरीरमें क्लेद न रहे तो त्वचा सूखी और रूखी होजाती है केश और रोमों का धारण करना ये पसीनों का काम है।

वृद्धवायुका कर्म।

वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः। कार्श्यकार्ष्ण्योष्णकामित्वकंपाऽनाहशक्रुद्ग्रहान् बलनिद्रेंद्रियभ्रंशप्रलापभ्रमदीनताः॥ ६॥

अर्थ–वायु बढने पर शरीर को कृश करदेती है, देह का रंग काला करती है, गरम पदार्थों में रुचि बढाती है, कंपन, अफरा, मलकाअवरोध, बलका नाश, निद्रानाश, करती है, प्रलाप भ्रम और दीनता इनको भी उत्पन्न करती है।

वृद्ध पित्तका कर्म।

पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाऽल्पनिद्रताः पित्तम्

अर्थ–पित्त बढने पर मल, मूत्र, नेत्र और त्वचा को पीला करदेता है, क्षुधा, तृषा दाह और अल्पनिद्रा भी करता है।

वृद्ध कफकाकर्म।

श्लेष्माऽग्निसदनप्रसेकालस्यगौरवम्॥७॥ शैत्यशैत्यस्थांगत्वं श्वासकासातिनिद्रताः।

अर्थ–कफ बढने पर जठराग्नि को मंद प्रसेक (मुख से लार टपकना) आलस्य, भारापन, त्वचामें श्वेतता, शीतलता, शरीर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में शिथिलता, श्वास, खांसी और अधिक निद्रा इन विकारों को उत्पन्न करताहै।

बढेहुए रसरक्त का कार्य।

रसोऽपि श्लेष्मवद्रक्तं विसर्पप्लीहविद्रधीन्॥
कुष्ठवातास्रपित्तास्रगुल्मोपकुशकामलाः।
व्यंगाग्निनाशासंमोहरक्तत्वङ्नेत्रमूत्रता॥ ९॥

अर्थ–बढेहुए रस का कार्य कफके समान होता है अर्थात् अग्निमांद्यादिक करता है। तथा बढाहुआ रक्त विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कोढ़, बातरक्त, रक्तपित्त, गुल्म, उपकुश, (दन्तरोग) कामला, व्यंग, अग्निनाश, मूर्च्छा तथा त्वचा नेत्र और मूत्र में ललाई उत्पन्न करता है।

वृद्धमांस का कर्म।

मांसं गंडार्बुदग्रंथिगंडोरूदरवृद्धताः।
कंठादिष्वधिमांसं च

अर्थ–बढ़ा हुआ मांस गंडमाला, अर्बुद, और ग्रंथि (गांठ) रोगों को उत्पन्न करता है। गंडस्थल, उदर और ऊरू इन को बहुत बढाता है। तथा कंठ, तालू और जीभ आदि में मांस को बढाता है।

वृद्ध मेदका कर्म।

तद्वन्मेदस्तथा श्रमम्॥१०॥
अल्पेऽपि चेष्टिते श्वासं स्फिक्स्तनोदरलंबनम्

अर्थ-मेद बढने पर मांस की वृद्धि के समान ऊपर लिखे हुए गंडमालादिक रोगों को करता है। इसके अतिरिक्त थोडीसी महनत करने से भी थकावट और हांफनी आजाती है और कूल्हा, स्तन और उदर स्थूल होकर लटक पडते हैं।

वृद्ध अस्थिका कर्म।

अस्थ्यध्यस्थ्यधिदंतांश्च

अर्थ–अस्थि के बढने पर अध्यस्थि (हड्डी पर हड्डी) और अधिदंत (दांत पर दांत) इन रोगोंको करती है।

बढी हुई मज्जा का कर्म।

मज्जा नेत्रांगगौरवम्॥११॥
पर्वसु स्थूलमूलानि कुर्यात्कृच्छ्राण्यरूंषि च।

अर्थ–बढी हुई मज्जा नेत्र और अङ्ग को भारी कर देती है अंगुली के पोरुओंमें मोटी जड़वाली ऐसी फुंसियां करदेतीहै कि जिनके आराम होने की कोई आशा नहीं होती।

बढ़ेहुए वीर्य्य का कर्म।

अतिस्त्रीकामतां वृद्धं शुक्रं शुक्राश्मरीमपि॥

अर्थ–बढा हुआ वीर्य्य बहुतसी स्त्रियों के साथ भोगकी इच्छा उत्पन्न करता है तथा शुक्राश्मरी अर्थात् पथरी रोग को उत्पन्न करता है।

बढ़े हुए पुरीष का कर्म।

कुक्षावाध्मानमाटोपं गौरवं वेदनां शकृत्।

अर्थ–बढ़ाहुआ पुरीष दोनों कूखोंमें गड़गड़ाहट अर्थात् अंत्रकूजन करता है। तथा पेट में अफरा, शरीरमें भारापन और वेदना करता है।

बढ़े हुए मूत्र का कर्म।

मूत्रं तु बस्तिनिस्तोदं कृतेऽप्यकृतसंज्ञताम्।

अर्थ–बढ़ाहुआ मूत्र बस्ति (पेडू) में पीड़ा उत्पन्न करता है। मूत्र होने पर भी ऐसा भास होताहै कि मूत्र नहीं किया है।

बढे हुए पसीने।

स्वेदोऽतिस्वेददौर्गंध्यकंडूः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-बढे हुए पसीने पसीनों को अधिकता, दुर्गन्धि और खुजली पैदा करतेहैं।

अन्यमल।

एवं च लक्षयेत्।

दूषिकादीनपि मलान् बाहुल्यगुरुतादिभिः १४

अर्थ-इसी तरहसे आंख के मल को भी जानना चाहिये आदि शब्द से नाक कान आदि का भी मल होताहै इन की परीक्षा यही है कि मल बहुत निकलता है और उस स्थान में भारापन आजाता है आदि शब्द से खुजली क्लेदादि का भी ग्रहण है।

क्षीणवातादि के लक्षण।

रौक्ष्यंश्रीजेऽनिलेऽगस्यसादोऽल्पंभाषितेहितम्
संज्ञामोहस्तथा श्लेष्मवृद्ध्युक्तामयसंभवः।१५
पित्ते मंदोऽनलःशीतंप्रभाहानिः
कफे भ्रमः।
श्लेष्माशयनां शून्यत्वं हृद्वक्त्रसंधिताः१६

अर्थ-शरीर में जितनी बातकी आवश्यकता है उससे कमी होने पर ये चिन्ह होते हैं यथा शरीर के अवयव अपने २ कर्म करने में असमर्थ होजाते हैं। बोलने और शरीर के व्यापार में न्यूनता आजाती है, संज्ञा का नाश होजाता है तथा कफ की वृद्धि में जो जो रोग पीछे कह आये हैं वे भी सब उत्पन्न होजाते हैं।

पित्तक्षीण होने पर जठराग्नि की मंदता, शीतलता तथा कांति की हानि होजातीहै।

कफक्षीण होने पर भ्रम होताहै तथा हृदय शिर और संधि आदि कफ के स्थान शून्य पडजाते हैं।

रसादि की क्षीणता।

रसे रौक्ष्यं श्रमःशोषोग्लानिःशब्दासहिष्णुता
रक्तेऽम्लशिशिरप्रीतिशिराशैथिल्यरूक्षताः॥
मांसेऽक्षग्लानिगंडस्फिक्शुष्कतासंधिवेदना
मेदसि स्वपनं कट्याः प्लीहो वृद्धिः कृशांगता
अस्थ्न्यस्थितोदः शदनं दंतकेशनखादिषु।
अस्थ्नां मज्जनि सौषिर्यं भ्रमास्तिमिरदर्शनम्॥
शुक्रे चिरात् प्रसिच्येत शुक्रं शोणितमेव वा।
तोदोऽत्यर्थं वृषणयोर्मेढ्रं धूमायतीव च॥२०।

अर्थ-रसके क्षीण होने से रूक्षता, थकावट, सूजन, ग्लानि और शब्द सुनने में अरुचि। ये रोग होतेहै। रक्त के क्षीण होने पर खट्टे और शीतल पदार्थो के सेवन में रुचि बढती है। नसें ढीली पड़जाती हैं। और शरीर रूक्ष हो जाता है। मांस के क्षीण होने पर इन्द्रियों में ग्लानि, गंडस्थल और कूल्हों में कृशता, और हाथ पांव के जोड़ों मे दर्द पैदा होता है। मेद के क्षीण होने पर कटिभाग में शिथिलता, प्लीहा की वृद्धि, और शरीर में कृशता होती है। अस्थि के क्षीण होने पर हड़फूटन, तथा दांत केश और नख आदि का पतन होने लगता है मज्जा के क्षीण होने पर अस्थियों में छिद्र भ्रम तथा आंखों के आगे अँधेरा छा जाता है। वीर्य के क्षीण होने पर वीर्य बहुत देर में निकलता है। अथवा वीर्य के बदले रुधिर आने लगता है अंडकोषों में अत्यन्त वेदना होने लगती है और शिश्नेन्द्रिय में ज्वालासी उठती है।

मल की क्षीणता।

पुरीषे वायुरंत्राणि सशब्दो वेष्टयन्निव।
कुक्षौ भ्रमति यात्यूर्ध्वं हृत्पार्श्वपीडयन्मुहुर्मुहुः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूत्रेऽल्पं मूत्रयेत्कृच्छाद्विवर्णं सास्रमेव वा ।
स्वेदे रोमच्युतिःस्तब्धरोमता स्फुटनं त्वचः॥

अर्थ-पुरीष के क्षीण होने पर वायु शब्द करती हुई सम्पूर्ण आंतों के चारों ओर लिपटती हुई उदर में अत्यन्त भ्रमण करती है तथा हृदय और पसलीमें अत्यन्त पीडा करती हुई ऊपर को चढती है । मूत्रके क्षीण होने पर थोडा २ बहुत कष्ट से पेशाब होता है किंतु विवर्ण और रुधिर सहित मूत्र होताहै पसीनों के क्षीण होने पर रोम गिर पडते हैं तथा रोमों में स्तब्धता और त्वचा में फटन पैदा होती है ।

घ्राणादिमलकी क्षीणता ।

मलानामतिसूक्ष्माणां दुर्लक्ष्यं लक्षयेत् क्षयम्
स्वमलायनसंशोषतोदशून्यत्वलाघवैः ।२३।

अर्थ-आंख का मैल, कान का मैल, नाक का मैल आदि सूख गये हों वा थोडे निकलते हों तो उनकी क्षीणता समझना कठिन है, तथापि मलस्थान के सूख जाने से, उन में दर्द होने से, अथवा ऐसा मालूम होने से कि खाली होगया है वा हलका होगया है मल की क्षीणता जानने में आती है ।

दोषादि की सामान्य क्षयवृद्धि ।

दोषादीनां यथास्वं च विद्याद्वृद्धिक्षयौ भिषक्।
क्षयेण विपरीतानां गुणानां वर्धनेन च ॥२४॥
वृद्धिं मलानां संगाच्च क्षयं चाऽतिविसर्गतः।

अर्थ-दोष, धातु और मलों की वृद्धि तथा क्षयका पूरा पूरा वृतान्त पीछे लिखा गया है वह वैद्य को समझ लेना चाहिये । अब संक्षेप रीति से कहते हैं कि इन दोषादि में जो पदार्थ जिस गुणवाला है देह में यदि उनके विपरीत गुणकी क्षीणता दिखाई दे तो समझना चाहिये कि उस पदार्थ की वृद्धि है और जो वृद्धि दिखाई दे तो जान लेना चाहिये कि उस की क्षीणता है यथा-वायु के गुण रूक्षलघु और शीत आदि हैं, इन गुणों से विपरीत गुण स्निग्ध, गुरु और उष्णादि हैं शरीर में यदि इन स्निग्धादि विपरीत गुणों की वृद्धि हो तो जान लेना चाहिये कि बात की क्षीणता है और जो स्निग्धादि की क्षीणता दिखाई दे तो जान लेना चाहिये कि वायुकी वृद्धिहै । इसी तरह और पदार्थों की भी क्षयवृद्धि जानी जा सकती हैं । यथा पुरीषादि मलों के संग अर्थात् कम निकलने से वृद्धि और अधिक निकलने से क्षीणता समझ लेनी चाहिये ।

मलकी क्षीणता का उपद्रव ।

मलोचितत्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः ॥

अर्थ-यद्यपि मल की वृद्धि और क्षय दोनों ही पीड़ाकारक है तथापि मलकी क्षीणता से जो पीडा होती है वह वृद्धि से नहीं होती है । इसका कारण यही है कि मल देह के अनुकूल होता है अर्थात् मलके द्वारा शरीर की रक्षा रहती है कहा भी है "मलायत्तं बलं पुंसां" ।

दोषों का आश्रय ।

तत्राऽस्थनि स्थितो वायुःपित्तं तु स्वेदरक्तयोः
श्लेष्मा शेषेषु तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः ॥
यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधम् ।
अस्थिमारुतयोर्नैवं प्रायो वृद्धिर्हि तर्पणात् ॥
श्लेष्मणाऽनुगतात्तस्मात्संक्षयस्तद्विपर्ययात्
वायुनाऽनुगतः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-इन वातादि दोषोंमें से वायु अस्थि में रहता है, पित्त पसीने और रक्त में रहता है और कफ रस, मांस, मेदा, मज्जा शुक्र, मूत्र और पुरीषादि में रहता है। इस से यह समझना चाहिये कि धातु और मल आश्रय है और वातादि दोष आश्रयी है। जैसे वायु का आश्रय अस्थि है और अस्थि का आश्रयी वायु है। पित्त का आश्रय स्वेद और रक्त है तथा स्वेद और रक्त का आश्रयी पित्त है इसी तरह कफको भी जानो। और इस प्रकार से परस्पर का आश्रयाश्रयी भाव विद्यमानहै। इन आश्रय आश्रयी दोनों में से एक के लिये जो औषध वृद्धिकारक वा क्षयकारकहै वही औषध दूसरे के लिये भी वृद्धिकारक वा क्षयकारक है अर्थात् जो आश्रय की क्षय वा वृद्धि करती है वह आश्रयी की भी क्षय वा वृद्धि करतीहै।

अब यह बात विशेषरूपसे दिखलाते हैं कि आश्रय और आश्रयी भावको प्राप्त हुए वायुके पक्षमें ऐसा नियम संघटित नहीं होता है। जैसे स्निग्ध मधुरादि द्वारा अस्थिकी वृद्धि होती है किन्तु वायुकी वृद्धि न होकर क्षय होता है। अतएव जिससे वायुकी वृद्धि वा क्षय होता है उससे तदाश्रयी वायुकी वृद्धि वाक्षय नहीं होताहै। किन्तु अपरापर दोष, धातु और मलकी जो वृद्धि होती है वह प्रायः स्निग्ध मधुरादि संतर्पण द्वारा होती है और संतर्पण के योगमें कफ सदा अनुगत रहता है तथा कफकी वृद्धि होती है, इससे उसके स्निग्धत्व गुरुत्वादि गुण वायुके रूक्षत्व लघुत्व गुणोंके विरुद्ध होते हैं इसलिये वायुका क्षय होता है, इस हेतुसे ऊपर कहे हुए नियम वायु तथा उसके आश्रय अस्थिमें संभव नहीं होते। क्योंकि विशेषकरके संतर्पणसे वृद्धि होतीं है और कफ उसके अनुगत है। अपतर्पण अर्थात् लंघनसे धातुओंका क्षय होताहै और वायु उसके अनुगत है।

क्षय वृद्धिका उपचार।

अस्माच्च वृद्धिक्षयसमुद्भवान् ॥२८॥
विकारान् साधयेच्छीघ्रं क्रमाल्लंघनबृंहणैः।
वायोरन्यत्र तज्ज्ञास्तु तैरेवोत्क्रमयोजितैः१९

अर्थ-ऊपर कहे हुए प्रमाण के अनुसार वृद्धिका हेतु संतर्पण और क्षयका हेतु अपतर्पण है, इसलिये दोष, धातु,मलादिकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए विकारोंको अपतर्पण अर्थात् लंघन द्वारा और क्षयसे उत्पन्न हुए विकारों को बृंहण अर्थात् संतर्पण द्वारा दूरकरनेका यत्न शीघ्रतापूर्वक करै।

परन्तुवायु जनित विकारोंमें इससे विपरीत करना चाहिये अर्थात् वायु की वृद्धि से उत्पन्न विकारों को संतर्पण से और वायु के क्षय से उपजे हुए रोगों को अपतर्पण द्वारा दूर करै॥

वातादिक दोषोंकी वृद्धि और क्षयसे उत्पन्न विकारों की चिकित्सा इस जगह नहीं लिखी गई है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन दोषोंपक्रमणीय अध्यायमें किया जायगा॥

इसके पीछे रसकी क्षयवृद्धि से उपजे हुए रोगों की चिकित्सा कहनी चाहियेथी परन्तु पहिले कह चुके हैं कि रस कफ के समानहै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसलिये रस की चिकित्सा भी कफके सदृश जान लैना चाहिये। इससे रसकी चिकित्सा न कहकर रक्तादि की कहते हैं।

रक्तादि की चिकित्सा।

विशेषाद्रक्तवृद्ध्युत्थान् रक्तस्रुतिविरेचनैः।
मांसवृद्धिभवान् रोगान् शस्त्रक्षाराग्निकर्मभिः
स्थौल्यकार्श्योपचारेण मेदोजानस्थिसंक्षयात्।
जातान् क्षीरघृतैस्तिक्तसंयुतैर्वस्तिभिस्तथा

अर्थ—विशेष करके रक्तकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए रोगों में रक्त मोक्षण (फस्द खोलना) और विरेचन द्वारा चिकित्सा करै। मांसकी वृद्धि से उत्पन्न हुए रोगों में शस्त्रकर्म (नश्तर आदि से काटकर अलग करदेना) क्षारकर्म [तेजाब से जलादेना] और अग्निकर्म [लोहशलाकादिसे दाग दैना] द्वारा इलाज करै। मेदकी वृद्धि से उत्पन्न हुए विकारों की चिकित्सा शरीरके कृशकारक उपायों से और मेद के क्षय से उत्पन्न हुए विकारोंकी चिकित्सा स्थूलताकारक उपायों से करै। अस्थि के क्षय से उत्पन्न हुए विकारों की चिकित्सा तिक्त पदार्थ संयुक्त घी और दूध की वस्तियों से करै।

कोई कोई कहते हैं कि वायुजनक द्रव्य अस्थि की क्षीणता से उत्पन्न हुए विकारों की वृद्धि करतेहैं, इस लिये इस जगह तिक्त द्रव्यों का प्रयोग ठीक नहीं है क्योंकि तिक्त द्रव्य वायु उत्पन्न करते हैं, इसका समाधान यह है कि अस्थि स्वाभाविक खर (कठोर और शुष्क) है। और जो द्रव्य स्निग्ध और शोषण कर्ता होतेहैं वेही खरत्व पैदा करते है परन्तु ऐसा द्रव्य कोई नहीं मिलताहै जिस में दोनों स्निग्ध और शोषण गुण हों। इसी लिये घी और दूध स्निग्ध है और तिक्त द्रव्य वायुजनक होने से शोषक है इस तरह इन स्निग्ध और शोषक द्रव्यों की वस्ति अस्थि की वृद्धि कर सकती है।

ऊपर कही हुई तिक्तरससंयुक्त वस्ति मज्जाक्षयजनित और शुक्राक्षयजनित विकारों में भी हितकरहै। इन दोनों प्रकार के रोगोंमें स्वादु और तिक्त भोजन करै तथा वमनादि पञ्च कर्म द्वारा शुद्धि करै। मैथुन व्यायाम तथा अन्यान्य शुक्र के शोधन करने वाले विषय भी हितकारक हैं।

पुरीषादि की चिकित्सा।

विड्वृद्धिजानतीसारक्रिययाविड्क्षयोद्भवान्
मेषाजमध्यकुल्माषयवमाषह्वयादिभिः ॥३२॥
मूत्रवृद्धिक्षयोत्थांश्च मेहकृच्छ्रचिकित्सया।
व्यायामाऽभ्यंजनस्वेदमद्यैः स्वेदक्षयोद्भवान्

अर्थ—पुरीष की वृद्धि से उत्पन्न हुए रोगों में अतिसारमें कही हुई चिकित्साके अनुसार प्रयोग करै। पुरीष की क्षीणता से उत्पन्न हुए विकारों में भेंड़ा और बकरा के मध्य भाग का मांस, कुल्माष (हींग और घृत डालकर अर्द्ध सिद्ध तंडुल और चौला की खिचड़ी) जौ, उरद, और राजमाष (और आदि शब्द से काकांड, कमाच) आदि मलवर्द्धक द्रव्यों का प्रयोग करै। मूत्रवृद्धि जनित रोगों की चिकित्सा प्रमेहकी चिकित्सा के अनुसार और मूत्रक्षय जनित रोगों की मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा के अनुसार चिकित्सा करै। स्वेदक्षयजनितरोग में व्यायाम, तैलमर्दन, स्वेदप्रयोग [भपारा] और मद्यपान करना उचितहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धातुक्षय वृद्धि का कारण।

स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेरंशा धातुषु संश्रिताः।
तेषां साम्यातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भवः३४

अर्थ-पक्वाशय और आमाशय के बीच में पाचक नाम पित्त का स्थानहै उसे काया-ग्नि अर्थात् जठराग्नि कहते हैं। इस जठराग्नि के अंश धातुओं में रहतेहैं। जब यह अग्नि मन्द पड़जाती है तब धातुओं की वृद्धि होती है और जब अग्नि अति तीक्ष्ण होती है तब धातु क्षीण होती है॥

क्षय वृद्धि की परंपरा।

पूर्वो धातुः परं कुर्याद्वृद्धः क्षीणश्च तद्विधम्।

अर्थ-पहिला रस धातु वृद्धि पाकर अपने आगे के रक्त धातु की वृद्धि करता है। और क्षीण होकर अपने अगले धातु रक्तको क्षीण करताहै इसी तरह इनसे अगले धातुओं की क्षय वृद्धि समझना चाहिये॥

दोषादि बिगड़ने का क्रम।

दोषा दुष्टा रसैर्धातून् दूषयंत्युभये मलान्३५
अधो द्वे सप्त शिरसि खानि स्वेदवहानि च।
मला मलायतनानि स्युर्यथास्वं तेष्वतो गदाः३६

अर्थ-मधुरादि रसके मिथ्यायोग और अति योगके सेवन करनेसे कुपित हुए दोष धातुओं को दूषित करदेतेहैं। धातु और दोष दोनों मिल कर मलको दूषित कर देते हैं बिगड़े हुए मल अपने स्थानों को बिगाड़ देते हैं। गुदा और मेढ़ ये दो नीचेके मलस्थान हैं। दो आंख, दो कान, दो नासाछिद्र और एक मुख ये सिर के अग्र भाग में मल के सात स्थान है। तथा पसीने बहने के रोमकूप सब शरीर में व्याप्त हैं। इस तरह इन दस मल स्थानोंमें बिगाड़ उत्पन्न होता है। इन मल स्थानों में बिगाड़ होने से दोषादि के अनुसार व्याधियां उत्पन्न हो जातीहै।

ओज का लक्षण।

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रांतानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम्।३७।
स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमीषल्लोहितपीतकम्।
यत्राशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति३८
निष्पद्यते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः।

अर्थ-रस से लेकर वीर्य्यपर्य्यन्त सब धातुओं का जो परम तेज है उसीको ओज कहते हैं, वह हृदय में रहता है और सम्पूर्ण देह में भी व्याप्तहै। यह ओजही शरीरके जीवन का प्रधान हेतुहै। यह ओज स्निग्ध सोमात्मक (शीत वीर्य्य) शुद्ध कुछ लाल तथा पीलाहै। ओजके नष्ट होने पर जीवन का नाश होजाता है और ओजके विद्यमान रहने पर जीवन स्थित रहता है। ओज ही से शरीर संबन्धी सबभाव निष्पन्न होतेहैं।

ओज का क्षय।

ओजः क्षीयेतकोपक्षुद्ध्यानशोकश्रमादिभिः३९
विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेंद्रियः।
विच्छायो दुर्मना रूक्षो भवेत्क्षामश्च तत्क्षये
जीवनीयौषधक्षीररसाद्यास्तत्र भेषजम्।

अर्थ-क्रोध, क्षुधा, चिन्ता, शोक और परिश्रम आदि से ओज क्षीण होजाता है। ओज का क्षय होने पर मनुष्य बिना कारण ही डरने लगता है, दुबला होता जाता है निरन्तर चिन्ता में डूबा रहता है, इन्द्रियों में पीड़ा होने लगतीहै, शरीरकी कांति बिगड़ जाती है, मन में उदासी रहती है, देह रूक्ष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और क्षीण होती चली जाती है। ओज की क्षीणता से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त दस औषध तथा दूध और मांस का यूष आदि औषधोंका प्रयोग करना चाहिये।

ओज की वृद्धि ।

ओजोविवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः ।४१।

अर्थ—ओज की वृद्धि होने से देहकी तुष्टि पुष्टि तथा बलका उदय होता है।

वृद्धि और क्षय की सामान्य चिकित्सा ।

यद्यन्नं द्वेष्टि यदपि प्रार्थयेतावि रोधि तु ।
तत्तत्त्यजन् समश्नंश्च तौ तौ वृद्धिक्षयौ जयेत्।

अर्थ—जिस दोष की वृद्धि से जिस अन्न की अनिच्छा हो उसको त्याग देने से उस दोष की वृद्धि तथा जिस दोष के क्षय से जिस अन्न के प्रति अभिलाषा उत्पन्न हो उसको खाने से उस दोष की क्षीणता दूर होजाती है। इस सबका सारांश यह है कि जिस रोग की वृद्धि होतीहै प्रायः उसी दोष के वृद्धिकारक अन्न में दोष पैदा होता है तथा जिस दोष की क्षीणता होती है प्रायः उसी दोष के वृद्धिकारक अन्नमें अभिलाषा होती है।

वृद्धिक्षय का कारण ।

कुर्वते हि रुचिं दोषा विपरीतसमानयोः ।
वृद्धाःक्षीणाश्च भूयिष्ठं लक्षयंत्यबुधास्तुन ॥

अर्थ—ऊपर कहा गया है कि द्वेष्य अन्न का त्याग और अभीष्ट अन्न का सेवन करके दोष को जीतना चाहिये। इसका कारण यह है कि वातादिक दोष बढ़े हुए हों तो अपने विपरीत गुण वाले अन्न की रुचि उत्पन्न करते हैं। तथा अत्यन्त क्षीण होगये हों तो अपने समान गुण वाले अन्न की रुचि पैदा करते हैं। यह दोष का स्वभाव है। विपरीत गुण वाले अन्नादिक उस दोष के नाश करने वालेहैं। और यदि दोष बढजाय अथवा इसी तरह समान गुण वाले अन्नादिक दोष की वृद्धि करते हैं और दोष का क्षय हो जाय, और वैसी ही रुचि स्वाभाविक ही मनुष्य में उत्पन्न हो यह सब दैवाधीन है। वायु के वृद्धि पाने पर स्निग्ध, अम्ल और मधुर अन्न की अभिलाषा उत्पन्न होती है। पित्त बढने पर शीत मधुर, रूक्ष, तिक्त और कषाय अन्न में रुचि उत्पन्न होती है। कफ के बढने पर रूक्ष, अम्ल, कटु, तिक्त अन्न की अभिलाषा होती है। इसी तरह वायु के क्षीण होने पर रूक्ष कषायादि अन्न की इच्छा होती है। पित्त क्षीण होने पर अम्ल, लवण, कटुक अन्न की इच्छा होती है। कफ क्षीण होने पर स्निग्ध, मधुर, अम्ल और लवण अन्न की इच्छा होती है।

अन्य लक्षण ।

यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।
रूपाणि जहति क्षीणाःसमाःस्वं कर्म कुर्वते॥

अर्थ—जब दोष वृद्धि पाते हैं तब अपने बल के अनुसार अपने गुण, कर्म और लक्षणों का विस्तार करते हैं, जब क्षीण होते हैं तब उसी तरह अपने गुण, कर्म और लक्षणों को छोड देते हैं। जैसे वायु के बढने पर रूक्षता, शीतलता, कर्कशता आदि बढ जाते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं और वायु के क्षीण होने पर वे गुण दिखाई भी नहीं देते और जब दोष समानावस्था में होते हैं तब अपने २ कर्म्मों को नियमित रीति से पूरा करते हैं।

दोषों को समान रखना।

य एव देहस्य समा विवृद्धये
त एव दोषा विषमा वधाय।
यस्मादतस्ते हितचर्ययैव
क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः" ॥ ४५ ॥

अर्थ–जब दोष समानावस्था में होते हैं तब देह की वृद्धि के हेतु होते हैं। वे ही दोष विषमावस्था में होकर वृद्धि पाकर वा क्षीण होकर मृत्यु के कारण हो जाते हैं। इस से हितजनक आहार विहारादि द्वारा दोष का क्षय वा वृद्धि न होने दे।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः।

अथाऽतो दोषभेदीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–अब हम यहांसे दोष भेदीय अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वायु का स्थान।

पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्राऽस्थिस्पर्शनेन्द्रियम्।
स्थानं वातस्य तत्राऽपि पक्वाधानं विशेषतः॥

अर्थ-पक्वाशय, कटी, ऊरू, कर्ण, अस्थि और त्वचा ये वायुके छः स्थान है किंतु इन में से पक्वाशय ही वायु के रहने का प्रधान स्थान है।

पित्त का स्थान।

नाभिरामाशय स्वेदो लसीका रुधिरं रसः।
दृक् स्पर्शनं च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः॥

अर्थ–नाभि, आमाशय, पसीना, थूक, रुधिर, रस, नेत्र और त्वचा इन आठ स्थानों में पित्त रहता है, इन में से नाभि पित्त के रहने का प्रधान स्थान है पहिले कह चुके हैं कि वायु त्वचा में रहता है इससे कोई कहे कि वायु और पित्त दोनों त्वचा में कैसे रह सकते हैं। इसका समाधान यह है कि पित्त अग्निस्वरूप है और वायु अग्नि का प्रज्वलित करनेवाला है, इसलिये मित्रहै, विरोधी नहीं है। इस तरह वात पित्त की मैत्री होने के कारण एक स्थान में वास होसकता है।

कफ का स्थान।

उरःकंठशिरःक्लोमपर्वाण्यामाशयो रसः
मेदो घ्राणं च जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः३॥

अर्थ–छाती, कण्ठ, सिर, मूत्राशय, जोड़, आमाशय, रस, भेद, घ्राण (नासिका) और जीभ ये कफ के दस स्थानहै। इनमें से कफ का प्रधान स्थान छाती है।

प्राण वायु।

प्राणादिभेदात्पंचात्मा वायुः
प्राणोऽत्र मूर्धगः।
उरःकंठचरो बुद्धिहृदयेंद्रियचित्तधृक् ॥ ४ ॥
ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासान्नप्रवेशकृत्।

अर्थ–वायु का एक ही चलन स्वभाव है, वायु के पांच भेद हैं, यथा--प्राण, उदान, व्यान, समान, और अपान। अर्थात् एकही वायु भिन्न २ काम करने से पांच नामों से बोली जाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनमें से प्राणवायु मस्तक में रहती है और छाती तथा कण्ठ में घूमा करती है । बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और चित्त को धारण करती है । थूकना, छींकना, डकार, निःश्वास और अन्न को गलेसे पेटमें लेजाना, ये प्राणवायु के कर्म हैं ।

उदान वायु ।

उरःस्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत्॥
वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्मृतिक्रियः ।

अर्थ–उदान वायु का स्थान छाती है, यह नाभि, नाक और गलेमें फिरता है, बोलना, पदार्थों के ग्रहण करने का प्रयत्न, ऊर्जा, बल, वर्ण, और स्मृतिका बढाना ये सब इस के कर्म हैं ।

व्यान वायु ।

व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी महाजवः॥
गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ।
प्रायःसर्वाःक्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाःशरीरिणाम्

अर्थ–व्यानवायु विशेष करके हृदयमें रहता है परन्तु यह सब शरीर में फिरता है यह अन्य वायुओंकी अपेक्षा शीघ्रगामीहै । गमन, उत्क्षेपण (ऊपर जाना) अपक्षेपण (नीचे-फेंकना,) निमेष (आंख बन्द करना,) उन्मेष (आंख खोलना) आदि मनुष्य की सबही क्रिया प्रायः यही वायु करताहै ।

समान वायु ।

समानोऽग्निसमीपस्थःकोष्ठे चरति सर्वतः।
अन्नंगृह्णाति पचतिविवेचयति मुंचति ॥८॥

अर्थ–समान वायु पाचक अग्नि के पास रहता है और सम्पूर्ण कोठे में फिरता है। यह वायु आमाशय में अन्न को धारण रखता है, पचाता है और मल मूत्र को जुदे जुदे करके बाहार निकाल देता है ।

अपान वायु ।

अपानोऽपानगःश्रोणिबस्तिमेढ्रोरुगोचरः ।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥ ९ ॥

अर्थ– अपानवायु विशेष करके गुदस्थल में रहताहै । तथापि जंघा, पेडू, मेढ्, उरू, आदि स्थानों में फिरता है वीर्य आर्तव (ऋतु संबंधी रज) मल, मूत्र तथा गर्भको बाहर निकालना ये इस के कर्म है ।

पित्त के भेद ।

पित्तं पंचात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात्१०।
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशक्तिमत् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा।११।
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम्।१२।

अर्थ–पित्त पांच प्रकार का होता है । इन पांच प्रकार के पित्तों में जो आमाशय और पक्वाशय के बीच में स्थितहै, तथा पंचभूतात्मक होनेपर भी आग्नेय गुण की अधिकता के कारण अपने पतलेपनको छोडकर अर्थात् गाढा होकर पाकदाहादि करने के कारण इसे अग्नि नाम से बोलते हैं । यह अन्न को पचाताहै, यह साररूप पदार्थ और मलरूप पदार्थ को जुदा जुदा करताहै । तथा पक्वाशय और आमाशय के बीच में रहता हुआ अन्य रंजकादि पित्तोंको बलिष्ठ करनेमें बडा उपकार करता है, इन्हीं कारणों से इसका नाम **पाचक** है ।

रंजकादि पित्त ।

आमाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बुद्धिमेधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात्॥
साधकं हृद्गतं पित्तं
रूपालोचनतः स्मृतम्।
दृक्स्थमालोचकं
त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥१४॥

अर्थ—जो पित्त आमाशय में रहता है वह रस को रंगनेके कारण रंजक पित्त कहाता है। जो पित्त हृदय में रहता है और बुद्धि, मेधा, अभिमान आदि अभिप्रेत पदार्थ की साधना करताहै उसे साधक पित्त कहतेहैं। जो पित्त आंख की पुतली में रहता है और लाल, काले, पीले पदार्थों को देखता है उसे आलोचक पित्त कहते हैं। जो पित्त त्वचा में रहता है और त्वचा को दीप्तिमान करता है इस से उसे भ्राजक पित्त कहतेहैं यह पित्त अभ्यंग लेप और परिषेकादि को पचाता है।

कफ के भेदादि निरूपण।

श्लेष्मा तु पंचधा
उरःस्थः सन्त्रिकस्य स्ववीर्यतः।
हृदयस्यान्नवीर्याच्च तत्स्थ एवांबुकर्मणा१५।
कफधाम्नाच शेषाणां यत्करोत्यवलंबनम्।
अतोऽवलंबकः श्लेष्मा
यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥२६॥
क्लेदकःसोऽन्नसंघातक्लेदनात्
रसबोधनात्।
बोधको रसनास्थायी
शिरःस्थोक्षतर्पणात्॥१७॥
तर्पकः
संधिसंश्लेषात्श्लेषकःसंधिषु स्थितः।

अर्थ—कफ भी पांच प्रकार का होता है, यथा—अवलंबक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक।

इन में से जो कफ छाती में रहता है और अपने वीर्य द्वारा पृष्ठाधार (मेरुदंड का-निम्न स्थान) का अवलंबन करता है। अर्थात् स्वकर्म करने में उसकी सामर्थ्य को बढ़ाता है। जो कफ खायेहुए अन्न को रस रूप में परिणत करके अपनी सामर्थ्य से हृदय का अवलंबन करता है * तथा छाती में रहा हुआही जोकफ शेष बचेहुए स्थानों का अंबुकर्म द्वारा अर्थात् क्लेद श्लेष्मादि रूप जल व्यापार द्वारा अवलंबन करता है अर्थात् अपने २ कर्म करनेमें उनमें सामर्थ्य उत्पादन करताहै इसी से इसको **अवलंबक** कहते हैं।

जो आमाशय में रहकर कठिन अन्न के समूह को क्लेदयुक्त करता है। उसे **क्लेदक कफ** कहते हैं।

जो जिव्हामें रहकर खट्टे मीठे आदि रसों का बोध करता है उसे **बोधककफ** कहते हैं। जो मस्तक में रहकर संपूर्ण इन्द्रियों को

* मूल में च शब्द के प्रयोग से यह भी ज्ञात होता है कि अपने वीर्य से भी हृदय का अवलंबन करता है। किन्तु हृदय का जितना अवलंबन अन्नवीर्यसेकरताहै इतना स्ववीर्य से नहीं करता क्योंकि अन्न रस प्रथम हृदयमें स्थित होताहै फिर व्यानवायु से चलायमान किया जाकर सब शरीर में जाता है इससे अन्न रस द्वारा ही हृदयका अवलंबन युक्तियुक्त है। कहा भी है:—
हृदयंमनसः स्थानमोजसश्चेतितस्यच।
मांसपेशीचयोरक्तपद्माकारमधोमुखम् ॥
योगिनोयत्रपश्यंतिसम्य ग्ज्योतिःसमाहिताः
रसोयः स्वच्छतांयातः सतत्रैवावतिष्ठते।
ततो व्यानेन विक्षिप्तः कृत्स्नं देहं प्रपद्यते ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तृप्तकरता है उसे **तर्पककफ** कहते हैं। जो कफ संधि अर्थात् शरीर के जोड़ों में रहकर उन को एकत्र करके जोडता है उस को **श्लेषक** अर्थात् जोड़नेवाला कफ कहतेहैं।

उपसंहार ।

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम्
व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक्

अर्थ—संपूर्ण देह में व्याप्त, विना विकारपाये हुए वातादि दोषों के स्थान और उन के कर्म पूर्वोक्त रीति से अलग जानलेने चाहिये जब ये विकारयुक्त हो जाते हैं तब अपने स्थानों से भी विचलित होजाते हैं और इन के कर्मों में भी अन्तर आजाता है।

वायु का चयकोपशमन ।

उष्णेनयुक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वंतिसंचयम्।
शीतेन कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः॥

अर्थ—प्रथमाध्याय में कहे हुए वायुके रूक्षादि छः गुणों के साथ उनसे विरुद्ध उष्णादि मिलते हैं तब वायुका चय होता है पर कोप नहीं होता क्योंकि वे गुण विरुद्ध होते हैं। इसी तरह वायुके रूक्षादि गुणोंके साथ शीतादि गुण मिलने से वायुका कोप होता है क्योंकि शीतादि की वायुके गुणों के साथ समानता है। वायुके रूक्षादि गुणों के साथ जब उष्ण और स्निग्धादि गुण मिलते हैं तब वायुका शमन होता है क्योंकि ये वायुके गुणों से विपरीत हैं।

पित्तका चयकोपादि ।

शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याश्चयं पित्तस्य कुर्वते।
उष्णेन कोपं मंदाद्याः शमं शीतोपसंहिताः।

अर्थ—इसी तरह पित्तके तीक्ष्णादि गुणों के साथ उनसे विरुद्ध शीतादि गुणों के मिलने से पित्तका संचय होता है। उष्णादि गुणों के मिलने से पित्त का कोप होता है और जब शीतगुणयुक्त मंदादि गुण पित्त के तीक्ष्णादि गुणों से मिलते हैं तब पित्त का शमन होता है।

कफका चयकोपादि ।

शीतेन युक्ता स्निग्धाद्याःकुर्वंते श्लेष्मणश्चयम्
उष्णेन कोपं तेनैव गुणा रूक्षादयः शमम्।

अर्थ—जब कफके स्निग्धादि गुण शीतगुणसे मिलते हैं तब कफका चय होता है। उष्णगुणसे युक्त होनेपर वेही स्निग्धादिगुण कफका प्रकोप करते हैं। उसीउष्णके साथ यदि रूक्षादि गुण मिले हों तो कफका शमन होता है।

चयादि के लक्षण ।

चयो वृद्धिःस्वधाम्न्येव प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु॥
विपरीतगुणेच्छा च
कोपस्तून्मार्गगामिता।
लिंगानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसंभवः॥
स्वस्थानस्थस्य समता विकारासंभवःशमः।

अर्थ—अपने अपने स्थानोंमें जो दोषों की वृद्धि होती है। उसका नाम चय है। दोष का चय होनेपर दोषके बढानेवाले हेतुओंसे विद्वेष और विपरीत गुणोंमें इच्छा होती है, जैसे वायुका चय होनेपर वायुवर्द्धक रूक्षादि गुणोंसे विद्वेष और स्निग्धादि वातविपरीत गुणोंमें अभिलाषा होती है। पित्त और कफ के विषयमें भी ऐसाही जान लेना चाहिये। अपने स्थानमें स्थित चयको प्राप्त हुआ दोष अत्यन्त वृद्धिपाकर उन्मार्गमेंगमनकरै अर्थात् अपने स्थानको छोडकर अन्य स्थानमें गमन करै उसका नाम प्रकोप है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सब प्रकुपित दोष अपने २ लक्षणों को प्रकाशित करते हैं अर्थात् दोषादिविज्ञानीयाध्यायमें प्रकुपित दोषों के जो लक्षण कहे गये हैं और जो आगे कहे जायंगे वे सब लक्षण उपस्थित होजाते हैं। स्वास्थ्य जाता रहता है और सब रोग आजाते हैं। जब वातादि दोष अपने स्थान में स्थित रहते हैं और किसी प्रकारका कोई रोग उत्पन्न नहीं होता है तब दोष की प्रशमावस्था जाननी चाहिये।

दोष के संचयादिका काल।

चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु॥२७॥
वर्षादिषु तु पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु।

अर्थ--ग्रीष्म, वर्षा और शरद इन तीन ऋतुओं में क्रम से वायुका चय प्रकोप और शमन होता है अर्थात् ग्रीष्म में वायुका चय, वर्षा में प्रकोप और शरद में शमन होता है। इसी तरह वर्षा शरद और हेमंतमें क्रम से पित्त का चय, प्रकोप और शमन होता है। इसी तरह शिशिर वसंत और ग्रीष्म में कफका चय, प्रकोप और शमन होता है।

दोष संचयका हेतु।

चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः खरः।
तद्विधत्वाद्धृते देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति।
अद्भिरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम्॥
पित्तं चाति चयं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः।
चीयते स्निग्धशीतानिरुद्धैरौषधिभिः कफः।
तुल्येऽपि काले देहे च स्कन्नत्वाच्च प्रकुप्यति।

अर्थ--पिछले श्लोक में जो दोष संचय का काल बताया गया है उस में कोई २ शंका करते हैं कि ग्रीष्मकाल में जो वायुका संचय कहा गया है वह ठीक नहीं है क्योंकि उस ऋतु में बलका आदान काल होने से अथवा गरमी के कारण से ओषधियां लघु और रूक्ष हो जाती हैं तथा वायु भी लघु और रूक्ष गुणवाला है इससे गरमी में वायु का संचय नहीं किन्तु प्रकोप होता है इसी तरह वर्षाऋतुमें जल और औषधियोंका विपाक खट्टा होता है इसलिये वर्षाऋतु में पित्त का संचय नहीं किन्तु प्रकोप होता है। इसी तरह शिशिरऋतुमें जल और औषध स्निग्ध होते हैं और शीतकाल होता है इससे कफ का संचय नहीं किन्तु प्रकोप होता है।

इसका समाधान यह है कि ग्रीष्मऋतु में औषधियां लघु और रूक्ष होती है और ग्रीष्मऋतु बलका आदानकाल है इस लिये देहभी लघु और रूक्ष होजाती है, इस लघु रूक्ष गुणवाला वायु, लघुरूक्ष हुए देहमें समान गुण होने के कारण संचयको प्राप्त होता है, परन्तु ऋतु गरम होने से प्रकोपको प्राप्त नहीं होता।

इसी प्रमाण से वर्षाऋतुमें औषधी और जल अम्लविपाकी होजाते हैं और पित्त भी अम्ल रसयुक्त है इसलिये तुल्यगुणयोग में पित्तका संचय होता है किन्तु वर्षाकालकी ठंडक कारण उष्णस्वभाव वाले पित्तका प्रकोप नहीं हो सकता है।

शिशिरकालमें जल और औषधियां स्निग्ध और शीतलहोजाती हैं तथा देह और कालभी स्निग्ध और शीतल होजाते हैं इसलिये तुल्य गुणयुक्त जल और औषधि सेवनद्वारा तुल्य गुणवाले देहमें कफका संचय होता है किन्तु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिशिरकालमें गाढापनको प्राप्त हुआ कफ प्रकोप को नहीं पाता है ।

दोषसंचयादि का अन्य कारण ।

इति कालस्वभावोऽयमाहारादिवशात्पुनः ॥
चयादीन्यांतिसंघोऽपि दोषाःकालेऽपिवानतु

अर्थ- पूर्वोक्त वातादि दोषों का संचय, प्रकोप और शमन काल के स्वभाव से होता है परन्तु अन्नपान की सामर्थ्य से दोष काल की अपेक्षा न करके तत्काल चय, प्रकोप और शमन को प्राप्त होजाते हैं इसी तरह आहार के कारण से संचय, प्रकोप और शमन के काल में दोष संचय, प्रकोप और शमन को प्राप्त नहीं होता हैं। इन कारणों से दोषों के चयादि में काल की अपेक्षा आहार प्रधान है ।

दोष की व्याप्ति और निवृत्ति ।

व्याप्नोति सहसा देहमापादतलमस्तकम् २०।
निवर्तते तु कुपितो मलोऽल्पाल्पं जलौघवत् ।

अर्थ- प्रकुपित हुए दोष पांव के तलुए से सिर की चोटी तक शीघ्र बढते चले जाते हैं परन्तु घटते समय बहुत धीरे धीरे घटते हैं जैसे पानी का चढाव एक दम आता है और घटता धीरे धीरे है ।

दोष कोप के अनन्त हेतु ।

नानारूपैरसंख्येयैर्विकारैःकुपिता मलाः ३०॥
तापयंति तनुं तस्मात्तद्धेत्वाकृतिसाधनम् ।
शक्यं नैकैकशो वक्तुमतःसामान्यमुच्यते ३१

अर्थ–संपूर्ण दोष कुपित होकर जिस समय अनेक प्रकार के असंख्य रोगों को उत्पन्न करके शरीर को कष्ट पहुंचाते हैं उस समय उन असंख्य रोगों में से प्रत्येक के अलग अलग हेतु, लक्षण और चिकित्सा का निर्देश करना बड़ा कठिन है इस लिये जो जो साधारण हेतु, लक्षण और चिकित्सा है उन्हीं का इस जगह वर्णन किया जाता है ।

रोग के अन्य हेतु ।

दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् ।
यथा पक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमश्नुते ३२॥
छायामप्येति नात्मीयां यथा वा कृतमप्यदः ।
विकारजातं विविधं त्रीन् गुणान्नाऽपिवर्तते ॥
तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्तमपि सर्वदा ।
विकारजातं त्रीन्दोषान् तेषां कोपे तु कारणम् ॥
अर्थैरसात्म्यैःसंयोगःकालःकर्म च दुष्कृतम् ।
हीनातिमिथ्यायोगेन सिद्धते तत्पुनस्त्रिधा ३५

अर्थ–वातादिक दोष ही संपूर्ण रोगों के मुख्य कारण हैं । जैसे पक्षी दिनभर सब जगह उडता है पर अपनी छाया का उल्लंघन नहीं कर सकता है, अथवा जैसे इस जगत के स्थावर जंगमादि अनेक प्रकार के पदार्थ सत्व, रज, तम इन तीन गुणों का परित्याग नहीं कर सकते इसी तरह धातुकी विषमता से उत्पन्न हुए रोग किसी तरह से भी वातादिक तीनों दोष का उल्लंघन नहीं कर सकते अर्थात् दोष के संबंध के विना कदाचित् कोई दोष उत्पन्न नहीं होसकता है ।

इन संपूर्ण दोषों के प्रकोप के विषय में तीन कारण और भी हैं, जैसे (१) असात्म्य इन्द्रियार्थसंयोग (शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंधादि विषयों का कान, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासिकादि इन्द्रियों से अनुचित संयोग) । (२) दुष्ट शीतोष्णवर्षादि काल । (३) इस जन्म वा पूर्व जन्म के किये हुए दुष्कृत अर्थात् बुरे कर्म । ये दोष प्रकोप के तीन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कारण हैं, दोषों के प्रकुपित करने वाले इन तीन कारणों में से प्रत्येक के हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोग से तीन तीन भेद हैं। इस तरह सब मिलाकर दोष प्रकोप के नौ कारण हैं।

हीन मिथ्यादि योग का स्वरूप।

हीनोऽर्थेनेंद्रियस्याऽत्यसंयोगःस्वेन नैव वा। अतियोगोऽतिसंसर्गोसूक्ष्मभास्वरमैरवम् ३६। अत्यासन्नाऽतिदूरस्थं विप्रियं विकृतादि च। यद्रूपा वीक्ष्यते रूपं मिथ्यायोगः स दारुणः॥ एवमन्यद्यथास्वं तु त्रीन्द्रियार्थान् यथायथम्। विद्यात्

अर्थ—जिस इन्द्रिय का जो विषय है उस का उस से अत्यसंयोग वा सर्वथा संयोग ही न होना हीनयोग कहलाता है, जैसे कर्णेन्द्रिय का विषय सुनना है, अगर थोडा सुनाईदे वा सर्वथा सुनाई ही न देतो इस का नाम हीनयोग है अन्यान्य इन्द्रियों के पक्ष में भी इसी तरह समझ लेना चाहिये। जिस इन्द्रिय विषय का अतिसंसर्ग होता है उसे अतियोग कहते हैं। इसी तरह अति सूक्ष्म (बहुत ही छोटा)। अत्यन्त चमकीला भयानक, अति पासवाला, अति दूरवाला, अप्रिय, विकृतरूपादियुक्त पदार्थों का देखना नेत्र इंद्रिय का मिथ्यायोग है। यह मिथ्या योग बडा दारुण होता है, क्योंकि इसी से तिमिरादि नेत्र रोग पैदा होजाते हैं। इसी तरह अत्यन्त उच्चस्वर, भयानक शब्द, अप्रिय संदेशा आदि सुनना कर्णेन्द्रिय का मिथ्यायोग है। अत्यन्त दुर्गंधित, अनिष्ट पदार्थों का सूंघना नासिका का अपने विषय के साथ मिथ्यायोग है। ऐसे ही और भी जानो।

कालका हीनमिथ्यादियोग।

कालस्तु शीतोष्णवर्षभेदात्त्रिधा मतः॥३८॥ स हीनो हीनशीतादिरतियोगोऽतिलक्षणः। मिथ्यायोगस्तु निर्दिष्टो विपरीतस्वलक्षणः॥

अर्थ—शीत, उष्ण और वर्षा इन तीन कारणों से काल तीन प्रकार का है। इन में से हेमन्त और शिशिर शीतकाल है। वसंत और ग्रीष्म उष्णकाल है। प्रावृट ऋतु वर्षा काल है। जिस काल में सरदी, गरमी वा वर्षा कम होती है उसे उस काल का हीनयोग कहते हैं जिस काल में अतिशय सरदी, गरमी वा वर्षा होती है वह उस काल का अति योग है। और जिस कालमें सरदी, गरमी, वा वर्षा अपने धर्म के विपरीति होती है वह कालका मिथ्यायोग है। जैसे हेमन्त ऋतुमें शीत कम हो तो हीनकाल, अधिक हो तो अतिकाल और गरमी हो तो मिथ्याकाल जानना चाहिये। इसी तरह अन्य ऋतुओं का भी जानो।

कर्म का हीनमिथ्यादियोग।

कायवाक्चित्तभेदेन कर्मापि विभजेत्त्रिधा। कायादिकर्मणो हीना प्रवृत्तिर्हीनसंज्ञिका ४०। अतियोगोऽतिवृत्तिस्तु वेगोदीरणधारणम्। विषमांगक्रियारंभः पतनस्खलनादिकम्॥ भोजने सामिभुक्तस्य रागद्वेषभयादि च। कर्म प्राणातिपातादि दशधा यच्च निंदितम्॥ मिथ्यायोगःसमस्तोऽसाविहचामुत्रवाकृतम्

अर्थ—जैसे कालके तीन भेद कहे गये हैं वैसे ही कर्म भी कायिक, वाचिक और मानसिक भेदों से तीन प्रकार का है। इन तीन प्रकार के कर्मों की न्यून प्रवृत्ति को हीनयोग कहते हैं। इन तीनों प्रकार के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्मो की अतिशय प्रवृत्ति उस कर्म का अतियोग कहलाता है। मलमूत्रादि वेगों का बलपूर्वक रोकना, वा निकालना, विषमअंग से अर्थात् शरीर को आडा तिरछा करके काम करना, गिरना, खिसलपड़ना, ये कायिक कर्म का मिथ्यायोग है। खाते खाते बोलना वाचिक कर्म का मिथ्यायोग है। राग, द्वेष और भयादि ये मानसिक कर्म हैं इन की भी हीनप्रवृत्ति, मिथ्याप्रवृत्ति और अतिप्रवृत्ति होती है। इन राग द्वेषादि की अयोग्य रीति से प्रवृत्ति होना मिथ्यायोग कहलाता है। तथा दिनचर्याध्यायमें जो प्राणातिपातादि दस अशुभ कर्म कहे गये हैं इनका काया, वाणी और मन के साथ मिथ्यायोग होता है। इस मिथ्यायोग में इस लोक और पर लोक दोनों के कर्म का समावेश है।

दोष का निदान।

निदानमेतद्दोषाणांकुपितास्तेन नैकधा॥४२।
कुर्वंतिविविधान्व्याधींश्शाखाकोष्ठास्थिसंधिषु

अर्थ—पूर्वोक्त इन्द्रियार्थ, काल और कर्म का हीन मिथ्यादियोग दोषों के प्रकोप का निदान अर्थात् आदि कारण हैं। इसीनिदान द्वारा प्रकुपित दोष शाखा, कोष्ठ, आस्थि और संधियोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्नकरतेहैं।

बाह्यभागमें होनेवाले रोग।

शाखारक्तादयस्त्वक्च बाह्यरोगायनंहि तत्
तत्राश्रया ग्रहण्यंगसंडालज्यर्बुदादयः।
ग्रहिर्भगंदरश्च दुर्नामकुष्ठशोफास्थ्योगदाः॥

अर्थ—रक्तादि छःधातु और त्वचा इनको शाखा कहते हैं। ये बाह्यरोगों के स्थान है। इनमें मस्सा, व्यंग, गंड, अलजी, अर्बुद, बवासीर, गुल्म, शोफ, विसर्प, विद्रधि, कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

कोष्ठगत रोग।

अंतः कोष्ठो महास्रोत आमपक्वाशयाश्रयः।
तत्स्थानाश्छर्द्यतीसारकासश्वासोदरज्वराः
अंतर्भागे च शोफार्शोगुल्मवीसर्पविद्रधि।

अर्थ—महास्रोत (रक्तवाहिनी स्थूल धमनी) आमाशय और पक्वाशय इनतीनों का आश्रय भूत शरीरके भीतरका भाग कोष्ठ कहलाता है। इनमें होनेवाले वमन, अतिसार, खांसी, श्वास, उदररोग, ज्वर, सूजन, अर्श, गुल्म, विसर्प, विद्रधि, आदि होते हैं। ये अन्तरभागमें होनेवालेरोग कहलाते हैं।

मध्यमरोग मार्ग।

शिरोहृदयवस्त्यादिमर्मास्थ्यस्थ्नांच संश्रयः॥
तन्निबद्धाः शिरास्नायुकंडराद्याश्च मध्यमाः।
रोगमार्गस्थितास्तत्र यक्ष्मपक्षवधार्दिताः॥
मूर्धादिरोगाः संध्यस्थिस्नायुशूलग्रहादयः।

अर्थ—मस्तक, हृदय, बस्त्यादि, मर्मस्थान, अस्थिसंधि, तथा उन्हीं अस्थियोंसे मिलेहुए शिरा, स्नायु, और कंडरादि ये सब मध्यमरोगमार्ग हैं। इन स्थानोंमें यक्ष्म, पक्षाघात, अर्दित, शिरोरोग, तथा संधि, आस्थि और स्नायुमें शूल और जडता ये रोग होते हैं।

दोषके कर्म।

स्रंसव्यासव्यधस्वापसादरुक्तोदभेदनम्॥५९॥
संगांगभंगस्तंभोष्णवर्तिहर्षणतर्षणम्।
कंपपारुष्यसौषिर्यशीर्यस्पंदनवेष्टनम्॥५०॥
स्तंभःकषायरसतावर्णःश्यावोऽरुणोऽपिवा।
कर्माणि वायोः

अर्थ—स्रंस (हनुआदिसंधियोंका भ्रंश), व्यास (क्षेपक वायुके सदृश अंग प्रत्यंगोंका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फेंकना), व्यध (जैसे कोई मुद्गरोंसे कूटता हो), स्वाप (छूनेसे ज्ञान न होना) , साद (अंगोंमें शिथिलता),रुक (निरंतर शूलवत् वेदना), तोद (विच्छिन्न शूलवत् वेदना), भेद (विदारणवत् पीडा), संग [मलमूत्रका बाहर न निकलना],अंगभंग [हाथपांवमें टूट ने कीसी वेदना],शिरादिकोंका संकोच,वर्त (मलादिका गोलासाबंधना),हर्षण [रोमांचख डे होना],तृषा, कंपन, कर्कशता, अस्थियोंमें छिद्र, शोष, फडकन,वेष्टन [बांधनेकीपीडा] स्तंभ [बाहु,ऊरु,जांघकी जडता],कसैला स्वाद, काला वा लालवर्ण होना। ये सब वा यु के कर्म हैं ।

वायु के कर्म ।

पित्तस्य दाहरागोष्मपाकिताः॥५१॥
स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः सदनं मूर्च्छनं मदः।
कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पांडुरारुणवर्जितः ॥

अर्थ–दाह (सब अंगों में जलन होना , राग (ललाई) उष्णता, पाकिता (अन्नादि का पचना) पसीना, क्लेद [रुधिरादि में विकार] स्राव, कोथ, अवसाद, मूर्च्छा, मद-रोग, रस में कडवा खट्टा स्वाद आना,सफेद और लालरंग को छोड कर अनेक प्रकारके रंगों का वर्ण । ये सब पित्त के कर्म हैं ।

कफके कर्म ।

श्लेष्मणः स्नेहकाठिन्यकंडूशीतत्वगौरवम् ।
बंधोपलेपस्तैमित्यशोफापक्त्यतिनिद्रताः ॥
वर्णः श्वेतो रसौ स्वादुलवणौ विरकारिता ।
इत्येष रामपव्याप्ति यदुक्तं दोषलक्षणम् ॥
दर्शनायैत्वाईतस्तस्य मुपलक्षयेत् ।
व्याध्यवस्थाविभागज्ञः पश्यन्नातानप्रातिक्षणम्

अर्थ–स्निग्धता,कठोरता, खुजली, शीतलता, भारापन, स्रोतों का रुकजाना, लिप्तता, स्तैमित्य [शरीर में जडता] सूजन अपरिपाक, अतिनिद्रा, शरीर का रंग सफेद होना, रसमें मीठा और नमकीन स्वादआना काम में बिलंब लगाना ये कफ के कर्म हैं ।

इस रीतिसे वातादिक दोषोंके जोलक्षण कहे गये हैं यही सब रोगों में व्याप्त होतेहैं इस लिये * व्याधि की अवस्था और विभाग का जाननेवाला वैद्य रोगी का दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न इन तीन प्रकार से तथा प्रतिक्षण रोगी को देखने से ध्यान लगाकर सब बातों का विचार करै ।

रोगी को बार बार देखनेका कारण ।

अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥

+ "व्याधि की अवस्था जाननेवाला-वैद्य " इसका यह मतलबहै कि जैसे जैसे काल बदलता है वैसेही वैसे रोगकी अवस्था बदलती जातीहै जैसे अवस्था बदलती है वैसेही औषध बदलनी पडती है। नये ज्वर का उपचार जुदा है और पुराना होने पर उसी ज्वरका उपचार जुदा है। इस हेतु से व्याधि की अवस्था जानना वैद्यके लिये बहुत आवश्यकीय है ।

व्याधिविभागज्ञ का यह मतलब है कि बहुत बार एकही व्याधि में अन्य व्याधियां मिलजाती है उस समय उनका विभाग करके ऐसी चिकित्सा करना कि जिस से दूसरी व्याधिके विरुद्धनपडे। अथवा व्याधि की अवस्था जानने वाला वैद्य ऐसा भी अर्थ होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ रोग की परीक्षा केवल शास्त्र पढने सेही नहीं होसकती है। किंतु कर्म में प्रवृत्ति करने से चिकित्सा का ज्ञान उपजता है जैसे सुवर्ण और रत्नों के खोटे खरेकी पहचान बार बार देखने हीसे माळूम होती है । इसी तरह निरन्तर अभ्यास करनेसे, रोगी को देखने से रोग की दशा का विचार करने से, चिकित्सा कर्म में सिद्धि का प्रकाश करनेवाला ज्ञान पैदा होता है ।

व्याधिकी उत्पत्तिका प्रकार ।

दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।
तत्संकराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः

अर्थ–कोई व्याधि दृष्टापचारज होती है अर्थात् इसी जन्मके लौकिक व्याधि के कारण से उत्पन्न होजाती है और कोई व्याधि पूर्व जन्म कृत कर्मके फल के संस्कार से होतीहै और कोई कोई व्याधि ऐसी भी है जो इस जन्म और पूर्व जन्म दोनों के मिले हुए कर्मों से होती है । इस तरह व्याधि तीन प्रकार की होती है ।

उक्त तीनों के लक्षण ।

यथा निदानं दोषोत्थः कर्मजो हेतुभिर्विना ।
महारंभाऽल्पके हेतावातंको दोषकर्मजः ५८

अर्थ–वातादि दोषों के कुपित होने से जो व्याधि उत्पन्न होती है वह दोषज व्याधि होती है इसेही दृष्टापचारज कहतेहैं । जो व्याधि वातादि के निदान लघुरूक्षादि के सेवन विनाही उत्पन्न होतीहै उसे कर्मज कहतेहैं । और जो अल्प निदान के सेवनसे बहुत बढजातीहै उसे कर्मदोषज कहतेहैं ।

विविधव्याधि की चिकित्सा ।

विपरीतैर्विपर्यस्तैः कर्मजः कर्मसंक्षयात् ।
गच्छत्युभयजन्मा तु दोषकर्मक्षयात्क्षयम् ॥

अर्थ–दोष से उत्पन्न हुई व्याधि दोषों के उत्पन्न करने वाले पदार्थों से विपरीत द्रव्य सेवन करनेसे शांत होजाती है। कर्मज व्याधि कर्मका क्षय होने से और दोष कर्म दोनों से उत्पन्न हुई व्याधि दोनों का क्षय होने पर शांत होती है ।

व्याधि के प्रकारांतर ।

द्विधास्वपरतंत्रत्वाद्व्याधयः स्वैस्वैरुत्तरैर्द्विधा
पूर्वजाःपूर्वरूपाख्या जाताःपश्चाद्भवद्भयाः ॥

अर्थ–व्याधि दो प्रकार की होती है, एक स्वतंत्र, दूसरी परतंत्र । जो अपने ही निदान से कुपित दोष द्वारा व्याधि होती है वे स्वतंत्र अर्थात् प्रधान है और जो स्वतंत्र व्याधि के उत्पन्न होने से पीछे होती हैं वे परतंत्र वा अप्रधान हैं । इन में से परतंत्र व्याधि के भी दो भेद हैं एक पूर्वज अर्थात् पूर्वरूपाख्य। दूसरी पश्चाज्जात अर्थात् उपद्रव

स्वतंत्रादि व्याधि लक्षण ।

यथास्वजन्मोपशयाः स्वतंत्राः स्पष्टलक्षणाः
विपरीतास्ततोऽन्ये तु विद्यादेवं मलानपि ॥
तान्लक्षयेद्यहेतौ विकुर्वाणान् प्रतिज्वरम्

अर्थ–जिस व्याधि की उत्पत्ति और उपशय (सुखानुबंध) अर्थात् शांति शास्त्रोक्त प्रमाण से होती है उसे स्वतंत्र कहते हैं । स्वतंत्र व्याधि के लक्षण स्पष्ट होते हैं । परन्तु परतंत्र व्याधि इस से विपरीत होती है । उस के लक्षण स्पष्ट नहीं होते । उन का जन्म और उपशय शास्त्रोक्त प्रमाण द्वारा नहीं होता । जैसे रोग स्वतंत्र और परतंत्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भेद से दो प्रकार के होते हैं वैसे ही वातादिक सब मल [दोष] भी स्वतंत्र और परतंत्र दो प्रकार के होते हैं इस लिये सावधान होकर प्रत्येक रोग में विकृत भाव को प्राप्त हुए सब दोषों पर लक्ष रखना चाहिये।

परतंत्र व्याधियों का शमनोपाय।

तेषां प्रधानप्रशमे प्रशमोऽशाम्यतस्तथा ॥
पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्णं वा बलवंतमुपद्रवम् ।
व्याधिक्लिष्टशरीरस्य पीडाकरतरोहिसः॥

अर्थ–स्वतंत्र व्याधि के मिटने के साथ ही प्रायः परतंत्र व्याधियां मिटजाती हैं यदि स्वतंत्र व्याधि के दूर होने पर भी परतंत्र न मिटे तौ प्रधान चिकित्सानुसार उस के दूर करने का उपाय करै। यदि प्रधान रोग से उपद्रव बलवान् हो तो झटपट उस का उपाय करै क्योंकि रोग से जीर्ण हुए शरीर में उपद्रव अधिकतर कष्ट देता है।

नाम रहित रोग।

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नाहिसर्वविकाराणांनामतोऽस्तिध्रुवास्थितिः॥

अर्थ–जो वैद्यको किसी रोग का नाम मालूम न हो तो लज्जित होने की कोई बात नहीं है क्योंकि बहुत से रोग ऐसे हैं जिनका नाम वैद्यक शास्त्र में नहीं लिखा है इसलिये उचित है कि विकारका स्वरूप समझकर चिकित्सा करना चाहिये।

रोगों के नाम न होने का कारण।

स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानांतराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून्

अर्थ–सब रोगों का नाम न होने का कारण यह है कि वातादिक दोषों में से किसी एक दोष के कुपित होने के अनेक हेतु हैं। जिस जिस हेतु से दोष कुपित होते हैं वे वैसा ही विकार करते हैं। तथा कुपित दोष अपने अपने स्थानों को छोडकर अन्य स्थान में जाते हैं इस से भी अनेक विकार उत्पन्न होते हैं, जैसे दोष शरीर की संधियों में प्रविष्ट होकर जंभाई और ज्वर पैदा करता है। आमाशय में जाकर छाती के रोग और अरुचि उत्पन्न करते हैं। कंठ में प्रवेश करके कंठभ्रंश और स्वरसाद होता है। प्राणवाही नसों में प्रवेश करके श्वास और श्लेष्मा करतेहैं।

विकारानुसार चिकित्सा।

तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानांतराणि च ।
बुद्धा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम् ॥

अर्थ– ज्वरादिक विकारका उपादान कारण वायु आदिक दोषोंकी प्रकृति, रोगों के विशेष हेतु, रोगके विशेष स्थान, और हेतु विशेष को जानकर वैद्यको शीघ्र चिकित्सा करना उचित है। जैसे ज्वरादिक विकार किसदोषके कुपित होनेसे हुए हैं। वह दोष क्यों कुपित हुआहै इत्यादि बातें जाननीचाहियें

रोगकी दशविध परीक्षा।

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः ।
सत्त्वंसात्म्यंतथाऽहारमवस्थाश्चपृथग्विधाः
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे ।
योवर्ततेचिकित्सायांन स स्खलतिजातुचित्

अर्थ-वातादिक दोष और हरड आदि औषधों के निरूपण करनेमें मलधात्वादिक दूष्य, देश, दोषकाबल, काल, जठराग्नि, रोगीकीप्रकृति, रोगीकीआयु, सत्व [साहस, उत्साह, धैर्य, अध्यवसाय और आयुआदि], सात्म्य (रोगीके अनुकूल पदार्थ), तथा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आहार इनदसकी तथा इनके सूक्ष्मसे सूक्ष्म अवस्थाओं का अच्छी तरह विचारकरके जो चिकित्सा करनेमें प्रवृत होता है वह किसी तरह विफलप्रयत्न नहीं होसक्ता है ।

गुरुलघुव्याधि की परीक्षा ।

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्त्वदेहबलाबलात् ।
दृश्यतेऽन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेत्

अर्थ–व्याधिकी गुरुता, और व्याधि की अल्पताकी आकृति, रोगीका धैर्य, रोगीका देह और उसका बलाबल, इनके प्रमाणमें भी विपरीतता दिखाई दिया करती है इस लिये ऐसे प्रसंगमें बडी सावधानी की आवश्यकता है, जैसे रोगीको धैर्य विशेष हो । देह पुष्ट और बलवान हो तो रोग भारीहोने परभी हलका दिखाई देता है । इसी तरह रोगी में धैर्य कम हो । देह छोटा और निर्बल हो तो रोग हलका होनेपर भी भारीसा दिखाई देता है । इसलिये ऐसी ऊपरी बातोंको देखकर भूल न खाना चाहिये और रोगका सचामहत्व जानकर चिकित्सा करना उचित है।

कुवैद्यकी भूल ।

गुरुं लघुमिति व्याधिं कश्चपेक्षेत भिषग्जडः ।
अल्पदोषाकलनया पथ्ये विप्रतिपद्यते ७० ॥

अर्थ–कुत्सित अर्थात् केवल नामधारी वैद्य व्याधिकी आकृतिमात्र देखकर गुरुव्याधि को अल्प मानकर हीनमात्रावाली औषध देता है और अल्प व्याधिको गुरुमानकर भारी व्याधिके योग्य औषध दे देता है इससे रोगी का बडा अहित हो जाता है ।

हीनमात्र संशोधन ।

ततोऽल्पमल्पधीर्यं वा गुरुव्याधौप्रयोजितम्
उदीरयेत्तरां रोगान् संशोधनमयोगतः ७१ ॥

अर्थ–भारी व्याधि होनेपर अल्पमात्रावाला अथवा अल्प शक्तिवाला संशोधन (दोषोंको शुद्ध करनेवाली औषध) देनेसे रोग घटता नहीं किन्तु बढता है क्योंकि औषधका रोगके साथ हीनयोग होजाता है ।

अल्पव्याधिमें गुरुऔषधकानिषेध ।

शोधनं त्वतियोगेन विपरीतं विपर्यये ।
क्षिणुयान्न मलानेव केवलं बलमस्यति ७२ ॥

अर्थ–यदि अल्प व्याधि में अतिमात्र वा उग्रवीर्य संशोधन औषध दीजाय तो अतियोग होनेके कारण बडी दीर्घ औषध केवल रोगात्मक दोष को ही क्षीण करे यह बात नहीं किन्तु शरीर का भी नाशकर देती है ।

आशय रोगनाशक औषध ।

अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।
तथा युंजीत भैषज्यमा रोग्याय यथा नृणाम् ॥

अर्थ–इसलिये निरन्तर आयुर्वेद की चर्चा और आयुर्वेद के पठन पाठन में सदा दत्तचित्त होकर दोष, दूष्य, काल आदि सम्पूर्ण विषयोंकी आलोचना करता हुआ ऐसी औषधों का प्रयोग करे जिससे निश्चय आराम होजाय ।

दोष की वृद्धि के भेद ।

वक्ष्येऽतःपरं दोषा वृद्धिक्षयविभेदतः ।
पृथक् त्रीन् विद्धि संसर्गान्निचयांस्तत्र तु त्रयः ।
त्रीनेव समया वृद्ध्या षडेकस्याऽतिशय्यने ।
त्रयोदश समस्तेषु वृद्धे क्षीणेषु तु ७५
एकं तुल्याधिके द्वे च तारतम्यविकल्पनात्

अर्थ–अब यहांसे आगे दोषोंकी वृद्धि और क्षय से जो भेद होतेहै उनका वर्णन करेंगे– वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंमें जुदे जुदे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपने प्रमाणसे अधिक होतो तीन भेद होतेहैं यथा–वातवृद्ध, पित्तवृद्ध, कफवृद्ध । दो दो दोष मिले होंतो वह दोषोंका संसर्ग कहलाता है, वह संसर्ग तीन प्रकारका होता है किन्तु येही तीन प्रकार दो दो की समान वृद्धि से तीन प्रकारके और एक की अधिकता से छः प्रकार के होते हैं इस तरह सब मिलाकर नौ प्रकार के होतेहैं । जैसे–तुल्य वृद्ध वातपित्त, तुल्य वृद्ध वातकफ, तुल्य वृद्ध पित्तकफ । एक एक की अधिकतासे जैसेः– वातवृद्ध पित्तवृद्धतर, पित्तवृद्ध, वातवृद्धतर, कफवृद्ध पित्तवृद्धतर, पित्तवृद्ध कफवृद्धतर कफवृद्ध वातवृद्धतर, वातवृद्ध कफवृद्धतर । इस तरह नौ भेद हैं ।

तीनों दोष की वृद्धि का नाम सन्निपात है सन्निपात तेरह प्रकार का होता है इनमें से दो दोषों के विशेष वृद्धि से तीन भेद और एक दोष अधिक बढा हो तो तीन भेद इस तरह छः भेद हुए । इसी तरह तीनों दोषों के समानाधिक्य से एक भेद । और तीनों दोषों के तारतम्य के अनुसार छः भेद । इस तरह सब मिलाकर तेरह होतेहैं । जैसेः–

(१) कफवृद्ध बातपित्त अधिक वृद्ध ।
(२) पित्तवृद्ध वातकफ अधिक वृद्ध ।
(३) वात वृद्ध पित्तकफ अधिक वृद्ध ।
(४) पित्त कफवृद्ध वात अधिक वृद्ध ।
(५) वातकफ वृद्ध, पित्त अधिक वृद्ध ।
(६) वातपित्त वृद्ध, कफ अधिक वृद्ध ।
(७) वात पित्त कफ समान वृद्ध ।
(८) वातवृद्ध, पित्त वृद्धतर कफवृद्धतम ।
(९) वातवृद्ध, कफ वृद्धतर पित्तवृद्धतम ।
(१०) पित्तवृद्ध, कफवृद्धतर, वातवृद्धतम ।
(११) पित्तवृद्ध, वातवृद्धतर, कफवृद्धतम ।
(१२) कफवृद्ध, वातवृद्धतर, पित्तवृद्धतम ।
(१३) कफवृद्ध, पित्तवृद्धतर, वातवृद्धतम ।

क्षीण दोष के गुण ।

पंचविंशतिमित्येवं वृद्धैःक्षीणैश्च तावतः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त रीति के अनुसार दोषों की वृद्धि के कारण दोषोंके २५ भेद होतेहैं अर्थात् वृद्ध पृथक् दोष तीन प्रकारके, दो २ वृद्ध दोष नौ प्रकार के, वृद्ध सन्निपात तेरह प्रकार के । इसी तरह क्षय भेदसे भी पचीस भेद होते हैं । ऊपर कहे हुए उदाहरणों में जहां जहां वृद्ध शब्द का प्रयोग है वहां वहां क्षीण शब्दका प्रयोग करने से सहजहीमें पचीस भेद मालूम होजातेहैं, जैसेः–(पृथक् तीन) क्षीणवात, क्षीणपित्त, क्षीणकफ(दो दोके नौ) तुल्य क्षीण वातपित्त, तुल्य क्षीण पित्तकफ, तुल्य क्षीण वातकफ, वातक्षीण पित्तक्षीणतर पित्त क्षीण वातक्षीणतर, वातक्षीण कफक्षीणतर, कफक्षीण वात क्षीणतर, कफक्षीण पित्तक्षीणतर, पितक्षीण कफ क्षीणतर (सन्निपात के तेरह) वातक्षीण पित्तकफक्षीणतर, पित्तक्षीण वातकफक्षीणतर, कफक्षीण पित्तवातक्षीणतर, वातपित्तक्षीण कफक्षीणतरतर, पित्तकफक्षीण वातक्षीणतर, वातकफक्षीण पित्तक्षीणतर, तुल्यक्षीण वातपित्तकफ कफक्षीण पित्तक्षीणतर, वातक्षीणतम, वातक्षीण कफक्षीणतर पित्तक्षीणतम, पित्तक्षीण कफक्षीणतर, वातक्षीणतम, कफक्षीण वात-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षीणतर पित्तक्षीणतम, वातक्षीण पित्तक्षीण तर कफक्षीणतम, पित्तक्षीण वातक्षीणतर कफक्षीणतम। इसतरह ये पचीस भेद हैं।

क्षयवृद्धि और समताके भेद।

एकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ते पुनश्च षट्।
एकक्षयद्वन्द्ववृद्धा सविपर्ययया ऽपि ते ।
भेदाद्विषष्टिर्निर्दिष्टास्त्रिषष्टिः स्वास्थ्यकारणं।

अर्थ–सन्निपातस्थ तीन दोषोंमें से एक दोषकी वृद्धि, एक दोषकी समता और एक दोषकी क्षीणता से छः भेद होते हैं। जैसे– [१] वातवृद्ध,पित्तसम, कफक्षीण। (२) पित्तवृद्ध। वातसम। कफक्षीण। (३)कफवृद्ध। पित्तसम। वातक्षीण। (४)कफवृद्ध। वातसम। पित्तक्षीण। (५)वातवृद्ध। कफसम। पित्तक्षीण। (६)पित्तवृद्ध, कफसम। वातक्षीण।

इसीतरह एकदोषका क्षय और दो दोषोंकी वृद्धिसे तीन प्रकार और इनके विपरीत भावसे अर्थात् दो दोषोंकी क्षीणता और एक दोषकी वृद्धिसे तीनप्रकार कुल मिलकर छः भेद होते हैं। जैसे (१)वातक्षीण। पित्तकफवृद्ध। (२)पित्तक्षीण। वातकफवृद्ध। (३)कफक्षीण, वातपित्तवृद्ध। (४)वातपित्तक्षीण, कफवृद्ध। (५ वातकफक्षीण,पित्तवृद्ध। [६]पितकफक्षीण, वातवृद्ध। इसतरह सन्निपात में दोषोंके वृद्धिक्षयभेदसे दोषों के रूपान्तर होजाते हैं।

इनमें वृद्धि भेदसे पच्चीस, क्षयभेदसे, पच्चीस, तथा क्षयवृद्धि और समानभेदसे बारह भेद हैं, सब मिलाकर ६२ भेद हुए। इनके सिवाय तिरेसठवां भेद और हैं वही आरोग्य ताका कारण है अर्थात् वात पित्त कफ ये तीनों अपने अपने प्रमाणसे रहे आवें। ऊपर कहे हुए ६२ भेदही रोगके कारण हैं। इससे यह मतलब निकलता है कि दोषोंकी विषमता ही रोगका हेतु है।

दोषभेदों में असंख्यता।

संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तथैषां
दोषांशक्षयसमतावि वृद्धभेदैः ।
आनंत्यं तरतमयोगतश्च यातात्॥
जानीयाद्बहुचितमानसो यथास्वम्॥ ७८॥

अर्थ-दोषोंकी वृद्धि और क्षीणता से जो ६२ भेदकहे गयेहैं यहकेवल दिग्दर्शन मात्र हैं। इनसे नये विद्यार्थियोंको दोषोंकी व्युत्पत्तिका केवल मार्ग दिखाया गया है। नहीं तो रसरक्तादि सातधातुओं के संसर्ग, उन की क्षय, वृद्धि और समता तथा तारतम्यके अनुसार दोषोंके अनन्त भेद होते हैं। इस लिये बहुत सावधानीसे विवेचना पूर्वक चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये।

रसादिके संयोगसे जो दोषोंके भेद होते हैं उनका दिग्दर्शन इसतरह है कि पृथक् २ रसवातपित्त कफकी वृद्धिके तीन भेद। दो दो के संसर्गसे तीन। और सन्निपात के तेरह। सब मिलाकर पच्चीस हुए। फिर रसादिकी क्षीणतासे पच्चीस। फिर तारतम्य भेदसे बारह और अपने प्रमाण में स्थित रस वात पित्त कफ का एक इस तरह रसके संयोग से ६३ भेद हुए।इसीतरह रक्त मांसादिके संयोग से जानने चाहिये। इसतरह सातधातुओंके संसर्गसे दोषोंके ४४१ भेद होते हैं। फिर इनमें मलादिके संयोगसे अनन्त भेद होजाते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं। इनसबको जान लेनेसे वैद्य कदापि भूल नहीं खाता है, कहाभी है" यः स्याद्रसविक स्पज्ञः स्याच्च दोषविकल्पवित्। नस मुह्येद्वि कारणां हेतुलिंगोपपत्तिषु" ॥

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथाऽतो दोषोपक्रमणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहां से दोषोपक्रमणीय (दोषों की चिकित्सा में हितकारक) अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वायुका उपचार।

"वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदः संशोधनं मृदु। स्वाद्वम्ललवणोष्णानि भोज्यान्यभ्यंगकर्म क्षौम् वेष्टनं त्रासनं सेको मद्यं पौष्टिकमौडिकम्। स्निग्धोष्णावस्तयो बस्तिनियमः सुखशीतला दीपनैः पाचनैः सिद्धाःस्नेहाश्चानेकचोदिताः। विशेषतस्त्वेषिशितरसतैलानुवासनम् ३॥

अर्थ-वायुकी चिकित्सा करने में प्रथम ही स्नेहपान उचित है, क्योंकि यह सब में श्रेष्ठ है पीछे स्वेदन (पसीने देना) कर्म-करै। स्नेहन स्वेदन के पीछे हलका वमन-विरेचन देवे [तीक्ष्णदेने से वातप्रकोपका डर रहताहै), मधुर अम्ललवण और उष्ण भोजन का पथ्य करावे। हाथ से तेल लगवाकर धीरे२ मर्दन करना, वस्त्र लपेटकर बांध देना, त्रास दिखाना [शस्त्रधारी मनुष्य, राजकर्मचारी वा अन्य त्रासोत्पादक वस्तु-दिखाना, भय वा शोक से वायु प्रकुपित होताहै, त्रासते नहीं], दसमूलादि के काथ से सेक अर्थात् तरादेना, पौष्टिक और गौडिक मद्यपान स्निग्ध और उष्णवस्ति (स्निग्धोष्णवस्ति कहने का यह प्रयोजनहै कि रूक्षशीत वस्ति न देवै) वस्तिनियम (स्नेहपानादि पांच प्रकारके कार्य करके वस्ति प्रदान), सुखवृत्ति से रहना, दीपन-पाचन द्रव्यों मे सिद्ध किये हुए तिल, चिरौंजी, अखरोट आदि का तेल, और विशेष करके पुष्टमांस रस युक्त तेल की अनुवासन वस्ति ये दस उपचार वायुके हैं।

पित्तका उपचार।

पित्तस्य सर्पिषः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम्। स्वादुतिक्तकषायाणि भोजनान्यौषधानि च सुगंधशीतहृद्यानां गंधानामुपसेवनम्। " कण्ठे गुणानां हाराणां मणीनामुरसा धृतिः॥ कर्पूरचन्दनोशीरैरनुलेपः क्षणे क्षणे। शीतांशुचंद्रमाः सौधं हारि गीतं हिमोऽनिलः अंगनासुखं मित्रं पुत्रः स्निग्धमुग्धवाक्। छत्रानुवर्तिनो दाराः प्रियाः शीलविभूषिताः शीतांबुधारागर्भाणि गृहाण्युद्यानदीर्घिकाः। सुतीर्थपिटुलस्वच्छसलिलाशयसैकते॥ ८॥ सौधोत्तलजलतीरांते कायमाने द्रुमाकुले। सौम्याभावाःपयःसर्पिर्विरेकश्चविशेषतः

अर्थ-पित्तके प्रकुपित होने पर घृतपान मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन (जुलाब), मधुर तिक्त कषाय भोजन, मधुर तिक्त कषाय औषध, सुगंधित, शीतल और मनोहर इत्रादि का सूंघना, मोती के हार और लडें कंठ में पहरना, मरकतमणि, चन्द्रकान्तमणि पद्मरागादिक मणि छातीपर धा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रण करना । कपूर चन्दन खस इनका लेप थोडी थोडी देरमें करना, प्रदोष काल का सेवन, चन्द्रमा की चांदनी में बैठना, चूने की कलई से पुते हुए घरमें रहना, मनहरण गीतों का सुनना, ठंडे पवन का सेवन अनियंत्रणसुख मित्र (ऐसा मित्र जिसके आगे किसी बात के करने की रोक टोक न हो), मधुरी मधुरी तोतली वाणी बोलने वाली संतान, पति के अनुकूल इच्छाके अनुसार वर्तनशील और प्राणवल्लभास्त्री के साथ हास्य विनोद, शीतल जलके झव्वारे जिसमें चलरहेहों ऐसे घरमें रहना, उपवन और वाटिकाओं में रहना, पुष्करिणी के किनारों पर वृक्षों के तले पुर्णकुटी में रहना शांत भाव से रहना, घी और दूध पीना तथा विशेष करके विरेचन ये सब प्रकुपित पित्त के उपचार हैं ।

कफ के उपचार ।

श्लेष्मणो विधिनो युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।
अन्नंरूक्षाऽल्पतीक्ष्णोष्णकटुतिक्तकषायकम् ॥
दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रीतिप्रजागरः ।
अनेकरूपो व्यायामश्चिन्ता रूक्षं विमर्दनम् ॥
विशेषाद्वमनं यूषः क्षौद्रं मेदोघ्नमौषधम् ।
धूमोपवासगंडूषा निःसुखत्वं सुखाय च १२॥

अर्थ–प्रकुपित कफमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार तीक्ष्ण वमन और तीक्ष्ण विरेचन देवै । रूक्ष, अल्प, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, तिक्त, और कषाय भोजन देवै । पुराना मद्य पीवै स्त्रीसंभोग का सुख अनुभव करै । जागरण करै । मल्लयुद्ध, धनुराकर्षणादि प्रकार का व्यायाम करना, चिंता करना, रूक्ष मर्दन कराना, विशेष करके वमन, यूष, मधु, मेदनाशक औषध, धूमपान, उपवास, गंडूषविधि, तथा मन, वाणी और कर्म में जिससे क्लेश हो वह काम करना । ये सब प्रकुपित कफ के उपचार हैं ।

दोषों के उपचार की विधि।

उपक्रमः पृथग्दोषान् योऽयमुद्दिश्य कीर्तितः ।
संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत् १२

अर्थ–वातादिक प्रत्येक दोषों में जो जो चिकित्सा कही गई हैं, वेही वेही द्वन्द्व और सन्निपाति दोषों में भी मिलाकर करनी चाहिये जैसे वातपित्त के संसर्ग में वात और पित्त में कही हुई चिकित्सा मिलाकर करै । इसी तरह सन्निपात में भी करै ।

अन्य उपचार ।

ग्रैष्मः प्रायो मरुत्पित्ते वासंतः कफमारुते ।
मरुतो योगवाहित्वात्कफपित्ते तु शारदः ॥

अर्थ–वात और पित्त के संसर्ग में ग्रीष्म ऋतुचर्या में कही हुई चिकित्सा करै । जैसे ग्रीष्म ऋतुमें मधुर, कटु, अम्ल, व्यायाम, सूर्य की किरणें त्याज्य है और मधुरादि अन्न सेव्य हैं, वैसेही वातपित्त में लवणादि त्याज्य है और मधुरादि सेव्य हैं । वात कफ के संसर्ग में वसंत ऋतुचर्य्यामें कहे हुए तीक्ष्ण नस्य वमनादि रूप चिकित्सा का प्रायः उपयोग करै । कफ पित्त के संसर्ग में शरद ऋतुचर्य्या में कही हुई चिकित्सा करै । ग्रीष्ममें अत्यन्त शीतल सेवन कहा है और वसंत में तीक्ष्ण वमन और नस्यादि का प्रयोग कहा है । किन्तु ये दोनों ही अत्यन्त वातकारकहैं तब किस तरह वातपित्त और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वात कफ के संसर्ग में क्रमशः ग्रीष्म और वसंत में कहा हुआ विधान काम में आसकता है इस शंका का यह समाधानहै कि पवन योगवाही होता है अर्थात् जिस दोष से मिलजाता है उसी दोष का कार्य करने लगता है। इस लिये पित्तयुक्त वायु की पित्त चिकित्सा और कफयुक्त वायु की कफ चिकित्सा न्यायसंगत है सन्निपात में "भेनेसाधारणं सर्वं" इस वचन के अनुसार वर्षा ऋतुचर्य्या में कहा हुआ उपचारकरै, क्योंकि शास्त्र में कहा है कि वर्षा ऋतु में तीनों दोष प्रकुपित होते हैं।

उपचार का काल।

चय एव जयेद्दोषं कुपितं त्वविरोधयन्। सर्वकोपे बलीयांस शेषदोषविरोधतः १५॥

अर्थ– जिस कालमें वातादिक दोषोंका संचय होताहै उसी समय दोषोंके जीतनेका उपाय करै, परन्तु दोषोंके प्रकुपित होनेकी प्रतीक्षा न करै। संचयकालमें ही दोषों की शुद्धि होजाने से वे फिर कुपितही नहीं होने पाते। दो दोष मिलकर कुपित हों तो ऐसी चिकित्सा करै जो दोनों में से किसी के विरोधी न हो। तीनों दोषोंके कुपित होनेपर बलवान की चिकित्सा करै, पर वह चिकित्सा शेष दो दोषोंकी विरोधी न हो।

विरोधी चिकित्सा न करनेका कारण।

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्। नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्

अर्थ– जिस चिकित्सा से एक व्याधि शान्त होकर दूसरी खडी होजाय वह चिकित्सा विशुद्ध नहीं होतीहै। विशुद्ध चिकित्सा वही है जो एक रोगको शान्त करके दूसरों को न तो बढावै, न पैदा करै।

शाखाओं में दोषोंका आना जाना।

व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्यादहिताचरणादपि। कोष्ठाच्छाखास्थिमर्माणि द्रुतत्वान्मारुतस्य च दोषायांति तथातेभ्यः स्रोतोमुखविशोधनात् बृद्धाभिष्यंदनात्पाकात्कोष्ठवयोश्च निग्रहात्

अर्थ– कोष्ठ अर्थात् उदर से दोष निकलकर हाथ पांव आदि शरीरके अवयव अस्थि और मर्मस्थानमें जातेहैं, इसके चार हेतुहैं (१) व्यायाम कसरत करनेके श्रम से वायु ऊपर को चढताहै और कसरत से पैदा हुए क्षोभ, श्रम और गरमी के कारण शिथिल और चलायमान दोष कोष्ठ से अवयव, अस्थि और मर्मस्थानमें चले जातेहैं। (२) गरमी– तीक्ष्ण उष्णताके कारण दोष पिघल कर, गरमीके कारण खुलेहुऐ स्रोतोंके मुखमें होकर शाखाओं में घुस जाते हैं। (३) अहित सेवन–अहित पदार्थोंके सेवन से दोष अपने प्रमाण से बढकर शाखादिमें जातेहैं जैसे वर्षा ऋतुमें जल अपने जलाशय में न समाकर अन्यत्र बहने लगताहै। (४) वायुका शीघ्र गमन- वायुके शीघ्रगामी होनेके कारण दोष उसके साथ साथ कोष्ठसे अस्थिआदिमें चले जातेहैं

शाखास्थि और मर्मस्थानमें गये हुए दोष, जब दोषवाही नलियों के मुख शुद्ध होजातेहैं तब कोष्ठमें पीछे चले जातेहैं। इसके भी चार कारण हैं- शाखोंमें गए हुए दोष वहां न समाने के कारण, कफ उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंके सेवनसे, पाचनादि औष-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रियोंसे दोषोंका पाक होजानेसे, तथा वायु का निग्रह करनेसे दोष शाखास्थि और मर्म स्थानसे कोष्ठमें वापिस आजातेहैं ।

कोष्ठमें दोषोंका कर्म ।

तत्रस्थाश्च विलम्बन्ते भूयो हेतुप्रतीक्षिणः ।

अर्थ– दोष कोष्ठमें जाकर रोगादि की उत्पत्ति नहीं कर सकतेहैं क्योंकि दूसरे स्थानमें जाकर निर्बल और शक्तिहीन हो जातेहैं और कुपित करनेवाले अन्य हेतुओं की प्रतीक्षा करते रहतेहैं ।

दोषोंके कुपित होनेका कारण ।

ते कालादिबलं लब्ध्वा कुप्यन्त्यन्याश्रयेष्वपि

अर्थ– वही दोष काल, देश, दूष्य, प्रकृति, अपथ्य आदि समान गुणवाले हेतुओं से बल प्राप्त करके कोष्ठस्थ दोष शाखास्थि मर्मस्थानों में और शाखास्थिमर्माश्रितदोष कोष्ठमें रोग उत्पन्न करते हैं ।

परस्थानगत दोषकी चिकित्सा ।

तत्राऽन्यस्थानसंस्थेषु स्वीयामबलेषु च ।
कुर्याच्चिकित्सां स्वामेवबलेनान्यानिभाविषु
आगंतुं शमयेद्दोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य वा ।

अर्थ–अन्यस्थानगत संपूर्ण दोष जबतक निर्बल रहते है तबतक किसी प्रकार का रोग उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते हैं उनकी निज चिकित्सा न करके केवल स्थानी दोष के संबधकी चिकित्सा करनी चाहिये । लेकिन जब परस्थानगत दोष बलवान होकर अपनी शक्ति के द्वारा स्थानी दोष का पराभव करके स्थित होजाय तब स्थान संबंधी दोष की चिकित्सा न करके बलवान दोष की चिकित्सा करै अथवा प्रथम स्थानी दोष का शमन करके फिर आगन्तु दोष का शमन करै ।

तिर्य्यक स्थानगत दोष ।

प्रायस्तिर्यग्गतादोषाःक्लेशयंत्यातुरांश्चिरम्
कुर्यान्न तेषु त्वरया देहाग्निबलविक्रियाम् ।
शमयेत्तान्प्रयोगेण सुखं वा कोष्ठमानयेत् ॥
ज्ञात्वा कोष्ठप्रपन्नांश्च यथाऽसन्नं विनिर्हरेत्

अर्थ–शरीरस्थ दोष जब तिर्य्यक स्थान में चले जाते हैं तब रोगी को बहुत काल तक कष्ट पहुंचाते है, इस लिये वैद्य को उचित है कि ऐसे दोष की चिकित्सा करने में शीघ्रता न करै । शास्त्रोक्त चिकित्सा के अनुसार तिर्य्यग्गत दोषों की शान्ति करै अथवा जिस उपाय से देहमें पीडा न होवै उससे उन दोषों को शनैः शनैः कोष्ठ में लावै । जब वे कोष्ठ में आजांय तब जो मार्ग उनके पास हो उसी के द्वारा उनके बाहर निकालने का प्रयत्नकरै । जैसे जो गुदा निकट हो तो विरेचन देवै, मुख निकट हो तो वमन करावै, नासिका निकट हो तो नस्यकर्म करै, इत्यादि । आमस्थान, अग्निपक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताधार, हृदय, मलाशय और फुसफुस इनको कोष्ठ कहते हैं ।

साम तथा निराम मल के लक्षण ।

स्रोतोरोधबलभ्रंशगौरवानिलमूढताः २३ ॥
आलस्यापक्तिनिष्ठीवमलसंगारुचिक्लमाः ।
लिंगं मलानां सामानां निरामाणां विपर्ययः

क्षेपक ।

विण्मूत्रनखदंतत्वक्चक्षुषां पीतता भवेत् ।
रक्तत्वमतिकृष्णत्वं पृष्ठास्थिकटिसंधिरुक् ॥
शिरोरुक् जायते तीव्रा निद्रा विरसता मुखे ।
क्वचिच्च श्वयथुर्गात्रे ज्वरोऽतीसारहर्षणम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-साम अर्थात् आमसहित मल के लक्षण यह हैं कि मलवाहिनी शिराओं का अवरोध, बलकी हानि, शरीर में भारापन, वायु की स्तब्धता, आलस्य, आहार का न पचना, मुख से लार गिरना, मल की रुकावट, अन्न में अरुचि, और ग्लानि। जो आमरहित मल हो तो उसके लक्षण इससे विपरीत होते हैं जैसे स्रोतों की खुलावट, बलवत्ता आदि।

आम का लक्षण।

ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्। दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥ २५॥

अर्थ-जठराग्नि की दुर्बलता के कारण विना पका हुआ और वातादि दोष से दूषित हुआ आमाशयगत रस नामक प्रथम धातुको आम कहते हैं।

अन्यमत।

अन्येदोषेभ्यएवातिदुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्च्छनात् कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदंत्यामस्य संभवम्॥

अर्थ-इस विषय में अन्य आयुर्वेदाचार्यों का यह मत है कि अत्यन्त बिगडे हुए वातादिक दोष आपस में मिलजाते हैं तब आमकी उत्पति होती है जैसे कोदों धान्य से विषकी उत्पत्ति कही गई है॥

साम का अर्थ।

आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः। साम इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः

अर्थ-वातादिदूषित और आमसंयुक्त जो दोष और दूष्य पदार्थ हैं उन्हें साम कहते हैं और जो रोग वातादिक दोषोंसे उत्पन्न होते हैं पर वे आमसे युक्त हों तो साम कहलाते हैं। जैसे सामज्वर, निरामज्वर (इनका विशेष विवरण ज्वरके प्रकर्ण में होगा)।+

बाहर न निकालने योग्य सामदोष।

सर्वदेहप्रविसृतान्सामान् दोषान्न निर्हरेत्। लीनान्धातुष्वनुत्क्लिष्टान्फलादामाद्रसानिव। आश्रयस्य हि नाशाय ते स्युर्दुर्निर्हरत्वतः।

अर्थ-सामदोष जो संपूर्ण देहमें व्याप्त होगये हों, रसरक्तादि धातुओंमें लीन हों और अपने स्थानसे चलित न हुए हों उनको वमन विरेचनादि द्वारा बाहर न निकालना चाहिये। क्योंकि इनका निकालना बहुत कठिन है, जैसे कच्चे आममें से रस निकालने का प्रयत्नकरने से फलका नाश होजाता है, वैसेही आमके निकालने से शरीरका नाशहो जाता है।

आमदोषमें कर्तव्य।

पाचनैर्दीपनैः स्नेहैस्तान्स्वेदैश्च परिप्लुतान् शोधयेत् शोधनैःकाले यथास्वं यथाबलम्

अर्थ-ऐसे रोगमें यह करना चाहिये कि ज्वराध्यायमें कहे हुए, तथा जठराग्निको प्रदीप्तकरनेवाले पाचन द्रव्य, स्नेहन और

+ आम के लक्षण अन्यत्र इस तरह लिखे हैं:-द्रवं गुर्वसेकवर्णं हेतुः सर्वरोगाणां स्निग्धपिच्छिलमाततंतुमदतुवद्धशूलदुर्गंधी त्यादि। सामलक्षणानिः— वायुरामान्वयः सार्तिराध्मानकृदस्तंचरः। दुर्गंधमसितं पित्तंकटुकंबलहंगुरु आविलस्तंतुमांस्त्यानः श्लेष्मापिच्छिलः कफः। विपर्य्ययेतु पक्वत्व तथाताम्रसमेचक्रम्। पीतंच पितमच्छंच-श्लेष्माच्छःपिंडितोऽथवा।विशदश्च सफेनश्चधवलोमधुरोरस इति॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विधिपूर्वक स्वेदन प्रयोग द्वारा आमदोष को पकावे फिर दोषकी शुद्धि करने के समय रोगीकी शक्तिके अनुसार मृदु, मध्य वा तीक्ष्ण वमन विरेचन द्वारा उनको पासवाले मार्ग द्वारा बाहर निकालनेका यत्नकरै।

दोषोंके निकटवर्ती स्थान।

हंत्याशु युक्तं वक्त्रेण द्रव्यमामाशयान्मलान्।
घ्राणेन चोर्ध्वजत्रूत्थान् पक्वाधानाद्गुदेन च॥

अर्थ-मुखके द्वारा योजना की हुई औषध मुखमार्ग अर्थात् वमन से आमाशयस्थ दोषको दूर करती हैं। नासिका द्वारा योजना की हुई औषध कंठ से ऊपरके रोगों को दूरकरती है। और गुदा द्वारा योजना कीहुई औषध गुदामार्ग से पक्वाशयस्थ दोषोंको निकालदेती है।

दोषों के रोकने का निषेध।

उत्क्लिष्टानध ऊर्ध्वं वा न चामान्बहतःस्वयम्।
धारयेद्भैषजैर्दोषान् विधूतास्ते हि रोगदाः।

अर्थ-जो आम दोष अपने आप ऊपर वा नीचे के मार्ग द्वारा निकलने लग गये हो तो रोकने की दवा देकर उनका रोकना अच्छा नहीं होता क्योंकि बहिर्गमनोन्मुख दोष रोकने से रोगों को उत्पन्न करते हैं।

बहिर्गमनोन्मुख दोषों में कर्तव्य।

प्रवृत्तान् प्रागतो दोषानुपेक्षेत हिताशिनः॥
विबद्धान् पाचनैस्तैस्तैः पाचयेन्निर्हरेत वा।

अर्थ-जब दोष बाहर की ओर निकलने में प्रवृत होगये हों तब प्रथम ही हितकारी भोजन करता हुआ उनकी उपेक्षा करै अर्थात् किसी प्रकार की रोकने वाली औषध न देकर केवल हितकारी भोजन करै। और जो दोष अच्छी तरह न निकलते हों तो यथोक्त पाचन द्रव्य द्वारा उनका परिपाक करै अथवा बाहर निकालने का उपाय करै।

दोषशोधन का काल।

श्रावणे कार्तिके चैत्रे मासि साधारणेऽक्रमात्।
ग्रीष्मवर्षाहिमाचितात् वाय्वादीनाशु निर्हरेत्।

अर्थ-ग्रीष्मऋतु में संचित हुए वायु को श्रावण में निकाले। वर्षा ऋतु में संचित हुए पित्त को कार्तिक में शरद ऋतुमें शोधन करै। हेमंत और शिशिर ऋतु में संचित कफ को चैत्र के महिने में वसंत ऋतु में शोधन करै। ये दोष की शुद्धि का साधारण काल है, इस लिये इस समय में शोधन करना उचित है।

संचय काल में दोष शुद्धि का निषेध।

अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः॥
संधौ साधारणेतेषांदुष्टान्दोषान्विशोधयेत्।

अर्थ-ग्रीष्म काल में अत्यन्त गर्मी पडती है, वर्षा में अत्यन्त वर्षा होती है और शीत ऋतु में ठंड अधिक पडती है। इस लिये इन ऋतुओं के संधिकाल में साधारण काल होता है उस समय बिगडे हुए दोष का निकालना उचित है। इस का कारण यह है कि ग्रीष्म काल में बलका आदान काल होने से शरीर ग्लानियुक्त होजाता है और सूर्य की प्रचंड किरणों से संतप्त होकर पिपासा और क्लान्ति से व्याकुल हुआ मनुष्य दोषों के अत्यन्त लीन होजाने के कारण शिथिल शरीर होजाता है! औषधभी सूर्य की प्रखर किरणों से संतप्त होकर उष्ण और तीक्ष्ण हो जाती हैं, इसलिये औषध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का दोष के साथ अतियोग होजाने के कारण अच्छा फल न मिलकर केवल हानि होती है। वर्षा ऋतु में अति वृष्टि होने से पृथ्वी में तरी घुसजाती है, अग्नि मंद पड़ जाती है, तथा आदान काल होने के कारण शरीर भी दुर्बल होजाता है। उस समय औषध भी पानी पी पी कर अल्पवीर्य हो जाती हैं और पृथ्वी की बाष्प (अवखरात) लगने से जल भी जाती है, इसलिये ऐसी औषध का दोष के साथ अयोग हो जाता है और गुण के बदले अवगुण करती है और शीत ऋतु में अत्यन्त ठंड पडने के कारण शरीर अति वातविष्टब्ध स्निग्ध और गुरु दोष युक्त होजाता है। और उष्णस्वभाववाली औषध भी जाड़ा मारने के कारण मंदवीर्य होजाती हैं और दोष के साथ उन का अयोग होजाता है। इन हेतुओं से अति ग्रीष्म, अति वृष्टि और अति शीत के दिनों में वमनविरेचनादि संशोधन औषधों का प्रयोग करना उचित नहीं है। इस काल के लिये सन्निकाल ही उचित समय है।

शोधन का अन्यकाल।

स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिविशेषतः॥

अर्थ-ऊपर जो दोषके संशोधनका काल कहागया है, वह उसी के लिये है जिसका शरीर निरोग है, किन्तु रोगीहुए के दोषका संशोधन काल तो रोगकी अवस्था पर निर्भर है।

अतिशीतोष्णकाल में कर्तव्य।

कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारंयथायथम्।
प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं महापयेत्

अर्थ-अत्यन्त जाडे, गरमी वा वर्षा का लमें रोग उत्पन्न होगया हो और वमन विरेचन द्वारा संशोधन की आवश्यकताहो तो शीत, उष्ण और वृष्टिका यथायथ प्रतीकार अर्थात् कृत्रिम ऋतुके गुण उत्पादन कर के संशोधनादि रूप चिकित्सा करना चाहिये। परन्तु चिकित्साका काल कदापि हाथ से न जानेदे। क्योंकि रोगके बढ जाने से रोगी के प्राणनाश होने की संभावना हैं। कृत्रिम ऋतुगणका यह प्रयोजन है कि यदि अन्त ऋतुमें रोग होनेपर संशोधनकी आवश्यकता है तो रोगी को गर्भगृह में रक्खे जहां ठंडी हवा प्रवेश न करसके, अग्नि से घरको गरम रक्खे। ग्रीष्म ऋतुमें रोगी को ऐसे स्थान में रक्खे जहां फव्वारे चलते हों मकान शीतलहो जिसमें गरमी का ताप मालूम न पडे। इसी तरह वर्षा ऋतुमें भी वर्षा की सरदी से बचने का उपाय करे।

औषधका समय।

युंज्यादन्नस्यमध्येऽन्ते कवलांतरे।
ग्रासे ग्रासे मुहुः सायं सामुदं निशि चौषधम्

अर्थ-औषध सेवनके ये दश काल हैं। यथा-- (१) अनन्न [जो औषध खाई जाती है उसके पचनेके पीछे अन्नखाना) (२) अन्नादि (औषध के सेवन करतेही भोजन करना), (३) मध्यकाल (आहारके बीचमें औषध सेवन), [४] अंतकाल (भोजन करके औषध सेवन), (५) कवलांतर [एक ग्रास खाकर औषध लेलेना फिर दूसरा ग्रास खाना], [६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रासे ग्रासे [ग्रास ग्रास में मिलाकर औषध खाना], (७) मुहुर्मुहुः (भोजन करके या विना भोजन करे थोडी थोडी देरके अन्तरसे औषध सेवन), (८) मान्न (आहार के साथ औषध सेवन), (९) सामुद्ग (आहार के पहिले और पीछे औषध सेवन), (१०) निशि (रात्री में सोनेके समय) ।

रोगपरत्व से औषधकाल ।

कफोद्रेके गवेऽनन्नं बलिनो रोगरोगिणोः ।
अन्नादौ विगुणेऽपाने समाने मध्य इष्यते ॥
व्यानेऽन्ते प्रातराशस्य सायमाशस्य चोत्तरे ।
ग्रासग्रासांतयोः प्राणे प्रदुष्टे मारुतेऽग्निगे ॥
मुहुर्मुहुर्विषच्छर्दिहिध्मातृट्श्वासकासिषु ।
भोज्यं सभोज्यं भैषज्यं भोज्यैश्चित्रैररोचके
कम्पाक्षेपकहिध्मासु सामुद्गं लघुभोजिनाम् ।
ऊर्ध्वजत्रुविकारेषुस्वप्नकाले प्रशस्यते ॥

अर्थ–यदि रोग और रोगी दोनों बलवान हों तो कफ की अधिकता वाले रोग में अनन्न औषध देवे अर्थात् भोजन करने से बहुत पहिले औषध देनी चाहिये जिससे औषध पचजाय क्योंकि अनन्न औषध अति वीर्य होती है । अपान वायु के प्रकुपित होने पर आहार के करने से पहिले औषध सेवन करे अर्थात् औषध सेवन करते ही भोजन करले । समान वायुके प्रकुपित होने पर भोजनके बीच में औषध सेवन करे । व्यान वायुके कुपित होने पर भोजन के अंत में प्रातःकाल का भोजन करते ही औषध सेवन करे उदान वायुके कुपित होनेपर सायंकालका भोजन करने के पीछे औषध सेवन करे । प्राणवायु के कुपित होनेपर ग्रास ग्रास में मिलाकर वा दो दो ग्रासके बीचमें औषध सेवन करनी चाहिये । विष, वमन, हिचकी, तृषा, श्वास, कासादि रोगोंमें बार बार औषध देनी चाहिये । अरुचिमें अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थोंके साथ औषध देवे । कंपनवायु, आक्षेपक, और हिक्का रोगमें लघुभोजन करे और आहार के पहिले और पीछे औषध देवे । कंठसे ऊपर वाले रोगों में रातमें सोने के समय औषध देना उचितहै ।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथाऽतोद्विविधोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ– अब हम यहांसे द्विविधोपक्रमणीय [दो प्रकार की चिकित्सा का वर्णन है जिसमें] अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

दो प्रकारके उपचार ।

उपक्रम्यस्य हि द्वित्वाद्द्वैविध्योपक्रमो मतः ।
एकः संतर्पणस्तत्र द्वितीयश्चापतर्पणः १ ॥
बृंहणो लेखनश्चेति तत्पर्यायावुदाहृतौ ।
बृंहणं यद्बृहत्त्वाय लंघनं लाघवाय यत् ॥
देहस्य
भवतः प्रायो भौमापमितरच्च ते ।

अर्थ– चिकित्सा के योग्य विषय दो प्रकार का है, इसलिये चिकित्सा भी दो प्रकारकी होतीहै, एक संतर्पण, दूसरी अपतर्पण संतर्पण का पर्य्यायवाची शब्द बृंहण है और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपतर्पण का पर्य्यायवाची शब्द लंघन है। जिसके द्वारा देहकी पुष्टि होतीहै उसे बृंहण करते हैं और जिसके द्वारा देहमें हलकापन होताहै उसे लंघन कहतेहैं।

संतर्पण प्रायः भौम (भूमिसंबंधी) और आप (जलसंबंधी) होतेहैं। तथा अपतर्पण प्रायः अग्नि, वायु, और आकाशात्मक होतेहैं इसका मतलब यह है कि पृथ्वी और जल महाभूतोंसे उत्पन्न हुई औषध संतर्पण और अग्निवायु आकाश महाभूतों से उत्पन्न हुई औषध अपतर्पण होती हैं।

मूल में जो प्रायः शब्द दिया गया है इस का यह तात्पर्य है कि जौ, मसूर, सोंठ आदि भौम होने पर भी अपतर्पण हैं। इसी तरह सोंठ पीपल आदि भी अग्नि और वायु तत्व की अधिकता वाली भी संतर्पण गुण वाली मालूम होती हैं।

स्नेहनादि कर्म को द्विविधत्व

स्नेहनं रुक्षणं कर्म स्वेदनं स्तंभनं च यत्॥
भूतानां तदपि द्वैध्याद्द्वितयेनाऽतिवर्त्तते।

अर्थ—स्नेहन, रूक्षण, स्वेदन और स्तंभन इन चार प्रकार के कर्मों का समावेश संतर्पण और अपतर्पण इन दो प्रकारों के ही अन्तर्गत है, क्योंकि भौमादि सब द्रव्य संतर्पण और अपतर्पण भेद से दो प्रकार के है और स्नेहनादि चार प्रकार के कर्म इन्हीं दो के अन्तर्गत हैं।

अपतर्पण के भेद।

शोधनं शमनं चेति द्विधा तत्राऽपि लंघनम्

अर्थ—लंघन अर्थात् अपतर्पण के दो भेद है, एक शोधनापतर्पण, दूसरा शमनापतर्पण।

संशोधन के लक्षण और भेद।

यदौषधं हरेद्दोषान्पञ्चधा शोधनं च तत्।
निरूहो वमनंकाय शिरोरेकोऽसृग्विस्रुतिः।

अर्थ—जो औषध शरीरस्थ वातादिक दोषों को बाहर निकाल देती हैं वे संशोधन औषध कहलाती हैं, ये पांच प्रकार की होती हैं जैसे—१ निरूह (गुदा में पिचकारी लगाना) २ वमन, ३ विरेचन, ४ शिरोविरेचन ५ रक्तस्रुति (फस्द खोलना)।

शमन के लक्षण।

न शोधयति यद्दोषान् समान्कोपयत्यपि॥
समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा।
पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः।

अर्थ—जो औषध शरीरस्थ वातादिक दोषों को बाहर नहीं निकालती है, तथा अपने प्रमाण में स्थित वातादिक दोषों को उत्क्लेशित भी नहीं करती है और विषम दोषों को समान भाव में ले आती है उस को संशमन औषध कहते हैं। संशमन औषध सात प्रकार की होती हैं, यथा, पाचन, दीपन, क्षुधानिग्रह, तृष्णानिग्रह, व्यायाम, आतप और वायु।

वायु आदिका शमन।

बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च॥

अर्थ—बृंहण द्रव्य, केवल वायु और पित्त युक्त वायु का शमन करते हैं, कदाचित् कुपित नहीं करते विशेषतः जो शरीर की पुष्ट करती हैं वे बृंहण है और जो शरीर को कृश करती हैं अर्थात् बृंहण का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विपरीत लंघन है । लंघन के शोधन और शमन दो भेद कहे गये हैं । दुग्धादि कई पदार्थ ऐसे हैं जो वृंहण हैं परन्तु इनका स्वाभाविक धर्म शोधन भी है इसलिये ये शोधन भी है । अब यह शंका होती है कि जो शोधन है वे केवल वायु और पित्तयुक्त वायु के प्रकोपक होते हैं तब दुग्धादि किस तरह शमन हो सकते हैं । इस शंका को दूर करने के लिये मूल श्लोक में विशेषणार्थ 'तु' और अवधारणार्थ 'एव' शब्द का प्रयोग किया गया है, इस से यह विशेष अर्थ निकलता है कि शोधन स्वभाववाले वृंहण द्रव्य ही केवल वायु और पित्तयुक्त वायु के शमन होते हैं किन्तु शोधन रूप लंघन केवल वायु और पित्तयुक्त वायु के शमन न होकर शोधन तथा कोपन होजाते हैं । सारांश यह है कि वृंहण और शोधन केवल वायु और पित्तयुक्त वायु के शमन हैं किन्तु लंघन और शोधन केवल वायु और पित्तयुक्त वायु के कोपन हैं ।

वृंहण के योग्य मनुष्य ।

बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्शितान् भाराध्वोरःक्षतक्षीणरूक्षदुर्बलवातलान् ८॥ गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धान् ग्रीष्मेऽपरानपि।

अर्थ– जो मनुष्य व्याधि, भय, स्त्री संगम और शोकसे कृश होगयाहै, जो भार ढोनेसे, मार्ग चलनेसे, तथा उरःक्षत नामक रोगसे क्षीण होगयाहै, जो रूक्ष, दुर्बल वात प्रकृतिवालाहै तथा गर्भवती स्त्री, नवप्रसूता, बालक और वृद्ध का तथा ग्रीष्मऋतुमें तो अन्यान्य रोगियोंका भी निम्न लिखित उपचार द्वारा वृंहण अर्थात् शरीर वर्द्धन करै ।

वृंहण औषध ।

मांसक्षीरसितासर्पिर्मधुरस्निग्धबस्तिभिः ॥ स्वप्नशय्यासुखाऽभ्यंगस्नाननिर्वृतिहर्षणैः।

अर्थ– वृंहणके योग्य मनुष्यों को मांस दूध, शकर, घृत ये खानेको दे, मधुर और स्निग्ध वस्तियां देकर वृंहण करै । गहरी नींदमें अच्छे पलंग पर सोना, तैल मर्दन करना, स्नान करना, चित्तमें किसी प्रकार का उद्वेग न होना, तथा हर्षजनक प्रयोग आदि ऐसे कर्मोंसे वृंहण होताहै ।

लंघनके योग्य मनुष्य ।

मेहामदोषाऽतिस्निग्धज्वरोरुस्तंभकुष्ठिनः ११ विसर्पविद्रधिप्लीहशिरः कण्ठाऽक्षिरोगिणः। स्थूलांश्च लंघयेन्नित्यं शिशिरे त्वपरानपि ॥

अर्थ– प्रमेह रोगसे पीडित, आम दोष वाला, जिसने अत्यन्त स्नेहपान किया हो, ज्वररोगी, ऊरुस्तंभ रोगवाला, कोढी, विसर्प रोगी, विद्रधि रोगवाला, तापतिल्लीवाला जिसके मस्तक, कंठ और नेत्रमें रोगहो, तथा स्थूल मनुष्यको सदा ही लंघन द्वारा चिकित्सा करै । परन्तु शिशिर ऋतुमें तो सब रोगवालोंकी ही चिकित्सा लंघन अर्थात् अपतर्पण द्वारा करै ।

शोधनका निरूपण ।

तत्रसंशोधनैःस्थौल्यबलपित्तकफाऽधिकान् आमदोषज्वरच्छर्दिरतीसारहृदामयैः॥ १२ ॥ विबंधगौरवोद्गारहल्लासादिभिरातुरान् । मध्यस्थौल्यादिकान् प्रायः पूर्वं पाचनदीपनैः एभिरेवाऽऽमयैरातानहीनस्थौल्यबलादिकान् क्षुत्तृष्णानिग्रहैर्दोषैस्त्वार्तान्मध्यबलैर्ढढान् १४ नमीरणातपाऽऽयासैःकिमुताऽल्पबलैर्नरान्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– ऊपर जो शमन और शोधन दो प्रकार के लंघन अर्थात् अपतर्पण कहे गये हैं उनमेंसे नीचे लिखी रीतिसे उपाय करै। अर्थात् जो मनुष्य अति स्थूल, अति बलवान, अत्यन्त कफयुक्त, अत्यन्त पित्तयुक्त, आम दोषसे पीडित, ज्वर, वमन, अतीसार हृदयके रोग, बद्धकोष्ठता, भारापन, डकार जीमिचलाना आदि ऐसेही रोगोंसे पीडितहो, ऐसे मनुष्यों को संशोधननामक अपतर्पण देकर उनके शरीरमें हलकापन करै। इसी तरह जिनके शरीरके स्थूलता, बल, पित्त, और कफ मध्यमहैं और आमदोष, ज्वर, आदि रोगों से पीडित हो उसे पाचन और दीपन नामक लंघन देकर अपतर्पण करावै और जो हीन स्थौल्यबलादि युक्त और आम दोषादि रोगग्रस्त हैं उन को क्षुधा और तृष्णा के वेगों को रुकवाकर अपतर्पण करे। जो मध्यबलयुक्त, वातादि दोषों से पीडित और दृढ हैं उनको बातातप और व्यायाम रूप लंघन द्वारा लंघन करावै। इसी तरह अल्पबलयुक्त वातादि दोषाक्रान्त रोगी को उक्त वातादि रूप लंघन द्वारा लंघन करावै।

बृंहणीय और लंघनीय।

न बृंहयेल्लंघनीयान्
बृंह्यांस्तु मृदु लंघयेत्।१५।
युक्त्या वा देशकालादिबलतस्तानुपाचरेत्।

अर्थ–जो मनुष्य लंघन के योग्य है उन्हें बृंहण न करावै। किन्तु बृंहण के योग्य व्यक्ति को यदि वह लंघन के साध्य रोगग्रस्त हो तो उस को मृदुलंघन करावै, अथवा देश, काल और बलानुसार युक्तिपूर्वक संतर्पण और अपतर्पण दोनों मिली हुई चिकित्सा करै।

बृंहित लंघित के लक्षण।

बृंहिते स्याद्बलं पुष्टिस्तत्साध्यामयसंक्षयः।१६

अर्थ बृंहण के द्वारा बलवृद्धि और पुष्टि होती है, और बृंहण से साध्य संपूर्ण रोगों का नाश हो जाता है।

लंघित के लक्षण।

विमलेंद्रियता सर्गो मलानां लाघवं रुचिः।
क्षुत्तृट्सहोदयः शुद्धहृदयोद्गारकंठता॥१७॥
व्याधिमार्दवमुत्साहस्तंद्रानाशश्च लंघिते।

अर्थ-लंघन द्वारा इन्द्रियों में निर्मलता, मल मूत्रका प्रवर्तन, शरीर में हलकापन, रुचि, क्षुधा और तृषा का उदय, डकार कंठ की शुद्धि, व्याधि की मृदुता, उत्साह और निद्रा का नाश होता है।

लंघनबृंहण की अनपेक्षित मात्रा।

अनपेक्षितमात्रादिसेविते कुरुतस्तु ते॥१८॥
अतिस्थौल्याऽतिकार्श्यादीन् वक्ष्यंते ते च सौषधाः।

अर्थ–मात्रा पर ध्यान देकर बृंहण और लंघन के सेवन करने से अति स्थूलता और अति कृशता उत्पन्न होती है। अब हम अति कार्श्यादि और उन की औषध का ज्ञान करते हैं।

अति स्थौल्यादि का वर्णन।

रूपं तैरेव च ज्ञेयमतिबृंहितलंघित॥१९॥
अतिस्थौल्यापचीमेहज्वरोदरभगंदरान्।
कासंसन्यासकृच्छ्रामकुष्ठादीनतिदारुणान्।२०

अर्थ-अति बृंहण और अति लंघन द्वारा क्रम से अतिस्थौल्यादि और अति कार्श्यादि विकार उत्पन्न होते हैं। अति बृंहित होने से अतिस्थौल्य, अपची, मेह, ज्वर, उदररोग भगन्दर, कास, सन्यास, मूत्रकृच्छ्र, आमदोष,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और अतिदारुण कुष्ठादिरोग उत्पन्न होते हैं।

अतिस्थौल्यादि की चिकित्सा।

तत्र मेदोऽनिलश्लेष्मनाशनं सर्वमिष्यते।
कुलत्थजूर्णश्यामाकयवमुद्गमधूदकम् ॥२१॥
मस्तुदंडाहतारिष्टचिंताशोधनजागरम्।
मधुना त्रिफलालिह्याद्गुडूचीमभयां घनम् २२
रसांजनस्य महतः पंचमूलस्य गुग्गुलोः।
शिलाजतुप्रयोगश्च साग्निमंथरसो हितः २३
विडंगं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु।
यवामलकचूर्णं च यो गोऽतिस्थौल्यदोषजित्

अर्थ-इस अति स्थौल्यादि विकार में मेद, अनिल और कफनाशक सब प्रकारके अन्न और पानी हितकारक होते हैं अर्थात् कुलथी, जूर्ण (तृण धान्य विशेष) सोंखियां जौ, मूंग, मधुमिश्रित जल, दही का तोड, नीम, चिंता वमन, विरेचनादि शोधन, जागरण मधुमिश्रित त्रिफला, गिलोय, हरड, मोथा, इनका अवलेह बनाकर सेवन करे। इसी तरह रसौत, वृहत्पंचमूल, गूगल और शिलाजीत का प्रयोग अग्निमंथ के रस में मिलाकर हितकारी है। बायविडंग, सोंठ, जवाखार काल लोह चूर्ण, मधु, यव, आमले का चूर्ण, इन सब को समान भाग लेकर मिला लेवै। इनके सेवनसे अति स्थौल्यादि दोषोंका नाश हो जाता है।

अन्य औषध।

त्र्योषकट्वीवराशिग्रुविडंगाऽतिविषास्थिराः
हिंगुसौवर्चलाजाजीयवानीधान्यचित्रकाः २५
निशे वृहत्यौ हपुषा पाठामूलं च केवुकात्।
एषां चूर्णं मधु घृतं तैलं च सदृशांशकम् २६।
सक्तुभिः षोडशगुणैर्युक्तं पीतं निहंति तत्।
अतिस्थौल्यादिकान् सर्वान् रोगानन्यांश्च तद्विधान् ॥ २७ ॥)
हृद्रोगकाप्रलाश्वित्रश्वासकासगलग्रहान्।
बुद्धिमेधास्मृतिकरं सन्नस्याग्नेश्च दीपनम्।

अर्थ-त्रिकुटा, कुटकी, त्रिफला, सहजने के बीज, बायविडंग, अतीस, शालपर्णी, हींग, संचलनमक, जीरा, अजवायन धनियां चीता, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, बडी कटेरी हाऊबेर, पाठा की जड, केंबुक इन चौबीस द्रव्यों का चूर्ण समान भाग लेकर तयार करले। और इसके समान ही मधु घृत और तेल अलग मिला लेवे। इन में सौलह गुना जौ का सत्तू मिलाकर सेवन करने से पहिले कहे हुए सब प्रकार के स्थौल्यादि रोग और वैसे ही और और रोग तथा हृद्रोग, कामला श्वित्र कुष्ठ, श्वास, खांसी, और कंठरोग दूर होजाते हैं। यह योग बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्ति का बढाने वाला है और मन्दाग्नि को उद्दीपन करने वाला है।

अतिलंघनसे उत्पन्न रोगों का वर्णन।

अतिकार्श्यं भ्रमः कासस्तृष्णाधिक्यमरोचकः
क्लेहाऽग्निनिद्राहृक्श्रोत्रशुक्रौजःक्षुत्स्वरक्षयः
बस्तिहृन्मूर्धजंघोरुत्रिकपार्श्वरुजा ज्वरः।
प्रलापोऽर्धांनिलग्लानिश्छर्दिःपर्वास्थिभेदनम्
विण्मूत्रादिग्रहाद्याश्च जायंतेऽतिविलंघनात्

अर्थ- अति लंघन करने से अत्यन्त कृशता, भ्रम, खांसी, प्यासकी अधिकता, अरुचि, ये रोग उत्पन्न होते हैं, तथा देहकी चिकनाई, पाचक अग्नि, निद्रा, नेत्रों की ज्योति, श्रवणशक्ति, वीर्य, ओज, क्षुधा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और स्वर इनका क्षय होजाता है। बस्ति, हृदय, मस्तक, जंघा, ऊरू, त्रिक (मेरुदंड-का नीचे का भाग), पसलियों में दर्द, ज्वर प्रलाप, डकार आदि ऊपर जानेवाली वायु, ग्लानि, वमन, हाथपांव के जोड़ों और ह-ड्डियों में टूटनेकी सी वेदना होने लगतीहै। तथा मलमूत्रादिका विबंध ऐसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते है।

कृशता को श्रेष्टत्व।

कार्श्यमेव वरं स्थौल्यात्
नहि स्थूलस्य भेषजम्॥३१॥
बृंहणं लंघनं नाल्पमतिमेदोऽग्निवातजित्।

अर्थ—स्थूलता की अपेक्षा कृशता अ-च्छी होती है, इसका कारण यह है कि स्थूल मनुष्य की औषध नहीं होती, न तो बृंहण, न लंघन किसी प्रकार की औषध उसकी स्थूलता को दूर करकसती है, इसका कारण यही है कि मेदा, अग्नि और पवन नाश करनेवाली औषध ही स्थूल मनुष्य के लिये उपयोगी होती हैं, जो मेदा का नाश करती हैं वेही अग्निवर्द्धक और वातनाशक हैं। बृंहण औषध द्वारा स्थूल मनुष्य का मेदा और भी बढ़ता है, और लंघनद्वारा यद्यपि मेदा का क्षय होता है परन्तु अग्नि और वायुकी वृद्धि होती है। अतएव मांस और दुग्धादि बृंहण और कोदों, सोंखिया आदि लंघन द्रव्यों में से कोई भी स्थूल मनुष्य के लिये उपयोगी नहीं है।

दूसरा कारण।

मधुरस्निग्धसौहित्यैर्यत्सौख्येन विनश्यति३२
कृशस्य स्थविरस्यात्यंतविपरीतनिषेवणैः।

अर्थ—क्योंकि मधुर और स्निग्ध पदा-र्थों के सेवन करने से कृशता सहज ही में दूर हो जाती है, और अति विपरीत सेवन द्वारा अर्थात् कटु, तिक्त, और कषाय रसों का अत्यन्त सेवन करने पर बडी कठिनता से स्थूलता का नाश होता है इस लिये स्थूलता की अपेक्षा कृशता अच्छी होती है स्थूल और कृश इन दोनों मनुष्यों को यदि बृंहण औषधों से साध्य समान व्याधि हों तो स्थूल मनुष्य की वही व्याधि बड़ी क-ठिनता से दूर होती है, कारण स्थूल मनु-ष्य के लिये जो बृंहण औषधियां उपयोगी नहीं होती हैं वे पहिले दिखा चुके हैं किन्तु कृश मनुष्य की वही व्याधि सहज ही में दूर होजाती है, कारण यही है कि बृंहण ही कृश के लिये हितकारी है। इसको लं-घनसाध्य विसूचिकादि रोग होने पर भी वही रोग स्थूल व्यक्ति के पक्ष में कष्टसाध्य होता है, कारण कि लंघन भी स्थूल व्यक्ति के अनुकूल नहीं होता है, किन्तु अविरुद्ध चिकित्सा होने से लंघन द्वारा कृश व्यक्ति का वही विसूचिकादि सहज में मिट जाता है।

कृशकी औषध।

योजयेद्बृंहणं तत्र सर्वं पानान्नभेषजम्।३३।
अचिंतया हर्षणेन ध्रुवं संतर्पणेन च।
स्वप्नसंगाद्य कृशो वराह इव पुष्यति॥३४॥

अर्थ-कृशतामें सब प्रकारके बृंहणकर्ता अन्नपान और औषधोंका प्रयोग करना चा हिये। किसी प्रकारकी चिन्ता न करना। मनको प्रसन्न रखना, पुष्टिकारक आहारादि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेवन करना और गहरीनींदमें अधिक सोना इनसे मनुष्य शूकर की तरह फूलता चला जाता है।

मांसखानेसे स्थूलता।

नहि मांससमं किंचिदन्यद्देहबृहत्वकृत्।
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशेषतः ३५

अर्थ–देहको पुष्ट करनेवाले पदार्थों में मांसके समान दूसरा कुछ नहीं है। विशेष करके मांस खानेवालों का मांस अत्यन्त पुष्टिकारक होता है, क्योंकि वे मांस द्वारा ही पुष्ट होते हैं।

स्थूलकृशकी सामान्य चिकित्सा।

गुरु चाऽतर्पणं स्थूले विपरीतं हितं कृशे।
यवगोधूममुभयोस्तद्योग्याहितकल्पनम्।३६।

अर्थ–स्थूल मनुष्यके लिये भारी और अपतर्पण, तथा कृशके लिये लघु और संतर्पण हितकारी हैं। जौ और गेंहूं यदि स्थूल और कृश दोनोंके उपयोगी द्रव्यों के संयोग और पाकादि विशेष द्वारा तयार किये जांय तो स्थूल और कृश दोनोंके लिये हितकारी होसकते हैं। अर्थात् संस्कार किये हुए जौ स्थूलके लिये और संस्कार किये हुए गेंहूं कृशके लिये उपयोगी होते हैं।

चिकित्साको द्विविधत्व।

दोषगत्याऽतिरिच्यंते ग्राहिभेद्यादिभेदतः।
उपक्रमा न ते द्वित्वाद्विद्धा अपि गदा इव,३७

अर्थ-सब प्रकारके रोग वातादि दोषों के कारण अनेक प्रकारके होने परभी बृंहण लंघन साध्यत्व वा सामत्व और निरामत्व को नहीं छोडते हैं वैसे ही सब प्रकार की चिकित्सा भी दोषकी गति तथा ग्राही और भेदी आदि भेदोंके अनुसार होने परभी संतर्पण और अपतर्पणरूप दो प्रकारकी चिकित्साका उलंघन नहीं करती है अर्थात् अनेक प्रकारके रोग होनें परभी चिकित्सा दोही प्रकार की होती है।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः।

पंचदशोऽध्यायः।

अथाऽतः शोधनादिगणसंग्रहमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से शोधनादि गण संग्रह अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वमनकारक द्रव्य।

" मदनमधुकलंबार्कविंबीविशाला।
अपुसकुटजमूर्वादेवदालीकृमिघ्नम्।
विदुलदहनचित्राः कोशवत्यौ करंजः
कणलवणवैचलासर्षपाश्छर्दनानि ॥१॥

अर्थ– मैनफल, मुलहटी, तूंबी, नीम, बिंबी (कंदूरी), इन्द्रायण कटु खीरा, कुडा, मरोडफली, देवदाली, वायविडंग, जलबेत, चीता, मूषकपर्णी दोनों प्रकारकी तोरई, कंजा, पीपल, सेंधानमक, बच, इलायची और सरसों ये सब वमनकारक औषधहैं। इनमेंसे मैनफल, इन्द्रायण, कटुखीरा इन्द्रजौ, बायविडंग, इलायची और सरसों इनके फल वमनकारक होते हैं। मुलहटी जलबेत, मूषकपर्णी, दंती, और बच, इन की जड़, लोध, सुवर्णक्षीरी और कंपिल्ल,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की छाल तथा शेष औषधियों के फलपत्र पुष्प वमन कराने में उपयोगी होतेहैं।

वैरेचनिक द्रव्य।

निकुंभकुंभाक्षिफलागवाक्षी-
स्नुहीक्षीरिणीवीलिनितिन्दुकानि।
शम्याककंपिल्लकहेमदुग्धा
दुग्धं च मूत्रं च विरेचनानि ॥ २ ॥

अर्थ– दंती, निसोथ, त्रिफला, इन्द्रायण स्नुही (थूहर का दूध) क्षीरिणी, जीवंतीपुष्पा लोध, शम्याक (अमलतास) कंपिल्ल [कपिला] स्वर्णक्षीरी, दूध और मूत्र। ये सब औषध दस्त लानेवाली हैं।

निरूहण द्रव्य।

मदनकुटजकुष्ठदेवदाली-
मधुकवचादशमूलदारुराला:।
यवभिसिकृतवेधनं कुलत्थो
मधुलवणं विकृता निरूहणानि ॥ ६ ॥

अर्थ– मैनफल, कुडा, कूठ, देवदाली मुलहटी, वच, दसमूल, देवदारु, रास्ना, इन्द्रजौ, सोंफ, कडवी तोरई, कुलथी, मधु सेंधानमक, और निसोथ। ये सब निरूहण बस्तिमें उपयोगी हैं।

शिरोविरेचन द्रव्य।

वेल्लाऽऽपामार्गन्यग्रोधदार्वीसुराला
बीजं शैरीषं वाहितं शैग्रवं च।
सारो माधूकः सैंधवं तार्क्ष्यशैलं-
क्षुद्रयौ पृथ्वीका शोधयंत्युत्तमांगम् ॥ ४ ॥

अर्थ– बायविडंग, औंगा, त्रिकुटा, दारुहलदी, सातला, सिरस के बीज, कटेरीके बीज, सहजने के बीज, मधुपुष्पसार, सेंधानमक, सूवीरसौवर्चल, छोटीइलायची बडी इलायची, पृथ्वीका (हिंगुपत्री वा कालाजीरा) ये सब सिरको शोधन करनेवाली हैं।

वातनाशक द्रव्य।

भद्रदारु नतं कुष्ठं दशमूलं बलाद्वयम् ।
वायुं वीरतरादिश्च विदार्यादिश्च नाशयेत्॥

अर्थ– देवदारु, तगर, कूठ, दसमूल, दोनों खरैटी तथा आगे आनेवाले वीरतरादि और विदारीगण ये सब वातनाशकहैं।

पित्तनाशक द्रव्य।

दूर्वाऽनंता निंबवासाऽऽरग्वधा-
गुंद्राऽभीरुः शीतपाकी प्रियंगुः।
न्यग्रोधादिः पद्मकादिः स्थिरे द्वे-
पद्मं वन्यं सारिवादिश्च पित्तम् ॥ ६ ॥

अर्थ– दूर्वा, जवासा, नीम, अडूसा, कमाच, भद्रमुस्तक, सितावर, शीतपाकी, और प्रियंगु, ये सब तथा वक्ष्यमाण न्यग्रोधादिगण, तथा पद्मकादिगण तथा शालिपर्णी और पृष्टपर्णी, तथा कमल, कुटंनट और सारवादिगण ये सब पित्तनाशकहैं।

कफनाशक द्रव्य।

आरग्वधादिरर्कादिर्मुष्ककाद्योसनादिकः ।
सुरसादिः समुस्तादिर्वत्सकादिर्बलासजित्

अर्थ–आरग्वधादि गण, अर्कादिगण, मुष्ककादिगण, असनादिगण, सुरसादिगण, मुस्तादिगण और वत्सकादिगण, ये सब कफनाशक हैं॥

जीवनीय गण।

जीवंती काकोल्यौ मेदे द्वे मुद्गमाषपर्ण्यौ च।
ऋषभकजीवकमधुकैश्चेतिगणोजीवनीयाख्यः

अर्थ–जीवंती, काकोली, क्षीर काकोली मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मुलहटी, ये दस औषध जीवनीय गण कहलाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विदारीगण ।

विदारिपञ्चांगुलवृश्चिकाली-
वृश्चीवदेवाह्वयशूर्पपर्ण्यः ।
कंडूकरी जीवनहस्वसंज्ञे-
द्वे पंचके गोपसुता त्रिपादी ॥ ९ ॥
विदार्यादिरयं हृद्यो बृंहणो वातपित्तहा ।
शोषगुल्मांऽगमर्दोर्ध्वश्वासकासहरो गणः ॥

अर्थ—विदारीकंद, अरंड, मेढासिंगी, सफेदसांठ, देवदारु, (किसी किसी पुस्तक में देवाह्वय पाठभी है वहां एक सहदेवा, दूसरी विश्वदेवा समझनी चाहिये), शूर्पपर्णी, मुद्गपर्णी तथा माषपर्णी, कौंच, जीवनसंज्ञकपंचमूल (शतमूली, क्षीरकाकोली, जीवंती, जीवक और ऋषभक) ह्रस्वपंचमूल (बृहती, कंटकारी, शालिपर्णी पृश्निपर्णी, गोखरू), अनंतमूल, हंसपादी, इन सबको विदारीगण कहते हैं । ये हृद्य, बृंहण वातपित्तनाशक, शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास, और कास इन रोगोंको दूर करनेवाले हैं ॥

सारिवादि गण ।

सारिवोशीरकाश्मर्यमधूकशिशिरद्वयम् ।
यष्टीपरूषकं हंति दाहपित्तास्रतृड्ज्वरान् ॥

अर्थ—अनन्तमूल, खस, गंभारी, महुआ, सफेदचंदन, लालचंदन, मुलहटी, और फालसा इनको सारिवादिगण कहते हैं । ये दाह, रक्तपित्त, तृषा और ज्वर को नाश करते हैं ।

दुग्धवर्द्धक द्रव्य ।

पद्मकपुंड्रौ वृद्धितुगर्द्धः-
शृंग्यमृता दश जीवन संज्ञाः
स्तन्यकरा घ्नंतीरणपित्त-
प्रीणनजीवनबृंहणबृष्याः ॥ १२ ॥

अर्थ—पद्माख, प्रपौंडरी (कमलविशेष), श्रावणी, वंशलोचन, ऋद्धि (महाश्रावणी), काकडासींगी, और गिलोय ये सब तथा पूर्वोक्त जीवनीयगणान्तर्गत दस औषध दूध को बढानेवाली, वातपित्तनाशक, प्रीतिजनक, जीवनहितकर, पुष्टिकारक और शुक्र वर्द्धक हैं ।

तृषादिनाशक औषध ।

परूषकं वरा द्राक्षा कट्फलं कतकात्फलम् ।
राजाह्वं दाडिमं शाकं तृण्मूत्रामयवातजित् १३

अर्थ—फालसा, त्रिफला, [किसी २ के मत में दाख] द्राक्षा, कायफल, निर्मली, अमलतास, अनार, और शाकवृक्ष, ये तृषा, मूत्ररोग और वातनाशक हैं ।

विषादिनाशक ।

अञ्जनं फलिनी मांसी पद्मोत्पलरसांजनम्
सैलामधुकनागाह्वं विषांतर्दाहपित्तनुत् १४॥

अर्थ—अंजन (स्रोतोंजन और सौवीरांजन), प्रियंगु, जटामांसी, पद्म, उत्पल, रसौत, इलायची, मुलहटी और नागकेसर, ये विष, अंतर्दाह और पित्तनाशक हैं ।

कफादिनाशकद्रव्य ।

पटोलकटुरोहणी चन्दनं-
मधुस्रवगुडूचिपाठान्वितम् ।
निहंति कफपित्तकुष्ठज्वरान्-
विषं वमिमरोचकं कामलाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—परवल, कुटकी, चंदन, मधुस्रव, (मधसार), गिलोय, और पाठ, यह पटोलादि गण कफ, पित्त, कोढ, ज्वर, विषरोग, वमनरोग, अरुचि और कामला इन रोगों को दूर करता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुडूच्यादि गण।

गुडूचीपद्मकारिष्टधानका रक्तचन्दनम् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत्।

अर्थ-गिलोय, पदमाख, नीम, धनियां, रक्तचंदन, ये गुडूच्यादि गण पित, कफ, ज्वर, वमन, दाह, तृषा इनको नष्ट करता है और जठराग्निको बढाता है।

आरग्वधादि गण।

आरग्वधेंद्रयवपाटलिकाकतिक्ता-
निंबाऽमृतामधुरसास्रवबृक्षपाठाः ।
भूनिंबसैर्यकपटोलकरंजयुग्म-
सप्तच्छदाऽग्निसुषवीफलबाणघोंटाः १७
आरग्वधादिर्जयति छर्दिकुष्ठविषज्वरान् ।
कफं कंडूं प्रमेहं च दुष्टव्रणविशोधनः ॥ १८

अर्थ-आरग्वध (शम्याक), इन्द्रजौ, पाटलापुष्प, काकतिक्ता (बसंत दूती) नीम, गिलोय, मूर्वा, कटेरी, चिरायता, पियावांसा, परवल, दोनों कंजा, पूति करंज और चिरबिल्व), सप्तच्छद (सातला), चीता, सुषवी (कालाजीरा)करेला, पानीयवल्ली और मेंढासींगी), मेनफल , रामसर घोंटा (सुपारीविशेष) यह आरग्वधादिगण वमन, कोढ, विष, ज्वर, कफ, खुजली, प्रमेह इनको दूरकरता है और बिगडे हुए घाव को शुद्ध करता है।

असनादि गण।

असनतिनिशभूर्जश्वेतवाहप्रकीर्या-
खदिरकदरभंडीशिंशपामेषशृंग्यः ।
त्रिहिमतलपलाशा जोंगकः शाकशालौ-
क्रमुकधवकुलिंगच्छागकर्णाश्वकर्णाः १९
असनादिर्विजयते श्वित्रकुष्ठकफकृमीन् ।
पांडुरोगं प्रमेहं च मेदोदोषनिबर्हणः ॥२०॥

अर्थ-पतिशाल, तिनिश, भोजपत्र, अर्जुनवृक्ष, पूतिकरंज, खैरसार, कदर (खैरसारकी आकृतिवाला श्वेतसार), सिरस, शिंशपा, मेढासींगी, त्रिहिम (सफेदचंदन, रक्तचंदन, पीतचंदन) ताड, ढाक, अगर, वरदारु, शाल, सुपारी, धायके फूल, इन्द्रजौ, अजकर्णी, अश्वकर्णी, यह असनादि गण श्वित्रकुष्ठ, कफ, कृमिरोग पांडुरोग, प्रमेह, तथा मेदसंबंधी दोषों को दूर करता है।

वरणादि गण॥

वरणसैर्यकयुग्मशतावरी
दहनमोरटबिल्वविषाणकाः ।
द्विबृहतीद्विकरंजजयाद्वयं ।
बहलपल्लवदर्भरुजाकराः ॥ २१ ॥
वरणादिः कफं मेदो मंदाग्नित्वं नियच्छति ।
अधोवातं शिरःशूलं गुल्मं चांतःसविद्रधिम्

अर्थ-वरना, दोनों सहचर ; एक लाल पुष्पवाली जिसे कुरवक कहते हैं, दूसरी पीले फूलवाली जिसे कुरंटक कहते हैं), सितावर, चीता, मूर्वा, बिल्व, अजशृंगी बडी कटेरी, छोटी कटेरी, दोनों कंजा,दोनों जया (जीवंती और हरितकी), सहजना, कुशा, और हिंताल, यह वरणादिगण कफ, मेददोष, अग्निमांद्य, अधोवायु, शिरशूल, गुल्म और अंतर्विद्रधि को दूर करता है।

ऊषकादिगण।

ऊषकस्तुत्थकं हिंगु कासीसद्वयसैंधवम् ।
सशिलाजतु कृच्छ्राश्मगुल्मभेदः कफापहम्।

अर्थ-ऊषक (खारी मृत्तिका), नीला थोथा, हींग, दोनों कसीस [पांशुधातुनामक और पुष्पनामक], सेंधानमक, शिलाजीत यह ऊषकादिगण मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गुल्म मेदरोग, और कफ को नष्ट करता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वीरतरादिगण ।

वेल्लतरारणिकवृकवृषाऽश्मभेद-
गोकंटकेक्कटसशाल्वरवाणकाशाः ।
वृक्षादनीकुशद्वयगुंठगुंद्रा-
भल्लूकमोरटकुरंटकरभपार्थाः ॥ २४ ॥
वर्गो वीरतराद्योऽयं हंति वातकृतान् गदान् ।
अश्मरीशर्कराम्रत्रकृच्छ्राऽघातरुजाहरः॥२५॥

अर्थ–उशीर (खस), अरनी, बूक [ईश्वरमल्लिका], अडूसा, पाखान भेद, गोखरू, इक्कट [दीर्घलोहितयष्टिका], पियावांसा, रामशर, काश, अमरबेल, नल (नरसल , स्थूलकुश, सूक्ष्मकुश, गुंठ पटेरा, शरौनाक, क्षीरमोरटा, कुरंट, उत्तम अरणी, अर्जुन। यह वीरतरादिगण वातजन्यरोग, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, और मूत्राघात इन रोगों को दूर करता है ।

रोध्रादिगण ।

रोध्रशावरकरोध्रपलाशा
जिंजिनीसरलकटफलयुक्ताः ।
कुंभिलंबकदलीगतशोकाः
सैलवालुपरिपेलवमोचाः ॥ २६ ॥
एष रोध्रादिको नाम मेदःकफहरो गणः ।
योनिदोषहरः स्तंभी वर्ण्यो विषविनाशनः२७

अर्थ–लोध, शावरलोध, ढाक, कृष्णाशाल्मली, सरलवृक्ष, कायफल, कदंब, केला, अशोक, एलवालुक, फुटनट, मोचफल, यह रोध्रादिगण, मेद, कफ और योनि दोषों को दूर करता है, यह विष्टंभी, कांतिवर्द्धक और विषनाशक है ।

अर्कादिगण ।

अर्कोलकी नागदंती विशल्या
भार्गी राम्ना वृश्चिकाली प्रकीर्या ।
प्रा[illegible]ष्पी पीतैलोत्कीर्या
श्वेताद्वयं तापसानां च वृक्षः ॥ २८ ॥
अयमर्कादिको वर्गः कफमेदोविषापहः ।
कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः॥२९॥

अर्थ–आक, सफेदआक, नागदंती, लांगली, भार्ङ्गी, रास्ना, वृश्चकाली [उष्टूघूमकी], कंजा, ओंगा, काकादनी, कंजा, श्वेता, महाश्वेता (ये दोनों कोइल के भेद हैं) और इंगुदी हिंगोट यह अर्कादिगण कफ, मेदरोग, विष, कृमिरोग, कुष्टरोग इनको नष्ट करता है और विशेष करके व्रणको शुद्ध करता है ।

सुरसादिगण ।

सुरसयुगफणिज्झं कालमालाबिडंगं
खरदुसवृषकर्णीकट्फलं कासमर्दैः ।
क्षवकसरसिभार्गी कामुका काकमाची ।
कुलहलविषघ्नी भूस्तृणो भूतकेशी ३०।
सुरसादिगणः श्लेष्ममेदः कृमिनिषूदनः ।
प्रतिश्यायाऽरुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः

अर्थ–श्वेततुलसी, कृष्णतुलसी, क्षुद्रपत्रतुलसी, क्षुद्रपत्रकालतुलसी, वायविडंग, मरुआ, [illegible], कायफल, कसौंदी, नकछिकनी, तुंबुरपत्रिका भार्ङ्गी, रक्तमंजरी, मकोय, अलंबुसा, वकायन, भूस्तृण, (अतिछत्रा) जटामांसी । यह सुरसादिगण कफ, मेदरोग, कृमिरोग, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास और कास इन रोगों को दूर करता है, तथा व्रण को शुद्ध करता है ।

मुष्ककादिगण ।

मुष्ककस्तुंबरार्द्वीपिपलाशधवशिंशपाः ।
गुल्ममेहाश्मरीपांडुमेदोऽर्शःकफशुक्रजित् ।

अर्थ–गुष्कक, थूहर, त्रिफला, चीता, ढाक, घास, शीशम यह मुष्ककादिगण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुल्मरोग, प्रमेह, अश्मरी, पांडुरोग मेदरोग अर्श, कफ तथा वीर्य का नाश करने वाला है।

वत्सकादिगण।

वत्सकमूर्वाभार्गी
कटुकामरिचं घुणप्रिया च गंडीरम्।
एलापाठाजाजी
कट्फलाजमोदसिद्धार्थधचाः ॥३३॥
जीरकार्हिंगुविडंगं पशुगंधा पंचकोलकं हंति
चलकफमेदःपीनसगुल्मज्वरशूलदुर्नाम्नः

अर्थ–इन्द्रजौ, मूर्वा, भार्ङ्गी, कुटकी, मिरच, अतीस, थूहर, इलायची, पाठा, जीरा, अरलुक फल, अजमोद, सफेद सरसों, वच, जीरा, हींग, वायविडंग, अजगंध, और पंचकोल। यह वत्सकादिगण वायु, कफ, मेद, पीनस, गुल्म, ज्वर, शूल और अर्श इन रोगों को दूर करता है।

वचहारिद्रादिगण।

वचाजलददेवाह्वनागराऽतिविषाऽभयाः।
हरिद्राद्वयपृश्न्याढ्यकलशीकुटजोद्भवाः ॥३४॥
वचाहरिद्रादिगणो वामातीसारनाशनौ। ३५
मेदःकफाढ्यपवनस्तन्यदोषनिबर्हणौ ॥६३

अर्थ–वच, मोथा, देवदारु, सोंठ, अतीस और हरड यह वचादिगण है। दोनों हलदी, मुलहटी, प्रश्नपर्णी, इन्द्रजौ, यह हरिद्रादिगण है। इन दोनों गणों के द्रव्य आमातीसार, मेदरोग, कफाधिक्य वायु, और स्तन्यदोषका नाश करेत।

प्रियंग्वादि. अंबष्ठादि।

प्रियंगुपुष्पांजनयुग्मपद्मा-
पद्माद्रजौयोजनवल्लेधनता।
मानद्रमो मोचरसः समंगा-
पुन्नागशतिं मदनीय हेतुः ॥ ३७ ॥
अंबष्ठा मधुकं नमस्करी-
नंदीवृक्षपलाशकच्छुराः।
रोध्रं धातकिबिल्वपेशिके-
कट्वंगः कमलोद्भवं रजः ॥ ३८ ॥
गणौ प्रियंग्वंबष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ।
संधानीयौ हितौ पित्ते व्रणानामपि रोपणौ ॥

अर्थ–प्रियंगु स्त्रोतोंजन, सौवीरांजन, पद्मचारिणी, पद्मकेशर, मजीठ, जवासा, सेमल, मोचरस, मजीठ, रक्तकेशर, चंदन और धव यह प्रियंग्वादि गण हैं।

पाठा, मुलहटी, बेलगिरी, नंदीवृक्ष, पलास, धमासा, लोध, धायके फूल, बेलगिरीकागूदा, श्योना पाठा, कमल केसर, यह अंबष्ठादि गणहै।

इन दोनों गणों के द्रव्य पक्वातिसारनाशक, टूटे हुए स्थानको जोडनेवाले पित्त नाशक और घावको पुरानेवाले हैं।

मुस्तादिगण

मुस्तावचाऽग्निद्विनिशाद्वितिक्ता-
भल्लातपाठात्रिफलाविचाख्याः।
कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि-
स्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥ ४० ॥

अर्थ– मोथा, बच, चीता, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, काकतिक्ता, भिलावा, पाठा, त्रिफला, शुक्लकंद, कूठ, इलायची और सफेद बच,। यह मुस्तादिगण योनिरोग और दुग्ध रोगोंको दूर करताहै, तथा मल को पकाताहै।

न्यग्रोधादिगण।

न्यग्रोधपिप्पलसदाफलरोध्रयुग्मं-
जम्बूद्वयाऽर्जुनकपीतनसोमवल्काः।
प्लक्षाऽम्रबंजुलपियालपलाशनंदी-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोलीकरंबविरलामधुकं मधूकम् ४१ ॥
न्यग्रोधादिर्गणो वृष्यः संग्राही भग्नसाधनः
मेदःपित्तास्रतृड्दाहयोनिरोगनिबर्हणः ४२ ॥

अर्थ– बटवृक्ष, पीपल, गूलर, दोनों लोध, दोनों जामन, अर्जुन, आमडा, सफेद खैर, प्लक्ष, आम, बेत, पियाल, पलास, नंदीवृक्ष, झडबेरी, कदंब, तिंदुकी, मुलहटी और महुआ के फूल । ये सब न्यग्रोधादि गण की औषध व्रणको हितकारी, संग्राही, टूटे को जोड़नेवाली, तथा मेदरोग, रक्त, पित्त, तृषा, दाह और योनिरोगों को दूर करती हैं ।

एलादिगण ।

एलायुग्मतुरुष्ककुष्ठफलिनीमांसीजलध्यामकं
स्पृक्काचौरकचोचपत्रतगरस्थौणेयजातीरसः
शुक्तिर्व्याघ्रनखोऽमराह्वसगुरुःश्रीवासकुंकुमं
चेडागुग्गुलुदेवधूपखपुराः पुन्नागनागाह्वयम्
एलादिको वातकफौ विषं च विनियच्छति ।
वर्णप्रसादनः कंडूपिटिकाकोठनाशनः ४३ ॥

अर्थ– दोनों इलायची, शिलारस, कूठ, गंधप्रियंगु; जटामांसी, नेत्रवाला, श्यामक, (रोहिषतृण), स्पृक्का (गंधपर्णी), चौरक (ग्रन्थपर्णी) चोच (दालचीनी) तगर, तैलपर्णिक, बोल, नख, समुद्रझाग, देवदारू अगर, श्रीवासक (सरलवृक्ष का निर्यास), कुंकुम, कोपना, गूगल, राल, कुंदरुक, लालकेसर, नागकेसर, यह एलादिगण, वात, कफ, विष, खुजली, पिटिका और कोठ रोगों को दूर करताहै । तथा शरीरके वर्णको स्वच्छ करताहै ।

श्यामादिगण ।

श्यामा दन्ती द्रवंतीकमुककुटरगी-
शंखिनी चर्मसाह्व-
स्वर्णक्षीरी गवाक्षी शिखरिरजनक-
च्छिन्नरोहाकरंजाः ।
बस्तांत्री व्याधिघातो बहलबहुरस-
स्तीक्ष्णवृक्षात् फलानि-
श्यामांधौ हंति गुल्मं विषमरुचिकफौ-
हृद्रुजं मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

अर्थ– निशोथ, दंती, द्रवंती (उंदरकनी पठानी लोध, सफेद निसोथ, यवातिक्ता, सातला, स्वर्णक्षीरी, गवाक्षी, [इन्द्रायण] ओंगा, कंपिल्लक, अमरबेल, कंजा, वृषगंध, अमलतास, ईख, और पीलूके फल । यह श्यामादिगण गुल्मरोग, विषमज्वर, अरुचि, कफ, हृद्रोग और मूत्रकृच्छ को दूर करताहै ।

प्रयोगविधि ।

त्रयस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्गास्तेषु त्वलाभतः ।
युंज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्याद्यौगिकम् ॥

अर्थ– ये तेतीस प्रकारके योग कहेगये हैं, इनमेंसे जो जो औषध न मिल सके तो उसकी जगह रसवीर्य विपाकादि समानगुण वाली अन्य औषधोंका प्रयोग करै किन्तु अयौगिक द्रव्य काममें न लाना चाहिये यह तेतीस की संख्या केवल प्रधानता दिखाने के लिये कही गईहै, इससे यह न समझ लैना चाहिये कि इन गणों में जो औषध लिखी गई है उन्हीं का प्रयोग किया जाताहै । देश, काल और रोग की अवस्था देखकर एक दो वा बहुतसी औषध मिलाकर दीजातीहै, सुश्रुतमें भी कहाहै " समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत् । पृथक् मिश्रान् समस्तांश्च गणान् वा व्यस्तसंहतानिति" ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पानादि प्रकारसे रोगनाशनत्व ।

एते वर्गा दोषदूष्याद्यपेक्ष्य-
कल्कक्वाथस्नेहलेहादियुक्ताः ।
पाने नस्येऽन्वासनेऽतर्बहिर्वा-
लेपाभ्यंगैर्घ्नंति रोगान् सुकृच्छ्रान् ४७ ॥

अर्थ-दोष, दूष्य, वय, बलादि की विवेचना करके ये सब वर्ग पीने में, नस्यमें, बाहर वा भीतर के सेवनमें, कल्क, काथ, स्नेह, लेह, लेप और अभ्यंग रूप में प्रयोग करने चाहियें । इससे अत्यन्त कष्टसाध्य रोग भी निवारित हो जाते हैं ।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां
पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथाऽतः स्नेहविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम यहां से स्नेहविधि नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

स्नेहनविरूक्षण का स्वरूप ।

"गुरुर्शीतसरास्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम् ॥१
औषधं स्नेहनं प्रायो विपरीतं विरूक्षणम् ॥

अर्थ-गुरु, शीतल, स्निग्ध, मंद, मृदु, और द्रव इन गुणों से युक्त औषधें प्रायः स्नेहन होती हैं । इसी तरह इन गुणों से विपरीत अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, रूक्ष, तीक्ष्ण, कठिन और घन गुण युक्त द्रव्य प्रायः विरूक्षण होते हैं । प्रायः शब्द के प्रयोग का यह तात्पर्य है कि सरसों का तेल बकरी क दुध तथा विष्किर और प्रतुद जानवरों का मांस हलका होने पर भी स्नेहन है । मछली और भैंस का मांस उष्ण होने पर भी स्नेहन है । इसी तरह जौ गुरु, शीत, सरादि गुणयुक्त होने पर भी विरूक्षण है ।

स्नेहनमें घृतादिको उत्तमता ।

सर्पिर्मज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।
तद्धाऽपिचोत्तमंसर्पिःसंस्कारस्याऽनुवर्तनात्

अर्थ-जितने प्रकार के स्नेह पदार्थ हैं उन में घृत, मज्जा, वसा और तेल ही श्रेष्ठ होते हैं । इन चारों में घृत सर्वोत्तम है कारण यह है कि घृत संस्कार का अनुवर्तन करता है, अर्थात् इसका जिस जिस के साथ पाक किया जाता है, उसी के गुण इस में आजाते हैं और अपने शैत्यादि गुण का त्याग नहीं करता है. किन्तु वसा, मज्जा और तेल संस्कार से अपने गुण को त्याग कर देते हैं, इसी लिये घृत ही सर्वोत्कृष्ट है ।

घृतादि को पित्तनाशकता ।

पित्तघ्नास्ते यथापूर्वमितरघ्ना यथोत्तरम् ।

अर्थ- घृत, मज्जा, वसा और तैल इन मेंसे यथापूर्व अधिक अधिक पित्तनाशक हैं तथा यथोत्तर अधिक अधिक वातकफ नाशकहैं । इस जगह ऐसा प्रश्न उठताहै कि यथापूर्व कहने में घी का त्याग करदेना चाहिये, क्योंकि तेल किसी के पूर्व नहीं हैं अर्थात् तेलसे परे कुछ नहीं है, इसीतरह घृत किसी से पर नहींहै अर्थात् घृतसे पूर्व अन्य द्रव्य नहींहै, इसलिये यथापूर्व कहनेसे वसा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्तघ्न, मज्जा, पित्तघ्नतर, घृतपित्तघ्नतम । इसीतरह यथोत्तर कहनेसे मज्जा, वातकफनाशक, वसा अधिकतर वातकफनाशक, और तेल अधिकतम वातकफनाशक है । कोई कोई इसकी व्याख्या इसतरह करतेहैं कि 'पित्तसे इतर' कहनेपर वात और कफ दोनों का ग्रहणहै तथापि कफमें स्नेहका निषेध होनेके कारण उक्त मज्जादिकमें केवल वातघ्न गुण है अथवा यदि इतर शब्दसे श्लेष्मा का भी ग्रहणहैं, ऐसा होनेपर शुद्ध मज्जादि श्लेष्मघ्न न होकर अन्य द्रव्योंसे संस्कार किये जानेपर मज्जादि श्लेष्मनाशक होसकतेहैं ।

घृतकी अपेक्षा तैलादि को गुरुत्व ।

घृतात्तैलं गुरु वसा तैलान्मज्जा ततोऽपि च

अर्थ- घृतकी अपेक्षा तेल, तेलकी अपेक्षा वसा, और वसाकी अपेक्षा मज्जा भारी होतीहै ।

यमकस्नेहादि का निरूपण ।

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान्

अर्थ– दो दो स्नेह मिलने से यमक संज्ञा होतीहैं, जैसे घृतवसा, घृततैल, घृत मज्जा । तीन स्नेह द्वारा त्रिवृत संज्ञा होती हैं जैसे घृततैल वसा । चार स्नेहों के द्वारा महास्नेह संज्ञा होतीहैं, जैसे घृततैलवसामज्जा

स्नेहन योग्योंका निरूपण ।

स्वेद्यस्तशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः
वृद्धबालाऽबलाहृशारूक्षाः क्षीणास्त्ररेतसः ।
वातार्तस्यंदतिमिरदारुणप्रतिबोधिनः ॥५॥
स्नेह्याः

अर्थ– नीचे लिखे मनुष्य स्नेहनकर्मके योग्य होतेहैं, जैसे जिस मनुष्य का स्वेदन करनाहै, वा जिसको वमनविरेचनादि द्वारा शुद्ध करनाहै वह पहिले स्नेहन के योग्यहै । जो मद्यपान, स्त्रीसंग वा व्यायाम में आसक्त है जो चिन्ताग्रस्तहै, अथवा वृद्ध, बालक, दुर्बल, कृश, रूक्ष, अल्परक्त, और क्षीण वीर्यहैं, जो वातपीडितहैं, जो अभिष्यन्द अथवा तिमिरनामक नेत्ररोगसे पीडितहै और जो कठिनतासे आंख खोलताहै, ये सब रोगी स्नेहन कर्म के योग्य होतेहैं ।

स्नेहन के अयोग्य व्यक्ति ।

न त्वतिमंदाऽग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः
ऊरुस्तंभाऽतिसाराऽमगलरोगगरोदरैः ।६।
मूर्च्छाच्छर्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्च पीडिताः
अपप्रसूता युक्ते च नस्ये वस्तौ विरेचने ।७।

अर्थ– जो मनुष्य मन्दाग्नि वा तीक्ष्णाग्निसे पीडितहैं, जो अतिस्थूल वा अति दुर्बलहैं, जो ऊरुस्तंभ, अतिसार, आमरोग, कंठरोग, त्रिदोरोग, उदररोग, मूर्छा, वमन, अरुचि, कफ, तृषा, और मद्यरोगसे पीडित हैं जिसका गर्भ गिरगयाहै, ये सब स्नेहन क्रिया के योग्य नहीं हैं । नस्य, वस्ति और विरेचन क्रिया करने के पीछे भी स्नेहनकर्म उचित नहीं है ।

चारोंस्नेहका हितकारित्व ।

तत्र धीस्मृतिमेधाऽग्निकांक्षिणांशस्यते घृतम्।
ग्रंथिनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥८॥
तैलं लाघवदार्ढ्यार्थिकूरकोष्ठेषु देहिषु ।
वाताऽतपाऽध्वभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु
रूक्षक्रूरशुष्कमाऽत्यग्निवातावृतपथेषु च ।
शेषोवसा तु संध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासु च १०
तथा दग्धाऽहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-जो बुद्धि, स्मृति, मेधा, और अग्नि की अभिलाषा करते हैं उनको स्नेहनकर्म में घृत प्रशस्त है, आदि शब्द से स्वर आयु और वर्णका भी ग्रहण है। जो ग्रन्थिनाडी वा क्रमि, श्लेष्मा, मेद और वात रोगों से पीडित है जो शरीर में हलकापन और दृढता चाहते हैं तथा जिनका कोष्ठ क्रूर है उनको तेल उत्तम है। जिनके धातु हत्या वा धूरफ लगने से, मार्ग चलनेकी थकावट से, बहुत बोझ ढोने से, स्त्रीसंग और व्यायाम से क्षीण होगये हैं, जिनकी देह रूक्ष है जो कष्ट सह सकते हैं, जिनकी अग्नि तीक्ष्ण है, जिनकी देह के स्रोत वायुद्वारा रुक गये हैं ऐसे रोगियों के लिये वसा और मज्जा, हितकर हैं किन्तु संधि, अस्थि, मर्म और कोष्ठको वेदना में तथा देह के अग्नि से जल जाने में, चोट में योनिभ्रंश से उत्पन्न वेदना में और शिरोरोग में वसा ही उत्तम है।

भिन्नभिन्न स्नेहनका काल।

तैलं प्रावृषि वर्षाते सर्पिरन्यौ तु माधवे॥११॥
ऋतौ साधारणे स्नेहः शस्तोऽह्नि विमले रवौ।

अर्थ-वर्षाकाल में तेल, शरत्काल में घृत, और वसंतकाल में वसा मज्जा, स्नेहन कर्म में प्रशस्त हैं। किन्तु साधारण ऋतुमें संशोधन से पूर्व स्नेहन के लिये तैलादि प्रशस्त हैं, यह भी दिन के समय जब कि सूर्य की किरणें बादल, कुहरा आदि से अनाच्छादित हो।

रात्रिमें स्नेहनविधि।

तैलं त्वणयां शितेऽपि
घर्मेऽपि च घृतं निशि ॥ १२ ॥
निश्येव शिते पवने संसर्गे शितवत्यपि।
निश्यन्यथा वातकफाद्रोगाः स्युः शितले दिवा

अर्थ- तेल वर्षाकालही में और घृत केवल शरत्कालहीमें प्रयोग किया जाताहै यह बात नहींहै किन्तु व्याधि की दशा के अनुसार यदि स्नेह क्रिया की आवश्यकता शीघ्रही हो तो हेमंत और शिशिरादि शीतकालमें भी तैलका प्रयोग किया जासकताहै। इसीतरह वायु वा पित्तका अथवा वातपित्त दोनों का कोप होनेपर अथवा इनसे उत्पन्न हुए अन्य विकारों में ग्रीष्मकालमें भी रात्रि के समय घृतका प्रयोग किया जासकताहै। इससे अन्यथा किये जानेपर अर्थात् शीतकालमें रात्रिके समय घृतका प्रयोग करनेसे कफजनित रोग और ग्रीष्मकालमें दिनके समय तैल का प्रयोग करनेसे पित्तजनित रोग होजातेहैं।

स्नेहके उपयोग की विधि।

युक्त्याऽवचारयेत्स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन वस्तिभिः
नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणैः ॥१४॥

अर्थ- घृतादिक स्नेह पदार्थ युक्तिके अनुसार अर्थात् मात्रा, काल, क्रिया भूमि, देह, दोष, और स्वभाव पर लक्ष रखकर भक्ष्य भोज्य लेह्य, पेय अन्नके साथ अथवा वस्ति क्रिया (निरूहण, अनुवासन और उत्तर) नस्य, अभ्यंजन, गंडूषधारण, शिरोवस्ति, कर्णपूरण वा नेत्रतर्पण द्वारा प्रयोग करे।

स्नेहकी ६४ विचारणा।

रसभेदैकैकत्वाभ्यां चतुःषष्टिर्विचारणा।
स्नेहस्याऽन्याभिभूतत्वाबलत्वाच्चैकमात्स्मृता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—रसके तिरेसठ प्रकारों का वर्णन पहिले कर चुके हैं। स्नेह पदार्थ के भी येही तिरेसट प्रकार इन तिरेसठ प्रकारों के साथ प्रयोग किये जाते हैं। रस भेद के साथ इनके प्रयोग की कल्पना भी तिरेसठ प्रकार की है। रसको छोड़कर केवल स्नेह का प्रयोग होता है, इसी तरह सब मिलाकर स्नेह प्रयोग की कल्पना के ६४ प्रकार होते हैं। अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के साथ तथा तिरेसठ प्रकार के रस भेदों के साथ शिरोविरेचन और कर्णनेत्रादि के तर्पण में अल्पमात्रा का प्रयोग किये जाने से स्नेह पदार्थ के गुण अभिभूत हो जाते हैं और इसी प्रकार से स्नेह प्रयोग की कल्पना ६४ प्रकार की होती हैं।

अच्छपेय स्नेह।

यथोक्तहेत्वभावाच्च नाऽच्छपेयो विचारणा।
स्नेह कल्पः स श्रेष्ठः स्नेहकर्माशुसाधनात्।

अर्थ—चौंसठ प्रकार की स्नेह प्रयोग की कल्पना के जो जो हेतु कहे गये हैं। उस उस हेतु के अभाव में केवल मात्र जो अच्छपेय निर्मल स्नेहपान है उसको स्नेह प्रयोग की कल्पना नहीं कहते हैं। जितनी प्रकार के स्नेहपान होते हैं उनमें अच्छपेय ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इसके द्वारा शरीर का तर्पण और मार्दवादि क्रिया शीघ्र साधित होती है। किन्तु यहां यह आपत्ति उपस्थित होती है कि पहिले श्लोक में केवल मात्र स्नेह प्रयोग को भी चौंसठ प्रकारों में से एक प्रकार का कहकर गणना करली है। किन्तु इस जगह शुद्ध स्नेहपान को स्नेह प्रयोग की कल्पना नहीं कहते हैं। इससे ग्रन्थ में विरोधआता है। इस विरोध का यही निराकरण है कि शुद्ध स्नेहपान को कल्पना नहीं कह सकते हैं किन्तु शिरोविरेचन, और कर्ण नेत्रादि तर्पण में जो केवलमात्र स्नेहका प्रयोग किया जाता है वहीं स्नेहप्रयोग की कल्पना है।

स्नेहकी त्रिविधमात्रा।

द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामैर्जीर्यति याः क्रमात्।
ह्रस्वमध्योत्तममात्रास्ताभ्यश्च ह्रसीयसीम्
कल्पयेद्वीक्ष्य दोषादीन् प्रागेव तु ह्रसीयसीम्
ह्यस्तने जीर्णे एवान्ने स्नेहाऽच्छः शुद्धयेबहुः।

अर्थ—स्नेहकी जो मात्रा दो पहर में पच जाती है यह ह्रस्वमात्रा है, जो चार पहर में पचती है यह मध्यमात्रा है और जो आठ पहर में पचती है उसे उत्तम मात्रा कहते हैं। दोष, भेषज, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सत्व, सात्म्य, और प्रकृति इन पर लक्ष करके अज्ञात कोष्ठमें प्रथम ह्रस्वमात्रा का प्रयोग करना चाहिये, फिर प्रयोजन पड़ने पर मध्यम और उत्तम मात्रा का प्रयोग करै। क्योंकि अज्ञात कोष्ठ में प्रथम ही उत्तम मात्रा दे देने से अनेक स्थानों में विपद का उपस्थित होना संभव है इस लिये ह्रस्वमात्रा का ही प्रयोग करना चाहिये। किन्तु यदि शोधन अर्थात् विरेचनादि के निमित्त स्नेहपान करना हो तो पूर्व दिन का किया हुआ आहार पचने पर भूख का उदय न होने पर भी स्नेहपानका प्रयोग अधिक प्रमाण अर्थात् उत्तम मात्रा में करै। क्षुधा उत्पन्न हो जाने पर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नेहका पान करना जठराग्नि के प्रदीप्त हो ने के कारण पच जाता है और शोधन कार्य में असमर्थ हो जाता है। पूर्वोक्त हेतु से क्षुधित को वमन भी नहीं होती है।

बुभुक्षित को स्नेहोपयोग।

शमनः क्षुद्वतोऽन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते।

अर्थ—रोगके शमन के निमित्त भूखके प्रबल होने पर स्नेहपान कराना चाहिये, केवल पूर्वदिनका अन्न पचने पर ही नहीं देवे। क्योंकि शमन के निमित्त जो स्नेह दिया जाता है वह सम्पूर्ण शरीर में प्राप्त होकर यत्रतत्रस्थ कुपित दोषों को शांत कर देता है। केवल पहिले दिनका आहार पचने पर ही बिना क्षुधा लगे निरन्न जो स्नेहपान कराया जाता है वह ककसे उपलिप्त होने के कारण सब देह में नहीं फैल सकता है इसलिये दोषों का शमन भी नहीं कर सकता है। इसमें स्नेह की मध्यममात्रा देना उचित है।

रसादिसहस्नेहोपयोग।

बृंहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः हितः सच॥
बालवृद्धपिपासार्तस्नेहद्विष्मद्यशीलिषु।
स्त्रीस्नेहनित्यमंदाग्निसुखितक्लेशभीरुषु॥
मृदुकोष्ठाऽल्पदोषेषु काले चोष्णे कृशेषु च।

अर्थ—बृंहण के निमित्त मांसरस मद्यादि के साथ अति अल्प मात्रामें स्नेहका प्रयोग करे। यह अन्न के साथ (सभक्त) दिया हुआ स्नेह बालकवृद्ध, तृषार्त, स्नेहसे द्वेष रखनेवाले, मद्यप, स्त्रीसे निरंतर स्नेहमें रत, मन्दाग्निपीडित, सुखी, क्लेशभीरु, मृदुकोष्ठ वाले, अल्पदोषयुक्त और कृश व्यक्ति को ग्रीष्मादि कालमें हितकारी है।

स्नेहपान का फल।

प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदेहजान्।
व्याधीन् जयेद्बलं कुर्यादंगानां च यथाक्रमम्।

अर्थ—भोजन के आदि में किया हुआ स्नेहपान देहके अधोभागमें उत्पन्न हुए रोगों को नष्ट कर देता है और उनमें बल की बृद्धि करता है। भोजनके मध्यमें किया हुआ स्नेहपान शरीरके मध्यभागके रोगों को नाश करके उनको बलिष्ठ करता है। तथा भोजनके अंतमें कियाहुआ स्नेहपान शरीर के ऊर्ध्वभाग के रोगों को नष्ट करके उनको बलवान् बनाता है। यह भी कहाहै "मारुतेऽभ्यधिक सर्पिः सदा सलवणं हितम्। केवले चाधिके पित्ते कफे सव्योषमेव तत्"।

उष्णोदकपानविधि।

वार्युष्णमच्छेऽनुपिबेत् स्नेहे तत्सुखपक्तये॥
आस्योपलेपशुद्ध्यै च तौवरारुष्करे न तु।
जीर्णेऽजीर्णेशंकायां पुनरुष्णोदकं पिबेत्।
तेनोद्गारविशुद्धिःस्याच्छुद्धत्वाच्च लघुता गुरुत्वे।

अर्थ—अच्छ स्नेह पान करनेके पीछे गरम जल पीना उचित है, क्योंकि इससे पिया हुआ स्नेह सहजही में परिपाक को प्राप्त होजाता है, तथा चिकनाई से लिप्त हुआ मुखभी शुद्ध होजाता है। परन्तु तुबुर वा भिलावे का तेल पीकर गरम जल न पीना चाहिये क्योंकि ये उष्णवीर्य हैं।

स्नेहपान के बहुत देर पीछे यदि यह शंका हो कि स्नेह पचाहै वा नहीं तो फिर गरम जल पीना चाहिये गरम जल पीने से डकार शुद्ध आने लगेगी और शरीर में हलकापन तथा रुचिभी बढ़ेगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नेहपानानंतर भोजनविधि।

भोज्योऽन्नमात्रयापास्यन्श्वःपिबन्पीतवानपि
द्रवोष्णमनभिष्यंदिनाऽतिस्निग्धमसंकरम्।
उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी क्षपाशयः॥
न वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकाहिमातपान्।
प्रवातयानयानाध्वभाष्याभ्यासनसंस्थितिः।
नीचात्युच्चोपधानाद्यः स्वप्नधूमरजांसि च।
त्यजेद्दिवा निशि स्वप्नं निशि वेत्यन्यपि त्यजेत्॥
सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिक्षीणेषु च क्रमः।
उपचारस्तु शमने कार्यः स्नेहे विरिक्तवत्॥

अर्थ–जिस दिन स्नेह पान किया जाय उससे पहिले दिन अथवा स्नेहपान के दिन स्नेहपान करने के पीछे मूंग के यूषादि द्रवयुक्त उष्ण अन्न अथवा केवल पेयादिक गरम पतले पदार्थ जो अनभिष्यन्दी अर्थात् कफकारक न हों, जिनमें चिकनाई थोडी पडी हो, असंकर (जिसमें कोई अपथ्य पदार्थ न मिला हो) ऐसा अन्न बहुत अल्प मात्रामें भोजन करना चाहिये। जब तक स्नेह पान करै तबतक, स्नेहपान पीने से आगे के दिनमें और उस दिनभी गरम जल पीवै। स्त्रीसंग न करै, रात्रि में शयन करै (इस कहने से दिनमें सोना वर्जितहै) मलमूत्रादि के वेग को न रोके, इसी तरह व्यायाम, क्रोध, शोक, प्रचंडवायु, सवारीमें चढना, रस्ताचलना, अधिक बोलना, बहुत काल तक आसन पर बैठे रहना, बहुत नीचे वा बहुत ऊंचे तकिये पर सिर धरना, दिनमें सोना, धूआं और धूल इन सबको त्याग देना चाहिये। वमनविरेचनादि संपूर्ण कामों में तथा व्याधि से क्षीण मनुष्य के लिये भी प्रायः यही विधि कर्तव्य है। किन्तु शमन के निमित्त स्नेहपान करने में विरिक्त की तरह नियम पालन करना चाहिये। अर्थात् जैसे विरेचनमें पेयादिका विधान है ऐसेही शमनार्थ स्नेहपान में भी वैसाही विधान है।

स्नेहपानकी अवधि।

त्र्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं पिबेत्।
सम्यक्स्निग्धोऽथवायावदतःसात्म्यमिवेत्परं

अर्थ–यदि कोष्ठ मृदु हो तो तीन दिन, क्रूर हो तो सात दिन तक स्वच्छ स्नेहपान करना उचित है इसमें केवल यही नियम नहीं है, किन्तु जब तक स्निग्धता के लक्षण अच्छे प्रकार से उपस्थित नहों तब तक स्नेहपान करता रहै। इससे यह बात निकली कि सात दिन से आगे भी स्नेहपान का विधान है। इस विषयमें वृद्ध वैद्यों का यह मत है कि सातदिन पीछे स्नेहपान करना पडे तो एक एक दिन बीच में देकर करै। स्निग्धलक्षणों के प्रकाशित होने पर भी जो स्नेहपान किया जाय तो स्नेह सात्मी हो जाता है अर्थात् अभ्यास में पडजाता है और इसका फल कुछ भी दिखाई नहीं देता। संग्रह में लिखा है कि "सात्मीभूतो हि कुरुते न मलानामुदीरणम् अतियोगेन वा व्यापीन् यथाग्नेर्ह्रतियोजनादिति।" मध्यकोष्ठ के विषय में संग्रहमें लिखा है कि छः दिन तक स्नेहपान करना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्निग्ध के लक्षण।

वातानुलोम्यंदीप्तोऽग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम्। स्नेहोद्वेगः क्लमः -
सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ ३० ॥
अतिस्निग्धे तु पांडुत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः।

अर्थ-मनुष्यके सम्यक् प्रकार से स्निग्ध होने पर वायु अनुलोमन, अग्नि उद्दीप्त, मल स्निग्ध और शिथिल होता है तथा स्नेहोद्वेग और क्लान्ति उत्पन्न होती है। परन्तु रूक्ष होने पर उपरोक्त लक्षणों से विपरीत होते हैं। अतिस्निग्धे होने पर पांडुत्व अर्थात् पीलिया होता है, तथा नाक मुख और गुदा से स्राव होने लगता है।

स्नेह के अनुचित प्रयोग का फल।

अमाशयाऽहितोऽकाले मिथ्याहारविहारतः स्नेहः करोति शोफार्शस्तंद्रास्तंभविसंज्ञताः कंडूकुष्ठज्वरोत्क्लेशशूलाऽऽनाहभ्रमादिकान्

अर्थ-कुसमय अनुचित मात्रा में मिथ्या आहार विहारादि के साथ जो स्नेहपान किया जाता है उसका फल अच्छा नहीं होता, इस से सूजन, अर्श, तन्द्रा, जड़ता, संज्ञानाश, खुजली, कोढ, ज्वर, वमन, शूल, आनाह और भ्रमादिक उपद्रव उपस्थित होते है।

स्नेहविधिविभ्रंश में कर्तव्य।

क्षुत्तृष्णोल्लेखनस्वेदरूक्षपानान्नभेषजम्।
तक्रारिष्टं खलोद्दालयवश्यामाकोद्दवाः ३३
पिप्पलीत्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु।
यथास्वंप्रतिरोगं च स्नेहव्यापदिसाधनम् ३४

अर्थ-स्नेहविधि के विभ्रंस होने पर क्षुधा और तृषा के वेग का रोकना, वमन, पसीना रूक्ष पान, अन्न और भेषज, तक्र, अरिष्ट, खल (व्यंजन विशेष, इसका पहिले वर्णन हो चुका है) उद्दालक, जौ, सोंखिया, कोदों, पीपल, त्रिफला, शहत, हरड, गोमूत्र, और गूगल तथा जिस जिस रोग की जिस जिस अध्यायमें जो औषध लिखी गई है उनका प्रयोग दोषानुरूप करना चाहिये।

विरूक्षण के कृतातिकृत लक्षण।

विरूक्षणे लंघनवत्कृताऽतिकृतलक्षणम्।

अर्थ-सम्यक् कृत और अति कृत लंघन के जो जो लक्षण है, वेही वेही लक्षण सम्यक् कृत और अतिकृत विरूक्षण के भी हैं। अर्थात् सम्यक् कृत लंघन के जो विमलेन्द्रियतादि संपूर्ण लक्षण कहे गये हैं वे सम्यक् कृत विरूक्षण के भी हैं और अतिकृत लंघन के जो कृशता आदि लक्षण कहे गये हैं वेही अति विरूक्षण के भी हैं।

स्नेहन के पीछे का कर्म।

स्निग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक् स्वेदमाचरेत्
स्निग्धस्त्र्यहं स्थितः कुर्याद्विरेकं वमनं पुनः।
एकाहं दिनमन्यच्च कफमुत्क्लेश्य सत्करैः

अर्थ-स्नेहन क्रिया के द्वारा स्निग्ध होने के पीछे स्निग्ध, द्रव और उष्ण जांगल मांसरस भोजन करके पसीना लेवै, पसीना लेने के तीन दिन पीछे विरेचन लेवै। किन्तु यदि स्नेह के पीछे वमन क्रिया ही उपयोगी हो तो उक्तरूप से मांसरस भोजन कर के पसीना लेवै। स्वेद लेने के एक दिन पीछे कफकारक हेतु द्वारा कफ को उत्क्लेशित करके वमन द्वारा निकाल देवै।

पाठांतर-मृदुस्निग्धांगतारुग्लानिः स्नेहोद्वेगोऽग्लाघवम्। विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्य्ययः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मांसल स्नेहयोग्यों का रूक्षण ।

मांसला मेदुरा भूरिश्लेष्माणो विषमाग्नयः ।
स्नेहोचिताश्चये स्नेह्यास्तान् पूर्वं रूक्षयेत्ततः ।
संस्नेह्य शोधयेदेवं स्नेहव्यापन्न जायते ।
अलं मलानीरयितुं स्नेहश्चसात्म्यतां गतः ३८

अर्थ–जो मांसल (जिन के देह का मांस बहुत बढ गया है) मेदुर (जिन का मेद बहुत बढगया है) भूरिश्लेष्मा (जिन को कफ बहुत है) विषमाग्नि (जिन की जठराग्नि विषम है) हैं उनको स्नेहनकर्म करना चाहिये । जिन की स्नेहनक्रिया करनी हो उनका प्रथम रूक्षण करके फिर स्नेह का प्रयोग करना चाहिये । इस तरह स्नेहप्रयोग के पीछे वमनविरेचनादि द्वारा शोधन क्रिया करै । इस नियम से स्नेहक्रिया करने पर कोई स्नेहव्यापत्ति उत्पन्न नहीं होती है । किन्तु इस तरह सेवन किया हुआ स्नेह असात्म्यता को प्राप्त होकर वातादि और पुरीषादि मल को निकालने में समर्थ होता है । पहिले कह चुके हैं कि बहुत काल तक स्नेह का सेवन करने से वह सात्मीभूत होकर अभ्यास में पडता है और अभ्यास में पडा हुआ स्नेह मलादि को बाहर नहीं निकाल सकता है । परन्तु ऊपर लिखे हुए क्रम से सेवन किया हुआ रस अभ्यास में न पडकर असात्म्यता को प्राप्त हो जाता है और मलादि के निकालने में समर्थ होता है ।

बालवृद्धादि का सद्यःस्नेहकरण ।

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ।
योगानिमाननुद्वेगान् सद्यःस्नेहान् प्रयोजयेत्

अर्थ–जो बालक वा वृद्ध हैं और जो स्नेहसंबंधी त्यागने योग्य विषयों को त्यागने में असमर्थ हैं । उन के लिये नीचे लिखे हुए स्नेहाढ्य अनुद्वेजक योगों का तत्काल प्रयोग करना चाहिये ।

अनुद्वेजकयोगों का वर्णन ।

प्राज्यमांसरसास्तेषु पेया वा स्नेहभर्जिता ॥
तिलचूर्णश्च सस्नेहफाणितः कृशरातथा ॥
क्षीरपेया घृताढ्योष्णा दध्नो वा सगुडः सरः
पेया च पञ्चप्रसृता स्नेहैस्तंदुलपंचमैः ४१ ॥
सप्तैते स्नेहनाः सद्यः स्नेहाश्च लवणोल्वणाः
तद्याभिष्यंद्यरूक्षं च सूक्ष्ममुष्णंव्यवायि च ४२

अर्थ–ऊपर लिखे बालकादि के लिये पुष्कल मांस का रस, घी में भुनी हुई पेया, तिलका चूर्ण घृतयुक्त गुड़ के पदार्थ, खिचडी, घृत, गरम दूधकी बनी पेया, दहीकी मलाई में गुड़ मिलाकर, घृतादिक चार प्रकार के स्नेह (घृत तेल वसा मज्जा) और तंडुल । इस पांच प्रकार की पांच प्रसृत पेया । ये सब सात प्रकार के स्नेह शीघ्र सेवन करावै । इनके सिवाय अधिक लवणयुक्त घृतादि भी तत्काल स्नेहन करने वाले हैं ।

जिस कारण से लवणरस अभिष्यन्दी अर्थात स्रोतों का स्राव करनेवाला है अरूक्ष है, सूक्ष्म स्रोतों में प्रवेश करनेवाला है, उष्णगुणयुक्त और व्यवायी है । जो द्रव्य पहिले संपूर्ण देह में व्याप्त होकर फिर परिपाक को प्राप्त होता है उसे व्यावायी कहते हैं ।

कुष्ठादि में निषेध ।

गुडानूपाऽमिषक्षीरतिलमाषसुरादधि ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुष्ठशोफप्रमेहेषु स्नेहार्थं न प्रकल्पयेत् ४३॥

अर्थ–कुष्ठ, शोथ और प्रमेह रोग में गुड, आनूपमांस, दूध, तिल, माष, मद्य और दही स्नेहन के लिये न देने चाहियें।

कुष्ठादि की स्नेहन विधि।

त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गुल्वादिविपाचितान् स्नेहान्यथास्वमेतेषां योजयेदविकारिणः ४४
क्षीणानां त्वामयैरग्निं देहसंधुक्षणक्षमान्।

अर्थ–उक्त कुष्ठादि रोगों में त्रिफला, पीपल और गूगल आदि जो जो औषधें कुष्ठादि के प्रकरण में लिखी गई हैं उसी उसी औषध द्वारा स्नेह को सिद्ध करके प्रयोग करें।

किन्तु जो अनेक प्रकार की व्याधियों द्वारा क्षीण हो गये है उनके लिये अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले और देहको पुष्ट करने वाले जो सब प्रकार के स्नेह हैं उनका प्रयोग करना चाहिये।

बारबार स्नेहका फल।

दीप्तांतराग्निः परिशुद्धकोष्ठः-
प्रत्यग्रधात्वोजबलवर्णयुक्तः।
दृढेंद्रियो मंदजरः शतायुः
स्नेहोपसेवी पुरुषः प्रदिष्टः॥ ४६॥

अर्थ–जो मनुष्य निरंतर स्नेह सेवन करता रहता है उसकी अग्नि प्रदीप्त, कोष्ठ परिशुद्ध (साफ कोठा), रस रक्तादि धातु वर्द्धित, इन्द्रियगण दृढ, और वृद्धावस्था थोडी ये लक्षण होते हैं, तथा वह सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन धारण करता है।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः।

अथाऽतः स्वेदविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से स्वेदविधिनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

स्वेदके चार प्रकार।

"स्वेदस्तापोपनाहोष्मद्रवभेदाच्चतुर्विधः।

अर्थ–ताप, उपनाह, ऊष्म और द्रव भेदों से स्वेद चार प्रकार का होता है।

तापस्वेदका लक्षण।

तापोऽग्नितप्तवस्त्रफालहस्ततलादिभिः॥१॥

अर्थ–अग्नि से गरम किये हुए वस्त्र, लोहेके फलक वा हथेली द्वारा स्वेद देनेका नाम तापस्वेद है। आदि शब्द से काष्ठ, बालू, घटिका और कांसी के पात्र का भी ग्रहण है।

उपनाहस्वेदके लक्षण।

उपनाहो वचाकिण्वशताह्वादेवदारुभिः।
धान्यैः समस्तैर्गंधैश्च राास्नैरंडजटामिषैः॥२॥
उद्रिक्तलवणैः स्नेहचुक्रतक्रपयःप्लुतैः।
केवले पवने श्लेष्मसंसृष्टे सुरसादिभिः॥३॥
पित्तेन पद्मकाद्यैस्तु साल्वणाख्यैः पुनः पुनः।

अर्थ–केवल वायुके प्रकोपमें वच, किण्व, शतमूली, देवदारु, धनियां, (तिल, अलसी, माषकलाय तथा अन्य उष्णवीर्य द्रव्य भी यहां प्रयोज्य हैं) समस्त गंध द्रव्य जैसे कूठ, अगर तगर, सुरसा आदि;

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रास्ना, अरंडकी जड, जटामांसी और मांस, इनको शिला पर पीसकर अधिक नमक मिलाकर तथा घृतादि स्नेह, चूका, तक्र वा दूध डालकर गरम करले, फिर इसके द्वारा पसीने दे। कफयुक्तवायुमें पहिले कहे हुए सुरसादि गणोक्त द्रव्यों द्वारा स्वेदन करै किंचित् पित्तयुक्त वायुमें पद्मकादि गण में कहे हुए द्रव्यों द्वारा बार बार स्वेदन करै (समान वा अधिक पित्तयुक्त होने पर यह विधि नहीं कही गई है), इन दोनों प्रकार के स्वेदों में भी नमक और घृतादि मिला-लेने चाहियें। ऐसे स्वेद का नाम उपनाह है। अन्य ग्रन्थ में इसको सात्वणस्वेद भी कहते हैं। प्रचलित भाषा में इसे पुलटिस कहते हैं। चमड़े की पट्टी आदि से बांधा जाता है इसलिये इसे उपनाह कहते हैं। भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं" काकोल्यादि स वातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः। सानूपोद्भव कमांसस्तु सर्वस्नेहसमन्वितः। सुखोष्णः स्पष्ट लवणः सात्वणः परिकीर्तितः।

स्वेदोपायभूत चर्मपट्टादि।

स्निग्धोष्णवीर्यैर्मृदुभिश्चर्मपट्टैरपूतिभिः ।४।
अलाभे धातजित्रकौशेयाऽधिकशाटकैः।
रात्रौ बद्धं दिवामुंचेन्मुंचेद्रात्रौ दिवाकृतम् ५

अर्थ—किसी अंग में ऊपर कहे हुए लेप लगाकर मृदु, स्निग्ध, उष्णवीर्य और दुर्गन्धरहित चर्म तथा चर्म के न मिलने पर वातनाशक अरंडके पत्ते वा रेशमी वस्त्र, अथवा कंबल वा साडी बांधे रखने का नाम उपनाह स्वेद है। रात में बांधी हुई पट्टी को दिनमें खोले और दिन में बांधी हुई पट्टी को रात में खोले।

ऊष्मास्वेद।

ऊष्मा तूत्कारिकालोष्ठकपालोपलपांसुभिः।
पत्रभंगेन धान्येन करीषसिकतातुषैः ॥ ६ ॥
अनेकोपायसंतप्तैः प्रयोज्यो देशकालतः।

अर्थ—भाफ लगाकर पसीने निकालने का नाम ऊष्मास्वेद है। उत्कारिका, मिट्टी का डेला, खपडा, पत्थर, धूल, पत्तों का समूह, धान्य, गोबरकाचूर्ण, बालू और भुस आदि अनेक उपायों से इनको गरम करके देश, काल, दोष, दृष्य आदि पर विचार करके पसीने निकालने के लिये प्रयोग करै।

जौ, उरद, अरंडके बीज, अलसी, कसूमके बीज आदि को पत्थर पर पीसकर पानी के साथ घोटकर लपसी के समान करके जो पसीने निकालने में काममें लाई जाती है उसे उत्कारिका (छपडी) कहते हैं। मिट्टी के डेले आदि ऊपर कहे हुए पदार्थों को लाल गरम कर करके पानी में अथवा धान्याम्ल में अथवा शुक्तमें डाल डाल कर उनकी भाफ लेवै। यह भाफ खाटमें सोकर ली जाती है। गोबर आदि का गोला सा बनाकर गरम करके स्वेद देने का नाम पिंडस्वेद है। अथवा अरंडके पत्ते यवादि धान्य खटाई युक्त लेकर इनको गरम करके खाट अथवा पृथ्वी पर कंबल, ऊनका वस्त्र, रेशमीवस्त्र, वातनाशक पत्ते वा मृगचर्म आदि बिछाकर उसके ऊपर उक्त गरम कियेहुए द्रव्य बिछावे और उस पर लेटकर कोई गरम कपडा ओढले और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पसीना ले इसका नाम संस्तरस्वेद है। अथवा भाफ लेनेके पदार्थों को एक घडे में भरदे और उसका मुख ढककर अच्छी तरह गरम करले। और रोगी को ऐसे स्थान में बैठा कर जहां हवा न लगती हो कंबल आदि वस्त्र उढाकर सब शरीर ढकदे पीछे इस पात्रका मुख धीरे धीरे खोलकर उससे उठी हुई भाफ से भपारा दे इसका नाम कुंभस्वेद है। इसतरह अनेक युक्तियों से उष्मास्वेद दिया जाता है।

द्रवस्वेद।

शिग्रुवीरणकैरंडकारञ्जसुरसार्जकान् ॥ ७ ॥
शिरीषवासाबंशार्कमालतीदीर्घवृंततः।
पत्रभंगैर्वाद्यैश्चैव मांसैश्चाऽनूपवारिजैः८
दशमूलेन च पृथक्सहितैर्वा यथामलम्।
स्नेहवद्भिः सुराशुक्तवारिक्षीरादिसाधितैः॥
कुंभीगलंतीर्नाडीर्वा पूरयित्वा रुजार्दितम्।
वाससाऽऽच्छादितं गात्रं स्निग्धं सिंचेद्यथासुखम् ॥ १० ॥

अर्थ—सहजना, वीरण, अरंड, कंजा, तुलसी, अर्जक, सिरस, अडूसा, बांस, आक, मालती, दीर्घवृत इनके पत्तों का समुदाय, त्वचादिगण में कहे हुए द्रव्य, आनूप और जलचरों का मांस, और, दशमूल इनमें से कोई एक, दो, तीन वा सबको दोषके अनुसार घृतादि स्नेह मिलाकर तथा मद्य, शुक्त, जल, वा दूध द्वारा पकाकर थाली, तबेला, घडा, अथवा बांस की नली में रोगी के अंग के जिस भाग में पीडा होती हो सुहाता हुआ गरम गरम से सेचन करे। सेचन से पहिले उस पीडित अंग को घृत से चुपडले वा उस पर वस्त्र ढकदे।

अवगाहनस्वेद।

तैरेव वा द्रवैः पूर्णकुंडं सर्वांगगेऽनिले।
अवगाह्याऽऽतुरस्तिष्ठेदर्शः कृच्छ्रादिरुक्षु च॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए द्रव्यों को एक कुंड में अथवा एक बडे पात्रमें भरकर रोगी को उसमें बैठादे। यह रोगी ऐसा हो जिसके सब अंग में वात की पीडा होती हो अथवा अर्श और मूत्रकृच्छ्रादि रोगों में इस तरह किया जाता है। बर्तन कोई हो पर इतना बडा होना चाहिये जिसमें रोगी कंठ तक बैठजाय। खाट के नीचे एक गढा खोदकर उसमें वातनाशक लकडी उपले भरकर आग लगाकर निर्धूम अंगार कर लिये जाय, फिर रोगी को उस खाट पर शयन कराई जाय, इसका नाम कूपस्वेद है, इसी तरह कुटीस्वेदादि के लक्षण अन्य ग्रन्थों से जानने चाहिये।

स्वेदविधि।

निर्वातेऽतर्बहिःस्निग्धोजीर्णान्नःस्वेदमाचरेत्
व्याधिव्याधितदेशर्तुवशान्मध्यवरावरम्॥

अर्थ—स्नेहपान और स्नेहाभ्यंगद्वारा भीतर और बाहर स्निग्ध होकर, पहिले आहार के पचने पर रोग, रोगी, देश और ऋतु के अनुसार वायुरहित स्थान में हीन, मध्यम वा उत्कृष्ट स्वेद देवै। आमाजीर्णवाले रोगी को अथवा जिसको जिसका पहिला भोजन न पचा हो ऐसे रोगी को पसीने कदापि न देवै।

कफरोगमें स्वेदविधि।

कफार्तो रूक्षणं रूक्षो रूक्षस्निग्धं कफानिले।

अर्थ—कफ से पीडित रोगी रूक्ष होकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थात् स्नेहपान वा स्नेहमर्दनद्वारा स्निग्ध न होकर पसीने ले। यदि रोगी कफजात से पीडित हो तो किसी अंग में रूक्ष और किसी में स्निग्ध स्वेद देना चाहिये।

आमाशयादि व्याधिमेंस्वेदविधि।

आमाशयगते वायौ कफे पक्वाशयाश्रिते १३॥
रूक्षपूर्वं तथा स्नेहपूर्वं स्थानानुरोधतः।

अर्थ–जो वायु आमाशयमें चलागया हो तो प्रथम रूक्ष स्वेद लेकर पीछे स्निग्ध स्वेद लेना चाहिये। तथा कफ के पक्वाशय में जाने पर प्रथम स्निग्ध फिर रूक्ष स्वेद लेना चाहिये। इस नियम का कारण यह है कि आमाशय कफका स्थान है और वायु आगन्तु है, इस लिये कफ की शान्ति के निमित्त प्रथम रूक्ष और वायु की शांति के लिये पीछे स्निग्ध स्वेद दिया जाता है इसी तरह पक्वाशय वायुका स्थान है और कफ आगन्तु है इस लिये वायुकी शांति के लिये रूक्ष स्वेद दिया जाता है।

वंक्षणादिस्थानमें स्वेदविधि।

अल्पं वंक्षणयोः स्वल्पं दृङ्मुष्कहृदये न वा १४

अर्थ–जिस जगह पर वद होती है उस स्थान को जंघाकी संधिपर्यंत वंक्षण कहते हैं इस स्थान में अल्प स्वेद देना चाहिये। नेत्र, अंडकोश और हृदय इन स्थानों में पसीने की आवश्यकता हो तो बहुत कम स्वेद देवै अथवा देना ही उचित नहीं है।

स्वेदित पुरुषोंका कर्तव्य।

शीतशूलक्षये स्विन्ने ऋजोऽङ्गानां च मार्दवे
स्याच्छनैर्मृदितः स्नातस्ततः स्नेहविधिं भजेत्

अर्थ–जिस समय देह में ठंडापन वा पीडा कम हो जाय, तथा शरीर के हाथ पांव आदि अंगों में कोमलता हो जाय तब जान लेना चाहिये कि स्वेदन होगया। स्वेदित होने के पीछे रोगी के शरीर पर कोमल हाथों से धीरे धीरे मर्दन करके गरम जल से स्नान करावै फिर स्नेहविधि में कही हुई रीति से रोगी की पालना करै।

अतिस्वेद से हानि।

पित्तासृक्कोपतृण्मूर्छास्वरांगसदनभ्रमाः।
संधिपीडाज्वरश्यावरक्तमंडलदर्शनम् १६।
स्वेदातियोगाच्छर्दिश्च तत्र स्तंभनमौषधम्
विषक्षाराऽग्न्यतीसारच्छर्दिर्मोहातुरेषु च।

अर्थ–अधिक पसीने देने से रक्तपित्त का प्रकोप, तृषा, मूर्छा, स्वरकी क्षीणता, देह में शिथिलता, भ्रम, सन्धियों में पीडा, ज्वर, काले और लाल चकत्ते, और वमन ये सब उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें स्तंभन औषध का प्रयोग करना चाहिये। तथा विष, क्षारकर्म, अग्निकर्म, अतिसार, वमन और मूर्छा इन रोगों में भी स्तंभन औषधका प्रयोग करना चाहिये।

स्वेदनस्तंभन औषध।

स्वेदनं गुरु तीक्ष्णोष्णं प्रायः स्तंभनमन्यथा
द्रवस्थिरसरस्निग्धरूक्षसूक्ष्मं च भेषजम् १८
स्वेदनं स्तंभनं श्लक्ष्णं रूक्षसूक्ष्मसरद्रवम्।

अर्थ–जो औषध भारी तीक्ष्ण और गरम होती है वह स्वेदन होती है। और जो इससे विपरीत अर्थात् हलकी, मंद और ठंडी होती है वह स्तंभन होती है। जो औषध द्रव, स्थिर, सर, स्निग्ध, रूक्ष और सूक्ष्म गुणयुक्त होती है वह स्वेदन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होती है, तथा जो श्लक्ष्ण (सूक्ष्म और कोमल) रूक्ष, सूक्ष्म, सर और द्रव्य होती है वह स्तंभन होती है।

स्तंभन औषधका रस।

प्रायस्तिक्तं कषायं च मधुरं च समासतः ॥

अर्थ–प्रायः जो औषध तिक्त, कषाय और मधुर रसवाली होती है वह संक्षेप से स्तंभन औषध होती है।

स्तंभित के लक्षण।

स्तंभितः स्याद्बले लब्धे यथोक्तामयसंक्षयात्

अर्थ–जिस औषध से मनुष्यको बल प्राप्त हो और अति स्वेदन से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजांय तो जानलेना चाहिये कि स्तंभन औषधि ने अपना गुण दिखादियाहै।

अतिस्तंभित के लक्षण।

स्तंभत्वक्स्नायुसंकोचकंपहृद्ग्राम्यनुग्रहैः ।२०
पादोष्ठत्वक्करैः श्यावैरतिस्तंभितमादिशेत्।

अर्थ–शरीर में जडता, त्वचा और स्नायुओं में संकोच, शरीरमें कंपन, हृदय में वेदना वाणीमें शिथिलता, हनुग्रह तथा हाथ, पांव और त्वचा इनका काला होजाना, ये सब लक्षण होते हैं।

अस्वेद्य रोगी।

न स्वेद्येदतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्छितान् ।२१।
स्तंभनीयक्षतक्षीणक्षाममद्यविकारिणः।
तिमिरोदरवीसर्पकुष्ठशोथार्धरोगिणः ।२२।
पीतदुग्धदधिस्नेहमद्यक्लृप्तविरेचनान्।
भ्रष्टदग्धगुदग्लानिक्रोधशोकभयान्वितान् २३
क्षुत्तृष्णाकामलापांडुमेहिनः पित्तपीडितान्।
गर्भिणीं पुष्पितां सूतां मृदु चाऽत्ययिके गदे

अर्थ–अतिस्थूल, रूक्ष, दुर्बल, मूर्च्छित, स्तंभनीय, क्षतक्षीण, कृश, मद्यरोगी, तिमिर रोगी, उदरविकारी, विसर्परोगी, कोढी, शोथरोगी, वातरक्तरोगी, तथा जिसने दूध, दही, स्नेह और मद्यपान किया हो, जिसने जुलाब लिया हो, जिसकी गुदा फटगईहो, वा क्षारादि अग्नि कर्म से जलगई हो, जिस को ग्लानि होगई हो, जो क्रोध, शोक और भयसे पीडित हो, जो क्षुधा, तृषा, कामला, पांडुरोग, प्रमेह और पित्त विकार से पीडित हो, गर्भिणी, रजस्वला, और प्रसूती इनको पसीना नहीं देना चाहिये। जो उक्त रोगियों में से किसीको विसूचिकादि विपज्जनक रोग होजाय तो मृदु स्वेदन देना उचितहै।

स्वेद्यरोगी।

श्वासकासप्रतिश्यायहिध्माध्मानविबंधिषु।
स्वरभेदाऽनिलव्याधिश्लेष्मामस्तंभगौरवे।
अंगमर्दकटीपार्श्वपृष्ठकुक्षिहनुग्रहे।
महत्वे मुष्कयोः खल्लयामाय्यामे वातकंटके २६
मूत्रकृच्छ्रार्बुदग्रंथिशुक्राघाताढ्यमारुते।
स्वेदं यथायथं कुर्यात्तदौषधविभागतः ।२७।

अर्थ–श्वास, कास प्रतिश्याय, हिचकी, आध्मान (अफरा) गलका विबंध, स्वरभेद, वातव्याधि, श्लेष्मा, आमरोग, स्तंभ, गौरव, अंगमर्द, तथा कमर, पसली, पीठ, कूख इनमें वेदना, तथा हनुग्रह, अंडवृद्धि, खल्लीनामक तीव्र वेदनावाला वातरोग, आयाम नामक वातरोग, वातकंटक, मूत्र कृच्छ्र, अर्बुद, ग्रंथि, शुक्राघात, और ऊरुस्तंभ इन सब रोगों में उस उस रोगके उपयुक्त औषध विभागानुसार यथायोग्य स्वेदन देवे अर्थात् जैसा रोग हो उसी के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुसार कभी तापस्वेद, कभी उपनाहस्वेद और कभी ऊष्मास्वेद का प्रयोग करै।

अग्निरहित स्वेद।

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेदः कफावृते।
निवातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम्।२८।
उपनाहाहवक्रोधभूरिपानं क्षुधातपः।

अर्थ—मेद और कफावृत वातरोग में अनाग्नेय अर्थात् अग्निरहित स्वेद हितकारी होता है। अनाग्नेय स्वेद के लक्षण यह हैं—वातरहित घरमें बैठकर पसीने लेना, तथा व्यायाम, कंबल आदि भारी वस्त्र ओढना, भय, स्निग्ध, उष्ण और कोमल चमडे की पट्टी बांधकर उपनाह स्वेद लेना, संग्राम, क्रोध, अत्यन्त मद्यपान, क्षुधा, और धूप। ये सब अग्निरहित स्वेद हैं।

उपनाह दो प्रकार का होता है एक आग्नेय, दूसरा अनाग्नेय। पूर्वोक्त रंड और किण्वादि द्वारा जो उपनाह दियाजाता है वह आग्नेय होता है तथा स्निग्धोष्णवीर्य, मृदु और दुर्गन्धिरहित चमडा वा इसके अभाव में वातनाशक अरंडके पत्तों द्वारा जो उपनाह दियाजाता है वह अनाग्नेय उपनाह कहलाता है।

स्वेदनका मुख्य कर्म।

स्नेहक्लिन्नाः कोष्ठगा धातुगा वा
स्रोतोलीना ये च शाखास्थिसंस्थाः।
दोषाः स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं
नीताः सम्यक्शुद्धिभिर्निर्हियंते ॥ २९ ॥

अर्थ—जो जो दोष कोष्ठ और धातुओं में स्थित हैं, अथवा रसादिवाहिनी नाडियों में चले गये हैं अथवा हाथ पांव आदि देहावयव की अस्थियों में स्थित होगये हैं उन को स्नेहनकर्म से स्निग्ध करके तथा स्वेदन कर्म से पतले करके कोष्ठ में लाकर वमन विरेचनादि रूप शुद्धि से बाहर निकाल देना उचित है।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः।

अष्टादशोऽध्यायः।

अथाऽतो वमनविरेचनविधिमध्यायं व्याख्या स्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से वमन और विरेचन विधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वमनविरेचन विधि।

" कफे विदध्याद्वमनं संयोगे वा कफोल्वणे।
तद्वद्विरेचनं पित्ते

अर्थ—कफ की कमी होने पर विरेचन अच्छी तरह हो सकता है, इसलिये प्रथम वमन से आरंभ करके कहते हैं कि कफरोग में कफाधिक्य में वा कफ के संयोग (वात कफ, पित्तकफ वा वातपित्तकफ) में वमन कराना चाहिये। इसी तरह पित्तमें वा पित्ताधिक्य में अथवा पित्त के संयोग (वातपित्त कफपित्त वा वातकफपित्त) में विरेचन देना उचित है।

वमनोपयोगी रोगी।

विरेचेण तु वाभयेत्।१।
नवज्वरातिसाराग्निपित्तास्रगुदरक्रिमीन्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुष्ठमेहाऽपचीग्रंथिश्लीपदोन्मादकासिनः।२।
श्वासहृल्लासवीसर्पस्तन्यदोषोर्ध्वरोगिणः।

अर्थ-नवज्वर, अतिसार, अधोगामी [गुदा द्वारा निकलने वाला] रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कोढ, मेह, अपची, ग्रंथि, श्लीपद, उन्माद, कास, श्वास, हृल्लास, [जी मिचलाना] विसर्प, स्तन्यरोग, और ऊर्ध्व जत्रुगत रोग। इन रोगों से पीडित मनुष्य को विशेष रूप से वमन कराना चाहिये।

अवमनीय रोगी।

अवम्या गर्भिणी रूक्षःक्षुधितो नित्यदुःखितः
बालवृद्धकृशस्थूलहृद्रोगिक्षतदुर्बलाः।
प्रसक्तवमथुग्राहितिमिरकिमिकोष्ठिनः॥ ४॥
ऊर्ध्वप्रवृत्तयाप्यस्रदत्तवस्तिहतस्वराः।
मूत्राघात्युदरी गुल्मी दुर्वमोऽत्यग्निरर्शसः५
उदावर्तभ्रमाऽष्ठीलापार्श्वरुग्वातरोगिणः।

अर्थ-गर्भवती स्त्री, रूक्ष प्रकृतिवाला मनुष्य, भूखा, नित्यदुखी, बालक, वृद्ध, कृश, स्थूल, हृद्रोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, निरंतर वमन कारी, प्लीहा वाला, तिमिररोगी, कृमिरोगी, कोढी जिसके शरीर में वातरक्त ऊपर को जाने लग गया हो, जिस को बस्ति दीगई हो, जिसका स्वर भेग होगया हो, तथा मूत्राघातवाला, उदररोगी, गुल्मरोगी, कष्ट से वमन होनेवाला रोगी, तीव्रजठराग्निवाला, अर्शरोगी उदावर्तवाला, भ्रमरोगी, अष्ठीलानामक रोगवाला, पसली के दर्द वाला और वात रोगी इतने रोगी वमनकराने के योग्य नहीं होते हैं।

विष में वमन विधान।

कृते विषेगराऽजीर्णविरुद्धाऽभ्यवहारतः।६।

अर्थ-ऊपर जो वमन के अयोग्य रोगी कहे गये हैं उन को यदि स्थावर वा जंगम विष से कष्ट पहुंचा हो, अथवा अजीर्ण वा विरुद्ध भोजन से दोष उत्पन्न हुआ हो तो वमन कराना ही चाहिये।

उक्त रोगियों को गंडूषादि निषेध।

प्रसक्तवमथोः पूर्वं प्रायेणामज्वरोऽपि च।
धूमांतैः कर्मभिर्वर्ज्याः सर्वैरेव त्वजीर्णिनः ७

अर्थ-पूर्वोक्त श्लोक में प्रसक्तवमथु (निरंतरवमनकारी) इस शब्द से पहिले गर्भवती स्त्री से लेकर दुर्बल पर्य्यन्त जो ग्यारह प्रकार के रोगी लिखे गये हैं उन को तथा आम ज्वरवालों को जो वमन कराने का निषेध किया गया है वह इतना ही नहीं है, किन्तु इनको प्रायः स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन वस्तिकर्म, नस्य धूमपान ये कर्म भी कराना उचित नहीं है, तथा गंडूषधारणादि विधिका भी निषेध है दीर्घ काल वाले अजीर्ण रोगी धूमग्रहण, गंडूषधारण, तथा तर्पणादि सब कामों का ही निषेध है। आठमासकी गर्भवती स्त्री को निरूहणवस्ति देना न चाहिये। जिसने तत्काल भोजन किया हो ऐसे ज्वर वाले रोगी को और तत्काल के अजीर्णवाले को वमन करने का निषेध नहीं है इसलिये मूल श्लोक में 'प्रायः' शब्द का प्रयोग किया गया है।

विरेचनके योग्य रोगी।

विरेकसाध्या गुल्मार्शोविस्फोटव्यंगकामलाः
जीर्णज्वरोदरगरच्छर्दिप्लीहहलीमकाः८॥
विद्रधिस्तिमिरं काचः स्यंदः पक्वाशयव्यथा
योनिशुक्राशया रोगा कोष्ठगाःकृमयो व्रणाः॥
वातास्रमूर्ध्वगंरक्तं मूत्राघातः शकृद्ग्रहः।
वम्याश्च कुष्ठमेहाद्याः-

अर्थ-गुल्म, अर्श, विस्फोटक, व्यंग,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कामला, जीर्णज्वर, उदररोग, विषरोग, बमन, प्लीहा, हलीमक, विद्रधि तथा तिमिर, काच, और अभिष्यन्द नामक नेत्ररोग, पक्वाशय, व्यथा, योनिरोग, शुक्रस्थानके रोग, कोष्टरोग, क्रिमिरोग, व्रण, रक्तपित्त, मूत्राघात और मलबद्धता ये सब रोग विरेचनसाध्य हैं, तथा "वमनोपयोगी प्रकरण" में जो कुष्ठ, मेह, अपची, ग्रंथि, श्लीपद, उन्माद, कास, श्वास, हृल्लास, विसर्प, स्तन्यदोष और ऊर्ध्वजत्रुगतरोग कहे गये हैं, इन में भी विरेचन दिया जाता है।

विरेचनके अयोग्य रोगी।

न तु रेच्यो नवज्वरी ॥ १० ॥
अल्पाऽन्यधोगपित्तास्रक्षतयक्ष्मातिसारिणः सशल्यास्थापितक्रूरकोष्ठाऽतिस्निग्धशोषिणः

अर्थ—नवीनज्वरवाले को विरेचन न देना चाहिये क्योंकि ऐसे रोगी को विरेचन देने से अपक्व दोष बाहर निकल आते हैं और वायु कुपित हो जाता है। यक्ष्मावाले को अवस्थाके अनुसार मृदु विरेचन कहा है और इसी तरह अतिसार वाले को भी प्रकरणानुसार विरेचन कहा है पर नवज्वरवाले को थोडा विरेचन भी न देना चाहिये। जिनको मंदाग्नि रोग हो उनको विरेचन देने से वह औषध के वेग को नहीं सह सकता है। अधोमार्गगामी रक्तपित्तवाले को विरेचन न दे क्योंकि अत्यन्त बहने से बहुधा प्राण नाश होजाता है। गुदाके घाव में विरेचन अयोग्य है क्योंकि इससे प्राणनाशिनी पीडा होती है। अतिसार वाले को भी विरेचन न देना चाहिये। सशल्य क्षत में विरेचन देने से वायु का कोप बढता है। आस्थापनवस्ति वाले को विरेचन न दे क्योंकि इससे उसको निर्बलता बढती है। क्रूरकोष्ठ वाले को विरेचन देने से कुछ असर नहीं होता है और कोष्ठस्थ दोष गुदा द्वारा बाहर नहीं निकलते हैं तथा वहां रुककर हृदशूल संधिभेद, आनाह, वमन, मूर्च्छा, आदि रोगों को पैदा करते हैं। इसलिये क्रूरकोष्ठवाले को विरेचन न देना चाहिये। इसी तरह अति स्निग्ध और शोषरोगियोंको भी विरेचन न देवै।

वमन करनेकी विधि।

अथ साधारणे काले स्निग्धस्विन्नं यथाविधि श्लेष्मण्युत्क्लिष्टकफं मत्स्यमाषदधितिलादिभिः
निशां सुप्तं सुजीर्णान्ने पूर्वाह्णे कृतमंगलम्।
निरन्नमीषत्स्निग्धं वा पेयया पीतसर्पिषम् १३
वृद्धबालाबलक्लीबभीरून् रोगानुरोधतः।
आकण्ठं पाययेत्तान्मद्यं क्षीरमिक्षुरसं रसम् ॥
यथाविकारविहितं मधुसैंधवसंयुताम्।
कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मंत्राभिमंत्रिताम्
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेंद्रभूचन्द्रार्काऽनिलाऽनलः।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पांतु वः ॥
रसायनमिवर्षीणाममराणामिवामृतम्।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते १७॥
ॐनमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजायतथागतायाऽर्हते सम्यक्संबुद्धाय। तद्यथा।
ओं.भैषज्येभैषज्येमहाभैषज्येसमुद्गतेस्वाहा।
प्राङ्मुखं पाययेत् पीतं मुहूर्तमनुपालयेत्।
तन्मनाः जातहृल्लासप्रसेकक्षर्दयेत्ततः १८
अंगुलिभ्यामनायस्तो नालेन मृदुनाऽथवा।
गलतालुरुजन्वेगानप्रवृत्तान् प्रवर्तयन् १९
प्रवर्तयन्प्रवृत्तांश्च जानुतुल्यासने स्थितः।

अर्थ—इस तरह पूर्वोक्त रीति से रेच्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और अरेच्य का बिचार करके साधारण ऋतु में श्रावण मास के प्रारंभ में स्नेह और स्वेदाध्याय में कही हुई विधि के अनुसार स्नेहन और स्वेदन कर्म करने के पीछे रोगी को पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठा देवै नीचे लिखे हुए मंत्र से अभिमंत्रित करके औषध की मात्रा पान कराके वमन करावै। वमन कराने के पहिले दिन मछली, उड़द की दाल वा तिलादि का भोजन उस मनुष्यको कराके जिसे दूसरे दिन प्रातःकाल वमन करानी है उसके कफको अपने स्थान से चलायमान करदे। वमनीय व्यक्ति को वमन की पहिली रात्रि में गहरी निद्रा और पहिले दिन का खाया हुआ अन्न पचजाने की बडी आवश्यकता है। फिर अगले दिन प्रातःकाल के समय स्वस्तिवाचनादि मंगलाचरण करै। वमन के दिन आहार न करे किन्तु अवस्था के अनुसार पेया के साथ थोड़ा घृत पान करे। वमन वाला मनुष्य यदि वृद्ध, बालक, निर्बल क्लीव वा भीरु हो तो रोग के अनुसार प्रथम मद्य, दुग्ध, ईख का रस वा मांसरस कंठपर्यन्त अर्थात् अतिशय पान करावै। फिर मृदु और मध्य कोष्ठका विचार करके रोग के अनुसार औषध की मात्रा शहत और सेंधानमक मिलाकर पान करावै।

औषध को अभिमंत्रित करने का मंत्र "ब्रह्मदक्षाश्विं" से लेकर 'स्वाहा' पर्य्यन्तहै। औषध पानकराने के पीछे दो घडी तक इस बात की प्रतीक्षा करै कि वमन होती है वा नहीं और उसी में ध्यान लगाये रक्खे। फिर वमनका वेग और मुखस्राव होने पर घुटने तक ऊंची चौकी पर बैठकर गले और तालु में पीडा न पहुंचे ऐसी रीति से अनायास भावमें दो उंगली वा कमल की कोमल नाल आदि गले में धीरे धीरे फेरे जिससे वमन का अनुपस्थित वेग प्रवृत होजाय और उपस्थित अच्छी तरह प्रवृत होकर वमन होने लगे।

वमन करने वाले की परिचर्या।

उभे पार्श्वे ललाटं च वमतश्चास्य धारयेत्॥
प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिलोमतः।

अर्थ–वमन करने वाले मनुष्य की दोनों पसली, और ललाट को पकडे रहे और प्रतिलोमरीति से अर्थात् नीचे से ऊपर को नाभि और पीठ को मसलता रहे।

दोषानुसार वमनविधि।

कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैः पित्ते स्वादुहिमैरिति।
वमेत् स्निग्धाम्ललवणैः संसृष्टे मरुता कफे।
पित्तस्य दर्शनं यावच्छ्लेष्मो वा स्यात्प्रमाणतो भवेत्

अर्थ–कफ में तीक्ष्ण, उष्ण और कटु द्रव्य द्वारा वमन करावे। पित्तमें मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा, वात कफमें स्निग्ध, अम्ल और लवण द्रव्य द्वारा वमन करावे। जब तक वमन में पित्त आता रहै वा जब तक कफ निकलता रहै तब तक वमन कराना चाहिये।

वमन के हीन वेगमें कर्तव्य।

हीनवेगः कणाधात्रीसिद्धार्थलवणोदकैः।
वमेत्पुनः पुनः

अर्थ–जिस मनुष्य को वमन अच्छी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रीति से न होती हो उसको पीपल, आमला, सरसों, सेंधानमक इन औषधों को पीसकर गरम जल में मिलावै और इसको पान कराके बार बार वमन करावे ।

अयोग का लक्षण ।

तत्र वेगानामप्रवर्तनम् । २३
प्रवृत्तिः सविबंधा वा केवलस्यौषधस्य वा ।
अयोगस्तेन निष्ठीवकंडूकोठज्वरादयः । २४ ॥

अर्थ– वमन के न होनेका नाम प्रयोग है । वेगका प्रवृत न होना अथवा वेग प्रवृत होकर वमन न होना अथवा पान की हुई औषधही वमनके साथ ज्यों की त्यों बाहर निकल आना वमनका अयोग कहलाताहै । वमनका अयोग होनेसे मुखसे थूक बहुत निकलताहै, खुजली, पित्ती (देहपर लाल चकत्ते होजाना) और ज्वरादिक व्याधि उत्पन्न होजाती हैं ।

सम्यक् योगातियोगका लक्षण ।

विविबंधं प्रवर्तते कफपित्तानिलाः क्रमात् ।
सम्यग्योगे अतियोगे तु फेनचंद्रकरक्तवत् ॥
वमितं क्षामता दाहः कण्ठशोषस्तमोभ्रमः ।
घोरा वाय्वामयामृत्युर्जीवशोणितनिर्गमात्

अर्थ– वमनकारक औषध का सम्यक् योग होनेसे कफ, पित्त और वायु बिना रुकावट धीरे धीरे निकलने लगतेहैं । अतियोग होनेसे झागदार चन्द्रका युक्त रुधिर के समान वमन होने लगतीहै, शरीरमें कृशता और दाह उत्पन्न होताहै, गला सूख जाताहै, आंखोंके आगे अंधेरा और भ्रम हो जाताहै, भयानक वायुरोग उत्पन्न होजातेहैं और जीवशोणित के निकल जानेसे मृत्यु भी होजाती है ।

सम्यक् वमनका पश्चात् कर्म ।

सम्यग्योगेन वमितं क्षणमाश्वास्य पाययेत् ।
धूमत्रयस्यान्यतमं स्नेहाचारमथोऽदिशेत् ॥

अर्थ– सम्यक् रीतिसे वमन होनेके पीछे थोडी देर रोगी को विश्राम कराके स्निग्ध, मध्य और तीक्ष्ण इन तीन प्रकार के धूमपानमें से किसी एक प्रकार का धूम पान करावै, पीछे स्नेहविधि में कही हुई रीतिसे गरम जलपान आदि नियमों का पालन करावै ।

वमितव्यक्तिकेलिये पथ्य ।

ततः सायं प्रभाते वा क्षुद्वान् स्नातः सुखांबुना
भुंजानो रक्तशाल्यन्नं भजेत्पेयादिकं क्रमम् ॥

अर्थ– तदनन्तर दुपहर पहिले वा दुपहर पीछे भूख लगनेपर वमित व्यक्ति को सुखोष्ण जलसे स्नान कराके दाऊदखानी चांवलोंका भात और पेयादि क्रमपूर्वक भोजन करावै ।

पेयादि का क्रम ।

पेयां विलेपीमकृतं कृतम् च-
यूषं रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।
क्रमेण सेवेत नरोऽग्निकालान्-
प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ २८॥

अर्थ– प्रधान, मध्यम और हीन इनमें से किसी एक प्रकारकी शुद्धिसे शुद्ध हुआ मनुष्य तीन भोजनकाल, दो भोजनकाल और एक भोजनकालमें पेया, विलेपी, शुंठी आदिसे संस्कृत यूष, असंस्कृत यूष, संस्कृत रस, असंस्कृत रस सेवन करना चाहिये इसका स्पष्टविधान इसतरह है कि प्रधान शुद्धिसे शुद्ध हुए मनुष्यको प्रथम दिन दोनों भोजन अर्थात् दुपहरसे पहिले और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पीछे पेया पान करावै । दूसरे दिन प्रातःकाल पेया पान करावै और संध्याके समय विलेपी देवै । तीसरे दिन दोनों कालमें विलेपी । चौथे दिन दोनों समय सौंठ और नमक आदि मसाले बिना डाले मुद्गादियूष, और पांचवे दिन प्रातःकाल यही असंस्कृत यूष पान करै । फिर पांचवें दिन संध्याके समय और छटे दिन दोनों समय संस्कृत मसाला डालाहुआ यूष, सातवें दिन एक बार असंस्कृत मांस रस, दूसरी बार संस्कृत मांस रस पान कराके आठवें दिनसे प्रकृति भोजन अर्थात् यथारुचि भोजनों का सेवन करने लगे ।

अब मध्यम शुद्धिसे शुद्ध हुए मनुष्यका क्रम इस प्रकार है कि प्रथम दिन दो बार पेया, फिर दो बार विलेपी, फिर दो वार अकृत यूष, फिर दो बार कृत यूष, फिर दो बार अकृत मांसरस, फिर दो बार कृत मांसरस देकर पीछे प्रकृति भोजन करावै ।

हीन शुद्धिसे शुद्ध हुए मनुष्यको एक एक बार ही पेया विलेपी, अकृत यूष कृत यूष, मांसरस का सेवन कराके प्रकृति भोजन करावै । खरनाद भी कहतेहैं, 'विरेके वमने श्रेष्ठ पेयादीनां त्रिकक्रमः । त्रिशो द्विशो मध्यमे स्यादेकशस्तुकनीयसीति ।

पेयादि क्रमका फल ।

यथाऽणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः ।
संधुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव-
शुद्धस्य पेयादिभिरंतराग्निः ॥ ३० ॥

अर्थ– जैसे आग की छोटीसी चिनगारी पहिले तिनुके और ऊपलोंमें सिलगाई जातीहै फिर वह क्रमसे बढती हुई महान स्थिर और सबको भस्म करनेवाली बलवान् होजातीहै इसीतरह दोषसे शुद्ध हुए मनुष्य को जठराग्नि पेयादि क्रमसे बलवान् होती हुई महान् स्थिर और सबका पाचन करने में समर्थ होजाती है ।

वमन विरेचनादि के वेग का नियम ।

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-
श्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ ।
दशैव ते द्विर्त्रिगुणा विरेके-
प्रस्थस्तथा स्याद्द्वित्तुर्गुणश्च ३१

अर्थ–हीन वमन में चार, मध्यम वमन में छः और प्रधान वमन में आठ वेग होते हैं इसी तरह हीन विरेचन में दस, मध्यम में बीस और उत्तम में तीस वेग होते हैं। एक बार जितना वमन वा विरेचन में बाहर निकल पडता है उसी का नाम वेग है । हीन विरेचन में एक प्रस्थ, मध्यम विरेचन में दो प्रस्थ और उत्तम विरेचन में चार प्रस्थ प्रमाण बाहर निकलता है । वमन में इस से आधा निकलता है ।

वमन विरेचन का अंत ।

पित्तावसानं वमनं विरेका-
दर्धं कफांतं च विरेकमाहुः ।

अर्थ–वमन से जब पित्त आने लगे तो समझना चाहिये कि वमन क्रिया सम्यक् रीति से हो गई अब विशेष आवश्यकता नहीं है । विरेचन से आधा परिमाण वमन का होता है । विरेचन कफान्त होता है अर्थात् जब दस्त के साथ कफ आने लगे तब समझलेना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिये कि विरेचन की क्रिया सम्यक् रीति से हो गई ।

वमनविरेचन का माप ।

द्विज्ञान्सविट्कानपनीयवेगान्।
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–विरेचन के मल सहित दो तीन भाग छोडकर पीछे का पदार्थ मापा जाता है अर्थात् दस्तों की संख्या गिनी जाती है। इसी तरह वमन में पीहुई औषधी का भाग छोडकर शेषभाग को वमन किया हुआ पदार्थ जानना चाहिये ।

वमित को विरेचन ।

अथैनं धामितं भूयः स्नेहस्वेदोपपादितम् ।
श्लेष्मकाले गते शश्वत् कोष्ठं सम्यग्विरेचयेत् ॥

अर्थ–वमन कराये हुए मनुष्यको स्नेहन और स्वेदनद्वारा स्निग्ध और स्विन्न करके कफका काल अर्थात् दिनका पूर्वभाग व्यतीत होजाने पर रोगी के कोठे का निश्चय कर के कि मृदु है, वा क्रूर है विरेचन देवै ।

कोष्ठानुसार विरेचन क्रम ।

बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणाऽपि विरेच्यते ।
प्रभूतमारुतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि ३४

अर्थ जो कोष्ठ बहुत पित्तयुक्त होता है उसमें गरम दूध पीने से ही विरेचन होजाता है । जिस कोष्ठ में वायु बहुत होती है वह क्रूर होता है । इसमें काले निसोथ के देने पर भी कठिनता से जुलाब होता है । आदि शब्द से कुंकुष्ठ और अपि शब्द से आरग्वधादि का ग्रहण है । क्रूर कोष्ठके विरेचनमें ये भी दियेजाते हैं ।

वातादि दोष में विरेचन ।

कषायमधुरैः पित्ते विरेकः कटुकैः कफे ।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायौ

अर्थ–पित्त की अधिकता में हरीतक्यादि कषाय और द्राक्षादि मधुर द्रव्यों से विरेचन दियाजाता है । कफ की अधिकता में कटुक द्रव्यों से और वात की अधिकता में एरंड, सैंधव आदि स्निग्ध, उष्ण और लवण द्रव्यों द्वारा विरेचन दियाजाता है ।

विरेचन न होने में कर्तव्य ।

अप्रवृत्तौ तु पाययेत् ॥ ३५ ॥
उष्णांबु स्वेदयेदस्य पाणितापेन चोदरम् ।
उत्थानेऽह्नि दिने तस्मिन्भुक्त्वाऽन्येद्युः पुनः पिबेत् ॥

अर्थ–औषध पान करने पर यदि जुलाब न हो तो गरम पानी पिलाना चाहिये और हाथ गरम करके उसके पेट को सेकना चाहिये । यदि विरेचन के दिन अच्छी तरह दस्त न आवें तो उस दिन भोजन करले और दूसरे दिन फिर विरेचन की औषध पान करे ।

अदृढ कोष्ठ में कर्तव्य ।

अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहतः ।
भूयोऽभ्युपस्कृततनुः स्वेदस्नेहैर्विरेचनम् ३६
यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमनुक्रमम् ।

अर्थ–जिसका कोष्ठ दृढ स्नेहवाला न हो उसको फिर स्वेद और स्नेह द्वारा शरीर को विरेचन के योग्य करलेवे और पूर्व कथित "मात्रा को अभिमंत्रित करना" इत्यादि, दस्त न आवें तो गरम पानी पीना हाथ गरम करके पेट सेकना इत्यादि अनुक्रम ध्यान में रखकर अच्छी तरह विचार करके दस दिन बीते पीछे विरेचन औषध पीना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरेचनका अयोगायोग लक्षण।

हृत्कुक्ष्यशुद्धिररुचिरुत्क्लेशः श्लेष्मपित्तयोः॥
कंडूर्विदाहः पिटिका पीनसो वातविग्रहः।
अयोगलक्षणम्
योगो विपरीत्ये यथोदितात् ॥३२

अर्थ–विरेचन के अच्छीतरह न होने का नाम विरेचन का अयोग है। विरेचन का अयोग होनेसे हृदय और कूखकी शुद्धि नहीं होती है, अरुचि उत्पन्न होजाती है, कफ और पित्त अपने स्थानको छोडकर अन्य स्थानमें जाने को उन्मुख होते हैं। खुजली, विदाह, पिटका, पीनस, मल और अधोवायु की अवरुद्धता, आदि लक्षण होते हैं। तथा ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत लक्षण होने पर अर्थात् "हृदय और कुक्षि की शुद्धि आदि" विरेचन का सम्यक् योग समझना चाहिये।

विरेचनके अतियोग का लक्षण।

विट्पित्तकफवातेषु निःसृतेषु क्रमात्क्रमेत्।
निःश्लेष्मपित्तमुदकं श्वेतं कृष्णं सलोहितं
मांसधावनतुल्यं वा मेदःपिंडाम्बुसन्निभम् वा।
गुदनिःसरणं तृष्णा भ्रमो नेत्रप्रवेशनम्॥
भवेत्यतिविरिक्तस्य तथाऽतिवमनात्मयाः।

अर्थ–अत्यन्त दस्त होजाने का नाम विरेचन का अतियोग है इसमें मल, पित्त, कफ, वायु आदि के निकलजाने के पीछे कफरहित पित्तका पानी निकलता है। कभी कभी पानी का रंग सफेद, काला वा लोहित वर्ण होता है, कभी कभी मांसके धोयेहुए पानी के सदृश रंग होता है अथवा मेद के टुकडों के जलसदृश होता है, गुदा बाहर निकल आती है, तृषा और भ्रम होजाताहै, आंख भीतर को गढ जाती है, तथा वमन के अतियोग होने से जो कृशता आदि व्याधियां होजाती हैं वे भी इसमें उत्पन्न होती हैं।

विरेचन के पीछे का उपचार।

सम्यग्विरिक्तमेनं च धूमनेनोक्तेन योजयेत् ४२
धूमवर्ज्यैर्न विधिना ततो वमितयानिव।
क्रमेणाऽन्नानि भुंजानो भजेत्प्रकृतिभोजनम्॥

अर्थ–सम्यक् विरेचन होने पर केवल धूमपान को छोडकर और जो जो विधि सम्यक् वमन होने के पीछे कहीं गई हैं उन सब को करै, फिर उसी रीति से पेयाविलेपी आदि क्रमशः सेवन करता हुआ कुछ दिन पीछे प्रकृति भोजन करने लगे।

औषधसेवनान्तर उपवासादि।

मंदवह्निमलं शुद्धमक्षामं दोषदुर्बलम्।
अदृष्टजीर्णलिंगं च लंघयेत्पीतभेषजम् ४४॥
स्नेहस्वेदौषधोत्क्लेशसंभैरिति न बाध्यते।

अर्थ–पीतभेषज (जिनने दवा पीलीहो) पांच प्रकारके आगे लिखे रोगियों को लंघन कराना चाहिये, वे ये हैं (१) जिसकी जठराग्नि मंद हो, (२) जिसका देह कृश न हुआ हो (३) जिसके वातादि दोष दुर्बल होगये हों, (४) जिसकी विरेचनद्वारा शुद्धि न हुई हो (५) पीहुई औषधके पचने के लक्षण दिखाई न देते हो। इसका कारण यह है कि लंघन कराने से पीया हुआ स्नेह निकाला हुआ पसीना और औषध इन तीनों का उत्क्लेश (बहिर्गमनोन्मुखता) और विबद्धता कुछ हानि नहीं पहुंचाते हैं।

संशोधन के पीछे पेयादि।

संशोधनाऽन्नविच्छाद्यस्नेहयोजनलंघनैः ४५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यात्याग्निर्मंदतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ॥

अर्थ–संशोधन, रक्तमोक्षण (फस्द द्वारा रुधिर निकालना) स्नेह प्रयोग और लंघन द्वारा जठराग्नि मंद पडजाती है इस लिये पूर्वकथित पेयादि क्रमका सेवन उचित है। [आगे कहागया है कि संशोधन से अग्नि प्रदीप्त होती है और इस जगह संशोधन से अग्नि का मंद होना कहा गया है, इस कहने से परस्पर विरोध आता है, इस शंका का यह समाधान है कि संशोधन से जो अग्नि मंद पडती है वह कालभेद से पडती है सदा मंद नहीं पडती है इसलिये जब कालभेद से संशोधन द्वारा अग्नि मंद पडे उस समय पेयादि क्रम का उपयोग कहा गया हैं।

पेयादिक्रमके अयोग्यरोगी।

श्रुतालपित्तश्लेष्माणं मद्यपं वातपैत्तिकम्॥
पेयां न पाययेत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः।

अर्थ–जिस रोगीका पित और कफ थोडा बाहर निकला हो, जो मद्य पीता है। जो बात और पित्तसे ग्रस्त है। ऐसे रोगियोंको पेयादिपान कराना अहित है, इन के लिये प्रथम भोजनकाल में लाजासक्तु, द्वितीय भोजनकाल में मांसरस जलके साथ देवै इस तरह तर्पणादि क्रम का सेवन हितकारक है।

औषधके पचनेकी अनावश्यकता।

अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम्॥
निर्हरेद्वमनस्थाऽतः पाकं न प्रतिपालयेत्।

अर्थ–वमन औषध अपक्व अवस्था ही में अर्थात् न पचने परभी दोषको बाहर निकाल देती है, विरेचन औषध पचते समय दोषको बाहर निकालती है, इस लिये वमन औषधके पचने की प्रतीक्षा न करै।

वमनविरेचनकी विरुद्धतामेंकर्तव्य।

ऊर्ध्वाऽधोरेचनं युक्तं वैपरीत्येन जायते।
यदा तदा च्छर्दयतः सिञ्चेदुष्णेन वारिणा।
पादौ शीतेन चोद्धूतं विपरीते विरेचने।

अर्थ–वमन और विरेचन औषध मिथ्या योगसे युक्त होकर विपरीत काम करैतो नीचे लिखी हुई विधिका अवलंबन करना चाहिये अर्थात् वमनका रस औषध द्वारा यदि विरेचन होतो रोगी के दोनों पांवों पर गरम जल और मस्तक पर ठंडा जल डाले, और यदि विरेचक औषधद्वारा वमन होतो दोनों पांवोंपर शीतलजल और सिरपर गरमजल का सेचन (तरेडा) करे।(यह श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होता है क्योंकि सर्वांगसुन्दरा टीका में अरुणदत्त ने इस का उल्लेख नहीं किया है)।

स्वतः विरेचनका उपचार।

दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यः स्वयम्॥
विरिच्यते भेदनीयैर्भोज्यैस्तमुपपादयेत्।

अर्थ–दुर्बल और बहुत दोषोंसे युक्त रोगीको यदि दोष के परिपाक के निमित्त अपने आप दस्त होने लगें तो उसको विरेचन न देकर भेदनीय भक्ष्यपदार्थोंका सेवनकरावै

दुर्बल की औषध।

दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः॥
अपरिज्ञातकोष्ठश्च पिबेन्मृद्वल्पमौषधम्।
वरं तदकृतीतमन्यथा संशयावहम्॥
हरेद्बहूंश्चलान्दोषानल्पाऽनल्पान् पुनः पुनः।

अर्थ–जो रोगी दुर्बल हो, जिसके दोष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की शुद्धि पहिले करली गई हो, जो अल्प दोषयुक्त हो, कृश हो, जिसके कोष्ठका हाल मालूम न हो, ऐसे रोगी को मृदुवीर्य और स्वल्प परिमाण में बार बार विरेचन देना अच्छा है, एक बार ही में तीक्ष्ण वीर्य और अधिक परिमाणमें औषध दे देना रोगी का प्राणनाशक होजाता है। इस लिये बार बार थोडी थोडी औषध देनेसे बहुत दोषभी थोडा थोडा करक बाहर निकलजाता है। ऐसा करने से बलकी तो हानि नहीं होती और विरेचनक्रिया सिद्ध होजाती है।

दुर्बल के अल्पदोषकी चिकित्सा।

दुर्बलस्य मृदुद्रव्यैरल्पान् संशमयेत्तु तान्॥
क्लेशयंति चिरंते हि हन्युर्वैनमनिर्हृताः।

अर्थ–दुर्बल मनुष्य के स्वल्पदोष को मृदु वीर्य औषध द्वारा शमन करै। क्योंकि जो दोष शमन न हो सकें तो बहुत काल पर्यन्त कष्ट देते हैं और न निकलें तो रोगी का प्राणनाश कर देते हैं।

मन्दाग्नि और क्रूरकोष्ठका शोधन।

मंदाग्निं क्रूरकोष्ठं च सक्षारलवणैर्घृतैः ५१॥
संशुद्धिताग्निं विजितकफवातं च शोधयेत्।

अर्थ–मन्दाग्नि और क्रूरकोष्ठ वाले रोगों को क्षार, लवण और घृत द्वारा संशोधित करै। ऐसा करने से इसकी भी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और कफ वात जाते रहते हैं।

रूक्षादि का विरेचन।

रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशीलिनाम् ५२
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति।
तेभ्यो वस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम्
शकृन्निर्हृत्य वा किंचित्तीक्ष्णाभिःफलवर्तिभि
प्रवृत्तं हि मलं स्निग्धो विरेको निर्हरेत्सुखम्॥

अर्थ–जो मनुष्य रूक्ष, अधिक वातयुक्त करकोष्ठ, कसरत करनेवाला, और दीप्ताग्निवाला हो तो जो विरेचन औषध उस को दी जाती है वह विरेचन कराये बिना ही स्वयं पच जाती है। इस लिये ऐसे मनुष्यों को वस्ति अथवा तीक्ष्ण फल वर्ति के प्रयोग द्वारा थोड़ा मलनिकाल डाले, फिर एरंड तैल और विन्दु घृता दे स्निग्ध विरेचन देवै, इसका कारण यह है कि थोडा सा मल निकल जाने पर स्निग्ध विरेचन द्वारा सहज ही में मल निकलजाता है।

विषपीडित व्यक्ति का विरेचन।

विषाभिघातपिटिकाकुष्ठशोकविसर्पिणः।
कामलापांडुमेहार्तान्नातिस्निग्धान् विरेचयेत्

अर्थ विष, अभिघात (चोट), पिटका कुष्ठ, शोक, विसर्प, कामला, पांडुरोग, और प्रमेह रोगग्रस्त मनुष्य को थोडा स्निग्ध करके पीछे विरेचन देवै।

विरेचन का प्रकार।

सर्वान् स्नेहविरेकैश्च रूक्षैस्तु स्नेहभावितान्

अर्थ-ऊपर कहे हुए विषादि पीडित रोगियों को जो स्निग्ध हो चुके हैं स्नेहन विरेचन देकर शुद्ध करै परन्तु जिसको स्नेह पान कराके स्निग्ध किया है उनको रूक्ष, विरेचन देना चाहिये।

स्नेहादि का बार बार प्रयोग।

कर्मणां वमनादीनां पुनरप्यंतरेऽतरे॥ ५७॥
स्नेहस्वेदौ प्रयुंजीत स्नेहमंते बलाय च।

अर्थ–वमनादि कर्म जिस रोगी को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कराये जाते हैं उनको वमनादि कर्म के बीच बीच में स्नेहन और स्वेदन कराता रहे, अर्थात् स्नेहस्वेद देकर पीछे वमन करावै, फिर स्नेहस्वेद, पीछे विरेचन, फिर स्नेहस्वेद देकर पीछे अनुवासन, फिर स्नेहस्वेद तदनन्तर निरूह वस्ति देवै। इसका कारण यह है कि वमन के अन्त में दिया हुआ स्नेह बलवान् करदेता है।

शोधन औषध द्वारा मलका निकालना

मलो हि देहादुत्क्लेश्य ह्रियते वाससो यथा ॥
स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्य ह्रियते शोधनैर्मलः ।

अर्थ– जैसे वस्त्रका मैल प्रथम साबन आदि लगाकर स्निग्ध करने और गरम करने से दूर होजाताहै वैसेही मल स्नेह स्वेद द्वारा बहिर्गमनोन्मुख होकर शोधन औषधियोंके प्रयोगसे शरीरमें से निकल जातेहैं।

स्नेहस्वेद बिना शोधनसे हानि ।

स्नेहस्वेदावनभ्यस्य कुर्यात्संशोधनं तु यः ॥
दारु शुष्कमिवाऽऽशामे शरीरं तस्य दीर्यते ।

अर्थ– स्नेहन स्वेदन कर्मके विना शोधन द्रव्योंका सेवन शरीर को ऐसे विदीर्ण करदेताहै जैसे सूखा काठ नवानसे चिर जाताहै वा टूटजाताहै।

संशोधन का फल ।

बुद्धिप्रसादं बलमिन्द्रियाणां-
धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति-
संशोधनं सम्यगुपास्यमानम् ६०॥

अर्थ– संशोधन क्रिया का सम्यक् रीति से प्रयोग किये जानेपर बुद्धि निर्मल होजाती हैं, इन्द्रियगण बलवान् होजाते है, शरीरस्थ धातु दृढ होजातेहैं, जठराग्नि प्रज्वलित होजातीहै, और बहुत दिन पीछे बुढापा आताहै।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

अथाऽतो बस्तिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ– अब हम यहांसे बस्ति विधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

बस्ति के भेद ।

"वातालवणेषु दोषेषु वाते वा बस्तिरिष्यते ।
उपक्रमाणां सर्वेषां सोऽग्र्यो द्विविधश्च सः
निरूहोऽन्वासनो बस्तिरुत्तरः-

अर्थ–वाताधिक्य दोषों में अर्थात् वातपित्त, वात कफ अथवा केवल वातमें बस्ति क्रिया की जाती है। जितने प्रकार की क्रिया हैं उन सबमें बस्ति प्रधानतम है। बस्ति तीन प्रकार की होती है (१) निरूह (२) अन्वासन [अनुवासन] और (३) उत्तरबस्ति। बस्ति जब उत्तरमार्ग अर्थात् लिङ्गादि में दीजाती है उसको उत्तर बस्ति कहते हैं। पिचकारी का नाम बस्ति है।

बस्तिके योग्य रोगी ।

तेन साधयेत् ।
गुल्माऽऽनाहखुडप्लीहशुक्राऽतीसारशूलिनः
जीर्णज्वरप्रतिश्यायबलशुक्राऽनिलमलग्रहान् ।
वर्ष्माऽश्मरीरजोनाशान् दारुणांश्चाऽनिलान्
मयान् ॥ ३ ॥

अर्थ–गुल्म, आनाह, खुडवात, प्लीहा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतिसार, शूल, जीर्णज्वर, प्रतिश्याय, बद्धविबन्ध, अधोवायु का रोध, मलग्रह, वर्ष्म, अश्मरी, रजोनाश तथा सब प्रकार के दारुण वातरोग निरूहण बस्ति से अच्छे होते हैं। कषाय द्वारा बस्ति प्रयोग को निरूहण और स्नेह द्वारा बस्ति प्रयोग को अनुवासन कहते हैं।

निरूहण बस्तिके अयोग्य रोगी।

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशंकृशः।
आमातिसारी वमितविरेकसंशुद्धो दत्तनावनः
कासश्वासप्रमेहार्शोहिक्माऽऽध्मानोदरार्बुद
शूनपायुः कृताहारो यश्चच्छिद्रोदकोदरी॥५॥
कुष्ठी च मधुमेही च मासान् सप्त च गर्भिणी

अर्थ– अत्यन्त स्निग्ध, उरःक्षतरोगी अत्यन्त कृश, आमातिसार रोगी, वमनविरेचनादि से शुद्ध हुआ रोगी, जिसको नस्य दीगई हो, तथा खांसी, श्वास, प्रमेह, अर्श, हिक्का, आध्मान, मलक्षय, बद्धोदर, छिद्रोदर, दकोदर, कुष्ठ और मधुमेह रोगोंसे पीडित रोगी, इसीतरह जिसकी गुदामें सूजनहो जिसने भोजन करलियाहो, और सात मास के गर्भवाली स्त्रीये सब आस्थापन बस्तिके अयोग्यहै। निरूहण का दूसरा नाम आस्थापन भी है।

अनुवासनके योग्यायोग्य रोगी।

आस्थाप्या एव चानास्थाविशेषादतिबृंहयः
रूक्षाः केवलवातार्ताः नाऽनुवास्यास्त एव च
येऽनास्थाप्यास्तथापांडुकामलामेहपीनसाः
निरन्नप्लीहविद्रध्यर्दिगुरुकोष्ठकफोदराः।
अभिष्यंदिकृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुताः॥
पीते विषे गरेऽप्यन्यां श्लीपदी गलगंडवान्।

अर्थ– जो निरूहण के योग्य कहेगये हैं वेही अनुवासन के योग्यहैं, किन्तु जो प्रबल जठराग्नियुक्त, रूक्ष और केवल, वातपीडितहैं. वे विशेष रूपसे अनुवासनके योग्यहैं

जो निरूहण के अयोग्य कहेगये हैं वेही अनुवासन के अयोग्य हैं, उनके सिवाय पांडु, कामला, प्रमेह, पीनस, रोगवाले भी अनुवासन के योग्य नहीं है तथा जिसने भोजन न किया हो, प्लीहा रोगी, जिसका मल फटगया हो, भारीकोष्ठवाला, कफोदर रोगी, अभिष्यन्दी, कार्श्य और स्थौल्य रोगों से पीडित, जिसके कोष्ठ में कीडे हों, जो आढ्यवात, अपची, श्लीपद, और गलगंड रोगों से पीडित हो, जिसने जहर खायाहो। इतने रोगियों को अनुवासन बस्ति देना उचित नहीं है।

निरूह तथा अनुवासन यंत्रकेलक्षण।

तयोस्तु नेत्रं हेमादिधातुदार्वस्थिवेणुजम्॥
गोपुच्छाकारमच्छिद्रं श्लक्ष्णर्जु गुलिकामुखं

अथ–जो यंत्र पिचकारी लगाने में काम आता है उसे नेत्र कहते हैं, क्योंकि इस यंत्रके द्वारा औषधी गुदामें पहुंचाई जाती है। यह नेत्रनामक यंत्र सोना, चांदी, पीतल, लोहा, कांसा, कलई, सीसा, आदि धातुओंका बनाया जाता है। अथवा शीशम की लकडी से, वा हाथीदांत की हड्डी से वा बांससे बनाया जाता है। इसकी आकृति गौकी पूंछके सदृश होती है। इसमें छेद न रहने चाहिये, इस यंत्रका मुख कोमल, सीधा और गोलाकार बनवावै। नोकदार मुख होनेसे गुदामें चुभनेकाडर रहता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नेत्रकी लंबाई ।

ऊर्ध्वेऽब्दे पंच पूर्णेऽस्मिन्नासप्तभ्योऽगुलानि-षट् ॥ १० ॥
सप्तमे सप्त तान्यष्टौ द्वादशे षोडशे नव ।
द्वादशेऽपरं विंशात् वीक्ष्य वर्षांतरेषु च ११ ॥
वयोबलशरीराणि प्रमाणमभिवर्धयेत् ।

अर्थ–एक बरस से कम अवस्था वाले रोगी के लगानवाले यंत्र की लंबाई रोगीके पांच अंगुलों के बराबर होनी चाहिये । एक बरस से छः वर्ष के बालक तक छः अंगुल लंबी पिचकारी लगावै । सात बरस से ग्यारह बरस तक के बालक के सात अंगुल की पिचकारी लगावै । बारह बरस से पन्द्रह तक आठ अंगुल की । सोलह से बीस बरस तक नौ अंगुल की । इससे ऊपर की उम्र वाले को बारह अंगुल लंबी पिचकारी देनी चाहिये ! किन्तु अवस्था के अनुसार जो पिचकारी की लंबाई दी गई है वह एक साथ ही न बढा देनी चाहिये । जैसे ग्यारह वर्ष की अवस्था तक पिचकारीकापमाण सात अंगुल है तो बारह बरस का होते ही आठ अंगुल की न कर देनी चाहिये किन्तु जैसे जैसे अवस्था बढ़ती जाय उसी प्रमाण से यंत्र की लंबाई भी बढानी चाहिये नेत्रकी लंबाई बढाने के विषय में वय, बल और शरीर पर विशेष ध्यान देना उचित है । इस जगह अंगुल ग्रहण से रोगी के अंगुलों का परिमाण ग्रहण करना चाहिये ।

नेत्रकी मुटाई ।

स्वांगुष्ठेन समं मूले स्थौल्ये नाऽग्रे कनिष्ठया

अर्थ–नेत्रके नीचे के भाग की मुटाई रोगी के अंगूठे के समान और अग्रभाग की मोटाई उसकी कनिष्ठका अंगुली के समान होनी चाहिये ।

नेत्रके छिद्रका प्रमाण ।

पूर्णेऽब्दे ऽगुलमादाय तदर्धाऽर्धप्रवर्धितम् ।
त्र्यंगुलं परमं छिद्रं मूलेऽग्रे वहते तु यत् १२
मुद्गमाषं कलायं च किलासं कर्कंधुकं क्रमात् ।

अर्थ–अब छिद्र द्वारा नेत्रकी स्थूलता का परिमाण लिखते हैं । एक वर्ष की पूर्ण अवस्था होने पर रोगी की अंगुली के प्रमाण से नेत्रों के मूलदेश का छिद्र एक अंगुल का होवै इस लिये ज्यों ज्यों अवस्था बढती जाय त्यों त्यों नेत्र का छिद्र चौथाई चौथाई अंगुल बढ़ाकर तीन अंगुल तक कर दिया जाता है । अर्थात् प्रथम वर्ष से छः वर्षतक एक अंगुल, सात वर्षसे ग्यारह वर्षतक सवा अंगुल, बारहसे पंद्रह तक डेढ अंगुल, सोलह वर्षमें पौने दो अंगुल, सत्रह वर्षमें दो अंगुल, अठारह वर्षमें सवादो अंगुल, उन्नीस वर्षमें ढाई अंगुल, बीस वर्षमें पौने तीन

+ खरनादमें लिखाहै " वस्तिनेत्रमृजु शुक्लं सद्वृतंगुलिकामुखम् । भवेद्वृद्धोच्छ्रयस्थानेसुप्रवाहं त्रिकर्णिकम् ॥ यात्रिभागप्रणयनेमर्यादाकर्णिकाभवेत् । द्वे कर्णिके चोपरि छाद्वस्त्याधारेऽथवांतरे । स्वांगुष्ठकपरीणाहं मूलं नेत्रस्यशस्यते । मध्यत्वनाभिकातुल्यमग्रंतुल्यकनिष्ठकम ॥ स्वेनांगुलिप्रमाणेनदैर्घ्यस्याद्वादशांगुलम् ॥ कर्कंधुप्रवहच्छिद्रं श्रेष्ठमन्यद्यथावयः । विंशद्वादशषड्वर्षाद्वादशाष्टषडंगुलम् । कर्कंधु कसतीनाग्रमुखम्छिद्रवहं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंगुल, इक्कीस वर्षमें तीन अंगुल, छिद्र कहा गया है। मूल देशका छिद्र इससे अधिक न होना चाहिये। और आगेके भागका छिद्र मूंग, उरद, मटर, भीगी हुई मटर के समान और झाडी बेरके बराबर होना चाहिये अर्थात् प्रथम वर्षसे छः वर्ष तक मुद्गवाही (जिसमें होकर मूंग निकल जाय) सात से ग्यारह वर्ष तक माषवाही, बारहसे पंद्रह तक मटरवाही, सोलहसे बीसतक भीगी हुई मटरवाही, फिर इक्कीस वर्षसे ऊपर ऐसा छिद्र होना चाहिये जिसमें झाडीबेरनिकल जाय

नेत्रमें कर्णिका आदिकी योजना।

मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्रांते घटितकर्णिकम् १४
वर्त्याऽग्रे पिहितं मूले यथास्वं ग्रंथगुलांतरम्।
कर्णिकाद्वितयं नेत्रे कुर्यात् तत्र च योजयेत्॥
अजाविमहिषादीनां, बस्तिं सुमृदितं दृढम्।
कषायरक्तं निश्छिद्रग्रंथिगंधशिरं तनुम्॥
ग्रंथितं साधुसूत्रेण सुखसंस्थाप्यभेषजम्।

अर्थ=वस्तिका नेत्र गुदामें अधिक न घुस जाय इसलिये उस के प्रान्तभागमें छत्र के आकारके सदृश एक कर्णिका लगाई जाती है तथा पिचकारी प्रविष्ट गुदामें घाव न होजाय इसलिये नेत्रके अग्रभाग पर डोरा लपेट दिया जाता है। वस्तिपुट लगाने के निमित्त नेत्रके मूलदेशमें दो अंगुल के अंतर पर दो कर्णिका और भी लगाई जाती है। यह कर्णिका बकरी, भेड, और महिषादि के मूत्राशय के तंतुसे दृढ बांधी जाती है जिससे जो औषध उसके भीतर डाली जाय वह सुगमता पूर्वक चलीजाय। वस्तिका चर्म हरीतक्यादि के काथसे रंग दिया जाता है और उसपर तेल चुपडकर अच्छी तरह मला जाता है जिससे दृढ और कोमल हो जाय, इसमें से छिद्र, ग्रन्थि, दुर्गन्धि और शिरादिक दूर कर देने चाहिये।

वस्तिके अभावमें कर्तव्य।

वस्त्यभावेऽकपात्रं वा न्यसेद्वासोऽथवाघनम्

अर्थ–जो उक्त पशुओं की वस्ति न मिले तो दूसरें अवयवों को काम में लाना चाहिये। अथवा गाढा वस्त्र उपयोग में लावे।

निरूहवस्ति की मात्रा।

निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुंचो वत्सरात्परम्।
प्रकुंचवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः॥
प्रप्तं वर्धयदूर्ध्वं द्वावृशाऽष्टादशस्य च।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम्।१९।

अर्थ–निरूहणवस्ति की मात्रा इस प्रकार है कि एक वर्ष का होने पर एक पल देवै परन्तु जो छः वा नौ महीने का हो तो उसी के अनुसार आधा वा पौन पल देवै। एक वर्ष से ऊपर बारह वर्ष की अवस्था तक प्रतिवर्ष एक पल बढाता रहै अर्थात् बारह वर्षकी अवस्था में बारह पल देवै। बारह वर्ष से सत्रह वर्ष तक प्रति वर्ष दो पल बढाना चाहिये। इस तरह अठारह वर्ष की अवस्था में निरूह की मात्रा चौबीस पल होजायगी। फिर अठारह से लेकर सत्तर वर्ष की अवस्था तक वही चौबीस पल की मात्रा दी जाती है परन्तु सत्तर वर्ष से ऊपर मात्रा केवल बीस पल की ही दी जाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुवासनवस्तिकी मात्रा।

यथायथं निरूहस्य पादो मात्राऽनुवासने।

अर्थ—जिस जिस अवस्था में निरूह की जो जो मात्रा दी जाती है उसी उसी अवस्था में अनुवासन की मात्रा निरूह की मात्रा से चौथाई दी जाती है अर्थात् जिस अवस्थामें निरूह की मात्रा एकपल है उसी अवस्था में अनुवासन की मात्रा चौथाई पल अर्थात् एक कर्ष है (आठतोले का एक पल और दो तोले का एक कर्ष होता है)

अनुवासन का प्रकार।

आस्थाप्यं स्नेहितं स्विन्नं शुद्धं लब्धबलं पुनः
अनुवासनार्हं विज्ञाय पूर्वमेवाऽनुवासयेत्।
शीते वसंते च दिवा रात्रौ केचित्ततोऽन्यदा
अभ्यक्तस्नातमुचितात्पादहीनं हितं लघु।
अस्निग्धरूक्षमशितं सानुपानं द्रवादि च ।२२।
कृतचंक्रमणं मुक्तविण्मूत्रं शयने शुभे।
नत्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्श्वतः
संकोच्य दक्षिणं सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम्

अर्थ—जो मनुष्य निरूहण वस्ति देने के योग्य हो उसे जब वह स्नेहन और स्वेदन कर्म द्वारा स्निग्ध और स्विन्न कर दिया गया हो, वमन विरेचन देकर ऊपर नीचे से शुद्ध किया गया हो और फिर उसमें वस्तिका वेग सहन करने की शक्ति आगई हो और अनुवासन के योग्य होगया हो उसे निरूहण वस्ति देने से पहिले ही अनुवासन वस्ति देनी चाहिये।

किसी किसी आचार्यका मत है कि शीत और वसंत ऋतुमें दिनमें और इनसे भिन्न ऋतुओं में अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतुओं में रात्रि के समय अनुवासन वस्ति का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु धन्वन्तरि के मतावलंबी आचार्यों का तो यही कहना है कि रात्रि में तो किसी ऋतु में भी अनुवासन वस्ति का प्रयोग न करे। इसी मत के अनुसार संग्रह में लिखाहै कि 'न रात्रौ प्रणयेद्वस्तिं दोषोत्क्लेशो हि रात्रितः। स्नेहो वीर्ययुतः कुर्यादाध्मानं गौरवं ज्वरम्'। अर्थात् रात्रि में वस्ति देने से दोष अपने स्थान से चलित होजाते हैं और स्नेह वीर्य के साथ मिलकर आध्मान, भारापन और ज्वर उत्पन्न कर देता है।

अनुवासनका प्रयोग करने से पहिले रोगी के देहमें तैलादि मर्दन करके स्नान करावे और जितना भोजन वह करता हो उससे चौथाई कम, हलका, न बहुत चिकना न बहुत रूखा × अनुपान सहित, पतला (आदि शब्दसे द्रव, उष्ण, अनभिष्यन्दी) इन गुणों से युक्त भोजन करावे भोजन करने के पीछे थोडा इधर उधर भ्रमण करै अर्थात् टहलै। फिर मलमूत्रका परित्याग कर स्वस्थ होने पर रोगी को ऐसे पलंग पर शयन करावे, जिससे उसे सुखका अनुभव होने लगे। यह पलंग बहुत ऊंचा न हो, और शिर के नीचे तकिया भी ऊंचा न हो। ऐसे पलंग पर बांये पसवाडे लिटाकर दाहिना पांव लंबा कराके दाहिने पांव को उस पर रखदे।

× संग्रह मे लिखा है-कि अति स्निग्ध भोजन करने से दोनों मार्गोंसे प्रविष्ट हुआ स्नेह मद, मूर्च्छा, अग्निमांद्य और हृल्लासादि रोगों को करता है। अति रूखे भोजन से विष्टम्भ तथा बल और वर्ण की हानि होतीहै॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्ति प्रयोग की विधि।

अथाऽस्य नेत्रं प्रणयेल्लिग्धे स्निग्धमुखं गुदे॥
उच्छ्वासय्य वस्तेर्वदने बद्धे हस्तमकंपयन्।
पृष्ठवंशं प्रति ततो नाऽतिद्रुतविलंबितम्॥
नाऽतिवेगं न वा मंदं सकृदेव प्रपीडयेत्।
सावशेषं च कुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे रोगी को लिटा कर उसकी गुदा में तेल आदि चिकनाई लगादे और बस्ति के मुख में फूंक मारकर उच्छास वायुको निकाल बांधदे और उसके नेत्रपर भी चिकनाई लगावै गुदाके द्वारपर लगादे फिर न बहुत जल्दी, न बहुत विलंबसे, न बहुत वेगसे, और न बहुत मंदतासे और हाथ भी न कांपने पावै ऐसी रीति से पीठ के बांसे की ओर बस्ति को एकदम पीडन करै। और वस्ति में थोडासा स्नेह रहने दे क्योंकि बचे हुए स्नेहमें वायु रहता है।

वस्तिके पीछेकी क्रिया।

दत्ते तूत्तानदेहस्य पाणिना ताडयेल्लिकजौ।
सत्पार्ष्णिभ्यां तथा शय्यां पादतश्च निरुक्षिपेत्

अर्थ—स्नेह के अति देने पर रोगी को ऊंचा शरीर करके सुलादेवे और उसके दोनों कूल्हों पर दोनों हाथ और पिंडलियों से थपथपावै, और उसकी खाट को पैरों की ओर तीन बार ऊंची करै।

स्नेहनिवृत्ति।

ततः प्रसारितांगस्य सोपधानस्य पार्ष्णिके।
आहन्यान्मुष्टिनांगं च स्नेहेनाभ्यज्य मर्दयेत्॥
वेदनार्तमिति स्नेहो नहि शीघ्रं निवर्तते।
योज्यः शीघ्रं निवृत्ते ऽन्यः स्नेहोऽतिष्ठन्नकार्यकृत्

अर्थ—तदनंतर तकिये के ऊपर सिरधर के रोगी को लंबा सुलादे और उसके पार्ष्णि देशमें धीरे धीरे मुष्टियों से कूटे और उसके देह पर तेल लगा कर मर्दन करै। ऐसा करने का यही कारण है कि अंगके बेधना युक्त होने पर स्नेह शीघ्र बाहर नहीं निकल आवे तो फिर स्नेह प्रविष्ट करना चाहिये क्योंकि शरीर के भीतर स्नेह न रहै तो स्नेहन कर्म करने में समर्थ नहीं हो सकता है।

स्नेहनिवृत्ति के पीछेका कर्म।

दीप्ताग्निं त्वागतस्नेहं सायाह्ने भोजयेल्लघु।

अर्थ—स्नेहन से निवृत्त होने पर क्षुधा के चैतन्य होने पर रोगी को सायंकाल के समय यथारुचि हलका भोजन करावै।

स्नेहनिवृत्ति का काल।

निवृत्तिकालः परमस्त्रयो यामास्ततः परम्।
अहोरात्रमुपेक्षेत परतः फलवर्तिभिः।
तीक्ष्णैर्वा बस्तिभिः कुर्यात्तं स्नेहनिवृत्तये॥

अर्थ—शरीर से स्नेह के निकल जानेकी परमावधि तीन पहर है, किन्तु तीन पहर में स्नेह न निकले तो स्नेह के निकालने के लिये कोई यत्न न करके एक रात प्रतीक्षा करै। इससे पीछे स्नेह के निकालने के लिये अर्शश्चिकित्सित प्रकरण में कही हुई फलवर्ति और वस्तिकल्प में कही हुई तीक्ष्णवस्तियों का प्रयोग करै।

स्नेहके न निकलने पर कर्तव्य।

अतिरौक्ष्यादनागच्छन्नचेच्छाड्यादिदोषकृत्।
उपेक्षेतैव हि ततोऽभ्युषितदच निशां पिबेत्
प्रातर्नागरधान्याम्भः कोष्णं केवलमेव वा।

अर्थ—अति रूक्षता के कारण जो स्नेह शरीर के बाहर न निकले और भीतर रह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर जडता अग्निमांद्य आदि दोषों को उत्पन्न न करै तो उसके निकालने का यत्न न करै और रात्रि में निराहार दूसरे दिन प्रातःकाल सोंठ और धनिये का कुछ गरम क्वाथ अथवा केवल थोड़ा गरम जल पिलाना चाहिये ।

अनुवासन का काल ।

अन्वासयेत्तृतीयेऽह्नि पंचमे वा पुनश्च तम् ।
यथा वा स्नेहपक्तिःस्यादतोऽत्युल्बणमारुतान्
व्यायामनित्यान्दीप्ताग्नीन् रूक्षांश्चप्रतिवासरम्

अर्थ–उसी रोगी को तीसरे वा पांचवें दिन अथवा जितने दिन में पहिले स्नेह का पाक हो उतने दिन पीछे फिर अनुवासन वस्ति देनी चाहिये । तथा जो रोगी अत्यन्त वात दोष से युक्त है, वा जिन्हें कसरतकरनेका अभ्यासहै वा जिनकी जठराग्नि प्रदीप्त है वा जो रूक्ष प्रकृति के हैं उनको नित्यप्रति अनुवासन देना चाहिये ।

निरूह का काल ।

इति स्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये ।
निरूहं शोधनं युंज्यादस्निग्धे स्नेहनं तनोः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त रीतिसे तीन चारबार अनुवासन वस्तिके प्रयोग से शरीर के स्निग्ध होजाने पर स्रोतों की विशुद्धि के निमित्त शोधन निरूहका प्रयोग करे । परन्तु जो शरीर यथावत् स्निग्ध न हुआ हो तो फिर स्नेहन प्रकरणमें कही हुई रीतिसे स्नेहन करे ।

निरूहण वस्ति की विधि ।

पंचमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे ।
मध्याह्ने किंचिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमंगले ३६
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम्
अवेक्ष्य पुरुषं दोषभेषजादीनि चादरात् ३७
वस्तिं प्रकल्पयेद्वैद्यस्तद्विद्यैर्बहुभिः सह ।

अर्थ–अनुवासन वस्ति देने के तीसरे वा पांचवें दिन दुपहर होने के कुछ ही पीछे शुभ पुष्य नक्षत्र में स्वस्तिवाचनादि मंगलकार्य करने के पीछे दोष, औषध, सात्म्य, बल आदि की विवेचना करके तथा वैद्यकशास्त्र में कुशल अन्य विद्वानों की संमति ग्रहण करके यत्नपूर्वक ऐसे रोगीको निरूहण वस्ति देवे जिसके शरीर पर तेल लगाया गया हो, पसीना निकाला गयाहो, जो मलमूत्रोत्सर्ग से निवृत हो लिया हो और जिसको थोडी भूख भी लगरही हो ।

निरूह कल्पना ।

क्वाथयेद्विंशतिपलं द्रव्यस्याऽष्टौ फलानि च

अर्थ–निरूहण के पीछे वस्तिकल्प में कहेहुए द्रव्य बीस पल और आठ मेनफल इनको सोलह गुने पानी में औटाकर चौथाई शेष रहने पर पी लेना चाहिये ।

दोषपरता से स्नेह का प्रमाण ।

ततः क्वाथाच्चतुर्थांशं स्नेहं वाते प्रकल्पयेत् ।
पित्ते स्वस्थे च षष्ठांशमष्टमांशं कफाधिके ॥

अर्थ–वात की अधिकतामें क्वाथके साथ चौथाई स्नेह, पित्त की अधिकता में तथा स्वस्थ अवस्था में षष्ठांश और कफकी अधिकतामें अष्टमांश स्नेह का प्रयोग करना चाहिये । अर्थात् सब प्रकार से शुद्ध निरूहण होने पर २४ पल, वातकी अधिकता में छः पल, पित्त और स्वस्थावस्था में ४ पल और कफमें तीनपल स्नेह का प्रयोग करे ।

अन्य नियमादि ।

सर्वत्र चाऽष्टमं भागं कल्काद्भवति वा यथा ।
नाऽत्यच्छसांद्रता वस्तेः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पलमात्रं गुडस्य च ॥ ४० ॥
मधुपट्वादिशेषं च युक्तया सर्वं तदेकतः।
उष्णांबु कुंभीवाष्पेण तप्तं खजसमाहतम् ॥

अर्थ–वाताधिक्य, कफाधिक्य, पित्ताधिक्य वा स्वस्थावस्था इन सबमें ही कल्क का प्रमाण अष्टमांश अर्थात् तीन पल स्नेह डाला जाता है। इसका सारांश यह है कि कल्ककी कल्पना ऐसी होनी चाहिये कि जिससे वस्ति अत्यन्त निर्मल वा अत्यन्त गाढी न हो।

इसमें गुड एक पल अर्थात् चार तोला ही डाले (इससे अधिक पित्ताधिक्य में) मधु और सेंधानमक युक्तिपूर्वक डाले अर्थात् शहत चार पल और सेंधानमक एक कर्ष मिलावै। किसी किसी जगह १ तोले जवाखार डाला जाता है इसके सिवाय मांसरस, सुरा, आसव, दूध, कांजी आदि भी काममें लाये जाते हैं।

तत्पश्चात् सबको इकठा करके बहुत गरम जल से भरेहुए घडे में वाष्पद्वारा गरम करै और काठ की कलछी से खूब चलाता रहे यही क्वाथ वस्ति में प्रयुक्त कियाजाताहै।

वस्ति की योजना।

प्राक्षिप्य वस्तौ प्रणयेत्पायौ नात्युष्णशीतलम्
नाऽतिस्निग्धं नवा रूक्षं नाऽतितीक्ष्णं नवा मृदु
नात्यच्छसांद्रनोनाऽतिमात्रंनाऽपदुनाऽतिच
लवणं तद्वदम्लं च पठंत्यन्ये तु तद्विदः ४३॥

अर्थ–इसके पीछे न बहुत गरम, न ठंडा, न बहुत चिकना न रूखा, न बहुत तीक्ष्ण न मृदु, न बहुत गाढा न पतला, न थोडा न बहुत, न बहुत खारी न मीठा, न खट्टा न बिना खटाईका वही क्वाथ बस्तिमें भरकर गुदामें प्रयोग करे। इस विषय में अन्य विद्वानों का मत नीचे लिखा जाता है।

अन्य मत।

मात्रां त्रिपलिकां कुर्यात्स्नेहमाक्षिकयोःपृथक्
कर्षार्धं माक्षिकंमथ्यस्य स्वस्थे कल्कपलद्वयम्॥
सर्वद्रव्याणां शेषाणां पलानि दश कल्पयेत्।
माक्षिकं लवणं स्नेहं कल्कं क्वाथमिति क्रमात्
आवपेत निरूहाणामेषं संयोजने विधिः।

अर्थ–वस्तिविधिज्ञाता अन्य लोग कहते हैं कि स्नेह और मधु ये दोनों अलग अलग तीन तीन पल ले, सेंधानमक आधातोला, स्वस्थ पुरुष के लिये कल्क दो पल, बाकी सब द्रव्य दस पल लेकर नीचे लिखी रीति से तयार करे। प्रथम एक पात्रमें शहत को मथै, फिर नमक मिलाकर मर्दन करै। फिर क्रमसे स्नेह, कल्क और क्वाथ डाल डाल कर मथै। इस अनुक्रम से सब द्रव्योंमें एकसा रस हो जायगा। इस विधिसे तयार किया हुआ द्रव्य निरूहण के उपयोगी होजायगा

निरूहण के पीछेका कर्म।

उत्ताने दत्तमात्रे तु निरूहे तन्मना भवेत् ४६॥
कृतोपधानः संजातवेगश्चोत्कटकः सृजेत्।

अर्थ–निरूह देनेके पीछे उसीपर लक्ष्य लगाकर सिरको तकियेपर रखकर सीधा लेटा रहै। मलका वेग होने पर उकडू होकर मल का त्याग करै।

निरूह की अवधि।

आगतौ परमः कालो मुहूर्तो मृत्यवे परम् ॥
तत्राऽनुलोमिकंस्नेहक्षारमूत्राऽम्लकल्पितम्
त्वरितं स्निग्धतीक्ष्णोष्णं बस्तिमन्यं प्रपीडयेत्
विदध्यात्फलवार्तां वा स्वेदनोत्रासनादि च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-निरूहके पीछे लौट आनेकी परम अवधि एक मुहूर्त होती है। यदि इतनी देर में पीछे लौटकर न आवे तो मृत्यु होनेकी संभावना होती है। यदि दो घडीमें न लौटे तो बहुत शीघ्र स्नेह, क्षार, गोमूत्र, वा कांजी आदि द्वारा तयार किया हुआ अत्यन्त स्निग्ध, उष्णवीर्य, उष्णगुणयुक्त और अनुलोमन कारी दूसरी निरूहण वस्ति देवे अथवा अर्शोचिकित्सित प्रकरण में कही हुई फलवर्ती देनी चाहिये अथवा स्वेदक्रिया वा भय आदि दिखाना इनमें से जो होसके शीघ्र करै।

स्वयंनिरूहके निकलनेपर कर्तव्य ।

स्वयमेव निवृत्ते तु द्वितीयो बस्तिरिष्यते ॥
तृतीयोऽपि चतुर्थोऽपि यावन्न सुनिरूढता।

अर्थ-जो फलवर्ति आदिका प्रयोग किये बिन ही यदि निरूहस्वयं पीछा आजाय और निरूहके प्रयोगका फल यथावत् न हो तो दूसरी, तीसरी वा चौथी वस्तिका प्रयोग करै अर्थात् जबतक अच्छी तरह निरूहण न हो चुके तबतक वस्ति प्रयोग किये जाना चाहिये। किन्तु यदि फलवर्त्यादि के प्रयोग के यत्न विशेष से यदि निरूहण का प्रत्यागमन हो तो अन्य वस्ति देने का नियम नहीं है ॥

निरूह के लक्षण और पथ्यादि ।

विरिक्तवच्च योगादीन्विद्यात्-
योगे तु भोजयेत् ॥ ५० ॥
कोष्णेन वारिणा स्नातं तनुधन्वरसौदनम् ।

अर्थ-सम्यक् निरूढ के वही लक्षण हैं जो सम्यक् विरेचन दिये हुए रोगी के होते हैं सम्यक् निरूहण होने के पीछे रोगी को कुछ गरम जल से स्नान कराके जांगल मांस रस के साथ चांवलों के भात का पथ्य देना चाहिये, पर मांस रस बहुत गाढा न हो। वातजन्यविकार की शान्ति के लिये ही प्रायः निरूहण का प्रयोग किया जाता है इस लिये वात विकार में उपयोगी मांसरसयुक्त ओदनही पथ्य है।

पथ्य का कारण ।

विकारा ये निरूहस्य भवंति प्रचलैर्मलैः ॥
ते सुखोष्णांबुसिक्तस्य यांति भुक्तवतः शमम्

अर्थ-निरूह के प्रयोग से मल चलायमान होकर जो विकार उत्पन्न करते हैं वे विकार सुखोष्ण जल से स्नान करके भोजन करने पर शांत हो जाते हैं। इस लिये स्नान और भोजन करना चाहिये।

अनुवासन देनेका काल ।

अथ वातार्दितं भूयः सद्य एवाऽनुवासयेत् ॥

अर्थ-निरूहण के पीछे वात पीडित पुरुषको शीघ्र ही उसी दिन अनुवासन देना चाहिये।

अनुवासित के लक्षण ।

सम्यग्धीनाऽतियोगाश्च तस्य स्युः स्नेहपीतवत्।

अर्थ-स्नेहपान की तरह अनुवासन के भी सम्यक् योग, हीन योग और अतियोग होते हैं।

अनुवासनका सम्यक् योग ।

किंचित्कालं स्थितो यश्च सपुरीषोनिवर्तते
साऽनुलोमाऽनिलः स्नेहस्तत्सिद्धमनुवासनं

अर्थ-अनुवासन स्नेह कोष्ठ में थोडी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देर रहकर मल के साथ बाहर निकल आता है और वायुका अनुलोमन होने लगता है। यही अनुवासन के सम्यक् योग का लक्षण है।

अनुवासनकी संख्या।

एकं त्रीन वा बलासे तु स्नेहवस्तीन् प्रकल्पयेत्
पंच वा सप्त वा पित्ते नवैकादश वाऽनिले।
पुनस्ततोऽप्ययुग्मांस्तु पुनरास्थापनं ततः॥

अर्थ–कफविकारमें एक वा तीन अनुवासन वस्ति दीजाती हैं। इसी तरह पित्तविकारमें पांच वा सात वातविकार में नौ वा ग्यारह स्नेहवस्ति अर्थात् अनुवासन का प्रयोग किया जाता है। अनुवासन के पीछे फिर आस्थापन दिया जाता है।

अनुवासन वस्तिवालेका भोजन।

कफपित्ताऽनिलेष्वन्नं यूषक्षीररसैःक्रमात्।

अर्थ–जिसको अनुवासन वस्ति दीगई हो उसे कफकी अधिकतामें यूषके साथ, पित्त की अधिकतामें दूधके साथ, और वातकी अधिकतामें मांसके साथ अन्न देना चाहिये।

वातरोग में वस्ति।

वातघ्नौषधनिः क्वाथश्चिकृतासैंधवैर्युतः॥
वस्तिरेकोऽनिले स्निग्धः स्वाद्वम्लोष्णरसान्वितः

अर्थ–वातरोग में जो निरूहण व वस्ति का प्रयोग करना हो तो वातनाशक दशमूलादि के क्वाथ में निसोथ और सेंधानमक डालकर कुछ स्निग्ध करके मधुराम्ललवण रस युक्त करके एक वस्ति देनी चाहिये।

पित्तरोग में वस्ति।

न्यग्रोधादिगणक्वाथौ पत्रकादिसितायुतौ।
पित्ते स्वादुहिमौ साज्यक्षीरेक्षुरसमाक्षिकौ।

अर्थ–न्यग्रोधादिगण के क्वाथ से संयुक्त और पत्रकादि गण के कल्क तथा घृत, दूध, इक्षुरस, मधु, और मिश्री से युक्त मधुर और शीतवीर्य दो वस्ति पित्त रोग में देना हितकारी होता है।

कफरोग में वस्ति।

आरग्वधादिनिःक्वाथवत्सकादियुतास्त्रयः॥
रूक्षाः सक्षौद्रगोमूत्रास्तीक्ष्णोष्णकटुकाःकफे।

अर्थ–कफ विषयक रोगोंमें रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण और कटु तीन वस्ति हितकारी होती हैं इसमें आरग्वधादि गण में कही हुई औषधों का क्वाथ तथा वत्सकादि गण में कही हुई औषधों का क्वाथ मिलाकर उसमें शहत और गोमूत्र डालकर वस्ति देवै।

सन्निपात में वस्ति।

त्रयश्च सन्निपातेऽपिदोषान्घ्नन्तियतःक्रमात्

अर्थ–सन्निपातमें भी तीन ही वस्ति दीजाती हैं क्योंकि वातादि तीन दोषों में से एक एक दोष एक एक वस्तिद्वारा शान्त होजाता है।

चौथी वस्तिका निषेध।

त्रिभ्यःपरं वस्तिमतोनेच्छंत्यन्येचिकित्सकाः
नहि दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दीयेत यं प्रति ६०

अर्थ–वैद्य लोग तीन वस्ति से अधिक देने की इच्छा ही नहीं करते हैं क्योंकि तीनों दोष तो तीन वस्तिओं से शान्त हो जाते हैं फिर चौथा दोषतो है ही नहीं जिस के लिये चौथी वस्ति दीजावै।

अन्यकारण।

उत्क्लेशनं शुद्धिकरं दोषाणां शमनं क्रमात्।
स्निग्धैवं कल्पयेद्वस्तिमित्यः येऽपि प्रचक्षते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कितने ही वैद्यों का यह मत है कि बस्तिओं के तीन काम हैं एक उत्क्लेशन अर्थात् दोषों को अपने स्थान से चलायमान कर देना, दूसरा दोषों की शुद्धि करना, तीसरा उनका शमन करना। इन तीनों कामों को एक एक वस्ति कर देती है, इसलिये तीनसे अधिक बस्तिओं के देने का कुछ प्रयोजन नहीं है।

उभय पक्ष में प्रमाणत्व।

दोषौषधादिबलतः सर्वमेतत्प्रमाणयेत्।

अर्थ–इन वस्तिओं में दोष, औषध और सात्म्यादि से ये सब बातें प्रमाण के योग्यहैं, अर्थात् दोनों पक्षों का दोषों पर लक्ष है।

ग्रन्थकारका मत।

सम्यक्निरूढलिंगं तु नाऽसंभाव्य निवर्तयेत्।

अर्थ–जब तक अच्छी तरह निरूहण देने के लक्षण दिखाई न दें तब तक वस्ति देना उचित है, तीन वस्ति देकर ही बन्द न कर देना चाहिये। यह ग्रन्थकार का मत है।

कर्मवस्तिओं की संख्या।

प्राक्स्नेहएकःपंचांतेद्वादशाऽऽस्थापनानि च सान्वासनानि कर्मैवं बस्तयस्त्रिंशदीरिताः॥

अर्थ–कर्म बस्ति तीस हैं प्रथम एक स्नेह वस्ति, अंत में अर्थात् पंचकर्मके अन्त सानेमें पांच वस्ति, बारह निरूहणवस्ति बारह अनुवासन बस्तिइस तरह कर्मबस्ती तीस होती हैं।

कालवस्ति तथा योगबस्ति।

कालः पंचदशैकोऽत्र प्राक् स्नेहांते त्रयस्तथा ॥६३॥ पंच वस्त्यंतरिताः-

योगोऽष्टौ बस्तयोऽत्र तु ॥ ६४ ॥

त्रयो निरूहाः स्नेहाश्च स्नेहावाद्यंतयोरुभौ।

अर्थ–पन्द्रह वस्तिओं के प्रयोग का नाम काल है प्रथम एक और अंत में तीन स्नेह वस्ति और पांच निरूहवस्ति द्वारा अंतरित छः स्नेह बस्ति। इस तरह पन्द्रह वस्ति के प्रयोग का नाम काल है।

तीन निरूहण वस्ति और तीन अनुवासन वस्ति तथा प्रथम और अंत में एकएक स्नेहवस्ति। इस तरह इन आठ वस्तिओंका नाम योग है।

एकप्रकारकीवस्तिओंकेसेवनकाप्रयोग।

स्नेहबस्तिं निरूहं वा नैकमेवाऽतिशीलयेत्॥ उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहान्निर्हान्मरुतो भयम्

अर्थ–केवल स्नेह वस्ति वा केवल निरूह वास्ति इनमें से किसी एक प्रकार की वस्ति का अतिशय सेवन न करना चाहिये। क्योंकि स्नेहवस्तिओं के अतिशय सेवन से उत्क्लेश होता है अर्थात् वातादि दोष अपने अपने स्थान से चलायमान होकर बाहर निकलने को प्रवृत्त होते हैं, तथा जठराग्नि भी मन्द पडजाती है और निरूहण के अत्यन्त सेवन से वायुका प्रकोप होता है।

उपसंहार।

तस्मान्निरूढः स्नेह्यः स्यान्निरूह्यश्चाऽनुवासितः॥ ६६॥

स्नेहशोधनयुक्तैवं बस्तिकर्म त्रिदोषजित्।

अर्थ–इसलिये प्रथम निरूहण वस्ति देकर स्नेहन वस्ति देवै और अनुवासन देकर निरूहण देवै। इसतरह स्नेहन और शोधनयुक्तियों के द्वारा वस्ति कर्म होने पर वातादिक तीनों दोष शांत होजाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मात्रावस्ति के लक्षणादि ।

द्वयङ्गुलया स्नेहपानस्य मात्रया योजितःसमः ॥
मात्रावस्तिः स्मृतः स्नेहः-
शीलनीयः सदा च सः ।
बालवृद्धाध्वभारस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकैः ॥
वातभग्नबलाऽल्पाग्निनृपेश्वरसुखात्मभिः ।
दोषघ्नो निष्परीहारो बल्यः सृष्टमलः सुखः ॥

अर्थ–अनुवासन वस्तिमें जो स्नेहमात्रा की योजना करने में आती है उसमें जो दो पहर में पच सकती है उसे वैद्य मात्रावस्ति कहते हैं । यह मात्रा वस्ति बालक, वृद्ध, मार्ग चलने से थके हुए, बोझ ढोने से क्लांत, स्त्रीसक्त, व्यायाम करने वाले, चिंताशील, वायुके वेग से जिसका बल नाश होगया हो, मन्दाग्नियुत, राजा, सुखभोगी इन मनुष्यों को सदा सेवन के योग्य है । इस मात्रावस्ति से त्रिदोष का नाश होता है परिहार बिना बल बढता है, पुरीषादि मल अच्छी तरह निकल कर सुख उत्पन्न करते हैं ।

उत्तरवस्तिका विधान ।

वस्तौ रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च ।
द्विस्त्रिरास्थापनशुद्धेभ्यो विदध्याद्वस्तिमुत्तरम्

अर्थ–स्त्रियों के वस्ति स्थान के रोगों में, योनिरोगों में अथवा गर्भाशय संबंधी रोगों में दो तीन आस्थापन वस्तिओं के प्रयोग द्वारा शुद्ध करके उत्तर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये ।

उत्तरवस्ति के नेत्र का परिमाण ।

आतुरांगुलमानेन तन्नेत्रं द्वादशांगुलम् ।
वृत्तं गोपुच्छवन्मूलमध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥
सिद्धार्थकप्रवेशाग्रं श्लक्ष्णं हेमादिसंभवम् ।
कुंदाश्वमारसुमनःपुष्पवृंतोपमं दृढम् ७२ ॥

अर्थ–उत्तर वस्ति का नेत्र रोगी के बारह अंगुल के तुल्य होता है, यह सुवर्णादि धातुओं से बनाया जाता है इसका आकार गोल गौ की पूंछ के समान है इसकी जड़ में और मध्यभाग में कर्णिका लगी होती है इसके अग्रभाग में ऐसा छिद्र होता है जिस में सरसों प्रवेश कर सके, चिकना होता है तथा कुन्द, कनेर और चमेली के पुष्प और वृक्ष के समान होता है, तथा दृढ भी होना चाहिये ।

उत्तर वस्तिकी मात्रा ।

तस्य वस्तिर्मृदुलघुर्मात्रा शुक्तिर्विकल्प्य वा।

अर्थ–इस वस्ति की योजना मृदु और लघु करना उचित है, उत्तर वस्ति की स्नेह मात्रा चार तोले होती है अथवा रोगी के बय, बल और शरीरादि की विवेचना कर के स्नेह मात्रा की कल्पना करना उचित है।

उत्तरवस्तिके प्रयोग की विधि

अथ स्नाताशितस्यास्य स्नेहवस्तिविधानतः
ऋजोः सुखोपविष्टस्य पीठे जानुसमे मृदौ ।
हृष्टे मेढ्रेस्थिते चर्जो शनैः स्रोतोविशुद्धये ॥
सूक्ष्मां शलाकां प्रणयेत्तया शुद्धेऽनुसेवनीम् ।
आमेढ्रनालं नेत्रं च निष्कंपं गुदवत्ततः ७५ ॥
पीडितेऽतर्गते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः ।

अर्थ–ऊपर कही हुई स्नेह वस्ति की रीति के अनुसार रोगी को स्नान और भोजन से निवृत होचुकने पर जानुतुल्य ऊंचे कोमल आसन पर सीधा सुखपूर्वक बैठादे, फिर स्रोतों की विशुद्धिके लिये प्रथम लिंग को सीधा करके इस तरह रक्खे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कि हिलने न पावै फिर उसमें पतली सलाई प्रवेश करदे । इससे पीछे लिंगकी सीमन पर ध्यान देता हुआ गुदाके तुल्य लिंगके अन्त तक अर्थात् प्रायःछः अंगुल तक ऐसी रीति से नेत्र का प्रयोग करै कि हिलने न पावै । नेत्र के स्थापन के पीछे वास्तिपुट को दावकर स्नेह को भीतर प्रवेश करदें फिर जो जो बातें स्नेहवस्ति में कही गई हैं उन सबका यथावत् पालन करै अर्थात् हाथ और पार्ष्णि द्वारा कूल्हों को धीरे धीरे थपथपावै ।

उत्तरवस्ति की संख्या ।

वस्तीननेन विधिना दद्यात्त्रींश्चतुरोऽपिवा
अनुवासनवच्छेषं सर्वमेवाऽस्य चिंतयेत् ।

अर्थ–इसी नियम से तीन बार वा चार बार उत्तर वस्ति का प्रयोग करै । उत्तर वस्ति के विधि, नियम, सम्यक् प्रयोग और उपद्रव आदि सब ही अनुवासन के समान होते हैं ;

स्त्रिओं को उत्तरवस्ति ।

स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतेः ॥
विदधीत तदा तस्मादृतावपि चात्यये ।
योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापदसृग्दरे ७८॥

अर्थ–अब हम स्त्रियों की उत्तर वस्ति का वर्णन करते हैं । ऋतुकाल में योनिका मुख खुल जाता है इस लिये उस समय में योनि उत्तर वस्ति के स्नेह को सहज ही में ग्रहण करलेती है, इस लिये उसी काल में उत्तर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । किन्तु योनिभ्रंश, योनिशूल, योनिव्यापत और प्रदरादि भयंकर रोगों में आवश्यकता पड़ने पर ऋतुकाल को छोड़कर अन्य समय भी उत्तर वस्तिका प्रयोग किया जाया है । (रजोदर्शन के दिन से बारह दिन पर्य्यन्त ऋतुकाल होता है) ।

नेत्रका प्रमाण ।

नेत्रं दशांगुलं मुद्गप्रवेशं चतुरंगुलम् ।
अपत्यमार्गे योज्यं स्याद् द्व्यंगुलं मूत्रवर्त्मनि॥
मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।

अर्थ–स्त्रियोंके लिये जो उत्तर वस्ति दी जाती है उसके नेत्रका प्रमाण रोगीके दस अंगुलके तुल्य होता है । नेत्रके अग्रभाग का छिद्र मूंगके समान होता है । स्त्रीके अपत्य मार्ग में अर्थात् जिस मार्गसे स्त्री गर्भ ग्रहण करती है वा बालक जनती है उस मार्ग में नेत्रका प्रवेश चार अंगुल करै । मूत्रकृच्छ्रादि रोगों में मूत्रमार्ग में दो अंगुल नेत्रका प्रवेश करै । परन्तु छोटी अवस्थावाली लडकियों के एकही अंगुल प्रवेश करै ।

उत्तरवस्ति की मात्रा ।

प्रकुंचो मध्यमा मात्रा बालानां शुक्तिरेव तु ॥

अर्थ–स्त्रियों के लिये उत्तर वस्ति में स्नेहकी मध्यममात्रा आठ तोला होतीहै (उत्तम वा कनिष्ठ मात्रा का प्रयोग नहीं होता है) किन्तु छोटी लडकियों के लिये चार तोलेकी मध्यम मात्रा होती है ।

स्त्रियोंको उत्तरवस्तिकी बिधि ।

उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् संकोच्य सक्थिनी ।
ऊर्ध्वजान्वाश्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत् ॥
वस्तींस्त्रिरात्रमेवंच स्नेहमात्रांविवर्द्धयेत् ।

अर्थ-जिस स्त्रीको उत्तरवस्ति देनी है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसे सीधा चित्त शयन कराकर पांवोंको सुकडवादे और घुटने ऊंचे करादे। आधा कर्ष वा कर्ष आदि क्रमसे स्नेहमात्रा को बढाताहुआ एक दिन रातमें तीनचारबार उत्तरवस्तिका प्रयोग करै, इसतरह तीनदिन करता रहै। अनुवासन तो एक रातदिनमें एकबार ही दी जाती है, यही अन्तर है।

फिरवस्ति प्रयोग।

त्र्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात् पुनस्त्र्यहम्

अर्थ—तीनदिन विश्राम करके पुनर्वार पूर्वोक्त रीतिसे तीनदिन तक उत्तर वस्तिका प्रयोग करै।

वस्ति देनेका नियम।

पक्षाद्विरेको वमिते ततः पक्षाच्च रूहणम्।
सद्योनिरूढश्चाऽन्वास्यःसप्तरात्राद्विरेचितः

अर्थ—उत्तम वस्तिके प्रयोगसे वमन द्वारा अच्छीतरह शुद्ध होनेके पंद्रह दिन पीछे विरेचन, इसीतरह विरेचनसे पंद्रहदिन पीछे निरूहण, निरूहण के दिन ही अनुवासन और विरेचनके एक सप्ताह पीछे अनुवासन देना चाहिये।

वस्तिका प्रयोजन।

यथा कुसुंभादियुतात्तोयाद्रागं हरेत्पटः।
तथा द्रवीकृताद्देहाद्वस्तिर्नेर्हरते मलान्॥

अर्थ—जैसे वस्त्रको कसूमके रंगसे युक्त जलमें डबोनेसे वह केवल ललाई को ग्रहण कर लेता है। इसी तरह वस्ति भी धातु और मल द्वारा द्रवीकृत देहसे मल ही को निकालती है।

वायुका प्राधान्य।

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा-
मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च
ये संति तेषां ननु कश्चिदन्यो-
वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति॥ ८५॥

अर्थ—शाखा (चारों हाथ पांव), कोष्ठ, मर्मस्थान, ऊर्ध्वअंग और संपूर्ण देहके अवयवों में होनेवाले रोगों में वायु ही उन की उत्पति का प्रधान कारण है वायुके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हैं। ऊर्ध्वअंगमें होने वाले मुखरोगादि। सब शरीर में होने वाले ज्वरादि और अवयवों में होने वाले श्वित्रादि रोग होते हैं।

वस्तिको वायुका शमनत्व।

विट्श्लेष्मापित्तादिमलाचयानां-
विक्षेपसंहारकरः स यस्मात्।
तस्माऽतिवृद्धस्य शमाय नान्य-
द्वस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचित्॥ ८६॥

अर्थ—पुरीष, कफ, पित्त, मूत्र स्वेद आदि मलसमूहों का विक्षेपकर्त्ता अर्थात् फैलानेवाला और संहारकर्ता अर्थात् इकट्ठा करनेवाला वायु है, यह वायु जब अत्यन्त बढजाता है तब उसके शमन करनेके लिये वस्ति के सिवाय और कोई उपयुक्त औषध नहीं है।

वस्तिका महत्व।

तस्माच्चिकित्सार्ध इति प्रदिष्टः-
कृत्स्ना चिकित्साऽपि च वस्तिरेकः।
तथा निजागंतुविकारकारी-
रक्तौषधत्वेन शिराव्यधोऽपि॥ ८७॥

अर्थ—दोषों में प्रधान वायुको वस्ति शमन करती है, इसलिये कितने ही आचार्य्य वस्ति को सम्पूर्ण चिकित्साओं में आधा बतलाते हैं अर्थात् एक ओर संपूर्ण चिकि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्सा और एक ओर केवल वस्ति । कोई कोई आचार्य इसको संपूर्ण रोगों की चिकित्सा ही कहते हैं । इसी तरह दोषज और आगन्तुज संपूर्ण व्याधिओं के उत्पन्न करनेवाले रक्तकी औषधस्वरूप शिराव्यध (फस्त खोलना) को भी चिकित्सा का अर्द्धभाग वा संपूर्ण चिकित्सा कहते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतोनस्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः-

अर्थ–अब हम यहां से नस्यविधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

नस्यसाध्य विकार ।

"ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु विशेषान्नस्यमिष्यते । नासा हि शिरसो द्वारं तेन तद्व्याप्य हंति तान्

अर्थ–जत्रुके ऊपरवाले भागों में जो जो रोग होते हैं उनमें नस्य विशेष हितकारी है । इसका कारण यह है कि नासिका मस्तक का द्वार है, नस्य इस नासिकारूपी द्वार से संपूर्ण मस्तक में व्याप्त होकर ऊर्ध्वजत्रुगत संपूर्ण रोगोंको दूर करदेतीहै ।

नस्य के भेद ।

विरेचनं बृंहणं च शमनं च त्रिधाऽपि तत् ।

अर्थ–नस्यके तीन भेद हैं, यथा–विरेचन, बृंहण और शमन ।

विरेचन नस्य ।

विरेचनं शिरःशूलजाड्यस्यंदगलामये ॥२॥ शोफगंडकृमिग्रंथिकुष्ठाऽपस्मारपीनसे ।

अर्थ–विरेचननस्य मस्तक के दर्द, जडता, श्लेष्मा, कंठरोग, सूजन, गंडरोग, कृमिरोग, ग्रन्थि, कुष्ठ, अपस्मार और पीनस इन रोगों में हितकारी है । अपस्मार यद्यपि ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में नहीं है परन्तु विरेचन नस्यसे जाता रहता है इसलिये उसकी गणना की गई है । और भी ऐसे कितने ही रोग हैं जो ऊर्ध्वजत्रुगत न होने पर भी विरेचन नस्य से दूर होते हैं, जैसे कफ प्रकोप, मुखकी विरसता, गंधकाज्ञान न होना आदि ।

बृंहणनस्य ।

बृंहणं वातजे शूले सूर्यावर्ते स्वरक्षये ॥ ३ ॥ नासाऽस्यशोषेवाक्संगेकृच्छ्रबोधेऽवबाहुके

अर्थ–वातज शूल, सूर्यावर्त (आधासीसी का रोग) स्वरभेद, नासा शोष, मुखशोष, वाणी की रुकावट, जिसमें आंख कठिनता से खुलती हो ऐसा रोग, और अवबाहुक (वातजन्यरोग विशेष) इन रोगों में बृंहण नस्य हितकारक है ।

शमननस्य ।

शमनं नीलिकाव्यंगकेशदोषाक्षिराजिषु ४॥

अर्थ–नीलिका, व्यंग, केशरोग और अक्षिराजि (एक प्रकार का नेत्ररोग) इन रोगों में शमननस्य हितकारक है ।

नस्यकी औषधें ।

यथास्वं योगिकैः स्नेहैर्यथास्वं च प्रसाधितैः । कल्ककषायादिभिश्चाद्यं मधुपट्वासवैरपि बृंहणं धन्वमांसोत्थरसासृक्क्षपुरैरपि । शमनं योजयेत्पूर्वैः क्षीरेण च जलेन च ९ ॥

अर्थ–यथा योग्य सरसों आदि के तेल,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोंठ काली मिरच आदि द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये हुए तथा जिसमें कफनाशक कल्क और क्वाथादिक पडे हों तथा मधु सेंधानमक और आसव द्वारा विरेचन नस्य होता है।

जांगल पशुपक्षियों के मांसरस और रक्तद्वारा तथा खपुर नामक निर्यास विशेष द्वारा और पहिले कहे हुए तीक्ष्णतारहित स्नेहद्वारा बृंहण नस्य तयार किया जाताहै।

इसी तरह पूर्वोक्त अतक्षिण घृतादि स्नेह मांसरस, दूध वा जल द्वारा शमनं नामक नस्य होता है।

इस विषय में सुश्रुत में बहुत स्पष्ट लिखा है विशेष वृत्तांत जानना हो तो वहां देखो।

नस्य के अन्य भेद।

मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्विधा स्नेहोऽत्र मात्रया।

अर्थ–नस्यका स्नेह मात्राभेद से दो प्रकार का होता है एक मर्श, दूसरा प्रति मर्श, इनमें कुछ वस्तुका भेद नहीं है।

अवपीड नस्य।

कल्कार्थैरवपीडस्तु तीक्ष्णैर्मूर्धविरेचनः॥

अर्थ–छींक लानेवाली औषध कल्कादि से बनाई जाती है परन्तु उसमें स्नेह नहीं मिलाया जाता है, इसे अवपीड वा शिरो विरेचन कहते हैं।

प्रधमान नस्य।

ध्मानं विरेचनश्चूर्णो युंज्यात्तं मुखवायुना।
षडंगुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया॥८॥
स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति।

अर्थ–मिरच आदि से बनाया हुआ चूर्ण जो नासिका द्वारा सूंघाजाता है विरेचननस्य कहलाता है, इसका दूसरा नाम प्रधमान नस्य भी है।

इस चूर्ण को नाकमें चढाने के लिये एक छः अंगुल की लंबी नली बनाई जाती है जिसके दोनों ओर छिद्र होता है, इसमें उक्त चूर्ण भरकर नासिका के छिद्र में लगा दिया जाता है, दूसरी ओर से बलपूर्वक फूंक मारी जाती है जिससे चूर्ण नासिका में होकर मस्तक में चढ जाता है यह चूर्ण शिरःस्थ दोषों को अतिशय खींच लाता है।

मर्शस्नेह का परिमाण।

प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्मज्ञसमुद्धृतान्॥९॥
यावत्पतत्यसौ बिंदुर्दशाष्टौ षट् क्रमेण ते।
मर्शस्योत्कृष्टमध्योना मात्रास्ताश्चैव च क्रमात्
बिंदुद्वयोनाः कल्कादेर्योजयेन्न तु नावनम्।

अर्थ–तर्जनी उंगली के दो पोरुए घी में डुबोकर झट निकालले ऐसा करने से जो घी एक बार में टपकता है उसे बिन्दु कहते हैं। ऐसे दस बिन्दु मर्श स्नेह की उत्तम मात्रा है। आठ बिन्दु मर्श स्नेह की मध्य मात्राहै और छः बिन्दु कनिष्ट मात्रा है। मर्श की मात्राकी अपेक्षा दो दो बिन्दु कम करने से कल्कादि की उत्तम मध्यम और कनिष्ठ मात्रा जाननी चाहिये। अर्थात् कल्कादि की उत्तम मात्रा आठ बिन्दु, मध्यम छः बिन्दु और कनिष्ट चार बिन्दु की होती है।

नीचेलिखे मनुष्यों को नस्य देनी चाहिये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नस्य के अयोग्य रोगी।

तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥
भुक्तभक्तशिरः स्नातस्नातुकामक्षुतासृजाम् ।
नवपीनसवेगार्तसूतिकाश्वासकासिनाम् ॥
शुद्धानां दत्तवस्तीनां तथा नार्तवदुर्दिने ।
अन्यत्राऽत्ययिकाद्व्याधेः-

अर्थ–जिसने जल, मद्य, विष अथवा स्नेह पान किया हो अथवा इन में से किसी एक के भी पीने की अत्यन्त इच्छा रखता हो, जो भोजन करके चुका हो, जिसने सिर समेत स्नान किया हो, वा स्नान करने की इच्छा रखता हो। जिसका फस्द द्वारा रक्त निकाला गया हो, जिसको नया पीनस का रोग हुआ हो, जिसने मलमूत्र का वेग रोका हो जिस स्त्रीने हाल ही में बच्चा जना हो, जिसको श्वास वा खांसी का रोग हो, जिसका देह वमन विरेचन वा वस्ति द्वारा शुद्ध किया गया हो इन रोगियों को नस्य न देवे तथा वर्षाऋतु को छोडकर जो किसी दिन बादल बिजली हो रहे हों तो भी नस्य न देवे। किन्तु यदि कोई विपद जनक व्याधि हो गई हो और नस्य देने की आवश्यकता ही हो तो नस्य दे देना ही चाहिये।

नस्यको काल और दोष।

अथ नस्यं प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥
प्रातः श्लेष्माणि मध्याह्ने पित्ते सायंनिशोश्चले

अर्थ–श्लेष्मरोग में प्रातःकाल, पित्तरोग में मध्यान्ह, और वात रोग में सायंकाल वा रात्रि के समय नस्य देना चाहिये +

+ जलादि पीकर वा पीने की इच्छा होने पर नस्य लेने से नासारोग, मुखरोग, तिमिर और शिरोरोग होते हैं। भोजन करके नस्य लेने से ऊपर से स्रोत रुक कर वमन, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय रोग होते हैं। शिर समेत स्नान करके नस्य लेने से मस्तक शूल, नेत्र शूल, कर्णशूल, कंठरोग, पीनस, हनुस्तंभ मर्दित और शिरःकंप होता है। स्नान करने की इच्छा वाले के मस्तक में जडता अरुचि और पीनस रोग होजाते हैं रक्तस्राव में कृशता, अरुचि और अग्निमांद्य रोग होते हैं। नवीन पीनस में स्रोतरुक कर दुष्ट श्लेष्मा, कृमि, कंडू और बिचिर्चिका रोग, होते हैं। मलमूत्रादि वेग में वेग रोकने के जो उपद्रव कहे गये हैं वे होते हैं। प्रसूती को नस्य देनेसे रक्त बहने के उपद्रव होजाते हैं श्वास और कास में इन्हीं की वृद्धि अधिक होती हैं वमन विरेचनादि से शुद्ध हुए मनुष्य को नस्य देवे से श्वास, खांसी, स्वरभंग इन्द्रियोंकी शक्ति का नाश, शिर में भारापन, कृमि, कंडू आदि रोग होते हैं। वस्ति देने के पीछे नस्य देने से स्रोतों के मुख खुले रहने के कारण श्वास कासादिक रोग होते हैं। दुर्दिन में नस्य देने से शिरोवेदना, कंपन, जडता, तालु पाक, नेत्र रोग खुजली, मन्यास्तंभ, कंठ रोग, श्लेष्मा, और अरुंषका नामक रोग होते हैं संग्रह में लिखा है कि गर्भवती स्त्री को नस्य देने से भोजन में अरुचि, ज्वर, मूर्च्छा, और आधा सीसी होते हैं और बालक भी व्यंग विकलेन्द्रिय, उन्माद क्षौर अपस्मार रोगों से युक्त होता है। विशेष करके गर्भवती को रूक्ष नस्य कर्म में सांठ, काकोली और कमाच डा कर औटाया हुआ दूध पिलावे और र पीने मे सब तरह से बृंहण उपचार क।

+ संग्रहमें विशेष लिखा है कि लालास्राव, सुप्ति, प्रलाप, दांतकडकडाना, मुख

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋतुपरतासे नस्यकाल ।

स्वस्थवृत्ते तु पूर्वाह्णे शरत्कालवसंतयोः ॥
शीते मध्यंदिने ग्रीष्मे सायं वर्षासु सातपे ।

अर्थ- स्वस्थावस्था, शरत् और वसंत काल में पूर्वान्ह में, शीतकाल में, मध्यान्ह के समय, ग्रीष्मकाल में सायंकाल के समय और वर्षा कालमें जिस समय सूर्य अच्छी तरह प्रकाशित हो नस्य देना चाहिये ।

दोषपरत्व से नस्यकाल ।

वाताभिभूते शिरसि हिध्मायामपतानके १
मन्यास्तंभे स्वरभ्रंशे सायंप्रातर्दिने त्रिने ।
एकाहांतरमन्यत्र सप्ताहे च तदाचरेत् १६

अर्थ–जो सिरमें वात के कारण पीडा होता हो, तथा हिचकी, अपतानक, मन्यास्तंभ और स्वरभ्रंश रोगों में प्रतिदिन प्रातः काल और सायंकाल दोनों समय नस्य देना चाहिये । इन से अतिरिक्त अन्य रोगों में एक एक दिन का अंतर देकर सात दिन तक नस्य देवै । सात दिन पीछे नस्य न देवै ।

नस्यकी विधि ।

स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्यप्राक्कृतावश्यकस्य च
निवातशयनस्थस्य जघ्रूर्ध्वं स्वेदयेत् पुनः।१७।
अथोत्तानन्तुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।
किंचिदुन्नतपादस्य किंचिन्मूर्धनि नामिते १८
नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् ।
उष्णांबुतप्तं भैषज्यं प्रनाड्या पिचुनाऽथवा १९.
वृत्ते पादतलस्कंधहस्तकर्णादि मर्दयेत् ।
शनैरुच्छ्रित्य निष्टीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः २०

अर्थ--जिसको नस्य देना हो उसको जब वह मल मूत्रोत्सर्ग और दंतधावनादि नित्यकर्मसे निश्चिंत हो चुका हो सिरपर तेल डालकर स्निग्ध करै और फिर स्वेद द्वारा स्विन्न करके निर्वात स्थानमें लेजाकर पलंग पर शयन कराके जानुसे ऊपर वाले भागका पसीना फिर निकाले । फिर चित्त और सीधा हाथ पांव पसार कर लेटे जाय और पांव कुछ ऊंचे रक्खे तथा सिर कुछ नीचा रक्खे और नासिका का एक छिद्र बन्द कर के दूसरे छिद्रमें नली लगाकर वा रुईकी बत्ती द्वारा गरमजल से संतप्त औषध डालदेवै और फिर दूसरे छिद्रमें भी इसी तरह करे

नस्य देकर पांवों के तलुए, कंधो, हाथ और कानों का धीरे धीरे मर्दन करे और मर्दन के पीछे * धीरे धीरे दोनों ओर थूकै इसका कारण यह है कि एक तरफ थूकने से संपूर्ण शिराऔषध से व्याप्त नहीं होतीहैं।

नस्यकी मात्रा ।

आभषजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।

अर्थ– पूर्वोक्त क्रमसे नस्य लेनेपर जब तक औषधका क्षय न हो ले तब तक आवश्यकतानुसार दो तीन बार नस्य लेवै अर्थात् नस्यकी जितनी मात्रा देनीहो उतनी

न, कृच्छ्रोन्मीलन, पूतिमुख, कर्णनाद, तृषा आर्दित, शिरोरोग, श्वास, खांसी, और उन्निद्रा (नींद न आती हो) रोगोंमें रात्रिके समयनस्य देनी चाहिये ।

+ सुश्रुतमें लिखा है कि रोगीके नेत्रों को वस्त्रसे ढककर बांये हाथकी तर्जनी से रोगीके नासापुटको ऊंचा करके दक्षिण हाथसे उष्णजलसे संतप्त स्नेह रूपेकी सीपी अथवा अन्य ऐसेही पात्रद्वारा अखंड धार बांधकर डालदे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक बार में न दी जा सके बचीहुई को दो तीन बार में देदेवे । *

नस्यजन्य मूर्छा का प्रतिकार ।

मूर्छायां शीततोयेन सिंचेत्परिहरन्शिरः२१

अर्थ– किन्तु यदि औषध की तीक्ष्णता के कारण मूर्छा हो तो मस्तक को छोडकर सब शरीर पर ठंडे जलका सेचन करै।*

---

* इसका कारण यहहै कि औषध को हीन मात्रा देनेसे दोष अपने स्थानसे चलित होजातेहैं और बाहर नहीं निकल सकते तथा भारापन, अरुचि, खांसी, प्रसेक, पीनस, वमन और कंठरोग उत्पन्न करदेतेहैं। अधिक मात्रा देनेसे औषध का अतियोग होजाता है सो अतियोगसे होनेवाले विकार होजातेहैं। जो एक दम सब मात्रा नाक के भीतर प्रवेश करदी जाय तो शिरोरोग, श्लेष्मा, नाकमें फलेद, और श्वासावरोध होजातेहैं अत्यन्त गरम देनेसे दाह, पाकज्वर, रक्तरोग, मूर्छा और भ्रम होताहै। अतिशीतल देनेसे हीनमात्रा संबंधी दोष उपजतेहैं। अति ऊंचा सिर करके नस्य लेनेसे उक्तहीन दोष होतेहैं। अति नीचा सिर करके लेने से औषधके बहुत भीतर चली जानेके कारण मूर्छा जडता और ज्वर होतेहैं। संकुचित गात्र करके नस्य लेनेसे वह शिराओं में अच्छी तरह प्रवेश न करके दोषोंका उपाड करती है।

+ संग्रह में लिखाहै कि नस्य लेनेके समय क्रोध, हास्य, व्यवहार, उछलना, और नासिका से मल बाहर निकालने की चेष्टा न करै, ऐसा करनेसे शिरोवेदना, श्लेष्मा, खांसी तिमिर, खलित, पलित, व्यंग, तिलकालक, तथा मुखदूषिकादि रोगों का होजाना संभवहै।

विरेचन नस्यके पीछे के कर्म ।

स्नेहं विरेचनस्यांते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ।
नस्यांते वाक्शतं तिष्ठेदुत्तानः
धारयेत्ततः ॥ २२ ॥
धूमं पीत्वा कवोष्णांबुकवलान् कंठशुद्धये ।

अर्थ– विरेचन नस्यके अन्तमें देश, दोष और सात्म्यादि की विवेचना करके मस्तक में स्नेहका प्रयोग करै और वाक्शत (जितनी देरमें सौ की गिनती हो) सीधा सोनेदे तदनन्तर धूमपान करके कंठकी शुद्धिके निमित्त कुछ गरम जलके कुल्ले करै।

नस्यके सम्यक् योगका लक्षण ।

सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षपाटवम् ॥ २३ ॥

अर्थ– मस्तक के सम्यक् स्निग्ध होने पर श्वास का आवगमन सुखपूर्वक होताहै नींद गहरीहो अच्छी तरह चैतन्यता रहतीहै और नेत्रोंमें चंचलता आजातीहै।

नस्यका रूक्षयोग ।

रूक्षेऽक्षिस्तब्धता शोषो नासास्ये मूर्धशून्यता

अर्थ– मस्तक के तीक्ष्ण नस्यसे रूक्ष होनेपर आंखोंमें स्तब्धता, मुख और नासिकामें शोष, और मस्तक में शून्यता होतीहै।

अतिस्निग्धता के लक्षण ।

स्निग्धेऽतिकंडूर्गुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः२४

अर्थ– मस्तक के अतिस्निग्ध होनेपर खुजली, भारीपन, प्रसेक, अरुचि और पीनस ये रोग उत्पन्न होजातेहैं।

सुविरिक्त और दुर्विरिक्त ।

सुविरिक्तेऽक्षि लघुतावरवक्त्रविशुद्धयः ।
दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः क्षामताऽतिविरेचिते २५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ- यदि शिरो विरेचन अच्छी तरह होगया होय तो नेत्रोंमें हलकापन, तथा स्वर और मुखमें शुद्धि होजातीहै। और जो शिरो विरेचन अच्छी तरह न हुआ हो तो रोग की वृद्धि होतीहै, और अत्यन्त विरेचन होने पर शरीरमें कृशता होतीहै।

प्रतिमर्श का विषय।

प्रतिमर्शः क्षतक्षामबालवृद्धसुखात्मसु।
प्रयोज्योऽकालवर्षेऽपि-
न स्विष्टो दुष्टपीनसे ॥ २६ ॥
मद्यपीतेऽबलश्रोत्रे कृमिदूषितमूर्धनि।
उत्कृष्टोत्क्लिष्टदोषे च-
हीनमात्रतया हिसः ॥ २७ ॥

अर्थ- अकालमें वर्षा होनेपर भी पूर्वोक्त प्रतिमर्श नस्य क्षतक्षीण, बालक, वृद्ध और सुखी जीवोंके लिये देनी चाहिये किन्तु जिनका पीनस रोग बिगड गयाहै, जो शराबी हैं, जिनके कानोंके मार्ग रुकगयेहैं, जिनके मस्तकमें कृमिरोगहै, जिनके दोष अपने स्थानसे चलकर प्रकुपित होगयेहैं, इनको प्रतिमर्श देना उचित नहीं है क्योंकि प्रतिमर्श हीनमात्रा होतीहै और हीनमात्रा देने से दोष उपाड़ करतेहैं पर शमन नहीं होते।

प्रतिमर्श का काल और मात्रा।

निशाहेभुक्तवांताहः स्वप्नाध्वश्रमरेतसाम्।
शिरोभ्यंजनगंडूषप्रस्रावांजनवर्चसाम् २८॥
क्षुत्काष्ठस्यहासस्ययोज्योऽतेऽसौद्विर्विदुकः

अर्थ- रात्रि, दिवस, भोजन, वमन, दिवानिद्रा, मार्गभ्रमण, परिश्रम, वीर्यपात, शिरोभ्यंजन (मस्तक में तेल लगाना), कुल्ला, प्रस्राव, अंजन लगाना, मलत्याग, दांतन करना, और हास्य इन पन्द्रह कामों के पीछे प्रतिमर्श स्नेह के दो बिन्दु नाकमें डालने चाहिये।

प्रतिमर्श का फल।

पंचसु स्रोतसां शुद्धिःकल्मनाशस्त्रिषु क्रमात
दृग्बलं पंचसु ततो दंतदार्ढ्यं मरुच्छमः।

अर्थ-ऊपर कहे हुए पन्द्रह कालों में से रात्रि, दिवस, भोजन, वमन और दिवा निद्रा इन पांचों के अंतमें प्रतिमर्श की मात्रा देने से स्रोतों की शुद्धि हो जाती है। मार्गभ्रमण, परिश्रम और मैथुन के अंत में प्रतिमर्श नस्य से थकावट जाती रहती है। शिरोभ्यंजन, गंडूषधारण, प्रस्राव, अंजनग्रहण और मलत्याग इनके अंत में प्रतिमर्श की योजना से नेत्रों में बल बढता है। दंतधावन और हास्य के पीछे प्रतिमर्श को योजना करने से दांत दृढ और वायुका शमन होता है।

वयपरत्व से नस्यादिका नियम।

न नस्यभूनसप्ताब्दे नाऽतीताऽशीतिवत्सरे॥
न चोनाऽष्टादशे धूमः कवलो नोनपंचमे।
न शुद्धिरूनदशमे न चाऽतिक्रांतसप्ततौ ॥

अर्थ-सात वर्ष से कम और अस्सी वर्ष से ऊपर की अवस्थावाले को नस्य न देना चाहिये। अठारह वर्ष से कम अवस्थावाले को धूमपान नहीं करना चाहिये, पांचवर्ष की अवस्था से कमवाले को कवलधारण का निषेध है, तथा दस वर्ष से कम और सत्तर वर्ष से ऊपर की अवस्था वालों को वमनविरेचन नहीं देना चाहिये।

प्रतिमर्शका सदासेवन।

आजन्ममरणं शस्तःप्रतिमर्शस्तु वस्तिवत्।
मर्शवच्चगुणान्कुर्यात्स हि नित्योपसेवनात्
नचाऽत्र यंत्रणा नाऽपि व्यापद्भ्योऽमर्शवद्भयं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—स्नेहवस्तिं के सदृश प्रतिमर्श भी जन्मकाल से मृत्यु पर्यन्त हितकारी होता है तथा इसका निरंतर सेवन किया जाय तो यह मर्शके समान गुणकारी है। इस प्रतिमर्श के सेवनमें किसी प्रकारका बंधनभी नहीं है अर्थात् उष्णजल पानादि की यंत्रणा नहीं है और मर्शकी तरह नेत्रस्तब्धता आदि रोगों का भय भी नहीं है।

प्रतिमर्शमें तेल को श्रेष्ठत्व

तैलमेव च नस्यार्थे नित्याभ्यासेन शस्यते ॥
शिरसः श्लेष्मधामत्वात्स्नेहाःस्वस्थस्यनेतरे

अर्थ—मस्तक श्लेष्मा का स्थान है इस लिये तन्दुरुस्त मनुष्यके लिये श्लेष्मनाशक तेल ही उत्तम होता है। अन्य स्नेह कफवर्द्धक होते हैं इसलिये उनको काममें लाना उचित नहीं है। जैसे नित्याभ्यास के कारण प्रतिमर्श उपकारक है इसीतरह तेलकी नस्यभी निरंतर अभ्यास में हितकर है।

मर्श और प्रतिमर्शका अंतर।

आशुकृच्चिरकारित्वं गुणोत्कर्षापकृष्टता ॥
मर्शे च प्रतिमर्शे च विशेषो न भवेद्यदि ।
को मर्शं सपरीहारं सापदं च भजेत्ततः ॥
अच्छपानविकाराख्यौकुटीवाताऽतपस्थिती
अन्वासमात्रावस्ती च तद्वदेव च निर्दिशेत् ॥

अर्थ—प्रतिमर्श नस्य यदि नित्य सेवन करनेपर मर्शके समान गुणकारी हो और इसके उपकारी होनेके विषयमें कोई विशेषता न हो तो मर्श नस्यके सेवनमें जो शीतलजल सेकादि परिहाररूप अनेक प्रकारके नियमों का प्रतिपालन करना पडताहै और जिस में अक्षिस्तब्धादि अनेक प्रकार की व्यापत्ति उत्पन्न होती हैं उसको कौन सेवन करै ? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि मर्श आशुकारी और दोषोंको शीघ्रही दूर करने वाला है, प्रतिमर्श चिरकारी अर्थात् दोषों को देरमें दूर करने वाला है इसलिये दोषों को शीघ्र दूर करने के हेतुसे मर्शमें गुणोंकी उत्कर्षता है और देरमें दोषोंको दूर करने के हेतुसे प्रतिमर्श में गुणोंकी अपकर्षता है। इन दोनों में केवल इतनाही अंतर है। इस लिये जो मनुष्य शीघ्र सुखोच्छ्वासादि के उपकार के पानेकी इच्छा करता है उसे मर्श नामक स्नेह नस्यका ग्रहण करना चाहिये।

इसीतरह अच्छपेय स्नेह तथा अन्य स्नेह पान, कुटीमें प्रवेश करके स्थिति तथा बाततपादि की अपरिहार स्थिति में जो रसायन का प्रयोग किया जाता है इसीतरह अन्वासन वस्ति और मात्रावस्ति ये सब बिलंबसे गुण करनेवाले तथा शीघ्रगुण करनेवाले हैं यही अंतर इन सब में है।

अणुतैल।

जीवंतीजलदेवदारुजलदत्वक्सेव्यगोपाहिमदार्वीत्वङ्मधुकप्लवागुरुवरापुंड्राहुविल्वोत्पलं
धवन्यौ सुरभिः स्थिरे कृमिहरं पत्त्रंत्रुटिरेणुकं-
किंजल्कं कमलाह्वयं शतगुणे दिव्येऽभसि-
क्वाथयेत् ॥ ३७ ॥

तैलाद्रसं दशगुणं परिशेष्य तेन-
तैलं पिचेच्च सलिलेन दशैव वारान् ।
पाके क्षिपेच्च दशमे सममाजदुग्धम्-
नस्यं महागुणमुशंत्यणुतैलमेतत् ३८ ॥

अर्थ- जीवन्ती, नेत्रवाला, देवदारू, नागरमोथा, दालचीनी, कालावाला, अनन्त मूल, रक्तचन्दन, दारुहलदी, दालचीनी, मुलहटी, कदंब, अगर, त्रिफला, पौंडरीक,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बेलगिरी, कमल, दोनों कटेरी, सल्लकी, शालपर्णी, प्रश्नपर्णी, बायविडंग, तेजपात, छोटी इलायची, रेणुकबीज, नागकेसर, पद्मरेणु, इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर सौगुने आंतरीक्ष जलमें क्वाथ करै। और ऊपर कहेहुए सब द्रव्योंके समान तेल लेवे जब तेलसे दसगुना क्वाथ रहजाय तब उतारकर पकावै तेल शेष रहनेपर उतारले फिर उसमें तेलको बराबर क्वाथ मिलाकर पकावै इसतरह दस बार करै अन्तमें जब तेल शेष रहजाय तब उसमें तेलकी बराबरही बकरी का दूध मिलाकर फिर पकावै, फिर तेल शेष रहनेपर उतार ले, इसतरह सिद्ध किये हुए इस तेलका नाम अणु तेल है यह तेल नस्यद्वारा प्रयोग करने में महा गुणकारी है और चूंकि यह सूक्ष्मछिद्रोंमें प्रवेश करता है इसीलिये इसका नाम अणुतैलहै।

नस्य सेवनके गुण।

घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कंधग्रीवाऽस्यवक्षसः। दृढेंद्रियास्त्वपलिता भवेयुर्नस्यशीलिनः॥

अर्थ– जो मनुष्य नस्यका सेवन करता है उसकी त्वचा, स्कंध, ग्रीवा, मुख और वक्षस्थल घन, उन्नत और निर्मल हो जातेहैं। संपूर्ण इन्द्रियां बलवती होजाती हैं और केश कुसमय पकने नहीं पातेहैं अर्थात् बुढापे से पहिले सफेद नहीं होतेहैं।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः।

एकविंशतितमोऽध्यायः।

अथाऽतोधूमपानविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ– अब हम यहांसे धूमपान विधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

धूमपान की आवश्यकता।

"ऊर्ध्वं कफवातेत्यविकाराणामजन्मने। उच्छेदाय च जातानां पिबेद्धूमं सदाऽत्मवान्

अर्थ–हिताहार विहार करनेवाले मनुष्य को उचितहै कि जत्रुसे ऊपर कफ तथा वायु से किसी प्रकारका रोग उत्पन्न न होने पावै तथा कोई विकार उत्पन्न होगया हो तो उसके शमन के लिये सदा धूमपान करै।

धूमपान के भेद।

स्निग्धोमध्यःस तीक्ष्णश्च त्रयो धूमा वातकफे कफे

अर्थ–स्निग्ध, मध्य और तीक्ष्ण इन भेदोंसे धूम तीन प्रकार का होताहै। वातरोग में स्निग्ध, वातकफमें मध्य, और कफ में तीक्ष्ण धूम का प्रयोग किया जाताहै।

धूम के अयोग्य रोगी।

योज्यः नरक्तपित्तार्तिविरिक्तो दरमेहिषु। तिमिरोर्ध्वाऽनिलाऽध्मानशिरोहिणीदत्तबस्तिषु मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषार्दितेषु २॥ शिरस्यभिहते पांडुरोगे जागरिते निशि।

अर्थ–रक्तपित्त * से पीडित, उदररोगी

+ ऊपर के श्लोक में 'बाते वातकफे कफे योज्यः, इस कहनेसे पित्तकी प्राप्ति ही नहीं है फिर यहां प्रतिषेध करने का क्या तात्पर्य्य है। कहतेहैं कि कोई कोई वात प्रकृतिवाले को वातपित्त रोगमें भ्रांति से प्रकृत्यनुरूप चिकित्सा करनेकी इच्छा से धूमपान बतला देतेहैं इसके निषेधार्थ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रमेही, तिमिररोगी को तथा ऊर्ध्ववात, उदराध्मान, रोहिणी रोग, इनमें विरेचन वाले को, जिसे वस्ति दीगई हो, जिसने मछली, मांस, दही, दूध, शहत, स्नेह, और विष खायाहो उसे, तथा सिर की चोटमें, पांडुरोगमें, और रात्रिभर जागरणमें धूमपान का निषेधहै । कोई कोई कहतेहैं कि यवागू पानके पीछे भी धूमपान न करना चाहिये ।

धूमपान के उपद्रव और उनकी चिकित्सा ।

रक्तपित्तांध्यबाधिर्यतृण्मूर्छामदमोहकृत् ॥४॥
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा-
तत्र शीतो विधिर्हितः ।

अर्थ–अकाल अर्थात् उपरोक्त निषिद्ध काल और स्थलमें अथवा अतिमात्र धूमपान करनेसे रक्तपित्त, अन्धापन, बहरापन, तृषा, मूर्छा, मद और मोह उत्पन्न होते हैं । इन उपद्रवों में घृतपान, नस्य, आलेपन और परिषेकादि शीतल क्रिया हितकारी हैं ।

धूमपान का काल ।

क्षुतजृंभितविण्मूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम् ॥
हास्यस्य दन्तकाष्ठस्य धूममंते पिबेन्मृदुम् ।
कालेष्वेषु निशाऽहारनावनांते च मध्यमम् ॥
निद्रानस्यांजनस्नानच्छर्दितांते विरेचनम् +

अर्थ–छींक, जंभाई, मलमूत्रका, त्याग, स्त्रीसंग, शस्त्रकर्म, हास्य, और दंतधावन इन के अंत में मृदु अर्थात् स्निग्धधूमपान करै । * किन्तु इन सब कामों के समय में तथा रात्रि के अंत में, भोजन के अंत में और नस्य के अंत में मध्यम धूमपान करै और निद्रा, नस्य, * अंजन, स्नान और वमन इनके अंत में विरेचन अथवा तीक्ष्ण धूमपान करै ।

धूमपान की नलीका स्वरूप ।

वस्तिनेत्रसमद्रव्यैस्त्रिकोशं कारयेद्भुजु ॥ ७ ॥
मूलाग्रेऽगुष्ठकोलास्थिप्रवेशं धूमनेत्रकम् ।

अर्थ–वस्ति का नेत्र जिन जिन द्रव्यों से बनाया जाता है उन्हीं द्रव्यों (धातु काष्ठ, अस्थि, बांस) में से किसी एक से धूमपान की नली बनवावै । इस में तीन पर्व होने चाहिये तथा सीधी होनी चाहिये इस के मूलभाग का छिद्र अंगुल प्रवेश के योग्य और अग्रभाग का छिद्र झाडी बेरके प्रवेश योग्य बनवावै ।

धूमपान के नेत्रकी लंबाई ।

तीक्ष्णस्नेहनमध्येषु त्रीणि चत्वारि पंच च ९ ॥
अंगुलानां क्रमात्पातुः प्रमाणेनाऽष्टकानि तत् ।

अर्थ–तीक्ष्ण धूमपान के लिये धूमनली की लंबाई पीने वाले के २४ अंगुल के तुल्य होनी चाहिये, स्नेहन धूमपान में बत्तीस अंगुल की नली और मध्यम धूमपान में नली की लंबाई २० अंगुल होनी चाहिये ।

यह कहा गयाहै अथवा पित्तार्त प्रकृतिवाले को वातकफ की वृद्धिमें धूमपान न कराया जाय इसके लिये यह कहा गयाहै ।

* ऊपर नस्य शब्द का दो जगह प्रयोग किया गया है एक जगह नस्य के अंत में मध्यम धूमपान और दूसरी जगह नस्य के अंत में तीक्ष्ण धूमपान का उपदेश है इसका यह मतलबहै कि स्निग्ध नस्यमें स्निग्ध और तीक्ष्ण नस्यमें तीक्ष्ण धूमपान करना चाहिये, तथा मध्यम नस्य में मध्यम धूमपान करै । इसी तरह मध्यान्ह के अंत में मध्यम धूमपान करै । तथा निद्रा नस्य के अंत में और विरेचन नस्य के अंत में विरेचन धूमपान करै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धूमपान की विधि।

ऋजूपविष्टस्तच्चेताविवृतास्यस्त्रिपर्ययम्॥
पिधाय च्छिद्रमेकैकं धूमं नासिकया पिबेत्।

अर्थ–सीधा बैठकर धूमपान में मनलगा कर मुख खोलकर नासिका के एक छिद्रको बन्द करके दूसरे छिद्र से धूम पान करके मुखद्वारा निकाल दे। दूसरी वार दूसरे छिद्र से पीकर मुखद्वारा निकाल दे। इसी तरह बार बार कभी इस छिद्र से और कभी उस छिद्र से धूमपान कर करके मुखके द्वारा धूंआ निकालता रहै।

धूमपान का क्रम।

प्राक् पिबेन्नासयोत्क्लिष्टे दोषे घ्राणशिरोगते
उत्क्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कंठगे।
मुखेनैव वमेद्धूमं नासया हृन्विघातकृत्॥

अर्थ–नासिका के दोष अथवा मस्तक के दोष अपने स्थानसे चलित हो गयेहों तो प्रथम नासिकपुट द्वारा धूमपान करै। और जो दोष स्थानसे चलित न हुए हों तो उन के चलित करने के निमित्त प्रथम मुख द्वारा धूमपान करै। पीछे नासिका पुट द्वारा धूमपान करै और जो कंठ गत दोष को बाहर निकालना हो तो प्रथम नासिका द्वारा फिर मुख द्वारा धूमपान करै। मुख वा नासिका द्वारा किया हुआ धूमपान मुख द्वारा ही निकालना चाहिये क्योंकि नेत्र द्वारा धुंआं निकालने से तिमिरादि नेत्ररोग पैदा हो-जाते हैं।

धूमपान का नियम।

ओक्षपमोक्षैः पातव्योधूमस्तुत्रिस्त्रिभिस्त्रिभिः

अर्थ–धूंए के खेंचने और छोडने का नाम आक्षेप और मोक्ष है इस तरह तीन तीनवार धूंएका आक्षेप और मोक्ष करै।

दिन में धूमपान की संख्या।

अहः पिबेत्सकृत् स्निग्धं द्विर्मध्यं शोधनं परम्
त्रिश्चतुर्वा

अर्थ–दिन में एकवार स्निग्धधूम, दोवार मध्यम धूम और तीन चारवार तीक्ष्ण धूम-पान करना चाहिये।

मृदु धूमपान।

मृदौ तत्र द्रव्याण्यगुरुगुग्गुलुः।
मुस्तस्थौणेयशैलेयनलदोशीरवालकम्॥
वरांगकौतीमधुकबिल्वमज्जैलवालुकम्।
श्रीवेष्टकं सर्जरसो ध्यामकं मदनं प्लवम्॥
शल्लकी कुंकुमं माषा यवाः कुंदुरुकं तिलाः।
स्नेहः फलानां सारणां मेदोमज्जावसाघृतम्

अर्थ–मृदु अर्थात् स्निग्ध धूम में नि-म्नलिखित द्रव्यों का ग्रहण है अगर, गूगल, मोथा, ग्रंथिपर्णी, शिलाजीत, जटा-मांसी, कालावाला उशीर, नेत्रवाला त्रिफ-ला, कूट, रेणुका, मुलहटी, बेलगिरी का गूदा, एलुआ, श्रीवेष्टक धूप, राल, रोहिष-तृण, मेनफल, गोपालदमनी, शल्लकी, केसर, उरद, जौ, कुन्दर, तिल, नारियल आदि का तेल, खैरसारादि का तेल, तथा मेदा मज्जा, वसा और घृत ये द्रव्य स्निग्धधूम पान में उपयोगी हैं।

मध्यम धूमपान के द्रव्य।

शमने शल्लकी लाक्षा पृथ्वीकाकमलोत्पलम्
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षरोध्रत्वचः सिता।
यष्टी मधुः सुवर्णत्वक् पद्मकं रक्तयष्टिका।
गंधाश्चागुरुतगराः

अर्थ–शमन अर्थात् मध्यम धूमपान में शल्लकी, लाख, इलायची, कमल, उत्पल,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वड, गूलर, पीपल, पाकड, लोध इनकी छाल, चीनी, मुलहटी, कचनार की छाल पद्माख, मजीठ, तथा कूठ और तगर को छोडकर सब गंध द्रव्य इस में उपयोगी होते हैं।

तीक्ष्ण धूमपान के द्रव्य।

तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा दशमूलमनोह्वालं लाक्षाश्वेताफलत्रयम्। गंधद्रव्याणि तीक्ष्णानि गणो मूर्धविरेचनः॥

अर्थ–तीक्ष्ण धूमपान में मालकांगनी, हलदी, दशमूल, मनसिल, हरताल, लाख, श्वेत किन्ही और त्रिफला, आदि गंध द्रव्य कूठ, तगर आदि तीक्ष्ण, द्रव्य और अपामार्गादि संग्रहोक्त शिरोविरेचनीय द्रव्य उपयोग में आते हैं।

धूमवर्ति का विधान।

जले स्थितामहोरात्रमिषीकां द्वादशांगुलाम् पिष्टैर्धूमौषधैरेवं पंचकृत्वः प्रलेपयेत्॥ १९॥ वर्तिरंगुष्ठवत्स्थूला यवमध्या यथा भवेत्। छायाशुष्कां विगर्भांतां स्नेहाभ्यक्तां यथायथम् धूमनेत्रार्पितां पातुमग्निप्लुष्टां प्रयोजयेत्।

अर्थ–दाभ की जड़ बारह अंगुल लंबी लाकर चौबीस घंटे तक पानी में पड़ी रक्खे पीछे धूमपान में कही हुई औषधों को पीसकर उस पर पांच वार ऐसी रीति से लेप करै कि अंगूठे के बराबर मोटी होजाय तथा बीच में मोटी रहै और दोनों सिरे पतले रहैं, पीछे इस बत्ती को छाया में सुखाकर इसके बीच में से दाभ की जड़को निकाल डालै और यथा योग्य बत्ती पर स्नेह लगाकर चिकनी करै फिर बत्ती के एक सिरे को धूम पान की नली में लगाकर दूसरे सिरे में अग्नि लगाकर धूमपान करै।

धूमपान का अन्यप्रकार।

शरावसंपुटच्छिद्रे नाडीन्यस्य दशांगुलाम् अष्टांगुलां वा वक्त्रेण कासघ्नान् धूममापिबेत्।

अर्थ–खांसी के रोगी के लिये नीचे लिखी हुई रीति से धूमपान करावै। एक सरवे (मिट्टी का पात्र) में स्नेह से चुपडा हुआ कासनाशक चूर्ण वा गोली रख कर उस के ऊपर दूसरा सर्वा रखकर मुख अच्छी तरह बन्द करदे और ऊपर वाले सर्वे में एक छिद्र करदे और इस छिद्र में बारह अंगुल वा अठारह अंगुल लंबी नली लगादे फिर इस शराव संपुट को दहकते हुए निर्धूम अंगारों में रखदे, जब इन कासनाशक औषधोंका धूंआं बाहर निकलने लगे तब पूर्वोक्त नल द्वारा मुख से इस धूंए का पान करै।

धूमपान का फल।

कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्वं पूतिर्गंधः पांडुता केशदोषः। कर्णस्रावोऽस्याक्षिनस्रावकंडूर्वर्तिर्जाड्यं तंद्रा हिध्मा धूमपं न स्पृशंति॥ २२॥

अर्थ–खांसी, श्वास, पीनस, स्वरभंग मुख की दुर्गंधि, शरीर का पांडुत्व, केशदोष, कर्णस्राव, मुखस्राव, नेत्रस्राव, खुजली जडता, तन्द्रा, और हिचकी ये सब रोग धूमपान करने से नष्ट होजाते हैं।

इति श्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां एक विंशतितमोऽध्यायः।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

अथाऽतोगंडूषादिविधिमध्यायंव्याख्यास्याम

अर्थ–अब हम यहां से गंडूषादि विधिनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गंडूष के भेद और विधि ।

"चतुष्प्रकारो गंडूषः स्निग्धः शमनशोधनौ।
रोपणश्च-
त्रयस्तत्र त्रिषु योज्यास्त्रयलादिषु ॥ १ ॥
क्षतयो व्रणवत्-
स्निग्धोऽत्र स्वाद्वम्लपटुसाधितैः ।
स्नेहैः-
संशमनस्तिक्तकषायमधुरौषधैः॥२॥
शोधनस्तिक्तकट्वम्लपटूष्णैः-
रोपणः पुनः ।
कषायतिक्तकैः-
तत्र स्नेह क्षीरं मधूदकम् ॥ ३ ॥
शुक्तं मद्यं रसो मूत्रं धान्याम्लं च यथायथम् ।
कल्कैर्युक्तं विपक्वं वा यथास्पर्शं प्रयोजयेत् ।'

अर्थ–कुल्ले करने का नाम गंडूष है, गंडूष चार प्रकार का होता है, यथा, स्निग्ध, शमन, शोधन और रोपण । इन में से पहिले तीन (स्निग्ध, शमन, शोधन) यथाक्रम वात, पित्त और कफ रोगों में दिये जाते हैं अर्थात् वात में स्निग्ध, पित्त में शमन, और कफ में शोधन उपयोगी होता है । रोपण गंडूष व्रण में काम आता है इनमें से स्निग्ध गंडूष मधुर, अम्ल और लवण रस से सिद्ध होता है । शमन गंडूष तिक्त कषाय और मधुर औषधों से, शोधन गंडूष तिक्त, कटु, अम्ल लवण और उष्णवीर्य द्रव्यों से तथा रोपण गंडूष कषाय और तिक्त औषधद्वारा सिद्ध होता है । उक्त, चारों प्रकार के गंडूषों में घृतादि स्नेह, दूध, मधूदक, शुक्त, मद्य. मांसयूष, मूत्र और धान्याम्ल यथायुक्त कल्कद्वारा मिलाकर वा पकाकर ठंडा वा गरम जैसा उपयुक्त हो काम में लावें ।

दंत हर्षादि रोगमें गंडूष ।

दन्तहर्षे दन्तचाले मुखरोगे च वातिके ।
सुखोष्णमथवा शीतं तिलकल्कोदकं हितम् ॥

अर्थ–दंतहर्ष, दंतचाल (दांतों का हिलना) तथा वातजन्य मुख रोगों में तिल के कल्क का सुहाता हुआ गरम पानी अथवा शीतल जल हितकारक है ।

सामान्य गंडूष ।

गंडूषधारणे नित्यं तैलं मांसरसोऽथवा ।

अर्थ–प्रति दिन गंडूष धारण में तेल अथवा मांसरस हितकारी होता है ।

उषादाहादिक में गंडूष ।

ऊषादाहान्विते पाके क्षते वाऽऽगंतुसंभवे ॥
विषक्षाराऽग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा

अर्थ–ऊषा और दाहयुक्त क्षतपाक में वा आगन्तु क्षत में तथा विष, क्षार और अग्निदग्ध में घृत अथवा दूध का गंडूष हितकारी होता है ।

मधुगंडूष धारण के गुण ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ७
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ।

अर्थ–शहत का गंडूष धारण करने से मुख में विशदता होती है, मुख के घाव भरजाते हैं तथा दाह और तृषा दूर हो जाते हैं ।

धान्याम्ल गंडूषके गुण ।

धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गंध्यनाशनम् ॥

अर्थ– धान्याम्ल अर्थात् कांजी के गंडूष धारण करनेसे मुखकी विरसता, मल और दुर्गंधिको दूर करताहै ।

अलवण धान्याम्ल के गुण ।

तदेवाऽलवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– बिना नमक की कांजी शीतवीर्य होताहै और मुखके स्रावको दूर करती है।

क्षारजलके गंडूष।

आशु क्षारांबुगंडूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम्।

अर्थ– क्षारमिश्रित जलके गंडूष धारण करनेसे कफका संचय शीघ्रही नष्ट होजाताहै।

मुखोष्णोदक गंडूष।

सुखोष्णोदकगंडूषैर्जायते वक्त्रलाघवम्।

अर्थ– सुहाते हुए गरम जलके गंडूष धारण करनेसे मुखमें हलकापन होताहै।

गंडूषधारण प्रकार।

निवाते सातपे स्विन्नमृदितस्कंधकंधरः॥
गंडूषमपिबन् किंचिदुन्नतास्यो विधारयेत्।

अर्थ– निर्वात स्थानमें जहां धूप चमकतीहो बैठकर स्कंध और कंधराको प्रथम स्वेदित और फिर मृदित करके थोडा मुख ऊंचा करके गंडूष धारण करै परन्तु पी न लैना चाहिये।

गंडूषधारण का प्रकार।

कफपूर्णास्यता यावत्स्रवद्घ्राणाक्षताऽथवा
असंचार्यो मुखे पूर्णे गंडूषः कवलोऽन्यथा।

अर्थ–जब तक मुख कफसे भराहोवै अथवा नाक और आंखसे स्रावहोता हो तब तक गंडूष धारण करै (क्रमशः पांच सात बार गंडूष धारण करना उचित है) द्रव पदार्थ द्वारा मुख इतनाभराहो कि मुखके भीतर का पदार्थ हिलनसके उसे गंडूष कहतेहैं और जो चलसके उसे कवल कहते हैं।

मन्यारोगादि की चिकित्सा।

मन्याशिरः कर्णमुखाक्षिरोगाः-
प्रसेककण्ठामयवक्त्रशोषाः।
हृल्लासतंद्रारुचिपीनसाश्च-
साध्या विशेषात्कवलग्रहेण॥ १२॥

अर्थ–मन्यारोग, सिररोग, कानरोग, मुखरोग, नेत्ररोग, प्रसेक, कंठरोग, मुखशोष, हृल्लास, तन्द्रा, अरुचि, पीनस, ये सब रोग विशेषकर के कवल ग्रहण से चिकित्सा के योग्य हैं।

प्रतिसारण के भेद।

कल्को रसक्रिया चूर्णस्त्रिविधं प्रतिसारणम्
युंज्यात्तत् कफरोगेषु गंडूषविहितौषधैः॥

अर्थ–प्रतिसारण तीन प्रकार का होता है, जैसे, कल्क, * रसक्रिया और चूर्ण। कफरोगों में प्रतिसारण का प्रयोग शोधन गंडूषोक्त औषधों द्वारा किया जाता है।

मुखलेपके भेद और प्रयोग।

मुखालेपस्त्रिधा दोषविषहा वर्णकृच्च सः।
उष्णो वातककफे शस्तः शेषेष्वत्यर्थशीतलः॥

अर्थ–मुखलेप तीन प्रकार का होता है एक दोषघ्न, दूसरा विषघ्न तीसरा वर्णकृत् वातकफरोग में गरम और शेष पित्त वा वात पित्त में अत्यन्त शीतल मुखलेप करना चाहिये।

मुखलेप के प्रमाणादि।

त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धांगुलोन्नतिः।
अशुष्कस्य स्थितिस्तस्य शुष्को दूषयति-
च्छविम्॥ १५॥
तमार्दयित्वाऽपनयेत्तदंतेऽभ्यंगमाचरेत्।
विवर्जयेद्दिवास्वप्नभाष्याऽन्यातपशुक्कुधः

× जल से पिसे हुए पदार्थ को कल्क मधु आदि द्रव्यों से पतले किये हुए पदार्थ को रसक्रिया और सूखे पिसे हुए पदार्थको चूर्ण कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–मुखलेप अंगुली का चौथाई, तिहाई वा आधे भाग के समान करना उचित है। यह जब तक गीला रहै तभी तक रहने दे क्योंकि सूखने पर त्वचा को दूषित कर देता है। दूर करने के समय इसे गीला करले पीछे तेल आदि लगावै। मुखलेप वाले मनुष्य को उचित है कि दिन में सोना, अधिक बोलना, अग्नि और धूपका सेवन, शोक और क्रोध इनसब का परित्याग कर देवै।

मुखलेप के अयोग्यरोग।

न योज्यः पीनसेऽजीर्णे दत्तनस्ये हनुग्रहे। अरोचके जागरिते-

अर्थ–पीनस, अजीर्ण, दत्तनस्य (जिसको नस्य दिया गया हो), हनुग्रह, अरुचि और जागरण के अंत में मुखलेप करना उचित नहीं है।

सुयोजित मुखलेप के गुण।

स च हंति सुयोजितः ॥ १७ ॥ अकालपलितव्यंगवलीतिमिरनीलिकाः।

अर्थ– विधिपूर्वक मुखलेप करने से केशों का कुसमय पकना, व्यंग, वली, तिमिर रोग और नीलिका जाते रहते हैं।

ऋतुपरता से छः लेप।

कोलमज्जावृषान्मूलं शावरं गौरसर्षपाः १८ सिंहीमूलंतिलाःकृष्णादार्वीत्वङ्निस्तुषयवाः दर्भमूलंहिमोशीरशिरीषमिशितंडुलाः १९ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारदूर्वामधुकचन्दनम्। कालीयकतिलोशीरमांसीतगरपद्मकम् २० ॥ तालीसगुंद्राबुंद्राह्वयर्णीकाशनतागुरुः। इत्यर्धार्धोदिता लेपा हेमंतादिषु षट् स्मृताः।

अर्थ–हेमन्तादि छः ऋतुओं में क्रम से आधे आधे श्लोक में कहे हुए एक एक लेप का प्रयोग करे जैसे (१) हेमन्तऋतु में बेर का गूदा, अडूसा की जड, लोध और सफेद सरसों का लेप उचित है। (२) शिशिरमें कटेरी की जड, काले तिल, दारुहलदी, दालचीनी, और निस्तुष जौ (३) वसंत में कुशा की जड, चंदन, खस, सिरस, सोंफ और चांवल। (४) ग्रीष्म में कुमुद, उत्पल, कल्हार, दूब, मुलहटी और चंदन, (५) वर्षा में कृष्णागुरु, तिल, उसीर, जटामांसी, तगर और पद्माख (६) शरद में तालीसपत्र, भद्रमुस्तक, पुंडरीक, मुलहटी, कांस तगर और अगर इन का मुखलेप करना चाहिये।

मुखालेप का फल।

मुखालेपनशीलानां दृढं भवति दर्शनम्। बन्धनं चापरिम्लानं श्लक्ष्णं तामरसोपमम्।

अर्थ–मुख लेपन करने वाले मनुष्य की दृष्टि दृढ होजाती है और उसका मुख बिकसित कमल के समान कोमल होजाता है।

सिर में तेल के चार प्रकार।

अभ्यंगसेकपिचवो बस्तिश्चेति चतुर्विधम्। मूर्धतैलम्

बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरोत्तरम् ॥ २३ ॥

अर्थ–मस्तक में चार प्रकार से तेल दिया जाताहै यथा, अभ्यंग, परिषेक, पिचु और बस्ति, ये उत्तरोत्तर अधिक गुणवाले हैं अर्थात् अभ्यंग से परिषेक, परिषेक से पिचु, पिचुसे बस्ति गुणों में अधिक हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभ्यंगादि का प्रयोग।

तत्राऽभ्यंगः प्रयोक्तव्यो रौक्ष्यकंडूमलादिषु।
अरूंषिकाशिरस्तोददाहपाकव्रणेषु तु॥ २४॥
परिषेकः पिचुः केशशातस्फुटनधूपने।
नेत्रस्तंभे च बस्तिस्तु प्रसुप्त्यर्दितजागरे २५।
नासाऽऽस्यशोषे तिमिरे शिरोरोगे च दारुणे

अर्थ—इनमें से अभ्यंग का प्रयोग मस्तक की रूक्षता, खुजली और मलादि में करना चाहिये। परिषेक का प्रयोग सिर की फुंसियां, शिरस्तोद (सुई चुभने की सी पीडा), दाह, पाक और व्रण में करना चाहिये। पिचु (रुई तेल में भिगोकर लगाना) का प्रयोग केशपात, केश की भूमिका फटना, धूंए निकलने की सी वेदना और नेत्रस्तंभ में करै तथा प्रसुप्ति, अर्दित, निद्रानाश, नासिकाशोष, तिमिररोग और दारुण शिरोरोग में वस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

शिरोवस्ति की विधि।

विधिस्तस्य निषण्णस्य पीठे जानुसमे मृदौ
शुद्धाक्तस्विन्नदेहस्य दिनांते गव्यमाहिषम्।
द्वादशांगुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं शिरः समम्॥
माकर्णबंधनस्थानं ललाटे वस्त्रवेष्टिते।
त्रैलवेणिकया बध्वा माषकल्केन लेपयेत्॥

अर्थ—दिन के अंत में वमन विरेचनादि द्वारा शुद्ध, तैलादि द्वारा अभ्यक्त, स्वेदादिद्वारा स्वेदित व्यक्ति को जानु तक ऊंचे आसन पर जिस पर कोमल बिछौने बिछे हों बैठा देवै और फिर उसके ललाट पर वस्त्र बांध देवै तथा उसके ऊपर के भाग में बारह अंगुल लंबा, मस्तक के समान चौडा गौ भैंस का चमडा कान तक बांधकर ऊपरसे वस्त्र की वेणी लपेट दे और फिर उरदों का लेप करदे।

पीछे का कर्तव्य कर्म।

ततो यथाव्याधि श्रृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत्।
ऊर्ध्वं केशभुवो याद्द्व्यंगुलम् धारयेच्च तम्॥
आवक्त्रनासिकोत्क्लेदात् दशाऽष्टौ-
चलादिषु।
मात्रासहस्राणि अरुजे त्वेकम्-
स्कंधादि मर्दयेत्॥ ३०॥
मुक्तस्नेहस्य परमं सप्ताहं तस्य सेवनम्।

अर्थ—फिर व्याधि के उपयोगी कुछ गरम पका हुआ स्नेह चर्म पद के छेद द्वारा केशभूमि के ऊपर दो अंगुल की ऊंचाई तक भरदे और जब तक मुख और नासिका द्वारा स्राव न होने लगे तब तक इस तेल को मस्तक पर धारण करै। वातज रोग में इसे दस सहस्र मात्रा काल तक, पित्तरोग में आठ सहस्र मात्रा काल तक, कफजरोग में छः सहस्र मात्रा काल तक और स्वस्थावस्थामें एक सहस्र मात्रा काल तक धारण करै। शिरोवास्तिको दूर करके कन्धों और ग्रीवादि में मर्दन करै इस शिरोवस्ति के सेवन काल की परमावधि सात दिन की है।

कर्णपूरण।

धारयेत्पूरणं कर्णे कर्णमूलं विमर्दयन्॥ ३१॥
रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदने।

अर्थ—कान में तेल भरके उस समय तक भरा रहने दे जब तक दर्द में कमी न हो और कानों की जड़ को धीरे धीरे हाथ से मर्दन करता रहे। स्वस्थावस्था में सौ मात्रा पर्यन्त कानों में स्नेह धारण करै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मात्रा का प्रमाण।

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमंडलम्॥
निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सास्मृता।

अर्थ—दाहिना हाथ जानु के चारों ओर जितनी देर में घुमाया जाता है उतना समय यदि आंख के खोलने और बन्द करने के स्वाभाविक काल के समान हो तो उस समय को मात्रा कहते हैं।

मूर्द्धतैल के गुण।

कचसदृनसितत्वपिंजरत्वं-
परिफुटनं शिरसः समीररोगान्।
जयति जनयतींद्रियप्रसादं-
स्वरहनुमूर्धबलं च मूर्धतैलम्॥ ३३॥

अर्थ—मूर्द्ध तैल बालों का गिरना, सफेद होना, पिंगलत्व, परिफुटन को दूर करता है, मस्तक के वातरोगों का नाश करता है तथा इन्द्रियों में निर्मलता, स्वरमें बल, हनुबल और मस्तकबलको उत्पन्न करता है।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

त्रयोविंशोऽध्यायः।

अथाऽत आश्च्योतनांजनविधिमध्यायं-
व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से आश्चोतन और अंजनविधि नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

नेत्ररोग में आश्चोतन।

" सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनम्-
हितम्।
रुक्तोदकंडूघर्षाश्रुदाहरोगनिबर्हणम्॥ १॥

अर्थ—संपूर्ण प्रकार के नेत्र रोगों में आश्चोतन अर्थात् परिषेक हितकारी होता है इससे आंखों का दर्द, तोद, कंडू, घर्ष (दोनों पलकों का चिपट जाना), आंसू गिरना, दाह और जलाई जाते रहते हैं।

आश्चोतन विधि।

उष्णं वाते कफे कोष्णं तच्छीतं रक्तपित्तयोः
निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम्
शुक्त्या प्रलंबया ऽन्येन पिचुवर्त्या कनीनिके।
दश द्वादश वा बिन्दून् द्वयंगुलादवसेचयेत्॥
ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः।
अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ४॥

अर्थ—यह आश्चोतन वातज नेत्ररोग में गरम, कफ में थोड़ा गरम और रक्तपित्त में शीतल दिया जाता है। इसकी विधि यह है कि रोगी को वातरहित स्थान में बैठाकर बांये हाथ से आंख खोलकर सीपी प्रलंबा वा रुई के फांये से दो अंगुल ऊंचे से आंख के तारे पर दस बारह बूंद डाल दे। तदनंतर कोमल वस्त्र से आंख पोंछकर गुनगुने पानी में चैलवर्ति को भिगोकर धीरे धीरे आंखों में स्वेदन करै। यह आश्चोतन वात कफमें किया जाता है रक्तपित्त में नहीं।

अत्युष्ण आश्चोतन के रोग।

अत्युष्णतीक्ष्णरुग्रागदहनाशयाऽक्षिसेचनम्
अतिशीतं तु कुरुते निस्तोदस्तंभवेदनाः ५॥
कषायवर्त्मतां घर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु।
विकारवृद्धिमत्यल्पं संरंभमपरिस्रुतम् ६॥

अर्थ—अत्यंत उष्ण और अत्यंत तीक्ष्ण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आश्चोतन से दर्द, ललाई और दृष्टिनाश ये रोग होते हैं। अत्यन्त शीतल आश्चोतन से नेत्रों में सुई चुभनेकी सी पीड़ा, स्तब्धता और शूल होते हैं। अतिमात्र आश्चोतन से पलकों में ललाई, पलकों का आपस में चिपट जाना, कठिनता से खुलना ये रोग होते हैं। अत्यल्प आश्चोतन से रोग की वृद्धि होती है और अपरिस्रुत अक्षिसेचन से नेत्रक्षोभ होता है।

युक्तिपूर्वक प्रयुक्त औषधका फल।

गत्वा संधिशिरोघ्राणमुखस्रोतांसि भेषजम्।
ऊर्ध्वगान्नयने न्यस्तमपवर्तयते मलान् ॥ ७ ॥

अर्थ—नेत्रों में डाली हुई औषध आंखों की संधि, मस्तक, नासिका और मुखस्रोत में गमन करके ऊर्ध्वगामी संपूर्ण मल को दूर कर देती है।

अंजन प्रयोग।

अथांऽजनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले।
पक्ष्मलिंगेऽल्पशोफातिकंडूपैच्छिल्यलक्षिते ॥
मंदघर्षाश्रुरोगेऽक्ष्णि प्रयोज्यं घनदूषिके।
आर्ते पित्तकफासृग्भिर्मारुतेन विशेषतः ९ ॥

अर्थ—आश्चोतन के पीछे अंजनका प्रयोग करना चाहिये। विरेचनादि से शुद्ध हुए रोगी के नेत्र में रोग उत्पन्न करने वाला दोष नेत्र मात्र में आश्रित हो जाताहै तथा थोडी सूजन, अधिक खुजली, पिच्छिलता, अल्पघर्ष (कुछ पलकों का चिपटना] कुछ आंसू टपकना, नेत्र के मल में गाढापन आदि जब पक्व होने के लक्षण दिखलाई देने लगें तब अंजन लगाना उचित है। पित्त, कफ, रक्त और वातपीडित रोगी के लिये अंजन लगाना विशेष हितकारी है।

अंजन के भेद।

लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा।
अंजनम् लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः १० ॥
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः स्वादुशीतैः प्रसादनम्।

अर्थ—अंजन तीन प्रकार का होताहै जैसे लेखन, * रोपण, और दृष्टिप्रसादन इन में से कषाय, अम्ल, लवण और कटु द्रव्य द्वारा लेखन, तिक्त द्रव्य द्वारा रोपण, मधुर और शीत वीर्यवाले द्रव्य द्वारा दृष्टि प्रसादन अंजन तयार किया जाता है।

अंजनकी शलाका का प्रकार।

दशांगुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ॥
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा।
अंगुली च सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥

अर्थ—अंजन लगाने के लिये दस अंगुल लंबी बीचमें पतली और दोनों सिरेपर मुकुल के आकार के सदृश सलाई होनी-चाहिवे। लेखन अंजन में तांबे की सलाई और रोपण अंजन में लोहेकी सलाई अथवा उंगली और प्रसादन अंजनमें सौनेकी अथवा रूपेकी सलाई उत्तम होती है।

अंजनकी त्रिविध कल्पना।

पिंडो रसक्रिया चूर्णस्त्रिधांजनकल्पना।
गुरौ मध्ये लघौ दोषे ताः क्रमेण प्रयोजयेत् ॥

+ जैसे शस्त्र द्वारा किसी वस्तु को काटकर अलग कर देते हैं वैसे ही अंजन द्वारा शुक्लार्मादि नेत्र रोग छीलकर अलग किये जाते हैं इस से इसे लेखनांजन कहते हैं। जिस अंजन से अभिष्यन्दादि नेत्ररोग का संरोहण होता है उसे रोपणांजन कहते हैं और जिससे दृष्टि निर्मल होकर प्रफुल्लित होजाती है उसे दृष्टिप्रसादन अंजन कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अंजन की कल्पना तीन प्रकारकी होती है, यथा, पिंडी, रसक्रिया और चूर्ण, इनमें से गुरु दोषमें पिंडी, मध्यदोषमें रसक्रिया और लघुदोषमें चूर्णका प्रयोग किया जाता है।

तीक्ष्णादि चूर्ण का प्रमाण।

हरेणुमात्रं पिंडस्य वेल्लमात्रा रसक्रिया।
तीक्ष्णस्य द्विगुणं तस्य मृदुनःचूर्णितस्य च॥
द्वे शलाके तु तीक्ष्णस्यातिस्रःस्युरितरस्य च।

अर्थ–*तीक्ष्ण वीर्यवाले द्रव्यों से बने हुए पिंड का परिमाण मटरके समान होता है। मृदुद्रव्यों से बने हुए पिंडका परिमाण दो मटरके समान और रसक्रिया का परिमाण विडंग के समान होताहै। तीक्ष्ण चूर्ण की दो सलाई और मृदु चूर्णकी तीन सलाई लगाई जाती हैं।

रात्र्यादिमें अंजन का निषेध।

निशिस्वप्नेनमध्याह्नेपानान्नोष्णगभास्तिभिः॥
अक्षिरोगाय दोषाःस्युर्वर्धितोत्क्लिष्टदुताः।
प्रातःसायंचतच्छांत्यै व्यभ्रेर्केऽतोऽजयेत्सदा

अर्थ–रात्रिके समय, नींदमें, मध्यान्ह के समय अंजन न लगाना चाहिये। तथा जब उष्ण किरणों से नेत्र म्लानहोरहे हों उस समयभी अंजन न लगावै, क्योंकि इन समयोंमें अंजन लगाने से सब दोष बढ़जाते हैं, उत्पीडित होते हैं, और गरमी के कारण पिघल कर आंखोंमें रोग उत्पन्न करते हैं। इसलिये सायंकाल और प्रातःकाल के समय सूर्य के बादलसे रहित होनेपर जब गरमी की अधिकता नहो नेत्ररोगों की शांति के लिये अंजन लगावै।

अन्यआचार्यों का मत।

यदंत्यन्ये तु न दिवा प्रयोज्यं तीक्ष्णमंजनम्।
विरेकदुर्बलं चक्षुरादित्यं प्राप्य सीदति॥
स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सौम्यत्वेन च तर्पिता।
शीतसात्म्या दृगाग्नेयी स्थिरतां लभते पुनः॥

अर्थ–अन्य आचार्यों का यह मत है कि दिनमें तीक्ष्ण अंजन न लगाना चाहिये। क्योंकि तीक्ष्ण अंजनसे आंसू निकलने के कारण नेत्र सूर्यकी किरणमें शिथिल होजाते है इसलिये रात्रिमें अंजन लगाना चाहिये। क्योंकि तीक्ष्ण अंजन से नेत्रों के क्षोभित होने पर भी सौम्यता और निद्रावस्था के कारण आग्नेयी और शीतसात्म्य दृष्टि फिर तर्पित हो जाती है और पुनर्वार स्थिरताको प्राप्त कर लेती है।

अन्यमत में दूषण।

अत्युद्रिक्ते बलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे।
काममह्नयपि नात्युष्णेतीक्ष्णमक्ष्णिप्रयोजयेत्

अर्थ–अति उत्कृष्ट कफरोग में अथवा लेखन के योग्य शुक्रार्मादि रोगों में अत्यन्त गरम दिन में अंजन न लगावै। क्योंकि काल की गरमी और अंजन की तीक्ष्णता का अतियोग होने के कारण दृष्टि का नाश होजाता है।

× अन्य ग्रन्थों में लिखा है कि लेखनांजन तांवे, वा कांसी इन में से किसी में रोपणांजन सुवर्ण, वट वा शंख, प्रसादनांजन स्फटिक, पाकड़, वा चंदन इन में से किसी में रक्खे। इस तरह अंजन में कोई अवगुण नहीं होने पाते हैं। बत्ती घिसनेकी शिला पांच अंगुल लंबी तीन अंगुल चौडी बीच में कुछ नीची होनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस में दृष्टांत।

अश्मनो जन्म लोहस्य तत एव च तीक्ष्णता।
उपघातोऽपि तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः २०

अर्थ–जैसे पाषाण से लोह की उत्पत्ति होती है और उसी तरह पत्थर पर घिसने से लोहे में तीक्ष्णता होती है और उसी पाषाण की अधिक चोट से वही तीक्ष्णता मारी भी जाती है। वैसे ही तेजः पदार्थ द्वारा नेत्र का जन्म है और तेज पदार्थ के सम्यक् योग से नेत्र में तीक्ष्णता अर्थात् देखने की शक्ति बढजाती है और अतियोग होने से दृष्टि का नाश होजाता है, इसलिये दिन की गरमी के कारण दिन के समय अत्यन्त तीक्ष्ण आग्नेय द्रव्यों से बना हुआ अंजन न लगावै।

रात्रि में तीक्ष्णांजन का निषेध।

न रात्रावपि शीतेति नेत्रे तीक्ष्णांजनं हितम्।
दोषमस्रावयत्स्तंभकंडूजाड्यादिकारि तत्।

अर्थ–रात्रि के समय भी कफ की अधिकता के कारण नेत्र बहुत शीतल अर्थात् कंडू और पिच्छिलता आदि कफ के लक्षणों से युक्त होजाते है इसलिये उस समय भी तीक्ष्ण अंजन लगाना उचित नहीं है क्योंकि रात्रिकाल की सौम्यता के कारण लगाया हुआ तीक्ष्ण अंजन दोषों को अच्छी तरह नहीं निकाल सक्ता है और नेत्रों में स्तब्धता, कंडू और जाड्यादि रोगों को पैदा कर देता है।

अंजनके अयोग्य व्यक्ति।

नांजये द्भीतवमितविरिक्ताऽशितक्षेगिते।
क्षुद्भज्वरिततांताक्षि शिरोरुक्शोक जागरे।
भद्दष्टेऽर्के शिरः स्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः।
अजीर्णेऽग्न्यर्कसंतप्ते दिवा सुप्ते पिपासिते।

अर्थ–भयभीत, वमित, विरिक्त, सद्योभुक्त (तत्काल भोजन के पीछे), मलमूत्रादि के वेग से पीडित, क्रुद्ध, ज्वरपीडित, ग्लाननेत्र (बहुत छोटे वा बहुत उजले पदार्थों के देखने से जिसकी दृष्टि कम पड गई हो) शिरोरोगग्रस्त, शोकार्त, रात्रिजागरण करनेवाला, सिर समेत स्नान करनेवाला, धूमपायी, मद्यपायी, अजीर्ण, अग्नि और सूर्य से तपा हुआ, दिन में सोया हुआ और प्यासा ये सब अंजन के योग्य नहीं हैं। तथा जिस दिन बादल हो रहे हों उस दिन भी अंजन न लगावै।

न लगाने योग्य अंजन।

अतितीक्ष्णमृदुस्तोकबहुच्छघन कर्कशम्।
अत्यर्थशीतलं तप्तमंजनं नावचारयेत्॥२४

अर्थ–अति तीक्ष्ण, अति अल्प, अतिमृदु, अति अधिक, अति तरल, अति घन, अतिकर्कश, अति शीतल और अति तप्त अंजन न लगाना चाहिये।

अंजन के पीछे का कर्तव्य।

अथाऽनुन्मीलयन् दृष्टिमंतः संचारयेच्छनैः।
अंजिते वर्त्मनी किंचिच्चालयेच्चैवमंजनम्।
तीक्ष्णंव्याप्नोति सहसा नोन्मेषनिमेषणम्।
निष्पीडनं च वर्त्मभ्यां क्षालनं वा समाचरेत्।

अर्थ–नेत्रमें अंजन लगानेके पीछे दृष्टि गोलकको न खोलकर धीरे धीरे नेत्रों के पलकों को उठाकर नेत्रके भीतर अंजनको धीरे धीरे संचालितकरै ऐसाकरनेसे तीक्ष्ण अंजन सब नेत्रमें व्याप्त होजाता है। इस कामके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विधिका उल्लंघन करके शीघ्रता न करै। पलकों का खोलना, बन्दकरना, वर्त्मद्वारा पीडन करना वा क्षालन करना उचित नहींहै

क्षालन विधि।

अपेतौषधसंरंभं निर्वृतं नयनं यदा।
व्याधि दोषर्तुयोग्याभिरद्भिःप्रक्षालयेत्तदा ॥

अर्थ–औषधका क्षोभ दूर होनेपर जब नेत्र व्याधिकी यंत्रणा से रहित होजांय तब अभिष्यन्दादि व्याधि, वातादि दोष और वसंतादि ऋतु के योग्य तयार किये हुए जल से नेत्रोंका प्रक्षालन करै।

शोधन प्रकार।

दक्षणांगुष्ठकेनाऽक्षि ततो वामं सवाससा।
ऊर्ध्ववर्त्मानि संगृह्य शोध्यं धामेन चेतरत् ॥
वर्त्मप्रांजनाहार्यो रोगान्कुर्यादतोऽन्यथा।

अर्थ–नेत्रों को धोनेके पीछे दाहिने हाथके अंगूठे पर कपडा लपेटकर रोगी के बांये नेत्रको ऊंचाकरके पोंछ डालै, इसीतरह बांये हाथ के अंगूठे पर कपडा लपेटकर दाहिनी आंखको पोंछडाले। न पोंछने से अंजन वर्त्म में जाकर दोष और खुजली आदि रोगों को करता है।

कंडू आदिमें तीक्ष्ण अंजन।

कंडूजाड्येऽजनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत् पुनः।
तीक्ष्णांजनाऽभितप्तेतु पूर्णं प्रत्यंजनं ×हितम् ॥

अर्थ–अच्छी तरह साफ न होने पर नेत्रों में कंडू और जडताहो तो तीक्ष्ण अंजन वा तीक्ष्ण धूमका प्रयोग करै। तीक्ष्ण अंजन लगाने से नेत्रोंके अभितप्त होनेपर पूर्ण प्रत्यंजनको लगाना हित कारकहै।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः।

+ नेत्रों के अभितप्त होने पर मधुर और शीतल द्रव्य का जो बहुत बारीक पिसा हुआ अंजन लगाया जाता है उसे प्रत्यंजन कहते हैं।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।

अथाऽतस्तर्पणपुटपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से तर्पण पुटपाक विधि नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

तर्पण की योजना।

"नयनेताम्यतिस्तब्धेशुष्केरूक्षेऽभिघातिते
वातपित्तातुरे जिह्मे शीर्णपक्ष्माविलेक्षणे १॥
कृच्छ्रोन्मीलिशिराहर्षशिरोत्पाततमोऽर्जुनैः।
स्यंदमंथान्यतोवातबातपर्यायशुक्रकैः ॥२॥
आतुरे शांतरागाश्रुशूलसंरंभदूषिके।
निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मृद्धिकाययोः २॥
काले साधारणे प्रातः सायं चोत्तानशायिनः।

अर्थ–नेत्रों के म्लानयुक्त, स्तब्ध, शुष्क, रूक्ष, अभिहत (चोटलगना) वातपित्त से पीडित, कुटिल, शीर्णपक्ष्म (पलकोंका गलकर गिरना,) और धुंधली दृष्टि होने पर, कठिनता से आखों के खुलने पर, शिराहर्ष, शिरोत्पात, तम, अर्जुन, अभिष्यन्द, मन्थ, अन्यतोवात, वातपर्य्याय, और शुक्ररोग से पीडित होने पर तथा ललाई, पानी पडना, शूल, रोग का वेग, और दूषिक के शांत होने पर रोगी को वातरहित स्थानमें चित्त शयन करावै तथा वमन, विरेचन और नस्य द्वारा मूर्द्धा और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देह को शुद्ध करके वसंतादि साधारण काल में प्रातःकाल और सायंकाल में तर्पण क्रिया करै।

नेत्रमें घृत डालना।

यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोशाद्बहिः समाम्॥
द्व्यंगुलोर्ध्वां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत्।
सर्पिर्निर्मीलिते नेत्रे तप्तांबुप्रविलापितम्॥

अर्थ—नेत्र कोष के बाहर बाहर चारों ओर जौ और उरद के आटे की बनी हुई एक ऐसी बांधनी बांधे जो ऊंची हो न नीची हो, और दो अंगुल ऊंची हो। फिर दोषदूष्यादि का बिचार करके यथा योग्य औषधों द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत और गरम जल से पिघला हुआ आंखों को बन्द काके उन के ऊपर डाले।

रात्र्यंधमें कर्तव्यादि कर्म।

नक्तांध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिकेवसाम्।
आपक्ष्माग्रात्-
अथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः॥ ६॥
मात्रां विगणयेत्तत्र वर्त्मसंधिसितासिते।
द्वौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पंच च
शतानि सप्त चाऽष्टौ च दश मंथे दशाऽनिले
पित्ते पट् स्वस्थवृत्ते च बलासे पंच धारयेत्

अर्थ—रात्र्यंध अर्थात् रतौंध, वातजन्य तिमिर और कृच्छ्रबोधादि नेत्र रोगों में पूर्वोक्त रीति से नेत्र के चारों ओर मेंढ़नी बनाकर गरम जल द्वारा पिघली हुई चर्बी बन्द नेत्रों के ऊपर पक्ष्म के अग्रभाग तक डाले। फिर धीरे धीरे नेत्रों को खोलते हुए पूर्वोक्त मात्रा की गणना करै। वर्त्मगत, संधिगत, शुक्लगत, कृष्णगत और दृष्टिगत नेत्ररोगमें क्रमसे सौ, तीनसौ, पांचसौ, सातसौ आठसौ मात्रा तक नेत्र में डाली हुई औषध को धारण करै। तथा मंथरोग में एक हजार, पित्तरोग में छः सौ, स्वस्थावस्था में छः सौ और कफरोग में पांच सौ मात्रा * तक धारण करै।

अपांगदेशमें द्वारकरणादि।

कृत्वाऽपांगे ततो द्वारं स्नेहं पात्रे तु गालयेत्।
पिबेच्च धूमं नेक्षेत व्योम रूपं च भास्वरम्॥

अर्थ—मात्रा धारण के पीछे पाली के अपांग में छेद करके डाले हुए स्नेहको एक पात्र में लेलेवै, पीछे धूमपान करै, तथा आकाश, सूर्य, आतप आदिचमकीले पदार्थों को न देखै।

वातादिरोग में प्रतिदिन तर्पण।

इत्थं प्रतिदिनं वायौ पित्ते त्वेकांतरं कफे।
स्वस्थे च द्व्यंतरं दद्यादातृप्तोरिति योजयेत्॥

अर्थ—इस तरह वातरोग में प्रतिदिन पित्तरोग में एक दिन बीच में देकर तथा कफरोग और स्वस्थावस्था में दो दिन का अंतर देकर तर्पण करै।

तर्पण के लक्षण।

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम्।
तृप्ते विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः॥

अर्थ—नेत्रों के अच्छी तरह तृप्त होने पर चमकीले पदार्थों के देखने की शक्ति बढ जाती है, स्वास्थ्य, विशदता, और हलकापन पैदा हो जाता है। अच्छी तरह तृप्त न होने पर इन के विपरीत लक्षण होते है तथा अतितृप्त होने पर खुजली और क-

* नेत्र के स्वाभाविक खोलने मूंदने में जितना काल लगता है अथवा निरंतर जानु के चारों ओर हाथ फेरने में जितना काल लगता है उसे मात्रा कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फजनित पिच्छिलतादि सब प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

पुटपाकका विधान।

स्नेहपीता तनुरिव क्लांता दृष्टिर्हि सीदति।
तर्पणानंतरं तस्माद्बलाधानकारिणम् ॥
पुटपाकं प्रयुंजीत पूर्वोक्तेष्वेव यक्ष्मसु।

अर्थ-घृतादि स्नेह द्वारा जैसे देह क्लान्त हो जाती है वैसेही स्नेह पानकी हुई दृष्टि भी शिथिल हो जाती है। इस लिये तर्पण के पीछे तर्पणजन्यरोगों में दृष्टि में बल पहुंचाने के निमित्त पुटपाक का प्रयोग करना चाहिये।

वातादि में स्नेहनादि पुटपाक।

स वाते स्नेहनः श्लेष्मसहिते लेखनो हितः ॥
दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः।

अर्थ-वातमें स्नेहनपुटपाक, कफयुक्त वात में लेखनपुटपाक हितकारी है, तथा दृष्टि की दुर्बलतामें, वातपित्तमें, रक्तमें और स्वस्थावस्थामें प्रसादन पुटपाक हितकारी है।

स्नेहनपुटपाक की कल्पना।

भूशयप्रसहानूपमेदोमज्जावसामिषैः ॥१४॥
स्नेहनं पयसा पिष्टैर्जीवनीयैश्च कल्पयेत्।

अर्थ-भेकगोधादि बिलेशय, गोगर्दभादि प्रसह, महामृग जलचरादि आनूप, इनका मेद, वसा, मज्जा और मांस तथा जीवंती काकोल्यादि जीवनीय गण में से किसी द्रव्य को दूध के साथ पीसकर स्नेहन पुटपाक बनावै।

लेखनपुटपाक की कल्पना।

मृगपक्षियकृन्मांसमुक्तायस्ताम्रसैंधवैः १५।
स्रोतोजशंखफेनालैर्लेखनं मस्तुकाल्पितैः।

अर्थ-मृग और पक्षियों का यकृत वा मांस, तथा मोती, लोहाँ, तांबा, वा सेंधा नमक इनके द्वारा पीसकर लेखनपुटपाक बनावै, यहां जांगल मृगपक्षियों का ग्रहण है।

प्रसादनपुटपाक की कल्पना।

मृगपक्षियकृन्मज्जावसांऽत्रहृदयामिषैः १६।
मधुरैः सघृतैः स्तन्यक्षीरपिष्टैः प्रसादनम्।

अर्थ-मृग और पक्षियों का यकृत, मज्जा वसा, अंत्र, हृदय वा मांस घृत और मधुर वर्गोक्त द्रव्यों के साथ स्तन्यदुग्ध द्वारा पीसकर प्रसादन पुटपाक बनावै।

पुटपाक की कल्पना।

बिल्वमात्रं पृथक्पिंडं मांसभेषजकल्कयोः ॥
उरुबूकवटांऽभोजपत्रैः स्नेहादिषु क्रमात्।
वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः ॥ १८
पचेत्प्रदीप्तैरग्न्याभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम्।
नेत्रे तर्पणवद्युंज्यात्-
शतं द्वे त्रीणि धारयेत् ॥ १९ ॥
लेखनस्नेहनांत्येषु-
पूर्वो कोष्णो हिमोऽपरः।

अर्थ-मांस और औषधका कल्क प्रत्येक बिल्वफल के समान अर्थात् आठ आठ तोला लेकर पीसकर गोलां बनालेवै। और इस गोले को स्नेहनपुटपाकमें अरंड के पत्तों से, लेखन पुटपाक में बड़ के पत्तों से और प्रसादन पुटपाक में कमल के पत्तों से लपेट देवै फिर इसके ऊपर चारों ओर दो दो अंगुल ऊंची मृत्तिका का लेपन करदे और सुखाले (कोई कोई काली मृत्तिकाके लेपका विधान करते हैं) फिर इस मृत्तिका सहित गोले को स्नेहनपुटपाक में धौ की लकडी में, लेखनपुटपाक में धामनकी लकडी में और प्रसादनपुटपाक में गोबर के उपलों की आगमें रखदे। जब ये गोला अग्निके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समान लालरंग का होजाय तब इसे निकाल कर इसके पत्ते और मृत्तिका हटाकर यंत्र द्वारा इसका रस निकाललेे । इस रसका तर्पण की तरह नेत्र में प्रयोग करै । तथा इसे स्नेहनपुटपाक में सौ मात्रा तक, लेखन पुटपाक में दो सौ मात्रा तक, और प्रसादन पुटपाक में तीनसौ मात्रा तक, धारण करै स्नेहन और लेखन में कुछ गरम और प्रसादन में ठंडा रस प्रयोग कियाजाताहै ।

पाकान्त में कर्त्तव्यतादि ।

धूमपोऽते तयोरेव-

योगास्तत्र च तृप्तिवत् ॥ २० ॥

तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हे न योजयेत् ।
यावंत्यहानि युंजीत द्विस्ततो हितभाग्भवेत्
मालतीमल्लिकापुष्पैर्बद्धाक्षो निवसेन्निशि ॥

अर्थ–स्नेहन और लेखन पुटपाक के अन्त में स्नेहोक्त कफकी शान्ति के लिये धूमपान करै (प्रसादन के अंतमें न करै) जिसतरह तर्पण में सम्यक् योग, हीनयोग और अतियोग के लक्षण होते हैं वैसेही पुटपाकमें भी होतेहैं। नस्यके अयोग्य मनुष्यको तर्पण और पुटपाक भी न देना चाहिये। जब तक तर्पण और पुटपाक का व्यवहार किया जाय तबतक तथा उससे भी दूने समयतक हिताहार विहार का सेवन करना उचित है तथा रात्रि में आंखों के ऊपर मालती और मल्लिका के फूल बांधकर सोना चाहिये ।

अंजनादि के प्रयोगकी आवश्यकता ।

सर्वात्मना नेत्रबलाय यत्नं-
कुर्वीत नस्यांजनतर्पणाद्यैः ।
दृष्टिश्च नष्टा विविधं जगच्च-
तमोमयं जायत एकरूपम् ॥ २२ ॥

अर्थ–नेत्र में बल पहुंचाने के निमित्त नस्य, अंजन, तर्पण, पुटपाकादि द्वारा सब प्रकार से यत्न करना चाहिये । क्योंकि दृष्टि नष्ट होने से अनेक प्रकार के पदार्थों से भरा हुआ जगत केवल एक मात्र अंधकार रूप धारण कर लेता है ।

इति श्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतो यंत्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां से यंत्रविधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

यंत्रों का स्पष्ट विवरण ।

'नानाविधानांशल्यानांनानादेशप्रवाधिनाम्
आहर्तुमभ्युपायो यस्तद्यंत्रं यच्च दर्शने १ ॥
अर्शोभगंदरादीनां शस्त्रक्षाराऽग्नियोजने ।
क्षेपांगपरिरक्षार्थं तथा वस्त्यादिकर्मणि ॥
घटिकालाबुशृंगं च जांबवोष्ठादिकानि च ।

अर्थ–अनेक प्रकार के शल्य कांटा, पत्थर, बांस आदि जो शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में घुसजाते हैं उनको खींचकर निकालने के लिये यथा उनको देखने के लिये जो उपाय है वह यंत्र कहलाता है । तथा अर्श, भगंदर, नाडी व्रणादि में शस्त्र, क्षार और अग्निकर्मादि के प्रयोग करने पर उनके पास वाले अंगों की रक्षा करने के निमित्त तथा वस्ति और नस्यादि कर्म के निमित्त जो उपाय किये जाते हैं वे यंत्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहलाते हैं तथा घटिका अलाबु, शृंग, (सींगी), जांबवोष्ठआदि को भी यंत्र कहते हैं।

पशुओं के रूप और कार्य।

अनेककरपकार्याणि यंत्राणि विविधान्यतः ३।
विकल्प्य कल्पयेद्बुद्धया-
यथास्थूलं तु वक्ष्यते ।

अर्थ—यंत्रों की सूरत और उनके कार्य अनेक प्रकार के हैं, इसलिये अपनी बुद्धि से विचार विचार कर जैसा काम पडे उसी के अनुसार यंत्र निर्माण करें। इसजगह हम स्थूल स्थूल यंत्रों का वर्णन करते हैं। समझदार वैद्य इनके नमूने के अनुसार अन्यान्य यंत्रों को भी बना सकता है।

स्वास्तिक यंत्र।

तुल्यानि कंकसिंहर्क्षकाकादिमृगपक्षिणाम् ॥
मुखैर्मुखानि यंत्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च ।
अष्टादशांगुलायामान्यायसानि च भूरिशः ॥
मसूराकारपर्यंतैः कण्ठे बद्धानि कीलकैः ।
विद्यात्स्वस्तिकयंत्राणि मूलेऽकुशनतानि च
तैर्दृढैरस्थिसंलग्नशल्याहरणमिष्यते ।

अर्थ—यंत्रों के मुख कंक, सिंह, उलूक काकादि पशुपक्षियों के मुखके सदृश बनाये जाते हैं तथा इन यंत्रों के नाम भी आकृति के अनुसार ही रक्खे जाते हैं, जैसे कंकमुख यंत्र, सिंहास्य यंत्र आदि। इनकी लंबाई प्रायः अठारह अंगुल की होती है और बहुत करके ये लोहे के बनाये जाते हैं (कहीं कहीं हाथी दांत के भी देखे जाते हैं) इन के कंठ में मसूर की दाल के आकारवाली लोहे की कील जड़ी जाती है। इस के पकडने का स्थान अंकुश की समान टेढा

कंक मुख।

सिंहास्य।

ऋक्षमुख।

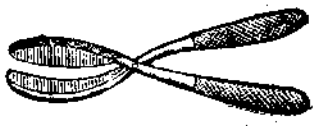

काकमुख।

तरक्षु मुख।

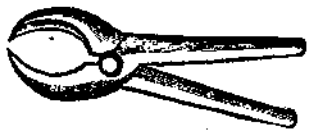

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होता है इन्हें स्वस्तिक * यंत्र कहते हैं। इनके द्वारा अस्थिमें लगे हुए शल्य निकाले जाते हैं।

संदंश यंत्र।

कीलबद्धविमुक्ताग्रौ संदंशौ षोडशांगुलौ ७॥
त्वक्शिरास्नायुपिशितलग्नशल्यापकर्षणौ।
षडंगुलोऽन्यो हरणे सूक्ष्मशल्योपपक्ष्मणाम्॥

अर्थ-संदंश यंत्र सोलह अंगुल लंबे होते हैं, ये दो प्रकार के होते हैं एक तो ऐसे होते हैं जिनके अग्रभाग में कील लगी होती है, दूसरी तरह के मुक्ताग्र अर्थात् खुलेहुए मुखवाले होते हैं। इस संदंश शब्द का अपभ्रंश संडासी मालूम होता है। संदंश यंत्रों द्वारा त्वचा, शिरा, स्नायु, और मांस में घुसा हुआ शल्य निकाला जाता है। दूसरी प्रकारका संदंश छःअंगुल लंबा होताहै

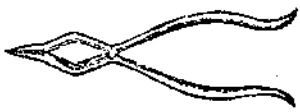

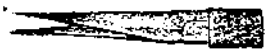

इसको चिमटी कहना बहुत संभवमालूम होता है और यही मुक्ताग्र है, यह छोटे छोटे शल्य और नाकके बाल, और आंखके पलकों के परवाल खींचने क काम में आता है।

मुचुंडीयंत्र तालयंत्र।

मुचुंडीसूक्ष्मदंतर्जुर्मूले रुचकभूषणा।
गंभीरव्रणमांसानामर्मणः शोषितस्य च ९॥
द्वे द्वादशांगुले मत्स्यतालवद् द्व्येकतालके।
तालयंत्रे स्मृते कर्णनाडीशल्यापहारिणी॥

अर्थ-मुचुंडी नाम एक प्रकार का यंत्र होता है, इस में छोटे छोटे दांत होते हैं। सीधा होता है और पकड़ने की जगह पर अंगुलीयक रूप होता है। यह गहरे घावों में मांस तथा बचेहुए अर्मको निकालने में काम आता है।

तालयंत्र दो प्रकार का होता है, एक द्वितालक, जिस के दोनों ओर मछली के ताल के सदृश और एकतालक इसके एक ओर मछलीके तालके आकार का होता है। इसकी लंबाई बारह अंगुल की होती है। यह यंत्र कान, नाक और नाडीव्रण से शल्यों के निकालने में काम आता है।

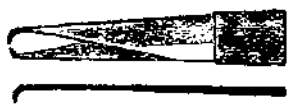

नाडीयंत्र।

नाडीयंत्राणि शुषिराण्येकानेकमुखानि च।
स्रोतोगतानां शल्यानामामयानां च दर्शने॥

+ देशी जर्राहों को सथिया भी कहते हैं, मालूम होता है कि स्वस्तिक नामक यंत्रों की विद्या में कुशल होने से इनका नाम स्वस्तिक वेत्ता अर्थात् सथिया पड गया है ये अपने लिये कायस्थ कहते हैं। इनके मथुरा में बहुत घर हैं और प्रायः जर्राही करते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रियाणां सुकरत्वाय कुर्यादाचूषणाय च ।
तद्विस्तारपरीणाहदैर्घ्ये स्रोतोनुरोधतः १२

अर्थ—वस्ति नेत्र के सदृश नाडी यंत्र सछिद्र होते हैं, इन में प्रयोजनानुसार एक वा अनेक मुख होते हैं। ये कंठादि स्रोतों में प्रविष्ट हुए शल्यों के निकालने तथा उन्हीं स्थानों में होने वाले रोगों के देखने में काम आते हैं। तथा शस्त्रकर्म, क्षारकर्म और अग्निकर्म किये हुए स्थानों की औषधि को प्रक्षालन के निमित्त सुगमता करते हैं तथा विषदग्ध अंगों का विष चूसने में उपयोगी होते हैं। इन नाडीयंत्रों की लंबाई, चौडाई मोटाई, शरीर के स्रोतों के अनुसार कल्पना की जाती है।

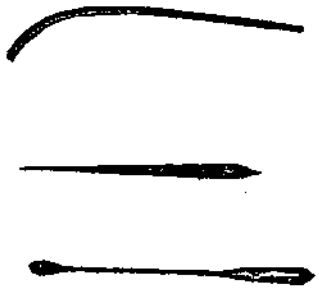

अन्यनाडीयंत्र ।

दशांगुलार्धनाहांतः कण्ठशल्यावलोकने ।
नाडी पंचमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य संग्रहे ॥
वारंगस्य द्विवर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः ।

अर्थ—कंठ के भीतर लगे हुए शल्य को देखने के निमित्त दस अंगुल लंबा और पांच पांच अंगुल परिधिवाला नाडीयंत्र उपयोगी होता है।

चार कर्णयुक्त वारंग के संग्रहार्थ पंचमुखछिद्रा और दो कर्ण से युक्त वारंग के समूहार्थ त्रिमुखछिद्रा नाडी यंत्र उपयोगी होता है। वारंग के प्रमाण के अनुसार नाडी यंत्रका प्रमाण होताहै। शरादि दंडके प्रवेश योग्य शिखाके आकार के सदृश कीलक को वारंग कहते हैं।

शल्यनिर्घातनी नाडी ।

पद्मकर्णिकया मूर्ध्नि सदृशी द्वादशांगुला ॥
चतुर्थसुषिरा नाडी शल्यनिर्घातिनी मता ।

अर्थ—सिरसे ऊपरवाले भागमें जिनका आकार कमल की कर्णिका के समानहै और बारह अंगुल लंबी और तीन अंगुल के छिद्रवाली नाडी शल्यनिर्घातनी कहलातीहै।

शल्यदर्शनार्थ अन्यनाडी ।

वारंगकर्णसंस्थानाऽऽनाहदैर्घ्यानुरोधतः ॥
नाडीरेवंविधाश्चाऽन्याद्दृष्टुंशल्यानिकारयेत्

अर्थ—वारंगकर्ण के संस्थान, आनाह और लंबाई के अनुरोध से और और नाडी यंत्र भी शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए शल्योंके देखने के लिये बनवाने चाहिये।

अर्शोयंत्राणि ।

अर्शसां गोस्तनाकारं यंत्रकं चतुरंगुलम् १६॥
नाहे पंचांगुलं पुंसां प्रमदानां षडंगुलम् ।
द्विच्छिद्रं दर्शने व्याधेरेकच्छिद्रं तु कर्मणि ॥
मध्येऽस्य त्र्यंगुलं छिद्रमंगुष्ठोदरविस्तृतम् ।
अर्धांगुलोच्छ्रितोवृत्तकर्णिकं तु तदूर्ध्वतः ॥
शम्याख्यं तादृगच्छिद्रं यंत्रमर्शःप्रपाडनम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अर्शोयंत्र (बवासीर का यंत्र) गौ के स्तनों के सदृश चार अंगुल लंबा और पांच अंगुल गोलाई में होता है, स्त्रियों के लिये इसी यंत्र की गोलाई छः अंगुलकी होती है क्योंकि उनकी गुदा स्वाभाविक ही बडी होती है। व्याधिके देखने के लिये दोनों ओर दो छिद्रवाला यंत्र होता है तथा शस्त्र और क्षारादि प्रयोग के निमित्त एक छिद्रवाला यंत्र होता है। इस यंत्रके बीच में तीन अंगुल का और परिधि अंगूठे के समान होती है। इस यंत्रके ऊपर आधे अंगुल ऊंची एक कर्णिका होती है. जिससे यंत्र बहुत गहराई में नहीं जा सकता है।

अर्शके पीडनके निमित्त एक और प्रकार का यंत्र होता है उसे शमी कहते हैं यह भी ऐसा ही होता है, इसमें छिद्र नहीं होते हैं।

भगंदर यंत्र।

सर्वथाऽपनयेदोषं छिद्रावूर्ध्वं भगंदरे ॥१९॥

अर्थ–भगंदर यंत्रभी अर्शोयंत्रके सदृश होता है। इसकी कार्णिका छिद्रसे ऊपर दूर करदी जातीहै कोई कोई कहते हैं कि कर्णिकाहीन अर्शोयंत्रको ही भगंदर यंत्र कहते हैं।

अर्शोयंत्र।

शमीयंत्र।

नासायंत्र।

घ्राणार्बुदार्शसामेकच्छिद्रा नाडयंगुलद्वया।
प्रदेशिनीपरीणाहा स्याद्भगंदरयंत्रवत् २०॥

अर्थ–नासिका के अर्बुद और अर्शकी चिकित्सा के निमित्त नासायंत्र उपयोग में आताहै। इसमें एक छिद्र होता है। छिद्र की लंबाई दो अंगुल और परिधि तर्जनी अंगली के समान होती है। नासायंत्र भगंदर यंत्रके तुल्य होता है।

अंगुलित्राणक यंत्र।

अंगुलित्राणकं दांते वाक्षे वा चतुरंगुलम्।
द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तद्वक्त्रविवृतौसुखम्

अर्थ–अंगुलित्राणक यंत्र हाथीदांत वा काष्ठ का बनाया जाता है, इसका प्रमाण चार अंगुल होता है। यह अर्शयंत्र के सदृश गौके स्तनके आकार वाला दो छिद्रों से युक्त होताहै, इससे मुख सहजमें खुल जाता है। इस यंत्रसे अंगुलियों की रक्षा दांतों से होजाती है। इसी से इसका नाम अंगुलित्राणक है।

योनिव्रणेक्षण यंत्र।

योनिव्रणेक्षणं मध्ये सुषिरं षोडशांगुलम्।
मुद्राबद्धं चतुर्भित्तमंभोजमुकुलाननम् २२॥
चतुः शलाकमाक्रांतं मूले तद्बिलसेन्मुखे।

अर्थ–यह यंत्र योनिके व्रणों के देखनेमें काम आताहै, इस से इसे योनिव्रणेक्षण यं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्र कहते है। इस यंत्र के मध्यभागमें छिद्र होते हैं, इसकी लंबाई सोलह अंगुल होती है तथा मुद्रिका से बद्ध होता है, इसमें चार पत्ते होते हैं इसका आकार कमलके मुकुल के सदृश होता है, इन चारों को मिलादेने से यह नाडी यंत्र के तुल्य होजाताहै। मूल देशमें चतुर्थ शलाका के लगाने से यंत्रका अग्रभाग खुल जाता है।

षडंगुल यंत्र।

यंत्रे नाडीव्रणाभ्यंगक्षालनाय षडंगुले २३॥
बस्तियंत्राकृती मूले मुखेऽगुष्ठकलायवे।
अग्रतोऽकर्णिके मूले निबद्धमृदुचर्मणी २४॥

अर्थ--नाडी व्रण के अभ्यंग और धोने के लिये छः अंगुल लंबा तथा वस्तियंत्र के सदृश गोल गौकी पूंछके आकार वाला दो प्रकार का यंत्र काममें लाया जाता है। इस के मूलभागमें अंगूठे के तुल्य और मुख भाग में मटर के तुल्य छेद होता है, इस के मूल में कोमल चमडे की पट्टी लगी होती है। बस्ति यंत्र में और इस में इतना ही अंतर है कि वस्ति के अग्रभाग में कर्णिका होती है। इस में नहीं होती॥

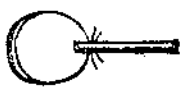

उदकोदर में नालिका यंत्र।

द्विद्वारा नालिका पिच्छनालिका वोदकोदरे।

अर्थ--दकोदर में से जल निकालने के लिये दो मुखवाली नली का वा मोर की पूंछ का नाल काम में लाया जाता है। इस का नाम दकोदर यंत्र है।

धूमादि यंत्र।

धूमबस्त्यादियंत्राणि निर्दिष्टानि यथायथम्॥

अर्थ--धूमयंत्र और वस्ति यंत्रों का वर्णन अपने अपने प्रकरण में है।

शृंगीयंत्र।

त्र्यंगुलास्यं भवेच्छृंगं चूषणेऽष्टादशांगुलम्।
अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनखं चूचुकाकृति॥

अर्थ--तीन अंगुल के मुखवाला यह शृंगी यंत्र दूषित वात, विष, रक्त, जल, बिगडा हुआ दूध आदिके खींचने में काम आता है इस की लंबाई अठारह अंगुल की होती है इसके अग्रभाग में सरसों के समान छेद होता है। इसका अग्रभाग स्त्री के स्तनों के अग्रभाग के सदृश होता है।

तुंबीयंत्र।

स्याद्द्वादशांगुलोऽलाबुर्नाहे त्वष्टादशांगुलः।
चतुरस्रंयंगुलवृत्तास्योदरीसोऽतः श्लेष्मरक्तहृत्

अर्थ--तुंबी यंत्र १२ अंगुल मोटा होता है, इसका मुख गोलाकार तीन वा चार अंगुल चौडा होता है। इस के बीच में जलती हुई बत्ती रखकर रोग की जगह लगा देने से दूषित श्लेष्मा और रक्त खिंच आता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घंटीयंत्र ।

तद्वद् घटी हिता गुल्मावलियोन्नमने च सा

अर्थ--यह घटी यंत्र गुल्म के घटाने बढाने में काम आता है । अलाबु यंत्र के सदृश ही इस में भी जलती हुई बत्ती रक्खी जाती है ।

शलाका यंत्र ।

शलाकाख्यानि यंत्राणि नानाकर्माकृतीनि च यथायोगप्रमाणानि तेषामेषणकर्मणी ।
उभे गंडूपदमुखे-
स्रोतोभ्यः शल्यहारिणी ॥ २९ ॥
मसूरदलवक्त्रे द्वे स्यातामष्टनवांगुले ।

अर्थ--शलाका यंत्र अनेक प्रकार के होते है, इनकी आकृति भी कार्य के अनुसार भिन्न २ प्रकार की होती है । इन में से गिंडोये के तुल्य मुखवाली दो प्रकार की सलाई नाडी व्रण के अन्वेषण में काम आती है । और दो प्रकार की शलाका आठ और नौ अंगुल लंबी मसूर के दल के समान मुखवाली होती है ये स्रोतो मार्ग में प्रविष्ट शल्यों के निकालने में काम आती हैं ।

शंकुयंत्र ।

शङ्कवः षट्-
उभौ तेषां षोडशद्वादशांगुलौ ॥ ३० ॥
व्यूहनेऽहिफणावक्त्रौ द्वौ दशद्वादशांगुलौ
चालने शरपुंखास्यौ-
आहार्ये बडिशाकृती ॥ ३१ ॥

अर्थ--शंकुयंत्र छः प्रकार के होते है । इन में से दो सर्प के फण के आकार वाले सोलह वा बारह अंगुल लंबे होते है, ये व्यूहन अर्थात् शल्य निकालने के काम में आते हैं । दो शरपुंख (बाज) के मुखवाले दस और बारह अंगुल लंबे चालन कार्य के निमित्त व्यवहार में आते हैं शेष दो बडिश की आकृतिवाले आहरणार्थ (शल्य के निकालने में) काम आते हैं ।

गर्भशंकु ।

ततोऽग्रे शंकुना तुल्यो गर्भशंकुरिति स्मृतः ।
अष्टांगुलायतस्तेन मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाः ३२

अर्थ--आठ अंगुल लंबे अंकुश के समान टेढे मुखवाला स्त्रियों के मूढ गर्भ को निकालेने में काम आता है । इसे गर्भशंकु यंत्र कहते हैं ॥

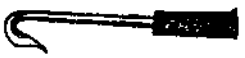

सर्पफण यंत्र ।

अश्मर्याहरणे सर्पफणावद्वक्त्रमग्रतः ।

अर्थ· अग्रभाग में सर्प के फण के समान यंत्र से पथरी निकाली जाती है, इसे सर्पफणास्य यंत्र कहते हैं ॥

शरपुंखयंत्र ।

शरपुंखमुखं दन्तपातनं चतुरंगुलम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-यह बाजपक्षी के सदृश मुखवा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ला चार अंगुल लंबा होता है, इससे कीड़ों के खाये हुए वा हिलते हुए दांत निकाले जाते हैं।

छः प्रकारकी शलाका।

कार्पासबिहितोष्णीषाः शलाकाः षट्-
प्रमार्जने।
पायावासन्नदूरार्थे द्वे दशद्वादशांगुले॥ ३४॥
द्वे षट्सप्तांगुले घ्राणे द्वे कर्णेऽष्टनवांगुले।
कर्णशोधनमश्वत्थपत्रप्रांतं स्रुवाननम् ३५॥

अर्थ–क्षार और क्लेदादि को दूर करने के लिये छः प्रकार की शलाका काम में आती हैं इनका अग्रभाग कपासकी पगड़ी के सदृश होता है। पास और दूरके अनुसार गुह्यदेश में दस और बारह अंगुल लंबी दो प्रकार की शलाका काम आती हैं। छः और सात अंगुललंबी दो शलाका नासिका के लिये तथा आठ और नौअंगुल लंबी दो प्रकार की शलाका कान के लिये होती हैं। कानका शोधन करने में मुख स्रुवा के सदृश होता है।

क्षाराग्नि कर्मोपयोगी शलाका।

शलाकाजांबवोष्ठानां क्षारेऽग्नौ च पृथक्त्रयम्
युज्यात् स्थूलाणुदीर्घाणाम्-
शलाकामंत्रवर्म्मनि॥ ३६॥
मध्योर्ध्ववृत्तदंडां च मूले चार्धेंदुसंनिभाम्।
कोलास्थिदलतुल्यास्यां नासार्शोर्बुददाहकृत्

अर्थ–शलाका और जांबवोष्ठ यंत्रोंमें मोटे, पतले और लंबे तीन प्रकार के शलाका और जांबवोष्ठ यंत्र होते हैं। ये क्षारकर्म और अग्निकर्ममें काम आते हैं। मंत्रवृद्धि में जो शलाका काम आती है उसका बेंटा बीच से ऊपर तक गोल और तलेमें अर्द्धचन्द्राकार होता है। नासार्श और नासार्बुद को दग्ध करने के लिये बेरकी गुठलीके मुखवाली सलाई काम आती है।

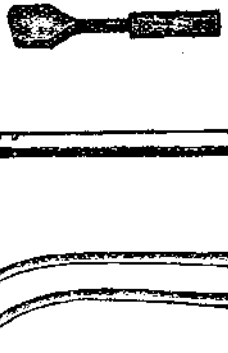

क्षारकर्ममें शलाका।

अष्टांगुला निम्नमुखास्तिस्रः क्षारौषधक्रमे।
कनीनीमध्यमानामिनखमानसमैर्मुखैः।३८।

अर्थ–क्षार औषध लगाने के लिये तीन प्रकार की सलाई होती है। इनका मुख नीचे को झुका होता है। ये आठअंगुललंबी और कनिष्ठका, मध्यमा तथा अनामिका के नखके समान परिमाणयुक्त होती है।

मेढ्रशोधन शलाका।

स्वंस्वमुक्तानि यंत्राणि मेढ्रशुद्ध्यंजनादिषु॥

अर्थ–मेढ्र शोधन और अंजनादि में उपयोगी शलाकाओंका वर्णन अपने अपने प्रकरण में कर दिया गया है।

उन्नीस प्रकारके अनुयंत्र।

अनुयंत्राण्ययस्कांतरज्जुवस्त्राक्षमुद्गराः ३९
वक्षांत्राजिह्वबालाद्यश्च शाखानखमुखद्विजाः।
कालः पाकः करः पादो भयं हर्षश्च तत्क्रियाः
उपायवित्प्रविभजेदालोच्य निपुणं धिया ४०

अर्थ–अयस्कांत (चुंबक पत्थर), रज्जु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्त्र, पत्थर, मोगरी, रेशम, आंत, जिह्वा, बाल, शाखा, नख, मुख, दांत, काल, पाक, हाथ, पांव, भय, और हर्ष ये १९ प्रकार के अनुयंत्र हैं। निपुण वैद्य अपनी बुद्धिसे विवेचना करके इनसे भी काम ले सकता है।

यंत्रोंके कर्म।

निर्घातनोन्मथन पूरणमार्ग शुद्धि-
संव्यूहनाहरण बंधन पीडनानि ।
आचूषणोन्नमनना मनचाल भंग-
व्यावर्तन ऋुकरणानि च यंत्रकर्म ॥ ४१ ॥

अर्थ–निर्घातन (ताडना और परिपातन), उन्मथन [उखाडना], पूरण, मार्गशोधन, संव्यूहन [निकालना] आहरण, बन्धन, पीडन, आचूषण'उन्नमन [उठाना], नामन, चालन, भंग, व्यावर्तन और ऋजुकरण [सीधा करना] ये यंत्रों के कर्म हैं

कंकमुखयंत्रोंको प्रधानता।

निर्वर्तते साध्ववगाहते च
ग्राह्यं गृहीत्वोद्धरते च यस्मात् ।
यंत्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानं
स्थानेषु सर्वेष्वधिकारि यच्च ॥ ४२ ॥

अर्थ–कंकमुखयंत्र सुखपूर्वक निर्वर्तित होता है, शरीरमें प्रवेश कर जाता है। ग्रहणयोग्य शल्यादि को खींचकर निकाल लाता है, तथा शरीरके सब अवयवों में उपयोगी होता है। ऐसे निवर्तनादि चौदह कारणों से कंकमुखयंत्र सब यंत्रों में श्रेष्ठ है।

इतिश्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां पंचविंशोध्यायः।

षड्विंशोऽध्यायः।

अथाऽतःशस्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहांसे शस्त्र विधिनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

शस्त्रों का वर्णन।

"षड्विंशतिः सुकर्मारैर्घटितानि यथाविधि शस्त्राणि रोमवाहीनि बाहुल्येनांगुलानि षट् सुरूपाणि सुधाराणि सुग्रहाणि च कारयेत्। अकरालानि सुश्लातसुतीक्ष्णावर्तितेऽयसि ॥ समाहितमुखाग्राणि नीलांभोजच्छवीनि च नामानुगतरूपाणि सदा सन्निहितानि च ॥ स्वोन्मानार्धचतुर्थांशफलान्येकैकशोऽपि च प्रायो द्वित्राणि युंजीत तानि स्थानविशेषतः ॥

अर्थ–शस्त्र बहुतायत से छः अंगुल लंबे होते हैं तथा बीस प्रकार के होते है। ये शस्त्र बहुत निपुण कारीगर से बनवाये जाते हैं, ये बहुत सूक्ष्म, पैने और ऐसे बनवाने चाहियें जो लगाने वा निकालने में टूट न जावें। इनकी सूरत बहुत सुन्दर, धार पैनी, रोगों के दूर करने में समर्थ अकराल (भयंकर नहो), सुग्रह (सुखपूर्वक पकडीजाय), हो तथा शस्त्र का मुख बहुत ही सावधानी से बनाया जाय। सब शस्त्र नील कमल की कान्ति के समान चमकीले और नामानुसार आकृतिवाले हों, इनको सदा पास रक्खे, शस्त्रों के फल फुल लंबाई से अष्टभाग होने चाहियें। इन शस्त्रों में से स्थान बिशेष में एक एक करके दो वा तीन भी उपयोग में आते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंडलाग्र शस्त्र।

मण्डलाग्रं फले तेषां तर्जन्यंतर्नखाकृति।
लेखने छेदने योज्यं पोथकीशुंडिकादिषु ५॥

अर्थ—मंडलाग्र शस्त्र के फलकी आकृति तर्जनी के अन्तर्नख के समान होती है। यह शस्त्र पोथकी, शुंडिका और वर्त्मरोगादि में लेखन छेदन में काम आता है।

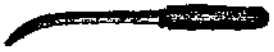

वृद्धिपत्रादि शस्त्र।

वृद्धिपत्रं क्षुराकारं छेदभेदनपाटने।
ऋज्वग्रमुन्नते शोफे गंभीरे च तदन्यथा ६॥
नताग्रं पृष्ठतो दीर्घह्रस्ववक्त्रं यथाशयम्।
उत्पलाध्यर्धधाराख्ये छेदने भेदने तथा ७॥

अर्थ—वृद्धिपत्र शस्त्र का आकार छुरे के समान होता है यह छेदन, भेदन और उत्पाटन में काम आता है। सीधे; अग्रभागवाला, वृद्धिपत्र ऊंची सूजन में काम में लाया जाता है। गंभीर सूजन में वह वृद्धिपत्र काम में आता है जिसका अग्रभाग पीठ की तरफ झुका होता है। उत्पलपत्र लंबे मुखका और अध्यर्धधार शस्त्र छोटे मुखका होता है। ये दोनों छेदन और भेदन में काम आते हैं।

सर्पास्यशस्त्र।

सर्पास्यं घ्राणकर्णार्शश्छेदनेऽर्धांगुलं फले।

अर्थ—सर्प के मुख के सदृश सर्पास्यशस्त्र नाक और कान के अर्श को छेदन के काम में आता है, फलकी ओर इसका परिमाण आधे अंगुल होता है।

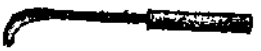

एषण्यादि शस्त्र।

गतेरन्वेषणे श्लक्ष्णा गंडूपदमुखैषिणी॥ ८॥
भेदनार्थेऽपरा सूचीमुखा मूलनिविद्धका।
वेतसंव्यधके
स्रावये शरार्यास्यं त्रिकूर्चके॥ ९॥

अर्थ—नाडीव्रण की सूजन का अन्वेषण करने के लिये एषणीशस्त्र उपयोगी होता है यह छूने में कोमल और गिंडोये के मुख की आकृतिवाला होता है।

नाडीव्रण की गति का भेदन करने के लिये एक प्रकार का दूसरा एषणीशस्त्र होता है इसका मुख सूची के सदृश और मूल सच्छिद्र होता है।

वेतसयंत्रनामक एषणी बेधने के काम में आता है तथा शरारीमुख और त्रिकूर्चक नामक दो प्रकार के एषणी स्रावकार्ये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काम आते हैं। शरारी एक प्रकार का पक्षी होता है।

कुशपत्रादि।

कुशादा वदने स्राव्ये द्यगुलं स्यात्तयोःफलम्।

अर्थ—कुशपत्र और आटीमुख नाम के दो शस्त्र स्राव के निमित्त काम में आते हैं। इन के फलका परिमाण दो अंगुल होता है।

अंतर्मुख-अर्द्धचन्द्रानन-व्रीहिमुख।

तद्वदंतर्मुखं तस्य फलमध्यर्धमंगुलम्॥ १० ॥
अर्धचंद्राननं चैतत्तथा
ऽध्यर्धांगुलं फले।
व्रीहिवक्त्रं प्रयोज्यं च तच्छिरोदरयोर्व्यधे

अर्थ—कुशपत्र और आटीमुख के समान अन्तर्मुखनामक शस्त्र स्राव के निमित्त उपयोगमें लाया जाता है, इसकाफल डेढ़ अंगुल होता है। कुशाटा के सदृश ही एक अर्द्धचन्द्रानन शस्त्र होता है, यह भी स्राव के निमित्त काम आता है। एक व्रीहिमुखनामक शस्त्रहोता है यह भी शिराव्यध और उदरव्यध में काम आता है, इसके फलका प्रमाण भी डेढ़ अंगुल है।

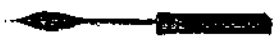

कुठारीशस्त्र।

पृथुः कुठारी गोदंतसदृशार्धांगुलानना।
तयोर्ध्वदंडया विध्येदुपर्यस्थ्नां स्थितां शिराम

अर्थ—कुठारी नामक शस्त्र का दंड विस्तीर्ण होता है, इसका मुख गौ के दांत के समान और आधा अंगुल लंबा होता है। इससे अस्थि के ऊपर लगी हुई शिरा बेधी जाती है।

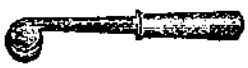

शलाकाशस्त्र।

ताम्री शलाका द्विमुखी मुखे कुरुबकाकृतिः।
लिंगनाशं तया विध्येत्

अर्थ—शलाका शस्त्र तांबेका बनाया जाता है, इसमें दो मुख होते हैं, इसके मुखकी आकृति कुरुबक के फूल के मुकुल के समान होती है, इससे लिंगनाश अर्थात् कफसे उत्पन्न हुए पटल नामक नेत्र रोग का वेधन किया जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंगुलि शस्त्र ।

कुर्यादंगुलिशस्त्रकम् ॥ १३ ॥
मुद्रिकानिर्गतमुखं फले त्वर्धांगुलायतम् ।
योगतो वृद्धिपत्रेण मंडलाग्रेण वा समम् । १४ ।
तत्प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रमाणार्पणमुद्रिकम् ।
सूत्रबद्धं गलस्रोतोरोगच्छेदनभेदने ॥ १५ ॥

अर्थ–एक प्रकार का शस्त्र अंगुलिनाम क होता है । इसका मुख मुद्रिका के सदृश निकला हुआ होता है, इसके फल का विस्तार आधा अंगुल है । यह वृद्धिपत्र वा मंडलाग्रके समान होता है । इसका परिमाण वैद्यकी तर्जनी अंगुली के अगले पोरुए के बराबर रक्खा जाता है, इसको प्रयोग के समय डोरे से बांधकर मणिबंध (पहुंचा वा कलाई) से बांध लेना चाहिये । यह कंठ के स्रोतों में उत्पन्न हुए रोगों के छेदन और भेदनमें काम आता है ।

बडिश शस्त्र ।

ग्रहणे शुंडिकार्मादेर्बडिशं सुनताननम् ।

अर्थ–बाडिश नामक शस्त्रका मुख अंकुश के समान अच्छी तरह टेढा होता है। यह शुंडिका, अर्म और प्रतिजिह्वादि रोगों को ग्रहण करने में काम आता है ।

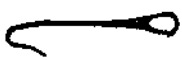

करपत्र शस्त्र ।

छेदेऽस्थां करपत्रं तु खरधारं दशांगुलम्
विस्तारे द्व्यंगुलं सूक्ष्मदंतं सुत्सरुबंधनम् ।

अर्थ–करपत्र इसे करौत वा आरीभी कहते हैं, यह दस अंगुल लंबी और दो अंगुल चौडी होती है । इसमें छोटे छोटे दांत होते हैं जिनकी धार बडी पैनी होती है । इसका मुष्टिस्थान सुंदररूप से बद्ध होता है, यह अस्थियों के काटनेके काममें आता हैं ।

कर्तरीशस्त्र ।

स्नायुसूत्रकचच्छेदे कर्तरी कर्तरीनिभा । १७ ।

अर्थ–कर्तरीको कैंचीभी कहते हैं । यह नस, सूत्र और केशोंके काटनेमें काम आतीहै

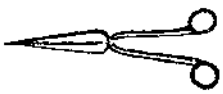

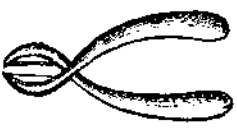

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नखशस्त्र ।

वक्रर्जुधारं द्विमुखं नखशस्त्रं नवांगुलम् ।
सूक्ष्मशल्योद्धृतिच्छेदभेदप्रच्छन्नलेखने ।१८।

अर्थ—नखशस्त्र इसे नहरनी भी कहते हैं । यह दो प्रकार की होती है, एककी धार टेढी और दूसरी की सीधी होती है । यह नौ अंगुललंबी होती है । इससे कांटे आदि छोटे छोटे शल्य निकालेजातेहै । नख काटे जातेहै । भेदन भी कियाजाताहै ।

दंतलेखन शस्त्र ।

एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चैकतः ।
दंतलेखनकं तेन शोधयेद्दंतशर्कराम् ॥ १९ ॥

अर्थ—दंतलेखन शस्त्रमें एक ओर धार होती है और दूसरी ओर प्रबद्ध आकृति होती है । इसमें चार कोन होते हैं, इससे दांतोंकी शर्करा निकाली जाती है ।

सूचीशस्त्र ।

वृत्ता गूढदृढाः पार्श्वे तिस्रः सूच्योऽर्धसीवने ।
मांसलानां प्रदेशानां त्र्यस्रा त्र्यंगुलमायता
अल्पमांसाऽस्थिसंधिस्थव्रणानां घंगुलायता ।
व्रीहिवक्त्रा धनुर्वक्रा पक्वामाशयमर्मसु । २१ ।
सा सार्धद्व्यंगुला ।

अर्थ—सीवन अर्थात् सीनेके लिये तीन प्रकार की सुई बनाई जाती है, ये सुइयां गोल, पार्शमें गूढ और दृढ होती है । जहां मांस मोटा होता है वहां वहां त्रिकोण मुखवाली तीन अंगुललंबी सुई उपयोगमें आती हैं, जहां मांस कम होता है, तथा अस्थि और संधिमें स्थित व्रणोंके सीनेके लिये दो अंगुललंबी सुई काममें लाई जाती है, और तीसरी प्रकार की सुई जो ढाई अंगुल लंबी धनुष के समान टेढी, और व्रीहिके समान मुखवाली पक्वाशय, आमाशय और मर्मस्थान के व्रणों के सीनें में काम आती है ॥

कूर्चशस्त्र ।

सर्ववृत्तास्ताश्चतुरंगुलाः ।
कूर्चो वृत्तैककपीठस्थाः सप्ताऽष्टौ वासुबंधनाः
सयोज्यो नीलिकाव्यंगकेशशातनकुट्टने ।

अर्थ-ये सुइयां जो चारों ओरसे गोल, और लंबाई में चार अंगुल होती है । तथा सात वा आठ एक काष्ठमें दृढरूप से लगी हुई सूची कूर्च कहलाती हैं । ये नीलिका, व्यंग और केश, बातादि रोगों में कुट्टन के लिये प्रयुक्त की जाती है ।

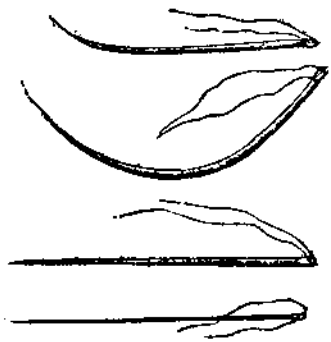

खजशस्त्र ।

अर्धांगुलैर्मुखैर्वृत्तैरष्टाभिः कंटकैः खजः । २३ ।
पाणिभ्यां मध्यमानेन घ्राणास्तेन हरेदसृक् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–आधे आधे अंगुलवाले गोलाकार आठ कंटकों से युक्त शस्त्र को खज कहते हैं। इसको हाथ से विलोडित करके नासिका से रक्तस्राव किया जाता है।

कर्णव्यधशस्त्र।

व्यधने कर्णपालीनां यूथिका मुकुलानना। २४।

अर्थ–कान की पालियों के बेधने के निमित्त मुकुल के आकार वाला यूथिका नामक शस्त्र काममें लाया जाता है।

आराशस्त्र।

आराऽर्धांगुलवृत्तास्या तन्मवेशा तथोर्ध्वतः।
चतुरस्रा तया विध्येच्छोफं पक्वामसंशये। २५।
कर्णपाली च बहुलाम्।

अर्थ–यह आरा नामक शस्त्र अर्धांगुल गोल मुखवाला, तथा उस गोलाकार के ऊपर का भाग अर्धांगुल युक्त चतुष्कोण होता है। पक्व और अपक्व का संदेह हो ऐसे स्थान में इस आरा शस्त्र द्वारा ही सूजन का बेध किया जाता है। अत्यन्त मांसयुक्त कर्णपाली बेधन में यही शस्त्र काम आता है।

कर्णवेधनी सूची।

बहुलायाश्च शस्यते।
सूची त्रिभागसुषिरा त्र्यंगुला कर्णवेधनी। २६।

अर्थ–चार प्रकार की और सुइयां होती हैं जो कर्णवेधमें काम आती हैं, ये तीन अंगुल लंबी होती है और इनके तीन भाग छिद्रों से युक्त होते हैं। यह बहुत मांस वाली कर्णपाली के वेधने में काम आती है।

अलौहशस्त्र।

अलौकःक्षारदहनकाचोपलनखादयः।
अलौहान्यनुशस्त्राणि तान्येवं च विकल्पयेत्
अपराण्यपि यंत्रादीन्युपयोगि च यौगिकम्।

अर्थ–यहां तक प्रधान लौह निर्मित यंत्र और शस्त्रों का वर्णन हो चुका है, वैद्यको उचित है कि बुद्धि से योग्य और अयोग्य का विचार करके इन शस्त्रों को काम में लावे। अब लोह वार्जित शस्त्रों का वर्णन करते हैं जोक, क्षार, अग्नि, केश, प्रस्तर (पत्थर), नखादि अलौह शस्त्रों द्वारा तथा अन्यान्य यंत्रों द्वारा भी शस्त्र कर्म किया जाता है, इसी से इन्हें अनुशस्त्र कहते हैं।

शस्त्रों का कार्य।

उत्पाटथपाटथसीव्यैषलेख्यप्रच्छन्नकुट्टनम्॥
छेद्यं भेद्यं व्यधो मंथो ग्रहो दाहश्च तत्क्रियाः।

अर्थ–उत्पाटन में ऊर्धनयन यंत्र, पाटन में वृद्धिपत्रादि, सेवन में सूची, लेखन में मंडलाग्रादि, भेदन में एषणी, व्यधन में वेतसादि, मंथन में खज, ग्रहण में संदंश और दाह में शलाकादि शस्त्रों का प्रयोग होता है।

शस्त्रोंका दोष।

कुण्ठखंडतनुस्थूलह्रस्वदीर्घत्ववक्रताः॥
शस्त्राणां खरधारत्वमष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः।

अर्थ–भोंतरापन, टूटापन, बहुत पतलापन, बहुत मोटापन, बहुत छोटापन, बहुत लंबापन, टेढापन, बहुत पैनापन ये आठ दोष शस्त्रों में होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शस्त्रोंके पकडनेकी विधि।

छेद्यभेद्यलेख्यार्थं शस्त्रं वृंतफलांतरे ३०
तर्जनीमध्यमांगुष्ठैर्गृह्णीयात्सुसमाहितः।
विस्रावणानि वृंताग्रे तर्जन्यंगुष्ठकेन च। ३१।
तलप्रच्छन्नधृताग्रं ग्राह्यं व्रीहिमुखं मुखे।
मूलेष्वाहरणार्थं तु क्रियासौकर्यतोऽपरम्

अर्थ-छेदन, भेदन और लेखनकर्म के लिये बेंटे और फलके लिये बीचमें तर्जनी, मध्यमा और अंगूठे इन तीन उंगलियों से शस्त्रको पकडना चाहिये, परन्तु शस्त्र कर्म करनेके समय सब ओर से ध्यान खींचकर इसीमें लगादेना चाहिये। विस्रावण के लिये शरारीमुखादि शस्त्रों को बेंटेके अग्रभाग में तर्जनी और अंगूठा इन दो उंगलियों से पकडे। व्रीहिमुख शस्त्र के बेंटेके अग्रभाग को हथेलीमें छिपाकर उसको मुखके पास पकडकर काममें लावै। सब प्रकारके आहरण यंत्र मूलमें पकडकर उपयोग में लाये जातेहैं इसी तरह अन्य शस्त्रों को भी प्रयोजन के अनुसार यथोपयुक्त स्थानों में पकडकर काम में लाना चाहिये।

शस्त्रकोश।

स्यान्नवांगुलविस्तारः सुघनो द्वादशांगुलः।
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः॥ ३३॥
विन्यस्तपाशः सुस्यूतः सांतरोर्णास्यशस्त्रकः।
शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसंचयः।

अर्थ-शस्त्रोंके रखनेके लिये नौ अंगुल चौडा और बारह अंगुल लंबा कोश रेशमी वस्त्र, पत्ता, ऊन, कौषेय या कोमल चमडे का बनवाना चाहिये कोशके भीतर शस्त्रोंके रखनेके लिये जुदे जुदे सुंदर शस्त्रानुरूप घर (खाने) बनवाने चाहियें जिनमें ऊन आदि वस्त्र बिछादिये गये हों। इनमें सब प्रकार के शस्त्रोंका संचय होना चाहिये।

जलौका का विधान।

जलौकसस्तु सुखिनां रक्तस्रावाय योजयेत्॥

अर्थ-सुखोचित (राजा, रईस, बालक, वृद्ध, सकुमार) स्त्री पुरुषों का रक्त निकालने के लिये जोकका प्रयोग करना उचित है

सविषा जोक।

दुष्टांबुमत्स्यभेकाहिशवकोथमलोद्भवाः।
रक्ताःश्वेताभृशंकृष्णश्चपलाःस्थूलपिच्छिलाः
इंद्रायुधविचित्रोर्ध्वराजयो रोमशाश्च ताः।
सविषा वर्जयेत्-
ताभिः कण्डूपाकज्वरभ्रमाः॥ ३७॥
विषपित्तास्रनुत्कार्यं तत्र

अर्थ--जोक दो प्रकार की होती हैं। एक सविषा, दूसरी निर्विषा। सविषा जोक बिगडे हुए पानी तथा मछली, मेंढक, सर्प और मुर्दोंके मलमूत्रादि से उत्पन्न होती है। इनका रंग लाल, सफेद, अत्यन्त काला, इंद्र धनुषके समान अनेक वर्णवाला होता है॥ इनके ऊपर खडी रेखायें होती हैं तथा ये रोमयुक्त भी होती है॥ इन लक्षणों से युक्त तथा चपल, स्थूल और पिच्छिल जोक सविषा होती हैं इनको न लगाना चाहिये, इन के लगाने से खुजली, पाक, ज्वर, भ्रम, तथा दाह, शोष और मूर्च्छादिक रोग उत्पन्न होते हैं। यदि भ्रमसे प्रयोग किया जाय तो विष रक्त, और पित्तनाशक क्रियाका प्रयोग करना उचित है॥

निर्विष जोक।

शुद्धांबुजापुनः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्विषाः शैवलश्यावा वृत्ता नीलोर्ध्वराजयः कषायपृष्ठास्तन्वंग्यः किंचित्पीतोदराश्च याः

अर्थ–निर्विष जोक निर्मल जल में पैदा होती हैं इनका शैवाल (सिवार) के सदृश श्यामवर्ण होता है ये गोलाकार, नीलवर्ण और ऊर्ध्वरेखाओं से युक्त होती हैं। वटवृक्ष के सदृश रंगवाली पीठ, पतली देह और पेट में कुछ पीलाई होती है।

त्यागनेयोग्य जोक।

ता अप्यसम्यग्वमनात्प्रततं च निपातनात्। सीदंतीः सलिलं प्राप्य रक्तमत्ता इति त्यजेत्।

अर्थ–केवल सविष जोकही त्यागनी नहीं चाहिये, किन्तु रक्तमत्ता निर्विष जोक भी त्याग देनी चाहियें, रक्तमत्ता में हेतु हैं, एक तो वे दुष्ट रक्तका अच्छी तरह वमन नहीं करती हैं। और लगने पर निरंतर दुष्ट रक्तका पान किये चली जाती हैं इन सब रक्तपूर्ण निर्विष जोकों को त्याग देना चाहिये। इनकी पहचान यह है कि जल के पात्र में डालने पर ये सुस्त और शिथिल हो जाती हैं।

जोकके लगाने का नियम।

अथेतरा निशाकल्कयुक्तैऽभसि परिप्लुताः॥ अवंतिसोमे तक्रे वा पुनश्चाऽश्वासिता जले। लाग्येद्घृतमृत्सांगशस्त्ररक्तनिपातनैः॥ पिबंतीरुन्नतस्कंधाश्छादयेन्मृदुयाससा।

अर्थ–पूर्वोक्त रीति से परीक्षा करने के पीछे निर्विष जलौका को हल्दी के कल्क से युक्त जल में, अथवा कांजी वा तक्र में परिप्लुत करके निर्मल जल में आश्वासित करके उत्साहित करै। और जिस स्थान पर लगानी हो वहां थोड़ा घी चुपड दे अथवा किसी शस्त्र से थोड़ा सा रक्त निकाल दे। जब पीती हुई जोक कंधे ऊंचे करने लगे तब जान लेना चाहिये कि रुधिर को पी रही है। मक्खी आदि को निवारण करनेके लिये जोकपर बहुत पतला वस्त्र ढक देना चाहिये।

जोकका स्वभाव।

संपृक्तादुष्टशुद्धास्राज्जलौका दुष्टशोणितम् आदत्ते प्रथमं हंसः क्षीरं क्षीरोदकादिव।

अर्थ–दूषित और शुद्ध मिले हुए रक्त को पान करते समय जोक पहिले बिगड़े हुए रुधिर को ही पीती है जैसे हंस जल मिले हुए दूध में से प्रथम दूध को ही पीता है।

जोकका वमन विधान।

दंशस्य तोदे कंडूवा वा मोक्षयेद्वामयेच्च ताम् पटुतैलाक्तवदनां श्लक्ष्णकंडनरूक्षिताम्। रक्षन् रक्तमदादूभूयः सज्जार्हं ता न पातयेत्× पूर्ववत् पटुता दार्ढ्यं सज्यन्वांते जलौकसाम् कलमोऽतियोगान्मृत्युर्वा-

दुर्वांते स्तब्धता मदः॥ ४६॥

अर्थ–जब जोक के देश की जगह में तोद वा खुजली हो तो जोकको छुडा देना चाहिये यदि रक्तपान की लोलुपता से न छोडे तो हलदी और नमक पीसकर उसके मुखपर बुरकते ही छोड देती है। छोडने पर

+ गुल्मार्शो विद्रधी कुष्ठ वातरक्त गलामयान्। नेत्ररुग् विषबीसर्पान् शमयंति जलौकसः। अर्थात् जोक गुल्म, अर्श, विद्रधि कुष्ठ, वातरक्त, कंठरोग, नेत्रपीडा, विष, विसर्पादि रोगोंको नाश करती है। यह श्लोक प्रक्षिप्त है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेंधा नमक और तेल से रूक्षित तथा सूक्ष्म तंडुलचूर्ण द्वारा रूक्षित करके हाथसे निचोड दे। इस तरह रक्तमद से जोक की रक्षा करे। सात दिन तक किसी रोगीके उसको न लगावे। सम्यक्युक्त वमन होने पर यह पूर्ववत् पटु और दृढ होजाती है। अतियोग होने से क्लान्ति और मृत्यु होजाती है,दुर्योत में स्तब्धता और मद होता है।

जोकोंका अनेकपात्रोंमें रखना।

अन्यत्राऽन्यत्रताःस्याप्याघटेमृत्स्नांबुगर्भिणि
लालादिकोऽथनाशार्थंसविषाःस्युस्तदन्वयात

अर्थ—लालास्रावादि क्लेदताको दूरकरने के लिये जोकों को मिट्टी के जुदे जुदे पात्रों में तीन वा पांच दिनके अंतर से बदलतारहै। क्योंकि लगातार एक ही पात्र में रखने से लालादि के संसर्ग से निर्विष जोकभी सविष होजाती हैं।

अशुद्ध रक्तमें कर्तव्य।

अशुद्धौस्रावयेद्दंशान् हरिद्रागुडमाक्षिकैः।
शतधौताज्यपिचवस्ततोलेपाश्चशीतलाः॥
दुष्टरक्तापगमनात्सद्यो रोगरुजां शमः।

अर्थ—जो जोकके दंशस्थानों से अशुद्ध रक्त निकलता दिखाई दे तो दंशस्थान पर हलदी, गुड और शहत लगाकर स्रावकरावै तदनंतर सौ बार धुले हुए घीको रुईके फोहे पर लगाकर उसके ऊपर रखदे तथा मुलहटी, चन्दन और खस आदि शीतल द्रव्यों का लेपकरदे। बिगडे हुए रुधिरके निकलजाने पर तत्काल रोगों की वेदना शांत होजाती है तथा सूजन, शिथिलता और दरद भी जाता रहता है।

अशुद्ध रक्त का फिर निकालना।

अशुद्धं चलितं स्थानात्स्थितं रक्तं व्रणाशये॥
अम्लीभवेत्पर्युषितं तस्मात्तत्स्रावयेत्पुनः।

अर्थ—अशुद्धरक्त अपने स्थान से चल कर व्रण के स्थान पर आजाता है और वहां एक दिन रहकर खट्टा हो जाता है। इस लिये इसको फिर निकाल देना चाहिये।

अलाबु और घटिका यंत्रका प्रयोग।

युंज्यान्नालाबुघटिका रक्ते पित्तेन दूषिते ४८॥
तासामनलसंयोगात्-
युंज्याच्च कफवायुना।

अर्थ—पित्तसे दूषित रक्तमें दुष्टरक्त को निकालने के लिये अलाबु और घटिका यंत्र का प्रयोग न करे। क्योंकि इन यंत्रोंमें अग्नि का संयोग होने से ये पित्तरक्त को कुपित करते हैं॥ परन्तु कफवात से दूषित होने पर इन यंत्रोंका प्रयोग उचित ही है।

शृंगका प्रयोग।

कफेन दुष्टं रुधिरंन शृंगेण विनिर्हरेत् ५०॥
स्कन्नत्वाद्-
वातपित्ताभ्यां दुष्टं शृंगेण निर्हरेत्।

अर्थ—कफसे दूषित रुधिर को सींगी से न निकाले। क्योंकि कफदूषित रुधिर गाढा होजाता है और सींगी मे अग्नि का संयोग न होनेसे कफको नहीं पिघला सकता है॥

प्रच्छान विधि।

गात्रं बद्ध्वोपरि दृढं रज्ज्वा पट्टेन वा समम्॥
स्नायुसंध्यस्थिमर्माणित्यजन्प्रच्छानमाचरेत्
अधोदेशप्रविसृतैः पदैरुपरिगामिभिः ५२॥
न गाढघनतिर्यग्भिर्न पदे पदमाचरन्।
प्रच्छानेनैकदेशस्थं ग्रंथितं जलजन्मभिः॥
हरेच्छृंगादिभिः सुप्तमसम्यग्यापि शिराव्यधैः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पछने लगाने की जगह को दृढ डोर वा पट्टीसे कसकर बांधदे और नीचे ऊपर की ओर शस्त्रपद द्वारा स्नायु, संधि, अस्थि और मर्म इनको बचाता हुआ प्रच्छान करे प्रच्छान की यह रीति है कि न गाढा, न पैना, न तिरछा शस्त्र चलावै और जहां एक बार शस्त्र लग गया है वहां दूसरी बार न लगे। एक देशस्थ रक्त प्रच्छान से, ग्रन्थि और अर्बुदका रक्त जोकों से, सुप्तस्थान का रुधिर सींगी से और सर्वशरीर व्यापी रुधिर को शिराव्यध द्वारा निकाले।

प्रच्छानादि के अन्य प्रयोग।

प्रच्छानं पिंडिते वा स्यात्-
अवगाढे जलौकसः ॥ ५४ ॥
त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृंगम्-
शिरैव व्यापकेऽसृजि ।
वातादिधाम वा शृंगजलौकोलाबुभिः क्रमात्

अर्थ–पिंडित रुधिर में प्रच्छान, अवगाढ रुधिर में जोक, त्वचा में स्थित रुधिर में अलाबु, घटिका और सींगी और सर्वशरीर व्यापी रुधिर में शिराव्यध का प्रयोग करना उचित है। अथवा वातस्थान में स्थित रुधिर को सींगी से, पित्त स्थान में स्थित रुधिर को जोक से और कफस्थान में स्थित रुधिर को अलाबु से निकाले।

गरम घृतका सेचन।

स्रुतासृजः प्रदेहाद्यैः शीतैः स्याद्वायुकोपतः।
सतोदकंडूशोफस्तं सर्पिषोष्णेन सेचयेत् ॥

अर्थ–जिसका रुधिर निकाला गया है, उसके शीतल लेपों का करना उचित नहीं है, क्योंकि शीतल लेपों से वायु कुपित होकर तोद और खुजली से युक्त सूजन को उत्पन्न कर देती है, इस सूजन पर गरम घी डालना उचित है।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः।

सप्तविंशोऽध्यायः।

अथाऽतःसिराव्यधविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहां से सिराव्यध विधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

शुद्ध लोहित का स्वरूप।

मधुरं लवणं किंचिदशीतोष्णमसंहतम्।
पद्मेंद्रगोपहेमाभं शश लोहितलोहितम्।
लोहितं प्रवदेच्छुद्धं तन्नोस्तेनैव च स्थितिः।

अर्थ–जो रक्त मधुर, कुछ नमकीनरस युक्त, कुछ कालापन लिये, छूने में गरम, पतला, लालकमल वा इन्द्रगोप (बीरबहुटी) के समान लाल वर्ण, हेमवत् खरगोश के रुधिर के समान लालरंग का रुधिर शुद्ध होता है, इस रुधिर से देहकी स्थिति है।

दूषित रुधिर के विकार।

तत्पित्तश्लेष्मलैः प्रायो दूष्यते
कुरुते ततः ॥ २ ॥
विसर्पविद्रधिप्लीहगुल्माऽग्निसदनज्वरान्।
मुखनेत्रशिरोरोगमदृतृड्लवणास्यताः ॥ ३ ॥
कुष्ठवाताऽस्रपित्तास्रकट्वम्लोद्गिरणभ्रमान्।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रांताश्च ये गदाः।
सम्यक्साध्यान सिध्यंतिते चरक्तप्रकोपजाः
तेषु स्रावयितुं रक्तमुद्दिष्टं व्यधयेत्सिराम्।५

अर्थ–यह शुद्ध रुधिर प्रायः पित्त और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफकारी पदार्थों से दूषित होजाता है और दूषित होकर विसर्प, विद्रधि, प्लीहा, गुल्म, अग्निमांद्य, ज्वर, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोवेदना, मद, तृष्णा, लवणास्यता (मुख में नमकसा घुलना), कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त, कड़वी और खट्टी डकार, और भ्रम इन रोगों को उत्पन्न करता है इनके सिवाय जो रोग शीत उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि द्वारा सम्यक् विकिरित रोग साध्य होने पर भी अच्छे नहीं होते हैं वे रुधिर के कोपसे उत्पन्न हुए समझने चाहिये ।

इसलिये इन सब रोगों में बढेहुए रुधिर को निकालने के लिये सिराव्यध अर्थात् फस्द खोलना चाहिये ।

सिराव्यधका निषेध ।

न तूनषोडशाऽतीतसप्तत्यब्दसुताद्यजाम् ॥
अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम्
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम्
अतीसारोदरच्छर्दिपांडुसर्वांगशोफिनाम् ॥
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु ।
नार्यश्रितां सिरांविध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम्
नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्राऽत्यर्थिकाक्रदात्

अर्थ—सोलह वर्ष से कम और सत्तर वर्ष से ऊंची अवस्थावाला, जिसका रुधिर निकाला गया है, अस्निग्ध, अस्वेदित, अतिस्वेदित, वातरोगी, गर्भिणी, प्रसूती अजीर्णरोगी, रक्तपित्तरोगी, श्वास, खांसी, अतिसार, उदरविकार, वमन, पांडुरोग, सर्वांगशोफ इन रोगोंसे आक्रान्त तथा जिसने स्नेहपान किया हो, तथा जिसने वमने विरेचनादि पंच कर्म किये हों ऐसे रोगियों का सिराव्यध न करै । तथा जो सिरा न बांधी गई हो, टेढी हो वा उठी न हो इस को न वेधे। तथा अत्यन्त जाड़े में वा अत्यन्त गर्मी में वा जिस दिन प्रचंड पवन चल रही हो, वा जिस दिन बादलों ने आकाश ढक रक्खाहो ऐसे दिनों में सिराव्यध न करै । किन्तु यदि कोई भयंकर रोग होगया हो और फस्द खोलने की आवश्यकता ही होतो शीत ग्रीष्म और वर्षा आदि का सुप्रबंध करके सिराव्यध करना उचित है ।

रोगविशेष में शिराविशेषकावेधन ।

शिरोनेत्रविकारेषु ललाट्यां मोक्षयेत्सिराम्
अपांग्यामुपनास्यां वा कर्णरोगेषु कर्णजाम् ।
नासारोगेषु नासाग्रे स्थिताम्-
नासाललाट्योः ॥ १० ॥
पीनसे मुखरोगेषु जिह्वौष्ठहनुतालुगाः ।
जत्रूर्ध्वं ग्रंथिषु ग्रीवाकर्णशंखशिरःश्रिताः ॥
उरोऽपांगललाटस्था उन्मादे-
ऽपस्मृतौ पुनः ।
हनुसंधौ समस्ते वा सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् ॥
विद्रधौ पार्श्वशूले च पार्श्वकक्षास्तनांतरे ।
तृतीयकेऽसयोर्मध्ये-
स्कंधस्याधश्चतुर्थके ॥ १३ ॥
प्रवाहिकायांशूलिन्यां श्रोणितोद्ध्वंगुलेस्थिताम्
शुक्रमेढ्रमये मेढ्रे-
ऊरुणां गलगंडयोः ॥ १४ ॥
गृध्रस्यां जानुनोधस्ताद्ऊर्ध्वं वा चतुरंगुले ।
इंद्रबस्तेरधोऽपच्यां तूर्ध्वंगुले चतुरंगुले १५ ॥
ऊर्ध्वं गुल्फस्य सक्थ्यर्तौ तथा क्रोष्टुकशीर्षके
पाददाहे खुडे हर्षे विपाद्यां वातकंटके ॥ १६ ॥
विष्पे च द्व्यंगुले विध्येदुपरि क्षिप्रमर्मगः ।
गृध्रस्यामिव विध्याच्याम् यथोक्तानामदर्शने
मर्महीने यथास्वे देशेऽन्यां व्यधयेत् सिराम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सिरदर्द और नेत्ररोग में ललाट की अथवा अपांग वा नासिका के समीप वाली रग की फस्द खोले। कर्णरोग में कान की, नासारोग में नासिका के अग्रभाग की, पीनस में नासिका और ललाटकी, मुखरोग में जिव्हा, ओष्ठ, ठोडी और तालु की, जत्रु से ऊपर वाली गांठ में ग्रीवा, कान, कनपटी और ललाटकी, उन्मादरोग में वक्षःस्थल अपांग और ललाटकी रग की फस्द खोले, इसी तरह अपस्मार रोग में हनुसंधि वा समस्तहनु वा भृकुटियों के बीचवाली नस की, विद्रधि और पसली के रोग में पसली, कूख वा स्तनों के बीचवाली नस की, तृतीयक ज्वर में कंधोंकी संधियों की नस की, चौथैया ज्वर में कंधेके नीचेवाली सिराकी फस्द खोले। शूलयुक्त प्रवाहिका में कमरसे दो अंगुल के अंतरपर स्थित नसको बेधे। शुक्र और मेढ्रोगमें मेढ्र की सिरा, गलगंड और गंडमाला रोग में ठुड्डी, सिरा, गृध्रसीरोग में जानु से चार अंगुल नीचे वा ऊपरवाली सिरा, अपची रोग में जंघाओं के बीच में स्थित मर्मस्थान की दो अंगुल नीचे फस्द खोले। सक्थिरोग में तथा कोष्टुकशीर्षरोगमें गुल्फ के चार अंगुल ऊपरवाली सिरा, पाददाह, खुडवात पादहर्ष, विबाई, वातकंटक, और चिप्परोग में क्षिप्रनामक सक्थि मर्मके दो अंगुल ऊपरवाली सिरा, विश्वाचीरोग में गृध्रसी की तरह जानुके चार अंगुल नीचे वाली सिरा का बेधन करै। उक्त सिराओं के दिखाई न देने पर व्याधि के अनुसार मर्म स्थान को छोडकर पासवाली जगह में दूसरी नस की फस्द खोले।

सिराव्यध के पहिले का कर्तव्य।

अथ स्निग्धतनुः सज्जसर्वोपकरणो बली॥
कृतस्वस्त्ययनः स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः।
अग्नितापाऽतपस्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः
मृदुपट्टात्तकेशांतो जानुस्थापित कूर्परः।
मुष्टिभ्यां वस्त्रगर्भाभ्यां मन्ये गाढंनिपीडयेत्
दंतप्रपीडनोत्कासगंडाऽऽध्मानानिचाऽचरेत्
पृष्ठतो यंत्रयेच्चैनं वस्त्रमावेष्टयेन्नरः॥
कंधरायां परिक्षिप्य न्यस्यांतर्वामतर्जनीम्।
एषोऽतर्मुखबद्धानां सिराणां यंत्रणे विधिः।

अर्थ–रोगी स्निग्धदेह, सब प्रकार के वस्त्र पीड पादक स्नेह गेरू आदि उपकरणों से सज्जित, बली (मोटा ताजी), कृतस्वस्त्ययन (बाछि मंगल होमादिक किया हुआ), स्निग्ध मांस रस अन्नादि का भोजन किया हुआ, अग्नि और घृपकी गर्मी से स्वेदित, और जानुके बराबर ऊंचे आसन पर बैठा हुआ, वस्त्रकी कोमल पट्टी से मस्तक के केशपर्य्यन्त भाग तक बांधकर जानुके ऊपर कोहनी रखकर वस्त्र गर्भित मुष्टियों द्वारा दोनों मन्याओं को अतिशय पीडित करे, तथा दंतप्रपीडन, उत्कास, और गंडस्फीति करै, तदनंतर रोगी की पीठ पर इसतरह वस्त्र लपेटे कि ग्रीवा से आरंभ करके बीच बीच में बांई तर्जनी को स्थापित करके दाहिने हाथ से बांधता रहे अर्थात् तर्जनी अंगुली के समान अंतर दे दे कर वस्त्र लपेट देवै। अन्तर्मुख शिरा के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिवाय अन्य सिराओं के यंत्रण की यही विधि है।

वेधनविधि।

तथा मध्यमयांऽगुल्या वैद्योऽगुष्ठविमुक्तया ताडयेत्

उत्थितां ज्ञात्वा स्पर्शागुष्ठप्रपीडनैः-
कुठार्यां लक्षयेन्मध्ये वामहस्तगृहीतया।
फलोद्देशे सुनिष्कंपं सिरां तद्वच्च मोक्षयेत्।

अर्थ–सिरा को ऊपर कही हुई रीति से यंत्रित करके वैद्य बांये अंगूठे को छोड तर्जनी उंगली से ताडन करै, और छूकर वा अंगूठे से प्रपीडन करके देखे और उठी हुई नसको फल्लोदेश में निष्कंप भाव में स्थित होकर कुठारी शस्त्र को बांये हाथ में पकड कर सिरा के बीच में स्थापित करके विशेषरूप से लक्ष करै और लक्ष के स्थिर होने पर उक्त शस्त्र द्वारा फस्द खोलदे।

व्रीहिमुख से फिर बेधना।

ताडयन् पीडयेच्चैनां विध्येद्व्रीहिमुखेन तु।

अर्थ–व्रीहिमुखशस्त्र से नस को फिर बेधकर अंगूठे से पीडन करै।

उपनासिका सिराव्यध।

अंगुष्ठेनोन्नमय्याऽग्रे नासिकामुपनासिकाम्

अर्थ–अंगूठे से नासिका के अग्रभाग को ऊंचा करके नासिकाकी पासवाली रग का वेधन करे।

जिह्वास्थसिराका व्यध।

अभ्युन्नतविदष्टाग्रजिह्वास्याधस्तदाश्रयाम्।

अर्थ–रोगी की जिह्वाके अग्रभाग को तालुमें लगाकर वा दांतों से विशेष रूप में काटकर जिह्वा के नीचे की सिरा का वेधन करे।

ग्रीवास्थित सिरावेध।

यंत्रयेत्स्तनयोरूर्ध्वं ग्रीवास्थितसिराव्यधे॥

अर्थ–यंत्रद्वारा दोनों स्तनों के ऊपर के भाग को यंत्रित करके ग्रीवा में स्थित सिरा का वेधन करै।

ग्रीवाकी सिराका व्यध।

पाषाणगर्भहस्तस्य जानुस्थे प्रसृते भुजे।
कुक्षेरारभ्य मृदिते विध्येद्ग्रीवोर्ध्वपट्टके।

अर्थ–दोनों हाथोंकी मुट्ठी में दो पत्थर के टुकडे दाबकर रोगी अपने हाथोंको लंबा करके घुटनों पर रखले, तब उसकी कुक्षि से ग्रीवा पर्य्यन्त मर्दन करके और ऊर्ध्वभाग में कपडे की पट्टी बांधकर ग्रीवा की शिरा का बेधन करे।

हाथकी सिराका बेधन।

विध्येद्धस्तसिरां बाहावनाकुंचितकूर्परे।
बध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमंगुष्टगर्भिणीम्॥
ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिकां चतुरंगुले।

अर्थ–हाथ की सिरा के बेधन का क्रम यह है कि वेध्यस्थान के चार अंगुल ऊपर कपडे की पट्टी बांधकर रोगी को सुखपूर्वक बैठाकर उसकी मुट्ठी में अंगूठा दबवाकर बाहु को फैला देवै।

पसली और मेढ्रकीसिरा।

विध्येदालंबमानस्य बाहुभ्यां पार्श्वयोःसिराम्
प्रहृष्टे मेहने जंघासिरां जानून्यकुंचिते।

अर्थ–रोगीके हाथों से किसी वस्तु को पकडवाकर दोनों पसलियों की सिरा को बेधे। मेढ्र के स्तब्ध होनेपर मेढ्रकी सिरा को और जानुको लंबी करा के जंघा की सिरा को बेधे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पादसिरा व्यध।

पादे तु सुस्थितेऽधस्तज्जानुसंधेर्निपीडिते।
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि।
द्वितीये कुंचिते किंचिदारूढे हस्तवत्ततः॥
बध्नीयाद्विध्येत्सिराम्मुहुस्तमनुकेष्वपिकल्पयेत्
तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यंत्रमुपायवित्॥ ३२॥

अर्थ–पांवकी सिराको इस तरह बेधते हैं कि जिस पांवमें फस्दा खोलनी हो उसको धरती पर अच्छी तरह टिकाकर जानु की संधिसे टकने तक हाथसे अच्छी तरह मर्दन करै और उस पांवपर दूसरे पांव को कुछ सुकडवाकर रखदे फिर हस्तसिरा बेधन की तरह इस जगह भी वेध्यस्थान से चार अंगुल ऊंची पट्टी बंधवादे।

इसी तरह उपायमें कुशल वैद्यको उचित है कि और और स्थानों की फस्द खोलने के लिये यथायोग्य यत्रोंकी कल्पना अपनी बुद्धि से करता रहे।

मांसलदेशमें व्रीहिमुखयंत्र।

मांसले निक्षिपेद्देशे व्रीह्याख्यं व्रीहिमात्रकम्।
यवार्धमस्थ्नामुपरिसिरांविध्यन्कुठारिकाम्

अर्थ–अत्यन्त मांसयुक्त अंगपर व्रीहिमुख शस्त्रको व्रीहिके समान और अस्थिके ऊपर कुठारिका शस्त्रको आधे जौके समान प्रविष्ट करके सिराका वेधन करै।

अतिविद्धाविद्धके लक्षण।

सम्यग्विद्धे स्रवेद्धारां यंत्रे मुक्ते तु न स्रवेत्।
अल्पकालं वहत्यल्पं दुर्विद्धा तैलचूर्णनैः॥३४
सशब्दमतिविद्धा तु स्रवेद्दुःखेन धार्यते।

अर्थ–सिराके अच्छी तरह विधने पर रुधिर की धारा निकलती है और बंधन खुल जानेपर धारा बंद होजाती है, अल्पविद्ध होने पर थोडी देर स्राव होता है। अच्छी तरह विद्ध न होने पर तेल और चूर्ण लगाने से शब्द करती हुई स्रवती है। अतिविद्ध होने पर रुधिर की धारा वेग से निकलती है और कष्ट से बंद होती है।

रक्तस्राव न होने के हेतु।

भीमूर्छायंत्रशैथिल्यकुंठशस्त्रातितृप्तयः॥
क्षामत्ववेगितास्वेदा रक्तस्याऽस्रुतिहेतवः।

अर्थ–भय, मूर्च्छा, बंधन का ढीला होजाना, भोंतरा शस्त्र, अतिभोजन, दुर्बलता मलमूत्रका वेग और पसीने न लेना। इन हेतुओं से रक्तस्राव नहीं होता है। इसलिये रक्तस्राव में इनका परित्याग कर देना चाहिये।

सम्यगसम्यक् स्रावमें कर्तव्य।

असम्यगस्रे स्रवति वेल्लव्योषनिशानतैः॥३६॥
सागारधूमलवणतैलैर्दिह्याच्छिरामुखम्।
सम्यक्प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ३७

अर्थ–रुधिर का स्राव अच्छी तरह न होने पर बायविडंग, त्रिकुटा, हलदी, तगर घर का धूआं, लवण और तेल इनको मिला कर नसके मुख पर लेप करदे।

सम्यक् स्राव होने पर कुछ गरम जल तेल और नमक का लेप करदे।

दूषितरक्तका स्राव।

अग्रे स्रवति दुष्टास्रं कुसुंभादिव पीतिका।

अर्थ–जैसे लाल और पीला मिले हुए कसूम के फूल से पहिले पीला रंग निकलता है, इसी तरह बिगडे हुए और शुद्ध रक्त में से पहिले बिगडा हुआ रुधिर निकलताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुद्ध रक्तका अस्राव।

सम्यक्स्रुत्य स्वयं तिष्ठेच्छुद्धं तदिति नाहरेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–जब रुधिर अच्छी तरह झर लेता है और बिना तेल चूर्ण के ही स्वयं रुक जाता है तब जान लेना चाहिये कि अब बिगडा हुआ रुधिर नहीं रहा है। शुद्ध रक्त का स्राव कदापि न करावे क्योंकि यही जीवन का हेतु है।

मूर्च्छा में यंत्र का खोलना।

यंत्रं विमुच्य मूर्छायां वीजितेऽभ्यजनैः पुनः। स्रावयेन्मूर्छति पुनस्त्वपरेद्युस्त्रयहेऽपि वा ३९

अर्थ–जो मूर्च्छा होजाय तो बंधन खोल कर पंखेकी हवा करके रोगी को समाश्वासित करै और फिर फस्द खोलै। जो मूर्च्छा फिर होजाय तो उस दिन स्राव न कराके एक वा दो दिनके अंतरसे स्राव करावै।

वातादि दोषों से रक्त के लक्षण।

वाताच्छयावारुणं रूक्षं वेगस्राव्यच्छफेनिलम् पित्तात्पीतासितं विस्रमरुक्तैक्ष्ण्योष्ण्यतस्तनु चंद्रकम् ॥ ४० ॥

कफात्स्निग्धमसृक्पांडु तंतुमत्पिच्छिलं घनम् संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिदोषं मलिनाविलम् ४१

अर्थ–वातदूषित रुधिर श्याव और लाल रंग का रूक्षापन लिये होता है यह वेग से निकलता है तथा निर्मल झागदार होताहै।

पित्तदूषित रक्त पीला वा काला, आम गंधयुक्त, उष्णता के कारण पतला और मोर की पूंछ की चन्द्रकाओं से युक्त होताहै।

कफदूषित रक्त स्निग्ध, पांडुवर्ण, तन्तु युक्त, पिच्छिल और गाढा होता है।

दो दोषों से दूषित रक्त दो दो दोषोंके लक्षणों से युक्त होता है।

त्रिदोष दूषित रक्त मलीन और गाढा होता है तथा इसमें तीनों दोषों के पूर्वोक्त लक्षण भी रहते हैं।

अशुद्ध रक्त के स्राव का परिमाण।

अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात्स्रावयेत्परम् अतिस्रुतौ हि मृत्युः स्यादारुणा वा चलामयाः।

अर्थ–बलवान् मनुष्य का भी एक प्रस्थ अर्थात् दो सेर से अधिक स्राव नहीं कराना चाहिये (फिर निर्बल का तो कहना ही क्या है) क्योंकि अतिस्राव से दारुण बात रोग यहां तक कि मृत्युपर्यन्त होजाती है।

अतिस्रुत में उपाय।

तत्राऽभ्यंगरसक्षीररक्तपानानि भेषजम्।

अर्थ–अतिस्राव में अभ्यंग, मांसरस, दूध और रक्तपान हितकारक हैं।

रक्तस्राव का पश्चात्कर्म।

स्रुते रक्ते शनैर्यंत्रमपनीय हिमांबुना। ४२। प्रक्षाल्य तैलप्लोताक्तं बंधनीय सिरामुखम्।

अर्थ–रक्तस्राव होचुकने के पीछे बंधन को धीरे धीरे खोलकर ठंडे जल से नस के मुखको धोकर ऊपरसे तेलकी पट्टी बांधदे।

पुनः स्राव।

अशुद्धं स्रावयेद्भूयः सायमह्न्यपरेऽपि वा स्नेहोपस्कृतदेहस्य पक्षाद्वा भृशदूषितम्।

अर्थ–स्राव के पीछे भी यदि दुष्ट रुधिर के लक्षण दिखाई दें तो उसी दिन सायंकाल के समय वा दूसरे दिन फिर अशुद्ध रुधिर को निकाल डालै। अथवा रोगी की देह को स्नेह द्वारा स्निग्ध करके एक पखवारे पीछे दूषित रक्त का स्रावकरै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्रावमें संशयका प्रतीकार।

किंचिद्धि शेषे दुष्टास्रे नैव रोगोऽतिवर्तते ॥
संशमप्यतो धार्यं न चातिस्रुतिमाचरेत्।

अर्थ–जो बिगडा हुआ रुधिर थोडा रह भी जाय तौ उस दूषित रक्तमें होने वाले रोग उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ इसलिये थोडा सा दूषितरक्त रहा आवे तौ कुछ हानि नहीं क्योंकि रुधिर प्राणों का आधार है, इसलिये दुष्ट रक्तका भी अतिस्राव अच्छा नहीं है*

शेषरक्त का उपाय।

कर्तव्यं शृंगादिभिः शेषम् प्रसादमथवा नयेत् ॥
शीतोपचारपित्तास्रक्रियाशुद्धिविशेषणैः।
दुष्टरक्तमनुद्रिक्तमेवमेव प्रसादयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ–स्राव से बचेहुए दुष्ट रक्तको फस्द लगाकर न निकाले किन्तु सींगी, तूंबी, घटिका आदि से निकाले। अथवा शीतल उपचार, पित्तरक्तनाशिनी क्रिया, वमन विरेचनादि शुद्धि, वा लंघनरूप विशेषण द्वारा उस अनुद्रिक्त अर्थात् बढेहुए रक्त को प्रसन्न अर्थात् कलुषतारहित करै।

रक्त न रुकने पर स्तंभिनी क्रिया।

रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तंभनीमाचरेत्क्रियाम्।
रोध्रप्रियंगुपत्तंगमोचरसाद्यैर्वनैरिकैः ४८ ॥
मृत्कपालांजनक्षौममषीक्षीरित्वगंकुरैः।
विचूर्ण्यैवव्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥

अर्थ–जो रक्तस्राव न रुके तो तुरंतही निम्नलिखित स्तंभिनी क्रिया का प्रयोग करना चाहिये। लोध, प्रियंगु, पतंग, उरद, मुलहटी, गेरू, खीपडा, अंजन, रेशमीवस्त्र की राख, तथा बटादि दूधवाले वृक्षों की छाल और अंकुर का चूर्ण। इन सबको व्रणके मुख पर लगावै। तथा पद्मकादि गणोक्त शीतल द्रव्यों के क्वाथका पानकरे।

अन्य उपाय।

तामेव वा सिरां विध्येद्ग्रथ्यात्तस्मादनंतरम्।
सिरामुखं च त्वरित दहेत्तप्तशलाकया ॥

अर्थ–अथवा पहिले वेधस्थान से कुछ ही हटकर उसी सिरा को फिर बेधे या लोहे की गरम शलाका से सिरा के मुखको दग्ध करदे।

रक्तस्राव के पीछे का कर्म।

उन्मार्गगा यंत्रनिपीडनेन-
स्वस्थानमायांति पुनर्न यावत्।
दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं प्रपन्ना-
स्तावद्धिताहारविहारभाक्स्यात् ५१ ॥

अर्थ–यंत्रके बंधनसे अपने मार्ग को छोडकर अन्य मार्ग में गये हुए प्रदुष्ट दोष जब तक अपने अपने स्थानमें न आवें तब तक हितोत्पादक आहार विहार का सेवन उचित है।

अग्निकी रक्षाकी आवश्यक्ता।

नात्युष्णशीतं लघु दीपनीय-
रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम्।
तदा शरीरं ह्यनवस्थितास्र-
मग्निर्विशेषादिति रक्षणीयः ॥ ५२ ॥

अर्थ–रक्तके निकलने के पीछे न बहुत गरम, न बहुत ठंडा, हलका और अग्नि-संदीपन अन्नपान हितकारी होता है, क्यों कि तत्काल ही शरीरमें रक्त चलितवृत्ति

+ सुश्रुत में कहा है "रक्तं संशेषदोषंतु कुर्यादपि विचक्षणः। न चातिस्रुतं कुर्यात् शेषं संशमनैर्जयेदिति।" अर्थात् दूषित रक्त थोडा सा रहने देना चाहिये उसका अति स्राव न करै। बचे हुए को संशमनादि औषधों से सुधारले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होजाता है । यह रक्त शरीर का आधार है, रक्तका आधार पित्त है और पित्त का आधार अग्नि है, इसलिये हितकारी अन्नपान से अग्निकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि अग्निही रक्तकी उत्पत्तिका मूलकारण है ।

रोगों के स्वस्थानमें जाने के लक्षण ।

प्रसन्नवर्णेंद्रियमिंद्रियार्थी-
निच्छंतमव्याहतपक्तवेगम् ।
सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं·
विशुद्धरक्तं पुरुषं वदंति ॥ ५३ ॥

अर्थ–जिस व्यक्तिका रक्त विशुद्ध हो जाता है उसके शरीर का रंग और इन्द्रियां संपूर्ण निर्मल होजाती हैं, इन्द्रियों के दर्शन स्पर्शनादि विषयों में अभिलाषा उत्पन्न होती है, अग्निमें पाचनशक्ति बढजाती है तथा सुख, स्वच्छन्दता, शरीर में पुष्टाई और बलका संचय होता है ।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शल्याहरणाविधिमध्यायं-
व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां शल्यके निकालने की विधि वाले अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

शल्योंकी पांचगति ।

" वक्रर्जुतिर्यगूर्ध्वाधःशल्यानां पंचधा गतिः

अर्थ–शल्यों की गति पांच प्रकार की होती है । यथा, वक्रगति, ऋजुगति, तिर्यक्गति, ऊर्ध्वगति और अधोगति ।

शल्यके जाननेकी रीति ।

ध्यामं शोफं रुजावंतं स्रवंतं शोणितं मुहुः १ ॥
अभ्युद्गतं बुद्बुदवत्पिटिकोपचितं व्रणम् ।
मृदुमांसं विजानीयादंतःशल्यं समासतः ॥

अर्थ–शरीर के अवयवमें उस व्रण के भीतर शल्य जानना चाहिये जो सामान्य रीतिसे श्यामवर्ण, सूजनयुक्त, वेदनायुक्त, बारबार रुधिर झरता हो । फूलकर ऊंचेको उठा हुआ । छोटी छोटी फुंसियोंसे व्याप्त तथा कोमल मांससे युक्त हो ।

त्वचा और मांसगतशल्यके लक्षण ।

विशेषात्त्वग्गते शल्ये विवर्णः काठिनायतः ।
शोफो भवति मांसस्थे चोष्मशोफो विवर्धते ।
पीडनाक्षमता पाकः शल्यमार्गो न रोहति ।

अर्थ–जो शल्य त्वचामें हो तो विवर्ण, कठोर और लंबी सूजन होती है । मांसमें प्रविष्ट होगया हो तो सर्वांग में तीव्र दाह, सूजनका बढाव, असह्य दर्द, पाक होता है तथा व्रणका मुख पूरता नहीं है ।

पेशी, स्नायु और सिरागतशल्य ।

पेश्यंतरगते मांसप्राप्तवच्छल्यमुद्धरेत् ॥
आक्षेपः स्नायुजालस्य संरंभस्तंभवेदनाः ।
स्नायुगे दुर्हरं चैतत् सिराध्मानं सिराश्रिते ॥

अर्थ–पेशीगतशल्य के लक्षण भी मांसगतशल्य के से होते हैं । अंतर यही है कि इसमें सूजन नहीं होती है । स्नायुगत शल्य में नसें खिंच जाती है । क्षोभ, स्तब्धता और वेदना होती है, यह शल्य बडी कठिनता से निकलने में आता है । सिरागतशल्य में नसें फूल जाती हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्रोत,धमनी और अस्थिगतशल्य।

स्वकर्मगुणहानिःस्यात्स्रोतसांस्रोतासेस्थिते
धमनिस्थेऽनिलो रक्तं फेनयुक्तमुदीरयेत्॥
निर्याति शब्दवान् स्याच्च हल्लासः सांगवेदनः।
संघर्षो बलवानस्थिसंधिप्राप्तेऽस्थिपूर्णता॥

अर्थ—शल्यके स्रोतोंमें प्रविष्ट होनेसे उनके कर्म और गुणकी हानि होजाती है। धमनीगतशल्यमें वायु झागदार रक्तको बाहर निकालती है। निकलनेमें शब्द होता है। इसमें हृल्लास (जीमिचलाना) और अंगवेदना भी होती है। अस्थियों की संधिमें शल्य के जाने पर प्रबल क्षोभ और अस्थियों में भरापन होजाता है।

अस्थ्यादिगत शल्य।

नैकरूपा रुजोऽस्थिस्थे शोफः-
तद्वच्च संधिगे।
चेष्टानिवृत्तिश्च भवेत्-
आटोपः कोष्ठसंश्रिते॥ ८॥
आनाहोऽन्नशकृन्मूत्रदर्शनं च व्रणानने।
विद्यान्मर्मगतं शल्यं मर्मविद्धोपलक्षणैः ९॥
यथास्वं च परिस्रावैस्त्वगादिषु विभावयेत्॥

अर्थ—अस्थिगत शल्यमें अनेक प्रकारकी वेदना और सूजन उत्पन्न होती है।* संधिगत शल्यमें अस्थिगत शल्यके समान लक्षण होते हैं विशेषता यह है कि संधियों की चेष्टा निवृत होजाती है। कोष्ठगतशल्य में आटोप आनाह, तथा घावके द्वारा अन्न मलमूत्रादि निकलते हैं। मर्मगतशल्य में मर्मविद्ध+के से लक्षण होते हैं।

ऊपर जो जो लक्षण कहे गये हैं केवल इन्हीं से त्वगादिगत शल्य के लक्षण नहीं जाने जाते हैं किन्तु परिस्राव और रूप द्वारा भी शल्यों के लक्षण जानने चाहियें।

शल्यका रोहिणादि।

रुह्यते शुद्धदेहानामनुलोमस्थितं तु तत्।
दोषकोपाऽभिघातादिक्षोभाद्भूयोऽपिबाधते

अर्थ—वमनविरेचनादि द्वारा शुद्ध मनुष्य के देह में अनुलोमरीति से प्रविष्ट हुए शल्य का मुख पुर जाता है, किन्तु ऐसा होने से भी वातादि दोषों के प्रकोप और अभिघातादि के क्षोभ से उस में फिर पीडा होने लगती है।

त्वचा में नष्ट शल्यका परिज्ञान।

त्वङ्नष्टे यत्र तत्र स्युरभ्यंगस्वेदमर्दनैः।
रागरुग्दाहसंरंभा यत्र चाज्यं विलीयते ११
आशु शुष्यति लेपो वा तत्स्थानं शल्यवद्वदेत्

अर्थ—त्वचा के किसी अवयव में शल्य टूट गया हो और दिखाई न देता हो उस स्थान में अभ्यंग, स्वेदन और मर्दन करने से ललाई, वेदना, दाह और क्षोभ पैदा होता है अथवा उस स्थान पर गाढा घृत लगाया जाय तो वह पिघल जाता है, अथवा कोई लेप किया जाय तो वह शीघ्र

*पहिले अस्थि की संधियोंमें होने वाले व्रण के लक्षण कहे गये थे अब अनुरक्त शरीरकी संधियों के लक्षण कहे गये हैं। राजयक्ष्मा के निदान में इस का वर्णन किया जायगा।

+संग्रहमें मर्मविद्धके लक्षण कहे गये हैं। देहप्रसुप्तिर्गुरुता संमोहः शीतकामता। स्वेदो मूर्छा वमिः श्वासो मर्मविद्धस्य लक्षणं अर्थात् मर्मविद्धमें देहमें शून्यता, भारापन, मोह, ठंडीवस्तु की इच्छा। मूर्च्छा, वमन और श्वास ये लक्षण होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूख जाता है, ऐसे स्थान को ही शल्य वाला जानना चाहिये।

मांसादि में नष्ट शल्यका परिज्ञान।

मांसप्रनष्टं संशुद्ध्या कर्षणाच्छ्लथतांगतम्
क्षोभाद्व्यागादिभिः शल्यं लक्षयेत्-
तद्वदेव च।
पेश्यस्थिसंधिकोष्ठेषु नष्टम्-
अस्थिषु लक्षयेत् ॥ १३ ॥
अस्थ्नाभ्यंजनस्वेदव्यधपीडनमर्दनैः।
प्रसारणाकुंचनतः संधिनष्टं तथाऽस्थिवत्॥
नष्टे स्नायुशिरास्रोतोधमनिष्वसमे पथि।
अश्वयुक्तं रथं खण्डचक्रमारोप्य रोगिणम् ॥
शीघ्रं नयेत्ततस्तस्य संरंभाच्छल्यमादिशेत्।
मर्मनष्टं पृथङ्नोक्तं तेषां मांसादिसंश्रयात् ॥

अर्थ—जो शल्य मांस में टूटकर दिखाई न देता हो तो वह स्थान वमनविरेचनादि संशुद्धिरूप कर्षण क्रियाओं द्वारा शिथिल होजाता है अथवा अनेक प्रकार के क्षोभ, वेदना और ललाई द्वारा वह स्थान पहंचाना जाता है।

पेशी, अस्थि, संधि और कोष्ठ में गये हुए अदृष्ट शल्य की परीक्षा भी इसी रीति से होती है।

अस्थि में टूटा हुआ अदृश्य शल्य अभ्यंग, स्वेदन, बंधन, पीडन, मर्दन, प्रसारण (पसारना), आकुंचन (सकोडना) द्वारा जाना जाता है।

संधि में नष्ट शल्य की परीक्षा अस्थिगत शल्यकी रीति से की जाती है।

स्नायु, शिरा, स्रोत, और धमनी में टूटे हुए अदृश्य शल्यका स्थान पहंचानने की रीति यह है कि रोगी को टूटे हुए पहिये के रथ में बैठाकर घोड़े जोत कर ऊंचे नीचे मार्गों में होकर स्थानान्तर को लेजाय तो रथ के क्षोभ से शल्य का स्थान मालूम हो जायगा।

मर्मगत शल्य की परीक्षा का पृथक् वर्णन नहीं किया गया है क्योंकि मर्म मांसादि संश्रित हैं, इसलिये मांसादिगत शल्यों की जो परीक्षा पहिले कही गई है उसी के अनुसार मर्मगत शल्यों की परीक्षा भी जान ली जाती है।

शल्य स्थान की सामान्य परीक्षा।

सामान्येनसशल्यं तु क्षोभिष्याक्रियया सरुक्

अर्थ—सामान्य रीति से श्वास के खींचने निकालने और प्राणायामादिक क्षोभ उत्पन्न करनेवाली क्रियाओं से जहां दर्द होने लगता है वही शल्य का स्थान जान लिया जाता है।

अदृष्टशल्य की आकृति।

वृत्तं पृथु चतुष्कोणं त्रिकुटं च समासतः १७
अदृश्यशल्यसंस्थानं व्रणाकृत्या विभावयेत्।

अर्थ—आकृतिसे अर्थात् क्षत का मुख गोल है वा स्थूल है, चतुष्कोण है कि त्रिकोण है, इन बातों को देखकर अदृष्ट शल्य की आकृति पहंचानी जाती है।

शल्याकर्षण के उपाय।

तेषामाहरणोपायौ प्रतिलोमानुलोमकौ १८॥
अर्वाचीनपराचीने निर्हरेत्तद्विपर्ययात्।
सुखाहार्यं यतश्छित्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत्॥

अर्थ—अदृश्य शल्यों के निकालनेके प्रतिलोम और अनुलोम दो उपाय हैं। ओंधे वा सीधे मुखों से प्रविष्ट हुए शल्यों को विपरीत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रीति से निकाले अर्थात् जो शल्य औंधे मुख घुसे हैं उनको प्रतिलोम रीति से और जो ऊर्ध्वमुख घुसे हैं उनको अनुलोम रीति से खींचे, टेढे घुसे हुए शल्य मांस को चीरकर सुखपूर्वक निकाल लिये जाते हैं।

अनिर्घातनीय शल्य ।

शल्यं न निर्घात्यमुरः कक्षावक्षणपार्श्वगम्।
प्रतिलोममनुत्तुंडं छेद्यं पृथुमुखं च यत् २०॥

अर्थ—उर, कक्षा, वक्षण, पसलीके शल्यों को तथा प्रतिलोमगामी और अनुत्तुंड अर्थात् जो फूलकर ऊपर को न उठे हों, जो छेदन करने के योग्य हो और जिनका मुख फैलगया हो ऐसे शल्य निर्घातन अर्थात् इधर उधर हिलाकर निकालने के योग्य नहीं है।

न निकालने योग्य शल्य ।

नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुपद्रवम्।

अर्थ-विशल्यघ्न शल्य जिसके निकालनेसे मनुष्य मरजाता है वा निरुपद्रव शल्य जिस के शरीर में रहने से किसी प्रकार का रोग नहीं होताहै ऐसे शल्यको निकालना उचित नहीं है।

हस्तादि में लगेहुए शल्योंका निकालना।

अथाऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव-
दितरत्पुनः ॥ २१ ॥
दृश्यं सिंहाहिमकरवृश्चिकर्कटकाननैः।

अर्थ—हस्तप्राप्य शल्य को हाथही से निकालडाले कंकमुखादि यंत्रों का प्रयोग न करै। जो हस्तप्राप्य नहीं है और दिखाई देते हैं उनको सिंह मुखादि यंत्रों से निकाले।

अदृश्य शल्यों के यंत्र ।

अदृश्यव्रणसंस्थानाद्गृहीतुं शक्यते यतः॥
कंकभृंगाहवक्रुररशरारीवायसाननैः।

अर्थ—अदृश्य शल्य जो व्रणके स्थान से पकड़ने के योग्य हों उनको कंकास्य, भृंगास्य, कुररीमुख, शरारीमुख और काकमुखादि यंत्रों से पकड़कर खींचना चाहिये।

अन्य यंत्रोंका प्रयोग ।

संदंशाभ्यां त्वगादिस्थम्-
तालाभ्यां शुषिरं हरेत्।
शुषिरस्थं तु नलकैः
शेषं शेषैर्यथायथम्।

अर्थ—त्वचा, सिरा, स्नायु और मांस शल्यों को संदंश यंत्र से तथा त्वगादि में स्थित सछिद्रशल्य को तालयंत्रोंसे, छिद्रमें स्थित शल्य को नाडी यंत्रोंसे तथा शेष शल्योंको उन उनके योग्य यंत्रोंसे निकाले।

शस्त्र से छेदन ।

शस्त्रेण चाधिशस्याऽऽदौततोनिर्लोहितं व्रणम्
कृत्वा घृतेन संस्वेद्यबध्वाऽऽचारिकमादिशेत्

अर्थ—प्रथम शस्त्र से मांसादि को काट कर व्रणके मुखसे रक्त निकाल कर घृत से स्वेदन करके कपडे की पट्टी बांधकर स्नेह विधिमें कहे हुए संपूर्ण नियमों का पालन करावे।

सिरादिस्थ शल्यों का निकालना।

सिरास्नायुविलग्नं तु चालयित्वा शलाकया।
हृदये संस्थितं शल्यं श्वासितस्य हिमांबुना।
ततः स्थानांतरं प्राप्तमाहरेत्तद्यथायथम्॥
यथामार्गं दुराकर्षमन्यतोऽन्येवमाहरेत्।

अर्थ—शिरा और स्नायु में लगे हुए शल्य को शलाका से ढीला करके निकाले।

हृदयमें लगे हुए शल्यको शीतल जलके तरेडे से सेचन करके रोगी को श्वासित करके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शल्य के स्थानान्तर में हटने पर यथोपयुक्त यंत्र से निकाले।

इसी तरह अन्यस्थान में लगे हुए दुरुत्कर्ष शल्यों को भी किसी उपाय से स्थानांतरित करके खींचने का यत्न करे।

अस्थ्यादि के शल्यों को निकालनेकी रीति

अस्थिदृष्टे नरं पद्भ्यां पीडयित्वा विनिर्हरेत्
इत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य वा नरैः।
तथाऽप्यशक्ये वारंगं वक्रीकृत्य धनुर्ज्यया।
सुबद्धं वक्त्रकटके वध्नीयात्सुसमाहितः।
सुसंयतस्य पंचांग्या वाजिनः कक्ष्यया ऽथ तम्
ताडयेदिति मूर्धानं वेगेनोन्नमयन् यथा।
उद्धरेच्छल्यम्

एवं वा शाखायां कल्पयेत्तरोः
बध्वा दुर्बलवारंगं कुशाभिः शल्यमाहरेत्।
श्वयथुग्रस्तवारंगं शोफमुत्पीड्य युक्तितः।

अर्थ–अस्थि में जो शल्य दिखाई देता हो तो बलवान् रोगी को पांवों से पीडन करके यंत्रद्वारा शल्य को पकडकर जोर से खींचले। इस तरह न निकल सके तो बलवान नौकरों से रोगी को अच्छी तरह पकडवा कर कंकमुखादियंत्रों द्वारा शल्य को पकड़ कर खींच लेना चाहिये।

इस रीति से भी शल्य न निकले तो धनुषको नवाकर उसकी प्रत्यंचा से वारंग (शल्यादिमय शल्यकी शिखा के आकार वाली कीलक) को अच्छी तरह बांधकर धनुषको छोड देने से शल्य बाहर निकल आवेगा अथवा पंचांगी बंधन (चारों हाथ पांव और मुखका बंधन) से घोड़े को बहुत सावधानी से बांधकर उसकी लगाम में शल्य को ऊपर लिखी हुई रीति से बांध दे और चाबुक से घोडे को मारे ज्योंही घोडा वेग से अपनी गरदन उठावेगा, शल्य निकलकर बाहर जा पडेगा, अथवा पेडकी डाली को झुकाकर शल्य को उससे बांधकर डाली को छोडदे ज्योंही डाली ऊपर को उठेगी शल्य निकल जायगा।

दुर्बल शल्य वारंग कुशाओं से बांधकर निकालना चाहिये। जिस वारंग के ऊपर सूजन आगईहो तो सूजनको युक्तिपूर्वक ऊँचे को उत्पीडन करके शल्यको खींचले।

फूलेहुए शल्यका निकालना।

मुद्गराहतया नाड्या निर्घात्योत्तुंडितं हरेत्।
तैरेव चाऽनयेन्मार्गमार्गोत्तुंडितं तु यत्॥

अर्थ–मुद्गर वा पाषाणादि से कुटे हुए बुलबुले के समान उठेहुए शल्यको नाडी यंत्र से पकड कर निकाले, अथवा अमार्ग में गये हुए शल्यको उक्त रीतिसे मार्गमें लाकर निकाले।

अन्यरीति।

मृदित्वा कर्णिनां कर्णं नाड्यास्येन निगृह्य वा
अयस्कांतेन निष्कर्ण विवृतास्यमृजुस्थितम्

अर्थ–कर्णिकावाले शल्य के कर्णों को दूर करके पंचमुख छिद्रवाले नाडीयंत्र से पकड़कर बाहर निकाले। विना कर्णवाले शल्य को जिसका मुख खुला हो ऋजुभाव में अवस्थित शल्य को अयस्कांत अर्थात् चुंबक पत्थर से निकाले।

विरेकचूषणादि से निकालना।

पक्वाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत्।
दुष्टवातविषस्तन्यरक्तलोयादिचूषणैः॥

अर्थ–पक्वाशयगत शल्य को विरेचन से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुष्टवात, विष, दूध, रक्त और जलरूप शल्य को चूषणद्वारा निकाले।

कंठस्रोतोगत शल्य।

कंठस्रोतोगते शल्ये सूत्रं कंठे प्रवेशयेत्।
बिसेनात्ते ततः शल्ये बिसं सूत्रं समं हरेत्।

अर्थ-कंठस्रोतोगत शल्यमें एक सूत को मृणाल सहित प्रविष्ट करै जब मृणाल कंठस्थ शल्यमें चिपट जाय तब डोरा, मृणाल और शल्य सबको एक साथ खींचले।

अन्यशल्य।

नाड्याऽग्नितापितांक्षिप्त्वा शलाकामास्थिरीकृताम्।
आनयेज्जातुषं कंठात्
जतुदिग्धामजातुषम्॥

अर्थ-लाख का शल्य कंठ में गत होने पर एक लोहे की सलाई को अग्नि में तपाकर जल में बुझाकर नाडी यंत्र में रखकर कंठ में प्रविष्ट करके लाख के शल्य को खींचले। यदि यह शल्य लाखका न हो और तृण काष्ठादि का हो तो लाखको सलाई पर लगाकर कंठ में से शल्य को निकाले।

केशगुच्छ से शल्यनिकालना।

केशोदुकेन पीतेन द्रवैः कंटकमाक्षिपेत्।
सहसा सूत्रबद्धेन वमतः तेन चेतरत्॥

अर्थ-मछली आदि के मांस के साथ कंटक कंठ में चला जाय तो पानी आदि पतले पदार्थ के साथ बालों का गुच्छा गले के भीतर प्रविष्ट करै और इस तरह वमन करावै इससे कंठ का कंटक बाहर निकल आवेगा। इसी तरह और और शल्यों को भी निकाले।

मुखनासिका और कंठके शल्य।

अशक्यं मुखनासाभ्यामाहर्तुं परतो नुदेत्।
अप्यानस्कंधघाताभ्यां ग्रासशल्यं प्रवेशयेत्॥

अर्थ-मुख और नासिका में लगा हुआ शल्य यदि बाहर न निकल सकै तो जिस तरह हो सके उसे कोष्ठके भीतर लेजाकर बाहर निकालने का यत्न करे। कंठ में जो ग्रास अटक गया हो तो जल पीकर या कंधों को थपथपा कर भीतर को प्रवेश करै

अक्षिगत शल्य।

सूक्ष्माक्षिव्रणशल्यानि क्षौमबालजलैर्हरेत्।

अर्थ-आंख और व्रण के स्थान में जो बहुत सूक्ष्म शल्य घुस गया हो तो उसे रेशमी वस्त्र, बाल वा जल के तरङ्ग से दूर करने का यत्न करै।

उदरसेजल निकालना।

अपां पूर्णे विधुनुयादधाकिंशिरसमायतम्॥
वामयेद्वाऽऽमुखं भस्मराशौ वा निखनेन्नरम्

अर्थ-जो जलमें न्हाने, डूबने वा तैरने से पेटमें जल भर जाय तो मनुष्यका सिर नीचा और टांगे ऊंची करके हिलाकर वमन करादेवै अथवा मुखतक राखके ढेरमें दाबदे।

कानसे जल निकालनेका उपाय।

कर्णेऽम्बुपूर्णे हस्तेन मथित्वा तैलवारिणी॥
क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वा चूषयेत वा।

अर्थ-कानमें जल भर गया हो तो उस में तेल और जल मिलाकर भरदे और कान को औंधा करके ऊपर से थप्पी लगावै अथवा कपडे की बत्ती भीतर प्रवेश करके जल को चूसले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कानसे कीडे निकालना ।

कीटे स्रोतोगते कर्णे पूरयेल्लवणांबुना ॥
शुक्तेन वा सुखोष्णेन मृते क्लेदहरो विधिः ।

अर्थ–जो चींटी मच्छर आदि कोई जीव कानमें घुस गया हो तो नमक और तेल मिलाकर अथवा थोडी गरम कांजी को कान में भरदे । ऐसा करने से जब कीडा मरजाय तब कानके भीतरसे पानी निकालनेके उपायों से कान को साफ करदे ।

लाखके शल्यका निकालना ।

जातुषं हेमरूप्यादिधातुजं च चिरस्थितम् ॥
ऊष्मणा प्रायशः शल्यं देहजेन विलीयते ।

अर्थ–लाख अथवा सोने चांदी आदि धातुओं का शल्य बहुत दिनतक रहने से देहकी गरमीद्वारा ही पिघल जाता है ।

काष्ठादिशल्यका न निकलना ।

मृद्वेणुदारुशृंगास्थिदंतवालोपलानि च ॥
शल्यानि न विशीर्यंते शरीरे मृन्मयानि वा ।

अर्थ–मृत्तिका, बांस, लकडी, सींग, हड्डी दांत, बाल, पत्थरकाटुकडा और मृत्तिका के अन्य शल्य शरीरकी गरमीसे नहीं पिघलते हैं

विषाणादि शल्यका अविलयन ।

विषाणवेणवयस्तालदारुशल्यं चिरादपि ॥
प्रायो निर्भुज्यते तद्धि पचत्यासु पलासृजौ ।

अर्थ–सींग, बांस, लोहा और तालकाष्ठ का शल्य दीर्घकालमें भी नहीं पिघलता है। यह बहुत जल्द मांस और रक्तको पका देता है और देहकी ऊष्मा द्वारा प्रायःही बाहर निकलता है ।

मांसावगाढ शल्यका निकालना ।

शल्ये मांसावगाढे च स देशो न विदह्यते ।
ततस्तं मर्दनस्वेदशुद्धिकर्षणबृंहणैः ।
तीक्ष्णोपनाहपानान्नघनशस्त्रपदांकनैः ।
पाचयित्वा हरेच्छल्यं पाटनैषणभेदनैः ।

अर्थ–शल्य जब मांसके बहुत भीतर घुसजाय और वहां वह न पके तो उसे मर्दन, स्वेदन अथवा कदाचित् वमनविरेचनादि शुद्धिद्वारा, कदाचित् कर्षणक्रिया, कदाचित् बृंहण, कदाचित् तीक्ष्ण उपनाह, कदाचित् तीक्ष्ण अन्नपान, कदाचित घनशस्त्रों के पदोंसे अंकन द्वारा इस स्थानको एकाकर पाटन, एषण और भेदनादि उपायों से निकाल डाले ।

शल्य निकालने में ज्ञान ।

शल्यप्रदेशयंत्राणामवेक्ष्य बहुरूपताम् ।
तैस्तैरुपायैर्यतिमान् शल्यं विद्यात्तथा हरेत् ।

अर्थ-अनेक प्रकार के धातु सींग बांस आदि के शल्य, त्वचा मांसादि शल्य के अनेक स्थान और स्वस्तिकादि अनेक यंत्र इन सबके अनेक रूप और अनेक आकारों को जानकर बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि उक्त और अनुक्त उपायों से जैसे हो सके तैसे शल्यको निकालने का यत्न करै। संग्रह में लिखा है "व्रणे प्रसन्ने प्रान्तेषुनातिस्पर्शसहिष्णुषु । अल्पेशोफे च तापेचानिः शल्यमिति निर्दिशेत् ,,

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शल्यकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अब हम यहां से शस्त्रकर्म विधि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

सूजन का उपचार।

व्रणःसंजायते प्रायःपाकात्क्षयसमुद्भवात्॥
तमेवोपचरेत्तस्माद्वक्ष्यमाणं प्रयत्नतः॥
सुशीतलेपसेकाद्यैरसृग्मोक्षसंशोधनादिभिः।

अर्थ–प्रायः प्रथम सूजन होती है और फिर सूजनके पकने पर घाव होजाता है (कभी कभी शस्त्रादि की चोटसे भी घाव होजाता है इसीलिये प्रायः शब्दका प्रयोग किया गया है) अतएव शीतस्पर्श और शीतवीर्य लेप और परिषेक रक्तमोक्षण, वमनविरेचनादि संशोधन (आदि शब्द से कषायपान और घृतपानादिका भी ग्रहण है) द्वारा पाकको रोकने के लिये यत्नपूर्वक सूजनकी चिकित्सा करै।

आम शोफका लक्षण।

शोफोऽल्पोऽल्पोष्णरुक्सामः सवर्णः कठिनः स्थिरः॥

अर्थ–सूजन की तीन अवस्था होती हैं (१) आम, [२] पच्यमान और [३] पाकावस्था। इनमें से आम शोफ [कच्ची सूजन] प्रमाण में अल्प अर्थात् कम फूली हुई, कम गरम और कम वेदनावाली होती है, इसकारंग भी त्वचाके रंगके सदृश होता है, कठोर होती है और पकीहुई की तरह स्थिर रहती है अर्थात् हिलती डुलतीनहीं है।

पच्यमान शोफका लक्षण।

पच्यमानो विवर्णस्तु रागी बस्तिरिवाततः।
स्फुटतीव सनिस्तोदः सांगमर्दविजृंभिकः।
सरंभार्तिर्विदाहोषातृड्ज्वरानिद्रतान्वितः।
स्यात्तं विध्येदयत्नाज्ज्यं व्रणवत्स्पर्शनासहः।

अर्थ–पच्यमान शोफ (जो सूजन पकने लगती है) का रंग त्वचाके समान नहीं रहता, लाल रंग की होजाती है और मशक की तरह फूल जाती है, उसमें सुई छिदने की सी वेदना होने लगती है, शरीर में अंगडाई और जंभाई आने लगती है, संरंभ (अंगपीडन, विघट्टन, छेदन, दंशन आदि अनेक प्रकारकी वेदना), अरुचि, सर्वांगमें होनेवाला तीव्र दाह, उषा (अरतियुक्त दाह), तृषा, ज्वर, अनिद्रा ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। व्रणकी तरह सूजन हाथके लगाने को नहीं सह सकती है, इस के ऊपर गाढा घृत रखदिया जाय तो वह पिघल जाता है।

शोफकी पक्कावस्था।

पक्वेऽल्पवेगताग्लानिः पांडुता वलिसंभवः।
तामोऽतेवूष्मतिर्मध्ये कंडूशोफादिमार्दवम्॥
स्पृष्टे पूयस्य संचारो भवेद्वस्तावितीभसः।

अर्थ–सूजन के पकजाने पर वेदना कम होजाती है, ग्लानता उत्पन्न होती है, त्वचा का रंग पीला पडकर खाल सुकडजाती है, किनारों पर निचाई और बीच में ऊंचाई होजाती है, खुजली और सूजनमें कमी हो जाती है, ये सब लक्षण सूजनके पकने पर होते हैं तथा जैसे जल से भरी हुई मशक में दबाने से जल इधर उधर डोलने लगता है वैसे ही इसे दबाने से पीव इधर उधर फिरने लगता है।

अनिलादि बिना शूलादि असंभव।

शूलंनतेऽनिलाद्दाहःपित्ताच्छोफःकफोदयात्
रागो रक्ताच्च पाकः स्यात्ततो दोषैःसशोणितैः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–वायुके विना वेदना, पित्तके विना दाह, कफके विना सूजन, और रक्तके विना राग (ललाई) नहीं होती है, इसलिये रक्त और कफादिक तीनों दोष प्रकुपित होकर शोथ का पाक करते हैं ।

अत्यन्त पाकमें छिद्रादि ।

पाकेऽतिवृत्ते सुषिरस्तनुत्वबन्दोषभक्षितः ।
वलीभिराचितः श्यावः शीर्यमाणतनूरुहः ।

अर्थ–शोफका पाक अत्यन्त होजाने से भीतर पडा हुआ पीव स्नायु और मांसादिक को दूषित कर देता है, सूजनमें छिद्र होजाते हैं, वहां की त्वचा पतली पडजाती है, झुर्रियां पडजाती हैं, और रंग काला होजाता है और रोम गिरपडते हैं ।

रक्तपाक के लक्षण ।

कफजेषु तु शोफेषु गंभीरं पाकमेत्यसृक् ॥
पक्वलिंगं तलोऽस्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ।
त्वक्सावर्ण्यरुजोऽल्पत्वंघनस्पर्शत्वमश्मवत्
रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ।

अर्थ–कफज शोफ में रक्तका बडा गंभीर पाक होता है, पक्व के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, इसलिये पक्व और अपक्व सूजन का मालूम करना कठिन होजाता है परंतु यदि सूजन ठंडी हो, त्वचा समानवर्ण, दर्द कम और छूने में पत्थरके समान कठोर हो तो समझदार वैद्य निःसंदेह होकर इसे रक्तपाक कहते हैं । यह शोफपाक नहीं कहलाता है ।

सूजनमें दारणादि ।

अल्पसत्वेऽबले बाले पाके चाऽत्यर्थमुद्धते ॥
दारणं मर्मसंध्यादिस्थिते चाऽन्यत्र पाटनम् ।

अर्थ–अल्पसत्व, दुर्बल और बालक इन की सूजन में अथवा जिस सूजन का पाक अतिक्रान्त हो गया हो और जो सूजन मर्म और संधि आदि स्थानों में उत्पन्न हुआ हो ऐसी सूजनों में अस्त्र का प्रयोग न कर के गूगल, अलसी, गोदंती, स्वर्ण क्षीरी, कबूतरकी बीट, क्षार औषध और क्षार इन दवाओं को लगाकर सूजन को विदीर्ण कर डाले, अन्य स्थानों में अस्त्र का प्रयोग करै ।

आमशोफके छेदन में उपद्रव ।

आमच्छेदे सिरास्नायुव्यापदोसृग्गतिस्रुतिः ॥
रुजोऽतिवृद्धिर्दरणं विसर्पो वा क्षतोद्भवः ।

अर्थ–आमशोफ अर्थात् कच्ची सूजन का अस्त्र से छेदन करने में सिरा और स्नायु में विकार होते हैं, रक्त बहुत बहने लगता है, तीव्र वेदना, विदरण वा घाव से उत्पन्न विसर्प उत्पन्न होते हैं ।

अंतस्थ पूयको सिरादाहकता ।

तिष्ठन्तः पुनः पूयः सिरास्नाय्वसृगामिषम् ॥
विवृद्धो दहति क्षिप्रं तृणोलपमिवानलः ।

अर्थ–जो पूय भीतर रह जाती है वह भीतर ही भीतर फैलकर सिरा, स्नायु, रक्त और मांस को ऐसे दग्ध कर देती है जैसे अग्नि तिनुकों के ढेर को जला देती है ।

असमीक्षाकारी वैद्यकी निंदा ।

यश्छिनत्त्यामममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते १३
श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ।

अर्थ–जो वैद्य कच्चे शोफ को चीर देते हैं और पके हुए की उपेक्षा करते हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ये दोनों ही चांडाल के तुल्य समझने चाहियें।

शस्त्रकर्म से पूर्व कर्तव्य।

प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम् १४।
पानपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनाक्षमः।
न मूर्छेत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते १५
अन्यत्र मूढगर्भाश्मसुस्वरौदरिणोदरात्।

अर्थ–शस्त्रकर्म करने से पहिले रोगी को अन्न का भोजन करादे जो शस्त्र कर्म की वेदना सहने में असमर्थ हो और मद्यपी भी हो तो उसे तेज नशावाली शराब पिला दे इससे ऐसा करने से अन्न के बल के द्वारा उसे मूर्च्छा न होगी और मद्यके नशे में उसे शस्त्रकर्म की वेदना का ज्ञान न होगा। किन्तु मूढगर्भ, अश्मरी, और उदर रोगों में भोजन वा मद्यपान का निषेध है।

शस्त्रकर्म की विधि।

अथाऽहृतोपकरणं वैद्यः प्राङ्मुखमातुरम्॥
संमुखो यंत्रयित्वाऽङ्गुल्यस्येन्मर्मादि वर्जयन्
अनुलोमं सुनिशितं शस्त्रमाशूपदर्शनात् १७
सकृद्वाऽऽहरेत्तज्ज्ञ-
पाके तु सुमहत्यपि।
पाटयेद्द्व्यंगुलं सम्यग्द्व्यंगुलव्यंगुलांतरम्
एषित्वा सम्यगेषिण्या परितः सुनिरूपितम्
अंगुलीनालवालैर्वा यथादेशं यथाशयम् १९

अर्थ– * शस्त्र प्रयोग के समय उपयुक्त यंत्र शस्त्रादि सब प्रकार की सामिग्री इकट्ठी करके रोगी का मुख पूर्व की ओर करादे और वैद्य पश्चिमाभिमुख बैठकर व्रणस्थान को सुयंत्रित करके पैने शस्त्रको बहुत शीघ्र लगादे देर न करै। शस्त्र प्रयोग के समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि मर्मस्थान, सिरा, स्नायु, संधिस्थान की अस्थि वा धमनी पर किसी प्रकार की जोखम न पहुंचे। प्रयुक्त शस्त्र अनुलोमगति से लगावे जब तक पीव दिखाई न दे पीव दिखाई देते ही शीघ्र खेंच लेना चाहिये।

बडे पाक में दो अंगुल तक अस्त्र का प्रयोग करै इस से अधिक न करै जो दुबारा शस्त्र प्रयोग की आवश्यकता हो तो पहिले स्थान से अथवा अंगुलिनल वा वराहादि के बालों से व्रण के चारों ओर अच्छी तरह देखले और यथादेश और यथा आशय पीव के स्थान तक शस्त्र चलावै।

व्रण का प्रदेश।

यतो गतांगतिं विद्यादुत्संगो यत्र यत्र च।
तत्र तत्र व्रणं कुर्यात्सुविभक्तं निराशयम् २०
आयतं च विशालं च यथा दोषो न तिष्ठति।

अर्थ–जितनी दूर तक नाडी की गति हो वहां तक घाव करदे, जहां जहां जगह ऊंची हो वहां वहां भी घाव करदे ये घाव अच्छी रीति से इधर उधर विभक्त हों, तथा पूयादि दोष का स्थान न रहै तथा लंबा और चौडा भी करदे जिससे पूयादि दोष को रहने को स्थान न मिले।

---

* मूल में प्रथम ही अथ शब्द दिया गया है इसका यह प्रयोजन है कि शुभ मुहूर्त में दही, अक्षत, अन्नपान, रुक्म रत्नादि से ब्राह्मण का पूजन करै और इष्ट देवता को नमस्कार करके यंत्रशस्त्र, जांघबोछ, रुई, काडे की पट्टी घृत, शहत, कल्कादि समयोचित सामिग्री एकत्र करके पास रखले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैद्य का शस्त्रकर्म में शौर्यत्व।

शौर्यमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमस्वेदवेपथुः ॥
असंमोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ।

अर्थ—शस्त्र कर्म में प्रवृत्त होने वाले चिकित्सकके लिये इतनी बातोंकी आवश्यकता है (१) शौर्य (शस्त्रका प्रयोग करने में धैर्य अर्थात् दृढता), (२) आशुक्रिया (शस्त्र चलाने में शीघ्रता पूर्वक चतुराई), (३) तीक्ष्ण शस्त्र, (४) अस्वेदवेपथु (व्रण को देखकर घबडाहट से पसीने न आवें और हाथ न कांपे) (५) असंमोह (तत्कालोचित काम करने में सम्यक् प्रवृत्ति)।

तिर्यक छेदन के योग्यस्थान।

तिर्यक्छिद्याल्ललाटभ्रूदंतवेष्टकजत्रुणि २२ ॥
कुक्षिकक्षाक्षिकूटौष्ठकपोलगलबंक्षणे ।
अन्यत्र छेदनात्तिर्यक्सिरास्नायुविपाटनम् ॥

अर्थ—ललाट, भृकुटी, मसूडा, जत्रु (हंसली), कुक्षि, कक्षा, अक्षिकूट, ओष्ठ, कपोल, गला और बंक्षण इनमें शस्त्र का प्रयोग तिरछी रीति से करै। किन्तु इन को छोडकर अन्य स्थान पर तिर्यक छेदने से सिरा और स्नायुओं में व्यापत्ति होना संभव है।

शस्त्र कर्म में रोगी को आश्वासन।

शस्त्रेऽवचारिते वाग्भिः शीतांभोभिश्च
रोगिणम् ।
आश्वास्य परितोऽगुल्या परिपीड्य व्रणंततः
क्षालयित्वा कषायेण प्लोतेनांभोऽपनीय च ।
गुग्गुल्वगुरुसिद्धार्थहिंगुसर्जरसान्वितैः २५॥
धूपयेत्पटुपट्टैथानिंवपत्रैर्घृतप्लुतैः ।

अर्थ—शस्त्रका प्रयोग करने के पीछे मधुर मधुर वाक्यों से तथा रोगी की आंख और मुख पर शीतल जल लगाकर रोगी को आश्वासन दे। फिर अपनी उंगली से व्रण को चारों ओर से दाव दावकर पूयादि दोष को निकालदे फिर मुलहटी आदि से सिद्ध किये हुए काथ से व्रण को धोकर वस्त्रके टुकडे से जल पोंछकर गूगल, अगर, सफेद सरसों, हींग, राल, लवण, पीपलामूल, और नीम के पत्ते इन सब की धूनी-वना घीमें सानकर अग्निपर रखकर व्रणस्थान को धूनी दे।

घाव में बत्ती का प्रवेश।

तिलकल्काज्यमधुभिर्यथास्वं भेषजेन च २६
दिग्धां वर्तिं ततो दद्यात्तैरेवाऽच्छादयेच्च तम्।

अर्थ—पीछे तिलका कल्क, घृत और मधु, इनसे सानकर रुई की बत्ती घाव के भीतर भरदे। वातव्रण में तिल के कल्क से, पित्त व्रण में घृत से और कफ व्रण में शहत से सानकर बत्ती का प्रयोग करै। कोई २ कहते हैं कि कल्कादि तीनों द्रव्य ही में सानकर बत्ती लगावे और बत्ती को उन्हीं द्रव्यों के कल्क से ढक दे।

घाव का पीछे का कृत्य।

घृताक्तैः सक्तुभिश्चोर्ध्वम्-
घनां कवलिकां ततः ॥ २७ ॥
निधाय युक्त्या बध्नीयात्पट्टेन सुसमाहितम्।
पार्श्वे सव्येऽपसव्ये वाऽनाऽधस्तानैव चोपरि

अर्थ—पीछे अधभुने जौ का सत्तू घी डालकर पानी में लपडी बनाकर ऊपर से रखदे और उसके ऊपर कपडे की पट्टी बहुत सावधानी से बांधदे। ये पट्टी दांहे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वा बांये पसवाडों से बांधी जाती हैं घाव के ऊपर वा नीचे नहीं बांधी जाती हैं।

घाव में पट्टी आदिका फल।

शुचिसूक्ष्मदृढाः पट्टाः कवल्यः सविकेशिकाः
धूपिता मृदवःश्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः॥

अर्थ—साफ, पतली और मजबूत कपड़े की पट्टी घावमें हितकारी होती है तथा धूपित मृदु, श्लक्ष्ण और सलवटों से रहित कवलिका व्रणमें हितकारी होती है।

व्रणका रक्षण।

कुर्वीताऽनंतरं तस्य रक्षां रक्षोनिषिद्धये।
बलिं चोपहरेत्तेभ्यः-
सदा मूर्ध्नाऽवधारयेत्॥ ३०॥
लक्ष्मीं गुहामतिगुहां जटिलां ब्रह्मचारिणीम्।
पचं छत्रामतिच्छत्रां दूर्वां सिद्धार्थकानपि।

अर्थ—फिर उस व्रण की रक्षा के निमित्त मांसाहारी राक्षसों के निवारणार्थ बलि प्रदान करै, तथा पद्मचारिणी, पृश्निपर्णी शालिपर्णी, जटामांसी, ब्राह्मी, बच, सोंफ विषाणिका, दूब और सफेद सरसों इनको सदा मस्तक पर धारण करै।

गरम जल के उपचारादि।

ततः स्नेहदिनेहोक्तं तस्याऽचारं समादिशेत्।

अर्थ—तदनंतर स्नेहपान के दिन में जो जो उपचार कहे गये हैं उन सब के प्रतिपालन का उपदेश करै अर्थात् उष्णोदक उपचार का पालन करै।

व्रण में वर्ज्यकर्म।

दिवास्वप्नो व्रणे कंडूरागरुक्शोफपूयकृत्।
स्त्रीणां तु स्मृतिसंस्पर्शदर्शनैश्चालितं सुते।
शुक्रे व्यवायआमदोषानसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात्

अर्थ—दिन में सोने से घाव में खुजली, ललाई, वेदना, सूजन और पीव बढजाती है इस लिये दिन में न सोना चाहिये तथा स्त्रियों के स्मरण करने से, स्पर्श से देखने से वीर्य अपने स्थान से चलित होकर झरजाता है इस लिये स्त्रीसंसर्ग न होने पर स्त्रीसंग से उत्पन्न हुए दोष पैदा होजाते हैं इसलिये घाववाले के पास स्त्रियों को न आने दे।

घाव में भोजनादि।

भोजनं तु यथासात्म्यं यवगोधूमषष्टिकाः।
मसूरमुद्गतुवरीजीवंतीसुनिषण्णकाः।
अलमूलकवार्ताकतंडुलीयकवास्तुकम्।
कारवेल्लककर्कोटपटोलकटुकाफलम्॥
सैंधवं दाडिमं धात्री घृतंतप्ताहिमं जलम्।
जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम्।
भुंजानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति।

अर्थ—व्रणरोगी को यथासात्म्य अपने अपने अनुकूल भोजन करना चाहिये, जौ, गेंहूं, साठीचांवल, मसूर, मूंग, अरहर, जीवंती (जेंती का शाक) चौपतिया, कच्ची मूली, बेंगन, चौलाई, बथुआ, करेला, ककोडा, परवल, कंकोल, सेंधानमक, अनार, आंवला, घृत, गरम करके शीतल किया हुआ जल, थोडासा पुराने चांवलों का भात, घी डालकर चिकना, थोडा गरम और यूषादि पतले पदार्थों से मिला हुआ जांगलमांस के साथ खाना चाहिये इससे घाव बहुत जल्दी पुर जाता है।

पथ्यका हितकारित्व।

अशितं मात्रया काले पथ्यं याति जरां सुखम्।
अजीर्णे त्वनिलादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ततः शोफरुजापाकदाहानाहानवाप्नुयात् ॥

अर्थ—उचित काल में प्रमाण के अनुसार किया हुआ भोजन शीघ्र पचजाता है इस लिये घाववाले को ठीक समय में थोडा और पथ्य भोजन देना चाहिये। क्योंकि भोजन के न पचने से वातादिदोषों का बलवान् क्षोभ होजाता है और उस क्षोभ से सूजन वेदना, पाक, दाह और आनाह उत्पन्न होजाते हैं।

व्रणमें नवधान्यादि का त्याग।

नवधान्यंतिलान् माषान् मद्यमांसंल्वजांगलम्
क्षीरेक्षुविकृतीरम्लं लवणं कटुकं त्यजेत् ॥
यच्चाऽन्यदपि विष्टंभि विदाहि गुरु शीतलम्।
वर्गोऽयं नवधान्यादिर्व्रणिनः सर्वदोषकृत् ॥
मद्यं तीक्ष्णोष्णरूक्षाम्लमाशु व्यापादयेद्व्रणम्

अर्थ—नये चांवल, तिल, उरद, मद्य, जांगलमांस को छोडकर अन्यमांस, दूधके विकार, ईखके विकार, खटाई, नमक, कटु द्रव्य तथा और भी विष्टंभी, विदाही, भारी, शीतल द्रव्यों को छोडदेना चाहिये, क्योंकि ये सब द्रव्य घाववाले रोगी के दोषों को कुपित करते हैं। और तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष और अम्ल मद्य शीघ्रही व्रणको दूषित करता है इसलिये यह विशेष रूप से त्यागने के योग्य है।

घाव में वालोशीर से व्यजनादि।

वालोशीरैश्च वीज्येत न चैनं परिघिट्टयेत् ॥
न तु देह्न च कंडूयेच्चेष्टमानश्च पालयेत्।
स्निग्धवृद्धद्विजातीनां कथाः शृण्वन्मनःप्रियाः
आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं व्रणमुपोहति।

अर्थ-बालों के चमर वा खस के पंखे से घाव की हवा करै, व्रण पर बार बार हाथ व लगावें हाथ से दाबकर दर्द न करै, न खुजावै, और बहुत सावधानी से घाव की रक्षा करै, व्याधि के दूर होजाने की आशा बांधकर वृद्ध और ब्राह्मणों के मुख से मनोरंजनी और अच्छी अच्छी बातें सुनाकरे, ऐसा करने से घाव शीघ्र भरजाता है।

घाव के धोने का नियम।

तृतीयेऽह्नि पुनः कुर्याद्व्रणकर्म च पूर्ववत्।
प्रक्षालनादि दिवसे द्वितीये नाचरेत् तथा।
तीव्रव्यथो विग्रथितश्चिरात्संरोहति व्रणः।

अर्थ—तीसरे दिन पट्टी खोलकर घाव को पहिले की तरह धोडाले, परन्तु दूसरे दिन व्रण को कभी न खोलै क्योंकि ऐसा करने से घाव में तीव्र वेदना होती है और गांठ पैदा हो जाती है इस से घाव के पुरने में बहुत समय लगता है।

अतिस्निग्धादि वर्त्तियों का निषेध।

स्निग्धां रूक्षां श्लथां गाढां दुर्न्यस्तां च विकेशिकाम्।
व्रणे न दद्यात्कल्कं च स्नेहात्क्लेदो विवर्धते ॥
मांसच्छेदोऽतिरुग्गौरव्याद्व्रणं शोणितागमः।
श्लथातिगाढदुर्न्यासैर्व्रणवर्त्मावघर्षणम्।

अर्थ--घाव के भीतर जो वर्त्ती भरीजाती है वह वर्त्ती बहुत चिकनी बहुत रूखी बहुत शिथिल (लचलची) बहुत गाढी दुर्न्यस्त (बुरी रीति से लगाई हुई) न होनी चाहिये। इसी तरह जो लेप लगाया जाता है वह भी अति स्निधादि गुणों से हीन होना चाहिये क्योंकि अतिस्नेह से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्लेद की वृद्धि होती है, अतिरूक्ष से मांस छिलजाता है तीव्र वेदना होने लगती है घाव फटकर रक्त निकलने लगता है । अति शिथिल, अतिगाढ और दुर्न्यास से घावका मुख रिगड खा जाता है ।

घावमें बत्ती लगाने का कारण ।

सपूतिमांसं सोत्संगं सगंति पूयगर्भिणम् ।
व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्यंतर्विकेशिका ।

अर्थ–घावके भीतर बत्ती भरने से सडा हुआ मांस ऊंचा होजाता है घावकी नाली भीतर से पुरती चली आती है और भीतर की पीव शीघ्र विशोधित होजाती है ।

कच्चेमें नश्तर लगाने का उपचार ।

व्यम्लं तु पाटितं शस्त्रैः पाचनैः समुपाचरेत् ।
भोजनैरुपनाहैश्च नातिव्रणविरोधिभिः ॥

अर्थ–सूजन के बिना अच्छी तरह पके अर्थात् अपक्व अवस्थामें नश्तर लगादिया हो तो उसी प्रकार के सूजन को पकाने वाले अन्नपान तथा वैसे ही उपनाहादि द्वारा चिकित्सा करै परन्तु व्रणके अत्यन्त विरोधी सूजनको पकानेवाले अम्ल कटु, तीक्ष्ण, उष्ण और लवणप्राय भोजनों का सेवन न करै ।

चौडे मुखवाले व्रणों का सीवन ।

सद्यः सद्योव्रणान् सीव्येद्विवृतानभिघातजान् ।
मेदोजान् लिखितान् ग्रंथीन् हृस्वाः पालीश्च कर्णयोः ॥
शिरोक्षिकूटनासौष्ठगंडकर्णोरुबाहुषु ।
ग्रीवाललाटमुष्कसिध्नेषूपायूदरादिषु ॥
गंभीरेषु प्रदेशेषु मांसलेष्वचलेषु च ।
न तु वंक्षणकक्षादावल्पमांसचले व्रणान् ।
वायुर्निर्याहिण्यः शल्यगर्भान्क्षारविषाग्निजान्

अर्थ–जो व्रण किसी प्रकार की चोट लगने से हुए हैं और जिनके मुख चौडे हो गये हैं ऐसे तत्काल के व्रणों को सी देना चाहिये बहुत दिनके पुराने घाव नहीं सीने चाहियें । मेद से उत्पन्न ग्रन्थि को लिखित करके सुई से सीना चाहिये । छोटी कर्ण-पाली, तथा मस्तक, नेत्रकूट, नासिका, ओष्ठ, गंड, कान, ऊरु, बाहु, ग्रीवा, ललाट, अंडकोष, सिफ्, लिंग, गुदा, उदर, आदि गंभीर स्थानों तथा अचल मांसल स्थानमें जो क्षत होता है, उसको सुई से सीना चाहिये ।

किन्तु वंक्षण, कक्षा तथा अल्प मांस वाले चलायमान स्थानों में हुए व्रण तथा जिनसे वायु निःश्वसित होती हो, तथा जिनके भीतर शल्य हो, अथवा जो क्षार, विष वा अग्नि से उत्पन्न हुए हैं ऐसे घावों को सीना उचित नहीं है ।

सीने का पूर्व कर्म ।

सीव्येच्चलास्थिशुष्कास्रतृणरोमापनीय तु ॥
प्रलंबि मांसं विच्छिन्नं निवेश्य स्वनिवेशने ।
संध्यस्थ्यस्थिते रक्ते स्नाव्ना सूत्रेण वल्कलैः ।
सीव्येन्न दूरे नाऽसन्ने गृह्णान्नाऽल्पं न वा बहु ।

अर्थ–अपने स्थान से चली हुई हड्डी, घाव में लगा हुआ सूखा रुधिर, और तृण रूप रोम को घाव से हटाकर व्रण को सीमें तथा लटके हुए मांस को तथा संधि की अस्थियों को अपने अपने स्थान में संनि-वेशित करके रुधिर के बहने को रोक कर व्रण को सीमे, घाव को सीने के लिये स्नायु (तांत) का सूत्र वा बल्कल के बने हुए

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूत्र अर्थात् धागे से घाव के दोनों किनारों को मिलाकर सींडाले । घाव के किनारों के बहुत पास वा बहुत दूर न सीना चाहिये तथा घाव का अंश कम वा अधिक भी ग्रहण करने में न आवै ।

रोगी को आश्वासन ।

सांत्वयित्वा ततश्चार्तं व्रणे मधुघृतप्लुतैः ॥५४॥
अंजनक्षौमजमपीफलिनीशल्लकीफलैः ।
सरोध्रमधुकैर्दिग्धे युंज्याद्बंधादि पूर्ववत् ॥

अर्थ–सीने के पीछे रोगी के मुख पर ठंडे जल के छींटे मारै और पंखे से हवा करे, इस तरह आश्वासन करके सुर्मा, जले हुए वस्त्र की राख, प्रियंगु और शल्लकी के फल, लोध और मुलहटी इनसबको पीसकर घी और शहतमें मिला घावपै लेपकरे फिर पहिले की तरह कपडे की पट्टी आदि बांध देवै ।

घाव का फिर सीमना ।

व्रणो निःशोणितौष्ठो यः किंचिदेवावलिख्यतम्
संजातरुधिरं सीव्येत्संधानं ह्यस्य शोणितम्

अर्थ–यदि घाव के किनारों पर रुधिर नहो तो उस घाव को शस्त्र से थोडा सा खुरच कर जब रुधिर निकल आवे तब सी देना चाहिये क्योंकि रुधिर ही व्रण को पुराने वाला है ।

पट्टी बांधने का स्वरूपादि ।

बंधनानि तु देशादीन् वीक्ष्य युंजीत तेषु च ।
आविकाजिनकौशेयमुष्णं क्षौमं तु शीतलम् ॥
शीतोष्णं तूलसंतानकार्पासस्नायुवल्कजम् ॥

अर्थ–देश, काल और सात्म्यादि को देखकर भेड वा मृग आदि में से किसी एक का चर्म घाव पर बांधे मेंढे वा मृग का चर्म रेशमी वस्त्र, ये तीनों बंधन उष्णवीर्य हैं क्षौमवस्त्र शीतवीर्य है, । तथा शाल्मली-का वस्त्र वा सूत, कपास, स्नायु और वल्कल ये शीतोष्ण वीर्य हैं ।

कफादि जन्य व्याधि में बंधन ।

ताम्रायस्त्रपुसीसानि व्रणे मेदःकफाधिके ॥
भंगे च युंज्यात्फलकं चर्मवल्कवंशादि च ।

अर्थ–मेद और कफाधिक घावों में लेखन कर्म के लिये तांबा, रांग और सीसा प्रयोग करना चाहिये । टूटे हुए स्थानों में भी ताम्रादि का प्रयोग करना चाहिये । इसी तरह फलक, चर्म, वल्कल और बांस आदि का भी प्रयोग करै ।

बंधन का प्रकार ।

स्वनामानुगताकारा बंधास्तु दश पंच च ॥५९॥
कोशस्वस्तिकमुत्तोलीचीनदामानुवेल्लितम्
खट्वाविबंधस्थगिकाविताने।त्संगगोफणाः॥
यमकं मंडलाख्यं च पंचांगी चेति योजयेत् ।
यो यत्र सुनिविष्टः स्यात्तं तेषां तत्र बुद्धिमान्॥

अर्थ शरीरके* अवयव विशेषके अनुसार बंधन पन्द्रह प्रकार के होते हैं । यथा

× कोश चमडे का बनाया जाताहै यह उंगली के पोरुओं में बांधा जाता है । स्वस्तिक संधि, कूर्च, भृकुटी, स्तनों के मध्य में, कक्षा अक्षि, कपोल और कानमें । उत्तोली ग्रीवा और मेढूमें, चीन अपांग में । दाम संधि और वंक्षण में, अनुवेल्लित शाखाओं में, खट्वा हनु, संधि और गंडमें । विबंध उदर, ऊरु और पीठमें । स्थागिक अंगूठा, उंगली, मेढ, अंत्र और मूत्र वृद्धि में । वितान मूर्द्धादिमें । उत्संग लंबे वाहादिकमें । गोफण नासा, ओष्ठ चिबुक अस्थि में । यमक जुडे हुए दो घावों में । मंडल गोल अंगों में और पंचांगी जत्रु से ऊपर के अंगों में बांधा जाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोश, स्वस्तिक, उत्तोली, चीन, दाम, अनुवेलित, खट्वा, विबंध, स्थगिका, वितान उत्संग, गोफण, यमक, मंडल और पंचांगी इन में से जो जिस स्थान पर बांधने के योग्य हो उसे उसी स्थान पर बांधना चाहिये।

बंधनों का गाढा वा ढीला बांधना।

बध्नीयाद्गाढमूरुस्फिक्कक्षावंक्षणमूर्धसु।
शाखाश्रवनकर्णोरःपृष्ठपार्श्वगलोदरे॥ ६२॥
समं मेहनमुष्के च
नेत्रे संधिषु च श्लथम्।
बध्नीयाच्छिथिलस्थाने वातश्लेष्मोद्भवे समम्॥
गाढमेव समस्थाने भृशं गाढे तदाश्रये।
शीते वसंते च तथा मोक्षणीयौ त्र्यहात्र्यहात्॥

अर्थ—ऊरु, स्फिक, कक्षा, वंक्षण और मूर्द्धा में गाढ अर्थात् कसकर बांधना चाहिये हाथ पांव, मुख, कान, वक्षस्थल, पीठ, पसली, गला, उदर, मेढ़ और मुष्क इनके घावों में सम बंधन अर्थात् न बहुत कसा हुआ न ढीला बंधन लगावै। नेत्र और संधि के घावोंमें ढीला बंधन बांधे। जहां ढीले स्थानोंमें ढीले बंधनोंका वर्णन है। वहां यदि वात वा कफ से उत्पन्न हुए घाव हों तो समभाव में अर्थात् न ढीले, न कसेहुए बांधे। जहां समबंधन के लिये कहा गयाहै वहां यदि वात और कफ से उत्पन्न घाव हों तो दृढ बंधन बांधना चाहिये। और गाढ बंधन वाले स्थानों में उक्त प्रकार के घाव हों तो दृढतर बंधन बांधै।
ये बंधन हेमन्त, शिशिर और वसंत ऋतुओं में तीन तीन दिनका अंतर देकर खोलने चाहियें।

पित्तरक्तोत्थ घावों में बंधन।

पित्तरक्तोत्थयोर्बंधो गाढस्थाने समो मतः॥
समस्थाने श्लथो नैव शिथिलस्याशये यथा॥
सायंप्रातस्तयोर्मोक्षो ग्रीष्मे शरदि चेष्यते।

अर्थ—पित्तरक्त से उत्पन्न हुए घावों में गाढ बंधन के योग्य स्थान में दृढ बंधन न बांधकर समबंधन बांधे। और समबंधन के योग्य स्थानमें ढीला बंधन बांधे तथा शिथिल बंधन के योग्य स्थान को दिन में एकबार बांधे वा खुलाही रहने दे। पित्तरक्त से उत्पन्न हुए घावकी पट्टी प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय खोले।

पट्टी न बांधने का फल।

अबद्धो दंशमशकशीतवातादिपीडितः। ६६।
दुष्टो भवेच्चिरं चाऽत्र न तिष्ठेत्स्नेहभेषजम्॥
कृच्छ्रेण शुद्धिं रूढिं वा याति रूढो विवर्णताम्॥

अर्थ—जो घाव पर पट्टी न बांधी जाय तो देश, मशक (मच्छर) मक्खी, शीत, हवा, धूल, धूंआ आदि के लगने से अच्छा घाव भी बिगड जाता है उस पर घावको अच्छा करनेवाली दवा वा कोई तेल आदि देरतक नहीं ठहर सकते हैं। बिना बांधा हुआ घाव अच्छी तरह चिकित्सा किये जाने पर भी बडे प्रयास से शुद्ध होता है, फिर बडी कठिनता से पुरता है, और पुर भी जाता है तो उसकी खाल का रंग देह के रंग के सदृश नहीं होता है।

बंधन के गुण।

बद्धस्तु चूर्णितो भग्नो विश्लिष्टःपाटितोऽपिवा।
छिन्नश्चायुःसिरोऽप्याशु सुखं संरोहति व्रणः॥
उत्थानशयनाद्यासु सर्वचेष्टासु न पीडयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पट्टी से बांधा हुआ घाव यदि वह चूर्णित अस्थि में हो, टूटी हुई अस्थि में हो, वा अपने स्थान से हटी हुई संधि में हो, अथवा फटगया हो, अथवा जिस घाव में नस वा रग फटगई हो, ऐसा घाव पट्टी से बंधाहुआ रखने पर शीघ्र भर जाता है, परन्तु उठने, बैठने सोने, करवट बदलने आदि से घाव में पीडा न होने पावै।

पांच प्रकार के व्रण

उद्वृत्तौष्ठःसमुत्सन्नो विषमःकठिनोऽतिरुक् ॥
समो मृदुररुक् शीघ्रं व्रणःशुध्यति रोहति ।

अर्थ–जिन घावों के किनारे ऊपर को उठकर गोल होगये हैं, जो बहुत ऊंचे हो गये हैं जो बहुत कठोर हैं वा बहुत वेदना से युक्त हैं, ऐसे पांच प्रकारके घाव बंधन के प्रभाव से अपने अशुभ रूप को छोडकर अर्थात् समान, मृदु और पीडा रहित होकर बहुत शीघ्र शुद्ध होकर भर जाते हैं।

स्थिरादि व्रणोंका वर्णन ।

स्थिराणामल्पमांसानां रौक्ष्यादनुपरोहताम्॥
प्रच्छाद्यमौषधं पत्रैर्यथादोषं यथर्तु च ।
अजीर्णतरुणाच्छिद्रैः समंतात्सुनिवेशितैः ॥
धौतैरकर्कशैः क्षीरीभूर्जार्जुनकदंबजैः ।

अर्थ–चिरकालानुबंधी, और अल्प मांस वाले घाव तथा रूखेपन से जो पुरने में न आवें उन पर कल्क स्नेहादि जो औषध लगाई जाती है उस पर क्षीरी, भोजपत्र, अर्जुन वा कदंब के पत्ते दोष और ऋतु के अनुसार चारों ओर बिछाकर बांध देने चाहिये, जैसे वातज व्रण में शीत ऋतु में स्निग्धोष्ण, घर्मकाल में पित्तव्रण पर शीतवीर्य। उष्णकाल में कफजव्रण पर रूक्षोष्ण तथा साधारण काल में मिश्र दोषों में बुद्धि से कल्पना कर लेनी चाहिये। ये पत्ते पुराने, छिद्रयुक्त और कर्कश न हों किन्तु नये निकले हुए पत्तों को जल से धोकर अच्छी तरह लगावै

न बांधने के योग्य व्रण ।

कुष्ठिनामग्निदग्धानां पिटिका मधुमेहिनाम्॥
कर्णिकाश्चोंदुरुविषे क्षारदग्धा विषान्विताः
न मांसपाके च वृध्न्यादुद्गुदपाके च दारुणे ॥
शीर्यमाणाःसरुग्दाहाःशोफावस्थाविसर्पिणः।

अर्थ कुष्ठरोगी, आग से जले हुए, पिटिका वाले तथा मधुमेही के घाव पर पट्टी न बांधे। चूहे के बिषसे जो चकत्ते पड़ जाते हैं उनको न बांधे, क्षारदग्ध, विषान्वित, मांस पाक और दारुण गुदपाक जनित व्रणों पर पट्टी न बांधे। शिथिलता को प्राप्त हुए, वेदनायुक्त, दाहयुक्त, शोफावस्था के व्रण तथा विसर्पावस्था को प्राप्त हुए घावों पर पट्टी न बांधे।

कृमिवाले घावों का वर्णन ।

अरक्षया व्रणे यस्मिन् मक्षिका निक्षिपेत्कृमीन्
ये भक्षयंतःकुर्वंति रुजाशोफास्रसंस्रवान् ।

अर्थ–जिन घावों की पट्टी आदि बांध कर रक्षा नहीं की जाती है उन पर मक्खियां बैठकर कीडों को छोड देती हैं। ये कीड़े घाव के मांसको खाते हैं जिससे वेदना, सूजन और रुधिर का स्राव होने लगता है।

कृमियोंकी चिकित्सा ।

सुरसादि प्रयुंजीत तत्र धावनपूरणे ॥ ७५ ॥
सप्तपर्णकरंजार्कनिंबराजादनत्वचः ।
गोमूत्रकल्कितो लेपःसेकःक्षारांबुना हितः ॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा व्रण तानाशु निर्हरेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जिस घावमें कीडे पडजांय उसको धोने और पुरानेके लिये सुरसादिगण में लिखी हुई औषधोंका प्रयोग करे। तथा सात छाकी छाल, कंजा, आंव, नीम, और सोंदाल की छाल इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे क्षारके जलका परिषेक (तरडा) करे। अथवा उस घावके ऊपर मांसकी पेशी ढकक र कीडोंको शीघ्र निकालडाले। मांस पेशी धरनेका कारण यह है कि मांसके लोभसे कीडे निकल निकल कर उससे चिपट जाते हैं वा ऊपरको आजाते हैं, ऐसा होनेपर सहज में निकाल दिये जाते हैं॥

भीतर दोष वाले घाव।

न चैनं त्वरमाणोऽतःसदोषमुपरोहयेत् ७७। सोऽल्पेनाप्यपचारेण भूयो विकुरुते यतः॥

अर्थ–जिस घावके भीतर दोष मौजूद हो उसको झटापटी करके पुराने अर्थात् भरने का उद्योग न करै। क्योंकि जो व्रण ऊपर से सूखजाते हैं और उनके भीतर दोष रहा आता है तो थोडे से भी अपचार से ये घाव फिर हरे होजाते हैं और विकार को प्राप्त होजाते है इसलिये घावको निर्दोष करके रोपण करना चाहिये।

रोपित व्रणमें वर्जित कर्म।

रूढेऽप्यजीर्णव्यायामव्यवायादि विवर्जयेत्। हर्षं क्रोधं भयं वापि यावदास्थैर्यसंभवात्। आदरेणानुवर्त्योऽयं मासान्षट् सप्त वा विधिः॥

अर्थ–घावके भर जाने पर भी जबतक अच्छी तरह स्थिरता उत्पन्न नहो तबतक अजीर्ण भोजन, व्यायाम, मैथुन, हर्ष, क्रोध तथा अन्य भयोत्पादक कर्म न करना चाहिये इस नियम का पालन आदरपूर्वक छः सात महीने तक करना उचित है।

वैद्य को उपदेश।

उत्पद्यमानासु च तासु तासु घातासु दोषदेशबलानुसारी। तैस्तैरुपायैः प्रयतश्चिकित्से-दालोचयन् विस्तरमुत्तरोक्तम्॥८०॥"

अर्थ–वैद्य को उचित है कि इस स्थानपर घावके संबंध वाली जिनजिन बातों का वर्णन नहीं कियागया है उनका दोष, देश और कालके अनुसार विचार करता हुआ उत्तरतंत्रमें लिखी हुई सब बातों को ध्यानपूर्वक आलोचना करके उन उन उपायों द्वारा हर प्रकार के घावों की चिकित्सा करने में सावधानी से प्रवृत्त होवे।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां एकनत्रिंशोऽध्यायः॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतःक्षाराग्निकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहांसे क्षाराग्निकर्म विधि नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

क्षारकर्म को श्रेष्ठत्व।

"सर्वशस्त्रानुशस्त्राणांक्षारः श्रेष्ठो बहूनि यत्। छेद्यभेद्याद्यकर्माणि कुरुते विषमेष्वपि॥ १॥ दुःखावचार्यशस्त्रेषु तेन सिद्धिमयात्सु च। अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु यच्च पाकेऽपि युज्यते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सब प्रकारके शस्त्र और अनुशस्त्रों के प्रयोगकी अपेक्षा क्षारका प्रयोग सर्वोत्तम है, क्योंकि क्षारसे छेदन, भेदन, लेखन और पाटनादि बहुत प्रकारके कर्म सिद्ध हो जाते हैं । देहके उन विषम अंगोंमें जहां शस्त्र का प्रयोग कठिनता से होता है वहां इस का प्रयोग सहजमें होजाता है, जो जो कठिनरोग शस्त्र कर्मसे सिद्ध होनेमें नहीं आते हैं वे सब रोग क्षारके प्रयोगसे सहजमें सुसाध्य होजाते हैं । क्षार पीनेमें भी प्रयोग किया जाता है, इससे क्षार सर्वश्रेष्ठ है ।

क्षारके उपयुक्त विषय ।

सपेयोऽर्शोऽग्निसादाश्मगुल्मोदरगरादिषु ।
योज्यःसरक्षान्मषश्वित्रबाह्यार्शःकुष्ठिकुष्ठिषु ॥
भगंदरार्बुदग्रंथिदुष्टनाडिव्रणादिषु ।

अर्थ–अर्शरोग, अग्निमांद्य, पथरी, गुल्म रोग, उदररोग, गररोग, तथा आनाह और शूलादिमें क्षारका पीना उचितहै । मष (मस्सा), श्वित्रकुष्ठ, बाह्यअर्श, कुष्ठ, कुष्ठि, भगंदर, अर्बुद, ग्रंथि, दुष्टनाडी, दुष्टव्रण तथा चर्मकील, वर्म और तिलादि में लेप करनेके काममें आता है ।

क्षारका निषेध ।

न तूभयोऽपि योक्तव्यःपित्तरक्ते बलेऽबले ॥
ज्वरेऽतिसारे हृन्मूर्धरोगे पांड्वामयेऽरुचौ ।
तिमिरेऽकृतसंशुद्धौश्वयथौ सर्वगात्रगे ॥ ५ ॥
भीरुगर्भिण्यबृहत्सुमतीप्रोद्वृत्तफलकोषिषु ।
अजीर्णेऽन्नेशिशौ वृद्धे धमनीसंधिमर्मसु ॥
तरुणास्थिसिरास्नायुसेवनीगलनाभिषु ।
देशेऽल्पमांसे वृषणमेढ्रस्रोतोनखांतरे ॥ ७ ॥
वर्त्मरोगोद्गतेऽश्नोश्च शीतवर्षोष्णदुर्दिने ।

अर्थ दूषितपित्तमें, दूषितरक्तमें, अति बलवान् वा बलहीन मनुष्यके, यथा ज्वर, अतिसार हृदयरोग, शिरोरोग, पांडुरोग, अरुचि तिमिररोग, कृतसंशुद्धि, (जिसको वमनविरेचनद्वारा शुद्ध किया हो) सब शरीर व्यापी सूजन, इन रोगोंमें क्षारका प्रयोग न पीनेमें न लेपमें करना चाहिये । इसीतरह डरपोक, गर्भिणीस्त्री, रजस्वला, उदावर्तयोनि (इसरोग का वर्णन उत्तर तंत्रमें किया गया है), बालक, वृद्ध, धमनी, संधि, मर्मस्थान, तरुणअस्थि, सिरा, स्नायु, सेवनी, गला, नाभि अल्पमांस, बालादेह, वृषण, मेढ्र, स्रोत' नखांतर' वर्त्मरोग को छोडकर अन्य नेत्ररोग तथा जाडा, गर्मी' वर्षा, ऋतुओंमें, बादल के दिन । इन सबमें पान वा लेपन दोनों प्रकारसे क्षारका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

क्षार की क्रिया ।

कालमुष्ककशम्याकककदलीपारिभद्रकान् ।
अश्वकर्णमहावृक्षपलाशास्फोतवृक्षकान् ।
इंद्रवृक्षार्कपूतीकनक्तमालाश्वमारकान् ॥ ९ ॥
काकजंघामपामार्गमग्निमंथाग्नितिल्वकान् ।
सार्द्रान्समूलशाखादीन्खंडशःपरिकल्पितान्
कोशातकीश्चतस्रश्च शूकनालं यवस्य च ।
निवाते निचयीकृत्य पृथक्तानि शिलातले ॥
प्रक्षिप्य मुष्ककचये सुधाश्मानि च दीपयेत् ।
ततस्तिलानां कुंतालैर्दग्ध्वाऽग्नौ विगते पृथक्
कृत्वा सुधाश्मनां भस्म द्रोणे त्वितरभस्मनः
मुदककोत्तरमादाय प्रत्येकं जलमृद्घयोः १३ ॥
गालयेदर्धभारेण महता वाससा च तत् ।
यावत्पिच्छिलरक्तच्छस्तीक्ष्णो जातस्तदा-
च तम् ॥ १४ ॥
गृहीत्वा क्षारानिस्यंदं पचेलौह्यां विधट्टयन् ।
पच्यमाने स्ततस्तारिंस्तताः सुधाभस्मशर्कराः
शुक्तिक्षारपंकशंखनाभीश्चाऽऽयसभाजने ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृत्वाऽग्निवर्णान् बहुशः क्षारोत्थे कुडवोन्मिते
निर्वाप्य पिष्ट्वा तेनैव प्रतीवापं विनिक्षिपेत्।
श्लक्ष्णं शकुनृक्षशिखिगृध्रकंककपोतजम्॥
चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोहालवणानि च।
परितः सुतरां चाऽतो दर्व्या तमवघट्टयेत्॥
सवाप्यैश्च यदोत्तिष्ठेदुदुर्दलेंहवद्घनः।
अवतार्य ततःशीतो यवराशावयोमये॥१२॥
स्थाप्योऽयं मध्यमः क्षारो

अर्थ–क्षार तीन प्रकार का होता है मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण इनमें से मध्यम क्षार बनाने की यह रीति है कि काल मुष्कक (मोखावृक्ष) अमलतास, केला, पारिभद्र अश्वकर्ण (कुशिक) महावृक्ष (थूहर), ढाक, आस्फोत (गिरिकर्णिका) नंदीवृक्ष, कुडा, आक, पूतीक (पूतिकंजा) कंजा, कनेर, काकजंघा, ओंगा, अरनी, चीता, सफेद लोध इन सब हरे वृक्षों की जड पत्ते और शाखा लाकर छोटे छोटे टुकडे कर डाले, चार कोशातकी और जौ का शूकनाल इन सबको वायुरहित स्थान में इकट्ठा करले और पत्थर की शिला पर मोखा आदि के ढेर में सुधा शर्करा (चूना) डालकर तिलकी लकडियों में धरकर अग्नि लगादे, आगके बुझ जाने पर सुधा शर्करा की भस्म एक द्रोण पृथक् करले तथा शम्याकादि की भस्म एक द्रोण अलग ले इनमें मोखे की भस्म अधिक लीजाती है फिर बीस तुला जल और बीस पल गोमूत्र मिलाकर काष्ठभस्म को उस में मिलाकर एक बडे वस्त्रमें इक्कीस वार छाने। इस छने हुए क्षार जलको लोहे की कढाई में भरकर कलछी से चलाता रहै और जब यह पकता हुआ क्षारजल पिच्छिल, रक्तवर्ण निर्मल और तीक्ष्ण होजाय तब इसमें से ८ पल निकालकर दूसरे लोहे के पात्र में रखले और इसमें सुधाभस्म, शर्करा, सीपी, क्षार-पंक, शंख नाभि अग्नि के तुल्य लाल कर कर के बहुत बार बुझावै, तथा उसी क्षारजल से पूर्वोक्त भस्म को पीसकर पकते हुए क्षार जल में प्रतीवाप करे (पतले पदार्थ में बारीक पिसे हुए अन्य द्रव्य को डालने का नाम प्रतीवाप है)। इस प्रतीवाप के सिवाय मुर्गा, मोर, गृध्र, कंक और कपोत पक्षियों की बीट तथा गौ आदि चौपाये जानवरों के गोबर और पित्त, तथा हरताल, मनसिल और सैन्धवादि नमक महीन पीस कर प्रतीवाप करै। तदनंतर कलछी से लगातार चलाता रहे। जब इस क्षारजल में भाफ उठने लगे और बुलबुले उठने लगें और गाढा अवलेह के समान होजाय तब इसे उतार कर लोहे के कलश में ठंडा होने पर भरदे और जौके ढेर में इस कलश को गाढदे। यही मध्यम क्षार बनता है।

मृदु तीक्ष्ण क्षार।

न तु पिष्ट्वा क्षिपेन्मृदौ।
निर्वाप्यापनयेत्
तीक्ष्णे पूर्ववत्प्रतिवापनम्॥२०॥
तथा लांगलिकादंतिचित्रकातिविषावचाः।
स्वर्जिकाकनकक्षीरिहिंगुपूतिकपल्लवाः॥
तालपत्री बिडं चेति सप्तरात्रात्परं तु सः।
योज्यः

अर्थ–जो मृदु क्षार बनाना हो तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वोक्त क्षारजल में जलेहुए सुधाशर्करादि बुझाये जाते हैं, इनको पीसकर प्रतीवाप नहीं किया जाता है ।

तीक्ष्णक्षार बनाने की यह विधि है कि पूर्वोक्त रीति से मध्यमक्षार की रीतिसे जब सब काम तयार होजाय अर्थात् निर्वाण और प्रतीवाप हो चुके तब लांगली, दंती, चीता, अतीस, वच, सज्जीखार, स्वर्णक्षीरी, हींग, पूतीकरंज, पल्लव, तालपत्री और विडनमक इन सब द्रव्यों को पूर्ववत पीस कर उक्त द्रव पदार्थ में प्रतीवाप करे । यह क्षार तयार होवे के सात दिन पीछे उपयोग में लाने के योग्य होता है ।

उक्त क्षारों का प्रयोग ।

तीक्ष्णेऽनिलश्लेष्ममेदोजोऽर्बुदादिषु॥२२॥
मध्येष्वेव च मध्यः
अन्यः पित्तासृगुद्भवेषु ।
बलार्थं क्षीणपानीये क्षारंवु पुनरावपेत् ॥

अर्थ–तीक्ष्णक्षार वातकफ से उत्पन्न हुए तथा मेद से उत्पन्न हुए अर्बुदादि रोगोंमें प्रयुक्त होताहै, मध्यक्षार मध्यम प्रकारके अर्बुदादि रोगों में तथा मृदुक्षार रक्तज और पित्तज अर्शोरोग में प्रयुक्त होता है ।

जो क्षार द्रवपदार्थ के क्षीण होने पर गाढा होजाय तो उसमें तेजी उत्पन्न करने के लिये क्षारविधि से तयार किया हुआ क्षारजल मिला देना चाहिये ।

क्षार के गुण ।

नातितीक्ष्णो मृदुःश्लक्ष्णः पिच्छिलः शीघ्रगः सितः ।
शिखरी सुखनिर्वाप्यो न विष्यंदी न चातिरुक्
क्षारो दशगुणः शस्त्राग्नितेजसोरपि कर्मकृत् ।

अर्थ–क्षारमें ये दस गुण हैं यथाः– नअति तीक्ष्ण, न अति मृदु, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, शीघ्रग (शरीरमें शीघ्र प्रवेश करने वाला], शुक्ल, शिखरी, सुखनिर्वाप्य [कांजी आदि में डालकर सुखपूर्वक ठंडा करने के योग्य], अविष्यन्दी (झरनेके अयोग्य) न अति रुक् (अति वेदनारहित) । शस्त्र और अग्नि से छेदन पाटन लेखनादि तथा दाहनादि जो कर्म कियेजाते है वेही क्षारसे भी कियेजाते हैं ।

अंतरानुभवद्वार से क्षार के गुण ।

आचूषन्निव संरंभाद्गात्रमापीडयन्निव॥ २५॥
सर्वतोऽनुसरन् दोषानुन्मूलयति मूलतः ।
कर्म कृत्वा गतरुजःस्वयमेवोपशाम्यति॥ ३६॥

अर्थ–भीतर योजना कियाहुआ क्षार संक्षोभसे शरीर को चूसता और मर्दन करता हुआ चारों ओर घूमता है और शस्त्रसाध्यदोषों को जडसे उखाडकर फेंकदेता है, तथा अपने दाहादिक कर्मों को करके गतरुज पुरुषके देहमें विनायत्न किये आपही शांत होजाता है ।

क्षार प्रयोग की विधि ।

क्षारसाध्ये गदे छिन्ने लिखितेऽस्रावितेऽथवा
क्षारं शलाकया दत्त्वास्रोतमावृतदेहया ॥२७॥
मात्राशतमुपेक्षेत
तत्रार्शः स्वावृताननम् ।
हस्तेन यंत्रं कुर्वीत
वर्त्मरोगेषु वर्त्मनी ॥ २८ ॥
निर्भुज्य पिचुनाच्छाद्य कृष्णसारं विनिक्षिपेत्
पद्मपत्रतनुःक्षारलेपो घ्राणार्बुदेषु च ॥२९॥

अर्थ–क्षारसाध्य अर्श और अर्बुदादि व्याधिओं में क्षारका प्रयोग करना हो तो उनको शस्त्र से छेदनकरके, खुरचके अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्रावित करके एक सलाई को नौकको रुई के फोए सें लपेटकर उसमें उस पर क्षार लगादेवे, क्षार लगाने के पीछे शतमात्रा कालतक अर्थात् सौ गिनने में जितना काल लगे तबतक अपेक्षाकरे, शीघ्रही कांजी आदि डालकर ठंडा करने की चेष्टा न करे।

अर्श रोग में क्षारका प्रयोग करने में पूर्ववत् शलाका से क्षार लगावै और शतमात्रा काल तक अपेक्षा करे और हाथ से यंत्रके मुखको आच्छादित करले।

वर्त्मरोग में हाथ से पलकों को टेढा करके आंखकी पुतली के काले भाग को रुई से ढककर क्षारका प्रयोग करना चाहिये

नासार्बुद रोगमें क्षारका प्रयोग करने के समय रोगी को सूर्य की ओर मुख करके बैठा देवै और उसकी नासिका का अग्रभाग ऊंचा करके कमल के पत्ते के तुल्य पतला लेप करे तथा पचास मात्रा काल तक अपेक्षा करे।

कर्णज अर्श में नासार्बुद की तरह कमल पत्र के समान पतला लेप दे पचास मात्रा काल तक अपेक्षा करे।

क्षारकेमार्जनकीविधि।

प्रत्यादित्यं निषण्णस्य समुन्नम्याग्रनासिकाम्
मात्रा विधार्यः पंचाशत्
तद्वदर्शसि कर्णजे ॥ ३० ॥
क्षारं प्रमार्जनेनानु परिमृज्याऽवगम्य च।
सुस्निग्धं घृतमध्वाक्तंतत्पयोमस्तुकांजिकैः।३१।
निर्वापयेत्ततः साज्यैःस्वादुशीतैः प्रदेहयेत्।

अर्थ–क्षार लगाने का नियमित समय व्यतीत होजाने पर वस्त्रादि से उस लेपको बिलकुल दूर करदे और क्षारसे सम्यक् दग्ध के लक्षण दिखाई देने पर क्षार लगे हुए स्थान पर घी और शहत का लेप करे, फिर जल, दहीका तोड, और कांजी द्वारा उस स्थानको ठंडा करके स्वादु और शीत वीर्य द्रव्यों को घृतमें सानकर लेप करे।

क्षारकर्ममें भोजनादि।

अभिष्यंदीनि भोज्यानि भोज्यानि क्लेदनाय च

अर्थ–क्षारसे दग्ध स्थानमें क्लेदता उत्पन्न करने के लिये रोगीको दही मछली आदि अभिष्यंदी भोजन खानेको दे। क्योंकि क्षार दग्ध स्थान क्लिन्न होने से शीघ्र शीर्णता को प्राप्त होता है।

क्षारदग्धस्थानपरलेप।

यदि च स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धं न शीर्यते।
धान्याम्लबीजयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेत्ततः३३।

अर्थ–जो क्षार दग्ध स्थानकी जड दृढ होगई हो और इसलिये अभिष्यंदी भोजनादि से भी उसमें शीर्णता उत्पन्न नहो तो धान्याम्ल का बीज, मुलहटी और तिल का लेप लगाना चाहिये।

व्रणरोपण तिलकल्क।

तिलकल्कःसमधुको घृताक्तो व्रणरोपणः।

अर्थ–क्षारसे जला हुआ घाव तिलका कल्क शहतमें मिलाकर लेप करनेसे अच्छा होजाता है।

सम्यक् दग्धादिके लक्षण।

पक्वजंब्वसितं स्वभं सम्यग्दग्धम्
विपर्यये ॥ ३४ ॥
ताम्रतातोदकंज्वराद्यैर्दुर्दग्धम्
तं पुनर्दहेत्।
अतिदग्धे स्रवेद्रक्तं मूर्छादाहज्वरादयः।६५।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अच्छीतरह क्षारसे दग्ध हुआ स्थान पके हुए जामन के समान काले रंगका और म्लान होजाता है। दुर्दग्ध स्थान के लक्षण इससे विपरीत होते हैं इसका रंग तांबे के सदृश होता है इसमें तोद, कंडू, शोफ, विस्फोट, आदि उपद्रव होते हैं। दुर्दग्ध को क्षार डालकर फिर जलाना चाहिये। अतिदग्ध स्थानमें से रक्त झरने लगता है तथा मूर्छा, दाह, ज्वर, विसर्प, शोफ, विस्फोट आदि उपद्रव होते हैं।

अतिदग्ध गुदाके उपद्रव।

गुदे विशेषाद्विण्मूत्रसंरोधोऽतिप्रवर्तनम्।
पुंस्त्वोपघातो मृत्युर्वा गुदस्य शातनाद्ध्रुवम्

अर्थ–गुदाके अतिदग्ध होनेपर पूर्वोक्त रक्तस्रावादि लक्षणों के सिवाय विष्टा और मूत्रका संरोध होता है और कभी कभी विष्टा मूत्र अधिकतासे निकलने लगते हैं। तथा वीर्यके क्षीण होजाने से स्त्री गमनकी शक्ति नहीं रहती है और गुदाके विदीर्ण होने से मृत्यु भी होजाती है।

क्षारातिदग्ध नाक कान।

नासायां नासिकावंशदरणाकुंचनोद्भवः।
भवेच्च विषयाज्ञानम्।
तद्वच्छ्रोत्रादिकेष्वपि ॥३७॥

अर्थ–नासिका के क्षारसे अतिदग्ध होने पर नासिका का बांस विदीर्ण होजाता है। नीचेको बैठ जाता है तथा गंधग्रहणकी शक्ति जाती रहती है।

इसी तरह कान आंख और जिह्वादि के अतिदग्ध होनेसे उन उन इंद्रियोंके विषयका ज्ञान जाता रहता है अर्थात् कानोंसे सुनना, आंखोंसे देखना और जीभसे चखने का ज्ञान नष्ट होजाता है। तथा अन्य उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं॥

क्षारदग्धमें कांजी आदिकी उपयोगिता।

विशेषादत्र सेकोऽम्लैर्लेपो मधुघृतं तिलाः।
वातपित्तहरा चेष्टा सर्वैव शिशिरा क्रिया।
अम्लो हि शीतः स्पर्शेन क्षारस्तेनोपसंहितः
यात्याशु स्वाद्गुतां तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम्

अर्थ–अति क्षारदाधमें कांजी आदि खट्टे पदार्थ का उसपर डालना, घृत मधु और तिलका तेल, तथा वातपित्तका नाश करने वाली सब प्रकार की शीतल क्रिया विशेष रूपसे हितकारी हैं। खटाई स्पर्श में शीतल होती है और क्षार स्पर्शमें उष्ण है इसलिये क्षारातिदग्ध पर शीघ्रही कांजी आदि अम्लद्रव्य डालना चाहिये। इति क्षारकर्म।

क्षारसे अग्निकर्मको श्रेष्ठता।

अग्निः क्षारादपि श्रेष्ठस्तद्दग्धानामसंभवात्।
भेषजक्षारशस्त्रैश्च न सिद्धानां प्रसाधनात्।

अर्थ–क्षारकर्मसे अग्निकर्म श्रेष्ठ है, क्यों कि अग्निसे दग्ध किये हुए अर्शादिरोगों की फिर उत्पत्ति नहीं होती है। औषध, क्षार और शस्त्रद्वारा जो रोग शान्त नहीं होते हैं वे सब रोग जडसे दूर होकर अग्निकर्मद्वारा अच्छे होजाते हैं॥

त्वचा में अग्नि दाह।

त्वचि मांसे सिरास्नायुसंध्यस्थिषु स युज्यते
मषांगम्लानिमूर्धार्तिमंथकीलतिलादिषु॥४१।
त्वग्दाहो वर्तिगोदंतसूर्यकांतशरादिभिः।

अर्थ–अग्निदाह त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, संधि और अस्थिमें कियाजाता है॥ इनमें से मस्सा अंगग्लानि, मस्तक का दर्द, मंथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चर्मकीलक और तिलादि रोगों में रुईकीवत्ती गोदन्त, सूर्यकांतमणि और शरादि से त्वचा में अग्निदाह कियाजाता है।

मांसदाह।

अर्शोभगंदरग्रंथिनाडीदुष्टव्रणादिषु ॥
मांसदाहो मधुस्नेहजांबवोष्ठगुडादिभिः।

अर्थ–अर्शादि अर्थात् अर्श अर्बुद गंडमालादि रोगों में तथा भगंदर, ग्रंथिरोग नाडीव्रण और दुष्ट व्रणादि रोगों में कभी मधु, कभी घृतादि स्नेह कभी जांबवोष्ठ नामक शलाका यंत्र और कभी गुडादिसे मांसमें दाह किया जाता है॥

सिरादाह।

दिलष्टवर्त्मसु स्रावनील्यसम्यग्व्यधादिषु ॥
सिरादिदाहस्तैरेव

अर्थ–दिलष्टवर्त्म रोगमें, रक्तस्रावमें, नीलिका में, और असम्यक् सिराव्यधमें ऊपर कहे हुए मधुघृतादि को गरम करकरके सिरादाह करना चाहिये॥

अग्निदाहके अयोग्यस्थान।

न दहेत्क्षारवारितान्।
अंतःशल्यास्रजो भिन्नकोष्ठात् भूरिव्रणातुरान्

अर्थ–क्षारकर्मके अयोग्य स्थान, जहां भीतर शल्य रहगया है। अंतःशोणित (जहां निकलनेके योग्य रक्त भीतर रहगया है), भिन्नकोष्ठ रोगी तथा जो बहुत से घावों से पीडित है ये सब अग्निदाहके अयोग्य होते हैं।

सुदग्ध में कर्तव्य।

सुदग्धं घृतमभ्यक्तं स्निग्धशीतैः प्रदेहयेत्।

अर्थ–अग्निसे रोग के स्थान को सुदग्ध जानकर घृत और शहत उस पर चुपड देवै और फिर मुलहटी आदि स्निग्ध और शीतल द्रव्यों का लेप करदे।

सुदग्ध के लक्षण।

तस्य लिंगं स्थितेरक्तेशब्दवल्लसिकान्वितम्॥
पक्वतालकपोताभं सुरोहं नातिवेदनम्।

अर्थ–सुदग्ध स्थान के ये लक्षण होते हैं कि दह्यमान अवस्था में प्रवृत हुआ रक्त निकलने से बन्द होजाता है, उस स्थान में बुदबुद शब्द होने लगता है तथा लसिकान्वित होजाता है, इसकी आकृति पकेहुए ताल फल और कपोत के सदृश होजाती है, यह अच्छी तरह भरने लगता है तथा वेदना भी कम होजाती है।

दुर्दग्ध के लक्षण।

प्रमाददग्धवत्सर्वं दुर्दग्धात्यर्थदग्धयोः।४६।

अर्थ–दुर्दग्ध और अतिदग्धके लक्षण प्रमाददग्ध के लक्षणों के समान होते हैं, असावधानी से अग्नि लगने के कारण जो शरीर जलजाता है उसे प्रमाददग्ध कहतेहैं।

प्रमाद दग्ध के चार भेद।

चतुर्धा तत्तु तुत्थेन सह
तुत्थस्य लक्षणम्।
त्वग्विवर्णोप्यतेऽत्यर्थं न च स्फोटसमुद्भवः॥
सस्फोटदाहतीव्रोष्मं दुर्दग्धम्
अतिदाहतः।
मांसलंबनसंकोचदाहधूपनवेदनाः॥ ४८॥
सिरादिनाशस्तृण्मूर्छाव्रणगांभीर्यमृत्यवः।

अर्थ–तुत्थदग्ध लक्षणों के साथ प्रमाद दग्ध चार प्रकार का होता है यथा कदाचित्सम्यग्दग्ध लक्षण, कदाचिद्दुर्दग्धलक्षण, कदाचित् अतिदग्ध लक्षण, और कदाचित् तुत्थदग्ध लक्षण।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनमें से तुत्थदग्ध के लक्षण ये हैं कि त्वचा का रंग बदल जाता है, वेदना अधिक होती है, और फुंसियां नहीं निकलती हैं।

दुर्दग्ध स्थान में फुंसियां, तीव्रदाह और तीव्रवेदना होती है।

अतिदाह में मांस लटक पडता है, सिरा संकुचित होजाती हैं, दाह, धूपन (धूंआं सा घुमडना) और वेदना होती है। सिराओं का नाश होजाता है, तृषा, मूर्च्छा, व्रणमें गंभीरता और मृत्यु ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं।

सम्यक् दग्ध के लक्षण ऊपर कहे गये हैं उन्हीं से समझलेना चाहिये, पुनरुक्तिकी आवश्यकता नहीं है। अग्नि से थोडे जलने का नाम तुत्थदग्ध है।

तुत्थ दग्ध की चिकित्सा।

तुत्थस्थाऽग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम।
स्थानेऽस्रे वेदनात्यर्थं विलीने मंदता रुजः।

अर्थ–तुत्थदग्ध स्थान को अग्नि से तपाना उचितहै और उष्णवीर्य औषधों का प्रयोग करना चाहिये (जैसे रोटी पकाते समय रोटी की भाफ से हाथ जल जाय तो उसी समय अग्निसे सेक देना चाहिये) इसका कारण यह है कि दग्ध स्थान का रुधिर न निकलकर गाढा होजाता है और उस में वेदना होने लगती है और विलीन होने पर दर्द कम होजाता है इसलिये रक्त को विलीन अर्थात पिघलाने के लिये उष्ण क्रिया करना आवश्यकीय है।

दुर्दग्ध की चिकित्सा।

दुर्दग्धे शीतमुष्णं च युंज्यादादौ ततो हिमम्॥

अर्थ–दुर्दग्ध स्थान में शीतक्रिया और उष्णक्रिया पर्य्याय रूप से करनी चाहिये अर्थात प्रथम शीतवीर्य और फिर उष्णवीर्य औषधोंका प्रयोग करना उचित है।

सम्यक् दग्ध की चिकित्सा।

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरिशुक्षचंदनगैरिकैः।
लिंपेत्साज्यामृतैरूर्ध्वं पित्तविद्रधिवत्क्रिया॥

अर्थ–सम्यग्दग्ध में प्रथम वंशलोचन, पाकड, रक्तचंदन, गेरू और गिलोय इनको घीमें सानकर लेप करे, पीछे पित्तकी विद्रधि के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

अतिदग्ध की चिकित्सा।

अतिदग्धे द्रुतं कुर्यात्सर्वं पित्तविसर्पवत्।

अर्थ–अति दग्धमें बहुत ही शीघ्रतापूर्वक भीतर और बाहर पित्त विसर्प के सदृश चिकित्सा करनी चाहिये।

स्नेह दग्ध की चिकित्सा।

स्नेहदग्धे भृशतरं रूक्षं तत्र तु योजयेत्।५२।

अर्थ–गरम घी तेल आदि स्नेहपदार्थ के द्वारा दग्ध होजाने पर अत्यन्त रूक्ष-क्रिया करना उचित है। तु शब्द के प्रयोग से केवल अत्यन्त रूक्ष औषधों का ही प्रयोग करे यह नहीं किन्तु देह, देश, सात्म्यादि का विचार करके यथावत् स्निग्ध क्रिया भी करना उचित है।

सूत्रस्थान की समाप्ति।

समाप्यते स्थानमिदं हृदयस्य रहस्यवत्।
अत्रार्थाःसूत्रिताःसूक्ष्माःप्रतन्यंते हि सर्वतः॥

अर्थ–अष्टांगहृदयका रहस्यवत् अर्थात् अत्यन्त गुप्तपदार्थों से युक्त यह सूत्रस्थान समाप्त हुआ है। यह स्थान रहस्यवत् क्यों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है ? इसका कारण यह है कि इस स्थान में उन सूक्ष्म विषयों की समालोचना रूप सूचना दीगई है जो आगे आनेवाले शारीरादि स्थानों में विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं, इसीलिये इस स्थानको अन्यस्थानों का रहस्यवत् कहा गया है।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः।

इति श्रीवैद्यपतिसिंह गुप्तसूनु वाग्भट विरचितायां अष्टांग-हृदयसंहितायां मथुरा निवासि श्रीकृष्णलाल कृत भाषाटीकान्वितायां प्रथमं सूत्रस्थानं संपूर्णम्।

समाप्तमिदं सूत्रस्थानम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ॐ

श्रीहरिम्बन्दे

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः

॥ अथ शारीरस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो गर्भावक्रांतिशारीरं व्याख्यास्यामः। इतिह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः

अर्थ–तदनंतर आत्रेयादिक महर्षि कहने लगे कि अब हम गर्भावक्रांति शारीर नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

गर्भहोनेका कारण ।

"शुद्धे शुक्रार्तवे सत्वःस्वकर्मक्लेशचोदितः। गर्भःसंपद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥ १ ॥

अर्थ–पिताके बीजको शुक्र कहते है । और स्त्रियोंके मासिकधर्मके समय उनके अपत्यमार्गमें जोकुछ कालापन लिये हुए शुद्ध, गंधिरहित और वायुसे प्रेरित रुधिर रहता है उसे आर्तव कहते हैं। पिताका शुक्र और माताका आर्तव गर्भका बीज है। जब यह शुक्रार्तव शुद्ध और वातादि दोषों से रहित होता है तब इसमें जीव गर्भता को प्राप्त होता है

जीवके गर्भता प्राप्त करनेका यहकारण है कि वह पूर्वजन्ममें किये हुए अपने अपने शुभ और अशुभ कर्मके क्लेशोंकी प्रेरणा से अर्थात् उन कर्मोंका शुभाशुभ फल भोगने के लिये गर्भता को धारण करता है। वे कर्मकृत क्लेश ये हैं,अविद्या (अयथार्थ वस्तुमें यथार्थता का ज्ञान) ,अस्मिता(मैं हूं यह अभिमान होना), राग (सुखकी इच्छा) द्वेष, [दुखका अनुशायी]

जो कर्मक्लेश से रहित हैं उनका जन्म नहीं होता है, कहाभी है, चित्तमेवहि संसारि रागादि क्लेशदूषितम्। तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांत इति कथ्यते ॥

तथा शुद्ध शुक्रार्तवके संयोगके प्रभावसे ही जीव गर्भको प्राप्त होता है जैसे मथ्य, मंथन और मंथान इनके संयोग से अरणी अर्थात् काष्ठमें अग्नि निकलती है वैसे ही संपूर्ण सामग्रियों के सद्भाव से ही गर्भकी उत्पत्ति होती है ॥

गर्भाशयमें जीवकीवृद्धि ।

बीजात्मकैर्महाभूतैः सूक्ष्मैः सत्वानुगैश्च सः। मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ विवर्धते २॥

अर्थ–सत्वानुग (जहां जीव रहता है वहां वे भी अवश्य रहते हैं) सूक्ष्म (इन्द्रियों के विषयोंसे अगम्य केवल योगियोंसे देखने योग्य), बीजात्मक [शुक्र शोणित रूप में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिणत] माताके आहारके रसरूप में परिणत होने से उत्पन्न सत्वरजतमोमय आकाशादि पंच महाभूतोंसे वह गर्भ माताकी कूख में क्रम क्रमसे वृद्धि पाता है।

गर्भाशयमें गतजीवका न दीखना।

तेजो यथार्करश्मीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम्।
नेंधनं दृश्यते गच्छत्सत्वो गर्भाशयं तथा ३॥

अर्थ–जैसे सूर्यकी किरणों का तेज सूर्यकांत नामक स्फटिक मणिसे व्यवहित होकर स्फटिकके नीचेवाले ईंधनमें प्रवेश करता हुआ दिखाई नहीं देता है परन्तु उस तेज का कार्य ईंधनमें दिखाई देता है। ऐसे ही जीवभी गर्भाशयमें प्रवेश कर जाता है परन्तु प्रवेश करता हुआ दिखाई नहीं देता, केवल वृद्धिरूप अपनेकार्यसे दिखाई देनेलगताहै

जीवकी अनेकयोनि में दृष्टान्त।

कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वभावता
नानायोन्याकृतीःसत्वो धत्तेऽतो द्रुतलोहवत्

अर्थ–कार्य कारण के अनुविधायी होते हैं इसलिये कारण के सदृश ही कार्य होता है अर्थात् जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य भी होता है जैसे अग्निद्वारा गलाई हुई धातु मिट्टी के बने हुए जिस जिस आकृति वाले सांचे (Mould) में ढाली जाती है वैसी ही आकृति उस धातु की हो जाती है वैसे ही एक आत्मा भी कृत कर्म की प्रेरणा से मनुष्यादि अनेक योनियों में प्रवेश करके उसी उसी योनि का आकार धारण कर लेती है।

स्त्री पुंसादिका जन्म।

अत एव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्।
रक्तस्य स्त्री तयोः साम्ये क्लीबः

अर्थ–पूर्वोक्त कार्य कारण के सदृश हेतु से पुरुष के शुक्र की अधिकता और स्त्री के शोणित की अल्पता के कारण पुरुष की उत्पत्ति होती है। इसी तरह पुरुष के शुक्र से स्त्री के रज की अधिकता के कारण स्त्री की उत्पत्ति होती है और जब शुक्र और आर्तव दोनों समान होते हैं तब उभयलिंगविशिष्ट क्लीव अर्थात् नपुंसक होता है। दारुवाहीने कहा है कि स्त्रीपुंसयोः ऽसुसंयोगे यद्यादौ विसृजेत पुमान्। शुक्रं ततः पुमान् वीरो जायते बलवान् दृढः। अथचेद्वनितापूर्वं विसृजेत् रक्तसंयुतं।ततो रूपान्विता कन्या जायते दृढसंहता" ॥

एककाल में अनेकगर्भ।

शुक्रार्तवे पुनः॥ ८॥
वायुना बहुशो भिन्ने यथास्वं बहवपत्यता।

अर्थ–गर्भस्थवायु जब शुक्र और आर्तव के बहुत से भाग कर डालता है तब एक ही वार में अनेक बालकों की उत्पत्ति हो जाती है, जब शुक्र अधिक होता है और वायु उसको भिन्न भिन्न भागों में विभक्त कर देता है तब बहुत से पुरुषों की उत्पत्ति होती है और जब अधिक भाव में स्त्रीका रज बहुत भागों में विभक्त हो जाता है तब बहुत सी स्त्री संतान उत्पन्न होती हैं, शूकरी और कुत्ती के अनेक संतान होने का यही कारण है।

विकृतगर्भ का कारण।

वियोनिविकृताकारा जायंते विकृतैर्मलैः ६॥

अर्थ–विकृत बातादि मलद्वारा जब शु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्र और शोणित दूषित हो जाते हैं तब वियोनि (अन्य योनिवाले) और विकृताकार (अनेक आकारवाले) गर्भ होते हैं ।

प्रतिमास में रजः स्राव ।

मासि मासि रजःस्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्
वत्सराद्द्वादशाद्ऊर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ७

अर्थ–बारह वर्ष की अवस्था से लेकर हर महिने स्त्रियों के रससे उत्पन्न हुआ रज तीन दिन तक निकलता रहता है और वही रज पचास वर्ष की अवस्था होने के पीछे अपने आप बन्द हो जाता है ।

वीर्यवान् संतानोत्पत्ति में कारण ।

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता ।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ८ ॥
वीर्यवंतं सुतं सूते-

ततो न्यूनाद्वयोः पुनः ।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ९ ॥

अर्थ–गर्भाशय, अपत्यमार्ग, स्त्रीका रज पुरुष का वीर्य शुद्ध अर्थात् निर्मल हो, वातादि से दूषित नहों, वायु भी शुद्ध हो अर्थात् पित्तादि से आवृत न हो, तथा हृदय दोषादि से संतप्त न हो ऐसी अवस्था में जब स्त्री पूरी सोलह वर्ष की होजाय और पुरुष पूरे बीस वर्ष का होजाय तब स्त्री पुरुष के समागम से वीर्यवान् पुत्र का जन्म होता है ।

इससे कम अवस्थावाले स्त्री पुरुषों के समागम से जो संतान होती है वह रोगी अल्पायु और दुर्भाग्य होती है अथवा ऐसा भी देखनेमें आता है कि गर्भ की स्थितिही नहीं होती है ।

शुक्रार्तवसंयोगमें गर्भकी अनुत्पत्ति ।

वातादिकुणपग्रंथिपूयक्षीणमलाह्वयम् ।
बीजासमर्थं रेतोऽस्रम्-

अर्थ–पुरुष का वीर्य और स्त्री का शोणित ये दोनों वातादि दोष, कुणप, ग्रंथि पूय, क्षीण और मल इन सब नामों से अभिहित होते हैं, जैसे वातशुक्र, पित्तशुक्र कफशुक्र, कुणपशुक्र (रक्त के दूषित होने से दुर्गंधित), ग्रंथिशुक्र, पूयशुक्र क्षीणशुक्र औरमलशुक्र यह दोप्रकारका होताहै मूत्रशुक्र और पुरीषशुक्र) । इसी तरह आर्तव के भी नाम हैं जैसे, वातार्तव, पित्तार्तव, कफार्तव, कुणपार्तव ग्रंथार्तव, पूयार्तव क्षीणार्तव, और मलार्तव(मूत्रार्तव और पुरीषार्तव) । ऐसे शुक्र और शोणित गर्भ के उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं ।

वातादिदोषजशुक्र का ज्ञान ।

स्वलिंगैर्दोषजं वदेत् ॥ १० ॥
रक्तेन कुणपं श्लेष्मवाताभ्यां ग्रंथिसन्निभम् ।
पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां क्षीणं मारुतपित्ततः ११

अर्थ–वातादि दोष संज्ञक शुक्र और शोणित में जिस दोष के लक्षण दिखाई दें उसको उसी नाम से जानना चाहिये । जैसे रूक्ष, श्याव और अरुणादि लक्षणों से युक्त शुक्र शोणित वातसंज्ञक होता है । विस्रगंध उष्णादि लक्षणयुक्त शुक्रशोणित पित्तसंज्ञक होता है । स्निग्ध, पांडुवर्ण और पिच्छिलादि लक्षणयुक्त शुक्रशोणित कफ संज्ञक होता है, इसी तरह दुष्ट रक्त से मुर्दे की समान गंधवाला शुक्रशोणित कुणपसंज्ञक है । कफवात से दूषित ग्रंथिके समान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रंथिसंज्ञक, रक्तपित्त से दूषित पूय (राध) के समान पूयसंज्ञक, तथा वातपित्तसे दूषित होने पर क्षीणता को प्राप्तहुआ शुक्रशोणित क्षीणसंज्ञक होता है।

शुक्रार्तवका साध्यासाध्य विचार।

कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यंतु त्रिदोषं मूत्रविट्समम्

अर्थ–वातादि संज्ञक से लेकर क्षीण संज्ञक पर्य्यंत शुक्रशोणित की चिकित्सा कठिनता से होती है इसलिये ये कृच्छ्र साध्य हैं तथा मल और मूत्रकी सी आकृतिवाले शुक्रशोणित मलसंज्ञक होते हैं, ये त्रिदोष के दूषित होने के कारण असाध्य होते हैं।

वातादिसंज्ञक शुक्रार्तवकी चिकित्सा।

कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टे स्वौषधम्-

अर्थ–वातादि दोषोंसे दूषित हुए शुक्र शोणितमें उन उन दोषों के शमन करनेका उपाय करना चाहिये। जैसे कुपित वायुके प्रशमनके लिये स्निग्ध, उष्ण, अम्ल, और लवणादि उपचार करै। पित्तके शमनके लिये मधुर शीत कषायादि, कफके लिये कटु रूक्ष कषायादि उपचार करे। विशेष करके वातज शुक्रदोषमें सुक्त सैंधव और फलाम्ल द्वारा सिद्ध जवाखारका प्रतीवाप देकर घृतपान करे। बेलगिरी और विदारीकंद द्वारा सिद्ध किये हुए दूधकी आस्थापन वस्ति देवे। मधु और देवदारुसे सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन वस्ति देवै। क्षीर और कुलीरके रससे सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन और उत्तरवस्ति देवै। पित्तजशुक्र में कांडेक्षु, गोखरू, गिलोय, इनके काथसे सिद्ध किया हुआ मूर्वा और मुलहटीका प्रतीवाप देकर घृतपान करे। निसोतका चूर्ण घीमें मिलाकर देनेसे विरेचन करावे। पयस्या और श्रीपर्णी इनसे सिद्ध किये हुए दूधकी आस्थापन वस्ति देवै। मधुक और मुद्गपर्णी इनसे सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन और उत्तरवस्ति देवे। कफजशुक्रमें पाखानभेद, अडूसेका और आमला डालकर सिद्ध किया हुआ पीपल और मुलहटीके चूर्णका प्रतीवाप देकर घृतपान करावे। मेनफलका काथ पिलाकर वमन करावे॥ दंती और बायविडंग का चूर्ण तेलमें चटाकर विरेचन करावे॥ राजवृक्ष और मेनफल के काथसे आस्थापन वस्ति दे मुलहटी और पीपलसे सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन और उत्तरवस्ति दे॥

वातज आर्तव दोष में भाडंगी और भद्रदारु से सिद्ध किया हुआ घृतपान करावै दूध और घृतमें सानकर प्रियंगु और तिल का कल्क योनि में धरै। सरल वृक्ष और मुद्गपर्णी के कषाय से योनिका प्रक्षालन करे। पित्तज योनिदोष में दोनों काकोली और विदारीकंदका क्वाथ, अथवा उत्पलपद्म का क्वाथ अथवा महुआ के फूल और खंभारी के फल का क्वाथ चीनी डालकर पीवै।

कुणपकी चिकित्सा।

कुणपे पुनः॥ १२॥

धातकीपुष्पखादिरदाडिमार्जुनसाधितम्।
पाययेत्सर्पिरथवा विपक्वमसनादिभिः १३

अर्थ–कुणप शुक्र में धाय के फूल, खैर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनार और अर्जुन इनसे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा असनादि गणोक्त द्रव्यों के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत पान करावै ॥ +

ग्रंथिसंज्ञक शुक्रकी चिकित्सा ।

पलाशभस्माद्यभिदा ग्रंथ्यामे-

अर्थ–ग्रंथि संज्ञक शुक्र में ढाकका क्षार और पाखान भेद से सिद्ध किया हुआ घृत पान कराना चाहिये ।

पूयशुक्रकी चिकित्सा ।

पूयरेतसि ।

परूषकवटादिभ्याम्-

अर्थ–पूयशुक्रमें परूषकादि और वटादि गणोक्त औषधोंसे सिद्ध किया हुआ घृत देना चाहिये ।

क्षीणशुक्रकी चिकित्सा ।

क्षीणे शुक्रकरी क्रिया ॥ १४ ॥
स्निग्धं वांतं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिभिः ॥

अर्थ–क्षीणनामक शुक्रमें अर्थात् शुक्रके क्षीण होनेपर वीर्यको बढानेवाली क्रिया करनी चाहिये तथा शुक्र दोषार्त रोगीको स्नेहन, वमन, विरेचन, निरूहण और अनुवासन देनेके पीछे उत्तरबस्ति का प्रयोग करे ।

× यहां कुणप का सामान्य वर्णन है फिर शुक्रका ही ग्रहण क्यों किया गया है इस शंका का यह समाधान है कि प्रथम तो वीर्यका प्रकरण चला आता है, दूसरे कुणप शोणित का वर्णन आगे करेंगे, जैसे 'कुणपपूयास्रे, इसलिये यहां शुक्र का ही ग्रहण है । 'कुणपे पुनः, इसमें पुनः का ग्रहण इसलिये है कि वातादि दुष्ट शुक्र में अस्रोक्त क्रिया न करनी चाहिये ।

पुरीषसंज्ञक शुक्रकी चिकित्सा ।

संशुष्को विट्प्रभे सर्पिर्हिंगुसेव्यादिसाधितम् पिबेत्-

अर्थ–जिस रोगीका मल विष्टाके सदृश होगया है उसे वमन विरेचन द्वारा शुद्ध करके उसे हींग और खस आदिसे * सिद्ध किया हुआ घृत पानकरावै ।

विशेष दृष्टव्य–मूत्रकी कांतिवाला शुक्र सर्वथा असाध्य होता है इसलिये उसकी चिकित्सा ही नहीं कही गई है । वातादि दोष से दूषित स्त्री के शोणित की चिकित्सा दोषानुसार करने का वर्णन पहिले होचुका है अब ग्रंथि आदि शोणित की चिकित्सा कहतेहैं ।

ग्रंथ्यार्तव की चिकित्सा ।

ग्रंथ्यार्तवे पाठाव्योषवृक्षकजं जलम् ॥ १६ ॥

अर्थ–ग्रंथि नामक स्त्री के रज में पाठा, त्रिकुटा और कुडा इनका क्वाथ पीवै ।

कुणपपूय शोणित की चिकित्सा ।

**पेयं कुणपपूयास्रे चन्दनम् वक्ष्यते तु यत् ।
गुह्यरोगे च तत्सर्वं कार्यं सोत्तरबस्तिकम् ॥**

अर्थ–कुणपनामक और पूय नामक शोणित में लाल चन्दनका क्वाथ पीना चाहिये । तथा गुह्यरोग में जो जो वमनादि और योनि में पिचु धारणादि यथायोग्य

× आदि शब्दसे संग्रहमें लिखे हुए पाठ की सूचना होती है उसमें लिखा है कि हींग, खस, चीता, प्रियंगु, मजीठ, और कमल नाल से सिद्ध किये हुए घृतमें त्वक्, पत्ता, चोच, इनके चूर्णका प्रतीवाप देकर पान करावे । किसी किसी पुस्तक में हिंगुसेव्यासिसाधितम्, ऐसा पाठ भी है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साधन लिखे हैं उन सबको भी उत्तरवस्ति सहित काम में लाना चाहिये । ÷

शुद्ध शुक्रार्तव के लक्षण ।

शुक्रं शुक्लं गुरु स्निग्धं मधुरं बहुलं बहु ।
घृतमाक्षिकतैलाभं सद्गर्भोपयिकं पुनः ॥ १८ ॥
लाक्षारसशशास्राभं शौतं यच्च विरज्यते ।

अर्थ–शुक्रार्तव में शुक्र प्रधान है इस लिये शुक्र शब्द का प्रयोग पहिले किया गया है विशुद्ध शुक्र * सफेद, भारी, चिकना मिष्ट, गाढा, अधिक तथा घृत, शहत और तेल की आकृतिवाला होता है, इसी से सुंदर गर्भ की उत्पत्ति होती है ।

विशुद्ध रज लाख के रस के सदृश वा खरगोश के रुधिर के समान होता है इस को जल से धोने पर वस्त्र में दाग नहीं रहता है । ऐसा आर्तव सद्गर्भ की उत्पत्ति करता है ।

गर्भस्थिति होने के पहिलेकी कर्तव्यता।

शुद्धशुक्रार्तवे स्वस्थे संरक्तं मिथुनं मिथः १९
स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शालितबस्तिकम्

अर्थ–शुद्ध शुक्र और आर्तववाले जो किसी प्रकार के रोग के लेशमात्र से भी आक्रांत न हों आपस में एक दूसरे को देखकर अनुरागयुक्त हों । वमन विरेचनादि से शुद्ध हो चुके हों अभ्यासपूर्वक जो वस्ति ग्रहण करते रहे हों ऐसे दोनों स्त्री पुरुषों को पुंसवन * स्नेह से स्निग्ध करै ।

पुरुषका उपक्रम ।

नरं विशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः २०

अर्थ–विशेष करके पुरुषको जीवनीयादि गणोक्त मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए दूध और घी का पान कराता रहे ।

स्त्रीका उपक्रम ।

नारी तैलेन मांसैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् ।

अर्थ स्त्री को तैल, उरद और पित्तकारक द्रव्यों का विशेष रूपसे सेवन कराता रहे ।

गर्भग्रहण का काल ।

क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ॥
स्रस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं-
स्त्रियम् ।

अर्थ–मुख में कृशता के हेतु बिना

× यहां क्षीण आर्तवकी चिकित्सा नहीं कही गई है उसको अपनी बुद्धिसे विचार कर करना चाहिये और जैसे क्षीण शुक्रमें वीर्य को बढानेवाली क्रिया की जाती है वैसेही क्षीण आर्तवमें रजको बढानेवाली क्रिया करना चाहिये ।

÷ आहार का रस अच्छी तरह परिणत होकर अर्थात् रूपांतर को धारण करता हुआ क्रम से मज्जा में पहुंच जाता है तब उस रस का सारभूत यह शुक्र कहलाता है जैसे दूध से दही और दहीसे घृत, और ईखके रस से गुड बनता है । यह शरीर में शुक्र के धारण करने वाली कला का आश्रय लेकर सर्वांग में व्याप्त रहता है परन्तु इसका विशेष स्थान मज्जा अंडकोष और स्तन हैं उन में आल्हादकता होने से यह इकट्ठा होकर अंग प्रत्यंग से निकल पडता है । घृत के समान होने से गर्भ गौरवर्ण, शहत के समान होने से गर्भ श्यामवर्ण और तेल के समान होने से गर्भ कृष्णवर्ण होता है ।

× यथा अभीप्सित गर्भोत्पादक फल घृत और महाकल्याणकादि घृतपान द्वारा जो गर्भिणी का संस्कार किया जाता है उसे पुंसवन कहते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षीणता और प्रसन्नता, श्रोणि (कटिपश्चात् भाग) और स्तनों में फड़कन, आंख और कुक्षि में शिथिलता, और पुरुष के संग रमण करने की इच्छा ये सब बातें जिस स्त्री में होती हैं उसे ऋतुमती समझना चाहिये यहीं उस के गर्भ ग्रहण करने का काल है ।

ऋतुकाल से पीछे योनिसंकोच ।

पद्मं संकोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा २२
ऋतावतीते योनिः सा शुक्रं नातः प्रतीच्छति ।

अर्थ—दिनके समय खिला हुआ कमलका फूल जैसे दिनके अंत में संकुचित होजाता है वैसेही ऋतुकाल अर्थात् रजोदर्शन के बारह दिन व्यतीत होने पर योनि सुकड जाती है और; वह वीर्य ग्रहण की इच्छा नहीं करती है ।

वायुकी कारणता ।

मासेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृतौ पुनः २३
ईषत्कृष्णं विगंधं च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् ।

अर्थ—आहार के रसद्वारा वृद्धि पाया हुआ रक्त एक मासमें फिर वायुकी प्रेरणा से योनि के मुखद्वारा निकलता है, इसका रंग कुछ कालापन लिये हुए गंधरहित होता है । इस शुद्ध रक्तको पुष्प भी कहते हैं ।

ऋतुकाल में स्त्री का वर्तन ।

ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणव्याधिनी त्र्यहम् ।
सृजालंकाररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ।
क्षीरेण यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ॥
पर्णे शरावे हस्ते वा भुंजीत ब्रह्मचारिणी ।
चतुर्थेऽह्नि ततःस्नात्वा शुक्लमाल्यांबराशुचिः
इच्छंती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम् ।

अर्थ—रजोदर्शन के दिनसे स्त्री को तीन दिन तक शुभ की इच्छा करते रहना चाहिये, तथा स्नानादि क्रिया न करना चाहिये, अलंकार धारण न करने चाहिये डाभ की शय्या पर शयन करना उचित है । दूध में पकाया हुआ यवान्न जो शरीर के महास्रोत आमपक्वाशय नामक कोष्ठ (गर्भाशिष्टान) का शोधन और कर्षण करता है थोड़ा सा केला के पत्ते, वा मिट्टी के पात्र अथवा हाथ में धरकर खाना चाहिये । इस तीन दिन में पुरुष से समागम करना उचित नहीं है । चौथे दिन स्नान द्वारा शुद्ध होकर सफेद कपड़े पहन, मालाधारण कर प्रथम पति का दर्शन करे और पति के सदृश पुत्रकी कामना करे । ऋतुमती स्त्री स्नान के पीछे जैसा देखती है वा जैसा ध्यान धरती है वैसा ही पुत्र पैदा करती है ।

ऋतुके कालका परिमाण ।

ऋतुस्तु द्वादशनिशाःपूर्वास्तिस्रश्चनिंदिताः
एकादशी च युग्मासुस्यात्पुत्रो ऽन्यासुकन्यका

अर्थ—रजोदर्शन के दिन से बारह दिन ऋतु काल रहता है इनमें पहिली तीन रात्रि जिनमें पुष्पकी प्रवृत्ति रहती है वे निंदनीय हैं, इनमें स्त्री के पास जाना उचित नहीं है, ग्यारहवीं रात्रिभी अप्रशस्त है, चकार से तेरहवीं रात्रिकाभी ग्रहण है इसमें स्त्री संगम से नपुंसक संतान की उत्पत्ति होती है । शेष दिनों में युग्म दिन अर्थात् चौथे, छटे, आठवें, दसवें और बारहवें दिन मैथुन करने से पुत्रकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इन दिनमें अचिंत्य कारण से आर्तव कम होजाता है तथा अयुग्म रात्रियों में अर्थात् पांचवीं, सातवीं और नवीं रात्रियों में स्त्री संगम से कन्या उत्पन्न होती है, क्योंकि इनमें अचिन्त्य हेतु से शुक्र कम होता है। यदि आहारादि के कारण अयुग्मा रात्रियों में वीर्य की अधिकता और युग्मा रात्रियों में वीर्य की न्यूनता हो तो पुरुष स्त्रीकी आकृति वाला दुर्बल वा हीनांग होता है और स्त्री पुरुष के आकारवाली दुर्बल और हीनांग होती है।

पुत्रेष्टियज्ञ।

उपाध्यायोऽथ पुत्रीयं कुर्वीत विधिवद्विधिम्
नमस्कारपरायास्तुशूद्राया मंत्रवर्जितम्।

अर्थ—तदनंतर अथर्ववेद का जानने वाला पुरोहित विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ करावै। यह विधि त्रिवर्ण के लिये कही गई है। शूद्राणी को केवल नमस्कार करना उचित है, मंत्रोच्चारण नहीं करना चाहिये।

स्त्रीका गुप्तसेवन।

अवंध्य एवं संयोगः स्याद्रत्यं च कामतः॥
संतोऽप्याहुरपत्यार्थं दंपत्योः संगतं रहः।
दुरपत्यं कुलांगारो गोत्रे जातं महत्यपि ३०

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे पुत्रविधी-यादि करके स्त्रीके साथ संगम करनेसे विफलता नहीं होती है किन्तु यथाभलषित पुत्र वा पुत्रीकी उत्पत्ति होती है। साधुलोगों का यह कहना है कि संतान के लिये स्त्री पुरुष का समागम एकान्तमें होना चाहिये क्योंकि एकान्तमें समागम न करनेसे उच्चकुलमें भी ऐसे बालक होजाते हैं जो कुलका सत्यानाश कर देते हैं।

दंपतीके पुत्रचिंतनका प्रकार।

इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ।
चिंतयेतां जनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ३१॥

अर्थ—स्त्री पुरुषको जैसे पुत्रकी इच्छाहो वैसेही रूप (वर्ण, संस्थान, प्रमाण, आकृति) और चरित (श्रद्धा, श्रुत, सत्य, ऋजुता, आनृशंस्य, दान, दया, दाक्षिण्यादि स्वभावत्व ले) तथा आचार (कुल और देशके अनुरूप कर्तव्यकर्म) और परिच्छद (मनुष्य, गौ, अश्व, धन, धान्य, वस्त्र, अलंकार, रत्न, रथ, आयुध, गृह, उद्यापन, वीणा, पणव, शय्यादि) वाले मनुष्यों का ध्यान करे।

पुत्रविधिका पश्चात्कर्म।

कर्मांते च पुमान्सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः।
प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया॥
आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः
तैलमाषोत्तराहारा तत्रमंत्रं प्रयोजयेत् ३३॥

अर्थ—पुत्रविधीय यज्ञ करनेके पीछे पुरुष घृत और दूध मिलाकर शाली चावलका भोजन करके ज्योतिषियों के द्वारा शुभ मुहूर्त योग करणादि का स्थिर करके प्रथम दाहिने पांवसे शय्यापर चढे। इसी तरह पत्नी भी तेल और उरद है मुख्य जिनमें ऐसा भोजन करके बांये पांवको प्रथम शय्यापर रक्खे और पुरुषकी दक्षिण ओर शयन करे। फिर नीचे लिखे हुए मंत्र का उच्चारण करे।

मंत्रपाठ।

अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धातात्वाम्।
दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा-
भवति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्रह्मा बृहस्पति विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम्-

अर्थ-इस मंत्रका पाठ करे । शेष भी तू ही है । आयुभी तू ही है धाता बिधाता तुझे ब्रह्मतेजसे धारण करें । ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति, चन्द्रमा, सूर्य, अश्विनीकुमार, भग मित्र, वरुण ये सब मुझको वीर पुत्रदें ।

मंत्रपाठानंतर कर्म ।

सांत्वयित्वा ततोऽन्यं संविशेतां मुदान्वितौ उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदंगैः सुसंस्थितैः ॥ तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैःस्वस्थानमास्थितैः

अर्थ-मंत्रपाठके पीछे दोनों स्त्री पुरुष आपसमें एक दूसरेको प्यारी और मीठी बातों से तृप्त करके बडे प्रेमसे मिथुनीभाव में प्रवृत्त हों । समागमके समय स्त्रीको उचित है कि उसीमें मन लगाकर अपने सब अंग प्रत्यंगों की स्थिति को यथावत् करके सीधी शयन करै । ऐसा करनेसे वातादि संपूर्ण दोष अपने अपने स्थानों में रहे आते हैं जिस से बीजके ग्रहणमें सुभीता पडता है संग्रहमें लिखा है ॥

नीची ऊंची वा करवट लिये हुए स्त्रीसे समागम न करे । कुबडेपनसे बात बलवान् होनेसे योनिमें पीडा होती है । दक्षिणपार्श्वमें कफ योनिके मुखको ढक लेता है । वामपार्श्वमें पित्त रक्त और शुक्रमें दाह पैदा करता है । इससे उत्तरभावमें स्थित स्त्री बीज को ग्रहण करनेमें समर्थ होती है ॥

सद्योगर्भाके लक्षण।

लिंगं तु सद्योगर्भाया योन्यां बीजस्य संग्रहः तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रास्राननुबंधनम् । हृदयस्पंदन तंद्रा तृड् ग्लानिर्लोमहर्षणम् ॥

अर्थ-तत्काल गर्भको धारण करनेवाली स्त्रीके ये लक्षण होते हैं । यथा- योनिमें बीज का सम्यक् रीतिसे ग्रहण, तृप्ति (आहार की अनिच्छा), कूखमें भारापन और फडकन, योनिके मुखसे शुक्र और शोणित का बहाव बन्द होजाना । हृदयस्पंदन, तंद्रा, तृषा ग्लानि, और रोमांच खडे होना ।

गर्भकी अवस्था ।

अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कललीं भवेत् गर्भः पुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत् ॥ बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते ।

गर्भाधान के सात दिन पीछे वह गर्भ कललीभूत (कफकी सी ग्रंथि) होकर प्रथम मांसमें अव्यक्त रहता है अर्थात् तब तक स्त्री वा पुरुषके उत्पन्न होनेके लक्षण प्रकट नहीं होते हैं । इसलिये आकृतिके प्रकट होनेसे पहिले ही पुंसवनादि करे । यह गर्भिणी का संस्कार विशेष है ॥

शंका--जब पूर्वजन्मके संस्कारसे वह गर्भ स्त्री रूपमें प्रकट होनेको है तब पुंसवनादि संस्कारसे वह गर्भ पुरुषरूपमें कैसे होसकता है

समाधान--पुरुषकार(पुरुषार्थ) यदि बलवान् हो और दैव यदि दुर्बल होतो बलवान् पुरुषकार दुर्बल दैव अर्थात् प्रारब्धको उल्लंघित कर देता है किन्तु बलवान् दैवका दुर्बल पुरुषार्थ किसी तरह पराभव नहीं कर सकता है । यहां पुंसवनादि कर्मद्वारा सिद्धि वा असिद्धि का अनुमान करके पूर्वजन्म के किये हुए कर्म का हीनबलत्व और प्रबलत्व जाना जाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुंसवन प्रयोग ।

पुष्ये पुरुषकं हैमं राजतं वाथ वायसम् ३८ ॥
कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्यांजलिं-
पिबेत् ।

अर्थ--पुष्य नक्षत्रमें सौने, चांदी अथवा लोहेकी पुरुषाकार पुत्तलिका बनवाकर उसको अग्निमें तपावे जब लालरंग की होजाय तब इसेदूधमें बुझाकर इसदूधको चार पल पान करै

अन्य प्रयोग ।

गौरदंडमपामार्गं जीवकर्षभसैर्यकान् ३९ ॥
पिबेत्पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः ।

अर्थ--सफेद ओंगा, जीवक, ऋषभक, और श्वेतकुरंट इनमेंसे एक, दो, तीन वा चारोंको जलमें पीसकर पुष्यनक्षत्रमें पानकरै ।

सफेदकटेरी की जड ।

क्षीरेण श्वेतवृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् ॥
पुत्रार्थं दक्षिणे सिंचेद्वामे दुहितृवांछया ।

अर्थ--सफेद फूलवाली कटेरीकी जडको पानीमें पीसकर उस जलको पुत्रकी इच्छासे स्त्री स्वयं अपनी नासिकाके दाहिने छिद्रमें और पुत्रीकी कामनासे बांयेछिद्रमें सेचनकरै ।

पुत्रोत्पादनमें अन्ययोग ॥

पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् ॥
नासयाऽऽस्येन वा पीतं वटशृंगाष्टकं तथा ।
ओषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यांतरुपयोजयेत् ॥

अर्थ--जिस स्त्रीके पुत्र न होता हो वा पुत्रोत्पत्ति के पीछे उसकी रक्षाके निमित्त लक्ष्मणाकी जड अथवा बटवृक्षके आठ अंकुरों को दूधमें पीसकर मुख वा नासिका द्वारा पानकरै । इसीतरह जीवनीय गणोक्त दस औषधोंका स्नान और उबटने द्वारा बाह्यप्रयोग और आहार तथा पानद्वारा अन्तःप्रयोग करै

गर्भिणी का उपचार ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भिणीम् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत् ४३ ॥

अर्थ--पति और सेवक लोगोंके द्वारा गर्भिणी स्त्री को प्रिय और हितकारी पथ्य देकर जो उपचार किया जाता है, उसी से गर्भ की स्थिति रहतीहै अर्थात् गर्भ अकाल में गिरने नहीं पाता है । नवनीत घृत और दूध द्वारा गर्भिणी स्त्री का सदा उपचार करता रहे ॥

गर्भिणी को त्याज्य कर्म ।

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ४४ ॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम् ।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टंभिभोजनम् ।
रक्तं निवसनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम् ।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छंति तत्त्यजेत् ।
तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात्
पञ्चभिर्गर्भः स्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ।

अर्थ--अति मैथुन, श्रमोत्पादक कर्म, बोझ लेचलना, भारी वस्त्र ओढना, रात में जगना, दिन में सौना, कठोर वा उत्कट आसन पर बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, मलमूत्रादि वेगको रोकना, स्पृहाको रोकना, निराहार रहना, मार्ग चलना, तीक्ष्ण गरम भारी और विष्टंभी भोजन करना, लालवस्त्र धारण करना, खाई वा कूप में झांकना, मद्य और मांस का सेवन, उत्तान शयन (सीधा सौना) स्त्री को अनीप्सित कर्म (जिन-कामों पर स्त्री की रुचि न हो) रक्तस्राव वमन विरेचनादि द्वारा शुद्धि इन सब कर्मों को गर्भिणी स्त्री त्याग देवे । तथा आठवें महिनेसे पहिले गर्भिणी को अनुवासन वस्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न देवे, आठ मास पीछे वस्ति कर्म से कुछ हानि नहीं है देनाही चाहिये । इन सब वर्जित कर्मों के करने से कुसमय गर्भपात होजाता है अथवा कुक्षि में ही गर्भ सूख जाता है वा मर जाता है ॥

वातलादि अहार का निषेध ।

वातलैश्चभयेद्गर्भः कुब्जांधजडवामनः ।
पित्तलैः खलतिः पिंगः श्वित्री पांडुः कफात्मभि

अर्थ–वादी करने वाले आहारके सेवन से गर्भ कुबड़ा, अन्धा, जड और वामन (बौना) होजाता है । पित्तजनक भोजन से गंजा और पीले रंग का होताहै । तथा कफकारक द्रव्यों के सेवन से श्वित्र रोगी और पांडुवर्ण होता है ॥

मृदु औषधों का सेवन ।

व्याधींश्चास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरोषधैर्जयेत् ।

अर्थ–गार्भिणी स्त्री को किसी प्रकार का रोग होने पर मृदु, सुखपूर्वक सेवन के योग्य और तीक्ष्णता रहित औषध द्वारा उसके रोग को दूर करने का उपाय करे ।

गर्भ के दूसरे मास के लक्षण ।

द्वितीये मासि कललाद्घनः पेश्यथवाऽर्बुदम्
पुंस्त्रीक्लीवा- क्रमात्तेभ्यः
तत्र व्यक्तस्य लक्षणम् ।

अर्थ–दूसरे महिनेमें कलल रूप वाला गर्भ घन, पेशी और अर्बुद के आकार का हो जाता है । इन्हीं घनादि रूप सेही गर्भ क्रम से पुरुष, स्त्री या क्लीव होताहै अर्थात् घन (गाढा) होने से पुरुष, पेशी (मांस की पेशीके समान लंबी) होने से स्त्री और अर्बुद (अर्द्ध गोलाकार वस्तु के सदृश) होने से नपुंसक होता है ॥

अब व्यक्त गर्भ के लक्षण कहते हैं–

व्यक्तगर्भ के लक्षण ।

क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्छाच्छर्दिररोचकः ॥
जृंभा प्रसेकःसदनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ।
अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ
पादशोफोविदाहोऽन्येष्वह्नाश्चविविधात्मिका

अर्थ–क्षीणता, उदर में भारापन, मूर्च्छा खाने पीने में अरुचि, जंभाई, मुखसे लार गिरना, देह में शिथिलता, रोमांच खडे होना, खट्टी वस्तुओं के खाने की इच्छा, स्तनों में मोटापन, स्तनों में दूध का प्रादुर्भाव, चूचुक अर्थात् स्तनों के अग्रभाग में श्यामता, पांवों में सूजन, तथा अनेक प्रकार के पथ्य अपथ्य खाने में स्पृहा ये लक्षण व्यक्तगर्भ के होते हैं । कोई २ आचार्य कहते कि हैं देह में विदाह भी होता है । किसी पुस्तक में विदाहोऽन्ये की जगह विदाहान्ने । पाठ भी है, अर्थात् भोजन किये हुए अन्न में विदग्धता होती है ।

गर्भणी के हिताहित पथ्य का विचार ।

मातृजं ह्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन तत् ।
संबद्धं तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धाविधारणम् ।
देयमप्यहितं तस्यै हितोपहितमल्पकम् ॥
श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ।

अर्थ–क्योंकि इस गर्भ का हृदय जो चेतना का अधिष्ठान है वह माता के अंश से उत्पन्न होता है तथा गर्भ के उस हृदय का संबंध माता के हृदय से होता है, इस लिये गर्भिणी के हृदय की ताप से गर्भका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदय भी संतप्त होता है और इसी कारण से गर्भिणी को द्विहृदया वा दौहृदिनी अर्थात् दो हृदयवाली कहते हैं। तब हृदयके पराधीन होने के कारण गर्भिणी के स्वभावोचित अभिलाषाओं के सिवाय और भी अनेक प्रकार की स्पृहा उत्पन्न हो जाती हैं। गर्भावस्था में गर्भिणी की जो इच्छा होती है वही अभिलाषा गर्भ की भी गिनी जाती है। इसलिये गर्भिणी की इच्छा पूरी न करना किसी तरह भी हितकारक नहीं है।

गर्भिणी स्त्री को यदि किसी अपथ्य विषय की भी अभिलाषा उत्पन्न हो तो उस अपथ्य को भी पथ्य में मिलाकर देना चाहिये परंतु बहुत ही कम देना उचित है।

इसका कारण यही है कि गर्भिणी की स्पृहा पूरी न करने से गर्भ बहुत दिनका होगा तो विकृत रूप हो जायगा और थोड़े दिनका होगा तो पतन हो जायगा अतएव गर्भिणी की इच्छा पूरा करना अवश्य कर्तव्य है।

तीसरे महिने में गर्भका लक्षण।

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपंचकम्।
मूर्धा द्वे सक्थिनी बाहू सर्वसूक्ष्मांगजन्म च।
सममेव हि मूर्धादैर्ज्ञानं च सुखदुःखयोः॥

अर्थ–तीसरे महिने में इस गर्भ के मस्तक, दो पांव और दो हाथ ये पांच अंग तथा चेतना के अधिष्ठान संपूर्ण सूक्ष्म अंग उत्पन्न हो जाते हैं और मस्तक आदि के उत्पन्न होने के समय ही इस गर्भ को दुख सुख का ज्ञान हो जाता है।

गर्भ के बढाने का प्रकार।

गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते।
यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया॥

अर्थ–गर्भ की नाभि और माता का हृदय एक ही नाडी से बंधे रहते हैं। नाडी को लोक में नाल कहते हैं, उसी नाडी से गर्भ पुष्ट होता रहता है, जैसे छोटी छोटी नालियों के द्वारा पानी बहता हुआ खेत में पहुंचकर खेत के अन्न को बढाता है वैसे ही माता के हृदय से बंधी हुई नाडी माता के आहार के प्रसाद नामक रस को नाभिद्वारा सब देह में पहुंचाकर अंग प्रत्यंगों को पुष्ट करती है। यहां शंका होती है कि जब आहार का रस गर्भ में पहुंचता है तो वह मलमूत्र भी करता होगा इसका समाधान यह है कि साक्षात अन्न पान का प्रवेश नहीं होता है इसलिये स्थूल रूप में मलमूत्रादि नहीं होते हैं।

चौथे से सातवें महिने तक गर्भकी दशा।

चतुर्थे व्यक्ततांगानां चेतनायाश्च पंचमे।
षष्ठे स्नायुसिरारोमबलवर्णनखत्वचाम्॥
सर्वैः सर्वांगसंपूर्णो भावैः पुष्यति सप्तमे।

अर्थ–चौथे महिने में वे सूक्ष्म अंग जो अव्यक्त थे प्रकट होजाते हैं, पांचवें महिने में बुद्धि और छटे महिने में स्नायु, सिरा, रोम, बल, वर्ण, नख और त्वचा प्रकट होजाते हैं। सातवें महिने में संपूर्ण भावों से संयुक्त होकर सब अंगों से पूर्ण गर्भ पुष्टिको प्राप्त होता है।

गर्भिणी के कंडूवादि।

गर्भोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाश्रिताः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कंडूर्विदाहं कुर्वीत गर्भिण्याः किटिभानि च ।

अर्थ–सातवें महीने में जब गर्भ पूर्णावयव होजाता है तब उसके द्वारा वातादि संपूर्ण दोष उत्पीडित होकर हृदयका आश्रय लेते हैं और गर्भिणी के खुजली, विदाह और किटिभ उत्पन्न होते हैं । गर्भिणी के ऊरु स्तन और उदर में रेखा पडजाती हैं उन्हें किटिभ कहते हैं ।

उक्त कालमें उपचार ।

नवनीतं हितं तत्र लोलांबुमधुरौषधैः ।
सिद्धमल्पपटुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम् ।
चंदनोशीरकल्केन लिंपेदूरुस्तनोदरम् ।
श्रेष्ठया चैणहरिणशशशोणितयुक्तया ॥
अश्वघ्नपत्रसिद्धेन तैलेनाभ्यज्य मर्दयेत् ।
पटोलनिंबमंजिष्ठासुरसैः सेचयेत्पुनः ॥
दार्वीमधुकतोयेन मृजां च परिशीलयेत् ।

अर्थ–गर्भिणी को खुजली आदि पूर्वोक्त रोगों के शमन के लिये बेर के रस में द्राक्षादि मधुर औषधों को पीसकर उस में पकाया हुआ नवनीत (माखन) देवै । तथा नमक और घृत मिलाकर मधुर और हलका भोजन खाने को दे । चन्दन और खस को जल में पीसकर ऊरु, स्तन और उदर पर लेप करे । अथवा हरिण और खरगोश के रुधिर में त्रिफला को पीसकर भी लेप करे । अथवा कनेर के पत्तों से पकाया हुआ तेल लगाकर फिर परवल, नीमके पत्ते, मजीठ, और तुलसी के पत्तों के कल्क से मर्दन करे । दारुहलदी और मुलहटी के काथ से देह पर परिषेक करे । तथा स्नान उबटना आदि करते रहना उचित है ।

अष्टम मास में तेज संचार ।

ओजोऽष्टमे संचरति माता पुत्रौ मुहुः क्रमात् ।
तेन तौ म्लानमुदितौ तत्र जातो न जीवति ।
शिशुरोजोऽनवस्थानान्मातुरी संशयिता भवेत् ॥

अर्थ–आठवें महिने में माता और पुत्र दोनों को सब धातुओं का तेज बार बार क्रम से संचरित करता है, इससे माता और पुत्र कभी म्लान और कभी हर्षित होते रहते है अर्थात् जब ओज माता में संचरण करता है तब माता हर्षित और गर्भस्थ बालक म्लान रहता है, इसी तरह जब ओज गर्भस्थ बालक में संचरण करता है तब बालक हर्षित और माता म्लान रहती है । ऐसे समय में जब कि ओज बालक में न हो और वह जन्म लेले तो वह जीता नहीं है तथा ओजः पदार्थ की अनवस्थिति के कारण माता के मरने जीनेका भी संशय रहता है ।

अष्टम मास का उपचार ।

क्षीरपेया च पेयाऽत्र सघृतान्वासनं घृतं ।
मधुरैः साधितं शुद्ध्यै पुराणशकृतस्तथा ॥
शुष्कमूलककोलाम्लकषायेण प्रशस्यते ।
शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैंधवः ॥

अर्थ–आठवें महीने में दूध में पकाई हुई पेया घृत डालकर पीना चाहिये । द्राक्षादि मधुर द्रव्यों से सिद्ध कियेहुए घृत से अनुवासन वस्ति देवै । पुराने मल को निकालने के लिये सूखी मूली बेर और इमली के काथ में सोंफका कल्क मिलाकर तेल, घृत और सेंधानमक डालकर निरूहणवस्ति दे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गर्भप्रसवका काल ।

तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतरेतः परम्
वर्षाद्विकारकारी स्यात्कुक्षौ वातेन धारितः ॥

अर्थ—अष्टममासके व्यतीत होनेके एक दिन पीछेसे बारहवें महिने तक गर्भके प्रसव का काल होता है । बारह महिनेके पीछे यदि वायुके कारण गर्भ न निकले तो अवश्य ही वह कुछ न कुछ विकार करता है ॥

नवम मासका उपचार ॥

शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मांसरसौदनः ।
बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम् ॥
तत एव पिचुं चास्या योनौ नित्यं निधापयेत्
वातघ्नपत्रभंगांभः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥
निःस्नेहांगीं न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत् ।

अर्थ—नवें महिनेमें गर्भिणी स्त्रीको मांस रसयुक्त स्निग्धअन्न अथवा बहुत घृत मिला कर यवागू तथा द्राक्षादि मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतकी अनुवासन वास्ति देना हितकर है ॥ तथा इस नवें महिनेमे वादीको शमन करने के निमित्त उक्त अनुवासन घृत में रुईका फोया भिगोकर गर्भिणीकी योनि में प्रतिदिन रखादिया करै ॥ ऐसा करने से गर्भ सुखपूर्वक बाहर आजाता है तथा वातनाशक पत्तों के काथ को ठंडा करके प्रतिदिन स्नान के काम में लावै ।

नवम मास से लेकर जबतक बालकका जन्म न होले तबतक गर्भिणी को निःस्नेहांगी न रक्खे अर्थात प्रतिदिन उसके देहपर तेल लगाता रहै ॥

पुत्रादि होने के लक्षण ।

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं तत्पार्श्वचेष्टिनी ॥
पुंनामदौहृदप्रश्नरतापुंस्त्वप्रदर्शिनी ।
उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले ७० ॥
पुत्रं सूते ऽन्यथा कन्यां या चेच्छति नृसंगतिम्
नृत्यवादित्रगांधर्वगंधमाल्यप्रिया च या ॥

अर्थ—जिस गर्भिणी के दाक्षिण स्तन में प्रथम दूधका प्रादुर्भाव होता है उसके पुत्र का जन्म होता है, जो स्त्री अपनी दाहिनी पार्श्व से गमन शयनादिक कार्य की चेष्टा करती है उस के भी पुत्र होता है तथा चलने में जो पहिले अपना दाहिना पांव उठाती है तथा काम करने में जो प्रथम अपने दाहिने हाथको काम में लाती है वह पुत्र जनती है । जो गर्भिणी पुरुष नामवाले दौहृद और पुरुष नाम वाले प्रश्नों में रत रहती है तथा जो स्वप्न में पुरुष, हाथी, घोड़ा, बाराह आम, अनार, अशोकादि पुरुष नामधारी पदार्थों को देखती है अथवा जिसकी दक्षिण कुक्षि ऊंची और गर्भस्थान गोल हो वह गर्भिणी भी पुत्रको जनती है ।

इन लक्षणों से विपरीत लक्षणवाली गर्भिणी के कन्या होती है, जैसे वामस्तन में दुग्ध, वाम पार्श्व से शयन, वाम पैर से गमन, वाम हस्त से व्यापार, स्त्रीनाम वाले दौहृद और प्रश्न में रत, स्त्री नामधारी हथिनी, घोडी आदिका स्वप्न में दिखाई देना ये सब कन्या होने के लक्षण हैं इन के अतिरिक्त जो गर्भिणी पुरुष संग की इच्छा करती है वा जिसको नाचना, बजाना, गाना, सुगंधित द्रव्य और माला आदि अच्छे लगते हैं वह भी, कन्या को जनती है

नपुंसक होने के लक्षण ।

क्लीबं तत्सकरे तत्र मध्य कुक्षेः समुन्नतम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यमौ पार्श्वद्वयोन्नामाकुक्षौ द्रोण्यामिव स्थिते।

अर्थ–कन्या और पुत्र दोनों के मिश्रित लक्षण होने पर कुक्षि का मध्यभाग ऊंचा हो तो नपुंसक संतान होती है, और उदर के दोनों किनारे ऊंचे और बीच में द्रोणी के समान नीचा हो तो यमज संतान होती है ।

गर्भिणीका सूतिका ग्रहमें आश्रय ।

प्राक्चैव नवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशे प्रशस्ते संभारैः संपन्नं साधकेऽहनि ॥
तत्रोदीक्षेत सा सूतिं सूतिकापरिचारिता ।

अर्थ–गर्भिणी स्त्री को उचित है कि नौ महिने से पहिले ही सूतिका घर में रहने लगजाय । यह घर वास्तुविद्या के जानने वालों द्वारा पूर्व वा उत्तर की ओर प्रशस्त भूमि में बनवाना चाहिये, इस घरमें प्रसूति के उपयोगी सब सामग्री एकत्रित करदेनी चाहिये तथा गर्भिणी स्त्री इस घर में पुष्य नक्षत्र के दिनसे रहना प्रारंभ करे ।

तथा 'इस घर में मैं बालक जनूंगी' इस बातको चित्त में धारण कर प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती रहै, इस गर्भिणी के साथ में ऐसी स्त्रियां रहनी चाहिये जो अनेक बार बालक जनने का अनुभव कर चुकीहों और तत्कालोचित व्यवहार में कुशल भीहों "संग्रह में लिखा है "बहुशः प्रसूताभिरनुरक्ताभिरविषादिनीभिः क्लेशसहाभिः परिवृता स्वस्त्यनपराऽनुलोमनैराहारविहारैरनुलोमितवातमूत्रपरीषा प्रसवकालमुदीक्षेत

आसन्नप्रसवा के लक्षण ।

अधश्चः प्रसवे ग्लानिः कुक्ष्यक्षिश्लथताक्लमः
अधोगुरुत्वमस्रावः प्रसेको बहुमूत्रता ।
वेदनोरूदरकटीपृष्टहृद्बस्तिवंक्षणे ॥७४॥
योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानि च ।
आवीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुतिः ॥

अर्थ–जो आजकल में जननेवाली होती है उसे आसन्नप्रसवा कहते हैं, ऐसी स्त्रीके आसन्नप्रसवकाल में ग्लानि (हर्षकाक्षय) कुक्षि और नेत्रमें शिथिलता, क्लान्ति, नीचे के अंगों में भारापन, अरुचि, मुखसे लार गिरना, बारबार मूत्रोत्सर्ग होना, ऊरु उदर कटि, पृष्ठ, हृदय, बस्ति, वंक्षण आदि ऊर्ध्व अंगों में वेदना, तथा योनि में फटने और सुई छिदने की सी वेदना होना योनि में फडकन और स्राव । ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

योनिभेदन के पीछे आवी की उत्पत्ति होती है (गर्भ के निकलने के समय जो शूल विशेष होता है उसे आवी कहते हैं, घरों में स्त्रियां बहुधा इस शूल को दर्द के नाम से पुकारती हैं) तदनंतर योनि से जल निकलता है इस जलको गर्भोदक कहते हैं ।

उपस्थितगर्भा के साथ कर्तव्य ।

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
हस्तस्थपुष्पामफलां स्वभ्यक्तोष्णांबुसेचिताम् ॥ ७७ ॥
पाययेत्सघृतां पेयां-
स्ततो भूशयने स्थिताम् ।
आभुग्नसविथमुत्तानामभ्यक्तांगीं पुनः पुनः ॥
अधोनाभेर्भिषग्वायात्कारयेज्जृम्भचंक्रमम् ।

अर्थ–गर्भोदक का स्राव होचुकने के पीछे उपस्थितगर्भा उस गर्भिणी को तेल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लगाकर सुखाते हुए गर्म जल से स्नान करावै और रक्षाबंधनादि कौतुक नामक मंगलाचरण करके उसको घृत डालकर पेया पान करावै, तथा इस समय दाडिम आम पुरुषसंज्ञक फलों को हाथ में लिये रहै।

तदनंतर कोमल बिस्तर पर पृथ्वी में दोनों टांगों को चौडी कराके चित्त शयन करावै और उसके नाभि के नीचे के भाग में बार बार तेल लगाकर धीरे धीरे मर्दन करे जिससे वात का कोप नहो। जृंभण (जंमाई) और चंक्रमण (शीघ्र गमन) कराना भी उचित है।

उक्तकर्मका फल।

गर्भः प्रयात्यवागेवं तल्लिंगं हृद्विमोक्षतः ७९
आक्षिप्य जठरं गर्भो वस्तेरुपरि तिष्ठति।

अर्थ—ऊपर कहा हुआ काम करने से गर्भ माताके हृदयस्थानको छोडकर नीचेको उतरता है, गर्भके नीचे उतरने का यह लक्षण है कि हृदयको छोडनेके पीछे वह गर्भ उदरमें आकर वस्ति (पेडू) के ऊपर ठहर जाता है।

गर्भिणीका खट्वारोपादि॥

आन्यो हि त्वरयत्येनां खट्वामारोपयेत्ततः॥
अथ संपीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसाधयेत्।
मृदु पूर्वं प्रवाहेत बाढमाप्रसवाच्च सा ८१॥
हर्षयेत्तां मुहुः पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः।
प्रत्यायांति तथाप्राणाःसूतिक्लेशावसादिताः

अर्थ—जब गर्भिणीके बार बार आवि अर्थात् प्रसवशूल उठने लगे तब उसको खाट पर शयन करादे। तदनंतर वायुद्वारा गर्भ के संपीडित होनेपर योनिके मुखपर तेल लगावै फिर उस गर्भिणी को उचित है कि पहिले धीरे धीरे भीतर से जोर मारै फिर गर्भके योनि मुखपर आनेपर प्रसव होनेतक बलपूर्वक जोर मारै। पासवाली स्त्रियां उस को इन मीठे मीठे वचनोंसे हर्षित करती रहें कि हे सुभगे, हे शोभनमुखवर्णे, तेरे पुत्र होगा, धन्य है और उसके बांये कानमें संग्रहोक्त इस मंत्रका उच्चारण करे" क्षितिर्जलं विषयत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः। सगर्भां त्वां सदा पातु वैशल्यं वा दधत्यपि। प्रसूष्व त्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने। कार्तिकेयद्युतिपुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितं। तथा। इन्द्रामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि। उच्चैः श्रवाश्च तुरगो मंदिरे निवसंतुते। इदमघृतमर्पा समुधृतं वै तव लघु गर्भमिमं प्रमुंचतु स्त्री। तदनलपवनार्कवासवास्ते सहलक्ष्मणाबुधैर्दिशंतु शांतिं। अन्य स्त्री कहें कि जो शूल न होता हो तो जोर मत मारै क्योंकि कुसमय जोर मारनेसे विष्ठामूत्रादि का निकलना अनर्थकारी और अहित होता है तथा बालक भी श्वास खांसी शोफ कुब्ज आदि रोगोंसे आक्रांत होजाता है इसके प्रसव कष्टको दूर करनेके लिये आंखों पर जल लगावे और मुख पर पंखेसे हवा करै॥

हर्ष उत्पन्न करने से बालक जननेकी वेदना से जो जो क्लेश होता है और ग्लानि उत्पन्न होती है वह दूर होकर नवीन जीवन का संचार होता है॥

गर्भसंगमें धूपनादि॥

धूपयेद्गर्भसंगे तु योनिं कृष्णाहिकंचुकैः।
हिरण्ययुग्मीमूलं च पाणिपादेन धारयेत्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुवर्चलां विशल्यां वा जराय्वपतनेऽपि च।
कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्य बाहवोरेनां विकंपयेत् ॥
कटीमाकोटयेत्पार्ष्ण्या स्फिजौ गाढं-
निपीडयेत् ।
तालुकण्ठं स्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि वद्यात्क्षुहीपयः
भूर्जलांगलिकीतुंबीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ।
पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ॥
कुष्ठतालीसकल्कम् वा सुरामंडेन पाययेत् ।
यूषेण वा कुलत्थानां विल्वजेनाऽसवेन वा ॥

अर्थ–जो गर्भ रुकगया हो तो काले सर्पकी काचलीकी धूनी योनिमें दे । और हाथ पांवमें हिरण्यपुष्पी की जड, सूर्यमुखी वा कलहारी इनमेंसे किसीको बांधे । जो जरायु न निकले तो उपरोक्त सब काम करै तथा इसके दोनों बाहु ऊंचे करके इसे हिलावै ।

संग्रहमें लिखा है कि दक्षिण हाथसे गर्भिणीकी नाभिके ऊपरवाले भाग और बांये हाथसे पीठ पकडकर हिलावै । कमरमें एढी से बार बार चोट लगावै, नितंबोंपर बलपूर्वक पीडनकरे । केशोंकी बेणी बनाकर तालु और कंठको रिगडे । गर्भिणीके सिरपर थूहर का दूध लगावै । योनिमें भोजपत्र, कलहारी, तूंबी, सांपकीकाचली, कूठ और सरसों इनमेंसे एक एक, दो दो वा सबको पीसकर लेपकरै वा धूनी दे । कूठ और तालीसपत्र केकल्कको सुरामंडके साथ वा कुलथीके काथके साथ वा बेलगिरी के आसव के साथ पानकरावै (बेलगिरीका आसव बनानेकी यह रीति है कि बेलगिरीको पानीमें भिगोकर यंत्रद्वारा पानी खींचले इसको जौ के ढेरमें गाढदे फिर निकालले । यही बिल्वज आसव है) ॥

अनुवासनादि ।

शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः ।
सहिंगुकुष्ठमदनैर्मूत्रे क्षीरे च सार्षपम् ८८ ॥
तैलं सिद्धं हितं पायौ योन्यां वाप्यनुवासनम्
शतपुष्पा वचा कुष्ठकणासर्षपकल्कितः ॥
निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम्
तत्संगे ह्यनिलो हेतुःस्रा निर्यात्याशु तज्जयात्
कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्कुसनखेन वा ।
मुक्तगर्भापरां योनिं तैलेनांगं च मर्दयेत् ९१ ॥

अर्थ–सितावर, सरसों, जीरा, सहंजना चव्य, चीता, हींग, कूठ, मैनफल, गोमूत्र और दूध इनमें सरसों के तेल को पकाकर इसतेल से गुदा वा योनि में अनुवासन वस्ति देवै । सोंफ, वच, कूठ, पीपल और सफेद सरसों इनका कल्क करके घृत और नमक मिलाकर निरूहण वस्ति देवै । इससे जरायु शीघ्र निकल आता है, क्योंकि जरायु रोकने का प्रधान कारण वायु है और इस वायु के नाश का प्रधान उपाय वस्ति है, इस लिये वस्ति देने से जरायु शीघ्र निकल आता है ।

अथवा कोई चतुर स्त्री अपने नखों को कटवाकर हाथ में घृतादि लगाकर योनिके भीतर से जरायु को खींचले । फिर गर्भ और जरायु के निकलने के पीछे योनिको तथा शरीर को तेल से मर्दन करे ।

मकल्ल रोग में उपाय ।

मकल्लाख्ये शिरोबस्तिकोष्ठशूले तु पाययेत् ।
सुचूर्णितं यवक्षारं घृतेनोष्णजलेन वा ९२ ॥
धान्याम्लं वा गुडब्योषत्रिजातकरजोन्वितम् ।

अर्थ–मकल्ल नामक रोग में मस्तक, वस्ति और कोष्ठ में शूल उत्पन्न होता है इसमें पिसा हुआ जवाखार घृत और गरम जल के साथ पान करावै । अथवा कांजी में पुराना गुड, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, दालचीनी का चूर्ण मिलाकर पान करावै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसूती का उपचार।

अथ बालोपचरेण बालं योषिदुपाचरेत् ९३
सूतिका क्षुद्वती तैलाद्घृताद्वा महतीं पिबेत् ॥
पंचकोलकिनीं मात्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥
वातघ्नौषधतोयं वा तथा वायुर्न कुप्यति।
विशुध्यति च दुष्टासृङ्द्वित्रिरात्रमयं क्रमः ९५
स्नेहायोग्यां तु निःस्नेहमसुमेव विधिं भजेत्।
पीतवत्यांश्च जठरं यमकाभ्यं विवेष्टयेत् ९६॥

अर्थ—बालकों के भरण पोषण में निपुण स्त्री बालोपचरणीय विधान में कहे हुए आहार विहार से उत्पन्न हुए बालक का पालन पोषण करै। प्रसूती को भूख लगने पर पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य चीता, सोंठ) का चूर्ण घृत वा तेल में मिलाकर महती मात्रा का पान करावै। (जो आठ पहर में पकती है उसे महती मात्रा कहते हैं) फिर गुड़ पानी में औटाकर पान करावे अथवा वातनाशक औषधियों का क्वाथ देवै। ऐसा करने से वात कुपित न होगा और दुष्ट रुधिर भी शुद्ध हो जायगा। दो तीन दिन तक प्रसूती को इसी रीति से रखना चाहिये।

जिस प्रसूती को स्नेहपान अनुकूल नहीं है वह स्नेह को छोडकर अन्य संपूर्ण पूर्वोक्त विधियों का पालन करै। स्नेहपान के योग्य स्त्री को स्नेहपान के पीछे अथवा स्नेह पान के अयोग्य स्त्रीको गरम गुडोदक वा वात नाशक औषधों का क्वाथ पान कराने के पीछे उनके जठर पर तेल वा घृत लगाकर कपड़े से लपेट देवै।

पेयापान की विधि।

जीर्णे स्नाता पिबेत्पेयां पूर्वोक्तौषधसाधिताम्
त्र्यहादूर्ध्वं विदार्यादिवर्गक्वाथेन साधिताम्॥
हिता यवागूं स्नेहाढ्या सात्म्यतः पयसाथ वा
सप्तरात्रात्परं चास्यै क्रमशो बृंहणं हितम्॥

अर्थ—स्नेह, गुडोदक और वातघ्न औषधों के क्वाथ के पचजाने पर प्रसूती स्नान करके पूर्वोक्त पंचकोलादि औषधियों से सिद्ध की हुई पेया पान करावे तीन दिन पीछे विदारीगणोक्त औषधियों के क्वाथ में सिद्ध की हुई यवागूमें घृत मिलाकर पान करावै। और जो प्रकृति के अनुकूल हो तो दूध से तयार की हुई यवागू घृत मिलाकर पान करावे। सात दिन पीछे प्रसूती स्त्री को क्रम से बृंहण पथ्य देवै। जीवनीय बृंहणीय, और मधुर वर्ग से सिद्ध किया हुआ अभ्यंग उद्वर्तन, परिषेक, अवगाहन द्वारा तथा हृद्य अन्न पान द्वारा बृंहण करै।

पिशित का अनुपयोग।

द्वादशाहेऽनतिक्रांते पिशितं नोपयोजयेत्।

अर्थ—जब तक बारह दिन न होचुकें तब तक मांस का सेवन अनुचित है।

प्रसूती का यत्नपूर्वक उपचार।

यत्नेनोपचरेत्सूतां दुःसाध्या हि तदामयाः॥
गर्भवृद्धिप्रसववरुक्क्लेदास्रस्रुतिपीडनैः॥

अर्थ—प्रसूता स्त्री की सुश्रूषा बहुत यत्नपूर्वक करनी चाहिये। क्यों कि उस काल में होनेवाले रोग जैसे उदरवृद्धि, प्रसववेदना क्लेद, रक्तस्राव और पीडनादि दुःसाध्य होते हैं।

उक्तविधि सेवन का काल।

एवं च मासादध्यर्धान्मुक्ताहारादिचंक्रमा।
गतसूताभिधाना स्यात्पुनरार्तवदर्शनात्॥

अर्थ—इस तरह प्रसूता स्त्री को उचित

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है कि उक्त नियमों को पालना डेढ महिने तक करती रहे और इस समय में क्रम से इन आहार विहारादि के कठिन नियमों को छोडती रहे । तथा फिर रजोदर्शन होनेपर उसका प्रसूती नाम जाता रहता है ।

इतिश्री अष्टांगहृदये मथुरानिवासी श्रीकृष्णलालकृतभाषाटीकायां शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अथाऽतो गर्भव्यापदं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम गर्भव्यापद शारीरनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

गर्भिणी के पुष्पदर्शन में कर्तव्य ।

" गर्भिण्याःपरिहार्यांसेवयारोगतोऽपिवा पुष्पे दृष्टेऽथवा शूले बाह्यांतः स्निग्धशीतलम् सेव्यांभोजहिमक्षीरिवल्लकफलकाज्यलोपितान् धारयेद्योनिबस्तिभ्यामार्द्रान्पिचुनरुकान्

अर्थ–गर्भिणी के त्यागने योग्य आहार विहार और पूर्वोक्त अति मैथुनादि के सेवन से पुष्प का दर्शन होने पर, अथवा किसी प्रकार के रोग से रजोदर्शन होने पर अथवा शूल होने पर बाह्य और अभ्यंतर स्निग्ध और शीतल क्रिया करना चाहिये । अर्थात् स्निग्ध और शीतल प्रदेह, परिषेक, स्नान और अवगाहनादि बाहर के प्रयोग और स्निग्धशीतल अन्नपानादि आभ्यंतर प्रयोग करना चाहिये । और खस, कमल, चन्दन पीपल आदि दूधवाले वृक्षों की छाल इन सब द्रव्यों को पीसकर इस में घृत मिलाकर इससे रुई के कपडे की बत्ती सी बनाकर विशेषरूप से भिगोवै फिर इसको योनिमें अथवा पेडू पर रक्खे । (जैसे फूलसे फल पैदा होता है वैसेही रजसे गर्भ होता है इसलिये रजसंबंधी रक्त को पुष्प कहतेहैं) ।

स्त्री की स्नानविधि ।

शतधौतघृताक्तां स्त्रीं तदभ्यक्तामगाहयेत् ।
ससिताक्षौद्रकुमुदकमलोत्पलकेसरम् ३ ॥
लिह्यात् क्षीरघृतं खादेच्छृंगाटककसेरुकम् ।
पिबेत्कांताव्रजशालूकबालोदुंबरवत्पयः ४ ॥
शृतेन शालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः ।
पयसा रक्तशाल्यन्नमश्नीयात्समधूदकम् ५ ॥
रसैर्वा जांगलैः-
शुद्धिवर्जं चाऽस्रोक्तमाचरेत् ।

अर्थ–सौबार अर्थात् बहुत बार धोये हुए घृत का गर्भिणी की नाभि के नीचे चारों ओर लेप करदे और ऊपर कहे हुए खस, कमल, चंदन और क्षीर वृक्ष की छाल के क्वाथ से स्नान करावै । पीछे कमोदनी, कमल और उत्पल की केसर में शहत और मिश्री मिलाकर चाटे, कोई कोई कहते हैं कि दूध से निकला हुआ घृत खाना चाहिये । सिंघाडे और कसेरू खाय । तथा गंधप्रियंगु, कमल, कमलनाल और कच्चा गूलरफल डालकर औटाया हुआ दूध पीवै। लाल शाली चांवल, परवल, काकोली, बला, अति बला, मुलहटी और इक्षुमूल डालकर पकाया हुआ दूध अथवा जांगल मांसके यूषमें शहत मिश्री मिलाकर इसके साथ शालीचांवल का सेवन करै । तथा वमन विरेचन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को छोडकर रक्तपित्त की चिकित्सा में कही हुई विधियों का पालन करै ।*

तीनमहिनेकेभीतर पुष्पदर्शनमेंकर्तव्य ।

असंपूर्णत्रिमासायाः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् आमान्वये च-

तत्रेष्टं शीतं रूक्षोपसंहितम् ।
उपवासो घनोशीरगुडूच्यरलुधान्यकाः ७ ॥
दुरालभापर्पटकचन्दनातिविषाबलाः ।
कथिताः सलिले पानं तृणधान्यादिभोजनम्
मुद्गादियूषैरामे तु जितं स्निग्धादि पूर्ववत् ।

अर्थ-तीन महिनेका गर्भ होनेसे पहिले ही रक्तस्राव आदि व्यापत् उपस्थित हो तथा रक्तस्रावके संग आमका संबंध हो तो ये असाध्य होते हैं । इसमें बडी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ यहां आमसंबंधी रजोदर्शन होनेपर शीतक्रिया बाह्य और आभ्यंतर दोनों रीतिसे हितकारी है ॥ यहां शंका होती है कि शीतक्रिया रक्तकोहित आर आमके विरुद्ध होनेसे अहित है ॥ इसका समाधान यह है कि इसमें तिक्तकषायादि रूक्ष द्रव्य मिला देना चाहिये । यथा देश, काल, रोगी का बल और सात्म्य का विचार करके उपवास कराना भी हित है । और मोथा, खस, गिलोय, अरलू, धनियां धमासा, पित्तपापड़ा, चंदन, अतीस, खरैटी, इनका काथ पीने में हित हैं । मूंग आदि के यूष के साथ नीवार, कोदों सोंखिया आदि तृणधान्यका भोजन हित हैं यहां आदि शब्दसे मोंठ मसूर आदि शिंबी कफपित्त नाशक धान्यों का भी ग्रहण है । इस उपचार से आम के दूर होने पर पहिले की तरह स्निग्धशीतल क्रिया का भीतर बाहर से प्रयोग करना उचित है ।

गर्भपातका पीछेका कर्तव्य ।

गर्भे निपतिते तीक्ष्णं मद्यं सामर्थ्यतः पिबेत् ॥
गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमर्तिविस्मारणाय च ।
लघुना पंचमूलेन रूक्षां पेयां ततः पिबेत् ॥
पेयाममद्यपा कल्के साधितां पांचकोलिके
बिल्वादिपंचकक्वाथे तिलोद्दालकतंडुलैः ॥
मासतुल्यदिनान्येवं पेयादिः पतिते क्रमः ।
लघुरस्नेहलवणो दीपनीययुतो हितः ॥ १२ ॥
दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थं विधिरित्ययम् ।
स्नेहान्नवस्त्यश्चोर्ध्वं बलयजीवनदीपनाः ॥

अर्थ-ऊपर लिखी विधि से रहने पर भी यदि दैवात् गर्भ गिरजाय तो गर्भाशय और कोष्ठ की शुद्धि के निमित्त और गर्भस्राव की वेदना के विस्मरण के लिये सामर्थ्यानुसार तीक्ष्ण मद्यपान पिलाना उचितहै तदनन्तर लघु पंचमूलसे सिद्ध की हुई रूक्ष पेया देना चाहिये । मद्य न पीने वाली स्त्री मद्य को न पीकर पंचकोल (पीपेंलं, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) का कल्क डालकर सिद्ध की हुई पेया पीवे । अथवा बृहत्पंचमूल के काथ में सिद्ध की हुई पेया ले । इस में काले तिल, कोदों और तंडुल भी डाल देने चाहिये । तथा जितने महिने

*क्षीरपाककी यह विधि है" द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयंविधिः । अर्थात् द्रव्यसे अठगुना दूध और दूधसे चौगुना जल डालकर औटाया जाय, जब दूध शेष रह जाय तब उतार लिया जाय । क्षीरपाक की यही विधि है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का गर्भ गिरा हो उतने दिन तक घृत और नमक डाले विना काली मिरच, घीता आदि जठराग्निवर्द्धक द्रव्यों से संयुक्त हलका पेया पान कराता रहे । इस तरह रहने से पित्त और कफ दोष तथा धातुका परिक्लेद शुद्ध हो जाता है । तथा दोष और धातु के परिक्लेद के शुष्क हो जाने के पीछे बल, अग्नि और ओज को बढानेवाले घृतादि चार प्रकार के स्नेह तथा स्निग्ध अन्न और स्निग्ध वस्ति हितकारी होती है ।

उपविष्टक गर्भके लक्षण ।

संजातसारे महति गर्भे योनिपरिस्रवात् ।
वृद्धिमप्राप्नुवन् गर्भः कोष्ठे तिष्ठति सस्फुरः ॥
उपविष्टकमाहुस्तं वर्धते तेन नोदरम् ।

अर्थ-प्रवृद्ध (बढा हुआ) और संजातसार (बलवान् और अंग प्रत्यंगादियुक्त) गर्भ होने पर यदि गर्भिणी के विधिवत् न रहने पर योनि से रक्तस्राव होने लगे तो गर्भ बढने नहीं पाता है और कोष्ठ में स्थित रहता है और चलता फिरता भी है । इसको उपविष्टक गर्भ कहते हैं यह उदर को बढने नहीं देता है । इसका यह कारण है कि योनि के स्राव से वायु कुपित होकर कफपित्त का परिग्रहण कर रसवाहिनी नाडी में ठहर जाताहै और इसतरह नाडी के रोध से रस अच्छी तरह नहीं वहने पाता है, यही कारण गर्भ के न बढने का है जैसे घासपत्तों से जलकी नाली रुकजाने के कारण खेत हरा नहीं होने पाता ।

नागोदर गर्भ के लक्षण ।

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथ वा योन्यतिस्रवात् ॥
वाते कुक्षे कृशः शुष्येद्गर्भो नागोदरं तु तत् ।
उदरं वृद्धमप्यत्र हीयते स्फुरणं चिरात् १६ ॥

अर्थ-शोक, उपवास और रूक्षादि सेवन अथवा योनि के अतिस्राव से वायु कुपित होकर कृश हुए गर्भ को शुष्क करदेता है । ऐसे गर्भ को नागोदर कहते हैं, कोई कोई इसे उपशुष्कभी कहते हैं, इस गर्भ से बढ़ाहुआ गर्भ भी क्षीण होजाता है तथा गर्भ बहुत देर देरमें चलता फिरताहै॥

उक्त गर्भों में उपचार ।

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः ।
घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भैश्च खादयेत् ॥
तैरेव च सुतृप्तायाः क्षोभणं यानवाहनैः ।

अर्थ-उपविष्टक और नागोदर गर्भो में पुष्टिकारक, वातनाशक और मधुर द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये हुए घृत, दूध और मांस रस द्वारा गर्भिणी की तृप्ति करनी चाहिये तथा गर्भ की पुष्टि के लिये वैद्य कच्चे गर्भ खवा देवे, इस कामको वैद्य स्वयं युक्तिपूर्वक करै, गर्भिणी को मालूम न होने पावे, क्यों कि जो कच्चा गर्भ खाने से जुगुप्सा उत्पन्न हो तो गर्भ और गर्भिणी दोनों को हानिकारक है । इस तरह उक्त बृंहणादि द्रव्यों से साधित दूध, घृत और मांस रस तथा आम गर्भ के सेवन से अत्यन्त तृप्ति होजाने पर उस स्त्री को रथ, हाथी वा घोडे पर बैठाकर वेग से लेजाकर क्षोभ करावे ।

लीन गर्भ की चिकित्सा ।

लीनाख्ये निस्फुरेऽयेनगोमत्स्योत्कोशबर्हिजाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसा बहुघृता देया माषमूलकजा अपि।
बालबिल्वं तिलान्माषान्सकृदूषं पयसा पिबेत्
समेद्यमांसं मधु वा कटयभ्यंगं च शीलयेत्।
हर्षयेत्सततं चैनामेवं गर्भः प्रवर्धते ॥ २० ॥

अर्थ—जो गर्भ बलवान और अंग प्रत्यंगादि से युक्त होनेपर भी स्फुरण नहीं करता है उसे लीन गर्भ कहते हैं। इसमें बहुत सा घृत मिलाकर श्येन, गोमत्स्य, उलूक, मोर, (तीतर मुर्ग) का मांसरस, तथा उरद और मूलीका झोल घृत मिलाहुआ अथवा कच्ची बेलगिरी, कालेतिल, उरद, सत्तू इनको दूधके साथ पीवे। तथा मेदुर मांसके साथ माक्षिक मद्यका पानकरै और गर्भिणी की कमरमें सदा तेल लगाता रहे। इन तीनों प्रकारकी गर्भवाली स्त्रियोंको सदा प्रसन्न रक्खै। ऐसा करनेसे गर्भबढने लगजाता है

विपरीतआचरण का फल।

पुष्टोऽन्यथा वर्जगणैः कृच्छ्राज्जायेत नैव वा।

अर्थ—उक्त विधि के विपरीत आचरण करने से पुष्ट गर्भ बहुत बरसों पीछे बड़े कष्ट से बाहर निकलता है अथवा जीवन पर्यन्त भर्भिणी की कुक्षि में ही रहा आता है।

उदावर्तका उपाय।

उदावर्ते तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरं जयेत्॥
योग्यैश्च बस्तिभिर्हन्यात्सगर्भा स हि-
गर्भिणीम्।

अर्थ—यदि गर्भिणी के उदावर्त नामक रोग होजाय तो यथायोग्य औषधों से सिद्ध किये हुए चार प्रकारके स्नेहपानादि द्वारा शीघ्रही दूर करनेका यत्न करे तथा तत्कालोचित अनुवासनादि वस्ति देकर रोगको दूर करे। शंका! पहिले अष्टममासतक वस्तिप्रयोग का निषेध किया गया है फिर यहां इसका विधान क्यों है। समाधान, यह उदावर्त रोग गर्भरहित गर्भिणी का नाश कर देता है इसलिये जैसे हो वैसे इसके दूर करने का शीघ्र उपाय किया जाता है। इस लिये यहां वस्ति प्रयोग की आज्ञा है।

उदर में मृत गर्भ के लक्षण।

गर्भेऽतिशोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोऽपि वा॥
मृतेऽतरुदरं शीते स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम्।
गर्भास्पंदो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनक्लमः
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमाविनामसमुद्भवः।

अर्थ—वातादि दोषों के अत्यन्त कुपित होने से अथवा मात्रा काल आदि विरुद्ध स्वभाववाले अपथ्य सेवन से अथवा अन्य जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों के फलसे उदर के भीतर गर्भ का नाश होजाता है। तब उदर ठंडा, स्तब्ध, आध्मानयुक्त (अफरा हुआ) अत्यन्त वेदना से युक्त, चलने फिरने से रहित, धम, तृषा, श्वास लेने निकालने में कठिनता, क्लान्ति, अरति (उठने बैठने सोने में बेचैनी) नेत्रों में शिथिलता और प्रसवकाल संबंधी आवि नामक शूलों का न होना। ये लक्षण होते हैं।

मृतगर्भा का उपचार।

तस्याः कोष्णांबुसिक्तायाः पिष्ट्वा योनिं-
प्रलेपयेत्॥ २४ ॥
गुडं किण्वं सलवणं तथांतः पूरयेन्मुहुः।
घृतेन कल्कीकृतया शालमल्यतसिपिच्छया॥
मंत्रयोग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भो न चेत्पतेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथापृच्छेथेश्वरं वैद्यो यत्नेनाशु तमाहरेत् ॥ हस्तमभ्यज्ययोनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया हस्तेन शक्यं तेनैव-

गात्रं च विषमं स्थितम् ॥ २७ ॥

आंछनोत्पीडसंपीड विक्षेपोत्क्षेपणादिभिः । अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम् ॥

अर्थ–जिस स्त्री के उदर के भीतर गर्भ मर गया हो उसके सुहाते हुए थोडे गरम जलके छींटे मारकर गुड, किण्व और सेंधा नमक पीसकर योनि पर लेप करे । और सेमरका गोंद और अलसी इनको पीसकर घी में मिलाकर बारबार योनि के भीतर भरदे । तथा मृढगर्भ के निकालने के लिये सिद्ध मंत्र तथा जरायुके गिराने के प्रकरण में जो जो मंत्र लिखगये हैं उनका पाठ करै । इन उपायों के करने पर भी जो मृढ गर्भ बाहर न निकले तो राजा की आज्ञा लेकर घृत में मिले हुए सेमरके गोंद को वैद्य योनि और अपने हाथ में लगाकर बहुत सावधानी से योनि के भीतर से मृत गर्भ को खींचले । यदि गर्भ का देह विषम रीति से पडा हो तो आंछन (लंबा करके) उत्पीड (ऊंचे को उठाकर) संपीड (चारों ओर घुमाकर) विक्षेप (विशेष रीति से चलायमान करके) और उत्क्षेपण (ऊपरको सरका कर) द्वारा अथवा आदि शब्द से जैसे हो तैसे अपनी बुद्धि की कल्पना से गर्भ का अनुलोमन करे और जब सीधा होजाय तब हाथ से पकडकर खींचले ।

शस्त्रद्वारा मूढगर्भ का उपाय ।

हस्तपादशिरोभियों योनिं भुग्नः प्रपद्यते । पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदं च यः ॥ विष्कंभौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः । मण्डलांगुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनावपचारयेत् ।

अर्थ–जो गर्भ हाथ अथवा पांव अथवा सिर से योनि के पास आकर टेढा पडजाय अथवा गर्भ का एक पांव योनि से बाहर निकल आवै, दूसरा गर्भिणी की गुदा की ओर चलाजाय तो ऐसे गर्भों को विष्कंभ नामक मूढगर्भ कहते हैं । ये हाथसे खींचने के अयोग्य होते हैं इसलिये शस्त्र से काटे जाते हैं ।

विष्कंभ नामक मूढ गर्भ को काटने के लिये मंडलाग्र और अंगुलिशस्त्र काम में लाये जाते हैं । वृद्धि पत्र नामक शस्त्रका अग्रभाग चौडा पैना होता है इसलिये वह योनि के भीतर नहीं चलाया जाता है ।

गर्भ की छेदन विधि ।

पूर्वं शिरःकपालानि दारयित्वा विशोधयेत् ॥ कक्षोरस्तालुचिबुके प्रदेशेऽन्यतमे ततः । समालंब्य दृढं कर्षेत्कुशलो गर्भशंकुना ३२ ॥ अभिन्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि । बाहुं छित्वाऽससक्तस्य बाताध्मातोदरस्य तु विदार्य कोष्ठमंत्राणि बहिर्वासं निरस्य च । कटीसक्तस्य तद्वच्च तत्कपालानि दारयेत् ॥

अर्थ–शस्त्रचिकित्सक को उचित है कि पहिले कपाल की अस्थि को काटकर बाहर निकालदे । फिर गर्भशंकुनामक शस्त्रसे कक्षा, वक्षःस्थल, तालु, चिबुक इनमें से किसी अंग को दृढता से पकडकर बाहर खींचले । कभी कभी कपालास्थि को बिना काटे ही अक्षिकूट वा गंडस्थल को पकड कर खींचले । जो कंधे की ओर से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अटक गया हो तो बाहु काटकर निकाल ले। जो पेटके फूलने से रुक गया हो तो पेट को चीर कर सब आंतों को बाहर निकालकर फिर गर्भ को खींचले। जो कमर की ओर से अटक गया हो तो कमर की हड्डियों को काटकर बाहर निकाल ले फिर गर्भ को खींचले।

मूढगर्भकी सामान्य चिकित्सा

यद्यद्वायुवशादंगं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः।
तत्तच्छित्त्वा हरेत्सम्यग्यत्नेश्चारीं च यत्नतः॥
गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः
तत्राऽनल्पमतिस्तस्माद्वस्थापेक्षमाचरेत्।

अर्थ–मूढगर्भका जो जो अंग वायुके वेगसे अटक जाताहै उसी उस अंगको थोडा थोडा काटकर निकालना उचितहै। थोडे थोडे निकालने का यह कारणहै कि एक साथ गर्भका सब शरीर छेदन करनेसे शस्त्र के निपातसे मूढगर्भा नारी का भी जोखम रहताहै, इसलिये थोडा थोडा ही काटना चाहिये और इस बातकी विशेष सावधानी रक्खे कि स्त्रीका कोई अंग न कटने पावै।

प्रकुपित हुआ वायु गर्भकी गति अर्थात् अवस्थिति अनेक प्रकार की करताहै इसलिये अत्यन्त बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि गर्भ की गति पर बिचार करके शस्त्रको चलावै।

जीवित गर्भके छेदन का निषेध।

छिंद्याद्गर्भं न जीवंतं मातरं स हि मारयेत्।
सहात्मनां न चोपेक्ष्यः क्षणमप्यस्तजीवितः॥

अर्थ–जीवित गर्भका कदापि छेदन न करना चाहिये, क्योंकि शस्त्रके प्रयोगसे छिन्न हुआ गर्भ अपने को भी मारताहै और माता को भी मारताहै, परन्तु मृत गर्भकी क्षण भर भी उपेक्षा न करे, झटपट काटकर निकाल देना चाहिये।

उपेक्षाके योग्य मूढगर्भा।

योनिसंवरणभ्रंशमकल्लश्वासपीडिताम्।
पूत्युद्गारां हिमांगीं च मूढगर्भां परित्यजेत्॥
अथापतंतीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक्।
एवं निर्हृतशल्यां तु सिंचेदुष्णेन वारिणा॥
दद्याद्भ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः।
योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चाऽस्याः प्रशाम्यति

अर्थ–ऐसी मूढ गर्भा स्त्री की चिकित्सा न करे जिसकी योनि का मार्ग आच्छादित होगया हो, जिसकी योनि अपने स्थान से चलित होगई हो, जिसको मकल्ल रोग हो गयाहो, जो श्वास रोगसे पीडित हो, जिसको सडीहुई डकार आतीहो, जिसका शरीर ठंडा पडगया हो। जरायु के न निकलने पर उसके निकालने के लिये पूर्ववत् चिकित्सा करे। गर्भ और जरायु के बाहर निकलनेपर स्त्रीका गरम जलसे परिषेक करै। तदनंतर तेल लगाकर स्नेहमें भीगीहुई बत्ती योनि में रक्खे। इससे योनि कोमल होजाती है और दर्द भी शांत होजाताहै।

स्नानके पीछे चूर्णादि का प्रयोग।

दीप्यकातिविषाराम्ठाहिंग्वेलापंचकोलकान्
चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्वाथं वा पाययेत्ततः॥
कटुकातिविषापाठाशार्ङ्गेष्टाग्निभुतेजिनीः।
तद्वच्च दोषस्यंदार्थं वेदनोपशमाय च॥ ४२॥
त्रिरात्रमेवं सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत्।
सायं पिबेदरिष्टं वा तथा सुकृतमासवम्॥
शिरीषकटुभक्काथपिचून् योनौ विनिक्षिपेत्
उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथा-
स्वमुपाचरेत्॥ ४४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--स्नान और अभ्यंग के पीछे दोष के स्राव और वेदना की शांतिके लिये अजवायन, अतीस, रास्ना, हींग, इलायची, पंचकोल, इनका चूर्ण घृतके साथ, अथवा कल्क वा क्वाथ पान कराना चाहिये । फिर इसीतरह कुटकी, अतीस, पाठा, स्वरच्छद शाक, दालचीनी, हींग, तेजोवती, इनका भी चूर्ण घृतके साथ, अथवा इनका कल्क वा इनका क्वाथ पान करावै । मूढगर्भ के निकलने के पीछे तीन दिनतक इस विधि का पालन करना चाहिये फिर सात दिन तक स्नेहपान करावै, सायंकाल के समय पूर्वोक्त लक्षण वाला अरिष्ट वा अच्छी रीति से बनाया हुआ आसव पान करावै । सिरस और अर्जुन की छालके क्वाथमें रुई की बत्ती भिगोकर योनिमें रक्खे । तथा अन्य ज्वरादिक उपद्रवोंकी शांतिके लिये यथायोग्य उपायों का अवलंबन करै ।

मूढगर्भका कर्तव्य ।

पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् । रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना । ४५
स्वेदाभ्यंगपराश्चेहान्बलातैलादिकान्भजेत् । ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः साक्रमेण सुखानि च ॥

अर्थ--उपरोक्त विधिके अनंतर दस दिनतक वातनाशक रास्नादि से सिद्ध किया हुआ दूध भोजनमें हितकर है । फिर दस दिनतक मांसरस का भोजन हित है । इससे पीछे हलका पथ्य और थोडा भोजन देना चाहिये । तदनंतर स्वेदन और अभ्यंगका सेवन करती हुई बलातैलादि स्नेहको उपयोगमें लाती रहे इस तरह चार महिनेसे आगे सुखपूर्वक आहार बिहार का सेवन करे ।

बलातैल ।

बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा । यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥
निःक्वाथभागो भागश्च तैलस्य च चतुर्दश । द्विमेदादारुमंजिष्ठाकाकोलीद्वयचन्दनैः ४८ ॥
सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैंधवैः । कालानुसार्यशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ॥ ४९ ॥
अश्वगंधावरीक्षीरशुक्लयष्टीवरारसैः । शताह्वावार्ष्णपर्ण्येलात्वक्पत्रैःश्लक्ष्णकल्कितैः
पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित् । सूतिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषु पूजितम् ।
ज्वरगुल्मप्रहोन्मादमूत्राघातांत्रवृद्धिजित् । धन्वंतरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ५२ ॥

अर्थ--खैरेटी की जडका क्वाथ छः भाग दूध छः भाग । जौ, कोल, कुलथी और दशमूल इनका काथ एक भाग, तेल एक भाग, इसतरह सब मिलाकर १४ भाग हुए । मेदा, महामेदा, देवदारु, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली, लालचंदन, सारिवा, कूठ, तगर, जीवक, ऋषभक, सैंधव, उत्पलसारिवा, शैलेय, वच, अगर, सांठकीजड, असगंध, सितावर, क्षीर विदारी, त्रिफला, बोल, शतमूली, शूर्पपर्णी, इलायची, दालचीनी, तेजपात इनको महीन पीसकर कल्क बनालेवै और उक्त १४ भागोंमें मिलाकर मंदी मंदी आग पर पकावै । यह तेल सब प्रकारकी वातव्याधि, सूतिकारोग, बालरोग, मर्मगतरोग, अस्थिगतरोग, क्षतक्षीणरोग, ज्वर, गुल्म, भूतोन्माद, मूत्राघात, अंत्रवृद्धि, योनिरोग और क्षयी इन सबको दूर करता है । यह तैल धन्वंतरि के मतानुकूल है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृतगर्भिणीकेकुक्षिसे बालकनिकालना।

बस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पंदते यदि।
जन्मकालेततः शीघ्रं पाटयित्वोदरेच्छिशुम्

अर्थ–प्रसव होनेके समयही यदि गार्भिणी का प्राणांत होजाय और वस्तिद्वार अत्यन्त चलायमान होतो बहुत शीघ्रही उदरको चीरकर बालक को निकाललेना चाहिये।

गर्भरक्षाके सातयोग।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च।
अश्मंतकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी
वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा।
अनंता सारिवा रास्ना पृश्निपर्णी च मधुयष्टिका॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यैः क्षीरिशृंगत्वचा घृतम्।
पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका॥
शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता।
सप्तैतान् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनान्
क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत्।

अर्थ–गर्भके स्राव होनेपर आधे आधे श्लोकमें कहे हुए सातयोगों को क्रमसे सात महिनोंमें प्रयोग करे अर्थात् जो पहिले महिने में गर्भस्राव होनेको होतो मुलहटी, स्वरच्छद शाकका बीज, दूधी और देवदारु। दूसरे महिनेमें गर्भस्राव होनेको हो तो अश्मंतक (यमलपत्रक) कालेतिल, मजीठ और सितावर तीसरे महिनेमें अमरबेल, दूधी, गधांप्रियंगु और उत्पलसारिवा। चौथे महिनेमें अनंता सारिवा, रास्ना, मजीठ और मुलहटी, पांचवें महिनेमें दोनों कटेरी, खंभारी, बटादि दूधवाले वृक्षोंके शृंग और छाल तथा घृत। छटे महिनेमें पृश्निपर्णी, बला, सहजना, गोखरू, और मधुपर्णी। सातवें महिनेमें सिंघाडा, कमलकंद, दाख, कसेरू, मुलहटी, और चीनी इन सात योगोंका काथ, कल्क वा चूर्ण दूध के साथ सेवन करे॥

अष्टमादिमासमें गर्भरक्षा।

कपित्थबिल्ववृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिजैः ५८
मूलैः घृतं प्रयुंजीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे।
नवमे सारिवाऽनंतापयस्यामधुयष्टिभिः५९
योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया।
अथवा यष्टिमधुकनागरामरदारुभिः॥ ६०॥

अर्थ–कैथ, बेल, बडी कटेरी, परवल, ईख, छोटी कटेरी, इनकी जड़ डालकर सिद्ध किया हुआ दूध उस समय देना चाहिये। जब आठ महिने का गर्भस्राव होता हो। नवें महिने में अनंतमूल, अनंता, दूधी और मुलहटी इन से सिद्ध किया हुआ दूध दे। दसवें महिने में दूधी से सिद्ध किया हुआ अथवा मुलहटी, सोंठ, देवदारू इन से सिद्ध किया हुआ दूध देवै।

गर्भविषय में अज्ञानों का मत।

अवस्थितं लोहितमंगनाया-
वातेन गर्भं स्रवतेऽनभिज्ञाः।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः-
स्रुते पुनः केवल एव रक्ते॥ ६१॥
गर्भे जडा भूतहृतं वदंति-
मूर्तेन दृष्टं हरणं यतस्तैः।
ओजोऽनवस्थाद्यथाऽव्यवस्थै-
र्भूतैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता॥ ६२॥ ,,

अर्थ–स्त्री की कुक्षि में वायु के विकार से रुधिर इकट्ठा होकर सब प्रकार से गर्भ के सदृश दिखाई देने लगता है क्योंकि इस में रक्तगुल्म के निदान में कहे हुए हृल्लास और दौहृदादि लक्षण भी होते हैं इसे अनभिज्ञ लोग भूम से गर्भ चला देते हैं। जब यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रुधिर कटु और तिक्तवीर्य औषधियों द्वारा झर जाता है तब वे अज्ञान से यह कहने लगते हैं कि गर्भ को भूत लेगया है। ऐसा कहने का यही कारण है कि उन भूतों ने कभी शरीर का हरण नहीं देखा है। अथवा यों भी कहते हैं कि भूत अव्यवस्थित होते हैं और वे ओज को खा जाते हैं, जो ऐसा ही है तो वे गर्भ की माता को भी न छोड़ेंगे क्योंकि गर्भमाता तो शरीरवाली है और गर्भ तो ऐसा है भी नहीं।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

अथाऽतोऽङ्गविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से अंगविभाग नामक शारीर अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अंगों के विभाग।

" शिरोऽतराधिद्वौ बाहू सक्थिनी च-
समासतः।
षडंगमंगं प्रत्यंगं तस्याक्षिहृदयादिकम्। १॥

अर्थ–शरीर में एक मस्तक, एक मध्यभाग, दाहिने बांये दो हाथ और दो पांव ये छः अंग हैं। इन अंगों के आंख हृदय, कान, नाक, पाणि, पाद आदि प्रत्यंग हैं (अंगों के छोटे छोटे अवयवों का नाम प्रत्यंग हैं)।

पंचमहाभूतों के गुण।

शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गंधःक्रमाद्गुणाः
खाऽनिलाऽग्न्यम्बुभुवाम्-
एकगुणवृद्धयन्वयः परे॥ २॥

अर्थ–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध ये पांच गुण क्रम से आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी के हैं अर्थात् आकाश का गुण शब्द, वायुका स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथ्वी का गंध है। इन पंच महाभूतों में आकाश से उत्तरोत्तर एक एक गुण की वृद्धि है अर्थात् आकाश में एक ही गुण शब्द है। आकाश से परे वायु महाभूत में शब्द स्पर्श दो गुण हैं। अग्नि में शब्द स्पर्श और रूप तीन गुण हैं जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण हैं तथा पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांचों गुण हैं॥

महाभूतोंसे देहकी उत्पत्ति।

तत्र खात् खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो-
विविक्तता।
वातात्स्पर्शत्वगुच्छ्वासा वह्नेर्हेमूपपक्तयः॥
आप्याज्जिह्वारसक्लेदाघ्राणगंधास्थिपार्थिवम्

अर्थ–इन पंचमहाभूतोंमे से आकाश से सत्वगुणकी अधिकतासे मनुष्यादि देहमें छिद्रोंके समूह, कान, शब्द और शून्यता उत्पन्न होतेहैं (यद्यपि छिद्रादिकों में संपूर्ण महाभूतों का व्यापारहै तथापि आकाश की ही विशेषता है जैसे घडे के बनाने में मृत्तिका, दंड, चक्र जल और सूत्र सभी लगतेहैं तथापि मृत्तिका ही विशिष्ट कारण है इसलिये घडा मृत्तिका का ही बोला जाताहै)। वायुसे स्पर्श, स्पर्श का अधिष्ठान त्वचा और प्राण (उच्छास) बनते हैं अग्नि सतोगुण और रजोगुण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशिष्टहै इससे दृष्टि, रूप और पाक शक्ति उत्पन्न होतेहैं (अन्यत्र लिखाहै कि पित्तोष्मा, मेधा, वर्ण और शौर्यादि भी अग्नि से पैदा होतेहैं) जल सतोगुण और तमोगुण युक्तहै इससे जिह्वा, रस और क्लेद उत्पन्न होतेहै तथा पसीने और मूत्रादिक भी इसीसे होतेहैं। पृथ्वीसे नासिका, गंध और अस्थि उत्पन्न होतेहैं। यद्यपि उपरोक्त संपूर्ण भावों के उत्पन्न होनेमें सबही महाभूत का अंशहै तथापि जिस भावमें जिस महाभूत की अधिकता हो वह उसी महाभूत के नामसे बोला जाताहै जैसा हम ऊपर घडेका उदाहरण देचुके हैं।

देहमें मातृजपितृज भाग।

मृदूत्र मातृजं रक्तमांसमज्जगुदादिकम् ४ ॥
पैतृकं तु स्थिरं शुक्रं धमन्यस्थिकचादिकम्।
चैतनं चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च ॥

अर्थ–इस अनेक सामिग्रीयोंसे युक्त देह में जो भाग मृदु हैं वे माताके सत्वकी अधिकता से उत्पन्न होते हैं जैसे रक्त, मांस, मज्जा, गुदा, नाभि, हृदय, यकृत, प्लीहा, और आमाशयादि। तथा इस देहमें जो स्थिर अर्थात् दृढरूप है वे पिताके सत्वकी अधिकता से उत्पन्न होते हैं। जैसे वीर्य, धमनी, अस्थि' बाल, शिरा, स्नायु, रोम आदि और आत्मासे संपूर्ण इंद्रियोंका सारथी चित्त, तथा सब इंद्रियां उत्पन्न होती है। और हाथी, बकरी, घोडा, ऊंट, खरगोश आदि अनेक योनियों में जन्म भी आत्मा ही से होता है ॥ यह उपलक्षणमात्र है अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, भय, मद, हर्ष, धर्म, अधर्म, शीलता, स्मृति, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, अहंकार, सुख, दुख, आयु आदि ये भी आत्माही से उत्पन्न होते हैं ॥

सात्म्यज निरूपण।

सात्म्यजं त्वायुरारोग्यमनालस्यं प्रभाबलम्।

अर्थ–सात्म्य तीन प्रकारका होता है यथा व्याधिसात्म्य, देशसात्म्य और देहसात्म्य यहां व्याधिसात्म्य का ग्रहण नहीं है क्योंकि यहां व्याधिका प्रकरण उपस्थित नहीं है। इसलिये देशसात्म्य और देहसात्म्यका ग्रहण करना चाहिये देहके अनुकूल आहार विहारादि का नाम सात्म्य है ॥ सात्म्यसे आयु-आरोग्य (धातुओंकी समानावस्था), अनालस्य (संपूर्ण चेष्टाओंमें उत्साह) कांति और बल उत्पन्न होते हैं ॥ इनसे अतिरिक्त अलोलुपता। इन्द्रियप्रसाद, स्वर, वर्ण, वीर्य, तेज और प्रहर्ष ये भी सात्म्यसे उत्पन्न होते हैं ॥

रसज निरूपण।

रसजं वपुषो जन्म वृत्तिर्वृद्धिरलोलता ६ ॥

अर्थ–माताके आहारके रससे शरीरका जन्म, वृत्ति, अंगोंकी वृद्धि, और अलोलता उत्पन्न होते हैं। इनके सिवाय उत्साह, पुष्टि तृप्ति, आदि भी रसज हैं ॥

सत्वादिगुणसे उत्पन्नका निरूपण।

सात्विकं शौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः
राजसं बहुभाषित्वं मानक्रुद्दंभमत्सराः ७ ॥
तामसं भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता।

अर्थ–सत्यगुणकी अधिकतासे शौच (शरीर, मन और वाणीसे शुद्धि जैसे मृत्तिका जलादि द्वारा न्हाने धोनेसे शारीरक शुद्धि,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जगतबंधुता, आदि मानासिक शुद्धि । सत्य वाक्यादि वाक शुद्धि),आस्तिक्य (परलोकमें आस्तित्व), कपटरहित धर्ममें रुचि और बुद्धि उत्पन्न होते हैं । तथा शौच, कृतज्ञता, दाक्षिण्य, व्यवसाय, शौर्य, गांभीर्य, स्मृति, मेधा, आदि भी सत्वगुणविशिष्ट हैं । रजोगुण की अधिकतासे बहुतभाषण, मान, क्रोध, दंभ, मत्सरता तथा शौर्य, दुरुपचारता, लोलुपता, हर्ष और कामादि भी उत्पन्न हैं ।

तमोगुणकी अधिकतासे भय, अशुन,निद्रा, आलस्य, विषादिता, प्रमाद और शोकादि उत्पन्न होते हैं ॥

रक्तसे सातत्वचाओंकी उत्पत्ति ।

इति भूतमयो देहः
तत्र सप्त त्वचोऽसृजः ॥ ८ ॥
पच्यमानात्प्रजायंते क्षीरात्संतानिका इव ।

अर्थ–इस देहके उत्पन्न होनेमें पंच महाभूत प्रधान हैं । यह बात विस्तारपूर्वक ऊपर दिखाई जाचुकी है, अब देहके प्रत्येक भाग का वर्णन किया जाता है ॥

जैसे औटते हुए दूधपर मलाई पड जाती है । वैसेही धातुओंकी ऊष्मासे पच्यमान रक्त से सात त्वचा उत्पन्न होती हैं । +

कलाओं का वर्णन ।

धात्वाशयांतरक्लेदो विपक्वः स्वस्वमूष्मणा ॥
श्लेष्मस्नाय्वपरिच्छन्नः कलाख्यः काष्ठसारवत् ।

अर्थ–रसादिक धातुओं के आधार पर स्थित क्लेद अपनी अपनी धात्वाग्नि द्वारा पक्व तथा श्लेष्मा, स्नायु और जरायुद्वारा आच्छादित होकर जो शरीर के भावविशेष में बदल जाती है उसे कला कहते हैं । जैसे

+भासिनी लोहिनी श्वेता ताम्रा त्वग्वेदिनी तथा । स्याद्रोहिणी मांसधरा सप्तमी परिकीर्तिता । व्रीहेरष्टादशांशाद्या द्वितीया षोडशांशका । द्वादशांशा तृतीया तु चतुर्थ्यष्टांशमात्रिका । पंचमी पंचमांशा तु षष्ठी व्रीहिप्रमाणिका । व्रीहिद्वयप्रमाणा तु सप्तमी भिषजां मता । दीर्घच्छाया पंचकस्य भासिन्याधारतां गता । मन्यंते षट् त्वचः केचित्तासां व्याख्योदकाश्रया । द्वितीया सृग्धरा सिध्मश्वित्राधारा तृतीयका । चतुर्थी सर्वकुष्ठानामधिष्ठानत्वमागता । विद्रध्यलज्यधिष्ठाना पंचमी रोगकारिणी । षष्ठ्यत्र यस्यां छिन्नायां ताम्य त्यंधं तमो विशेत् । यामधिष्ठाय जायंते स्थूलमूलानिपर्वसु । अरूंषिकृष्णारक्तानि दुश्चिकित्स्यतमानिच । अर्थात् भासिनी, लोहिनी, श्वेता, ताम्रा, त्वग्वेदिनी, रोहिणी और मांसधरा ये सात त्वचा हैं । इनमें से पहिली व्रीहियव के अठारहवें भाग के समान मोटी होती है । दूसरी सोलहवें भागके समान, तीसरी बारहवें भागके समान, चौथी आठवें भाग के समान, पांचवीं पांचवें भागके समान, छटी व्रीहि के समान और सातवीं दो व्रीहि के समान होती है । भासिनी में पंचमहाभूत की छाया रहती है । चरकमुनि छः ही त्वचा मानते हैं । इनमें सबसे बाहरकी उदकधरा, दूसरी असृग्धरा, तीसरी सिध्मश्वित्रधरा, चौथी सर्वकुष्ठधरा, पांचवीं विद्रध्यलजिधरा, और छटी वह है जिसके छिन्न होजाने से आंखोंके आगे अंधेरा आजाता है । इसीके पर्वों में मोटी जडवाली काले वा लालरंग की फुंसियां होजाती है । जिनका अच्छा होना कठिन होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काष्ठका सार होता है वैसेही यह धातुसार का शेष कला संज्ञक * होता है।

आशयोंका वर्णन।

ताः सप्त सप्त चाधारा रक्तस्याद्यः क्रमात् परे
कफामपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च स्मृताः
गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयांतरे ॥
कोष्ठांगानि स्थितान्येषु हृदयंक्लोमफुस्फुसम्।
यकृत्प्लीहौंडुकं वृक्कौ नाभिर्डिंभाम्रवस्तयः

अर्थ-जैसे कला सात हैं वैसेही धात्वादि कों के आशयभी सातही हैं। जैसे रक्ताशय, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, वाय्वाशय, और मूत्राशय तथा आठवां एक अन्य आशय होता है जो केवल स्त्रियों के होता है वह पित्ताशय और पक्वाशयके बीच में होता है। इन रक्तादि आश्रयोंमें हृदय, क्लोम, फुस्फुस, यकृत, प्लीहा, उन्दुक, दो वृ.

× ये कला सात होती हैं, जैसे- आद्या मांसधरा यस्यां धमन्यः स्नायवः सिराः। स्रोतांसिच पुरोहंति प्रतानैर्व्याप्तिभिः कला। द्वितीयाऽसृग्धराऽस्यांत मांसांतः शोणितं स्थितम्। विशेषतः सिराप्लीहयकृत्सु क्षतजं क्षतात् मांसात्प्रवर्तते क्षीरंक्षीरिवृक्षादिवक्षतात् मेदोधरा तृतीयात्र मेदोस्थनमुदरे स्थितम्। भवत्यणुषु मज्जांतःस्थूलास्थिष्वथ मूर्धनि मस्तुलुंग कपालान्तश्चतुर्थी तु कफाश्रया। तत्स्थः कफो दृढयति संधीनस्थां शरीरजान् पंचमीस्या स्त्वंडाधारा सामपक्वाशयाश्रया। उंडुकस्थं विभजते मलं पित्तधरा पुनः। षष्ठी पक्वाशयांतस्था वायध्यिष्ठानभावतः। पक्वाशयोन्मुखं कृत्वा बलात्पित्तस्य तेजसा। शोषयंती पचत्यन्नं तदेवचविमुंचति। दोषदुष्टाथदौर्बल्यादामभेवाविमुंचति। लभते ग्रहणी संज्ञामस्याश्चान्निबलं बलं। शरीरं धारयत्यग्निबलोपुष्टंमबृंहिता। अंत्या कला शुक्रधरा मूत्रमार्गेमुपाश्रिता। द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वेबस्तिद्वारस्य चाप्यधः। शरीरं व्याप्य सकलं सा शुक्रं वर्तयत्यपि। अर्थात् पहिली कला को मांसधरा कहते हैं, इस में धमनी, स्नायु, सिरा और स्रोतों का जाल फैला हुआ है। दूसरी असृग्धरा है, इसमें मांस के भीतर रुधिर रहता है विशेष करके सिरा, प्लीहा और यकृत में घाव होने से ऐसे निकलने लगता जैसे दूध वाले वृक्षों में छिद्र करने से दूध टपकने लगता है। यह तीसरी कला का नाम मेदोधरा है, यह उदर के भीतर मेदा को धारण करती है यह छोटी हड्डियों में होती है बडी हड्डियों में इसे मज्जा कहते हैं चौथी कफाश्रया है यह अस्थिकी संधियों में होती है और कफद्वारा उन संधियों को दृढ रखती है। पांचवीं पुरीषधरा है यह आमाशय और पक्वाशय में रहती है और उंडुकस्थ मलको अलग अलग कर देती है। छट्टी का नाम पित्तधरा है यह पक्वाशय में रहती है, आमाशय से अन्नादि को यहां लाकर पित्त के तेज से शोषण करती हुई पकाती है और वही बाहर निकाल देती है। यदि यह किसी दोषसे हो अथवा निर्बल हो तो कच्चे ही अन्न को निकाल देती है। इसी का नाम ग्रहणी है, इसको अग्नि का ही बल है तथा अग्निबल से बृंहित होकर शरीर धारण करती है। सातवीं कला का नाम शुक्रधरा है यह मूत्रमार्ग में रहती है यह वस्तिस्थान से नीचे दाहिनी ओर दो अंगुल पर है और सर्वशरीरव्यापी शुक्र को बाहर निकालती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क नाभि, डिंब, अंत्र, और वस्ति ये उदरके अवयव के आश्रित हैं ॥

जीवनके दशस्थान ।

दश जीवितधामानि शिरोरसनबंधनम् ।
कंठोऽसृङ्हृदयं नाभिर्बस्तिः शुक्रौजसी गुदम्

अर्थ–सिर, तालु, कंठ, रक्त, हृदय, नाभि, वस्ति, ओज, और गुदनाडी ये दसस्थान जीवनके आधार है । इन्हीं दस आधारों पर जीवन विशेषरूप से आश्रित है । इनके नाशसे जीवनका भी नाश होजाता है ।×

शरीरमें जालादिकीसंख्या ।

जालानिकंडराश्चान्येपृथक्षोडशनिर्दिशेत्
षट् कूर्चाः सप्त सेवन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः
शल्यैर्गताः परिहरेत्तत्रो मांसरज्जवः ।
चतुर्दशास्थिसंघाताः सीमंताद्विगुणा नव ॥

अर्थ–शरीरमें जाल १६ हैं, कंडरा १६, कूर्चा, ६, मेढ्र, जिह्वा और शिरोगत सीवनी ७, इन सेवनियों में नश्तर लगाना न चाहिये । मांसरज्जु ४, अस्थिसंघात १४, सीमंत १८ हैं । *

× कफरक्तप्रसादात्स्याद् हृदयं स्थानमोजसः । चेतनानुगभावानां परमंचिंतितस्यच । मांसपेशीचयो रक्तपद्माकारमधोमुखं । तस्य दक्षिणतः क्लोमयकृतफुस्फुसमास्थितं । समानवायुप्रध्माताद्रक्तादेहोष्मपाचितात् । किंचिदुच्छ्रितरूपस्तु जायते क्लोम सांज्ञितः । ततुल्यहेतुजे प्लीहयकृती भिषजां मते । रक्तकिट्टादुंडुकं स्यात्फुस्फुसो रक्तफेनजः । मेदोसृजः पच्यमानात् स्यातां वृक्कौ प्रसादजौ । नाभिः सर्वशिराणां स्यादाधारः शकृतः पुनः । डिंबस्स्याद्रक्तमांसस्य प्रसादादंत्रसंभवः । सार्धत्रिव्याम मात्राणि पुरुषाणां तु तानि च । स्त्रीणां त्रिव्याममात्राणि वस्तिर्मूत्रस्यचाशयः । अर्थात्हृदय रुधिर और कफकेसारसे बनताहै यह ओज और चेतनाका मुख्यस्थान है । विचार का स्थानभी यही है । यह मांसपेशियों का संघात कमलके आकार का है । इसका मुख नीचेको होता है । सुश्रुतमें लिखा है कि जाग्रत अवस्थामें यह खुला रहता है और शयनावस्था में बन्द होजाता है । हृदयकी दाहिनी ओर क्लोम, यकृत और फुस्फुस है । समानवायुके प्रधमनसे देहकी ऊष्माद्वारा पकाये हुए रक्तसे कुछ ऊंचापन लिये हुए क्लोम होता है । इन्हीं समान हेतुओं से प्लीहा और यकृत की भी उत्पत्ति है । रुधिर के मैलसे उंडुक और झागसे फुस्फुस बनता है । मेद और रक्तके सारसे दोनों वृक्क बनते हैं । नाभि संपूर्ण शिरा और विष्टा का आधार है । रक्त और मांसके सार से डिंब होता है । पुरुषकी अंत्र (आंत) तेरह हाथ और ९ अंगुल लंबी और स्त्री की ग्यारह हाथ और छः अंगुल की होती हैं । वस्ति मूत्रका स्थान है ।

+ शिरास्नायवस्थिपिशितैश्चत्वारि मण्डिबंधने । एकत्रैकत्र गुल्फे च जालान्येवं तु षोडश अर्थात् शिरा, स्नायु, अस्थि और मांस के चार चार जाल हैं इनमें से हरएक का एक एक जाल दोनों पहुंचे और टकनों में होता है । हस्तयोर्द्वे पादयोर्द्वे ग्रीवाभागेऽथपृष्ठतः । प्रत्येकं तु चतस्रःस्युः कंडरा इति षोडश । अर्थात् दोनों हाथ में, दो दो दोनों पावों में दो दो, ग्रीवा में चार, पीठ में चार इस तरह १६ कंडरा हैं । करयोर्द्वौ पादयोर्द्वौ ग्रीवायां मेहने तथा । एकैकमिति षट् कूर्चाः सीवन्यः सप्तकीर्तिताः । एका मेढ्रेथ जिह्वायां भवेयुः पंचमूर्धनि । अर्थात् दो दोनों हाथों में, दो दोनों पांवों में, एक ग्रीवा में और एक मेढ्र में,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अस्थियों की संख्या।	अर्थ–दांत और नखों की हड्डियां मि-
अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दंतनखैः सह।	लाकर हड्डियोंकी संख्या ३६० होती है।

ये छः कूर्चा होती हैं इनका आकार कूची के सदृश होता है। सीवन सात हैं एक मेढ्रमें, एक जिह्वा में और पांच सिरमें। पृष्ठवंशेह्युभयतश्चतस्रो मांसरज्जवः। बाह्ये द्वे अंतरे द्वे च गुल्फे जानुनि वंक्षणे। त्रिकेशिरसिकक्षायां कूर्परे मणिबंधने। अस्थ्नां भवेयुः संघाता अमीत्वत्र चतुर्दश। अर्थात् मांसकी चार बडी बडी रज्जु अर्थात् रस्सियां हैं, ये पीठ के बांसे के दोनों ओर हैं, इनमें से दो बाहर और दो भीतर होती हैं इनसे मांसकी पेशियां बंधी होती हैं। अस्थियों के संघात १४ हैं इनमें से एक टकना, एक जांघ और एक वंक्षण में इसी तरह दूसरे पांवके टकने जांघ और वंक्षण में एक एक, दोनों पांवोंके मिलाकर छः फिर दोनों हाथोंमें भी छः हैं एक एक दोनों कक्षा, दोनों कोहनी और दोनों पहुंचों में तथा एकत्रिक और एक सिरमें सब मिलाकर १४ हुए। बाहु और ग्रीवा की तीन अस्थियों के संघात का नाम त्रिक है। सीमंता पंच मूर्ध्नि स्युर्गुल्फादिष्वस्थि संघवत् अर्थात् पांच सीमंत तो सिरमें हैं शेष तेरह अस्थिसंघात की तरह दो दोनों कक्षा में, दो दोनों कौहनी में, दो दोनों मणिबंधमें, दो दोनों टकनों में, दो दोनों वंक्षण में, दो दोनों जानु में और एक त्रिक में है। भोजसंहिता में सीमंत के लक्षण लिखे हैं कि संघाताः संहिता यैस्तु सीमंतांस्तान्याचक्ष्महे। अर्थात् जिस वस्तु से अस्थिसंघात चिपटे रहते हैं उसे सीमंत कहते हैं, अंग्रेजी में इसके लिये सीमैन्ट (Cement) शब्दहै और यह शब्द सीमंत का बिगडा हुआ मालूम होता है। कोई कोई आचार्य अस्थिसंघात की संख्या १८ बताते हैं अर्थात् पूर्वोक्त १४ तथा श्रोणिकांड के ऊपर एक, वक्षःस्थल में एक, उदरऔर हृदय की संधि में एक, और अंसकूट के ऊपर एक इस तरह सब मिलाकर १८ हैं।

+ पंचपादनखास्थिंथ प्रत्यंगुल्यस्थिकत्रयम्। एवंपंचदशैतानि शलाकाः पंच तु स्मृताः। एकस्तत्प्रतिबंधश्च जंघायां कूर्चगुल्फके। द्वेद्वे इति षडेवस्युः पार्ष्णौ चूरौ च जानुनि। एकैकमित्येकसंख्यं पंचत्रिंशत्तथा परे। भुजयोः सक्थिनतुल्यानि भेदा एषां तु नामतः। पाणिःस्यात् पादवत्तत्र हस्तमूलं च पार्ष्णिवत्। मणिबंधो गुल्फतुल्यः कूर्चतुल्यो ह्युपेऽपिच। प्रकोष्ठौ जंघया तुल्यौ जानुवत् कूर्परा भवेत्। ऊरुवद्बाहुपृष्ठं स्यादंतराधौ तु पार्श्वकाः। चतुर्विंशतिरेतेषु फलकान्यर्बुदानि च। तावंति पृष्ठे त्रिंशतस्युरुरस्यष्टौ त्रिभागके। एकैकं स्यादक्षकयोरंसयोस्तत्फलाख्ययोः। नितंबे तु द्वे भवेतां शतमेतत्सविंशति। गंडयोः कर्णयोः द्वे द्वे शंखयोश्चाथ तालुनि। तथाजत्रुण्येकमेकं ग्रीवायां तु त्रयोदश। कंठनाड्यां तु चत्वारि हनुबंधे द्वयं भवेत्। द्वात्रिंशदेव दंताःस्युस्तत्संख्योलूखलानि च। त्रीणि घ्राणे षट् शिरसि शतमूर्ध्वमितिस्मृतम्। शाखांतराण्यूर्ध्वभेदादेवं षष्टिशतत्रयम्। कपालं रुचकं चैव तरुणं वलयं तथा। नलकं पंचधेति स्युर्नितंबेगंडजानुनि। तालमध्ये शिरस्यंसे कपालाख्यानि निर्दिशेत्। दशना रुचकाख्याः स्युर्घ्राणे कर्णेक्षि कोशके। तरुणानि पृष्ठपार्श्वे चरणे वलयानि तु। शेषाणि नलकाख्यानि समाख्याताकृतीनि च। अर्थात् एक पांव में ५ नख, प्रत्येक उंगली में तीन तीन के हिसाब से १५, तलुए में शलाका नामकी ५, इनको बांधनेवाली १, जंघामें २, कूर्चमें दो और गुल्फ में दो, पार्ष्णि में एक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धन्वंतरि और आत्रेयका मत।

धन्वंतरिस्तु त्रीण्याह संधीनां च शतद्वयम्॥ दशोत्तरं-

सहस्रे द्वे निजगादाऽत्रिनंदनः।

धन्वन्तरि का मत है कि शरीर में अस्थियों की संख्या तीनसौ और संधि दोसौ दश हैं आत्रेयमुनि कहते हैं कि स्नायु, पेशी और सिराश्रित संधियों को मिलाकर २००० संधि है। *

ऊरु में एक और जानुमें एक। इस तरह एक पांव में सब मिलाकर ३५ हुई। हाथों में पांव के बराबर ही होती हैं केवल नामका भेद हैं। जैसे—पादकी तरह पाणि, एडी के तुल्य हस्तमूल, गुल्फ (टकने) के सदृश मणिबंध (पहुंचा) कूर्चा दोनों में समान हैं। जंघा के सदृश प्रकोष्ठ, (खवा), जानु के सदृश कूर्पर (कोहनी), और ऊरु के सदृश बाहुपृष्ठ होता है। इस तरह चारों हाथ पावों की मिलाकर १४० हुई। दोनों पसलियों में चौबीस चौबीस, इनके फलक और अर्बुद चौबीस पीठमें ३०, वक्षस्थल में ८, त्रिभाग में एक एक, अक्षक, अंस और उनके फल में दो दो नितंब में दो ये सब १२० हुई। तथा कपोल कान और कनपटी में दो दो, तालु और जत्रुमें एक, एक, ग्रीवामें तेरह, कंठमें चार, हनु में दो, दांत बत्तीस, उलूखल बत्तीस, नासिका में और सिरमें छः इस तरह सब मिलाकर १०० हुई। और शाखा मध्यभाग और ऊर्ध्वभाग की मिलाकर ३६० हुई। हड्डी पांच प्रकार की होती हैं यथा—कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलक। इनमें से नितंब, गंड, जानु, ताल और सिर और कंधे में कपाल संज्ञक, दांतोंमें रुचक संज्ञक घ्राण कर्ण और अक्षिकोष में तरुण संज्ञक, पीठ पसली और चरण में वलय संज्ञक और शेष हड्डियां नलक संज्ञक होती हैं। इनके नाम इनकी आकृति के अनुसार रक्खे गये हैं।

× संख्यायते संधयोऽत्र चतस्रोंगुलयः पदे। चतसृष्वंगुलीष्वस्युः प्रत्येकं त्रयएवतु। द्वावंगुष्ठे वंक्षणे स्यादेको गुल्फे तु जानुनि। सक्थ्न्येकस्मिन् सप्तदश तावंतोऽपिद्वितीयके। भुजयोः सक्थितुल्यानि चांतराधौत्विमेमताः। त्रयःकटीकपालेषु विंशतिश्चतुरुत्तरा। पृष्ठे तद्वत्पार्श्वयोश्च वक्षस्यष्टावथोर्ध्वतः। शिरोधरायामष्टस्युः कंठनाड्यां त्रयःस्मृताः। हृदय क्लोमयकृतां नाडीष्वष्टादश स्मृताः। द्वात्रिंशदंतमूलेषु चैकैके घ्राणकाकले। मूर्ध्निच द्वौ कर्णशंखे गंडनेत्रे च वर्त्मनि। हनुसंधौच विज्ञेयौ द्वौ भ्रुवोश्चोपरि स्मृतौ। पंच मूर्धकपालेषु चोर्ध्वमेवं त्र्यशीतिका। संधयस्त्वष्टधा ज्ञेया मणिबंधेऽथजानुनि। गुल्फेगुलौ कोरसंज्ञा द्विजमूलेषु वंक्षणे। कक्षायां चोलूखलाख्या अंसपीठे गुदे भगे। नितंबे चैव सामुद्गा ग्रीवायांपृष्ठवंशके। प्रतराः स्युर्मूर्धकटी कपालेषु तु सीवनाः। हनूभये काकतुंडाः कंठस्य पक्षगस्तथा। हृदयक्लोमनेत्राणां नाड्यां मंडलनामिकाः। श्रोत्रशृंगाटकाख्येषु शंखावर्ता इति स्मृताः। अर्थात् हर एक पांव की चार उंगलियों में से प्रत्येक में तीन तीन और अंगूठे में दो तथा एक वंक्षण में, एक गुल्फ में और एक जानु में, इसतरह सब मिलाकर एक पांव में १७ संधियां हैं, इतनी ही दूसरे पांव में हैं। हाथों में पावों के तुल्य होती हैं इस तरह सब मिलाकर ६८ हुई। कटि और कपाल में तीन पीठके बांसे में २४, पसलियों में २४, वक्षःस्थल में ८, ग्रीवा में ८, कंठमें तीन, हृदय, क्लोम और यकृत की नाडियों में १८, दांतकी जडमें ३२, नासिका और काफलकमें एक एक, मूर्धा में दो, कनपटियों में दो, गंडस्थलमें दो, नेत्रमें दो, वर्त्ममें दो, हनुमें दो, भृकुटियों के ऊपर दो, मूर्धा और कपाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नायु और पेशीकी संख्या ।

स्नायवश्शती पंच पुंसां पेशीशतानि च ॥
अधिकाविंशतिःस्त्रीणांयोनिस्तनसमाश्रिताः

अर्थ–पुरुष के देह में ९०० स्नायु और ९०० पेशीहैं, परन्तु स्त्रियोंके योनि और स्तनसंबंधी २० पेशी अधिक होती हैं ।

में ५ इस तरह सब मिलाकर २१० हैं । संधि ८ प्रकार की होती है, यथा- कोर, उलूखल, सामुद्र, प्रतर, सेवनी, काकतुंड, मंडल और शंखावर्त । इनमें से पहुंचा, जानु, गुल्फ और उंगली इनमें कोर संधिक, दांतोंकी जड, वंक्षण और कक्षामें उलूखल संधिक । कंधा, पीठ, गुदा, भग और नितंब में सामुद्र अर्थात् ढकने की सूरत की । ग्रीवा और पीठ के वांसे में प्रतर अर्थात् डोंगी की सूरत की । सिर कटि और कपाल में सेवनी अर्थात् सीमनकी सी सूरतकी हनुके दोनों ओर काकतुंडा अर्थात् कौएकी चोंचके सदृश, कंठ, हृदय कलोम और नेत्रों की नाडियों में मंडला अर्थात् गोलाकार । कान और शृंगाटक में शंखावर्त अर्थात् शंखकी लहरोंके सदृश संधियां हैं ।

तथा धन्वन्तरि के मतसे ३०० हड्डियां हैं जैसे- एकैकस्यांतु पादांगुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंचदश । तलकूर्च गुल्फ संश्रितानि दश । पार्ष्ण्यामेकं जंघायां द्वे । जानुन्येकम् । एकमुरावितिं । त्रिंशदेवमेकस्मिन् साक्थि भवंति । एतेनेतर सक्थिषट्टं च व्याख्यातौ । श्रोण्यां पंच तेषां गुदभगनितंबेषु चत्वारि त्रिकसंश्रितमेकं । पार्श्वेषट्टं त्रिंशदेवमेकस्मिन् द्वितीयेप्येवं । पृष्ठेत्रिंशत् । अष्टाधुरसि । द्वेअक्षकसंज्ञे । ग्रीवायां नवकं । कंठनाड्यां चत्वारि द्वे हन्वोः । दंशाद्वात्रिंशत् । नासायांत्रीणि । एकं तालुनि । गंडकर्णशंखेष्वेकैकम् । षट्सिरसि अर्थात् एक एक पांव की प्रत्येक उंगलीमें तीन तीन (सब मिलाकर १५) तलुए में सलाईके आकारकी पांच, इन पांचों के बांधनेवाली एक, कूर्चमें दो, टकनेमें दो सब बत्तीस । एडीमें एक, जांघमें दो, जानुमें एक, ऊरुमें एक, इसतरह सब मिलाकर एक पांव में तीस हड्डियां हुई हाथमें पांवकी बराबरही होतीहैं इसलिये चारों हाथ पावोंमें १२० हुई । कमर में पांच इनमेंसे गुदा और भगमें एक एक, नितंबमें दो, त्रिकमें एक, एक ओर की पसली में छत्तीस, दूसरी ओरकी पसलीमें छत्तीस, पीठमें तीस, वक्षस्थलमें आठ, आंखमें दो ग्रीवामें नौ, कंठमें चार, ठोढीमें दो, दांतोंमें बत्तीस, नासिकामें तीन, तालुमें एक कपोल में दो, कनपटीमें दो, कानमें दो. और सिरमें छः (सब मिलाकर १८०) तथा पहिली १२० और ये १८० मिलाकर ३०० हड्डियां होतीहैं ।

+ पदे पंचस्युरंगुल्यः प्रत्यंगुलि तु तानिषट् । त्रिंशदेवं दश दश कूर्चे पादतले तथा । गुल्फेचेति त्रिंशदेव जंघायां दशजानुनि । चत्वारिंशत्स्युरूरौ च वंक्षणे दश सक्थिनि । सार्धं शतं द्वितीयेऽपि तद्वद्बाहोश्च सक्थिवत् । शाखास्त्वेवं षट् शतानि कटयां द्वे विंशती स्मृते । विंशतिर्मुष्कयोर्मेढ्रवस्त्यंत्रेषु च कीर्तितः अशीतिः पृष्टभागे स्युः पार्श्वयोः षष्टिरक्षयोः । चत्वार्युरस्यष्टदश त्वष्टावंशयुगे स्मृताः । मध्येशतद्वयं त्रिंशद् द्वे द्वे मन्यावहौ स्मृते । नेत्रोष्ठे तालुनि तथा ग्रीवायां त्रिंशदीरिताः । जत्रुणि त्रीणि चत्वारि हन्वोः पंच तु कीर्तिताः । त्रिंशद्दंतमांसेषु द्वादशैवाथ मूर्ध्नि षट् । एवं शतानि स्नायूनां नवतेषु विनिर्दिशेत् । आम पक्वाशयांत्रेषु वस्तौ च सुषिराणितु । प्रतानवंति शाखासु महास्रावाणि कंडराः । वृत्तानि पार्श्व पृष्ठोरः शिरासि स्युः पृथूनि च शिराभ्योऽव्यथितोऽपि रक्षेत् स्रावाणि यत्नतः । तथाचोक्तम् । न ह्यस्थीनि तथा हिंस्युर्न पेश्यो न च संधयः । व्यापादिता अपि सिरा यथा स्नायूनि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिराओंकी संख्या ।

दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्वे सर्वतो वपुः ॥
रसात्मकं वहंत्योजस्तस्निबद्धं हि चेष्टितम् ।
स्थूलमूलाः सुसूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् ॥
भिद्यंते तास्ततः सप्तशतान्यासां भवंति तु ।

अर्थ–हृदयमें स्थित दस मूलशिरा हैं । इन दस शिराओं के द्वारा संपूर्ण देहमें सदा सर्वदा आहारका रसात्मक ओज बहकर पहुंचता है और इन्हींके द्वारा शारीरिक कायिक मानसिक और वाचक चेष्टायें संपादित होती हैं इसलिये ये दस सिरा ही प्रधान हैं । जैसे वृक्षके पत्तोंकी रेखाओंके समूह जडमें मो-

---

देहिनाम् । स्नायूनि यो वेत्ति सम्यग्बाह्यान्याभ्यंतराणि च । समूढं शल्यमार्हेतु देहाच्छक्नोति देहिन इति । अर्थात् पांव में पांच उंगलियांहैं और हरएक उंगली में छः छः के हिसाब से तीस हुई । तलुआ, कूर्च और गुल्फ इनमें हर एकमें दस दस के हिसाब से तीस, जंघामें तीस जानु में दस, ऊरू में चालीस, वंक्षण में दस । सब मिलाकर एक सक्थि में १५० दूसरी सक्थि में १५० बाहुओं में सक्थि के समान होती हैं । इस तरह चारों हाथ पांवों की मिलकर ६०० हुई कमर में ४० मुष्क मेढ्र और वस्ति में बसि, पीठ में अस्सी, पसली में साठ, आंख में चार, हृदय में अठारह, दोनों कंधों में आठ, इस तरह मध्यभाग में सब मिलाकर २३० हुई तथा मन्या, वट, नेत्र, ओष्ठ और तालु में दो दो, ग्रीवा में तीस, जत्रु में तीन, हनु में चार, जिह्वामें पांच, दंत मांस में बारह और मूर्धा में छः ये ७० स्नायु ग्रीवा के ऊपर के भाग में है । तीनों स्थानों में मिलाकर ९०० हुई ।

स्नायु चार प्रकार की होती हैं यथा– सुषिर, प्रतानवती, वृत्त और पृथु । इनमें से आमाशय, पक्वाशय, अंत्र और वस्ति में सुषिर संज्ञक अर्थात् छिद्रवाली स्नायु हैं । शाखा और संधियों में प्रतानवती अर्थात् फैली हुई स्नायु हैं । वृत्त स्नायु कंडरा है । पसली पीठ, वक्षःस्थल और सिरमें पृथुसंज्ञक हैं । सिरा और अस्थि आदि से स्नायु की रक्षा विशेष यत्न से करना चाहिये ।

यह भी कहा है कि अस्थि, पेशी, संधि, और सिरा कटजाय वा टूट जाय तो मनुष्य के प्राणों का इतना भय नहीं है जितना स्नायु के नष्ट हो जाने से होता है । जो वैद्य बाहर और भीतर की सब स्नायुओं को जानता है वही शरीर में से गहरे लगे हुए शल्यों को निकाल सकता है ।

पेश्यः संप्रति भण्यते पंचांगुल्योथ तासुताः । प्रत्येकं तिस्र इत्येवंताः पंचदश कीर्तिताः । दशपादतले गुल्फे तथा पादस्य चोपरि । कूर्चेतु विंशतिः स्यातु जंघायां पंच जानुनि । ऊरौ विंशतिरित्येवं शतं सक्थ्नयेकतो भवेत् । शतं द्वितीयेऽपि तथा सक्थिवत् भुजयोर्मताः । चत्वार्येवं शतानि स्युः शाखास्वेकैव मेहने । सीवन्यां च वृषणयोर्द्वे स्फिजोस्तुदश स्मृताः । तिस्रो गुदे वस्तिमूर्ध्नि द्वे चतस्रस्तु कोष्ठगाः । नाभ्यामेकाऽथ हृद्येका स्यादेकामाशयेऽपि षट् । यकृत्प्लीहोण्डुकेषु स्युश्चतस्रः पृष्ठतोदश । पार्श्वयोर्वक्षसिदश चतस्र इवाक्षकास्तयोः । इत्यंतराधौ षष्टिःस्युः ग्रीवायां दश गंडयोः । अष्टौ हनुप्रदेशेष्टा वेकैका काकले तथा । जिह्वायां मूर्ध्नि गलके द्वे ललाटेऽथ तालुनि । द्वे ओष्ठयोः कर्णयोर्द्वे नासायां द्वेच कीर्तिते । पुरुषाणां भवेदेतत् पेशीनां शत पंचकम् । अर्थात् अब पेशियों का वर्णन करते हैं जैसे एक पांव में पांच उंगलियां होती हैं इस हिसाब से पांचों उंग-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

टे होते हैं और ज्यों ज्यों बढ़तेहैं उनके अग्रभाग सूक्ष्म होते चले जाते हैं और उनमें से पतली पतली छोटी असंख्य रेखा निकल निकलकर चारों ओर फैल जाती हैं इसी तरह शरीर में सिरा भी जडमें स्थूल होती है और ज्यों ज्यों फैलती है उनके अग्रभाग सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हुए अनेक भागोंमें विभक्त हो जाते है। इन स्थूल सिराओं में होकर आहारज रस शीघ्र भीतर घुमता चला जाता है और फिर सूक्ष्मसिरा उस रसको रोमरोममें पहुंचाकर उनकी पुष्टि करती है। ये सब सिरा गिनती में सातसौ होती है।

शाखागतअवेध्य सिराओंकावर्णन।

तत्रैकैकं च शाखायां शतं तस्मिन्न वेधयेत्। सिरां जालंधरां नाम तिस्रश्चाभ्यंतराश्रिता

अर्थ-इन सातसौ सिराओं में से हरएक हाथ पांवमें सौ सौ सिरा है इसलिये चारों हाथ पांवकी चारसौ सिरा हैं। इनमेंसे हरएक शाखामें एक जालंधरा नामक सिरा है यह जालोंको धारण करती है, और तीन सिरा भीतर हैं जिन्हें अंतर्मुखा कहते है। इन चार सिराओं को वेधना न चाहिये। इसतरह चारों हाथपांवोंमें १६ सिरा अवेध्य है॥

लियों में पन्द्रह। पांव के तलुए में दस, गुल्फ में दस, पांव के ऊपर दस, कूर्चा में दस, जंघा में बीस, जानु में, और ऊरु में बीस। सब मिलाकर एक सक्थि में १०० सौ हुई। चारों हाथ पांवों में चार सौ हुई। मेढ्र में एक, सीवनी में एक, अंडकोष में दो, स्फिक् में दस, गुदा में तीन, वस्तिके ऊपर के भाग में दो, कोष्ठ में चार, नाभि में एक, हृदय में एक, आमाशय में एक, यकृत प्लीहा और उन्दुक में छः, पीठ में चार, पसलियों में दस वक्षस्थल में दस, कंधों में चार, सब मिलाकर साठ हुई। किसी किसी आचार्य ने मध्य भाग में ६६ लिखी हैं। ग्रीवा में दस, गंडस्थल में आठ, ठोडी के चारों ओर आठ, काकलक में एक, जिह्वा की मूर्धा में एक, कंठ में दो, ललाट में दो, तालु में दो, ओष्ठ में दो कानों में दो, नासिका में दो। इस तरह कंठ से ऊपर चालीस हैं। शाखा, मध्य भाग और ऊर्ध्वभाग सब मिलाकर पुरुषों की ५०० पेशी हुई।

स्त्रियों के बीस मांसपेशी अधिक होती हैं, दशाधिकाः स्युः स्तनयोर्दश योनौ च योषिताम्। प्रत्येकं स्तनयोः पंच तासां वृद्धिस्तु यौवने। योन्यंतराश्रिते द्वे तु द्वे च वृत्ते मुखाश्रिते। गर्भमार्गाश्रयास्तिस्रा यत्र गर्भोवतिष्ठते। शंखनाभ्याकृतिर्योनिरूर्ध्यावर्ता जायते स्त्रियाः। तस्यास्तृतीयआवर्ते रोहितस्याकृतिर्भवेत्। गर्भशय्याऽथ तिस्रश्च भवेयुः संप्रवेशिकाः। शुक्रस्य चार्तवस्यैवं पेशीस्तत्र विदो विदुः। अर्थात् स्त्रियों के दस पेशी स्तनों में और दस योनिमें अधिक होती है इनमें से पांच पांच हरएक स्तन में होती है। ये बच्चोंके दिखाई नहीं देतीं, तरुण होने पर दिखाई देती हैं। योनि के भीतरके भाग में दो, और दो गोलाकार योनि के मुख में होती हैं। गर्भमार्ग में जहां गर्भ रहता है। स्त्रियों की योनि शंखनाभि के सदृश तीन आवर्त वाली होती है, इसके तीसरे आवर्त में रोहू मछली की सी आकृति होती है इसी में गर्भ की शय्या होती है, इस जगह तीन पेशियां होती हैं शुक्र और आर्तव के प्रवेश मार्ग में तीन पेशियां होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोष्ठगतअवेध्य सिराओंकावर्णन।

षोडशाद्रिगुणाः श्रोण्यां तासां द्वे द्वे तु वंक्षणे
द्वे द्वे कट्टीकतरुणे शस्त्रेणाष्टौ स्पृशेन्न ताः।
पार्श्वयोःषोडशैकैकामूर्ध्वगां वर्जयेत्सिराम्।
द्वादशाद्रिगुणाः पृष्ठे पृष्ठवंशस्य पार्श्वगे।
द्वे द्वे तत्रोर्ध्वगामिन्यौ न परेण परामृशेत्॥
पृष्ठवज्जठरे तासां मेहनस्योपरि स्थिते।
रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे शस्त्रेण न स्पृशेत्॥
चत्वारिंशदुरस्यासां चतुर्दश न वेधयेत।
स्तनरोहितसन्मूलहृदये तु पृथग्द्वयम्॥२५॥
अपस्तंभाख्योरेकां तथापालापयोरपि।

अर्थ–अंतराधि भागमें सब सिरा १३६ हैं, इनमेंसे ३२ सिरा श्रोणिके अवयवों में है जिनमें दोनों अंडकोषोंमें स्थित दो दो अर्थात् चार और पीठके बांसे के दोनों ओर श्रोणीविभाग में स्थित कट्टीक और तरुण नामक दोनों मर्मोंकी दो दो अर्थात् चार सिरा इस तरह ये आठ सिरा अवेध्य हैं।

दोनों पसलियोंमें १६ सिरा होती हैं। इन में से हरएक पसलीमें एक एक ऊपरको जानेवाली सिरा अवेध्य होती हैं।

पीठमें २४ सिरा होती है इनमेंसे पीठके बांसके दोनों ओर दो दो सिरा ऐसी है जो ऊपरको जाती है। इन चार सिराओं को न बेधना चाहिये॥

पीठके सदृश उदरमें भी २४ सिरा होती है इनमेंसे पुंजननेन्द्रियके ऊपर रोमराजी अर्थात् रोमों की रेखाके दोनों ओर वाली दो दो सिरा अर्थात् ४ सिरा अवेध्य होती है॥

वक्षःस्थल अर्थात् छातीमें ४० सिरा होती है। इनमेंसे १४ सिरा अवेध्य होती है जैसे स्तनमूलमें चार, स्तन रोहित में चार। हृदय में चार। अपस्तंभ नामक मर्म में एक तथा अपालाप मर्ममें एक। इसतरह १४ सिरा नहीं बेधी जाती है। इसतरह कोष्ठगत १३६ सिराओं में ३२ सिरा अवेध्य है॥

जत्रुसे ऊपरकी सिराओं का वर्णन।

ग्रीवा की अवेध्यसिरा।

ग्रीवायां पृष्ठवत्तासां नीले मन्ये कृकाटिके।
विधुरे मातृकाश्चाष्टौ षोडशेति परित्यजेत्।

अर्थ–पीठकी तरह ग्रीवा में भी चौबीस सिरा होती हैं, इनमें से दो नीला, दोमन्या, दो कृकाटका, दो विधुरा और आठ मातृका, ये १६ सिरा अवेध्य हैं।

हनुगत अवेध्यसिरा।

हन्वोः षोडश तासां द्वे संधिबंधनकर्मणि।

अर्थ–ठोडी के दोनों ओर सोलह सिरा हैं, इनमें से ठोडी की संधियों को बांधने वाली दो सिरा अवेध्य हैं। किसी किसीका यह मत है कि ग्रीवा की १६ सिरा ग्रीवा की सिराओं के अंतर्गत हैं परन्तु गयदासाचार्य इन १६ सिराओं को पृथक् ही मानते हैं।

जिह्वागत अवेध्यसिरा।

जिह्वाग्रं हनुवत्तासामधो द्वे रसबोधने।
द्वे च वाचः प्रवर्तिन्यौ।

अर्थ–ठोडी की तरह जिह्वा में भी १६ सिरा हैं, इनमें से जिह्वा के नीचेकी दो सिरा जिनसे मधुरादि रसों के स्वादका ज्ञान होता है और जिह्वाके ऊपर वाली दो सिरा जो वचःप्रवर्तनी हैं अर्थात् जिनके द्वारा बोला जाता है, ये चारों सिरा अवेध्य हैं। सुश्रुत में जिह्वागत सिरा ३६ और गयदास ने २८ मानी हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नासागत अवेध्यसिरा।

नासायां चतुरुत्तरा ॥ २८ ॥
विंशतिर्गंधवेदिन्यौ तासामेकां च तालुगाम्।

अर्थ–नासिका में २४ सिरा हैं, इनमें से दो गंधवेदिनी सिरा (जिनसे गंधका ज्ञान होता है) और एक तालुगत सिरा अवेध्यहैं गयदास नासिका में १६ सिरा कहते हैं इनमें से पांचको अवेध्य बताते हैं।

नेत्रगत अवेध्यसिरा।

षट्पंचाशन्नयनयोर्निमेषोन्मेषकर्मणी। २९।
द्वे द्वे अपांगयोर्द्वे च तासां षडिति वर्जयेत्।

अर्थ नेत्रों में ५६ सिरा है, इनमें से निमेष (आंख बन्द करने वाली) की दो, और उन्मेष (खोलना) की दो तथा अपांग की दो, ये छः सिरा अवेध्य हैं। सुश्रुत नेत्रों में ३८ और गयदास २४ सिरा बताते हैं जिनमें से अपांगकी दो अवेध्य कहते हैं।

ललाटगत अवेध्यसिरा।

नासानेत्राश्रिताः षष्टिर्ललाटे स्थपनीश्रिताम्
तत्रैकां द्वौ तथाऽऽवर्तौ चतस्रश्च कचांतगाः
सप्तैव वर्जयेत्तासाम्।

अर्थ–नासिका और नेत्रोंमें जो ८० सिरा कही गई है उनमें से ६० सिरा ललाट में है। इनमें से स्थपनी नाम मर्म में आश्रित एक सिरा अवेध्य होती है। तथा आवर्तनामक दो मर्मों में दो तथा केशांतस्थ दो सिरा अवेध्य हैं ऐसें ललाट की सात सिरा अवेध्य हैं।

कानकी अवेध्य सिरा।

कर्णयोः षोडशाऽत्र तु।
द्वे शब्दवोधने शंखौ सिरास्ता एव चाश्रिताः
द्वे शंखसंधिगे तासाम्।

अर्थ–कान में १६ सिरा हैं, इनमें से शब्द बोधनी दो सिरा जिन से शब्द का ज्ञान होता है अवेध्य है तथा कनपटी की दो सिरा भी अवेध्य हैं।

मूर्द्धागत अवेध्यसिरा।

मूर्ध्नि द्वादश तत्र तु।३२।
एकैकां पृथगुत्क्षेपसीमंताधिपतिस्थिताम्।

अर्थ-मूर्द्धा में १२ सिरा होती हैं, इन में से उत्क्षेपनामक मर्म की दो सिरा, पांच सीमंतों में पांच, और अधिपति नामक मर्म की एक, इस तरह ये आठ सिरा अवेध्यहैं।

अवेध्यसिराओं का संक्षिप्तवर्णन।

इत्यवेध्यविभागार्थं प्रत्यंगं वर्णिताः सिरा।
अवेध्यास्तत्र कात्स्न्र्येन देहेऽष्टानवतिस्तथा।
संकीर्णा ग्रथिताः क्षुद्रा वक्राः संधिषु चाश्रिताः

अर्थ–अवेध्य सिराओं का ज्ञान कराने के लिये प्रत्येक अंगकी संपूर्ण सिरा और उनमें से अवेध्य सिराओं का वर्णन किया गया है। इन सब सिराओं में ९८ सिरा अवेध्य हैं। अब यह जानना चाहिये कि ये ९८ सिरा ही अवेध्य नहीं हैं किन्तु जो आपस में एक दूसरे से बंधी हुई हैं, ग्रथितहैं, जो छोटी हैं, टेढी हैं और जो अस्थि की संधियों में है वे भी अवेध्य हैं।

सिराओं से रक्तादि का बहना।

तासां शतानां सप्तानां पादोऽस्रं वहते पृथक्
वातपित्तकफैर्दुष्टं शुद्धं चैव क्षिता मलाः ॥
शरीरमनुगृह्णंति पीडयत्यन्यथा पुनः।

अर्थ-ये जो ७०० सिरा कही गई हैं इनमें से चौथाई अर्थात् १७५ सिराओं से वातदूषित रक्त बहता है। १७५ से पित्तदूषित, १७५ से कफदूषित और १७५ से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुद्ध रक्त बहता है । इसतरह रक्त और वातादि संपूर्ण दोष यथावस्थित रहनेसे शरीर को धारण करते हैं और जब इनकी स्थिति में कोई विकार होजाता है तब शरीर को पीडा पहुंचाते हैं ।

वातादिजुष्ट सिराकालक्षण ।

तत्रश्यावारुणाःसूक्ष्माःपूर्णरिक्ताःक्षणात्सिराः प्रस्यंदिन्यश्च वातस्रं वहते पित्तशोणितम् ।
स्पर्शोष्णाः शीघ्रवाहिन्यो नीलपीताः कफपुनः ॥ ३७ ॥
गौर्यः स्निग्धाः स्थिराः शीताः संसृष्टलिंगसंकरे ।

अर्थ–इनमेंसे जो सिरा श्याव वा अरुण रंगकी है । तथा सूक्ष्म और क्षण क्षण में भरनेवाली और रीती होनेवाली सिरा तथा फडकने वाली सिरा ये सब वातरक्तवाही होती है । जो सिरा स्पर्श करनेमें गरम, शीघ्र गामिनी तथा रंगमें नीलीपीली होती है ये सब पित्तदूषित रक्तको बहानेवाली है । जो सिरा श्वेतवर्ण, स्निग्ध, अचल और स्पर्शमें शीतल हैं वे कफदूषित रक्तवाहिनी होती है। तथा जिन सिराओं में वातादि दोषोंके उक्त लक्षण मिलेहुए होते है उनसे कफवातजुष्ट, वातपित्तजुष्ट, कफपित्तजुष्ट, वा कफवातपित्त जुष्ट रक्त बहता है ।

शुद्धरक्तके लक्षण ।

गूढाः समास्थिताः स्निग्धा रोहिण्यः शुद्धशोणितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–गूढ (मांसादि से छिपी हुई), समभावमें स्थित, और रोहिणी नामक सिरा जो लोहितवर्ण और प्रसरणशील होती है वे शुद्ध रक्तको बहानेवाली है ।

नाभिसंबद्ध सिराओंका वर्णन ।

धमन्यो नाभिसंबद्धा विंशतिश्चतुरुत्तराः ।
ताभिः परिवृतो नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥
ताभिश्चोर्ध्वमधस्तिर्यग्देहोऽयमनुगृह्यते ।

अर्थ–धमनी गिनतीमें चौबीस होती है। ये सब नाभिसे बंधी हुई है और इन धमनियोंसे नाभि इस तरह घिरी हुई है जैसे गाडी के पहिये का मध्य भाग अरों (पहिये की आढी तिरछी लकडियों) से घिरा रहता है । ये धमनियां ऊंची,नीची और तिरछी गई है । इनके द्वारा रस संपूर्ण देहमें जाता है और देहको पोषित करता है÷॥

+ संग्रह में लिखा है कि इन धमनियों में से दस ऊपर को, दस नीचे को और ४ तिरछी जाती हैं, तथा ऊपर वालियों में से प्रत्येक के तीन तीन भेद होकर तीस भागों में बंटगई हैं, जिन में से दो दो में वात, पित्त, कफ, रक्त और रस बहता है, दो दो शब्द रूप, रस, और गंधको ग्रहण करती हैं । दो दो से भाषण, घोष, निद्रा और प्रतिबोधन होता है । दो आंसू निकालती हैं और दो के द्वारा स्त्रियों के स्तनों से दूध और पुरुषसे वीर्य का वहन करती हैं । इसी तरह अधोगामिनी दश भी तीस भागोंमें विभक्त होजाती है उन में से दो दो के हिसाबसे दश तो कफ, वात, पित्त, रक्त और रसका वहन करती हैं । दो अन्नवाहिनी हैं । दो दो मूत्र, जल और शुक्रको वहन करती हैं । दो त्यागती हैं । येही दो स्त्रियों के रज को वहन करती हैं । दो वर्चनिरसन स्थूल आंतोंसे प्रतिबद्ध हैं । दोष आठ द्वारा पसीने निकलते हैं । तथा तिर्यग्गत चार के तो बहुत भेद हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृश्य अदृश्य स्रोतों का निरूपण।

स्रोतांसि नासिके कर्णौ नेत्रे पायवास्यमेहनम्।
स्तनौ रक्तपथश्चेति नारीणामधिकं त्रयम्।
जीवितायतनान्यंतःस्रोतांस्याहुस्त्रयोदश ॥
प्राणधातुमलांभोऽन्नवाहीनि
अहितसेवनात्।
तानि दुष्टानि रोगाय विशुद्धानि सुखाय च ॥

अर्थ–पुरुष के नौ स्रोत होते हैं, यथा दो नासाछिद्र, दो कान, दो नेत्र, एक-गुदा, एकमुख और एक मूत्रमार्ग। स्त्रियों के तीन अधिक होते हैं अर्थात् दो स्तन और एक मासिक रक्त निकलने का मार्ग।

इनके सिवाय १३ स्रोत शरीर के भीतर होते हैं, ये जीवन के प्रधान आधार हैं वे ये हैं–प्राणवायु को वहन करने वाले प्राणवाही, रसरक्तादि सात धातुओं का वहन करनेवाले ७ धातुवाही, मूत्र पुरीष स्वेदादि वहन करनेवाले तीन मलवाही, उदकवाही और अन्नवाही।

अहित आहार विहार के सेवन से दुष्ट हुए ये स्रोत रोगों को उत्पन्न करते हैं और विशुद्ध स्रोत सुख उत्पन्न करते हैं।

स्रोतों की आकृति।

स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च।
स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च

अर्थ–संपूर्ण स्रोत अपनी धातु के सदृश वर्ण वाले होते हैं अर्थात् जिस स्रोत की जो धातु है उसका रंग उसी के समान होता है जैसे रसवाही स्रोत का रंग रसधातु के सदृश, शुक्रवाही स्रोत का रंग शुक्रधातु के सदृश, इत्यादि। तथा कोई स्रोत गोल, कोई स्थूल, कोई सूक्ष्म होते है किन्तु आकृति के विचार से संपूर्ण स्रोत दीर्घ और वृक्ष के पत्तों की तरह शाखा प्रशाखा से युक्त दूर तक फैले हुए है।

आहारादि से स्रोतों का दूषित होना

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः।
धातुभिर्विगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः ॥

अर्थ–वात पित्त कफके गुणों वाला

संग्रह में लिखा है कि प्राणवाही स्रोतों का मूल हृदय है, ये स्रोत क्षय, रौक्ष्य पिपासा, क्षुधा व्यायाम और मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से दूषित हो जाते हैं इसमें अतिसृष्ट, प्रतिबद्ध, कुपित, अल्पाल्प, अभीक्ष्ण और सशब्द श्वास निकलता है इसमें श्वासरोगोक्त क्रिया कर्तव्य है। उदकवाही स्रोता का मूल तालु और क्लोम है ये आम अतिपान, शुष्क अन्न सेवन और पुरीषग्रह से दूषित होकर अतितृष्णा, शोष, कर्णस्वेडन और तमोदर्शन (आंखों के आगे अंधेरी) रोगों को करते हैं, इसमें तृषा के प्रकरण में कही हुई औषध करना चाहिये। अन्नवाही स्रोतों का मूल आमाशय और पक्वाशयपार्श्व है इसमें मात्राशितीयोक्त विधिका पालन करना चाहिये। रसवाही स्रोतों का मूल हृदय और दस धमनी हैं। रक्तवाही का यकृत और प्लीहा। मांसवाही के स्नायु और त्वचा। मेदोवाही के वृक्क और मांस। अस्थिवाही के जघन और मेद। मज्जा वाही के पर्व और अस्थि। शुक्रवाही के स्तन, मुष्क, और मज्जा। मूत्रवाही के वस्ति और वंक्षण। पुरीषवाही के पक्वाशय और स्थूलांत्र। स्वेदवाही के मेद और रोमकूप होता हैं,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रूक्षादि गुणविशिष्ट जो आहार वह स्रोतों का दूषित करने वाला है, इसी तरह वाणी देह, मन और चेष्टा के समान दोषविशिष्ट विहार भी स्रोतों का प्रदूषक है । इसी तरह जो आहार वा जो विहार रसादि किसी धातु द्वारा विगुण होजाय अर्थात् असमान गुण वा विपरीत गुणवाला होजाय तो वह भी स्रोतों को दूषित करता है ।

स्रोतों की दुष्टिका लक्षण ।

अतिप्रवृत्तिः संगो वा सिराणां ग्रंथयोऽपि वा।
विमार्गतो वा गमनं स्रोतसां दुष्टिलक्षणम् ॥

अर्थ–मूत्रादिवाही स्रोतों की अति प्रवृत्ति वा संग (जैसे प्रमेह की तरह बहुत मूत्र होना अति प्रवृत्ति है, मूत्रकृच्छ्रकी तरह कम मूत्र होना संग वा अतिप्रवृत्ति है तथा थोडा२होना अथवा उदावर्त रोगकी तरह पुरीष का सर्वथा न होना संग अथवा अप्रवृत्तिहै) येस्रोतों की दुष्टि के लक्षण है । इसी तरह रसरक्तादिवाही स्रोतों की प्रवृत्ति वा अप्रवृत्ति द्वारा स्रोतों की दुष्टि के लक्षण जाने जाते है । अथवा सिरा के स्रोतों में ग्रंथि वा कुटिल भाव होना स्रोतों की दुष्टि के लक्षण हैं अथवा अपने मार्ग को छोडकर अन्यमार्ग में प्रवृत्त होना ये भी स्रोतों की दुष्टि का लक्षण है ।

स्रोतों के द्वार ।

बिसानामिव सूक्ष्माणि दूरं प्रविसृतानि च ।
द्वाराणि स्रोतसां देहे रसो यैरुपचीयते ॥

अर्थ–जैसे संपूर्ण कमलनाल में छोटे छोटे छिद्र दूर तक फैले हुए होते है वैसे ही संपूर्ण देह में स्रोतों के छोटे २ मुख अर्थात् छिद्र चारों ओर फैले हुए है उन्हीं के द्वारा जठराग्नि से पकाए हुए आहार का प्रसाद नामक रस बनकर संपूर्ण धातुओं की वृद्धि करता है ।

स्रोतोव्यध के अवगुण ।

व्यधे तु स्रोतसां मोहकंपाध्मानवमिज्वराः ।
प्रलापशूलविण्मूत्ररोधो मरणमेव वा ॥
स्रोतोविद्धनरं वैद्यः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ।
उद्धृत्य शल्यं यत्नेन सद्यःक्षतविधानतः ॥

अर्थ–स्रोतों के विद्ध होजाने से मूर्च्छा कंपन, अफरा, वमन, ज्वर, प्रलाप, शूल, पुरीषरोध, मूत्ररोध, तथा मृत्युभी होजाती है । इसलिये वैद्यको उचित है कि उसके आत्मीय स्वजनों से यह बात सूचित करदे कि स्रोतोविद्ध रोगी के जीवन में संशय है, यह कहकर बहुत सावधानी से शल्य को निकालकर सद्योव्रणप्रतिषेध में कही हुई रीति से चिकित्सा करने में प्रवृत्त हो।

धन्वंतरि और आत्रेयका मत ।

अन्नस्य पक्ता पित्तं तु पाचकाख्यं पुरेरितम् ।
दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ॥

अर्थ–धन्वन्तरि का मत है कि पहिले दोषभेदीयाध्याय में कहा हुआ पाचक नाम वाला पित्त भुक्त अन्न का पकानेवाला है, किंतु आत्रेय मुनि का यह मत है कि वातादि दोष, रसादि धातु और पुरीषादि मल तथा दूषकादि की ऊष्मा ही पाचक अग्नि है ।

ग्रहणी का वर्णन ।

तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता ।
सैव धन्वंतरिमते कला पित्तधराह्वया ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आयुरारोग्यवर्चौजोभूतधात्वाग्निपुष्टये।
स्थिता पक्वाशयद्वारि भुक्तमार्गाऽर्गलेव सा

अर्थ—उस जठराग्नि का आधार ग्रहणी नाडी है, यही भुक्तान्न को ग्रहण करती है इसलिये; इस नाडी का नाम ग्रहणी है। धन्वन्तरि के मत से इसीका नाम पित्तधरा कला है। क्योंकि ग्रहणी नाडी पाचकाग्नि की आधारभूत है; और भुक्तान्नको ग्रहण करती है इससे इसे ग्रहणी कहते हैं अतः अवश्यही इसके द्वारा आयु, आरोग्यता, वीर्य, ओज, पार्थिवादि पंचभताग्नि तथा सातों धात्वग्नियों की पुष्टि संपादन होती है। यह ग्रहणी पक्वाशय के द्वारपर स्थित रहती है और भुक्त अन्नको पक्वाशय में जाने से रोकने के लिये अर्गला का काम देती है और भुक्तान्न को जठराग्नि से पकाती हुई धीरे धीरे पक्वाशय में पहुंचाती है।

पक्वअन्न के गुण।

भुक्तामामाशये रुध्वा सा विपाच्य नयत्यधः।
बलवत्यबला त्वन्नमाममेव विमुंचति ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह ग्रहणी नाडी यदि बलवती हो तो भुक्त अन्नको आमाशय में रोककर अनेक तरहसे पकाकर नीचे पक्वाशयमें ले-जाती है और जो निर्बल होती है, तो भुक्तान्न को बिना पकाये ही नीचेको निकाल देती है।

ग्रहणी और अग्निका अन्योन्यसंबंध।

ग्रहण्या बल मग्निर्हि सचापि ग्रहणीबलः।
दूषितेऽग्नावतो दुष्टा ग्रहणी रोगकारिणी ॥

अर्थ—क्योंकि ग्रहणीके बलका हेतु अग्नि है और अग्निके बलका हेतु ग्रहणी है अर्थात् ग्रहणीसे अग्नि और अग्निसे ग्रहणीको बल मिलता है इसलिये अग्नि के दूषित होते ही ग्रहणी दूषित होकर रोगोत्पादक होती है। इसीतरह ग्रहणीके दूषित होनेसे अग्नि दूषित होकर रोगोत्पादक होती है।१

अग्निद्वारा अन्नपाक॥

यदन्नं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषणम्।
तत्राऽग्निर्हेतुराहारान्न ह्यपक्वाद्रसादयः५७॥

अर्थ—जो अन्न देह, धातु, ओज और बल वर्णादि का पोषण करता है। वह सब अग्निके हीं द्वारा होता है। इसका कारण यह है कि विना पके आहारसे रसरक्तादि धातुओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती है और इसलिये देहादि की पुष्टि भी नहीं हो सकती है। इसका यह सारांश है कि अग्नि ही अन्नपाक का कारण है और अन्न ही अग्नि के प्रभावसे देहादि की पुष्टिका साधन है।

शरीर में पाकका प्रकार।

अन्नं काले ऽभ्यवहृतं कोष्ठे प्राणानिलाहृतम्।
द्रवैर्विभिन्नसंघातं नीतं स्नेहेन मार्दवम् ५५॥
संधुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम्।
औदर्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं-
तोयतंडुलम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—आहार के उचित काल में अर्थात् मलमूत्र के त्याग के पीछे भोजन किये हुए अन्न को प्राणनामक वायु कोष्ठ में लेजाता है, वहां जल, व्यजन, मद्य, दूध आदि पतले पदार्थ अन्न के कठोरपन को

१-क्षेपकः। वामपार्श्वाश्रित नाभेः किंचित्सूर्यस्य मण्डलम्। तन्मध्येमण्डलम् सौम्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः। जरायुमात्र प्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूर कर देते है, और घृतादि स्निग्ध पदार्थ कोमल करदेते हैं और फिर इस आमाशयस्थ अन्न को समानवायु से प्रदीप्त की हुई (झोंकी हुई) अग्नि पकाती है और थूक छींक, डकार इत्यादि का आना उसके पकाव को सूचित करता है, यहां दृष्टान्त है कि जैसे पात्र में रक्खे हुए चांवलों को जल अलग कर देता है और बाह्य अग्नि मुख वा व्यजनादि की पवन से उद्दीप्त होकर उसे पका देती है और झाग, फुदफुद शब्द आदि उसके पकने की सूचना देते हैं ।

अग्नि समीपस्थ अन्नकी अवस्था ।

आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् ।
फेनीभूतं कफं वातं विदाहादम्लतां ततः ५७
पित्तमामाशयात्कुर्याच्च्यवमानं च्युतं पुनः ।
अग्निना शोषितं पक्वं पिंडितं कटुमारुतम् ५८

अर्थ–प्रथम छः रसों से युक्त होने पर भी खाया हुआ अन्न मधुरता को प्राप्त होकर झागदार कफको उत्पन्न करता है तदनंतर मध्यम अवस्था होती है इसमें आमाशय से पक्वाशय की ओर खिसकते हुए अन्न में विदाह के कारण खट्टापन आजाता है और उक्त अवस्था में पित्तको उत्पन्न करता है । तदनंतर तीसरी अवस्था प्राप्त होती है, इसमें वह अन्न पक्वाशयमें आजाता है और वहां जठराग्नि द्वारा शोषित होकर पिंडाकार बनजाता है और कटु रसयुक्त होकर वायु को उत्पन्न करताहै ।

अन्य अग्नियों के कर्म ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपंचोष्माणःसनाभसाः
पंचाहारगुणान्स्वान् स्वान् पार्थिवादीन्-
पचंत्यनु ॥ ५९ ॥

अर्थ–तदनंतर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों की ऊष्मा आहार के अपने अपने पार्थिवादि गुणों को पकाती हैं अर्थात् पार्थिव ऊष्मा पार्थिव गुणको, जलीय ऊष्म जलके गुण को, वायुसंबंधी ऊष्मा पवनात्मक गुण को और आकाशीय ऊष्मा आकाश संबंधी गुण का पाक करती है और औदर्याग्नि का गुण तो पहिले ही वर्णन करचुके हैं ।

भूतगुणों का पोषण ।

यथास्वं ते च पुष्णंति पक्त्वा भूतगुणान्-
पृथक् ।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च देहगान्

अर्थ–ये पार्थिवादि पंचमहाभूतों के आश्रित गुण अपनी अपनी ऊष्माद्वारा पक्व होकर देह में स्थित हुए अपने अपने पार्थिवादि पृथक् पृथक् गुण की पुष्टि करते हैं जैसे पार्थिव गुण देहके पार्थिव भागकी ही पुष्टि करता है । यह न समझलेना चाहिये कि सब गुण मिलकर सबकी पुष्टि करते हैं । रस रक्तादि धातु वा अन्यस्थलों में भी ये पंचमहाभूत ऊष्मा अपने २ गुणों को ही पुष्ट करती हैं क्योंकि रसादि में भी तो इनका अंश विद्यमान रहता है ।

पक्वअन्नके भेद ।

किट्टं सारश्च तत्पक्वमन्नं संभवति द्विधा ।
तत्राऽच्छं किट्टमन्नस्य मूत्रं विद्याद्घनं शकृत्
सारस्तु सप्तभिर्भूयो यथास्वं पच्यतेऽग्निभिः

अर्थ–उदरमें पके हुए अन्नके दो भेद होते हैं यथा (१) किट्ट, (२) सार, इन में से अन्नका जो पतला किट्ट अर्थात् मैल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है उसे मूत्र कहते हैं और गाढे किट्ट को विष्ठा कहते हैं।

अन्नका सार अर्थात प्रसाद नामक भाग फिर सात अग्नियों द्वारा पकाया जाता है इसका आशय यह है कि जठराग्नियों और पंचमहाभूताग्नि इन छः अग्नियों द्वारा पककर तो सार बनता है फिर बची हुई सात रसादि धात्वग्नि द्वारा पकाया जाता है

रसादिकी उत्पत्तिका क्रम।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते

अर्थ–उक्त प्रसादाख्य सार प्रथम हृदय में पहुंचता है वहांसे व्यानवायु द्वारा हृदयस्थदश मूलशिराओं में होकर सब देहमें फैलता हुआ रस धातुसे मिलकर रसधात्वस्थ अग्निसे पाक को प्राप्त होकर रक्तमें परिणत होता है, तदनंतर रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेद से अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे शुक्र, और शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है॥

रसादि धातुओं का किट्ट।

कफः पित्तं मलः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च॥
स्नेहोऽक्षित्वग्विशामोजो धातूनां क्रमशोमलाः

अर्थ–अब रसादि से जो मल उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन है। रसधातु का मल कफ है। रक्तका मल पित्त है। मांसका मल वह है जो नासिका आदि के छिद्रों से निकलता है। मेदका मल पसीने हैं। अस्थियों का मल नख और रोम हैं मज्जाका मल नेत्रसंबंधी स्नेह, त्वचासंबंधी स्नेह और पुरीषसंबंधी स्नेह है। और शुक्र का मल ओज है।

रसादि धातुओं को द्विविधत्व।

प्रसादकिट्टौ धातूनां पाकादेवं द्विधाऽतः॥
परस्परोपसंस्तंभाद्धातुस्नेह परंपरा।

अर्थ–संपूर्ण रसादि धातु भी यथोक्त पाकविधि द्वारा सार और किट्ट इन दो भागों में विभक्त होती है। पाक के कारण प्रत्येक धातु का स्नेह अर्थात् सार उत्पन्न होता है। आपस में उपस्तंभ हेतु से धात्वादिकों के सार की परंपरा यथोत्तर श्रेष्ठ है। जैसे रसके साररूप रक्त से रक्त का साररूप मांस श्रेष्ठहै। और मांस के साररूप मेद से मेदके साररूप अस्थि श्रेष्ठ है, ऐसे ही और भी जानो।

आहारकी परिणति का काल।

केचिदाहुरहोरात्रात्षडहादपरे परे॥६५॥
मासेन यातिशुक्रत्वमन्नं पाकक्रमादिभिः।

अर्थ–कोई आचार्य कहते हैं कि पाक क्रम (जठराग्नि और पंचभूताग्नि) द्वारा पच्यमान रसरक्तादि क्रमपूर्वक वीर्यके प्रभाव से अन्न एक दिन रातमें शुक्र बनजाता है कोई २ कहते हैं कि छः दिनमें अन्न से शुक्र बनता है। अन्य आचार्य कहते हैं कि एक माहिने में आहारसे शुक्र बनताहै।+

भोज्यधातुओं की परिवृत्ति।

सततं भोज्यधातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्॥

+ इस विषय में पाराशर का यह मत है कि आठ दिन में आहार के रस से शुक्र बनता है। उन्हों ने अपने ग्रंथ में लिखा है आहारोऽद्यतनो यदचश्वो रसत्वं समच्छति शोणितत्वं तृतीयेन्हि चतुर्थे मांसतामपि। मेदस्त्वं पंचमे षष्ठे त्वस्थित्वं सप्तमे व्रजेत्। मज्जतां शुक्रतामेति दिवसेत्वष्टमे नृणामिति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–भोज्य धातुओं का परिवर्तन अर्थात् भ्रमण गाडी के पहिये की तरह घूमता ही रहता है । पहिली वाली, जिस धातु से जो दूसरी धातु बनती है तो वह पहिली वाला धातु दूसरी धातु की भोज्य धातु अर्थात् आहार होती है, जैसे रस से रक्त बनता है तो रस धातु रक्त की भोज्य धातु हैं, इसी तरह मांसकी भोज्य धातु रक्त है, मेदकी भोज्य धातु मांस है, अस्थि की भोज्य धातु मेद है, मज्जा की भोज्य धातु अस्थि है और शुक्र की भोज्य धातु मज्जा है । भोज्यधातु निरंतर आप्यायित रहने के कारण क्षीण नहीं होती है ।

वृष्य पदार्थोंकी सद्यःवीर्योत्पादकता ।

वृष्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते ।

अर्थ–दूध मांसरस, मुलहटी, उरद, कूष्मांड, हंसादि पक्षियों के अंडे तत्काल शुक्र को उत्पन्न करते हैं ।

अहोरात्र में स्वकर्मकर्तव्य ।

प्रायः करोत्यहोरात्रात्कर्माण्यन्यदपि भेषजम् ॥

अर्थ–वृष्यादि द्रव्यों के अतिरिक्त और भी चूर्ण गुटका आदि संदीपन औषध अपना अपना कर्म एक दिन रात में करती हैं ।

जठराग्निद्वारा आहारकी प्रेरणा ।

व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा ।
युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा ॥
क्षिप्यमाणःस्ववैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः ।
तस्मिन्विकारं कुरुते खे वर्षमिव तोयदः ॥

अर्थ–व्यानवायु से विक्षिप्यमाण रस धातु संपूर्ण शरीर में सदा चारों ओर प्रेरित होती रहती है, यदि स्रोतों में किसी प्रकार की विगुणता होने से शरीर के जिस अवयव वा स्थान में वह रुक जाती है वहां ही रोग उत्पन्न हो जाती है, जैसे वायु की प्रेरणा से आकाशस्थ मेघ जहां इकट्ठे हो जाते हैं वहीं बरसते हैं । सब जगह नहीं बरसते । इसी तरह रस भी अपने रुकने के स्थानमें ही रोग को उत्पन्न करता है ।

दोषोंका भी एक देशमें प्रकोपन ।

दोषाणामपि चैवं स्यादेकदेशप्रकोपणम् ।
अन्नभौतिकधात्वग्निकर्मेति परिभाषितम् ॥

अर्थ–जैसे रस धातु अपनी विगुणता से जहां रुकती है वहीं रोग उत्पन्न करती है वैसेही वातादि दोष भी व्यानवायु से विक्षिप्त होकर स्रोतो दुष्टि के कारण जहां रुक जाते हैं वहीं विकार उत्पन्न करते हैं, यही कारण है कि सिध्म, श्यथु आदि रोग एक ही स्थान में होते हैं ।

अन्नाग्नि कर्म, भौतिकाग्नि कर्म, और धात्वग्नि कर्म ये पहिले ही कहेजा चुके है, अब अन्नाग्नि की श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हैं ।

जठराग्नि के पालनादि कर्म ।

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः ।
तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः ॥
तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानैर्धनैर्हितैः ।
पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितिः ।

अर्थ–सब प्रकार की अग्नियों में अन्न को पचानेवाली पाचकाग्नि अर्थात् जठराग्नि श्रेष्ठ होती है, क्योंकि पाचकाग्नि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही भूताग्नि और धात्वादि अग्नियों की मूल है। इसी पाचकाग्नि की वृद्धि और क्षय से ही उनकी भी वृद्धि वा क्षय होता है इस लिये उचित है कि हितकारी अन्नपान के विविधि प्रयोगों द्वारा यत्नपूर्वक सेवन करने से पाचकाग्नि की रक्षा करै। जैसे ईंधन के लगाने से अग्नि की वृद्धि होती है, कारण यहीहै कि पाचकाग्नि की स्थिति परही आयु और बलकी स्थिति निर्भर है।

जठराग्नि के चार भेद।

समः समाने स्थानस्थे विषमोऽग्निर्विमार्गगे।
पित्ताग्निमूर्छिते तीक्ष्णो मंदोऽस्मिन्कफ-
पीडिते ॥ ७३ ॥
समोऽग्निर्विषमस्तीक्ष्णो मंदश्चैवं चतुर्विधः

अर्थ–जब समान वायु अपने स्थान में रहता है तब जठराग्नि सम होती है और जब समान वायु अपने स्थान को छोडकर अन्य मार्ग में जाती है तब जठराग्नि विषम होजाती है, जब समान वायु पित से मूर्छित होती है तब जठराग्नि तीक्ष्ण होती है, इसी तरह कफ से पीडित होने पर अग्नि मंद होती है।

इस रीति से अग्नि चार प्रकार की होती है, जैसे समाग्नि, विषमाग्नि तीक्ष्णाग्नि और मंदाग्नि।

चतुर्विध अग्नि के लक्षण।

यः पचेत्समगेवान्नं भुक्तं सम्यक् समस्त्वसौ
विषमोऽसम्यगप्याशु सम्यक्कृच्चापि-
चिरात्पचेत्।
तीक्ष्णो बह्निः पचेच्छीघ्रमसम्यगपि भोजनम्
मंदस्तु सम्यगप्यन्नमुपयुक्तं चिरात्पचेत्।
कृत्वाऽस्यशोषाटोपांत्रकूजनाऽध्मानगौरवम्

अर्थ–जो अग्नि विधिपूर्वक किये हुए भोजन को सम्यक् रीति से पचाती है वह समाग्नि है। जो अग्नि देश, काल, मात्रा विधि आदि का विचार किये विना असम्यक् रीति से किये हुए भोजन को शीघ्र पचादेती है और जो कभी सम्यक् भुक्त अन्न को देर में पचाती है उसे विषमाग्नि कहते हैं। जो अग्नि अतिमात्र वा असम्यक् भुक्त अन्न को भी शीघ्र पचादेती है। वह तीक्ष्णाग्नि है और जो अग्नि सम्यक् रीति से किये अल्प भोजन को भी मुख में शोषादिक उत्पन्न करके देर में पचाती है वह मंदाग्नि है। मंदाग्निवाले के पाचन काल में मुखशोष, पेट में गुडगुडाहट, अंत्रकूजन, अफरा, और भारापन होता है। *

बलके भेद और लक्षण।

सहजं कालजं युक्तिकृतं देहबलं त्रिधा।
तत्र सत्वशरीरोत्थं प्राकृतं सहजं बलम् ७७॥
वयस्कृतमृतूत्थं च कालजं युक्तिजं पुनः।
विहाराहारजनितं तथोर्जस्करयोगजम् ७८

अर्थ–देहका बल तीन प्रकार का होता है। यथा, सहज, कालज और युक्तिकृत। इनमेंसे सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों से

+ किसी पुस्तक में यह पाठ अधिक है शांतेग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयः। रोगीस्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्माच्छिरुच्यते। अर्थात् अग्नि के नष्ट होने पर मृत्यु होती है, समभाव में स्थित होने पर निरोगता और दीर्घजीवन होता है, विकृत होने पर अनेक प्रकार के रोग होते हैं अतएव अग्नि ही शरीर का मूल आधार है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्पन्न तथा देहसे उत्पन्न जो स्वाभाविक बल होता है। उसे सहजबल कहते हैं। जो बल बाल्य अवस्था वा युवा अवस्थासे उत्पन्न है अथवा हेमंतादि ऋतुओं के कारणसे होता है उसे कालज बल कहते हैं। तथा जो बल आहार विहारसे उत्पन्न होता है और वाजीकरणादि रासायनिक बलकारक प्रयोगों के सेवन से होता है उसे युक्तिकृत कहते हैं॥

देशको त्रिविधत्व ।

देशोऽल्पवारिद्रुनगो जांगलः स्वल्परोगदः।
आनूपो विपरीतोऽस्मात्समः साधारणः स्मृतः॥ ७९॥

अर्थ–देश भी तीन प्रकारका होता है। जैसे जांगल,आनूप और साधारण। जिस देश में अल्प जल, अल्पवृक्ष, और अल्प पर्वत हों वह जांगल देश है। ऐसे देशमें रोग भी कम होते हैं। आनूप देश इससे विपरीत होता है अर्थात् उसमें जल, वृक्ष,और पहाड बहुत होते है और रोग भी अधिक होते हैं। साधारण देश सम होता है इसमें जल वृक्ष, पर्वत और रोगादि न तो बहुत ही होते हैं और न थोडे ही होते हैं॥

देहमें मज्जादिका प्रमाण।

मज्जमेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृत्यसृक्॥
रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकांजलिवर्धितम्।
पृथक्त्वप्रसृतं प्रोक्तमोजोमस्तिष्करेतसाम्॥
द्वांबजली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः
समधातोरियं मानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः ८२

अर्थ–मनुष्यके देहमें मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, पुरीष, रक्त, रस और जल ये दस द्रव्य यथोत्तर अपने हाथकी एक एक अंजली अधिक होते हैं।जैसे मज्जा एक अंजली,मेदा दो अंजली,वसा तीन अंजली,इत्यादि तथा जल दस अंजलि है। इसीतरह ओज, मास्तिष्क और वीर्य अपने हाथसे प्रत्येक एक प्रसृत अर्थात् आधी आधी अंजली हैं। स्त्रियों के स्तन्य अर्थात् दूध दो अंजली है और रज चार अंजली होता है। यह परिमाण उन मनुष्योंका है जिनके धातु समप्रकृति पर हैं धातुओं के घटने बढनेके अनुसार ही मज्जादि का परिमाण घट बढ जाता है।

सातप्रकार की प्रकृति ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु।
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता

अर्थ–शुक्र, शोणित, गर्भिणी का आहार विहार, गर्भाशय और ऋतु इनमें वातादिक दोषों में से जिस दोष की अधिकता होती है उसी दोष के अनुसार प्रकृति होती है, इस जगह प्रकृति सात प्रकार की होती है जैसे वातप्रकृति, पित्तप्रकृति, कफप्रकृति, वातपित्तप्रकृति, वातकफप्रकृति, पित्तकफप्रकृति और वातकफपित्तप्रकृति।

वातको प्रधानता ।

विभुत्वाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात्
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनिलः

अर्थ–विभुत्व (सबशरीर में व्यापकता) आशुकारित्व (शीघ्रतापन), बलित्व (बलवत्ता), अन्यप्रकोपनत्व (और दोषों को कुपित करनेवाला), स्वातंत्र्य (अन्य को प्रेरणा करनेवाला) और बहुरोगत्व (सब से अधिक रोगों को करनेवाला) इन छः कारणों से वायु सब दोषों से प्रबल है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातप्रकृति के लक्षण।

प्रायोऽत एव पवनाप्लुषिताः मनुष्या-
दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः।
शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टाः-
सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ८५
अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः-
सन्नसक्तचलजर्जरवाचः।
नास्तिका बहुभुजः सविलासा-
गीतहासमृगयाकालिलोलाः ॥ ८६ ॥
मधुराम्लपटूष्णसात्म्यकांक्षाः
कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः।
न दृढा न जितेंद्रिया न चार्या-
न च कांतादयिता बहुप्रजा वा ॥ ८७ ॥
नेत्राणि चैषां खरधूसराणि-
वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि।
उन्मीलितानीव भवंति सुप्ते-
शैलद्रुमांस्ते गगनं च यांति ॥ ८८ ॥
अधन्या मत्सराभ्याताः-
स्तेनाः प्रोद्भ्रष्टपिंडिकाः।
श्वभक्षगालोष्टगधाखु
काकानूकाश्च वातिकाः ॥

अर्थ—वातप्रकृतिवाले मनुष्य का स्वभाव प्रायः प्रारंभ से जीवन पर्यन्त उत्तम नहीं होता है। इनके बाल और शरीर फटे हुए और देह का रंग घूलधूसरित सा होता है इनको शीतल पदार्थ अच्छे नहीं लगते हैं इनकी धृति, स्मृति, बुद्धि चेष्टा, सुहृदता, दृष्टि और गति स्थिर नहीं होती हैं ये निरर्थक बातों को बहुत बकते हैं इनका पित्त, बल, जीवन और निद्रा अल्प होते हैं, मुख से सन्न (शिथल) चल (कुछ का कुछ) और जर्जर (टूटे हुए) शब्द निकलते हैं। वात प्रकृति वाला नास्तिक, बहुभोजी, विलासी, गाना, हंसना, आखेट और कलह का अभिलाषी, मीठा, खट्टा, नमकीन और उष्ण पदार्थों के सेवन की इच्छावाला, कृश और दीर्घ आकृति वाला, चलने में शब्द करने वाला, न दृढ, न जितेन्द्रिय, अनार्य, स्त्री पर प्रेम न रखने वाला, थोडी संतान वाला, होता है। इस के नेत्र कर्कश, धूसरवर्ण, गोल, अचारु सौंदर्यहीन मृतोपम होतेहैं इसके नेत्र सोते समय खुले से रहते हैं स्वप्न में पर्वत, वृक्ष और आकाशादि में घूमता है। वातप्रकृति वाला मनुष्य अभव्य, द्वेषपूर्ण, और चोर होता है। इनके पांवोंकी पिंडली ऊंची होती हैं। इनका स्वभाव कुत्ता, शृगाल, ऊंट, गिद्ध, चूहे और कौए के सदृश होता है॥

पित्तप्रकृतिके लक्षण।

पित्तं बहिर्बहिर्जं वा यदस्मा-
त्पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णांबुभुक्षः।
गौरोष्णांगस्ताम्रहस्तांघ्रिवक्त्रः
शूरो मानी पिंगकेशोऽल्परोमा ॥ ९० ॥
दयितमाल्यविलेपनमण्डनः-
सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः।
विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो-
भवति भीषुमतिर्द्विषतामपि ॥ ९१ ॥
मेधावी प्रशिथिलसंधिबंधमांसो-
नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः।
आवासः पलिततरंगनीलिकानां-
भुक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ९२॥
धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगंधि-
र्भूयुष्णारक्रोधपानाशनेर्ष्यः।
सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्-
दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ ९३ ॥
तनूनि पिंगानि चलानि चैषां-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि ।
क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा-
रागं व्रजंत्याशु विलोचनानि ॥ ९४ ॥
मध्यायुषो मध्यबलाः-
पण्डिताः क्लेशभीरवः ।
व्याघ्रर्क्षकार्पासमार्जार-
यक्षानुकाश्च पैत्तिकाः ॥ ९५ ॥

अर्थ–धन्वन्तरिके मतसे पित्त स्वयं अग्नि है अथवा अग्निसे उत्पन्न पित्त है । इस लिये पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य तीव्र तृषा और तीव्रक्षुधावाला होता है । इसका रंग गोरा और अंग गरम होता है इसके हाथ, पांव और मुख ताम्रवर्ण होते हैं । यह शूर और मानी होताहै । बालोंका रंग पीला और रोम थोडे होते हैं । इसको माला चंदनादि लेपन और आभूषण प्रिय होते हैं । यह सुचरित पवित्र, शरणागतवत्सल, ऐश्वर्यवान्, साहसी बुद्धि, और बलसे युक्त, भयमें शत्रुओं की भी रक्षा करनेवाला, मेधावी, शिथिल संधिबंधन और मांसयुक्त होता है । स्त्रियोंसे प्रेमरहित, अल्पवीर्ययुक्त और अल्पकामी, यह पलित, व्यंग और नीलिका रोगका आवास होताहै । मधुरकषाय, तिक्त और शीतल भोजनका प्रेमी होता है । उष्णद्वेषी, पसीनोंसेयुक्त, दुर्गंधियुक्त अत्यन्त विष्ठाका त्यागनेवाला, अतिक्रोधी, अति खाने पीने वाला और अत्यन्त ईर्षक होता है । इसको स्वप्नमें कनेर, ढाक, दिग्दाह, उल्कापात, विद्युत्पात, सूर्य और अग्नि दिखाई देते हैं । इसके नेत्र छोटे, पिंगलवर्ण, चंचलकम और छोटे पक्ष्मोंसे युक्त । शीतप्रिय, क्रोध, मद्य, और सूर्यकी चमकसे शीघ्र ही लाल होजाते हैं । इनकी आयु और बल मध्यम होते हैं । ये पंडित और क्लेशसे डरनेवाले होते हैं । इनका स्वभाव व्याघ्र, रीछ, बंदर, बिल्ली और यक्षके सदृश होता है ये सब लक्षण पित्त प्रकृतिवालों के हैं ॥

कफ प्रकृति के लक्षण ।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो-
गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थिमांसः ।
क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो-
बुद्ध्या युक्तः सात्विकः सत्यसंधः ९६ ॥
प्रियंगुदूर्वाशरकांडशाल्म-
गोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ।
प्रलंबबाहुः पृथुपीनवक्षा-
महाललाटो घननीलकेशः ॥ ९७ ॥
मृदंगः समसुविभक्तचारुघर्मा-
बहवोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः ।
धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु-
प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ९८ ॥
समदद्विरदेंद्रतुल्ययातो-
जलदांभोधिमृदंगसिंहघोषः ।
स्मृतिमानभियोगवान् विनीतो
न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥
तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्ष-
मल्पं स भुंक्ते बलवांस्तथाऽपि ।
रक्तांतसुस्निग्धविशालदीर्घ-
सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥
अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेह
प्राज्ञायुर्वित्तो दीर्घदर्शी वदान्यः ।
श्राद्धो गंभीरः स्थूललक्षः क्षमाधा-
नार्यो निद्रालुर्दीर्घसूत्रः कृतज्ञः ॥
ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो
भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च ।
स्वप्ने सपद्मान्सविहंगमालां-
स्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥
ब्रह्मरुद्रेंद्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाऽश्वगोवृषैः॥

अर्थ-कफ सोमस्वरूप होता है, इस लिये कफ प्रकृतिवाला मनुष्य शांतस्वभाव होता है। इसके संधि, अस्थि और मांस गूढ, सचिक्कण और दृढ होते हैं इसको भूख प्यास, दुख, क्लेश और गरमी सताते हैं। यह बुद्धिमान सतोगुणाविशिष्ट और सत्यप्रतिज्ञ होता है। इसमें प्रियंगु, दूर्वा, शरकांड, शस्त्र, गोरोचन, कमल वा सुवर्ण आदि जुदे जुदे वर्णों के मनुष्य होते हैं। इनकी लंबी बाहु, मोटा और चौडा वक्षःस्थल, बडा ललाट, सघन और नीले केश तथा कोमल अंग होते हैं। इसका शरीर बडा सुंदर और सुडौल होता है। यह बहुत ओज, रतिरस, शुक्र पुत्र और भृत्यों से युक्त होता है, धर्मात्मा होता है, किसी से निष्ठुर वचन नहीं कहता है, वैर को कभी भूलता नहीं है, बहुत कालतक गुप्त भाव से रखता है। यह मतवाले हाथी की तरह घूमता हुआ चलता है, इसका शब्द मेघकी गर्जन वा मृदंग के शब्द वा सिंहध्वनि के सदृश होता है यह स्मृतिमान, उद्योगी, और विनीत होता है, बाल्यावस्थामें भी न रोता न चंचल होता है। यह तिक्त, कषाय, कटु, उष्ण, रूक्ष तथा थोडा भोजन करता है तथापि बलवान् होता है। इसके नेत्रों के प्रांत लालवर्ण के होते हैं तथा विशाल, दीर्घ, और बहु पक्ष्मयुक्त होते हैं, इसके नेत्रों के श्वेत और कृष्णमंडल बहुत सुंदर होते हैं। इसके वाक्य, क्रोध, पान, भोजन, चेष्टा कम होते हैं यह दीर्घायु, अत्यंतधनी, दूरदर्शी, अल्पभाषी, दाता, श्रद्धावान्, गंभीर स्वभाव, उच्चाशय, क्षमावान्, आर्य, निद्रालु, दीर्घसूत्री (देरमें काम करनेवाला) कृतज्ञ, सरल प्रकृति, पंडित, सौभाग्यशाली, सलज्ज अपने से बडों का सेवक, दृढ मित्रतायुक्त होता है। इसको स्वप्न में कमल और पक्षियों से युक्त जलाशय तथा मेघ दिखाई देते हैं। इसका स्वभाव ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस, ऐरावत हाथी, सिंह, अश्व, गौ वा बैल के सदृश होता है। ये सब कफप्रकृति वालों के लक्षण हैं।

द्वन्द्वप्रकृति के लक्षण।

प्रकृतीर्द्वयसर्वोत्था द्वंद्वसर्वगुणोदये।

अर्थ-वातादि दो दो दोषों के मिलित लक्षण दिखाई देने से द्वन्द्वप्रकृति होती है और तीनों दोषों के मिलित लक्षण हों तो सर्व दोष प्रकृति होती है।

सत्वादि प्रकृतिका निरूपण।

शौचास्तिक्याादिभिश्चैव गुणैर्गुणमथोर्वदेत्॥

अर्थ-वातादि सात प्रकृतियों के सदृश शौच, आस्तिक्य और शुक्लधर्म की रुचिके अनुसार सत्वादि गुणों के द्वारा सत्वादि सात ही प्रकृति होती हैं और जाति, देश, काल, वय, बल, और प्रकृति ये सात इन के अधिष्ठान हैं सत्वादि प्रकृतियों के नाम ये हैं यथा--सत्वप्रकृति, रजःप्रकृति तमःप्रकृति, सत्वरजः प्रकृति, सत्वतमः प्रकृति, रजस्तमः प्रकृति और सत्वरजस्तमःप्रकृति।

सत्वादि प्रकृतियों का ज्ञान।

वयस्त्वाषाडशाद्वालं तत्र धात्विंद्रियौजसाम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्राबृद्धिः परं क्षयः ॥

अर्थ—सोलह वर्षकी अवस्था तक बाल्यावस्था होती है, इस बाल्यकाल में रसादि धातु नेत्रादि इन्द्रिय, और ओज की वृद्धि होती है । सोलह वर्ष से सत्तर वर्ष की अवस्था तक मध्यावस्था होती है, इसमें धात्वादिकों की वृद्धि नहीं होती है और सत्तर वर्षकी अवस्था से ऊपर धात्वादिकों का क्षय होता है । (बाल्यावस्था भी तीन प्रकारकी होती है एक केवल क्षीरपानावस्था, दूसरी क्षीरान्न भोजन अवस्था, तीसरी अन्न भोजन अवस्था । बाल्यावस्था में कफ की अधिकता होने से स्निग्धता, मृदुता, सुकुमारता, अल्प क्रोध और सौभाग्यादि होते हैं । मध्यावस्था भी तीन प्रकारकी होती है, यौवन, संपूर्णत्व और अपरहानि । तीस वर्ष की अवस्था तक यौवन, चालीस वर्ष की अवस्थातक संपूर्ण धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य, पौरुष, स्मृति, आदि स्थिर रहते हैं । इससे परे अपरिहानि ।

शरीरका परिमाण और लक्षण ।

स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुः पात्रं सुखायुषोः ।
नरं यदुक्तमुद्दिष्टैरष्टाभिर्निंदितैर्नरैः ॥
अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैः सविपर्ययैः ॥

अर्थ—जो देह अपने हाथसे साडेतीन हाथ का होता है वही सुख और आयु का पात्र होता है । किंतु जो यह देह मरण पर्य्यन्त अतिनिन्दित अरोमशादि आठ दोषों से युक्त होतो सुख और आयु का पात्र नहीं है, वे आठ दोष ये हैं (१) रोमरहित, (२) अतिरोमयुक्त, (३) अति काला, (४) अति गोरा, (५) अतिस्थूल, (६) अतिकृश (७) अतिदीर्घ और (८) अति लघु ।

पीठआदि के लक्षण ।

सुस्निग्धा मृदवः सूक्ष्मा नैकमूलाः स्थिराः कचाः ॥ १०७ ॥
ललाटमुन्नतं स्निष्टशंखमर्धेंदुसंनिभम् ।
कर्णौनीचोन्नतौ पश्चान्महांतौ स्निष्टमांसलौ
नेत्रे व्यक्तासितसिते सुबद्धे घनपक्ष्मणी ।
उन्नताग्रा महोच्छ्वासा पीनर्जुनासिका समा
ओष्ठौ रक्तावनुद्वृत्तौ महत्यौ नोल्बणे हनू ।
महद्वास्यं घना दंताः स्निग्धाः श्लक्ष्णा सिताः समाः ॥ ११० ॥
जिह्वा रक्तायता तन्वी मांसलं चिबुकं महत्
ग्रीवा ह्रस्वा घना वृत्ता स्कंधावुन्नतपीवरौ ॥
उदरं दक्षिणावर्तगूढनाभि समुन्नतम् ।
तनुरक्तोन्नतनखं स्निग्धमाताम्रमांसलम्॥११२
दीर्घोच्छिद्रांगुलि महत्पाणिपादं प्रतिष्ठितम्

अर्थ—अब इन बातों को लिखते हैं कि जिनके होने से, शरीर सुख और दीर्घ जीवन का पात्र होता है । जिसके केश चिकने, कोमल, सूक्ष्म, अनेकमूल और स्थिर होते हैं वह सुख का पात्र है । ऊंचा ललाट, स्निष्ट और अर्द्धचन्द्राकार कनपटी, नीचे को छोटे और ऊंचे, पीछे को बडे और मांसयुक्त । नेत्रमुव्यक्त काले और सफेद मंडलों से युक्त, सुसंबद्ध और घने पक्ष्मसे युक्त । नासिका आगेकी ओर ऊंची महा उच्छास से युक्त, पुष्ट, सीधी और न नीची न ऊंची । ओष्ठ—लाल, बाहर को न निकले हुए । ठोडी—चौडी, ऊंचेको न उठी हुई । मुखका छिद्र—बडा । दांत—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घन (बीच में जगह नहो) कोमल, कांति युक्त, सफेद और समान। जिह्वा–लाल, लंबी और पतली। चिबुक–मांसयुक्त और बडी। ग्रीवा–ह्रस्व, घन, और गोल। कंधे ऊंचे और मोटे। उदर–दक्षिणावर्त गंभीर नाभिवाला, तथा सुशोभितपने से ऊंचा। हाथपांव–पतले और लाल रंग के नखों से युक्त, स्निग्ध, तांबे के रंगके सदृश, मांसल तथा लंबी और छिद्ररहित अंगुलियोंसे युक्त जिस मनुष्य के अंग प्रत्यंग उक्त लक्षणोंसे युक्त होते हैं वह सुख और दीर्घजीवनका पात्र होता है।

शरीरके शुभ लक्षण।

गूढपर्वा बृहत्पृष्ठो निगूढा संधयो दृढाः॥११३
धीरः स्वरोऽनुनादी च वर्णः स्निग्धःस्थिरप्रभः
स्वभावजं स्थिरं सत्वमविकारि विपरस्यपि।
उत्तरोत्तरंसुक्षेत्रं वपुर्गर्भादिनीरुजम्।
आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैः शुभम्॥११५
इति सर्वगुणोपेते शरीरे शरदां शतम्।
आयुरैश्वर्यमिष्टाश्च सर्वे भावाः प्रतिष्ठिताः।

अर्थ–पृष्ठदेश–पीठ चौडी हो जिसमें पीठ का बांस दिखाई न देता हो। संधियां मांस से ढकी हुई और दृढ। स्वर–गंभीर और घंटे के टंकोर के सदृश। वर्ण स्निग्ध और स्थिर कांतियुक्त। सत्व–स्वाभाविक स्थिर और विपत्ति में भी विकार को प्राप्त न होने वाला। इस तरह उत्तरोत्तर शुभ क्षेत्र से युक्त गर्भ काल से रोगरहित लौकिक व्यवहार और शास्त्र के ज्ञान से परिवर्द्धित देह शुभ लक्षणों से युक्त होता है। ऊपर कहे हुए संपूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शरीर सौ वर्षतक स्थिर रहता है तथा दीर्घ जीवन, ऐश्वर्य, तथा संपूर्ण अभीप्सित पदार्थों से युक्त रहता है।

बलके प्रमाण का ज्ञान।

त्वग्रक्तादीनि सत्वांतान्यष्टौ यथोत्तरम्
बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम्।
सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंयुतः।
सर्वारंभेषु चाशावान्सहिष्णुःसन्मतिःस्थिरः

अर्थ–शरीरधारियों के बलका प्रमाण जानने के लिये त्वचा और रक्तादि आठ प्रकार के सार कहे गये हैं, यथा–त्वक्सार, रक्तसार, मांससार, मेदोसार, अस्थिसार, मज्जासार, शुक्रसार और सत्वसार। इन आठ सारोंमें उत्तरोत्तर सार श्रेष्ठ हैं। संपूर्ण सारोंसे युक्त मनुष्य अत्यन्त गौरवशाली, संपूर्ण कार्यों के पूरा करने में आशावान्, सहिष्णु, सुन्दर बुद्धि से युक्त और स्थिर चित्त होता है।

सत्वादि प्रकृति वाले को दुख सुख का अनुभव।

अनुत्सेकमदैन्यं च सुखं दुःखं च सेवते।
सत्ववांस्तप्यमानस्तु रजसो नैव तामसः॥

अर्थ–सतोगुण मनुष्य अभिमान को त्यागकर सुखको भोगता है और कृपणता को त्यागकर दुःख को भोगता है रजोगुणी मनुष्य अभिमान युक्त होकर सुख और कृपण होकर दुःख भोगकरता है और तमोगुणी मनुष्य अत्यन्त मूढ होने के कारण न दुख का अनुभव करता है न सुख का अनुभव करताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीर का प्रधान फलदायी लक्षण ।

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः ।
रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्बुद्धिकृद्गुणः ॥

अर्थ–दानशीलता, दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, कृतज्ञता, रसायनक्रिया, और मित्रता (संपूर्ण प्राणियों में आत्मभाव), ये सब गुण पुण्यजनक और आयु को बढाने वाले हैं ।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां शारीरस्थाने तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाऽतो मर्मविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अबहम यहांसे मर्मविभागशारीर नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

मर्मोंकी संख्या ।

" सप्तोत्तरं मर्मशतम्-
तेषामेकादशादिशेत् ।
पृथक्सक्थ्नोस्तथाबाह्वोस्त्रीणिकोष्ठेनवोरसि
पृष्ठे चतुर्दशोर्ध्वं तु जत्रोरेकोनविंशतिः च ।

अर्थ–संपूर्णमर्म १०७ हैं । इन में से प्रत्येक सक्थिन और प्रत्येक हाथ में ग्यारह ग्यारह के हिसाब से ४४ हुए । कोष्ठमें तीन, वक्षःस्थल में नौ, पीठमें चौदह और जत्रु से ऊपर सैंतीस मर्म हैं ।

विशिष्ट संज्ञावाले मर्म ।

मध्ये पादतलस्याहुरभितो मध्यमांगुलिम् २
तलहृन्नामरुजया तत्र विद्धस्य पंचता ।
अंगुष्ठांगुलिमध्यस्थंक्षिप्रमाक्षेपमारणम् ३ ॥
तस्योर्ध्वं द्व्यंगुले कूर्चः पादभ्रमणकंपकृत् ।

अर्थ–पांव के तलुए में मध्यमा अंगुली के सन्मुख बीच के भाग में एक तलहृत मर्म होता है, उस में आघात अर्थात् चोट लगने से तीव्र वेदना होकर मृत्यु होजाती है । अंगूठा और उसके पास वाली उंगली के बीच में क्षिप्रनामक मर्म है, उसमें विद्ध होने से आक्षेप नाम रोग उत्पन्न होने से मृत्यु होती है । इस क्षिप्रमर्म से दो अंगुल ऊंचा एक कूर्चनामक मर्म है उसमें विद्ध होने से पादभ्रमण और कंपन होता है ।

गुल्फ संध्यादि में मर्म ।

गुल्फसंधेरधः कूर्चशिरः शोफरुजाकरम् ४
जंघाचरणयोः संधौ गुल्फो रुक्स्तंभमांद्यकृत्
जंघांतरे विद्धबस्तिर्मारयत्यल्परुजः क्षयात् ॥

अर्थ–टकनों की संधि के नीचे एक कूर्चशिर नामक मर्म होता है, इसमें विद्ध होने से सूजन और वेदना होती है । जंघा और चरणों की संधि में गुल्फ नामक मर्म है, इसके विद्ध होने पर वेदना, स्तब्धता और अग्निमांद्य होता है, तथा इस में विद्ध होने से रुधिर के निकलने से मृत्यु हो जाती है ।

जंघादि के मर्मों के नाम ।

जंघोर्वोः संगमे जानुखंजता तत्र जीवतः ।
जानुनस्त्र्यंगुलादूर्ध्वमाण्यूरुस्तंभशोफकृत् ॥
उर्व्यूरुमध्येतद्वेधात्सक्थिशोषोऽस्रसंक्षयात्
ऊरुमूले लोहिताख्यं हंति पक्षमसृक्क्षयात् ।
मुष्कवंक्षणयोर्मध्ये विटपं वंक्षणाकरम् ।

अर्थ–जंघा और ऊरुकी संधिमें जानु नामक मर्म है इसके विद्ध होने पर मृत्यु हो जाती है । यदि मृत्यु न होतो खंजता होती,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। जानुसे तीन अंगुल ऊंचेपर आणि नामक मर्म है।इसके विद्ध होने पर उरुस्तंभ और सूजन होती है। ऊरुके मध्यमें उर्वी नामक मर्म होता है। इसके विद्ध होने पर रुधिरके क्षय होनेसे पांव सूख जाता है। ऊरु की जडमें लोहित नामक मर्म है इसके विद्ध होनेपर रुधिर निकलनेसे पक्षाघात होता है। अंडकोष और वंक्षण के बीचमें विटप नामक मर्म है। इसके विद्ध होनेसे नपुंसकता होती है॥

हाथों के मर्म के नाम।

इतिसक्थ्नोस्तथाबाह्वोर्मणिबंधोऽत्रगुल्फवत्
कूर्परं जानुवत्कौण्यं तयोर्विटपवत्पुनः।
कक्षाक्षमध्ये कक्षाधृक् कुणित्वं तत्र जायते॥

अर्थ–इसतरह हरएक पांवमें ग्यारह मर्म होते हैं। तथा इसीके अनुसार हाथोंमें भी ग्यारह मर्म होते है। परन्तु बाहुके मर्मोंमें कुछ विशेषता है जैसे बाहुके मर्ममें गुल्फ के सदृश मणिबंध होता है। जानुके मर्मके सदृश कूर्पर है इन दोनोंके विद्ध होनेसे हाथ और हाथकी अंगुलियों में कुब्जता अर्थात् टोंटापन आजाता है। कक्षा और अक्षके बीच में विटपके सदृश कक्षाधृक मर्म होता है इसके विद्ध होने पर हाथों में टोटापन आजाता है।

स्थूलांत्र बद्धके नाम।

स्थूलांत्रबद्धः सद्योघ्नो विड्वातवमनो गुदः

अर्थ–अंत्र दो प्रकार के होते हैं, एक स्थूलांत्र, दूसरा सूक्ष्मांत्र। इनमें से स्थूलांत्र में गुद नामक मर्म है। इसी से विष्ठा और अधोवायु निकलते हैं इसमें चोट लगने से बहुत ही जल्दी मृत्यु होजाती है।

बस्त्यारूप मर्म।

मूत्राशयो धनुर्वक्रो वस्तिरक्तपलमांसगः॥
एकाधोवदनो मध्ये कट्याः सद्यो निहंत्यसून्।
ऋतेऽश्मरीव्रणाद्विद्धस्तत्राप्युभयतश्च सः॥
मूत्रस्राव्येकतो भिन्नो व्रणो रोहेच्च यत्नतः।
देहामपक्वस्थानानां मध्ये सर्वसिराश्रयः॥
नाभिः सोऽपि हि सद्योघ्नो-

अर्थ–कटि के मध्यभाग में एक मूत्राशय नामक मर्म है, यह धनुषके समान टेढा होता है, इसमें रक्त और मांस कम होता है, इसका एक मात्र मुख नीचे को होताहै इसमें अश्मरी निकालने के घावको छोडकर अन्य प्रकार से विद्ध होने पर रोगी तत्काल मरजाता है। वस्तिमर्म के दोनों ओर विद्ध होने से मूत्र निकलने लगता है, और एक ओर विद्ध होने पर व्रण बडी कठिनता से भरता है। देहके भीतर आमाशय और पक्वाशय के बीचमें संपूर्ण सिराओं के आश्रित एक नाभि नामक मर्म है, यह भी तत्काल मृत्युकारक है।

हृदयके मर्म।

द्वारमामाशयस्य च।
सत्त्वादिधाम हृदयं स्तनोरः कोष्ठमध्यगम॥

अर्थ–हृदय नामक मर्म भी शीघ्र प्राण नाशक है, यह आमाशयका मुखस्वरूपहै, इसीमें होकर अन्नपान आमाशय में जाता है। यह सत्वरजतम तथा इन्द्रियों के विज्ञान का धाम है तथा स्तन, वक्षःस्थल और कोष्ठ के बीचमें है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तनों के मर्म ।

स्तनरोहितमूलाख्ये द्वयंगुले स्तनयोर्वदेत् ।
ऊर्ध्वाधोऽस्रकफापूर्णकोष्ठोनश्येत्तयोःक्रमात्

अर्थ–दोनों स्तनों के उपरवाले भाग में दो अंगुल पर स्तनरोहित नाम दो मर्म हैं और स्तनों के नीचे दो अंगुल पर स्तनमूल नामक दो मर्म हैं इन मर्मों के विद्ध होने पर मनुष्य का कोष्ठ रक्त और कफ से भरजाता है तथा वह धीरे २ मरजाता है ।

वक्षःस्थल के पार्श्वमें मर्म ।

अपस्तंभावुरः पार्श्वे नाडयावनिलवाहिनी ।
रक्तेनपूर्णकोष्ठोऽत्र श्वासात्कासाच्च नश्यति

अर्थ–वक्षःस्थल के दोनों पार्श्व में अपस्तंभनामक दो मर्म होते हैं, इन नाडी मर्मों में होकर वायु आती जाती है इनके विद्ध होने से रोगी के कोष्ठ में रक्त भरजाता है और खांसी, श्वास के रोग से मरजाता है ।

पीठ के बांसे के मर्म ।

पृष्ठवंशोरसोर्मध्ये तयोरेव च पार्श्वयोः ।
अधोंऽसकूटयोर्विद्यात्पालापाख्यमर्मणी ॥
तयोः कोष्ठोऽसृजा पूर्णे नश्येद्यात्तेन पूयताम् ।

अर्थ– पीठके बांसे और छातीके मध्यभागमें दोनों ओर कंधों के अधोभाग में अपालाप नामक दो मर्म हैं, इनके विद्ध होने से कोष्ठ रुधिर से भरजाता है और उसी रुधिर की राध हो जाने पर रोगी मरजाता है, जबतक राध नहीं बनती है तबतक रोगी जीता रहता है यह भावार्थ है ।

पीठकेबांसेके पार्श्वमेंमर्म ।

पार्श्वयोः पृष्ठवंशस्य श्रोणीकर्णौ प्रतिष्ठिते ॥
वंशाश्रिते स्फिजोरूर्ध्वे कटीकतरुणे स्मृते ।
तत्र रक्तक्षयात्पांडुर्हीनरूपो विनश्यति १८ ॥

अर्थ–पीठके बांसेके दोनों ओर श्रोणी और कर्ण नामक दो मर्म हैं। और पृष्ठवंश में आश्रित नितंबके ऊपरवाले भागमें अर्थात् कूल्होंमें कटीक और तरुण नामक दो मर्म हैं। इनके विद्ध होनेसे रक्तके स्रावके कारण रोगी पांडुवर्ण और हीनरूप होकर मरजाता है ।

कटि वा पार्श्व के मर्म ।

पृष्ठवंशं हयुभयतो यौ संधी कटिपार्श्वयोः ।
जघनस्य बहिर्भागे मर्मणी तौ कुकुंदरौ १९ ॥
चेष्टाहानिरधःकाये स्पर्शज्ञानं च तद्वयधात् ।

अर्थ–पीठके बांसेके दोनों ओर जघन स्थानके बाहरके भागमें कटि और पार्श्व की संधियों में कुकुन्दर नामक दो मर्म हैं । उन के विद्ध होनेपर नीचेका अंग चेष्टाहीन होजाता है अर्थात् नीचेके अंगमें चलने फिरने, पसारने और सकोडने की शक्ति जाती रहती है और स्पर्श का ज्ञान भी जाता रहता है ॥

नितंबमर्म ॥

पार्श्वोतरनिबद्धौ यावुपरि श्रोणिकर्णयोः २०
आश्रयच्छादनौ तौ तु नितंबौ तरुणास्थिगौ ।
अधः शरीरे शोफोऽत्र दौर्बल्यं मरणं ततः ॥

अर्थ–दोनों पसलियों में निबद्ध तरुण नामक अस्थिमें स्थित तथा श्रोणी और कर्ण नामक मर्मोंके ऊपर मूत्रादि के समस्त वस्ति आदि आधार में नितंब नामक दो मर्म हैं । इन मर्मोंके विद्ध होने पर नीचेके अंगोंमें प्रथम सूजन होती है फिर निर्बलता होकर रोगी मरजाता है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पार्श्वसंधिमर्म ॥

पार्श्वांतरनिबद्धौ च मध्ये जघनपार्श्वयोः । तिर्यगूर्ध्वं च निर्दिष्टौ पार्श्वसंधी तयोर्व्यधात् रक्तपूरितकोष्ठस्य शरीरांतरसंभवः ।

अर्थ–दोनों पार्श्वमें निबद्ध, जघन और पार्श्वके मध्य भागमें तिरछे और ऊंचेकी ओर दो संधिनामक मर्म है। इनमें आघात होने से रोगीके कोष्ठमें रक्त भरजाता है। इस से उसकी मृत्यु होजाती है ॥

बृहतीमर्म ॥

स्तनमूलार्जवे भागे पृष्ठवंशाश्रये सिरे २३ ॥ बृहत्यौ तत्र विद्धस्य मरणं रक्तसंक्षयात् ।

अर्थ–पृष्ठवंश के दोनों ओर प्रतिबद्ध, स्तनमूल के ऋजुभागमें अर्थात् ठीक सीधी ओर बृहती नामक दो मर्म हैं। इनमें चोट लगनेसे रक्तस्राव होनेलगे तो मृत्यु होजाती है।

अंसफलकामर्म ॥

बाहुमूलाभिसंबद्धे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ॥ अंसयोः फलके बाहुस्यापशोषौ तयोर्व्यधात्

अर्थ–पृष्ठवंश के दोनों ओर बाहुके मूल में संबंधित अंसफलक नामक दो मर्म हैं इनमें चोट लगने से भुजाओं में सुप्तता तथा शोष उत्पन्न होता है ॥

अंसमर्म ॥

ग्रीवामुभयतः स्नाय्वी ग्रीवाबाहुशिरोंतरे ॥ स्कंधांसपीठसंबन्धावंसौ बाहुक्रियाहरौ ।

अर्थ–ग्रीवाके दोनों ओर ग्रीवा, बाहु और सिरके बीचमें कंधे और अंसपीठ के बांधने के निमित्त अंस नामक दो मर्म हैं। इनमें चोट लगने से फैलाना सकोडना हाथों का व्यापार नष्ट होजाता है ॥

नील और मन्या मर्म ।

कण्ठनाडीमुभयतः सिरा हनुसमाश्रिताः ॥ चतस्रस्तासु नीले द्वे मन्ये द्वे मर्मणी स्मृते । स्वरप्रणाशवैकृत्यं रसाज्ञानं च तद्वधे२७॥

अर्थ–कंठनाडी के दोनों ओर हनुके आश्रित चार मर्म हैं, इनमें से दोका नाम नीला और दो का नाम मन्या है, अर्थात् हर एक पार्श्व में एक नीला और एक मन्या है इनमें चोट लगने से स्वरनाश, स्वरविकृति और रस का स्वाद नष्ट हो जाता है।

मातृका मर्म ।

कण्ठनाडीमुभयतो जिह्वानासागताः सिराः। पृथक् चतस्रस्ताःसद्यो घ्नंत्यसून्मातृकाह्वया

अर्थ–कंठनाडी के दोनों ओर जिह्वा और नासिका के आश्रित चार चार सिरा हैं इनमें मातृका नामक मर्म हैं, इनमें चोट लगने से तत्काल प्राणों का नाश हो जाता है।

कृकाटिका मर्म ।

कृकाटिके शिरोग्रीवासंधी तत्र चलं शिरः ।

अर्थ–मस्तक और ग्रीवासे संधिभाग में दोनों ओर को कृकाटिका नामक दो मर्म हैं, इनमें आघात पहुंचने से शिरःकंप रोग की उत्पत्ति होती है।

विधुरका मर्म ।

अधस्तात्कर्णयोर्निम्ने विधुरे श्रुतिहारिणी ॥

अर्थ–दोनों कानों के पीछे के भाग में नीचे की ओर विधुरनामक दो निम्न मर्म हैं, इनमें आघात लगने से कानोंकी श्रवणशक्ति जाती रहती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फणमर्म।

फणावुभयतो घ्राणमार्गे श्रोत्रपथानुगौ।
अंतर्गलस्थितौ वेधाद्वंधविज्ञानहारिणौ ॥

अर्थ–गले के भीतर नासिका के मार्गके दोनों ओर कानों के मार्ग के अनुवर्ती फण नामक दो मर्म हैं इनमें चोट लगने से घ्राणशक्ति अर्थात् सूंघने की शक्ति जाती रहती है।

अपांग मर्म।

नेत्रयोर्बाह्यतोऽपांगौ भ्रुवो पुच्छांतयोरधः।
तथोपरि भ्रुवोर्निम्नावावर्तावांध्यमेषु तु ३१

अर्थ–दोनों नेत्रों के बाहर की ओर भृकुटियों की पुच्छी के नीचे अपांग नामक दो मर्म हैं। तथा ऊपर की ओर निम्नरूप में अवस्थित आवर्त संज्ञक दो मर्म हैं, इन में आघात पहुंचने से देखने की शक्ति जाती रहती हैं।

शंखमर्म।

अनुकर्णं ललाटांते शंखौ सद्योविनाशनौ।

अर्थ–भृकुटियों की पुच्छी के ऊपर ललाट के अंत में कानों के पास शंख नामक दो मर्म हैं, इनमें चोट लगने से मनुष्य शीघ्र मर जाता है।

उत्क्षेप और स्थपनी मर्म

केशांते शंखयो रूर्ध्वमुत्क्षेपौ स्थपनी पुनः ॥
भ्रुवोर्मध्ये त्रयेऽप्यत्र शल्ये जीवेदनुद्धृते।
स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यति तूद्धृते॥

अर्थ–केशों के अंत में कनपटियों के ऊपर उत्क्षेपनामक दो मर्म हैं। और दोनों भृकुटियों के मध्य में स्थपनी नामक मर्म है इनमें शल्य लगने से जो शल्य न निकाला जाय अथवा पककर अपने आप निकल आवे तो रोगी जी सकता है परन्तु शल्य निकाला जाय तो तत्काल मरजाता है।

शृंगाटक मर्म।

जिह्वाक्षिनासिकाश्रोत्रखचतुष्टयसंगमे।
तालुन्यास्यानि चत्वारि स्रोतसां तेषु मर्मसु
विद्धः शृंगाटकाख्येषु सद्यस्त्यजति जीवितम्

अर्थ–तालु के पास जिस स्थान पर जीभ, आंख, नाक और कान इन चारों के स्रोत मिलते हैं वहां शृंगाटक नामक मर्म है, मर्म में आघात पहुंचने से तत्काल प्राण नष्ट होजाते हैं।

सीमंत मर्म।

कपाले संधयः पंच सीमंतास्तिर्यगूर्ध्वगाः ॥
भ्रमोन्मादतमोनाशैस्तेषु विद्धेषु नश्यति।

अर्थ–सिर में जहां पांच कपालों की संधि है वहां तिरछा ऊपर की ओर सीमन्त नामक मर्म है, उस के विद्ध होने पर भ्रम उन्माद और विस्मृति रोग उत्पन्न होकर रोगी मर जाता है।

अधिप मर्म।

आंतरो मस्तकस्योर्ध्वं सिरासंधिसमागमः ॥
रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून।

अर्थ–सिरके भीतर ऊपर के भाग में जहां सब सिरा और संधियों का समागम है वहां केशों का आवर्त है जिसे भौंरी कहते हैं, वहां अधिप नामक मर्म है, यह सब मर्मों का अधिपति है क्योंकि सब मर्म इसके आश्रित हैं। इस मर्म के विद्ध होने पर तत्काल प्राणों का नाश होजाता है।

मर्मों के सामान्य लक्षण।

विषमं स्पंदनं यत्र पीड्यते रुक् च मर्मतत्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–देह के जिस भाग में विषम स्फुरण होता है, और जहां पीडन करने से विषम वेदना होती है उसे मर्म कहते हैं।

मांस प्रभेद से मर्म के लक्षण।

मांसास्थिस्नायुधमनीसिरासंधिसमागमः। स्यान्मर्मेति च तेनाऽत्र सुतरां जीवितंस्थितम्

अर्थ–मांस, अस्थि, स्नायु, धमनी, सिरा और संधि जहां इन सब का समागम होता है, वही मर्मस्थल है। जैसे जहां मांस की पेशियों का समागम है वह मांस मर्म है, इसी तरह अस्थियों के समागम को अस्थि मर्म, स्नायुओं के समागम को स्नायुमर्म, धमनियों के समागमको धमनीमर्म सिराओं के समागमको सिरामर्म और संधियों के समागमको संधिमर्म कहते हैं। इस लिये इन मर्म स्थलों में प्राणोंकी स्थिति है।

मर्मोंकी अनेकता।

बाहुल्येन तु निर्देशः षोढैवं मर्मकल्पना। प्राणायतनसामान्यादैक्यं वा मर्मणां मतम्॥

अर्थ–जो १०७ मर्म कहेगये है वेही प्रधान हैं। तथा जो मांस अस्थि आदि के समागममें जो मर्मोंकी कल्पना की गई है उससे अनेक प्रकारके मर्म हैं परन्तु इन सब की कल्पना छः प्रकारके ही अंतर्गत है। परन्तु जीवनके अधिष्ठानरूप होनेसे मर्मोंकी एकही प्रकार की कल्पना होती है॥

मांसगत मर्मों की संख्या।

मांसजानि दशैवाख्यतलहृत्स्तनरोहिताः।

अर्थ–मांसमर्म ये है। यथा इंद्रबस्ति चार, तलहृद चार, और स्तनरोहित दो, ये दस मांसगत मर्म हैं।

अस्थिगतआठ मर्म।

शंखौ कटीकतरुणे नितंबावंसयोः फले ४० अस्थ्यष्टौ-

अर्थ–अस्थिगत ८ मर्मों के नाम ये हैं, यथा– दो शंखमर्म, दो कटीक तरुण, दो नितंब और दो अंसफलक।

स्नायुमर्मों के नाम।

स्नावमर्माणि त्रयोविंशतिराणयः। चत्वारः कूर्चशिरोऽपांगक्षिप्रोत्क्षेपांसवस्तयः॥

अर्थ–स्नायुगत २३ मर्मों के नाम ये हैं, यथा-- चार आणिमर्म (हर एक ऊरु में एक एक, प्रत्येक बाहु में एक एक), चार कूर्चमर्म (दो हाथों में, और दो पांवों में), चार कूर्चसिर (पांव में दो और हाथ में दो), दो अपांग मर्म, चार क्षिप्रसंज्ञक (अंगूठे और उंगली के बीच में), दो उत्क्षेप (केशांत में कनपटी से ऊपर), दो अंससंज्ञक (कंधे और अंस पीठ के संबंधित), एक वस्तिसंज्ञक (मूत्राधार)।

धमनीगत मर्मों के नाम।

गुदोपस्तंभविधुरशृंगाटानि नवादिशेत्। मर्माणि धमनीस्थानि-

अर्थ–धमनीगत नौ मर्म होते हैं, यथा एक गुदमर्म (स्थूल अंत्र से बद्ध), दो अपस्तंभ नामक वक्षःस्थल के पार्श्व और अग्निवाहिनी नाडी में स्थित), दो विधुर नामक (कानके नीचे दबे हुए), चार शृंगाटक (जीभ, आंख नाक, और कानों के मिलनेकी जगह पर)।

सिराश्रित मर्मों के नाम।

सप्तत्रिंशत्सिराश्रयाः॥ ४२॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृहत्यौ मातृकानीले मन्ये कक्षाधरौ फणौ।
विटपे हृदयं नाभिः पार्श्वसंधी स्तनांतरे ४३॥
अपालापौ स्थपन्यूर्ध्वश्चतस्रो लोहितानि च

अर्थ–सिरागत सैंतीस मर्मों के ये नाम हैं, यथा–दो वृहती, आठ मातृका, दो नीला, दो मन्या, दो कक्षाधर, दो फण, दो विटप, एक हृदय, एक नाभि, दो पार्श्वसंधि, दो स्तनरोहित, दो अपालाप, एक स्थपनी, चार ऊर्वी, और चार लोहिताक्ष।

संधि मर्मों के नाम।

संधौ विंशतिरावर्तौ मणिबंधौ कुकुन्दरौ॥
सीमंताः कूर्परौ गुल्फौ कृकाटयौ जानुनी पतिः

अर्थ–संधिगत बीस मर्मों के ये नाम हैं, यथा--दो आवर्त, दो मणिबंध, दो कुकुंदर, पांच सीमंत, दो कूर्पर, दो गुल्फ, दो कृकाटिका, दो जानु और एक अधिपति। ये सब मिलाकर एकसौ सात मर्म हैं।

अन्य आचार्यों का मत।

मांससर्म गुदोऽन्येषां स्नायौ कक्षाधरौ तथा
विटपौ विदुराख्ये च शृंगाटानि सिरासु तु।
अपस्तंभावपांगौ च धमनीस्थं न तै स्मृतम्॥

अर्थ–किसी किसी आचार्यका मत कुछ मर्मों के विषय में अन्यथा है वे कहते हैं कि गुदमर्म मांसाश्रित है धमनी नहीं है। कक्षाधर और विटप ये मर्म स्नायु गत हैं। सिरागत मर्म नहीं हैं। इसी तरह विधुर मर्म स्नायुमर्म है, धमनीगत मर्म नहीं है शृंगाटक सिरामर्म है धमनीमर्म नहीं हैं। इसी तरह अपस्तंभ और अपांग मर्म भी स्नायुमर्म हैं धमनी मर्म नहीं हैं।

मांसादि मर्मोंका व्यधलक्षण।

विद्धेऽजस्रमसृक्स्रावो मांसधावनवत्तनुः।
पांडुत्वमिंद्रियाज्ञानं मरणं चाशु मांसजे ४७॥

अर्थ–मांस मर्मके विद्ध होने पर मांस के धोवन के जलके सदृश पतला पतला रुधिर निरंतर निकलता है, शरीर में पीलापन आजाता है, नेत्रादि इन्द्रियों के विषयका ज्ञान जाता रहता है फिर शीघ्र मृत्यु होजाती है।

अस्थिमर्म विद्ध के लक्षण।

मज्जान्वितोऽच्छो विच्छिन्नस्रावो-
रुक्चास्थिमर्मणि।

अर्थ–शंखादिक अस्थि मर्मों के विद्ध होने पर निरंतर मज्जामिश्रित पतला रक्त बहता रहता है और वेदना भी होती है।

स्नायुमर्म विद्ध के लक्षण।

आयामाक्षेपकस्तंभा स्नावजेऽभ्यधिकं रुजा
यानस्थानासनाशक्तिर्वैकल्यमथवांतकः।

अर्थ–स्नायुमर्म के विद्ध होने पर आयाम (शरीर का लंबा होना), आक्षेप, स्तंभ और अत्यन्त वेदना होती है। चलने, बैठने, और खडे होने की शक्ति जाती रहती है शरीर में विकलता होती है अथवा मृत्यु भी होजाती है।

धमनीगत मर्मविद्ध के लक्षण।

रक्तं सशब्दफेनोष्णं धमनीस्थे विचेतसः॥

अर्थ–अपस्तंभादिक धमनीगत मर्मों के विद्ध होने पर मूर्च्छा आजाती है और शब्द करता हुआ झागदार रक्त निकलता है।

सिरामर्म विद्धके लक्षण।

सिरामर्मव्यधे सांद्रमजस्रं बहवसृक्स्रवेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्क्षयात्तृड्भ्रमश्वासमोहहिध्माभिरंतकः ॥

अर्थ-वृहत्यादिक सिरा मर्मों के विद्ध होने पर निरंतर गाढा गाढा रुधिर बडी अधिकता से निकलता है, तथा रक्त के क्षय के कारण तृषा, भ्रम, श्वास, मोह और हिचकी आदि उपद्रव उपस्थित होकर मृत्यु के भी कारण हो जाते हैं।

संधिमर्म विद्धके लक्षण।

वस्तु शूकैरिवाकीर्णं रूढे च कुणिखंजता।
बलचेष्टाक्षयः शोथः पर्वशोफश्च संधिजे ॥

अर्थ-आवर्तादि संधिगत मर्मों के विद्ध होने पर वह स्थान शूक धान्य के तुषों की तरह आवृत हो जाता है, तथा मर्म का घाव भरजाने पर भी टोंटापन और लंगडापन आजाता है। बल और व्यापार की क्षीणता, सूखापन और जोडों में सूजन उत्पन्न होजाती है।

जीवित नाश में कालका नियम।

नाभिरंशाधिपापानहृच्छृंगाटकबस्तयः।
मातृकाः सद्यो निघ्नंत्येकाद्वाविंशतिः सप्ताहः परमस्तेषां कालः कालस्य कर्षणे।

अर्थ-नाभि एक, शंख दो, अधिप एक, अपान एक, हृदय एक, शृंगाटक चार, बस्ती एक और मातृका आठ ये १९ मर्म ऐसे हैं जिनसे तत्काल मृत्यु होजाती है। बहुत खिंचजाय तो ऐसे मर्माहत रोगी के मरने का अधिक से अधिक काल एक सप्ताह है।

अपस्तंभादि मर्मोंका काल।

त्रयस्त्रिंशदपस्तंभतलहृत्पार्श्वसंधयः ५३ ॥
कटीतरुणसीमंतस्तनमूलेंद्रबस्तयः।
क्षिप्रापालापबृहतीनितंबस्तनरोहिताः ५४ ॥
कालांतरप्राणहरा मासमासार्धजीविताः।
उत्क्षेपौ स्थपनी त्रीणि विशल्यघ्नानि-
तत्र हि ॥ ५५ ॥
वायुर्मांसवसामज्जमस्तुलुंगानि शोषयन्।
शल्यापाये विनिर्गच्छन् श्वासात्कासाच्च-
हृत्यसून् ॥ ५६ ॥

अर्थ-दो अपस्तंभ, चार तलहृत, दो पार्श्वसंधि, दो कटीक और तरुण, पांचसीमंत, दो स्तनमूल, चार इंद्रबस्ति, चार क्षिप्र, दो अपलाप, दो बृहती, दो नितंब, दो स्तनरोहित, ये तेतीस मर्म ऐसे हैं कि इनके विद्ध होनेपर कालांतर में मारते है अर्थात् इनसे मरनेमें महिना पन्द्रह दिन लगजाता है। दो उत्क्षेप, एक स्थपनी ये तीन मर्म ऐसे हैं कि इनमें से शल्य निकालते ही मृत्यु होजाती है इसका यह कारण है कि शल्य के निकलने पर वायु बाहर निकलकर मांस, वसा, मज्जा और मस्तिष्क इनका शोषण करती हुई श्वास और खांसी आदि उपद्रवों को उत्पन्न करके प्राणों का संहार करदेती है।

अंगवैकल्यकारक मर्म।

फणावपांगौ विधुरौ नीले मन्ये कुकाटिके।
अंसांसफलकावर्तावटपोर्वक्किकुंदराः ५७ ॥
सजानुलोहिताख्याऽऽणि कक्षाधृक्कूर्च
कूर्पराः
वैकल्यमिति चत्वारि चत्वारिंशच्च कुर्वते ॥
हरंति तान्यपि प्राणान् कदाचिदभिघाततः।

अर्थ-दो फण, दो अपांग, दो विधुर दो नीला, दो मन्या, दो कुकाटिका, दोअंस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दो अंसफलक, दो आवर्त, दो विटप, चार ऊर्ध्वी, दो कुकुन्दर, दो जानु, चार लोहित, चार आणि, दो कक्षाधर, चार कूर्च, और दो कूर्पर ये ४४ मर्म ऐसे हैं कि इनके विद्ध होने पर देह में विकलता होती है, कभी कभी ऐसा भी होता है कि इनमें चोट लगने से प्राणों का भी नाश होजाता है।

वेदनाकारक मर्म।

अष्टौ कूर्चशिरोगुल्फमणिबंधा रुजाकराः॥

अर्थ-चार कूर्चशिरा, दो गुल्फ, दो मणिबंध ये आठ मर्म ऐसे हैं कि इनसे प्राणों का नाश तो होता नहीं है परन्तु वेदना अधिक होती है।

मर्मोंका यथापथ प्रमाण।

तेषां विटपकक्षाधृगूर्ध्वैः कूर्चैसिरांसि च।
द्वादशांगुलमानानि द्व्यंगुले मणिबंधने ६०॥
गुल्फौ च स्तनमूले च द्व्यंगुलौ जानुकूर्परौ।

अर्थ-इन सब मर्मों में विटप, कक्षाधर ऊर्ध्वी और कूर्चसिरा ये बारह मर्म परिमाण में एक एक अंगुल के होते हैं। दो मणिबंध, दो गुल्फ और दो स्तनमूल इनमें से हरएक का प्रमाण दो अंगुल होता है, तथा दो जानु और दो कूर्पर इनका प्रमाण तीन तीन अंगुलका होता है।

अन्य मर्मोंका प्रमाण।

अपानवस्तिहृन्नाभिनीलाः सीमंतमातृकाः॥
कूर्चशृंगाटमन्याश्च त्रिंशदेकेन वर्जिताः।
आत्मपाणितलोन्मानाः-
शेषाण्यर्धांगुलं बदेत्॥ ६२॥
पञ्चाशत्षट् च मर्माणि तिलब्रीहिसमान्यपि।
इष्टानि मर्माण्यन्येषाम्-

अर्थ-गुदमर्म, वास्ति, तलहृत, नाभि, नीला, सीमंत, मातृका, कूर्च, शृंगाटक और मन्या ये उन्तीस मर्म अपनी हथेली के प्रमाण के होते हैं तथा शेष छप्पन मर्म आधे आधे अंगुल के होते हैं। तथा कुछ आचार्यों का यह मत है कि इन ५६ मर्मों का प्रमाण तिल वा ब्रीहि के प्रमाण के समान होता है।

मर्माभिघात में मरणविधि।

चतुर्धोक्ताः सिरास्तु याः॥ ६३॥
तर्पयंति वपुः कृत्स्नं ता मर्माण्याश्रितास्ततः।
तत्क्षतात्क्षतजात्यर्थप्रवृतेर्धातुसंक्षये ६४॥
वृद्धश्चलो रुजस्तीव्राः प्रतनोति समीरयन्।
तेजस्तदुद्धृतं धत्ते तृष्णाशोषमदभ्रमान् ६५
स्विद्यत्स्रस्तक्लथतनुं हरत्येनं ततोऽसकः।

अर्थ-वातपित्त और कफ से जुष्ट, शुद्धरक्त वाहिनी जो चार प्रकार की सातसौ शिराओं का ऊपर वर्णन किया गया है, वे सब शरीर को तृप्तकरती हैं, और मर्मों के आश्रित हैं। इन मर्माश्रित सिराओं में घाव होने से रक्त की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है फिर रक्त के अत्यन्त निकालने के कारण मांसादिक धातुओं की परंपरामें भी क्रम से क्षीणता होती है, तदनंतर धातु के क्षय होने पर कुपित और चलायमान वायु अत्यन्त तीव्र और दुःखदायी अनेक तरह के शूल उत्पन्न करती है। और पित्त को उदीर्ण करके तृषा, शोष, मद, भ्रम आदि उपद्रवों को करती है। तदनंतर उस मनुष्य के पसीने आने लगते हैं, शरीर शिथिल पडजाता है और वह मर भी जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मर्माभिघात में चिकित्सा।

वर्धयेत्संधितो गात्रं मर्मण्यभिहते द्रुतम् ६६
छेदनात्संधिदेशस्य संकुचंति सिरा ह्यतः।
जीवितं प्राणिनां तत्र रक्ते तिष्ठति तिष्ठति ॥

अर्थ—मर्म के आहत होने पर शरीर का संधिस्थान शीघ्रतापूर्वक छेदन करदे इसका कारण यह है कि संधि के छेदन से सिरा सुकड जाती हैं। सिराओं के संकुचित होने से रक्त का निकलना वन्द हो-जाता है और रुधिर का बहना वन्द होने से जीवन स्थित रहता है।

अमर्मविद्ध का जीवन।

सुविक्षतोऽप्यतो जीवेदमर्माणि न मर्मणि।
प्राणघातिनि जीवत्तु कश्चिद्वैद्यगुणेन चेत् ॥
असम्यग्भिघाताच्च सोऽपि वैकल्यमश्नुते
तस्मात् क्षीरविषाग्न्यादीन्यत्नान्मर्मसुवर्जयेत्।

अर्थ—उक्त हेतु से मर्मस्थान में आहत मनुष्य कदापि नहीं जीता है, और मर्म रहित स्थान में सौ सौ वार विद्ध होने पर भी नहीं मरता है। मर्म दो तरह के कहे गये हैं एक प्राणघाती और दूसरे वैकल्यकारक। इन में से प्राणघाती मर्मों में कुशा का अग्रभाग छिदजाने से भी मनुष्य नहीं जी सकता है। यदि प्राणघाती मर्म में विद्ध हुआ मनुष्य अपने पुण्यप्रभाव और आयु के शेष होने तथा वैद्य के गुण से बच भी जाता है। तो उसके देह में सदा विकलता रहती है, इसलिये मर्म पर क्षार, विष, अग्निकर्म और आदि शब्द से भल्लातक रस, कपिकच्छू और शूकादि का प्रयोग कदापि न करे। इसमें विशेष सावधानी रखनी चाहिये।

मर्माहतमें सावधानी।

मर्माभिघातः स्वल्पोपिप्रायशोवाधतेतराम्।
रोगा मर्माश्रितास्तद्वत्प्रकांता यत्नतोऽपि च" ॥ ७० ॥

अर्थ—मर्माभिघात अत्यन्त अल्प होने पर भी प्रायः अत्यन्त वेदना करता है तथा अन्य संपूर्ण रोग जो मर्मस्थान पर होते हैं वे भी वडा कष्ट देते हैं। इसलिये मर्माभिघातकी वडी सावधानी से रक्षा करनी चाहिये तथा उस स्थान पर हुए रोगों का भी प्रतीकार वडे यत्न से करे।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां शारीर स्थाने चतुर्थोऽध्यायः।

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो विकृतिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से विकृतिविज्ञानीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

मृत्यका चिन्हरिष्ट।

"पुष्पं फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदयः।
यथा भविष्यतो लिंगं रिष्टं मृत्योस्तथाध्रुवम्।

अर्थ—जैसे होनेवाले फल से पहिले पुष्प होता है, होनेवाली अग्नि से पहिले धूआं होता है और होनेवाली वृष्टि से पहिले बादल होता है वैसेही होनेवाली मृत्यु से पहिले रिष्ट होता है। अर्थात पुष्प, धूआं और बादल को देखकर जैसे फल, अग्नि और वर्षा का अनुमान होता है, वैसही रिष्ट देखकर मृत्यु का निश्चय होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रिष्टारिष्टका ज्ञान ।

अरिष्टं नास्ति मरणं दृष्टरिष्टं च जीवितम् ॥
अरिष्टे रिष्टविज्ञानं न च रिष्टेऽप्यनैपुणात् २

अर्थ–रिष्ट के बिना मृत्यु नहीं होती है और रिष्ट उपस्थित होने पर जीवन भी नहीं है । वट वृक्षादि में फूल के विना भी फल की उत्पत्ति देखी जाती है, पर यह कहीं कहीं होता है, इस का विचार सब जगह नहीं है ।

रिष्टारिष्ट का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण अज्ञ लोगों को अरिष्ट में रिष्ट का ज्ञान और रिष्ट में भी रिष्टका ज्ञान नहीं होता है ।

कृष्णात्रेय का मत ।

केचित्तु तद्विधेत्याहुः स्थाय्यस्थायिविभेदतः
दोषाणामपि बाहुल्याद्रिष्टाभासः समुद्भवेत्
स दोषाणां शमे शाम्येत्स्थाय्यवश्यं तु मृत्यवे

अर्थ–कृष्णात्रेय के मत से रिष्ट दो प्रकार का होता है, एक स्थायी, दूसरा अस्थायी । दोषों की अधिकता के कारण रिष्टका आभास होता है और जब दोष शांत हो जाते हैं तब रिष्टाभास भी शांत हो जाता है । परन्तु स्थायी अरिष्ट निश्चय मृत्यु का सूचक होता है ।

रिष्ट के लक्षण ।

रूपेंद्रियस्वरच्छाया प्रतिच्छायाक्रियादिषु ॥
अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतेष्वनिमित्ततः ।
विकृतिर्या समासेन रिष्टं तदिति लक्षयेत् ॥

अर्थ–रूप, इन्द्रिय, स्वर, छाया, प्रतिच्छाया, शारीरक, मानसिक और वाचिक व्यापार, तथा अन्य प्राकृतिक भावों में सहसा विकृति उत्पन्न होना । ये सब रिष्ट के लक्षण संक्षेप से कहे गये हैं ।

केशादि में रिष्टके चिन्ह ।

केशरोमनिरभ्यंगं यस्याऽभ्यक्तमिवेक्ष्यते ।

अर्थ–जिसके केश और रोम विना तेल लगाये भी तेल लगाये से प्रतीत होते हैं वह मृत्यु से ग्रसित समझना चाहिये ।

इन्द्रियविकृति में रिष्ट चिन्ह ।

यस्यात्यर्थं चले नेत्रे स्तब्धांतर्गतानिर्गते ॥
जिह्मे विस्तृतसंक्षिप्ते संक्षिप्तविनतभ्रुणी ।
उद्भ्रांतदर्शने हीनदर्शने नकुलोपमे ॥ ७ ॥
कपोताभे अलाताभे श्रुते लुलितपक्ष्मणी ।
नासिकाऽत्यर्थविवृता संवृता पिटिकाचिता
उच्छ्वना स्फुटिता म्लाना-

अर्थ- जिसके नेत्र इधर उधर को अत्यन्त चलायमान होते हैं, जिसके नेत्र स्तब्ध (ठहरे) हो जाते हैं, जिसके नेत्र भीतर को गढ जाते हैं वा बाहर निकल पडते हैं, जिसके नेत्र कुटिल, लंबे, वा संकुचित होजाते हैं, जिसकी भृकुटी नीची होकर सुकड जाती हैं, जिसकी दृष्टि विभ्रांत होजाती है, वा नष्ट होजाती है अथवा जिसकी दृष्टि नकुल के सदृश कपोत के सदृश लाल रंग की हो जाती है अथवा आंसू बहने लगते है जिसके पक्ष्म वातोद्धत की तरह शृंखलारहित होजाते है । जिसकी नाक बहुत फटजाती है, वा सुकड जाती है । फुंसियोंसे व्याप्त हो जाती है अथवा सूजन, फटन और म्लानता से युक्त हो जाती है । वह मरणाभिमुख होता है ।

ओष्ठादिमें रिष्टचिन्ह ।

यस्यौष्ठो यात्यधोऽधरः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊर्ध्वे द्वितीयः स्यातां वा पक्वजंबूनिभावुभौ ॥
दंताःसशर्कराःश्यावास्ताम्राःपुष्पितपंकिताः
सहसैव पतेयुर्वा जिह्वा जिह्मा विसर्पिणी ॥
श्वेता शुष्का गुरुःश्यावा लिप्ता सुप्ता
सकंटका ।

अर्थ—जिसका नीचेका ओष्ठ नीचेको चला जाता है और ऊपर का ओष्ठ ऊपर को चला जाता है और दोनों पके हुए जामन के सदृश रंगवाले होजांय। जिसके दांत शर्करायुक्त, श्यामवर्ण वा ताम्रवर्ण, पुष्पित (श्वेत चिन्हों से युक्त) और पंकित (कीचसे लिपे हुए के सदृश) होजांय वा विना ही कारण गिर पडें। जिसकी जिह्वा टेढी पडजाय, अति चंचल, श्वेतवर्ण, शुष्क, भारी, श्यामवर्ण, लिप्त, रसज्ञान से रहित हो जाय वा जीभपर कांटे पड जांय तो उस मनुष्य को मृत्युसे स्वीकृत समझना चाहिये।

शिरआदिमें रिष्टचिन्ह ।

शिरः शिरोधरा स्कंधं पृष्ठं वा भारमात्मनः ११
हनू वा पिंडमास्यस्थं शक्नुवंति न यस्य च ।
यस्यानिमित्तमंगानि गुरूण्यतिलघूनि वा ॥
त्रिदोषाद्विना यस्य स्रोभ्यो रक्तं प्रवर्तते ।
अस्थिकं मेहनं यस्य वृषणावतिनिःसृतौ ॥
अतोऽन्यथा वा यस्य स्यात्सर्वे ते
कालचोदिताः ।

अर्थ—जिसकी ग्रीवा सिरके बोझको न संभाल सकती हो। जिसकी पीठ अपने वा ग्रीवा के बोझको न संभाल सकती हो, जिस की हनु मुखमें रक्खे हुए ग्रासको धारण करने में असमर्थ होगई हो। जिसके अंग बिना कारण ही कभी बहुत भारी और कभी बहुत हलके होजाते हों, जिसके रोमकूपों वा छिद्रोंसे विष प्रयोगके विनाही रुधिर निकलता हो। जिसकी पुंजननेन्द्रिय ऊपरको उठ गई हो और अंडकोष नीचेको लटक पडे हों अथवा इससे विपरीत पुंजननेन्द्रिय नीचे को लटक पडी हो और अंडकोष सुकड गये हों ऐसे मनुष्यको कालप्रेरित अथवा आसन्नमृत्यु समझना चाहिये ॥

ललाटादिमें रिष्टचिन्ह ।

यस्याऽपूर्वाः सिरालेखा बालेंद्वाकृतयोऽपि
वा ॥ १४ ॥
ललाटे बस्तिशीर्षे वा षण्मासान्न स जीवति ।
पद्मिनीपत्रवक्त्रोयं शरीरे यस्य देहिनः १५ ॥
प्लवतेप्लवमानस्य षण्मासं तस्य जीवितम् ।

अर्थ—जिसके ललाट पर अथवा बस्तिके ऊपरवाले भाग पर अपूर्व (जो पहिले न हुई हो (नसोंकी रेखा अथवा द्वितीयाके चन्द्रमा के सदृश टेढी आकृतिवाली नसोंकी रेखा दिखाई देने लगी हों। वह छः महिने में मृत्यु का ग्रास होजाता है अथवा स्नान करने के समय देह पर डाला हुआ पानीऐसे लुढक जाय जैसे कमल के पत्तेपर से लुढक जाता है वह भी छःमहिने ही में मरजाता है।

सिरादिमें रिष्टचिन्ह ।

हरिताभाः सिरा यस्य रोमकूपाश्च संवृताः
सोऽम्लाभिलाषी पुरुषः पित्तान्मरणमश्नुते

अर्थ—जिसकी सिरा हरे रंगकी होजाती हैं और रोमकूप रुकजाते हैं। वह मनुष्य खटाई खानेकी इच्छा करता हुआ पित्त रोगसे मृत्यु को प्राप्त होता है ॥

मूर्धादिमें रिष्टचिन्ह ।

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्ध्नि मुखेऽपि वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सस्नेहं मूर्ध्नि धूमो वा मासांतं तस्य जीवितम्
मूर्ध्नि मुखेवा कुर्वंति सीमंतावर्तकाः नवाः ॥
मृत्यु स्वस्थस्य षड्रात्रान्निरात्रादातुरस्य तु।
जिह्वा श्यावा मुखं पूति सव्यमक्षि निमज्जति
काका वा मूर्ध्नि लीयंते यस्य तं परिवर्जयेत्।

अर्थ–जिसके सिर वा मुखमें गोबरके सदृश चिकना चिकना चूर्ण दिखाई दे अथवा मस्तकमें धूंआंसा उठता दिखाई दे। वह एक महिने जीता है। जिसके सिर वा भृकुटियों में सहसा सीमंत वा रोमावर्त उत्पन्न होजाय वह यदि स्वस्थ हो तो छः दिनमें और रोगी हो तो तीन दिनमें मर जाता है। जिसकी जीभ श्यामवर्ण, मुख दुर्गंधयुक्त, और बांई आंख भीतरको गढ जाय अथवा जिस के मस्तक पर कौए आदि पक्षी बैठ जांय वह त्यागने के योग्य होता है ॥

वक्षःस्थलमें रिष्टचिन्ह।

यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं शुष्यत्युरो भृशम्
आर्द्रेषु सर्वगात्रेषु सोऽर्धमासं न जीवति।

अर्थ–स्नातानुलिप्त (पहिले स्नान किया हुआ फिर चंदनादि लेपन किया हुआ) मनुष्यका संपूर्ण अंग गीला होने पर भी वक्षःस्थल बहुत शुष्क होजाय वह पन्द्रह दिन भी नहीं जीता है।

आकस्मिक रिष्टचिन्ह।

अकस्मात्युगपद्वात्रे वर्णौ प्राकृतवैकृतौ ॥ २१
तथैवोपचयग्लानिरौक्ष्यस्नेहादि मृत्यवे।
यस्य स्फुटेयुरंगुल्यो नाकृष्टा न स जीवति ॥
क्षवकासादिषु तथा यस्याऽपूर्वो ध्वनिर्भवेत्।
ह्रस्वो दीर्घोऽति वोच्छ्वासः पूति सुरभिरेव-
वा ॥ २३ ॥
आप्लुतानाप्लुते काये यस्य गंधोऽतिमानुषः।
मलक्लमव्रणादौ वा वर्षांतं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ–जिसके देह में एक साथही प्राकृत वर्ण (गौरादि) और वैकृत वर्ण (नीलं आदि) होजांय तौ मृत्युके सूचक हैं। जिसके देहमें स्थूलता और कृशता, ग्लानि और हर्ष, रूखापन और चिकनाई एकसाथ उत्पन्न हो तो मृत्यु की सूचना होती है। जिसकी उंगली खेंचने पर भी न चटकें वह मरजाता है। जिसकी छींक और खांसी में अपूर्व शब्द निकलता हो, जिसका श्वास अतिदीर्घ वा अति ह्रस्व चलता हो अथवा जिसके श्वास में दुर्गन्धि वा सुगंधि आती हो। जिसके देह में स्नान करने परभी और विना किये भी अमानवीय गंध आती हो, अथवा जिसके मल, वस्त्र और व्रणादि में अमानुषी गंध आती हो वह एक वर्ष के भीतर मरजाता है।

यूकादिके चिन्ह।

भजंतेऽत्यंगसौरस्याद्यं यूकामक्षिकादयः।
त्यजंति वाऽतिवैरस्यात्सोऽपि वर्षं न-
जीवति ॥ २५ ॥
सततोष्मसु गात्रेषु शैत्यं यस्योपलक्ष्यते।
शीतेषु भृशमौष्ण्यं वा स्वेदः स्तंभोऽप्यहेतुकः

अर्थ–देहकी अत्यन्त सुरसता के कारण जिसकी देह में जूं वा मक्खियां बैठती हों अथवा अत्यन्त विरसता के कारण देह पर न बैठती हों तो वह एक वर्ष के भीतर मरजाता है। जिसके निरंतर उष्णदेह में ठंडापन, और ठंडे देहमें उष्णता होजाय अथवा बिनाही कारण एक साथ पसीने आने लगें अथवा पसीनों का आना बन्द होजाय तो ऐसा मनुष्य भी वर्ष दिनसे अधिक नहीं जीता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पिटिकादियुक्त के चिन्ह।

यो जातशीतपिटिकः शीतांगो वा विदह्यते।
उष्णद्वेषी च शीतार्तः स प्रेताधिपगोचरः २७
उरस्यूष्मा भवेद्यस्य जठरे चाऽतिशीतता-
भिन्न पुरीषं तृष्णा च यथा प्रेतस्तथैव सः २८
मूत्र पुरीष निष्ठ्यूतं शुक्लं वाप्सु निमज्जति।
निष्ठ्यूतं बहुवर्णं वा यस्य मासात्स नश्यति।

अर्थ--जिसके देह में कफसे उत्पन्न फुंसियां होगई हो, अथवा ठंडा शरीर होने पर भी विदाह हो, जो शीतार्त होकरभी गरमी से द्वेष रखता हो, वह मनुष्य मृत्यु की दृष्टिगत, होजाता है। जिसका वक्षः स्थल गरम, जठर ठंडा, विष्ठा फटा हुआ, और तृषा अधिक हो वह मुर्दे के समान होता है। जिसका मूत्र, पुरीष, थूक और वीर्य, जल में डूब जाय वा जिसका थूक अनेक रंगों से युक्त हो वह एक महिने के भीतर मर जाता है।

विपरीत चिन्होंका वर्णन॥

घनीभूतमिवाकाशं माकाशमिव यो घनम्।
अमूर्तमिव मूर्तं च मूर्तं चाऽमूर्तवत्स्थितम्।
तेजस्यं तेजस्तद्वच्छुक्लं कृष्णमसच्च सत्।
अनेत्र रोग दृचंद्रं च बहुरूपमलांछनम् ॥३१।
आमद्र क्षांसि गंधर्वान् प्रेतानन्यांश्चतद्विधान्।
रूपं व्याकृति तद्वच्च यः पश्यति स नश्यति।

अर्थ--जो मनुष्य अकाश के सदृश पदार्थों को घनीभूत अर्थात् ठोस और पृथ्वी की तरह ठोस पदार्थोंको आकाश की तरह देखता है। जो बातादि मूर्तरहित पदार्थोंको मूर्तिमान् और अग्नि आदि मूर्तिमान् पदार्थों को मूर्तरहित देखता है। जो तेजवान् को निस्तेज और निस्तेज को तेजवान्, कालेको गोरा और गोरेको काला, सतको असत् और असत्को सत देखता है वह आसन्न मृत्यु होता है। जिसकी आंखोंमें किसी प्रकारका रोग न होनेपर भी चन्द्रमा को बहुरूप वा लांछनादिरहित (निष्कलंक) देखता है वह भी मरजाता है। जो आमत अवस्था में भी राक्षस, गंधर्व, प्रेत, पिशाचादिक को देखता है वा ऐसेही विकृतरूप अन्य प्राणिमों को देखता है वह मृतःप्राय होता है।

अरुंधतियों का चिन्ह।

सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुंधतीम्।
ध्रुवमाकाशगंगां वा स न पश्यति तां समाम्।

अर्थ--जो मनुष्य सप्त ऋषियों के मंडल के पास वाली अरुंधती को नहीं देख सकता है, तथा जो ध्रुव और आकाशगंगा को नहीं देखता है, उसकी मृत्यु उसी वर्ष में होजाती है।

श्रोत्रेन्द्रिय में विकृति के चिन्ह।

मेघतो यौघनिर्घोषवीणापणववेणुजान्।
शृणोत्यन्यांश्च यः शब्दानसतो न सतीऽपि वा ॥ ३५ ॥
निष्पीड्य कर्णौ शृणुयान्न यो घुकघुकस्वनम्

अर्थ--जो मनुष्य मेघकी गर्जन, पानी की घडघडाहट, अर्थात् जल की तरंगों का शब्द, वीणा, पणव, वंशी का शब्द वा वैसे ही अन्य शब्द को नहीं सुन सकता है अथवा मेघकी गर्जना आदि उपरोक्त शब्दों के न होने पर भी वैसे शब्द सुने अथवा कानों में उंगली देने पर घुक घुक शब्द सुनाई न देता हो, उसकी मृत्यु समीप समझनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गंधादि विपर्यय चिन्ह ।

तद्गुणं वरसस्पर्शान् मन्यते यो विपर्ययात् ॥
सर्वशो वा न यो यश्च दीप्तगंधं न जिघ्रति ।
विधिना यस्य दोषाय स्वास्थ्यायाविधिना रसाः ॥ ३६ ॥
यः पांसुनेव कीर्णांगो यॉऽगघातं न वेत्ति वा ।
अन्तरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधिपूर्वकम् ३७
ज्ञानात्यतींद्रियं यश्च तेषां मरणमादिशेत् ।

अर्थ—जो ऊपर कहे हुए मेघादि के शब्द की तरह गंध, रस और स्पर्श के विपरीत भाव को मानता है अर्थात् सुगंध को दुर्गंध और दुर्गंध को सुगंध । खट्टे को मीठा और मीठे को खट्टा । कोमल को कठोर और कठोर को कोमल, ठंडे को गरम और गरम को ठंडा, चिकने को रूखा और रूखे को चिकना मानता है अथवा जिसको तत्काल बुझे हुए दीपक की गंध मालूम नहीं होती है। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रयुक्त किये हुए रसों से रोग की वृद्धि हो और विधिरहित प्रयुक्त किये हुए रसों से आरोग्य हो, जिसको अपना अंग धूल से लिपटा हुआ मालूम होता है, जो शरीर पर लगी हुई चोट को नहीं जानता है । इसी तरह जो बिना उग्रतप के वा बिना विधिपूर्वक योग के इन्द्रियों से अगम्य योगादि विषयों को जानता है । ये सब मृत्यु के समीप होते हैं ।

स्वाविकृति का निरूपण ।

हीनो दीनः स्वरोऽव्यक्तो यस्य स्याद्गद्गदोऽपि वा ॥ ३८ ॥
सहसा यो विमुखेद्वा विवक्षुर्न स जीवति ।
स्वरस्य दुर्बलीभावंहानिं च बलवर्णयोः ३९
रोगवृद्धिमयुक्त्या च दृष्ट्वा मरणमादिशेत् ।
अस्वरं भाषमाणं प्राप्तं मरणमात्मनः ४०
श्रोतारं चास्य शब्दस्य दूरतः परिवर्जयेत् ।

अर्थ—जिस मनुष्य का स्वर बिना कारण ही हीन, दीन, अव्यक्त (अस्पष्ट) और गद्गद (घरघराहट युक्त) होजाय, जो बोलने की इच्छा करे और बोला न जाय वह मृत्यु के निकट होता है । जिसका स्वर दुर्बल होजाय, बल और वर्ण क्षीण होजाय और बिना कारण ही जिसको रोग की वृद्धि हो उसे मृतःप्राय समझना चाहिये । जो मनुष्य अपने मुख से ऐसे अपशब्द कहता हो कि मैं अब मरूंगा, मैं अब न बचूंगा तथा रोगी के ऐसे शब्दों को सुननेवालों को भी वैद्य दूर से त्याग देवे ।

छायाश्रय रिष्ट के चिन्ह ।

संस्थानेन प्रमाणेन वर्णेन प्रभयाऽपि वा ।
छाया विवर्तते यस्य स्वप्नेऽपि प्रेत एव सः ।

अर्थ—जिस मनुष्य की छाया संस्थान प्रमाण, वर्ण वा प्रभा से विकृत भाव में दिखाई दे तो उसे स्वप्न में भी मरा हुआ समझना चाहिये । संस्थान से जैसे जो शरीर का संस्थान विषम हो और छाया सम दिखाई दे वा सम संस्थान में विषम दिखाई दे तो रिष्ट जानना चाहिये । प्रमाण से-यथा जो लंबे शरीर की छाया छोटी और छोटी की बडी दिखाई दे तो रिष्ट जानना चाहिये । वर्ण से-जैसे नाभसी छाया आग्नेयी और आग्नेयी छाया नाभसी दिखाई दे । प्रभा से-- जैसे जैसी प्रभा हो उसके विपरीत दिखाई देतो मरा हुआ समझना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया की द्विरूपता।

आतपादर्शतोयादौ या संस्थानप्रमाणतः४२
छायांऽगात्संभवत्युक्ता प्रतिच्छायेति सा पुनः
वर्णप्रभाश्रया या तु सा छायैव शरीरगा४३

अर्थ—जो छाया शरीर के संस्थान और परिमाण रूप से घूप, दर्पण, जल वा घृतादि में पडती है। उसको प्रतिबिंब कहते हैं। प्रतिबिंब वर्ण और प्रभाके आश्रित नहीं होता है, परन्तु जो वर्ण और प्रभा के आश्रित है और केवल शरीरगत है अर्थात् जो शरीर के प्रतिबिंब की तरह जलादि में नहीं पडती है वही देह की छाया होती है। प्रतिच्छाया और छाया में यही भेद है।

प्रतिच्छाया का वर्णन।

भवेदस्यप्रतिच्छाया छिन्ना भिन्नाऽधिकाऽकुला
विशिरा द्विशिरा जिह्मा विकृता यदि
वाऽन्यथा ४४
तं समासायुषं विद्यान्न चेल्लक्ष्यनिमित्तजा।
प्रतिच्छायामयी यस्य न चाक्ष्णीक्ष्येत कन्यका

अर्थ—जिसकी प्रतिच्छाया छिन्न (दो भागों में विभक्त), भिन्न (छिद्रयुक्त), प्रमाण से बडी, चंचल, सिर रहित, दो सिरवाली, कुटिल, विरूप वा अन्यथा दिखाई दे तो समझलेना चाहिये। कि इस मनुष्य की आयु समाप्त हो चुकी है और जो किसी प्रत्यक्ष कारण से उक्त भावों को प्राप्त हुई हो तो कुछ विचार नहीं है। अथवा जिसकी आंखों में प्रतिच्छायामयी कन्यका दिखाई न दे तो उसे भी गतायु समझना चाहिये। आंख की पुतली में देखने वाले का जो प्रतिबिंब पडता है उसे प्रतिच्छायामयी कन्यका, वा प्रतिविंबकुमारिका वा अक्षिपुत्तलिका कहते हैं।

पंचमहाभूतों की छाया।

खादीनां पंच पंचानां छाया विविधलक्षणाः
नाभसी निर्मलाऽऽनीला सस्नेहा सप्रभैव च।
वाताद्रजोऽरुणा श्यावा भस्मरूक्षा हतप्रभा।
विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्ताभा दर्शनप्रिया।
शुद्धवैदूर्यविमला सुस्निग्धा तोयजा सुखा।
स्थिरास्निग्धाघनाशुद्धाश्यामाश्वेताचपार्थिवी
वायवी रोगमरणक्लेशायन्याः सुखोदयाः।

अर्थ—आकाशादि पंचमहाभूतों की विविध लक्षणों से युक्त पांच प्रकार की छाया होती है। इन में से आकाशीयछाया निर्मल कुछ नीलवर्ण, सस्नेह और प्रभायुक्त होती है। वायुसंबंधी छाया रजोयुक्त, अरुण, श्याव, भस्म के सदृश, रूक्ष और हतप्रभाहोती है। अग्नेयी छाया विशुद्ध रक्त वर्ण, दीप्ताभा और देखने में प्रिय होती है जलसंबंधी छाया शुद्ध वैदूर्यमणि के समान निर्मल, स्निग्ध और सुखोत्पादक होती है पार्थिवी छाया स्थिर, स्निग्ध घन, शुद्ध, श्याम वा श्वेत वर्ण होती है॥

इन में से वायवी छाया रोग मरण और क्लेशोत्पादक होती हैं, और अन्य छाया सुखकारक होती हैं॥

प्रभा के सात भेद।

प्रभोक्ता तैजसी सर्वा सा तु सप्तविधा स्मृता ४९
रक्ता पीता सिता श्यामा हरिता पांडुरा सिता
तासां याः स्युर्विकासिन्यः स्निग्धाश्च
विमलाश्च याः ५०
ताःशुभा मलिना रूक्षाः संक्षिप्ताश्चाशुखोदयाः।

अर्थ—ग्रंथकारोंने प्रभा को तैजसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बताया है और कहते हैं कि सात प्रकार की होती है, जैसे रक्ता, पीता, श्वेता, श्यामा, हरिता, पांडुरा और श्यामा। इन से जो प्रभा विकासी, विमल और स्निग्ध है वे शुभफलदायक हैं। जो मलीन, रूक्ष और संक्षिप्त हैं वे अशुभसूचकहैं॥

छाया और प्रभा का अंतर।

वर्णमाक्रामति छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ५१
आसन्ने लक्ष्यते छाया विकृष्टे भा प्रकाशते।

अर्थ–छाया रक्तादि वर्ण का आक्रमण करती है अर्थात् वर्ण का पराभव करके ठहरती है और प्रभा वर्ण को ही प्रकाशित करती है। छाया पास से दिखाई देती है और प्रभा की झलक दूरसे ही दिखाई देती है॥

छाया और प्रभाकी व्याप्ति।

नाऽच्छायो नाऽप्रभः कश्चिद्विशेषा-
दिच्छयति तु ५२
नृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायासमाश्रयाः

अर्थ–कोई भी मनुष्य छायारहित वा प्रभाहीन नहीं होता है। छाया और प्रभा के देहसंबंधी विशेष भाव मनुष्यों के शुभाशुभकी सूचना करते हैं।

अन्य रिष्ट चिन्ह।

निकषन्निव यः पादौ च्युतांसः परिसर्पति ५३
हीयते बलतः शश्वद्योऽश्नमश्नन् हितं बहु।
योऽल्पाशी बहुविण्मूत्रो बहुशो वा
चाल्पमूत्रविट् ५४
योल्पाशी वा कफेनार्तो दीर्घं श्वसिति चेष्टते
दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं निःश्वस्य
परिताम्यति ५५
ह्रस्वं च यः प्रश्वसिति व्याबिद्धं क्ष्वेडते भृशम्
शिरोविक्षिपतेकृच्छ्राद्योऽवसित्वा प्रपाणिकौ
यो ललाटात्स्रुतस्वेदः स्रथसंधानबंधनः।
उत्थाप्यमान समुह्येद्यो बली दुर्बलोपि वा॥
उत्तान एव स्वपिति यः पादौ विकरोति च।
शयनासनकुड्यादौ योऽसदेव जिघृक्षति॥
अहास्यहासी संमुह्यन् यो लेढि दशनच्छदौ।
उत्तरोष्ठं परिलिहन् फूत्कारांश्च करोति यः
यमभि द्रवति च्छाया कृष्णा पीताऽरुणा-
ऽपि वा।
भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्रद्विषश्च ये ६०॥
वशगाः सर्व एवैते विज्ञेयाः समवर्तिनः।

अर्थ–जिस मनुष्य के कंधे शिथिल हो गये हों और पांवों को घिसटाकर चलताहो जो निरंतर हितकारी बहुतसा भोजन करती हुआभी बलहीन होता चलजाता है। जो थोडा खाकर बहुत मलमूत्र त्यागता है वा बहुत खाकर थोडा मलमूत्र त्यागता है जो अल्प भोजन करनेवाला वा कफसे पीडित होकर लंबे श्वास लेता है वा चेष्टा करता है, जो पहिले दीर्घ श्वास लेकर फिर छोटे श्वास लेता हुआ दुखित होता है। जो छोटे श्वास लेता हो और नाडी उसकी विषमभाव में स्पन्दन करती हो जो प्रपाणिक अर्थात् हाथ के पश्चात् भाग को टेढा करके कठिनता से सिरको चलायमान करता है। जिसके ललाट से पसीने निकलते हों वा संधियों के बंधन शिथिल हो गये हों। जो बलवान् वा दुर्बल उठने बैठने में मोह को प्राप्त हो, जो सदा चित्त शयन करै, वा सोते समय पावों को विकृत भाव में स्थापित करै। जो शय्या आसन वा भीतमें अविद्यमान वस्तुओं के ग्रहण की इच्छा करता है, जो अहास्य विषयों में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हंसता हुआ मूर्च्छा को प्राप्त होता है जो ऊपर वा नीचे के ओष्ठों को चाटता हुआ फुंकारसी मारता है। काली पीली वा लाल रंग की छाया जिसके पीछे पीछे चले। जो मनुष्य वैद्य, औषध, अन्नपान, गुरु और मित्रसे द्वेष करता है, उसको यमराज का वशीभूत समझना चाहिये।

ग्रीवादि में शीतल स्वेद।

ग्रीवाललाटहृदयं यस्य स्विद्यति शीतलम्॥
उष्णोऽपरः प्रदेशश्च शरणं तस्य देवता।

अर्थ–जिसके ग्रीवा, ललाट और हृदय में *शीतल होने पर भी पसीना आवै तथा* अन्य अंग उष्ण हों उसकी रक्षा देवताही कर सकते हैं, वैद्यकी सामर्थ्य नहीं है।

अल्प दृष्ट्यादि

योऽणुज्योतिरनेकाग्रो दुश्छायो दुर्मनाःसदा
बलिं बलिभृतो यस्य प्रणीतं नोपभुंजते।
निर्निमित्तं चयो मेधां शोभामुपचयं श्रियम्॥
प्राप्नोत्यतो वा विभ्रंशं स प्राप्नोति यमक्षयम्।

अर्थ–जिस मनुष्यकी ज्योति वा तेज अल्प हो, जिसका चित्त व्याकुल रहता हो, जिसकी कांति निंदित हो, जो सदा शोकाक्रांत रहता है, जिसके दिये हुए बलिको काकादिक न खाते हों, जो बिना कारणही मेधा, शोभा, शरीरपुष्टि, धन वा राज्यको प्राप्त कर लेवे वा इनसे भ्रष्ट होजाय, ऐसा मनुष्य आसन्न मृत्यु होता है।

स्वभाव में विपरीतता।

गुणदोषमयी यस्य स्वस्थस्य व्याधितस्य वा
यात्यन्यथात्वं प्रकृतिः षण्मासान्न स जीवति।

अर्थ-रोगी वा निरोगी जिस मनुष्यकी सत्वादि गुणमयी वा वातादि दोषमयी प्रकृति विपरीत भावको प्राप्त होजाय वह छः महिने से अधिक नहीं जी सकता है।

भक्त्यादिके निवर्तन चिन्ह।

भक्तिःशीलं स्मृतिस्त्यागो बुद्धिर्बलमहेतुकम्
षडेतानि निवर्तंते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः।
मत्तवद्गतिवाक्कंपमोहा मासान्मरिष्यतः॥६६॥

अर्थ–जो मनुष्य छः महिने में मरनेवाला है उसकी भक्ति, शीलता, स्मृति, त्याग और बल ये छः बिना ही कारण जाते रहते हैं तथा जिसकी मृत्यु एक महिने के भीतर होगी उसकी मतवालों की सी गति, कंपन और मोह ये होंगे।

कचोत्पाटनादि चिन्ह॥

नश्यत्यजानन् षडहात्केशलुंचनवेदनाम्।
न याति यस्य चाहारः कंठं कंठामयादृते॥६७॥
प्रेष्याःप्रतीपतां यांति प्रेताकृतिरुदीर्यते।
यस्य निद्रा भवेन्नित्यं नैव वा न स जीवति॥
वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणौ भृशम्।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराज्यं गमिष्यतः॥
यैःपुरा रमते भावैररतिस्तैर्न जीवति।

अर्थ–वह मनुष्य छः दिनमें मरजाता है जिसको बाल नोचने की पीडा मालूम नहीं होती है तथा जिसके बिना कंठरोग के ही आहार कंठमें नहीं जाता है। जिसके भृत्य प्रतिकूल होजाते हैं, जो प्रेत की सी आकृति का दिखाई देने लगताहै। जिसको नींद नहीं आती है अथवा कदाचित् ही आती है वह नहीं जीता है। जिस मनुष्यके आंसुओं के स्रोत रुक जाते हैं वह नहीं जीता है। जिसके पांवोंमें निष्कारण पसीने आते हैं। जिसके नेत्र चंचल हो जाते हैं वे सब यमलोक की ओर प्रस्थान करते हैं। जो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धन जन बांधवादि पहिले आनन्दोत्पादक थे वही जिसको बुरे लगने लगते हैं उसे मृतः प्राय समझना चाहिये ॥

सहसा विकारके चिन्ह ॥

सहसा जायते यस्य विकारः सर्वलक्षणः ॥
निवर्तते वा सहसा सहसा स विनश्यति ।

अर्थ–जिस मनुष्यके विना कारण ही संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त ज्वरादि व्याधि उत्पन्न हो जाती है अथवा ऐसीही सर्वलक्षणों से युक्त व्याधि सहसा शांत हो जाती हैं वह शीघ्र ही मरजाता है ॥

ज्वरविकारमें चिन्ह ॥

ज्वरो निहंति बलवान् गंभीरो दैर्घरात्रिकः
स प्रलापभ्रमश्वासक्षीणं शूनं हतानलम् ।
अक्षामं सक्तवचनं रक्ताक्षं हृदि शूलिनम् ॥
संशुष्ककासःपूर्वान्हे थोऽपरान्हेऽपि वा भवेत्
बलमांसविहीनस्य श्लेष्मकाससमान्वितः ॥

अर्थ–जो ज्वर बलवान् हेतुओंसे संयुक्त होता है । मज्जादि धातुके आश्रित होता है। वा जो दीर्घकालानुबंधी होता है तथा जो प्रलाप, भ्रम और श्वाससे युक्त होता है वह ज्वर, धातुक्षीण, सूजनयुक्त, मन्दाग्नियुक्त, निर्बल, सक्तवचन, लालनेत्रवाले तथा हृत्शूलरोगी को मार डालता है । जिस ज्वरमें दुपहर से पहिले वा दुपहरसे पीछे सूखी खांसी उठती हो वा कफ और खांसी से संयुक्त ज्वर हो वह बल और मांसहीन रोगी को मार डालता है ॥

रक्तपित्तकी विकृतिके चिन्ह ॥

रक्तपित्ते भृशं रक्तं कृष्णमिंद्रधनुःप्रभम् ।
ताम्रहारिद्रहरितं रूपं रक्तं प्रदर्शयेत् ॥७४॥
रोमकूपप्रविसृतं कंठास्यहृदये सृजत् ।
घाससो रंजनं पूति वेगवच्चातिभूरि च ॥७५॥
वृद्धं पांडुज्वरच्छर्दिकासशोफातिसारिणम् ।

अर्थ–रक्तपित्त रोगमें जो रक्त अत्यन्त लाल, काला वा इन्द्रधनुषके समान अर्थात् अनेक रंगोंसे युक्त हो, तथा रक्तपित्त रोगी को दिखाई देनेवाली वस्तुओं में तांबे वा हलदी का सा रंग देखे अथवा हरा वा लाल देखै । अथवा रक्तपित्त का रक्त सब रोमकूपों से निकलने लगे अथवा कंठ, मुख वा हृदय में एक साथ लिप्त होजाय । रक्तपित्तका रक्त यदि वस्त्रमें लगजाता है तो धोनेसे उसका दाग नहीं जाता है और जो दुर्गंधियुक्त बडे वेगसे और बहुत निकलता है तो ऐसा रोगी मर जाता है, वृद्ध रक्तपित्त पांडुरोग, ज्वर, वमन, खांसी, सूजन और अतिसार वाले रोगी को मार डालता है ।

श्वासकासमें चिन्ह ॥

कासश्वासौज्वरच्छर्दितृष्णातीसारशोफिनम्

अर्थ–खांसी और श्वास ये रोग ज्वर, वमन, तृषा, अतीसार सूजन इन रोगोंवाले मनुष्यको मार डालते हैं ॥

राजयक्ष्माके चिन्ह ॥

यक्ष्मा पार्श्वरुजाहृद्रक्तच्छर्दिसतापिनम् ।

अर्थ–राजयक्ष्मामें पसलीका दर्द आनाह, रक्तकीवमन, और कंधोंमें जलन होतो रोगी मरजाता है ।

वमनसे मृत्युका लक्षण ॥

छर्दिर्वेगवती मूत्रशकृद्गंधिः सचंद्रिका ।७७।
साम्लविट्पूयरुक्कासश्वासवत्यनुबंधिणी ।

अर्थ–जो वमन बडे वेगसे होती है और जिसमें मूत्र वा विष्टाकी सी दुर्गंध आती है तथा जो मोरपुच्छ की तरह अनेक वर्णोंसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युक्त होती है तथा जिसमें रुधिर सहित विष्ठा राध, वेदना, श्वास, खांसी ये उपद्रव हों और दीर्घ कालानुवर्तिनी होतो वह रोगी को मार डालती है।

तृषासे मृत्युके चिन्ह।

तृष्णान्यरोगक्षपितं बहिर्जिह्वं विचेतनम्।

अर्थ–तृषारोगमें यदि रोगी अन्य रोगों से पीडित हो। बाहरको अपनी जीभ निकालता हो, अचेत होतो ऐसा रोगी मरजाता है।

मदात्यय चिन्ह॥

मदात्ययोऽतिशीतार्तं क्षीणं तैलप्रभाननम्।

अर्थ–मदात्ययरोग में जो रोगी अत्यन्त शीतार्त, क्षीण और तेलके समान दिखाई दे तो उसकी मृत्यु निकटवर्ती होती है॥

अर्श चिन्ह॥

अर्शांसि पाणिपद्माभिगुदमुष्कास्यशोफिनम्।
हृत्पार्श्वांगरुजार्दितंपायुपाकज्वरातुरम्।

अर्थ–अर्शरोग में यदि हाथ, पांव, नाभि, गुदा, अंडकोष और मुख इनमें सूजन हो, तथा हृदय, पसली वा अन्य अंगों में वेदना हो, और वमन, गुदापाक और ज्वर ये उपद्रव हों तो रोगी मरजाता है।

अतिसार के विकार।

अतीसारो यकृत्पिंडमांसधावनमेचकैः। ८०।
तुल्यस्तैलघृतक्षीरदधिमज्जवसासवैः।
मस्तुलुंगमधीपूयवेसवारांबुमाक्षिकैः। ८१।
अतिरक्तासितस्निग्धपूत्यच्छघनवेदनः।
कर्बुरःप्रस्रवन्धातून्निष्पुरीषोऽथवाऽतिविट्॥
तंतुमान् मक्षिकाकांतो राजीमांश्चंद्रकैर्युतः।
शीर्णपायुबलिं मुक्तनालं पर्वास्थिशूलिनम्।
स्रस्तपायुं बलक्षीणमन्नमेवोपवेशयेत्।
सतृट् श्वासज्वरच्छर्दिदाहामाहप्रवाहिकः।

अर्थ–अतीसाररोग में यदि मल यकृत पिंड, मांस के धोवन के जलवत् वा नीलवर्ण हो, अथवा तेल घृत, दूध, दही, मज्जा, वसा, आसव, मस्तुलुंग (माथे की चर्बी) पूय, मांसजल वा शहत के सदृश हो, अथवा अत्यन्त लाल, अत्यन्त काला, अत्यन्त चिकना, दुर्गंधियुक्त, निर्मल, गाढा और वेदनायुक्त हो। अथवा रक्तमांसादि धातुओं के अधिकतर निकलने से अनेक वर्णयुक्त, पुरीषरहित वा अतिपुरीषयुक्त हो, जिसमें तंतु हों, मक्खियां बैठती हों, जिसमें रेखासी हों, मोरपुच्छकी चन्द्रका की तरह अनेक वर्ण हों, जिसकी गुदाकी अवलि शीर्ण और गुदनाडी का बंधन ढीला होजाय तथा पर्व और अस्थियों की सी वेदना होने लगे। जिसकी गुदा अपने स्थान से हटगई हो, बलक्षीण होगया हो, अपक्व अन्न बाहर निकल आवै तथा तृषा, श्वास, ज्वर, वमन, दाह, आनाह और प्रवाहिका ये उपद्रव भी विद्यमान हों तो वह रोगी मरजाता है।

अश्मरी के चिन्ह।

अश्मरी शूनवृषणं बद्धमूत्रं रुजार्दितम्।

अर्थ–पथरी के रोग में यदि अंडकोष में सूजन, बद्धमूत्रता और वेदना हो तो रोगी मरजाता है।

प्रमेह चिन्ह।

मेहस्तृड्दाहपिटिकामांसकोथातिसरिणम्।

अर्थ–प्रमेह में यदि तृषा, दाह, पिटिका मांस में सडाहट और अतीसार ये उपद्रव हों तो रोगी मरजाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पिटिका के चिन्ह ।

पिटिका मर्म हृत्पृष्ठस्तनांस गुद मूर्धगाः । पर्वपाद करस्था वा मेदोत्साहं प्रमेहिणम् । सर्वे च मांससंकोचदाहतृष्णामदज्वरैः । विसर्पमर्मसंरोधहिध्माश्वासभ्रमक्लमैः ८७॥

अर्थ–प्रमेह रोग में यदि फुंसियां मर्म स्थान, हृदय, पीठ, स्तन, कंधा, गुदा, सिर संधि, पांव और हाथ में होजांय तो मेदोत्साहवाला प्रमेहरोगी मरजाता है । तथा पिडिकारोगं में यदि मांससंकोच, दाह, तृषा, मत्तता, ज्वर, विसर्प, मर्मरोध, हिचकी श्वास, भ्रम और क्लांति ये उपद्रव हों तो रोगी मरजाता है ।

गुल्म चिन्ह ।

गुल्मः पृथुपरीणाहो घनः कूर्म इवोन्नतः । सिरानद्धोज्वरच्छर्दिर्हिध्माध्मानरुजान्वितः कासपीनसहृल्लासश्वासार्तीसारशोफवान् ।

अर्थ–यदि गुल्म मोटी जडवाला, कठोर और कछुए की पीठकी तरह ऊंचाहो, सिराओं से बंधा हुआ हो, तथा ज्वर, वमन, हिचकी, अफरा और वेदना से युक्त हो, तथा खांसी, पीनस, हृल्लास (जी मिचलाना) श्वास, अतीसार और सूजन से युक्त होतो रोगी को मार डालता है ।

उदरव्याधि निमित्त रिष्ट ।

विण्मूत्रसंग्रहश्वासशोफहिध्माज्वरभ्रमैः ८९ मूर्छाछर्त्यतिसारैश्च जठरं हंति दुर्बलम् । शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ९० विरेचनहृतानाहमानह्यंतं पुनः पुनः ।

अर्थ–जठररोगमें यदि मल और मूत्रकी रुकावट हो, श्वास, सूजन, हिचकी, ज्वर, भ्रम, मूर्छा, वमन, और अतिसार ये उपद्रव उपस्थित हों तो दुर्बल रोगी मरजाता है । तथा रोगी के नेत्रों पर सूजन हो, पुंजनेन्द्रिय टेढी पडगई हो, त्वचा क्लेदयुक्त और पतली होगई हो, जिसका अफरा विरेचनसे दूर हुआ हो वा जिसको वार वार अफरा होता हो वह रोगी मरजाता है ।

पांडुरोग के रिष्ट ।

पांडुरोगः श्वयथुमान् पीताक्षिनखदर्शनम् ॥

अर्थ–पांडुरोगमें यदि सूजन, हो और नेत्र तथा नख पीले पडगये हों तो रोगी मरजाता है । तथा उसको सब वस्तु पीली दीखें तो भी मरजाता है ।

शोफ के रिष्ट ।

तंद्रा दाहारुचिच्छर्दिर्मूर्छाध्मानातिसारवान् । अनेकोपद्रवयुतः पादाभ्यां प्रसृतो नरम् ९२ नारीं शोफो मुखाद्धंति कुक्षिगुह्यादुभावपि । राजीचितःस्रवंश्छर्दिज्वरश्वासातिसारिणम्

अर्थ–तंद्रा, दाह, अरुचि, वमन, मूर्छा अफरा और अतिसार तथा अन्य अनेक उपद्रवों से युक्त सूजनवाला रोगी नहीं बचता है । तथा पुरुष के सूजन पांवों से चढती हुई ऊपरको जाय और स्त्री के सूजन मुख से नीचे के अंगों पर आवे तो इनके जीने में संशय है । अथवा स्त्री पुरुष दोनों के कुक्षि वा गुह्यदेश में सूजन उत्पन्न हो तो दोनों के लिये अच्छा नहीं है । जिस सूजन में रेखा पडती हों वा झरने लगगई हो और वमन, ज्वर, श्वास और अतिसार ये उपद्रव उपस्थित हों तो भी रोगी को आसन्नमृत्यु समझना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्वरादिकों को मृत्युका हेतुत्व।

ज्वरातिसारौ शोफांते श्वयथुर्घातयोः क्षये।
दुर्बलस्य विशेषेण जायंतेऽताय देहिनः॥

अर्थ–सूजन के अंत में ज्वर और अतीसार हो अथवा ज्वरातीसार के अंत में सूजन हो तो रोगी, विशेष करके दुर्बलरोगी शीघ्रही मरजाता है।

पादस्थ शोथ के चिन्ह।

श्वयथुर्यस्य पादस्थः परिस्रस्ते च पिंडिके।
सीदतः सक्थिनी चैव तं भिषक् परिवर्जयेत्॥

अर्थ–जिसके पांव में सूजन हो, पिंडली अपने स्थान से हट गई हो, और टांगें शिथिल हो गई हों ऐसे रोगी को त्याग देना चाहिये।

मुखादिमें शोथचिन्ह।

आननं हस्तपादं च विशेषाद्यस्य शुष्यतः।
शूयेते वा विना देहात्स मासाद्याति पंचताम्

अर्थ–जिस रोगी के मुख और हाथ पांव विशेष सूजन से सूख गये हों, अथवा देहको छोडकर हाथ पांव और मुखमें विशेष रूप से सूजन हो वह एक महिने के भीतर मर जाता है।

विसर्प चिन्ह।

विसर्पः कासवैवर्ण्यज्वरमूर्छांगभंगवान्।
भ्रमास्यशोषहृल्लासदेहसादातिसारवान्।

अर्थ–विसर्प रोग में खांसी, विवर्णता, ज्वर, मूर्च्छा, अंगमर्द, भ्रम, मुखशोष, हृल्लास, अंगग्लानि और अतिसार उपद्रवों के उपस्थित होने पर रोगी मर जाता है।

कुष्ठमें चिन्ह।

कुष्ठं विशीर्यमाणांगं रक्तनेत्रं हृतस्वरम्।
मंदाग्निं अंतुभिर्जुष्टं हंति तृष्णातिसारिणम्

अर्थ–कुष्ठरोग में यदि देह में विशीर्णता नेत्र में ललाई, स्वर में क्षीणता, मंदाग्नि, कीडों का पडना, तृषा और अतिसार इन उपद्रवों के होने पर रोगी मर जाता है।

वायु के चिन्ह।

वायु सुप्तत्वचं भग्नं कफशोफरुजातुरम्॥
वातास्रंमोहमूर्छायमदस्वप्नज्वरान्वितम्॥
शिरोग्रहारुचिश्वाससंकोचस्फोटकोथवत्।

अर्थ–वातव्याधिमें यदि त्वचा में शून्यता, भग्नता, कफरोग, सूजन और वेदना हो तो रोगी को मारडालती है। जो वातरक्त रोग में यदि मोह, मूर्च्छा, मद, निद्रा, ज्वर, शिरोग्रह, अरुचि, श्वास, अंगसंकोच, स्फोटक और मांस में सडाहट हो तो रोगी मर जाता है।

सर्वरोग चिन्ह।

शिरोरोगारुचिश्वासमोहविड्भेदतृड्भ्रमैः॥
घ्नंति सर्वामयाः क्षीणस्वरधातुबलानलम्।

अर्थ–शिरोरोग, अरुचि, श्वास, मोह, पुरीषभेद, तृषा, और भ्रम, इन उपद्रवों को उत्पन्न करके संपूर्ण रोग ऐसे रोगियों को मार डालते हैं जिनके स्वर, धातु बल और अग्नि क्षीण होगये हैं।

वातादि रोगी।

वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी रक्तपयुदरी क्षयी
गुल्मी मेही च तान् क्षीणान् विकारेऽल्पेऽपि वर्जयेत्।

अर्थ–वातरोगी, अपस्मररोगी, कुष्ठरोगी, रक्तपित्तरोगी, उदररोगी, क्षयरोगी, गुल्मरोगी और प्रमेहरोगी, इनरोगियों को क्षीणता होने पर अल्प विकार हो तो भी त्याग देना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वलमांस क्षयादि ।

वलमांसक्षयस्तीव्रो रोगवृद्धिररोचकः ॥
यस्यातुरस्य लक्ष्यंते त्रीन् पक्षान्न स जीवति ।

अर्थ–जिस रोगी का बल और मांस अत्यन्त क्षीण होता जाता हो । तथा रोग की वृद्धि और अरुचि दिखाई दे वह डेढ महिने भी नहीं जी सकता है ।

वाताष्ठिलाके चिन्ह ।

वाताऽष्ठीलाऽतिसंवृद्धा तिष्ठंती दारुणा हृदि
तृष्णया तु परीतस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम्

अर्थ-वातोद्भव अष्ठीला अत्यन्त बढकर दारुणरूप से हृदय में आकर स्थित हो जाती है, इसमें रोगी को प्यास अधिक लगने पर तत्काल मृत्यु होती है ॥

अंगविशेष में वायु के चिन्ह ।

शैथिल्यं पिंडिके वायुर्नीत्वा नासां च-
जिह्मताम् ॥ १०४ ॥
क्षीणस्यायम्य मन्ये वा सद्यो मुष्णाति-
जीवितम् ।

अर्थ–वायु पिंडलियों में शिथिलता कर देती है । नासिका को टेढी करदेती है, तथा मन्या नामक दोनों सिराओं को चौडी कर देती है, ऐसा होने पर रोगी मर जाता है ॥

नाभ्यादिगत वायु ।

नाभी गुदांतरं गत्वा वंक्षणौ वा समाश्रयन् ॥
गृहीत्वा पायुहृदये क्षीणदेहस्य वा बली ।
मलान् बस्तिशिरो नाभि विबद्धथ जनयन्-
रुजम् ॥ १०६ ॥
कुर्वन् वंक्षणयोः शूलं तृष्णां भिन्नपुरीषताम् ।
श्वासं वा जनयन् वायुर्गृहीत्वा गुदवंक्षणम् ॥

अर्थ–बलवान् वायु नाभि और गुदनाडी के बीच में गमन करके दोनों अंडकोषों का आश्रय लेकर अथवा गुह्य देश और हृदय का अवलंबन करके दुर्बल रोगी के प्राणों का नाश कर देती है । अथवा वायु कुपित होकर पुरीषादि मल को वस्ति के मुख में और नाभिस्थल में रोककर दारुण वेदना को उत्पन्न करती है । तथा अंडकोषों में सूजन तथा तृषा और भिन्नपुरीषता को उत्पन्न करके, अथवा श्वास उत्पन्न करके गुदा और अंडकोषों का ग्रहण करके वायु रोगी को शीघ्र मार डालता है ।

पर्शुकाग्रगत वायु ।

वितत्य पर्शुकाग्राणि गृहीत्वोरश्च मारुतः ।
स्तिमितस्याततताक्षस्य सद्योमुष्णातिजीवितम्

अर्थ–जिस रोगी की पसलियों के अग्रभाग में वायु प्रविष्ट होकर वक्षस्थल को जकड लेती है और वह वहां या तो प्रस्वेद लाती है वा निश्चल हो जाती है, तथा नेत्र फैलजाते हैं, ऐसा रोगी शीघ्र मर जाता है ॥

झटिति ज्वर संतापादिक ।

सहसा ज्वरसंतापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः ।
विश्लेषणं च संधीनां मुमूर्षोरुपजायते।१०९।

अर्थ–जिस रोगी के ज्वर, संताप, तृषा मूर्च्छा, बलक्षय, और संधिविश्लेष ये सब लक्षण सहसा उपस्थित हों तो मृत्युसूचक होते हैं ॥

लेप ज्वरादि के चिन्ह ।

गोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।
लेपज्वरोपतप्तस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ–गौ के खोलने के समय अर्थात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रातःकाल में प्रलेपक अर्थात् कफज्वर से उपतप्त रोगी के मुख पर अधिकता से पसीने आने लगें तो उसका जीवन दुर्लभ होता है ॥

पिटिका द्वारा मृत्यु चिन्ह ।

प्रवालगुलिकाभासा यस्य गात्रे मसूरिकाः ।
उत्पद्याशु विनश्यंति न चिरात्स विनश्यति

अर्थ–मूंगे की सी कांति के सदृश मसूर की बराबर फुंसियां उठ उठकर जिस रोगी के देह में शीघ्र ही जाती रहती है, वह जल्दी मरजाता है ।

विस्फोटक चिन्ह ।

मसूरविदलप्रख्यास्तथा विद्रुमसन्निभाः ।
अंतर्दाहाः किणाभाश्च विस्फोटा देहनाशनाः

अर्थ–मसूर की दाल के आकारवाली मूंगे कीसी आकृतिवाली भीतर को मुखवाली और किणा के सदृश ये चार प्रकार की विस्फोटक फुंसियां रोगी को शीघ्र मार डालती हैं ।

कामलादि चिन्ह ।

कामलाऽक्ष्णोर्मुखं पूर्णं शंखयोर्मुक्तमांसता ।
संत्रासश्चोष्णतांऽगे च यस्य तं परिवर्जयेत्

अर्थ–जिस रोगी की आंखों में कामला, मुख भरा हुआ, कनपटियों का मांस शिथिल, संत्रास और शरीर में उष्णता होतो ऐसे रोगी की चिकित्सा करना व्यर्थ है ।

विवृत व्रण के चिन्ह ।

अकस्मादनुधावच्च विवृतं त्वक्समाश्रयम् ।१

अर्थ–जिस रोगी के रिगड लगने से त्वचामें व्रण होगयाहो और वह फैलता ही चला जाय तो उसको त्यागदेना चाहिये ।

वातज व्रण के चिन्ह ।

यो वातजो न शूलाय स्याच्च दाहाय पित्तजः
कफजो न च पूयाय मर्मजश्च रुजे न यः ।
अचूर्णश्चूर्णकीर्णाभो यत्राऽकस्माच्च दृश्यते ।
रूपं शक्तिध्वजादीनां सर्वास्तान्वर्जयेद्व्रणान् ।

अर्थ–यदि वातज व्रणमें शूल न हो, पित्तज व्रणमें दाह न हो, कफज व्रण में राध न पडी हो, मर्मज व्रणमें वेदना न होती हो, और बिना चूना लगाये ही चूने से छिडा हुआ सा दिखाई दे तथा बिना कारण ही उसमें शक्ति वा ध्वजा आदि के चिन्ह दिखाई दें तो ऐसे व्रणवाले रोगियों को त्याग देना चाहिये ।

भगंदर के चिन्ह ।

विण्मूत्रमारुतवहं कृमिणं च भगंदरम् ।११६।

अर्थ–जिस भगंदरमें से मल, मूत्र और वायु निकलती हो और कीडे पडगये हों वह त्यागदेना चाहिये ।

जानुघट्टनादि चिन्ह ।

घट्टयन् जानुना जानु पादावुद्यम्य पातयन् ।
योऽपास्यति मुहुर्वक्त्रमातुरो न स जीवति ।

अर्थ–जो रोगी घुटने से घुटने रिगडता हुआ दोनों पांवों को उठाकर पादविक्षेप करता है और बिना कारणही मुखको चलाता है वह जीता नहीं है ।

रोगी की चेष्टादि ।

दंतैर्दिलद्भत्रखाग्राणि तैश्च केशांस्तृणानि च ।
भूमिं काष्ठेन विलिखन् लोष्टं लोष्टेन ताडयन्
हृष्टरोमा सांद्रमूत्रः शुष्ककासी ज्वरी च यः
मुहुर्हसन् मुहुः श्वेडन् शय्यां पादेन हंति यः ।
मुहुर्दिलद्भानि विमृशन्नातुरो न स जीवति ।

---

१ क्लेपकः- चंदनोशीरमदिराकुणपध्वांक्षगंधयः । शैवालकुक्कुटशिखाकुंदशालिमयप्रभा। अंतर्दाहा निरूष्माणः प्राणनाशकराव्रणाः

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जो रोगी दांतों से नखके अग्रभाग, केश वा तिनुकों को काटता है, भूमि पर लकडी से लकीरें खींचता है, मिट्टी के ढेले को दूसरे ढेले से फोडता है। जिसके रोमांच खडे होगये हैं, जिसका मूत्र गाढा होगया है, जिसको सूखी खांसी हो और ज्वर हो, जो वार वार हंसता है और नाक कान को हाथों से कुरेदता है, शय्या को वार वार पावों से पीटता है वह रोगी शीघ्र मरजाता है।

तिल व्यंगादि चिन्ह ।

मृत्यवे सहसातस्य तिलकव्यंगविप्लवः॥१२०
मुखे दंतनखे पुष्प जठरे विविधाः सिराः ।

अर्थ–जिस रोगी के मुख पर तिल वा व्यंग सहसा उत्पन्न हो जांय, उसके दांत और नखों में पुष्प पैदा हो जांय और पेटमें अनेक रंग की काली नीली नसें खडी हो जांय वह रोगी शीघ्र मरजाता है॥

ऊर्ध्वश्वास के चिन्ह ।

ऊर्ध्वश्वासं गतोष्माणं शूलोपहतवंक्षणम्॥
शर्म वाऽनधिगच्छंतं बुद्धिमान् परिवर्जयेत्।

अर्थ–जिस रोगी के ऊर्ध्वश्वास चलता हो। जिसके देहकी गरमी जाती रही हो। जिसके अंडकोषों में वेदना होती हो। अनेक प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी जिसको सुख प्राप्त न होता हो। ऐसे रोगीको त्याग देना चाहिये॥

सहसाविकारादि ।

विकारा यस्य वर्धंते प्रकृतिः परिहीयते॥
सहसा सहसा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम्।

अर्थ–जिस रोगीके ज्वरादिक विकार बिना कारण ही बढते चले जांय और स्वभाव में हानि होती जाय उस रोगीके जीवन को मृत्यु हर लेती है॥

वैद्य के चिन्ह ।

यमुद्दिश्यातुरं वैद्यः सपादयितुमौषधम्।
यतमानो न शक्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम्॥

अर्थ–जिस रोगीके लिये वैद्य औषध तयार कर सकता है और करने का यत्न करने पर भी तयार न करसके तो रोगीकी मृत्यु का सूचक है॥

औषधि के चिन्ह ।

विज्ञातं बहुशः सिद्धं विधिवच्चावतारितम्
न सिध्यत्यौषधं यस्य नास्ति तस्य-
चिकित्सितम्।

अर्थ–जिस औषध के गुण और कर्म अच्छी तरह ज्ञात हों और जिसके प्रयोग द्वारा अनेक वार फलसिद्धि भी होचुकी हो, वही औषध यदि किसी रोगी पर अपना प्रभाव न दिखावे, तो उसकी चिकित्सा करना व्यर्थ है।

औषधादि का वर्ण विपर्यय ।

भवेद्यस्यौषधेऽन्ने वा कल्प्यमाने विपर्ययः॥
अकस्माद्वर्णगंधादेः स्वस्थोऽपि न स जीवति

अर्थ–विना कारणही जिस रोगी के लिये तयारकी हुई औषध वा भोजन के रूप और गंध में विपरीत भाव होजाय अर्थात और का और रूप रंग और गंधादिक हो जाय तो निरोग पुरुष भी नहीं जीता है फिर रोगी का तो कहना ही क्या है।

मृत्यु के अन्यचिन्ह ।

निर्वाते सेधनं यस्य ज्योतिरभ्युपशाम्यति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आतुरस्य ग्रहे यस्य भिद्यंते वा पतंति वा।
अतिमात्रममत्राणि दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ-जिस रोगी के वायुरहित घरमें भी ईंधन लगाते लगाते अग्नि आदि ज्योति, ठंडी पडजाय वह रोगी मरजाता है, जिस रोगी के घरमें बर्तन बहुत गिरें वा फूटें उस रोगी का जीना दुर्लभ है।

आत्रेय का मत।

यं नरं सहसा रोगो दुर्बलं परिमुंचति।
संशयं प्राप्तमात्रेयो जीवितं तस्य मन्यते ॥

अर्थ-जिस दुर्बल मनुष्य को रोग सहसा छोडदें तो उस रोगी का जीवन संशययुक्त होता है, यह आत्रेय का मत है।

मृत्युसूचक वाक्योंका निषेध।

कथयेन्नैव पृष्टोऽपि दुःश्रवं मरणं भिषक्।
गतासोर्बंधुमित्राणां न चेच्छेत्सांचिकित्सितुम्

अर्थ-पूछे जानेपर भी वैद्यको उचित नहीं है कि रोगीके बंधु बांधवों से रोगीकी मृत्युके दुःश्राव्य बचनों को कहे और आसन्न मृत्यु रोगी की चिकित्सा करना भी उचित नहीं है ॥

चिकित्साके निष्फलहोनेमें कर्तव्य।

यमदूतपिशाचाद्यैर्यत्परासुरुपास्यते।
भ्रद्भिरौषधवीर्याणि तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-क्योंकि यमदूत और पिशाचादि गण मरनेवाले रोगीके पास आते जाते रहते हैं और व्याधिप्रशमन के निमित्त जो औषध दी जाती है। उसको निष्फल कर देते हैं इसलिये उस रोगी को छोडदेना चाहिये।

रिष्टज्ञानादरमें हेतु।

आयुर्वेदफलं कृत्स्नं यदायुर्वे प्रतिष्ठितम्।
रिष्टज्ञानादृतस्तस्मात्सर्वदैव भवेद्भिषक्१३१

अर्थ-आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्यमें आयुर्वेद का संपूर्ण फल प्रतिष्ठित है इसलिये वैद्यको उचित है कि आयुके परिज्ञान और परिपालनके निमित्त रिष्टके ज्ञानसे भी समादृत होना चाहिये ॥

पुण्यादिक्षय से मरण।

मरणं प्राणिना दृष्टमायुःपुण्योभयक्षयात्।
तयोरप्यक्षयाद्दृष्टं विषमापरिहारिणाम्,,

अर्थ-मुनिलोग कहते हैं कि आयु और पुण्य इन दोनों के क्षीण होनेसे मृत्युका होना देखा गया है। किंतु जो विषम आहार विहार अर्थात् हाथी, घोडा, गौ, भैंस, दुर्गंध, मलमूत्रादि वेग धारण, उच्चस्थान से प्रपतन इन बातों को नहीं त्यागते हैं उन की मृत्यु भी आयु और पुण्य के क्षीण होसे से होजाती है।

इति श्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां शारीरस्थाने पंचमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

अथाऽतो दूतादिविज्ञानीय शारीरं-व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम यहांसे दूतादिविज्ञानीय शारीर नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

पाखंडादि दूतों की शुभाशुभ सूचना।

"पाखण्डाश्रमवर्णानां सवर्णाः कर्मसिद्धये।
त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये १ ॥

अर्थ-उनहत्तर प्रकार के पाखंड, चार प्रकार के आश्रम (ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, भिक्षु और वैखानस) चार प्रकारके वर्ण (ब्रा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र) इनके सजातीय दूतही कर्म की सिद्धि के निमित्त कहे गये हैं और जो विजातीय दूत होते हैं वे कर्म की विपत्ति अर्थात् कार्यहानि की सूचना करते हैं, जैसे पाखंड का दूत पाखंड, ब्राह्मण का ब्राह्मण, ब्रह्मचारी का ब्रह्मचारी, भिक्षुक का भिक्षु और शूद्र का शूद्र होतो शुभसूचक है, यदि ब्राह्मण का दूत शूद्रहो और शूद्रका क्षत्री हो ये सब विजातीय अशुभ सूचक हैं ।

निषिद्धदूतों का वर्णन ॥

दीनं भीतं द्रुतं श्रस्तं रूक्षामंगलवादिनम् ।
शस्त्रिणं दंडिनं खंडं मुंडश्मश्रुजटाधरम् २ ॥
अमंगलाह्वयं क्रूरकर्माणं मलिनं स्त्रियम् २ ॥
अनेकव्याधितं व्यंगं रक्तमाल्यानुलेपनम्
तैलपंकांकितं जीर्णविवर्णार्द्रैकवाससम् ।
खरोष्ट्रमहिषारूढम् काष्ठलोष्टादिमर्दनम् ॥
नानुगच्छेद्विपद्दूतमाह्वयंतं च दूरतः ।

अर्थ–वैद्यको बुलाने के लिये जो समानजाति वाला दूत भी भेजा जाय और वह दैन्ययुक्त, डराहुआ, बेगसे आया हुआ, डरा हुआ, कर्कश और अमंगलवादी, शस्त्रधारी दंडपाणि, नपुंसक, मूंछ डाढी मुडा हुआ जटाधारी, अशुभनामधारी, क्रूरकर्मकरनेवाला मलीन, स्त्री, अनेक रोगों से ग्रस्त, हीनांग लाल फूलों की माला पहने हुए, लालचंदन लगाये हुए, शरीर में तेल और कीचड़ लपेटे हुए, जीर्ण, विवर्ण और गीला वस्त्र पहने हुए, गधा ऊंट वा भैंसा पर सवार काठ और लोहे का मर्दन करता हुआ, और दूर से बुलानेवाला, इन लक्षणों से युक्त हो तो वैद्यको उचित है कि ऐसे दूत के साथ न जाय ।

वैद्यके लक्षणों से मृत्युकी सूचना ॥

अशस्तचिंतावचने नग्ने छिंदति भिंदति ५॥
जुहुवाने पावकं पिंडान् पितृभ्यो निर्वपत्यपि ।
सुप्ते मुक्तकचेऽभ्यक्ते रुदत्यप्रयते तथा ६ ॥
वैद्ये दूता मनुष्याणामागच्छंति मुमूर्षताम् ।

अर्थ–जब वैद्य किसी अशुभविचार को कर रहा हो, वा अशुभ वाक्य कहरहा हो । नंगा बैठा हो, किसी वस्तुको काट रहा हो वा छेदन कर रहा हो, अग्नि में आहुति डाल रहा हो, पित्रीश्वरों को पिंडदान कर रहा हो, सो रहा हो, बाल खोले बैठा हो, तेल लगा रहाहो, रुदन्करताहो चिकित्साके विचार में दत्तचित्त न हो, ऐसी दशा में स्थित वैद्य के पास उन्हीं मनुष्यों के दूत आते हैं जो मरने को होते हैं ।

देश विशेष से दूत विचार ॥

विकारसामान्यगुणे देशे काले ऽथवा भिषक्
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ।

अर्थ–विकार के समान गुणवाले देश वा काल में दूत को आया हुआ देखकर वैद्यको उचित हो कि उस रोगी की चिकित्सा न करै । जैसे कफज्वर में घृत जल वा द्रव पदार्थ के समीपवाले स्थानमें वा अनूप देश में प्रातःकाल के समय दूत का आना अशुभ है । पित्तरोगीमें अग्नि आदि से संतप्त स्थान में वा मध्यान्ह के समय आया हुआ दूत अशुभ होता है । इसी तरह वातरोगमें परुष, रूक्ष, बालुका, पाषाण और कंकरों से युक्त देश में सायंकाल के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समय आया हुआ दूत अशुभ है। इसके विपरीत शुभ होता है। वमन प्रमेह और अतिसारादि रोगों में सेतुभंग अशुभहै और इन्ही रोगों में सेतुबंध शुभ है।

रोगी के दूतकी चेष्टा ॥

स्पृशंतो नाभिनासास्यकेशरोमनखद्विजान्॥
गुह्यपृष्ठस्तनग्रीवाजठरानाभिकांगुलीः।
कार्पासबुससीसास्थिकपालमुशलोपलम्॥
मार्जनीशूर्पचैलांतभस्मांगारदशातुषान्।
रज्जूपानद्तुलापाशमन्यद्वा भग्नविच्युतम्॥
तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहरंति मरिष्यताम्।

अर्थ—वैद्य से प्रथम दर्शन काल में अर्थात् जब दूत प्रथम ही वैद्य से मिले और रोगी का वृत्तान्त कहता हुआ नाभि, नासिका, मुख केश, रोम, नख, दांत, गुह्यदेश, पीठ, स्तन, ग्रीवा, जठर, अनाभिका, उंगली, कपास, बुस, सीसा, अस्थि, कपाल, मूसल पत्थर, मोंजेनी (झाड़), सूप, वस्त्रका किनारा, भस्म, अंगार, वस्त्रकी बत्ती, तुष, रस्सी, जूता, तराजू, पक्षियों के पकडने का जाल, अथवा और कोई टूटी हुई वा फूटी हुई वस्तु का स्पर्श करै तो जान लेना चाहिये कि जिस रोगी का यह दूत है वह रोगी मरनेवाला है।

दूत के आनेका अशुभकाल।

तथाऽर्धरात्रे मध्यान्हे संध्ययोः पूर्ववासरे॥
षष्ठीचतुर्थीनवमीराहुकेतूदयादिषु।
भरणीकृतिकाऽऽश्लेषापूर्वाऽऽर्द्रापैत्र्यनैर्ऋते

अर्थ—आधी रात के समय, दुपहर के समय, दिन और रात्रिकी संधियों के समय पहिले दिन, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी, राहु, और केतु के उदय में, भरणी, कृतिका श्लेषा, पूर्वाफाल्गुन, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा, मघा, मूल इन नक्षत्रों में दूत का आना अशुभ है।

दूतकी बातोंके समय अशुभ निमित्त।

यस्मिन्दूते ब्रुवति वाक्यमातुरसंश्रयम्।
पश्येन्निमित्तमशुभं तं च नानुव्रजेद्भिषक्॥
तद्यथा विकलः प्रेतः प्रेतालंकार एव वा।
छिन्नं दग्धं विलुप्तं वा तद्वादीनि वचांसि वा
रसो वा कटुकस्तीव्रो गंधो वा कौणपो महान्
स्पर्शो वा विपुलः क्रूरो यद्वान्यदपि तादृशम्
तत्सर्वमभितो वाक्यं वाक्यकालेऽथवा पुनः।
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत्।

अर्थ—जिस समय दूत आकर रोगी के संबंध की बातें वैद्य से करने लगे उस समय यदि कोई निम्नलिखित अशुभ निमित्त दिखाई दें तो वैद्यको उचित है कि दूत के साथ रोगी के पास न जाय। वे अशुभ चिन्ह ये हैं, यथा—विकल (काणा, लूला आदि अंगहीन शब्द), प्रेत (मरने का शब्द], मुर्दे के अलंकारों की बातें। रस्सी आदि का टूटना, जलना, पात्रादि फूटना, आदि शब्दों को कानों से सुने। मिरच आदि कडवे तीखे द्रव्यों को आंखों से देखे। अत्यन्त दुर्गंधित पदार्थ नाक से सूंघने में आवै। विस्तीर्ण और क्रूर स्पर्श छूने में आवे वा ऐसी ही कोई अन्य बातें हो रही हों तो ये सब अशुभ सूचक हैं, ऐसे दूतवाले रोगी की चिकित्सा न करे।

अन्य अशुभ निमित्त।

हाहाकंदितमुत्क्रुष्टं रुदितं स्खलनं क्षुतम्।
वस्त्रातपत्रपात्रच्छत्र्यसनं व्यसनीक्षणम्॥१७॥
चैत्यध्वजानां पात्राणां पूर्णानां च निमज्जनम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हतानिष्टप्रवादाश्च दूषणं भस्मपांसुभिः ॥१८॥

अर्थ–हाहाकार करके क्रंदन (आर्तस्वर) ऊंचे स्वर से रोदन, पांव खिसलना, वैद्य के संबंधियों का विनाश, आपत्ति में फंसे हुओं का देखना, वैद्य वा अन्य किसी के वस्त्र छत्री और जूताओं का नाश, चैत्य-ध्वजा वा भरे हुए पात्रों का गिरना, अमंगलसूचक प्रवादों का होना, वैद्य के गमन समय मार्ग में धूल पांशु का उडना, ये सब अशुभ चिन्ह हैं।

अन्य अशुभ चिन्ह।

पथश्छेदोऽहिमार्जारगोधासरटबानरैः।
दीप्तां प्रतिदिशं वाचं क्रूराणां मृगपक्षिणाम्।
कृष्णधान्यगुडोदश्वित्लवणासवचर्मणाम्।
सर्षपाणां वसातैलतृणपंकेंधनस्य च ॥ २० ॥
क्लीबक्रूरश्वपाकानां जालवागुरयोरपि।
छर्दितस्य पुरीषस्य पूतिदुर्दर्शनस्य च ॥ २१ ॥
निःसारस्य व्यवायस्य कार्पासास्थेरेरपि।
शयनासनयानानामुत्तानानां तु दर्शनम्।
न्युब्जानामितरेषां च पात्रादीनामशोभनम्।

अर्थ–वैद्य के गमन समय सर्प, बिल्ली, गोधा, किरकेंटा और बंदर द्वारा मार्ग का कटना अर्थात् वैद्य के आगे होकर इन जीवों का इधर से उधर को निकल जाना अशुभ है। मांसाहारी चीते शृगालादि पशु और बाज शिकरा आदि पक्षियों का उस दिशा में बोलना जिसमें सूर्य चमक रहा हो, वैद्य के गमन समय वा रोगी के घरमें घुसने के समय कृष्णधान्य, गुड, उदश्वित (तक्र) नमक, आसव, चर्म, सरसों, चर्बी, तेल, तृण, कीचड, ईंधन, नपुंसक, निर्दयी, चांडाल, पक्षियों का जाल, वमन की हुई वस्तु, पुरीष, दुर्गंधित द्रव्य, न देखने के योग्य द्रव्य, निःसार वस्तु मैथुन, कपास, भुस, सीसा, शत्रु, अधोमुखी शय्या, आसन, वा सवारी अथवा औंधे कलश, शरवादि पात्र इनका देखना अशुभ सूचक है ॥

पुरुषादि पक्षियों का शुभाशुभत्व।

पुंसंज्ञाःपक्षिणोवामाःस्त्रीसंज्ञादक्षिणाःशुभाः

अर्थ–हंस, चक्रोर, तोता आदि पुरुषसंज्ञक पक्षी वामदिशा में और बलाका सारिका आदि स्त्रीवाची पक्षी दक्षिण दिशा में शुभ होते हैं। इससे विपरीत अशुभ होते हैं।

खगमृगादिका शुभाशुभत्व।

प्रदक्षिणं खगमृगा यांतो नैर्ऋत्यवंजुकाः।
अयुग्माश्च मृगाः शस्ता शस्ताः नित्यं च दर्शने
चाषभासभरद्वाजनकुलच्छागबर्हिणः।

अर्थ–मृग और पक्षियोंका बाईं दिशासे दाहिनी ओर जाना शुभ है परन्तु कुत्ते और शृगाल का इस तरह जाना अशुभ है। इन का दाहिनी ओर से बांई ओर जाना अच्छा है। अयुग्म मृगोंका देखना अच्छा है। नीलकंठ, भास, मुर्गा, नकुल, बकरा और मोर ये चाहें दक्षिण दिशामें हों, चाहें वाम दिशा में हों इनका देखना सदा शुभ है ॥

अशुभ पक्षियोंका वर्णन ॥

अशुभं सर्वथोलूकबिडालसरटेक्षणम्। २५।

अर्थ–उल्लू, बिडाल, और किरकेंटा ये चाहें दक्षिण दिशामें हैं। चाहें वाम दिशा में हों, चाहें युग्म हों, चाहें अयुग्म हो, ये सदा ही अशुभ हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोलादिकोंका कीर्तनमें शुभत्व।

प्रशस्ताः कीर्तने कोलगोधाहिशशजाहकाः।
नदर्शने नविरुते वानरर्क्षौवतोऽन्यथा।२६।

अर्थ–शूकर, गोधा, सर्प, चास और डाक इनका नाम लेना शुभ है परन्तु देखना वा बोलना अशुभ है बंदर और रीछ इनका देखना वा बोलना शुभ है और नाम लेना अशुभ है।

इन्द्रधनुषका शुभाशुभत्व॥

धनुरैंद्रं च लालाटमशुभं शुभमन्यतः।

अर्थ–इन्द्रधनुष सन्मुख हो तो अशुभ है। पीठ वा दाहें वांयें हो तो शुभ है॥

अग्निपूर्ण पात्रोंका अशुभत्व॥

अग्निपूर्णानि पात्राणि भिन्नानि विशिखानि च

अर्थ–अग्निसे भरे हुए, फूटेहुए वा खाली पात्र अशुभ होते हैं।

गृहप्रवेशमें शुभाशुभ निमित्त।

दध्यक्षतादि निर्गच्छन् वक्ष्यमाणं च मंगलम्।
वैद्यो मरिष्यतां वेश्म प्रविशन्नेव पश्यति।

अर्थ–जिस समय वैद्य रोगीके घरमें प्रवेश करे उसी समय रोगीके घरसे दही, अक्षत, इक्षु निष्पावादि मंगल द्रव्य निकलें तो उस रोगीका आसन्न मृत्यु समझना चाहिये।

वैद्यको उपदेश।

दूताद्यसाधु दृष्ट्वैवं त्यजेदार्तमतोऽन्यथा।
करुणाशुद्धसंतानो यत्नतः समुपाचरेत्।

अर्थ–इस प्रकार ऊपर कहे हुए दूतादि के अशुभ लक्षण दिखाई दें तो वैद्यको रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिये। किन्तु उक्त लक्षणों से अन्यथा अर्थात शुभ लक्षण दिखाई दें तो करुणार्द्र हृदय होकर यत्नपूर्वक रोगी की चिकित्सा करना चाहिये।

आरोग्यता के लक्षण।

दध्यक्षतेक्षुनिष्पावप्रियंगुमधुसर्पिषाम्।
यावकांजनभृंगारघंटादीपसरोरुहाम्। ३०।
दूर्वाद्रैमत्स्यमांसानां लाजानां फलमक्षयोः।
रत्नेभपूर्णकुंभानां कन्यानां स्यंदनस्य च।३१।
नरस्य वर्धमानस्य देवतानां नृपस्य च।
शुक्लानां सुमनोबालचामरांबरवाजिनाम्।
शंखसाधुद्विजोर्णीषतोरणस्वस्तिकस्य च।
भूमेः समुधृतायाश्च वन्हेः प्रज्वलितस्य च।
मनोज्ञस्यान्नपानस्य पूर्णस्य शकटस्य च।
नृभिर्धेन्वाः सवत्साया बडवायाः स्त्रिया अपि
जीवंजीवकसारंगस रसप्रियादिनाम्
रुचकादर्शसिद्धार्थरोचनानां च दर्शनम्।
गन्धः सुसुरभिर्वर्णः सुशुक्लो मधुरो रसः।
गोपतेरनुकूलस्य स्वरस्तद्वद्वयामपि॥ ३६॥
मृगपक्षिनराणां च शोभिनां शोभना गिरः।
छत्रध्वजपताकानामुत्क्षेपणमभिष्टुतिः ३०॥
भेरीमृदंगशंखानां शब्दाः पुण्याहनिःस्वनाः।
वेदाध्ययनशब्दाश्च सुखो वायुः प्रदक्षिणः॥
पथि वेश्मप्रवेशे च विद्यादारोग्यलक्षणम्।

अर्थ–दही, अक्षत (अखंड चांवल जौ आदि), ईख, निष्पाव (चौला), प्रियंगु, मधु, घृत, अलक्तक, अंजन भृंगार (कनकालक, स्वर्णपात्र), घंटा, दीपक, कमल, दूर्वा (दूब) मछली का गीला मांस, धानकी खील, फल मोदकादि भक्ष्यद्रव्य, पद्मरागादि मणि, हाथी, पूर्ण कलश, कन्या, रथ, शूरवीरता और दान शीलतादि गुणविशिष्ट प्रतिष्ठित मनुष्य, देवता, राजा, चमेली आदिके सफेद फूल, सफेद चमर, सफेद वस्तु, सफेद घोडा, शंख, साधु, ब्राह्मण, पगडी, तोरण, स्वस्तिक (साथिया) समुधृतभूमि, प्रज्वलित अग्नि, हृदयहारी अन्नपान, आदमियों से भरीहुई गाढी, सवत्सा गौ, सवत्सा घोडी,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सवत्सा स्त्री, जीवंजीवक हिरन, सारसआदि प्रियभाषी पक्षी, कंकण, सफेद सरसों, इत्रा-आदि सुगंधित द्रव्य, सफेद मधुरादि रस, शांत स्वभाव बैलका शब्द, क्रोधरहित गौ का शब्द, प्रशस्त (शृगाल, उल्लू और चांडालादि को छोडकर] मृग, पक्षी, मनुष्य और मनोहारी जीवोंके शब्द, छत्र, ध्वजा, और पताका का ऊपरके स्थानमें लगाना, जय जय शब्द, भेरी मृदंग और शंख इनकी ध्वनि, आरोग्यार्थ प्रशस्त शब्द, वेदध्वनि, अनुकूल और सुखप्रद वायु, ये सब शुभ लक्षण हैं। जब वैद्य रोगी की चिकित्साके लिये अपने घरसे चले वा रोगीके घरमें प्रवेश करे तब ये सब शुभ शकुन दिखाई दें तो जानलेना चाहिये कि रोगीको आराम होजायगा।

स्वप्नकथनम्।

इत्युक्तं दूतशकुनं स्वप्नानूर्ध्वं प्रचक्षते ॥

अर्थ-दूतद्वारा प्राणी के शुभाशुभ की सूचना करनेवाले शकुनों का वर्णन कर-दिया गया है, अब स्वप्नद्वारा शुभाशुभ वर्णन करते हैं। *

स्वप्न में मद्यपान से अशुभत्व।

स्वप्ने मद्यं सह प्रेतैर्यः पिबन् कृष्यते शुना।
स मर्त्यो मृत्युना शीघ्रं ज्वररूपेण नीयते ४०

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें प्रेतों के साथ मद्यपान करता है और कुत्तों द्वारा घसीटा जाता है, उसकी ज्वररूप से शीघ्र मृत्यु होती है।

रक्तपित्त से मृत्यु।

रक्तमाल्यवपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया।
सोऽस्रपित्तेन-

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें लालफूलों की माला और लालवस्त्र पहनकर अपना शरीर लाल देखे और हंसता हुआ स्त्रीद्वारा घसीटा जावे वह रक्तपित्त रोग से मरता है।

यक्ष्मा के हेतु।

महिषश्ववराहोष्ट्रगर्दभैः ॥ ४१ ॥
यः प्रयाति दिशं याम्यां मरणं तस्य यक्ष्मणा

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्न में भैंसा, कुत्ता, शूकर, ऊंट वा गधे पर चढकर दक्षिण दिशा को गमन करता है वह राजयक्ष्मा से मरता है।

कंटकादि को अशुभत्व।

लता कंटकिनी वंशस्तालो वा हृदि जायते ४२
यस्य तस्याशु गुल्मेन-

अर्थ-जो स्वप्न में ऐसा देखे कि उस के हृदय में कांटेदार लता, बांस वा ताड का वृक्ष उगे तो वह गुल्म रोग से मर-जाता है।

नग्नता से अशुभत्व।

यस्य वन्हिमनर्चिषम्।
जुह्वतो घृतासिक्तस्य नग्नस्योरसि जायते ॥
पद्मं स नश्येत्कुष्ठेन-

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्न में नंगा होकर और शरीरमें घृत चुपड कर शिखारहित अग्नि में हवन करे और उसे ऐसा मालूम

---

* अष्टांगसंग्रह में स्वप्नके लक्षण इस तरह लिखे हैं " सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोनुपरतं यदा। विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यतीति। निद्राके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं कि " श्लेष्मावृतेषुस्रोतःसु श्रमादुपरतेषुच। इंद्रियेषु स्वकर्मभ्यो निद्रा विशति देहिनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो कि हृदय में कमल उत्पन्न हुआहै तो वह कुष्ठरोग से मरता है।

प्रमेह से मरण।

चण्डालैः सह यः पिबेत्।
स्नेहं बहुविधं स्वप्ने स प्रमेहेण नश्यति ४४॥

अर्थ-जो स्वप्न में चांडाल के साथ घृत तेल आदि अनेक प्रकारके स्नेहपान करताहै वह प्रमेहरोग से मरता है।

उन्माद से मरण।

उन्मादेन जले मज्जेद्यो नृत्यन् राक्षसैः सह।

अर्थ-जो राक्षसों के साथ नाचता २ जल में डूबजाता है वह उन्माद रोग से मरता है।

मृगीरोग से मरण।

अपस्मारेण यो मर्त्यो नृत्यन् प्रेतेन नीयते॥

अर्थ-जिस नाचते हुए मनुष्य को स्वप्न में प्रेत लेजाते हैं वह अपस्मार रोग से मरता है।

गर्दभादिपर से मृत्यु।

यानं खरोष्ट्रमार्जारकपिशार्दूलसूकरैः।
यस्य प्रेतैः शृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते मुखे॥

अर्थ-जो स्वप्न में गधा, ऊंट, बिल्ली, बंदर, शार्दूल, शूकर वा शृगाल पर चढकर गमन करताहै उसको मौतके मुखमें समझना चाहिये।

मृत्यु के अन्य स्वप्न।

अपूपशष्कुलीजग्ध्वा विबुद्धस्तद्विधं वमन्।
न जीवति-
अक्षिरोगाय सूर्येंदुग्रहणेक्षणम्॥ ४७॥
सूर्याचन्द्रमसोः पातदर्शनम् दृष्टिनाशनम्।

अर्थ-जो स्वप्न में मालपूआ पूरी का भोजन करे और जगने पर वह वमन करे तो शीघ्र मरजाता है। सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण देखने से नेत्ररोग होते हैं। सूर्य चन्द्रमा का पात देखने से दृष्टि मारी जाती है।

अन्य अशुभ स्वप्न।

मूर्ध्नि वंशलतादीनां संभवो वयसां तथा॥
निलयो मुंडता काकगृध्रादैः परिवारणम्।
तथा प्रेतपिशाचस्त्रीद्रविडांधगवाशनैः॥
संगो वेत्रलतावंशतृणकंटकसंकटे।
श्वभ्रश्मशानशयनं पतनं पांसुभस्मनोः ५०॥
मज्जनं जलपंकादौ शीघ्रेण स्रोतसा हृतिः।
नृत्यवाद्यगीतानि रक्तस्रग्वस्त्रधारणम्॥
वर्योऽगवृद्धिरभ्यंगो विवाहः श्मश्रुकर्म च।
पक्वान्नस्नेहमद्याशः प्रच्छर्दनविरेचने ५२॥
हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्बंधपराजयौ।
उपानद्युगनाशश्च प्रपातः पादचर्मणोः ५६॥
हर्षो भृशं प्रकुपितैः पितृभिश्चावमर्त्सनम्।
प्रदीपग्रहनक्षत्रदन्तदैवतचक्षुषाम्॥ ५४॥
पतनं वा विनाशो वा भेदने पर्वतस्य च।
कानने रक्तकुसुमे पापकर्मनिवेशने॥ ५५॥
चितांधकारसंबाधे जनन्यां च प्रवेशनम्।
पातः प्रासादशैलादेर्मैत्स्येन ग्रसनं तथा। ५६।
काषायिणामसौम्यानां नग्नानां दंडधारिणाम्
रक्ताक्षाणां च कृष्णानां दर्शनं जातु नेष्यते।

अर्थ-सिर में बांस वा लतादि का उगना, पक्षियों का घोंसला बनाना, सिर का मुंडन, काक गृध्र आदि पक्षी तथा प्रेत पिशाच, स्त्री, द्रविड, अंध और गोमांसभक्षकों से परिवृत होना, वेतलता, बांस, तृण, कंटक इनसे आच्छादित द्वार का न पाना, श्वभ्र वा श्मशान में सोना, पांसु और भस्म में गिरना, जल और कीचमें डूबना, स्रोतों के द्वारा शीघ्र हरण, नाचना, बजाना, गाना, लाल माला वा लाल वस्त्र धारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करना, अवस्था और अंगकी वृद्धि, तैलमर्दन, विवाह, मूछमुंडाना, पक्वान्न भोजन, स्नेहपान, मद्यपान, वमन, विरेचन, सुवर्ण वा लोह का पाना, कलह, बंधन और पराजय दोनों जूतों का नाश, पांव के चर्मका गिरना, अतिहर्ष, कुपित पितरीश्वरों की ताडना, दीपक, घर, नक्षत्र, दांत, देवता और नेत्रों का पतन, वा नाश, पर्वतभेद, लाल फूल वाले वनमें प्रवेश करना, पापाचारियों के घर में घुसना, चिताके घोर अंधकार में वा माता में प्रवेश करना, घरकी छत वा शैलशिखर से गिरना, मत्स्य द्वारा प्रसाजाना काषायवस्त्रधारी, दुर्दर्शनी, नग्न, दंडधारी, रक्तनेत्रवाले, और काले रंग वालोंका देखना। ये सब बातें अशुभफल सूचक होती हैं।

स्वप्नमेंकृष्णादि स्त्रीओंकादेखना ॥

कृष्णां पापाननाचारा दीर्घकेशनखस्तनी ।
विरागमाल्यवसना स्वप्नकालनिशा मता ।
मनोवहानां पूर्णत्वात्स्रोतसां प्रबलैर्मलैः ।
दृश्यते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पंचताम्
अरोगः संशयं प्राप्य काश्चिदेव विमुच्यते ।

अर्थ--स्वप्नमें यदि ऐसी स्त्री दिखाई दे जो काली, पापाचारिणी, दीर्घकेशी, दीर्घनखी दीर्घस्तनी, मलीनमाला और वस्त्रोंको धारण करनेवाली हो तो उसको कालरात्रिके समान समझना चाहिये। अत्यन्त प्रबल वातादि दोषोंके कारण मनोवाही हृदयस्थ स्रोतों के रुद्ध होजाने से बडे बडे भयंकर स्वप्न दिखाई दिया करते हैं जिनसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है। स्वस्थ मनुष्य भी ऐसे स्वप्नों से जीवनके संशयमें पडकर बहुतों में से कोई एकही मरनेसे छूटता है जो बहुत पुण्यवान् और नियतायु होता है।

स्वप्न के भेद।

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा
भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः

अर्थ--स्वप्न सात प्रकार के होते हैं। यथा, दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक, और दोषज।

+ इनमें से दृष्ट स्वप्न वह है कि उस में जो बात आंखों से जागृत अवस्था में देखी है वही स्वप्न में दिखाई दे। श्रुत स्वप्न वह है कि उसमें जो बात आंखोंसे देखी नहीं है केवल कानों से सुनी है, वही स्वप्नावस्था में दिखाई दे। अनुभूत स्वप्न वह है कि उस में जो बात जागृत अवस्था में इन्द्रियों द्वारा अनुभव की गई है वैसीही स्वप्नावस्था में भी अनुभव की जाय। प्रार्थित स्वप्न वह है कि उस में जो बात जागृत अवस्था में देखने सुनने वा अनुभव करने से मन के द्वारा चिंतमन की गई है वही स्वप्नावस्था में दिखाई दे।

भाविक स्वप्न वह हैं कि उसमें दृष्ट और श्रुतादि स्वप्न से विलक्षण स्वप्न सुप्तावस्था के उत्तरकाल में दिखाई दे और वैसाही उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो, दोषज स्वप्न वह है कि उसमें वात पित्त और कफ इन तीनों दोषों के अनुरूप स्वप्न दिखाई देते हैं।

कल्पित स्वप्न वह है जो वात प्रत्यक्ष अनुमानादि छः प्रकारों में से किसी एकके भी द्वारा जागृत अवस्था में न देखी गई न सुनी गई है, न अनुभव की गई है, न मन से चिंतमन की गई है ऐसी कल्पित वस्तु दिखाई देती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्त स्वप्नों का फलाफलत्व।

तेष्वाद्या निष्फलाः पंच यथास्वप्रकृतिर्दिवाः
विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽति
पूर्वरात्रे चिरात्फलम्।
दृष्टः करोति तुच्छं च
गोसर्गे तदहर्महत्। ६३।
निद्रया चानुपहतः प्रतीपैर्वचनैस्तथा।

अर्थ—इन सब प्रकार के स्वप्नों में से पहिले पांच प्रकार के स्वप्न यथानुरूप शुभाशुभफल नहीं देते हैं। वातादि प्रकृतियों के अनुरूप स्वप्न दिखाई देते हैं वे भी निष्फल होते है अर्थात् ऐसे स्वप्न शुभाशुभ फल नहीं देते हैं, जैसे वात प्रकृतिवाले को वातप्रकृति के अनुरूप स्वप्न द्वन्द्वजप्रकृति को द्वन्द्वजप्रकृति के अनुरूप स्वप्न निष्फल होते हैं। इसी तरह दिनका स्वप्न, भूला हुआ स्वप्न, बहुत लंबा स्वप्न, बहुत छोटा स्वप्न भी निष्फल होते हैं। जो स्वप्न पहिली रात्रि में देखा जाता है वह बहुत काल में तुच्छफल देता है। जो स्वप्न गोसर्ग कालमें अर्थात् प्रभात के समय देखा जाता है वह उसीदिन बडा फल देता है। अथवा पिछली रात्रि में जो शुभ स्वप्न देखा जाता है उसके पीछे निद्रा न आवे अथवा किसी प्रतिकूल बचनों से उपहत न हो तो महत्फल का सूचक है, इससे अन्यथा होने पर अल्प फलदायक होता है।

अशुभ स्वप्न में दानादि॥

याति पापोऽल्पफलतां दानाहोमजपादिभिः।

अर्थ—अशुभ स्वप्न दान, होम और जपादि से अल्पफलदायक होता है।

दुःस्वप्न के पीछे सुस्वप्न।

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः।
पश्येत्सौम्यं शुभं तस्य शुभमेव फलं भवेत्॥

अर्थ—जो मनुष्य अशुभ स्वप्न देखकर उसी स्वप्न में दूसरा शुभ स्वप्न देखता है तो शुभही फल होता है।

सौम्यस्वप्नों का वर्णन।

देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतः सुहृदो-
नृपान्।
साधून् यशस्विनो वन्हिंमिद्धम् स्वच्छान्-
जलाशयान्॥ ६६॥
कन्यां कुमारकान् गौरान् शुक्लवस्त्रान्सुतेजसः
नराशनं दीप्ततनुं समंतादुधिरोक्षितः ६७॥
यः पश्येल्लभते योया छत्रादर्शविषामिषम्।
शुक्लाः सुमनसो वस्त्रममेध्यालेपनं फलम्॥
शैलप्रासादफलवृक्षसिंहनरद्विपान्।
आरोहेद्वोऽश्वयानं च तरेन्नदहृदोदधीन्॥
पूर्वोत्तरेण गमनमागम्यागमनं मृतम्।
संधाधान्निःसृतिर्दैवैःपितृभिश्चाभिनंदनम्॥
रोदनं प्रतितोत्थानं द्विषतां चावमर्दनम्।
यस्य स्यादायुरारोग्यं वित्तं बहु च सोऽश्नुते

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्न में देवता, द्विज गौ, बैल, जीते हुए सुहृद, राजा, साधु, यशस्वी, प्रज्वलित अग्नि, स्वच्छजलाशय, कन्या, गौरवर्ण शुक्लवस्त्र धारी तेजस्वी बालक, नराशन (भोजन करता मनुष्य) दीप्ततनु, चारों ओर से रुधिर से लिप्त हुआ, देखता है। तथा जो छत्र, दर्पण, विष (वत्सनाभादि) मांस, सफेद फूल, सफेदवस्त्र, अमेध्य आलेपन, और फल-याता है। जो मनुष्य पर्वत, प्रासाद, फल वान् वृक्ष, सिंह, नरहाथी, बैल, घोडा और यान पर चढता है, जो नदी, तालाब और समुद्र पर तैरकर निकल जाता है। जो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्व और उत्तरकी दिशाओं में गमन करता है, और अगम्य स्थानों से लौटकर आजाता है, अथवा अगम्या स्त्री से गमन करता है, मरता है, संकटों से बचता है, देवता और पितृगणों से अभिनंदित होता है, जो रोता है, वा गिरकर उठ बैठता है, वा शत्रुओं का मर्दन करता है, ऐसे स्वप्नोंका देखनेवाला आयु, आरोग्य और बहुतसी धनसंपत्तियों का भोग करता है ।

आरोग्य के लक्षण ।

मङ्गलाचारसंपन्नः परिवारस्तथातुरः ।
भद्रधान्योऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ७२ ॥
सत्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ।
चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम् ॥

अर्थ–मंगला चार * से युक्त रोगीका परिवार और रोगी होवै, तथा रोगी और उसके कुटुंबी सद्वृत्त का अनुष्ठान करें, वैद्य और औषधमें श्रद्धावान् हों, रोगी का कुटुंब अनुकूल हो, बहुत द्रव्य का संग्रह हो, सत्व लक्षण का संयोग हो, वैद्य और ब्राह्मण में भक्ति हो और चिकित्सा में उत्साह हो । इन लक्षणों के होने पर समझना चाहिये कि रोगी को आराम होजायगा ।

+ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविसर्जनम् । एतच्हि मंगलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्व दर्शिभिः ।

शारीरस्थान की निरुक्ति ।

इत्यत्र जन्ममरणं यतः सम्यगुदाहृतम् ।
शारीरस्य ततः स्थानं शारीरमिदमुच्यते ॥

इतिश्री वैद्यपतिसिंह गुप्तसूनोर्वाग्भटस्यकृतावष्टांगहृदयसंहितायां शारीरस्थानसमाप्तमध्यायश्चषष्ठः ६

अर्थ–इस शारीरस्थान में मनुष्य के जन्म मरण का विस्तारपूर्वक वर्णन लिखा गयाहै, इसीलिये इस स्थानका नाम शारीरस्थान है ।

इतिश्री वाग्भटविरचितायां अष्टांगहृदय संहितायां मथुरानिवासी श्रीकृष्णलाल कृत भाषाटीकायां द्वितीयं शारीरस्थानं षष्ठोऽध्यायश्च समाप्तः ।

शारीरस्थानं समाप्तम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओ३म

श्रीहरिश्चन्दे

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः

निदानस्थानम्

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो सर्वरोगनिदानम् व्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अर्थ—जब आत्रेयादि महर्षिगण हेतु-लिंग और औषध के परिज्ञान वाले सूत्र-स्थान और जीवन मरण के आधार वाले शारीरस्थान की व्याख्या कर चुके तब तद-नंतर कहने लगे कि अब 'सर्वरोगनिदान' नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

रोग के पर्य्यायवाची शब्द ।

" रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो-
दुःखमामयः ॥ १ ॥
यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः ।

अर्थ—रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, वि-कार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध । ये ग्यारह शब्द रोग के पर्य्यायवाची हैं ।

रोगविज्ञानके पांच प्रकार ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा २ ॥
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम्

अर्थ—रोगों के निर्णय करने के पांच प्रधान उपाय हैं, यथा—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति ।

निदान के पर्य्याय ।

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ॥३॥
निदानमाहुः पर्य्यायैः

अर्थ—निदान के पर्य्यायवाची शब्द छः हैं यथा—निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण । रोग की उत्पत्ति के हेतु का नाम निदान है ।

प्राग्रूप के लक्षण ।

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ॥
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम्

अर्थ—जिनं आलस्य अरुचि आदि के उत्पन्न होने से ज्वरादि रोगों के होने के लक्षण दिखाई दें । उन्हें प्राग्रूप कहते हैं परंतु वातादि दोषों द्वारा व्यक्तरूप से अ-नासादित हों अर्थात्—वातादि दोषों के ल-क्षण प्रकट न हुए हों । इस कहने का तात्पर्य यह है कि वातादि दोषों के बिना व्याधि का होना ही असंभव है, क्योंकि यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बात कही गई है कि " सर्वेषामेवरोगाणां निदानं कुपिता मलाः " इसलिये जो 'दोषविशेषणाधिष्ठितः' कहागया है इस में व्यक्तरूपदोषापेक्षता जानना चाहिये ।

इसी लिये ' लिंग मव्यक्तेत्यादि ' कहा गया है, अर्थात् व्याधि के अल्प होने के कारण व्याधि के यथायोग्य स्पष्ट चिन्ह प्रकट नहीं होते हैं, इसी हेतुसे प्राग्रूप तीन प्रकार का कहा गयाहै यथा–(१) शारीर (२) मानस और (३) शारीर मानस इनमें शारीर प्राग्रूप में ज्वर के पहिले आलस्य, मुख में विरसता, गात्र में भारापन, जंभाई, नेत्रों में ललाई और व्याकुलता होती है । मानस प्राग्रूप में अरति, हितोपदेश में अक्षांति आदि । मिलेहुए शारीर और मानस प्राग्रूप में खट्टे नमकीन और चरपरे पदार्थों में प्रीति और मिष्ट भोजनों में द्वेष । पूर्वरूप को ही प्राग्रूप कहते हैं ।

रूप के लक्षण पर्य्यायादि ।

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
संस्थानं व्यंजनं लिंगं लक्षणं चिन्हमाकृतिः ।

अर्थ–व्याधि का वही, उपरोक्त पूर्वरुप जब प्रकट होजाताहै, तब उसे रूप कहते हैं । यहां शारीर प्राग्रूप ही (जिसके लक्षण ऊपर कहचुके हैं) का ग्रहण है, यही रूपधारण करता है, मानस और शारीर मानस व्यक्तरूप धारण नहीं करते-। संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण, चिन्ह और आकृति, ये रूप शब्द के पर्य्यायहैं । येही नाम पूर्वरूप के भी हो सकते हैं, जैसे पूर्वसंस्थान, पूर्वव्यंजन, पूर्वलिंग, पूर्वलक्षण, पूर्वचिन्ह और पूर्वाकृति ॥

उपशय के लक्षण ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ॥
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ।
विद्यादुपशयं-
व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ७ ॥

अर्थ–हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधि दोनों से विपरीत अर्थात् निदान और रोग दोनों से विपरीत अथवा दोनों से विपरीत न होने परभी किसी विशेषकारण से विपरीतार्थकारी (हरीतक्यादि) औषध, [रक्तशाल्यादि] अन्न, और [व्यवाय, व्यायाम, जागरण, अध्ययन, गीत, भाषण, ध्यान, धारणादि वाणी देह और मनका चेष्टारूप] विहार इनका सेवन [शरीरको] सुख उत्पन्न करता है अर्थात् हेतु और व्याधिके विपरीत औषध और आहार विहारका

+ अब हम हेत्वादि से विपरीत औषधान्नविहार का उदाहरण देते हैं:—

हेतु विपरीत औषध, यथा—गुरुस्निग्ध शीतजव्याधि में लघुरूक्षोष्ण औषध ।

हेतु विपरीत अन्न, यथा—श्रमजनितवातज्वर में मांसरस के साथ अन्न अथवा संतर्पणजनित व्याधिमें अपतर्पण और अपतर्पणजनित व्याधिमें संतर्पण । हेतु विपरीतविहार, यथा—जागरणोत्थ व्याधिमें निद्रा, निद्राजनित व्याधिमें जागरण । व्यायामजनित व्याधिमें बैठना, अतिबैठेरहने से उत्पन्न व्याधिमें व्यायाम इत्यादि ।

व्याधिविपरीत औषध, यथा—कफजज्वरमें सर्पिःपान औषध । व्याधिविपरीत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेवन करने से व्याधिके शांत होनेका नाम उपशय है, इसीका दूसरा नाम सात्म्यभी है

अनुपशयके लक्षण।

विपरीतोऽनुपशयोव्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः

अर्थ-उपशय के यथा निर्दिष्ट लक्षणों से विपरीत लक्षणवाले औषध, अन्न, और विहार का उपयोग जो दुखकारक होता है, उसीको अनुपशय अथवा व्याधिका असात्म्य कहते हैं।

संप्राप्ति के लक्षण।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ८ ॥
निर्वृत्तिरामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः।

अर्थ-जिस तरह वातादि दोषों में कोई दोष दुष्ट होकर जिस तरह देह में सन्निवेश विशेष द्वारा गमन करके रोग की उत्पत्ति करता है उसको संप्राप्ति कहते हैं, जाति और आगति ये दो नाम संप्राप्ति के और भी हैं (जैसे दोषों के आमाशय में प्रवेश होने, आमका अनुगमन करने, तथा स्रोतों के रुकजाने से, पक्वाशय से अग्नि के निकलने के द्वारा, उसके ताप से सब देह का बहुत गरम होना इन सब बातों से निश्चय किया जाता है कि यह ज्वर है)।

संप्राप्ति के भेद।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ॥
सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यंतेऽष्टौ ज्वरादयः

अर्थ-संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल के द्वारा संप्राप्ति के अनेक भेद होते हैं, इनमें से संख्या के द्वारा, यथा ज्वर के आठ भेद होते हैं तथा आगे कहेंगे कि पांच प्रकार की खांसी, पांच प्रकार के श्वास, आठ प्रकार के गुल्म इसी तरह और भी जानो। रोग के जितने भेद होते हैं, उतनी ही उन की संप्राप्ति भी होती है।

अन्न, यथा—रेयाप्रान अन्न। व्याधि विपरीत विहार, यथा कफज ज्वरमें देह और मनके व्यापार से उपराम।

हेतु व्याधि विपरीत औषध, यथा—वातजनित शोथमें वातनाशक और शोथनाशक दशमूल। हेतु व्याधि विपरीत अन्न, यथा—वात कफजनित ग्रहणीरोगमें वात कफनाशक और ग्रहणीनाशक तक्रादि। हेतुव्याधि विपरीत विहार, यथा—स्निग्धक्रिया और दिवानिद्रा इनदोनों कारणों से उत्पन्न हुए कफ और तन्द्रारोग में रूक्षक्रिया और रात्रि जागरण।

हेतु विपरीत न होनेपरभी विपरीतार्थकारी औषध, यथा—पित्तप्रधान पच्यमान व्रणशोथ में पित्तकर उष्ण प्रलेप। विपरीतार्थकारी अन्न, यथा—व्रणशोथमें विदाही अन्न का भोजन। विपरीतार्थकारी विहार, यथा—वातोन्मादमें वातकारी आसन।

व्याधिविपरीत न होनेपरभी विपरीतार्थकारी औषध, यथा—वमनरोगमें वमनकारक मेनफल। विपरीतार्थकारी अन्न, यथा—अतिसारमें विरेचनके लिये दूध। विपरीतार्थकारी विहार, यथा—वमनरोगमें प्रवाहन।

हेतु व्याधि दोनों के विपरीत न होने परभी विपरीतार्थकारी औषध, यथा—विषमें विषका प्रयोग। विपरीतार्थकारी अन्न, यथा—मद्यपानजनित मदात्ययमें मद्यकारकमद्य विहार, यथा—व्यायामजनित मूढवातमें जलसंतरणरूप व्यायाम।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विकल्प लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना

अर्थ–एक ही व्याधि में मिले हुए दोषों की जो अंशांश कल्पना है, उसे विकल्प कहते हैं, जैसे इस व्याधि में वात कुपित हुआ है, वह कभी एक रूक्ष गुणकी अधिकता से, कभी लघुसे, कभी शीत से, कभी दो से वा कभी तीनसे दूषित होता है । इसी तरह कटु अम्लादि से कुपित पित्त कभी उष्ण गुण से, कभी तीक्ष्ण से, कभी दो से वा कभी अधिक दूषित होता है । इस तरह परिमाण द्वारा जो दोषों के कुपित होने का कारण निश्चय किया जाता है, इसीको विकल्प कहते हैं ।

प्राधान्य लक्षण ।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः
प्राधान्यमादिशेत् ।

अर्थ–व्याधि का प्राधान्य स्वतंत्र और परतंत्र दो भेदों से जानाजाता है । इनमें से स्वतंत्र व्याधि प्रधान होती है क्योंकि स्वतंत्र (जो अन्य कारणों से न हुई हो) व्याधि स्वनिर्दिष्ट चिकित्सासे साध्य होती है, परतंत्र व्याधि अप्रधान होती है क्योंकि वह प्रधान व्याधि के उपक्रम से ही शांत होजाती है ।

बलावल कथन ।

हेत्वादिकात्स्न्यांवयवैर्बलाबलविशेषणम् ।

अर्थ–जो व्याधि संपूर्ण हेतुओं द्वारा उत्पन्न होती है तथा जिसमें पूर्वरूप और रूप पूर्ण रीति से प्रकाशित होते हैं उस व्याधि को बलवान् समझना चाहिये । जो व्याधि अल्प हेतुओं द्वारा उत्पन्न होती है और जिसमें पूर्वरूप और रूप अल्प अंशमें प्रकट होते हैं वह व्याधि अबल अर्थात् बल हीन होती है । व्याधि के बलाबल द्वाराभी संप्राप्ति की विभिन्नता होती है ।

व्याधि का काल ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥
इति प्रोक्तो निदानार्थः
तं व्यासेनोपदेक्ष्यति ॥ १२ ॥

अर्थ–रात, दिवस, ऋतु और भोजन इनके अवयवों द्वारा दोषके अनुसार व्याधि का काल जाना जाता है । जैसे रात और दिनका प्रथम अंश कफका है । मध्य अंश पित्तका है और शेष अंश वायुका है । वर्षा ऋतुमें वायु प्रकुपित होता है । शरत्काल में पित्त और वसंतऋतुमें कफ कुपित होता है । इसी तरह भोजन का प्रथम अंश कफका है । मध्यम अंश अर्थात् परिपाक का समय पित्त का है और शेष अंश अर्थात् सम्यक् परिपकावस्थन वायुका प्रकोप काल है । इस तरह जिस जिस दोषका जो जो प्रकोपकाल कहा है उसी उसी कालमें उसी उसी दोषसे उत्पन्न हुई व्याधि प्रकुपित होती है । जैसे रात्रिके पूर्वभागमें वा दिनके प्रथम भागमें वसंतऋतु में भोजन करते ही कफज्वर बल लाभ करता है । इसी तरह वातापित्त का भी जानो । अतएव कालभेद से भी संप्राप्ति भिन्न प्रकारकी होती है ॥

इस जगह निदानार्थ अर्थात् निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति के ल-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षण संक्षेपरीति से वर्णन किये गये हैं। यहां से आगे प्रतिरोगमें इनके लक्षण विशेषरूप से वर्णन किये जांयगे ॥

रोगोत्पत्ति का हेतु।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥

अर्थ–प्रकुपित वात, पित्त और कफ ये तीनों संपूर्ण रोगोंके उत्पन्न होने के निदान अर्थात् कारण हैं। और इन बातादिके प्रकुपित होनेका कारण अनेक प्रकारके अहित पदार्थों का सेवन है।

तीन प्रकार का अहित सेवन।

अहितं त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः।

अर्थ–काल, इन्द्रियार्थ और कर्म इनका तीन प्रकार का हीन, मिथ्या अतिमात्र लक्षण वाला योग अहित होता है। इसका पूर्ण वृत्तांत सूत्रस्थान में "अर्थैरसात्म्यः संयोगः कालः कर्मच दुष्कृतम्" इस श्लोक से लिखागया है।

वायु के कोप का कारण।

तिक्तोषणकषायाल्परूक्षप्रमितभोजनैः १४॥
धारणोदीरणनिशाजागरात्युच्चभाषणैः।
क्रियातियोगभीशोकचिंताव्यायाममैथुनैः ॥
ग्रीष्महोरात्रिभुक्तांते प्रकुप्यति समीरणः।

अर्थ–पित्त, कटु, कषाय, अल्प, तथा प्रमित भोजन) भोजन काल के व्यतीत होने पर भोजन करना), मलमूत्रादि के उपस्थित वेग को रोकना, अनुपस्थित वेग को बलपूर्वक निकालना, रात में जगना, चिल्लाकर बोलना, क्रियातियोग (वमन विरेचन और आस्थापनादि क्रियाका अति सेवन), भय, शोक, चिंता, व्यायाम, मैथुन, इन संपूर्ण कारणों से, तथा वर्षा ऋतु के प्रारंभ में, दिन और रात्रि के शेष भाग में, तथा भोजन के अंत में वायु प्रकुपित होता है।

पित्तके कोप का कारण।

पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णपटुक्रोधविदाहिभिः
शरन्मध्यान्हरात्र्यर्धविदाहसमयेषु च।

अर्थ–कटु, अम्ल, लक्षण, तीक्ष्ण, उष्ण और विदाही पदार्थों का सेवन, तथा क्रोध इन सब कारणों से शरद ऋतु में, मध्यान्ह में, आधीरात के समय और आहार की पच्यमान अवस्था में पित्तका प्रकोप होता है।

कफ के कोपका कारण।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यंदिशीतलैः ॥
आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नातिबृंहणैः
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसंतयोः १८ ॥
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा-
द्वंद्वे तु संकरात्।

अर्थ–मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरु, अभिष्यन्दी और शीतल पदार्थों का भोजन, सुखपूर्वक गद्दी तकिया लगाये बैठे रहना, अजीर्ण, दिन में सोना, अति बृंहण पदार्थों का अत्यन्त सेवन, वमन विरेचन का अतियोग, इन सब कारणों से तथा भोजन के प्रथम काल में, वसंत ऋतु में प्रातःकाल के समय वा रात्रि के पूर्वभाग में कफ प्रकुपित होता है।

द्वन्द्व दोष अर्थात् वातपित, वातकफ और कफपित्त ये दो दोषों के मिले हुए

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कारणों से उत्पन्न होते हैं, जैसे तिक्त और कटु आदि उभय दोषनिर्दिष्ट पदार्थों के सेवन से वातपित्त कुपित्त होते हैं, इसी तरह और भी जानो।

सन्निपात का कारण।

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा-
पुनः ॥ १९ ॥
संकीर्णाजीर्णविषमाविरुद्धाद्ध्यशनादिभिः।
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः २० ॥
पिण्याकमृण्यवसुरापूतिशुष्ककृशामिषैः।
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्ततः ॥ २१ ॥
धातोर्दुष्टात्पुरोवाताद्ग्रहवेशाद्विषाद्गरात्
दुष्टान्नात्पर्वताश्लेषाद्ग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् २२।
मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानां च-
निषेवणात्
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारतः ॥

अर्थ—उक्त तीनों दोषों के प्रकुपित होने के संपूर्ण हेतु जब आपस में मिलजाते हैं तब सन्निपात अर्थात् वात पित्त कफ तीनों का प्रकोप होता है। तथा संकीर्ण भोजन, अजीर्ण, विरुद्ध भोजन, अध्यशन, व्यापन्नमद्य, व्यापन्न पानी, सूखा शाक, कच्ची मूली, पिण्याक (सरसों वा तिल का कल्क) मृत्तिका, यव, सुरा, दुर्गंधितसूखा और कृश पशु का मांस, अन्य त्रिदोषकारक पदार्थ अन्न का परिवर्तन, दूषित धातु, पूर्वकी पवन, भूत्यादि पर क्रोधका आवेश, विषभक्षण, गरभक्षण, दुष्ट अन्न, पर्वताश्लेष, ग्रहद्वारा जन्मनक्षत्र का पीडन, विविध मिथ्यायोग, पापों का आचरण, प्रसववैषम्य (बच्चा जनने के समय विषमता होना), तथा मिथ्या उपचार से सन्निपात अर्थात् त्रिदोष का प्रकोप होता है।

दोषों का विकारकारित्व

प्रतिरोगमिति कृत्स्ना रोगाधिष्ठानगामिनीः।
रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ,, ॥

अर्थ—प्रत्येक रोग में पूर्वोक्त संपूर्ण कारणों से दोष प्रकुपित होकर रोगों के रसरक्तादि स्थानों में गमन करनेवाली और रसवाहिनी नाडियों द्वारा शरीर में शीघ्र विकार उत्पन्न करदेते हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां मथुरा निवासि श्रीकृष्णलाल कृत भाषा टीकायां निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

अथाऽतो ज्वरनिदानम् व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से ज्वरनिदान की व्याख्या करेंगे।

ज्वर का निर्देश।

"ज्वरो रोगपतिः पाप्मा-
मृत्युरोजोऽशनोऽतकः।
क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः॥
जन्मांतयोर्मोहमयः संतापात्माऽपचारजः।
विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्तते २॥

अर्थ—ज्वर रोगों का अधिपति, पाप भाव, मृत्युस्वरूप, संपूर्ण धातुओं के आप्यायित ओज को खानेवाला, मारक, क्रोधात्मक (दक्षसे अपमानित हुए महेश्वर के क्रोध से उत्पन्न), दक्षके यज्ञका नाश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करनेवाला, रुद्र के ऊर्ध्वनयन से उत्पन्न, जन्म और मरण काल में मोहोत्पादक, संतापात्मक और अपचारज और दुश्चिकित्स्य होता है। यह अनेक योनियोंमें अनेक नामों से अवस्थिति करता है।

ज्वरके भेद।

स जायतेऽष्टधा दोषैः पृथग्मिश्रैः समागतैः। आगंतुश्च

अर्थ–यह संताप लक्षणवाला ज्वर आठ प्रकार का होता है, यथा—पृथक् पृथक् दोषों से तीन प्रकारका, दो दो दोषों के मिलने से तीन प्रकार का, तीनों दोषों के मिलने से एक प्रकार का और आगन्तु एक प्रकारका होता है, जैसे वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज सान्निपातिक कफज, और आगन्तुज।

ज्वर की संप्राप्ति।

मलास्तत्र स्वैः स्वैर्दुष्टाः प्रदूषणैः ॥३॥
आमाशयं प्रविश्याममनुगम्य पिधाय च।
स्रोतांसि पक्तिस्थानञ्च निरस्य ज्वलनं बहिः।
सह तेनाभिसर्पंतस्तपंतः सकलं वपुः।
कुर्वंतो गात्रमत्युष्णं ज्वरं निर्वर्तयंति ते ५॥
स्रोतोविबंधात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते।

अर्थ–वातादि दोष अपने अपने प्रकोपन हेतुओं से कुपित होकर ज्वर उत्पन्न करते हैं जैसे तिक्तादि से वात, कटुकादि से पित्त, और मधुरादि से कफ, इसी तरह द्वन्द्व और सन्निपात में भी जानना चाहियें आगंतु से भी दोष प्रकुपित होकर ज्वर उत्पन्न करते हैं यद्यपि आगंतुज ज्वरका हेतु आगंतुक ही है, तथापि इसमें वातादिक ही हेतु है। क्योंकि वातादि के सिवाय व्याधि का होना ही असंभव है, अंतर केवल इतना है कि दोषज व्याधि में प्रथम वातादिक कुपित होते हैं फिर शारीरक वेदना होती है। आगंतुक व्याधि में प्रथम शारीरक वेदना होकर पीछे दोष कुपित हैं। ज्वरके उत्पन्न होने का सिलसिला यह है कि मल अपने प्रकोपन हेतुओं से कुपित होकर आमाशय में प्रविष्ट होकर आमका अनुगमन करके रसादिवाहीस्रोतों को आच्छादित कर देता है, और पाकस्थानसे जठराग्नि को बाहर निकालकर, उसी अग्निके साथ संपूर्ण शरीर में फैलकर संपूर्ण शरीर को तप्यायमान करके देहको अत्यन्त उष्ण करके ज्वरको उत्पन्न करता है। ज्वरमें स्रोतोंके

+हाथी घोडे गौ पक्षी आदि में ज्वरके भिन्न भिन्न नाम होते हैं। यथाः—पाकलस्तु यथेभानाममितापो हयेषुच। गवां गौकर्णकश्चैव पक्षिणां मकरस्तथा। वांतादानामलर्कः स्या वृक्षेष्विन्द्रमदः स्मृतः। ओषधीषु तथा ज्योतिश्चूर्णको धान्यजातिषु। जलेषु नीलिका भूमौ चूषो म्लेच्छानां ज्वरो मतः। ऋते देवमनुष्येभ्यो नान्यो विषहते तु तम्। शेषाः सर्वे विपद्यंते तिर्यग्योनौ ज्वरार्दिताः। कर्मणा लभते जंतुर्देवत्वं मानुषादपि। पुनश्चैव च्युतः स्वर्गान्मनुष्यमभिपद्यते। तस्मात्सदेवभावाच्च सहते मानवो ज्वरम्। अर्थात् हाथी के ज्वर को पाकल घोडेके ज्वर को अभितापक। गौ के ज्वरको गौकर्णक। इसी तरह पक्षियों में मकर, वृक्षों में अलर्क, मछलियों में इन्द्रमद, ओषधियों में ज्योति, धान्यमें चूर्णक। जलमें नीलिका, भूमिमें चूष और मनुष्यों में ज्वर नाम से बोला जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आच्छादित हो जाने के कारण प्रायः पसीने नहीं आते हैं।

ज्वर का पूर्व रूप।

तस्य प्राग्रूपमालस्यमरतिर्गात्रगौरवम् ॥ ६॥
आस्यवैरस्यमरुचिर्जृम्भा स्रास्राकुलाक्षता।
अंगमर्दोऽविपाकोऽल्पप्राणता बहुनिद्रता
रोमहर्षो विनमनं पिंडिकोद्वेष्टनं क्लमः।
हितोपदेशेष्वक्षान्तिः प्रीतिरम्लपटूषणे ८ ॥
द्वेषः स्वादुषु भक्ष्येषु तथा बालेषु तृड् भृशम्।
शब्दाग्निशीतवातांबुच्छायोष्णेष्वनिमित्ततः
प्रेक्षा द्वेषश्च तदनु ज्वरस्य व्यक्तता भवेत्।

अर्थ—ज्वरके प्राग्रूप ये हैं, यथा—आलस्य, अरति (चित्त की अनवस्थिति) शरीर में भारापन, मुख में विरसता, अरुचि जंभाई, आंखों का डबडबाना और आकुलता अंगमर्द, अविपाक (भुक्त अन्नका पचना) बलकी अल्पता, नींदका बहुत आना, रोम खडे होना, अंगों का झुकना, पिंडलियों में ऐंठन, क्षान्ति हितकारी बातों का न मानना खट्टी नमकीन और चरपरी वस्तुओं का अच्छा लगना, मिष्ट भोजनों में द्वेष, बालकों की तोतली बोली को अप्रिय मानना, प्यास का अधिक लगना, तथा शब्द, अग्नि, शीत, वात, जल, छाया और उष्ण इनमें विना कारण ही कभी प्रीति और कभी अप्रीति होती है जैसे कभी अप्रिय शब्द पर भी प्रसन्न होना और कभी वेणुवीणादि के प्रिय शब्दों से भी द्वेष करना। ये सब ज्वर के पूर्वरूप हैं अर्थात् इसके पीछे ज्वर व्यक्तरूप होजाता है।

वातजज्वर के लक्षण।

आगमापगमक्षोभमृदुतावेदनोष्मणाम् १० ॥
वैषम्यं तत्रतत्रांगे तास्ताः स्युर्वेदनाश्चलाः।
पादयोःसुप्तता स्तंभः पिंडिकोद्वेष्टनं श्रमः ॥
विश्लेष इव संधीनां सादः ऊर्वोः कटीग्रहः।
पृष्ठ क्षोदमिवाप्नोति निष्पीडयत इवोदरम् ॥
छिद्यते इव चास्थीनि पार्श्वगानि विशेषतः।
हृदयस्य ग्रहस्तोदः प्राजनेनेव वक्षसः १३ ॥
स्कंधयोर्मथनं बाह्वोर्भेदः पीडनमंसयोः।
अशक्तिर्भक्षणे हन्वोर्जृंभणं कर्णयोःस्वनः १४
निस्तोदः शंखयोर्मूर्ध्नि वेदना विरसास्यता।
कषायास्यत्वमथवा मलानामप्रवर्तनम् ॥
रूक्षारुणत्वगास्याक्षिनखमूत्रपुरीषता।
प्रसेकारोचकाश्रद्धाविपाकास्वेदजागराः ॥
कंठौष्ठशोषस्तृट् शुष्कौ छर्दिःकासौविषादिता
हर्षो रोमांगदंतेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ॥ १७॥
भ्रमः प्रलापो घर्मेच्छा विनामश्चानिलज्वरे।

अर्थ—वातज ज्वर में ज्वर के आगमन और मोक्ष में विषमता, तथा ज्वर के क्षोभ, मृदुता, वेदना और गरमाई में विषमता अर्थात् इनमें कभी अधिकता और कभी न्यूनता होती है तथा जिस जिस अंगमें जो जो वेदना नीचे लिखी गई हैं उन में भी चंचलता होती है, जैसे पांवों का सुन होजाना, स्तंभता, पिंडलियों का उद्वेष्टन, पसीना, संधियों का विश्लेष, उस में शिथिलता, कमर का जकडना, पीठ में कूटने कीसी वेदना, जठर में पीडत करने की सी वेदना, अस्थियों में विशेष करके पसलियोंमें हडफूटन, हृदय में जकडना, वक्षः स्थल में चाबुक की सी, चमचमाहट, दोनों कंधों में मथने की सी, दोनों बाहु में भेदन कीसी अंसफलक में पीडन करने की सी वेदना होती है, हनुमें भोजन करने की अशक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और जृंभण, कानों में शब्द, कनपटी में निस्तोद, मूर्धा में वेदना, मुख में विरसता मुख में कसीलापन, मलमूत्रादि का अप्रवर्तन, त्वचा, मुख, आंख, नख, मूत्र और पुरीष में रूखापन और लडाई, मुखप्रसेक अरुचि, अश्रद्धा, अविपाक, पसीने न आना निद्रानाश, कंठशोष, ओष्ठशोष, तृषा, सूखी वमन (उबकाई), सूखी खांसी, विषादता रोमहर्ष, अंगहर्ष, दंतहर्ष, कंपन, हिक्का का रुकना, भ्रम, प्रलाप, धूप की इच्छा और शरीर विनमन, ये सब लक्षण वातज ज्वर में होते हैं।

पित्तज्वर के लक्षण।

युगपद्व्याप्तिरंगानां प्रलापः कटुकास्यता ॥
नासास्यपाकः शीतेच्छा भ्रमो मूर्च्छा-
मदोऽरतिः।
विदग्धस्रंसः पित्तवमनं रक्तष्ठीवनमम्लकः १९
रक्तकोठोद्गमः पीतहरितत्वं त्वगादिषु।
स्वेदो निश्वासवैगंध्यमतितृष्णा च पित्तजे ॥

अर्थ-पित्तज्वर में एक साथही संपूर्ण शरीर में संताप होता है तथा प्रलाप, मुखमें कडवापन, नासापाक, मुखपाक, शीतेच्छा, भ्रम, मूर्च्छा, मद अरति, पुरीषभेद, पित्त की वमन, थूकके साथ रुधिर आना खट्टी डकार, लाल चकत्तों का प्रादुर्भाव, त्वचा, नख, मुख, आंख आदि में पीलापन वा हरापन, पसीना निःश्वास में दुर्गंध और अति तृषा, ये सब पित्तजज्वर के लक्षण हैं।

कफज्वर के लक्षण।

विशेषादरुचिर्जाड्यं स्रोतोरोधोऽल्पवेगता
प्रसेको मुखमाधुर्यं हल्लेपश्वासपीनसौ: २१
हल्लासश्छर्दनं कास स्तंभः श्वैत्यं त्वगादिषु
अंगेषु शीतपिटिकास्तंद्रोदर्दः कफोल्बणे २२

अर्थ-कफज्वर में अन्न में विशेष अरुचि जडता, स्रोतों का अवरोध, ज्वर का सूक्ष्म वेग, प्रसेक, मुख में मीठापन, हृदयमें कफ का लेपन, श्वास, पीनस, हृल्लास, वमन, खांसी, स्तंभता, त्वगादि में सफेदाई, देह के अवयवों में शीतजनित पिडिका, तंद्रा, उर्दद होते हैं। ये कफज ज्वर के लक्षण कहे गये हैं।

दोषों के सामान्य लक्षण।

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा।

अर्थ-वातादि जिन जिन दोषों का जो जो प्रकोप काल कहागया है उस उस काल में अनुत्पन्न वातादिक ज्वरों की उत्पत्ति होती है और उत्पन्न व्याधियों की वृद्धि होती है।

सामान्य से भिन्न दो लक्षण।

निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता २३

अर्थ-आहार विहारादि जिन जिनकारणों से रोग की उत्पत्ति होती है उसी उस कारण से अनुपशय अर्थात् दुख का पैदा होना तथा विपरीत कारण में उपशय अर्थात् सुखोत्पादकता होती है।

संसर्गजज्वर के लक्षण।

यथा स्वलिंगसंसर्गे ज्वर संसर्गजोऽपि वा

अर्थ-वातज्वर, कफज्वर, और पित्तज्वर के जो अलग अलग लक्षण कहे गये हैं उनमें से दो दो दोषों के लक्षण के मिलने का नाम लिंगसंसर्ग है। यथायोग्य लिंगसंसर्ग में उत्पन्न हुए ज्वर को संसर्गज कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातपित्तज ज्वरके लक्षण ।

शिरोऽर्तिर्मूर्च्छाऽवमिर्दाहमोह-
कण्ठास्यशोषारतिपर्वभेदाः ।
उद्विद्धतातृड्भ्रमरोमहर्षा-
जृंभातिवाक्त्वं च चलात्सपित्तात् ॥ २४ ॥

अर्थ-वातपित्तज ज्वरमें सिरदर्द, मूर्च्छा, वमन, दाह, मोह, कंठशोष, मुखशोष, अरति, संधियों में दर्द, नींद का न आना, तृषा, भ्रम, और रोमहर्ष, जंभाई और बहुत बकना, ये लक्षण होते हैं ।

वातकफके लक्षण ।

तापहास्यरुचिपर्वशिरोरुक्-
पीनसश्वसनकासविबंधाः ।
शीतजाड्यतिमिरभ्रमतंद्राः-
श्लेष्मवातजनितज्वरलिंगम् ॥ २५ ॥

अर्थ-वातकफज ज्वरमें तापका अभाव, अरुचि, संधियों में दर्द, शिरोवेदना, पीनस, श्वास, खांसी, मलमूत्रका विबंध, शीत, जडता, तिमिर, भ्रम, तंद्रा, ये सब लक्षण होते हैं

कफपित्त ज्वरके लक्षण ।

शीतस्तंभस्वेददाहाव्यवस्था-
स्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः ।
मोहस्तंद्रालिप्ततिक्तास्यता च-
ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥ २६ ॥

अर्थ-कफपित्त ज्वरमें शीत, स्तंभ, पसीना, और दाह इनका अनियम । तृषा, खांसी, कफकीप्रवृत्ति, पित्तकी प्रवृत्ति, मोह, तंद्रा, मुखमें लिप्तसावट और कडवापन, ये सब लक्षण होते हैं ।

सान्निपात ज्वरके लक्षण ।

सर्वैर्जो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः ।
तद्वच्छीतं महानिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽतिनैव वा
गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् २८ ॥
साश्रुणी कलुषे रक्ते भृशं लुलितपक्ष्मणी ।
अक्षिणी पिंडिकापार्श्वमूर्धपर्वास्थिरुग्भ्रमः ॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवाचितः ।
परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुःस्रस्तांगसंधिताः
रक्तपित्तकफष्ठीवो लोलनं शिरसोऽतिरुक् ।
कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्
हृद्व्यथा मलसंसर्गःप्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा।
स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापिता
दोषपाकदिचरात्तंद्रा प्रतंत कण्ठकूजनम् ।
सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हृतौजसम् ॥

अर्थ-सन्निपातज अर्थात् वात पित्त कफ तीनों दोषों के संसर्ग से उत्पन्न हुए ज्वर में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं । तथा बार बार दाह और बार बार शीत की प्रबलता होती है । दिनमें घोर निद्रा, रात्रिमें जागरण, वा दिनरात घोर निद्रा वा सर्वथा निद्राका अभाव, पसीनोंकी अधिकता वा पसीनों का सर्वथा अभाव, गीत, नृत्य, हास्य आदि विकृत, चेष्टाओं का होना, तथा आखोंमें आंसू, कलुषता, रक्तता, कुटिल और लुलित पलकों का होना ये लक्षण होते हैं । पिंडलियों में भडकन, पसलियों में दर्द, सिरमें दर्द, संधियों में दर्द. हडफूटन, भ्रम, कानोंमें झनझनाहट और वेदना, कंठमें कांटे खडे होना । जीभमें परिदग्धता, खुरखुरापन और भारापन, अंग संधियों में शिथिलता, थूक के साथ रक्तपित्त और कफ का निकलना, सिरका इधर उधर हिलना, सिरमें तीव्र शूल होना, शरीरमें श्यामवर्ण और रक्तवर्णके गोल चकत्तों का दिखाई दे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ना, हृदयमें वेदना, मलमूत्र की अप्रवृत्ति, अति प्रवृत्ति वा अल्पप्रवृत्ति, मुखमें चिकनापन, बलका नाश, स्वरमें शिथिलता अर्थात् बोलीका मंद होजाना, प्रलाप, बहुत कालमें दोषका परिपाक, तन्द्रा और निरंतर कंठकूजन, ये सब भयंकर लक्षण सन्निपात में होते हैं। इस सन्निपात के दो नाम और भी हैं। एक अभिन्यास, दूसरा हृतौज। यह संपूर्ण धातुओं के सार ओज नामक धातु का परिहरण करता है, इसलिये इसका नाम हृतौज है।

साध्यासाध्य लक्षण।

दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः।
असाध्यः सोऽन्यथा कृच्छ्रो-
भवेद्वैकल्यदोऽपि वा ॥ ३४ ॥

अर्थ-सन्निपातज ज्वरमें जो तीनों दोषों का प्रकोप, मलकी विबद्धता और अग्नि का विशेषरूप से नाश होजाय और इसमें सर्व संपूर्ण लक्षणों का उद्भव हो तो वह असाध्य होता है। इन लक्षणों से विपरीति होने पर कष्टसाध्य वा विकलताकारक होता है। इस कहने का सारांश यह है कि सन्निपात सुखसाध्य होता ही नहीं है।

अन्य प्रकारका सन्निपात ज्वर।

अन्यश्च सन्निपातोत्थो यत्र पित्तं पृथक्
स्थितम्।
त्वचि कोष्ठेऽथवा दाहं विदधाति पुरोऽनुवा

अर्थ-एक और प्रकारका सन्निपात ज्वर होता है, जिसमें पित्त, वात और कफ से पृथक् होकर ज्वरकी प्रथमावस्था में अथवा शेषावस्था में कभी त्वचा और कभी कोष्ठ में स्थित होकर दाह उत्पन्न करता है। पित्त यदि त्वचा में स्थित होता है तो बाहर अधिक दाह और भीतर अल्प दाह होता है, तथा यदि कोष्ठ में स्थित होता है तो भीतर अधिक दाह और बाहर अल्प दाह होता है। पुर और अनु ये दोनों शब्द स्थानविशेष और कालविशेष दोनों की विकल्पना के सूचक हैं।

सन्निपात के भेद।

तद्वद्वातकफौ शीतम्-
दाहादिर्दुस्तरस्तयोः।

अर्थ-जैसे पित्त पृथक् होकर त्वचा वा कोष्ठ में दाह करता है, वैसेही वातकफ पृथक् होकर त्वचा और कोष्ठ में ज्वर की प्रथमावस्था वा शेषावस्था में शीत उत्पन्न करते हैं। इन दोनों प्रकार के सन्निपातों में दाहादि सन्निपात कृच्छ्रसाध्य होता है। कोई २ शीतादि सन्निपात, दाहादि सन्निपात और सन्निपात ऐसे तीन प्रकारका मानते हैं।

शीतादि और दाहादि ज्वरका अंतर।

शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यंदितशोषिते ३६
शीतेशांतेऽम्लकोमूर्छा मदस्तृष्णा च जायते
दाहादौ पुनरंते स्युस्तंद्राष्ठीवनमिश्रमाः ३७

अर्थ-शीतादि सन्निपात में पित्तके द्वारा कफ के स्रावित और शोषित होनेपर शीत शांत होजाता है तथा शीत के शांत होने पर पित्तकी प्रधानता के कारण खट्टी डकार मूर्च्छा, मत्तता और तृषा उत्पन्न होती है, जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रखर तापसे हिम गलकर और सूखकर जाता रहता है और उष्णता की प्रधानता से ग्रीष्म के भाव उत्पन्न होजाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसी तरह दाहादि सन्निपात में कफके द्वारा पित्त प्रशमित होजाता है और दाह के शांत होने पर कफ की वृद्धि के कारण तंद्रा, प्रसेक, वमन और क्लान्ति ये उत्पन्न होते हैं।

आगंतुज ज्वर के चार भेद।

आगंतुरभिघाताभिषंगशापाभिचारतः।
चतुर्धा

अर्थ—आगंतु ज्वर चार प्रकार का होताहै, यथा—अभिघातज, अभिषंगज, शाप, मिशापज और अभिचारज।

अभिघातज के लक्षण।

अत्र क्षतच्छेददाहाद्यैरभिघातजः ३८॥
श्रमाच्च तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं सरुजं कुरुते ज्वरम्॥

अर्थ—उक्त चार प्रकार के आगन्तुक ज्वरों में से अभिघातज ज्वर क्षतच्छेद अर्थात् शस्त्रप्रहार दाहादि और मार्ग चलने आदि के परिश्रम से उत्पन्न होता है। इस अभिघातज ज्वर में विशेष करके वायु रक्त को दूषित करके ज्वर को उत्पन्न करता है, इसमें व्यथा, सूजन, विवर्णता और वेदना होती है। प्रायः ग्रहण से अन्य दोष भी कुपित हो जाते हैं।

अभिषंगज के लक्षण।

ग्रहावेशौषधिविषक्रोधभीशोककामजः।
अभिषंगात्-

ग्रहेणाऽस्मिन्नकस्माद्धासरोदने ४०॥
औषधीगंधजे मूर्छा शिरो रुग्वेपथुः क्षवः।
विषान्मूर्छातिसारास्यश्यावतादाहहृद्गदाः॥
क्रोधात्कंपः शिरोरुक् च प्रलापो भयशोकजे।
कामान्मूर्छोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः

अर्थ—अभिषंगज ज्वर भूतग्रहावेश, औषधगंध विष, क्रोध, भय, शोक, और काम से उत्पन्न होता है। इनमें से भूतग्रह के अभिषंग से जो ज्वर उत्पन्न होता है उस में रोगी अकस्मात् हंसता और रोता है। औषधगंध के अभिषंग से जो ज्वर होता है उसमें मूर्छा, शिरोवेदना, कंपन और छींक आने लगती है विषजज्वर में मूर्छा, अतिसार, मुख में श्यावता, दाह और हृद्रोग होते हैं। क्रोधज ज्वर में कंपन और शिरोवेदना; भयज और शोकज ज्वर में प्रलाप; कामज ज्वर में भ्रम, अरुचि, दाह, तथा लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धैर्य का नाश हो जाताहै॥

ग्रहादिज्वर में सन्निपात।

ग्रहादौ सन्निपातस्य भयादौ मरुतस्त्रये।
कोपः कोपेऽपि पित्तस्य-

अर्थ—ग्रहावेषज, औषध गंधज और विषज ज्वर में त्रिदोष का प्रकोप होता है; भयज, शोकज और कामज ज्वर में वायु का प्रकोप होताहै, इसी तरह क्रोधज ज्वरमें पित्त का प्रकोप होता है। अपि शब्द से वात का भी कोप होता है।

शापाभिचारज ज्वर।

यौ तु शापाभिचारजौ॥ ४३॥
सन्निपातज्वरौ घोरौ तावसाध्यतमौ मतौ।

अर्थ—अन्य सान्निपातज ज्वरों में जो अभिशापज और अभिचारज हैं, ये बडे भयंकर और असाध्य होते हैं।

मंत्रोत्पन्नज्वर के लक्षण।

तत्राभिचारिकैर्मंत्रैर्ह्रियमाणस्य तप्यते ४४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः।
सदाहमूर्छैर्मस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ४९ ॥

अर्थ–अथर्ववेदोक्त अभिचारक मंत्रों द्वारा जिस पर मारण प्रयोग कियाजाता है उस का नाम लेलेकर आहुति दीजाती है। उस हूयमान मनुष्य का मन प्रथम संतप्त होताहै पीछे देह अभितप्त होती है, तत्पश्चात् विस्फोट, तृषा, भ्रम, दाह, और मूर्च्छा इनसे युक्त ज्वर प्रतिदिन बढता है ॥

संक्षेप से ज्वर के दो भेद।

इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः
समासाद्द्विविधस्तु सः।
शारीरो मानसः सौम्यस्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः
प्राकृतो वैकृतः साध्योऽसाध्यः सामो-
निरामकः।

अर्थ–पूर्वोक्त प्रकार से ज्वर आठ प्रकार का होता है, फिर वही ज्वर संक्षेप से दो दो प्रकार का होता है, यथा (१) शारीरक और मानसिक। (२) सौम्य और तीक्ष्ण। (३) अंतराश्रय और बहिराश्रय। (४) प्राकृत और वैकृत। (५) साध्य और असाध्य। (६) साम और निराम।

शारीरमानस ज्वर।

पूर्वं शरीरे शारीरे तापो मनसि मानसे ५७

अर्थ–शारीरक ज्वर में प्रथम शरीर में फिर मन में ताप होता है। इसी तरह मानस ज्वर में प्रथम मनमें पीछे शरीर में ताप होता है ॥

सौम्य और तीक्ष्णज्वर।

पवने योगवाहित्वाच्छीतं श्लेष्मयुते भवेत्।
दाहः पित्तयुते मिश्रे-

अर्थ–वायु योगवाही होता है, यह जिस दोष से मिलता है, उसी दोषका स्वभाव इसमें आजाता है। जब यह सौम्यगुण विशिष्ट कफ से युक्त होता है तब ज्वर में शीत और जब तेजोगुणविशिष्ट पित्त से मिलता है तब दाह, और जब पित्तकफ से युक्त होता है तब बारबार कभी दाह और कभी शीत उत्पन्न करता है। इसलिये वातकफ ज्वर सौम्य और वातपित्तज्वर तीक्ष्ण होता है।

अंतःबहिराश्रय ज्वर।

अंतः संश्रये पुनः ॥ ४८ ॥
ज्वरेऽधिकविकाराः स्युरंतःक्षोभो मलग्रहः।
बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च सुखाध्यता ॥

अर्थ–अंतराश्रय ज्वर में अंतःविकार अधिक होते हैं, तथा तीव्रदाह, और मल मूत्रादि का विबंध होता है। बहिराश्रय ज्वर में केवल बाहर ही ताप होता है, इसमें तीव्रदाह और मलादि की विबद्धता नहीं होती है। इसलिये बहिर्वेगज्वर सुखसाध्य और अंतराश्रय ज्वर दुःसाध्य होता है।

प्राकृतवैकृत ज्वरके लक्षण।

वर्षाशरद्वसंतेषु वातादेः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च-
प्राकृतोऽनिलात् ॥ ५० ॥

अर्थ–वर्षा, शरत् और वसंत काल में यथाक्रम वातादि तीनों दोषों द्वारा जो ज्वर होता है उसको प्राकृतज्वर कहते हैं अर्थात् वर्षाकाल में वातजज्वर प्राकृत होता है, शरत्काल में पित्तज्वर और वसंतकालमें कफ ज्वर प्राकृत होता है इनसे विपरीत लक्षणवाला अर्थात् वर्षादि ऋतु में वातादि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रम से न होनेवाला ज्वर वैकृत होता है, जैसे वर्षा में पित्तज वा कफजज्वर । प्राकृत ज्वर सुखसाध्य और वैकृतज्वर दुःसाध्य होते हैं; प्रायः प्राकृतज्वर भी जो वात से उत्पन्न होता है दुःसाध्य होता है ।

वर्षादि ऋतुओं में ज्वरका कारण ।

वर्षासु मारुतो दुष्टःपित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् कुर्यात्-

पित्तं च शरदि तस्य चानुबलं कफः ५० ॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।

अर्थ—वर्षाकाल में वायुकुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करता है तथा पित्त कफ उसके अनुबल होते हैं । शरत्काल में पित्त कुपितहोकर ज्वरको उत्पन्न करता है और कफ उसके अनुबल होता है । इन दोनोंके स्वभाव करके उस प्राकृतज्वर में लंघन करने से भय नहीं होता है, पित्त और श्लेष्मा का स्वभाव द्रव है और द्रवधातु लंघन को सहन कर सकते हैं । और काल भी दो प्रकार का होता है एक विसर्गकाल और दूसरा आदानकाल । वर्षा शरद और वसंत ये तीनों ऋतु विसर्गकाल हैं । इस काल में चन्द्रबल की अधिकतासे प्राणी स्वाभाविक ही बलिष्ट होते हैं, इसलिये वे उपवासको सहन करसकते हैं, इसी तरह आदानकाल में सूर्यके बल से प्राणी दुर्बल होकर अधिक उपवास को नहीं सह सकते हैं । अनुबल का यह तात्पर्य है कि जैसे कोई स्वतंत्र राजा हाथी रथ, घोडा और सेनाको लेकर किसी वैरी से युद्ध में प्रवृत्त हो और पीछे से और सेना सहायता को पहुंचे । इस सहायक सेना का नाम अनुबल है । इसी तरह ज्वरोत्पादक स्वतंत्र पित्त के बलकी वृद्धि शरत्काल में कफ करता है ।

वसंत में ज्वर का कारण ।

कफो बसन्ते तमपि वातापित्तं भवेदनु ५२ ॥

अर्थ--वसंत कालमें कफ कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करता है तथा वात और पित्त उसके अनुबल होते हैं । वर्षा और शरद में कफ को अनुबलत्व और काल को विसर्गत्व होनेसे धातुका उपचय नहीं होता है किंतु वसंतकालमें वातपित्त का अनुबल और आदान काल होने से धातु का अपचय अवश्य होता है । इसलिये वसंत कालमें अनशन से भयकी शंका रहती है ।

साध्यासाध्य ज्वर के लक्षण ।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।
सर्वथा विकृतिज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः ५३॥

अर्थ—जो रोगी बलवान् हो । ज्वर अल्पदोष से उत्पन्न हुआ हो और कासादि दस उपद्रवों से रहित हो तो सुखसाध्य होता है । जैसे रोगीका जैसा ज्वर असाध्य होता है वह विकृतविज्ञानीय शारीराध्याय में वर्णन कर दिया गया है ।

साम ज्वर के लक्षण ।

ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमग्लानिर्बहुमूत्रता ।
न प्रवृत्तिर्न विड् जीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः

अर्थ—इस ज्वरमें प्रलाप और भ्रमादिक की तीव्रता, अग्लानि, बहुमूत्रता, मलकी अप्रवृत्ति, वा अजीर्णता और क्षुधा न लगना ये सब लक्षण प्रकुपित होते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पच्यमान ज्वरके लक्षण।

ज्वरवेगोऽधिकं तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशःपच्यमानस्य लक्षणम्॥

अर्थ–ज्वर की पच्यमान अवस्थामें ज्वर का वेग, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मल की प्रवृत्ति और उत्क्लेश इनकी अधिकता होती है।

निरामज्वर के लक्षण।

जीर्णतामविपर्यासात्सप्तरात्रं च लंघनात्।

अर्थ–सामज्वर के लक्षणों से विपरीत लक्षणों के होने पर ज्वर की जीर्णता जाननी चाहिये। जैसे ज्वरके उपद्रवों में मृदुता, ग्लानि, अल्पमूत्रता, पक्व मलकी प्रवृत्ति, क्षुधा की चैतन्यता। इस तरह सात रात्रि लंघन करने के पीछे आठवां दिन भी निराम होने का लक्षण है, क्यों कि कहा भी है "सप्ताहेन तु पच्यंते सप्त धातुगता मलाः। निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि"। अर्थात् रसरक्तादि सात धातुओं में गये हुए मल सात दिनमें पचजाते हैं, इसलिये आठवें दिन ज्वर निराम होजाता है।

ज्वर के पांच भद।

ज्वरः पंचविधः प्रोक्तो मलकालबलावलात्॥
प्रायशः सन्निपातेन भूयसा तूपदिश्यते।
संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ५७

अर्थ-वातादि मलों के पूर्वाह्नादि काल और बलाबल के अनुसार ज्वर पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—संतत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चतुर्थक। विशेष करके ये संततादि ज्वर सन्निपात से ही होते हैं। इसमें भी जिस दोष की अधिकता होती है उसी नामसे वह ज्वर बोला जाता है, जैसे वातज्वर, पित्तज्वर इत्यादि।

संततज्वर की संप्राप्तिके लक्षण।

धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसां व्यापिनो मलाः।
तापयंतस्तनुं सर्वां तुल्यदूष्यादिवर्धिताः ५८
बलिनो गुरवस्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः।
संततं निष्प्रतिद्वंद्वा ज्वरं कुर्युः सुदुःसहम्॥

अर्थ–धातु, मूत्र और विष्ठा इनके बहाने वाले स्रोतों में व्याप्तहुए संपूर्ण देह को तपाते हुए समानगुणविशिष्ट दूष्य पदार्थों तथा देश, ऋतु और प्रकृतिद्वारा वर्द्धित बलवान, भारी, स्तब्ध, और विशेषरूपसे रसादि में आश्रित होकर प्रतिद्वन्द्वता से रहित वातादि दोष दुस्सह संततज्वर को उत्पन्न करते है।

ज्वरोष्मा का मलको क्षपनत्व।

मलं ज्वरोष्मा धातून्वा सं शीघ्रं क्षपयेत्ततः

अर्थ–अनलधर्म ज्वरोष्मा (ज्वरकीगर्मी) कभी मल और कभी धातुओंका शीघ्र ही क्षय करदेती है क्योंकि संपूर्ण वस्तुओं के क्षय करदेने का इसका स्वभावहै। जो ज्वरोष्मा मलके क्षयकरने के लिये उद्यत होती है तो निराम लक्षण से जानी जाती है, जैसे–संपूर्ण स्रोतों का असंरोध, बलवत्ता देह में हलकापन, वायु का अनुलोमन, वाणी मन और देह के कार्यों में आलस्य का न होना, जठराग्नि का उद्दीपन मुखमें विशदता, मूत्रपुरीषादि मलका प्रवर्तन, भूख का लगना, और अग्लानि। इन लक्षणों के उत्पन्न होने से जान लेना चाहिये कि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्वरोष्मा मलका क्षय करने के लिये उद्यत है। इन लक्षणों से विपरीत स्रोतोरोधादि दोषोपक्रमणीय अध्याय में कहे हुए लक्षणों के उत्पन्न होने पर समझलेना चाहिये कि ज्वरोष्मा धातुओं का क्षय करनेके लिये उद्यत है।

ज्वरकी स्थिति और अवधि।

सर्वाकारं रसादीनां शुद्धयाऽशुद्धया-
ऽपिवा क्रमात्॥ ६०॥
वातपित्तकफैः सप्तदशाद्दादशवासरान्।
प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च
इत्यग्निवेशस्य मतं हारीतस्य पुनः स्मृतिः।
द्विगुणा सप्तमी यावन्नवम्येकादशी तथा॥
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च।

अर्थ—मल और धातुओं के क्षय के कारण से रसादि सातधातु, मल, मूत्र और तीनों दोष इन बारह पदार्थों को ज्वर की ऊष्मा सर्वाकार निःशेष करके शुद्धि वा अशुद्धि द्वारा वात पित्त और कफकी अधिकता से उत्पन्न हुआ संततज्वर सात, दस वा बारह दिन में या तो रोगी को छोडजाता है या मारडालताहै। यह अग्निवेश का मत है, इस सब कहने का भावार्थ यह है कि ज्वरकी ऊष्मा से रसादि बारह पदार्थ क्षय होकर निर्मल शुद्धि होजाती है तो वातभूयिष्ठ संततज्वर सात दिनमें, पित्त भूयिष्ठ दस दिनमें और कफभूयिष्ठ बारह दिनमें रोगी को छोडजाता है और यदि अशुद्धि रहती है तौ वातभूयिष्ठ ज्वर सात दिनमें, पित्तभूयिष्ठ दस दिनमें और कफ भूयिष्ठ बारह दिनमें रोगी को मारडालता है। अधिकतर ज्वर के मोक्ष वा वधकी यही मर्यादा है, कभी कभी कम वा अधिक भी होजाती है।

इस विषय में हारीत का यह मत है कि रोगी के वध वा मोक्ष के लिये चौदह, अठारह और बाईस दिनकी त्रिदोष की मर्य्यादा होती है।

संतत ज्वरमें दीर्घ कालकी अनुवृत्ति।

शुद्धयशुद्धौ ज्वरः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते॥

अर्थ—पूर्वोक्त रसादि धातुओं में ऐसा भी हुआ करता है कि कभी मलशुद्ध हो जाते हैं धातु शुद्ध नहीं होतीं, कभी धातु शुद्ध होजाती है, मल शुद्ध नहीं होते कभी रसरक्तादि में शुद्धि अशुद्धि रहती है तौ इस शुद्धि सहित अशुद्धि के होने पर संतत ज्वर का रोगी के छोडने वा वध करने में उक्त मर्य्यादा से अधिक समय भी लग जाता है।

विषमज्वर के सामान्य लक्षण।

कृशानां व्याधिमुक्तानां-
मिथ्याहारादिसेविनाम्।
अल्पोऽपि दोषो दूष्यादेर्लब्ध्वाऽन्यतमतो-
बलम्॥ ६४॥
सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षयवृद्धिभाक्।

अर्थ—व्याधि से मुक्त होने पर कृश-अवस्था में जो मनुष्य मिथ्या आहार विहार और औषधि आदि का सेवन करता है उस के देह में अल्पबलवाला वा अपिशब्द से महा बलवान वातादि में से कोई एक दोष विषमसंज्ञक ज्वर को उत्पन्न कर देता है, क्योंकि दोष को उस अवस्था में रसरक्तादि दूष्य पदार्थों में किसी एक की और देश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वा ऋतु की सहायता मिलजाती है तथा दोष सविपक्ष और क्षय या वृद्धि से युक्त रहता है।

दोषकी प्रवृत्ति निवृत्ति।

दोषः प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् बली ॥
निवर्तते पुनश्चैष प्रत्यनीकबलाबलः।

अर्थ—ऊपर कहे हुए कृश और मिथ्याहारविहारसेवी मनुष्य के देह में वातादि दोषों में से कोई सा बलवान् दोष (वयअहोरात्रि और भुक्त लक्षणवाले) अपने प्रकोपकाल में संताप उत्पन्न करके अपने व्यापार में प्रवृत्त होताहै अर्थात् संततादिज्वर उत्पन्न करता है परंतु इस कामको वह दोष उसी समय कर सकता है जब उसे अपने पक्षवालोंमें से किसी रसादि दूष्य पदार्थ से सहायता मिलती है और जब बलवान् विपक्षी दूष्य के द्वारा हीनबल होजाता है तब वह दोष अपने व्यापार से निवृत्त हो जाताहै। जैसे बट का बीज जलादि सामग्री से बल को पाकर विशिष्टकालमें अंकुरित होजाता है और जलादि सामग्री के न मिलने पर भूमिपर स्थित रहता है, ऐसे ही विषम ज्वरका उत्पन्न करनेवाला दोष अपने पक्षवाले दूष्य से लब्धबल होकर अपने काम को करता है और विपक्ष दोषके बल से इसकी शक्ति जाती रहती है तब अपने व्यापार को नहीं करता है देह ही में लीन हो जाता है।

ज्वरकी रसादि में लीनता।

क्षीणे दोषे ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते ॥
लीनत्वात्कार्श्यवैवर्ण्यजाड्यादीनावघातिसः

अर्थ—विषमज्वरकारी दोष के क्षीण होने पर सततकादि ज्वर सूक्ष्म होकर रसादि में लीन हो जाता है परंतु सर्वथा नष्ट नहीं होता है। लीन होकर वह दोष कृशता विवर्णता, जडता आदि को धारण करताहै ॥

उक्त विषय में युक्ति।

आसन्नविवृतास्यत्वाल्लोतसां रसवाहिनाम्
आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिर्दोषेण जायते।
संततः सततस्तेन-
विपरीतो विपर्ययात् ॥ ६८ ॥

अर्थ—रसवाही स्रोतों के मुख खुले हुए और निकटवर्ती होने के कारण ज्वर के उत्पन्न करनेवाले दोष उन स्रोतों में शीघ्र प्रविष्ट होकर संपूर्ण शरीर में व्याप्त होजाते हैं, इसी कारण से रसधातु में स्थित संततज्वर निरंतर रहा आता है, उसका विराम नहीं होता है। और उक्त हेतु से विपरीत होने पर अर्थात् रसवाही स्रोतों से रक्तवाही और मेदोवाही संपूर्ण स्रोत दूरवर्ती, सूक्ष्म मुखवाले होते हैं, इसलिये ज्वर के उत्पन्न करने वाले दोष विलंब में प्रविष्ट होते हैं और संपूर्ण देह में भी फैलने नहीं पाते और इसी हेतु से विच्छिन्न काल में सततादि ज्वर को उत्पन्न करते हैं। इसलिये सततादिज्वर संतत ज्वर से विपरीत होता है अर्थात् संतत ज्वर निरंतर होता है सततादि ज्वर विच्छिन्नकाल में होता है।

विषमज्वर का स्वरूप।

विषमो विषमारम्भक्रियाकालोऽनुषंगवान्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–विषम संज्ञक ज्वरका प्रारंभ, क्रिया और काल विषम होता है, तथा यह ज्वर दीर्घकालानुबंधी भी होता है । विषमारंभ, यथाः–यह कभी मूर्द्धा से, कभी पीठसे और कभी जांघ से उत्पन्न होता है । विषमक्रिया, यथाः—कभी शीत से, कभी दाह से । विषमकाल, यथा–कभी पूर्वान्ह में, कभी मध्यान्ह में, कभी अपरान्ह में और कभी अर्द्धरात्र में उपस्थित होता है ।

रक्ताश्रयदोष को सततज्वरकरत्व ।

दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सततं ज्वरम् ॥ अहोरात्रस्य स द्वि स्यात्

अर्थ–प्रायः रक्ताश्रितदोष सततज्वर को उत्पन्न करता है । यह ज्वर अहोरात्र में दो बार होता है अर्थात् दिन में एक बार रात्रि में एक बार, अथवा कभी दिन में दो बार अथवा रात्रिमें दो बार कभी दोनों में दो दो बार होता है ।

अन्येद्यु विषमज्वर के लक्षण ।

सकृदन्येद्युराश्रितः । तस्मिन्मांसवहा नाडीः

अर्थ–दोष मांसवाही नाडी में आश्रित होकर अन्येदु वा अन्येदुष्क नामक विषम ज्वरको उत्पन्न करता है । यह ज्वर दिन रात में एक बार होता है अर्थात् कभी दिन में एक बार अथवा कभी रात्रिमें एक बार होता है ।

तृतीयक ज्वर ।

मेदोनाडीस्तृतीयके ॥ ७० ॥ प्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः सपृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहांतरः स्मृतः ॥

अर्थ–दोष मेदोवाही नाडी में स्थित होकर तृतीयक नामवाले विषम ज्वरको उत्पन्न करता है । यह ज्वर बीच में एक दिनका अंतर देकर होता है, इसे लोक में तिजारी भी कहते हैं । तृतीयक ज्वर तीन प्रकार का होता है, यथा–वातपित्ताधिक्य, कफ पित्ताधिक्य और वातकफाधिक्य । इनमें से वातपित्ताधिक्यवाला तृतीयक ज्वर प्रथम सिर से उत्पन्न होता है, ऐसेही कफपित्ताधिक्य वाला त्रिक से उत्पन्न होकर वहां पीडा करता है । वातकफाधिक्य वाला ज्वर पीठ से त्रिक पर्य्यन्त भाग में उत्पन्न होकर पीठ और त्रिक में वेदना करता है ।

चतुर्थकज्वर की उत्पत्ति ।

चतुर्थको मले मेदोमज्जास्थन्यतमस्थिते । मज्जस्थ एवेत्यपरे प्रभावं स तु दर्शयेत् ॥ द्विधाककेनजंघाभ्यां स पूर्वं शिरसोऽनिलात्

अर्थ–दोष, मेदा मज्जा वा अस्थि इन तीनों धातुओंमें से जब किसी एक धातु में आश्रय करलेता है तब वह चर्तुथक नामक विषमज्वर को उत्पन्न करता है, इसे लोकमें चौथैया कहते हैं । अन्य आचार्यों के मत में केवल मज्जा का आश्रय कर लेनेही पर दोष चर्तुथक ज्वर को उत्पन्न करता है, यह ज्वर दो दिन बीच में देकर आता है, अर्थात् पहिले दिन आकर दो दिन छोड़कर चौथे दिन आता है । चार्तुथक ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है अर्थात् जो कफ से उत्पन्न होता है वह प्रथम जंघा से उत्पन्न होकर सब शरीर में फैल जाता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा जो वात से होता है वह प्रथम सिर में उत्पन्न होकर फिर देहमें फैलता है।

विषमज्वर के तीन भेद।

अस्थिमज्जोभयगते चतुर्थकविपर्ययः ७३ ॥ त्रिधा-

द्वयंह ज्वरयति दिनमेकम् तु मुंचति।

अर्थ– अस्थि और मज्जा इन दोनो धातुओं का आश्रय लेकर दोष चतुर्थक विपर्य्यय नामक अर्थात् चतुर्थक ज्वर के विपरीत लक्षण वाले ज्वरको उत्पन्न करता है, यह सन्निपात से उत्पन्न होने पर भी कभी वातकी अधिकता, कभी पित्तकी अधिकता और कभी कफकी अधिकता से तीन प्रकार का होता है यह ज्वर अस्थि और मज्जा इन दो धातुओं में आश्रित होने के कारण लगातार दो दिन तक रहकर बीच में एक दिनको छोड़ जाता है, फिर दो दिन तक लगातार रहता है।

दोषोंके बलाबलसे ज्वर।

बलाबलेन दोषणामन्नचेष्टादिजन्मना ७४ ॥
ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा।
दोषदूष्यर्त्वहोरात्रप्रभृतीनां बलाज्ज्वरः ॥
मनसो विषयाणां च कालं तम् तम् प्रपद्यते।

अर्थ–जिस जिस समय आहार विहारादि द्वारा वातादिक शारीरक दोषोंका बलाबल होताहै, उसी उसी समय में इसी दोष के बलाबल द्वारा सततादि ज्वर उत्पन्न होतेहैं इसीतरह जिस जिस समय मानस दोष और मानसकार्य का बलाबल होताहै, उसी उसी समय में यह सततादि ज्वर उत्पन्न होतेहैं। इसीतरह वातादि दोष, रसरक्तादि दूष्य, शिशिरादि ऋतु, दिन और रात्रि, प्रकृति मन, तथा शब्दस्पर्श रूपरसगंध इनके बल से सततकादि ज्वर उसी उसी निर्दिष्टकाल में प्राप्त होताहै, इसीसे कभी सततक, कभी अन्येद्युष्क, कभी तृतीयक वा कभी चतुर्थक होजाताहै और कभी चतुर्थक होकर तृतीयक, अन्येद्यु वा सततक होजाताहै।

ज्वर मोक्षकाल का लक्षण।

धातून् प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले विलीयते
ततो नरः श्वसन् स्विद्यन् कूजन् वमति चेष्टते
वेपते प्रलपत्युष्णैः शीतैश्चांगैर्हतप्रभः ७७॥
विसंज्ञेऽज्वरवेगार्तः सक्रोध इव वीक्षते।
सदोषशब्दं च शकृद्द्रवं सृजति वेगवत् ॥

अर्थ–जैसे प्रचंड पवन बंडे जलाशय को हिला देताहै वैसेही ज्वरके मोक्षकाल में वातादि दोष भी रसादि धातुको क्षोभित करके पीछे विलीन होजाताहै। उस समय रोगी श्वास लेताहै। उसके रोम कूपोंसे पसीने निकलतेहैं गलेमें कूजन का सा अव्यक्त शब्द होताहै। वमन करताहै, कभी भूमि और कभी शय्या पर लेटताहै, कांपता है, वृथा बकबाद करताहै, इसका कोई अंग शीतल और कोई उष्ण होताहै मुखकी कांति जाती रहतीहै, ज्वरके वेगसे पीडित होकर संज्ञाहीन होजाताहै और क्रोधित की तरह देखताहै तथा आमसहित शब्द करता हुआ पतला विष्टा करताहै।

विगतज्वर के लक्षण॥

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगि मनोऽन्नलिप्सा-
कंडूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि,, ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—विगतज्वर के ये लक्षण होतेहैं यथा—देहमें हलकापन, क्लान्तिनाश, मोहनाश, तापनाश, मुखपाक, इन्द्रियों में सौष्ठव व्यथारहितता, पसीना, छींक, मनमें सावधानी, अन्नमें रुचि, और मस्तक में खुजली।

इति श्रीअष्टांगहृदये भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो रक्तपित्तकासनिदानम्-
व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम यहांसे रक्तपित्त निदान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

रक्तपित्तके दूषित होनेका कारण ।

"भृशोष्णतीक्ष्णकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः
कोद्रवोद्दालकैश्चान्नैस्तक्रैरतिसेवितैः १ ॥
कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्छिते ।
तेमिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम्

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त तीक्ष्ण अत्यंतकटु, अत्यंत अम्ल, और अत्यंत लवणादि विदाहोत्पादक द्रव्य तथा कोदों, उद्दालक, पित्तकारक द्रव्योंके अत्यंत सेवन से पतले स्वभाववाला पित्त, प्रकुपित रक्त से मिलकर आपसमें समान रूपको प्राप्त होकर सब शरीरमें व्याप्त होजाताहै ।

रक्त की विकृति ।

पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ।
गंधवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ २ ॥

अर्थ—रक्तकी विकृति से अर्थात् पित्त के रक्तसे उत्पन्न होनेके कारण, रक्तके संसर्ग से अर्थात् रक्त और पित्त आपसमें मिलजाने से, पित्त द्वारा रक्तके दूषित होने से और रक्त द्वारा पित्तके दूषित होने से तथा रक्तका जैसा गंध और वर्ण है वैसाही गंध और वर्ण पित्त के होनेसे अर्थात् उक्त सब कारणों से रक्त का पित्तके साथ व्यपदेश होकर रक्तपित्त नाम होता है ।

अधिक रक्त का कारण ।

प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत्

अर्थ-प्लीहा और यकृत ये रक्त के स्थान है, वहीं से उच्छ्रित रक्त अधिक निकलता है ।

रक्तपित्त के पूर्वरूप ।

शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः
छर्दिश्छर्दितवैभत्स्यंकासः श्वासो भ्रमः क्लमः ।
लोहलोहितमत्स्यामगंधास्यत्वं स्वरक्षयः ॥
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ।
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ६ ॥
स्वप्ने तद्वर्णदर्शित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ।

अर्थ—सिरमें भारापन, अरुचि, शीतल वस्तुकी इच्छा, कंठमें धूंआंसा निकलना, खट्टी डकार, वमन, वमितद्रव्यमें दुर्गंधि, खांसी, श्वास, भ्रम, क्लांति, मुखमें लोह, रक्त मछलीकीसी कच्ची गंध आना, स्वर की क्षीणता, नेत्रोंमें लाली, हलदी कासा रंग, अथवा हरापन होना, नील लोहित और पीले रंगों में अंतर न मालूम होना, और स्वप्नमें लालरंग दिखाई देना येसब रक्तपित के पूर्वरूप हैं ।

रक्तपित्त के तीन भेद ।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्योनिगुदैरधः ७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ।.

अर्थ–रक्तपित्त तीन प्रकारका होता है, ऊर्ध्वगामी, अधोगामी और उभयमार्ग गामी इनमें से कुपित हुआ ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त दोनों नाक, कान दोनों आंख और मुख इन सात द्वारों से निकलने लगता है, अधोगामी कुपित रक्त मेढ्र, योनि और गुदा इन तीन द्वारों से निकलता है और उभय मार्गगामी संपूर्ण रोम कूपों से तथा उक्त दसों द्वार से निकलने लगता है ।

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त के कर्तव्य ।

ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधनम् ॥
बहवौषधं च पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ।
अनुबंधी कफो यश्च तत्र तस्यापि शुद्धिकृत्
कषायाः स्वादवोऽप्यस्य विशुद्धश्लेष्मणो-
हिताः ।
किंतु तिक्ताः कषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः॥

अर्थ–कफकी अधिकता से ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त उत्पन्न होता है इसलिये इसका साधन विरेचन है । पित्त की बहुत सी औषध हैं परंतु विरेचन सबमें प्रधान है तथा रक्तपित्त का अनुबंधी कफ होता है और कफकी औषध भी विरेचन है, इनसब हेतुओं से ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्य होता है । स्वरस, कल्क, घृतशीत फांटाद्य कषाय मधुररस युक्त होने पर भी व्याधिकी प्रतिपक्षता के कारण विशुद्ध (वातादि से अदूषित) कफ वाले रोगी के लिये हितकारी होते हैं । फिर तिक्त कषाय जो स्वाभाविक ही कफका नाश करनेवाले हैं ये तो अत्यंत ही हितकर होते हैं ।

अधोगामी रक्तपित्त को याप्यत्व ।

अधो याप्यं चलाद्यस्मात्तच्छर्दनसाधनम् ।
अत्रौषधं च पित्तस्य वमनं न वरौषधम् ।
अनुबंधी चलो यद्वच्छांतयेऽपि न तस्य तत्
कषायाश्च हितास्तस्य मधुरा एव केवलम् ॥

अर्थ–अधोगामी रक्तपित्त वात से उत्पन्न होने के कारण याप्यहोता है । अधोगामी रक्तपित्तकी चिकित्सा वमन होती है पित्तकी चिकित्सा कम होतीहै इसलिये पित्त में वमन कराना उत्तम औषध नहीं है । इस में रक्तपित्त का अनुबंधी वायु होता है वमन इस अनुबंधी वायुका शमन नहीं करतीहै । रक्त पित्त में केवल स्वरसादि मधुर कषाय हितकारी होते हैं । तिक्तादि कषाय वमन के प्रकोपक होने के कारण हितकारी नहीं होते ॥

उभयगामी रक्तपित्त को असाध्यत्व ।

कफमारुतसंसृष्टमसाध्यमुभयाश्रयम् ।
अशक्यप्रतिलोम्यत्वादभावाद्भैषधस्य च ॥

अर्थ–कफ और वायु दोनों से संसृष्ट होने के कारण रक्त पित्त ऊपर और नीचे दोनों ओर प्रवृत होता है, यह उभयमार्गगामी रक्तपित्त असाध्य होता है । ऊर्ध्वमार्ग का प्रतिलोम अधोमार्ग और अधोमार्ग का प्रतिलोम ऊर्धमार्ग होता है इस लिये उभयमार्गगामी रक्त का प्रतिलोमही नही है । इस में वमन विरेचन कुछ भी नही दे सकते हैं । उभयगामी रक्तपित्त में चिकित्सा का भी अभाव है इसलिये यह असाध्य होता है ॥

उक्त कथन का कारण ।

नहि संशोधनं किंचिद्रस्त्यस्य प्रतिलोमगम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शोधनं प्रातिलोम्यं च रक्तपित्ते भिषग्जितम् ॥

अर्थ–रक्तपित्त रोग में प्रतिलोमगामी शोधन ही औषध है अर्थात् जो ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त हो तो विरेचन और अधोगामी हो तो वमन दी जाती है, परंतु उभयमार्गगामी रक्तपित्तका प्रतिलोमही नहींहै जोवमन देतेहैं तो रक्तपित्त की ऊपर को प्रवृत्ति होती है और विरेचन देते है, तो नीचे को प्रवृत्ति होती है इस हेतु से उभयमार्गगामी रक्तपित्त में प्रतिलोमगामी संशोधन औषध का अभाव है । अत एव यह असाध्य होताहै ।

रक्तपित्तमें संशमन का अभाव ।

एवमेवोपशमनं सर्वशो नास्य विद्यते ।
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वजिच्छमनम् हितम् ॥

अर्थ–जैसे उभयमार्गगामी रक्तपित्त का शमन करनेके लिये वमनविरेचन औषधों का अभावहै ॥ वैसेही शमन औषध भी रक्तपित्त का शमन नहीं करसकतीहै । क्यों कि संसृष्ट अर्थात् त्रिदोष में सर्वजित संशमन औषधों का प्रयोग हितकारी होताहै । वह त्रिदोषनाशक शमन संतर्पण और अपतर्पण भेदोंके द्वारा दो प्रकार का होताहै इनमेंसे यदि संतर्पण अर्थात् बृंहणकारक शमन अधोमार्गगामी रक्तपित्त के दोष की अपेक्षा करके वायुकी शांतिके लिये दिया जाय तो वायुकी शांति तो करदेताहै परंतु ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त विकारकारी कफकी वृद्धि करदेता है, और यदि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त की अपेक्षा करके कफके शमनके लिये अपतर्पण का प्रयोग किया जाय तो कफ तो शांत होजाताहै परंतु अधोगामी रक्तपित्त के प्रकोपक वायुको प्रकोपित करदेताहै उभयमार्गगामी रक्तपित्त के शमन करने के लिये नृसिंह रूपवत् कोई ऐसी औषध नहीं जो इसका शमन करती हो, इसलिये यह असाध्य है ।

दोषानुगमन के लक्षण ।

तत्र दोषानुगमनम् सिरास्नव लक्षयेत् ।
उपद्रवांश्चं विकृतिज्ञानतः-

अर्थ–रक्तपित्त में वातपित्त कफका अनुबंध इस तरह जानना चाहिये जैसे सिराव्यध में रक्त के काले, लाल और रूक्षादि लक्षणों द्वारा वातादि दोषों का संबंध वर्णन किया गया है तथा विकृति विज्ञानीयाध्यायोक्त रक्तपित्त में होनेवाले उपद्रवों को जान लेना चाहिये ।

कासको आशुकारित्व ।

तेषु चाधिकम् ॥ १६ ॥
आशुकारी यतः कासस्तमेवाऽतः प्रवक्ष्यति ।

अर्थ–रक्तपित्त के जो उपद्रव कहे गये हैं, उनमें से खांसी सब में, प्रबल हैं, यह रक्तपित वाले रोगी को शीघ्र मार डालती है, इसीलिये पहिले इसका वर्णन किया जायगा ।

खांसी के पांच भेद ।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥

अर्थ–खांसी पांच प्रकार की होती है यथा–वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज ।

खांसी को क्षयोत्पादकता ।

क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सब प्रकार की खांसी चिकित्सा न किये जाने पर क्षय को उत्पन्न करदेती हैं। इन पांच प्रकारकी खांसियोंमें उत्तरोत्तर बलवान् हैं। अर्थात वातकी खांसी से पित्त की, पित्तकी खांसी से कफकी इत्यादि।

कास का पूर्णरूप।

तेषांभविष्यतां रूपं कण्ठे कंडूररोचकः १८ शुष्कपूर्णाभकण्ठत्वम्-

अर्थ–कास रोग के उत्पन्न होने से पहिले कंठमें खुजली, तथा अरुचि होती है और गला ऐसा घिरा हुआ मालूम होताहै जैसे जौ के तुषों से घिर जाता है।

कासरोग की संप्राप्ति।

तत्राधो विहतोऽनिलः।
ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन् कण्ठे चसंसजन्
शिरःस्रोतांसि संपूर्य ततोऽगान्युत्क्षिपन्निव।
क्षिपन्निवाक्षिणी पृष्ठमुरः पार्श्वे च पीडयन्॥
प्रवर्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः।

अर्थ–सब प्रकार के कासरोगमें वायु नीचे विशेष रूप से हत होकर ऊपरको प्रवृत्त होतीहै, तदनंतर क्रमसे हृदय में पहुंचकर कंठ में संसक्त होजातीहै, तदनंतर सिर के स्रोतों में भरकर पीछे संपूर्ण अंगों को ऊपर की ओर फेंकती है। आंखें बाहर को निकालती है, पीठ, वक्षःस्थल और पसली में पीड़ा करती हुई फूटे हुए कांसी के पात्रकी सी ध्वनि करती हुई मुखसे निकलती है।

खांसी में अनेक शब्द।

हेतुभेदात्प्रतीघातभेदो वायोः सरंहसः २१॥
यद्वजाशब्दवैषम्यं कासानां जायते ततः।

अर्थ–निदान के भेदसे खांसी के उत्पन्न करनेवाले बलवान् वायुका प्रतिघात भेद होता है इसी लिये सब प्रकार की खांसियों में शूल और शब्द, भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं।

वातकास का निदान।

कुपितो वातलैर्वातः शुष्कोरः कण्ठवक्त्रताम्
हृत्पार्श्वोरः शिरःशूलं मोहक्षोभस्वरक्षयान्।
करोति शुष्कं कासं च महावेगरुजास्वनम्॥
सोऽगहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाऽल्पतां-
व्रजेत्।

अर्थ–अत्यंत वातकारक हेतुओं से वायु कुपित होकर वक्षःस्थल, कंठ और मुखमें शुष्कता (खुश्की) करता है। हृदय, पसली, वक्षःस्थल और सिरमें शूल उत्पन्न करता है। मोह, क्षोभ और स्वरमें क्षीणता करता है तथा बडे वेग, पीडा और शब्द के साथ अंग में रोमहर्ष करता हुआ सूखे कफको कठिनता से निकालकर थोडी देर के लिये आराम करदेता है।

पित्तकास का निरूपण।

पित्तात्पीतांक्षिकफता तिक्तास्यत्वं ज्वरो-
भ्रमः॥ २४॥
पित्तासृग्वमनम् तृष्णा वैस्वर्यं धूमको मदः।
प्रततं कासवेगेन ज्योतिषामिव दर्शनम् २५

अर्थ-पित्तकीखांसीमें आंख और कफ पीले पडजाते हैं। मुखमें तिक्तता, ज्वर, भ्रम, पित्तरक्त की वमन, तृषा, स्वरमें विकार, मुख से धूआं सा निकलना, मद, तथा खांसी के निरंतर वेगके कारण आंखोंके साम्हने तारेसे दिखाई देना। ये सब बातें उपस्थित होती हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफ की खांसी का निरूपण ।

कफादुरोऽल्परुग्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु ।
कण्ठोपलेपः सदनं पीनसच्छर्दरोचकाः २६
रोमहर्षो घनस्निग्धश्वेतश्लेष्मप्रवर्तनम् ।

अर्थ—कफकी खांसीमें वक्षःस्थल में वेदना कम होती है । मूर्द्धामें स्तिमिता, हृदय में भारापन, कंठमें कफकी लिसावट, देहमें शिथिलता, पीनस, वमन, अरुचि और रोमहर्ष होते हैं । तथा गाढा, चिकना और सफेद कफ निकलता है ।

क्षतकास का निदानादि ।

युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् ॥
उरस्यंतः क्षते वायुः पित्तेनानुगतो बली ।
कुपितः कुरुते कासं कफं तेन सशोणितम् ॥
पित्तं श्यामं च शुष्कं च ग्रथितं कुपितं बहु ।
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव घोरसा ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यकंपवान् ६० ॥
पारावत इवाकूजन पार्श्वशूली ततोऽस्य च
क्रमाद्वीर्यं रुचिः पक्तिर्बलं वर्णश्च हीयते ३१
क्षीणस्य सासृग्मूत्रत्वं स्याच्च पृष्ठकटीग्रहः

अर्थ—कठिन धनुषका आकर्षण, हाथी, घोडे आदि का पकडना, उच्चभाषण, भारी बोझ लेचलना, वेगवती नदीके स्रोतकी ओर तैरना इत्यादि अपनी शक्तिसे बाहरके काम करनेसे वक्षःस्थल के भीतर घाव होजाता है और बलवान् वायु कुपित होकर और पित्त को अपने साथ लेकर खांसीको उत्पन्न करता है । फिर पीला, काला, सूखा हुआ, गांठदार दुर्गंधित बहुत सा कफ रुधिर सहित खखारके साथ निकलता है । तथा कंठमें तीव्र वेदना, वक्षःस्थलमें विदीर्ण होनेका सा दर्द, सुई छिदने के समान तीव्र शूल, पर्वभेद, ज्वर, श्वास, तृषा, स्वरविकृति, कंपन, कंठमें कबूतरकी सी कूजन और पसली में दर्द, ये सब उपद्रव होते हैं । और क्रमसे वीर्य, रुचि, पाचनशक्ति, बल और वर्ण कम होते चलेजाते हैं । रोगी बहुत क्षीण हो जाता है, उस के मूत्रके साथ रुधिर आने लगताहै तथा पीठ और कमर में वेदना होने लगती है ।

क्षतकास का लक्षण ।

वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मिणः ॥
कुर्वंति यक्ष्मायतनैः कासं ष्ठीवेत्कफं ततः ।
पूतिपूयोपमं पीतं विस्रं हरितलोहितम् ३
लुञ्चेते इव पार्श्वे च हृदयं पततीव च ।
अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्लीमद्दशननेत्रता ।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवंति च ।

अर्थ—राजयक्ष्मावाले रोगीके यक्ष्मानिदानोक्त साहसादि कर्म करनेसे वात प्रधान दोष कुपित होकर खांसी उत्पन्न करते हैं, फिर सडीहुई राधके सदृश, पीला, दुर्गंधित, हरा वा लाल कफ निकलने लगता है, इस रोगमें ऐसा मालूम होने लगता है कि मानों रोगीकी पसली निकली पडती है और हृदय गिरा पडता है, निष्कारण ही कभी ठंडी और कभी गरम वस्तुकी इच्छा होती है, बहुत भोजन खानेपर भी बलक्षीण होता जाताहै । इसका मुख चिकना और प्रफुल्लित रहता है, दांत और नेत्र चमकीले रहते हैं, पीछे क्षयी के सबरूप उत्पन्न होजाते हैं ॥

क्षयकफसे देहकानाश ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

याप्यो वा बलिनां तद्वत् क्षतजोऽभिनवौ-
तु तौ ॥ ३६ ॥

सिध्येतामपि सानाथ्यात्-

अर्थ-उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त क्षयज और क्षतज कास क्षीण रोगीकी देहका नाश कर देती है और यदि रोगी बलवान् हो तो ये दोनों प्रकार की खांसी याप्य होजाती है। यदि ये दोनों प्रकारकी खांसी नई हों और चिकित्सा के चारपाद से युक्त रोगी हो तो अच्छी भी हो जाती हैं। अर्थात् भाग्यवश से अच्छा वैद्य, उपयुक्त औषध, अनुकूल परिचारक और रोगी भी विवेकी हो तो रोग साध्य होजाता है।

अन्य खांसियों का साध्यासाध्य।

साध्या दोषैः पृथक् त्रयः।
मिश्रा याप्या द्वयात्सर्वे जरसा स्थविरस्य च

अर्थ-वात, पित्त और कफ इन तीनों से पृथक् पृथक् उत्पन्न खांसी साध्य होती है। तथा दो दो दोषों के संसर्ग से उत्पन्न हुई खांसी और वृद्ध मनुष्यों की खांसी याप्य होती है।

कासरोग में शीघ्रता।

कासाच्छ्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः
भवेत्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्॥

अर्थ-कास रोग में चिकित्साकी उपेक्षा करने से श्वास, क्षय, वमन, स्वरभंगादि पीनस और यक्ष्माके निदान में कहे हुए उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं, इसलिये कास रोग की चिकित्सा करने में बहुत शीघ्रता करना चाहिये।

इति तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतः श्वासहिध्मानिदानं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहांसे श्वासहिध्मा निदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

श्वासके निदानादि।

"कासवृद्धयथ भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः
आमातिसारवमथुविषपांडुज्वरैरपि ॥ १ ॥
रजोधूमानिलैर्मर्मघातादतिहिमांबुना।
क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः२

अर्थ-खांसी की वृद्धि, सर्व रोग निदानाध्याय में कहे हुए कटुतिक्तादि वातादि दोषों को प्रकुपित करनेवाले पदार्थों के सेवन से, आमातिसार, वमन, विष, पांडु रोग, ज्वर, रज, धूंआं, वायु, मर्मघात, अति शीतल जल इनके सेवनसे श्वास रोग उत्पन्न होजाता है।

श्वास पांच प्रकार का होता है, यथा-क्षुद्रश्वास, तमकश्वास, छिन्नश्वास, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास।

पंचविध श्वासकी संप्राप्ति।

कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः।
प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टः स्रोतांसि दूषयन्
उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम्।

अर्थ-सर्वशरीरव्यापी कुपित वायु कफ के द्वारा अपना मार्ग रुकजाने पर प्राणवाही, उदकवाही और अन्नवाही स्रोतोंको दूषित करके वक्षःस्थल में आकर ठहरजाता है और आमाशय से उत्पन्न श्वासरोग को पैदा कर देता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वास का पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता ४ आनाहः शंखभेदश्च

अर्थ–श्वासरोग के होने से पहिले हृदय और पसली में शूल, प्राणवायु का विपरीत मार्ग में गमन, आनाह और कनपटियों में फटनेकी सी वेदना होती है । ये श्वास के पूर्वरूप हैं ।

क्षुद्रश्वास के लक्षण ।

तत्रायासातिभोजनैः ।
प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संशमनं मरुत् ५

अर्थ–व्यायामादि परिश्रम और अति भोजन से वायु उन्मार्गगामी होकर क्षुद्रश्वास उत्पन्न करता है । यह श्वास विना चिकित्सा किये ही कुछ काल पीछे अपने आप शांत होजाता है ।

तमक श्वास के लक्षण ।

प्रतिलोमं सिरा गच्छन्नुदीर्यं पवनः कफम् ।
परिगृह्य शिरोग्रीवमुरः पार्श्वं च पीडयन् ॥
कासं घुर्घुरकं मोहमरुचिं पीनसं तृषम् ।
करोति तीव्रवेगं च श्वासं प्राणोपतापिनम् ।
प्रताम्येत्तस्य वेगेन निष्ठ्यूतांते क्षणं सुखी ॥
कृच्छ्रोच्छ्वासः श्वसिति निषण्णः-
स्वास्थ्यमृच्छति ॥ ८ ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्द्रिमान्
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासी कांक्षत्युष्णं-
सवेपथुः ॥ ९ ॥
मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
स याप्यस्तमकः साध्यो नवो वा बलिनो-
भवेत् ॥ १० ॥

अर्थ–पवन जब विपरीत रीति से सिरा के स्रोतों में प्रविष्ट होती है, तब यह कफ को ऊपरको लेजाती है और मस्तक तथा ग्रीवाको ग्रहण कर हृदय और पसलियों को पीडित करके खांसी, घुरघुराहट, मोह, अरुचि, पीनस, तृषा तथा अति तीव्र वेगवाले प्राणोपतापी श्वास को उत्पन्न करदेती है श्वास के वेगसे रोगी बडा क्लेश उठाता है और जब थोडासा कफ निकलजाता है तब थोडीदेर के लिये वह सुखका अनुभव करताहै । शयन करने पर श्वास बढजाता है और बैठेहोने पर कुछ सुख प्राप्त होताहै । आंख ऊपरको चढजाती हैं, ललाटपर पसीना आताहै, अत्यन्त वेदना होती है, मुख सूख जाताहै, बार बार श्वासआता है, रोगी उष्ण पदार्थ की इच्छा करता है, कांपताहै, यह तमक श्वास वर्षाकाल, शीतल जल, शीतकाल और पूर्वदिशा की पवन तथा कफकारी द्रव्यों के सेवन से बढता है यह याप्य होता है, किन्तु यदि बहुत दिन का नहो अथवा रोगी बलवान् हो तो साध्यभी होजाताहै ।

प्रतमक श्वास के लक्षण ।

ज्वरमूर्छायुतः शीतैः शाम्येत्प्रतमकस्तु सः ।

अर्थ–तमकश्वास में ज्वर और मूर्च्छा हो और शीतवीर्य औषध और शीतल आहार विहार से शांतहोजाय तथा तमक श्वासकी तरह न बढे तो यह प्रतमक कहलाता है, यह तमक श्वासका एक भेद है । इसको छटा श्वास न समझ लेना चाहिये ।

छिन्न श्वास के लक्षण ।

छिन्नश्वसिति विच्छिन्नमर्मच्छेदरुजार्दितः
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहनिरोधवान्
अधोदृग्विप्लुताक्षश्च मुह्यन् रक्तैकलोचनः ॥
शुष्कास्यः प्रलपन् दीनो नष्टच्छायो विचेतनः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–छिन्न श्वास में रोगी रुक रुककर छिन्न भिन्न श्वास लेताहै, इसमें मर्म छेदन की सी पीडा होती है, पसीना, मूर्छा, आनाह, वस्तिमेंदाह और निरोध, अधोदृष्टि, नेत्रोंमें चंचलता, मोह और एक आंखमें लालाई होती है मुख सूख जाता है, प्रलाप करता है, कांति जाती रहती है और सावधानी नष्ट होजाती है।

महाश्वास के लक्षण।

महता महतादीनो नादेन श्वसिति कथन्॥
उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम्।
प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रांतनयनाननः १४॥
वक्षः समाक्षिपन् बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णधाक्।
शुष्ककण्ठो मुहुर्मुह्यन् कर्णशंखशिरोरुजः

अर्थ--महा श्वाससे पीडित मनुष्य दीन होकर बडा शब्द करता हुआ बडे बडे श्वास लेता है, और उन्मत्त बैल की तरह संक्षुब्ध होकर कांपता हुआ निरंतर घरघराता हुआ श्वास लेताहै, इसका ज्ञान विज्ञान जातारहताहै नेत्र और मुख विभ्रांत होजाते है, वक्षःस्थल आक्षिप्त होताहै, मलमूत्र रुकजाते हैं, वाणी विशीर्ण होजाती है, कंठ सूख जाता है वार वार मोहको प्राप्त होताहै और उस के कान, कनपटी और सिरमें बडी वेदना होती है। ये महाश्वास के लक्षण हैं।

उर्ध्व श्वास के लक्षण।

दीर्घमूर्ध्वं श्वसित्यूर्ध्वाश्च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृत्तमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः॥
ऊर्ध्वदृग्वीक्षते भ्रांतमक्षिणी परितः क्षिपन्।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक्॥

अर्थ–इस रोग में रोगी दीर्घ और ऊर्ध्व श्वास लेता है, दीर्घश्वास को छोडकर अधःश्वास को फिर नहीं लेता, जैसी कि अन्य श्वासों में किया जाता है। इसरोग में स्रोतों के मुखको कफ आच्छादित कर लेता है, कुपितवायु से पीडित करता है दृष्टि ऊपर को होजाती है, आंखें विभ्रांत होकर चारों ओर को देखती हैं मर्माछेदने की सी वेदना होती है, और वाणी रुक जाती है।

श्वास का साध्यासाध्यत्व।

एते सिद्ध्येयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम्

अर्थ–इन तमकादि पांच प्रकार के श्वासों के लक्षण जब तक प्रकट नहीं होते हैं ये साध्य होते हैं, तथा स्फुट लक्षण होने पर असाध्य होजाते हैं।

हिध्मा का स्वरूप।

श्वासैकहेतुप्राग्रूपसंख्याप्रकृतिसंश्रयाः १८॥
हिध्मा भक्तोद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च।
गंभीरा च-

अर्थ--श्वास रोग के जो जो निदान, पूर्वरूप, संख्या, प्रकृति और आश्रय स्थान कहे गये है वेही हिध्माके भी होते हैं।

भक्तोद्भवा (अन्नजा), क्षुद्रा, यमला, महती और गंभीरा, इन पांच प्रकार की हिक्का होती है।

भक्तोद्भवा के लक्षण।

मरुत्त्वत्र त्वरया युक्तिसेवितैः॥ १८॥
रूक्षतीक्ष्णखरासात्म्यैरन्नपानैः प्रपीडितः।
करोति हिध्मामरुजां मन्दशब्दां क्षवानुगाम्
शमं सात्म्यान्नपानेन या प्रयाति च साऽन्नजा

अर्थ–रूक्ष, तीक्ष्ण, खर और असात्म्य अन्नपान के अयुक्तिपूर्वक सेवन करने पर वायु प्रपीडित होकर अन्नजा नामवाली

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हिक्मा (हिचकी) को उत्पन्न करती है, इसमें वेदना नहीं होती है, शब्द भी मंद होता है, और इसके साथ छींक भी आती हैं। यह हिचकी सात्म्य अन्नपानके सेवन से शांत होजाती है।

क्षुद्रा के लक्षण।

आयासात्पवनःक्षुद्रःक्षुद्रां हिक्मां प्रवर्तयेत्॥
जत्रुमूलप्रविसृतामल्पवेगां मृदुं च सां।
वृद्धिमायास्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्

अर्थ—व्यायामादि परिश्रम से वायु अल्प कुपित होकर क्षुद्रा नामकी हिचकी को उत्पन्न करताहै, यह जत्रु अर्थात् कंठ और वक्षःस्थल के मध्य भाग से उत्पन्न होकर अल्पवेग और मृदु भाग में प्रवृत्त होती है, यह परिश्रम करने से बढ जाती है और भोजन करने से शांत हो जाती है।

यमला के लक्षण।

चिरेण यमलैर्वेगैरुपरोधे या प्रवर्तते।
परिणामोन्मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति॥
कंपयंती शिरो ग्रीवामाध्मातस्यातितृष्यतः।
प्रलापच्छर्दितीसारनेत्रविप्लुतजृंभिणः २४॥
यमला वेगिनी हिक्मा परिणामवती च सा।

अर्थ—यमला नामकी हिचकी, देर देर में दो दो मिलकर आती हैं, जब आहार पाकोन्मुख होता है, अथवा पक जाता है तब ये हिचकियां आने लगती हैं ये सिर और ग्रीवा को कंपित करदेती है। यमल हिक्मामें आध्मान, अत्यन्त तृषा, प्रलाप, वमन, अतिसार, नेत्र विप्लव, जंभाई ये उपद्रव होते हैं। इस प्रकार की हिचकी के तीन नाम हैं। यथा, यमला, वेगिनी और परिणामवती॥

महाहिक्मा के लक्षण।

स्तब्धभ्रूहनुयुग्मस्य साश्रुविप्लुतचक्षुषः
स्तंभयंती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञां च मुष्णती।
रुंधती मार्गमन्नस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् २॥
पृष्ठतो नमनं शोषं महाहिक्मा प्रवर्तते।
महामूला महाशब्दा महावेगा महाबला २७

अर्थ—महा हिक्का दोनों भृकटी और दोनों कनपटियों को जकड देतीहै दोनों नेत्रों में आंसू और चंचलता उत्पन्न करती है। देह और वाणी को स्तब्ध करती है, स्मृति और संज्ञा का नाश कर देती है, अन्नवाही मार्ग को रोक देती है। हृदया-, दि मर्मों में चालना करती है, पीठको झुका देती है और सब देह को शुष्क करती है। इन लक्षणों से युक्त महाहिक्का की प्रवृत्ति होती है यह महामूला, महाशब्दा, महावेगा और महाबला होतीहै, इन विशेषणोंसे इस की असाध्यता ज्ञात होती है, यह शीघ्र प्राणों को हरलेती है।

गंभीरा के लक्षण।

पक्वाशयाद्वा नाभेर्वा पूर्ववद्या प्रवर्तते।
तद्रूपा सा मुहुः कुर्याज्जृंभामंगप्रसारणम्॥
गम्भीरेणानुनादेन गंभीरा-

अर्थ—गंभीरानामकी हिचकी पक्वाशय वा नाभि से प्रवृत्त होती है, इस के सब लक्षण उक्त महाहिक्मा के लक्षणोंसे मिलते हैं। इसमें बार बार जंभाई और अंगप्रसारण ये दो लक्षण अधिक होते है। इस में घंटा के शब्द के समान गंभीर नाद होता है, इसीलिये इसका नाम गंभीरा है।

हिचकियों में साध्यासाध्यत्व।

तासु साधयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आद्ये द्वे वर्जयेदंत्ये सर्वलिंगां च वेगिनीम् ॥
सर्वांश्च संचितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः
व्याधिभिःक्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृतस्य वा ॥

अर्थ–इन पांच प्रकार की हिचकियों में पहिली दो अर्थात् अन्नजा और क्षुद्रा, साध्य होती है, पिछली दो अर्थात् महाहिध्मा गंभीर तथा तीसरी सर्व लक्षण संयुक्त यमला ये तीनों असाध्य होती हैं। केवल येही असाध्य नहीं होती है।

किन्तु चिरकाल की हिचकी वृद्धमनुष्य की हिचकी अतिस्त्रीसेवी की हिचकी, व्याधिद्वारा क्षीण देहवाले की हिचकी, अन्न के अभाव से कृश मनुष्य के उत्पन्न हुई हिचकी ये सब असाध्य होती है।

उक्त रोगों में चिकित्सा कर्तव्य।

सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः
हिध्माश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले-
कृतालयौ,, ॥ ३१ ॥

अर्थ–यावन्मात्र संपूर्ण रोग प्राणों के नाश करने वाले हैं परंतु श्वास रोग और हिचकी प्राणोंकेनाश करनेमें जितनी शीघ्रता करता हैं उतना कोई दूसरा रोग नहीं करता। इसीलिये उक्त दोनों रोग मरने के समय अवश्य होते हैं, इसलिये इनकी चिकित्सा में शीघ्रता करना आवश्यकीय है।

इति चतुर्थोऽध्यायः।

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो राजयक्ष्मा निदानं-
व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से राजयक्ष्मानिदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

राजयक्ष्मा के चार नाम।

" अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः

अर्थ–जैसे राजा आगे पीछे बहुत से मनुष्यों से घिरा रहता है, वैसेही राजयक्ष्मा भी ज्वर अतीसारादि रोगों से घिरा रहता है यह ज्वर गुल्मादि सब रोगोंमें प्रधानहै। राजयक्ष्मा, क्षय, शोष और रोगराज ये चार इसके पर्य्यायवाची शब्द हैं।

राजयक्ष्मादि संज्ञाओं का कारण।

नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः।
देहौषधक्षयकृतेः क्षयस्तत्संभवाच्च सः।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात्

अर्थ–प्राचीनकाल में तारागण और द्विजातियों के राजा चन्द्रदेव के यह रोग हुआ था और यह सब रोगों का राजा है इसलिये इसे मुनिवर राजयक्ष्मा कहते हैं। यह देह और औषध दोनों का क्षय कर देता है तथा देह और औषध के क्षय होने ही से इसकी उत्पत्ति है, इसलिये इसे क्षय कहते हैं। यह रसादि धातुओं का शोषण करलेता है इसलिये इसे शोष कहते हैं,

+ कहते हैं कि चन्द्रमा रोहिणी पर अत्यन्त आसक्त था, इसलिये अन्य नक्षत्रों ने अपमानित होकर अपने पिता दक्षसे कहा, किंतु चन्द्रमाने अपने श्वशुर दक्षको मिथ्या बातों से धोखा दिया, इसलिये उस ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुझे क्षय रोग होगा। इसी से चन्द्रमा के राजयक्ष्मा होगया था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यह संपूर्ण रोगों के राजत्व रूपसे विराजमान है, इसलिये इसे रोगराट कहते हैं।

राजयक्ष्मा के हेतु।

साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसंक्षयः।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः॥

अर्थ–मल्लयुद्धादि कायक और उच्चभाषणादि वाचक साहस के कार्य अधोवात और मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों का रोकना, शुक्र, ओज और देहसंबंधी स्नेहका नाश, अन्नपानविधि का अन्यथा सेवन, ये चार राजयक्ष्मा के उत्पन्न होने के हेतुहैं।

उक्तचार हेतुओं में वायुकी प्रधानता।

तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्य सर्वतः।
शरीरसंधीनाविश्य तान् सिराश्च प्रपीडयन्
मुखानि स्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविवृत्य च।
सर्पन्नूर्ध्वमधास्तिर्यग्यथास्वं जनयेद्गदान्॥

अर्थ–ऊपर कहे हुए चार प्रकार के हेतुओं द्वारा वायु उदीर्ण होकर पित्त और कफ को चारों ओर से उदीरित करके शरीर की संधियों में प्रविष्ट होकर तत्रस्थ सिराओं को प्रपीडन करके स्रोतों के मुखों को रोककर वा अत्यन्त विवृत करके ऊपर, नीचे वा तिरछी ओर को जाकर यथायोग्य रोगों को उत्पन्न करदेता है, अर्थात् ऊपर की ओर जाकर पीनसादि, नीचे को जाकर पुरीषशोष और पुरीषभ्रंश और तिरछी ओर जाकर पार्श्ववेदना करता है।

राजयक्ष्माका पूर्वरूप।

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भ्रंश क्षवः।
प्रसेको मुखमाधुर्य सदनं वन्हिदेहयोः॥७॥
स्थाल्यमत्रान्नपानादौ शुचावप्यशुचीक्षणम्
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः॥
हृल्लासश्छर्दिररुचिरश्नतोऽपि बलक्षयः।
पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽक्ष्णोरतिशुक्लता
बाह्वोः प्रमाणजिज्ञासा कांये वैभत्स्यदर्शनम्
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणित्वम् मूर्धगुंठनम्॥
नखकेशातिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत्।
पतंगकृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ११॥
केशास्थितुषभस्मादिराशौ समधिरोहणम्।
शून्यानां ग्रामदेशनां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः॥
ज्योतिर्गिरीणां पततां ज्वलतां च महीरुहाम्।

अर्थ–जिस मनुष्यके राजयक्ष्मा होनेवाला होता है, उसके प्रतिश्याय (मुख नासादि से जलस्राव), छींक, मुखप्रसेक, मुखमें मधुरता, देहमें शिथिलता, जठराग्नि की मंदता, पवित्र थाली पात्र और अन्नपानादिमें अपवित्रता देखना, अन्नपानमें प्रायः मक्खी, तिनुका, केश आदि का गिरना, हृल्लास, वमन, अरुचि और भोजन करते करते बल की हानि, हाथोंको देखना, पांवोंमें और मुख में सूजन, आंखों में सफेदी, दोनों बाहुओं का प्रमाण जाननेकी इच्छा। शरीरमें भयानकता दिखाई देना, स्त्री, मद्य और मांसका अच्छा लगना, घृणित्व, वस्त्र से सिर ढकना, नख और केशोंकी अत्यन्त वृद्धि, स्वप्न में पतंग, किरकेंटा, सर्प, बंदर, सेह और पक्षियों द्वारा पराभव, बाल, हड्डीयां, तुष, और भस्मादि के ढेरके ऊपर चढना, ग्राम और देश, सूखे जलाशय, तारागण और पर्वतों का पतन, जलते हुए वृक्ष, इनका देखना ये सब लक्षण राजयक्ष्मा उत्पन्न होने से पहिले होते हैं अर्थात् ये राजयक्ष्मा के पूर्वरुप हैं।

राजयक्ष्मा के ग्यारहरूप।

पीनसश्वासकासांऽसमूर्धस्वररुजोऽरुचिः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊर्ध्वं विड्भ्रंशसंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे। तिर्यक्स्थे पार्श्वरुग्दोषे संधिगे भवति ज्वरः रूपाण्येकादशैतानि जायंते राजयक्ष्मिणः।

अर्थ–राजयक्ष्मामें दोष के ऊर्ध्वगमन करने से पीनस, श्वास, खांसी, स्कंधशूल, शिरःशूल, स्वरभंग और अरुचि, ये रोग उपस्थित होते हैं। दोषके अधोगमन करने पर मलभेद और मलशोष ये दो उपद्रव होते हैं। दोषके कोष्ठमें स्थित होनेपर वमन होती है। तिर्य्यग्गमन करनेपर पसली में दर्द और संधिमें गमन करने पर ज्वर उत्पन्न होता है। राजयक्ष्मामें ये ग्यारहरूप उत्पन्न होते हैं।

पीनसादिके सात उपद्रव।

तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठोध्वंससमुरोरुजम् जृंभांगमर्दनिष्ठीववह्निसादास्यपूतिताः।

अर्थ–ऊपर कहेहुए ग्यारह पीनसादि रुपों में से कंठका बैठजाना, वक्षःस्थल में वेदना, जंभाई, अंगमर्द, निष्ठीव, अग्निमांद्य और मुखदुर्गंधि ये सात उपद्रव होते हैं।

ग्रंथांतर में उपद्रव के लक्षण ये हैं:– व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तरकालजः। उपक्रमविघाती च स उपद्रव उच्यते।

वातादिके लक्षण।

तत्र वाताच्छिरः पार्श्वशूलमंसांगमर्दनम्॥ कण्ठोध्वंसः स्वरभ्रंशः पित्तात्पादांसपाणिषु दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगंधो ज्वरो मदः कफादरोचकच्छर्दिः कासो मूर्धांगगौरवम्। प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरसादोऽल्पवन्हिता

अर्थ–इस राजयक्ष्मामें वातकी अधिकता से शिरोवेदना, पार्श्वशूल, स्कंधमर्दन, अंगमर्द, कंठोध्वंस, और स्वरभ्रंश होते हैं। पित्त की अधिकतासे से पांव, कंधे और हथेली में दाह, अतिसार, रुधिरकी वमन, मुखदुर्गंधि, ज्वर और मद होते हैं। कफसे अरुचि, वमन, खांसी, शिर और देहमें भारापन, प्रसेक, पीनस, श्वास, स्वरमें शिथिलता और मंदाग्नि होते हैं।

धातुक्षय में युक्ति।

दोषैर्मंदानलत्वेन सोपलेपैः ककोल्बणैः। स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातूष्मस्वल्पकेषु च॥ विदह्यमानःस्वस्थाने रसस्तांस्तानुपद्रवान्। कुर्यादगच्छन्मांसादानसृक् चोर्ध्वं प्रधावति पच्यते कोष्ठ एवाऽमन्नपक्वैव चाऽस्य यत्। प्रायोऽस्मान्मलतां यातं नैवालं धातुपुष्टये॥

अर्थ–कफ है प्रधान जिनमें ऐसे वातादि तीनों दोषों द्वारा स्रोतों के मुखों को रुद्ध और उपलिप्त करदेता है अर्थात् कफ की अधिकतासे स्रोतोंके मुख रुक जाते हैं और कफ से लिप्त जाते है, तथा मंदाग्नि के कारण धातुओं में ऊष्मा कम होजाती है, इन हेतुओं में से रस अपने ही स्थान में विदह्यमान होकर ऊपर कहेहुए कंठोध्वंसादि उपद्रवों को करता है और अवरुद्धताके कारण मांसादिमें नहीं जाने पाता है इसी से उन मांस मेदा आदि की पुष्टिभी नहीं कर सकता है। तथा पित्तकारिणी पाकावस्था में अच्छी तरह पचकर रक्त बनकर ऊपरको दौडता है और मुखके द्वारा बाहर निकल जाता है और क्षयीरोगी की मांसादि धातुओं की पुष्टि नहीं कर सकता है। दूसरा कारण यह है कि अन्न आमपक्वाशय में केवल जठराग्नि द्वारा पचता है और धात्वग्नि अल्प होनेके कारण उसको नहीं पका सकती है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसलिये मलमूत्र अधिकता से बनजाता है और धातुओं की पुष्टि नहीं कर सकता है ।

यक्ष्मारोगी का पुरीषाधार जीवन ।

रसोऽप्यस्य रक्ताय मांसाय कुत एव तु ।
उपस्तब्धः स शकृता केवलं वर्तते क्षयी २२

अर्थ—यक्ष्मारोगी के आहार का रस जब निकटवर्ती रक्तधातु की ही पुष्टि नहीं कर सकता है तो दूरवर्ती मांसधातु की पुष्टि करना असंभव है । यक्ष्मारोगी केवल पुरीष द्वारा अवष्टंभित होकर प्राण धारण करता है । अर्थात् किंचित् आहार रस से आप्यायित धातुओं द्वारा शरीर की केवल धारणा मात्र है ।

यक्ष्मारोगी का साध्यासाध्य विचार ।

लिंगेष्वल्पेष्वपि क्षीणं व्याध्यौषधबलाक्षमम् वर्जयेत्-
साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा २३ ॥

अर्थ—जो यक्ष्मारोगी बल और मांस से क्षीण हो, और पीनसादि अल्प उपद्रवों से युक्त हो और इसी हेतुसे व्याधि और औषध का बल न सह सकता हो उसे असाध्य समझकर छोड देना चाहिये ।

इससे विपरीत होने पर अर्थात् जिसका बल और मांस क्षीण न हुआ हो और इसी हेतु से व्याधि और औषध का बल सह सकता हो ऐसा रोगी यदि पीनसादि सर्व लक्षणों से युक्त भी हो तोभी रोगी साध्य होता है ।

स्वरभेद के छः प्रकार ।

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात् षष्ठश्च भेदसा स्वरभेदो भवेत्-

अर्थ—स्वरभेद छः प्रकार का होता है, यथा—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षयज और मेदोज ।

वातज स्वर भेद के लक्षण ।

तत्र क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः ॥ २४ ॥
शुष्कपूर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात्

अर्थ—वातज स्वरभेदमें स्वर क्षीण, रूक्ष और चंचल होजाता है, कंठ में शुष्कपूर्णता तथा स्निग्ध और उष्ण उपशय होताहै ।

पित्तज स्वरभेद ।

पित्तात्तालुगले दाहः शोष उक्तावसूयनम् ॥

अर्थ—पित्तज स्वरभेद में तालु और गले में दाह और शोष होते हैं तथा बोलने में असमर्थता होती है ।

कफज स्वरभेद ।

लिंपन्निव कफात्कण्ठं मन्दः खुरखुरायते ।
स्वरो विबद्धः

अर्थ—कफज स्वरभेद में कफसे कंठ लिप्त जाता है, शब्द बहुत मंदा निकलता है, कंठ में खुरखुराहट होती है, बोलने में स्खलन होता है ।

त्रिदोषज स्वरभेद ।

सर्वैस्तु सर्वलिंगः

अर्थ—त्रिदोषज स्वरभेद में उक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं ।

क्षयज स्वरभेद ।

क्षयात्क्षपेत् ॥ २६ ॥
धूमायतीव चात्यर्थम्-

अर्थ—क्षयज स्वरभेद में कंठमें विध्वस्तता और नासिकादि से अत्यंत धूंआं का सा-निकलना प्रतीत होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मेदोज स्वरभेद ।

मेदसा श्लेष्मलक्षणः।
कृच्छ्रलक्ष्याक्षरश्च

अर्थ—मेदोज स्वरभेद में कफज स्वरभेद के संपूर्ण लक्षण प्रकुपित होजाते हैं तथा स्वर में अत्यन्त क्षीणता उत्पन्न होजाती है।

स्वरभेद में साध्यासाध्यत्व ।

अत्र सर्वैरत्यं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—इन छः प्रकार के स्वरभेदों में चार वातज, पित्तज, कफज और क्षयज साध्य होते हैं और त्रिदोषज और मेदोज असाध्य होते हैं।

अरुचि की उत्पत्ति ।

अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयः।
सन्निपातेन मनसः संतापेन च पञ्चमः ॥

अर्थ—जिह्वा और हृदय में आश्रित वातपित्त और कफ इन तीनों दोषों से, जिह्वा और हृदय में आश्रित सन्निपात से और क्रोध शोकादि मनके संताप से अरोचक रोगकी उत्पत्ति होती है। अरोचक रोग पांच प्रकार का होता है, तथा वातज पित्तज, कफज, सान्निपातज, और मनस्तापक। इनमें से मनस्तापक अरोचक आगंतुज होता है।

वातजादि अरोचक के लक्षण ।

कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात्।
सर्वोत्थे विरसंशोकक्रोधादिषु यथामलम् ॥

अर्थ—वातादि अरुचि में क्रम से मुख कषाय, तिक्त और मधुर होता है अर्थात् वातरोचक में मुखमें कषायता, पित्तारोचक में तिक्तता और कफारोचक में मधुरता होती है, सान्निपातज अरोचक में विरसता अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहता है। तथा क्रोध शोकादिजनित अरोचक में वातादि जिस दोष का संबंध होता है मुखमें उसी दोष के अनुसार रसत्व पैदा होता है, जैसे शोक, भय, काम, लोभ, ईर्ष्यादि से संतप्त मनमें वात के कोप से मुखमें कसीलापन, क्रोध संतप्त मनमें पित्त के प्रकोप से तिक्तता और ग्रहसे संतप्त मनमें कफ से मधुरता और सन्निपातज मनःसंताप में विरसता होती है।

छर्दि का निदान ।

छर्दिर्दोषैः पृथक्सर्वैर्दिष्टैरर्थैश्च पञ्चमी।
उदानो विकृतो दोषान् सर्वानप्यूर्ध्वमस्यति

अर्थ—छर्दि अर्थात् वमनरोग पांच प्रकार की होती है, यथा—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अनभीप्रेत द्विष्ट अर्थों से पांचवीं छर्दि होती है।

संपूर्ण प्रकार के वमनरोग में उदानवायु वातपित्त कफको ऊपर को फेंकता है।

छर्दि का पूर्वरूप ।

तासूत्क्लेशास्यलावण्यप्रसेकारुचयोऽग्रगाः।

अर्थ—सब प्रकार के वमनरोगों के उत्पन्न होने से पहिले मुखमें नमकीनता, मुखस्राव, अरुचि और उत्क्लेश (दोषका अपने स्थान से चलना) ये सब अग्रगामी होते हैं।

वातज वमन ।

नाभिपृष्ठं रुजन् वायुः पार्श्वे चाहारमुत्क्षिपेत्
ततो विच्छिन्नमल्पाल्पं कषायं फेनिलं वमेत्
शब्दोद्गारयुतं कृष्णमच्छं कृच्छ्रेण वेगवत् ॥
कासास्यशोषहृन्मूर्धस्वरपीडाक्लमान्वितः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कुपित वायु नाभि पीठ और दोनों पसली में वेदना करती हुई भोजन किये हुए पदार्थ को ऊपर को फेंक देती हैं । वातज वमन में विच्छिन्न (थोडी २ देर में) अल्प अल्प कषायरसयुक्त झागदार शब्द के साथ डकार सहित काले रंग की बडे वेग से कठिनता पूर्वक वमन होती है। इसमें खांसी, मुखशोष, हृदय और मस्तकमें वेदना, स्वरभंग और क्लांति होती है ।

पित्तजवमन ।

पित्तात्क्षारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम् ॥
सारुग्गन्धं कटूष्णं च तृण्मूर्छातापदाहवत् ।

अर्थ–पित्तजवमन में क्षारके जलके सदृश धूम्रवर्ण, हरी वा पीली, रुधिरसहित खट्टी, कडवी और उष्णवमन होती है । इसमें तृषा, मूर्छा, ताप और दाह उत्पन्न होते हैं ।

कफजवमन ।

कफात्स्निग्धं घनं शीतं श्लेष्मतंतुगवाक्षितम्
मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम् ।
मुखश्च्यथुमाधुर्यतंद्राहृल्लासकासवत् ३५

अर्थ–कफज वमनरोगमें चिकनी, गाढी ठंडी, मीठी, नमकीन, कफके तंतुओं से युक्त जालीदार, और बहुत प्रमाण से वमन होतीहै, इसमें रोमांच, मुखशोष, मुखमें मीठापन, तंद्रा, हृल्लास और खांसी उत्पन्न होतेहैं ।

संनिपातजवमन ।

सर्वैर्लिंगैर्मलैः सर्वैरिष्टोक्ता या च तां त्यजेत्

अर्थ–सान्निपातिक वमनरोगोंमें पृथक् पृथक् तीनों दोषोंके कहेहुए लक्षण दिखाई देते हैं, तथा विकृत विज्ञानीयाध्यायमें छर्दि के रिष्टके प्रकरण में कही हुई सर्व लक्षणों से युक्त वमन होतीहै, ये दोनों असाध्य होती है ।

द्विष्टार्थयोगजावमन ।

पूत्यमेध्याशुचिद्विष्टदर्शनश्रवणादिभिः ३५
तप्ते चित्ते हृदि क्लिष्टे छर्दिर्द्विष्टार्थयोगजा ।

अर्थ–दुर्गंधित, अपवित्र, अशुच, और अनिष्ट दर्शन और श्रवणादि द्वारा जब चित्त उपतप्त और हृदय क्लिष्ट होताहै तब द्विष्टार्थजा छर्दि होतीहै ।

कृम्यादिजन्यछर्दि का प्रकरण ।

वातादीनेव विमृशेत्कृमितृष्णामदौहृदे ६७॥
शूलवेपथुहृल्लासैर्विशेषात् कृमिजां यदेत् ।
कृमिहृद्रोगलिंगैश्च-

अर्थ–कृमि, तृषा, आमदोष, और गर्भिणी के दौहृदसे उत्पन्न हुए वमनरोग में दोषका लक्षण देखकर वातादि दोषका निश्चय करना चाहिये । परन्तु कृमिजनित छर्दिरोगमें वातादि दोषोंके के लक्षणों के सिवाय शूल, कंपन, हृल्लास, और विशेष करके कृमिजनित छर्दिरोग के संपूर्ण लक्षण उपस्थित होतेहैं ।

हृद्रोगलक्षण ।

स्मृतः पंच तु हृद्रोगाः ॥ ३८ ॥
तेषां गुल्मनिदानोक्तैः समुत्थानैश्च संभवः

अर्थ–हृद्रोग पांच प्रकार के कहे गये हैं । इन हृद्रोगों की उत्पत्ति उन कारणोंसे होती है, जो आगे गुल्मनिदानमें कहेजायंगे ।

वातजहृद्रोगके लक्षण ।

वातेन शूल्यतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भिद्यते सुष्यति स्तब्धं हृदयं शून्यता द्रवः।
अकस्माद्दीनता शोको भयं शब्दासहिष्णुता
वेपथुर्वेष्टनं मोहः श्वासरोधोऽल्पनिद्रता।

अर्थ—वातज हृद्रोगमें हृदयमें तीव्रशूल, होताहै सुई चुभने और फटनेकी सी पीड़ा होतीहै। तथा भेदन, शोषण, स्तब्धता, शून्यता, और द्रवता होतीहै। इस रोगमें अकस्मात् दीनता, शोक, भय, शब्द का न सहना, कंपन, अंगडाई, मोह, श्वासरोध और अल्पनिद्रता होतीहै।

पित्तजहृद्रोग के लक्षण।

पित्तात्तृष्णा भ्रमो मूर्छा दाहः स्वेदोऽम्लकः-
कलमः ॥ ४१ ॥
छर्दनं चाम्लपित्तस्य धूमकः पीतता ज्वरः।

अर्थ—पित्तज हृद्रोगमें तृषा, भ्रम, मूर्छा, दाह, स्वेद, खट्टी, डकार, क्लांति, अम्लपित्तकी वमन, धूमनिर्गमन पीलापन और ज्वर होतेहैं।

कफज हृद्रोग।

श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धं भारिकम्
साश्मगर्भवत् ॥ ४२ ॥
कासाग्निसादनिष्ठीवनिद्रालस्यारुचिज्वराः।

अर्थ—कफज हृद्रोग में हृदय में स्तब्धता और भारापन होते हैं, और ऐसा मालूम होता है कि भीतर पत्थर रक्खा हुआ है। तथा खांसी, अग्निमांस, निष्ठीव, निद्रा, आलस्य अरुचि और ज्वर उत्पन्न होते हैं।

त्रिदोषज हृद्रोग।

सर्वलिंगसमभिर्दोषैः-

अर्थ—त्रिदोषज हृद्रोग में वातादि तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं।

कृमिज हृद्रोग।

कृमिभिः क्ष्यावनेत्रता ॥ ४३ ॥
तमःप्रवेशो हृल्लासः शोषः कंडूः कफस्रुतिः
हृदयं प्रततं चात्र ककचेनेव दार्यते ॥ ४४ ॥
चिकित्सेदामयं घोरं तं शीघ्रं शीघ्रकारिणम्

अर्थ—कृमिज हृद्रोग में नेत्रोंमें श्यावता, आंखों के आगे अंधेरा, हृल्लास, शोष, खुजली, कफका निकलना, ये होते हैं और ऐसा मालूम होताहै कि हृदयके भीतर करौत से चीरा जा रहा है। यह रोग बडा भयंकर और शीघ्र प्राणनाशक होता है क्योंकि महामर्म हृदय को कीडे खाते हैं, इसलिये इसकी चिकित्सा शीघ्र करनी चाहिये।

तृषारोगका निरूपण।

वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्रसक्षयात्
षष्ठी स्यादुपसर्गाच्च-
वातपित्ते तु कारणम्।

सर्वासु-

तत्प्रकोपो हि सौम्यधातुप्रशोषणात् ४६ ॥
सर्वदेहभ्रमोत्कंप्यतापतृड्दाहमोहकृत्।

अर्थ—तृषा छः प्रकारकी होती है, यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज रसक्षयज और उपसर्गज। इन सब प्रकार के तृषा रोगों की उत्पत्ति का कारण वात और पित्त है। आहार विहार से शरीर की रसादि सौम्यधातुओं के शुष्क होजाने से वात और पित्त का प्रकोप होता है, और इस प्रकोपसे संपूर्ण देह में भ्रम, कंपन ताप तृषा, दाह और मोह उत्पन्न होता है।

तृषा की उत्पत्ति।

जिह्वामूलगलक्लोमतालुतोयवहाः सिराः
संशोष्य तृष्णा जायते

अर्थ—जिह्वा का मूल, गला क्लोम (पिपासा का स्थान) तालु और जलवाही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिरा इनको सुखाकर तृषा उत्पन्न होतीहै ।

तृषाका सामान्य लक्षण ।

तासां सामान्यलक्षणम् ।

मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः ॥
कण्ठौष्ठजिह्वाकार्कश्यं जिह्वानिष्क्रमणम्-
क्लमः
प्रलापश्चित्तविभ्रंशस्तृड्ग्रहोक्तास्त-
थाऽऽमयाः ॥ ४९ ॥

अर्थ–तृषाके सामान्य लक्षण ये हैं, यथा–मुखशोष, वार बार जल पीने पर भी अतृप्ति, अन्न में अरुचि, स्वरभंग, कंठ ओष्ठ और जिह्वा में खरदरापन, जिह्वा का बाहर निकलना, क्लांति, प्रलाप, चित्त विभ्रम, तथा तृड्ग्रहोक्त संपूर्ण प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ।

वातज तृषा के लक्षण ।

मारुतात्क्षामता दैन्यं शंखतोदः शिरोभ्रमः ।
गन्धाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः ॥
शीतांबुपानाद्वृद्धिश्च-

अर्थ–वातज तृषा में क्षीणता, दीनता, कनपटियोंमें सूचीभेदवत् पीडा, सिरमें चक्कर गंधज्ञानका अभाव, मुखमें विरसता, श्रवण शक्ति, निद्रा और बलका नाश होता है तथा ठंडा जल पीने से तृषा की औरभी वृद्धि होती है ।

पित्तज तृषा ।

पित्तान्मूर्छास्यतिक्तता ।
रक्तेक्षणत्वं प्रततं शोषो दाहोऽतिधूमकः ५१

अर्थ–पित्तज तृषारोगमें मूर्च्छा, मुखमें तिक्तता, आंखोंमें ललाई, हर समय कंठ में शुष्कता, दाह और धूमनिर्गमवत प्रतीति ये लक्षण होते हैं ।

कफज तृषा ।

कफो रुद्धे कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम् ।
स्रोतःसु सकफस्तेन पंकवच्छोष्यते ततः ॥
शूकैरिवाचितैः कण्ठो निद्रा, मधुरवक्त्रता ।
आध्मानं शिरसो जाड्यस्तैमित्यच्छर्दि
रोचकाः ॥ ५२ ॥
आलस्यमाविपाकश्च-

अर्थ–जब कफ कुपित होकर जलवाही स्रोतोंमें वायुको रोक देता है तब वह कफ कीचड की तरह सूखने लगता है । कंठमें कांटे से खडे होजाते हैं । निद्रा, मुखमें मीठापन, अफरा, सिरमें जडता, स्तिमिता, वमन, अरुचि, आलस्य और अविपाक, ये लक्षण उपस्थित होते हैं ।

त्रिदोषज तृषा ।

सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणा ।

अर्थ–जिस तृषारोगमें उक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं वह त्रिदोष से उपल्ब होती है ।

वातपित्तज तृषा ।

आमोद्भवा च भक्तस्य संरोधाद्वातपित्तजा ॥

अर्थ–आहार के रोकनेसे आमसे उत्पन्न तृषा होती है । यह वातपित्तजा है ।

पित्तजा तृषा ।

उष्णक्लांतस्य सहसा शीतांभो भजतस्तृषम् ।
ऊष्मा रुद्धो गतः कोष्ठं या कुर्यात्पित्तजैव सा
या च पानातिपानोत्था तीक्ष्णाग्नेः स्नेहजा-
च या ।

अर्थ–जो आदमी गरमी के कारण म्लान होरहा हो अर्थात् धूपमें चलकर आया हो गरमी में तडफडा रहा हो और वह झटपट ठंडा जल पीले तो ऊष्मा कोष्ठमें जाकर तृ-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

षा उत्पन्न करती है यह तृषा पित्तजा होती है। मद्यके अत्यंत पान करनेसे जो तृषा उपजती है अथवा तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्य के जो स्नेह से तृषा उपजती है, ये सब पित्तजा होती हैं

कफजा तृषा।

स्निग्धगुर्वम्ललवणभोजनेन कफोन्मुषा ५६॥

अर्थ–चिकने, भारी, खट्टे और नमकीन भोजनों से जो तृषा उत्पन्न होती है कफोन्मुषा होती है।

क्षयजा तृषा।

तृष्णा रसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका।

अर्थ–रसके क्षीण होने के प्रकरण में जो रसक्षीण होनेके लक्षण कहे गये हैं, उन लक्षणों से युक्त तृषा क्षयजा होती है।

उपसर्गजा तृषा।

शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गतः।
या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिकास्मृता॥ ५७॥

अर्थ–शोष, मोह, ज्वरादि तथा चिरकालीन अन्यान्य रोगोंके उपसर्गसे जो तीव्र तृषा उत्पन्न होती है वह उपसर्गजा होती है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकायां राजयक्ष्मानिदानं नाम पंचमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

अथाऽतो मदात्ययनिदानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहांसे मदात्यय नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

मदात्यय का निदान।

"तीक्ष्णोष्णरूक्षसूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुकरम्लघु।
विकाशी विशदं मद्यमोजसोऽस्माद्विपर्ययः॥

अर्थ–मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुकारी, लघु, विकाशी और विशद होताहै। ओज इसके विपरीत होताहै अर्थात् ओज मंद, शीतल, स्निग्ध सांद्र, स्थूल, मधुर, स्थिर, चिरकारी, गुरु, श्लक्ष्ण और पिच्छिल होताहै।

मद्यके गुण।

तीक्ष्णादयो विषेऽप्युक्ताश्चित्तोपप्लाविनो गुणाः।
जीवितांताय जायंते विषे सूत्कर्षवृत्तितः २॥

अर्थ–तीक्ष्णादि चित्त विभ्रमकारक दस गुण मद्यमें होतेहैं, येही दस गुण विष में भी होतेहैं, किन्तु विषस्थ दस गुण इतने तीव्र होतेहैं कि वे मनुष्यों के प्राणनाशक होते हैं।

चेतोविकार का प्रकार।

तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यं मंदादीनोजसो गुणान्।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम्
आद्ये मदे

द्वितीये स प्रमादायतने स्थितः।
दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्यधिमुच्यते॥

अर्थ–प्रथम मदमें मद्य अपने तीक्ष्णादि दस गुणों से ओज के मंदादिक दस गुणों को संक्षुभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करदेताहै। दूसरा मद प्रमाद का स्थानहै, इसमें दुष्ट विकल्पों से उपहत अर्थात् नष्ट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुषार्थ मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यसे अज्ञान होकर मद्यके द्वितीय वेग को अधिक सुखकर मानताहै कोई कोई यह भी अर्थ करते हैं, कि मद्यके द्वितीयवेग में मनुष्य सुखसे अधिकतर अलग होजाता है।

मदकी निंदनीय अवस्था।

मध्यमोत्तमयोः संधिं प्राप्य राजसतामसः।
निरंकुश इव व्यालो न किंचिन्नाचरेज्जडः ५॥

अर्थ रजोगुणी वा तमोगुणी मनुष्य, मध्यम और उत्तम की संधि अर्थात् द्वितीय और तृतीय मदकी मध्यावस्था में पहुंचकर अंकुशरहित मदोन्मत्त हाथी की तरह कुछभी शुभ नहीं करता है +।

उक्तअवस्था में दुर्गति।

इयं भूमिरविद्यानां दौःशील्यस्येदमास्पदम्।
एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्दैशिकः परम्॥

अर्थ—यह मद्यावस्था निंदनीय मनुष्यों की भूमि अर्थात् आकर और दुःशीलताकी आस्पद है। एक मात्र यह मदिरा अनेक मुखवाली दुर्गति की आचार्य अर्थात् उपदेशक है।

मद की तीसरी अवस्था।

निश्चेष्टः शववच्छेते तृतीये तु मदे स्थितः।
मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम् ७

अर्थ—मदकी तीसरी अवस्थामें पहुंचकर मनुष्य कायक, वाचक और मानसिक तीनों प्रकार की चेष्टाओं से रहित अर्थात् बेहोश होकर मुर्दे के समान पडजाता है। यह पापात्मा मरने से भी बुरी दशा में पहुंच जाता है, क्योंकि मरने पर तो मनुष्य दूसरा देह धारण करके सुखभोग कर सकता है, परंतु मदकी तृतीयावस्था को प्राप्त मनुष्य अन्य शरीर धारण करने के अभाव से कुछ भी सुखका अनुभव नहीं कर सकता है, इसलिये यह दशा मरण से भी बुरी है।

मद्यसे धर्माधर्म का अज्ञान।

धर्माधर्मौ सुखं दुःखमर्थानर्थौ हिताहितम्।
यद्यासक्तो न जानाति कथं तच्छीलयेच्छुधः॥

अर्थ=मद्यमें आसक्त मनुष्य दानाध्ययनदेवगुरुपूजादिक धर्म और अहिंसादि अधर्म के बिचार से शून्य होजाताहै, उसे सुख दुख वा हिताहित का ज्ञान नहीं रहताहै। फिर कौन बुद्धिमान मनुष्य ऐसी मदिरा का अभ्यास करेगा।

अति मद्यपान का फल।

मद्ये मोहोभयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः।
सोन्मादमदमूर्छायाः सापस्मारापतानकाः॥
यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत्।

अर्थ—अति मद्यपानसे मोह, भय, शोक क्रोध, मृत्यु, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार अपतानक, ये सब दुर्घटना उपस्थित होतीहै, अधिक कहनेसे क्या प्रयोजनहै जिस मदिरासे एक स्मृति का नाश होजाताहै वहां शुभ कुछ भी नहीं रहताहै।×

× ग्रंथांतर में लिखा है कि सात्विके शौचदाक्षिण्यहर्षमंडनलालसः। गीताध्ययनसौभाग्यसुरतोत्साहकृन्मदः॥राजस दुःखशीलत्वमात्मत्यागं सुसाहसे। कलहं सानुबंधंच करोति पुरुषेमदः। अशौचनिद्रामात्सर्य्यागम्यागमनलोलतः। असत्यभाषणं चापि कुर्याद्वैतामसे मद इति।

× ओजस्यविहते पूर्वो हृदि च प्रति-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मद्यसे त्रिवर्ग का नाश !

अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा १०
मद्यं त्रिवर्गधीधैर्यलज्जादेरपि नाशनम् ।

अर्थ-अन्न जो प्राणपोशक होता है, वह अयुक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो व्याधि पैदा करता है वा मारडालता है इसी तरह युक्तिरहित सेवन किया हुआ मद्य त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) बुद्धि, धैर्य और लज्जा इन सबका नाश करदेता है ।

मद्य का पेयत्व ।

वातिमाद्यंति बलिनः कृताहारा महाशनाः ॥
स्निग्धाः सत्वयुताः युक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः
मेदः कफाधिका मन्दवातपित्ता दृढाग्नयः ॥

अर्थ-जो मनुष्य बलवान्, कृताहार (भोजन किया हुआ), बहुभोजी, स्निग्ध, सत्व गुणयुक्त, युवा, नित्य मद्यसेवी, मद्यपकुलप्रसूत, (जिसने शराबीके घर जन्म लिया हो), मेदोऽधिक, कफाधिक, मंद वातापित्तवाला होता है, उसको बहुत मद्य पीनेसे भी नशा नहीं आता है ।

उक्तलक्षणोंसे विपरीतकाफल ।

विपर्ययेऽतिमाद्यंति विश्रब्धाः कुपिताश्च ये
मैरेयेण चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहुनाति च ॥

अर्थ-ऊपर कहेहुए लक्षणों से विपरीत लक्षणवाला मनुष्य अर्थात् बलहीन, अकृताहार, अल्पभोजी आदि लक्षणोंसे युक्त, तथा विश्रब्ध* और क्रुद्ध मनुष्यको मद्यपान से अधिक नशा आता है । अत्यन्त अम्ल, अत्यन्त रूक्ष, अधिक मद्य अथवा अजीर्ण में मद्यपान बहुत नशा लाता है

चारप्रकार के मदात्यय ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैश्चत्वारःस्युर्मदात्ययाः
सर्वऽपि सर्वैर्जायंते व्यपदेशस्तु भूयसा १४

अर्थ-मदात्यय चार प्रकारके होते हैं । यथा, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक। न्यूनाधिक सब प्रकारके मद त्रिदोष से होते हैं । पर जिस दोष की अधिकता होती है वह उसी नामसे बोला जाता है, जैसे यह वातिकमदात्यय है । यह पैत्तिक मदात्यय है, इत्यादि ।

मदात्यय के सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथाः ।
विड्भेदः प्रततं तृष्णा सौम्याग्नेयो-
ज्वरोऽरुचिः ॥ १५ ॥
शिरः पार्श्वास्थिहृत्कम्पो मर्मभेदस्त्रिकग्रहः ।
उरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः
स्वेदोऽतिमात्र विष्टंभः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
प्रलापश्छर्दिरुत्क्लेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम् ।

अर्थ-मोह, हृदयवेदना, पुरीषभेद, निरंतर तृषा, कफ पित्तजज्वर, अरुचि, शिरःकंप, पार्श्वकंप, अस्थिकंप, हृदयकंप, मर्मभेद, त्रिकग्रह (त्रिक स्थानमें स्तब्धता) वक्षःस्थल में विबंधता, तिमिर, खांसी, श्वास, निद्रा न आना, पसीना, अत्यंत विष्टंभता, सूजन, चित विभ्रम, प्रलाप,

---

घोषिते । मध्यमो विहतेऽल्पे तु विहते तूत्तमो मदः अर्थात् मदकी जिस अवस्थामें ओजका नाश न होकर हृदयमें प्रबुद्धता बनी रहे वह प्रथम मद होता है । जिसमें ओजो पदार्थका अल्प नाश होजाता है वह मध्यम मद है और जिसमें सर्वथा नाश होजाता है वह उत्तम अर्थात् तृतीय मद है ।

+विश्रब्ध वह मनुष्य कहलाता है जो यह कहता है कि मद्य अमृतके समान स्पृहणीय और देवताओं को भी निवेदन करना उचित है, और उसीमें लयलीन होजाता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वमन, उत्क्लेश, भ्रम और बुरे बुरे स्वप्न ये सब मदात्यय के सामान्य लक्षण हैं ।

वातिक मदात्यय ।

विशेषाज्जागरश्वासकंपमूर्धरुजोऽविलात् ।
स्वप्ने भ्रमत्युत्पतति प्रेतैश्च सह भाषते ॥

अर्थ–वातिक मदात्यय में विशेष करके निद्रानाश, श्वास, कंपन, शिरोवेदना, स्वप्न में घूमना, ऊपरको चढना, प्रेतों के साथ वार्तालाप ये लक्षण होते हैं ।

पैत्तिक मदात्यय ।

पित्ताद्दाहज्वरस्वेदमोहातीसारतृड्भ्रमाः ।
देहो हरितहारिद्रो रक्तनेत्रकपोलता ॥

अर्थ–पैत्तिक मदात्ययमें दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतीसार, तृषा, भ्रम, देह में हरापन वा हल्दी का रंग, नेत्र और कपोलों में ललाई, ये लक्षण होते हैं ।

श्लैष्मिक मदात्यय ।

श्लेष्मणच्छर्विद्वल्लासनिद्रोददर्दगौरवम् ।

अर्थ–श्लैष्मिक मदात्यय में वमन, हृल्लास, निद्रा, उदर्द, अंग में भारापन होता है ।

त्रिदोषज मदात्यय ।

सर्वजे सर्वलिंगत्वम्

अर्थ–तीनों दोषों से उत्पन्न हुए मदात्यय में तीनों दोषों के मिले हुए उक्त लक्षण दिखाई देते हैं ।

ध्वंसक विक्षय व्याधि ।

मुक्त्वा मद्यं पिबेत्तु यः ।
सहसाऽनुचितं चान्यत्तस्य ध्वंसकविक्षयौ ।
भवेतां मारुतात्कष्टौ दुर्बलस्य विशेषतः ॥

अर्थ–जो आदमी बहुत दिनतक शराब पीना छोड देता है, फिर सहसा किसीदिन अधिक पी लेता है, अथवा किसीदिन असात्म्य मदिरा का प्रमाण से अधिक पान कर लेता है उसके ध्वंसक और विक्षय ये दो वातज व्याधियां होजाती हैं, ये कष्ट साध्य होती हैं और विशेष करके दुर्बल मनुष्य के होती है ।

ध्वंसक के लक्षण ।

ध्वंसके श्लेष्मनिष्ठ्विः कंठशोषोऽतिनिद्रता ।
शब्दासहत्वं तंद्रा च

अर्थ=ध्वंसक में कफकी प्रवृत्ति, कंठशोष, अतिनिद्रा शब्दका न सहना और तंद्रा उत्पन्न होती है ।

विक्षय के लक्षण ।

विक्षये ऽगशिरोरुक्तिरुक्
हृत्कंठरोगः संमोहः कासतृष्णावमिर्ज्वरः ॥

अर्थ–विक्षयरोग में अंगवेदना, शिरोवेदना, हृद्रोग, कंठरोग, मोह, खांसी, तृषा वमन और ज्वर उत्पन्न होते है ।

मद्यपान न करने का फल ।

निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत्
विकारैः स्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः ।

अर्थ–जो जितात्मा अपनी बुद्धि से विचारकर मद्यपान से निवृत्त होजाता है, उस मनुष्यको शारीरक वा मानसिक कोई विकार भी स्पर्श नहीं कर सकते हैं ।

तीन प्रकार के रोग ।

रजोमोहाहिताहारपरस्य स्युस्त्रयो गदाः ॥
रसावरुद्धचेतनावाहिस्रोतोरोधसमुद्भवाः ।
मदमूर्छायसंन्यासा यथोत्तरबलोत्तराः ॥

अर्थ–रजोगुणकी प्रधानतावाले के, मोह की प्रधानता वाले के और अपथ्याहार करने वाले के मद मूर्छा और सन्यास नामक तीन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रोग होते हैं, ये तीनों रोग रस, रक्त और चेतनावाही स्रोतों के रुकजाने से होते हैं। इनमें मद से मूर्छा और मूर्छा से सन्यास उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

मद के भेद।

मदोऽत्र दोषैः सर्वैश्च रक्तमद्यविषैरपि।

अर्थ—मद सात प्रकार के होते हैं, यथा—वातज पित्तज, कफज, सन्निपातज रक्तज, मद्यज और विषज।

वातज मद।

सक्तानल्पद्रुताभाषश्चलः स्खलितचेष्टितः॥
रूक्षश्यावारुणतनुर्मदे वातोद्भवे भवेत्।

अर्थ—वातज मद में रोगी की वाणी कंठमें सक्त, अल्प और वेग से निकलतीहै, उसकी चेष्टा चलायमान और स्खलित होती है। देह में रूक्षता, श्यावता और लालिमा होती है।

पित्तज मद।

पित्तेन क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः।

अर्थ—पित्तज मदमें रोगी क्रोधयुक्त, रक्तवर्ण, पीतवर्ण और कलह करनेमें प्रसन्न होता है।

कफज मद।

स्वल्पासंबद्धवाक्पांडुः कफाद्ध्यानपरोऽलसः।

अर्थ—कफज मद में रोगी थोडा और असंबद्ध भाषण करता है, पांडुवर्ण ध्यानमें मग्न और आलसी होता है।

सन्निपातज मद।

सर्वात्मा सन्निपातेन

अर्थ—त्रिदोषज मद में तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं।

रक्तज मद।

रक्तात्स्तब्धांगदृष्टिता।
पित्तलिंगं च

अर्थ—रक्तज मदमें अंगमें स्तब्धता, दृष्टि में स्तब्धता तथा पित्तज मद के लक्षण होते हैं।

मद्यज मद।

मद्येन विकृतेहा स्वरांगता।

अर्थ—मद्यज मदरोग में चेष्टा, स्वर और अंग में विकृति होती है।

विषजमद।

विषे कंपोऽतिनिद्रा च सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तु सः॥

अर्थ—विषजमदमें कंपन और अतिनिद्रा होती है, यह मद सब मदोंसे अधिक बलवान होताहै।

रक्तादि में वातादि की पहिचान।

लक्षयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वातादीन् शोणितादिषु।

अर्थ—रक्तज, मद्यज और विषज इन तीन प्रकार के मदरोगों में जिस जिस दोष की अधिकता होतीहै वह उसी उसी दोषके नामसे बोलने में आताहै और उसी उसी दोषके अनुसार चिकित्सा भी करनी चाहिये जैसे वाताधिक रक्तजमद, पित्ताधिक रक्तजमद, वाताधिक मद्यजमद, वाताधिक विषज मद, इत्यादि।

वातज मूर्छा का लक्षण।

अरुणं कृष्णनीलं वा खं पश्यन्प्रविशेत्तमः।
शीघ्रं च प्रतिबुध्येत हृत्पीडा वेपथुर्भ्रमः।
कार्श्ये श्यावारुणा छाया मूर्छायां मारुतात्मके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–वातजमूर्च्छा रोगमें रोगी आकाश में लाल काला वा नीला रंग देखता हुआ अंधकार में डूब जाताहै अर्थात् मूर्छित हो जाताहै, तथा थोडीही देरमें मूर्च्छा जाती रहतीहै तब हृदयमें पीडा, धुकधुकी, भ्रम कृशता, श्यावता, वा अरुण रंगकी कांति हो जाती है ।

पित्तज मूर्च्छा का लक्षण ।

पित्तेन रक्तं पीतं वा नभः पश्यन् विशेत्तमः ।
विबुध्येत च सस्वेदो दाहतृट्तापपीडितः ॥
भिन्नविण्नीलपीताभो रक्तपीताकुलेक्षणः ।

अर्थ–पित्तजमूर्छा रोगमें रोगी आकाश में लाल और पीला रंग देखता हुआ मूर्छित होजाताहै मूर्छासे चेत होते समय पसीना दाह, तृषा, संतापसे पीडित होताहै उसका पुरीष फटजाताहै, देह का वर्ण नीले वा पीले रंगका होजाताहै, नेत्रमें लाल वा पीला रंग और आकुलता होतीहै ।

कफज मूर्च्छाके लक्षण ।

कफेन मेघसंकाशं पश्यन्नाकाशमाविशेत् ॥
तमश्चिराच्च बुध्येत सहृल्लासः प्रसेकवान् ।
गुरुभिः स्तिमितैरंगैरार्द्रचर्मावनद्धवत् ३४॥

अर्थ–कफज मूर्छा रोगमें रोगी मेघवर्ण आकाश को देखते देखते मूर्च्छित होजाताहै यह रोगी बहुत देर में होशमें आताहै । होश में आनेके समय हृल्लास और लालास्राव होताहै और रोगी को अपना देह गीले चमडे से लिपटा हुआ सा भारी मालूम होताहै ।

सन्निपातसे निश्चेष्टता ।

सर्वैकृतिस्त्रिभिर्दोषैरपस्मार इवाऽपरः ।
पातयत्याशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितैः ॥

अर्थ–त्रिदोष के संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त मदात्यय में रोगी अपस्मार की तरह मूर्च्छित होकर गिर पडताहै, अंतर केवल इतनाही है कि अपस्मार में रोगी की चेष्टा भयंकर होजाती है, इसमें नहीं होती है ।

सन्यास के लक्षण ।

दोषेषु मदमूर्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यंति सन्यासो नौषधैर्विना

अर्थ–मनुष्यों के मद और मूर्च्छा रोग वेगोंके होचुकने पर औषध के विना अपने आपही शांत होजाते हैं परन्तु सन्यास रोग औषध के विना शांत नहीं होताहै ।

सान्निपातिक सन्यास ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
संन्यासं सन्निपतिताः प्रागायतनसंश्रयाः ॥
कुर्वंति तेन पुरुषः काष्ठभूतो मृतोपमः ।
म्रियेत शीघ्रं शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते

अर्थ–वातपित्तकफ ये तीनों दोष अत्यन्त कुपित होकर एकही कार्य करने के लिये उद्यत हुए वाणी मन और देहकी चेष्टाओं का नाश कर देते हैं और हृदय का आश्रय लेकर सन्यास रोग को उत्पन्न करते हैं, इस रोग में मनुष्य काष्ठ की तरह मुर्दे के समान होजाता है और यदि चिकित्सा करने में शीघ्रता न की जाय तो मरभी जल्दी जाता है ।

शीघ्रचिकित्सा से जीवन ।

अगाधे ग्राहबहुले सलिलौघे इवातटे ।
संन्यासे विनिमज्जंतं नरमाशु निवर्तयेत् ॥

अर्थ–मकरादि प्राणियों को हरने वाले जीवों से व्याप्त तटहीन अगाधजलराशि में गिरे हुए मनुष्य को निकालने में जैसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शीघ्रता की जाती है वैसेही सन्यास रोग में ग्रसित मनुष्यको निकालकर शीघ्र रक्षा करनी चाहिये।

मद्यसेमद्यका उपसंहार।

मदमानरोषतोष-
प्रभृतिभिररिभिर्निजैः परिष्वंगः।
युक्तायुक्तं च समं-
युक्तिवियुक्तेन मद्येन ॥ ४० ॥

अर्थ—युक्ति से विपरीत मद्यपान द्वारा मद, मान, रोष और तोष आदि दृष्ट और अदृष्ट विनाशकारी निज शत्रुओं का विशेष संबंध होता हैं, अर्थात् ये सदा ही अनिष्ट करते हैं और केवल मदादि शत्रुगण का जो अधिक संश्लेष होता है यह भी नहीं है। युक्तिविरुद्ध मद्यपानद्वारा वैध अवैध मद्यपान का फल भी समान होता है, अर्थात् उस समय वैध मद्यपान का भी फल नहीं होता है।

अन्य युक्ति।

बलकालदेशसात्म्य-
प्रकृतिसहायामयवयांसि।
संविभज्य तदनुरूपं-
यदि पिबति ततः पिबत्यमृतम् ,, ४१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने शारीरिक बल, हेमंतादि काल, देश, सात्म्य, प्रकृति, सहाय, रोग और वय इन सब बातों का विचार करके जो मद्यपान करता है वह अमृत तुल्य मद्य पीता है।

इतिश्री अष्टांगहृदयेभाषाटीकायां मदात्यय निदाननंनाम षष्ठोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः।

अथाऽर्शसां निदानम् व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से अर्शोनिदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

अर्शका नाम निर्वचन।

"अरिवत्प्राणिनो मांसकीलकाविशसंति यत्
अर्शांसि तस्मादुच्यंते गुदमार्गनिरोधतः १
दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य-
विविधाकृतीन्।
मांसांकुरानपानाद्यै कुर्वंत्यर्शांसि तान् जगुः

अर्थ—मांसकी कील अर्थात् अंकुर गुदा के द्वार को रोककर शत्रुकी तरह प्राणों का नाश करते हैं, इसलिये इन्हें अर्श कहते हैं।

वातादि तीनों दोष त्वचा, मांस और मेद को दूषित करके गुदा, कान और नाक में अनेक आकृतिवाले मांस के अंकुरों को उत्पन्न करते हैं। इन मांसांकुरों को अर्श कहते हैं।

अर्शके दो भेद।

सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद्द्वेधा समासतः।
शुष्कस्राविविभेदाच्च-

अर्थ—अर्श सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं एक सहज (शरीर के संग उत्पन्न होने वाले), दूसरे जन्मोत्तरोत्थान (जन्म लेने के पीछे उत्पन्न होने वाले)। इन्हीं के दो भेद और भी है एक शुष्क (बादी बवासीर), दूसरी स्रावी (खूनी बवासीर)।

गुदाकी अबलियों का वर्णन

गुदःस्थूलांत्रसंभवः ॥ २ ॥
अर्धपञ्चांगुलस्तासिंस्तिस्रोऽप्यर्धांगुलाः स्थिताः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बल्यः प्रवाहिणी तासामंतर्मध्ये विसर्जनी ॥
बाह्या संवरणी तस्या गुदोष्ठो बहिरंगुले ।
यवाढ्यर्धप्रभाजेन रोमाण्यत्र ततः परम् ५ ॥

अर्थ-गुदा नाडी देहकी स्थूल अंत्रमें अवस्थित होती है, इसका प्रमाण साडेचार अंगुल का है, इसमें प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी तीन बलि अर्थात् आंटी हैं, इनमें से प्रवाहिणी भीतर है, विर्जेसनी बीच में है और संवरणी बाहर है। हर एक बलि का प्रमाण डेढ अंगुल का होता है। इस संवरणी बलि के एक अंगुल नीचे गुदाका ओष्ट होता है, इसका प्रमाण डेढ जौका है इससे नीचे रोम होते हैं।

उक्त कथनमें हेतु ।

तत्र हेतुः सहोत्थानां बलीबीजोपतप्तता ।
अर्शसां बीजतप्तिस्तु मातापित्रपचारतः ॥
दैवाच्च साम्यां कोपो हि सन्निपातस्य-
नान्यतः ।
असाध्यान्येषमाख्याताःसर्वेरोगाःकुलोद्भवाः

अर्थ-ऊपर जो दो प्रकारके अर्श कहे गयेहैं उनमें से सहज अर्शका हेतु बलिसंबंधी बीज अर्थात् शुक्रार्तव की उपतप्तता है। और अर्शोविकार को उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यवाले वातपित्त कफसे पीडन होना बीजकी उपततताहै। अर्थात सहज अर्श वातापित्तकफ द्वारा माता पिताके शुक्रार्तव के उपतप्त होनेसे होताहै। अर्शके बीज की उपताप्ति का कारण मातापिताके आहारविहारादि अपचार होतेहैं। मातापिता के अपचार और देवसे (पूर्वजन्म कृत अशुभ कर्मसे) सान्निपातिक अर्श होताहै, यह असाध्य होताहै। इसतरह कुलोद्भव संपूर्ण रोग बीजकी उपतप्तता से होतेहैं इसलिये असाध्य भी हैं।

अर्शमें रूक्षादि गुण ।

सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि च ।
अन्तर्मुखानि पांडूनि दारुणोपद्रवाणि च ।

अर्थ-सहज अर्श विशेष रूपसे रूक्ष दुर्दर्शनीय (देखनेमें भयोत्पादक), अंतर्मुख (भीतर को मुखवाले), पांडुवर्ण और दारुण उपद्रवों से युक्त होतेहैं (विशेष शब्दके कहनेसे यह अर्थ भी निकलताहै कि उत्तरजात अर्शमें ये लक्षण होतेहैं)।

उत्तरजात अर्शके भेद ।

षोढान्यानि पृथग्दोषसंसर्गनिचयात्ततः ।
शुष्काणिवातश्लेष्मभ्यामार्द्राणित्वसृपित्ततः

अर्थ-उत्तरजात अर्श छः प्रकार के होते है, यथा वातज, पित्तज, कफज, संसर्गज, त्रिदोषज और रक्तज। इनमेंसे शुष्क अर्श, वात और कफसे होतेहैं। आर्द्रअर्श पित्त और रक्तसे होते है।

अर्श की उत्पत्ति ।

दोषप्रकोपहेतुस्तु प्रागुक्तस्तेन सादिते ।
अग्नौ मले ऽतिनिचिते पुनश्चातिव्यवायतः ॥
यानसंक्षोभविषमकठिनोत्कटकासनात् ।
वस्तिनेत्राश्मलोष्ठोर्वीतलचैलादिघट्टनात् ॥
भ्रशं शीतांबुसंस्पर्शात्प्रततातिप्रवाहणात् ।
वातमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात् १२ ॥
ज्वरगुल्मातिसारामग्रहणीशोफपांडुभिः ।
कर्शनाद्विषमाभ्यश्च चेष्टाभ्यो योषितां पुनः
आमगर्भप्रपतनाद्गर्भवृद्धिप्रपीडनात् ।
ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मलम् १४
पायोर्वलीषु संश्रित्य तास्वाभिष्यण्णमूर्तिषु ।
जायतेऽर्शांसि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--प्रथम सर्व रोगनिदानाध्यायमें दोषों के प्रकोपका कारण कहदिया गया है उसी दोष प्रकोपके कारण से जठराग्नि मंद पडजाती है, और जठराग्नि के मंद पडनेसे अन्नका सम्यक् पारिपाक न होने से मलकी वृद्धि होती है। इस मलकी वृद्धिसे, अत्यन्त मैथुनसे, सदा सवारीपर चढनेसे, विषम, कठोर और उत्कट आसन पर बैठनेसे, तथा बस्तिके नेत्र, पत्थर, लोष्ठ, पृथ्वीतल, और वस्त्रद्वारा गुदा के रिगडनेसे, अत्यन्त शीतलजल के स्पर्शसे, निरंतर दोषोंके प्रवर्तनसे, अधोवायु मूत्र और मलके उपस्थित वेगोंको रोकने वा अनुपस्थित वेगोंको बलपूर्वक करने से, ज्वर, गुल्म, अतिसार, आमदोष, प्रहणीरोग, सूजन और पांडुरोगों के कर्षणसे, विषम चेष्टाओंसे, स्त्रियों के आम गर्भ गिरने से, वा गर्भकी वृद्धिके प्रपीडनसे, तथा ऐसे ही अन्य कारणोंसे, अपान वायु कुपित हो कर इकट्ठे हुए मलको गुदाकी अवलिमें स्थित करदेता है। और मलके अत्यन्त संपर्क से गुदाकी अवलियां प्रक्लिन्न रहती हैं और वहां मांसके अंकुर जम जाते हैं। इन्हीं अंकुरों को अर्श कहते हैं॥

अर्शका पूर्वरूप।

तत्पूर्वलक्षणं मंदवह्निता॥
विष्टंभः सक्थिसदने पिंडिकोद्वेष्टनं भ्रमः।
सादोऽङ्गे नेत्रयोः शोफः शकृद्भेदोऽथवा महः
मारुतः प्रचुरो मूढः प्रायो न भेरधश्चरन्।
सरुक् सपरिकर्तश्च कृच्छ्रान्निर्गच्छति-
स्वनन्॥ १७॥
अंत्रकूजनमाटोपः क्षामतोदारभूरिता।
प्रभूतं मूत्रमलता विट्भेदो वै धूमकोऽम्लकः।
शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्यं भिन्नवर्णता।
तथेंद्रियाणां दौर्बल्यं क्रोधो दुःखोपचारता।
आर्शसां ग्रहणीदोषपांडुगुल्मोदरेषु च।
एतान्येव विवर्धंते जातेषु हतनामसु॥

अर्थ--अर्श के पूर्वरूप ये होते हैं, यथा-मंदाग्नि, विष्टंभ, सक्थियों में शिथिलता, पिंडलियों में ऐंठन, भ्रम, अंग में शिथिलता, नेत्रों में सूजन, पुरीषभेद, पुरीषबद्धता, वायुकी प्रचुरता, वायुकी मूढता, नाभि से नीचे वायुका संचार, वेदना, कैंची से कतरने कीसी पीडा, बहुत कष्ट से शब्द करती हुई वायुका निकलना, अंत्रकूजन, अफरा, क्षीणता, डकारों की अधिकता, मूत्रकी अधिकता मल की अल्पता, भोजन में अनिच्छा, धूआंसा निकलना, अम्लोद्गार, शिर पीठ और वक्षःस्थलमें वेदना-आलस्य, देहमें विवर्णता, इन्द्रियोंमें दुर्बलता, क्रोध, इलाजकी कठिनता, तथा ग्रहणीरोग, पांडुरोग, गुल्मरोग, और उदररोग इनकी आशंका ये सब लक्षण अर्शरोग की उत्पत्ति से पहिले होते हैं। ग्रहणीसे आदि लेकर सब रोग अर्शके उत्पन्न होने के पीछे बढते हैं।

अर्शरोगी का लक्षण।

निवर्तमानोऽपानो हि तैरधोमार्गरोधतः।
क्षोभयन्मारुतान्यान् सर्वेंद्रियशरीरगान्।
यथा मूत्रशकृत्पित्तकफान् धातूंश्च साशयान्
मुद्गात्यग्निं ततः सर्वो भवति प्रायशोऽर्शसः।
कृशो भृशं हतोत्साहो दीनः क्षामोऽतिनिष्प्रभः।
असारो विगतच्छायो जंतुर्जुष्ट इव द्रुमः॥
कृच्छ्ररुपद्रवैर्ग्रस्तो यथोक्तैर्मर्मपीडनैः।
तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनसैः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलमांगभंगवमथुक्षवथुश्वयथुज्वरैः ।
क्लैब्यबधिर्यतैमिर्यशर्करारुमरिपीडितः ॥
क्षाममिश्रस्वरो ध्यायन्मुहुः छीवन्नरोचकी ।
सर्वपर्वास्थिहृन्नाभिपायुबंक्षणशूलवान् ॥
गुदेन स्रवता पिच्छां पुलाकोदक सन्निभाम् ।
विवद्धमुक्तं शुष्कार्द्रं पक्वामं चांतरांतरा ॥
पांडु पीतं हरिद्रक्तं पिच्छिलं चोपवेश्यते ।

अर्थ--अर्शसे अधोमार्ग के रुकजाने के कारण अपान वायु ऊपर को चढकर संपूर्ण इन्द्रियगत समान उदान आदि वायुको तथा मूत्र, विष्टा, पित्त, कफ और रसादि धातु को उनके आधार सहित क्षोभित करके अग्निको मंद करदेताहै । इस अग्नि की मंदतासे रोगी प्रायः अत्यन्त कृश, हतोत्साह दीन; क्षीण, कांतिरहित, असार, छायाहीन; और कीडोंसे खायेहुए वृक्षकी तरह होजाता है । तथा मर्मपीडन में जो उपद्रव कहेगये है, वे सब उपस्थित होते है तथा खांसी, तृषा, मुखमें विरसता, श्वास, पीनस, क्लांति अंगभंग, वमन, छींक, सूजन, ज्वर, क्लीवता, बहरापन, तिमिर रोग, शर्करा, पथरी रोग उत्पन्न होते है, तथा स्वर में क्षीणता वा भिन्नता, सदा चिन्ता ग्रस्तता, छीवन, अरुचि, ये भी होतेहैं और संपूर्ण पर्व (अस्थियों के जोड़), अस्थि, हृदय, नाभि, गुदा, और बंक्षण इनमें शूल होता है । गुदा से पुलाक के जल के सदृश पिच्छिल स्राव होता है । तथा कभी विबद्धता, कभी मुक्तता, कभी शुष्क, कभी आर्द्र (गीला), कभी पक्व, कभी अपक्व, कभी पांडु, पीला, हरा, लाल, वा पिच्छिल मल निकलता है ।

वातार्श के लक्षण ।

गुदांकुरा बहुवनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषमाः परुषाः खराः ।
मिथो विसदृशा वक्त्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ।
विवीकर्कंधूखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ॥
कोचित्कदंबपुष्पाभाः कोचित्सिद्धार्थकोपमाः ।
शिरः पार्श्वोसकट्यूरुबंक्षणाभ्यधिकव्यथाः
क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ३१ ॥
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ।
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥
रुक्फेनापिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ।
कृष्णत्वक्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ।

अर्थ--वातकी अधिकता के कारण जो गुदामें अंकुर होतेहैं वे सूखे और चिमचिमहटयुक्त होतेहैं, ये म्लान [मुरझाये हुए] श्याव वा अरुण वर्ण, स्तब्ध, विषम, खरखरापनयुक्त, विभिन्न आकृतियुक्त, टेढे, तीक्ष्ण, फटे हुए मुखवाले, बिंबी, बेर, खिजूर वा कपास के फलकी सदृश अनेक रूप वाले, कदंब के फूल के सदृश, कोई सरसों के फूल के सदृश होते हैं । इनसे सिर, पसली, कंधा, कमर, ऊरु और बं-

× अप्राप्तपाकं पुलाकशब्दवाच्यम् । आगमः। धान्यंपुलाको निष्पन्नमिति । अथवा पुलाकः कुत्सितं धान्यं तस्योदकेन तुल्याम् अन्येतु यवागोधूमादिस्वेदः पुलाकोदकमित्याहुः तेन तुल्याम् । अर्थात् अप्राप्त पाक धान्यको अथवा कुत्सितधान्यको पुलाक कहते हैं । कोई कोई जौ और गेंहू के स्वेद को पुलाक कहते हैं । तद्वत् जलको पुलाकोदक कहते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षण में वेदना अधिक होती है। छींक, डकार, विष्टंभ हृदयग्रह, अरुचि, खांसी, श्वास, विषमाग्नि, कर्णनाद, और भ्रम ये उपस्थित होतेहैं। इस रोगमें गांठदार, प्रवाहिका के लक्षणोंसे युक्त झागदार पिच्छिलताविशिष्ट बहुतसा विष्ठा थोडा थोडा निकलताहै। मल त्यागके समय अत्यन्त वेदना और शब्द होताहै। इस रोगीके नख, त्वचा, मल, मूत्र, नेत्र और मुख काले पड जातेहैं। इसी रोगसे गुल्म प्लीहा, उदररोग और अर्ष्टीला की उत्पत्ति होजातीहै।

पित्तज अर्श के लक्षण।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः शनैः।
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्छारुचिमोहदाः।
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वदनखादयः।

अर्थ–पित्तकी अधिकता वाले गुदांकुर नीलमुख, लाल पीली काली क्रांति से युक्त होतेहैं। इनमेंसे पतला रक्त निकलताहै, ये आमगंधसे युक्त, सिरसके फूल के समान कोमल, स्निग्ध मांसवत् श्लथ होतेहैं, इनका आकार तोते की जीभ, यकृतखंड वा जोंक के मुखके सदृश होताहै। इसमें दाह, पाक ज्वर, स्वेद, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि और मोह उपस्थित होतेहैं। इसमें उष्णतायुक्त, पतला, नीला, पीला, लाल और कच्चा मल निकलताहै। ये जौ की तरह बीचमें मोटे होतेहैं। पित्तज बवासीरवाले रोगी का मुख, त्वचा, नख, नेत्रादि हरे पीले वा हलदीके से रंगके होजाते हैं।

कफज अर्श के लक्षण।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मंदरुजा सिताः
उच्छ्रूनोपचिताःस्निग्धाःस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णा कण्डूवाढ्याः
स्पर्शनप्रियाः ॥ ३८ ॥
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः
वंक्षजानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्तिनः ॥
सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः।
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशीतज्वरकारिणः ॥
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः।
वसाभाःसकफप्राज्यपुरीषाःसप्रवाहिकाः॥
न स्रवंति न भिद्यंते पांडुस्निग्धत्वगादयः ॥

अर्थ–श्लेष्मजनित अर्श में गुदांकुरों की जड़ मोटी, घन, अल्पवेदनायुक्त और सफेद रंगकी होती है। ये उत्पन्न फूलेहुए स्थूल, स्निग्ध, स्तब्ध, गोल, भारी, स्थिर, पिच्छिल, स्तिमित और श्लक्ष्ण होते हैं। इनमें खुजली बहुत चलती है और हाथ फेरने से सुख प्रतीत होता है। इसका आकार करीलफल वा पनसकी गुठली वा गोस्तन के सदृश होता है। इस अर्श में दोनों वक्षणों में अकरा, गुदा वस्ति और नाभि में कतरने कीसी पीडा, खांसी, श्वास हृल्लास, प्रसेक, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, सिर में जडता, शीतज्वर की उत्पत्ति, क्लीवता, अग्निमांद्य, वमन, और आमदोष के विकार उत्पन्न होते हैं। अर्शरोगी चर्बी के सदृश, कफामिश्रित प्रवाहिका लक्षणयुक्त बहुत सा मल त्याग करता है। इसमें रक्तका स्राव नहीं होता है न ये फटते हैं, रोगी के त्वचा, नख, मुख नेत्र आदि पांडुवर्ण और स्निग्ध हो जाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संसृष्ट और निचय अर्श।

संसृष्टलिंगाः संसर्गात्-
निचयात्सर्वलक्षणाः ॥ ४२ ॥

अर्थ–जो अर्श वातादि दो दो दोषों से उत्पन्न होती है उसमें दो दो दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और जो तीन दोषों से उत्पन्न होती है उसमें तीनों दोषों के लक्षण होते हैं।

रक्तज अर्श।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ४३
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविड्भेदपीडिताः।
स्रवंति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥
भेकाभः पीड्यते दुःखै शोणितक्षयसंभवैः।
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेंद्रियः ॥

अर्थ–रक्तज गुदांकुर के लक्षण पित्तज अर्श के लक्षणों के समान होते हैं, इनकी आकृति बट के अंकुरों के सदृश गुंजा वा विद्रुमकी कांति के समान होती हैं। गुदा द्वारा गाढा वा कठोर मल निकलने के कारण मस्सों से गरम गरम दूषित रक्त अधिकता से निकलता है। और रक्त के अत्यन्त निकलने से रोगी मेंडक के सदृश पीला पड़ जाता है, तथा रक्तक्षयजनित रोग से पीडित होकर अनेक दुःख उठाता है ऐसे रोगी के बल, वर्ण, उत्साह और ओज सब नष्ट होजाते हैं, संपूर्ण इन्द्रियां कलुषित होजाती हैं।

मुद्गादि सेवन से वातादि का प्रकोप।

मुद्गकोद्रवजूर्णाद्यैकरीरचणकादिभिः।
रूक्षैः संग्राहिभिर्वायुः स्वस्थाने कुपितो बली
अधोवहानिस्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन्
पुरीषं वातविण्मूत्रसङ्गमुत्कुर्वीत दारुणम् ॥
तेन तीव्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत्।
आध्मानमुदरावेष्टो हृल्लासः परिकर्तनम् ॥
वस्तौ च सुतरां शूलं गंडः श्वयथुसंभवः।
पवनस्योर्ध्वगामित्वं ततश्छर्द्यरुचिज्वराः ॥
हृद्रोगग्रहणीदोषमूत्रसंगप्रवाहिकाः।
बाधिर्यतिमिरश्वासशिरोरुक्कासपीनसाः ॥
मनोविकारस्तृष्णास्रपित्तगुल्मोदरादयः।
ते ते च वातजा रोगा जायंते भृशदारुणाः ॥
तुर्नाम्नामित्युदावर्तः परमोऽयमुपद्रवः।
वातामिभूतकोष्ठानां तैर्विनाऽपि स जायते ॥

अर्थ–मूंग, कोदों, ज्वार, चना, मसूरादि रूक्ष और संग्राही भोजनों से अपान वायु वस्ति आदि अपने स्थान में बलवान् और कुपित होकर अधोवाही स्रोतों को रोकदेती है और मलको ऐसा शुष्क करदेती है कि मलमूत्र किसी प्रकारनिकालेसेभी नहीं निकलते हैं ऐसा होनेपर कोष्ठ, पीठ, हृदय और पसली में बडी तीव्र वेदना होने लगती है। अफरा, उदर में ऐंठन, हृल्लास, परिकर्तन, वस्ति देश में दारुण शूल, गंडस्थल में सूजन, वायुका ऊर्ध्वगमन, तथा वायुके ऊर्ध्वगमन से उत्पन्न वमन, अरुचि, ज्वर हृद्रोग, ग्रहणी दोष, मूत्ररोग, प्रवाहिका, बहरापन, तिमिर, श्वास, शिरोवेदना, खांसी, पीनस, मनोविकार, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म, उदररोग तथा अन्यान्य वातज भयंकर रोग उत्पन्न होजाते हैं। तथा अर्शरोग का उदावर्त नामक भयंकर और प्रधान उपद्रव उत्पन्न होजाता हैं। किसी प्रकार का वातजविकार कोष्ठ में होने से भी अर्शरोगके विनाही उदावर्तरोग होजाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्श का साध्यासाध्यत्व।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरे बली।
स्थितानि तान्यसाध्यानियाप्यंतेऽग्नि
बलादिभिः ॥ ५३ ॥

अर्थ—सहज अर्श, वा जन्मधारण के पीछे त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अर्श, तथा भीतर वाली वलि में उत्पन्न अर्श असाध्य होता है। परंतु यदि अग्निवल, और आयु शेष हो तथा चिकित्सा के चारपद (कुशल वैद्य, उपयुक्त औषध, अनुकूल परिचारक और विश्वासी रोगी) उपस्थित हो तो असाध्य भी कष्टसाध्य होजाता है।

कृच्छ्रसाध्य अर्श।

द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च

अर्थ—जो अर्श द्वन्द्वज दोषों से उत्पन्न होते हैं, वा गुदा की दूसरी वलि में होते हैं वा जो एक वर्ष के अधिक पुराने होगये हैं ये कष्टसाध्य हैं।

सुखसाध्य अर्श।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च
अर्शांसि सुखसाध्यानि नचिरोत्पतितानि च

अर्थ—जो अर्श गुदा के बाहर की वलि में होते हैं, जो एक दोषसे उत्पन्न हुए हैं और जो बहुत दिनके नहीं है वह सुखसाध्य हैं।

मेढ्रादिजन्य अर्श के लक्षण।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यंते यथास्वम्-

अर्थ—मेढ्र, भग, नासिका, कान आदि में जो अर्श होते हैं उनका वर्णन उनके प्रकरण में किया जायगा।

नाभिज अर्श।

नाभिजानि तु।
गंडूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥

अर्थ—जो अर्श नाभि में होता है वह केंचुए के मुख के सदृश तथा पिच्छिल और कोमल होता है।

चर्मकील के लक्षण।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शास्त्वचो-
बहिः।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तं विदुः॥

अर्थ—व्यान वायु कफ का आश्रय लेकर त्वचा के ऊपर कील के सदृश स्थिर और कर्कश मांसके अंकुरों को उत्पन्न कर देती है, इनको चर्मकील वा मस्सा कहतेहैं।

वातजादि चर्मकील।

वातेन तोदः पारुष्यं पित्तादसितरक्तता।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रंथितत्वं सवर्णता

अर्थ—वात से उत्पन्न चर्मकील में सुई चुभने की सी वेदना और कर्कशता, पित्त जनित चर्मकील में कालापन और ललाई तथा कफजन्य में स्निग्ध गांठ और त्वचा के रंगकी सदृशता होती है।

अर्श में उपाय।

अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान्।
तान्याशु हि गुदं रुद्ध्वा कुर्युर्वद्धगुदोदरम्॥

अर्थ—बुद्धिमान् को उचित है कि अर्श रोग की चिकित्सा शीघ्रतापूर्वक बडे यत्न से करे। चिकित्सा में शीघ्रता न करने से सब मांसांकुर गुदा के द्वार को रोककर बद्धगुदोदर नामक रोग को पैदा कर देते हैं।

इति सप्तमोऽध्यायः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अष्टमोऽध्यायः

अथातोऽतीसारग्रहणीरोगयोर्निदानं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहांसे अतीसार और ग्रहणी रोग निदाननामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

अतीसारके छः भेद ।

"दोषैर्व्यस्तैःसमस्तैश्चभयाच्छोकाच्चषड्विधः अतीसारः

अर्थ–पृथक् पृथक् वातादि दोषोंसे तीन प्रकार, तीनों मिलकर अर्थात् सन्निपात से एक प्रकार, तथा भय और शोकसे दो प्रकार, अर्थात् सब मिलाकर अतिसार के छः भेद हैं । यथा– वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, भयज, और शोकज ।

अतिसारकी उत्पत्ति ।

स सुतरां जायतेऽत्यंबुपानतः । १ ।
कृशशुष्कामिषासात्म्यतिलपिष्टविरूढकैः ।
मद्यरूक्षातिमात्राशैरर्शोभिः स्नेहविभ्रमात् ।
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधः कुपितोऽनिलः
विभ्रंसयत्यधोऽधातुं हत्वा तेनैव चानलम्
व्यापद्यानुशकृत्कोष्ठं पुरीषं द्रवतां नयन् ।
प्रकल्पतेऽतिसाराय

अर्थ–अधिक जल पीनेसे, कृश पशुका मांस, सूखा मांस, असात्म्य भोजन, तिल, पिष्टक, विरूढ (अंकुरित अन्न), मद्यपान, रूक्षभोजन, अतिमात्रभोजन, अर्श, स्नेहविभ्रम (वमनविरेचन अनुवासन और निरूहार्थ स्नेहक्रियाका अतियोग वा अल्पयोग), इन सब वस्तुओंके सेवनसे, कृमिरोगसे, मल मूत्र का वेग रोकनेसे, तथा ऐसेही वातप्रकोपक अन्य हेतुओं से वायु कुपित होकर शरीरस्थ जलसंबंधी धातुको नीचेको स्राव करती है और जब वह जलीयधातु कोष्ठस्थ मलके समीप पहुंच जाती है तब जठराग्नि को बुझाने लगती है और उसी धातुसे मल को पतला करके अतिसार उत्पन्न कर देती है ।

अतिसारका पूर्वरूप ।

लक्षणं तस्य भाविनः ॥ ४ ॥
तोदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रसादो मलग्रहः ।
आध्मानमविपाकश्च

अर्थ–जिस मनुष्यके अतिसार होनेवाला होता है उसके हृदय, गुदा और कोष्ठ में सुई छिदने की सी वेदना होती है, देह शिथिल पड जाती है, मलका विबंध, आध्मान और अन्नका अविपाक होता है । ये सब अतिसार के पूर्वरूप होते हैं ।

वातज अतिसारके लक्षण ।

तत्र वातेन विज्जलम् ॥ ५ ॥
अल्पाल्पं शब्दशूलाढ्यं विबद्धमुपवेश्यते ।
रूक्षं सफेनमच्छं च ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ॥ ६ ।
तथा दग्धगुडाभासं सपिच्छापरिकर्तिकम् ।
शुष्काम्बो भ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिष्टनन् ।

अर्थ–उक्त छः प्रकारके अतिसारोंमें जलवत, थोडा थोडा, शब्द और शूलसे युक्त, बंधा हुआ, रूक्ष, झागदार, पतली, छोटी छोटी गांठोंसे युक्त, बार बार जले हुए गुड के समान, पिच्छिल, कतरने की सी पीडा से संयुक्त मल निकलता है । इसमें रोगीका मुख सूख जाता है । गुदा विदीर्ण होजाती है । रोमांच खडे होजाते हैं और कुपित सा मालूम होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्तातिसार के लक्षण।

पित्तेन पीतमासितं हारितं शाद्वलप्रभम्।
सरक्तमतिदुर्गंधं तृण्मूर्छास्वेददाहवान्। ८।
सशूलपायुसंतापं पाकवान्

अर्थ–पित्तातिसारमें पीला, काला, हरा, हरी दूबके समान, रुधिरमिश्रित, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, दस्त होता है, दस्तोंसे रोगीकी गुदामें दर्द होने लगता है। तथा गुदामें संताप और पाक भी होता है। तथा तृषा, मूर्छा, स्वेद, और दाह ये भी होते हैं।

कफातिसार के लक्षण।

श्लेष्मणा घनम्।
पिच्छिलं तंतुमच्छ्वेतं स्निग्धमांसं कफान्वितम्
अभीक्ष्णं गुरु दुर्गंधं विबद्धमनुबद्धरुक्।
निद्रालुरलसोऽन्नेच्छः सप्रवाहिकम्।
सरोमहर्षः क्लोक्लेशो गुरुबस्तिगुदोदरः।
कृतेऽप्यकृतसंज्ञश्च

अर्थ-कफातिसार में गाढा, पिच्छिल, तंतुओंसेयुक्त, सफेद, स्निग्ध, मांस और कफयुक्त, बार बार, भारी (जलमें डूबजाय) दुर्गंधयुक्त, विबद्ध, निरंतर वेदनायुक्त, प्रवाहिका से युक्त थोडा थोडा दस्त होता है। इसमें रोगीको निद्रा, आलस्य, अन्नमें अनिच्छा, रोमहर्ष और उत्क्लेश होता है। वास्ति, गुदा और उदरमें भारापन होताहै। दस्त होनेके पीछे भी ऐसा मालूम होता रहताहै कि दस्त नहीं हुआ है।

सान्निपातिक अतिसार।

सर्वात्मा सर्वलक्षणः॥ ११॥

अर्थ--जो अतिसार त्रिदोष से होता है, उसमें तीनों दोषोंके लक्षण पाये जाते हैं।

भयज और शोकज अतिसार।

भयेन क्षोभिते चित्ते सपित्तो द्रावयेच्छकृत्।
वायुस्ततोऽतिसार्येत क्षिप्रमुष्णं द्रवं प्लवम्।
वातपित्तसमं लिंगैराद्रुस्तद्वच्च शोकतः।

अर्थ–भयसे चित्त के क्षोभित होनेपर पित्तसे संयुक्त वायु मलको पतला करदेता है, तदनंतर वात पित्तके लक्षणोंसे युक्त गरम, पतला, प्लवतायुक्त जल्दी जल्दी मल निकलताहै। शोकज अतिसार के लक्षणभी भयज अतिसार के समान होते हैं।

अतिसार के दो भेद।

अतीसारः समासेन द्विधा सामो निरामकः।
साम्रकृन्निरसः

अर्थ–संक्षेप से अतिसार दो प्रकार का होता है एक साम, दूसरा निराम। तथा एक सरक्त, दूसरा निरक्त।

साम के लक्षण।

तत्राऽऽद्ये गौरवाद्दप्सु मज्जति।
शकृद्दुर्गंधमाध्मोपविष्टंभार्तिप्रसेकिनः। १४।

अर्थ–आमातिसार में मल बडा दुर्गंधित होताहै, और जलमें डालनेसे डूबजाता है। रोगी के पेटमें गुडगुडाहट, विष्टंभ, वेदना और मुखप्रसेक होता है।

निरामातिसार।

विपरीतो निरामस्तु कफात्पक्वोऽपि मज्जति।

अर्थ–निरामके लक्षण सामसे विपरीत होते हैं, कफजन्य होने के कारण पक्व होने परभी जलमें डूब जाता है।

ग्रहणी रोग के लक्षण।

अतीसारेषु यो नातियत्नवान् ग्रहणीगदः।
तस्य स्याद्ग्निविध्वंसकरैरत्यर्थसेवितैः।

अर्थ–जो अतिसार में बडी सावधानी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं करता है उसके ग्रहणी रोग हो जाता है। जठराग्निको भेद करनेवाले अन्नपान के सेवनसे भी यहरोग उत्पन्न होजाता है।

अतिसार और ग्रहणीमें अंतर।

सामं शकृच्चिरामं वा जीर्णे येनातिसार्यते ॥
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः

अर्थ–आहार के पचनेपर व्याधिद्वारा जो साम वा निराम मल अतिशय करकें निकलता है उसे अतिसार कहते हैं। मल के अत्यन्त निकलने के कारण इसको अतिसार कहते हैं, यह स्वाभाविक ही शीघ्रकारी होता है।

ग्रहणी दोषका स्वरूप।

सामं सान्नमजीर्णेऽन्ने जीर्णे पक्वं तु नैव वा।
अकस्माद्वा मुहुर्बद्धमकस्माच्छिथिलं मुहुः।
चिरकृद्ग्रहणीदोषः संचयाच्चोपवेशयेत्।

अर्थ–ग्रहणी रोगमें भुक्त अन्नके अजीर्ण होनेपर कभी आमसहित और कभी सान्न (भुक्त अन्न) मल निकलताहै अन्न के जीर्ण होनेपर कभी पक्का मल और निकलताहै और कभी कुछ भी नहीं निकलताहै कभी बिना कारण ही बार बार बंधाहुआ और कभी ढीला दस्त होताहै, यह रोग चिरकारी होताहै और मल इकट्ठा हो हो कर निकलताहै। अतिसार और ग्रहणी में यही अन्तरहै कि ग्रहणी चिरकारी है और अतिसार आशुकारी होताहै।

ग्रहणी के भेद।

स चतुर्धा पृथग्दोषैः सन्निपातात्च जायते।

अर्थ–ग्रहणी रोग चार प्रकार का होता है, यथा–वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातज।

ग्रहणी का पूर्वरूप।

प्राग्रूपं तस्य सदने चिरात्पचनमम्लकः। १९।
प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्क्लमो भ्रमः।
आनद्धोदरता छर्दिः कर्णक्ष्वेडोऽत्रकूजनम्।

अर्थ–अंगमें शिथिलता, अन्नका देरमें पचना, खट्टी डकार आना, मुखस्राव, मुखमें विरसता, अरुचि, तृषा, क्लान्ति, भ्रम, पेट में अफरा, वमन, कर्णक्ष्वेड, और अंत्रकूजन। ये ग्रहणी के पूर्वरूप हैं।

ग्रहणी का सामान्य लक्षण।

सामान्यं लक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः।
मूर्छा शिरोरुग्विष्टंभः श्वयथुः करपादयोः।

अर्थ–देहमें कृशता, धूमनिगमवत्प्रतीति, तमक, ज्वर, मूर्च्छा, शिरोवेदना, विष्टंभ और हाथ पांवमें सूजन ये चारों प्रकार की ग्रहणीके सामान्य लक्षणहैं।

वातज ग्रहणी।

तत्राऽनिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः
पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुजाऽभीक्ष्णं विसूचिका।
रसेषु गृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णा परिकर्तिका।
जीर्णे जीर्यतिचाध्मानभुक्तेस्वास्थ्यंसमश्नुते
यातद्वद्रोगगुल्मार्शः प्लीहपांडुत्वशंकितः।
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत्।
पुनःपुनः सृजेद्वर्चः पायुरुक्श्वासकासवान्।

अर्थ–वातज ग्रहणी रोगमें तालुशोष, तिमिर रोग, दोनों कानोंमें शब्द, पसली, ऊरु, वंक्षण और ग्रीवामें दर्द, बार बार विसूचिका, मधुरादि संपूर्ण रसोंमें इच्छा, क्षुधा, तृषा, केंची के कतरनेकी सी पीडा। अन्नके पचनेपर वा पाचनकालमें अफरा, कुछ भोजन करलेनेपर स्वस्थता ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं, तथा रोगी वातज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृद्रोग, गुल्म, अर्श, प्लीहा और पांडुरोग की शंका करने लगताहै। तथा रोगी को बडे कष्टसे देरमें दस्त आताहै। दस्त होने में गुदामें दर्द होताहै, श्वास खांसी उठतेहैं।

पित्तज ग्रहणी।

पित्तेन नीलं पीताभं पीताभः सृजति द्रवम्।
पूत्यम्लोद्गारहृत्कंठदाहारुचितृडार्दितः।

अर्थ–पित्तज ग्रहणी रोगमें रोगी पीला पडजाताहै और उसे पीला नीला पतला दस्त होताहै। यह रोगी दुर्गंधित खट्टी डकार, हृदय और कंठमें दाह, अरुचि और तृषा से पीडित रहताहै।

कफज ग्रहणी।

श्लेष्मणा पच्यते दुःखमन्नं छर्दिररोचकः॥
आस्योपदेहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः।
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुः २७
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम्।
मिश्रामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्तनम् २८॥
अकृशस्यापि दौर्बल्यम्-

अर्थ–कफज ग्रहणी रोग में अन्न बडी कठिनता से पचता है, छर्दि, अरोचक, मुख में लिसावट, निष्ठीवन, खांसी, हृल्लास, और पीनस ये उपद्रव होते हैं। हृदय पिंडितसा मालूम होता है, उदर निश्चल और भारी होजाता है। डकार बुरी और मीठी आती हैं, देहमें शिथिलता होती है, स्त्रियों में से प्रसन्नता जाती रहती है, फटाहुआ आम और कफ मिला हुआ भारी दस्त होता है तथा मनुष्य पुष्ट होने पर भी दुर्बल रहता है।

सान्निपातज ग्रहणी।

सर्वजे सर्वसंकरः।

अर्थ–सान्निपातज ग्रहणी में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं।

ग्रहणीमें अग्नि को हेतुत्व।

विभागेऽग्नेस्त्रय ये चोक्ता विषमाद्यास्त्रयोऽग्नयः
तेऽपि स्युर्ग्रहणीदोषाः-
समस्तु स्वास्थ्यकारणम्।

अर्थ–अंगविभाग नामक अध्याय में विषम, तीक्ष्ण और मंद तीन प्रकारकी अग्नि कही गई हैं, येभी ग्रहणी रोगके कारण ही हैं, इनमें से समाग्नि स्वस्थता का कारण है। शंका- ऐसा कहनेसे ग्रहणी सात प्रकारकी होती हैं, उत्तर। मुख्य ग्रहणी पूर्वरूप, रूप, संप्राप्ति आदि उक्त लक्षणोंसे युक्त ग्रहणी चारही प्रकारकी है। ये तीन ग्रहणी रोगके आभासमात्र हैं।

ग्रहणी के महारोग।

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः।

अर्थ–वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगंदर, अर्शरोग और ग्रहणी ये आठ महारोग बडे भयंकर होते हैं इसलिये इनमें यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदये भाषाटीकायां अतिसारग्रहणीरोग निदानंनाम अष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

अथाऽतो मूत्राघातनिदानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहांसे मूत्राघातनिदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एकाश्रित शरीरावयव।

बस्तिबस्तिशिरोमेढ्रकटीवृषणपायवः ॥
एकसम्बन्धनाःप्रोक्तागुदास्थिविवराश्रयाः ॥

अर्थ--बस्ति, बस्तिका सिर, लिंग, कमर, वृषण, और गुदा ये छः अवयव एकही जगह ग्रथित हैं, अर्थात् ये सब गुदाके अस्थिछिद्रोंमें आश्रित हैं।

मूत्राघात की उत्पत्ति।

अधोमुखोऽपि बस्तिर्हि मूत्रवाहिसिरामुखैः
पार्श्वेभ्यः पूर्यते सूक्ष्मैः स्यंदमानैरनारतम् ॥
यैस्तैरेव प्रविश्यैनं दोषाः कुर्वंति विंशतिम्।
मूत्राघातान् प्रमेहांश्च कृच्छ्रान्मर्मसमाश्रयान्

अर्थ--यद्यपि बस्ति का मुख नीचे की ओर है तथापि चारों ओर से सूक्ष्म सिराओं के मुख में होकर निरंतर मूत्र आता रहता है, इससे बस्ति मूत्र से भरजाती है इन्हीं सिराओं के द्वारा दोष भी बस्ति में प्रविष्ट होकर बीस प्रकार के मूत्राघात और प्रमेह रोगों को उत्पन्न करदेते हैं, ये रोग मर्माश्रित होने के कारण कष्टसाध्य होते हैं।

वातजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण।

बस्तिवंक्षणमेढ्रार्तियुक्तोऽल्पाल्पं मुहुर्मुहुः।
मूत्रयेद्वातजे कृच्छ्रे-

अर्थ-वातज मूत्राघात में बस्ति वंक्षण और लिंग में मूत्र करने में बडा दर्द होता और मूत्र थोडा थोडा करके बार बार निकलता है। इसीसे इसे मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

पित्तज मूत्राघात।

पैत्ते पीतं सदाहरुक् ॥ ४ ॥
रक्तं वा-

अर्थ--पित्तज मूत्राघात में मूत्र करने में बडी जलन और वेदना होती है, मूत्रका रंग पीला वा लाल होता है।

कफज मूत्राघात।

कफजे बस्तिमेढ्गौरवशोफवान्।
सपिच्छं सविबन्धम् च-

अर्थ--कफज मूत्राघात में बस्ति और लिंगप्रदेश में भारापन और सूजन होजाती है, तथा मूत्र भी पिच्छिल और रुकरुककर निकलताहै।

त्रिदोषज मूत्राघात।

सर्वैः सर्वात्मकम् मलैः ॥ ५ ॥

अर्थ--जो मूत्राघात वातादि तीनों दोषों से उत्पन्न होताहै, उसमें तीनों दोष के मिले हुए लक्षण प्रतीत होतेहैं।

अश्मरीके लक्षण।

यदा वायुर्मुखं बस्तेरावृत्य परिशोषयेत्।
मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात् ॥
सजायतेऽश्मरी घोरा पित्ताद्गोरिव रोचना।
श्लेष्माश्मरी च सघा स्यात्-

अर्थ--जब वायु बस्तिके मुखको आच्छादित करके कभी केवल मूत्रको अथवा कभी सपित्त मूत्रको अथवा कभी कफसहित मूत्र को अथवा कभी वीर्यसहित मूत्रको सुखा देती है तब अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। ये रोग बडा भयंकर होता है। इसे लोकमें पथरी कहते हैं। मूत्राश्मरी घोरा होती है। पित्ताश्मरी घोरतरा, कफाश्मरी घोरतमा और शुक्राश्मरी घोराघोरतमा होती है। जैसे गोपित्त वायुसे अवरुद्ध होकर धीरे धीरे गोरोचन बन जाता है, ठीक वैसेही मूत्र रुककर अश्मरी बनजाता है। सब प्रकारकी अश्मरी का मुख्यहेतु कफ है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अश्मरीका पूर्वरूप ।

अथाऽस्याः पूर्वलक्षणम् ॥ ७ ॥

बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् मूत्रे च वस्तिगंधत्वं मूत्रकृच्छ्रे ज्वरोऽरुचिः

अर्थ-अश्मरी के पूर्वरूप ये हैं, यथा—वस्ति का फूलना, वस्ति के पासवाले स्थानों में वेदना, मूत्रमें बकरे की सी गंध, मूत्राघात ज्वर और अरुचि ।

अश्मरी के सामान्य लक्षण ।

सामान्यलिंगं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तदा मार्गनिरोधने ॥ सद्यपायात्सुखम् मेहेदच्छम् गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते स्रावमायासाद्वातिरुग्भवेत्

अर्थ-नाभि, सीवन, (गुदा से पुंजनेन्द्रिय के बीचकी सीमन के सदृश रेखा) और वस्तिस्थान के ऊपर वेदना होती है। अश्मरी से मूत्रका मार्ग रुक जाता है, इस लिये मूत्रकी धार छिन्न भिन्न निकलती है। यदि वायु के वेग से अश्मरी अपने स्थान से हट जाती है अर्थात् मूत्रमार्ग से स्थानान्तर में चली जाती है तो सुखपूर्वक गोमेदक मणि के समान लललाई लिये हुए मूत्र निकलता है । मूत्रके विपरीतमार्ग में प्रवृत्त होने से मूत्रके स्रोत में घाव होजाता है अथवा हाथी घोडे पर चढकर मार्ग में चलने के श्रम से भी घाव होजाता है, उस में मूत्रके साथ रक्त निकलता है और बडी तीव्र वेदना होती है ।

वाताश्मरी के लक्षण ।

तत्र वातादभृशार्त्यर्तो दंतान्खादति वेपते । मूत्रयति मेहनम् नाभिं पीडयत्यनिशं-कषणम् ॥ ११ ॥ सानिलम् मुंचति शकृन्मुहुर्मेहति विद्रुधः । श्यावा रूक्षाऽश्मरी चास्य स्याच्चिताकण्टकैरिव ॥ १२ ॥

अर्थ-वातज अश्मरी में रोगी अत्यन्त वेदना से डकराता हुआ दांतों को चबा डालता है और कांपने लगता है, निरंतर पुंजनेन्द्रिय और नाभि को हाथ से रिगडता है, और अधोवायु के साथ मूत्र निकल जाता है, मूत्र बूंद बूंद करके टपकता है। ऐसे रोगी की अश्मरी का रंग काला वा लाल होता है और कांटे के सदृश छोटे छोटे अंकुरों से व्याप्त रहती है ।

पित्तज अश्मरी ।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् । भल्लातकास्थिसंस्थानारक्तपीताऽसिताऽश्मरी ॥ १३ ॥

अर्थ-पित्तज अश्मरीरोग में वस्ति में जलन होती है, और ऐसा मालूम होने लगता है, कि कोई क्षार से जलाता है । पित्ताश्मरी छूने में बडी गरम होती है । इसका आकार भिलावेकी गुठली के समान होता है । यह लाल पीले वा काले रंगकी होती है ।

कफाश्मरी के लक्षण ।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता

अर्थ-कफज अश्मरीरोग में वस्ति स्थान में सुई चुभने कीसी वेदना होती है । यह छूने में ठंडी और भारी होती है, यह बडी और चिकनी होती है, इसका रंग मधु के सदृश अथवा सफेद होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्त अश्मरियोंकी बालकों में उत्पत्ति।

एता भवंति बालानां तेषामेव च भूयस्ता।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः १५॥

अर्थ-उक्त तीनों प्रकार की अश्मरी बहुधा बालकों के हुआ करती है क्योंकि दिन में सोने के अभ्यासी होते हैं तथा अधिक भोजन करते हैं और इनको ठंडा चिकना मीठा भोजन प्रिय लगता है। बालकों की अश्मरी सुखपूर्वक बडिशादि यंत्र द्वारा ग्रहण और अस्त्रादि द्वारा निकाली जासकती है क्योंकि बालकों के अश्मरी का आधार और वृद्धि थोडे होते हैं। वही अवस्थावालों के आश्रय और उपचय बडे होते हैं इसीलिये उनके ग्रहण और आहरण में दुःख होता है।

शुक्राश्मरी की उत्पत्ति।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरंतरेऽनिलः
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रम् तच्छुष्कमश्मरी।
बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयुकारिणी १७
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्-

अर्थ-बडी अवस्थावाले मनुष्यों के ही शुक्राश्मरी होती है, यह शुक्र के प्रभावसे बालकों के नहीं होती है। मनुष्य जब मैथुन की इच्छा करता है तब उसका वीर्य अपने स्थान से चलित होजाता है परंतु मैथुन के अभाव से बाहर नहीं निकलने पाता है तब उस दशा में वायु उसे चारों ओर से खेंचकर पुंजननेन्द्रिय और अंड कोषों के बीचमें इकट्ठा करलेतीहै और वहीं सुखा देती है यह सूखा हुआ शुक्रही शुक्राश्मरी कहलाती है। इसके उत्पन्न होनेसे बस्तिमें शूलवत् वेदना, मूत्रकृच्छ, और अंडकोष में सूजन ये सब उपद्रव उपस्थित होतेहैं। अश्मरी के उत्पन्न होतेही इसमें शुक्र आकर संचित होता रहताहै और यदि अंडकोष और उपस्थेन्द्रियके बीचमें हाथसे दबाया जाय तो विलीन होजाता है।

शर्करा का लक्षण।

अश्मर्येव च शर्करा॥ १८॥
अणुशोवायुनाभिन्नासात्वस्मिन्ननुलोमगे।
निरेति सहमूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते १९॥

अर्थ-जब वायुद्वारा अश्मरी के बहुत छोटे छोटे सूक्ष्म खंड होजातेहैं, तब वही पथरी शर्करा कहलातीहै (हकीमलोग इसे रेत कहतेहैं यह नदीकी बालू के सदृश होतीहै) तथा वायुके अनुलोम में मूत्रके साथ बाहर निकल आतीहै और प्रतिलोम में वहीं रुकजातीहै बाहर नहीं निकलतीहै। परन्तु अश्मरी वायुके अनुलोमगामी होनेपर भी बाहर नहीं निकलती है।

वातवस्ति का लक्षण।

मूत्रसंधारिणः कुर्याद्रुद्ध्वा वस्तेर्मुखं मरुत्।
मूत्रसङ्गम् रुजं कण्डूं कदाचिच्च स्वधामतः॥
प्रच्याव्य बस्तिमुद्वृत्तं गर्भाभं स्थूलविप्लुतम्
करोति तत्र रुग्दाहस्पंदनोद्वेष्टनानि च २१॥
बिंदुशश्च प्रवर्तेत मूत्रं बस्तौ तु पीडिते।
धारया द्विविधाऽप्येष वातबस्तिरिति स्मृतः
दुस्तरो दुस्तरतरो द्वितीयः प्रबलानिलः।

अर्थ-जो मनुष्य मूत्रके वेगको रोकताहै, उसकी वस्तिगत वायु कुपित होकर वस्ति अर्थात मूत्राशय के मुखको रोकदेतीहै इससे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूत्रमें रुकावट, वेदना और खुजली ये उपद्रव उपस्थित होजाते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि वही वायु वस्तिको अपने स्थानसे च्युत करके उसका मुख ऊपर को करदेती है जिससे वह गर्भके सदृश स्थूल और चंचल होजातीहै, ऐसा होनेसे वेदना, जलन, स्यंदन (मूत्रका धीरे धीरे झरना), और उद्वेष्टन ये उपद्रव उपस्थित होतेहैं। मूत्र बूंद बूंद करके टपकताहै परन्तु हाथसे दाबने पर धार बांधकर निकलताहै। यह बातवस्ति कहलाती है, इसके दो भेदहैं इनमेंसे पहिला अर्थात् वस्तिके मुखको रोकनेवाला दुस्तर है और दूसरा अर्थात् वस्ति का मुख ऊपर को करनेवाला अत्यन्त कृच्छ्रसाध्यहै, क्योंकि इसमें वायुका प्रकोप विशेष होताहै।

वाताष्ठीला का लक्षण।

शकृन्मार्गस्य वस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः २३
अष्ठीलाभं घनं ग्रंथिं करोत्यचलमुन्नताम्।
वाताष्ठीलेति-

साऽऽध्मानविण्मूत्रानिलसंगकृत् २४॥

अर्थ—गुदा और वस्तिके बीचमें स्थित होकर वायु अष्ठीला के सदृश एक गांठ पैदा करदेतीहै जो घन (कठोर) अचल और ऊंची होती है, इसीको वाताष्ठीला कहते हैं, इससे अफरा तथा विष्ठा, मूत्र और अधोवायु का अवरोध होजाताहै।

वातकुंडलिका का लक्षण।

विगुणःकुण्डलीभूतो वस्तौतीव्रव्यथोऽनिलः
आविश्य मूत्रंभ्रमति सस्तंभोद्वेष्टनगौरवः २५
मूत्रमल्पाल्पमथवा विमुंचति शकृत्सृजन्।
वातकुण्डलिकेत्येषा-

अर्थ—कुपित वायु गोलाकार घूमता हुआ अत्यन्त तीव्र वेदना को उत्पन्न करके वस्ति में प्रविष्ट होकर मूत्रको क्षुभित करदेताहै, जिससे स्तब्धता, उद्वेष्टन और भारापन पैदा होजाताहै और मलके त्यागने के साथ साथ थोडा २ मूत्र उतरताहै। इस रोग को वातकुंडलिका कहते हैं।

मूत्रातीत के लक्षण।

मूत्रं तु विधृतम् चिरम्॥ २६॥
न निरेति विवक्षम् वा मूत्रातीतं तदल्परुक्।

अर्थ—बहुत देर तक रोका हुआ मूत्र नहीं निकलता है अथवा पवन के साथ धीरे धीरे निकलता है जिसमें किसी प्रकार की वेदना नहीं होती है इसे मूत्रातीत कहते हैं।

मूत्रजठर का स्वरूप।

विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तितं यदा२७॥
नाभेरधस्तास्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्सदा।
कुर्यात्तीव्ररुगाध्मानमपक्तिमलसंग्रहम् २८॥
तन्मूत्रजठरम्-

अर्थ—मूत्रके वेग को रोकने से प्रतिहत हुआ मूत्र अथवा वायु से उदावर्तित (पीछे को घुमाया हुआ) मूत्र जब नाभि के नीचे उदर में भरजाता है तब तीव्र वेदना, आध्मान, अपक्ति (अन्न का न पचना) और मल का संग्रह करता है। इसे मूत्रजठर कहते हैं।

मूत्रोत्संग का स्वरूप।

छिद्रवैगुण्येनानिलेन वा।
आक्षिप्तमल्पं मूत्रं तु वस्तौ नाले ऽथवा मणौ
स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्सरुजम्-
वा ऽथवा ऽरुजम्।
मूत्रोत्संगः स विच्छिन्नतच्छेषगुरुशेफसः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–मूत्रद्वार के दोषसे अथवा कुपित वायु के द्वारा आक्षिप्त हुआ थोडासा बचा हुआ मूत्र वस्ति, अथवा नालमें अथवा उपस्थ की मणि में स्थित होकर थोडा २ दर्द करता हुआ अथवा विना दर्द कियेही निकलता है। इसे मूत्रोत्संग कहते हैं। इस रोग में विच्छिन्न बचे हुए मूत्रसे उपस्थ में भारापन रहता है।

मूत्रग्रंथि का स्वरूप ।

अंतर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुक् ग्रंथिर्मूत्रग्रंथिः स उच्यते ॥

अर्थ–वस्ति के मुखके भीतरवाले भाग में अकस्मात् एक छोटीसी गोल और कठोर गांठ होजाती है जिसमें अश्मरी के समान वेदना होती है, इसे मूत्रग्रंथि कहते हैं।

मूत्रशुक्र का लक्षण ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वाप्रवर्तते ।
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

अर्थ–मूत्रोत्सर्ग के वेग से युक्त मनुष्य जब स्त्री संगम में प्रवृत होता है तब वायु द्वारा उद्धत शुक्र अपने स्थानसे प्रचलित होकर मूत्र करने से पहिले वा पीछे निकलता है और उसका रंग भस्म मिले हुए जलके सदृश होता है, इसको मूत्रशुक्र कहते है।

विड्विघात का लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा ॥ ३३ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपवैति संसृष्टं शकृता तदा ।
मूत्रं विड्वत्तुल्यगंधं स्याद्विड्विघातं तमादिशेत्

अर्थ–रूक्ष और दुर्बल देहवाले मनुष्य के जब वायुसे उदावृत अर्थात् पीछे को लौटाया हुआ पुरीष मूत्रस्रोत के चारोंओर आजाता है तब विष्ठा से मिला हुआ मूत्र पुरीष के समान दुर्गंधित होकर निकलता है, इसे विड्विघात कहते हैं।

उष्णवात का लक्षण ।

पित्तव्यायामतीक्ष्णोष्णभोजनाध्वातपादिभिः
प्रवृद्धं वायुना क्षिप्तं वस्त्युपस्थार्तिदाहवत् ।
मूत्रं प्रवर्तयेत्पीतं सरक्तं रक्तमेव वा ।
उष्णं पुनःपुनः कृच्छ्रादुष्णवातं वदंति तम् ।

अर्थ–व्यायाम, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य भोजन, अधिक मार्ग चलना, और धूपका अत्यन्त सेवन इन सब हेतुओंसे कुपित हुआ पित्त वायु द्वारा आक्षिप्त होकर वस्ति और उपस्थेंद्रियमें वेदना और जलन उत्पन्न करता हुआ पीला, लाल, वा केवल लाल उष्ण मूत्र बार बार बडी कठिनता से निकलता है। इसे उष्णवात कहते हैं।

मूत्रक्षयका स्वरूप ।

रूक्षस्य क्षांतदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् । ४७

अर्थ–रूक्ष और क्षांतदेहवाले मनुष्यकी वस्तिमें स्थित पित्त और वात कुपित होकर मूत्रका क्षय करते हैं। इस रोगमें वेदना और दाह अधिक होती है। इस रोगका नाम मूत्रक्षय है।

मूत्रसाद का स्वरूप ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन च ।
कृच्छ्रान्मूत्रंतदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ।
सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदंति तम् ।

अर्थ–यदि पित्त वा कफ अथवा दोनों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही वायुसे पीडित हों तो बडी कठिनता से पीला, लाल, सफेद और गाढा मूत्र जलन हो हो कर निकलता है। अथवा उस का रंग सूखे हुए गोरोचन वा शंखके चूर्णके समान होता है अथवा कभी सब रंगों का होजाता है। इसे मूत्रसाद कहते हैं।

अध्याय का उपसंहार।

इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राऽप्रवृत्तिजाः निदानलक्षणैरूर्ध्वं वक्ष्यंतेऽतिप्रवृत्तिजाः "।

अर्थ–मूत्रके स्वाभाविक रीतिसे न निकलने के कारण उत्पन्न हुए रोगोंका निदान और लक्षणों सहित विस्तार पूर्वक वर्णन कर दिया गया है अब मूत्रकी अतिप्रवृत्तिसे उत्पन्न होने वाले रोगोंका वर्णन करेंगे।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकायां निदानस्थाने मूत्राघातनिदानंनाम नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः।

अथाऽतः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हमयहांसे प्रमेह निदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

प्रमेह के भेद।

" प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश पित्ततः। षट् चत्वारोऽनिलात्

अर्थ–प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। इन में से कफसे दस, पित्तसे छः और वात से चार प्रकार के होते हैं।

प्रमेह की उत्पत्ति॥

तेषां मेदोमूत्रकफावहम्॥ १॥ अन्नपानक्रियाजातं यत्प्रायस्तत्प्रवर्तकम्। स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम्। नवधान्यसुरानूपमांसेक्षुगुडगोरसम्। एकस्थानासनरतिः शयनं विधिवार्जितम्।

अर्थ–मेद, मूत्र और कफको उत्पन्न करनेवाली जितनी अन्नपान और क्रियाहैं, वे सब प्रमेह रोगको उत्पन्न करनेवाली हैं, जैसे मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल और शीतल अन्नपान, तथा नवीन अन्न, सुरा, आनूप मांस, ईख, गुड, गोरस एक स्थानपर और एक आसन से बैठेरहना और विधिवार्जित शयनकरना, ये सब प्रमेहोत्पादक हैं, कहाभी है ' अकालेऽतिप्रसंगाच्च नच निद्रा निषेविता। सुखायुषी परा-कुर्यात कालरात्रिरिवापरेति '।

कफसे प्रमेहोत्पत्ति॥

बस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान् दूषितः कफः। दूषयित्वा वपुः क्लेदस्वेदमेदोरसामिषम्।४।

अर्थ–दूषित कफ बस्तिस्थानका आश्रय लेकर शरीर, क्लेद, स्वेद, मेद, रस और मांसको दूषितकर के प्रमेह रोगों को उत्पन्न करता है।

पित्त से प्रमेहोत्पत्ति॥

पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम्।

अर्थ–कफादि सौम्य धातुके नष्ट होजानेपर दूषित पित्त मूत्रसंश्रित रक्तको और ऊपर कहेहुए शरीर क्लेद और स्वेदादिको दूषित करके प्रमेह रोगोंको उत्पन्न करताहै।

वातसे प्रमेहोत्पति॥

धातून् बस्तिमुपानीय तत्क्षयेऽपि च मारुतः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-कुपित हुआ वायु वातप्रमेह के संवादन योग्य धातुओं को वस्तिके पास लाकर और उन्हें नीचेको निकालकर उन धातुओंके क्षीण होनेपर प्रमेह रोगों को उत्पन्न करता है ।

प्रमेहका साध्यासाध्य विभाग ॥

साध्ययाप्यपरित्याज्या मेहास्तेनैव तद्भवाः ।
समासमक्रियतया महात्ययतयाऽपि च ।६।

अर्थ-कफसे उत्पन्न हुए प्रमेह साध्य होते हैं । क्योंकि ये वायु, क्लेद, स्वेद, आदि दूषण पदार्थ मात्रसे उत्पन्न होते हैं और इन की क्रिया भी समान है क्योंकि कटुतिक्तादि जो जो औषध कफको शांत करती है । उन्हीं औषधोंद्वारा शरीरकेक्लेदादि दूष्यपदार्थों की भी शांति होती है । इसलिये कफज प्रमेह साध्य होता है ।

पित्तज प्रमेह याप्य होते हैं, क्योंकि ये सौम्यधातु के क्षीण होनेपर वपु, क्लेद, स्वेद आदि तथा रक्तको दूषित करके उत्पन्न होते हैं । और इनकी क्रिया भी विषम है क्योंकि मधुरादि पित्तनाशक द्रव्य मेदवर्द्धक होते हैं और जो कटुतिक्तादि द्रव्य मेदका नाश करते हैं वे पित्तकारक हैं । इसी क्रिया की विषमताके कारण पित्तप्रमेह याप्य होते हैं

वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं, क्योंकि संपूर्ण धातुओंके क्षीण होनेसे इनकी उत्पत्तिहै । तथा इनका अत्यय भी महान हैं अर्थात् वायु मज्जादि धातुओं को लेकर महा अनिष्टकारी होजाताहै और कोई औषध इसपर काम नहीं देती है, क्योंकि स्निग्ध मधुर और संतर्पण रूप औषध वायुको हितकारी हैं किन्तु रूक्ष तीक्ष्णादि अपतर्पण रूप क्रिया प्रमेह को उपयोगी हैं । इसलिये इस विरुद्ध क्रिया के कारण वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं ।

प्रमेहके सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

अर्थ-प्रमाणसे अधिक मूत्रका निकलना और मूत्रका रंग मैला होना ये दो सब प्रकारके प्रमेहों में सामान्य रीतिसे होतेहैं ।

प्रमेहके भेदोंकी कल्पना ।

दोषदूष्यादिशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ।७।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ।

अर्थ-सब प्रकार के प्रमेहों में यद्यपि दोष और दूष्य समानहैं तथापि पूर्वजन्मकृत कर्मवश से दोष और दूष्योंके न्यूनाधिक्य संयोग से अनेक भेद होजाते हैं और मूत्र के वर्ण गंध, रस, स्पर्शादि भेदसे भी प्रमेहोंकी अनेक प्रकार की कल्पना कीगई हैं ।

अब कफज प्रमेह के दस भेदोंका वर्णन करते हैं ।

उदकमेहके लक्षण ।

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गंधमुदकोपमम् ।
मेहत्युदकमेहेन किंचिच्चाविलपिच्छिलम् ।

अर्थ-उदकमेह में स्वच्छ, प्रमाण से अधिक, सफेद, शीतल, गंधरहित, जलके सदृश, किंचित आविल और पिच्छिल मूत्र होताहै ।

इक्षुमेहके लक्षण ।

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ ९ ॥

अर्थ-इक्षुमेहमें प्रस्राव (पेशाव) ईख के रसके समान अत्यन्त मीठा होताहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सांद्रमेह के लक्षण ।

सांद्रीभवेत्पर्युषितं सांद्रमेही प्रमेहति ।

अर्थ–सांद्रमेह में रातका किया हुआ मूत्र गाढा होजाता है ।

सुरामेह के लक्षण ।

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् । १० ।

अर्थ–सुरामेह में मूत्र मद्य के समान ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढा होता है ।

पिष्टमेह के लक्षण ।

संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलम् सितम् ।

अर्थ–पिष्टमेह में मूत्र करते समय रोमांच खडे होजाते हैं । और पिट्ठी के सदृश सफेद रंगका प्रमाण से अधिक मूत्र उतरता है ।

शुक्रमेह के लक्षण ।

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ११

अर्थ–शुक्रमेह में वीर्य के समान और वीर्य मिला हुआ मूत्र होता है ।

सिकतामेह के लक्षण ।

मूत्राणून् सिकतामेही सिकतारुविणो मलम् ।

अर्थ–सिकतामेह में बालुका अर्थात् रेती के समान छोटे छोटे कण मूत्रके साथ निकलते हैं ।

शीतमेह के लक्षण ।

शीतमेही सुबहुशो मधुरम् भृशशीतलम् ॥

अर्थ–शीतमेह में प्रमाण से अधिक, मिष्ट और अत्यन्त शीतल मूत्र होताहै ।

शनैर्मेही के लक्षण ।

शनैः शनैः शनैर्मेही मंदं मंदं प्रमेहति ।

अर्थ–शनैर्मेह में थोडा थोडा मूत्र धीरे धीरे निकलता है ।

लालामेह के लक्षण ।

लालातंतुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥

अर्थ–लाला मेह में पेशाव के साथ लार गिरती है और मूत्र पिच्छिल होता है ।

अब छः प्रकार के पित्तज प्रमेहों को वर्णन करते हैं ।

क्षारमेह के लक्षण ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ।

अर्थ–क्षारमेह में मूत्र क्षार जलके सदृश गंध, वर्ण, रस और स्पर्श से युक्त होता है ।

नीलमेह के लक्षण ।

नीलमेहेन नीलाभम्-

अर्थ–नीलमेह में मूत्र का वर्ण नीला और गंध, वर्ण, रस और स्पर्श से युक्त होता है ।

कालमेह के लक्षण ।

कालमेही मषीनिभम् १४ ॥

अर्थ–कालमेह में मूत्रका रंग स्याहीके सदृश होता है ।

हरिद्रामेह के लक्षण ।

हारिद्रमेही कटुकम् हरिद्रासन्निभम् दहत् ।

अर्थ–हारिद्र मेहमें मूत्र हलदीके से रंग का कटुरसयुक्त होता है और मूत्र करने के समय जलन होती है ।

मांजिष्ठमेह के लक्षण ।

विस्रं मांजिष्ठमेहेन मंजिष्ठासलिलोपमम् १५

अर्थ–मांजिष्ठ मेह में मजीठ के जल के सदृश कच्ची गंध से युक्त मूत्र उतरताहै ।

रक्तमेह के लक्षण ।

विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभम् रक्तमेहतः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-रक्तमेहमें कच्चीगंधसेयुक्त, गरम, नमकीन रक्तके समान मूत्र उतरता है। अब चार प्रकार के वातज प्रमेह का वर्णन करते हैं।

वसामेह के लक्षण।

वसामेही वसामिश्रं वसां वा मूत्रयेन्मुहुः १६

अर्थ-वसा मेहमें चर्बी मिला हुआ मूत्र अथवा केवल चर्बीही बार बार निकलती है।

मज्जामेह का लक्षण।

मज्जानं मज्जमिश्रम् वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः।

अर्थ-मज्जा मेहमें केवल मज्जा अथवा मज्जा मिला हुआ मूत्र बार बार निकलता है।

हस्तिमेह का लक्षण।

हस्तीमत्तं इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् १७
सलसीकम् विबद्धं च हस्तमेही प्रमेहति।

अर्थ-हस्तिमेहमें रोगी मतवाले हाथीकी तरह निरंतर वेगवर्जित मूत्र त्याग करता है, कभी कभी मूत्रमें विबद्धता भी होती है, मूत्रके साथ लसीका निकलता है॥

मधुमेह का वर्णन।

मधुमेही मधुसमम्-
जायते स किल द्विधा॥ १८॥
क्षुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा।

अर्थ-मधुमेह में मधुके समान मूत्र होता है। यह दो प्रकार का होताहै, एक तो धातु के क्षीण होने पर वायुके कुपित होने से, अथवा पित्तादि दोष से वायु का मार्ग रुकजाने पर मधुमेहकी उत्पत्ति होती है।

मधुमेह का कष्टसाध्यत्व।

आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत्
क्षीणः क्षणात्क्षणात् पूर्णो भजते कृच्छ्र-
साध्यताम्।

अर्थ-धातुके क्षयसे कुपित हुए वातजन्य मधुमेह का रूप केवल वातज मेह के सदृश होता है, किंतु पित्तादि दोषों से आवृत मार्गवाला वायु वातरक्तनिदान नामक अध्याय में कहे हुए लक्षणों को अकस्मात् दिखाता है अर्थात् क्षणभर में पूर्ण होजाता है और क्षणभर में खाली हो जाता है, यह कष्टसाध्य होता है।

सबको मधुमेहत्व।

कालेनोपेक्षिताः सर्वे यद्यांति मधुमेहताम्।
मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः।

अर्थ-चिकित्सा न किये जाने पर सब प्रकार के प्रमेह कालांतर में मधुमेह होजाते है। क्योंकि सब प्रकारके प्रमेहों में प्रायः मूत्र मधु के सदृश मिष्ट होता है इसलिये शरीर की मधुरता के कारण सब प्रकारके प्रमेह मधुमेह संज्ञक होते हैं॥

कफजमेहके उपद्रव॥

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्राकासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायंते मेहानां कफजन्मनाम्।

अर्थ-कफज प्रमेहमें अन्नका अपरिपाक अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी, और पीनस ये उपद्रव होतेहैं॥

पित्तजमेहके उपद्रव॥

बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः।
दाहस्तृष्णाम्लको मूर्च्छा विड्भेदः
पित्तजन्मनाम्॥ २३॥

अर्थ-पित्तज प्रमेहमें बस्ति और उपस्थेन्द्रियमें सुई छिदने के समान वेदना होतीहै; अंडकोषमें विदीर्णता, ज्वर दाह, तृषा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खट्टी, डकार, मूर्च्छा और मलका भेद ये उपद्रव होतेहैं ॥

वातिकमेह के उपद्रव ।

वातिकानामुदावर्तकंठहृद्ग्राहलोलताः ।
शूलमुच्छिद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते

अर्थ–वातिक प्रमेहमें उदावर्त, कंठ और हृदयमें वेदना, सब प्रकारके भोजन पर मन चलना, शूल, नींदका अभाव, शोष, खांसी और श्वास ये उपद्रव होतेहैं ।

प्रमेहपिटिकाओं के नाम ।

शराविका कच्छपिका जालिनी बिनताऽलजी
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ।
विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।
संधिमर्मसु जायंते मांसलेषु च धामसु ।

अर्थ–शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी विदारिका और विद्रधि ये दस प्रकार की फुंसियां प्रमेह की चिकित्सा न करने से उत्पन्न होती हैं । ये पिटिका संधिमर्म और मांसल स्थानों में हुआ करती हैं ।

शराविका के लक्षण ।

अतोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरुजान्विता
शरावमानसंस्थाना पिटिका स्याच्छराविका

अर्थ–जो पिटिका किनारों पर ऊंची, बीचमें नीची श्याववर्ण, क्लेद और वेदना से अन्वित और जिसकी शराव (मिट्टी का सकोरा) के समान संस्थान और आकृति विशेष होती है उसे शराविका कहते हैं ।

कच्छपिका के लक्षण ।

अवगाढातिनिस्तोदा महावेस्तुपरिग्रहा ।
श्लक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिटिका कच्छपी मता

अर्थ–जो पिटिका कछुए की पीठकी आकृतिवाली, अत्यन्त पीडा और सूची वेधनवत् वेदना से युक्त और बहुत स्थान में फैली हुई और चिकनी होती हैं उन्हें कच्छपिका कहते हैं ।

जालिनी के लक्षण ।

स्तब्धा सिराजालवती स्निग्धस्रावा-
महाशया ।
रुजानिस्तोदबहुला सूक्ष्मच्छिद्रा च जालिनी

अर्थ–जो पिटिका स्तब्ध, सिराओं के जाल से अन्वित, स्निग्ध स्रावी, गंभीर धातुओं में आश्रित, तीव्र दाह और वेदना युक्त होती है और जिनमें छोटे २ छिद्र होते हैं उन्हें जालिनी कहते है ।

विनता के लक्षण ।

अवगाढरुजा क्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।
महती पिटिका नीला विनता विनता स्मृता

अर्थ–विनता नामकी पिटिका पीठ वा उदर में उत्पन्न होती हैं, इनमें अत्यन्त वेदना और क्लेदता होती है, इनका आकार बडा, रंग नीला और नीची होती हैं ।

अलजी के लक्षण ।

दहति त्वचमुत्थाने भ्रशम् कष्टा विसर्पिणी ।
रक्तकृष्णातितृट्स्फोटदाहमोहज्वराऽलजी ।

अर्थ–अलजी नामकी पिटिका उत्पन्न होते समय त्वचामें जलन पैदा करती हैं । ये बडा कष्ट देती हैं, और फैलती हुई चली जाती है, इनका वर्ण काला वा लाल होता है, इनमें तृषा, स्फोट, दाह, मोह और ज्वर ये उपद्रव होते हैं ।

मसूरिका के लक्षण ।

मानसंस्थानयोस्तुल्या मसूरेण मसूरिका ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–मसूरिका नामकी पिटिका आकार और परिमाण में मसूर के तुल्य होती है।

सर्षपा के लक्षण

सर्षपामानसंस्थाना क्षिप्रपाका महारुज ॥
सर्षपा सर्षपातुल्यपिटिकापरिवारिता।

अर्थ–सर्षपा नामकी पिटिका परिमाण और आकार में सरसों के बराबर होती हैं, ये बहुत शीघ्र पकजाती हैं, इनमें वेदनाभी बहुत होती है। इनके चारों ओर सरसों के बराबर छोटी छोटी फुंसियां पैदा हो जाती हैं।

पुत्रिणी के लक्षण।

पुत्रिणी महती भूरिसुसूक्ष्मपिटिकावृता ३३

अर्थ–पुत्रिणी नामकी पिटिका आकार में बडी होती हैं, इनके चारों ओर बहुतसी छोटी २ फुंसियां होती हैं।

विदारिका के लक्षण।

विदारीकंदवद्बृत्ता कठिना च विदारिका।

अर्थ–विदारीकंद वा बिधारे के समान गोलाकार और कठोर फुंसियों को विदारिका कहते हैं।

विद्रधि के लक्षण।

विद्रधिर्वक्ष्यतेऽन्यत्र-

अर्थ–विद्रधि के लक्षणों से युक्त पिटकाओं को विद्रधि कहते हैं। इनके लक्षण आगे वर्णन किये जायगे।

पिटकाओं का साध्यासाध्यत्व।

तत्राद्यं पिटिकात्रयम् ॥
पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः।
सहा पित्तोल्बणास्वन्याःसंभवंत्यल्पमेदसः

अर्थ–इन पिटकाओं में से पहिली तीन अर्थात् शराविका कच्छपिका और जालिनी तथा पुत्रिणी और विदारिका। ये पांच प्रकारकी पिटका दुःसाध्य होती हैं, क्योंकि ये बहुमेदो विशिष्ट होती है। इन पाचों को छोडकर पित्तकी अधिकता के कारण उत्पन्न हुई सुसाध्य होती है क्योंकि इनकी उत्पत्ति अल्प मेदा से है।

प्रमेह से पिटकाओं में दोषोद्रेक।

तासु मेहवशाच्च स्याद्दोषोद्रेको यथायथम्।

अर्थ–इन पिटिकाओं में प्रमेह के अनुसार दोषों का उद्रेक होता है, जैसे वातज मेह में वातकी अधिकता, पित्तज मेह में पित्तकी अधिकता, कफजमेह में कफकी अधिकता, और त्रिदोष में तीनों दोषों की अधिकता होती है।

प्रमेह के विना पिटकाओं की उत्पत्ति।

प्रमेहेण विनाप्येता जायंते दुष्टमेदसः।
तावच्च नोपलक्ष्यंते यावद्वस्तुपरिग्रहः ३६ ॥

अर्थ–प्रमेहरोग के विनाभी दूषित मेद से इन पिटकाओं की उत्पत्ति होजाती है, किंतु जबतक इनके लक्षण यथायथ उत्पन्न नहीं होते हैं तबतक ये पहंचानने में नहीं आती है।

रक्तपित्त में हरिद्रवर्ण।

हारिद्रवर्णं रक्तम् वा मेहप्राग्रूपवर्जितम्।
यो मूत्रयेन्न तं मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः ३७ ॥

अर्थ–प्रमेह और रक्तपित्त दोनों में लाल वा हलदी के रंगका प्रस्राव साधारणतः पाया जाता है फिर इन दोनों में कौन प्रमेह और कौन रक्तपित्त है, इसकी परीक्षा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वरूपसे की जाती है। जो प्रमेह का पूर्वरुप दिखाई न देतो रक्तपित्त समझना चाहिये।

प्रमेह का पूर्वरूप।

स्वेदोऽगगन्धः शिथिलत्वमंगे-
शय्यासनस्वप्नसुखाभिषंगः।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो-
घनांगता केशनखातिवृद्धिः ॥ ३८ ॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो-
माधुर्यमास्ये करपाददाहः।
भविष्यतो मेहगणस्य रूपम्-
मूत्रेऽभिधावंति पिपीलिकाश्च ३९ ॥

अर्थ–पसीना, देह में गंध, अंग में शिथिलता, शय्या, आसन और निद्रा में अत्यन्त सुख का अनुभव, हृदय नेत्र, जिह्वा और कान में उपलिप्तता, घनांगता, केश और नखकी अत्यंत वृद्धि, शीतल वस्तुओंके छूने वा खाने की इच्छा, कंठ और तालु में शुष्कता, मुख में मीठापन, हाथ और पांव में जलन, ये सब प्रमेह के पूर्वरूप हैं और जिस जगह रोगी मूत्र करता है वहां चींटियां दौड़कर आती हैं।

प्रमेह में द्विविधविचार।

दृष्ट्वा प्रमेहम् मधुरम् सपिच्छम्।
मधूपमम् स्याद्विविधो विचारः।
संतर्पणाद्वा कफसंभवः स्यात्-
क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ४० ॥

अर्थ–प्रमेहरोग में मूत्रको मधुर के सदृश मिष्ट और शाल्मली (सेमर) के गोंद के सदृश पिच्छिल देखकर मंदबुद्धि वैद्य के मनमें दो प्रकार का विचार पैदा होता है एक तो यह कि अतर्पणसाध्यमेह कफ से उत्पन्न हुआ है अथवा दूसरा यह कि कफादि दोषों के क्षीण होने से संतर्पण-साध्य मेह वात से उत्पन्न हुआ है। परंतु कुशाग्रबुद्धिवाला केवल मूत्रके ही मधुरादि गुणों को नहीं देखता है किन्तु अन्य लक्षणों को देखकर स्थिर रहता है कि यह प्रमेह कफज है, वा वातज है।

प्रमेहोंका साध्यत्व।

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः-
क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः।
साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः-
साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम् ,, ४१

अर्थ–स्वेदोंगगंधादि संपूर्ण पूर्वरूपों से युक्त कफज प्रमेह और पित्तज प्रमेह असाध्य होते हैं। तथा क्रमसे हुए अर्थात् जो प्रथम कफप्रमेह, तदनंतर पित्तप्रमेह, इसी तरह कालांतरमें वातप्रमेह होजाते हैं, वे भी असाध्य होते हैं। इसका सारांश यह है कि कफजमेह समक्रियत्व होनेसे साध्य और पित्तज प्रमेह असमक्रियत्व होनेसे याप्य होते हैं परंतु यदि ये भी संपूर्ण पूर्वरूपसे युक्त होंतो असाध्य होते हैं। और यदि मेद अत्यन्त दुष्ट न हो तो पित्तज प्रमेह जो याप्य होता है वह भी साध्य होजाता है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा टीकायां निदानस्थाने प्रमेह निदाननामदशमो ऽध्यायः।

एकादशोऽध्यायः।

अथाऽतो विद्रधिवृद्धिगुल्मनिदानम्-
व्याख्यास्यामः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अब हम यहांसे विद्रधि, वृद्धि और गुल्मनिदान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

विद्रधिके छः भेद ।

" भुक्तैः पर्युषितात्युष्णरूक्षशुष्कविदाहिभिः
जिह्मशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः
दुष्टं त्वङ्मांसमेदोऽस्थिस्नावासृक्कंडराश्रयः ।
यः शोफो बहिरंतर्वा महाशूलो महारुजः २
वृत्तः स्यादायतो या वा स्मृतः षोढा स-
विद्रधिः ।
दोषैः पृथक्समुदितैः शोणितेन क्षतेन च ३ ॥

अर्थ–बासी, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्तरूक्ष अत्यंत शुष्क और अत्यंत विदाही भोजन करने से, अथवा ऊंची नीची शय्यापर शयन करनेसे अथवा रक्तको दूषित करनेवाली अन्य क्रियाओं से त्वचा, मांस, मेद, अस्थि, स्नायु, रक्त और कंडराके आश्रित बाहर बाहर वा भीतर भीतर ऐसी सूजन पैदा होती है । जो बहुत स्थानमें फैली हुई होती है और वेदना भी इसमें बहुत होती है। तथा यह सूजन गोल वा लंबी होती है, इसे विद्रधि कहते हैं । यह विद्रधि छः प्रकार की होती है, यथा- वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोष, रक्तज और क्षतज ।

छः प्रकारकी विद्रधिके दो भेद ।

बाह्योऽत्र तत्रतत्रांगे दारुणो ग्रथितोन्नतः ।
आंतरो दारुणतरो गम्भीरो गुल्मवद्घनः ४ ॥
वल्मीकवत्समुच्छ्रायी शीघ्रघात्यग्निशस्त्रवत्

अर्थ–छः प्रकारकी विद्रधि के दो भेद है, अर्थात् एक बाहर होनेवाली बाह्यविद्रधि, दूसरी भीतर होनेवाली अंतर्विद्रधि, बाह्यविद्रधि शरीर के बाहरके भागमें नाभिके ओर पास होती है, यह दारुण और ऊंची ग्रंथि होती है । दूसरी अंतर्विद्रधि बडी दारुण, गंभीर, गुल्मके समान कठोर, वल्मीक की तरह ऊंची, अग्नि और शस्त्रकी तरह शीघ्र मारनेवाली होती है ।

विद्रधि के स्थान ।

नाभिबस्तियकृत्प्लीहहृत्क्लोमहृत्कुक्षिवंक्षणे ५ ॥
स्याद्गुदकयोरपाने च

अर्थ–नाभि, बस्ति, यकृत प्लीहा, क्लोम हृदय कुक्षि और वंक्षण, दोनों वृक्क और अपान ये विद्रधि की उत्पत्ति के स्थान है ।

वातज विद्रधिके लक्षण ।

वातात्तत्राऽतितीव्ररुक् ।
श्यावारुणश्चिरोत्थानपाकोविषम-
संस्थितिः ॥ ६ ॥
व्यधच्छेदभ्रमानाहस्यंदसर्पणशब्दवान् ।

अर्थ–वातजविद्रधि में बडी तीव्र वेदना होतीहै, इसका रंग श्याव, और अरुण होता है, यह बहुत देरमें उठतीहै और बहुत ही देरमें पकती है । इसकी स्थिति भी विषम है अर्थात कभी घटजातीहै और कभी बढ जातीहै । इसमें व्यध और छेदके समान शूल, भ्रम, आनाह, स्यंदन, परिसर्पण और शब्द होताहै ।

पित्तज विद्रधिके लक्षण ।

रक्ताम्रासितः पित्तात्तृण्मोहज्वरदाहवान् ॥
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च-

अर्थ–पित्तजविद्रधि में तृषा, मोह, ज्वर और दाह होताहै, यह लाल, ताम्रवर्ण और काली होतीहै, यह शीघ्र उठतीहै और शीघ्र ही पकजाती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफज विद्रधि के लक्षण।

पांडुः कण्डूयुतः कफात्। सोत्क्लेशशीतकस्तंभजृंभारोचकगौरवः ८॥ चिरोत्थानविदाहश्च-

अर्थ-कफजविद्रधिमें पांडुवर्णता, खुजली, उत्क्लेश, शीत, स्तंभ, जंभाई, अरोचक और भारीपन होताहै। यह देरमें उठतीहै और विशेष रूपसे विदाही है।

त्रिदोषज विद्रधि।

सकीर्णः सन्निपाततः।

अर्थ-त्रिदोषज विद्रधि में वातादि तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षण दिखाई देतेहैं।

बाह्यांतर विद्रधिका विभाग।

सामर्थ्याच्चाऽत्रविभजेद्बाह्याभ्यंतरलक्षणाम्॥ ९॥

अर्थ-पहिले कहेहुए दारुण और दारुणतर लक्षणोंद्वारा बाह्य और आभ्यंतर विद्रधि को पहिचान लैना चाहिये।

रक्तज विद्रधिके लक्षण।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः पित्तलिंगोऽसृजा बाह्यः स्त्रीणामेव-तथांतरः॥ १०॥

अर्थ-रक्तज विद्रधि में विद्रधि का स्थान काले रंगके फोड़ोंसे घिरा रहताहै यह श्याव वर्ण होतीहै, इसमें तीव्रदाह, वेदना और ज्वर होताहै तथा शेष लक्षण पित्तजाविद्रधि के समान होतेहैं। यह बाह्य विद्रधि केवल पुरुषों के होतीहै। तथा स्त्रियोंके रक्तसे उत्पन्न हुई यह विद्रधि भीतर होतीहै, बाहर नहीं होती है।

क्षतजविद्रधि के लक्षण।

शस्त्राद्यैरभिघातेन क्षते वाऽपथ्यकारिणः। क्षतोष्मा वायुविक्षिप्तः सरक्तं पित्तमीरयन् पित्तासृग्लक्षणम् कुर्याद्विद्रधिं भूयुपद्रवम्।

अर्थ-शस्त्र लोष्ठ आदि की चोट लगने से जो घाव होजाताहै वा अन्य किसी प्रकारके व्रण का घाव होजाताहै, और उस घावमें रोगी अपथ्य आहार विहार करतारहै तो घावकी गरमी वायुसे विक्षिप्त होकर रक्तसहित पित्तको प्रकुपित करदेती है, और इससे अनेक उपद्रवों से युक्त विद्रधि हो जाती है, इसे क्षतज विद्रधि कहते हैं। इस में रक्तज और पित्तज विद्रधि के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं।

विद्रधियों में उपद्रव विशेष।

तेषूपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः १२ नाभ्यां हिध्मा भवेद्वस्तौ मूत्रे कृच्छ्रेण पूति च श्वासो यकृति रोधस्तु प्लीह्युच्छ्वासस्य-तद्वत् पुनः॥ १३॥ गलग्रहश्च क्लोम्नि स्यात्सर्वांगग्रहो हृदि। प्रमोहस्तमकः कासो हृदये घट्टनम् व्यथा॥ कुक्षिपार्श्वांतरांसार्तिः कुक्षावाटोपजन्म च। सकथ्नोर्ग्रहो वंक्षणयोर्वृक्कयोः कटिपृष्ठयोः पार्श्वयोश्च व्यथा पायौ पवनस्य निरोधनम्

अर्थ-इन विद्रधियों में स्थान विशेष के अनुसार विशेष विशेष उपद्रव होतेहैं। यथा जो विद्रधि नाभिमें होतीहै तो हिचकी वस्ति में होनेसे मूत्रकी रुद्धता और दुर्गंधि, यकृत में होनेसे श्वास, प्लीहा में होनेसे श्वासरोध, क्लोम में होनेसे बार २ तृषा और गलग्रह, हृदय में होनेसे संपूर्ण अंग में जकडन, प्रमोह, तमक श्वास, खांसी हृदयघट्टन, और हृदय में वेदना, कुक्षिमें होनेसे पसलियों के भीतर और कंधों में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेदना होतीहै और कुक्षिमें गुडगुड़ शब्द होताहै। वंक्षण में होनेसे पांव निष्काम हो जातेहैं। वृक्कमें होनेसे कमर, पीठ और पसली में वेदना होतीहै। गुदनाडी में होनेसे अधोवायु रुक जाता है ये भिन्न भिन्न स्थानों के भिन्न भिन्न उपद्रव हैं।

विद्रधि को शोफतुल्यता।

आमपक्वविदग्धत्वम् तेषां शोफवदादिशेत्॥

अर्थ-इनविद्रधियोंका आमत्व (कच्चापन), पक्वत्व (पकापन), और विदग्धत्व (पाकातिक्रांतत्व) शोफ के लक्षणों के समान जानना चाहिये।

उत्पत्तिस्थानभेद से विद्रधि।

नाभेरूर्ध्वं मुखात्पक्वाः प्रस्रवंत्यपरे गुदात्।
उभाभ्यां नाभिजा-

अर्थ-जो विद्रधि नाभि के ऊपर वाले स्थानों में होतीहै उनके पककर फूटने परजो पीव निकलती हैं वह रोगीके मुख द्वारा निकलती है और जो विद्रधि नाभिके नीचे के स्थानों में होतीहै उसकी पूय (राध) गुदा द्वारा निकलतीहै और नाभि में उत्पन्न होनेवाली विद्रधि की राध दोनों मार्गोंसे से निकलती हैं।

विद्रधि में व्रणके समान दोषोद्रेक।

विद्याद्दोषम् क्लेदाच्च विद्रधौ॥ १७॥
यथास्वम् व्रणवत्-

अर्थ-वातादि गुणोंमें क्लेदकी जैसी आकृतिहै, विद्रधि की भी वैसीही आकृति होतीहै इसलिये क्लेदको देखकर विद्रधि के वातादि दोषों के लक्षण समझने चाहिये।

विद्रधि का साध्यासाध्य विभाग।

तत्र विवर्ज्यः सन्निपातजः।
पक्को हृन्नाभिवस्तिस्थो भिन्नोऽतर्बहिरेव वा
पक्वश्चांतः स्रवन्पक्वात् क्षणिस्योपद्रवान्वितः

अर्थ=सन्निपातज विद्रधि असाध्य होती है। हृदय, नाभि और वस्तिमें जो विद्रधि होती है, वह भीतरवाली पककर भीतर फूटे वा बाहरवाली में शस्त्रद्वारा विदीर्ण करके बाहरको मुख कियाजाय वहभी असाध्य होती है। तथा हृदय, नाभि, वस्ति इन स्थानोंको छोडकर अन्यस्थानोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि पककर भीतरको फूटे और उसका स्राव मुख द्वारा निकले वहभी असाध्य होती है।

स्त्रियों की स्तनविद्रधि।

एवमेव स्तनसिरा विवृताः प्राप्य योषिताम्
सूतानांगर्भिणीनांवासंभवेच्छूनयथुर्घनः।
स्तने सदुग्धेऽदुग्धे वा बाह्यविद्रधिलक्षणः।
नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात्कन्यानां तु न जायते

अर्थ-प्रसूता वा गर्भिणी स्त्रियोंके दूध वाले वा विनादूध के स्तनोंमें विद्रधि के उत्पन्न करनेवाले हेतुओंसे एक प्रकारकी सूजन पैदा होजाती है और यह सूजन स्तनों की खुलेहुए मुखवाली नसोंमें प्रविष्ट होती है तथा इसके सब लक्षण वाह्य विद्रधि के समान होते हैं। छोटी बालिकाओं के स्तनों की नसोंके मुख बहुत सूक्ष्म होते हैं, इसलिये उनके स्तनों में विद्रधि उत्पन्न नहीं होती है।

वृद्धिरोग का वर्णन।

रुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः।

अर्थ—सूजन और शूलको उत्पन्न करने वाला कुपित वायु अपना मार्ग रुकजाने के कारण एक स्थानसे दूसरे स्थानमें विचरता हुआ वंक्षण से अंडकोषों में पहुंचकर फलकोषवाहिनी संपूर्ण धमनियों को अत्यन्त पीडित करके फलकोष की वृद्धि करदेताहै।

वृद्धिरोग की संख्या।

दोषान्मेदोमूत्राभ्यां स वृद्धिः सप्तधा गदः।
मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतु भेदस्तु केवलम्।

अर्थ—वृद्धिरोग सात प्रकार का होता है, यथा—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मेदोज, मूत्रज और अंत्रज। इनमें से मूत्रज वृद्धि और अंत्रजवृद्धि वायु के प्रकोप से ही उत्पन्न होती हैं। इनकी उत्पत्ति के हेतु में भिन्नता होने के कारण इनका पृथक् निर्देश किया गया है।

वातजवृद्धि के लक्षण।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक्।

अर्थ—वातज वृद्धि बिना कारणही वा थोडे कारण से वेदनायुक्त और रूक्ष होती है और वायु से भरी हुई मशक की तरह फूली हुई होती है।

पित्तजवृद्धि।

पक्वोदुंबरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान्।

अर्थ—पित्तजवृद्धि पके हुए गूलर के फल के समान दाह और गरमी से युक्त होतीहै, यह पकजाती है।

कफजवृद्धि।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमानकठिनोऽल्परुक्।

अर्थ—कफजवृद्धि ठंडी, भारी, स्निग्ध, खुजलीयुक्त कठोर और अल्पवेदना से युक्त होती है।

रक्तजवृद्धि।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगश्च रक्तजः

अर्थ—रक्तजवृद्धि के चारों ओर काले रंग के फोडे होजाते हैं, इसमें पित्तजवृद्धि के संपूर्ण लक्षण पाये जाते हैं।

मेदोजवृद्धि।

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः।

अर्थ—मेदोजवृद्धि कोमल और पके हुए तालफल के सदृश होती है, इनके शेष लक्षण कफजवृद्धि के समान होते हैं।

मूत्रजवृद्धि।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः॥
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः
मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च वलयम् फलकोशयोः॥

अर्थ—जो सदा मूत्रके वेगको धारण करता है उसके मूत्रज वृद्धि होती है इसरोगी का अंडकोष चलनेके समय जलसे भरीहुई मशक की तरह थलर थलर करता है। यह वेदनायुक्त और मृदु होता है। और इसीसे मूत्रकृच्छ्र भी होजाता है। फलकोषके नीचे के भागमें कंकण के सदृश आकार विशेष उत्पन्न होजाता है॥

अंत्रजवृद्धि।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः।
धारणैरणभाराध्वविषमांगप्रवर्तनैः॥ २८॥
क्षोभणः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रांत्रावयवं यदा
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।
कुर्याद्वंक्षणसंधिस्थो ग्रंथ्याभं श्वयथुं तदा॥

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माध्मानरुक्स्तंभवती स वायुः ।
प्रपीडितोऽतः स्वनवान् प्रयाति ।
प्रधमापयन्नेति पुनश्च मुक्तः । ३० ।
अंत्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ।

अर्थ–वातको प्रकुपित करनेवाले आहार तथा अन्य पूर्वोक्त क्षोभनकर्ता कारणों से अथवा ठंडे जलमें अवगाहन से, मलमूत्रके उपस्थित वेगको रोकने और अनुपस्थित वेगको उदीर्ण करनेसे, भारी बोझ ढोनेसे, विषममार्गमें देहकी प्रवृत्ति से वायु कुपित होताहै और जब वायु कुपित होकर छोटी छोटी अंत्रों के कुछ अंशों को दूषित करके नीचेको लेजाता है तब ग्रंथि के सदृश लक्षण की संधियों में सूजन पैदा कर देता है ॥ इसीको अंत्रवृद्धि कहते हैं । इसकी चिकित्सा करने में उपेक्षा करने से कोष बढकर फूल जाता है, वेदनायुक्त और स्तंभित होजाता है इसको दाबने से वायु शब्द करता हुआ इधर उधर दौडता है और हाथ हटा लेने पर फिर आकर सूजन उत्पन्न कर देता है। अंत्रवृद्धि के लक्षण वातजवृद्धि के समान होते हैं । यह व्याधि असाध्य होती है ।

गुल्म के लक्षण और भेद ।

रूक्षकृष्णारुणसिरातंतुजालगवाक्षितः । ३१ ।
गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतैः ।
आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ।

अर्थ–सब प्रकार के गुल्मरोग रूक्ष तथा काली वा नीली सिराओं के जाल से व्याप्त जाल के सदृश होते हैं, ये आठ प्रकार के होते हैं, यथा—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज और त्रिदोषज, तथा आठवां आर्तव दोषज यह आठवां गुल्म स्त्रियों के ऋतुसंबंधी शोणित के दूषित होजाने से उत्पन्न होता है ।

गुल्मनिदान ।

ज्वरच्छर्द्यतिसारार्दैर्वमनाद्यैश्च कर्मभिः ।
कर्शितो वातलान्याति शीतं वांबु बुभुक्षितः ।
यः पिबत्यनु चान्नानि लंघनं प्लवनादिकम् ।
सेवते देहसंक्षोभि छर्दिं वा समुदीरयेत् ॥
अनुदीर्णमुदीर्णान्वा वातादीन्न विमुंचति ।
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोधनं वा निषेवते ॥
शुद्धो वाशु विदाहीनि भजते स्यंदनानि वा ।
वातोल्वणास्तस्य मलाः पृथक्कुद्धा
द्विशोऽथवा ॥
सर्वे वा रक्तयुक्ता वा महास्रोतोऽनुशायिनः ।
ऊर्ध्वाधोमार्गमावृत्य कुर्वते शूलपूर्वकम् ॥
स्पर्शोपलभ्यं गुल्माख्यमुत्प्लुतं ग्रंथिरूपिणम् ।

अर्थ–जो मनुष्य ज्वर, वमन, अतिसार और ग्रहण्यादिक रोगों से पीडित और वमन विरेचन आस्थापनादि कर्मों द्वारा कर्षित हो और वातकारक अन्न का भोजन करे जो मनुष्य क्षुधा से पीडित हो वह भोजनसे पहिले जलपान करे अथवा देहको क्षोभकारक उपवास करै वा जल में तैरे, जो मनुष्य वमन का वेग न होने परभी गले में उंगली डाल कर वा अन्न चेष्टा द्वारा वमन करे वातमूत्र और मलका वेग उपस्थित होने परभी वेगको रोके । जो मनुष्य प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म न करके वमनविरेचनादि संशोधन क्रियाओं को करता है अथवा जो वमनविरेचनादि से शुद्ध होकर विदाही वा कफकारक आहार का सेवन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करता है, उसके संपूर्ण वातादि दोष अलग अलग, वा दो दो मिलकर अथवा सब एक साथ मिलकर अथवा रक्त से युक्त होकर महास्रोत अर्थात् आमपक्वाशय स्थान में गमन करे अथवा ऊपर नीचे के मार्गों को आच्छादित करके गुल्मरोग को उत्पन्न करता है। गुल्मरोग हाथसे टटोलने पर मालूम होजाता है, यह ऊंचा उठा हुआ और गांठ के सदृश होता है। गुल्म के उत्पन्न होने से पहिले शूलके समान वेदना होती है। प्रायः सब प्रकार के गुल्मों में वात की अधिकता होती है।

वातगुल्म के लक्षण।

कर्शनात्कफविट्पित्तैर्मार्गेस्यावरणेन वा॥
वायुःकृताशयः कोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः
स्वतंत्रः स्वाश्रये दुष्टः परतंत्रः पराश्रये।
पिंडितत्वादमूर्तोऽपि मूर्तत्वमिवसंश्रितः।
गुल्म इत्युच्यते बस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः।

अर्थ—धातु के क्षीण होजाने से, अथवा कफ, विष्ठा और पित्त द्वारा मार्ग रुकजाने के कारण वायु कोष्ठ में स्थित होजाता है और रूक्षता के कारण कठोर होजाता है। यह अपने स्थान अर्थात् पक्वाशय में स्वतंत्र भाव से दुष्ट होजाता है और पराश्रय अर्थात् आमाशय में पित्त कफके आधीन होकर परतंत्र भावमें दुष्ट होजाता है। वायु मूर्तिमान् न होकर भी पिंडितत्व अर्थात् गोलाकृत गांठ के सदृश होजाने के कारण मूर्तिमान मालूम होने लगता है। इसको ग्रंथकार वातगुल्म कहते हैं लौकिक में यह वायगोला के नाम से प्रसिद्ध है। यह बस्ति नाभि, हृदय और दोनों पसलियों में उत्पन्न होता है।

वातगुल्म के उपद्रव।

वातान्मन्याशिरःशूलं ज्वरप्लीहांत्रकूजनम्।
व्यधः सूच्येव विद्धस्यात्कृच्छ्राद्रुक्ष्वसनम्मुहुः॥ ४१॥
स्तंभो गात्रे मुखे शोषः कार्श्यं विषमवह्निता
रूक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च॥
अनिरूपितसंस्थानस्थानवृद्धिक्षयव्यथः।
पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मःस्फुरति तुद्यते।

अर्थ—वातगुल्म में मन्या और मस्तक में शूल, तथा ज्वर, प्लीहा, अंत्रकूजन, सुई छिदने की सी वेदना मल का अवरोध, श्वासका कठिनता से आनाजाना, शरीर में जकडन, मुखमें शोष, कृशता, विषमाग्नि त्वचा और नख नेत्रादि में रूखापन और कालापन, तथा वायु के चलस्वभाव के कारण गुल्म के स्थान, आकृति, वृद्धि, क्षय और वेदना में सदा नियमरहितता, । ये सब लक्षण होते हैं। वातज गुल्म में ऐसा मालूम हुआ करता है कि चींटियों से व्याप्त की तरह स्फुरण करता है और सूचीविद्ध की तरह वेदना से युक्त होता है।

पित्तगुल्म के लक्षण।

पित्ताद्दाहोऽम्लको-
मूर्छाविड्भेदस्वेदतृड्ज्वराः।
हारिद्रत्वं त्वगादिषु गुल्मश्च स्पर्शनासहः॥
दूयते दीप्यते सोष्मा स्वस्थानं दहतीव च।

अर्थ—पित्तज गुल्म में दाह, खट्टीडकार मूर्छा, पुरीषभेद, स्वेद, तृषा, ज्वर, और त्वचा, मुख, नेत्र, नखों में हलदीकासा पीत वर्ण ये सब लक्षण होतेहैं। इसमें ऐसी तीव्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेदना होती है, कि हाथ नहीं लगाया जा सकता है । गरमाई से गुल्मका स्थान, उपतप्त, जलता हुआ, लोहे के गोले के समान गरम मालूम होता है ।

कफज गुल्म के लक्षण ।

कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिशिरज्वरः ॥
पीनसालस्यहृल्लासकासशुक्लत्वगादिताः ।
गुल्मोऽवगाढः कठिनो गुरुः सुप्तः-
स्थिरोऽल्परुक् ॥ ४६ ॥

अर्थ–कफज गुल्म में स्तिमिता, अरुचि अंगमें शिथिलता, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, हृल्लास, खांसी और त्वचादि स्थानों में सफेदा होती है । कफज गुल्म अवगाढ, कठोर, भारी, सुप्त, स्थिर और अल्प वेदना से युक्त होता है ।

गुल्म को रुक्करत्व ।

स्वदोषस्थानधामानःस्वे स्वे काले च रुक्कराः प्रायः-

अर्थ–वातादि जिस जिस दोषका पक्वाशयादि जो जो स्थान है वही वही स्थान उन उन दोषों से उत्पन्न हुए गुल्मों का होता है। और वातादि जिस जिस आत्मीय काल में कुपित होते हैं उसी उसी वय, अहोरात्रि, भुक्त आदि लक्षणवाले उन उन दोषों से उत्पन्न हुए गुल्म वेदना करतेहैं ।

द्वंद्वज गुल्म ।

त्रयस्तु द्वंद्वोत्था गुल्माः संसृष्टलक्षणाः ४७

अर्थ–द्वंद्वज गुल्म तीन प्रकारके होते हैं, इनके लक्षण दो दो दोषों के मिलेहुए होते हैं ।

त्रिदोषज गुल्म ।

सर्वैस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः ।
सोऽसाध्यो-

अर्थ–त्रिदोषज गुल्म में तीव्र वेदना और दाह होता है, यह बहुत जल्दी पक-जाता है, तथा कठोर और ऊंचा होता है, यह असाध्य होता है ।

रक्तज गुल्म की उत्पत्ति ।

रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते ४८
ऋतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी
सेवते वातलानि स्त्री क्षुद्रस्तस्याः समीरणः
निरुणद्धयार्तवं योन्यां प्रतिमासमवस्थितम्।
कुक्षिं करोति तद्गर्भलिंगमाविष्करोति च ॥
हृल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनम् क्षामतादिकम् ।

अर्थ-रक्तज गुल्म केवल स्त्रियों केही होता है । रजस्वला, अथवा नवप्रसूता स्त्री अथवा योनिरोग वाली स्त्री यदि वातकारक अन्नपान का अधिक सेवन करती है तो वायु कुपित होकर जो रक्त प्रतिमास में योनि के मुख में अवस्थित होता है उसे रोक देती है । वह रुका हुआ शोणित कुक्षि में जाकर गर्भ के चिन्हों को प्रकाशित करता है तथा हृल्लास, दौहृद, दुग्ध-दर्शन, क्षामता और मूर्छादिक भी उत्पन्न होजाते हैं ।

रक्तगुल्मके उपद्रव ।

क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत् ५१
शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजान्
रुक्स्तंभदाहातीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ॥
गर्भाशये च सुतरां शूलम् दुष्टासृगाश्रये ।
योन्याश्च स्रावदौर्गंध्यतोदस्यंदनवेदनाः ॥

अर्थ–तदनंतर वायु के संसर्ग और पित्तके कारण से रक्त वातपित्तज गुल्म के विकार अर्थात् वेदना, स्तंभ, दाह, अतीसार तृषा, ज्वर आदि उपद्रव उत्पन्न होजाते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। वह रक्तज गुल्म दुष्ट रक्त का आधार लेकर गर्भाशय में अत्यन्त शूल उत्पन्न करता है और योनि में स्राव, दुर्गंधि, तोद स्पंदन और वेदना होती है।

रक्तगुल्ममें विलक्षणता।

नचांगैर्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान्।
पिंडीभूतः सपत्नास्याः कदाचित्स्पंदते-
चिरात् ॥ ५४ ॥
न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते।

अर्थ—जिस तरह गर्भ हाथ पांव आदि अंगावयवद्वारा उदरके भीतर निरंतर उछलता रहता है परन्तु शूल उत्पन्न नहीं करता है। परन्तु गुल्मके अंगावयव नहीं होते इस लिये वह उछलता नहीं है, परन्तु वेदना करता है और वही गुल्म गोलासा बनकर कदाचित् कालांतर पीछे उछलता है गर्भकी तरह जल्दी जल्दी नहीं उछलता है। जब भीतर गर्भ होता है तब कुक्षि बढती है परन्तु गुल्मके भीतर रहनेपर कुक्षि नहीं बढती गुल्म ही बढता है।

गुल्म और विद्रधिका भेद।

स्वदोषसंश्रयो गुल्मः सर्वो भवति तेन सः॥
पाकं चिरेण भजते नैव वा विद्रधिः पुनः।
पच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयत्वतः ५६॥
अतःशीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधिःसोऽभिधीयतेऽ
गुल्मेऽतराश्रये बस्तिकुक्षिहृत्प्लीहवेदनाः॥
अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम्।
अतो विपर्ययो बाह्ये कोष्ठांगेषु तु नातिरुक्॥
वैवर्ण्यमवकाशस्य बहिरुन्नततायुतम्।

अर्थ—सब प्रकारके गुल्म अपने अपने दोषोंके आश्रित होते हैं, अर्थात् जो गुल्म जिस दोषसे हुआ है वही दोष उसका आश्रय है जैसे वातगुल्मका वातही आश्रय है। पित्त नहीं हो सकता। इसी तरह अन्य दोषों को भी समझना चाहिये। स्वदोषसंश्रित होनेके कारण गुल्म देरमें पकता है अथवा नहीं पकता है परन्तु विद्रधि दूषित रक्तके आश्रित होनेसे शीघ्र पक जाती है। इसी लिये शीघ्र विदाही होनेके कारण इसे विद्रधि कहते हैं। कहा भी है "मांसशोणितभूयस्त्वात् पाकंगच्छति विद्रधिः। मांसशोणित हीनत्वचात् गुल्मः पाकं न गच्छति। अंतराश्रित गुल्ममें वस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लीहा के स्थानमें वेदना होती है। जठराग्नि, वर्ण और बलका नाश होजाता है और मलमूत्रादि के वेग रुक जाते है अर्थात् दस्त और पेशाब बन्द होजाता है। परन्तु बहिराश्रित गुल्ममें उक्त लक्षणोंसे विपरीत लक्षण होते हैं अर्थात् वस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लीहादि कोष्ठके अंगोंमें अधिक वेदना न होना, जठराग्नि, वर्ण और बलका नाशाभाव, वेगका प्रवर्तन, तथा गुल्मस्थानमें विवर्णता, और बाहरके भागमें अत्यंत ऊंचापन ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

आनाहलक्षण।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम्॥
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते।

अर्थ—ऊपर नीचे वातके अवरोधसे उदरमें गुड गुडशब्द, अत्यंत तीव्र वेदना, और आध्मान। ये लक्षण आनाह रोग में होते हैं।

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला।

घनोऽष्ठीलोपमो ग्रंथिरष्ठीलोर्ध्वं समुच्छ्रितः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आनाहलिंगस्तिर्यक्तु प्रत्यष्ठीलातदाकृतिः ।

अर्थ–जो ग्रंथि ऊपरको उठी हुई होतीहै तथा कठोर अष्ठीला के सदृश और आनाह के लक्षणों से युक्त होती है, उसे अष्ठीला कहते हैं जो ग्रंथि तिरछी हो और ऊपरको उठीहुई हो उसे प्रत्यष्ठीला कहते हैं ।

तूनी प्रतूनीके लक्षण ।

पक्वाशयाद्गुदोपस्थं वायुस्तीव्ररुजः प्रयान् तूनीप्रतूनी तु भवेत्स एवातो विपर्यये ६१ ॥

अर्थ–तूनी रोगमें वायु अत्यन्त तीव्र वेदना करता हुआ पक्वाशय से गुदा और उपस्थेन्द्रियकी ओर जाता हैं । प्रतूनीरोग में इससे विपरीत होता है, अर्थात् तीव्र वेदना से युक्त वायु गुदा और उपस्थेन्दिय की ओर से पक्वाशयकी ओर जाता है ।

गुल्मके पूर्वरूप ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध-
तृप्त्यक्षमत्वांत्रविकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्ति-
मासन्नगुल्मस्य वदंति चिन्हम् ,, ६२ ॥

अर्थ–डकारों की अधिकता, पुरीषका विबंध, अन्नमें अनिच्छा, अंत्रकूजन, आटोप आध्मान, अग्निमांद्य ये सब उत्पन्न होनेवाले गुल्मके पूर्वरूप होते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा-टीकायां निदानस्थाने विद्रधि-गुल्म निदानं नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः !

अथाऽतो उदरनिदानम् व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहांसे उदरनिदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

उदर की उत्पत्ति ।

"रोगाःसर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु अजीर्णान्मालिनैश्चान्नैर्जायंते मलसंचयात् ॥

अर्थ–सब प्रकारके रोग मंदाग्निसे ही उत्पन्न होतेहैं, परन्तु उदररोग विशेष करके मंदाग्नि से होते हैं । चार प्रकार के अजीर्ण [आम, विष्टब्ध, विदग्ध और रसशेष], सडा हुआ बासी और संकीर्णादि लक्षणोंसे युक्त मलिन अन्न और बहुत दिनके मलके संचय से उदररोग उत्पन्न होते है ।

उदररोग की संप्राप्ति ।

ऊर्ध्वाधो धातवो रुद्ध्वा वाहिनीरंबुवाहिनीः प्राणान्यपानान् संदूष्यकुर्युस्त्वङ्मांस संधिगाः ॥ २ ॥

आध्माप्य कुक्षिमुदरम्-

अर्थ–अग्नि की मंदता के कारण प्रकुपित हुए वातादि दोष त्वचा और मांस की बीचवाली संधियों में स्थित जलवाही स्रोतों को रोककर और प्राणवायु, अग्नि और अपान वायुको दूषित करके तथा कुक्षि में अफरा उत्पन्न करके उदररोगों को उत्पन्न करते हैं ।

उदररोग के आठ भेद ।

अष्टधा तच्च भिद्यते ।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहवद्रक्षतोदकैः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—उदररोग आठ प्रकार के होते हैं, यथा—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहज (प्लीहोदर) बद्धज(बद्धोदर) क्षतज (क्षतोदर) और जलज (जलोदर)

उदररोगपीडित के लक्षण।

तेनार्ताः शुष्कतालोष्ठाः शूनपाणिकरोदराः॥
नष्टचेष्टाबलाहाराःकृशाः प्रध्मातकुक्षयः ४॥
स्युः प्रेतरूपाः पुरुषाः-

अर्थ—उदररोग से पीडित मनुष्य के तालु और ओष्ठ सूखजाते हैं, हाथ पांव और उदर पर सूजन आजाती है, शारीरक चेष्टा, बल, और आहार कम होजाते हैं, उनके देह कृश और कुक्षि में अफरा होता है। ऐसा रोगी प्रेतरूप दिखाई देने लगता है।

उदररोग का पूर्वरूप।

भाविनस्तस्य लक्षणम्।
क्षुन्नाशोऽन्नं सिरात्सर्वं सविदाहं च पच्यते
जीर्णाजीर्णे न जानाति सौहित्यं सहते न च।
क्षीयते बलतः शश्वच्छ्वासस्तेऽपि चेष्टिते
वृद्धिर्विशोऽप्रवृत्तिश्च किंचिच्छोफश्च-
पादयोः।
रुग्वस्तिसंधौ ततता लघ्वलघ्वोजनैरपि॥
राजीजन्म वलीनाशो जठरे-
जठरेषु तु।
सर्वेषु तंद्रा सदनं मलसंगोऽल्पवह्निता ८॥
दाहः श्वयथुराध्मानमन्ते सलिलसंभवः।

अर्थ—उदररोग होने से पहिले क्षुधाका नाश, भुक्त अन्नका दाह के साथ देर में पचना, जीर्ण और अजीर्ण में कुछ अंतर न मालूम होना, पेटभर कर भोजन का न सहना, दिन प्रतिदिन बल की क्षीणता, थोड़े चलने फिरने में भी श्वासकी वृद्धि, पुरीषकी वृद्धि अथवा न निकलना, पांवों पर कुछ सूजन, वस्तिकी संधियों में शूल होना, हलका और थोडा खाने परभी अफरा, उदर की सिराओं का दिखाई न देना, तथा मांसकी वलि अर्थात् सलवटों का लोप होना ये सब उदररोग के पूर्वरूप हैं।

सब प्रकार के जठर रोगोंमें तंद्रा, शरीर में शिथिलता, मलबद्धता, अग्निमांद्य, दाह, सूजन और अफरा होता है, अंतमें जल की उत्पत्ति होती है।

अतोय उदरके लक्षण।

सर्वं त्वतोयमरुणमशोकम् नातिभारिकम्॥
गवाक्षितम् सिराजालैः सदा गुडगुडायते।
नाभिमंत्रम् च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रगच्छति
मारुतो हृत्कटीनाभिपार्श्ववंक्षणवेदनः।
सशब्दो निश्चरद्वायुर्विड्बन्धो-
मूत्रमल्पकम्॥ ११॥
नातिमन्दोऽनलो लौल्यं न च स्याद्विरसम्-
मुखम्।

अर्थ—जलोदर को छोड़कर सब प्रकार के उदर रोगों में उदरका वर्ण लाल, सूजनरहित और गुरुतारहित होता है। नसों के जाल के समूह से झरोखेकी तरह होजाता है और सदा गुड गुड करता रहता है। तथा वायु नाभि और अंतर्में विष्टब्धता उत्पन्न करके हृदय, कटि, नाभि, गुदा और वंक्षण में वेदना करता हुआ अपने रूप को दिखाकर नष्ट होजाता है, तथा शब्दकरता हुआ बाहर निकलता है, इससे मलबद्धता, और मूत्रकी अल्पता होजाती है। जठराग्नि अत्यन्त मंद नहीं होती है, भोजन में इच्छा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं रहती और मुखमें विरसता उत्पन्न हो जाती है।

वातोदर के लक्षण।

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्मुष्ककुक्षिषु ॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम्।
शुष्ककासांगमर्दोऽधोगुरुता मलसंग्रहः १३
श्यावारुणत्वगादित्वमरुक्समाद्वृद्धिह्रासवत्।
सतोदभेदमुदरं तनु कृष्णसिराततम्। १४।
आध्मातरतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः।

अर्थ-इनमें से वातोदर में हाथ, पांव, अंडकोष और कुक्षि में सूजन होती है। कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि, पृष्ठ में वेदना होती है, अस्थियों के जोडों में हडफूटन होती है। सूखी खांसी, अंगमर्द देह के नीचे के भागमें भारापन, मलबद्धता, त्वचा नेत्र, नख और मुखमें कालापन वा ललाई, विना कारणही उदरकी सूजन का कभी बढना और कभी घटना, उदर में सुई छिदने की सी वेदना, वा टूटने की सी पीडा, पतली और काली सिराओंका व्याप्त होना, ये लक्षण होते हैं, पेट ऐसा फूल जाता है कि उस पर हाथ मारने से ऐसा शब्द होता है। जैसा हवासे भरीहुई मश्क पर हाथ मारने से होता है वातोदर में शब्द और वेदना के साथ वायु सब जगह फिरताहै।

पित्तोदर का लक्षण।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्छा दाहस्तट्टू कटुकास्यता
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित्।
पीतताम्रसिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते।
धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते। १७।

अर्थ-पित्तोदर में ज्वर, मूर्छा, दाह, तृषा, मुखमें कडवापन, भ्रम, अतिसार, त्वचा और नेत्रादिक में पीलापन छा जाता है, पेटपर हरारंग और पीली तथा तांबे के रंगकी सी रगें निकल आतीहै, पसीना, ऊष्मा और दाह होता है। और ऐसा मालूम होता है कि धूंआं सा निकलता है, छूने में बडा कोमल होता है पित्तोदर शीघ्र पककर जलोदर में बदल जाता है, तथा इसमें सदा वेदना होती रहती है।

कफोदर के लक्षण।

श्लेष्मोदरेऽगसदनं स्वापश्वयथुगौरवम्।
निद्रोत्क्लेशारुचिश्वासकासशुक्लत्वगादिता
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्।
चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम्।

अर्थ-कफोदर में अंगमें शिथिलता, सुनता अर्थात् स्पर्श का ज्ञान न होना, सूजन, भारापन, निद्रा, उत्क्लेश, अरुचि, श्वास, खांसी, और त्वचा आदि में सफेदी छा जाती है। तथा रोगी का उदर स्तिमित चिकना, कठोर, छूने में ठंडा, भारी, अचल देरमें बढने वाला और सफेद रंगकी सिराओं से व्याप्त होजाता है।

त्रिदोषज उदररोग।

त्रिदोषकोपनैस्तैस्तैः स्त्रीदत्तैश्च रजोमलैः।
गरकृष्णविषाद्यैश्च सरक्ताः संहिता मलाः।
कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाः शोषमूर्छाभ्रमान्वितम्
कुर्युर्लिंगमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम्। २१।
बाधते तच्च सुतरां शीतवाताभ्रदर्शने।

अर्थ-वातादि तीनों दोषों के प्रकुपित करनेवाले हेतुओं से, तथा स्त्री के दिये हुए रज वा मल से, संयोगज विष से, दूषीविषसे रक्त और वातादि तीनों दोष कुपित होकर कोष्ठका आश्रय लेकर और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विकृतभाव को प्राप्त होकर शोष, मूर्छा और भ्रमको उत्पन्न करते हैं, इस भयंकर रोगमें तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं यह शीघ्र पकजाता है। यह रोग ठंडी हवा चलने पर वा वर्षा के दिन अधिक कष्ट देता है।×

प्लीहोदर का लक्षण।

अत्याशितस्य संक्षोभाद्यानयानादिचेष्टितैः।
अतिव्यवायकर्माध्ववमनव्याधिकर्शनैः।
वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानाद्विवर्धते।
शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत्।
सोऽष्ठीलेवातिकठिनः प्राक्ततः कूर्मपृष्ठवत्।
क्रमेण वर्धमानश्च कुक्षावुदरमावहेत्।
श्वासकासपिपासास्यवैरस्या ध्मानरुग्ज्वरैः
पांडुत्वच्छर्दिमूर्च्छार्तिदाहमोहैश्च संयतम्।
अरुणाभं विवर्णं वा नीलहारिद्रराजिमत्।

अर्थ–तृप्तिपर्यन्त पेट भरकर खानेके पीछे यानगमनादि चेष्टा द्वारा शरीर का संक्षोभ, अति मैथुन, मार्गगमन, और वमनादि द्वारा शरीर का कृश होजाना, इन सब कारणोंसे बाईं पसलीमें स्थित हुई प्लीहा अपने स्थानसे हटकर विशेष रूपसे बढने लगतीहै, अथवा रसादि धातुओं द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ रक्त अपने स्थान से च्युत वा अच्युत प्लीहा को विशेष रूपसे बढाताहै यह बढी हुई प्लीहा अष्ठीला के सदृश कठोर और कछुए की पीठ की तरह आकृतिमें हो जातीहै। तथा क्रम क्रमसे बढकर कुक्षि में जठररोग को उत्पन्न करदेती है। इसमें श्वास, खांसी, तृषा, मुखमें विरसता, आध्मान, वेदना, ज्वर, पांडुरोग, वमन, मूर्च्छा आर्ति, दाह और मोह उत्पन्न होते हैं। प्लीहोदर लाल रंगका वा विवर्ण होताहै और पेट पर नीली वा हल्दीके रंगकी रेखायें होतीहै।

प्लीहोदर में वातादि।

उदावर्तरुगानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात्

अर्थ–प्लीहोदर में उदावर्त और आनाह हो तो वातिक। मोह, पिपासा, दाह और ज्वर हो तो पैत्तिक। तथा भारापन, अरुचि और कठोरता हो तो कफज समझना चाहिये।

यकृत के लक्षण।

प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात् कुर्याद्यकृदपि च्युतम्

अर्थ–जैसे पहिली कही हुई रीतिक अनुसार प्लीहा वाम पार्श्वसे च्युत होकर और बढकर प्लीहोदर उत्पन्न करे वैसेही यकृतभी दक्षिण पार्श्वसे च्युतहोकर और बढकर यकृत उदर को उत्पन्न करती है।

बद्धोदर के लक्षण।

पक्ष्मबालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे।२८।
दुर्नामभिरुदावर्तैरन्यैर्वाप्युपलेपिभिः।
वर्चःपित्तकफान् रुद्धा करोति कुपितोऽनिलः
अपानो जठरं तेन स्युर्दाहज्वरतृड्क्षवाः।
कासश्वासोरुसदनं शिरोहृत्पार्श्वपायुरुक्।
मलसंगोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम्।
स्थिरं नीलारुणसिराजालनद्धमराजि वा।
नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते।

अर्थ–पलक वा केश पड़े हुए अन्नको खानेसे अथवा बवासीर के कारण, वा उदावर्तके कारण अथवा अंत्रको उपलिप्त करने वाले दही, चांवल, उरद, अलसी आदि के

× **व्यभिचारिणी स्त्रियां अपने पति वा अन्य किसी अपने प्रेमी जार पुरुष को स्वाधीन करने के लिये खाने पीनेकी वस्तुओं में रजसंबंधी रुधिर, नख, रोम, मल मूत्र आदि मिलाकर दे देती हैं इसको स्त्री दत्त विष कहते हैं।**

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खानेसे गुदा का द्वार रुद्ध होजाताहै, तब अपानवायु कुपित होकर पुरीष, पित्त और कफको रोककर उदर रोगों को उत्पन्न करतीहै, इसीका नाम बद्धगुदोदरहै। इस रोग में दाह, तृषा, ज्वर, हिचकी, खांसी, श्वास ऊरुओं में शिथिलता, तथा मस्तक, हृदय, नाभि और गुदामें वेदना, मलबद्धता, अरुचि वमन, और अधोवायु का न निकलना ये सब उपद्रव उपस्थित होतेहैं। इस रोग में उदर स्थिर, नील और लाल नसोंकी रेखाओंसे व्याप्त, अथवा शिराओंसे रहित होता है। बद्धगुदोदर में नाभि के ऊपर वाले भागमें गौ की पूंछके आकारके सदृश होता जाताहै अर्थात् ऊपर की ओर पतला होता चला जाताहै।

छिद्रोदरके लक्षण।

अस्थ्यादिशल्यैः सान्नैश्चेक्षुकैरत्यशनेनवा।
भिद्यते पच्यते वांत्रं तच्छिद्रैश्च स्रवन्बहिः।
आम एव गुदाद्येति ततोऽल्पाल्पं स बिड्सः।
तुल्यः कुणपगंधेन पिच्छिलः पीतलोहितः।
शनैश्चापूर्य जठरं जठरं घोरमावहेत् ॥ ३४ ॥
वर्धते तदधो नाभेराधु चैते जलात्मताम्।
उद्रिक्तदोषरूपं च व्याप्तं च श्वासतृड्भ्रमैः ॥
छिद्रोदरमिदम् प्राहुः परिस्रावीति चापरे।

अर्थ-अस्थि, तृण, कांटा, पत्थर, धातु, सींग, लकडी, आदि शल्योंका मिला हुआ अन्न खानेसे, अथवा प्रमाणसे अधिक खानेपर जो अंत्र फटकर छिद्रयुक्त होजाय, अथवा पक जाय और उसमेंसे सडा हुआ, पिच्छिल, पीला वा लाल रंगका मल मिला हुआ अपक्व रस गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलने लगे और बचा हुआ रस उदरको भरकर अत्यन्त भयंकर जठररोग को उत्पन्न कर देता है। यह नाभिके नीचेके भागमें वृद्धि पाकर शीघ्रही जलोदर हो जाता है। इसमें वातादि दोषोंके संपूर्ण लक्षण अधिकता से दिखाई देने लगते हैं, तथा श्वास, तृषा, और भ्रम, उपस्थित होजाते हैं। इस का नाम छिद्रोदर है, कोई कोई इसे परिस्रावी उदर भी कहते हैं।

दकोदर के लक्षण।

प्रवृत्तस्नेहपानादेः सहसाऽऽमांबुपायिनः ॥
अत्यंदुपानान्मंदाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा
रुध्वाऽबुमार्गाननिलः कफश्च जलमूर्छितः
वर्धयेतां तदेवांबु तत्स्थानादुदराश्रितौ।
ततः स्यादुदरम् तृष्णा गुदस्रुतिरुजायुतम् ॥
कासश्वासरुचियुतम् नानावर्णसिराततम्।
तोयपूर्णदृतिस्पर्शशब्दप्रक्षोभवेपथु ॥ ३९ ॥
दकोदरं महत्स्निग्धं स्थिरमावृत्तनाभि तत्।

अर्थ-जिस मनुष्य ने स्नेहपान और वमनविरेचनादि पंचकर्म का आरंभ कर दिया है और वह सहसा बिना औटाया हुआ जल पीले अथवा जो मनुष्य मन्दाग्नि से पीडित हो, व्याधि से क्षीण होगया हो अथवा लंघनादि से कृश होगया हो वह यदि अधिक जलपान करे तो उसके उदर में आश्रित वायु और कफ जल में मिलाकर जलवाही संपूर्ण स्रोतों को रोक देते हैं और उदर स्थान में जल की वृद्धि करने लगते हैं इस बढे हुए जलसे रोगकी उत्पत्ति होती है। इस रोगमें तृषा, गुदाका स्राव, वेदना, खांसी, श्वास और अरुचि ये उत्पन्न होते हैं, पेट अनेक रंगकी सिराओं से व्याप्त होजाता है। तथा जब से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भरी हुई मशक की तरह इसको छूने से शब्द, प्रक्षोभ और कंपन होता है। यह अन्य उदरों की अपेक्षा बडा, स्निग्ध, स्थिर और नाभि के चारों ओर होता है, इसे दकोदर कहते हैं।

उदररोग में जल की उत्पत्ति ॥

उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः पाकात्तनुत्वाद्व्रीकुर्युःसंधिस्रोतोमुखान्यपि, स्वेदश्च बाह्यस्रोतःसु विहतास्तिर्यगास्थितः तदेवोदकमाध्माप्य पिच्छां कुर्यात्तदा भवेत्। गुरूदरं स्थिरं वृत्तमाहतं च न शब्दवत् ४२ मृदु व्यपेतराजीकम् भाभ्यां स्पृष्टं च सर्पति तस्नूदकजन्मांसिन्कुक्षिवृद्धिस्ततोऽधिकम् सिरांतर्धानमुदकजठरोक्तम् च लक्षणम्।

अर्थ—सब प्रकारके जठररोग अच्छीतरह चिकित्सा न किये जानेपर वातपित्तादि दोष अपने अपने स्थानों को छोडकर और पाक को प्राप्त होकर अत्यन्त पतले पडजाते हैं और संपूर्ण संधि तथा सोतोंके मुखों को भी पतला करदेतेहैं, और पसीना भी बाहर के स्रोतों में रुककर तिर्यक गतिको प्राप्त होता हुआ उस पूर्वसंचित उदक को कुक्षि में बढाकर पिच्छिलता करताहै। इससे उदर भारी, स्थिर, गोलाकार, हाथसे पीटने पर शब्दहीन और कोमल होजाताहै। इसमें नसें दिखाई नहीं देतीहै। नाभि में हाथ लगाने से फैल जाताहै। तदनंतर जलका संचय होताहै इससे उदर बहुत बढजाताहै। संपूर्ण सिरा छिपजातीहैं और जलोदर के सब लक्षण उपस्थित होजाते हैं।

उदररोग का कृच्छ्र साध्यासाध्यत्व

वातपित्तकफप्लीहसंनिपातोदकोदरम् ४४ कृच्छ्रम् यथोत्तरम्

अर्थ—वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर उदकोदर इनमेंसे उत्तरोत्तर कष्टसाध्य होताहै, जैसे वातोदर से पित्तोदर और पित्तोदरसे कफोदर कष्टसाध्य होताहै, ऐसेही और भी जानो।

बद्धक्षतोदर का मारकत्व।

पक्षात्परम् प्रायोऽपरे हतः।

अर्थ—बद्धोदर और क्षतोदर ये दोनों एक पक्षके पीछे प्राणोंका नाश कर देतेहैं। प्रायः ग्रहणसे यह भी समझना चाहिये कि जिनकी आयु नियतहै वे नहीं भी मरतेहैं।

सर्वजातसलिलस्यमारकत्वम्।

सर्वं च जातसलिलम् रिष्टोक्तोपद्रवान्वितम्

अर्थ—यह बात पहिले कह चुकेहैं कि सब प्रकार के जठररोगों में जलकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये वातादि दोषसे उत्पन्न जातोदक जठर यद्यपि कृच्छ्रसाध्य कहेगये हैं तथापि प्राणनाशक होजातेहैं। यहां भी प्रायः शब्द अनुवर्तनीय है अर्थात् कभी २ जातोदक जठर भी असाध्य न होकर याप्य हो जातेहैं। तथा रिष्टोक्त उपद्रवोंसे युक्त जठर रोग भी मार डालताहै।

जन्मसे उदररोग को कृच्छ्रता।

जन्मनैवादरम् सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्। बलिनस्तदजातांबु यत्न साध्यं नवोत्थितम्॥

अर्थ—प्रायःउदर रोग जन्मसे ही कृच्छ्रसाध्यतम होतेहैं, किन्तु यदि रोगी बलवान् हो, और उदर रोगमें जलका संचय न हुआ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो और रोग भी नया हो तो उसे यत्नसाध्य समझना चाहिये।

इतिश्रीअष्टांगहृदयसंहितायांभाषाटीकायां निदानस्थाने उदरनिदानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथाऽतःपांडुरोगशोफविसर्पानिदानम् व्याख्यास्यामः- ।

अर्थ–अब हम यहांसे पांडुरोग, शोफ और विसर्परोग निदान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

पांडुरोग के लक्षण।

"पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः तत्रानिलेन बलिना क्षिप्तं पित्तं हृदि स्थितम् धमनीर्दश संप्राप्य व्याप्नुयात्सकलां तनुम्। श्लेष्मत्वग्रक्तमांसानि प्रदूष्यांतरमाश्रितम्॥ त्वङ्मांसयोस्तत्कुरुते त्वचि वर्णान् पृथग्विधान्। पांडुहारिद्रहरितान् पांडुत्वं तेषु चाधिकम्॥ ततोऽतः पांडुरित्युक्तः स रोगः

अर्थ–पित्तप्रधान वातादिक संपूर्ण दोष सर्वरोगनिदानाध्याय में कहे हुए कुपित करनेवाले हेतुओं द्वारा प्रकुपित होकर पांडु रोग को उत्पन्न करतेहैं।

इन तीनों कुपित दोषों में से बलवान वायुद्वारा उक्षिप्त पित्त हृदयस्थ दस धमनियों का आश्रय लेकर संपूर्ण शरीर में फैलजाता है। और त्वचा तथा मांस के मध्य में स्थित होकर कफ, त्वचा, रक्त और मांसको दूषित करके त्वचा में पांडु, हलदी के रंग का वा हरा अनेक प्रकारका वर्ण उत्पन्न करता है। इन सब वर्णों में पांडु वर्ण अधिक होता है, इसी से इसे पांडुरोग कहते हैं।

पांडुरोग के लक्षण।

तेन गौरवम्।
धातूनां स्याच्च शैथिल्यमोजसश्च गुणक्षयः ततोऽल्परक्तमेदस्को निःसारःस्याच्छ्लथेंद्रियः।
मृद्यमानैरिवांगैर्नो द्रवता हृदयेन च ॥ ५ ॥ शूनाक्षिकूटःसदनः कोपनः क्लीवनोऽल्पवाक् अन्नाद्विट् शिशिरद्वेषी शीर्णरोमा हतानलः॥ सन्नसक्थो ज्वरी श्वासी कर्णक्ष्वेडी भ्रमी श्रमी।

अर्थ–पांडुरोग से रस रुधिरादि धातुओं में गुरुता और शिथिलता होती है और माधुर्यशैत्यादि ओजो गुणों का क्षय होता है। इस कारण से रोगी के रुधिर और मेद कम होजाते हैं और वह निर्बल होजाता है तथा हाथ पांव वाणी पायु और उपस्थादि इंन्द्रियां शिथिल पडजाती है। अंगों में मर्दनवत् पीडा होती है, हृदय में द्रवता, नेत्रगोलकों में सूजन, अंग में शिथिलता, स्वभाव में क्रुद्धता, थूक का अधिक आना, कम बोलना, अन्न में अनिच्छा, शीतका अच्छा न लगना, रोमों में शीर्णता, अग्नि में मंदता, सांधियों में निर्बलता, ज्वर, श्वास, कर्णक्ष्वेड, भ्रम और श्रम ये उत्पन्न होते हैं।

पांडुरोग के भेद।

स पंचधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-पांडुरोग पांच प्रकार का होता है, यथा—वातज, पित्तज, कफज त्रिदोषज और मृद्भक्षणज।

पांडुरोग का पूर्वरूप।

प्राग्रूपमस्य हृदयस्पंदनम् रूक्षता त्वचि। अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पवह्निता सादः श्रमो-

अर्थ-पांडुरोग के उत्पन्न होनेसे पहिले हृदय का स्पंदन, त्वचाकी रूक्षता, अरुचि, मूत्र में पीलापन, पसीनों का अभाव, अग्नि की मंदता, देह में शिथिलता और श्रम ये सब लक्षण होते हैं।

वातज पांडुरोग का लक्षण।

अनिलात्तत्र गात्ररुक्तोदकंपनम्। कृष्णरूक्षारुणासिरानखविण्मूत्रनेत्रता ९॥ शोफानाहास्यवैरस्यशोषाः पार्श्वमूर्धरुक्।

अर्थ-वातज पांडुरोग में शरीरमें वेदना सुई छिदने की सी पीडा, कंपन, तथा सिरा, नख, विष्टा, मूत्र और नेत्र इन में कालापन, रूखापन और ललाई होती है सूजन, आनाह, मुख में विरसता, मलशोष पार्श्ववेदना और सिर में शूल उत्पन्न होता है।

पित्तज पांडुरोग।

पित्ताद्धरितहरितताभसिरादित्वम् ज्वरस्तमः तृट्स्वेदमूर्छाशीतेच्छा दौर्गंध्यं कटुवक्त्रता। वर्चोभेदोऽम्लको दाहः

अर्थ-पित्तज पांडुरोग में सिरा, नख, विष्टा, मूत्र और नेत्र हरे रंग के होजाते हैं तथा ज्वर, आंखों के आगे अंधेरा, तृषा, पसीना, मूर्छा, शीतल वस्तु की इच्छा, दुर्गंधि, मुखमें कडवापन, मलभेद, खट्टी डकार और दाह उत्पन्न होते हैं।

कफज पांडुरोग।

कफाच्छुक्लसिरादिता॥ ११॥ तंद्रा लवणयक्त्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः। कासश्छर्दिश्च

अर्थ-कफज पांडुरोग में सिरा मुख नेत्रादि सफेद रंग के होजाते हैं, तंद्रा, मुख में खारापन, रोमोद्गम, स्वरभंग, खांसी और वमन, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

सांनिपातिज पांडुरोग।

त्रिलिंगोऽतिदुःसहः।

अर्थ-त्रिदोषज पांडुरोग में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण दिखाई देते हैं यह बडा दुःसह होता है।

पांडुरोग के कारणादि।

मृत्कषायानिलं पित्तमूषरामधुराकफम्। दूषयित्वा रसादींश्च रौक्ष्यादभुक्तं विरूक्ष्य च स्रोतांस्यपक्वैवापूर्य कुर्यादुध्वा च पूर्ववत्। पांडुरोगं ततः शूननाभिपादास्यमेहनः। १४। पुरीषं कृमिमन्मुंचेच्छ्लिष्टं सासृक्कफं नरः।

अर्थ-जिस मनुष्यको मिट्टी खानेका अभ्यास पड़ जाता है उसके पांडुरोग होता है। कसेली मिट्टी वायुको, ऊसरा मिट्टी पित्त को, मीठी कफको दूषित करके अपने रूखेपन से रसादि धातु और भुक्त अन्न को भी रूक्षित करके विना पाकको प्राप्त हुए ही रसवाही स्रोतों को भरकर उन्हें रोक देती है और पूर्ववत (पित्तप्रधान कुपिता इस रीति से) पांडुरोग को उत्पन्न कर देती है। तदनंतर नाभि, पांव, मुख और मेहनेन्द्रिय में सूजन पैदा होजाती है। और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रोगीको कीड़ों से युक्त रक्त कफ मिला हुआ फटा दस्त होता है।

कामला की उत्पत्ति।

यः पांडुरोगी सेवेत पित्तलं यस्य कामलाम्।
कोष्ठशाखाश्रयं पित्तंदग्ध्वासृक्मांसमावहेत्।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्नखवक्त्रशकृत्तया॥ १६॥
दाहाविपाकतृष्णावान् भेकाभो दुर्बलेंद्रियः।

अर्थ–जो पांडुरोगी मिरचआदि पित्त कारक द्रव्यों का अत्यन्त सेवन करता है, उसके कुपित हुआ पित्त रक्त और मांसको दग्ध करके कोष्ठशाखाश्रित कामला रोगको उत्पन्न करता है। रोगी के नेत्र, मूत्र, त्वचा, नख, मुख और विष्टा हलदी के से रंगके होजाते हैं। दाह, अविपाक, तृषा, मेंडक के सदृश पीलारंग, और इन्द्रियों में दुर्बलता ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

पांडुरोगके विनाभी कामलाकी उत्पत्ति।

भवेत्पित्तोल्बणस्याऽसौ पांडुरोगादृतेऽपि च

अर्थ–जो मनुष्य पित्तकारक द्रव्यों को अत्यंत सेवन करता है उसके यद्यपि पांडुरोग न हो तो भी कामला रोग की उत्पत्ति होजाती है।

कुंभकामला।

उपेक्षया च शोफस्य सा कृच्छ्रा कुंभकामला

अर्थ–कामला रोग की चिकित्सा में उपेक्षा (लापर्वाही) करने से सूजन बढ जाती है और सूजनवाले कामला को कुंभकामला कहते हैं यह कष्टसाध्य होता है।

हलीमक के लक्षण।

हरितश्यावपीतत्वं पांडुरोगे यदा भवेत्।
वातपित्तास्रसम्मस्तृष्णाक्लीव्यहर्षो मृदुज्वरः।
तंद्रावलानलभ्रंशो लोढरं तं हलीमकम्।१९।
अलसं चेति शंसंति

अर्थ–पांडुरोग में जब वातपित्त के प्रकोप से रोगीका वर्ण हरा, काला वा पीला होजाता है, तथा भ्रम, तृषा, स्त्रीसंगममें अरुचि, मृदुज्वर, तंद्रा, बलहीनता, अग्निमांद्य, ये लक्षण उत्पन्न होते हैं, तब इसे हलीमक कहते हैं इस हलीमक को लोढर और अलसक भी कहते हैं।

शोफका वर्णन।

तेषां पूर्वमुपद्रवाः।
शोफप्रधानाः कथिताः स एवातो निगद्यते

अर्थ–पांडुरोग में जितने उपद्रव होते हैं उन सब में प्रधान उपद्रव सूजन है इसलिये पांडुरोग का निदान कहकर पहिले सूजन का ही वर्णन किया जाता है।

सूजनकी उत्पत्ति।

पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिः शिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्
उत्सेधं सहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः।
सर्वं

अर्थ–कुपित हुआ वायु, दूषित पित्त रक्त और कफको बाहरवाली सिराओं में लेजाता है और येही दूषित पित्त रक्त कफ उसकी गतिको भी रोक लेते हैं तब वह वायु त्वचा और मांसमें आश्रित एक निश्चल ऊंचाई पैदा करदेता है, इसीको सूजन कहते हैं। क्योंकि सूजन वातपित्त कफ तीनों दोषोंके संसर्गसे होती है इसलिये सब प्रकार की सूजन त्रिदोषज होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूजनके नौ भेद।

हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम्। २२।
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि।

अर्थ–हेतुविशेष अर्थात् भिन्न भिन्न कारणों से सूजन नौ प्रकारकी होती है, यथा-वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, त्रिदोषज, अभिघातज और विषज।

सूजनको द्विविधत्व।

द्विधा वा निजमागंतुं सर्वांगैकांगजं च तम्।
पृथून्नतग्रथिततात्विशेषैश्च त्रिधा विदुः।

अर्थ–निज और आगंतु भेदसे शोफ दो भागोंमें विभक्त होती है, एक निज (वातादि दोषजनित), दूसरी आगंतुज (चोट आदि लगनेसे उत्पन्न), अन्य रीतिसे भी शोफके दो विभाग हैं, यथा- सर्वांगज और एकांगज। तथा पृथुता, उन्नतत्व और ग्रथितत्व इन तीन भेदों से शोफ तीन प्रकार के होते हैं। अर्थात् कोई सूजन पृथु अर्थात् बहुत जगह में फैल जाते हैं। कोई ऊंचे होजाते हैं और कोई गांठदार होजाते हैं।

शोफका सामान्य हेतु।

सामान्यहेतुः शोफानां दोषजानां विशेषतः।

अर्थ–सब प्रकारकी सूजनों के उत्पन्न होने का सामान्य हेतु अगले श्लोकमें कहा जायगा। यही दोषज शोफोंके उत्पन्न होने का प्रधानहेतु है। विशेषशब्दसे यह दिखाया गया है कि आगंतुशोफोंका हेतु यह नहीं है।

स्थानविशेषमें शोफोत्पत्ति।

व्याधिकर्मोपवासादिक्षीणस्य भजतो द्रुतम्।
अतिमात्रमधान्यस्य गुर्वम्लस्निग्धशीतलम्।
लवणक्षारतीक्ष्णोष्णं शाकांबु स्वप्नजागरम्
मृद्ग्राम्यमांसबल्लूरमजीर्णेश्रममैथुनम् २६
पदातेर्मार्गगमनम् यानेन क्षोभिणाऽपि वा।
श्वासकासातिसाराशोंजठरप्रदरज्वराः२७।
विसूच्यलसकच्छर्दिगर्भवीसर्पपांडुताः।
अन्ये च मिथ्योपक्रांतास्तैर्दोषा वक्षसि-
स्थिताः॥ २८॥
ऊर्ध्वे शोफमधोबस्तौ मध्ये कुर्वंति मध्यगाः।
सर्वांगगाः सर्वगतम् प्रत्यंगेषु तदाश्रयाः२९

अर्थ-ज्वर आदि व्याधिसे क्षीण, वमन-विरेचन निरूहण अनुवासन और आस्थापनादि पंचकर्म से क्षीण, उपवास द्वारा क्षीण तथा ऐसेही मार्गपर्यटनादि अन्य कारणों से क्षीण मनुष्य सहसा गुर्वादि निम्नलिखित द्रव्योंका सेवन करताहै और सुस्थ पुरुष भी यदि प्रमाणसे अधिक भारी, खट्टे, चिकने शीतल, नमकीन, खारी, तीक्ष्ण वा उष्णवीर्य द्रव्य, शाक, दूषित जल, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण, मृत्तिका, चटककुक्कुटादि, ग्राम्य जीवोंका मांस, सूखा मांस, अजीर्ण में भोजन, अतिरिक्त परिश्रम, मैथुन, पैदल चलना, शरीरमें क्षोभ करनेवाले ऊंट घोडे आदि पर चढना, इन कामों को करता है, तथा श्वास, खांसी, अतिसार, अर्शरोग, जठररोग, प्रदररोग, ज्वर, विसूचिका, अलसक, वमन, गर्भविसर्प, पांडुरोग, तथा अन्य रोग भी जिनकी चिकित्सा शास्त्रोक्त विधि से नहीं कीगई है, ये सब सूजन की उत्पत्तिके हेतु है। सूजनके उत्पन्न करनेवाले कारणों से वातादि दोष वक्षःस्थल में स्थित होकर देहके ऊर्ध्वभाग में सूजन उत्पन्न करतेहैं। वस्तिमें स्थित होकर नीचे के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मागमें, मध्यम में स्थित होकर मध्यभाग में सर्वांग में स्थित होकर संपूर्ण देहमें और प्रत्यंग में स्थित होकर शरीर के प्रत्येक अवयव में सूजन उत्पन्न करदेते हैं ।

शोफका पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपम् दवथुः सिरायामोऽगगौरवम् ।

अर्थ–जिस मनुष्य के सूजन होनेवाली होतीहै उसके दवथु (नेत्रादिमें तीव्र ऊष्मा) सिराओंका फैलना, और देहमें भारीपन ये पूर्वरूप होतेहैं ।

वातजशोफ ।

वाताच्छोफश्चलो रूक्षः खररोमारुणासितः
संकोचस्पन्दहर्षार्तितोदभेदप्रसुप्तिमान् ।
क्षिप्रोत्थानशमः शीघ्रमुन्नमेत्पीडितस्तनुः ॥
स्निग्धोष्णमर्दनैः शाम्येद्रात्रावल्पो दिवा-
महान् ।
त्वक्च सर्षपलिप्तेव तर्स्यत्यभिमिमायते

अर्थ–वातज शोफ में चंचल रूक्ष, खररोम (रोमोंमें खरखरापन] लाल काला शोफ उत्पन्न होताहै, इसमें संकोच, स्पंदन (फडकना), हर्ष (रोमांच खडे होना), बेदना, सुई छिदने कीसी पीडा, भेद, सुन्नता होतीहै । यह शीघ्रही उत्पन्न होतीहै और शीघ्रही शांत होजातीहै दवाने के पीछे हाथ हटा लेनेपर शीघ्र ऊंचा होजाताहै, पतला होताहै, स्निग्ध और उष्ण मर्दन करनेसे शांत होजाताहै, रात्रिमें और दिनमें बडा होजाताहै । त्वचा पर सरसों का सा लेप माल्म होताहै तथा चिमचिमाहट होतीहै ।

पित्तज शोफ ।

पीतरक्तासिताभासः पित्तादाताम्ररोमकृत् ।
शीघ्रानुसारज्वरवान्मध्ये प्रादुर्भवत्यपि तनुः ३३
सतृड्दाहज्वरस्वेददवक्लेदमदभ्रमः ।
शीताभिलाषी विड्भेदी गन्धी स्पर्शासहो-
मृदुः ॥ ३४ ॥

अर्थ–पित्तज शोफ में पीले काले रंग का आभास होता है, इसमें शरीर के रोम कुछ ताम्रवर्ण के होजाते हैं, यह शीघ्रही बढता है और शीघ्रही शांत होजाता है, यह प्रथम शरीर के मध्य भाग में होताहै, तथा पतलापन लिये होता है । तृषा, दाह, ज्वर, स्वेद, ताप, क्लेद, मद, भ्रम, शीतल वस्तु की इच्छा, मलका भेद, दुर्गंधि, स्पर्श का न सहना, और कोमलता ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

कफज शोफ ।

कण्डूमान् पांडुरोमत्वक्कठिनः शीतलो गुरुः
स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः स्थानो-
न्निद्राच्छर्ध्यग्निसादकृत् ॥ ३५ ॥
आक्रांतो नोन्नमेत्कृच्छ्रशमजन्मा निशावलः
स्रवेन्नासृक्कुचिरात्पिच्छां-
कुशशस्त्रादिविक्षितः ॥ ३६ ॥
स्पर्शोष्णकांक्षी च कफात्-

अर्थ–कफज शोफमें खुजली, रोम और त्वचा में पांडुता, कठोरता, शीतलता, भारापन, स्निग्धता, श्लक्ष्णता, स्थिरता, और स्थानता होती है । इससे निद्रा, वमन और अग्निमांद्य होता है । इस शोफ के बढने और घटने में बहुत समय लगता है । यह दवाने से नीची होजाती है पर हाथ हटा लेने से फिर ऊंची नहीं उठती है, यह शोफ रात में बल पकडजाती है । कुशपत्र वा शस्त्रादि द्वारा घाव करने से इसमें से रक्त नहीं निकलता है, परंतु बहुत देर पीछे पिच्छल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्राव होता है। इसमें गरम पदार्थ के छूने की इच्छा रहती है।

द्वंद्वज शोफ।

यथास्वम् द्वंद्वजास्त्रयः।
संकरादेतुलिङ्गानाम्-

अर्थ-द्वंद्वज शोफों में दो दो दोषों के मिले हुए लक्षण और हेतु होते हैं ऐसे शोफ तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् वात और पित्तके हेतु और लिंग मिलने से वात-पित्तज, वात और कफके हेतु और लिंग मिलने से वातकफज तथा पित्त और कफके हेतु और लिंग मिलने से पित्तकफज शोफ होता है।

सान्निपातज शोफ।

निचयाश्चिचयात्मकः ॥ ३७ ॥

अर्थ-जिस शोफ में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे सान्निपातिक शोफ कहते हैं॥

अभिघातज शोफ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः।
हिमानिलोदग्ध्यनिलैर्भल्लातकविकच्छुजैः ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छूवयथु-
स्याद्विसर्पिवान्।
भृशोष्मा लोहितामासः प्रायशः-
पित्तलक्षणः ॥ ३९ ॥

अर्थ-शस्त्रादि द्वारा छेदन, भेदन और घाव आदि के उत्पन्न होने पर जो सूजन पैदा होती है उसे अभिघातज शोफ कहते हैं। इसी तरह से ठंडी हवा, सामुद्रीय हवा, भिलावे का चेप, और केंचकी फली के लगने से जो सूजन होती है, वह फैलती चली जाती है। यह अत्यन्त, गरम लोहित वर्ण, और प्रायः पित्तज शोफ के लक्षणों से युक्त होती है।

विषज शोफ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्।
दंष्ट्रादन्तनखापातादविषप्राणिनामपि ४०॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात्।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्विरयोगाच्चूर्णनात् ४१
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः।

अर्थ-विषीले जीवों के शरीर पर चलने से, अथवा देह पर मूत्र कर देने से, अथवा निर्विष जीवों के डाढ़, दांत, वा नख के लगने से अथवा मल मूत्र और शुक्र से सनेहुए वस्त्र ओढने पहनने से, अथवा विषवृक्ष में होकर आई हुई पवन के स्पर्श से, अथवा संयोगज विष मिला हुआ चूर्ण शरीर पर मर्दन करने से जो सूजन पैदा होती है, उसे विषज शोफ कहते हैं। यह सूजन कोमल, चलायमान, अवलंबी और शीघ्रही दाह, तथा शूलको करनेवाली होती है।

शोफका साध्यासाध्यत्व।

नयोऽनुपद्रवः शोफः साध्योऽसाध्यः।
पुरेरितः ॥ ४२ ॥

अर्थ--नये और उपद्रवरहित शोफ साध्य होते हैं, तथा जिन शोफों का वर्णन विकृतिविज्ञानीयाध्याय में कह चुके हैं वे सब असाध्य होते हैं, जैसे'अनेकोपद्रवयुतः पादाभ्यां प्रसृतोनरः। नारीं शोफो मुखात् हंति कुक्षिगुह्यादुभावपि'।

विसर्प का निदान।

स्याद्विसर्पोऽभिघातादैर्दोषैर्दूष्यैश्च-
शोफवत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–विसर्प के दोष और दूष्य शोथ के समान होते हैं । अर्थात् जितने प्रकार का शोफ होता है,उतनेही प्रकार का विसर्पभी होता है ।

विसर्पका अधिष्ठान ।

त्र्यधिष्ठानं च तं प्राहुर्बाह्यांतरुभयाश्रयात् ॥
यथोत्तरम् च दुःसाध्याः ।

अर्थ–आत्रेयादिक महर्षि विसर्पके तीन आधार मानते हैं, यथा- बाह्यविसर्प, अंतर्विसर्प, और बाह्याभ्यंतर विसर्प, इन विसर्पों में उत्तरोत्तर दुःसाध्य होते हैं अर्थात् बाह्य से आभ्यंतर और आभ्यंतर से उभयाश्रित दुःसाध्य होता है ।

विसर्पमें दोषोंका विसर्पण ।

तत्र दोषा यथायथम् ।
प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः ॥
देहे शीघ्रं विसर्पंति तेऽतरंतः स्थिता बहिः ।
बहिःस्था द्वितये द्विस्थाः

अर्थ–विसर्परोग में तिक्तोषणादि प्रकोपन हेतुओंसे और विशेष करके विदाही अन्नपानादि से वातादि दोष शरीरमें शीघ्र फैलते चले जाते हैं । अर्थात् अंतरस्थित दोष शरीर के भीतर, बाह्यस्थ दोष शरीर के बाहर के भागमें और उभयभाग में स्थित दोष भीतर और बाहर दोनों ओर फैलते हैं ।

अंतराश्रित विसर्प ।

विद्यात्तत्रांतराश्रयम् ॥ ४५ ॥
मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात् ।
मृज्जातियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ।
आशु चाग्निबलभ्रंशात्ततो बाह्यं विपर्ययात् ।

अर्थ–इन विसर्पों में से अंतराश्रित विसर्प मर्म के उपताप से, मूर्च्छा के होने से, कान नाक आदि अयनों के अत्यन्त स्फुरण से तृषा के अतियोग से वेगों के विषम रीति से प्रवर्तन होने से, तथा शीघ्र ही अग्नि और बलका नाश होने से जाना जाता है तथा बाह्य विसर्प में उक्त लक्षणों से विपरीत होता है ।

वातज विसर्प ।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । ४७ ।
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदो यामातिहर्षवान् ।

अर्थ–वातजविसर्प में वातज्वर के समान संपूर्ण लक्षण होते हैं, तथा सूजन, स्फुरण,सुई छेदने कीसी पीडा, भेद,आयाम अर्ति और रोमोद्गम । ये सब लक्षण होते हैं ।

पित्तज विसर्प ।

पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ।

अर्थ–पित्तजविसर्प में बडी शीघ्र गति और अति लोहित वर्ण होता है तथा इसमें पित्तजज्वर के संपूर्ण लक्षण होते हैं ॥

कफजविसर्प ।

कफात्कंडूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।

अर्थ–कफजविसर्पमें खुजली और स्निग्धता होतीहै, तथा जैसी जहां २ कफज्वर में वेदना होतीहै, वैसीही इसमें भी होतीहै ।

विसर्पकी उपेक्षा का फल ।

स्वदोषलिंगैश्चीयंते सर्वेस्फोटैरुपेक्षिताः ।
ते पक्वभिन्नाः स्वं स्वं च विशंति व्रणलक्षणम् ।

अर्थ–विसर्प रोगकी चिकित्सा न कियेजानेपर इसके चारों ओर अपने अपने दोषों के लक्षणोंसे युक्त फुंसियां होजातीहैं और पककर फूटजानेपर अपने २ दोषोंके लक्षण वाले घाव होजातेहैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वंद्वज विसर्पके लक्षण।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्छातीसारतृड्भ्रमैः।
अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः।
करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकीर्णवत्।
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः।
शांतांगारोसितो नीलो रक्तो वाशु च चीयते।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं च सः।
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः।
व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत्।
हिध्मां च स गतोऽवस्थामीदृशो लभते न ना
क्वचिच्छर्मरतिप्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु।
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम्॥
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प-
उच्यते।

अर्थ–वातपित्तज विसर्पमें, ज्वर, वमन, मूर्छा, अतिसार, तृषा, भ्रम, अस्थिभेद, अग्निमांद्य, तमकश्वास और अरुचि ये सब लक्षण होते हैं, इसमें सब शरीर जलते हुये अंगारों कीनाईं प्रतीत होताहै। और शरीरके जिस जिस अवयव में विसर्प फैलता है वही वही अंग बुझेहुए अंगारके समान काला, नीला, अथवा लाल होजाता है, अग्निसे जले हुए स्थानकी तरह वह फुंसियोंसे व्याप्त होजाता है और शीघ्र गामी होनेके कारण हृदयादि मर्मस्थानों पर शीघ्र ही आक्रमण करता है। इसमें वायु अत्यन्त प्रबल होकर शरीरमें पीडा, संज्ञानाश, निद्रानाश और श्वास और हिचकी उत्पन्न करता है। विसर्परोगी की ऐसी दशा होजाती है कि वेदनासे ग्रस्त होनेके कारण भूमि, शय्या वा आसन पर कहीं भी इधर उधर लेटनेसे सुख प्राप्त नहीं होता है और मन, देह और श्रमजनित वेदना से ऐसा दुःखित होजाता है कि दुष्प्रबोध अर्थात् चिरस्थायी निद्रामें लीन होजाता है। इन लक्षणों से युक्त विसर्प को अग्निविसर्प कहते हैं।

ग्रंथिविसर्प के लक्षण।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्॥
रक्तं वा बृंदरक्तस्य त्वक्सिरास्नायुमांसगम्।
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम्॥
ग्रंथीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम्।
श्वासकासातिसारास्यशोषहिध्माभमिभ्रमैः
मोहवैवर्ण्यमूर्छांगभङ्गाग्निसदनैर्युताम्।
इत्ययम् ग्रंथिवीसर्पः कफमारुतकोपजः॥

अर्थ–दूषित कफसे अवरुद्ध मार्गवाला वायु अपने रोकनेवाले कफके टुकडे २ कर डालतीहै, इससे गांठों की श्रेणी पैदा होजातीहै। अथवा बृंदरक्तवाले [जिसके रुधिर बढगयाहै] मनुष्य के त्वचा, सिरा, स्नायु और मांस इनमें वर्तमान रक्तको दूषित करके वायु बडी, छोटी, गोलाकार, स्थूल खरदरी और लाल रंगकी बहुतसी गांठें पैदा करदेती है। इनमें बडी तीव्र वेदना होतीहै तथा श्वास, खांसी, अतिसार, मुखशोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्छा, अंगभंग और अग्निमांद्य ये लक्षण उपस्थित होतेहैं। यह कफ और वातके कोपसे उत्पन्न हुआ ग्रंथिवीसर्प कहलाताहै।

कर्दमविसर्प।

कफपित्ताज्ज्वरः स्तंभो निद्रातंद्राशिरोरुजः
अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः॥ ६०॥
मूर्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थां पिपासेंद्रियगौरवम्।
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति।
प्रायेणामाशये गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक्।
पिटकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपांडुरैः। ६२।
मेचकाभोऽसितस्निग्धोमालिनःशोफवान्गुरुः
गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लेष्मवच्छीर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुसिरागणः ।
श्वगंधिश्च कीसर्प कर्दमाख्यमुशंति तम् ।

अर्थ–कफपित्तसे कर्दमनामक विसर्प होताहै, इसमें ज्वर, स्तंभता, निद्रा, तंद्रा शिरोवेदना, अंगमें शिथिलता, विक्षेप, प्रलाप अरोचक, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमांद्य, अस्थिभेद, पिपासा, कर्मेन्द्रियों में मारापन, आमोपवेशन (आमकेदस्त), स्रोतों में लिहसावट, ये सब लक्षण उपस्थित होतेहैं । यह आमाशय के एक देशमें उत्पन्न होकर अन्य भागोंमें फैलता चला जाताहै परंतु इसमें दर्द नहीं होताहै । तथा अत्यन्त पीली लोहितवर्ण और पांडुवर्ण की पिटकाओं से व्याप्त होजाताहै । इसका रंग मोरके कंठ के सदृश होताहै, तथा काला, चिकना, मलीन, शोफयुक्त, भारी, गंभीरपाकी, छूने में अत्यन्त गरम, क्लिन्न, विदीर्ण, कीचकी तरह शीर्णमांस, मुर्दे के समान दुर्गंधित होताहै, इसमें स्नायु और सिराओंके समूह दिखाई देने लगतेहैं । इसको कर्दमविसर्प कहते हैं ।

सन्निपातजविसर्प ।

सर्वजो लक्षणैः सर्वैः सर्वधात्वतिसर्पणः ।

अर्थ–सन्निपातज विसर्पमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जातेहैं यह संपूर्ण धातुओं में फैलताहै ।

विसर्प के कारण ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तम्-
पित्तमीरयन् ॥ ६५ ॥
विसर्प मारुत् कुर्यात्तः कुलत्थसदृशैश्चितम् ।
स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यम्-
श्यावलोहितम् ॥ ६६ ॥

अर्थ बाहर के हेतुओंसे अर्थात् लाठी तलवार आदि की चोटसे वा किसी हिंसक जीवके नख वा दांत लगने से जो घाव होजाताहै इस घावके कारण कुपित हुआ वायु रक्तसहित पित्तको प्रेरित करके कुल्थी के सदृश फुंसियोंसे व्याप्त विसर्परोग को उत्पन्न करदेताहै, इसमें सूजन, ज्वर, वेदना और दाह अधिक होताहै, तथा रंगभी श्याव और लोहितवर्ण होताहै ।

विसर्पों का साध्यासाध्य विचार ।

पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वन्द्वजाश्चानुपद्रवाः ।
असाध्यौ क्षतसर्वोत्थौ सर्वे चाक्रांतमर्मकाः
शीर्णस्नायुसिरामांसाः प्रक्लिन्नाः शवगन्धयः

अर्थ–कफ वात पित्त इन तीनों पृथक् पृथक् दोषों से उत्पन्न हुए विसर्प साध्य होते हैं । कासवैवर्ण्यज्वरादि उपद्रवोंसे रहित तीनों प्रकार के द्वंद्वज विसर्प भी साध्य होते हैं । क्षतज और सान्निपातिक ये दो विसर्प असाध्य होते हैं । तथा हृदयादि मर्मों पर आक्रमण करनेवाले सब प्रकार के विसर्प असाध्य होते हैं वे विसर्प जिन में स्नायु, सिरा और मांस गलगये हैं तथा वे जिनमें अत्यन्त क्लिन्नता और मुर्दे की सी गंध हो वेभी असाध्य होते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकायां निदानस्थाने पांडुकामलाशोफ विसर्पनिदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथाऽतः कुष्ठश्वित्रकृमिनिदानम्-
व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से कुष्ठ, श्वित्रकुष्ठ और कृमिरोग निदान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

कुष्ठ की उत्पत्ति।

"मिथ्याहारविहारेण विशेषेण विरोधिना।
साधुनिंदावधान्यस्वहरणाद्यैश्च सेवितैः १
पापमिः कर्ममिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः
सिराः प्रपद्य-
तिर्यगास्त्वग्लसीकासृङ्मांसानि षम्॥ २॥
दूषयंति स्रयीकृत्य निश्चरंतस्ततो बहिः।
त्वचः कुर्वंति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशंति तत्॥

अर्थ—मिथ्या और विशेष करके एक दूसरे के विपरीत आहार विहारादि करने से, साधुओं की निंदा करने से, साधुओं का वध करने से, पराया धन हरण करने से, तथा पूर्वजन्म के किये हुए अनेक पाप कर्मों से प्रेरित और दूषित हुए वातादि दोष तिर्यक्गामिनी संपूर्ण सिराओं में पहुंच कर त्वचा, लसीका, रक्त और मांसको दूषित करदेते हैं और उन्हीं दूषित त्वचादि को शिथिल करके बाहर की ओर निकलने लगते हैं, इससे त्वचा के रंग में विवर्णता होजाती है।

कुष्ठ नाम का कारण।

कालेनोपेक्षितं यस्मात्सर्वं कुष्णाति तद्वपुः।
प्रपद्य धातून्व्याप्यांतः सर्वान् संक्लेद्य-
वावहेत्॥ ४॥
सस्वेदक्लेदसंकोथान्-
कृमीन्सूक्ष्मान्सुदारुणान्।
रोमत्वक्कलायुधमनी तरुणास्थीनि ते क्रमात्॥ ५॥
भक्षयेच्छ्वित्रमस्माच्च कुष्ठबाह्यमुदाहृतम्।

अर्थ-इसरोग की चिकित्सा न किये जाने पर कालांतर में यह सब देहको बिगाड देता है, इसीलिये इसे कुष्ठ कहते हैं कुष्ठरोग भीतर वाली संपूर्ण धातुओं को क्लेदित करके स्वेद, क्लेद और संकोथयुक्त छोटे छोटे भयंकर कीडों को उत्पन्न कर देता है। ये कीड़े रोम, त्वचा, स्नायु, धमनी और तरुण अस्थियों को क्रमपूर्वक भक्षण करलेते हैं। जो लक्षण-कुष्ठ के कहे गये हैं वे श्वित्र के नहीं होते हैं। श्वित्र केवल त्वचा में आश्रित रहता है इस लिये इसे बाह्यकुष्ठ कहते हैं। और कुष्ठ संपूर्ण धातुगत होता है। यही दोनों में अंतर है।

कुष्ठके भेद।

कुष्ठानि सप्तधा पृथङ्मिश्रैः समागतैः॥ ६॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः।

अर्थ—कुष्ठ सात प्रकार के होते हैं, यथा— वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज और त्रिदोषज। सब प्रकार के त्रिदोषज कुष्ठोंमें दोषों की समविषमता के कारण उनका व्यपदेश अर्थात् संज्ञा है।

दोषानुसार कुष्ठके नाम॥

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तात्तौदुंबरं कफात्।
मंडलाख्यं विचर्चीं च रुक्षाख्यं वातपित्तजम्
चर्मैककुष्ठं किटिभसिध्मालसविपाटिकाः।८।
वातश्लेष्मोद्भवा श्लेष्मपित्तादुद्दुशतारुषी।
पुंडरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा।९।
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं वदुरुककाकणम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुंडरीकर्श्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ।

अर्थ—सबकुष्ठ १८ प्रकार के होते हैं, यथा—वातोल्वण सन्निपातसे कपाल नामककुष्ठ होता है इसीतरह पित्ताधिक्य सन्निपात से उदुंबर नामक, कफाधिक्य से मंडलाख्य, और विचर्ची, वातपित्ताधिक्य से ऋक्षाख्य, वातकफाधिक्य से चर्म, किटिम, सिध्म, अलसक और विपादिका नामककुष्ठ होतेहैं। पित्तकफाधिक्य से दद्रु, शतारु, पुंडरीक, विस्फोट, पामा और चर्मदल नामककुष्ठ होते है तथा त्रिदोष से काकण कुष्ठ होता है। इनमें से कापाल, औदुम्बर, मंडल दद्रु, काकण, पुंडरीक और ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ हैं, शेष ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ कहलाते हैं।

कुष्ठका पूर्वरूप ।

अतिस्निग्धखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।
दाहः कंडूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः-श्रमः ॥ ११ ॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम्
रोमहर्षोऽसृजः काण्र्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ।

अर्थ—जिसके कोढरोग होनेवाला होता है उसका शरीर अत्यन्त चिकना वा खरदरा होजाता है, पसीने अधिक आते है, वा बिलकुल बन्द होजाते हैं, शरीर में विवर्णता, दाह, खुजली, विशेष विशेष अंगों में स्पर्शका ज्ञान न होना, सुई छिदने कीसी वेदना, पित्तीका उछलना, परिश्रम, व्रणोंमें अत्यन्त शूल, घावका जल्दी होना और बहुत काल पर्यन्त रहना, घाव सूखजानेपर भी रूक्षता, अल्पकारण से बहुत प्रकोप, रोमहर्ष, रक्तमें कालापन ये सब पूर्वरूप प्रकाशित होते हैं।

कापाल कुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं रूक्षं सुप्तं खरं तनु ।
विस्तृतासमपर्यंतं दूषितैर्लोमभिश्चितम् ।
तोदाढ्यमल्पकंडूकं कापालं शीघ्रसर्पि च ।

अर्थ—कापालकुष्ठमें कुछ काला, कुछ लाल वर्ण कपाल के सदृश आभाविशिष्ट होता है। यह रूक्ष, स्पर्शज्ञानरहित, छूने में खरदरा, पतला, फैलाहुआ, किनारों पर ऊंचानीचा, दुष्टरोमों से युक्त, अत्यन्त तोदयुक्त, अल्प खुजली से युक्त और शीघ्र फैलने वाला होता है।

उदुंबर के लक्षण ॥

पक्कोदुंबरताम्रत्वग्रोमगौरसिराचितम् ।
बहलं बहुलक्लेदं रक्तं दाहरुजाधिकम् । १५ ।
आशूत्थानावदरणकृमि विद्यादुदुंबरम् ।

अर्थ—औदुम्बरकुष्ठ पकेहुए गूलरके समान आकृतिवाला, ताम्रवर्ण त्वचा और रोमोंसे युक्त, सफेद रंगकी सिराओं से व्याप्त, स्रावी, बहुक्लेदविशिष्ट, रक्तवर्ण, दाह और वेदना से युक्त, होता है। यह शीघ्र उत्पन्न होकर शीघ्रही फटजाता है और इसमें शीघ्र ही कीडे पड़ जाते हैं।

मंडल के लक्षण ।

स्थिरं स्त्यानं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तमनाशुगम्
अन्योन्यसक्तमुत्सन्नं बहुकंडूरुतिक्रिमि ।
श्लक्ष्णपीताभपर्यंतम् मण्डलम्-परिमण्डलम् ॥ १७ ॥

अर्थ—मंडलकुष्ठ स्थिर, भारी, स्निग्ध, श्वेत वा रक्तवर्ण से युक्त, शीघ्र न फैलने वाला, एक दूसरे से मिलाहुआ, ऊंचा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुस्राव और बहु क्रमियों से युक्त होता है इसके किनारे चिकने और पीतवर्ण के होते हैं और देहपर गोल चकत्ते पडजाते हैं। इसे मंडलकुष्ठ कहते हैं।

विचर्चिका के लक्षण।

सकण्डूपिटिका श्यावा ललीकाढ्या-
विचर्चिका।

अर्थ–विचर्चिका नामक कुष्ठ श्यावर्ण, खुजली और पिटकाओं से युक्त होता है इसमें लसीका अर्थात् चेप बहुत होता है।

ऋक्षजिह्व के लक्षण।

परुषं तनु रक्तांतमंतः श्यावं समुन्नतम् १८॥
सतोददाहरुक्क्लेदं कर्कशैः पिटिकैश्चितम्।
ऋक्षजिह्वाकृतिप्रोक्तमृक्षजिह्वम्-
बहुकिमि॥ १९॥

अर्थ–ऋक्ष्यजिह्वनामक महाकुष्ठ खरस्पर्श, पतला, किनारे पर लाल, बीच में काला, ऊंचा, सुई छिदने कीसी वेदना से युक्त, दाह, पीडा, क्लेद, और कर्कश पिडकाओं से युक्त होता है। इसकी आकृति रीछकी जिह्वा के सदृश होती है इसलिये इसे ऋष्यजिह्व कहते हैं। इसमें कीडे बहुत पडते हैं।

चर्मकुष्ठ के लक्षण।

हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्म-

अर्थ–हाथी के चमडे के समान छूनेमें खरदरा चर्म कुष्ठ कहलाता है।

एककुष्ठ के लक्षण।

एकाख्यम् महाश्रयम्।
अस्वेदम् मत्स्यशकलसंनिभम्-

अर्थ–जिस कुष्ठ का स्थान लंबा चौडा पसीनेरहित, तथा मछली के टुकडे की सी आभा के समान होता है उसे एककुष्ठ कहते हैं। सुश्रुत में लिखा है जिसका संपूर्ण देह काला वा लाल होता है उसे एककुष्ठ कहते हैं खरनादने भी लिखा है महदस्वेदनं मत्स्यशकलाकारमेकजं। एक शब्दका अर्थ मुख्य है यह क्षुद्र कुष्ठों में प्रधान है इसलिये इसे एककुष्ठ कहते हैं।

किटिभ के लक्षण।

किटिभम् पुनः॥ २०॥
रूक्षम् किणखरस्पर्शं कण्डूमत्परुषासितम्।

अर्थ–जो कोढ रूखा, सूखा हुआ, क्षतस्थान की तरह छूने में खरदरा, खुजली से युक्त, कर्कश और काला होताहै उसे किटिभ कुष्ठ कहते है।

सिध्म कुष्ठ।

सिध्मं रूक्षम् बहिः स्निग्धमंतर्वृत्तम्-
रजः किरेत्॥ २१॥
श्लक्ष्णस्पर्शं तनु श्वेतताम्रं दौग्धिकपुष्पवत्।
प्रायेण चोर्ध्वकाये स्यात्-

अर्थ–सिध्मकुष्ठ बाहर से रूखा, भीतर से चिकना होता है, इसको रिगडने से भुसी सी झडने लगती है। यह छूने से चिकना, पतला, सफेद वा तांबे के रंगका अलाबु के फूल के सदृश होता है, यह रोग प्रायः देह के ऊपरके भागमें होताहै।

अलसक के लक्षण।

गंडैः कण्डूयुतैश्चितम्॥ २२॥
रक्तैरलसकम्-

अर्थ–अलसक कुष्ठमें खुजली और लाल वर्ण की पिटका होती हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विपादिका के लक्षण।

पाणिपाददार्यौ विपादिकाः ॥ २३ ॥
तीव्रार्त्यौ मन्दकण्डूवाश्च-
सरागापिटिकाचिताः ॥ २३ ॥

अर्थ-विपादिका कुष्ठमें हाथ और पांव फट जाते हैं। इसको भाषा में बिवाई कहते हैं। इसमें बडी तीव्र वेदना होती है, खुजली कम चलती है और लाल वर्णकी फुंसियों से व्याप्त होजाता है।

दद्रु के लक्षण।

दीर्घप्रताना पूर्ववदातसीकुसुमच्छविः।
उत्सन्नमण्डला दद्रुः कण्डूमत्यनुषंगिणी २४

अर्थ-दद्रु वा दाद दूबकी तरह बहुत जगह में फैल जाता है, यह अलसीके फूलके समान दिखाई देता है, इसमें ऊंचे ऊंचे गोल चकत्ते होते हैं। इसमें खुजली बहुत चलती है और यह फैलता ही चलाजता है।

शतारु के लक्षण।

स्थूलमूलम् सदाहार्तिं रक्तश्यावं बहुव्रणम्।
शतारुः क्लेदजम् त्वाढ्यम् प्रायशः-
पर्वजन्म च ॥ २५ ॥

अर्थ-शतारु नामक कुष्ठकी जड़ बहुत मोटी होती है, तथा रंग लाल वा श्याव होता है, यह बहुत घाव, क्लेदता और कीडोंसे युक्त होता है और प्रायः अस्थिके जोडोंमें होताहै।

पुंडरीक के लक्षण।

रक्तांतमंतरा पांडु कण्डूदाहरुजान्वितम्
सोत्लेधमाचितम् रक्तैः पद्मपत्रमिवांशुभिः॥
घनभूरिलसीकास्रक्स्रायमाशु विभेदि च।
पुंडरीकम्-

अर्थ-पुंडरीक नामक कुष्ठ के किनारे लाल और बीचका भाग पांडु वर्ण होता है, कंडू, दाह वेदना से युक्त तथा कमलके पत्तों के सदृश लाल ऊंची रेखाओं से व्याप्त तथा गाढी और बहुतसी लसीका तथा रक्त से युक्त और शीघ्र भेदको प्राप्त होजाता है।

विस्फोटक के लक्षण।

तनुत्वग्भिश्चितम् स्फोटैः सितारुणैः २७ ॥
विस्फोटम्-

अर्थ-विस्फोटक कुष्ठ पतले चमडे से ढका होताहै तथा सफेद और लाल फुंसियों से व्याप्त होता है।

पामा के लक्षण।

पिटिकाः पामा कण्डूक्लेदरुजाधिकाः।
सूक्ष्माः श्यावारुणा बह्व्यः प्रायः-
स्फिक्पाणिकूर्परे ॥२८॥

अर्थ-कंडू, क्लेद और वेदनासे युक्त फुंसियों को पामा कहते हैं। इस रोगमें प्रायः स्फिक्, हाथ और कोहनियों में छोटी छोटी धूम्र और और लालवर्णकी बहुतसी फुंसियां होजाती है।

चर्मदलके लक्षण।

सस्फोटमस्पर्शसहम् कण्डूपाकोदाहवत्।
रक्तम् दलच्चर्मदलम्-

अर्थ-चर्मदल नामक कुष्ठमें लाल वर्ण की फुंसियां होजाती है, हाथको नहीं सह सकताहै तथा कंडू, ऊषा, तोद और क्षय होताहै, इसमें मांस गलकर गिर पडताहै।

काकण के लक्षण।

काकणम् तीव्रदाहरुक् ॥ २९.
पूर्वं रक्तम् च कृष्णं च काकणंतीफलोपमम्।
कुष्ठलिंगैर्युतं सर्वैर्नैकवर्णं ततो भवेत् ६०॥

अर्थ--काकण नामक कुष्ठ में तीव्रदाह और शूल होताहै। यह चिरमिठी के रंगके समान पहिले लाल और काले रंगका होता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है, पीछे यह श्वेत पीतादि अनेक वर्ण का होजाताहै और सब कुष्ठोंके लक्षण इसमें पाये जातेहैं। सुश्रुतमें और भी कई प्रकार के कुष्ठ लिखे हैं। वे ग्रंथ बढजाने के भय से यहां नहीं लिखे गये हैं॥

कुष्ठमें दोषोंकी अधिकता।

दोषभेदीयविहितैरादिशेल्लिंगकर्मभिः।
कुष्ठेषु दोषोल्बणताम्-

अर्थ-दोषभेदीयाध्यायमें कहेहुए लक्षण और कर्मसे कुष्ठरोगों में दोषोंकी अधिकता समझना चाहिये, अर्थात् जिस दोषकी अधिकता हो उसी दोष की अधिकता वाला त्रिदोषज कुष्ठ कहलाताहै।

कुष्ठ विशेष में चिकित्सा त्याग।

सर्वदोषोल्बणम् त्यजेत्॥ ३१॥

रिष्टोक्तम् यच्च-

यच्चाऽस्थिमज्जशुक्रसमाश्रयम्।

अर्थ-जिस सन्निपातज कुष्ठ में तीनों दोषोंकी अधिकता हो वह त्यागने के योग्य है। तथा विकृतविज्ञानीयाध्याय में कहे हुए विशीर्यमाणांग इत्यादि लक्षणोंसे युक्त कुष्ठ त्याज्यहै, एवं जो कुष्ठ अस्थि मज्जा, और शुक्र में पहुंच गयाहै वह भी त्यागने के योग्यहै।

कुष्ठमें साध्यासाध्य विचार।

याप्यं मेदोगतम्-

कृच्छ्रं पित्तद्वंद्वास्रमांसगम्॥ ६२॥
अकृच्छ्रं कफवाताढ्यम् त्वक्स्थमेककमलम्-
च यत्।

अर्थ-मेदोगत कुष्ठ पथ्यादि सेवन से याप्य होजाता है। पित्तद्वन्द्वज (वात पित्त वा पित्तकफ) कुष्ठ अथवा रक्त और मांस गत कुष्ठ कृच्छ्रसाध्य होते हैं। कफवातज कुष्ठ सुखसाध्य होते हैं, तथा त्वचा में स्थित कुष्ठ अथवा एक दोषसे उत्पन्न कुष्ठ भी सुखसाध्य होते हैं।

त्वचादिगत के लक्षण।

तत्र त्वचि कुष्ठे तोदवैवर्ण्यरूक्षताः॥ ३३॥
स्वेदस्वापभ्वयथवः शोणिते पिशिते पुनः।
पाणिपादाश्रिताः स्फोटाः क्लेदः संधिषु-
चाधिकम्॥ ३४॥
कौण्यं गतिभ्रंशोऽगानां दलनं स्याच्च मेदसि
नासाभंगोऽस्थिमज्जस्थे नेत्ररागः स्वरक्षयः।
क्षते च कृमयः शुक्रे स्वदारापत्यबाधनम्।

अर्थ-त्वचा में स्थित हुए कुष्ठ में तोद विवर्णता और रूक्षता होती हैं। रक्तगत कुष्ठ में स्वेद, स्पर्श के ज्ञानका अभाव और सूजन होती है। मांसगत कुष्ठ में हाथ और पांव में फोडे तथा संधियों में क्लेदकी अधिकता होती है। मेदोगत में टोंटापन गतिका क्षय और अंगों में दलने कीसी वेदना होती है। अस्थिगत और मज्जागत में नासाभंग, नेत्रों में ललाई और स्वरका क्षय होता है। शुक्रगत होने पर घाव में कीडे पड़जाते हैं इस रोगसे स्त्री और संतानको भी पीड़ा पहुंचती है।

रक्तादि में यथापूर्व लक्षण।

यथापूर्वं च सर्वाणि स्युर्लिंगान्यसृगादिषु।

अर्थ-रसरक्तादि धातुगत कुष्ठों में अपने अपने लक्षणों के अतिरिक्त यथापूर्व धातुगत कुष्ठों के लक्षण भी होजाते हैं। अर्थात् रक्तगत कुष्ठ में स्वेदादि निज लक्षण भी होते हैं, तथा पहिले वाले त्वचा के तोदादि लक्षण भी होते हैं। मांसगत कुष्ठ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में पाणिपादाश्रित स्फोटादि निज लक्षण तथा त्वगागत और रक्तगत लक्षण भी होते हैं, इसी तरह मेदोगत के जानने चाहिये।

श्वित्र कुष्ठका निरूपण।

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं दारुणं च तत्।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम्।

अर्थ–श्वित्र और कुष्ठ इन दोनों रोगों की उत्पत्ति का कारण एकही है और इनकी चिकित्साभी एकही है इसीलिये कुष्ठाधिकार में इसका वर्णन किया गयाहै। इसी को किलास और दारुणभी कहते हैं। इन दोनों में अंतर यही है कि कुष्ठसास्रावि-पातिक है और श्वित्र अलग अलग दोषों से उत्पन्न होता है। कुष्ठ स्रावी है, श्वित्र अपरिस्रावी है। कुष्ठ रसादि सात धातुओं पर आक्रमण करता है और श्वित्र रक्तमांस और मेदका आश्रय करता है।

वातजादि शुक्ल के लक्षण।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु।
सकंडु च क्रमात्तत्तन्मांसमेदःसु चादिशेत्।

अर्थ--वातज शुक्ल रूक्ष और लालवर्ण का होता है। पित्तज श्वित्र ताम्रवर्ण वा कमलपत्र के समान होता है, यह दाहयुक्त और रोमविध्वंसी होता है। कफजश्वित्र सफेद, घन, भारी और खुजली से युक्त होता है। ये क्रम से रक्त, मांस और मेदा में होते है। अर्थात् वातज रक्तमें, पित्तज मांसमें और कफज मेद में होता है।

कृच्छ्रसाध्य श्वित्र के लक्षण।

वर्णैनैवेष्टगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम्।

अर्थ--अरुणादि वर्ण द्वारा श्वित्र के वातादिक दोष और रक्तादि आश्रय दोनों ही जाने जाते हैं, अर्थात् अरुण वर्ण वाला श्वित्र वातज और रक्ताश्रयी होता है। ताम्र वर्ण वाला श्वित्र पित्तज और मांसाश्रयी होता है तथा श्वेतवर्ण श्वित्र कफज और मेद का आश्रयी होता है। ये उत्तरोत्तर कृच्छ्रसाध्य होतेहैं अर्थात रक्तज श्वित्र कृच्छ्र, मांसज कृच्छ्रतर और मेदोज कृच्छ्रतम होता है।

श्वित्र का साध्यासाध्यत्व।

अशुक्लरोमाऽबहुलमसंसृष्टं मिथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा
गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरंतनम्।

अर्थ–यदि श्वित्रके स्थानके रोम श्वेत न हुए हों, सघन नहों, आपसमें एक दूसरेसे मिला न हो,और नवीनहो और अग्नि से दग्ध न हुआ हो तो साध्य होताहै और इन लक्षणोंसे विपरीत लक्षण वाला असाध्य होताहै। गुह्यदेश [योनि वा लिंग], हथेली पगतली,और ओष्ठ इनमें उत्पन्न हुआ श्वित्र यदि बहुत दिनका न हो तो भी असाध्य होताहै।

सबरोगोंको संचारित्व।

स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः।

अर्थ–प्रायः संपूर्ण रोग देहके स्पर्शसे, एक साथ बैठकर भोजन करनेसे, एक शय्या पर शयन करनेसे वा ऐसेही एकत्र बैठ कर अन्य काम करनेसे संक्रामक होजाते हैं, अर्थात् एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य पर लगजाते हैं। परन्तु नेत्ररोग और त्वचारोग विशेषरूप से संक्रामक होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृमियोंके दो भेद।

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यंतरभेदतः।

अर्थ–कृमि दो प्रकार के होते हैं एक बाह्य जो त्वचा पर उत्पन्न होते हैं, दूसरे आभ्यंतर जो देहके भीतर होते हैं।

जन्मसे कीडोंके चारभेद।

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः।
नामतो विंशतिविधाः

अर्थ–जन्मभेद से कीडोंके चार भेद हैं यथा-बाह्य मलोत्पन्न, कफोत्पन्न, रक्तोत्पन्न और पुरीषोत्पन्न।

नामभेदसे कीडे बीस प्रकारके होते हैं

बाह्यकीडोंका वर्णन।

बाह्यास्तत्राऽसृगुद्भवाः॥ ४३॥
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशांबराश्रयाः।
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः
द्विधा ते कोठपिटिकाकंडूगंडान् प्रकुर्वते।

अर्थ–इनमें से बाहर के कृमि रक्त से उत्पन्न होते हैं इनका परिमाण, आकार और वर्ण तिलके समान होता है, तथा केश और वालों में रहते हैं। इनके पांव बहुत हुएहोते हैं और छोटे भी बहुत होते हैं इनका कुष्ठ रूजं और लीख से दो प्रकार का होता और शुक्र कोठ (पित्ती), पिटिका, खुजली के योग्य कर्म पैदा करदेतेहैं।

आभ्यंतर कृमि।

कुष्ठैकहेतवोंतर्जाः श्लेष्मजास्तेषु चाधिकम्।
मधुरान्नगुडक्षीरदधिसक्तुनवोदनैः।

अर्थ–भीतर होनेवाले कृमि मिथ्या आहार विहारादि से उत्पन्न होतेहैं कुष्ठ और आभ्यंतर कृमि समान हेतुसे उत्पन्न होतेहैं। इनमें कफज कृमि मिष्टान्न, गुड, दूध, दही, सत्तू, और नवीन अन्नका भोजन करनेसे अधिकतासे उत्पन्न होतेहैं।

पुरीषज कृमि।

शाकजा बहुविड्धान्यपर्णशाकोलकादिभिः।

अर्थ–जौ, उरद आदि विष्टाको बढाने वाले धान्य, पालक्यादि पत्रशाक और हरा शिंबी धान्य खानेसे पुरीषमें उत्पन्न होने वाले कृमि होतेहैं।

कफज कृमियों का निरूपण।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पंति सर्वतः।
पृथुवर्धनिभाः केचित् केचिद्वृत्तपटोपमाः।
रूढधान्यांकुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः।
श्वेतास्ताम्राभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते
अंत्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः।
कुरवो दर्भकुसुमाः सुगंधाश्चेति च स्मृताः।
श्लेष्मासास्यस्रवणमविपाकमरोचकम्।
मूर्छांच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान्।

अर्थ–कफसे उत्पन्न हुए सब प्रकार के क्रिमि आमाशय में उत्पन्न होतेहैं और वहीं बढकर इधर उधर चलते फिरते हैं। इनमें से कितनेही पृथु और चर्मलता के सदृश और कितनेही केंचुए के सदृश होतेहैं। कितनेही अंकुरित अन्नके अंकुरोंके समान कितनेही सूक्ष्म, कितनेही दीर्घ, कितनेही छोटे, कितनेही सफेद और कितनेही ताम्रवर्ण होतेहैं। नाम भेदसे ये सात प्रकारके होतेहैं, यथा—अंत्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, कुरव, दर्भकुसुम और सुगंध। कफजक्रिमियों के उत्पन्न होनेसे हल्लास, मुखस्राव, अपरिपाक, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, आनाह, कृशता, हिचकी और पीनसये रोग उत्पन्न होतेहैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तज क्रिमि।

रक्तवाहिशिरोत्थाना रक्तजा जंतवोऽणवः।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः।
केशादा लोमविध्वंसा लोमद्वीपा उदुंबराः।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः।

अर्थ–सब प्रकारके रक्तजक्रिमि रक्तवाही सिराओंमें उत्पन्न होतेहैं। ये बहुत सूक्ष्म, पादरहित, गोलाकार और ताम्रवर्ण होतेहैं, कोई कोई इतने पतले होतेहैं कि दिखाई भी नहीं देते। ये नाम भेदसे छः प्रकारके होते है, यथा-केशाद, लोमविध्वंस लोमद्वीप, उदुंबर, सौरस और मातृ।

विड्भेदादि पांच प्रकार के क्रिमि।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायंतेऽधोविसर्पिणः।
वृद्धास्ते स्युर्भवेद्युश्च ते यदाऽऽशयान्मुखाः
तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गंधाधुविधायिनः
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः॥
ते पंच नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः।
सौसुरादाः सलूनाख्या लेलिह्या जनयंति च
विड्भेदशूलविष्टंभकार्श्यपारुष्यपांडुताः।
रोमहर्षाग्निसदनगुदकंड्वादिनिर्गमान्॥५६

अर्थ–पुरीषजक्रिमि पक्वाशयमें उत्पन्न होतेहै और ये नीचे को रेंगा करतेहैं। और बडे होनेपर आमाशय की ओर मुख करलेते है। उस समय रोगी की डकार और निःश्वासमें विष्टाकी सी दुर्गंध आने लगती है, इनमेंसे कितनेही मोटे, कितनेही गोल, स्थूल श्यावर्ण, पीत, सित, और असित होते हैं। नामभेदसे ये पांच प्रकारके होतेहैं, यथा–ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, सलूनाख्य, और लेलिह। इनके उत्पन्न होनेसे मलभेद, शूल, विष्टंभ, कृशता, कर्कशता, पांडुता, रोमहर्ष, अग्निमांद्य, गुदामें खुजली ये सब उपद्रव उपस्थित होतेहैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां
भाषाटीकायां
निदानस्थाने कुष्ठश्वित्रकृमिनिदानं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः।

पंचदशोऽध्यायः।

अथाऽतो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से वातव्याधि निदान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

अर्थानर्थ में वायु का हेतुत्व।

"सर्वार्थानर्थकरणे विश्वस्यास्यैककारणम्।
अदुष्टदुष्टः पवनः शरीरस्य विशेषतः॥१॥

अर्थ–अदुष्ट (शुद्ध) और दुष्ट (बिगडा हुआ) वायु इस संपूर्ण जगत का शुभ और अशुभ करने में प्रधान कारण है अर्थात् शुद्धवायु से जगत की उत्पत्ति और स्थिति रहती है तथा दूषितवायु विसूचिका, महामारी आदि अनेक भयंकर रोगों को उत्पन्न करके संसार का प्रलय करदेती है। तथा शरीर का शुभाशुभ विशेषरूप से करती है।

वायु के हेतु रूप होने में कारण।

स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः
स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरंतकः २
तददुष्टौ प्रयत्नेन यतितव्यमतः सदा।

अर्थ–यह वायु विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, स्रष्टा, धाता, विभु,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विष्णु, संहर्ता, मृत्यु और अंतक हैं। इस लिये मनुष्य को उचित है कि वायको शुद्ध रखने के लिये सदा यत्न करतारहै। ×

वात के कर्म।

तस्योक्तं दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम्॥
समासाच्च सतो दोषभेदीये नाम धाम च
प्रत्येकं पंचधा चारो व्यापारश्च
इह वैकृतम्॥ ४॥

तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम्।

अर्थ–दोष विज्ञानीयाध्य में वायुके प्राकृत और वैकृतकर्मों का संक्षेपरीत से वर्णन करदिया गया है और दोष भेदीयाध्याय में उनके नाम, धाम, गति और व्यापार संबंधी प्रत्येक के पांच पांच भेद विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं।

इस अध्याय में उसी वायुके निदान और लक्षणों सहित वैकृतकर्म का पृथक् पृथक् वर्णन किया जाता है।

+ विश्वकर्मा (विश्वअर्थात् शरीर का जनन, वर्धन, धारण, भंजन, शोषण आदि अर्थानर्थकर्मों को करता है)। विश्वात्मा (शुभका आत्मा अर्थात् हेतु)। विश्वरूप (वाह्य और आध्यात्मिक स्वभावरूप)। प्रजापति (प्रजापलक)। स्रष्टा (संसारका सृजने वाला)। धाता (विश्वका धारण करनेवाला अर्थात् वाह्यलोक वायुमंडल के आधार पर तथा सत्यलोक प्राणापानादि वायुके ऊपर धारण किये हुए हैं) विभु (शुभाशुभ करने में सामर्थ्यवान्)। विष्णु (जगद्व्यापी) संहर्ता (संहार करनेवाला) मृत्यु(यमका मारणरूप कार्य करने से यमरूप) अंतक (मारनेवाला साक्षात् यमरूप।

वायु का कोप।

धातुक्षयकरैर्यायुः कुप्यत्यतिनिषेवितैः॥५॥
चरन् स्रोतःसु रिक्तेषु भृशं तान्येव पूरयन्।
तेभ्योऽन्यदोषपूर्णेभ्यः प्राप्य वावरणं बली॥

अर्थ–धातुओं का क्षय करनेवाले आहार विहारादि के अति सेवन और चिरकाल तक सेवन से रिक्त स्रोतों में विचरता हुआ उन्हीं को भरकर वायुकुपित होता है। अथवा अन्य दोष द्वारा भरे हुए संपूर्ण स्रोतों से आवृत होकर बलवान् वायु कुपित हो जाता है।

वातव्याधि की कष्टसाध्यता।

तत्र पक्वाशये रुद्धः शूलानाहांत्रकूजनम्।
मलरोधाष्ठिवर्धार्शःश्रिकपृष्ठकटीग्रहम् ७॥
करोत्यधरकायेषु तांस्तान्कृच्छ्रानुपद्रवान्।

अर्थ–ऊपर लिखे हुए दो कारणों से वायु पक्वाशय में कुपित होकर शूल, आनाह, अंत्रकूजन, मलरोध, अष्ठीला, वर्द्धि, अर्श, त्रिक, पृष्ठ, और कमर में जकडन तथा शरीर के नीचे के भागमें अनेक प्रकार के दारुण उपद्रव पैदा करदेता है।

आमाशय के उपद्रव।

आमाशये तृड्वमथुश्वासकासविसूचिकाः॥
कण्ठोपरोधमुद्गारान्व्याधीनूर्ध्वं च नाभितः।

अर्थ–आमाशय में कुपित वायु तृषा, वमन, श्वास, खांसी, विसूचिका, कंठरोध, डकार, और नाभि के ऊपर के भाग में अनेक प्रकार की वातव्याधियां उपस्थित होती हैं।

श्रोत्रादि और त्वचा के उपद्रव।

श्रोत्रादिष्विंद्रियवधं
त्वचि स्फुटनरूक्षणे॥ ९॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–श्रोत्रादि इन्द्रियों में कुपित वायु इन्द्रियों का नाश करता है । त्वचा में प्रविष्ट होकर त्वचा को फाड डालता है और रूक्ष करदेता है ।

रक्त के उपद्रव ॥

रक्ते तीव्रा रुजः स्वापं तापं रोगं विवर्णताम् ।
अरूंष्यन्नस्य विष्टंभमरुचिं कृशतां भ्रमम् १०

अर्थ–जब दूषित वायु रक्त में चला जाता है तब तीव्र वेदना, स्पर्श का अज्ञान ताप, रोग, विवर्णता, अरूंषि (पिटिका) अन्नकी विष्टंभता, अरुचि, कृशता और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ।

मांसमेदोगत वायु के उपद्रव ॥

मांसमेदोगतो ग्रंथींस्तोदोद्यान् कर्कशान्-
भ्रमम् ।
गुर्वंगं चातिरुक्स्तब्धमुष्टिदंडहतोपमम् ॥

अर्थ–कुपित वायु के मांसगत और मेदोगत होने पर तोदादि वेदनायुक्त कर्कश ग्रंथियां होजाती हैं, तथा भ्रम, देहमें भारापन, अत्यन्त वेदना, स्तब्धता, और लाठी वा मुष्टिकी चोट के समान आहत होताहै ।

अस्थिगत वायु ॥

अस्थिस्थः सक्थिसंध्यस्थिशूलं तीव्रं-
बलक्षयम् ।

अर्थ–अस्थिगत कुपित वायु, सक्थि, संधि और अस्थि में तीव्र शूल उत्पन्न करके बल को क्षीण करदेता है ।

मज्जागत वायु ।

मज्जस्थोऽस्थिषु सौषिर्यमस्वप्नम्-
स्तब्धतां रुजम् ॥ १२ ॥

अर्थ–मज्जागत वायु अस्थियों में छिद्र, अनिद्रा, स्तब्धता और वेदना उत्पन्न करता है ।

शुक्रगत वायु ।

शुक्रस्य शीघ्रमुत्सर्गं सङ्गम् विकृतिमेव च ।
तद्वद्गर्भस्य शुक्रस्थः

अर्थ-शुक्रगत कुपितवायु वीर्य और गर्भ का शीघ्र पतन, विबंध और विकृति करता है ।

सिरागत वायु ।

सिरास्वाध्मानरिक्तते ॥१३॥
तत्स्थः

अर्थ–सिरागत वायु सिराओं में आध्मान और रिक्तता करता है ।

स्नायुगत वायु ।

स्नावस्थितः कुर्याद्ग्रंथ्यायामकुब्जता ।

अर्थ–स्नायुगत होने पर वायु ग्रंथसी, आयाम और कुबडापन इन रोगों को करता है ।

संधिगत वायु ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शः शोफम् संधिगतोऽनिलः
प्रसारणाऽऽकुंचनयोः प्रवृत्तिं च सवेदनाम् ।

अर्थ–संधिगत वायु भरी हुई मशक के समान सूजन, तथा पसारने और सकोडने में वेदना करता है ।

सर्वांगगत वायु ।

सर्वांगसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभञ्जनम् १५ ॥
स्तंभमाक्षेपणं स्वापं संध्याकुंचनकंपनम् ।

अर्थ–सर्वांगगतवायु सूचीवेधवत् पीडा भेदन, स्फुरण (फडकन) भंजन, स्तब्धता आक्षेप, स्पर्श का अज्ञान, संधि का आकुंचन और कंपन करता है ।

धमनीगत वायु ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कृत्स्नोऽभ्येति-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
तदांगमाक्षिपत्येष व्याधिराक्षेपकः स्मृतः।

अर्थ--कुपित वायु जब संपूर्ण धमनियों में आश्रय कर लेता है तब अंगों को इधर उधर फेंकता है। बार बार अंगों का आक्षेप करने से इस व्याधि को आक्षेपक कहतेहैं।

अपतंत्रकवायु के लक्षण।

अधः प्रतिहतो वायुर्व्रजत्यूर्ध्वं हृदाश्रितः १७
नाडीः प्रविश्य हृदयं शिरः शंखौ च पीडयन्
आक्षिपेत्परितो गात्रं धनुर्वच्चास्य नामयेत्॥
कृच्छ्रादुच्छ्वसिति-
स्तब्धस्तब्धस्तमीलितदृक्ततः।
कपोत इव कूजेत्स निःसंज्ञः सोऽपतंत्रकः ॥
स एव चापतानाख्यो मुक्ते तु मरुता हृदि।
अह्नुवीत मुहुः स्वास्थ्यं मुहुरस्वास्थ्यमाव्रते

अर्थ--नीचे से प्रतिहत (ताडित) वायु कुपित होकर ऊपरको चढता है और हृदयस्थित धमनियों में प्रविष्ट होकर हृदय, सिर और कनपटियों को पीडित करता हुआ चारों ओर से शरीर को आक्षिप्त करता है और धनुष की तरह झुका देता हैं ॥ इसमें रोगी अति कठिनतासे श्वास लेताहै, आंखें पथरा जातीहैं, और उनमें शिथिलता होजातीहै, तथा रोगी आंखों को बन्द करलेताहै, फिर कंठमें कबूतर की सी कूंजन होते २ बेहोश होजाताहै ॥ इस व्याधिको अपतंत्रक और अपतानक इन दो नामोंसे बोलतेहैं। इस रोगमें कुपित वायु जब हृदयको छोडदेताहै तब रोगी सुस्थ हो जाताहै और जब हृदयपर आक्रमण करताहै तब असुस्थ होजाताहै ॥ इसतरह रोगी बार बार सुस्थ और असुस्थ होता रहताहै ॥

अपतानक की उत्पत्ति।

गर्भपातसमुत्पन्नः शोणितातिस्रवोत्थितः।
अभिघातसमुत्थश्च दुश्चिकित्स्यतमो हि सः

अर्थ--अकालमें गर्भपात, अतिशय रक्तस्राव और अभिघात इन तीन कारणों से अपतानक रोग उत्पन्न होता है, इनमें से गर्भपात से जो स्त्रियोंको होता है वह दुश्चिकित्स्य है और रक्तातिस्राव से जो स्त्री पुरुष दोनों के होता है वह दुश्चिकित्स्यतर है और अभिघात से भी दोनोंके होताहै यह दुश्चिकित्स्यतम है।

अंतरायाम के लक्षण।

मन्ये संस्तभ्य वातोऽतरायच्छन् धमनीर्यदा
व्याप्नोति सकलं देहं जत्रुरायम्यते तदा ॥
अंतर्धनुरिवांगं च वेगैः स्तम्भं च नेत्रयोः।
करोति जृंभां दशनं दशनानां कफोद्गमम् २३
पार्श्वयोर्वेदनां वाक्यहनुपृष्ठाशिरोग्रहम्।
अंतरायाम इत्येष

अर्थ--जब कुपित वायु, ग्रीवा और पार्श्व में स्थित मन्या नामवाली दोनों सिराओं को जकड कर, और संपूर्ण धमनियों का आश्रय लेकर संपूर्ण देहमें फैलती है तब गर्दन के जोते टेढे पडजाते हैं और शरीर भीतर की ओर धनुषकी तरह झुकजाता है। रोगी के नेत्र स्तंभित होजाते हैं, जंभाई लेने लगता है, दांतों को चबा जाता है, कफकी वमन होती है, दोनों पसलियों में वेदना होती है, वाणी रुकजाती है, हनु पृष्ठ और मस्तक अकड जाते हैं, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इसको अंतरायाम कहते हैं।

बहिरायाम के लक्षण।

बाह्यायामश्च तद्विधः ॥ २४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देहस्य बहिरायामात्पृष्ठतो नीयते शिरः ।
उरश्चात्क्षिप्यते तत्र कंधरा चावमृद्यते २५
दन्तेष्वास्ये च वैवर्ण्यं प्रस्वेदः स्रस्तगात्रता ।
बाह्यायामं धनुष्कंभं ब्रुवते वेगिनं च तम् २६

अर्थ—इस रोगमें शरीर बाहर की ओर धनुष के सदृश झुकजाता है इसीलिये इसे बहिरायाम कहते हैं । सिर पीठकी ओर झुकजाता है, छाती ऊंची होजाती है, ग्रीवा मुडजाती है, दांतोंका रंग बदल जाता है, पसीने अधिकता से आने लगते हैं और संपूर्ण देह शिथिल होजाता है । इस बातव्याधि को बहिरायाम और धनुष्कंभ वा धनुस्तंभ कहते हैं । कोई कोई इसे वेगी भी कहते हैं ।

व्रणायाम के लक्षण ।

व्रणम् मर्माश्रितम् प्राप्य समीरणसमीरणात् ।
व्यायच्छंति तनुं दोषा सर्वामापादमस्तकम्
तृष्यतः पांडुगात्रस्य व्रणायामः सवर्जितः ।

अर्थ—वायुसे प्रेरित होकर दोष मर्म के आश्रित व्रण में पहुंचकर सिरसे पांवतक सब देहमें विशेषरूप से व्याप्त होकर पहिले की तरह आयाम उत्पन्न करते हैं, इस रोगको व्रणायाम कहते हैं । जिस व्रणायाम रोगमें रोगीको अत्यंत तृषाहो और उसका शरीर पीलापडगया हो वह असाध्य होनेसे वर्जित है ।

गतवेग में स्वस्थता ।

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकेषु च ॥

अर्थ-सब प्रकारके आक्षेपक रोगोंमें वायु का वेग शांत होनेपर रोगी स्वस्थ होजाताहै ।

हनुस्रंसके लक्षण ॥

जिह्वातिलेखनात् शुष्कभक्षणाद्भिघाततः
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनू ॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।
हनुस्रंसः स तेन
स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जिह्वा के अत्यंत लेखने से अर्थात् जिह्वा को अत्यन्त छीलने से, सूखा पदार्थ चबानेसे चोट लगने से हनुमूलाश्रय वायु कुपित होकर हनुको शिथिल करदेता है । इससे रोगीका मुख खुलाहो तो खुलाही रहा आता है और बन्दहो तो बंदही रहाआता है इसे रोगमें खाना और बोलना कठिन होजाता है । इस रोग को हनुस्रंस कहते हैं ।

जिह्वास्तंभ के लक्षण ॥

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां-
स्तम्भयतेऽनिलः ।
जिह्वास्तंभः स
तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ३१ ॥

अर्थ—कुपित वायु वाग्वाहिनी सिरा में स्थित होकर जिह्वा को स्तंभित कर देता है । इससे खाने पीने बोलने चालने में असमर्थता होजाती है, इसरोग को जिह्वास्तंभ कहते हैं ।

अर्दित के लक्षण ॥

शिरसा भारहरणाद्तिहास्यप्रभाषणात् ।
उच्चासवक्त्रक्षवथुखरकार्मुककर्षणात् ३२
विषमादुपधानाच्च कठिनानां च चर्वणात्
वायुर्विवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरूर्ध्वमाश्रितः ॥
वक्त्रीकरोति वक्त्रार्धमुक्तं हसितमीक्षितम् ।
ततोऽस्य कंपते मूर्धा वाक्संगः स्तम्भनेत्रता
दंतचालः स्वरभ्रंशः श्रुतिहानिः क्षवग्रहः ।
गंधाज्ञानं स्मृतेर्मोहाश्वासः सुप्तस्य जायते ॥
निष्ठीवः पार्श्वतो यायादेकस्याक्ष्णो निमीलनम्
जत्रोरूर्ध्वं रुजा तीव्रा शरीरार्धेऽधरेऽपि वा ।
तमाहुरर्दितं केचिदेकायाममथापरे ।

अर्थ—सिर पर धरकर बोझ ढोने से, अत्यंत हंसने से, अत्यंत बोलने से, ऊर्ध्वश्वास

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुख होनेसे, बलपूर्वक छींक लेनेसे, कठोर धनुषको खींचनेसे, ऊंचे नीचे तकिये पर सिर धरने से, कठोर वस्तु चबाने से, तथा अन्य वातप्रकोपक हेतुओंसे वायु कुपित और देहके ऊपरवाले भागमें स्थित होकर मुखके आधे भागको, अथवा कभी हंसने वा देखने को टेढा करदेता है, तदनंतर रोगी का सिर कांपने लगता है, वाणी रुकजाती है, और नेत्र जहांके तहां ठहर जाते है, दंतचाल, स्वरभंग, श्रवणशक्तिकानाश, छींक का बंद होजाना, सूंघनेकी शक्तिनष्टहोजाना, स्मृतिका मोह, स्वप्नावस्था में त्रास, दोनों ओर से थूक निकलना, एक आंखका बंद होना जत्रुके ऊपरके भाग में, वा शरीरके आधेभाग में, वा नीचेके भागमें तीव्र वेदना ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं, इसे अर्दित कहते हैं, कोई कोई इसीको एकायाम भी कहते हैं, । भाषामें इसीको लकवा वा झोला कहते हैं ।

सिराग्रह के लक्षण ॥

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः ।
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः ।

अर्थ–जब कुपित वायु रक्तका आश्रय लेकर मूर्धामें स्थित सिराओं को रूक्ष, शूलयुक्त और कृष्णवर्ण करदेता है तब उसे सिराग्रह कहते हैं यह असाध्य होता है ।

एकांग रोग का लक्षण ॥

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायुर्विशोष्य च
पक्षमन्यतरं हंति संधिबंधान् विमोक्षयन् ।
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः
एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ।

अर्थ–दूषित वायु देहके आधेभाग को ग्रहण करके उसभागकी संपूर्ण सिरा और स्नायुओं को विशोषित करके तथा संधियों के बंधनों को शिथिल करके वाम अथवा दक्षिण पसवाडे को मारदेता है । रोगी का आधा देह निष्काम और चेतनारहित होजाता है , इस रोगको एकांगरोग और पक्षवध अर्थात् पक्षाघात कहते हैं ।

सर्वांग रोग का लक्षण ।

सर्वांगरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ।

अर्थ–यदि कुपित वायु संपूर्ण शरीरका आश्रय लेकर संपूर्ण शरीरकी सिरा और स्नायुओं को विशोषित करके संधि बंधनोंको शिथिल करता हुआ संपूर्ण शरीर को निश्चेष्ट करदेता है तब उसे सर्वांगरोग कहते हैं॥

पक्षाघात का असाध्यत्व ।

शुद्धवातहतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः ।
कृच्छ्रस्त्वन्येन संसृष्टो विवर्ज्यः क्षयहेतुकः ।

अर्थ–जो पक्षाघात केवल वातसे होता है वह अत्यंत कष्टसाध्य है, जो कफपित्त के संयोगसे होता है वह कष्टसाध्य है और जो धातुओं के क्षय से होता है वह असाध्य होनेसे त्याज्य है ॥

दंडक का लक्षण ।

आमवद्धायनः कुर्यात्संस्तभ्यांगं कफान्वितः ।
असाध्यं हतसर्वेहं दंडवद्दंडकं मरुत् ॥ ४२ ॥

अर्थ–कफानुगतवायु आमद्वारा तोंके द्वार को रोककर अंगको है तब दंडक नाम वातव्याधि इससे देह दंडकी तरह हीन होजातीहै, यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अवबाहुक का लक्षण ।

अंसमूलस्थितो वायुः सिराः संकोच्य तत्रगाः
बाहुप्रस्पंदितहरं जनयत्यवबाहुकम् ॥४३॥

अर्थ–कंधोंके मूलमें स्थित हुआ कुपित वायु वहां की सब सिराओं को संकुचित करके बाहुओं की स्पंदन शक्तिको नष्ट कर देताहै, इसीसे इसे अवबाहुक रोग कहतेहैं ।

विश्वाची का लक्षण ।

तलं प्रत्यंगुलीनां या कंडरा बाहुपृष्ठतः ।
बाहुचेष्टापहरणी विश्वाची नाम सा स्मृता ।

अर्थ–बाहुओं के पिछले भागसे जो स्नायुओं का समूह हाथकी उंगलियों तक आताहै उसपर वायु आक्रमण करके उसे क्रियाहीन करदेताहै । इससे इसरोग को विश्वाची कहतेहैं ॥

खंज और पंगु ।

वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा
तदा खंजो भवेज्जंतुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोरपि ।

अर्थ–कमरमें स्थित कुपित वायु जब ऊरु की कंडरा अर्थात् बडी स्नायु को खींचताहै तब मनुष्य लंगडा होजाताहै और जब दोनों पार्श्वोंकी कंडराओं को खेंचता है तब पंगु होजाताहै ॥

कडाय खंज ।

कंपते गमनारंभे खंजंस्त्रिव च याति यः ।
कडायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ।

१–जो मनुष्य चलना आरंभ करने
२ कांपता हुआ खंजन पक्षी की
३ अथवा चलनें में लंगडाताहै
४ बंधन ढीले पडजातेहैं,
कहतेहैं ॥

ऊरुस्तंभ का निदान ।

शीतोष्णाद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ।
सश्लेष्ममेदोऽनिलयुङ्नमाममत्यर्थसंचितम् ।
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ ४८ ॥
सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यातः श्लेष्मणा स्तिमितेन तत् ।
तदा स्कभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ।
परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ।
ध्यानांगमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ।
संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिमिः ।
तुमुरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ४९ ॥

अर्थ–जब भोजन का कुछ भाग पच गया है और कुछ न पचाहो ऐसे जीर्णाजीर्ण समय में शीतल, उष्ण, गुरु, स्निग्ध इन पदार्थों के सेवन से तथा आयास (परिश्रम), संक्षोभ (देहका इतस्ततः चालन), दिवानिद्रा और रात्रिजागरण से कफ मेद और वायु से युक्त अत्यंत संचित हुआ आम अन्य दोष अर्थात् पित्त का पराभव करके ऊरुओं में जा पहुंचता है और स्तिमित कफद्वारा पांवों की अस्थियों को भीतर से भरकर दोनों ऊरुओं को स्तंभित कर देता है । तब ऊरु स्तब्ध, और शीतल हो जाते हैं, इनमें सुई छेदना भी मालूम नही होता है और ऐसे भारी होजाते हैं कि किसी दूसरे के हैं, तीव्र वेदना होने लगती है । इस रोग में दौर्मनस्य, अंगमर्द, स्तिमिता, तंद्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पांवों में शिथिलता, पांवों का कठिनता से उठाना, स्पर्शका न मालूम होना, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं । इस रोगको ऊरुस्तंभ अथवा आढ्यवात कहते हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोष्टुशीर्षक का निदान।

वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः। ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षश्च स्थूलःक्रोष्टुकशीर्षवत्।

अर्थ–वात और रक्त दोनोंके कुपित होनेसे जानु के बीच में अत्यन्त वेदनायुक्त सूजन उत्पन्न होजाती है और इसका आकार स्थूल शृगाल के मस्तक के सदृश होजाता है। इसलिये इस रोग को क्रोष्टुशीर्षक कहते हैं।

वातकंटक का निदान।

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायतेयदा वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम्॥

अर्थ–विषमरीति से चलने के कारण अथवा अत्यन्त परिश्रमसे जब वायु टकनों में स्थित होजाता है तब बडी वेदना होने लगती है, इसे वातकंटक कहते हैं।

गृध्रसीका निदान।

पार्ष्णि प्रत्यंगुलीनां या कंडरा मारुतार्दिता। सक्थ्युत्क्षेप निगृह्णाति गृध्रसीतां प्रचक्षते।

अर्थ–पार्ष्णिके सन्मुख जो उंगलियों की कंडरा हैं उनमें जब वायु वेदना उत्पन्न करके पांवोंकी गमनशक्ति को नष्ट करदेता है तब उसे गृध्रसी रोग कहते हैं।

खल्लीवातका निदान।

विश्वाची गृध्रसी चोक्ता खल्ली तीव्ररुजान्विता

अर्थ–पूर्वोक्त विश्वाची और ऊपर कहे हुए गृध्रसी रोगोंमें जब शूल उत्पन्न होता है, तब इन्हें खल्लीवात कहते हैं।

पादहर्ष का निदान।

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां च प्रसुप्तवत्। पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः।

अर्थ–जिसके दोनों पांवोंमें स्पर्श ज्ञानका नाश और रोमोद्गमहो तथा चींटीसी चलती हों उसके इस रोगका नाम पादहर्ष है, यह कफवात के कोपसे होताहै।

पाददाह का निदान।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः विशेषतश्चक्रमिते पाददाहं तमादिशेत्"

अर्थ–रक्तपित्तान्वित वायु जिसके दोनों पावों में दाह उत्पन्न करदेताहैं उसके पाद-दाह नामक रोग होताहै। यह रोग विशेष करके बहुत घूमने वाले के हुआ करताहै।

इतिश्रीअष्टांगहृदयसंहितायांभाषाटीकायां निदानस्थाने वातव्याधिनिदाननाम पंचदशोऽध्यायः।

षोडशोऽध्यायः।

अथाऽतो वातशोणितनिदानं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे वातशोणित निदान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वातरक्त का निदान।

" विदाह्यन्नं विरुद्धं च तत्तच्चासकप्रदूषणम्। भजतां विधिहीनं च स्वप्नजागरमैथुनम् १। प्रत्येण सुकुमाराणामध्वक्रमणशीलिनाम्। अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते २ वातैलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः। तादृशेनासृजा रुद्धःप्राक्तदेव प्रदूषयेत्॥ ३॥ आढ्यरोगं खुडं वातबलासं वातशोणितम्। तदाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति॥४॥ विशेषाद्यानयानाद्यैः प्रलम्बौ-

अर्थ–मद्य अम्ल तक्र, दही चौला, व्रीहि, जलचरों का मांस, कुलथी, कुठेरादि विदाही अन्न तथा संयोगमात्रादि से विरुद्ध अन्न,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा रक्तको दूषित करनेवाले अन्य पदार्थों के सेवन से अथवा विधिहीन दिवानिद्रा, रात्रिजागरण वा मैथुन में प्रवृत्त होने से, प्रायः सुकुमार और श्रमण न करनेवाले पुरुषों के चोट लगनेसे, वमनविरेचनादि द्वारा शुद्ध न होनेवाले मनुष्योंके रक्त दूषित हो जाताहै तथा वातकारक और शीतल द्रव्यों के सेवन से बढा हुआ वायु कुपित होकर विमार्गगामी होजाताहै। उस समय दूषित रक्तद्वारा रुकाहुआ वायु प्रथम रक्तको ही दूषित करताहै, तदनंतर मांसादिक अन्य धातुओं को भी दूषित करता है। इस वातदूषित रक्तको आढ्यरोग, खुडवात, वातबलास और वातरक्त नामसे बोलतेहैं। यह रोग पहिले पांवों में उत्पन्न होताहै। विशेष करके यह रोग घोडे आदि ऐसी सवारी पर बैठने से होताहै जिन पर पांव लटका कर बैठना पडताहै॥

वातरक्त का लक्षण।

तस्य लक्षणम्।

भविष्यतः कुष्ठसमं तथासादः श्लथांगता॥
जानुजंघोरुकटयंसहस्तपादांगसंधिषु।
कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्ततः ६॥
भूत्वा भूत्वा प्रणश्यंति मुहुरावि र्भवंति च।

अर्थ-जो पूर्वरूप कुष्ठरोग के कहे गयेहैं वेही वातरक्त के भी होतेहैं। उनके सिवाय देहावसाद और अंगशैथिल्य होतेहैं। तथा जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा, हाथ, पांव, अंग-संधियों में खुजली, फडकन, सूचीवेधवत्तवेदना, भेद, गौरव, सुप्ति ये सब उपद्रव हो होकर मिट जातेहैं और फिर पैदा होजातेहैं।

वातरक्त का सब देहमें फैलना।

पादयोर्मूलमाश्रित्य कदाचिद्धस्तयोरपि॥ ७॥
आखोरिव विषंकृद्धं कृत्स्नं देहं विधावति।

अर्थ-वातरक्त पांवों की जड़ में और कभी कभी हाथों के मूल में स्थित होकर चूहे के विषकी तरह कुपित होकर धीरे धीरे सब देह में फैल जाता है।

वातरक्त के दो भेद।

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः ८
कालांतरेण गंभीरं सर्वान् धातूनभिद्रवत्।

अर्थ-वातरक्त दो प्रकार का होता है, एक उत्तान, दूसरा गंभीर। इनमें से उत्तान नामक वातरक्त त्वचा और मांसका आश्रय लेकर प्रथम उत्पन्न होता है। तदनंतर धीरे धीरे मेद आदि अन्य धातुओं का आश्रय लेलेता है तब इसे गंभीर नामक वातरक्त कहते हैं।

उत्तान के लक्षण।

कंडूवादिसंयुतोत्तानेत्वक्ताम्रश्यावलोहितारु सायामा भृशदाहोषा-

अर्थ-उत्तान वातरक्त में त्वचा में खुजली, स्फुरण और तोद होता है। इसका वर्ण ताम्र, श्याव वा लोहित होजाता है यह रोग विस्तृत और अत्यन्त दाह और वेदना से युक्त होता है।

गंभीर के लक्षण।

गंभीरेऽधिकपूयरुक्।
श्वयथुर्ग्रथितः पाकी वायुः संध्यस्थिमज्जसु
छिंदन्निव चरत्यंतर्वक्रीकुर्वंश्च वेगवान्।
करोति खंजं पंगुं शरीरे सर्वतश्चरन्॥

अर्थ--गंभीर नामक वातरक्त में अत्यन्त वेदनायुक्त गांठदार पकनेवाली सूजन होती है तथा बलवान् वायु संपूर्ण शरीर में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विचरता हुआ संधि अस्थि और मज्जा में छिदने कीसी पीडा करता है, शरीर को टेढा करके खंजता वा पंगुता उत्पन्न कर देती है।

वाताधिक वातरक्त।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम्। शोफस्यरौक्ष्यकृष्णत्वश्यावताबृद्धिहानयः॥ धमन्यंगुलिसंधीनां संकोचोऽंगग्रहोऽतिरुक् शीतद्वेषानुपशयौ स्तंभवेपथुसुप्तयः १३॥

अर्थ-वाताधिक्य वातरक्त में शूल, स्फुरण, सूचीविधवत वेदना होती है सूजन में रूखापन, कालापन, श्यावता होती है, कभी बढ जाती है और कभी घटजाती है। धमनी उंगली और संधियां सुकड जाती हैं। अंगग्रह, अत्यन्त वेदना, शीतल पदार्थों में अनिच्छा, शीतें में अनुपशय, स्तब्धता, कंपन और सुप्ति ये लक्षण होते हैं।

रक्ताधिक्यवातरक्त।

रक्ते शोफेऽतिरुक्-

तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते। स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः॥

अर्थ-रक्ताधिक्य वातरक्त में सूजन, तीव्रशूल, तोद, ताम्रवर्ण, चिमचिमाहट, कंडू और क्लेद होता है। इसमें स्निग्ध और रूक्ष उपचारों से शांति नहीं होती है।

पित्तानुविद्ध वातरक्त।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्छा मदःसतृट् स्पर्शाक्षमत्वं रुग्रागः शोफपाको भृशोष्मता

अर्थ-पित्ताधिक्य वातरक्त में अत्यन्त दाह, संमोह, स्वेद, मूर्च्छा, मद, तृषा, स्पर्श का न सहना, वेदना, शोथमें ललाई, पाक और अति ऊष्मा। ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफानुविद्ध वातरक्त।

कफे स्तैमित्यगुरुतास्निग्धत्वशीतताः। कंडूर्मदा च रुग्-

अर्थ-कफाधिक्य वातरक्त में स्तैमिता गुरुता, सुप्ति, स्निग्धता, शीतता, खुजली और मंद मंद वेदना होती है।

द्वंद्वज वातरक्त।

द्वंद्वसर्वलिंगम् च संकरे॥ १६॥

अर्थ-दो दोषों की अधिकता वाले वातरक्त में उक्त दो दो दोषों के लक्षण पाये जाते हैं और तीनों दोषों की अधिकतावाले वातरक्त में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं।

वातरक्त को साध्यादि।

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम्। त्रिदोषजं त्यजेत्स्रावि स्तब्धमर्बुदकारि च॥

अर्थ-एक दोष से उत्पन्न हुआ और थोडे दिनका वातरक्त साध्य होता है। दो दोषों से उत्पन्न हुआ वातरक्त याप्य होता है। तीन दोषों से उत्पन्न हुआहो, स्रावी हो और अर्बुदकारी हो वह असाध्य होता है, इसका इलाज नहीं होसकता है।

वातरक्त को मारकत्व।

रक्तमार्गं निहत्याशु शाखा संधिषु मारुतः। निविश्यान्योन्यमाचार्य वेदनाभिर्हरत्यसून्॥

अर्थ-कुपित हुआ वायु हाथ पांवों की संधियों में घुसकर रक्तके मार्ग को रोक देता है पीछे रक्त और वायु आपस में एक दूसरे को आवृत करके ऐसी ऐसी पीडा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करता है, जिससे प्राणों का नाश हो जाता है ।

प्राणवायु का कर्म ।

वायौ पंचात्मके प्राणो रौक्ष्यव्यायामलंघनैः ।
अत्याहाराभिघाताध्ववेगोदीरणधारणैः ।
कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रवर्तयेत् ।
पीनसार्दिततृट्कासश्वासादींश्चामयान्बहून् ॥

अर्थ—प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान इनके द्वारा वायु पंचात्मक होता है इन में से प्राणवायु रूक्षता, व्यायाम, उपवास, अतिभोजन, अभिघात मार्ग भ्रमण, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकना, अनुपस्थित वेगों को उदीर्ण करना इन कारणों से कुपित होकर आंख कान आदि इन्द्रियों का नाश करदेता है । तथा पीनस, अर्दित, तृषा, खांसी, श्वास आदि अनेक उपद्रवों को करता है ।

उदानवायु का कर्म ।

उदानः क्षवथूद्गारच्छर्दिनिद्रावधारणैः ।
गुरुभारातिरुदितहास्यादैर्विकृतो गदान् ।
कंठरोधमनोभ्रंशच्छर्यरोचकपीनसान् ।
कुर्याच्च गलगंडादींस्तांस्तान्-
ऊर्ध्वसंश्रयान् ॥ २२ ॥

अर्थ—उदानवायु छींक, डकार, वमन और निद्रा के वेग को रोकने से भारी बोझ उठाने से, अत्यंत हंसने वा रोने से तथा ऐसे ही अन्य कर्मों से कुपित होकर कंठरोध, मनोभ्रंश, वमन, अरुचि, पीनस तथा जत्रु से ऊपर होने वाले अनेक रोगों को करता है ।

व्यानवायुका कर्म ।

व्यानोऽतिगमनध्यानक्रीडाविषमचेष्टितैः ।
विरोधिरूक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः ॥ २३ ॥
पुंस्त्वोत्साहबलभ्रंशशोफचित्तोत्लवज्वरान् ।
सर्वांगरोगनिस्तोदरोमहर्षांगसुप्तताः ॥ २४ ॥
कुष्ठं विसर्पमन्यांश्च कुर्यात्सर्वांगगान् गदान्

अर्थ—अतिगमन, अतिध्यान, अतिक्रीडा, अत्यन्त विषम चेष्टा, विरोधी और रूक्ष भोजन, भय, हर्ष और विषादादि द्वारा व्यान वायु दूषित होकर पुरुषत्व, उत्साह और बल का नाश करदेता है । सूजन, मनमें विकलता, ज्वर, सर्वांगरोग, निस्तोद, रोमहर्ष, अंगसुप्ति, कुष्ठ, विसर्प, तथा सर्वांगगत अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है ।

समानवायुके कर्म ।

समानो विषमाजीर्णशीतसंकीर्णभोजनैः ।
करोत्यकालशयनजागराद्यैश्च दूषितः ।
शूलगुल्मग्रहण्यादीन् पक्वामाशयजान् गदान्

अर्थ—विषम, अजीर्ण शीतल और संकीर्ण भोजन करनेसे, तथा कुसमय निद्रा लेने वा जागनेसे समान वायु कुपित होकर शूल, गुल्म, ग्रहणी तथा पक्वामाशय में होने वाले अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है ।

अपानवायुके कर्म ।

अपानो रूक्षगुर्वन्नवेगघातातिवाहनैः ।
यानस्थानासनस्थानचंक्रमैश्चातिसेवितैः ॥
कुपितः कुरुते रोगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान्
मूत्रशुक्रप्रदोषार्शोगुदभ्रंशादिकान्बहून् ।

अर्थ—रूक्ष और भारी अन्नके खाने से, मलमूत्रादि का वेग रोकने से, सवारीपर अधिक बैठनेसे, अधिक चलनेसे, अगम्यस्थानों में जानेसे, अपानवायु कुपित होकर मूत्र दोष, शुक्रदोष, अर्श और गुदभ्रंश तथा अन्य कष्टसाध्य पक्वाशयगत रोगोंको उत्पन्न करता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामनिराम वायुका लक्षण।

सर्वैश्च मारुतं सामं तंद्रास्तैमित्यगौरवैः।
स्निग्धत्वारोचकाल्पस्यशैत्यशोफाग्निहानिभिः
कटुरूक्षाभिलाषेण तद्विधोपशयेन च।
युक्तं विद्यान्निरामं तु तंद्रादीनां विपर्ययात्।

अर्थ–तंद्रा, स्तिमिता, गुरुता, स्निग्धता, अरुचि, आलस्य, शैत्य, शोथ, अग्निमांद्य, कटु, और रूक्ष पदार्थों की अभिलाषा और वैसेही उपशय इनसब लक्षणोंसे युक्त सब प्रकार के वायुको साम अर्थात् आमसहित कहते हैं। जिसमें उक्त लक्षणोंके विपरीत लक्षण होते हैं वह निराम कहलाती है।

वायुके आवरणका वर्णन।

वायोरावरणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते।

अर्थ–सामनिराम लक्षण कहकर अब वायुके आवरण और भेदोंका वर्णन करतेहैं।

पित्तावरण के लक्षण।

लिंगं पित्तावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः।
कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहः शीतकामता।

अर्थ–वायुके पित्तसे आवृत होनेपर दाह, तृषा, शूल, भ्रम, और आंखोंके आगे अंधेरा, तथा कटु, उष्ण, अम्ल और लवणरस सेवनमें दाह और शीतल वस्तु की इच्छा। ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफावृत वायु।

शैत्यगौरवशूलानि कटूष्णोपशयोऽधिकम्।
लंघनायासरूक्षोष्णकामता च कफावृते।

अर्थ–वायुके कफसे आवृत होने पर शैत्य, गुरुता, शूल, कटुरसादि सेवन में अधिक उपशय, लंघन, परिश्रम, रूक्ष और उष्ण वस्तुकी इच्छा। ये सब उपस्थित होते हैं।

रक्तावृत वायु।

रक्तावृते सदाहातिस्त्वङ्मांसांतरजा भृशम्।
भवेच्च रागी श्वयथुर्जायंते मंडलानि च।

अर्थ–रक्तावृत वायुमें त्वचा और मांसके बीचमें दाहयुक्त अधिक वेदना, काल रंगकी सूजन और देहमें गोलचकत्ते हो जाते हैं।

मांसावृत वायु।

मांसेन कठिनः शोफो विवर्णः पिटिकास्तथा
हर्षः पिपीलिकानां च संचार इव जायते।

अर्थ–मांसावृत वायुमें कठोर और बुरे रंगकी सूजन, फुंसियां, रोमहर्ष और देहमें चींटियों कासा चलना मालूम होता है।

मेदसावृत वायु।

चल स्निग्धो मृदुः शीतः शोफो गात्रेष्वरोचकः
आढ्यवात इति ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसाऽऽवृते

अर्थ–मेद से आवृत वायुमें देहमें चलायमान, स्निग्ध, कोमल और शीतल सूजन होती है तथा अरुचि भी होती है। इस व्याधिको आढ्यवातभी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होती है।

अस्थ्यावृत वायु।

स्पर्शेऽस्थ्यावृतेऽत्युष्णं पीडनं चाभिनंदति।
सूच्येव तुद्यतेऽत्यर्थमंगं सीदति शूल्यते।

अर्थ–अस्थिद्वारा वायुके आवृत होनेपर स्पर्श में उष्णता तथा पीडनकी अभिलाषा होती है, देहमें सूचीवेधवत दारुण पीडा, अंगग्लानि और शूल होता है।

मज्जावृत वायु।

मज्जावृते विनमनं जृंभणं परिवेष्टनम्। ३७।
शूलं च पीड्यमानेन पाणिभ्यां लभते सुखम्।

अर्थ–वायुके मज्जावृत होने पर अंगों का नवजाना, ऐंठन, और शूल होता है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हाथोंसे मर्दन करनेपर सुखकी प्राप्ति होतीहै।

शुक्रावृत वायु।

शुक्रावृतेऽतिवेगोवा न वा निष्फलताऽपिवा

अर्थ–शुक्रावृत वायुमें वीर्यका अतिवेग अथवा सर्वथा वेगका अभाव और निष्फलता होती है।

अन्नावृत वायु।

भुक्ते कुक्षौ रुजा जीर्णे शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले

अर्थ–वायुके अन्नसे आवृत होनेपर भोजन करनेसे कुक्षिमें शूल होता है, और अन्नके पचने पर वेदनाकी शांति होती है।

मूत्रावृत वायु।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं वस्तौ मूत्रावृते भवेत्।

अर्थ–मूत्र से वायु के आवृत होजाने पर मूत्र का निकलना बंद होजाता है और वस्ति स्थान में वेदना होने लगती है।

पुरीषावृत वायु।

विडावृते विबंधोऽधः स्वस्थानेपरिकृंतति।
व्रजत्याशु जरां स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः॥
शकृत्पीडितमन्नेन दुःखं शुष्कं चिरोत्सृजेत्।

अर्थ–वायु के पुरीष से आवृत होनेपर गुह्यदेश में विबंधता होने के कारण कतरने कीसी वेदना होतीहै, स्निग्ध पदार्थ शीघ्र पच जाताहै और भोजन करने पर पेटमें अफरा होजाता है, इस तरह अन्न द्वारा मल पीडित होकर सूखा हुआ बडी कठिनता से और बहुत देर में निकलता है।

सर्वधात्वावृत वायु।

सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणिवंक्षणपृष्ठरुक्॥
विलोमो मारुतो स्वस्थं हृदयं पीडयतेऽति च

अर्थ–संपूर्ण धातुओं द्वारा वायु के आवृत होने पर श्रोणी, वंक्षण और पीठ में वेदना होने लगती है, तथा विलोम वायु हृदय को व्याकुल करके पीडित करताहै।

पित्तावृत प्राण वायु।

भ्रमो मूर्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते ४२
विद्वग्धेऽन्ने च वमनम्-

अर्थ–प्राण वायु के पित्त से आवृत होने पर भ्रम, मूर्छा, वेदना, दाह, और अपक्व अन्नकी वमन होजाती है।

पित्तावृत उदान वायु।

उदानेऽपि भ्रमादयः।
दाहोऽतरूर्जा शे च-

अर्थ-उदानवायु के पित्तसे आवृत होने पर पूर्वोक्त भ्रम मूर्च्छा आदि, तथा अंतर दाह और बल का नाश होता है।

पित्तावृत व्यान वायु।

दाहो व्याने च सर्वगः॥ ४३॥
क्लमोऽगचेष्टासंगश्च ससंतापः सवेदनः॥

अर्थ--पित्तावृत व्यान वायु में अंतर्दाह बहिर्दाह, क्लांति, शारीरिक क्रियाओं का नाश, संताप और वेदना होते हैं।

पित्तावृतसमानवायु।

समान ऊष्मोपहतिरतिस्वेदोऽरतिःसतृट्॥

अर्थ–पित्तावृत समान वायुमें ऊष्माका नाश, पसीनोंकी अधिकता, अरति और तृषा उत्पन्न होते हैं।

पित्तावृतअपानवायु।

दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता।
रुजोऽतिवृद्धिस्तापश्च योनिमेहनपायुषु॥

अर्थ–वायुके पित्तावृत होनेपर दाह, मल में हरा रंग, तथा योनि, लिंग, और गुदा में अत्यन्त शूल और ताप होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफावृत प्राणवायु।

श्लेष्मणात्वावृते प्राणे सादस्तंद्रारुचिर्वमिः।
ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः॥

अर्थ-प्राणवायुके कफावृत होनेपर अंग में शिथिलता, तंद्रा, अरुचि, वमन, ष्ठीवन (थूक), छींक, डकार, निःश्वास, और उच्छ्वास इनमें विबंधता होतीहै॥

कफावृत उदानवायु।

उदाने गुरुगात्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः।
बलवर्णप्रणाशश्च-

अर्थ-उदान वायु के कफावृत होनेपर शरीरमें भारापन, अरुचि, वाकरोध, स्वर-क्षय, बल और वर्ण का नाश होताहै।

कफावृत व्यानवायु।

व्याने पर्वास्थिवाग्ग्रहः॥ ५७॥
गुरुतांऽगेषु सर्वेषु स्खलितं च गतौ भृशम्।

अर्थ-कफावृत व्यान वायुमें अस्थि की संधियों में जकडन, वाकरोध, संपूर्ण अंगों में भारापन, गमनमें अत्यन्त स्खलन (बार बार गिर पडना), होताहै।

कफावृत समान वायु।

समानेऽतिहिमांगत्वमस्वेदो मंदवह्निता।

अर्थ-कफावृत समान वायुमें शरीर में अत्यन्त शीतलता, पसीनों का न आना और अग्निमांद्य होताहै।

कफावृत अपान वायु।

अपाने सकफम् मूत्रशकृतः स्यात्प्रवर्तनम्।
इति द्वाविंशतिविधं वायोरावरणं विदुः ४९॥

अर्थ-कफावृत अपान वायुमें मल और मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै। इस तरह वायुके बाईस प्रकार के आवरणों का वर्णन किया गयाहै।

प्राणादि वायुका परस्पर आवरण।

प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वंति-
यथाक्रमम्।
सर्वेऽपि विंशतिविधम् विद्यादावरणम्-
च तत्॥ ५०॥

अर्थ-जैसे प्राणादि वायु पित्त और कफसे आवृतहै, वैसेही ये आपस में एक दूसरे को आवरण करती हैं। आवरण का क्रम यहहै कि प्राण वायु उदानादि चार वायुको आवरण करतीहैं वैसेही उदानादि चार वायु प्राण वायु का आवरण करतीहैं वैसेही उदान वायु व्यानादि तीन वायुका अवरण करती है और व्यानादि तीन वायु उदानवायु का आवरण करती हैं। व्यान वायु समान और अपान का आवरण करती हैं और समान और अपान व्यानका आवरण करती है। ऐसे दो दो ती नतीन द्वारा आवरण का वर्णन किया गयाहै ये सब आवरण बीस प्रकार के हैं

आवरण चिन्ह।

निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरो-
ग्रहः।
हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनोदान आवृते॥

अर्थ-जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण करलेता है, तब उसासलेने निकालने में रुकावट होती है, तथा प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृद्रोग और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं।

उदानावृत प्राण के लक्षण।

उदानेनावृते प्राणे वर्णौजोबलसंक्षयः।

अर्थ-उदानवायु द्वारा प्राणवायु के आवृत होजाने पर वर्ण, ओज और बलका नाश होजाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आवरणों का दिग्दर्शन।

दिशाऽनया च विभजेत्सर्वमावरणं भिषक् ॥
स्थानान्यवेक्ष्य वातानां वृद्धिं हानिं च कर्मणाम् ।

अर्थ–वैद्यको उचित है कि ऊपर लिखे हुए दिग्दर्शन मात्र से संपूर्ण आवरणों के भेदों को जानलेवे । वायुओं के स्थान तथा उनके कर्मों की हानि वा वृद्धि (कर्मावेशी) देखकर भी आवरणों का विभाग करलेना चाहिये ।

आवरणों को असंख्येयत्व।

प्राणादीनां च पंचानां मिश्रमावरणं मिथः ॥
पित्तादि भिर्द्वादशभिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः
मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्राणामप्यनेकधा ॥
तारतम्यविकल्पाच्च यात्याप्तुं क्षिरसंख्यताम् ।
तां लक्षयेदवहितोयथास्वं लक्षणोदयात् ॥
शनैः शनैश्चोपशयाद्गूढामपि मुहुर्मुहुः ।

अर्थ–प्राणादि पंचवायु के आपस में मिले हुए आवरण और पित्तादि बारह पदार्थों से आवृत प्राणादि पांच वायुका मिश्र आवरण, और पांच वायुद्वारा पित्तादि बारह का मिश्र आवरण होता है, इस तरह इनके आपस में अनेक प्रकार से मिलने के कारण और तारतम्य की विकल्पना से आवरणों की संख्या नहीं हो सकती है । इनको उनके लक्षणों को सावधानी से देख देखकर और उनके उपशयों पर दृष्टि देदेकर धीरे धीरे और बार बार उन गूढ विषयों को देखना चाहिये ।

प्राणादिवायु को जीवितत्व।

विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते ॥
स्यातयोः पीडनाद्धानिरायुषश्च बलस्य च

अर्थ–प्राणवायु जीवन का आधार है और उदानवायु बलका आधार है इसलिये इन दोनों के पीडित होनेसे वायु और बल दोनों की हानि होती है इस हेतु से आहारादि द्वारा इन दोनों की रक्षा में विशेष यत्न करना चाहिये, कहाभी हैं "प्राणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि तत्स्थितौ देहसंस्थितिः"

आवरणों का कष्टसाध्यत्व।

आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाता वा यत्सरं स्थिताः ॥ ५७ ॥
प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वानुपक्रमाः ।

अर्थ–वायु किस पदार्थ से आवृत हैं इस बातका निश्चय न होना अथवा निश्चय होने पर भी बरसदिव तक उसकी चिकित्सा में उपेक्षा करना । इन बातों से ये कष्टसाध्य होजाते हैं अर्थात् महान् प्रयत्न करनेपर भी दुश्चिकित्स्य होजाते हैं ।

आवरणोंसे विद्रधादिकी उत्पत्ति।

विद्रधिप्लीहहृद्रोगगुल्माग्निसदनादयः ।
भवंत्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् " ॥

अर्थ–आवृत वायुकी चिकित्सामें उपेक्षा करने से विद्रधि, प्लीहा, हृदयरोग, गुल्मरोग, अग्निसाद आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं, इसलिये इसकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ।

इतिश्री मथुरानिवासि श्रीकृष्णलाल विरचितायां भाषाटीकान्वितायां अष्टांगहृदयसंहितायां तृतीयं निदानस्थानं षोडशोध्यायश्च समाप्तः ।

समाप्तमिदं निदानस्थानम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओ३म्

श्रीहरिभ्यन्दे

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः

॥ अथचिकित्सितस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अर्थ–अब हम यहांसे ज्वरचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे यह आत्रेयादि महर्षि कहने लगे ।

ज्वरादि में लंघन ।

" अमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्-
विधाय यत् ।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मात्कुर्वीत लंघनम् ॥
प्राग्रूपेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् ।

अर्थ–आमाशयस्थ वातादि दोष आम-रस से मिलकर जठराग्नि को नष्ट करदेते हैं और स्रोतों को रोककर ज्वरको पैदा करदेते हैं इसलिये ज्वर के आदि में वा ज्वर का पूर्वरूप होते ही लंघन करना उचित है, परंतु इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि रोगी का बल क्षीण न होने पावै ।

बल की रक्षा का हेतु ।

बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः २

अर्थ–इसका कारण यह है कि आरोग्य के लिये चिकित्सा है और वह आरोग्यता बल के आधीन है ।

लंघन के गुण ।

लंघनैः क्षपिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवेसति ।
स्वास्थ्यं क्षुत्तृट् रुचिः पक्तिर्बलमोजश्च जायते

अर्थ–लंघन करने से वातादि दोष क्षीण होजाते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है और देहमें हलकापन होजाता है । इन बातों के होने पर आरोग्यता, क्षुधा, तृषा, अन्न में रुचि, पाक, बल, और ओज उत्पन्न होते हैं ।

साम ज्वर में वमन ।

तत्रोत्कृष्टे समुत्क्लिष्टे कफप्राये चले मले ।
सदूल्लासप्रसेकान्नद्वेषकासविषूचिके ॥
सद्योभुक्तस्य संजाते ज्वरे सामे विशेषतः ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तं कुर्यात्तदन्यथा ५ ॥
श्वासातीसारसंमोहहृद्रोगविषमज्वरान् ।

अर्थ–ज्वर वाले मनुष्यके यदि वातादि दोषों की अधिकता हो, अपने स्थान से चल दिये हों, कफकी अधिकता हो,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वा शिथिल हों, तथा हृल्लास (जी मिचलाना) प्रसेक (मुख में थूक भरना) अन्न में अनिच्छा, खांसी, विसूचिका, ये सब उपद्रव विद्यमान हों इन बातों के होने पर तथा भोजन करने के पीछे ज्वर उत्पन्न हुआ हो अथवा विशेष करके सामज्वर में वमनार्ह (बालक, वृद्ध वा गर्भिणी को छोडकर) रोगी को वमन करावै । उक्त विधि के विपरीत होने पर वमन कराने से श्वास, अतीसार, मूर्च्छा, हृदयरोग और विषमज्वर उत्पन्न होजाते हैं ।

वमनकारक द्रव्य ।

पिप्पलीभिर्युतान् गालान् कलिंगैर्मधुकेन वा
उष्णांभसा समुधना पिबेत्सलवणेन वा ।
पटोलनिंबकर्कोटवेतपत्रोदकेन वा ॥ ७ ॥
तर्पणेन रसेनेक्षोर्मद्यैः कल्पोदितानि वा ।
वमनानि प्रयुंजीत बलकालविभागवित् ॥

अर्थ–पीपल, अथवा इन्द्रजौ, अथवा मुलहटी के साथ अथवा मधुमिश्रित गरम जलके साथ अथवा नमकमिश्रित गरम जल के साथ, अथवा परवल, नीम, कर्कोट वा बेत के पत्तोंके काथ के साथ, अथवा इक्षुरस के साथ, वा मद्य के साथ मेनफल देकर वमन करावै वा वमनकल्पोक्त वमन कराने वाले द्रव्य देवे । वमनकारक द्रव्यों के देने में रोगी के बलाबल, अवस्था और काल पर ध्यान रखना चाहिये ।

वमन में विशोषण ।

कृतेऽकृते वा वमने ज्वरी कुर्याद्विशोषणम्
दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमाय च ।

अर्थ–वमन के योग्य ज्वररोगी को वमन करके, और वमन के अयोग्य ज्वररोगी को वमन न करके समुदीर्ण अर्थात् अच्छी तरह उत्पन्न हुए वातादि साम दोषों के पचाने के निमित्त और पुनर्वार उत्पन्न हुए निराम दोषों के शमन के निमित्त *विशोषण अर्थात् लंघन कराना चाहिये ।*

ज्वरी को उपवास ।

आमेन भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते ।
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥

अर्थ–जैसे राख से ढकी बाह्य अग्नि स्थालीस्थ जल और तंडुल को नहीं पका सकती है, इसी तरह आमरस युक्त वातादि दोषों द्वारा आछन्न जठराग्नि आमाशयस्थ अन्न का परिपाक नहीं कर सकती है, इसलिये जब तक साम दोष का परिपाक न हो तब तक ज्वररोगी को लंघन कराना चाहिये ।

वातकफ ज्वरमें उष्णजलपान ।

तृष्णागलग्रहेष्वुष्णांबु पिबेद्वातकफज्वरे ।
तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत्
उदीर्य चाऽग्निं स्रोतांसि मृदुकृत्य विशोधयेत् ।
लीनपित्तानिलस्वेदशकृन्मूत्रानुलोमनम् ॥
निद्राजाड्यारुचिहरं प्राणानामबलंबनम् ।
विपरीतमतः शीतं दोषसंघातवर्धनम् ॥

अर्थ–वातकफ ज्वर में अर्थात् वातज्वर में, कफज्वर में वा वातकफज्वर में प्यास लगने पर रोगी को थोडा थोडा गरम जल पान करावे, क्योंकि उष्ण जल कफ को विलीन करके तृषा को शीघ्र शांत करदेता है, तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करके स्रोतों में मृदुता करके उनको विशुद्ध करदेता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इससे अप्रवृत्त पित्त, वायु, स्वेद, विष्ठा और मूत्र का प्रवर्तन होता है, निद्रा, जडता और अरुचि का नाश होजाता है, तथा गरम जल प्राणोंका अवलंबन है। परंतु शीतल जल पान करने से उक्त लक्षणों के विपरीत होता है तथा दोषों का समूह बढता है। जब वात द्वारा कफ शोषित होकर गाढा होजाता है, तब तृषा की उत्पत्ति होती है।

पित्तज्वरमें उष्ण जलका निषेध।

उष्णमेवंगुणत्वेऽपि युंज्यान्नैकांतपित्तले ॥
उद्रिक्तपित्ते दवथुदाहमोहातिसारिणि ॥
विषमद्योत्थिते ग्रीष्मे क्षतक्षीणेऽस्रपित्तिनि।

अर्थ–इतने गुणों से युक्त होने पर भी केवल पित्तमें वा केवल पित्तज्वरमें, वा पित्ताधिक्य ज्वरमें गरम जल न देना चाहिये। तथा दवथु, ×दाह, मोह, अतिसार, विषज्वर मद्यजनित ज्वर, ग्रीष्मऋतु, उरःक्षत, धातुक्षीण और रक्तपित्त इन सब रोगोंमें भी उष्ण जल न देना चाहिये।

उद्रिक्त पित्त में शीतल जल।

धनचंदनशुंठ्यंबु पर्पटोशीरसाधितम् ॥
शीतं तेभ्यो हितं तोयं पाचनम्-
तृड्ज्वरापहम्।

अर्थ–पूर्वोक्त पित्ताधिक्य ज्वर में तृषा का वेग होने पर मोथा, रक्तचंदन, नेत्रवाला पित्तपापडा इनका क्वाथ ठंडा करके पिलादेवे। इससे आम दोषका पाचन और तृषा तथा ज्वरका नाश होजाता है।

ज्वरमें पित्तविरुद्धका त्याग।

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा-
विना ॥ १६ ॥
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्-
पित्ताधिकेऽधिकम्।

अर्थ–विना पित्त के ऊष्मा नहीं हो सकती है और विना ऊष्मा के ज्वर नहीं हो सकता है, इसलिये सब प्रकार के ज्वरों में पित्त के विरुद्ध आहार विहारादि त्याग देने चाहियें और पित्त की अधिकता वाले ज्वर में तो विशेष रूपसे त्याग देने चाहियें।

ज्वर में स्नानादि का निषेध।

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्च परिशेषं च लंघनम् १५

अर्थ–ज्वर में केवल पित्त विरुद्ध आहार विहारादि का निषेध किया गया है वह इतना ही नहीं है किन्तु स्नान, अभ्यंग, चंदनादि लेपन और परिशेष लंघन भी त्याग देने चाहिये। 'यल्लंघनमुपयुक्तमुपवासलक्षणं ततो यदन्यत्तत्परिशेषम्। शुद्ध्यायेकादश प्रकारंच तत्त्यजेत्''। उपवासरूप लंघन को छोडकर शुद्ध्यादि जो ग्यारह लंघन कहे गये हैं उन्हीं को परिशेष कहते हैं।

× चक्षुरादिभ्यो यस्तीव्र ऊष्मा प्रवर्तते स दवथुः सर्वाङ्गीणस्तीव्र ऊष्मा दाहः। अर्थात् दवथु और दाहमें यह अंतर है कि नेत्रादि से जो तीव्र ऊष्मा निकलती है उसे दवथु कहते है और सर्वांगव्यापी तीव्र ऊष्मा को दाह कहते हैं।

× अन्य ग्रंथों में पानी की विधि इस प्रकार लिखी है कि कर्ष गृहीत्वा द्रव्यस्य तोयस्य प्रस्थमावपेत्। अर्धावशेषं तद्ग्राह्यं तोयपाने त्वयं विधिः। अर्थात् कर्ष भर सब औषध लेकर एक प्रस्थ जल में औटावै, जब आधा प्रस्थ रहजाय तब पीने के काममें लावै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सामज्वर में शूलघ्न औषधका निषेध।

अजीर्णइव शूलघ्नम् सामे तीव्ररुजि ज्वरे।
न पिबेदौषधं तद्धि भूयः पक्वाममावहेत् १८
आमाभिभूतकोष्ठस्य क्षीरम् विषमहेरिव।

अर्थ–जैसे आमसहित अजीर्ण में तीव्र वेदना होने पर भी अन्य किसी उपद्रव की आशंका से शूलनाशिनी किसी औषधका सेवन करना उचित नहीं है वैसेही आम संयुक्त ज्वर में तीव्र वेदना होने पर भी तत्काल आम के परिपाकार्थ मुस्तापर्पट्यादि औषधों से सिद्ध किया हुआ क्वाथ सेवन करना न चाहिये, क्योंकि वह आम से युक्त कोष्ठ में पान की हुई औषध परिपाक को प्राप्त न होकर आमको ही अधिक बढाती है। यहां साम शब्द के प्रयोग से बहु आमका ग्रहण है क्योंकि अल्प अजीर्ण में तो औषध सेवन की आज्ञा दी गई है जैसे जीर्णेऽशनेतु भैषज्यं युंज्यात्स्तब्धगुरूदरे। दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः संधुक्षणायच। यहां एक दृष्टांत भी है कि जैसे दूध विषनाशन होने पर भी बडे विषधर सर्पका विष नाश न करके उलटा उसे बढाता है, ऐसेही बहु आमावस्था में आमनाशक औषध के सेवन से आमका नाश न होकर आम बढता ही है।

उदर्दादि ज्वर में स्वेद।

सोदर्दपीनसश्वासे जंघापर्वास्थिशूलिनि।
वातश्लेष्मात्मके स्वेदः प्रशस्तः संप्रवर्तयेत्।
स्वेदमुष्णकृद्वातान् कुर्यादग्नेश्च पाटवम्।

अर्थ–जिस ज्वरमें उदर्द, पीनस और श्वास हो, तथा जिस ज्वरमें जंघा, पर्व और अस्थियों में शूल के समान वेदना होती है और जो ज्वर वात कफसे उत्पन्नहै उसमें पसीने देना हितहै। स्वेदन कर्मसे पसीने, मल, मूत्र और अधोवायु अच्छी तरह होने लगते हैं और जठराग्नि की प्रदीप्ति होतीहै

स्नेहविधिपालन।

स्नेहोक्तमाचारविधिं सर्वंश्चानुपालयेत्।

अर्थ–स्वेदन कर्मके पीछे स्नेहविधि अध्यायमें कहेहुए आचार व्यवहारादि हितकारी नियमों का विधिपूर्वक पालन करे।

मलों के पाचक द्रव्य।

लंघनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः।
मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्थं क्रमेण वा।

अर्थ–साग वातादि दोष पृथक् पृथक् स्थित हों, वा दो दो दोष मिलकर स्थित हों अथवा सन्निपात में स्थितहों, उनमें अवस्था के अनुसार लंघन, स्वेदन, काल, यवागू, और तिक्तरस ये पाचन है। अर्थात् ज्वर की किसी अवस्था में लंघन मलका पचानेवाला होताहै, किसी अवस्था में स्वेदक्रिया, किसी अवस्था में काल (छः वा आठ दिन), किसी में यवागू और किसी में तिक्तरस। इस तरह अवस्थानुसार लंघनादि एक एक मलोंके पाचक होते हैं। अथवा क्रमानुसार लंघनादि का प्रयोग करने पर भी आम का परिपाक होजाताहै, जैसे प्रथम लंघन और स्वेदनक्रिया करके छः दिन पीछे यवागू और तिक्तरस देनेसे अपक्व दोष का परिपाक होजाताहै।

ज्वरमें लंघनका अपवाद।

शुद्धवातक्षयागंतुजीर्णज्वरिषु लंघनम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नेष्यते

तेषु हि हितं शमनं यच्च कर्शनम्।

अर्थ--शुद्ध वातज्वर (आमदोषादि से अदूषित) में, धातुक्षयज ज्वरमें, आगंतु ज्वरमें, और जीर्ण ज्वरमें रोगी को लंघन नहीं कराना चाहिये।

इनके लिये शमन हितकारक होताहै। (शंका) शमन के संतर्पण और अपतर्पण दो भेदहैं इनमेंसे कौनसा शमन देना चाहिये (उत्तर) यच्च कर्षनम् अर्थात् वृंहण शमन देना चाहिये।

अलंघित और लंघित की पहिचान।

तत्र सामज्वरावृत्या जानीयादविशोधितम्।
द्विविधोपक्रमज्ञानमवेक्षेत च लंघने।

अर्थ--इन ज्वरोंमें आमके लक्षण अर्थात् उपद्रवों की तीक्ष्णतादि होनेसे रोगी को अलंघित समझना चाहिये अर्थात् यह समझना चाहिये कि लंघन का फल नहीं हुआ और लंघन में द्विविधोपक्रमणीयं में कहे हुए विमलेन्द्रियता और मलमूत्र का प्रवर्तन आदि निराम के लक्षणों को देखकर जान लेना चाहिये कि सम्यक् लंघन होगयाहै

ज्वररोगी का पेयाद्वारा उपचार।

युक्तं लंघितलिंगैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत्।
यथास्वौषधसिद्धाभिर्मंडपूर्वाभिरादितः।
तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्भिरिव पावकः।
षडहं वा मृदुत्वं वा ज्वरो यावदवाप्नुयात्।

अर्थ--जब ज्वररोगी में विमलेन्द्रियतादि सम्यक् लंघन के लक्षण उपस्थित हो जांय तब उसको वातादि दोषों के योग्य औषधों से सिद्ध की हुई मंड पेयादि का आहार देकर चिकित्सा करे। जैसे ईंधन से अग्नि प्रज्वलित होती है वैसेही मंडपेयादि द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त होती चली जातीहै। ज्वर रोगी को पेया छः दिन तक देनी चाहिये और छः दिनसे पहिले ही ज्वर शांत हो जाय तो दोषदूष्यादि की अपेक्षा से भक्तयूषादि देवे। छः दिन व्यतीत होने परभी जब तक ज्वर में मृदुता न हो पेयापान कराना चाहिये। (प्रश्न) कोई कोई यह कहते हैं कि इस दशा में छः दिनका नियम क्यों किया गया है (उत्तर) इस विषय में किसी किसी का यह मत है कि छःदिन पहिले भी यदि ज्वर में मृदुता होजाय तो भी छःदिन तक पेया पान कराता रहे इस लिये छः दिनका नियम किया है। ज्वर के मृदु होने पर पाचन देना चाहिये।

पेया का उपक्रम।

प्राग्लाजपेयां सुजरां सशुंठीधान्यपिप्पलीम्
ससैंधवां तथाम्लार्थी तां पिबेत्सह दाडिमाम्

अर्थ--सब प्रकार की पेयाओं में लाल पेया (धान की खील) बहुत शीघ्र पच जाती है, इसलिये सोंठ, धनियां, पीपल डालकर सिद्ध की हुई लाजपेया में थोडा सा सेंधानमक डालकर पान करावै। यदि रोगी का मन खटाई पर चले तो अनारदाना उसी पेया में डाल देना चाहिये।

अन्यरोगों में पेया।

सृष्टविड् बहुपित्तो वा सशुंठीमाक्षिकां-
हिमाम् ॥ २७ ॥
वस्तिपार्श्वशिरःशूलीव्याघ्रीगोक्षुरसाधिताम्

अर्थ--भिन्न पुरीषवाला ज्वररोगी, अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्ताधिक्यवाला ज्वररोगी सोंठ डालकर सिद्ध की हुई पेयाको ठंडी करके और शहत मिलाकर पीवे । वास्ति, पसली और सिर में शूलवाले ज्वररोगी को कटेरी और गोखरू डालकर सिद्ध की हुई पेया देना चाहिये ।

ज्वरातिसार में पेया ।

पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ।
सिद्धां ज्वरातिसार्यम्लां पेयां दीपनपाचनीम्

अर्थ–पृश्निपर्णी, खरैटी, बेलगिरी, सोंठ, कमल और धनियां डालकर सिद्ध की हुई पेया में अनारदाने की खटाई डालकर ज्वरातिसारवाले रोगी को देना चाहिये । यह पेया अग्निसंदीपन और आमपाचक है । (शंका) पेयाके प्रसंग में कह दिया गया है कि यदि रोगी का मन खटाई पर चले तो अनारदाना डालकर देदेना चाहिये फिर यहां खटाई का उल्लेख क्यों है । (उत्तर) रोगी का मन खटाई पर चले वा न चले परन्तु ज्वरातिसारी रोगी को खटाई डालकर ही पेया देनी चाहिये ।

हिध्मादि में पेयापान ।

ह्रस्वेन पंचमूलेन हिक्कारुक्श्वासकासवान् ।
पंचमूलेन महता कफार्तो यवसाधिताम् ।
विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः श्रृताम् ।
यवागूं सर्पिषाभृष्टां मलदोषानुलोमनीम् ।

अर्थ–हिचकी, श्वास और खांसी वाले रोगी को लघुपंचमूल से सिद्ध की हुई पेया देना चाहिये । कफपीडित रोगी को वृहत्पंचमूलसे सिद्ध की हुई जौ और तंडुल की पेया देना चाहिये । मलकी विबद्धतामें पीपल और आमला डालकर सिद्ध की हुई यवागू पीना चाहिये । पीपल और आमले को घीमें तल लेना चाहिये । यह पेया पुरीषादि मल और वातादि दोषों को अपने मार्गमें प्रवृत्त करनेवाली है ।

विबद्ध कोष्ठ में पेया ।

चविकापिप्पलीमूलद्राक्षामलकनागरैः ।
कोष्ठे विबद्धे सरुजि

अर्थ–वेदनायुक्त कोष्ठकी विबद्धता में चव्य, पीपलामूल, दाख, आमला, और सोंठ डालकर सिद्ध की हुई पेया पान करावे ।

परिकर्तनि कोष्ठ में पेया ।

पियेत्तु परिकर्तनि ।
कोलवृक्षाम्लकलशीधावनीश्रीफलैः कृताम्
अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्तः सितामलकनागरैः ।
सिताबदरमृद्वीकासारिवामुस्तचंदनैः । ३३ ।
तृष्णाच्छर्दिपरो दाहज्वरघ्नीं क्षौद्रसंयुताम्

अर्थ–कोष्ठमें कैंचीसे कतरनेकीसी पीडा होनेपर बेर, वृक्षाम्ल, पिठवन, कटेरी, बेलफल, इनको डालकर सिद्ध की हुई पेयापान करावे । पसीनों का अभाव, निद्रानाश और तृष्णा इनसे पीडित रोगीको चीनी, आमला और सोंठ से सिद्ध की हुई पेया देवे । तृषा वमन और दाहज्वर में ज्वर को नाश करने वाली चीनी, बेर, किसमिस, अनंतमूल, नागरमोथा और चन्दन डालकर सिद्ध की हुई पेया शहत डालकर पीना चाहिये ॥

रसादि करणविधि ।

कुर्यात्पेयौषधैरेव रसयूषादिकानपि ॥ ३४ ॥

अर्थ–जिन जिन द्रव्योंसे पेया सिद्ध की जातीहै उन्हीं उन्हीं द्रव्योंसे मांसरस और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुद्गादि यूष बनाने चाहियें।

विशेष स्थल में पेयानिषेध।

मद्योद्भवे मद्यनित्ये पित्तस्थानगते कफे।
ग्रीष्मे तयोर्वाधिकयोस्तृड्दाहार्दितपीडिते।
ऊर्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेया नेच्छंति

अर्थ-मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वर में, मद्य का नित्य सेवन करनेवाले को, पित्त के स्थान में कफके जानेपर, ग्रीष्म ऋतुमें, पित्तकफकी अधिकतामें, तृषा, और दाह से पीडित ज्वररोगी को, तथा ऊर्ध्वगामी रक्तवाले ज्वर रोगीको पेया न देना चाहिये।

मद्योद्भवादि में कर्तव्य।

तेषु तु।
ज्वरापहैः फलरसैरद्भिर्वा लाजतर्पणम्।
पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं

अर्थ-मद्योद्भवादि ज्वरमें दाख और आमला आदि ज्वरनाशक फलोंके रसमें वा केवल जलमें सिद्ध किया हुआ चीनी और मधु मिलाकर धानों की खील का सत्तू देना उचितहै।

उक्त तर्पण के जीर्ण होने पर कर्तव्य।

ततो जीर्णे च तर्पणे।
यवाग्वामोदनं क्षुद्वानश्नीयाद्भृष्टतंडुलम्।
दकलावाणिकैर्यूषै रसैर्वा मुद्गलावजैः।

अर्थ-तर्पण पान के अनंतर तर्पण के जीर्ण होने पर अथवा यवागूपानार्ह मनुष्य की यवागूके पचनेपर जब क्षुधा चैतन्य हो तब द्वितीय अन्नकालमें भुनेहुए चांवलोंके ओदनका भोजन देना चाहिये। यह ओदन मूंग वा कुलथी आदि के यूषके साथ अथवा मूंग और लावादि पक्षियोंके मांसरसके साथ देना उचित है। दकलावणिक में यह मत भेद है कि कोई तो कहते हैं कि नाति मांसास्तनुरसा दकलावणिकाः स्मृताः अर्थात् अम्ल मांसके पतले झोलको दकलावणिक कहते हैं। कोई अल्पमांसपटुस्नेहा दकलावणिकाःस्मृता, लवण और घृतादि स्नेहयुक्त अल्प मांसके झोलको दकलावणिक कहतेहैं।

छः दिनकी विधि।

इत्ययं षड्हो मेयो बलं दोषं च रक्षता॥

अर्थ-शरीरके बल और वातादि दोषकी रक्षा करता हुआ ज्वरके पहिले छः दिन बितावे चाहिये। दोषकी रक्षाका यह प्रयोजन है कि वातादि दोष जो पृथक् पृथक्, दो दो मिलकर वा सब मिलकर ज्वरके कारण हैं वे कष्टसाध्य न होने पावें। अब बल की रक्षाके लिये जो संतर्पण दिया जाता है तो संतर्पण आमका बढानेवाला है इससे सामदोष की वृद्धि होती है, और आमदोष को घटानेके निमित्त अपतर्पण किया जाता है तो बलकी हानि होती है। इसलिये मध्यमा वृत्तिका अवलंबन करके तर्पणादि द्वारा ज्वरके प्रथम छः दिवस अतिवाहित करना उचित है।

कषायका प्रयोग।

ततः पक्वेषु दोषेषु लंघनाद्यैः प्रशस्यते।
कषायो दोषशेषस्य पाचनः शमनो यथा॥

अर्थ-लंघनादि द्वारा जब वातादि साम दोष पक्व होजांय तब छः दिनके पीछे शेष दोष का परिपाक करनेके निमित्त यथोपयुक्त मुस्तापर्पटकादि, पाचन कषाय तथा आगे आने वाला 'कलिंगकादि" पांच प्रकारका शमन कषाय देना उचित है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्तज्वरमें तिक्तकषाय।

तिक्तः पित्ते विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे

अर्थ–विशेष करके पित्तज्वर में तिक्तरसवाले द्रव्यों के क्वाथका प्रयोग करना उचित है। विशेष शब्द के प्रयोग से यह समझना चाहिये कि तिक्तरसान्वित द्रव्यों का कषाय अन्य दोषोत्पन्न ज्वरों में भी दिया जाता है, केवल पित्तज्वर में ही नहीं कारण यहहै कि पित्तरस स्वाभाविक ही ज्वर नाशक होता है, और यह बात पहिले कही भी जा चुकी है कि "तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम्। कुष्ठमूर्च्छा ज्वरोल्लेददाहापित्तकफान् जयेदिति" इसलिये रसों में तिक्तरस के समान और कोई रस ज्वरघ्न नहीं है।

कफज्वर में कटुरसविशिष्ट और ज्वर नाशक द्रव्यों का क्वाथ देना चाहिये। क्यों कि जैसे तिक्त द्रव्य मात्र ज्वरघ्न होते है वैसे कटुरसविशिष्ट द्रव्य मात्र ज्वरनाशक नहीं होते हैं।

तरुणज्वर में कषायानिषेध।

पित्तश्लेष्महरत्वेऽपि कषायस्तु न शस्यते॥
नवज्वरे मलस्तंभात्कषायो विषमज्वरम्।
कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिध्माध्मानादिकानपि॥

अर्थ–कषायरसविशिष्ट द्रव्यों का क्वाथ यद्यपि पित्तकफनाशक होता है तथापि नवज्वर में देना अच्छा नहीं होता है, इसका कारण यह है कषायरस मलको स्तंभित करताहै और मलके स्तंभित होनेसे सततकादि विषमज्वर, अरुचि, हृल्लास, हिचकी और आध्मानादि रोग पैदा होजाते हैं। 'कषायः कफपित्तहा, अर्थात् कषायरस कफपित्तनाशक होता है यह बात पहिले कही जा चुकी है परंतु यहां पुनरुक्ति का यह कारण है कि कषाय द्रव्यों का क्वाथ केवल नवज्वर, सन्निपातज वातकफज, वातपित्तज ज्वरों में ही अशस्त नहीं है, किंतु पित्तकफज ज्वर में भी इसका प्रयोग न करना चाहिये।

औषध के प्रयोग में मतभेद।

सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः।
केचिल्लघ्वन्न भुक्तस्य योज्यमामोल्बणे न तु

अर्थ–कोई कोई आचार्य कहते हैं कि सात दिन पीछे आठवें दिन ज्वरघ्न औषध यथायोग्य सिद्ध करके देना चाहिये। किसी का यह मत है कि दस दिन पीछे देना चाहिये। कोई यह कहते हैं कि मंडपेयादि पूर्वोक्त लघु अन्नका भोजन करने के पीछे औषध देना चाहिये, किंतु आमकी प्रबलावस्थामें छः, सात वा दस दिन पीछे भी 'मुस्तापर्पटकादि' औषध न देनी चाहिये

औषध देने में कारण।

तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगोदये यतः।
दोषेऽथवाऽतिनिचिते तंद्रास्तैमित्यकारिणि
अपक्व्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम्।

अर्थ–मोथापर्पटी आदि के कषायद्वारा तीव्रज्वर से पीडित रोगी को आमदोषका वेग उदय होने अथवा उसी वातादि दोषका अधिक संचय होनेसे तंद्रा और स्तिमिता उत्पन्न होजाते हैं। उस समय आम से आच्छादित होने के कारण अग्नि दी हुई औषध का अच्छी तरह परिपाक नहीं कर सकती है और ज्वर को अधिकतर प्रज्वालित करदेती है, इसलिये आमाधि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्य ज्वर में छः, सात, वा दस दिन से पहिले औषध न देना चाहिये।

औषध के प्रयोग का काल।

मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा॥
अचिरज्वरितस्याऽपि भेषजं कारयेत्तदा।

अर्थ—जब ज्वर मृदु (हलका) हो, देहहलकी हो, और मलमूत्रादि की प्रवृत्ति अच्छी तरह होने लगगई हो, तब अचिर ज्वरवाले को भी अर्थात् छः दिन से पहिले भी औषध देदेनी चाहिये।

औषध विधि।

मुस्तया पर्पटं युक्तं शुण्ठ्या दुःस्पर्शयाऽपि वा
पाक्यं शीतकषायं वा पाठेशीरं सवालकम्
बिल्वेत्तद्वच भूनिंबगुडूचीमुस्तनागरम् ॥४६॥

अर्थ—पूर्वोक्त लक्षणों के प्रकट होनेपर नागरमोथा, पित्तपापडा, अथवा मोथा और सोंठ अथवा मोथा और दुरालभा, इनका क्वाथ ठंडा करके पीवे। अथवा पाठा, खस और नेत्रवाला इनका क्वाथ ठंडा करके पीवे अथवा चिरायता, गिलोय नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ ठंडा करके पीवे।

उक्तकषायों का यथायोग प्रयोग।

यथायोगमिमे योज्याः कषाया दोषपाचनाः
ज्वरारोचकतृष्णास्यवैरस्यापक्तिनाशनाः ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए कषाय यथायोग अर्थात् जो जिस ज्वर में देने योग्य हैं उसे देने पर आमदोष का परिपाक होजाता है, और ये क्वाथ ज्वर, अरुचि, तृषा, मुख की विरसता, और अपाक का नाश करने वाले हैं।

संततादि ज्वर की चिकित्सा।

कालेयकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥
पटोलं सारिवा मुस्ता पाठा कटुकरोहिणी।
पटोलं निंबत्रिफलामूर्वीकामुस्तवत्सकाः ॥
किराततिक्तममृता चंदनं विश्वभेषजम्।
धात्रीमुस्तामृताक्षौद्रमर्धश्लोकसमापनाः ॥
पंचैते संततादीनां पंचानां शमना मताः।

अर्थ—(१) इन्द्रजौ, परवल, कुटकी (२) परवल, सारिवा, नागरमोथा, पाठ और कुटकी, (३) परवल, नीमकी छाल, त्रिफला, मुनक्का, नागरमोथा और इन्द्रजौ (४) चिरायता गिलोय, लालचंदन और और सोंठ, (५) आमला, नागरमोथा, गिलोय और ऊपर से शहद। ये आधे आधे श्लोक में पांच प्रकार के क्वाथ कहे गये हैं इनमें से यथाक्रम एक एक प्रयोग संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ज्वर में देने चाहियें।

वातज ज्वर में औषध।

दुरालभाऽमृता मुस्ता नागरं वातजे ज्वरे।
अथवा पिप्पलीमूलगुडूची विश्वभेषजम्।
कनीयः पंचमूलं च

अर्थ—वातजज्वर में धमासा, गिलोय नागरमोथा, और सोंठ अथवा पीपलामूल, गिलोय, सोंठ और लघु पंचमूल का कषाय देना चाहिये।

पित्तज ज्वर में कषाय।

पित्ते शस्यते घनम् ॥५२॥
कटुका चेति सक्षौद्रं मुस्तापर्पटकं तथा ॥
सधन्वयासभूनिंबं

अर्थ पित्तज्वर में इन्द्रयव, नागरमोथा, कुटकी इनके क्वाथ में शहद मिलाकर देवे अथवा मोथा, पित्तपापडा, धमासा और चिरायता इनका क्वाथ देवे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफ ज्वर में औषध।

वत्सकाद्यो गणः कफे ॥ ५३ ॥
अथवा वृषगांगेर्याशृंग्वेरदुरालभाः।

अर्थ–कफज्वर में वत्सकादिगणोक्त इन्द्रजौ, मूर्वा, भाडंगी आदिका काथ देवे अथवा अडूसा, नागरमोथा, अदरख और धमासा इनका काथ देवे।

वातकफ ज्वर में औषध।

रुग्विबंधानिलश्लेष्मयुक्ते दीपनपाचनम् ॥
अभया पिप्पलीमूलशल्याककटुकाधनम्।

अर्थ–वेदना और विबंध से युक्त वातकफज्वर में हरड़, पीपलामूल, अमलतास, कुटकी और नागरमोथा, इनका काथ देना चाहिये, ये अग्निसंदीपन और आमदोषको पचानेवाले हैं।

वातपित्तज्वर में औषध।

द्राक्षामधूकमधुकैरोध्रकाश्मर्यसारिवाः ॥
मुस्तामलकह्रीवेरपद्मकेसरपद्मकम्।
मृणालचंदनोशीरनीलोत्पलपरूषकम् ॥
फांटो हिमो वा द्राक्षादिर्जातीकुसुमवासितः
युक्तो मधुसिताला जैर्जयत्यनिलपित्तजम् ॥
ज्वरं मदात्ययं छर्दिं मूर्च्छादाहं श्रमं भ्रमम्
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं च पिपासां कामलामपि ॥

अर्थ–दाख, महुआ की छाल, मुलहटी, लोध, खंभारी, सारिवा, नागरमोथा, आमला, नेत्रवाला, नागकेसर, पदमाख, कमलनाल, लालचंदन, खस, नीलकमल, फालसा, द्राक्षादिगण का फांट वा हिम इसमें मधु, शर्करा और धानकी खीलों का चूर्ण डाल कर और चमेली के फूलों से सुवासित अर्थात् सुगंधित करके पीने से वातपित्तज्वर नष्ट होजाता है। तथा मदात्यय, वमन, मूर्छा, दाह, श्रम, भ्रम, ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त पिपासा और कामला इन दोनों को नष्ट कर देता है।

तत्काल बनाकर वस्त्रमें छाना हुआ फांट कहलाता है और रात्रिमें भिगोकर प्रातःकाल छानकर तयार कियाहुआ हिम कहलाताहै।

ज्वर और दाहकी औषध।

पाचयेत्कटुकां पिष्ट्वा कर्परेऽभिनवे शुचौ।
निष्पीडितो घृतयुतस्तद्रसो ज्वरदाहजित्।

अर्थ–कुटकीको जलमें पीसकर मृत्तिका के घडेके नवीन टुकडे में पकाकर निचोडले और इस रस में घृत मिलाकर पीनेसे ज्वर और ज्वरका दाह शांत होजाते हैं।

कफवात में औषध।

कफवाते वचातिक्तापाठाऽरग्वधवत्सकाः।
पिप्पलीचूर्णयुक्तो वा क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः

अर्थ–वातकफ ज्वरमें वच, कुटकी, पाठा, अमलतास और इन्द्रयव का काथ हितकर है। अथवा गिलोयके काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर देवे।

अन्य प्रयोग

व्याघ्रीशुण्यमृताक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।
वातश्लेष्मज्वरश्वासकासपीनसशूलजित्।

अर्थ–कटेरी, सोंठ, और गिलोयके काथ में पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वातकफज्वर, श्वास, खांसी, पीनस और शूल जाते रहते हैं।

अन्य प्रयोग।

पथ्याकुस्तुंबरीमुस्ताशुंठीकट्तृणपर्पटम्।
सकट्फलवचाभार्ङ्गीश्चाहं मधुहिंगुमत् ॥
कफवातज्वरेष्वेव कुक्षिहृत्पार्श्ववेदनाः।
कंठास्यास्रव्ययथुकासश्वासान्नियच्छति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–हरड, धनियां, नागरमोथा, सोंठ, रोहिसतृण, पित्तपापडा, कायफल, वच, भांडंगी, और देवदारू इनके काथमें हींग और शहत मिलाकर पीनेसे कफवातज्वर, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्ववेदना, कंठरोग, मुखशोथ, खांसी और श्वास नष्ट होजाते हैं।

कफपित्त ज्वरमें औषध।

आरग्वधादिः सक्षौद्रः कफपित्तज्वरं जयेत्
तथा तिक्तवृषोशीरवार्यंतीत्रिफलामृताः।

अर्थ–आरग्वधादि गणोक्त द्रव्योंका काथ अथवा कुटकी, अडूसा, खस, त्रायंती और त्रिफला इनका काथ इन दोनोंमें शहत मिलाकर पीने से कफपित्तज्वर का नाश हो जाता है।

सन्निपातज ज्वरकी चिकित्सा।

सन्निपातज्वरे व्याधौ देवदार्वादिसाधितम्।
पटोलत्रायमाणार्यकटुकामृतम्॥

अर्थ–सन्निपातज्वर में कटेरी, देवदारू, हलदी, नागरमोथा, परवलके पत्ते, नीमकी छाल, त्रिफला और कुटकी इनका काथ पान करावे।

वातकफाधिक्य ज्वरमें चिकित्सा।

नागरं पौष्करं मूलं गुडूची कंटकारिका।
स कासश्वासपार्श्वार्ती वातश्लेष्मोत्तरे ज्वरे

अर्थ–सोंठ, पुष्करमूल, गिलोय, कटेरी, इनका काढा खांसी, श्वास और पसली के दर्दसे युक्त वातकफाधिक्य सन्निपात ज्वरको दूर करता है।

सर्वज्वर पर कषाय।

मधूकपुष्पमृद्वीका त्रायमाणा पटूपकम्।
सोशीरतिक्ता त्रिफला काश्मर्यं कल्पयेद्भिषक्
कषायं तं पिबन् काले ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति।

अर्थ–महुआ का फूल, दाख, त्रायमाण फालसा, खस, कुटकी, त्रिफला, और खंभारी इनका हिमकषाय बनाकर उचित कालमें पीना चाहिये यह एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करदेता है।

अन्य कषाय।

जात्यामलकमुस्तानि तद्वद्धन्वयवासकम्॥
बद्धविट्कं कटुकाद्राक्षात्रायंतीत्रिफलागुडान्

अर्थ–चमेली के पत्ते, आमला, नागरमोथा और धमासा इनका भी हिमकाथ सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है। जिसको मल की विबद्धता रहती हो उसे कुटकी, दाख, त्रायंती, त्रिफला और गुड इनका कषाय देना चाहिये।

जीर्ण औषध में कर्तव्य।

जीर्णौषधोऽन्नं पेयाद्यमाचरेच्छ्लेष्मवान्न तु॥
पेया कफं वर्धयति पंकोप्तेषु वृष्टिवत्।

अर्थ–औषध जीर्ण होने के पीछे पेयादि पूर्वोक्त अन्नका भोजन करना चाहिये परंतु जिसको कफका विकार हो वह औषध पचने परभी पेया पान न करे, क्योंकि पेया कफको बढाती है, जैसे धूल में हुई वर्षा कीचको बढाती है।

तंत्रकार का मत।

श्लेष्मप्रधानक्लेदार्ता मतः प्रथमतोऽपि योजयेत्॥
यूषान् मूलकवार्ताकवास्तुकाढकसंस्कृतान् लघून्।
रूक्षक्षीरकरसोपेतान् हृद्यान् रुचिकरान्-
पटून॥ ७१॥

अर्थ–इसलिये कफसे क्लिन्न देहवाले रोगी को प्रथम कुलथी, चना और अनार आदि से बनाये हुए लघुपाकी, रूक्ष (घृत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में भुनेहुए नहीं), तिक्तरससे युक्त, हृदयको हितकारी, रुचिवर्द्धक यूष देने चाहियें, जिनमें थोडा नमकभी पडाहो ।

ज्वरमें रक्तादि चांवल ।

रक्ताद्याः शालयो जीर्णाःषष्टिकाश्चज्वरेहिताः

अर्थ–रक्त, महान, सकलमआदि पुराने चांवल, और साठीचांवल ज्वरमें हितहैं ।

कफाधिक्यज्वर में पथ्य ।

श्लेष्मोत्तरे वीततुषास्तथा वाट्यकृता यवाः॥

अर्थ–कफाधिक्यज्वर में निस्तुष जौ भूनकर दलेहुए हितकारी होते हैं ।

ज्वरीको ओदनविधि ।

ओदनस्तैः श्रृतो हिताः प्रयोक्तव्यो यथायथम् दोषदूष्यादिबलतो ज्वरघ्नक्वाथसाधितः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त रक्तशाल्यादि चांवलों का भात जो ज्वररोगी जिसके योग्य हो उसे देना हितकारी है । चांवलों को दो तीनवार धोकर फिर पकाना चाहिये । तथा वातादि दोष और रसादि दूष्य इनके अनुसार ज्वर नाशक द्रव्योंके क्वाथमें चांवलों को पकाना चाहिये ।

ज्वरनाशक यूष ।

मुद्गाद्यैर्लघुभिर्यूषाः कुलत्थैश्च ज्वरापहाः ।

अर्थ–मुद्गादि × (मूंग, उरद, चना, कुलथी, मोठ और मसूर) हलके अर्थात् सुखपूर्वक पचनेवाले द्रव्यों के यूष, तथा कुलथी का यूष ज्वरनाशक होता है ।

× मूंगका प्रयोग सब से पहिले किया गया है, इसका यह सारांश है कि जिन व्याधियों में यूष दिया जाता है उनमें मूंग का यूष ही देना चाहिये क्योंकि यह अत्यत पथ्य होता है, चरक मुनिने भी कहा है "मुद्गः शिंबिधान्यानां पथ्यत्वे श्रेष्ठतम इति"

शंका मुद्गादि कहने से कुलथी का ग्रहण है, क्यों कि कुलथी मुद्गादि के अंतर्गत है, फिर कुलथी का पृथक् निर्देश क्यों है । उत्तर-ज्वर विषय में कुलथीका प्रयोग बहुत कम किया जाता है, यही बात दिखलाने के लिये इसका पृथक् निर्देश किया गया है, कुलथी में ये गुणहैं "ऊष्माः कुलत्थाः पाकेम्लाः शुक्राश्मश्वास पीनसान् । कासार्शः कफवातांश्च घ्नंति पित्तास्रदाः परम्" इसलिये कुलथी के उष्णत्व, अम्लविपाकित्व, और अति रक्त पित्तकारित्व गुणों के कारण अधिक मात्रा में प्रयुक्त किया हुआ कुलथी का यूष ज्वर की शांति नहीं करता है, किंतु उसे बढाता है, क्योंकि पित्तका विरोधी है, इसलिये अल्पमात्रा में दिया हुआ यूष कफको शमन करता है ।

ज्वरमें हितकारी रस ।

कारवेल्लकर्कोटघालमूलकपर्पटैः ॥ ७४ ॥
बार्ताकनिंबकुसुमपटोलफलपल्लवैः ।
अत्यंतलघुभिर्मांसैर्जांगलैश्च हिता रसाः ॥
व्याधीपरूषतर्कारीद्राक्षामलकदाडिमैः ।
संस्कृताःपिप्पलीशुंठीधान्यजीरकसैंधवैः ॥

अर्थ–करेला, कर्कोट, कर्वीमूली, पित्त पापडा, बेंगन, नीमके फूल, परवल, अत्यन्त लघु मांस वा जांगल जीवों का मांसरस ज्वर में हितकारी होता है । तथा कटेरी, फालसा, तकोरी, दाख, आमला, अनार इनके क्वाथ में पीपल, सोंठ, धनियां, जीरा और सेंधानमक डालकर सिद्ध कियाहुआ रस हितकारी होता है ।

अवस्था विशेषमें सितामधुयुक्त रस ।

सितामधुभ्यां प्रायेण संयुक्ता वा कृताकृताः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-अवस्थाविशेष में न कि सब जगह मांसयूष में मिश्री और शहद डाला जाता है। ये यूष दो प्रकार के होते हैं, कृता और अकृता। दाडिम, जीरा, सोंठ आदि डालकर सिद्ध किये हुए संस्कृत यूष होते हैं। इनसे विपरीत अकृत और असंस्कृत कहलाते हैं।

रुचिकर व्यंजन।

अनम्लतक्रसिद्धानि रुच्यानि व्यंजनानि च ॥
अच्छान्यनलसंपन्नानि

अर्थ-मीठे तक्र में पकाये हुए, भोजन रुचि बढानेवाले, अच्छ और अग्नि पक्व व्यंजन के साथ ओदन खाना चाहिये।

ज्वर में अनुपान।

अनुपानेऽपि योजयेत्।
तानि कथितशीतं च वारि मद्यं च सात्म्यतः

अर्थ-भोजन करने के पीछे ऊपर कहे हुए संपूर्ण व्यंजन, औटाया हुआ ठंडा जल, और मद्य सात्म्य के अनुसार अनुपान में प्रयोग करे।

ज्वर में भोजनकाल।

सज्वरं ज्वरमुक्तं वा दिनांते भोजयेल्लघु ॥
श्लेष्मक्षयविवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥

अर्थ-सज्वर वा ज्वरमुक्त रोगी को दिन के अंत में हलका भोजन करावै, क्योंकि दिनांत में कफके क्षीण होने से जठराग्नि की ऊष्मा बढकर बलवान होजाती है और भोजन को पचा सकती है।

यथोचितकाल में भोजन।

यथोचितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधतः
प्रागल्पवह्निर्भुंजानो न ह्यजीर्णेन पीड्यते ॥

अर्थ-अथवा यथोचितकाल में अर्थात् जिसको जिस समय भोजन करने का अभ्यास हो उसी समय में देश और सात्म्य के अनुसार सज्वर वा ज्वरमुक्त रोगी को भोजन कराना चाहिये, क्योंकि उस समय उसको क्षुधा का उदय होता है। अतएव जिसका भोजनोचित काल पूर्वान्ह है, उसको पूर्वान्ह में भोजन करने से भी अजीर्ण नहीं होता है, यद्यपि उस समय अग्नि मंद रहती हैं।

घृतपान का काल।

कषायपानपथ्यान्नैर्दशाह इति लंघिते।
सर्पिर्दद्यात्कफे मंदे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥
पक्वेषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा।
दशाहे स्यादतीतेऽपि ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥
लंघनादिक्रमं तत्र कुर्यादाकफसंक्षयात्।

अर्थ-पूर्वोक्त मुस्तापर्पटकादि के काथ का पान तथा पेया यूषादि हलके अन्न का भोजन, इस क्रम से जब दस दिन बीतजायं और कफ क्षीणप्राय होजायतब वात पित्ताधिक्य ज्वर में यथोपयुक्त औषधों से सिद्ध किया हुआ घृतपान करावै। दोषके परिपाक होने पर घृत अमृत के तुल्य है और यदि दोष परिपाक को प्राप्त न हुआ हो और कफकी अधिकता हो तो घृतपान विषके समान होता है। दस दिन बीतने पर भी जो आमदोषका परिपाक न हुआ हो तो भूलकर भी घृतपान न करावै। आमावस्था में घृतपान करने से ज्वरकी तथा उसके उपद्रवों की वृद्धि होती है। इस लिये कफके क्षीण होने तक आमावस्था में लंघनादि क्रम का अवलंबन करना चाहिये

जीर्णज्वर की अनुवृत्ति।

देहधात्वबलत्वाच्च ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–देह और धातुओं के दुर्बल होने से पुराना ज्वर बहुत काल पर्यन्त ठहरता है।

जीर्णज्वर में घृतपान।

रूक्षं हि तेजो ज्वरकृत्तेजसा रक्षितस्य च।
वमनस्वेदकालांबुकषायलघुभोजनैः ॥ ४८ ॥
यः स्यादतिबलो धातुः सहचारी सदागतिः
तस्य संशमनं सर्पिर्दीप्तस्येवांबु वेश्मनः ॥

अर्थ–रूक्ष तेज ज्वरोत्पादक होता है। रूक्ष कहने से देहकी ऊष्मा अर्थात् जठराग्नि का ग्रहण है, उस रूक्ष तेज के द्वारा ज्वररोगी रूक्षित होजाता है और उस समय में की हुई वमन, स्वेद, काल, जल, और क्वाथपान और लघुभोजन इन सब रूक्षताको उत्पन्न करनेवाले कार्यों से वायु अत्यन्त प्रबल होकर ज्वरात्मक तेज अर्थात अग्निके साथ होलेती है, और अग्निस्वभाव होनेके कारण पित्ताख्य धातु भी साथ होलेती है, इसलिये जीर्णज्वरमें रूक्ष देहवाले मनुष्यके लिये घृतपान प्रशस्त है, जैसे जलते हुए घरकी अग्निका बुझाने वाला जल है वैसेही रूक्षताकृत जीर्णज्वर का संशमन करनेवाला घृतपान है।

वातपित्तोत्तर जीर्णज्वरमें घृत।

वातपित्तजितामग्र्यम् संस्कारमनुरुध्यते।
सुतरां तद्धृतो दद्यात्यथा स्वौषधसाधितम्

अर्थ–वातापित्त को जीतनेवाली जितनी औषध हैं उन सबमें घृत प्रधान है क्योंकि यह संस्कारका अनुवर्तन करता है, अर्थात् जिस द्रव्यके साथ पकाया जाता है, उसीके गुणको ग्रहण करलेता है और अपने स्निग्धादि गुणोंका भी परित्याग नहीं करता है, इसलिये व्याधिके प्रतिपक्षवाची औषधोंसे सिद्ध किया हुआ घृत वातपित्ताधिक्य जीर्णज्वरमें निःसंदेह देना चाहिये।

ज्वरोष्मा में घृत।

विपरीतं ज्वरोष्माणं जयेत्पित्तं च शैत्यतः।
स्नेहाद्वातं घृतं तुल्ययोगसंस्कारतः कफम् ॥

अर्थ–घृत अपने स्निग्ध और शीतगुण से रूक्ष और तीक्ष्णादि विपरीतगुण वाली ज्वरकी ऊष्माको जीतता है। शीतगुणसे उष्ण गुणवाले पित्तको, स्निग्धगुण से रूक्षगुणविशिष्ट वायुको और कफनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत तुल्य गुणवाले कफ को जीतता है।

मलानुसार सघृतकषायका प्रयोग।

पूर्वे कषायाः सघृताः सर्वे योज्या यथामलम्।

अर्थ–पहिले जो जो कषाय कहे गये हैं वे सब पाचन वातादि दोषोंके अनुसार जीर्णज्वर में घृतके साथ देने चाहिये।

अन्य क्वाथ।

त्रिफलायास्त्वचं निंब्बबृहतीद्वयम्।
समसूरदलं क्वाथः सघृतो ज्वरकासहा ८८

अर्थ–त्रिफला, नीमकी छाल, मुलहटी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, और मसूर इनका क्वाथ घृतके साथ पान कराने से ज्वर और खांसी जाते रहते हैं।

अन्य प्रयोग।

पिप्पलीद्रयवयावनितिक्ता-
सारिवामलकतामलकीभिः।
बिल्वमुस्तहिमपालनिसेव्यै-
र्द्राक्षयातिविषया स्थिरया च ॥ ८९ ॥
घृतमाशु निहंति साधितम्-
ज्वरमग्निं विषमं हलमिकम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अरुचिं भृशतापमंसयो-
र्वमथुं पार्श्वशिरोरुजम् क्षयम् ॥ ९० ॥

अर्थ–पीपल, इन्द्रयव, कटेरी, कुटकी, सारिवा, आमला, भूम्यामलक, वेलगिरी, नागर मोथा, हिम (रक्तचंदन), पाडली, खस, दाख, अतीप, और शालपर्णी इनसब औषधों से सिद्ध किया हुआ घृत ज्वर, अग्निकी विषमता, हलीमक, अरुचि, दोनों कंधोंका अतिताप, वमन, पसली का दर्द, शिरोवेदना और क्षयरोग को शीघ्र नष्ट कर देता है।

वातज पित्तज ज्वर में घृत।

तैल्वकम् पक्त्वजन्यति ज्वरे-
योजयेत्त्रिवृतया वियोजितम्।
तिक्तकम् वृषवृतम् च पैत्तिके-
यच्च पालतिकया श्रृतम् हविः ॥ ९१ ॥

अर्थ–वातज ज्वरमें वात व्याधिचिकित्सित अध्यायमें कहेहुए तैल्वक घृत देवे परन्तु इस में निसोथ न डाले। पित्तज ज्वर में कुष्ठ चिकित्सित अध्यायमें कहा हुआ तिक्तक घृत और रक्तपित्तचिकित्सित अध्यायमें कहाहुआ वृषवृत देना चाहिये तथा त्रायमाण से सिद्ध किया हुआ घृत भी पित्तज्वर में हितहै।

कफज्वर में घृत।

विडंगसौवर्चलचव्यपाठा-
व्योषाग्निसिंधूद्भवयावशूकैः।
पलांशकैः क्षीरसमं घृतस्य-
प्रस्थं पचेज्जीर्णकफज्वरघ्नम् ॥ ९२ ॥

अर्थ–वायविडंग, संचलनमक, चव्य, पाठा, सौंठ, कालीमिरच, पीपल, सेंधानमक, और जवाखार इन सबको एक एक पल, दूध एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ और चार प्रस्थ जल डालकर पकावे, इससे जीर्ण कफ ज्वर नष्ट होजाताहै।

जीर्णज्वरनाशक पांचस्नेह।

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलायाश्च यस्य च
मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धा-
ज्वरच्छिदः ॥ ९३ ॥

अर्थ–गिलोय, त्रिफला, बासक, किसमिस और खरैटी इन पांच द्रव्योंके अलग२ क्वाथ और कल्क में सिद्ध किया हुआ पांच प्रकार का घृत जीर्ण ज्वरको दूर करदेताहै।

परिणत घृतमें रस भोजन।

जीर्णे घृते च भुंजीत मृदुमांसरसौदनम्।
बलं हलं दोषहरंपरं तच्च बलप्रदम् ॥९४॥

अर्थ–घृतके जीर्ण होनेपर कोमलमांसरसके साथ ओदना खाना चाहिये, यह बल को प्राप्त हुए दोष का हरनेवाला और स्वयं बलकारकहै।

कफपित्तनाशक रस।

कफपित्तहरा मुद्गकारवेल्लादिजा रसाः।
प्रायेण तस्मान्नहिता जीर्णे वातोत्तरे ज्वरे ९५
शूलोदावर्तविष्टंभजनना ज्वरवर्धनाः।

अर्थ–मूंग और करेला आदि का रस (झोल) कफपित्तनाशक होताहै, इसलिये यह प्रायः वाताधिक्य जीर्णज्वर में हितकारी नहीं होताहै वाताधिक जीर्णज्वर में देनेसे शूल, उदावर्त, विष्टंभ और ज्वरकी वृद्धि होती है।

शमनाभावमें वमन।

नशाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरः कुर्वीत शोधनम्॥
शोधनार्हस्य वमनं प्रागुक्तं तस्य योजयेत्।
आशाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम्॥

अर्थ–उक्त रीतिसे यदि ज्वर शांत न हो तो शोधन के योग्य रोगी को [पिप्पलीभिर्युतान् गालान्] पिप्पल्यादि युक्त मैन-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फलके प्रयोगसे वमन करावै। वमन कराना उस समय उचितहै जब दोष आमाशय में जाचुके हों और रोगी बलवान् हों। वमन कराने के समय रोगी के बलकी रक्षा पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

त्रिफलादि द्वारा विरेचन।

पक्के तु शिथिले दोषे ज्वरे वा विषमद्यजे।
मोदकं त्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिकेसरैः॥
ससितामधुभिर्दद्याद्व्योषाद्यं वा विरेचनम्।
आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा॥

अर्थ—दोषके पक्व होने अथवा शिथिल अर्थात् अविष्टब्ध होनेपर अथवा विषज वा मद्यज वातज्वर में त्रिफला, श्यामानिसोथ, निसोथ, पीपल, केसर इन सबका चूर्ण बनाकर मिश्री और मधु मिलाकर मोदक तयार करले, इन मोदकों से विरेचन करावै अथवा व्योषाद्य × मोदक देकर विरेचन करावै, अथवा दूध, वा किसमिस के रसके साथ अमलतास का गूदा देकर विरेचन करावै।

दूधके साथ त्रिफला।

त्रिफलां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितःपिबेत्

अर्थ—ज्वर रोगीको दूधके साथ त्रिफला वा त्रायमाण पान कराना उचित है।

विरिक्तादि का संसर्गी कर्तव्य।

विरिक्तानां च संसर्गी मंडपूर्वा यथाक्रमम्॥

अर्थ—विरिक्त और वमित ज्वररोगियोंको यथाक्रम संसर्गी करना चाहिये अर्थात् प्रथम मंड देकर फिर पेय लेह्यादि क्रमपूर्वक देना चाहिये। वमनविरेचन के पीछे जो पेयादि का क्रम है उसे संसर्गी कहते हैं।

ज्वरोत्क्लिष्ट मलकी उपेक्षा।

च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा।
पक्वोऽपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्ठे कृतास्पदः
अतिप्रवर्तमानं वा पाचयन्संग्रहं नयेत्।

अर्थ—ज्वर से उत्क्लिष्ट हुआ मलजो बाहर निकलने लग गया हो उसको रोकने के लिये प्रयत्न न करना चाहिये, क्योंकि पक्व मल बाहर न निकल सकेगा तो कोष्ठ के भीतर आमाशय में दृढ होकर बैठ जायगा और अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करेगा। किंतु अतिप्रवृत्त अपक्व मलको पाचक औषधियों द्वारा पकाकर रोक देवै।

आमसंग्रह का निषेध।

आमसंग्रहणे दोषा दोषोपक्रम हरिताः॥

अर्थ—अपक्व दोष अर्थात् आमके रोकने से जो जो विकार उत्पन्न होते हैं वे सब दोषोपक्रमणीय अध्याय में वर्णन कर दिये गये हैं, इसलिये आमको रोकने के लिये औषध न देनी चाहिये दोषोपक्रमणीय अध्याय में लिखा है कि "उत्क्लिष्टानध ऊर्ध्वंवा न चामान्वहतः स्वयम्। धारयेदौषधैर्दोषान् विधृतास्तेहि रोगदा इति।

आमज्वर में आमहरण का निषेध।

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः।
प्रसुप्तं कृष्णसर्पं स कराग्रेण परामृशेत्॥

×व्योषत्रिजात कांभोदकृमिघ्नामलकैः क्षिवृत्। सर्वैः समा समसिता क्षौद्रेण गुटिकाःकृता॥ अर्थात् सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, वायविडंग, आमला, और निसोथ इन सबको समान भाग लेकर मिश्री और मधु मिलाकर जो मोदक तयार किये जाते हैं उन्हें व्योषादि कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-जो पापी वैद्य अज्ञानतासे आमज्वर में दोष का परिपाक न होनेपर आमको निकालनेवाली दवा देताहै वह सोतेहुए काले सर्पको उंगलियों से स्पर्श करताहै। इसका यह सारांशहै कि आमज्वर में दोषको निकालने वाली औषधसे प्राणहारक संकट उपस्थित होजाते हैं।

ज्वरक्षीणमें कर्तव्य।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम्।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलात्॥

अर्थ-जो मनुष्य ज्वरसे क्षीण होगयाहै, उसको वमन वा विरेचन हितकारी नहीं है उनका मल यथेच्छ दुग्धपान वा निरूहण द्वारा निकालना चाहिये।

क्षीरोचित को क्षीर।

क्षीरोचितस्य प्रक्षीणश्लेष्मणो दाहतृड्वतः।
क्षीरं पित्तानिलार्तस्य पथ्यमप्यतिसारिणः॥

अर्थ-जिसको दूध पीनेका नित्य अभ्यास होगया है, जिसका कफ अत्यन्त क्षीण होगया है और दाह तथा तृषा विद्यमान हैं, ऐसे वातपित्तरोगी को दूध अवश्य देना चाहिये, यहां तक तो है कि अतिसारवाले रोगी को भी इस दशा में दूध देना पथ्य है।

देहधारण में दूधको उत्कृष्टता।

तद्वपुर्लंघनोत्सन्नं प्लुष्टं वनमिवाग्निना।
दिव्यांबु जीवयेत्तस्य ज्वरं चाशु नियच्छति

अर्थ-दावाग्नि से जला हुआ बन जैसे वर्षा के जल से फिर अंकुरित होजाता है वैसेही लंघनों से उत्तप्त देह दूधसे सजीव होजाती है और ज्वर भी शीघ्र शांत हो जाता है। शरीरलाघवकरं यत् द्रव्यं कर्म वा पुनः, तल्लंघनमितिज्ञेयम्। यहां शरीर में लाघवता करने वाले द्रव्य और कर्म को लंघन कहते हैं। उपवासरूप लंघन का ग्रहण नहीं है।

संस्कृतदूध का ग्रहण।

संस्कृतं शीतमुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेव वा
विमृज्य काले युंजीत ज्वरिणं ह्यत्यतोऽन्यथा

अर्थ-संस्कृत अर्थात् अन्य द्रव्यों के साथ पकाया हुआ दूध, ठंडा वा गरम अथवा धारोष्ण दूध का यथाविधि और यथाकाल की विवेचना करके प्रयोग करना चाहिये। उक्त नियमसे विपरीत दूधका प्रयोग करने पर दूध ज्वररोगी को मार डालता है।

शुंठ्यादि द्वारा संस्कृत दूध।

पयः सशुंठीखर्जूरमृद्वीकाशर्कराघृतम्।
शृतशीतं मधुयुतं तृड्दाहज्वरनाशनम्॥

अर्थ-सोंठ, खिजूर, मुनक्का, मिश्री और घृत डालकर दूध को पकालेवे फिर छान कर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवे, इससे तृषा, दाह और ज्वर का नाश हो जाता है।

द्राक्षादि संस्कृत दूध।

तद्वद् द्राक्षावलायष्टीसारिवाकणचंदनैः।
चतुर्गुणांभसा वा पिप्पल्या वा शृतं पिबेत्

अर्थ-ऊपर कही रीतिसे दाख, खरेटी, मुलहटी, सारिवा, पीपल, और रक्तचंदन डाल कर पकाया हुआ दूध ठंडा होनेपर शहत डालकर पीनेसे तृषा, दाह और ज्वर शांत होजाता है, अथवा चौगुने जलमें मिला-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर औटाया हुआ दूध, दुग्ध शेष रहनेपर पान करे अथवा केवल पीपल डालकर औटाया हुआ दूध पीना हितकारी है ।

पंचमूल संस्कृत दूध ।

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्व-
शूलाच्चिरज्वरात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पंचमूलीशृतं पयः ॥

अर्थ–पंचमूल डालकर औटाया हुआ दूध पीनेसे ज्वररोगी खांसी, श्वास, शिरोवेदना, पार्श्वशूल और चिरकालानुबंधी ज्वरसे मुक्त होजाता है ।

एरंडसिद्धदूध ।

शृतमेरंडमूलेन वा बिल्वेन वा ज्वरात् ।
धारोष्णं वा पयः पीत्वा विबद्धानिलवर्चसः
सरक्तपिच्छातिसृते सतृट्शूलप्रवाहिकात् ।

अर्थ–अरंड की जड डालकर पकाया हुआ दूध, अथवा, कच्ची वेलगिरी डालकर औटाया हुआ दूध अथवा धारोष्ण दूध पीनेसे रोगी ऐसे ज्वरसे मुक्त हो जाता है जिसमें अधोवायु और मलका विशेषरूप से विबंध होगया हो, अथवा ऐसे ज्वरसे मुक्त होजाता है जिसमें रक्त और पिच्छायुक्त अतिसार हो, अथवा तृषा, शूल और प्रवाहिका से युक्त ज्वरसे छूट जाता है ।

शोफपर शुंठ्यादि दुग्ध ।

सिद्धं शुंठीबलाव्याघ्रीगोकंटकगुडैः पयः ॥
शोफमूत्रशकृद्वातविबंधज्वरकासजित् ।

अर्थ–सोंठ, खरैटी, कटेरी, गोखरू और गुड इनसे सिद्ध किया दूध पीनेसे सूजन, मल, मूत्र और अधोवायुकी विबद्धता, तथा ज्वर और खांसी जाते रहते हैं ।

अन्य दुग्ध ।

वृश्चीबविल्ववर्षाभूसाधितं ज्वरशोफनुत् ॥
शिंशिपासारसिद्धं वा क्षीरमाशु ज्वरापहम् ।

अर्थ–सफेद सांठकी जड, बेलगिरी, और बडी सांठ इनसे सिद्ध किया हुआ दूध ज्वर और सूजनको दूर करता है । अथवा शीशमके निर्यासमें सिद्ध दुग्ध शीघ्र ज्वरनाशक है ।

पक्वाशयगत दोषमें निरूह ।

निरूहस्तु बलं वह्निं विज्वरत्वं सुखं रुचिम् ॥
दोषे युक्तः करोत्याशु पक्के पक्वाशयं गते ।

अर्थ–दोषके पक्व होने और पक्वाशयमें जाने पर निरूहका प्रयोग करना चाहिये । निरूहसे बल, जठराग्नि, ज्वरहीनता, आनंद और रुचि शीघ्र होते है ।

विरेचनादि प्रयोग ।

पित्तं वा कफपित्तं वा पक्वाशयगतं हरेत् ॥
स्रंसनं त्रीनपि मलान् बस्तिः पक्वाशयाश्रयान् ।

अर्थ–पक्वाशयगत केवल पित्तको अथवा कफपित्तको विरेचन से निकाले । बस्ति द्वारा पक्वाशयगत तीनों दोषोंको दूर करे ।

अनुवासन का प्रयोग ॥

प्रक्षीणकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ।११६।
दीप्ताग्नेर्यद्धशकृतः प्रयुंजीतानुवासनम् ।

अर्थ–जिस ज्वररोगी के कफपित्त क्षीण हो गयेहों, त्रिक, पीठ और कमरमें जकडनहो, अग्नि प्रदीप्तहो और मलका विबंध हो उसे अनुवासन बस्ति देनी चाहिये ।

ज्वरनाशक बस्ति ॥

पटोलनिंबच्छदनकटुकाचतुरंगुलैः ॥ ११ ॥
स्थिरावलागोक्षुरकमदनोशीरवालकैः ।
पयस्यर्धोदके क्वाथं क्षीरशेषं विमिश्रितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कल्पितं तुंस्तमदनकृष्णामधुकवत्सकैः।
बास्तिं मृदुघृताभ्यां च पीडयेज्ज्वरनाशनम्॥

अर्थ–परवल, नीमके पत्ते, कुटकी, अमलतास, शालपर्णी, खरैटी, गोखरू, मेनफल, खस, नेत्रवाला, इनका काढा करले तथा दूधसे आधा पानी डालकर औटावै जब दूध रहजाय तब उक्त काढेको मिलाले वे। अथवा मोथा, मेनफल, पीपल, मुलहटी और कुडाकी छाल इनके कल्कके साथ अथवा शहत और घृत मिलाकर वस्तिका प्रयोग किया जाय तो ज्वर जाता रहताहै।

अन्य वस्ति॥

चतस्रः पर्णिनीर्यष्टीफलोशीरनृपद्रुमान्।
क्वाथयेत्कल्कयेद्यष्टीशताह्वाफलिनीफलम्॥
मुस्तं च बास्तिः सगुडक्षौद्रसर्पिर्ज्वरापहः।

अर्थ–चारों पर्णी (मुद्गपर्णी, मांषपर्णी, शालपर्णी, पृष्टिपर्णी), मुलहटी, मेनफल, खस और अमलतास, इनका काढा करे, तथा मुलहटी, सौंफ, प्रियंगु, त्रिफला, मेनफल और नागरमोथा इनका कल्क बनावै उसमें गुड, शहत और घृत मिलाकर वस्ति देने से ज्वर जाता रहता है।

ज्वरमें अनुवासन॥

जीवंती मदनं मेदां पिप्पलीं मधुकं वचाम्॥
ऋद्धिं रास्नां बलां बिल्वं शतपुष्पां शतावरीम्
पिष्ट्वा क्षीरं जलं सर्पिस्तैलं चैकत्र साधितम्
ज्वरेऽनुवासनं दद्याद्यथा स्नेहं यथामलम्।

अर्थ–जीवंती, मेनफल, मेदा, पीपल, मुलहटी, वच, ऋद्धि, रास्ना, खरैटी, बेलगिरी, सौंफ, शितावर, इनसब द्रव्योंसे चतुर्थांश तैलादि स्नेह मिलाकर जलमें घोट डाले तथा स्नेहके समान दूध और चारगुना जल इनसब को इकठा करके अग्निपर पकावै, इनकी अनुवासन वस्ति ज्वरमें देनी चाहिये। जिस ज्वर और वातादि दोषों में जो स्नेह उपयोगी होता है वही उसमें मिलाना चाहिये।

अन्य वस्ति।

ये च सिद्धिषु वक्ष्यंते बस्तयो ज्वरनाशनाः॥

अर्थ–सिद्धिस्थान के वस्तिकल्पनाध्याय में जो जो ज्वरनाशक बस्तिकही गई हैं वे सब देनी चाहिये।

विरेचन नस्य।

शिरोरुग्गौरवश्लेष्महरमेंद्रियबोधनम्।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्यान्नस्य विरेचनम्॥
स्नैहिकं शून्यशिरसो दाहार्ते पित्तनाशनम्।

अर्थ–जीर्णज्वर में विरेचन नस्य देना चाहिये, इससे सिरका दर्द, भारापन, और श्लेष्मा जाता रहता है। नेत्रादि इन्द्रियों में प्रफुल्लता होती है और भोजन में रुचि बढती है। जिसका मस्तक खाली होगया है उसे स्नेहवस्ति और सिरमें दाहवालेको पित्तनाशक वस्ति देना चाहिये।

धूमादि प्रयोग।

धूमगंडूषकवलान् यथादोषं च कल्पयेत्॥
प्रतिश्यायास्यवैरस्यशिरःकंठामयापहान्।

अर्थ–दोषके अनुसार ज्वर में धूमपान गंडूषधारण और कवलग्रह की कल्पना करनी चाहिये, जिससे प्रतिश्याय, मुखकी विरसता, शिरोरोग और कंठरोग नष्ट होजांय।

अरुचिनाशक द्रव्य।

अरुचौ मातुलुंगस्य केसरं साज्यसैंधवम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत्

अर्थ–अरुचि में घृत और सेंधानमक मिलाकर बिजौरे की केसर अथवा मिश्री मिला हुआ आमले और दाख का कल्क मुख में धारण करना चाहिये ।

त्वगाश्रित जीर्णज्वर में कर्तव्य ।

यथोपशयसंस्पर्शान्शीतोष्णद्रव्यकल्पितान् ।
अभ्यंगालेपसेकादीन् ज्वरे जीर्णे त्वगाश्रित ।
कुर्यादंजनधूमांश्च तथैवागंतुजेऽपि तान् ॥

अर्थ–त्वचा में आश्रित जीर्णज्वर में शीतवीर्य वा उष्णवीर्य वाले द्रव्यों द्वारा तयार किया हुआ यथोपयोगी सुखस्पर्श (जिसके लगाने में सुख प्राप्त हो) अभ्यंग आलेपन, और परिषेकादि क्रिया तथा अंजन ग्रहण और धूमपान इनका व्यवहार करना चाहिये । तथा भूताभिषंग और विषजनित आगंतुज ज्वर में भी ये सब क्रिया करना चाहिये ।

दाह में अभ्यंग ।

दाहे सहस्रधौतेन सर्पिषाऽभ्यंगमाचरेत् ।

अर्थ–जो दाह हो तो सौ बार धुलेहुए घृत का मर्दन करना चाहिये ।

दाहज्वर में तेल विशेष ।

सूत्रोक्तैश्च गणैस्तैस्तैर्मधुराम्लकषायकैः ॥
दूर्वादिभिर्वा पित्तघ्नैः शोधनादिगणोदितैः ।
शीतवीर्यैर्हिमस्पर्शैः क्वाथः कल्कीकृतैः पचेत्
तैलं सक्षीरमभ्यंगात्सद्यो दाहज्वरापहम् ।

अर्थ–सूत्रस्थान में कहे हुए घृत(हेमेस्यादि मधुरगण, (धात्रीफलाम्लकेत्यादि) अम्लगण, [पथ्याक्षमित्यादि] कषायगण, इन वर्गों द्वारा तथा दूर्वादि वर्गोक्त द्रव्यों द्वारा, अथवा शोधनादि गणोक्त शीतवीर्य और हिमस्पर्श द्रव्यों के क्वाथ और कल्क तथा दूध के साथ तेल को पकावे । इस तेल के लगाने से दाहज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

उक्त तेल का मस्तक पर लेप ।

शिरो गात्रं च तैरेव नाऽतिपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥

अर्थ–ऊपर जिन जिन औषधों का वर्णन किया गया है उनको थोडी पीसकर शरीरपर और विशेष करके सिरपर लगाने से लाभ होता है । बहुत पीसनेसे दाहउत्पन्न होता है । कहाभी है शुष्कपिष्टघनोलेपश्चंदनस्यापि दाह कृत् त्वग्यातस्योष्मणोरोधाच्छीतकृत्वन्यथाऽगुरोः ।

अवगाहन विधि ।

तत्क्वाथेन परीषेकमवगाहं च योजयेत् ।
तथाऽऽरनालसलिलक्षीरशुक्तघृतादिभिः ॥

अर्थ–ऊपर कहे हुए मधुरादि गणोक्त द्रव्यों के क्वाथ से परिषेक और अवगाहन करे । तथा उक्त क्वाथ से द्रोणी भरकर उसमें कांजी, जल, दूध, शुक्त और घृत मिलाकर अवगाहन करे ।

दाहनाशक औषध ।

कपित्थमातुलुंगाम्लविदारीरोधदाडिमैः ।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टजेन वा । १३३ ।
लिप्तेऽगेदाहरुङ्मोहच्छर्दिस्तृष्णाच शाम्यति

अर्थ–कैथ, बिजौरा, अम्लविदारी, लोध दाडिम, बेर के पत्ते अथवा नीम के पत्तों को पानी में घोटकर बहुत से पानी में डालकर झाग उठावे । इन झागों का लेप करने से दाह, वेदना, मोह, वमन और तृषा शांत होजाती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दाहज्वर की औषध।

यो वर्णितः पित्तहरो दोषोपक्रमणे क्रमः ॥
तं च शीलयतः शीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः।

अर्थ—दोषोपक्रमणीय अध्याय में जो पित्तनाशक क्रम वर्णन किया गया है उस क्रम का अवलंबन करने से दाहज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है।

तेल से अभ्यंजन।

वीर्योष्णैरुष्णसंस्पर्शैस्तगरागुरुकुंकुमैः॥१३५।
कुष्ठस्थौणेयशैलेयसरलामरदारुभिः।
नखरास्नामुरवचाचंडेलाद्वयचोरकैः॥१३६।
पृथ्वीकाशिग्रुसुरसार्हिस्राध्यामकसर्षपैः।
दशमूलामृतैरंडद्वयपन्नूररोहिषैः ॥१३७॥
तमालपत्रभूतिक्तशल्लकीधान्यदीप्यकैः।
मिशीमाषकुलत्थाग्निप्रकीर्याजाकुलीद्वयैः॥
अन्यैश्च तद्विधैर्द्रव्यैः शीते तैलं ज्वरे पचेत्।
क्वथितैः कल्कितैर्युक्तैः सुरासौवीरकादिभिः
तेनाभ्यंज्यात्सुखोष्णेन
तैः सुपिष्टैश्च लेपयेत्।

अर्थ—वीर्य और स्पर्श दोनों प्रकार से उष्ण, तगर, अगर, केसर, कूठ, रोहिषतृण, सिलाजीत, सरलकाष्ठ, देवदारू, नखी, रास्ना, मुरा, वच, चंडा, दोनों इलायची चोरक, कालाजीरा, सहजना, कालीतुलसी, जटामांसी, गंधतृण, सफेद सरसों, दशमूल, गिलोय, दोनों तरह के अरंड, रक्तचंदन, रोहिषतृण, तमालपत्र, अजवायन, शल्लकी, धनियां, अजमोद, सौंफ, उरद, कुलथी, चीता, पूतिकरंज, दोनों प्रकार की नाकुली, इन द्रव्यों के तथा ऐसेही अन्य द्रव्यों के क्वाथ और कल्क के साथ पकाये हुए तेल का तथा सुरा और सौवीरादि अम्ल पाक रस द्रव्यों के साथ पकाये हुए तेल को कुछ गरम करके शीत ज्वर में अभ्यंग करे और इन्ही तगरादि द्रव्यों को बहुत पीसकर लेप करने से भी शीतज्वर जाता रहता है।

पूर्वोक्तद्रव्यों का लेप।

कवोष्णैस्तैः परिषेकमवगाहं च कल्पयेत् ॥
केवलैरपि तद्वच्च सूक्तगोमूत्रसक्तुभिः।
आरग्वधादिवर्गे च पानाभ्यंजनलेपनैः ॥
धूपानगरुजांस्तांश्च वक्ष्यंते विषमज्वरे।

अर्थ—ऊपर कहे हुए तगरादि द्रव्योंको पीसकर थोडा गरम करके परिषेक और अवगाहन करना चाहिये। अथवा केवल कांजी, गोमूत्र और दही के तोड द्वारा भी परिषेक वा अवगाहन करे। आरग्वधादि गणोक्त द्रव्यों का पान, अभ्यंग और लेपमें प्रयोगकरे। और विषमज्वरमें अगरकी धूपका जिनका वर्णन आगे किया जायगा प्रयोगकरे।

स्वेदादि विधि।

अग्न्यनग्निकृतान्स्वेदान् स्वेदिभेषजभोजनम्
गर्भभूवेश्मशयनं कुथाकंबलरल्लकान्।
निर्धूमदीप्तैरंगारैर्हसंतीश्च हसंतिकाः॥
मद्यं सज्यूषणं तक्रं कुलत्थाद्यांहिकोद्रवान्।
संशीलयेद्बहुपथुमान् यच्चाऽन्यदपि पित्तलम्
दयिताः स्तनशालिन्यः पीना विभ्रमभूषणः।
यौवनासवमत्ताश्च तमालिंगयुरंगनाः॥
धीतशीतं च विज्ञाय तांस्ततोऽपनयेत्पुनः।

अर्थ—अग्निकृत वा अनग्निकृत स्वेदन करे अर्थात् अग्नि की गरमी से, अथवा वस्त्रादिको सेकसेककर लगा देने से गरमी पहुंचा कर पसीने निकालना, पसीना लानेवाली औषध वा भोजन, तहखाने में शयन करना, गलीचा, कंबल वा पशमीने के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्त्र ओढना, निर्धूम प्रज्वलित अंगारों द्वारा प्रदीप्त अंगीठी, मद्य, त्रिकुटा मिला हुआ तक्र, कुलथी, ब्रीहि, कोदों, तथा अन्य पित्तकारक द्रव्यों का सेवन वह मनुष्य करेजिसको जाडे की कपकपी लगरही हो, तथा विभ्रममूषणा, पीनस्तनी, यौवनमद से मतवाली प्रिय कामिनीगणों का दृढालिंगन करे। इस तरह शीत के दूर होने पर संभोग की अभिलाषा को रोकने के लिये उन स्त्रियों को उसके पास से हटादेवे।

सन्निपात की चिकित्सा।

वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य च ॥
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यकक्षान्जयेन्मलान्

अर्थ–विषमदोषज सन्निपात में अर्थात् जिस सन्निपात में दोषोंका न्यूनाधिक्य हो उसमें एक क्षीण दोष अथवा दो क्षीण दोषों को बढाकर तथा एक उच्छ्रित दोष वा दो उच्छ्रित दोषों को घटाकर तथा तुल्य प्रकुपित तीनों दोषोंकी कफानुपूर्वी वा स्थानानुपूर्वी चिकित्सा करके सन्निपात का जय करै कफानुपूर्वी चिकित्सा का यह मतलबहै कि पहिले कफको, फिर पित्तको और फिर वात का शमन करे। कहा भी हैं,, स्थानतः कोचिदिच्छन्ति प्राक् तावच्छ्लेष्मणो बधम्। शिरस्युरसि कंठे च प्रलिप्तेऽन्नेरुचिः कुतः। तदभावे कथं भोज्यपानद्रव्यविचारणा। असत्यम्यवहारे च कुतो दोषविनिग्रहः। तस्मादादौ कफो घात्यः कायद्वारार्गलोहितः। मध्यस्थायि यतः पित्तमाशुकारि च चिंत्यते। अतो वातसखस्यास्य कुर्यात्तदनुनिग्रहम्। अधःस्थायीचतदनु निग्राह्यः स्यात्समीरणः। इस में सुश्रुत तथा अन्य आचार्यों का मत भिन्न है, वह ग्रंथके बढने के भयसे नहीं लिखा गयाहै। स्थानानुपूर्वी चिकित्सा का यह मतलबहै कि ज्वरकारी दोष प्रथम आमाशय में स्थित होतेहैं, इसलिये पहिले आमाशयस्थ दोष को जीतना चाहिये, तदनंतर पक्वाशयस्थ दोषका प्रतीकार करना चाहिये।

सन्निपात के अन्तमें कर्णमूल।

सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः ॥
शोफः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते।

अर्थ–सन्निपात ज्वरके अंतमें कानोंकी जड़में जो भयंकर सूजन होजाती है उस सूजनसे स्यात् कोई कभी मुक्ति पाताहै, यह रोगअसाध्य होताहै।

कर्णमूल की चिकित्सा।

रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिः पानैश्च तं जयेत्॥
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः।

अर्थ–कर्णमूल नामक सूजनके उत्पन्न होतेही जोक आदि लगाकर रुधिर निकाल डाले तथा कफपित्तनाशक घृतपान, प्रदेह, नस्य और कवलधारण से शीघ्रही चिकित्सा करै।

कर्णमूल में सिरामोक्षण।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्वीर्यैरेषस्यनशाम्यति।
शाखानुसारी तस्याशु मुंचेद्बाहुवोः क्रमाच्छिराम्।

अर्थ–शीतवीर्य, उष्णवीर्य, स्निग्ध और रूक्षादि सब प्रकार की औषधोंके जो पृथक्२ वात, पित्त, कफ तथा संसर्गज और सान्निपातज ज्वरको शमन करनेवाली है, इनका सम्यक् प्रयोग किये जानेपर भी ज्वर की शांति नहो उसको प्रथम एक बाहुमें फिर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरी बाहुमें रगको बेधकर रुधिर निकाल डाले, दोनों बाहुमें एक साथ फस्द न खोले।

विषमज्वर में उक्तविधि।

अयमेव विधिः कार्यो विषमेऽपि यथायथम्
ज्वरे विभज्य वातादीन् यश्चानंतरमुच्यते।

अर्थ—ज्वरको शांत करनेके लिये जो जो उपाय ऊपर लिखे गये हैं वे सततकादि विषमज्वर में भी वातादि दोषोंकी विवेचना पूर्वक करने चाहियें. तथा जो उपाय आगे लिखे जांयगे वे भी करने चाहिये॥

विषमज्वरनाशक क्वाथादि।

पटोलकटुकामुस्ताप्राणदामधुकैः कृताः॥
त्रिचतुः पंचशः क्वाथा विषमज्वरनाशनाः।
योजयेत्त्रिफलां पथ्यां गुडूचीं पिप्पलीं पृथक्

अर्थ-परवल, कुटकी, मोथा, हरड और मुलहटी इनमेंसे कोई तीन वा चार, वा पांच द्रव्य लेकर काथ बनाकर पीनेसे विषमज्वर जाता रहताहै।

सततकादि विषमज्वरमें त्रिफला, हरीतकी गिलोय, अथवा पीपल इनका अलग अलग प्रयोग करना चाहिये।

विषमज्वरमें अन्यविधि।

तैस्तैर्विधानैः सगुडैर्भल्लातकमथाऽपि वा।
लंघनं बृंहणं चाऽपि ज्वरागमनवासरे॥

अर्थ—ज्वरके आनेके दिन रसायनविधि में कही हुई रीतिसे गुडमें मिलाकर भिलावा देवै, अथवा उसदिन प्रथम लंघन वा बृंहण करै!

विषमज्वर में अन्यप्रयोग।

प्रातः सतैलं लशुनं प्राग्भक्तं वा तथा घृतम्।
जीर्णे तद्वद्दधिपयस्तक्रं सर्पिश्च षट्पलम्॥
कल्याणकं पंचगव्यं तिक्ताख्यं वृषसाधितम्

अर्थ—विषमज्वर में प्रातःकाल तिल के साथ लहसन खाने को दे अथवा भोजन करनेसे पहिले पुराना घृत दे, तथा उसी रीतिसे दही, दूध, वा तक्रदे, अथवा क्षय चिकित्सा में कहा हुआ षट्पल घृत भोजन से पहिले दे। अथवा उन्माद प्रतिषेध में कहा हुआ कल्याणघृत वा अपस्मार प्रतिषेधमें कहाहुआ पंचगव्यघृत, अथवा कुष्ठचिकित्सितमें कहा हुआ तिक्तघृत, अथवा रक्तपित्त चिकित्सितमें कहाहुआ वृषसाधित घृतका प्रयोग भोजन करनेसे पहिले करे।

विषमज्वर में त्रिफलादि घृत।

त्रिफलाकोलतकारीकाथदध्ना शृतं घृतम्॥
तिल्वकत्वक्कृतावापं विषमज्वरजित्परम्।

अर्थ—त्रिफला, बेर और अरनी के क्वाथ से चतुर्थांश घृत और घृत के समान दही इनको मिलाकर पकावे और इसमें लोधकी छाल का प्रतीवाप दे, यह विषम ज्वर के दूर करने में एकही है।

विषमज्वर में अन्य उपाय।

सुरां तीक्ष्णं च यन्मद्यं-
शिखितित्तिरिकुक्कुटान्॥१५६॥
मांसमध्योष्णवीर्यं च सहान्नेन प्रकामतः।
सेवित्वा तदहः स्वप्यादथवा पुनरुल्लिखेत्

अर्थ—सुरा वा अन्य किसी प्रकार का तीक्ष्णमद्य, तथा मोर, तीतर वा मुर्गे का मांस अथवा और किसी मध्योष्णवीर्य द्रव्यको अन्न के साथ बहुत अधिक खाकर सब दिन निद्रा लेवे अथवा खाये पिये हुए को वमन करके निकाल देवै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घृतसे वमन।

सर्पिषो महतीं मात्रां पीत्वा तच्छर्दयेत्पुनः।

अर्थ–अथवा घृतकी महतीमात्रा पीकर उसको वमन द्वारा निकाल दे।

अन्य उपाय।

नीलिनीमजगंधां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम्॥
पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः।

अर्थ–ज्वरके आगमन के दिन रोगीको स्नेहन स्वेदन करके नीलिनी, अजगंध, नि. सोथ और कुटकी का काढा पान करावै।

विषमज्वरमें अंजन॥

मनोहृषा सैंधवं कृष्णा तैलेन नयनांजनम्॥
योज्यं

अर्थ–मनसिल, सेंधानमक और पीपल इनको तेलके साथ पीसकर आंखोंमें अंजन की तरह लगावे।

विषम ज्वरमें नस्य।

हिंगुसमा व्याघ्री वसानस्यं ससैंधवम्।
पुराणसर्पिः सिंहस्य वसा तद्वत्ससैंधवा॥

अर्थ–हींगके समान व्याघ्रीकी चर्बी और सेंधानमक मिलाकर नस्य लेवै अथवा पुराना घृत, सिंहकी चर्बी और सेंधानमक मिलाकर सूंघनेसे भी विषमज्वर दूर होजता है।

विषमज्वर में धूप।

पलंकषा निंबपत्रं वचाकुष्ठहरीतकी।
सर्षपा सयवा सर्गिर्धूपो विड्वा विडालजा॥
पुरध्यामवचासर्जनिंबार्कागरुदारुभिः।
धूपो ज्वरेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः॥

अर्थ–गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हरड, सरसों, और जौ इनकी धूप अथवा बिल्लीका विष्ठा, गूगल, गंधतृण, बच, राल, नीमके पत्ते, आककी जड, अगर और देवदारु इनकी धूप सब प्रकारके ज्वरोंमें दी जाती है, इसको अपराजिता धूप कहते हैं।

अन्य धूप।

धूपनस्यांजनत्रासा ये चोक्ताश्चित्तवैकृते।

अर्थ–चित्तवैकृत अर्थात् उन्माद और अपस्मार में जो जो धूप, नस्य, अंजन और त्रासप्रदर्शनादि चिकित्सा कही गई है, वही सब विषमज्वरमें भी करनी चाहिये।

दैवाश्रयौषध।

दैवाश्रयं च भैषज्यं ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति॥
विशेषाद्विषमान्प्रायस्ते ह्यागंत्वनुबंधजाः।

अर्थ–केवल धूपादिसे ही ज्वर नष्ट नहीं होता है। किंतु दैवाश्रय औषध (मणि, मंगल, बलि, उपहार, प्रायश्चित्त, जप, दान, स्वस्त्ययन आदि] सब प्रकार के ज्वरों को विशेष करके विषमज्वर को दूर करदेती है क्योंकि ये विषमज्वर प्रायः भूताभिषंगादि आगन्तुक हेतुओं से उत्पन्न होतेहैं।

विषमज्वरमें सिराव्यध।

यथास्वं च सिरां विध्येदशांतौ विषमज्वरे॥

अर्थ–विषमज्वर के शांत न होने पर वातादि दोष के अनुसार फस्द खोलना चाहिये।

वातजादिज्वरमें सर्पिष्पान।

केवलानिलवीसर्पविस्फोटाभिहतज्वरे।
सर्पिःपानहिमालेपसेकमांसरसाशनम्॥
कुर्याद्यथास्वमुक्तं च रक्तमोक्षादिसाधनम्।

अर्थ–केवल वातज ज्वर में, विसर्प, विस्फोटक वा अभिघात से उत्पन्न ज्वर में घृतपान, शीतल लेप, परिषेक, मांसरस का भोजन, रक्तमोक्षादि जो जो उपाय कहे गये हैं वे सब करने चाहियें।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रहोत्थज्वरमें कर्तव्य ।

ग्रहोत्थे भूतविद्योक्त बलिमंत्रादिसाधनम् ॥

अर्थ–ग्रहादि के आवेश से उत्पन्न हुए ज्वर में भूतविद्योक्त बलि, और मंत्र द्वारा चिकित्सा करना उचित है ।

औषधीगंधजज्वर ।

ओषधीगंधजे पित्तशमनं विषजिद्विषे ।

अर्थ–औषध की गंध से उत्पन्न ज्वर में पित्तनाशक और विषजज्वर में विषनाशक चिकित्सा करना उचित है ।

क्रोधादि ज्वरका उपाय ।

इष्टैरर्थैर्मनोज्ञैश्च यथादोषशमेन च । १६७ ।
हिताहितविवेकैश्च ज्वरं क्रोधादिजं जयेत् ।

अर्थ-क्रोध, भय, शोकादि से उत्पन्न ज्वर में अभीष्ट और मनोज्ञ विषयों द्वारा तथा वातादि दोषों के शमनोपाय द्वारा तथा हिताहित की विवेचना द्वारा चिकित्सा करे ।

क्रोधज ज्वर ।

क्रोधजो याति कामेन शांतिं क्रोधेन कामजः
भयशोकोद्भवौ ताभ्यां भीशोकाभ्यां तथेतरौ

अर्थ–क्रोधजज्वर काम द्वारा और कामज ज्वर क्रोध द्वारा, भयज और शोकजज्वर कामक्रोध द्वारा तथा कामक्रोधजज्वर भयशोक द्वारा प्रशमित होता है ।

शापज ज्वर ।

शापाथर्वणमंत्रोत्थे विधिर्दैवव्यपाश्रयः ॥

अर्थ–शाप और अथर्ववेदोक्त मारक मंत्रों द्वारा उत्पन्न ज्वर में ईश्वरउपासना ही मुख्य विधि है ।

ज्वररोगमें अहारादि की कल्पना ।

ते ज्वराः केवलाः पूर्वं व्याप्यंतेऽनंतरं मलैः ।
तस्माद्दोषानुसारेण तेषामाहारादि कल्पयेत् ।

अर्थ–औषधिगंधादिज जो ज्वर कहे गये हैं उनके उत्पन्न होनेके समय वातादि, किसी दोषका संपर्क नहीं होता है, परन्तु उत्पन्न होतेही वातादि दोषों द्वारा व्याप्त होता है इसलिये इन सब ज्वरों में दोषों के अनुसार आहारादि की कल्पना करनी चाहिये ।

वातादि के कोप के अनुसार ।

न हि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विना कृतः।

अर्थ–जब वातादि दोष के बिना अन्य कारणों से ज्वर होता है वह बहुत कालतक नहीं रहता है, इसलिये ऊपर कहे हुए ज्वरों में अवश्यही दोषों का कोप रहता है, अतः दोषानुसार आहारकी कल्पना करना अवश्य है ।

ज्वरके कालकी स्मृतिका नाश ।

ज्वरकालस्मृतिं चास्य हारिभिर्विषयैर्हरेत् ॥

अर्थ–मनोहर कथा वार्ता कह कहकर रोगी को ज्वर आनेका समय भुलादेना चाहिये, क्योंकि कथा वार्ता में मन लग जाने से ज्वर का काल उल्लंघित होनेपर नहीं भी आता है ।

करुणार्द्र मनको ज्वरनाशकता ।

करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम् ।

अर्थ–रागद्वेषादिरहित शुद्ध और करुणार्द्र मन सब ज्वरों को नष्ट करदेता है ।

ज्वर में व्यायामादि का त्याग ।

त्यजेदाबलला भाच्च व्यायामस्नानमैथुनम् ॥
गुर्वसात्म्यविदाह्यन्नं यच्चान्यज्ज्वरकारणम् ।

अर्थ–ज्वरके छोडजाने पर भी जबतक बल न आजाय तबतक व्यायाम, स्नान,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मैथुन, भारी, असात्म्य और विदाही अन्न, तथा और भी ज्वर के उत्पन्न करनेवाले हेतुओं का त्याग करदेना चाहिये। खरनाद ने कहा है कि "पिष्टान्नं हरितं शाकं मांसं शुष्कं तिलान्दधि। ग्राम्यानूपौदकाजावि गव्यसूकरमाहिषम्। मांसं शुष्काणि शाकानि सर्वमेवत्यजेज्ज्वरी।

ज्वरमुक्तको सर्वअन्नका निषेध।

न बिज्वरोऽपि सहसा सर्वान्नीनो भवेत्तथा॥
निवृत्तोऽपि ज्वरः शीघ्रं व्यापादयति दुर्बलम्

अर्थ-ज्वरमुक्त होनेपर भी मनुष्यको सहसा सब प्रकारके अन्न खाना न चाहिये क्योंकि गया हुआ ज्वर भी दुर्बल मनुष्य पर शीघ्र आक्रमण करता है।

ज्वरीको उचित औषध।

सद्यः प्राणहरो यस्मात्तस्मात्तस्य विशेषतः
तस्यां तस्यामवस्थायां
तत्तत्कुर्याद्भिषग्जितम्॥ १७४॥

अर्थ-क्योंकि ज्वर तत्काल प्राणों का नाश करनेवाला है, इसलिये अन्यरोगियों की अपेक्षा ज्वररोगी की विशेषरूपसे साम, पच्यमान, पक्व, जीर्ण, विषम चिरनिवृत्ता-दि अवस्थाओं में लंघन, स्वेदन, यवागू, पाचनादि द्वारा औषध करै।

औषधों को ज्वरघ्नत्व।

ओषधयो मणयश्च सुमंत्राः
साधुगुरुद्विजदैवतपूजाः।
प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च
घ्नन्त्यपि विष्णुकृतं ज्वरमुग्रम्"॥ १७५॥

अर्थ-औषध, मणि, सुमंत्र, तथा साधु गुरु, द्विज और देवताओं का पूजन, और मनको प्रसन्न करनेवाले विषय विष्णुकृत भयंकर ज्वरको भी नष्ट करदेते हैं फिर अपचारज ज्वर का तो कहनाही क्या है।

इतिश्री वाग्भटविरचितायां संहितायां मथुरानिवासि श्रीकृष्णलाल कृत भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः।

अथाऽतो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहां से रक्तपित्त चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तका उपचार।

"ऊर्ध्वगं बलिनो वेगमेकदोषानुगं नवम्।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्येत्तिरुपद्रवम्।१।

अर्थ-बलवान पुरुष के (स्त्री के नहीं) ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त जो वेगरहित हो, एक दोषानुगामी हो, नवीन हो, हेमंत वा शिशिरऋतु में उत्पन्न हुआ हो, विकृताविज्ञानीयअध्याय में कहे हुए उपद्रवों से रहित हो वह साध्य होने से चिकित्सा के योग्य होता है।

अधोगामी रक्तपित्त का यापन।

अधोगं यापयेद्रक्तं यच्च दोषद्वयानुगम्।

अर्थ-अधोमार्ग से प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त जो दो दोषों से युक्त हो वह याप्य होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तपित्त में चिकित्साका विचार।

शांतं शांतं पुनः कुप्यन्मार्गान्मार्गान्तरं च यत्
अतिप्रवृत्तं मंदाग्नेस्त्रिदोषं द्विपथं त्यजेत्।

अर्थ–रक्तपित्त चाहै ऊर्ध्वगामी हो चाहै अधोगामी हो, चाहै एक दोषानुगामी हो, जो अत्यन्त शांत हो होकर फिर कुपित होजाता है वह असाध्य होने के कारण त्याज्य है। और जो रक्तपित्त एक मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग में प्रवृत्त होजाता है अर्थात ऊर्ध्वगामी अधोमार्ग में प्रवृत्त होता है, और अधोमार्गगामी ऊर्ध्वगमन करता हो तो भी असाध्य होता है। जो रक्तपित्त अधोमार्गसे अथवा ऊर्ध्वमार्गसे अत्यन्त प्रवृत्त होता है वह भी त्याज्य है, क्योंकि रक्त प्राणों का आधार है, कहा भी है जीवितं प्राणिनां तत्र रक्ते तिष्ठति तिष्ठतीति मंदाग्नि-वाले का अधोगामी वा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त भी असाध्य होता है, क्योंकि इसमें चिकित्सा विपरीत होती है अर्थात् मंदाग्निवाले की अग्नि को बढाने के लिये कटु, अम्ल, उष्ण और तीक्ष्ण औषधें हित हैं और रक्तपित्त की शांति के लिये जो कुछ किया जाता है वह इसके विपरीत होता है। त्रिदोषज रक्तपित्त भी चाहे ऊर्ध्वगामी हो चाहै अधोगामी, असाध्य होता है क्योंकि न तो उस में वमन दे सकतेहैं न विरेचन। एकही समय में द्विमार्गगामी रक्तपित्त जो ऊर्ध्वगामी भी हो और अधोगामी भी हो वह भी त्याज्य होता है क्योंकि कोई प्रतिलोम औषध ही नहीं है।

रक्तपित्तज विरेचनादि।

संतर्पणोत्थं बलिनो बहुदोषस्य साधयेत्॥
ऊर्ध्वभागं विरेकेण वमनेन त्वधोगतम्।
शमनैर्बृंहणैश्चान्यल्लंघ्यबृंहानवेक्ष्य च॥४॥

अर्थ–बलवान् और वातादि दोषों की अधिकतासे आक्रांत मनुष्य के संतर्पण से उत्पन्न हुए ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें विरेचन और अधोगामी रक्तपित्तमें वमन देना चाहिये तथा दुर्बल अल्पदोषाक्रांत रोगी के लंघन से उत्पन्न हुए ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में शमन द्वारा और अधोगामी रक्तपित्त में बृंहणद्वारा चिकित्सा करे। किन्तु शमन वा बृंहणद्वारा चिकित्सा करनेके समय इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि रोगी लंघन योग्य है वा बृंहणयोग्यहै, क्योंकि लंघन से उत्पन्न हुए अधोगामी रक्तपित्तमें भी शमनद्वारा तथा बृंहण से उत्पन्न ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें भी लंघनद्वारा चिकित्सा की जातीहै।

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें रसादि।

ऊर्ध्वं प्रवृत्ते शमनौ रसौ तिक्तकषायकौ।
उपवासश्च निःशुंठीषडंगोदकपायिनः॥५॥

अर्थ–ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में शमन करने वाले तिक्त और कषाय रस, उपवास और सोंठ रहित षडंग पानी देना चाहिये।

अधोगामी में बृंहण।

अधोगे रक्तपित्ते तु बृंहणो मधुरो रसः।

अर्थ–अधोगामी रक्तपित्तमें बृंहणकारक मधुररसका प्रयोग करे।

ऊर्ध्वगामी में तर्पणादि।

ऊर्ध्वगे तर्पणं योज्यंप्राक् च पेयात्वधोगते।६।

अर्थ–ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण और अधोगामी में पेया देवे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अशुद्धरक्त के धारणमें निषेध ।

अश्नतो बलिनोऽशुद्धं न धार्यं तद्धि रोगकृत् ।
धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवच्छीघ्रकारि तत् ॥

अर्थ–जिस रोगी में भोजन की शक्ति और शरीरमें बलहो तो निकलते हुए अशुद्ध रक्तको न रोकना चाहिये, क्योंकि इसके रोकनेसे सिराव्यधविधि अध्यायमें कहे हुए विसर्प, विद्रधि, और प्लीहादि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजातेहैं । किन्तु यदि रोगी उक्त लक्षणों से विपरीत लक्षणवाला हो अर्थात् दुर्बलहो और उसमें भोजन करनेकी शक्ति नहो तो दूषित रक्तको भी शीघ्र बंद करदेना चाहिये क्योंकि रक्तके बन्द न करने से यह अग्निके समान शीघ्र प्राणनाशक होताहै ।

रक्तपित्त में अवलेह ।

तृवृच्छ्यामाकषायेण कल्केन च सशर्करम् ।
साधयेद्विधिवल्लेहं लिह्यात्पाणितलं ततः ॥

अर्थ–निसौथ, श्यामानिसौथ, इन दोनों के कषायमें इन्हींका कल्क मिलाकर अवलेह बनालेवे । इसमें मिश्री मिलाकर दो दो तोले चाटता रहै, इससे रक्तपित्त जाता रहताहै ।

अन्य औषध ।

तृवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः संनिपातोर्ध्वरक्तशोफज्वरापहः ॥
तृवृत्समसिता तद्वत् पिप्पली पादसंयुता ।

अर्थ–निसौथ, त्रिफला, श्यामानिसौथ पीपल, शर्करा, शहत इन सबको मिलाकर विधिपूर्वक मोदक तयार करले, इनके सेवन से संनिपातिक ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त शोथ और ज्वर जातेरहते हैं । तथा समान भाग निसोथ और मिश्री लेकर चतुर्थांश पीपल मिलाकर मोदक बनालेवे । इनके सेवन से भी उक्तरोग नष्ट होजाते हैं ।

अधोगामी रक्तपित्त की चिकित्सा ।

वमनं फलसंयुक्तं तर्पणं ससितामधु ॥ १० ॥
ससितं वा जलं क्षौद्रयुक्तं वा मधुकोदकम् ।
क्षीरं वा रसमिक्षोर्वा

अर्थ–अधोगामी रक्तपित्तमें वमन कराने के निमित्त शर्करा और मधुमिश्रित मेनफल के तर्पणका प्रयोग करे । अथवा शर्कराका जल, वा मधुमिश्रित जल, वा मुलहटी का क्वाथ, वा दूध वा ईखका रस इनमें से किसी के साथ मेनफल मिलाकर वमन के लिये देवै ।

शुद्धहोने के पीछेकी विधि ।

शुद्धस्यानंतरो विधिः ॥ ११ ॥
यथास्वं मंथपेयादिः प्रयोज्यो रक्षता बलम् ।

अर्थ–ऊर्ध्वग और अधोग रक्तपित्तों में क्रमसे विरेचन और वमनद्वारा शुद्ध होने के पीछे रोगीको यथाविधि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में मंथादि और अधोगामीमें पेयादि देवै, परन्तु रोगीके बलपर ध्यान रखना चाहिये ।

मंथ बनानेकी विधि ।

मंथो ज्वरोक्तो द्राक्षादिः पित्तघ्नैर्वा फलैः कृतः ।
मधुखर्जूरमृद्वीकापरूषकसितांभसा ।
मंथो वा पंचसारेण सघृतैर्लाजसक्तुभिः ॥
दाडिमामलकाम्लो वा-
मंदाग्नयम्लाभिलाषिणाम् ।

अर्थ–ज्वरकी चिकित्सा में कहा हुआ मंथ वा द्राक्षा, मधूक, मधुकआदि पित्त नाशक फलों द्वारा सिद्ध किया हुआ मंथ अथवा दाख, आमला, खंभारी और मधुकादि फलों से सिद्ध किया हुआ मंथ देना चाहिये । अथवा शहत, खिजूर, दाख, फालसा और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शर्करा इन पांचों द्रव्यों के बनेहुए पंचसाराख्य नामक मंथमें घी और धानकी खीलों का सत्तु मिलाकर देवै। अथवा जिस रोगीका खटाई पर मन चलता हो उसे ऊपर लिखे हुए पंचसाराख्य मंथमें अनारदाने वा आमले की खटाई मिलाकर देवै।

पेयाकी विधि।

कमलोत्पलकिंजल्कपृश्निपर्णीप्रियंगुकाः ॥
उशीरं शाबरं रोध्रं शृंगबेरं कुचंदनम्।
हीबेरं धातकीपुष्पं बिल्वमध्यं दुरालभा ॥
अर्धार्धे विहिता पेया वक्ष्यंते पादयोगिकाः।
मूर्निबसेव्यजलदा मसूराः पृश्निपर्ण्यपि ॥
विदारिगंधा मुद्गाश्च बला सर्पिर्हरेणुका।

अर्थ–(१) कमल केसर, उत्पलकेसर, पृश्निपर्णी और प्रियंगु, (२) खस, सावर लोध, अदरख और लालचंदन, (३) नेत्रवाला, धायके फूल, बेलगिरी और धमासा। इन आधे आधे श्लोकोंमें कहेहुए तीन योगों से पेया तयार करले। तथा (१) चिरायता, खस और मोथा, (२) मसूर, और पृश्नपर्णी (३) विदारीगंध और मूंग, (४) खरैटी, घृत और रेणुका इन चौथाई चौथाई श्लोकोंमें कहे हुए चार प्रयोगों द्वारा सिद्ध की हुई पेया का सेवन करे।

मांसके सिद्धकरनेकी रीति।

जांगलानि च मांसानि शीतवीर्याणि साधयेत्
पृथक्पृथग्जले तेषां यवागूः कल्पयेद्रसे।
शीताः सशर्कराक्षौद्रास्तद्वन्मांसरसानपि ॥
ईषदम्लाननम्लान्वा घृतभृष्टान्सशर्करान्।

अर्थ–ऊपर कहे हुए पेयाके उपयोगी पृथक् पृथक् कषायोंके साथ शीतवीर्यवाले शशकादि जांगल जीवोंका मांस सिद्ध करे। फिर इस मांसरसमें यवागू पकावै। इस शीतल यवागूमें मिश्री और शहत मिलावै, और इसको भोजन के लिये देवै। उक्तविधि से सिद्ध कियेहुए मांसरस को भी घी में भूनकर शर्करा मिलाकर देवै तथा खटाई चाहनेवाले को इसमें अनारदाने वा आमले की खटाई मिलाकर देवै, और जिस को खटाईपर इच्छा न हो उसे बिना खटाई ही देवै

रक्तपित्त में शूकशिंबी धान्यादि।

शूकशिंबीभवं धान्यं रक्ते शाकं च शस्यते ॥
अन्नस्वरूपविज्ञाने यदुक्तं लघु शीतलम् ॥

अर्थ–रक्तपित्त में शूक और शिंबी से उत्पन्न धान्य तथा शाक हित होता है तथा अन्नस्वरूप विज्ञानीयाध्याय में जो जो हलका और शीतल है वह सब हित है।

पानी का प्रकार।

पूर्वोक्तमंबुपानीयं पंचमूलेन वा श्रृतम् ॥
लघुना श्रृतशीतं वा मध्वंभो वा फलांबु वा

अर्थ–शुंठी रहित पूर्वोक्त षडंग पानी, वा लघुपंचमूल डालकर औटाया हुआ ठंडा जल, वा केवल औटाया हुआ ठंडा जल, अथवा मधुमिश्रित जल, अथवा पित्तनाशक द्राक्षादि फलों द्वारा सिद्ध जल रक्त पित्त में हितकारी होता है। जलपाक की विधि इस तरह लिखी हैं कि "कर्षं गृहीत्वा द्रव्यस्य क्वाथयेत्प्रास्थिकेमासि। अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं जलपाके त्वयंविधिरिति।

शशादि का मांस।

शशः सवास्तुकः शस्तो विबंधे तित्तिरिः पुनः
उदुंबरस्य निर्यूहे साधितो मार्दतेऽधिके।
प्लक्षस्य बर्हिणस्तद्वन्न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-रक्तपित्त रोगी के मलका विबंध होने पर बथुए के शाक के साथ खर्गोश का मांस देना हित है। बातकी अधिकता में गूलर के क्वाथ के साथ तीतर का मांस, पाकड के क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ मोरका मांस, तथा बड के क्वाथ के साथ मुर्गे का मांस सिद्ध करके देना हितकारीहै।

रक्तपित्तमें वर्जित।

"यत्किंचिद्रक्तपित्तस्य निदानं तच्च वर्जयेत्" ॥ २३ ॥

अर्थ-जिन२ कारणोंसे रक्तपित्त उत्पन्न हुआ हो उन आहारविहारादि को त्याग देना चाहिये।

अन्यउपाय।

घासारसेन फलिनी मृद्वोध्रांजनमाक्षिकम्।
पित्तासृक् शमयेत्पीतं निर्यासो वाऽटरूषकात् ॥ २४ ॥
शर्करामधुसंयुक्तः केवलो वा श्रुतोऽपि वा।
वृषः सद्यो जयत्यस्रं स ह्यस्य परमौषधम्

अर्थ-अडूसे के रसके साथ प्रियंगु, सौराष्ट्रमृत्तिका, (इसके अभावमें पक्व पर्पटी लोध, रसौत, और शहत इनके पीनेसे रक्तपित्त शांत होजाताहै। अथवा अडूसे का रस शहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्त पित्त दूर होजाताहै। अथवा केवल अडूसे का रस वा अडूसे का क्वाथ पीनेसे भी रक्त पित्त शीघ्र नष्ट होजाताहै। अडूसा रक्तपित्त की परम औषधहै।

रक्तपित्त में तीन क्वाथ।

पटोलमालतीनिंबचंदनद्वयपद्मकम्।
रोध्रो वृषस्तंदुलीयः कृष्णामृन्मर्दयंतिका ॥
द्राक्षावरी गोपकन्याकाकोल्यौ मधुयष्टिका।
रक्तपित्तहरा काथास्त्रयः समधुशर्कराः ॥

अर्थ-(१) परवल, मालती, नीम, लालचंदन सफेद चंदन, और पदमाख, [२] लोध, अडूसा, चौलाई, कालीमृत्तिका और मदयंती [३] सितावर, अनंतमूल, काकोली, क्षीरकाकोली, और मुलहटी। आधे २ श्लोक में कहेहुए तीन काथों को शहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त जातारहता है। यहां हरा होनेपर भी अडूसा दूना नहीं डालना चाहिये। तंत्रांतर में कहा भी है कि वासाकुटज कूष्मांडशत पुष्पासहाचराः। नित्यमार्द्राः प्रयोक्तव्यास्तथापि द्विगुणा न ते इति।

ढाककी छालका काढा।

पलाशवल्ककाथो वा सुशीतः शर्करान्वितः
पिबेद्वा मधुसर्पिर्भ्यां गवाश्वशकृतो रसम् ॥

अर्थ-ढाककी छालके काढेको अत्यंत ठंडा करके चीनी मिलाकर पीवे, अथवा गौ का गोबर और घोडे की लीदके रसमें शहत और घी मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त शांत होजाता है।

ग्रथितरक्तपित्त में अवलेह।

सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत्।

अर्थ-रक्तपित्त में खूनकी गांठ होजाने पर कबूतरकी बीटमें शहत मिलाकर चाटना चाहिये।

अतिस्रावीरक्तपित्त की चिकित्सा।

अतिनिःसृतरक्तश्च क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ॥
जांगलं भक्षयेद्वाजमामपित्तयुतं यकृत्।

अर्थ-रक्तपित्त में खूनके अधिक निकलने पर जांगल पशुका रुधिर शहत डालकर पीवे, अथवा बकरे के कच्चे यकृतको उस के पित्तेके साथ खाना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तपित्तनाशक कषाय।

चंदनोशीरजलदलाजमुद्गकणायवैः ॥
बलाजले पर्युषितैः कषायो रक्तपित्तहा।

अर्थ-चंदन, खस, मोथा, धानकी खील, मूंग, पीपल और जौ इनसब को रातभर पानी में भिगोदे, दूसरे दिन खरैटी के जल में इनका काढा करले इससे रक्तपित्त जाता रहता है।

रक्तकी अतिप्रवृत्ति का उपाय।

प्रसादश्चंदनांभोजसेव्य मृद्वृष्टलोष्टजः ॥
सुशीतः ससिताक्षौद्रः शोणितातिप्रवृत्तिजित्।

अर्थ-चंदन, कमल, खस, सौराष्ट्रमृत्ति का, और मंडूर इन सबद्रव्यों के काढे को अत्यंत ठंडा करके शहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तकी अतिप्रवृत्ति दूर होजातीहै

इक्षु जल।

आपोथ्य घा नवे कुंभे स्रावयेदिक्षुगंडिकाः॥
स्थितं तद्वत्समाकाशे रात्रौ प्रातः श्रुतं जलम्
मधुमृद्वीकसांभोजकृतोत्तंसं च तद्गुणम् ॥

अर्थ-ईखकी गंडेलियों को अच्छी तरह कूटकर मिट्टीके नवीन पात्रमें जलभर कर डालदे और इस घडे के मुखपर कीडादि पडने के भयसे कपडा ढककर रात्रिमें खुली हुई जगहमें रखदे। प्रातःकाल इस जलको पकाकर छानले और इसमें शहत मिलाकर विकासित कमलको उसपर लगादे। वहजल पूर्ववद् गुणकारी है।

अन्य कषाय।

"ये च पित्ते ज्वरे प्रोक्ताः कषायास्तंतोऽथ च योजयेत्"।

अर्थ-पित्तज्वरमें जो जो कषाय कहेगये हैं उनमें शहत मिलाकर रक्तपित्त में सेवन करने चाहियें।

छागादिपय।

कषायैर्विविधैरेभिर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे।
रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः॥
युंज्याच्छागं श्रृतं तद्वद्व्यं पंचगुणेऽभसि।
पंचमूलेन लघुना श्रृतं वा ससितामधु॥
जीवकर्षभकाद्राक्षावलागोक्षुरनागरैः।
पृथक्पृथक्कृतं क्षीरं सघृतं सितयाऽथवा॥

अर्थ-ऊपर कहे हुए अनेक प्रकारों के कषाय से जठराग्नि के प्रदीप्त होनेपर और कफके विजित होनेपर भी जो रक्तपित्त शांत न हो तो वाताधिक्य रक्तपित्त में पांचगुने जल में बकरी वा गौका दूध औटाकर पिलाना चाहिये। अथवा लघुपंचमूल डालकर औटाया हुआ गौका दूध छानकर मिश्री और मधु मिलाकर देने से रक्तपित्त शांत हो जाता है, अथवा जीवक, ऋषभक, दाख, खरैटी, गोखरू और सोंठ इनमें से अलग अलग हरएक के साथ औटाया हुआ दूध घृत और मिश्री मिलाकर पीना रक्तपित्त में हित है।

मूत्रमार्गगामी रक्तकी चिकित्सा।

गोकंटकाभीरुश्रृतं पर्णिनीभिस्तथा पयः।
हंत्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम्॥

अर्थ-गोखरू और सितावर डालकर पकाया हुआ दूध, अथवा चारों पर्णी (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी और माषपर्णी) इनके साथ पकाया हुआ दूध वेदना सहित रक्त को दूर करता है तथा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशेषकरके मूत्रमार्गगामी रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होजाता है।

पुरीषमार्गगामी रक्तका उपाय।

"विण्मार्गगे विशेषेण हितं मोचरसेन तु।
वटप्ररोहैः शृंगैर्वा शुंग्यदीच्योत्पलैरपि॥

अर्थ–जो रक्तपित्त गुदामार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ होतो मोचरसके साथ पकायाहुआ दूध विशेष हितकारी है अथवा बटवृक्षके अंकुरों के साथ, अथवा बट की कोंपलों के साथ अथवा सोंठ, नेत्रवाला और कमलके साथ पकाया हुआ दूध भी हितकारी है।

अन्यचिकित्सा।

रक्तातिसारदुर्नामचिकित्सां चाऽत्र-
कल्पयेत्।

अर्थ–रक्तपित्तमें रक्तातिसार और रक्तार्श में जो जो चिकित्सा कही गई हैं वे भी करनी चाहिये।

कषायपानानंतरभोजन।

पीत्वा कषायान् पयसा भुंजीत पयसैव च॥
कषाययोगैरेभिर्वा विपक्वं पाययेद्घृतम्।

अर्थ–रक्तपित्त रोगमें पहिले कहेहुए कषायोंका दूधके साथ पान करके दूधके साथ ही भोजन करे और इन्हीं कषायों के द्रव्यों के साथ पकायाहुआ घृत रक्तपित्तरोगीकोदेवै

अन्यघृत।

समूलमस्तकं क्षुण्णं वृषमष्टगुणेऽभसि॥
पक्त्वाष्टांशावशेषेण घृतं तेन विपाचयेत्।
पुष्पगर्भं च तच्छीतं सक्षौद्रं पित्तशोणितम्
पित्तगुल्मज्वरश्वासकासहृद्रोगकामलाः
तिमिरभ्रमवीसर्पस्वरसादांश्च नाशयेत्॥

अर्थ–अडूसेकी जड और पत्तोंके साथ कूटकर अठगुने जलमें अग्नि पर चढादे जब औटते औटते आठवां भाग रहजाय तब इसे छानकर इसमें अडूसे के फूल डालकर घृतको पकावै। फिर ठंडा होनेपर इसमें मधु मिलाकर सेवन करावै। इससे रक्तपित्त गुल्म ज्वर, श्वास, खांसी, हृद्रोग, कामला, तिमिर, भ्रम, विसर्प, और स्वरशैथिल्य नष्ट होजाता है

रक्तपित्त पर अन्य घृत।

पालाशवृंतस्वरसे तद्गर्भे च घृतं पचेत्।
सक्षौद्रं तच्च रक्तघ्नं तथैव त्रायमाणया॥

अर्थ–ढाक के डंठलों के स्वरसमें ढाक के डंठलों का कल्क डालकर पकाया हुआ घृत अथवा इसी रीति से त्रायमाण से पकापा हुआ घृत रक्तपित्त को नष्ट कर देता है।

रक्तविशेष में उपाय।

रक्ते सपिच्छे सकफे ग्रथिते कण्ठमार्गगे।
लिह्यान्माक्षिकसर्पिर्भ्यां क्षारमुत्पलनालजम्

अर्थ–रक्तपित्तमें जब रक्त सपिच्छा अर्थात् सेमर के गोंद के सदृश होजाता है, तथा कफयुक्त, गांठदार और कंठमें होकर प्रवृत्त होता है, तब कमलनाल के क्षारको मधु और घृत मिलाकर चाटै। (शंका) क्षार का स्वभाव तीक्ष्णादि गुणयुक्त है फिर रक्तपित्त में इसका प्रयोग क्यों कियागया है (उत्तर) कमलका स्वभाव शीतल है इस लिये कमल से उत्पन्न क्षारका स्वभाव भी शीतल होता है।

अन्य अवलेह।

पृथक्पृथक् तथांभोजरेणुश्यामामधूकजम्।

अर्थ–कमलरेणु, निसोथ और मुलहटी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनको अलग अलग मधु और घृतके साथ चाटै।

गुदागामी रक्तमें वस्ति।

" गुदागमे विशेषेण शोणिते बस्तिरिष्यते ॥

अर्थ–गुदाद्वारा निकलनेवाले रक्तमें विशेष करके वस्तिका प्रयोग किया जाता है।

नासागामी रक्तमें नस्य।

घ्राणगे रुधिरे शुद्धे नावनं चानुषेचयेत्।
कषाययोगान् पूर्वोक्तान्-
क्षीरेक्ष्वादिरसाप्लुतान् ॥ ४६ ॥
क्षीरेद्रीन्ससितांस्तोयं केवलं वा जलं हितम
रसो दाडिमपुष्पाणामम्रोत्थः-
शाड्वलस्य वा ॥ ४७ ॥

अर्थ–नासिका द्वारा शुद्ध रक्त निकालने पर नस्य देना चाहिये, इसमें दूध और इक्षुरस में वासकादि पूर्वोक्त क्वाथ मिलाकर देना चाहिये। अथवा क्षीरा मांसरस, घृत आदि मिश्री डालकर, अथवा चीनी मिला हुआ जल, अथवा केवल जल, अथवा अनार के फूलों का रस, अथवा आम के फूलों का रस, अथवा हरी दूबका रस, इनमें से चाहे जिसकी नस्य देवै।

अन्य औषध।

कल्पयेच्छीतवर्गं च प्रदेहाभ्यंजनादिषु।

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि रक्तपित्त रोगमें प्रलेप और अभ्यंजनादि शीतवीर्यवाली औषध अपनी बुद्धिसे कल्पना करलेवे।

साधारण उपाय।

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरंतश्च भेषजम्।
रक्तपित्ते हितम् तच्च क्षतक्षीणे हितम्-
च यत् ॥ ४८ ॥

अर्थ–पित्तजज्वर में जो बाह्य और आभ्यंतर प्रयोग कहेगयेहै तथा क्षत और क्षीण में जो जो प्रयोग कहेगयेहैं वे सब रक्तपित्त में हितकारी होतेहैं।

इतिश्रीअष्टांगहृदयसंहितायांभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने रक्तपित्तचिकित्सितंनाम द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

अथाऽतः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से कासचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

कास में स्नेहादि उपचार।

" केवलानिलजं कासं स्नेहैरादावुपाचरेत्॥
वातघ्नसिद्धैःस्निग्धैश्च पेयायूषरसादिभिः।
लेहैर्धूमैस्तथाभ्यंगैः स्वेदसेकावगाहनैः।
बस्तिभिर्बद्धविड्वातं सपित्तं त्वौर्ध्वभक्तिकैः
घृतैः क्षीरैश्च सकफं जयेत्स्नेहविरेचनैः।

अर्थ–केवल वात से उत्पन्न हुई खांसी में प्रथमही वातनाशक औषधियों से सिद्ध किया हुआ स्नेह देना चाहिये, तथा स्निग्धपेया, यूष, मांसरस, अवलेह, धूमपान, अभ्यंग, स्वेद, परिषेक, अवगाहन, इन सब उपायों से कासरोग की चिकित्सा करनी चाहिये, खांसी के साथ मलकी बद्धता हो तो वस्ति का प्रयोग करे। पित्तयुक्त वातकी खांसी में पेयापान के अनंतर वातनाशक औषधों से सिद्ध किया हुआ घृत और दुग्ध पान करावे। कफयुक्त वातकी खांसी में स्नेह विरेचन देवै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नेहों का बर्णन ।

गुडूचीकंटकारीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे ॥
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ।

अर्थ–गिलोय और कटेरी प्रत्येक तीस पल लेकर यथोक्त रीति से काढा कर लेवै। इसमें एक प्रस्थ घृत डालकर पकावै, इस घृतका मात्रानुसार प्रयोग करने से वातकास नष्ट होजाती है और अग्नि बढतीहै।

अन्य घृत ।

क्षाररास्नावचाहिंगुपाठायष्ट्याह्वधान्यकैः ॥
द्विपाणैः सर्पिषः प्रस्थं पंचकोलयुतैः पचेत् ।
दशमूलस्य निर्यूहे पीतो मंडानुपायिना ॥
सकासश्वासहृत्पार्श्वग्रहणीरोगगुल्मनुत् ।

अर्थ–जवाखार, रास्ना, वच, हींग, पाठा, मुलहटी, धनियां और पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) प्रत्येक दो दो शाण, घृत एक प्रस्थ और दसमूल का काढा चार प्रस्थ । इनको विधिपूर्वक पकाकर घृत तय्यार करले और मंडका अनुपान करे । इस घृत से खांसी श्वास, हृद्रोग, पसली का दर्द, ग्रहणी रोग और गुल्मरोग जाते रहते हैं ।

अन्य घृत ।

द्रोणेऽपां साधयेद्राास्नादशमूलशतावरीः ॥
पलोन्मिता द्विकुडवं कुलत्थं बदरं यवम् ।
तुलार्धं चाजमांसस्य तेन साध्यम्-
घृताढकम् ॥ ७ ॥
समक्षीरं पलांशैश्च जीवनीयैः समीक्ष्य तत्
प्रयुक्तं वातरोगेषु पाननावनबस्तिभिः ८ ॥
पंचकासान् शिरःकंपं योनिवंक्षणवेदनाम् ।
सर्वांगैकांगरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलान्-
जयेत् ॥ ९॥

अर्थ–रास्ना, दशमूल, और सितावर प्रत्येक एक पल अर्थात् चार चार तोले, कुलथी, बेर और जौ प्रत्येक दो कुडव अर्थात् सोलह तोला, बकरे का मांस २०० तोला इन सबको एक द्रोण अर्थात् १६ सेर जलमें पका लेवै । जब काढा तयार होजाय तब एक आढक घृत डालकर पकावै, एक आढक अर्थात् २५६ तोले दूध डालदे और जीवनीय गण के द्रव्य, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवंती और मुलहटी प्रत्येक एक पल । इनका कल्क डालकर घृत पकावे । इस घृत का वातरोग में देश, काल, और रोगी के बलाबल का विचार करके पान, नस्य और वास्ति द्वारा प्रयोग करने से पांच प्रकार की खांसी, शिरकंप, योनिवेदना, वंक्षणवेदना, सर्वांगरोग, एकांगरोग, प्लीहा और ऊर्ध्ववात ये सब रोग नष्ट होजाते हैं ।

कासपर विदार्यादि घृत ।

विदार्यादिगणक्वाथकल्कसिद्धं च कासजित्

अर्थ–विदार्यादि गणोक्त द्रव्यों के क्वाथ और कल्कके साथ सिद्ध किया हुआघी कासनाशक होता है ।

कासपर अवलेह ।

अशोकबीजक्षवकजंतुघ्नांजनपद्मकैः ॥१०॥
सविडैश्च घृतं सिद्धं तच्चूर्णं वा घृतप्लुतम्
लिह्यात्पयश्चानुपिबेदाजं कासादिपीडितः ॥

अर्थ–अशोकबीज, ओंगा, वायविडंग, सौवीरांजन, पदमाख, और बिडनमक इनके द्वारा सिद्ध कियाहुआ घी अथवा उक्त द्रव्यों का चूर्ण घीमें सानकर चाटना कासरोग में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपकारी होता है। ऊपर से बकरीका दूध पीना चाहिये।

बिडंगादि चूर्ण।

बिडंगं नागरम् रास्नापिप्पलीहिंगुसैंधवम्।
भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिबेद्वा घृतमात्रया
सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिध्माहताग्निषु

अर्थ–वायविडंग, सोंठ, रास्ना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भाडंगी और जवाखार इन का चूर्ण घृत मिलाकर मात्रानुसार देवै। इस से कफज कास, वातज कास, श्वास, हिध्मा और मंदाग्नि नष्ट होजाते हैं।

वातजकास में दुरालभादि लेह।

दुरालभां शृंगवेरं शठीं द्राक्षां सितोपलाम्॥
लिह्यात्कर्कटशृंगीं च कासे तैलेन वातजे।

अर्थ–धमासा, अदरख, कचूर, दाख, मिश्री और काकडासींगी इनके चूर्ण को तेलमें मिलाकर वातज खांसी में चाटै।

उक्तरोगपर दुःस्पर्शादि चूर्ण।

दुस्पर्शीं पिप्पलीं मुस्तां भार्गीं कर्कटकीं-
शठीम्॥ १४॥
पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितान्यवलेहयेत्।
तद्वत्सकृष्णां शुंठीं च सभार्गीं तद्वदेव च॥

अर्थ–धमासा, पीपल, मोथा, भाडंगी, काकडासींगी और कचूर इनके चूर्णको पुरानेगुड और तेलमें मिलाकर वातज खांसी में चाटै। तथा पीपल और सोंठके चूर्णको अथवा भांडंगी और सोंठके चूर्णको पुराने गुड और तेलके साथ चाटै।

अन्य चूर्ण।

पिबेच्च कृष्णां कोष्णेन सलिलेन ससैंधवाम्
मस्तुना सक्तितां शुंठीं दध्ना वा
कणरेणुकाम्॥ १८॥

अर्थ–सेंधानमक और पीपल इनको महीन पीसकर गुनगुने जलके साथ फांके। अथवा सोंठ और मिश्री दहीके तोडके साथ, अथवा पीपल के चूर्णको दहीके साथ सेवन करनेसें कासरोग दूर होजाता है।

अन्य उपाय।

पिबेद्वदरमज्ज्ञो वा मदिरादधिमस्तुभिः।
अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैंधवम्॥

अर्थ–बेरकी मज्जाको मदिरा, दही वा दही तोडके साथ, अथवा पीपलके कल्कको घीमें भूनकर उसमें सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से कासरोग जाता रहता है।

कासपर धूमपान।

कासी सपीनसो धूपं स्नैहिकं विधिना पिबेत्
हिध्माश्वासोक्तधूमांश्च क्षीरमांसरसाशनः

अर्थ–खांसी और पीनससे पीडितरोगी विधिपूर्वक स्नैहिक धूमपान करे। तथा हिध्मा और श्वासमें कहेहुए भी धूमपान करे। दूध और मांसरस का अनुपान करे।

कास में आहार।

ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान्।
रसैर्मांसात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान्॥

अर्थ–ग्राम्य, आनूप और जलचर जीवों के मांसरस के साथ, अथवा उरद और केंच के बीजों के यूष के साथ शालीचांवल जौ, गेंहूं और साठी चांवल इनमें जो अनुकूल हो वही खाने को दे।

वातज कास में पेया।

यवानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशठिपौष्करैः॥
सिद्धां स्निग्धाम्ललवणां पेयामनिलजे पिबेत्
कटिहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिध्माप्रणाशनीम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अजवायन, पीपल, बेलगिरी का गूदा, सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, एरिन-पर्णी ढाक, कचूर, और पुष्करमूल इनके साथ तयार की हुई पेया में घी, खटाई और नमक डालकर पान करावे। इससे वात खांसी, कमरका दर्द, हृत्शूल, पसली का दर्द, कोष्ठ का दर्द, श्वास और हिचकी जाते रहते हैं।

अन्य पेया ।

दशमूलरसे तद्वत् पञ्चकोलगुडान्विताम्।
पिबेत्पेयां समातलां क्षैरेयीं वा ससैंधवाम्

अर्थ–वातज खांसी में रोगी को दशमूल के क्वाथ में सिद्धकी हुई पेया में पंचकोल का चूर्ण और गुड मिलाकर पीने को दे अथवा दूध के साथ पकाई हुई पेया में तिल और सेंधा नमक मिलाकर पान करावै।

मांसयुक्त पेया ।

मात्स्यकौक्कुटवाराहैर्मांसैर्वांसाज्यसैंधवाम्

अर्थ–मछली, मुर्गे वा शूकरके मांसके साथ सिद्ध की हुई पेया में घी और सेंधा नमक डालकर पान करावै।

वातज खांसी में वास्तुकादि ।

वास्तुको वायसीशाकम् कासघ्नः सुनिषण्णकः ॥ २३ ॥
कण्टकार्या फलं पत्रं बालं शुष्कं च मूलकम्
स्नेहास्तिलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः
दधिमस्त्वारनालाम्लफलांबुमदिराः पिबेत्।

अर्थ–वातज कास में बथुए का शाक, मकोय, लिसौडे के पत्तों का शाक, चौपतियां, कटेरी के फल और पत्ते, कच्ची सूखी मूली, तैलादिक स्नेह, दूध, ईखका रस और गुड इनसे बने हुए खाने के पदार्थ हितकारी होते हैं। दही का तोड, खट्टी कांजी, फलांबु और मदिरा ये भी सब हितकारी होते हैं।

पित्तकास में वमन ।

" पित्तकासे तु सकफे वमनम् सर्पिषा-
हितम् ॥ २५ ॥
तथा मदनकाश्मर्यमधुककथितैर्जलैः।
फलयष्ट्याह्वकल्कैर्वा विदारीक्षुरसाप्लुतैः,,

अर्थ–कफयुक्त पित्तज कासमें घी के द्वारा वमन कराना हित है, यह घृत मेनफल के क्वाथ में सिद्ध किया जाता है। अथवा मेनफल, खंभारी, और मुलहटी के क्वाथ को पान कराके, अथवा विदारीकंद और ईखके रसमें मेनफल और मुलहटी का कल्क मिलाकर वमन कराना हितकारी है।

पित्तकास में निसोथ ।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम्।
युंज्याद्विरेकाय युतां घनश्लेष्मणि तिक्तकैः॥

अर्थ–पित्तकास में कफके पतला होने पर विरेचन कराने के निमित्त मधुररसयुक्त निसोथका चूर्ण देवै और कफके गाढे होने पर तिक्तरस के साथ निसोथ का चूर्ण देना चाहिये।

हृतदोष में पेयादि क्रम ।

हृतदोषो हिमं स्वादु स्निग्धं संसर्जनं भजेत्
घने कफे तु शिशिरं रूक्षं तिक्तोपसंहितम् ॥

अर्थ–विरेचन के पीछे अर्थात् विरेचन द्वारा दोषके दूर होजानेपर शीतल, मधुर और स्निग्ध पेयादिक्रम का सेवन करे। परन्तु कफके गाढे होने पर शीतल, रूक्ष और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तिक्तरसान्वित संसर्जन का सेवन करै। विरेचन के पीछे पेयादि पान के क्रम को संसर्जन कहते हैं।

पित्तकास में अवलेह।

लेहः पैत्ते सिताधात्रीक्षौद्रद्राक्षा हिमोत्पलैः
सकफे साम्द्मरिचः सघृतः सानिले हितः
मृद्वीकार्धशतं त्रिंशत्पिप्पली शर्करा पलम्।
लेहयेन्मधुना गोवा क्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥

अर्थ–पित्तज कास में चीनी, आमला, मधु, द्राक्षा, चंदन और नीलकमल, इन सब द्रव्यों से बनाया हुआ अवलेह हितहै। कफान्वित पित्तकास में मोथा और काली मिरचका अवलेह हित है। वातान्वित पित्त कास में ऊपर के द्रव्यों में घृत डालकर अवलेह बनावे। अथवा द्राक्षा पचास, पीपल तीस, और चीनी चार तोला इन सब द्रव्यों को पीसकर शहत मिलाकर अवलेह बनावै अथवा दूध पीने वाले गौके बच्चे के गोवरके रसमें शहद मिलाकर पीवै।

अन्य अवलेह।

त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः।
लाजमुस्ताशठीरास्नाधात्रीफलबिभीतकैः३२
शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहो हृद्रोगकासहा।

अर्थ–दालचीनी, इलायची, सोंठ, पीपल, काली मिरच, दाख, पीपलामूल, पुष्करमूल, धानकी खील, नागरमोथा, कचूर रास्ना, आमला, और बहेडा इनके चूर्ण में शर्करा और मधु मिलाकर अवलेह तयार करके सेवन करने से खांसी और हृदय रोग नष्ट होजाते हैं।

अन्य उपाय।

मधुरैर्जांगलरसैर्यवश्यामाककोद्रवाः ३२ ॥
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः
घनश्लेष्मणि लेह्याश्च तिक्तका मधुसंयुताः ॥

अर्थ–मधुर जांगल जीवों का मांसरस, जौ, सौंखिया, कोदों, मुद्गादि यूष, और तिक्त शाकोंके साथ उचित मात्रामें देना गाढे कफवाले पित्तकास में हितकारी है। अथवा तिक्तरसों में मधु मिलाकर सेवन करना भी हित है।

कफान्वित पित्त में शाल्यादि।

"शालयःस्युस्तनुकफे षष्टिकाश्च रसादिभिः
शर्करांभोनुपानार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसाःपयः" ॥

अर्थ–पतले कफान्वित पित्तकास में शाली चांवल, साठी चांवल, मांसरस के साथ देना हित है अनुपान में शर्करामिश्रित जल, दांख और ईखका रस, तथा दूध हितकारी होता है।

पित्तकास में काकोल्यादि।

काकोलीबृहतीमेदाद्वयैः सवृषनागरैः।
पित्तकासे रसक्षीरपेयायूषान् प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ- पित्तकासमें काकोली, बडीकटेरी मेदा, महामेदा, अडूसा, और सोंठ, इन सब औषधों के साथ तयार किया हुआ मांसरस दूध, पेया, और मुद्गादि यूष का उपयोग करना चाहिये।

अन्य चिकित्सा।

द्राक्षां कणां पंचमूलं तृणाख्यं च पचेज्जले।
तेन क्षीरं श्रृतं शीतं पिबेत्समधुशर्करम् ॥
साधितां तेन पेयां वा सुशीतां-
मधुनाऽन्विताम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--दाख, पीपल, तृणपंचमूल, इनको चौगुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, इस क्वाथमें दूधको पकाकर ठंडा करले फिर उसमें शर्करा और मधु मिलाकर पान करे । इसी क्वाथ में पेया तयार करके ठंडी होने पर शहद मिलाकर देवे ।

शठ्यादिरस ।

शठीह्रीवेरबृहतीश कैराविश्वभेषजम् । ३७।
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्छितम् ।

अर्थ–पैत्तिककास में कचूर, नेत्रबाला, बडी कटेरी, सोंठ, इन सब द्रव्योंको जलमें पीसकर वस्त्रमें छानकर इस रसमें शर्करा और घृत मिलाकर पान करावे ।

पित्तकास में अवलेह ।

शर्करां जीवकं मुद्गमाषपर्ण्यौ दुरालभाम् ॥
कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः क्षीरेणाष्टगुणेन तत् ।
पानभोजनलेहेषु प्रयुक्तं पित्तकासजित् ॥
लिह्याद्वा चूर्णमेतेषां कषायमथवा पिबेत् ।

अर्थ–शर्करा, जीवक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, और धमासा, इन सब द्रव्योंका कल्क करके अठगुने दूधमें घृतका पाक करे, फिर इसका पान, भोजन और अवलेह द्वारा प्रयुक्त करनेपर पित्तकास नष्ट होजाताहै । अथवा उक्त द्रव्योंका कषाय वा चूर्ण सेवन करने से पित्तकास जाता रहताहै ।

कफकास की चिकित्सा ।

"कफकासी पिबेदादौ सुरकाष्ठात्प्रदीपितात् ।
स्नेहं परिस्रुतं व्योषयवक्षाराववचूर्णितम् ।
स्निग्धं विरेचयेदूर्ध्वमधो मूर्ध्नि च युक्तितः ॥
तीक्ष्णैर्विरेकैर्बलिनं संसर्गी चास्य योजयेत् ।
यवमुद्गकुलत्थाद्यैरुष्णरूक्षैः कटूत्कटैः । ४२।
कासमर्दकवार्ताकव्याघ्रीक्षारकणान्वितैः ।
धान्वबेलरसैः स्नेहैस्तिलसर्षपनिंबजैः । ४३।

अर्थ–देवदारु की लकडी का एक सिरा जलानेसे दूसरी ओरसे जो स्नेह पदार्थ टपके उसको एक पात्रमें इकट्ठा करले । इसमें सोंठ, पीपल, कालीमिरच, और जवाखार मिलाकर कफ और खांसी से युक्त रोगी को पान करावै । यदि रोगी बलवान हो तो स्नेहपान के अनंतर स्निग्ध रोगी को युक्ति के अनुसार तीक्ष्ण अधोविरेचन, ऊर्ध्वविरेचन और शिरोविरेचन देवे परन्तु रोगी के बलपर दृष्टि रखना आवश्यकीयहै । तदनंतर संसर्गी अर्थात् पेयापानादि क्रमका अवलंबन करे । । संसर्गी करनेका यह क्रमहै कि जौ, मूंग, और कुलथी द्वारा यथायोग्य उष्णवीर्य, रूक्ष और कटुगुणाधिक्य द्रव्य तथा कसौंदी बेंगन, कटेरी, जवाखार और पीपल, जांगल और विलेशय जीवोंका मांसरस, तथा तिल, सरसों और नीमका तेल इन सब द्रव्योंके साथ संसर्गी पान करनेको दे ।

अन्य उपाय ।

दशमूलांबु घर्मांबु मद्यं मध्वंबु वा पिबेत् ।
मूलैः पौष्करशम्याकपटोलैः संस्थितं निशाम् ।
पिबेद्वारि सतक्षौद्रं कालेष्वन्नस्य वा त्रिषु ।

अर्थ–कफकासमें दशमूल का क्वाथ, सूर्यकी किरणोंसे प्रतप्तजल, मद्य और मधु मिश्रित जलपान करे । पुष्करमूल, अमलतास और पटोल की जड इनको रात्रिमें जलमें भिगोदेवै । दूसरे दिन प्रातःकाल मधु मिलाकर पान करे । अथवा भोजन कालके पहिले, बीचमें और अन्तमें पान करे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफकासनाशक तीनप्रयोग।

पिप्पली पिप्पलीमूलं शृंगवेरं विभीतकम् ॥
शिखिकुक्कुटपिच्छानां मषी क्षारो यवोद्भवः।
विशाला पिप्पलीमूलं तृवृता च मधुद्रवाः ॥
कफकासहरा लेहास्त्रयः श्लोकार्धयोजिताः।

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, अदरख, बहेडा (२) मोर और मुर्गेकी पूछका कालाभाग, और जवाखार (३) इन्द्रायण, पीपलामूल, और निसौथ। आधे आधे श्लोकों में कहेहुए इन तीन प्रयोगों का मधुके साथ सेवन करनेसे कफकी खांसी जाती रहतीहै।

अन्य प्रयोग।

मधुना मरिचं लिह्यान्मधुनैव च जोंगकम् ॥
पृथग्रसांश्च मधुना व्याघ्रीवार्ताकभृंगजान्।
कासघ्न्याश्वशकृतः सुरसस्यासितस्य च॥

अर्थ–काली मिरचको शहतके साथ, अथवा अगरको शहतके साथ चाटे। बडी कटेरी, बेंगन और भांगरा इनके अलगर रसोंमें मधु मिलाकर सेवन करे। अथवा घोडेकी लीदको शहद मिलाकर चाटने से कफकी खांसी दूर होजाती है।

देवदार्वादिक तीन अवलेह।

देवदारुशठीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभाः।
पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्री सितोपला
लाजासितोपलासर्पिःशृंगी धात्रीफलोद्भवा।
मधुतैलयुता लेहास्त्रयो वातानुगे कफे।'५०।

अर्थ देवदारु, कचूर, रास्ना, काकडासींगी, और दुरालभा, (२) पीपल, सोंठ, मोथा, हरड, आमला और मिश्री, (३) धानकी खील, मिश्री, घी, शृंगी [काकडा सींगी, वा एक प्रकार का आमला), आधे आधे श्लोकमें कहेहुए ये तीन प्रयोग शहद और तेल मिलाकर चाटनेसे वातान्वित कफ की खांसी जाती रहतीहै।

दाडिमादि चूर्ण।

द्वे पले दाडिमादष्टौ गुडाद्व्योषात्पलत्रयम्।
रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासजित् ॥

अर्थ–अनार दो पल, गुड आठ पल, त्रिकुटा तीन पल इनका चूर्ण रोचन, अग्निसंदीपन, स्वरवर्द्धक, तथा पीनस, श्वास और खांसी को जीतनेवालाहै।

गुडादि चूर्ण।

गुडक्षारोषणकणादाडिमं श्वासकासजित्।
कणात्पलद्वयार्धाक्षकर्षाक्षार्धपलोन्मितम्॥

अर्थ–गुड आठ तोला, जवाखार छः माशे, कालीमिरच एक तोला, पीपल आधा तोला अनार चार तोला इन सबके चूर्ण रोचन, दीपन, पीनस, श्वास, और खांसी को दूर करताहै।

पथ्यादि पाचन।

पिबेज्ज्वरोक्तं पथ्यादि सशृंगीकं च पाचनम्

अर्थ–ज्वर चिकित्सामें कहेहुए पथ्य, कुस्तुंबरी आदि पाचनमें काकडासींगी मिलाकर सेवन करनेसे पूर्वोक्त गुण होताहै।

दीप्यकादि क्वाथ।

अथवा दीप्यकत्रिवृद्विशालाधनपौष्करम् ॥
सकणं कथितं मूत्रे कफकासी जलेऽपि वा।

अर्थ–अजवायन, निसोथ, इन्द्रायण, नागर मोथा, पुष्करमूल इन सब द्रव्योंका गोमूत्र वा जलमें क्वाथ करले, फिर इसमें पीपल मिलाकर पीनेसे कफकी खांसी जाती रहतीहै

अन्यप्रकार।

तैलभृष्टं च वैदेहीकल्काक्षं ससितोपलम् ॥
पाययेत्कफकासघ्नं कुलित्थसलिलाप्लुतम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–एक तोले पीपलके कल्क को तेल में भूनकर मिश्री मिलालेवे, और इसको कुलथी के काढेमें सानकर खाय तो कफ की खांसी जाती रहती है।

अन्य उपाय।

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत्॥
पुष्कराद्रवशठीबिल्वसुरसाभ्योर्पाहगुभिः।
पेयानुपानं तत्सर्पिर्वातश्लेष्मामयापहम्॥

अर्थ–दशमूल के एक आढक काढेमें एक प्रस्थ घी डालै, तथा पुष्करमूल, कचूर, बेलगिरी तुलसी, त्रिकुटा और हींग, प्रत्येक एक तोला इनका चूर्ण भी डालदे फिर इन को यथाविधि पाक करै। इस घृतके सेवन करनेसे सब प्रकारके वातकफरोग शांत हो जाते हैं। इसका अनुपान पेया है।

अन्य प्रयोग।

निर्गुंडीपत्रनिर्याससाधितं कासजिद्घृतम्।

अर्थ–संभालू के पत्ते और गोंद के साथ सिद्ध किया हुआ घी कासनाशक होता है।

बिडंगादि घृत।

घृतं रसे बिडंगानां व्योषगर्भे च साधितम्

अर्थ–बायविडंग के काढे में त्रिकुटा का कल्क डालकर पकाया हुआ घी कासनाशक होता है।

पुनर्नवादि घृत।

पुनर्नवाशीवाटिकासरलकासमर्दामृता-
पटोलबृहतीफणिज्जकरसैः पयःसंयुतैः।
घृतं त्रिकटुना च सिद्धमुपयुज्य संजायते
न कासविषमज्वरक्षयगुदांकुरेभ्यो भयम्

अर्थ–सांठ की जड, शिवाटिका, सरल काष्ठ, कसौंदी, गिलोय, परवल, बडी कटेरी, सफेद मरुआ इनका रस, तथा दूध और त्रिकुटा के चूर्ण के साथ पकाया हुआ सेवन करने से खांसी, विषमज्वर, क्षयी और अर्श इन रोगों से भय नहीं रहता है। इसके पाक करने का यह क्रम है कि त्रिकुटा से चौगुना घी, घीके बराबर दूध और दूध से चौगुना पुर्ननवादि का काढा।

कंटकारी घृत।

समूलफलपत्रायाः कंटकार्या रसाढके।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडंगशठिदाडिमैः ५९
सौवर्चलयवक्षारमूलामलकपौष्करैः।
वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीचित्रकर्धीभिः॥
मृद्वीका चव्यवर्षाभूदुरालम्भाम्लवेतसैः।
शृंगीतामलकीभार्गीराम्लागोक्षुरकैः पचेत्।
कल्कैस्तत्सर्वकासेषु श्वासहिध्मासुचेष्यते।

अर्थ–कटेरी की जड, फल और पत्ते कूटकर एक आढक रस निकालले और इसमें एक प्रस्थ घी डालदे, फिर खरैटी, त्रिकुटा, बायविडंग, कचूर, अनार, संचल नमक, जवाखार, मूली, आमला, पुष्करमूल सफेद सांठ, बडी कटेरी, हरड़, अजवायन, चीता, ऋद्धि, मुनक्का, चव्य, लाल सांठ, दुरालभा, अम्लबेत, काकडासींगी, भूम्यामलक, मारंगी, रास्ना, गोखरू, इनका कल्क डालकर पकावै। यह घृत सब प्रकार के कासरोग, श्वास और हिध्माको नष्ट कर देता है।

दुर्नामादिजित् अवलेह।

पचेद्यथाग्नीतुलां क्षुण्णां यहे पामाढकस्थिते॥
क्षिपेत् पूते तु संचूर्ण्य व्योषरास्नामृता
स्निकान्।
शृंगीभार्गीघनग्रंथिधन्वयासान् पलार्धिकान्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्पिषः षोडशपलं चत्वारिंशत्पलानि च।
मत्स्यंडिकायाः शुद्धायाः पुनश्च तदधिश्रयेत् ॥ ६४ ॥
दर्वीलेपिनि शीतेच पृथग् द्विकुडवं क्षिपेत्।
पिप्पलीनां तवक्षीर्या माक्षिकस्यानवस्य च ॥
लेहोऽयं गुल्महृद्रोगदुर्नाम्श्वासकासजित्।

अर्थ-एक तुला कटेरी को कुचलकर इसको चार द्रोण पानीमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब कपडे में छानकर रखले, उसमें त्रिकुटा, रास्ना, गिलोय, चीता, काकडासिंगी, भाडंगी, नागरमोथा, पीपलामूल और धमासा इनका आधा आधा पललेकर चूर्ण बनाकर मिलावै। फिर इसमें १६ पल घी, और ४० पल शुद्ध रावमिलाकर फिर पकावै, जब कलछी से लगने लगे तब उतारकर ठंडा करले फिर इसमें दो कुडव पीपल, दो कुडव बंशलोचन, तथा दो कुडव पुराना मधु मिलालेवे यह अवलेह गुल्मरोग, हृदयरोग, अर्श, श्वास खांसी को दूर करदेता है।

कफकासादि में धूमपान।

शमनं च पिबेद्धूमं शोधनं बहुले कफे ॥

अर्थ--कफकी खांसी में शमन धूमपान और गाढे कफकी खांसी में शोधन धूमपान करना चाहिये।

धूमपान की विधि।

मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तैर्गुदित्वचः।
धूमं कासघ्नविधिना पीत्वा क्षीरं पिबेदनु ॥
निष्टप्तांते गुडयुतं कोष्णं धूमा निहंति सः।
वातश्लेष्मोत्तरान् कासानचिरेण चिरंतनान्

अर्थ--मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामांसी, मोथा, और गोंदी की छाल इनका धूमपान सूत्रस्थानोक्त कासनाशक विधि के अनुसार पीना चाहिये, पीकर ऊपर से दूध पीले और कफ थूकने के पीछे गुड मिलाहुआ थोडा गरम दूध पीवे यह धूम बहुत दिनकी वाताधिक्य खांसी को बहुत शीघ्र दूर कर देता है।

तमक की चिकित्सा।

तमकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबंधजः।
पित्तकासक्रियां तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥

अर्थ--कफकी खांसी में यदि पितानुबंधी तमकश्वास हो तो अवस्था के अनुसार पित्तजकास की क्रिया करना चाहिये।

वातकफकी खांसी में कर्तव्य।

कफानुबंधे पवने कुर्यात्कफहरां क्रियाम्।
पित्तानुबंधयोर्वातकफयोः पित्तनाशनीम् ॥

अर्थ--कफानुबंधी वातकी खांसीमें कफनाशिनी क्रिया करनी चाहिये। तथा पित्तानुबंधी कफवातकी खांसीमें पित्तनाशिनी क्रिया करनी चाहिये।

अन्य उपाय।

वातश्लेष्मात्मके शुष्केस्निग्धं चार्द्रे विरूक्षणम्
कासे कर्म सपित्ते तु कफजे तिक्तसंयुतम् ॥

अर्थ--वातकफात्मक सूखी खांसीमें स्निग्धक्रिया तथा गीली खांसीमें रूक्ष क्रिया करनी चाहिये परंतु पित्तयुक्त कफकी खांसी में तिक्तसंयुक्त औषधोंका प्रयोग करना चाहिये

उरःक्षतचिकित्सा।

उरस्यंतःक्षते सद्यो लाक्षां क्षौद्रयुतां पिबेत्।
क्षीरेण शालीन् जीर्णेऽद्यात्क्षीरेणैव सशर्करान्

अर्थ--खांसी के रोग में यदि छाती के भीतर घाव होगया हो तो शहत मिलीहुई लाखको दूध के संग पान करे, और औषध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के पचजाने पर दूध और शर्करा के साथ शाली चांवलों का भात खाना चाहिये।

पार्श्वादिवेदना में कर्तव्य ।

पार्श्वबस्तिरुगल्पपित्ताग्निस्तां-
सुरायुताम्।
भिन्नविट्कःसमुस्तातिविषापाठांसवत्सकाम्

अर्थ-यदि पसली और वस्ति में वेदना होती हो, तथा जठराग्नि मंद पडगई हो तो सुरा के साथ लाख पीवै और जिस मनुष्य का मल फटगया हो वह नागरमोथा पाठा, अतीस और कुडाकी छाल मिलाकर लाखको पीवै।

उरःक्षत में दूध विशेष ।

लाक्षां सर्पिर्मधूच्छिष्टं जीवनीयगणं सितम्
त्वक्क्षीरीसंमितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलःपिबेत्।
इक्ष्वारिकाविषग्रंथिपद्मकेसरचंदनैः।
श्रृतं पयो मधुयुतं संधानार्थे क्षती पिबेत्॥

अर्थ-दीप्ताग्निवाला मनुष्य लाख, घी, मोम, जीवनीयगणोक्त औषध, मिश्री, और वंशलोचन इन द्रव्यों के साथ पकाये हुए दूधको पीवै। तथा कांसकी जड, सींगिय विष, पीपलामूल, कमलकेसर और चंदन इनके साथ पकाये हुए दूध में शहत मिला कर पीने से छाती के भीतरका घाव भर जाता है।

ज्वरदाह में पान ।

यवानां चूर्णमानानां क्षीरे सिद्धं घृतान्वितम्
ज्वरदाहे सिताक्षौद्रसक्तून्वा पयसा पिबेत्॥

अर्थ-कच्चे जौ का चून दूधमें पकाकर घी मिलकर पीने से ज्वरका दाह दूर हो जाता है, अथवा जौका सत्तू मिश्री और शहत मिलाकर दूध के साथ पीना चाहिये।

कास में सर्पिष्पान ।

कासवांश्च पिबेत्सर्पिर्मधुरौषधसाधितम्।
गुडोदकं वा क्वथितं सक्षौद्रमरिचं हिमम्॥
चूर्णमामलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम्।
रसायनविधानेन पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत्॥

अर्थ-कासरोगी मधुर औषधों से सिद्ध किया हुआ घृतपान करै, अथवा गुड के पानी को औटाकर उसमें शहत और काली मिरच डालकर ठंडा करके पीवै, अथवा आमले के चूर्ण को दूध में पकाकर घी मिलाकर सेवन करे, अथवा रसायन में कही हुई विधि से पीपलका प्रयोग करे।

पर्वास्थिशूलयुक्त खांसी ।

कासी पर्वास्थिशूली च-
लिह्यात्सघृतमाक्षीकान्।
मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलान्॥

अर्थ-जिस खांसी के रोगवाले के संधि और अस्थियों में शूल होताहो वह महुआ के फूल, मुलहटी, दाख, बंशलोचन, पीपल और खरैटी के चूर्ण में शहद और घी मिलाकर चाटै।

पौष्टिक गुटका ।

त्रिजातमर्धकर्षांशं पिप्पल्यर्धपलम् सिता।
द्राक्षामधूकं खर्जूरपलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम्॥
मधुना गुटिका घ्नंति ता वृष्याः
पित्तशोणितम्।
कासश्वासारुचिच्छर्दिमूर्छाहिध्मावमिभ्रमान्
क्षतक्षयस्वरभ्रंशशीहशोफाढ्यमारुतान्।
रक्तनिष्ठीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ८२

अर्थ-त्रिजात (इलायची, दालचीनी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और तेजपात) आधा कर्ष, पीपल दो तोला, तथा चीनी, दाख, मुलहटी और खिजूर प्रत्येक एक एक पल इनको बारीक पीसकर शहत डालकर गोलियां बना लेवे ये गोलियां पुष्टिकारक, तथा रक्तपित्त, खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, मूर्छा, हिक्का हृल्लास, भ्रम, क्षतजन्य क्षीणता, स्वरभेद प्लीहा, शोथ, आढ्यवात, खखार के साथ रुधिर निकलना, हृदयशूल, पसली का दर्द तृषा का वेग और ज्वर इन सबको दूर करता है।

रक्तनिष्ठीवन में सांठका चूर्ण।

धात्रीशर्करारक्तशालितंडुलजम् रजः।
रक्तष्ठीवी पिबेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोघृतैः ८३
मधूकमधुकक्षीरसिद्धं वा तन्दुलीयकम्।

अर्थ-सांठ, शर्करा, लाल शाली चांवलों की रज इनको दाखके रस, दूध और घी के साथ सिद्ध करके पीनेसे रुधिर का थूकना बंद होजाता है, अथवा महुआ के फूल, मुलहटी और चौलाई इनको दूध में पकाकर पीने से भी रुधिर का थूकना बंद हो जाता है।

मुखादिविस्रुतरक्तमें उपाय।

"यथास्वमार्गैर्विस्रुते रक्ते कुर्याच्च भेषजम्॥

अर्थ-मुखादि मार्गों द्वारा रुधिर निकलता हो तो रक्तपित्तचिकित्सित अध्याय में कही हुई यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये।

मूढवात में कर्तव्य।

मूढवातस्त्वजामेदः सुराभृष्टं ससैंधवम्।

अर्थ-मूढवात में बकरे के मेदाको सुरामें भूनकर थोडा सेंधानमक डालकर सेवन करे।

क्षामादिमें चिकित्सा।

क्षामः क्षीणक्षतोरस्को-
मन्दनिद्रोऽग्निदीप्तिमान्॥ ८५॥
घृतक्षीरसरेणाद्यात्सघृतक्षौद्रशर्करम्।

अर्थ-जो मनुष्य कृश और क्षीण है, जिस की छातीके भीतर घाव है, जिसको नींद कम आती है, जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त है वह औटे हुए दूधकी मलाई, घी, शहत और शर्करा मिलाकर बकरेके मेदेके साथ खाय।

अन्य अवलेह।

शर्करां यवगोधूमं जीवकर्षभको मधु ८६॥
घृतक्षीरानुपानं वा लिह्यात्क्षीणक्षतः कृशः।

अर्थ-शर्करा, जौ, और गेंहूंका चून, जीवक, ऋषभक, और शहत इनको मिलाकर चाटे, ऊपरसे औटा हुआ दूध पान करे, इस से क्षीणता, और कृशता जाती रहती है, तथा छाती का घाव भरजाता है।

मांसादिवर्द्धन औषध।

कव्यात्पिशितनिर्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः॥
पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्धनम्।

अर्थ-उक्त प्रकारका रोगी मांसभक्षी जीवों के मांसरसको घीमें छोंककर पानकरे इस में पीपल और शहत भी डाल लेवे। इस से मांस और रुधिर बढता है।

क्षतोरस्कादि में घृतविशेष।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः ८८
तालमस्तकजंबूत्वक्प्रियालैश्च सपद्मकैः।
साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादाज्जातेन सर्पिषा
शाल्योदनं क्षतोरस्कः क्षीणशुक्रबलेंद्रियः।

अर्थ-ढाक, गूगल, पीपल, पाकड, साल, और प्रियंगु इनकी छाल, ताडकी कोंपल, जामनकी छाल, चिरोंजी की छाल, पदमाख,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और अश्वकर्ण इनको डालकर दूध औटावै, इस दूधसे निकले हुए घीकेसाथ शालीचावलों के भातका सेवन करै इसके सेवन से वःक्षस्थल के भीतरका घाव, तथा शुक्र, बल और इन्द्रियों की क्षीणता मिटजाती है ।

अभ्यंगादि ।

वातपित्तार्दितेऽभ्यंगो गात्रभेदे घृतैर्मतः ॥
तैलैश्चानिलरोगघ्नैः पीडिते मातरिश्वना ।

अर्थ–वातपित्तसे पीडित होने तथा शरीरके फटजाने पर घृतका मर्दन करै । अथवा वातसे पीडित होनेपर वातनाशक तेल अथवा घीका मर्दन करै ।

जीवनीयघृत ।

हृत्पार्श्वर्तिषु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः
कुर्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्तविरोधि यत् ।

अर्थ–यदि कासरोग में हृदय तथा पसली में दर्द होता हो तो जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके साथ पकाया हुआ घृत पान करावे । अथवा जो घृत पित्तरक्त की अविरोधी और वातनाशक औषधोंसे बनाया जाताहै, वह देना हितहै ।

क्षतकासमें घृतविशेष ।

यष्ट्याह्वानागबलयोः काथे क्षीरसमं घृतम् ।
पयस्यापिप्पलीवांसीकल्कैः सिद्धं क्षये हितम्

अर्थ–मुलहटी और नागबलाके काथमें बराबर दूध मिलादे, तथा दूधी, पीपल और वंशलोचन इनका कल्क डालकर घी पकावै यह घी क्षतकास में हितकारी होताहै ।

अमृतप्राश अवलेह ।

जीवनीयो गणः शुंठी वरी वीरा पुनर्नवा ॥
बलामार्गी स्वगुप्ताह्वाशठी तामलकार्किणा ।
शृंगाटकं पयस्या च पंचमूलं च यद्लघु । ९४
द्राक्षाक्षौद्रादि च फलं मधुरस्निग्धबृंहणम् ।
तैः पचेत्सर्पिषः प्रस्थं कर्षांशैः श्लक्ष्णकल्कितैः
क्षीरधात्रीविदारीक्षुछागमांसरसान्वितम् ।
प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धं तुलारजः । ९६
पलार्धकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसरम् ।
विनीय चूर्णितं तस्मालिह्यान्मात्रां यथाबलम् ॥ ९७ ॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम् ।
सुधामृतरसं प्राहुर्यं क्षीरमांसरसाशिना ॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्शितान् ।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ॥ ९९ ॥
कासहिध्माज्वरश्वासदाहतृष्णास्र पित्तनुत्
पुत्रदं छर्दिमूर्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥

अर्थ–जीवनीयगणोक्त द्रव्य, सौंठ, सितावर, वीरा, सांठ, खरैटी, भाडंगी, केंच के बीच, कचूर, भूम्यामलकी, पीपल, सिंघाडा, दुद्धी, लघुपंचमूल, दाख, और अखरोटादि मधुर, स्निग्ध और बृंहणफल, इनमें से जो जो मिलसकें प्रत्येक एक कर्ष लेकर महीन पीसकर लुगदी बनालेवे और दूध, आंवलेका रस, विदारीकंदका रस, ईखका रस, और बकरे के मांसरस, ये मिलाकर इनमें एक प्रस्थ घी पकावे, ठंडा होनेपर इसमें आधा प्रस्थ मधु, शर्करा आधातुला तथा कालीमिरच, दालचीनी, इलायची, तेजपात, और नागकेसर, प्रत्येक दो तोले इन सबको उस घी में डालदेवे । इसतरह घी को तयार कर रोगी के बल और मात्रा के अनुसार देवे । इस घृतका नाम अमृतप्राशहै । यह मनुष्यों को अमृतके समान गुणकारी है, जैसे नागों को सुधा और दे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वताओं को अमृत होताहै।इस सुधामृतरसका सेवन करके अनुपानमें क्षीर और मांसरस का पथ्य करना चाहिये। यह अमृतप्राश नष्ट-शुक्र, क्षतक्षीण, दुर्बल, व्याधिकर्शित, स्त्री प्रसक्त, कृश, वर्णहीन और स्वरहीनों को बृंहणकारकहै। खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, दाह, तृषा, और रक्तपित्त को नष्ट करदेता है, पुत्र देताहै, तथा वमन, हृद्रोग, मूर्च्छा योनिरोग और मूत्र रोगों को दूर करदेताहै।

श्वदंष्ट्रादिघृत।

श्वदंष्ट्रोशीरमंजिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम्।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा॥
पालिकानि पचेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे।
कल्कैः स्वगुप्ताजीवंतीमेदर्षभजविकैः॥
शतावर्यार्धमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत्॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः।
धनुस्त्रीमद्यभाराध्वक्षिन्नानां बलमांसदः॥

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खोंटी, खंभारी, कतृण, डाभकीजड, पृश्निपर्णी, ढाक ऋषभक, शालपर्णी, इनमेंसे हरएक को चार तोले लेकर क्वाथ करले, इस क्वाथमें चौगुना दूध डाले। तथा केंचके बीज, जीवंती मेदा, ऋषभक, जीवक, सतावरी, ऋद्धि, मुनक्का दाख, शर्करा, श्रावणी, कमलनाल इन सब द्रव्योंका कल्क उसमें डालदे और पाक की विधिसे एक प्रस्थ घी पकावे। इसके सेवनसे वातपित्त, हृदयरोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, खांसी, शोष और क्षयीरोग जातेरहते हैं, तथा धनुराकर्षण, अतिस्त्रीसेवन, अतिमद्यपान, भारवहन मार्गगमन, आदि श्रमपीडित रोगियों के बल और मांस का बढानेवालाहै।

रक्तगुल्मादि पर समसक्तु घृत।

मधुकाष्टपलद्राक्षाप्रस्थकाथे पचेद्घृतम्।
पिप्पल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च शीतले
पृथगष्टपलं क्षौद्रशर्कराभ्यां विमिश्रयेत्।
समसक्तुक्षतक्षीणरक्तगुल्मेषु तद्धितम्॥

अर्थ—मुहलटी आठ पल, दाख एक प्रस्थ इनके काढे में घृत पकावै। ठंडा होने पर आठ पल मधु और आठ पल शर्करा मिलावै फिर इसी की बराबर सत्तू मिलाकर सेवन करने से क्षतक्षीण और रक्तगुल्म जाते रहते हैं।

यक्ष्मादिनाशक घृत।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात्।
गव्याजयोश्च पयसोः प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत्
सिद्धपूते सिताक्षौद्रं द्विप्रस्थं विनयेत्ततः।
यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमेहक्षयापहम्॥
वयःस्थापनमायुष्यं मांसशुक्रबलप्रदम्।

अर्थ—आमला, बिदारीकंद, ईख, और जीवनीयगण के द्रव्यों का रस, गौ और बकरी का दूध प्रत्येक एक प्रस्थ, इनमें एक प्रस्थ घी को पकावै। जब पकजावे तब छानले और दो दो प्रस्थ मिश्री और शहत मिलाकर सेवन करै। इससे यक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, प्रमेह और क्षय जाते रहते हैं। यह वय को स्थापनकर्ता, आयुवर्द्धक, मांस शुक्र और बलको बढाने वाला है।

पित्ताधिक्य में अवलेह।

"घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिह्याद्वातेऽधिके पिबेत्॥ १०९॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लीढं निर्वापयेत्पित्तमलप्त्वाद्धंति मानलम्।
आक्रामत्यनिलं पीतंमूष्माणं निरुणद्धि च॥

अर्थ–पित्तकी अधिकता में घृत का अवलेह, वातकी अधिकता में घृतपान करना चाहिये। चाटा हुआ घृत थोडा होने के कारण पित्तको शांत कर देता है, पर अग्नि का नाश नहीं करता है। पान किया हुआ घी अधिकता के कारण वातको नष्ट कर देता है और जठराग्नि को रोकता है।

वीर्यवर्धक चूर्ण।

क्षामक्षीणकृशांगानामेतान्येव घृतानि तु।
त्वक्क्षीरीपिप्पलीलाजचूर्णैः पानानि योजयेत्॥ १११॥
सर्पिर्गुडान्समध्वंशान् कृत्वा दद्यात्पयो नु च
रेतो वीर्यं बलं पुष्टिं तैरशुतरमाप्नुयात्॥

अर्थ–क्षामतायुक्त, क्षीण और कृशांग रोगियों को ऊपर कहे हुए संपूर्ण घी में वंशलोचन, पीपल, और धानकी खीलका चूर्ण मिलाकर पान करावै। अथवा गुड और मधु मिला हुआ घी उचित मात्रा में सेवन कराके ऊपर से दूध पान करावै। इसके पान करने से रोगी बहुत ही शीघ्र शुक्र, वीर्य, बल और पुष्टिप्राप्त कर लेता है। (इसमें शर्करा पचास पल और शहद १६ पल डाला जाता है)।

कूष्मांडकल्प रसायन।

वीतत्वगस्थिकूष्मांडतुलां स्विन्नां पुनःपचेत्
घृतप्रस्थे सर्पिषःप्रस्थे क्षौद्रवर्णेऽत्र च क्षिपेत्
खंडाच्छतं कणाशुंठ्योर्द्विपलं जीरकादपि।
त्रिजातधान्यमरिचं पृथगर्धपलांशकम्॥
अवतारितशीते च दत्त्वा क्षौद्रं वृतार्धकम्।
खजेनामथ्य च स्थाप्यं तद्विहरयुपयोजितम्
कासहिध्माज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान्।
उरः संधानजननं मेधास्मृतिबलप्रदम् ११६
अश्विभ्यां विहितं हृद्यं कूष्मांडकरसायनम्।

अर्थ–पेठेके छिलके और बीज निकालकर एक तुला लेकर उबाल ले फिर इसको वस्त्र में निचोडले, इसको एक प्रस्थ घीमें भूने और कलछी से चलाता रहे। जब इसका वर्ण शहत के समान होजाय तब इसमें नीचे लिखे द्रव्य डालै—खांड १०० पल, पीपल, सोंठ और जीरा प्रत्येक ८ तोले, दालचीनी, इलायची तेजपात, धनियां, कालीमिरचं, प्रत्येक आधा आधा पल इन सब द्रव्यों को डालकर अच्छीतरह मिलाकर नीचे उतारले, ठंडा होने पर घी से आधा शहत मिलाकर रई से मथकर घीकी हांडी में भरदे। इसकी मात्रा एक तोले से दो तोले तक दीजाती है। इसके सेवन से खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत, क्षयी, ये रोग दूर होजाते है। वक्षःस्थल के घावको जोडता है, मेधा, स्मरणशक्ति और बलको बढाता है, हृदय को हितकारी है, यह कूष्मांड रसायन अश्विनीकुमार ने लिखी है।

नागबलादि कल्प।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्धकर्षाभिवर्धितम्।
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्।
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलवर्णकरः परम्॥
मंडूकपर्ण्याः कल्पोऽयं यष्ट्या विश्वौषधस्यच

अर्थ–नागबला की जड पहिले दिन चार तोले दूधके संग पीवै, फिर प्रतिदिन आधा आधा कर्ष बढाकर एक महिने तक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसका सेवन करे, केवल दूध पीवे और अन्नको त्याग दे। यह प्रयोग पुष्टि, आयु बल, और वर्ण के बढाने में एकही है। इसी तरह मंडूकपर्णी, तथा मुलहटी तथा सौंठ का कल्प भी सेवन किया जाताहै।

नागबलाघृत।

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ॥
तेन काथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरेण पाचयेत्।
पलार्धिकैश्चातिबलाबलायष्टीपुनर्नवैः ॥
प्रपौंडरीककाश्मर्यप्रियालकपिकच्छुभिः।
अश्वगंधासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकंटकैः ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीक्षीरशुक्लाद्विजीरकैः
एतन्नागबलासर्पिः पित्तरक्तक्षतक्षयान् ॥
जयेत्तृड्भ्रमदाहांश्च बलपुष्टिकरं परम् ॥
वर्ण्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् ॥
उपयुज्य च षण्मासान् वृद्धोऽपि तरुणायते।

अर्थ—एक तुला नागबला को एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहनेपर उस काथको छानले, फिर इस काथके समान घी और दूध मिलाकर पकावे पकाते समय इसमें अतिबला, बला, मुलहटी, पुनर्नवा, प्रपौंडरीक, खंभारी, प्रियाल, केंचके बीज, असगंध, मिश्री, सितावर, मेदा, महामेदा, गोखरू, काकोली, क्षीरकाकोली, क्षीरशुक्ला कालाजीरा, सफेदजीरा, इनमेंसे प्रत्येक आधा आधा पल लेकर कल्क करके उसमें डालदे। यह नागबलाघृत पित्तरक्त, क्षत, क्षय, तृषा, भ्रम, दाह, इन रोगों को दूर करताहै, बल और पुष्टिको बढाताहै वर्ण, आयु और ओजकारकहै, तथा वली और पालित को नाश करनेवालाहै। इस घृतका छः महिने सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी युवाओंके से आचरण करने लगताहै।

दीप्ताग्नपापि में कर्तव्य।

"दीप्तेऽग्नौ विधिरेषः स्यान्मंदे दीपनपाचनः
यक्ष्मोक्तः क्षतिनां शस्तो ग्राही शक्तिं तु द्रवे"

अर्थ—क्षतयुक्त खांसीवाले रोगी की जठराग्नि यदि तीव्र हो तो यह विधिकर्तव्य है, मंदाग्नि हो तो राजयक्ष्मा में कहे हुए दीपनपाचन हित हैं, यदि मल पतला होगया हो तो संग्राही औषधें देना चाहिये।

अगस्तिविहित रसायन।

दशमूलं स्वयंगुप्तां शंखपुष्पीं शठीं बलाम् ॥
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान्।
भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशान् यवाढकम्।
हरीतकीशतं चैकं जले पंचाढके पचेत्।
यवास्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ॥
पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात्।
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्
लेहं द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात्।
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम्।१२९।
पंचकासान् क्षयं श्वासं सहिध्मं विषमज्वरम्
मेहगुल्मग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥
अगस्तिविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम्।

अर्थ—दसमूल, केंच के बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खरैटी, गजपीपल, ओंगा, पीपलामूल, चीता, भाडंगी और पुष्करमूल इनमें से हरएक दो दो पल। जौ एक आढक, और १०० हरड, इन सबको पांच आढक जल में पकावै। जब जौ स्विन्न (सीजना) होजांय तब उतारकर कपडे में छानले। फिर इस काथ में ऊपर कही हुई १०० हरड, एक तुला गुड और एक कुडव घी और एक कुडव तेल डालकर पकावै, जब पकने पर आजाय तब एक कुडव पीपल पीसकर मिलादेवे। ठंडा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होने पर एक कुडव शहत मिला लेवे । इसमें से प्रतिदिन थोडा थोडा और दो हरड सेवन करै । इसके सेवन से वली और पलित नष्ट होजाते हैं, वर्ण, आयु और बल बढते हैं, पांच प्रकारकी खांसी क्षयी, श्वास, हिक्का और विषमज्वर का नाश होजाता है, प्रमेह गुल्म, प्रहणी, अर्श हृद्रोग, अरुचि और पीनस रोग जाते रहते हैं, यह अगस्तजी का कहा हुआ सब रसायनों में श्रेष्ठ है ।

वाशिष्ठोक्तरसायन ।

दशमूलं बलां मूर्वां हरिद्रे पिप्पलीद्वयम् ॥
पाठाश्वगंधापामार्गस्वगुप्तातिविषामृतम् ।
बालबिल्वं त्रिवृद्दंतीमूलं पत्रं च चित्रकात् ॥
पयस्यां कुटजं हिंस्रां पुष्पं सारं च बीजकात्
बोटस्थविरभल्लातविकंकतशतावरी ॥
पूतीकरंजशम्याकचंद्रलेखासहाचरम् ।
सौभांजनकनिंबत्वग्भिक्षुरं च पलांशकम् ॥
पथ्यासहस्रं सशतं यवानां चाढकद्वयम् ॥
पचेदष्टगुणे तोये यवस्वेदेऽवतारयेत् ।
पूते क्षिपेत्सपथ्यां च तत्र जीर्णगुडात्तुलाम्
तैलाज्यधात्रीरसतः प्रस्थं प्रस्थं ततः पुनः
अधिश्रयेन्मृदावग्नौ दर्वीलेपेऽवतार्य च ।
शीते प्रस्थद्वयं क्षौद्रात्पिप्पलीकुडवं क्षिपेत्
चूर्णीकृतं त्रिजातात्र त्रिपलं निखनेत्ततः ।
धान्ये पुराणकुंभस्थं मासं खादेच्च पूर्ववत्
रसायनम् वसिष्ठोक्तमेतत्पूर्वगुणाधिकम् ।
स्वस्थानां निःपरीहारं सर्वर्तुषु च शस्यते ॥

अर्थ-दसमूल, खरैटी, मूर्वा, दोनों हलदी, दोनों पीपल, पाठा, असगंध, ओंगा, केंचके बीज, अतीस, गिलोय, कच्ची बेलगिरी, निसोथ, दंतीकी जड और पत्ते, दुद्धी, कुडाकी छाल, जटामांसी, बिजैसार, बीजपुष्प, बोट (जलबुसा), स्थविर (शैलेय), भिलावा, बिकंकत, सितावर, पूतिकरंज, अमलतास, बाबची, पियाबांसा, सहजना, नीमकी छाल, और इक्षुर इन सबको एक एक पल लेवै । ग्यारहसौ हरड, दो आढक जौ, इन सबको अठगुने जलमें अग्नि पर चढादे और जब जौ सीजजांय तब उतारले फिर इसको छानकर इस काढेमें उक्त ग्यारहसौ हरड, एक तुला पुराना गुड, तेल, घी आंवलेका रस प्रत्येक एक प्रस्थ, इनको पुनर्वार मंदी आगपर पकावै, जब कलछी से लगने लगे तब उतारले । ठंडी होने पर दो प्रस्थशहत और एक कुडव पिसीहुई पीपल तथा दालचीनी, इलायची और तेजपात इन का चूर्ण प्रत्येक तीन पल उसमें डालकर अच्छी तरह मिलादे और पुराने घीके पात्र में भरकर एक महिने तक अन्नके ढेरमें गाढदे फिर इसके सेवनसे पूर्वोक्त गुण होते हैं, यह रसायन वशिष्ठजी की कही हुई है यह महर्षि अगस्तजी की रसायनसे भी गुणोंमें अधिक हैं । यह स्वस्थ पुरुषोंके लिये भी हितकारीहै और सब ऋतुओंमेंसेवनके योग्यहै ।

सैंधवादि चूर्ण ।

पालिकं सैंधवं शुंठी द्वे च सौवर्चलात्पले ।
कुडयांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमार्जकम्
एकैकां मरिचाजाज्योर्धान्यकाद्द्वे चतुर्धिके
शर्कराया पलान्यत्र दशद्वे च प्रदापयेत् ।
कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।
रुच्यं तद्दीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित्

अर्थ-सेंधानमक और सोंठ प्रत्येक एक पल, सौवर्चल नमक दो पल, बिजौरा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनार और अजैक पत्र प्रत्येक एक कुडव, कालीमिरच और जीरा प्रत्येक एकपल, धनियां दो पल, शर्करा १२ पल इन सबका चूर्ण बनाकर यथायोगमात्रा के अनुसार भोजन और जलपान के साथ देवे । यह चूर्ण रुचिवर्द्धक, अग्निसंदीपन और बल कारक है, तथा पसली के दर्द, श्वास और खांसी को दूर करदेता है ।

खांडव ।

एकांषोडशिकांधान्याद्द्वेद्वेवाऽजाजिदीप्यकात्।
ताभ्यांदाडिमवृक्षाम्लैर्द्विर्द्विर्सौवर्चलात्पलम्॥
शुंठ्याः कर्षं दधित्थस्य मध्यात्पंचपलानिच
तच्चूर्णं षोडशपलैः शर्कराया विमिश्रयेत्।
खांडवोऽयं प्रदेयः स्यान्नपानेषु पूर्ववत्।

अर्थ–धनियां एक कर्ष, जीरा और अजमोद दो दो कर्ष, अनार और बिजौरा चार चार कर्ष, संचलनमक १ पल, सोंठ १ कर्ष, कैथका गूदा ५ पल, शर्करा सोलह पल इन सबको पीस कूट कर तयार करले यह खांडव अन्नपान के साथ देने से पूर्ववत् गुणकारी है ।

क्षत में अन्यकर्तव्य ।

" विधिश्च यक्ष्मविहितो यथावस्थं क्षते हितः ॥ १४५ ॥

अर्थ–क्षतकास में अवस्था के अनुसार यक्ष्मा में कही हुई विधि भी करना हितकारी है ।

धूमपान का विधान ।

निवृत्ते क्षतदोषे तु कफे वृद्धे उरः शिरः।
दाल्ये कासिनो यस्य स धूमानापिबेदिमान्

अर्थ–खांसी वाले मनुष्य के क्षत दोष के दूर होने पर जब कफ बढजाता है तब उसकी छाती और सिर में फटने की सी पीडा होने लगती है उस समय नीचे लिखे हुए धूमपानों का प्रयोग करना चाहिये ।

धूमवर्ति ।

द्विमेदाद्विबलायष्टीकल्कैः क्षौमे सुभाविते ।
वर्तिं कृत्वा पिबेद्धूमं जीवनीयघृतानुपः

अर्थ–मेदा, महामेदा, बला, अतिबला, और मुलहटी इनके कल्क को रेशमीवस्त्र में लगाकर बत्ती बना लेवे, इस वर्ति द्वारा धूमपान करके जीवनीय घृत का अनुपान करे ।

धूमपान की अन्यविधि ।

मनःशिलापलाशाजगंधात्वक्क्षीरनागरैः ।
तद्वदेवाऽनुपानं तु शर्करेक्षुगुडोदकम् ।

अर्थ–मनसिल, ढाक, अजगंध, दालचीनी, वंशलोचन, सोंठ इनकी पूर्वोक्त रीति से बत्ती बनाकर धूमपान करे, तदनन्तर शर्करा, इक्षु और गुडोदक का अनुपान करे ।

अन्यविधि ।

पिष्ट्वा मनःशिलां तुल्यामार्द्रया वटशुंगया ।
ससर्पिष्कं पिबेद्धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥

अर्थ–मनसिल और इसके समानही वटके हरे अंकुरों को लेकर पीसडाले और इसमें घी मिलाकर पूर्वोक्त विधि से धूमपान करे, इस पर तीतरके मांसका अनुपानहै ।

क्षयजादिकास में कर्तव्य ।

क्षयजे बृंहणम् पूर्वं कुर्यादग्नेश्च वर्धनम् ।
बहुदोषाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम् १५० ॥

अर्थ–क्षयज खांसी में पूर्वोक्त बृंहण और अग्निवर्द्धनी क्रिया करनी चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि क्षयज कास में दोषों की अधिकता हो तो मृदु विरेचन देना चाहिये ।

विरेचन विधि ।

शम्याकेन विवृतया मृद्वीकारसयुक्तया ।
तिलवंकस्य कषायेण विदारीस्वरसेन च ॥
[सर्पिः सिद्धं पिबेद्युक्तया क्षीणदेहो-
विशोधनम् ॥ १५२ ॥

अर्थ—कासरोगी का देह यदि क्षीण हो तो युक्तिपूर्वक अमलतास से अथवा द्राक्षारसयुक्त निसोथ से, सावरलोध के क्वाथ से और विदारीकंद के रस से सिद्ध किया हुआ घृत विरेचन के लिये देना चाहिये ।

धातुक्षय में घृत ।

पित्ते कफे धातुषु च क्षीणेषु क्षयकासवान् ॥
घृतं कर्कटकीक्षीरद्विबलासाधितम् पिबेत् ।

अर्थ—क्षयज खांसी में पित्त, कफ और धातुओं के क्षीण होने पर ककडासींगी, दूध, बला और अतिबला इनसे सिद्ध किया हुआ घी देना चाहिये ।

मूत्रोपद्रव में चिकित्सा ।

विदारीभिः कदंबैर्वा तालसस्यैश्च साधितम्
घृतम् पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रनिर्गमे ।

अर्थ—खांसी के रोग में यदि मूत्र के रंग में विवर्णता हो और निकलने में कष्ट होता हो तो विदार्यादि कंद, कदंबादि अथवा तालफलादि से सिद्ध किया हुआ घी वा दूध पीना चाहिये ।

कासरोग में अनुवासन ।

शूने सवदने मेढ्रे पायौ सश्रोणिवंक्षणे ॥
घृतमण्डेन लघुनाऽनुवास्यो मिश्रकेण वा ।

अर्थ—कासरोगमें यदि मेढ्र, गुदा, श्रोणी और वंक्षणमें सूजन और वेदना हो तो लघु घृतमंड से अथवा घी और तेल मिलाकर अनुवासन देना चाहिये ।

कासरोग में मांसादि सेवन ।

जांगलैः प्रतिभुक्तस्य वर्तकाद्या विलेशयाः ॥
क्रमशः प्रसहातद्वत्प्रयोज्याः पिशिताशिनः ।
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्च-
स्रोतोभ्यश्च्यावयंति ते ॥ १५६ ॥
कफम् शुद्धैश्च तैः पुष्टिं कुर्यात्सम्यग् वहन्-
रसः । ,,

अर्थ—अनुवासन के पीछे कासरोगी को हरिण वा बकरा अथवा अन्य ऐसेही जांगल जीवोंका मांस पथ्यमें देवै, तदनंतर वर्तकादि प्रसहपक्षी और फिर द्वीपिव्याघ्रादि मांसाहारी पशुओंका मांस, क्रमसे सेवन करै । प्रसह जीवोंका मांस उष्णवीर्य और प्रमाथी × है, इसलिये वह कफसे लिप्त हुए संपूर्ण स्रोतों के कफको निकालकर स्रोतोंको शुद्ध करदेता है । और स्रोतोंके शुद्ध हो जाने पर रस धातु उनमें सम्यक् रीतिसे बहता हुआ देह की पुष्टि संपादन करता है ।

अन्य कासनाशक घृत ।

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैः सचित्रकैः ॥
कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ।

× खरनादने प्रमाथी के लक्षण यह लिखे हैं कि स्रोतांसि दोषलिप्तानि प्रमथ्य विवृणोति यत् । प्रविश्य सौक्ष्म्यात्तैक्ष्ण्याच्च तत्प्रमाथीति संज्ञितम् ॥ अर्थात् जो संपूर्ण द्रव्य तीक्ष्ण स्वभाव और सूक्ष्म स्रोतोंमें गमनशील होनेके कारण कफादि दोषों से लिप्त सूक्ष्मस्रोतों में प्रविष्ट होकर उस दोषलिप्त स्रोत के दोषको निकालते हैं उन द्रव्यों को प्रमाथी कहते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशाठिपौष्करैः ॥
पिष्टैः कर्कटशृंग्या च समैः सर्पिर्विपाचयेत्।
सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णिता क्षारौ द्वौ-
पञ्चलवणानि च ॥ १५९ ॥
दत्त्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः

अर्थ–चव्य, त्रिफला, भाडंगी दशमूल, चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, बेर, और जौ इनके काढेमें सोंठ, दुरालभा, पीपल, कचूर, पुष्करमूल और काकडासींगी, इन सब को समान भाग लेकर पीस ले फिर उक्त काढेमें शुंठ्यादि के कल्कके साथ घृतको सिद्ध करे। सिद्ध होनेपर इसमें दोनों खार और पांचों नमक पीसकर डालदे। इसका मात्रानुसार पान करने से क्षय और कास जाते रहते हैं।

कासमर्दादि घृत।

कासमर्दाभयामुस्तापाठाकट्फलनागरैः ॥
पिप्पल्या कटुरोहिण्या काश्मर्या स्वरसेन च
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं क्षीरद्राक्षारसाढके। १६१।
पचेच्छोषज्वरप्लीहसर्वकासहरं शिवम्।

अर्थ–कसौंदी, हरड, मोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी और खंभारी प्रत्येक एक तोला लेकर इनका काढा करले फिर एक प्रस्थ घी, दूध और दाखका रस एक आढक इनको पकाकर तयार करले। यह घृत शोष, ज्वर, प्लीहा, और सब प्रकार की खांसियों को दूर करता है यह घृत कल्याणकारक है।

रसकल्कादि घृत।

वृषव्याघ्रीगुडूचीनां पत्रमूलफलांकुरान् ॥
रसकल्कैर्घृतं पक्वं हंति कासज्वरारुचीः।

अर्थ–अडूसा, कटेरी और गिलोय, इन के जड, पत्ते, फल और अंकुरों का रस तथा इन्हीं का कल्क मिलाकर पकाया हुआ घृत खांसी, ज्वर, और अरुचिको दूर करता है।

भोजन पर सिद्धघृतपान।

द्विगुणे दाडिमरसे सिद्धं वा व्योषसंयुतम्।
पिबेदुपरिभुक्तस्य यवक्षारघृतं नरः।
पिप्पलीगुडासिद्धं वा छागक्षीरयुतं घृतम् ॥

अर्थ–भोजन करने के पीछे कासादि का शमन करने के लिये अनार के दुगुने रस में त्रिकुटा का कल्क बनाकर घी को पकावै। इस घी में जवाखार मिलाकर पीवे। अथवा पीपल और गुड से चौगुना घी, घीके बराबर बकरी का दूध और दूधसे चौगुना पानी मिलाकर पकावै, इस घीके सेवन से भी खांसी, ज्वर और अरुचि जाते रहते हे।

क्षयकास पर चव्यादि घृत।

एतान्यग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पींषि क्षयकासिनाम्
स्युर्दोषवद्भः कंठोरःस्रोतसां च विशुद्धये ॥

अर्थ–ऊपर जो चव्यादि घी वर्णन किये गये हैं, ये सब क्षयकासवाले रोगियों की अग्नि बढाने के निमित्त हैं, इन से दोषों द्वारा उपलिप्त कंठ, वक्षःस्थल और संपूर्ण स्रोत शुद्ध होजाते हैं।

श्वासकास पर विशेष स्नेह।

प्रस्थोन्मिते यवकाथे विंशतिर्विजयाः पचेत्।
स्विन्ना मृदित्वा तास्तस्मिन्पुराणात्यद्रुपलं
गुडात् ॥ ६६ ॥
पिप्पल्या द्विपलं कर्षं मनोहवाया रसांजनात्
दत्त्वार्धांक्षं पचेद्भूयः स लेहः श्वासकासनुत्

अर्थ–एक प्रस्थ जौ के काढे में बासि हरड पकावै, जब हरड सीजजांय तब उन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को उसी काढे में पीस डालै । फिर इसमें छःपल पुराना गुड, पीपल दो पल, मनसिल १ कर्ष और रसौत आधा अक्ष, इनको मिलाकर फिर पकावै, इस अवलेह से श्वास और खांसी जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

श्वाविधां सूचयो दग्धाः सघृतक्षौद्रशर्कराः ।
श्वासकासहरा बर्हिपादौ वा मधुसर्पिषा ॥
एरंडपत्रक्षारं वा व्योषतैलगुडान्वितम् ।
लेहयेत् क्षारमेवं वा सुरसैरंडपत्रजम् ॥
लिह्यात् त्र्यूषणचूर्णं वा पुराणगुडसर्पिषा ॥
पद्मकं त्रिफला व्योषं विडंगं देवदारु च ॥
बला रास्ना च तच्चूर्णं समस्तं समशर्करम् ।
खादेन्मधुघृताभ्यां च लिह्यात्कासहरं परम् ।
तद्वन्मरिचचूर्णं वा सघृतक्षौद्रशर्करम् ।

अर्थ–सेह के कांटों को जलाकर घी, शहत और शर्करा मिलाकर खाने से श्वास और खांसी जाते रहते हैं । अथवा मोर के पंजों की राख घी और शहत के साथ, अथवा अरंड के पत्तों का खार, त्रिकुटा, तेल और गुड मिलाकर अथवा तुलसी और अरंडके पत्तों का खार त्रिकुटा, तेल और गुड मिलाकर अथवा केवल त्रिकुटा का चूर्ण, पुराना गुड और घी अथवा पदमाख, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, बला, रास्ना, इन सबको समान भाग लेकर पीसले और इन सब की बराबर शर्करा मिलाकर शहत और घीके साथ, अथवा पिसी हुई कालीमिरच घी, शहत और खांड में मिलाकर चाटै ।

अन्य प्रयोग ।

पथ्याशुंठीधनगुडैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ॥
सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम् ।

अर्थ–हरड, सोंठ, नागरमोथा और गुड इनकी गोलियां बनाकर मुख में रखकर रस चूसता रहै, अथवा केवल बहेडे के छिलके मुख में रखने से सब प्रकार के घाव और खांसी जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

पत्रकल्कं घृतभृष्टं तिल्वकस्य सशर्करम् ॥
पेयावोत्कारिकाछर्दितृट्कासामातिसारनुत् ।

अर्थ–लोधके पत्तों के कल्क को खांड मिलाकर लेहन करै । अथवा इसी कल्क से पेया वा उत्कारिका तयार करके पान करै तो वमन, तृषा, खांसी, और आमातिसार जाते रहते हैं ।

सब खांसियोंपर मूंगका यूष ।

कंटकारीरसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः ॥
सगौरामलकः साम्लः सर्वकासनिषूदितम् ।

अर्थ–सब प्रकार के कासरोगोंमें कटेरी के रससे सिद्ध कियाहुआ मूंगका यूष हितकारी होता है, इसमें हींग, सेंधानमक, सोंठ और घृतादि मसाले डाल के और खट्टा करने के लिये गौर आमला वा अनारदाने की खटाई डालदे ।

अन्य यूष ।

" वातघ्नौषधनिःक्काथे क्षीरं यूषान् रसानपि
वैष्किरान् प्रातुदान् वैलान् दापयेत्क्षयकासिने

अर्थ–वातनाशक औषधियों के क्काथमें सिद्ध कियाहुआ दूध, यूष और विष्किर प्रतुद तथा विलेशय जीवोंका मांसरस पकाकर क्षयकासवाले रोगीको देना चाहिये ।

क्षयकासमें सानुपान धूमादि ।

क्षतकासे च ये धूमाः सानुपाना निदर्शिताः ॥
क्षयकासेऽपि ते योज्या वक्ष्यते यच्च यक्ष्मणि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बृंहणं दीपनं चान्नैः स्रोतसां च विशोधनम्
व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्वं प्रशस्यते

अर्थ–क्षयकासमें जो अनुपान सहित घृतपान वर्णन किये गये हैं, वेही क्षयकास में दिये जाते हैं तथा आगे जो यक्ष्मारोगमें वर्णन किये जांयगे उसका भी देना हितहै। तथा बृंहण, अग्निसंदीपन और स्रोतोंके शोधनकर्ता द्रव्य देने चाहिये। तथा हेतु और व्याधिके विपरीत जो बलकारक औषध और आहार विहारादि हैं वे भी सब उपयोग में लाने चाहिये।

सान्निपातिक कास।

सन्निपातोद्भवो घोरः क्षयकासो यतस्ततः।
यथा दोषबलं तस्य सन्निपाताहितं हितम"।

अर्थ–सन्निपात से उत्पन्न हुई क्षयकी खांसी बडी भयंकर होती है, इसलिये दोष के बल का विचार करके वे वे दवा देना चाहियें जो सन्निपात में हितकर होती हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदय संहितायां भाषा टीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने कासचिकित्सितं नाम तृतीयो ऽध्यायः॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतः श्वासहिध्माचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से श्वास और हिध्मा चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

श्वास और हिध्माकी समानता॥

" श्वासहिध्मा यतस्तुल्यहेत्वाद्याः साधनं ततः॥ १॥

तुल्यमेव

अर्थ–श्वास और हिचकी के उत्पन्न होनेके हेतु, पूर्वरूप, संख्या, प्रकृति, और अधिष्ठान सब समान है, इसलिये इनकी चिकित्सा भी समान हैं।

श्वास और हिचकी में स्वेदन॥

तदार्ते च पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत्।
स्निग्धैर्लवणतैलाक्तैः खेषु ग्रथितः कफाः॥
सुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठम् प्रातः-सुनिर्हरः।
स्रोतसां स्यान्मृदुत्वं च मारुतस्यानुलोमता

अर्थ–श्वास और हिचकी के रोगी में सब उपचारों से पहिले स्वेदन क्रिया करनी चाहिये। इसमें लवणादिमिश्रित तेल द्वारा स्निग्ध स्वेदन दिया जाता है, क्योंकि रूक्ष स्वेदन देने से वातके कोपका भय रहताहै, इस स्निग्ध स्वेदन क्रिया से स्रोतोंमें लिहसा हुआ कफ अलग होकर रोगी के कोष्ठ में चला जाता है, वहां से सुखपूर्वक बाहर निकाल दिया जासकता है। ऐसाकरने से सब स्रोत मृदु और वायुका अनुलोमन होताहै

स्वेदनके पीछे आहारादि।

स्विन्नम् च भोजयेदन्नं स्निग्धमानूपजै रसैः।
दध्युत्तरेण वा दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ४॥
विशेषात्कासवमथुहृद्ग्रहस्वरसादिने।
पिप्पलीसैंधवक्षौद्रयुक्तम् वाताविरोधि यत्

अर्थ–स्वेदनकर्म के पीछे आनूप जीवों के मांसरसके साथ स्निग्ध शाल्यादि अन्नका भोजन करावे। अथवा स्वेदन के पीछे दही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की मलाई द्वारा मृदु विरेचन देवे । विशेष करके खांसी, हृल्लास, हृद्ग्रह और स्वरसाद में पीपल, सेंधानमक और शहद मिलाकर अथवा वातको उत्पन्न न करने वाले द्रव्य मिलाकर वमन देवे ।

कफनिकलने पर सुखप्राप्ति ।

निर्हृते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे ।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ६

अर्थ–शरीरमें विकार करनेवाले कफके निकल जानेपर इस रोगी को सुख प्राप्त होताहै । तथा कफसे लिप्से हुए स्रोतों के खुल जानेसे वायु बे रोक टोक सब स्रोतों में घूमने लगताहै ।

अन्य उपाय ।

ध्मानोदावर्ततमके मातुलिंगाम्लवेतसैः ।
हिंगुपिप्पलिबिडैर्युक्तमन्नं स्यादनुलोमनम् ॥ ७॥
सक्षैंधवं फलाम्लं वा कोष्णं दद्याद्विरेचनम् ।

अर्थ–अफरा, उदावर्त, तमकश्वास, इन से युक्त श्वास और हिचकी के रोगों में बिजौरा, अम्लवेत, हींग, पीलू, बिडंग इन से युक्त अन्नका सेवन करनेसे वायुका अनुलोमन होताहै अथवा बिजौरा आदि खट्टे फलमें सेंधानमक मिलाकर स्रोतों की विशुद्धिके लिये विरेचन देवे ।

उक्त उपायका फल ।

एते हि कफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ॥ ८ ॥
तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थं मूर्ध्वाधः शोधनं हितम्

अर्थ–कफद्वारा प्राणवायु की गति रुक जानेके कारण हिचकी और श्वास रोग उत्पन्न होजातेहैं, इसलिये इन स्रोतोंके शुद्धिके कारण वमन और विरेचन देना हितहैं ।

उपरोक्त हेतुमें दृष्टांत ।

उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्बहज्जलम् ॥ ९ ॥
यथाऽनिलस्तथा तस्य-
मार्गमस्माद्विशोधयेत् ।

अर्थ–जैसे जलके बहनेका मार्ग रुकजाने के कारण जल बहुत बढजाताहै, इसीतरह वायुका मार्ग रुकजाने के कारण वायु बहुत ही बढजाता है, इसलिये उसके मार्गों का शोधन करना अत्यन्त हितकारी है ।

उक्तरोगों की अशान्तिमें कर्तव्य ।

अशांतौ कृतसंशुद्धेर्धूमैर्लीनं मलं हरेत् १० ॥

अर्थ–उक्त उपायोंसे भी यदि कफ दूर नहो तो आगे लिखे हुए धूमपानोंका प्रयोग करना चाहिये ।

धूमपान की विधि ।

हरितालपत्रमेरण्डमूलम् द्राक्षां मनःशिलाम् ।
सदेवदार्वलं मांसीं पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्
तां घृताक्तां पिबेद्धूमं यवान्वा घृतसंयुतान् ।
मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं वा गुरु वाऽगुरु ॥
चंदनं वा तथा शृंगं बालान्वा श्वाव वा गवाम्
ऋक्षगोधकुरंगैणचर्मशृंगखुराणि वा ॥ १३ ॥
गुग्गुलुं वा मनोहां वा शालनिर्यासमेव वा ।
शल्लकीं गुग्गुलुं लोहं पद्मकं वा घृतप्लुतम् ॥

अर्थ–हलदी, तेजपात, अरंडकीजड, दाख, मनसिल, देवदारू, हरताल, जटामांसी इनको पीस घृतमें सान बत्ती बनाय आग लगाकर पीवे । अथवा घीमें मिलेहुए जौ । अथवा मोम, राल और घी इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करे, अथवा उत्तम काले अगर का धूआं पीवे । अथवा चंदन का धूआं पीवे । अथवा गौके सींगका वा गौके गले के बालोंका धूआं पीवे अथवा रीछ, गोह, कुरंग, और एणके चर्म, सींग और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खुरोंका धूआं पीवे अथवा गूगल, वा मनसिल वा सालके गौंदका धूआं पीवे, अथवा शल्लकीका गौंद, गूगल, अगर वा पदमाख इनको घृतमें सानकर आग लगाय धूआं पीवै।

स्वेदन योग्यों का स्वेदन।

अवश्यं स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम्।
स्वेदयेत्ससिताक्षीरैः सुखोष्णस्नेहसेचनैः॥
उत्कारिकोपनाहैश्च स्वेदाध्यायोक्तभेषजैः।
उरः कंठं च मृदुभिः सामे त्वामविधिं चरेत्

अर्थ–श्वास और हिक्का रोग में अवश्य स्वेदन के योग्य अथवा स्वेदन के अयोग्य रोगियों के वक्षःस्थल और कंठ में शर्करा और दुग्धसंयुक्त थोडे गरम घृतादि स्नेह द्वारा मृदु स्वेद देना चाहिये। अथवा स्वेदाध्याय में कही हुई औषधियों द्वारा उत्कारिका और उपनाह बनाकर हृदय और कंठ पर मृदु स्वेदन देवे। आम संयुक्त हिचकी और श्वास में आमरहित करने के लिये लंघन पाचन द्वारा आमकी चिकित्सा करनी चाहिये।

उद्धतवायु में कर्तव्य।

अतियोगोद्धतं वातं दृष्ट्वा पवननाशनैः।
स्निग्धैः रसाद्यैर्नात्युष्णैरभ्यंगैश्च शमं नयेत्।

अर्थ–वमन विरेचन के अतियोग से जो वायु कुपित होजाय तो वातनाशक स्निग्ध मांसरसादिक, तथा घी और दूध से सिद्ध किये हुए आहार देने चाहिये तथा कुछ गरम अभ्यंगादि द्वारा वायुका शमन करे।

उक्तरोगों में कषाय।

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्बलानां हि शोधनात्
वायुर्लब्धास्पदो मर्मशोषाशु हरेदसून्॥

अर्थ–जिनका कफ बाहर निकलने के लिये उत्क्लिष्ट नहीं हुआ है, जिनको स्वेद नहीं दिया गया है और दुर्बल रोगियों को यदि वमनविरेचन दियागया है तो ऐसा होने से वायु बल पकडजाता है और हृदय मर्मका शोषण करके शीघ्रही रोगी के प्राणों को नष्ट करदेता है। इसलिये उक्त प्रकारके हिचकी और श्वासवालों को वमनविरेचन नहीं देना चाहिये।

उक्तदशा में कर्तव्य।

कषायलेहस्नेहाद्यैस्तेषां संऽशमयेद्गतः।

अर्थ–ऊपर दिखाये हुए हेतुसे शोधन के अयोग्य रोगियों के श्वास और हिचकी रोगों को कषाय, अवलेह, और स्नेहादिक से शमन करने का यत्न करे।

मधुरादि द्रव्यका प्रयोग।

क्षीणक्षतातिसारासृक्पित्तदाहानुबंधजान्।
मधुरस्निग्धशीताद्यैर्ध्माश्वासानुपाचरेत्।

अर्थ–क्षीण, क्षत, अतिसार, रक्तपित्त और दाह इनके अनुबंधसे जो हिचकी और श्वास रोग उत्पन्न होते हैं उनको मधुर, स्निग्ध और शीतवीर्य द्रव्यों से दूर करने का उपाय करे।

उक्तरोगों पर मांसयूष।

कुलत्थदशमूलानां काथे स्युर्जांगला रसाः॥
यूषाश्च-

अर्थ–श्वास और हिचकी रोगवालों को कुलथी और दशमूल के काढे में सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस वा यूष देवे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्तरोगों में पेया ।

शिग्रुवार्ताककासघ्नवृषमूलकैः ।
पल्लवैर्निंबकुलकवृहतीमातुलिंगजैः ॥ २१ ॥
व्याघ्रीदुरालभा श्रृंगीबिल्वमध्य त्रिकंटकैः ।
पेया च चित्रकाजाजी श्रृंगीसौवर्चलैः कृता।
दशमूलेन वा कास श्वासहिध्मारुजापहा ।

अर्थ--सहजना, बेंगन कसौंदी, अडूसा मूली, नीम, परवल, कटेरी और बिजौरे इन सब के पत्ते, तथा कटेरी, दुरालभा, काकडासींगी, बेलगिरी का गूदा और गोखरू इनसे बनाई हुई, तथा चीता, काला जीरा, काकडासिंगी और संचल नमक इन के साथ वा दशमूल के साथ सिद्ध की हुई पेया का आहार करावै । इससे खांसी श्वास, हिचकी और वेदना शांत होजातीहै।

कषाय और पेया ।

दशमूल शठीरास्ना भार्गीबिल्वर्धि पुष्करैः।
कुलीर शृंगी चपलातामलक्यमृतौषधैः ।
पिबेत्कषायं जीर्णेऽस्मिन्पेयांतैरेवसाधिताम्

अर्थ–दशमूल, कचूर, रास्ना, भाडंगी, बेलगिरी, ऋद्धि, पुष्करमूल, काकडासिंगी, सिद्धि, भूम्यामलकी, गिलोय और सौंठ इनका क्वाथ, पीनेको दे और क्वाथ के जीर्ण होजानेपर पूर्वोक्त दशमूल के काढेमें सिद्ध की हुई पेया खाने को दे, इससे हिचकी और श्वास, जाते रहते हैं ॥

अन्य औषध ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गकुलत्थभुक् ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिध्माश्वासप्रशांतये ॥

अर्थ–शालीचांवल, साठीचांवल गैहूं, जौ, मूंग, और कुलथी इनका भोजन करने से खांसी, हृदयवेदना, पसलीका दर्द, हिचकी और श्वास प्रशमित होजातेहैं ।

उक्तरोगों पर सत्तू ।

सक्तून्वार्काकुरक्षीरभाविताञ्छमाशिकान्
यवानां दशमूलादिनिक्काथलुलितान् पिबेत् ।

अर्थ–आकके अंकुर और दूधकी भावना दिये हुए जौ का सत्तू बनवाकर दशमूल, शठी रास्ना आदि ऊपर कहे हुए द्रव्यों के काढे में सानकर शहद मिलाकर पानकरै ।

उक्त औषध पर आहार ।

अन्नेच योजयेत्क्षारंहिंग्वाज्यालवणदाडिमान्।
सपौष्करशठीव्योषमातुलिंगाम्लवेतसान् ॥

अर्थ–क्षार, हींग, घृत, विडनमक, अनार, पुष्करमूल, कचूर, त्रिकुटा, बिजौरा, और अम्लवेत ये द्रव्य भोजने के अन्नमें मिलाने चाहिये ।

उक्तरोगों पर पेय द्रव्य ।

दशमूलस्य वा क्काथमथवा देवदारुणः ।
पिबेद्वा वारुणीमंडं हिध्माश्वासी पिपासितः

अर्थ–हिचकी और श्वासवाले को तृषा लगनेपर, दशमूल वा देवदारु का क्वाथ अथवा सुरामंड, देना चाहिये ।

उक्त रोगों पर तक्र ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलपथ्याजंतुघ्नचित्रकैः ।
कल्कितैर्लेपिते रूढे निःक्षिपेद्घृतभाजने ॥
तक्रं मासस्थितं तद्धि दीपनं श्वासकासजित् ।

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, हरड, बायबिडंग, और चीता इन सब द्रव्यों को पीसकर एक घी की हांडी के भीतर इनका लेप कर दे, जब लेप सूख जाय तब उस घडेमें तक्र भरकर एक महिने तक रहने दे फिर इसको पीनेके काममें लावै, यह खांसी श्वासको खो देता है और अग्निसंदीपन है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य पेय औषध।

पाठां मधुरसां दारु सरलं निशि संस्थितम्॥
सुरामंडेऽल्पलवणं पिबेत्प्रसृतिसंमितम्।
भार्गीशुंठ्योसुखांभोभिः क्षारं या-
मरिचान्वितम्। ३१।
स्वक्काथपिष्टां लुलितां वाप्किां पाययेत वा

अर्थ-पाठा, मुलहटी, देवदारु, और सरलकाष्ठ इनको पीसकर थोडासा नमक मिलाकर सुरामंड में डालकर रातभर रहनेदे। दूसरे दिन इसमें से दो पल प्रतिदिन सेवन करै अथवा भाडंगी, सोंठ का चूर्ण गुनगुने पानी के साथ, अथवा जवाखार और पिसीहुई काली मिरच मिलाकर अथवा हिंगुपत्री को हिंगुपत्री के काढेमें पीसकर हिंगुपत्री के काढेमें ही घोलकर पान कराना चाहिये।

अन्यपेय द्रव्य।

स्वरसः सप्तपर्णस्य पुष्पाणां वा शिरीषतः।
हिध्माश्वासे मधुकणायुक्तः पित्तकफानुगे।

अर्थ-सप्तपर्णी का रस अथवा सिरस के फूल का रस शहत और पीपल मिलाकर पित्तकफानुगामी हिचकी और श्वास रोग में देना चाहिये।

अन्य उपाय।

उत्कारिका तुगाक्षीरी मधूलीघृतनागरैः।
पित्तानुबंधे योक्तव्या पवने त्वनुबन्धिनि।
श्वाविच्छशामिषकणा घृतशाल्यकशोणितैः
चतुर्गुणांबुसिद्धं वा पयः सगुडनागरम्।
सुवर्चलादिसिद्धं वा तयोः शाल्यो-
दनादनु॥ ३५॥

अर्थ-पित्तानुबंधी हिचकी और श्वास रोग में वंशलोचन, पीपल, गेंहू, घी, सोंठ इनकी उत्कारिका बनाकर दे। पवनानुगामी हिचकी और श्वास में स्नेह और ससे का मांस, पीपल, घृत और शल्लकी का रुधिर इनकी उत्कारका बनाकर सेवन करै। बातानुबंधी हिचकी और श्वास में चौगुने जल में बकरी का दूध गुड और सोंठ डाल कर पकाया हुआ पीने में देना चाहिये। तथा वातापित्तानुबंधी हिचकी और श्वास में संचलनामक और मांसरसादि के साथ में सिद्ध किया हुआ शालीचांवलों का भात खाकर ऊपर से दूध पीवै।

अन्य उपाय।

पिप्पलीमूलमधुकगुडगोश्वशकृद्रसान्।
हिध्माभिष्यंदकासघ्नान्
लिह्यान्मधुघृतान्वितान्॥ ३४॥

अर्थ-पीपलामूल, मुलहटी गुड, गौका गोवर, और घोडे की लीद का रस इनमें मधु और घृत मिलाकर चाटने से हिचकी, अभिष्यंद और खांसी जाती रहती है।

कफाधिक्य श्वास और हिचकी।

गोगजाश्ववराहोष्ट्रखरमेषाजविद्रसम्।
समध्वेकैकशो लिह्याद्बहुश्लेष्माऽथवापिबेत्
चतुष्पाच्चर्मरोमास्थिखुरशृंगोद्भवां मषीम्।
तथैव वाजिगन्धाया लिह्यात् श्वास-
कफोल्वणः॥ ३७॥
शठी पुष्करधात्रीर्वा पौष्करं वा कणान्वितम्
गैरिकांजनकृष्णां वा स्वरसं वा कपित्थजम्
रसेन वा कपित्थस्य धात्रीसैंधवपिप्पलीः।
घृतक्षौद्रेण वा पथ्याविडंगोषणपिप्पलीः॥
कोललाजामलद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा।
गुडतैलनिशाद्राक्षाकणाराम्नोषणानि वा॥
पिबेद्रसांबुमद्याम्लैर्लेहौषधरजांसि वा।

अर्थ-गौ, हाथी, घोडा, शूकर, ऊंटा, मेंढा, और बकरी इनके विष्ठाओं का रस इनमें से प्रत्येक में मधु डाल डालकर पीवै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथवा चौपाये जानवरों का चमडा, रोम, हड्डी, खुर, और सींग इनको जलाकर इन की भस्म तथा अजगंद की राख को कफाधिक्यवाला श्वासरोगी चाटै । अथवा कचूर. पुष्करमूल,आमला अथवा पुष्करमूल और पीपल, अथवा गेरू, रसौत और पीपल अथवा कैथका रस इन सब प्रयोगोंको शहत के साथ सेवन करै । अथवा कैथके रस के साथ आमला, सेंधानमक, और पीपल को चाटै, अथवा घृत और शहत के साथ हरड, बायविडंग, त्रिफला, और पीपल, अथवा बेर, धानकी खील, आमला, पीपल और सोंठ इनको घी और शहत के साथ चाटै । अथवा गुड, तेल, हलदी,दाख, पीपल, रास्ना, और त्रिकुटा घृत और शहत के साथ चाटै । अथवा अगस्त्यादि लेह संबंधी औषधों को मांसरस, जल, मद्य, वा कांजी के साथ पान करै ।

जीवंत्यादि चूर्ण ।

जीवंतीमुस्तसुरसत्वगेलाद्वयपौष्करम् ॥
चंडातामलकीलोहभार्गीनागरवालकम् ।
कर्कटाख्या शठी कृष्णा नागकेसरचोरकम् ।
उपयुक्तम् यथाकामम् चूर्णं द्विगुणशर्करम् ।
पार्श्वरुग्ज्वरकासघ्नं हिध्माश्वासहरं परम् ॥

अर्थ–जीवंती, मोथा, गंधतृण, दालचीनी, बडी इलायची, छोटी इलायची, पुष्करमूल, चंडा, भूम्यामलक, अगर, भांडंगी, सोंठ, नेत्रबाला, काकडासींगी, कचूर, पीपल, नागकेसर और चोरक इनमें से जो मिलसकें उसका चूर्ण बनाकर दूनी चीनी मिलाकर सेवन करे, इससे पसलीका दर्द, ज्वर, खांसी, हिचकी और श्वासरोग दूर होजाते हैं ।

शठ्यादि चूर्ण ।

शठी तामलकी भार्गी चंडावालकपौष्करम् ।
शर्कराष्टगुणम् चूर्णं हिध्मीश्वासहरं परम् ॥

अर्थ–कचूर, भूम्यामलकी, भांडंगी, केंच के बीज, नेत्रबाला और पुष्करमूल इन सबका चूर्ण कर अठगुनी खांड मिलाकर सेवन करने से हिचकी और श्वास दूर होजाते हैं ।

अन्य चूर्ण और नस्य ।

तुल्यं गुडं नागरं च भक्षयेन्नावयेत वा ।

अर्थ–समान भाग गुड और सोंठ मिलाकर खाने से वा नस्य द्वारा प्रयोग करनेसे पूर्ववत् गुण होताहै ।

लशुनादि नस्य ।

लशुनस्य पलांडोर्वा मूलं गृंजनकस्य वा ।
चंदनाद्वा रसं दद्यान्नारीक्षीरेण नावनम् ।
स्तन्येन मक्षिका विष्टामलक्तकरसेन वा ।

अर्थ–लहसन, प्याज वा गाजर की जड का रस अथवा चंदन के रसमें स्त्रीका दूध मिलाकर अथवा मक्खी का विष्ठा स्त्री के दूधके साथ अथवा आल के जलके साथ नस्य लेने से हिचकी और श्वास जाते रहते हैं ।

उक्तरोगों पर घृतविशेष ।

कणासौवर्चलक्षारवयस्थाहिंगुचोरकैः ।
सकायस्थैर्घृतं मस्तु दशमूलरसे पचेत् ।
तत्पिबेज्जीवनीयैर्वा लिह्यात्समधुसाधितम्

अर्थ–पीपल, संचल नमक, जवाखार, आमला, हींग, चोरक, हरीतकी इनका कल्क मिलाकर दही के तोड और दशमूल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के काढे में पकाया हुआ घृत सेवन करे अथवा जीवनीयादि गण के द्रव्यों का कल्क डालकर शहत मिलाकर चाटै।

अन्य उपाय।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकः शठी।
पटुद्वयं तामलकी जीवंती बिल्वपेशिका।
बचापत्रं च तालीसं कर्षांशैस्तैर्विपाचयेत्।
हिंगुपादैर्घृतप्रस्थं पीतमाशु निहंति तत्।
शूलानिलार्शो ग्रहणी हिध्मा हृत्पार्श्ववेदना।

अर्थ–हरीतकी, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, पूतीकरंज, पुष्करमूल, ढाक, चीता कचूर, कालानमक, सेंधानमक, तामलकी, जीवंती, कच्ची बेलगिरी, बच, तेजपात, तालीसपत्र इन सबको एक एक कर्ष, हींग चौथाई कर्ष, इनके कल्क में एक प्रस्थ घी पकावै इस घी को पीनेसे हाथ पार्वों की वायु, अर्श, ग्रहणी, हिचकी, हृदयवेदना, और पार्श्ववेदना ये सब बहुत शीघ्र दूर होजाते हैं।

अन्य घृत।

अर्धांशेन पिबेत्सर्पिः क्षारेण पटुनाऽथवा।
धान्वंतरं वृषघृतं दाधिकं हपुषादि वा।

अर्थ–प्रमेह में कहे हुए धान्वन्तर घृत तथा रक्तपित्तोक्त वृषघृत, तथा गुल्म चिकित्सितोक्त दाधिक घृत तथा उदरोक्त हपुषादि घृत में जवाखार वा नमक मिलाकर सेवन करने से हिचकी और श्वास जाते रहते हैं।

अन्य उपाय।

शीतांबुसेकः सहसा श्वासविक्षेपभीशुचः।
हर्षेर्ष्योच्छ्वाससंरोधा हितं कीटैश्चदंशनम्।

अर्थ–हिचकी और श्वासवाले रोगीका सहसा शीतल जलसे परिषेक करै अथवा त्रास (चित्तको उद्वेगकारक कर्म) विक्षेप (हिलाना), भय, शोक, हर्ष, ईर्ष्या, श्वासका रोकना, ये सब हित हैं अथवा चींटी आदि कीडों से कटवाना भी हितकारक है, इससे वात का वेग कम हो जाता है।

हिचकीश्वास की सामान्य चिकित्सा।

यत्किंचित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
तत्सेव्यं प्रायशो यच्च सुतरां मारुतापहम्।

अर्थ–जो आहारविहारादि कफ वा वात को अलग अलग वा दोनोंको नाश करता है तथा जो उष्ण है और वात का अनुलोमन करता है, तथा जो वातको नाश करनेवाले हैं, ये सब द्रव्य श्वास और हिचकी रोगोंमें सेवन करने चाहिये।

उक्त रोगों के शमन में हेतु।

सर्वेषां बृंहणेह्यल्पः शक्यश्च प्रायशोभवेत्।
नात्यर्थं शमनेऽपायो भूशोऽशक्यश्चकर्षणे।
शमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत्।

अर्थ–संपूर्ण प्रकारके हिचकी और श्वास रोगोंमें बृंहण औषधियों के करने परभी जो दैवयोगसे किसी अन्य रोगका प्रादुर्भाव हो जाय वह प्रायः थोडा होता है और सुखसाध्य भी होता है। और यदि शमन औषधियों के प्रयोगसे भी कोई अनिष्ट होजाय तो वह अधिक नहीं होता है किन्तु मध्यमावस्था में होता है वह भी सुखसाध्य है। परंतु हिचकी और श्वासकी शांतिके लिये जो कर्षण कर्मद्वारा रोगकी उत्पत्ति होती है वह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असाध्य है। इसलिये हिचकी और श्वासके रोगोंमें विशेष करके बृंहण और शमन उपायों द्वारा चिकित्सा करै।

उक्त रोगों में परस्पर उपचार ।

कासश्वासक्षयच्छर्दिहिध्माश्चान्योन्यभेषजैः

अर्थ–खांसी, दम, क्षयी, वमन और हिचकी इन पांच प्रकारके रोगोंकी चिकित्सा समान होती है, अर्थात् कासोक्त औषधों से दमकी और श्वासोक्त औषधों से कासकी चिकित्सा की जाती है, ऐसे ही क्षयी आदि रोगोंकी चिकित्साके विषयमें समझना चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहिताया भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने श्वासहिध्माचिकित्सितनाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो राजयक्ष्मादिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहांसे राजयक्ष्मादि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

यक्ष्मामें शोधन कर्म ।

" बलिनो बहुदोषस्य स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम् ।
ऊर्ध्वाधोयक्ष्मिणः कुर्यात्सस्नेहं यत्नकर्शनम्।

अर्थ–वातादि बहुत दोषोंसे युक्त यक्ष्मा रोगी यदि बलवान् हो तो पहिले उसे स्नेहन और स्वेदन द्वारा स्निग्ध और स्विन्न करके ऊर्ध्वाधः शोधन अर्थात् वमन और विरेचन द्वारा ऐसा शोधनकरै जिससे शरीर में कृशता न होने पावै ।

वमनविधि ।

पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा ।
सर्पिष्मत्या यवाग्वा वा वमनद्रव्यसिद्धया। वमेत्

अर्थ–दूध के साथ मैनफल देकर राजयक्ष्मा रोगी को वमन करावै अथवा इक्षु आदि मधुररस वा मांसरस के साथ मैनफल मिलाकर दे, अथवा मैनफल आदि वमनकारक द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई घृत मिश्रित यवागू देकर वमन करावै ।

राजयक्ष्मा में विरेचन ।

विरेचनं दद्यात्त्रिवृच्छ्यामानृपद्रुमान् ।
शर्करामधुसर्पींभिः पयसा तर्पणेन वा ।
द्राक्षाबिदारीकाश्मर्यमांसानां वारसैर्युतान।

अर्थ–निसोथ, श्यामानिसोथ, अमलतास इनमेंसे एक एक को खांड, मधु और घृतके साथ देकर विरेचन करावे, अथवा निसोथादि को दूधके साथ अथवा तर्पण के साथ देकर विरेचन करावै । अथवा द्राक्षारस, विदारी रस, खंभारीरस, वा मांसरस इनमें से किसी एक के साथ उक्त निसोथादि देकर वमन करावे ।

बृंहणदीपन विधि ।

शुद्धकोष्ठस्य युंजीत विधिं बृंहणदीपनम् ।
हृद्यानि चाऽन्नपानानि वातघ्नानि लघूनि च शालिषष्टिकगोधूममयमुद्गं समोषितम् ॥

अर्थ–वमनविरेचन द्वारा कोष्ठके शुद्ध होनेपर राजयक्ष्मावाले रोगी को बृंहण और अग्निसंदीपन औषध देनी चाहिये । तथा वातनाशक, और हलके तथा हृदय को हि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तकारी अन्नपान देवे अथवा एक साल के पुराने शालीचांवल, साठीचांवल, गैहूं, जौ, और मूंग देवे।

राजयक्ष्मा में मांससेवन।

आजं क्षीरघृतंमांसंकव्यान्मांसंचशोषजित्। काकोलूकबृकद्वीपिगवाश्वनकुलोरगम् ॥६॥ गृध्रभासखराष्ट्रं च हितं क्षयोपसंहितम्। ज्ञातं जुगुप्सितं तद्धि छर्दिये न बलौजसे ॥

अर्थ–बकरी का घी, दूध और मांस तथा मांसाहारी जीवों का मांस राजयक्ष्मामें हितहै तथा काक, उल्लू, भेडिया, गेंडा, गौ,घोडा नकुल, सर्प, गिद्ध, चील, गधा, ऊंट, इन के मांस राजरोग में हितकारकहै, परन्तु ऐसे धोखे से देने चाहिये कि रोगी को मालूम नहो ; रोगी को इन घृणित मांसों का हाल मालूम होजानेसे वमन होजाती है और बल तथा ओजकी वृद्धि नहीं होतीहै।

पित्तकफादि में हित द्रव्य।

मृगाद्याः पित्तकफयोः पवने प्रसहादयः। वेसवारीकृताः पथ्या रसादिषु च कल्पिताः भृष्टाः सर्षपतैलेन सर्पिषा वा यथायथम्। रसिका मृदवः स्निग्धा मृदुद्रव्याभिसंस्कृताः हितामौलककौलत्थास्तद्वद्यूषाश्च साधिताः

अर्थ–राजयक्ष्माबाले रोगी को यदि पित्त और कफकी अधिकता हो तो मृग, बिष्किर और प्रतुद, तथा वातकी अधिकतामें प्रसहादि जीवोंके मांस हितकारी है। इन मांसों से वेसवार और मांस रसादि प्रस्तुत करके देना चाहिये अथवा देशकाल के अनुसार सरसों के तेल वा घृतसे भून लेवे, अथवा रसीले, मृदु, स्निग्ध तथा सैंधवादि द्रव्योंसे संस्कृत मूली और कुलथी से बनेहुए यूष हितकारी होतेहै।

पीनसादि पर बकरे का मांसरस।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम्॥ सदाडिमं सामलकं स्निग्धमाजं रसं पिबेत्। तेन षड्विनिवर्तते विकाराः पीनसादयः ११।

अर्थ–पीपल, जौ, कुलथी, सौंठ, अनार और आमला डालकर घृत मिला कर तयार किया हुआ बकरी के मांसका रस सेवन करनेसे पीनस, श्वास, खांसी, कंधोंकादर्द, सिरका दर्द, और स्वरवेदना, ये छः रोग नष्ट होजातेहैं।

स्रोतशोधनार्थ जीर्ण मद्यपान।

पिबेच्च सुतरां मद्यं जीर्णं स्रोतोविशोधनम्। पित्तादिषु विशेषेण मध्वरिष्टात्सवारुणीः॥ सिद्धं वा पंचमूलेन तामलक्याथवा जलम्। पर्णिनीभिश्चतसृभिर्धान्यनागरकेण वा॥ कल्पयेद्धानुकूलोऽस्य तेनान्नं शुचि यत्नवान्

अर्थ–स्रोतों को विशुद्ध करनेके निमित्त अत्यन्त पुराना मद्यपान करना चाहिये, और पित्त. कफवातमें मधु, अरिष्ट और वारुणी का सेवन करना चाहिये, अथवा पंचमूलके साथ सिद्ध किया हुआ वा मुण्यामलक के साथ अथवा चारों पर्णियों में शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी, और माषपर्णी, द्वारा सिद्ध किया हुआ अथवा धनिये और सोंठ के साथ सिद्ध किया हुआ जलपान करावै। अनुकूल, यत्नवान और पवित्र परिचारक द्वारा पंचमूलादि के जलसे सिद्ध किये हुए अन्न रोगी को देवे॥

राजयक्ष्मा पर घृत।

दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन वा।१४। बलागर्भं घृतं योज्यं कव्यान्मांसरसेन वा। सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा।१५।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–दशमूल का काढा, वा दूध, वा मांसरस, वा खरैटीका कल्क, अथवा मांसाहारियों के मांसरस में खरैटीका कल्क डाल कर सिद्ध किया हुआ घी देना चाहिये । अथवा दसगुने दूधमें खरैटीका कल्क डाल कर सिद्ध किया घी शहत मिलाकर सेवन करना चाहिये ।

राजयक्ष्मा पर अन्य घृत ।

जीवंतीमधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
पुष्करार्द्धं शठीं कृष्णां व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ।
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
कल्कीकृत्य घृतं पक्वं रोगराजहरं परम् ॥ १७॥

अर्थ–जीवंती, मुलहटी, दाख, कुडाके बीज, पोहकरमूल, कचूर, पीपल, कटेरी, गोखरू, खरैटी, नीलकमल, तामलकी, त्रायमाणा, और दुरालभा इनका कल्क करके घी पकावै इस घीके सेवनसे राजयक्ष्मा नष्ट होजाता है ।

अन्यघृत ।

घृतं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासज्वरापहम् ॥

अर्थ–खजूर, मुनक्का, मुलहटी और फालसा इनका कल्क डालकर चौगुने जल में घी पकाकर तयार करले इसमें पीपल पीस कर मिला लेवै इसके सेवन से स्वरका विकार खांसी, श्वास और ज्वर नष्ट होजाताहै

अन्यघृत ।

दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यद्दुदियात्नवम् ।
सपिप्पलीकं सक्षौद्रं तत्परं स्वरबोधनम् ॥
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ।
पंचभिः पंचमूलैर्वा शृताद्यद्दुदियाद् घृतं ॥

अर्थ–दशमूल के काढे के साथ सिद्ध कियेहुए दूधमेंसे माखन निकालकर इसमाखनको पीपल और शहत मिलाकर सेवन करे तो स्वर बहुत शुद्ध होजाता है, सिरकादर्द, पसलीका दर्द खांसी, श्वास और ज्वर नष्ट होजातेहै इसीतरह पांचप्रकार के पंचमूल के साथ सिद्ध किये हुए दूधका घीभी उक्त गुणकारक होता है ।

अन्यघृत ।

पंचानां पंचमूलानां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मिणः सप्तकं बलम् ॥

अर्थ–पांचप्रकारके पंचमूलके कथमें चौगुना दूध डालकर पकाया हुआ घी यक्ष्मारोगी के सात प्रकारके पीनसादि रोगोंको दूरकर देता है, पांचप्रकार के पंचमूल येहैं, कंटक पंचमूल, तृणपंचमूल, वल्लीपंचमूल, वृहत्पंचमूल, और लघुपंचमूल ।

गुल्मादिरोग पर घृत ।

पंचकोलयवक्षारषट्पलेन पचेद् घृतम् ।
प्रस्थोन्मितं तुल्यपयः स्रोतसां तद्विशोधनम् ॥
गुल्मज्वरोदरग्रीहग्रहणीपांडुपीनसान् ।
श्वासकासाग्निसादनश्वयथूर्ध्वानिलान्जयेत् ।

अर्थ–पंचकोल [पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ] और जवाखार ये छः द्रव्य प्रत्येक एक एक पल तथा एक प्रस्थ घी और एक प्रस्थ दूध इनको पकाकर सेवन करने से स्रोत अत्यंत शुद्ध हो जाते हैं, तथा गुल्म, ज्वर, उदररोग, प्लीहा ग्रहणी, पांडुरोग, पीनस, श्वास, खांसी, अग्निमांद्य, सूजन और ऊर्ध्ववात ये सब रोग नष्ट होजाते है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शोषरोग पर घृत।

रास्नाबलागोक्षुरकक्षिरावर्षाभुवारिणि।
जीवंती पिप्पलीगर्भं सक्षीरं शोषजिद् घृतम्

अर्थ–रास्ना, बला, गोखरू, शालपर्णी और पुनर्नवा इनके काढ़े में जीवंती और पीपल का कल्क मिलाकर दूध सहित पका हुआ घी शोषरोग को जीत लेता है।

अश्वगंधादि घृत।

अश्वगंधाच्छृतात्क्षीराद् घृतं च ससितापयः

अर्थ–असगंध के साथ सिद्ध किया हुआ दूध जमाकर उस मेंसे घी निकालले और इसमें मिश्री और दूध मिलाकर पीवै तो उक्त गुण करता है।

मांस घृत।

साधारणामिषतुलां तोयद्रोणद्वये पचेत्॥
तनाष्टभागशेषेण जीवनीयैः पलोन्मितैः।
साधयेत्सर्पिषः प्रस्थं वातपित्तामयापहम्॥
मांससर्पिरिदं पीतं युक्तं मांसरसेनवा।
कासश्वासस्वरभ्रंशशोषहृत्पार्श्वशूलजित्।

अर्थ-विलेशय और प्रसह साधारण जंतुओं का मांस एक तुला, दो द्रोण जल में पकावै जब आठवां भाग बच रहै तब जीवनीयगणोक्त द्रव्य एक एक पल लेकर उसका कल्क उसमें डालदे और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै। यह मांससर्पि कहलाता है, इसके सेवन करने से वातपित्तरोग जाते रहते हैं अथवा मांसरस के साथ युक्तिपूर्वक पान करनेसे खांसी, श्वास, स्वरभंग, शोष, हृदयशूल, और पसली के दर्द जाते रहते हैं।

रासायनिक घृत।

एलाजमोदात्रिफलासौराष्ट्रीव्योषचित्रकान्।
सारानरिष्टगायत्रीशालबीजकसंभवान्॥
भल्लातकं विडंगं च पृथगष्टपलोन्मितम्।
सालिले षोडशगुणे षोडशांशस्थिते पचेत्॥
पुनस्तेन घृतप्रस्थं सिद्धे चास्मिन्पलानि षट्
तत्क्षीर्याः क्षिपेत्त्रिंशत्सिताया द्विगुणं मधु॥
घृतात्त्रिजातात्त्रिपलंततो लीढं खजाहतम्।
पयोनुपानं तत्प्राज्ञे रसायनमयंश्रेष्ठम्॥
मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं दीपनं हंति चाचिरात्।
मेहगुल्मक्षयव्याधिपांडुरोगभगंदरान्॥

अर्थ–इलायची, अजमोद, त्रिफला, सौराष्ट्रमृत्तिका, त्रिकुटा, चीता, तथा नीम, खैर, साल और बीजक इन वृक्षों का सार, भिलावा और बायबिडंग इन द्रव्यों में से प्रत्येक आठ आठ पल सोलह गुने जल में डालकर आगपर चढ़ादे जब सोलहवां भाग रहजाय तब उतार कर छान ले। फिर इस काढ़े में एक प्रस्थ घी डालकर पकावै। पीछे वंशलोचन छःपल, खांड ३० पल, शहत दो प्रस्थ, त्रिजातक तीन पल ये डालकर दही मथने की रई से मथकर दुपहर पहिले थोड़ा २ चाटै और ऊपरसे दूध पीवै। यह घृत रसायन, सुखपूर्वक सेवन योग्य, मेधावर्द्धक, नेत्रों को हितकारक, आयुवर्द्धक, और अग्निसंदीपन, है यह प्रमेह, गुल्म, क्षयरोग, पांडुरोग, और भगंदर रोगों को शीघ्रही दूर कर देता है।

अन्यकर्तव्य।

ये च सर्पिर्गुडाः प्रोक्ताः क्षते योज्याः-
क्षयेऽपि ते।

अर्थ–क्षतरोग में जो जो घी और गुड़ कहे गये हैं उस सबका क्षयरोग में भी प्रयोग किया जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वगेलादि चूर्ण।

त्वगेलापिप्पलीक्षीरीशर्कराद्विगुणाः क्रमात्
चूर्णिता भक्षिताःक्षौद्रसर्पिषा च बले हिताः
स्वर्याः कासक्षयश्वासपार्श्वैस्कफनाशनाः

अर्थ–दालचीनी, इलायची, पीपल, वंशलोचन और खांड ये सब उत्तरोत्तर दुगुने दुगने लेकर पीसकर चूर्ण बना लेवै, इस चूर्णको घी और शहत मिलाकर चाटै इस के सेवनसे बलकी वृद्धि,स्वरमें उत्तमता तथा खांसी, क्षयी, श्वास, पसली का दर्द और कफ नष्ट होजाते हैं।

अन्यप्रयोग।

विशेषात्स्वरसादेऽस्यनस्य धूमादि योजयेत्।

अर्थ–जो यक्ष्मारोगी के स्वरमें क्षीणता होजाय तो नस्य और धूमादि का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिये।

स्वरसाद में चिकित्सा।

तत्राऽपि वातजे कोष्णं पिबेद्दौत्तरभक्तिकम्
कासमर्दकवार्ताकीमार्कवस्वरसैर्घृतम्।
साधितं कासजित्स्वर्यं सिद्धमार्तगलेन वा॥

अर्थ–इन सब स्वरक्षय रोगों में से वातज स्वरक्षय में कसोंदी, बेंगन, और भांगरा इनके स्वरस में सिद्ध किया हुआ घृत अथवा नीलकोरंट में सिद्ध घृत ईषदुष्ण भोजन करने के अंत में सेवन करै इस से खांसी जाती रहती है और स्वर शुद्ध हो जाता है।

क्षयरोगपर बदरीपत्र।

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैंधवम्।

अर्थ–बेरके पत्तों का कल्क घी में भून कर और सेंधा नमक डालकर भोजन करने के पीछे सेवन करने से खांसी को दूर कर देता है और स्वर को शुद्ध करदेता है।

नस्यविधि।

तैलं वा मधुकं द्राक्षापिप्पलीकामिनुत्फलैः॥
हंसपाद्याश्च मूलेन पक्वं नस्ये निषेचयेत्।

अर्थ–मुलहटी, दाख, पीपल, वायविडंग, मैनफल और हंसपदी की जड़, इनके द्वारा पकाया हुआ तेल नाक में डालै।

उक्तरोगमें अनुपान।

सुखोदकानुपानं च सार्पिष्कं च गुडौदनम्
अश्नीयात्पायसं चैव स्निग्धं स्वेदं नियोजयेत्।

अर्थ–गुड और चांवल का भात घी के साथ खाकर सुखोदक अनुपान करै अथवा खीर में घृत मिलाकर खाने के पीछे सुखोदक (थोडा गरम जल) अनुपान करै और स्निग्ध स्वेदन का प्रयोग करना चाहिये।

पित्तोद्भवस्वरक्षयकी चिकित्सा।

पित्तोद्भवे पिबेत्सर्पिः शृतशीतपयोनुपः
क्षीरीवृक्षांकुरक्वाथकल्कसिद्धं समाक्षिकम्।
अथवाऽश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम्।

अर्थ–पित्तके कारण उत्पन्न हुए स्वरक्षय में दूधवाले वृक्षोंके अंकुरों के क्वाथ और कल्कमें सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करे। अथवा मुलहटी, घृत और खीरका भोजन करके ऊपरसे औटाया हुआ ठंडा दूध पीवै।

बलादिसिद्ध सर्पि।

बलाविदारी गंधाभ्यां विदार्या मधुकेन च।
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्वर्यमनुत्तमम्॥

अर्थ–खरैटी, शालपर्णी, विदारीकंद, और मुलहटी इनसे सिद्ध किया घृत सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से स्वरको शुद्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर देता है और नस्यद्वारा प्रयोग किये जानेपर अत्यंत उत्तम हैं।

पित्तजस्वरसादि में नस्यादि।

प्रपौंडरीकं मधुकं पिप्पली बृहती बला।
साधितं क्षीरसर्पिश्च तत्स्वर्यं नावनं परम्
लिह्यान्मधुरकाणां च चूर्णं मधुघृताप्लुतम्।

अर्थ–पित्तज स्वरसादमें प्रपौंडरीक, मुलहटी, पीपल, बडी कटेरी और खरैटी, इनके काढेमें सिद्ध किये हुए दूधका घी स्वरको हितकारक और नस्यमें परमोपयोगी है। तथा मधुररसयुक्त द्रव्यों का चूर्ण शहत और घी मिलाकर चाटना चाहिये।

कफजस्वरभेदमें चिकित्सा।

पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे रूक्षभोजनः ॥
कट्फलामलकव्योषं लिह्यात्तैलमधुप्लुतम्।
व्योषक्षाराग्निचविकाभार्गीपथ्यामधूनि वा

अर्थ–कफसे उत्पन्न हुए स्वरभेद में गोमूत्र के साथ कटुरस द्रव्यों का सेवन करै, रूखा भोजन खाय, कायफल, आमला और त्रिफला इनको पीसकर तेल में मिला कर चाटै अथवा त्रिकुटा, जवाखार, चीता, चव्य, भाडंगी, हरड, और मुलहटी इन सब द्रव्यों का चूर्ण तेल और मधु मिलाकर सेवन करै।

अन्यउपाय।

यवैर्यवागूं यमके कणाधात्रीकृतां पिबेत्।
भुक्त्याद्यात्पिप्पलीं शुंठीं तीक्ष्णं वा वमनं भजेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–घी और तेल दोनों स्नेहों में पीपल और आमला डालकर यवागू बनावे, इसके खाने के पीछे पीपल और सौंठ का चूर्ण फांके अथवा वमनकारक तीक्ष्ण औषधों का सेवन करै॥

उच्चभाषण से अभिहत स्वर।

शर्कराक्षौद्रमिश्राणि शूतानि मधुरैः सह।
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहता स्वरः ॥

अर्थ–चिल्लाकर बोलने से जिसका स्वर बैठगया हो उसे मधुररसविशिष्ट द्रव्यों के साथ दूध का पाक करके उसमें मिश्री और शहत मिलाकर पान करावै।

अरोचक में उपाय।

विचित्रमन्नमरुचौ हितैरुपहितं हितम्।

अर्थ–अरुचिरोग में, हितकारी द्रव्योंके द्वारा अनेक प्रकारके भोजन और पानी बना बना कर देने चाहियें। संपूर्ण रोगों की अपेक्षा अरुचि भारी व्याधि है, इस लिये जिन बातों से अरुचि दूर हो पहिले वेही करनी चाहियें।

अरुचिमें अन्य उपाय।

बहिरंतर्मृजाचित्तानिर्वाणं हृद्यमौषधम् ४७ ॥
द्वौ कालौ दंतधावनं भक्षयेन्मुखधावनैः।
कषायैः क्षालयेद्वास्यं धूमं प्रायोगिकं पिबेत् ॥

अर्थ–अरुचिरोग में स्नानादि द्वारा बाहरकी शुद्धि करे। वमनविरेचन द्वारा भीतर की शुद्धि करे। चित्तकी शांति, हृदय को हितकारी औषध, दोनों समय दंतधावन मुखधावनोपयोगी कषायों से मुख धोना और नैहिक धूमपान करने चाहियें।

अन्य उपाय।

तालीसचूर्णवटकाः सकर्पूरसितोपलाः।
शशांककिरणाख्याश्च भक्ष्या रुचिकरा भृशम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–तालीसपत्र के चूर्ण के बडे अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कपूर और मिश्री मिलाये हुए चन्द्रमाकी कांति के समान अन्य पदार्थों का सेवन अत्यन्त रुचिकर होता है ।

वातज अरोचकमें चिकित्सा ।

वातादरोचके तत्र पिबेच्चूर्णं प्रसन्नया ।
हरेणुकृष्णाकृमिजिद् द्राक्षासैंधवनागरात् ॥
एलाभार्गीयवक्षारहिंगुयुक्ता घृतेन वा ।
छर्दयेद्वा वचांभोभिः

अर्थ–वातज अरोचक में मटर, पीपल बायविडंग, द्राक्षा, सेंधा नमक और सोंठ इनके चूर्ण के साथ प्रसन्ना नामवाली मदिरा का पान करै अथवा इलायची, भाङ्गी, जवाखार, हींग डालकर घृतके साथ पान करे । अथवा बचका क्वाथ पिलाकर वमन करावै ।

पैत्तिक अरोचक में उपाय ।

पित्ताच्च गुडवारिभिः ॥ ५१ ॥
लिह्याद्वा शर्करासर्पिर्लवणोत्तममाक्षिकम् ।

अर्थ–पैत्तिक अरोचक में गुडका पानी पिलाकर वमन करावै, अथवा खांड, घृत, सेंधा नमक और मधु मिलाकर चाटै ।

कफजअरोचक में उपाय ।

कफाद्वमेन्निंबजलैर्दीप्यकारग्वधोदकम् ५२
पानं समध्वरिष्टाश्च तीक्ष्णाः समधुमाधवा
पिबेच्चूर्णं च पूर्वोक्तं हरेण्वादयुष्णवारिणा

अर्थ–पित्तज अरोचक में नीमका क्वाथ मिलाकर वमन करावै । इसके अतिरिक्त अजवायन, अमलतास का काढा पान करावै । अथवा मधुके साथ तीक्ष्ण अरिष्ट और मधु के साथ माध्वीक नामक मद्यका पान करावै और ऊपर कहे हुए हरेण्वादि के चूर्ण को गरम जलके साथ सेवन करै ।

अन्य चूर्ण ।

एलात्वक्पागकुसुमतीक्ष्णकृष्णामहौषधम् ।
भागवृद्धं क्रमाच्चूर्णं निहंति समशर्करम् ५४
प्रसेकारुचिहृत्पार्श्वकासश्वासगलामयान् ।

अर्थ–इलायची एक भाग, दालचीनी दो भाग, नागकेसर ३ भाग, चव्य चार भाग, पीपल पांचभाग, और सोंठ छः भाग इन सब को पीसकर सबके बराबर शर्करा मिलाकर सेवन करने से मुखमें थूक भरना, अरुचि, हृदयशूल, पार्श्ववेदना, खांसी, श्वास और कंठके रोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्य चूर्ण ।

यवानीतित्तिडीकाम्लवेतसौषधदाडिमम् ॥
कृत्वा कोलम् च कर्षांशम् सितायाश्च-
चतुष्पलम् ।
धान्यसौवर्चलाजाजीवरांगम्-
चार्धकार्षिकम् ॥ ५६ ॥
पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
चूर्णमेतत्परं रुच्यं ग्राहि हृद्यं हितस्ति च ॥
विबंधकासहृत्पार्श्वप्लीहार्शोग्रहणीगदान् ।

अर्थ–अजवायन, इमली, अम्लवेत, सोंठ, अनार, और बेर ये सब एक तोले ले और इस चूर्णमें चार पल मिश्री मिलावै, तथा धनियां, संचलनमक, कालाजीरा और दालचीनी प्रत्येक एक तोला, पीपल सौ, कालीमिरच दो सौ इन सबका चूर्ण बनालेवै, यह चूर्ण अत्यन्त रुचिकर, ग्राही, हृदयको हितकारी होता है तथा विबंध, खांसी, हृदय और पसली का दर्द, प्लीहा, अर्श और ग्रहणी रोगों को खो देता है ।

तालीसपत्रादि चूर्ण ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली कणा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके।
तद्देयं दीपनं चूर्णं कणाष्टगुणशर्करम् ॥९॥
कासश्वासारुचिच्छर्दिप्लीहहृत्पार्श्वशूलनुत्।
पांडुज्वरातिसारघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥

अर्थ–तालीसपत्र, कालीमिरच, सोंठ, छोटी पीपल, बडी पीपल, इनको एक एक भाग बढा करले और दालचीनी तथा इलायची प्रत्येक आधे आधे भाग, इनको कूट पीसकर चूर्ण बनालेवै तथा पीपलसे अठ गुनी शर्करा मिलाकर सेवन करै। यह चूर्ण अग्निसंदीपन, खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्वशूल, पांडुरोग, ज्वर, अतिसार इनको दूर करता है तथा मूढवात का अनुलोमन करने वाला है।

प्रसेकमें भक्षणादि।

अर्कामृताक्षीरजले शर्वरीमुषितैर्यवैः।
प्रसेके कल्पितान्सक्तून् भक्ष्यांश्चाद्याद्बली-
यमेत् ॥ ६१ ॥
कटुतिक्तैस्तथा शूल्यं भक्षयेज्जांगलं पलम्।
शुष्कांश्च भक्ष्यान् सुलघूंश्चणकादिरसानुपः

अर्थ–आक और गिलोयके काढेमें दूध मिलाकर उसमें रातभर जौ भिगो देवै, दूसरे दिन उन जौओं का सत्तू अथवा कोई खानेका पदार्थ बनाकर भोजन करे। यदि रोगी बलवान् हो तो कटु और तिक्त द्रव्योंद्वारा वमन करावै। जांगल जीवोंका शूलपर भुना हुआ मांस खाय, अथवा हलके और सूखे पदार्थों को खाय और पीछेसे चना आदिका रस पीवे, इससे मुखप्रसेक दूर होजाता है।

कफप्रसेक में उपाय।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेन वायुःश्लेष्माणमस्यति।
कफप्रसेकं तं विद्वान्स्निग्धोष्णैरेव निर्जयेत् ॥

अर्थ–वायु कफको फेंकता है, इसलिये कफका प्रसेक होता है, अतएव वैद्यको उचित है कि कफका अत्यन्त प्रसेक होनेपर वातनाशक स्निग्ध और उष्ण क्रियाओं द्वारा कफप्रसेक का शमन करै

पीनसादि में कर्तव्य।

पीनसेऽपि क्रममिमं वमथौ च प्रयोजयेत् ॥
विशेषात्पीनसेऽभ्यंगान् स्नेहस्वेदांश्च-
शीलयेत् ॥ ६४ ॥
स्निग्धानुत्कारिकापिंडैः शिरःपार्श्वगलादिषु
लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान् स्नेहोपसंहितान्

अर्थ–पीनस और वमनरोग में भी ऊपर लिखी चिकित्सा करना चाहिये। विशेष करके पीनस रोग में अभ्यंग तथा उत्कारिका और पिंडद्वारा सिर, पसली और गलेमें स्नैहिक स्वेद देवै. तथा स्नेहयुक्त नमकीन, खट्टे, कटु और उष्ण रसों का सेवन करै।

सिरशूलादि में कर्तव्य।

शिरोंसपार्श्वशूलेषु यथा दोषविधिं चरेत्।
औदकानूपपिशितैरुपनाहाः सुसंस्कृताः ॥
तत्रेष्टाः सचतुःस्नेहाः

अर्थ–सिर, कंधे और पसली के दर्दमें दोष के अनुसार चिकित्सा करना चाहिये। तथा आनूप और औदक जीवों का मांस चार प्रकार के स्नेहों से अच्छी तरह संस्कार किया हुआ उपनाह स्वेद देना चाहिये।

दोषसंसर्ग में लेप।

दोषसंसर्ग इष्यते।
प्रलेपो नतयष्ट्याह्वशताह्वाकुष्ठचंदनैः।९७।
बलाराास्नातिलैस्तद्वत्ससर्पिर्मधुकोत्पलैः।

अर्थ–दो दो दोषों के संसर्ग से उत्पन्न हुई व्याधिमें तगर, मुलहटी, सितावरी, कूठ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और चंदन का लेप करै । और इसी तरह खरैटी, रास्ना और तिल इनका लेप घी, शहत और चीनी मिलाकर उपयोग में लावै ।

नस्यादि का प्रयोग ।

पुनर्नवाकृष्णगंधाबलावीराविदारिभिः ॥
नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चोत्तरभक्तिकाः ।
तैलान्यभ्यंगयोगीनि बस्तिकर्म तथा परम् ॥

अर्थ–सोंठ, सहजना, खरैटी, क्षीरकाकोली और विदारीकंद इनका नस्य और धूमपान में प्रयोग करे, तथा भोजन करने के पीछे स्नेहपान, अभ्यंग में उपयोगी तैलादि और वास्तिकर्म ये सब करने चाहियें ।

रक्तमोक्षण ।

शृंगाद्यैर्वा यथादोषं दुष्टमेषां हरेदसृक् ।

अर्थ–दोषके अनुसार सींगी, तूंबी, पछना, जोक, अलाबु आदि लगाकर कफ बात पित्त से दूषित रक्तको राजयक्ष्मा में निकालना अच्छा है ।

राजयक्ष्मा में प्रदेह ।

प्रदेहः सघृतैः श्रेष्ठः पद्मकोशीरचंदनैः । ७० ।
दूर्वामधुकमंजिष्ठाकेसरैर्वा घृतप्लुतैः ।

अर्थ–राजयक्ष्मा में पद्माख, खस और चंदन को घी में सानकर प्रदेह करना चाहिये अथवा दूब, मुलहटी, मजीठ और केसर इनको पीसकर घीमें सानकर प्रदेह करै ।

राजरोग में अभ्यंगादि ।

वटादिसिद्धतैलेन शतधौतेन सर्पिषा । ७१ ।
अभ्यंगः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकांबुना ।

अर्थ–वटादि दूधवाले द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ तेल का अथवा सौ बार धुले हुए घी का अभ्यंग करना चाहिये, तथा दूध वा मुलहटी के क्वाथ द्वारा परिषेक करना राजयक्ष्मा में हित है ।

अन्य उपाय ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते ॥
तस्यातिसारग्रहणीविहितं हितमौषधम् ।

अर्थ–प्रायः यक्ष्मारोग में अग्निके मंद होजाने के कारण पिच्छायुक्त मल बार बार निकला करता है, इसलिये इस दशामें अतिसार और ग्रहणी रोगमें कहीहुई औषधों का प्रयोग करना हित है ।

राजयक्ष्मा में पुरीषकी रक्षा ।

पुरीषं यत्नतो रक्षेच्छुष्यतो राजयक्ष्मिणः ॥
सर्वधातुक्षयात्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम् ।

अर्थ–राजयक्ष्मावाले रोगी की संपूर्ण धातुओं के सूख जाने पर उसके विष्ठाकी रक्षा बडी सावधानी से करनी चाहिये क्योंकि जब संपूर्ण धातु सूख जाते हैं तब पुरीष का बलही बल रहजाता है ।

यक्ष्माको अनवकाश ।

मांसमेवाश्नतो युक्त्या मार्द्वीकं पिबतोऽनु च
अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽतरम् ।

अर्थ–जो मनुष्य युक्तिपूर्वक अर्थात् देश, काल और सात्म्यादि का विचार करके यक्ष्मारोग में कहे हुए मांसों का सेवन करता है और ऊपर से मार्द्वीकारस का पान करता है तथा मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को नहीं रोकता है उसके राजयक्ष्मा रोग की स्थिति नहीं हो सकती है ।

मद्यपानादि का विधान ।

सुरां समंडां मार्द्वीकमरिष्टान्सीधुमाधवान् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन्।
स्रोतोविबंधमोक्षार्थं बलौजःपुष्टये च तत्॥

अर्थ—जो मनुष्य मांस भक्षण करके यथायोग्य सुरा, सुरामंड, माद्वीक, अरिष्ट, सीधु और माधवनामक मद्यका पान करता है उसके स्रोत खुलजाते हैं और बल तथा ओजकी पुष्टि होती है।

स्नानादि का नियम।

स्नेहक्षीरांबुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत्।
उत्तीर्णमिश्रकैः स्नेहैर्भूयोऽभ्यक्तं सुखैः करैः।
मृद्नीयात्सुखमासीनं सुखं चोद्वर्तयेत्परम्।

अर्थ—यक्ष्मारोगी को तेल से अच्छी तरह अभ्यक्त करके तैलादि स्नेह, दूध वा जल से भरे हुए पात्र में बैठाकर स्नान करावै। पीछे उसमें से निकालकर गुल्मरोग के प्रकरण में कहे हुए मिश्रक स्नेह द्वारा सुहाता हुआ मर्दन करै और सुखोत्पादक उबटना भी करै।

पौष्टिक उबटना।

जीवंतीं शतवीर्यां च चिकसां सपुनर्नवाम्॥
अश्वगंधामपामार्गं तर्कारीं मधुकं बलाम्।
विदारीं सर्षपान् कुष्ठं तंडुलानतसीफलम्॥
माषांस्तिलांश्च किण्वं च सर्वमेकत्र चूर्णयेत्।
यवचूर्णं त्रिगुणितं दध्ना युक्तं समाक्षिकम्॥
एतदुद्वर्तनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम्।

अर्थ—जीवंती, शतावरी, मजीठ, सांठ, असगंध, ओंगा, तर्कारी, मुलहटी, खरैटी, विदारीकंद, सरसों, कूठ, तंडुल, अलसी, उरद, तिल, और किण्व इन सबको पीसकर सब से तिगुने जौका घून, तथा दही और शहत मिलाकर उबटना करै। यह उबटना पुष्टि, वर्ण और बलको करनेवाला है।

स्नानादि की उत्कृष्टता।

गौरसर्षपकल्केन स्नानीयौषधिभिश्च सः॥
स्नायादुसुखैस्तोयैर्जीवनीयोपसाधितैः।
गंधमाल्यादिकं भूषामलक्ष्मीनाशनीं भजेत्।
सुहृदां दर्शनं गीतवादित्रोत्सवसंश्रुतिः।
वस्तयः क्षीरसर्पींषि मद्यमांससुशीलता॥
दैवव्यपाश्रयं तत्तदथर्वोक्तं च पूजितम्।"

अर्थ—सफेद सरसों को पानी में पीसकर तथा स्नानोपयोगी अन्य सुगंधित द्रव्यों द्वारा तथा जीवनीय गण में कही हुई औषधों के साथ सिद्ध किये कुछ गरम जल से हेमंतऋतु में यक्ष्मारोगी को स्नान करावै, चन्दन केसर आदि सुगंधित प्रलेप, करै तथा सुगंधित फूलों की माला धारण करावै, अलक्ष्मीनाशक रत्नजटित अलंकार धारण करावै। सुहृदों से मिलना, गाने, बजाने, पुत्रजन्म, विवाह आदि उत्सव के वाक्य सुनना, वस्तिकर्म, घी, दूध, मद्य और मांसका भोजन, बलि, मंगल, होम, प्रायश्चित्तादि कर्म करना, अथर्वोक्त यज्ञादिक करना, ये सब यक्ष्मारोग में श्रेष्ठ हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने राजयक्ष्मस्वरभेदारोचक चिकित्सितंनाम पंचमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

अथाऽतश्छर्दिहिक्काद्वेगतृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अब हम यहांसे वमन, हृदयरोग तृष्णाचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

वमनमें लंघनादि ।

"आमाशयोत्क्लेशभवाः प्रायश्छर्द्यो हितं ततः
लंघनं प्रागृते वायोर्वमनं तत्र योजयेत् । १ ।
बलिनो बहुदोषस्य वमतः प्रततं बहु ।

अर्थ–आमाशय के उत्क्लेश से ही प्रायः सब प्रकार के वमन रोगों की उत्पत्ति है, इसलिये वमन रोगमें सबसे पहिले लंघन कराना चाहिये । परंतु वातजनित वमन में लंघन कराना उचित नहीं है क्योंकि लंघन से वायु प्रकुपित होजाता है, लंघन करने पर भी यदि वमन का वेग शांत नहो और रोगी बलवान हो तो वमनकारक औषधोंका प्रयोग करना चाहिये । अथवा जो रोगी वातादि बहुत से दोषों से आक्रांत हो और निरंतर बहुत परिमाण में वमन करता हो तो भी वमनकारक औषध देना चाहिये ।

वमनरोगमें विरेचनविधि ।

ततो विरेकं क्रमशो दृढं मद्यैः फलांबुभिः ॥
क्षीरैर्वा सह सह्यूर्ध्वगत दोषं नयत्यधः ।
शमनं चौषधे रूक्षदुर्बलस्य तदेष तु ॥ ३ ॥

अर्थ–वमन करानेके पीछे क्रमसे विरेचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये ये विरेचक औषधें हृदयको हितकारी हों तथा मार्द्वीकादि मद्य और द्राक्षादि फलों के रस अथवा गौके दूधके साथ देना चाहिये, ऐसा करनेसे ऊपर का प्रवृत्त हुआ दोष नीचे को आने लगेगा । रूक्ष और दुर्बल रोगी को शोधन अर्थात् वमनविरेचन न देकर संशमन औषधें देना चाहिये क्योंकि वह शोधन को नहीं सह सकताहै ।

वमनरोगमें पथ्यविधि ।

परिशुष्कं प्रियं सात्म्यमन्नं लघु च शस्यते ।
उपवासस्तथा यूषा रसाः कांबलिकाः खलाः
शाकानि लेह्यभोज्यानि रागखांडवपानकाः
भक्ष्याः शुष्का विचित्राश्च फलानि क्षानघर्षणम् ॥ ५ ॥
गंधाः सुगंधयो गंधफलपुष्पान्नपानजाः ।
मुक्तमात्रस्य सहसा मुखे शीतांबुसेचनम् ॥

अर्थ–सब प्रकार के वमन रोगों में सूखा हुआ, प्रिय सात्म्य और लघुपाकी अन्न हित होताहै । तथा उपवास, यूष, रस, कांबलिक खल, लेह्य और भोज्य पदार्थ शाक, राग, खांडव, पीनेके, अनेक प्रकार के सूखे खाद्य पदार्थ; अनेक प्रकारके फल, उबटना, अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य, सुगंधित फल, फूल अन्न, पान तथा भोजन करतेही विना जाने मुखपर ठंडे जलके छींटे मारना ये सब वमन रोग के सामान्य उपचार हैं ।

वातज वमन का उपचार ।

हंति मारुतजां छर्दिं सर्पिः पीतं ससैंधवम् ।
किंचिदुष्णं विशेषेण सकासहृदयद्रवाम् ॥
व्योषत्रिलवणाद्यं वा सिद्धं वा दाडिमांबुना
सशुंठीदधिधान्येन शतं तुल्यांबु वा पयः ॥
व्यक्तसैंधवसर्पिर्वा फलाम्लो वैष्किरो रसः
स्निग्धं च भोजनं शुंठीदधिदाडिमसाधितम्
कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम् ।

अर्थ–सेंधानमक मिलाकर ईषदुष्ण घृत अथवा त्रिकुटा और त्रिलवणान्वित (सेंधा-काला और सांभर नमक) घृत अथवा दाडिम के काथमें पकाया हुआ घी, अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोंठ, दही और धनिये के काथमें पकाया हुआ घी, समान भागमें मिलाया हुआ पानी और औटाया हुआ दूध अथवा बहुत परिमाणमें डाला हुआ सेंधानमक, घी, और अनारदानेकी खटाई युक्त कुक्कुटादि विष्किर पक्षियों का मांसरस, अथवा सोंठ, दही, और अनार डालकर स्निग्ध भोजन अथवा नमक से युक्त ईषदुष्ण स्नेह विरेचन इन प्रयोगों के करने से वातज वमनरोग, तथा विशेष करके वातजवमन संबंधी खांसी और कफद्वारा हृदय का भारापन ये सब दूर होजाते हैं।

पित्तज वमनका उपचार।

पित्तजायां विरेकार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसैर्हितम्॥
सर्पिर्वा तैल्वकं योज्यं वृद्धं च श्लेष्मधामगम्
ऊर्ध्वमेव हरेत् पित्तं स्वादुतिक्तैर्विशुद्धिमान्
पिबेन्मंथं यवागूं वा लाजैः समधुशर्कराम्।
मुद्गजांगलजैरद्याद्यूषैर्जनैः शालिषष्टिकम्॥
मृद्वग्निलोष्टप्रभवं सुशीतं सलिलं पिबेत्।
मुद्गोशीरकणाधान्यैः सह वा संस्थितं-
निशाम्॥ १३॥
द्राक्षारसं रसं वेक्षोर्गुडूच्यंबुपयोऽपि वा।

अर्थ–पित्तज वमनरोग में विरेचन के लिये दाख और ईखके रसके साथ निसोथ अथवा तैल्वक घृतका प्रयोग करना चाहिये। जो पित्त अधिक बढकर कफके स्थानमें चलागया हो तो मधुर और तिक्त रस द्वारा वमन कराकर ही निकाल देना चाहिये। जब रोगी वमन विरेचन द्वारा शुद्ध होगया हो तब उसको धानकी खीलों का पथ्य वा यवागू मधु और शर्करा डालकर पान कराना चाहिये। मूंग के यूष और जांगलजीवों के व्यंजनके शाली और साठी चावलों का भात खानेको दे। मृत्तिका के गरम ढेले से बुझाया हुआ ठंडा पानी पीना चाहिये। रात्रिके समय पानीमें मूंग, खस, पीपल और धनियां डालदे, और प्रातःकाल इस जलको छानकर पीवै। अथवा दाखका रस, ईखका रस, गिलोयका पानी अथवा दूध पान करावै।

अन्य प्रयोग।

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवट शृंगावरोहजः॥
काथः क्षौद्रयुतः पीतः शीतो वा-
विनियच्छति।
छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्छां तृष्णां दुर्जयाम्॥

अर्थ–जामन और आमके पत्ते, खस, बटके अंकुर, और कोंपल इनका काथ करके ठंडा करले फिर इसमें शहत मिला कर पान करै तो वमन, ज्वर, अतिसार, मूर्छा और दुर्जय तृषा ये सब शांत होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

धात्रीरसेन वा शीतं पिबेन्मुद्गदलांबु वा।
कोलमज्जासितालाजामक्षिकाविट्कणांजनम्॥
लिह्यात्क्षौद्रेण पथ्यां वा द्राक्षां वा-
बदराणि वा।

अर्थ–मूंग की दालका पानी ठंडा करके आमले के रसके साथ पान करै, अथवा बेरका गूदा, खांड, खील, मक्खीकी बीट और रसौत इन द्रव्यों को तथा हरड, दाख वा बेरों को शहत मिलाकर चाटै।

कफज वमनका उपचार।

कफजायां वमेच्चिंबकृष्णापीडितसर्षपैः॥
युक्तेन कोष्णतोयेन दुर्बलं चोपवासयेत्।
आरग्वधादिनिर्यूहं शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत्॥
मंथान्यवैर्वा बहुशश्छर्द्यौषधभावितैः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफघ्नमन्नं हृद्यं च रागाः साजैकभूस्तृणाः
लीढं मनःशिलाकृष्णामरिचं बीजपूरकात्।
स्वरसेन कपित्थाच्च सक्षौद्रेण वमिं जयेत्
खादेत्कपित्थं सव्योषं मधुना वा दुरालभाम्

अर्थ–कफज वातरोग में नीम, पीपल, और कोलूमें पिलीहुई सरसों कुछ गरमजल में मिलाकर पान कराने से वमन कराना चाहिये। यदि रोगी दुर्बल हो तो वमन न देकर लंघन कराना उचित है। आरग्वधादि गणोक्त द्रव्योंका काथ ठंडा करके शहत मिलाकर पान करावै, वमननाशक औषधियों से कितनी ही बार भावना दिये हुए जौ का मन्थ, कफनाशक मनको प्रसन्न करने वाला अन्नका भोजन तथा तुलसी और भूस्तृण से संयुक्त रागादि का सेवन करै। तथा मनसिल, पीपल, काळीमिरच, इनके चूर्ण में शहत मिलाकर बिजौरे वा कैथके रसके साथ सेवन करै, अथवा कैथको त्रिकुटा और शहतके साथ दुरालभा को शहत के साथ सेवन करे। इन प्रयोगों से कफज वमन बन्द होजाती है।

द्विष्टार्थ वमनका शमन।

अनुकूलोपचारेण याति द्विष्टार्थजा शमम्॥

अर्थ–द्विष्टार्थजा वमन मनके अनुकूल व्यापारों से बन्द होजाती है।

कृमिज वमन।

कृमिजा कृमिहृद्रोगगदितैश्च भिषग्जितैः।
यथास्वं परिशेषाच्च तत्कृताच्च तथामयाः

अर्थ–कृमिसे उत्पन्न हुई वमन कृमि और हृद्रोगमें कहे हुए उपायों से शांत हो जाती है तथा अन्यरोग भी जो कृमि और हृद्रोग से उत्पन्न होते हैं वेभी इन उपायों से शांत होजाते हैं।

छर्दिमें स्तंभन बृंहण।

छर्दिप्रसंगने हि मातरिश्वा
धातुक्षयात्कोपमुपैत्यवश्यम्।
कुर्यादतोऽस्मिन् वमनातियोग
प्रोक्तं विधिं स्तंभनबृंहणीयम्॥ २३॥
सर्पिर्गुडा मांसरसा घृतानि
कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि।
पयांसि पथ्योपहितानि लेहाश्छर्दि-
प्रसक्तौ प्रशमम् नयंति॥ २४॥

अर्थ–क्योंकि वमनके अत्यन्त प्रसंग से धातुओं का क्षय होताहै, इसलिये धातुओं के क्षयसे वायु अवश्यही प्रकुपित होजाताहै अतः वमनातियोग में कही हुई स्तंभन और बृंहण चिकित्सा करना चाहिये। तथा दोष और दूष्यके अनुसार घी, गुड, मांसरस कल्याणकादि घृत, त्र्यूषणघृत, जीवनीयघृत और हितकारी पथ्यों से मिले हुए दूध और अवलेह इनका प्रयोग करे॥ इससे निरंतर होनेवाली वमन शांत होजाती है।

वातजहृद्रोग में तैलपान।

हृद्रोगे यातजे तैलं मस्तुसौवीरतक्रवत्।
पिबेत्सुखांभिः सविडं गुल्मानाहार्तिजिच्च तत्

अर्थ–वातज हृद्रोगमें दहीका तोड, रसौत और तक्र डालकर ईषदुष्ण तेल पीना चाहिये। तथा इसमें नमक डालकर पीनेसे गुल्म, आनाह और अर्ति दूर होजाते हैं।

सैंधवादि युक्त तैल।

तैलं चलवणैः सिद्धं समूत्राम्लं तथागुणम्।

अर्थ–सैंधवादि पांचों नमक, गोमूत्र और कांजी, डालकर सिद्ध किया हुआ तेल उपरोक्त गुणोंसे युक्त होताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य तैल।

बिल्वं रास्नां यावान्कोलं देवदारुं पुनर्नवाम्॥
कुलत्थान्पंचमूलं च पक्त्वा तस्मिन्पचेज्जले
तैलं तद्वावने पाने बस्तौ च विनियोजयेत्॥२७

अर्थ-बेलगिरी, रास्ना, जौ, बेर, देवदारू, सांठ, कुलथी और पंचमूल इनके काढे में सिद्ध किया हुआ तेल नस्य, पान और वस्तिकर्म में प्रयोग किया जाता है यह भी पूर्वोक्त गुणविशिष्ट होता है।

शुंठ्यादि घृत।

शुंठीवयस्थाल्वणकायस्थाहिंगुपौष्करैः।
पथ्यया च श्रृतं पार्श्वहृद्रुजागुल्मजिद् घृतम्

अर्थ-सोंठ, आमला, सेंधानमक, काकोली, हींग, पुष्करमूल और हरड इनके काढे में घी को पकाकर पान करने से पसली का दर्द, हृद्रोग, और गुल्मरोग नष्ट होजाता है।

सौवर्चलादि घृत।

सौवर्चलस्य द्विपले पथ्यापंचाशदन्विते।
घृतस्य साधितःप्रस्थो हृद्रोगश्वासगुल्मजित्

अर्थ-संचलनमक दो पल, हरड पचास नग, घृत एक प्रस्थ इनका पाक हृदयरोग, श्वास और गुल्म को जीत लेता है।

पुष्करादि घृत।

पुष्करह्वशठीशुंठीबीजपूरजटाभयाः।
पीताःकल्कीकृताःक्षारघृताम्लल्वणैर्युताः॥
विकर्तिकाशूलहराः क्वाथः कोष्णश्च तद्गुणः।
यवानीलवणक्षारवचाजाज्यौषधैः कृतः ३१
सप्तपर्णरुबीजाह्वविजयाशठिपौष्करैः।

अर्थ--पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, बिजौरा की जड, हरड़ इन सबका कल्क तथा जवाखार, घृत,कांजी और सेंधानमक ये मिलाकर सेवन करने से विकर्तका और शूल नष्ट होजाते हैं। तथा अजवायन,सेंधानमक, जवाखार, वच, कालाजीरा, सोंठ, इनसे सिद्ध किया हुआ काढा तथा नवमल्लिका देवदारू, बिजैसार, हरड, कचूर, और पुष्करमूल इनका काढा विकर्तका रोग को दूर करता है। हृदय के आवर्तन से जो छेदनवत् पीडा होती है उसे विकर्तका कहते हैं।

पंचकोलादि कल्क।

पञ्चकोलशठीपथ्यागुडबीजाह्वपौष्करम्
वारुणीकल्कितम् भ्रष्टम् यमके लवणान्वितम्
हृत्पार्श्वयोनिशूलेषु खादेद्गुल्मोदरेषु च॥

अर्थ-पंचकोल, कचूर, हरड, गुड, बिजैसार, पुष्करमूल, इनसब द्रव्योंको वारुणी नामक सुरामें पीसकर तेल और घी में भूनले फिर इसमें सेंधानमक डालकर सेवन करै तो हृदयशूल, पार्श्वशूल, योनिशूल, गुल्मरोग और उदररोग दूर होजाते हैं।

वातज हृद्रोग में स्वेदादि।

स्निग्धादयेह हिताः स्वेदाः संस्कृतानि-
घृतानि च

अर्थ-वातज हृद्रोगमें स्निग्ध स्वेद हितकारी होता है तथा संस्कार किया हुआ घृत भी हितकारी है।

पंचमूलादि साधित जल।

लघुना पंचमूलेन शुंठ्या वा साधितं जलम्
वारुणीदधिमंडं वा धान्याम्लं वा पिबेन्नरः।

लघु पंचमूल, अथवा सोंठ के साथ सिद्ध किया हुआ जल पान करै अथवा वारुणी नामक मद्य, वा दधिमंड वा धान्याम्लका से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वन करे। इससे हृद्रोग से उत्पन्न हुई तृषा शांत होजाती है।

वातज हृद्रोगमें चिकित्सा।

सायामस्तंभशूलामे हृदि मारुतदूषिते ॥
क्रियैषा सद्रवायामप्रमोहे तु हिता रसाः।
स्नेहाद्यास्तित्तिरिकौंचाशिखिवर्तकऋ-
क्षजाः ॥

अर्थ-वातज हृद्रोग में आक्षेप, स्तंभ, शूल और आमदोष हो; तो ऊपर कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये तथा वातज हृद्रोग में द्रवता, आयाम और प्रमोह हो तो तीतर, क्रुंज, मोर, बतक और रीछ इनका मांसरस बहुत स्नेह से युक्त हित होताहै।

हृद्रोग मे अन्य तेल।

बलातैलं सहृद्रोगः पिबेद्वा सुकुमारकम् ॥
यष्ट्याह्वशतपाकं वा महास्नेहं तथोत्तमम्

अर्थ-हृदयरोगी मनुष्य बला तैल का पान करे। अथवा प्रमेह में कहा हुआ सुकुमारघृत, वातरक्त में कहा हुआ यष्टाह्वशतपाक घृत अथवा महास्नेह नामक घृत का सेवन करे।

महास्नेह घृत।

रास्नाजीवकजीवंतीबलाव्याघ्रीपुनर्नवैः।
भार्गीस्थिराबचाव्योषैर्महास्नेहं विपाचयेत्॥
दधिपादं तथाम्लैश्च लाभतः स निषेवितः।
तर्पणो बृंहणो बल्यो वातहृद्रोगनाशनः ३९॥

अर्थ-रास्ना, जीवक, जीवंती, बला, कटेरी, सोंठ, भाडंगी, शालपर्णी, बच और त्रिकुटा इनके साथ घृत को पकावै, जितना घृत पकाना हो उससे चौथाई दही और थोडी सी कांजी डालकर यह महास्नेह नामक घृत पकाया जाता है, यह घृत तर्पण बृंहण, बलकारक और वातज हृदयके रोग को दूर करनेवाला है।

दीप्ताग्नि हृद्रोग में कर्तव्य।

दीप्तेऽग्नौ सद्रवायामे हृद्रोगे वातिके हितम्।
क्षीरं दधिगुडः सर्पिरौदकानूपमामिषम्।

अर्थ-वातज हृदयरोग में यदि जठराग्नि प्रबल हो तथा द्रवता और आयाम होतो दूध, दही, घी, गुड, औदक (मछली आदि) का मांस और आनूप अर्थात् शूकरादि का मांस हित है।

हृद्रोग में वर्जित द्रव्य।

एतान्येव च वर्ज्यानि हृद्रोगेषु चतुर्ष्वपि।
शेषेषु स्तंभजाढ्यामसंयुक्तेऽपि च वातिके ॥

अर्थ-शेष चारों प्रकार के हृदयरोगों में दूध, दही, घी, गुड, मछली और शूकर का मांस वर्जित है तथा स्तंभता, जडता और आमसंयुक्त वातज हृद्रोग में भी ये वस्तु वर्जित हैं।

कफानुबंधी हृदयरोग में कर्तव्य।

कफानुबंधे तस्मिंस्तुरूक्षोष्णामाचरेत्क्रियाम्

अर्थ-कफानुबंधी वातज हृदयरोग में रूक्ष और उष्ण क्रिया करनी चाहिये।

पैत्तिक हृद्रोग।

पैत्ते द्राक्षेक्षुनिर्याससितक्षौद्रपरूषकैः ॥
युक्तौ विरेको हृद्यःस्यात्क्रमः शुद्धे च पित्तहा
क्षतपित्तज्वरोक्तं च वाह्यांतःपरिमार्जनम् ॥
कट्वीमधुककल्कं च पिबेत्सशितमंभसा।

अर्थ-पैत्तिक हृद्रोग में दाख और ईख का रस, मिश्री, शहत, फालसा इनके द्वारा हृदयको हितकारी विरेचन देना चाहिये। जब विरेचन से रोगी शुद्ध होजाय तब पित्तनाशक क्रमकी व्यवस्था करनी चाहिये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षतरोग में और पित्त ज्वर में भीतर और बाहर की शुद्धि के निमित्त जो जो चिकित्सा कही गई है वह भी करनी चाहिये। और कुटकी तथा मुलहटी का कल्क मिश्री और जलके साथ पीना उचित है।

पित्तज हृद्रोग में घी।

श्रेयसीशर्करादाक्षाजीवकर्षभकोत्पलैः ॥
बलाखर्जूरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम्।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥

अर्थ–पित्तज हृद्रोग में गज पीपल, खांड, दाख, जीवक, ऋषभक, उत्पल, खरैटी, पिंडखजूर, काकोली, मेदा, महामेदा इन द्रव्यों के काथ में भैंस के दूध के साथ सिद्ध किया हुआ भैंसका घी उत्तम होताहै।

अन्य घृत।

प्रपौंडरीकमधुकादिसग्रंथिकसेरुकाः।
सशुंठीशैवलास्ताभिः सक्षीरं विपचेद् घृतम्
शीतं समधु तच्चेष्टं स्वादुवर्गकृतं च यत्।
वास्तिं च दद्यात्सक्षौद्रं तैलं मधुकसाधितम् ॥

अर्थ–प्रपौंडरीक, मुलहटी, कमलनाल, पीपलामूल, कसेरू, सोंठ, और, शैवाल इनके कल्क के साथ दूध मिलाकर घृत पाक करै। यह घृत ठंडा होने पर शहत के साथ सेवन किया जाता है तथा द्राक्षादि मधुर वर्गोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ घी भी दिया जाताहै। इसी तरह मुलहटी के साथ पक्व तैल की शहत मिलाकर बस्ति दी जाती है।

कफज हृद्रोग में वमनादि।

कफोद्भवे वमेत्स्विन्नः पिचुमंदवचांबुना।
कुलत्थधन्वयोत्थरसतीक्ष्णमद्यवाशनः ॥

अर्थ–कफज हृद्रोग में स्वेदन के पीछे नीम और वचका क्वाथ पान कराके वमन करावै। तथा कुलथी का यूष, जांगलमांस तीक्ष्ण मद्य, और जौ के बने हुए पदार्थ सेवन करै।

अन्य विधि।

पिबेच्चूर्णं वचाहिंगुलवणद्वयनागरान्।
सैलायवानीकर्कणायवक्षारान् सुखांबुना ॥
फलं धान्याम्लकौलत्थयूषमूत्रासवैस्तथा।
पुष्करार्द्राभयाशुंठीशठीरास्नावचाकणाः ॥
क्वाथं तथाऽभयाशुंठीमाद्रपित्तद्रुकट्फलात्।

अर्थ–कफज हृद्रोग में बच, हींग, सैंधा नमक, संचलनमक सोंठ, इलायची, अजवायन, पीपल, और जवाखार इनका चूर्ण गुनगुने पानी के साथ अथवा त्रिफला, कांजी, कुलथी का यूष, गोमूत्र और आसव इनमें से किसी के साथ पान करै। तथा पुष्करमूल, हरड, सोंठ, कचूर, रास्ना, बच, पीपल, इनके चूर्ण को पूर्वोक्त गुनगुने पानी आदि के साथ सेवन करै। अथवा हरड, सोंठ, अतीस, दारुहलदी, और कायफल इनका काथ पान करै।

कफरोगनाशक अवलेह।

क्वाथे रौहीतकाश्वत्थखदिरैंदुवरार्जुने ॥
सपलाशवटे व्योषत्रिवृच्चूर्णान्विते कृतः।
सुखोदकानुपानस्य लेहः कफविकारहा ॥

अर्थ–रोहेडा, पीपल, खैर, गूलर, अर्जुन, ढाक, और वड इनके काढे में त्रिकुटा और निसोथ डालकर बनाया हुआ अवलेह कफविकारों को दूर करता है, उसको चाटकर गुनगुना पानी पीलेना चाहिये।

अन्य चिकित्सा।

श्लेष्मगुल्मोदिताज्यानि क्षारांश्च विविधान्-
पिबेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कफज गुल्म और कफज हृद्रोगमें जो जो घृत और अनेक प्रकारके क्षार कहे गये हैं, वे सब उपयोग में लाने चाहिये।

अन्य उपाय।

प्रयोजयेच्छिलाह्वं वा ब्राह्मं वात्र रसायनम्
तथामलकलेहं वा प्राश्यं वाऽगस्तिनिर्मितम्॥

अर्थ–कफज हृद्रोग में शिलाजीत, वा रसायन अध्याय में कहे हुए ब्राह्मरसायन और आमलक अवलेह अथवा कासचिकित्सा में कहा हुआ अगस्त्य अवलेह का उपयोग करना चाहिये।

शूलयुक्त हृद्रोग में उपाय।

स्याच्छूलं यस्य भुक्तेऽन्ने जीर्यत्यल्पं जरांगते
शाम्येत्सकुष्ठकृमिजिल्लवणद्वयतिल्वकैः।
सदेवदार्वतिविषैश्चूर्णमुष्णांबुना पिबेत्॥

अर्थ–जिस मनुष्य के भोजन काल में शूल की अधिकता हो, पाकावस्था में शूल कम होजाय, और अन्न के पच जाने पर शूल बिलकुल न रहै ऐसे रोगी को कूठ, बायविडंग, सेंधानमक, संचलनमक, लोध, देवदारू और अतीस इनका चूर्ण गरमपानी के साथ देना चाहिये।

शूल में विरेचन।

यस्य जीर्यैऽधिकं स्नेहैः स विरेच्यः फलैःपुनः
जीर्यत्यन्ने तथा मूलैस्तीक्ष्णैः शूले सदाधिके॥

अर्थ–जिस मनुष्यके अन्नके पच जाने पर अधिक शूल होता हो उसको स्नेहयुक्त विरेचन द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ विरेचन देना चाहिये। और जिसके अन्न की पच्यमान अवस्था में अधिक शूल होता हो उसको फल×विरेचन देना उचित है और जिसको सदा ही शूल रहता हो उसको तीक्ष्ण मूल*विरेचन देना चाहिये।

वायुका अनुलोमन।

प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः कुप्यत्यामाशयं गतः।
तस्यानुलोमनं कार्यं शुद्धिलंघनपाचनैः॥

अर्थ–प्रायः ऐसा होता है कि वायुका मार्ग रुक जानेके कारण वह आमाशयमें पहुंच कर कुपित होजाता है तब अवस्थाके अनुसार विरेचनादि शोधन वा लंघन पाचन द्वारा वायुका अनुलोमन करना उचित है।

कृमिज हृद्रोगकी चिकित्सा।

कृमिघ्नमौषधं सर्वं कृमिजे हृदयामये।

+ मृद्वीकाथ विडंगानि खर्जूराणि पलूषकम्। आरग्वधोऽथामलकं हरीतक्यो विभीतकं। कंपिल्लकोपचित्रेच त्रपुसं च मुकूलकम्। नीलिका कुवले पीलु भवेत्फल विरेचनं। अर्थात् दाख, बायविडंग, खिजूर फालसा, अमलतास, आमला, हरड, बहेडा, कंपिल्ल, मूषकपर्णी, खीरा, दंती, नीलिनी, बेर और पीलू इन द्रव्यों के द्वारा जो विरेचन दिया जाता है, उसे फल विरेचन कहते हैं।

× सप्तला, संखिनी दंती, द्रवंती गिरिकर्णिकाः। त्रिवृच्छयामोदकीर्यौ च प्रकीर्यौ क्षीरिणी तथा। छगलांडी गवाक्षी च कुचाक्षी गिरिकर्णिका। मसूरविदला चैव भवेत्मूलविरेचनं। अर्थात् सातला, संखनी, दंती, द्रवंती, गिरिकर्णिका, निसोथ, श्यामा निसोथ, उदकीर्य और प्रकीर्य (ये दोनों कंजा के भेद हैं) खिरनी, वृद्धदारक, इन्द्रायण, कुचाक्षी, श्वेत अपराजिता और मसूर इनकी जड द्वारा जो विरेचन दिया जाता है उसे मूल विरेचन कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कृमिज हृद्रोगमें सब प्रकारकी कृमिनाशक औषध करनी चाहिये।

तृषारोगमें उपाय।

तृष्णासु वातपित्तघ्नो विधिःप्रायेण युज्यते॥
सर्वासु शीतो बाह्यांतस्तथा शमनशोधनम्

अर्थ–सब प्रकारके तृषारोगों में प्रायः वात और पित्तके नाश करने वाले उपाय किये जाते हैं, तथा भीतर और बाहर दोनों ओर शीतल उपचार तथा शमन और शोधन ये सब उपाय काम में लाने चाहिये।

तृषारोगमें चिकित्सा।

दिव्यांबु शीतं सक्षौद्रं तद्वद्धौमं च तद्गुणम्॥
निर्वापितं तप्तलोष्टकपालसिकतादिभिः।
सशर्करं वा क्वथितं पंचमूलेन वा जलम्। ६०।
दर्भपूर्वेण मंथश्च प्रशस्तो लाजसक्तुभिः।
बाल्यश्चामयवैः शीतः शर्करामाक्षिकान्वितः
यवागूः शालिभिस्तद्वत्कोद्रवैश्च चिरंतनैः।
शीतेन शीतवीर्यैश्च द्रव्यैः सिद्धेन भोजनम्।
हिमांबुपरिषिक्तस्य पयसा ससिता मधु।
रसैश्चानम्ललवणैर्जांगलैर्घृतभर्जितैः। ६३।
मुद्गादीनां तथा यूषैर्जीवनीयरसान्वितैः।
नस्यं क्षीरघृतं सिद्धं शीतैरिक्षोस्तथा रसः॥
निर्वापणाश्च गंडूषाः सूत्रस्थानोदिता हिताः।
दाहज्वरोक्ता लेह्याद्या निरीहत्वं मनोरतिः॥
महासरिद्ह्रदादीनां दर्शनस्मरणादि च।

अर्थ–शीतल आंतरीक्ष जल शहत मिलाकर पीना हित है। अथवा प्रशस्त भूमि का जल भी शहत के साथ आंतरीक्ष जलके समानही गुणकारी होता है। अथवा मिट्टी के डेले, ठीकरा, बालू आदि को गरम करके बुझाया हुआ जल ठंडा होनेपर शर्करा मिलाकर पान करना, अथवा तृणपंचमूल के साथ पकाया हुआ जल, अथवा केवलजल पीना हित है। अथवा धानकी खीलोंके सत्तूसे बनाया हुआ मंथ श्रेष्ठ है तथा कच्चे जौ पीसकर खांड और शहत मिलाकर ठंडा वाट्य हितकर है, शालीचांवल वा बहुत पुराने कोदों का यवागू खांड और शहत मिलाकर सेवन करना हित है। अथवा शीतवीर्यवाले द्रव्योंसे बनाया हुआ ठंडा भोजन, अथवा शीतलजल से परिषिक्त किये हुए मनुष्यको दूध, खांड और मधुसहित भोजन हित है। तथा जांगल जीवोंके मांसरसमें थोडी खटाई, सेंधानमक डालकर घीमें भूनकर उसके साथ भोजन हित है। जीवनीयगणोक्त औषधों के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग और मसूरादिका यूष हित है। चंदनादि शीतवीर्य द्रव्योंके साथ सिद्ध किये हुए क्षीरवृत का नस्य हित है। तथा सूत्रस्थानमें कहे हुए रोपण गंडूषों का धारण करना हित है तथा दाहज्वरमें कहे हुए प्रलेपादि हित हैं। तथा निश्चेष्टता, मनकी निवृत्ति, तथा बडे बडे नद, नदी, तालाब और सरोवरों को देखना और उनकी याद करना हित है।

बातजतृषा की चिकित्सा।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते
रसाश्च बृंहणाः शीता विदार्यादिगणांबु वा

अर्थ–वातज तृषामें गुडमिला हुआ दही बृंहणकर्ता शीतल मांसरस, और विदार्यादि गणोक्त द्रव्योंका काढा सेवन करना हितहै।

पित्तजतृषा की चिकित्सा।

पित्तजायां सितायुक्तः पक्वोदुंबरजो रसः॥
तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत्सारिवादिगणांबु वा।
तद्विधैश्च गणैःशीतकषायान्ससितामधून्
मधुरैरौषधैस्तद्वत् क्षीरिवृक्षैश्च कल्पितान्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बीजपूरकमृद्वीका वटवेतसपल्लवान् ६९॥
मूलानि कुशकाशानां यष्ट्याह्वं च जले शृतम्
ज्वरोदितं वा द्राक्षादिपंचसारांबु वा पिबेत्।

अर्थ–पित्तज तृषामें पके हुए गूलरोंका रस, वा उनका काढा वा हिम मिश्री मिलाकर पीना हित है। इसी तरह सारिवादि गणोक्त द्रव्योंका रस, काढा वा हिम मिश्री मिलाकर हित है। अथवा तद्गुणविशिष्ट शीतवीर्य द्रव्योंका कषाय खांड और शहत मिलाकर सेवन करना हित है। इसी तरह द्राक्षादि मधुररसविशिष्ट द्रव्योंका काढा वा न्यग्रोधादि दूधवाले वृक्षोंका शीतकषाय शर्करा और मधुमिलाकर सेवन करना हितहै। तथा बिजौरा, किसमिस, बट और वेतके पत्ते, कुशा और कासकी जड और मुलहटी, जलमें सिद्ध करके यह जल पीने को दे। अथवा ज्वरचिकित्सा में कहा हुआ द्राक्षादि फांट वा रक्तपित्त में कहा हुआ पंचसार शीतकषाय देना हितहै।

कफज तृषाकी चिकित्सा।

कफोद्भवायां वमनम् निंबप्रसववारिणा।
बिल्वादिकी पंचकोलदर्भपंचकसाधितम्॥
जलं पिबेद्गुडजन्या वा सिद्धं सक्षौद्रशर्करम्।
मुद्गयूषं च सव्योषपटोलीनिंबपल्लवम् ७२॥
यवान्नं तीक्ष्णकवलनस्यलेहांश्च शीलयेत्।

अर्थ–कफज तृषामें नीमके पत्तोंका क्वाथ पान करके वमन कराना हितहै। वेलागिरी अडहर, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य चीता और सौंठ), दर्भपंचक इन सब द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ जल, अथवा हलदी डालकर सिद्ध किया हुआ जल शहत और शर्करा मिलाकर पीना उचितहै। त्रिकुटा पर्वल और नीमके पत्ते डालकर मूंगका यूष देना चाहिये। जौ का अन्न, तीक्ष्णकवल, तीक्ष्णनस्य और तीक्ष्ण लेह इनको काममें लावे॥

आमज और सन्निपातज तृषा।

सर्वैरामाच्च तद्धेत्वौ क्रियेष्टा वमनम् तथा॥
त्र्यूषणारुष्करवचाफलाम्लोष्णांबुमस्तुभिः।

अर्थ–त्रिदोषज और आमजतृषामें त्रिदोशनाशिनी और आमनाशिनी चिकित्सा करना हितहै तथा त्रिकुटा, भिलावे की गुठली, वच, द्वारा अथवा अम्लवेतसे, वा उष्ण जलसे वा दहीके तोडसे वमन कराना हितहै।

अन्नात्मज तृषाकी चिकित्सा।

अन्नात्ययान्मंडमुष्णं हिमं मंथं च कालवित्

अर्थ–अन्नके विरहसे उत्पन्न हुई तृषा में काल, प्रकृति और सात्म्यके अनुसार उष्णमंड और शीतल मंथ देना चाहिये। वातकफ प्रकृतिसे उष्णमंड, पित्तकफ प्रकृति से उष्णशीत और पित्त प्रकृतिसे हिम मंथ+का पान करना चाहिये।

श्रमजन्यतृषामें कर्तव्य।

तृषि श्रमान्मांसरसं मद्यं वा ससितं पिबेत्।

अर्थ--श्रमसे उत्पन्न हुई तृषामें मांसरस अथवा शर्करामिश्रित मद्य हितकारी होताहै।

आतपजन्य तृषा।

आतपात्ससितं मंथं यवकोलांबुसक्तुभिः॥
सर्वाण्यंगानि लिंपेच्च तिलपिण्याककांजिकैः

+ सक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतोदकपरिप्लुताः। नातिद्रवो नाति सांद्रो मंथ इत्यभिधीयते। अर्थात् घृतप्लुत ठंडे पानीमें मिलाया हुआ, न बहुत गाढा, न बहुत पतला सत्तू मंथ कहलाताहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-धूप लगनेसे उत्पन्न हुई तृषा में जौ और कुलथी के सत्तूका मंथ खांड मिलाकर खाना चाहिये। और तिलोंको पीसकर कांजी में मिलाकर सब देह पर लेप करना चाहिये।

शीतस्नानजन्य तृषा।

शीतस्नानात्तु मद्यांबु पिबेत्तृष्मान् गुडांबु वा

अर्थ-शीत स्नानके कारण उत्पन्न हुई तृषामें मद्य वा गुड का शर्बत पीना उचितहै।

मद्यजतृषा।

मद्यादर्धजलम् मद्यं स्नातोऽम्ललवणैर्युतम्॥

अर्थ-मद्यसे उत्पन्न हुई तृषामें रोगीको स्नान कराके आधा जल मिली हुई शराब जिसमें खटाई और नमक पडाहो, देना चाहिये।

तीक्ष्णाग्नि में शीतल जल।

स्नेहतीक्ष्णतराग्निस्तु स्वभावशिशिरं जलम्

अर्थ-स्नेहपान के द्वारा अग्निके अत्यंत तीक्ष्ण होने से, जो तृषा उत्पन्न होती है उसमें स्वाभाविक शीतल जल हितकारक होता है।

अजीर्ण की तृषामें गरमजल।

स्नेहादुष्णांबुजीर्णात्व जीर्णान्मण्डं पिपासितः

अर्थ-स्नेहके न पचनेपर जो तृषा होती है उसमें गरमजल तथा स्नेहके पचनेपर जो तृषा होती है उसमें मंडपान करना चाहिये।

स्निग्ध तृषामें कर्तव्य।

पिबेत्स्निग्धान्नतृषितो हिमस्पर्धि गुडोदकम्

अर्थ-स्निग्ध अन्नके भोजनसे उत्पन्न हुई तृषा में गुडका शर्बत पीना हित है।

गुरुअन्नकी तृषामें कर्तव्य।

गुर्वन्नक्षेन तृषितः पीत्वोष्णांबु तदुल्लिखेत्।

अर्थ-भारी अन्नके भोजनसे उत्पन्न हुई तृषामें कंठ पर्यन्त गरमजल पीकर वमन करना उचित है।

क्षयज तृषामें कर्तव्य।

क्षयजायां क्षयहितं सर्वं बृंहणमौषधम् ७९

अर्थ-क्षयसे उत्पन्न हुई तृषामें जो जो बृंहण औषध क्षयरोगमें हितकारी है वे सब इसमें भी हितकारी हैं।

कृशादि की तृषामें चिकित्सा।

कृशदुर्बलरूक्षाणां क्षीरं छागो रसोऽथवा।

अर्थ-कृश, दुर्बल और रूक्ष मनुष्यों की तृषामें बकरी का दूध वा बकरी का मांस-रस हित है।

ऊर्ध्ववात में चिकित्सा।

क्षीरं च सोर्ध्ववातायां क्षयकासहरैः शृतम्॥

अर्थ-ऊर्ध्व वातजनित तृषारोग में क्षय और खांसी को दूरकरने वाली औषधों के साथ औटाया हुआ दूध पीवे। च शब्द से मांसरसका भी ग्रहण है।

उपसर्गजरोगमें चिकित्सा।

रोगोपसर्गजातायां धान्यांबु ससितामधु।
पानं प्रशस्तं सर्वाश्च क्रिया रोगाद्यपेक्षया॥

अर्थ-किसी रोगके उपसर्ग से उत्पन्न हुई पिपासामें खांड और मधु मिलाकर धान्याम्बु अर्थात् कांजी का पान करना चाहिये। रोगके उपसर्ग से उत्पन्न हुई व्याधियों में जो जो क्रिया कही गई है वे सब तृषा रोगमें भी हितकारी होती हैं।

तृषाकी चिकित्सा में प्रधानता।

तृष्यन् पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलम् यदि।
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्वारितं ततः ८२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः।
तस्यां जितायामन्योऽपि शक्यो
व्याधिश्चिकित्सितुम् ,, ॥ ८३ ॥

अर्थ--किसी पहिले रोगसे क्षीण तृषार्त व्यक्ति को यदि जल न मिले तो या तो वह शीघ्र मरजाता है अथवा उसके कोई बहुत काल तक रहने वाला रोग होजाता है। इसलिये बहुत शीघता पूर्वक अन्यरोगों की अपेक्षा सात्म्य अन्नपान और औषधों द्वारा सबसे पहिले तृषारोग को जीतने का यत्न करे। इसके जीतने पर अन्यरोगों की चिकित्सा भी सहज में होसकती है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने छर्दिचिकित्सितंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययचिकित्सितं-
व्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब हम यहांसे मदात्ययचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

मदात्यय में चिकित्साविधि ।

" यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत्
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये १।

अर्थ--मदात्यय रोगमें जिस वातादि दोष की अधिकता वा समता वा विषमता देखी जाय पहिले उसी रोगका प्रतीकार करना चाहिये ॥ यदि दोषप्रकोप की समानता हो तो कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा करनी चाहिये।

उक्तविधि में हेतु ॥

पित्तमारुतपर्यंतः प्रायेण हि मदात्ययः ।

अर्थ-मदात्यय रोगमें प्रथम कफकी अधिकता होताहै, फिर कुछ काल पाकर प्रायः वातपित्त की अधिकता होजाती है इसलिये प्रथम कफानुपूर्वी चिकित्सा करना चाहिये (कफानुपूर्वी चिकित्सा की व्याख्या ज्वरके प्रकरण में देखो)

मद्यजव्याधिमें मद्यसे शांति ।

हीनमिथ्यातिपीतेन यो व्याधिरुपजायते २
समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।
मद्यस्य विषसादृश्यात्

अर्थ--हीनमात्रा, मिथ्यामात्रा वा अतिमात्रा में मद्यपानसे जो व्याधियां होतीहैं वे उसी मद्यके सम्यक् पानसे शांत होजाती हैं जैसे माद्वीक, माधव वा गौडादि मद्यपान से जो व्याधियां होती हैं वे माद्वीकादि मद्य पान सेही शांत होतीहैं। इसका कारण यही है कि मद्यविषके सदृश होताहै। जैसे विष में तीक्ष्णादि दस गुण होतेहै वैसेही मद्यमें भी दसगुण होतेहैं। विष और मद्यमें अंतर केवल इतना ही है कि विषमें जो गुणहैं, वे तीव्रभाव में होतेहैं और मद्यमें वेही गुण मृदुभावमें होतेहैं

मद्यसे मद्यकी शांति में शंका ।

विषं तूत्कर्षवृत्तिभिः ॥ ३ ॥
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्योगाद्विषांतरमपेक्षते ।

अर्थ--(शंका) जो विष और मद्य सदृश हैं तो जैसे विषकी शांति अन्य विषसे होती है वैसेही मद्यकी शांति भी अन्य मद्य से होनी चाहिये, (उत्तर) विषमें दश गुण बडे उत्कट भाव में रहते हैं, इसलिये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उनके शमन करने के लिये दूसरे विषकी अपेक्षा रहती है वे आपही अपने बल से शांत नहीं हो सकते हैं परंतु मद्य में जो दस गुण है वे हीनवृत्तिवाले हैं इसलिये उनकी शांति के लिये अन्य मद्यकी अपेक्षा नहीं होती हैं।

विधिपूर्वक मद्यपान की उत्कर्षता।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना॥
मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धः क्षारतां गतः।
यान्कुर्यान्मंदतृष्मोहज्वरांतर्दाहविभ्रमान्॥
मद्योत्क्लिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतःसु मारुतः।
सुतीव्रा वेदना याश्च शिरस्यस्थिषु संधिषु॥
जीर्णमद्यदोषस्य प्रकांक्षालाघवे सति।
यौगिकं विधिवद्युक्तं मद्यमेव निहंति तान्॥

अर्थ-तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मात्रा से अधिक, और अम्लविदाही मद्यके पीने से अन्नरस क्लेदयुक्त, विदग्ध और क्षारयुक्त होकर मद, तृषा, मोह, ज्वर, अंतर्दाह और विभ्रमादि संपूर्ण उपद्रवों को उत्पन्न करता है। तथा भोजन के कारण मद्यसे उत्क्लिष्ट दोष द्वारा वायु स्रोत के मध्य में रुककर मस्तक, अस्थि और संधियों में जो तीव्रवेदना उत्पन्न होती हैं वे सब मद्यपीने वाले मनुष्य के मद्य के जीर्ण होनपर और मद्यपान की इच्छा कम होने पर उपयुक्त द्रव्यों के साथ और विधिपूर्वक प्रयुक्त किये हुए मद्यपान द्वारा शांत होजाती हैं।

उक्तकार्य में हेतु।

क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहितः।
मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठं दोषविष्यंदनादलम्।८।

अर्थ-खटाई से मिलते ही क्षार द्रव्य शीघ्र ही मधुरता को प्राप्त होजाताहै। सब प्रकार के अम्ल द्रव्यों में मद्यही श्रेष्ठ होता है, इसलिये तीक्ष्णोष्णादि गुणसंयुक्त मद्यका सेवन करने से अन्नरस में जो क्षारता उत्पन्न होती है वह अम्लप्रधान मद्यके सेवनसे मधुरता को प्राप्त होजाती है। इसका यह फल निकलता है कि अन्नरसमें जो क्षारता पैदा होनेके कारण उपद्रव होते हैं वे मद्यकी अम्लता के संयोगसे शीघ्रही शांत होजाते हैं।

मद्यको धातुसाम्यकरत्व।

तीक्ष्णोष्णाद्यैः पुरा प्रोक्तैर्दीपनाद्यैस्तथा गुणैः
सात्म्यत्वाच्च तदेवास्य धातुसाम्यकरं परम्

अर्थ-मदात्ययनिदानमें कहे हुए तीक्ष्णोष्णादि गुणोंसे तथा मद्यवर्ग में कहे हुए दीपनादि गुणोंसे तथा सात्म्य होनेके कारण मद्यही मदात्यय रोगीके लिये अत्यन्त धातुसाम्यकारक औषध है।

पानात्यय औषध का काल।

सप्ताहमष्टरात्रं वा कुर्यात्पानात्ययौषधम्।
जीर्यत्येतावता पानं कालेन विपथा श्रुतम्॥

अर्थ-पानात्यय औषध का सेवन सात वा आठ दिन तक करना चाहिये, इससे अधिक दिन तक सेवन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इतनेही समय में विमार्गस्थ मद्य जीर्णता को प्राप्त होजाता है।

रोगानुसार औषध।

परं ततोनुवर्त्तते यो रोगस्तस्य भेषजम्
यथायथं प्रयुंजीत कृतपानात्ययौषधः।११।

अर्थ-यदि पानात्यय औषध के सेवन पर भी जो रोग अधिक दिन तक रहैं तो उस रोगकी यथायोग्य और यथाविहित औषध करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातज मदात्यय की चिकित्सा।

तत्र वातोल्वणे मद्यं दद्यात्पिष्टकृतं युतम्।
बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमदीप्यकैः॥
यवानीदधुषाजाजीह्र्योषत्रिलवणार्द्रकैः।
शूल्यैर्मांसैर्हरितकैः स्नेहवद्भिश्च सक्तुभिः।
उष्णस्निग्धाम्ललवणा मद्यमांसरसा हिताः।
आम्राम्रातकपेशीभिः संस्कृता रागखांडवाः।
गोधूममाषविकृतीर्मृदुश्चित्र मुखप्रियाः।
आर्द्रिकार्द्रककुल्माषसूक्तमांसादिगर्भिणीः॥
सुरभिर्लवणा शीता निगदा यच्छवारुणी।
स्वरसो दाडिमः काथः पंचमूलात्कनीयसः॥
शुंठीधान्यात्तथामस्तुसूक्तांभोत्थाम्लकांजिकम्
अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमुष्णं प्रावरणं घनम्॥
घनश्चागुरुजो धूपः पंकश्चागुरुकुंकुमः।
कुचोरुश्रोणिशालिन्यो यौवनौष्णांगयष्टयः॥
हर्षेणालिंगनैर्युक्ताः प्रियाः संवहनेषु च।

अर्थ—इन सब मदात्यय रोगों में से वातज मदात्यय में पिसे हुए चांवलों का मद्य नीचे लिखे हुए संपूर्ण द्रव्य अथवा जितने मिलसकें उतने द्रव्यों के साथ पीना चाहिये, जैसे बिजौरा, अम्लबेत, बेर, अनार, अजमोद, अजवायन, हाऊबेर, जीरा, त्रिकुटा त्रिलवण (सेंधा, संचल और मनयारी), अदरख, शूल्यमांस, हरियलमांस, घृतप्लुत सत्तू मिला देने चाहियें। तथा उष्ण, स्निग्ध, अम्ल और लवणयुक्त मेदा वाले मांसरस हित हैं। तथा अमचूर और आमडे के साथ सिद्ध किये हुए राग और षाडव हित हैं। इसी तरह गेंहूं और उरद के बने हुए अनकानेक पदार्थ जो मुख में रुचिवर्द्धक और मृदु हैं वे सब हित हैं। तथा आर्द्रका, आर्द्री, कुल्माष, और मांसादियुक्त सुगंधित, नमकीन, और शीतल स्वच्छ वारुणी हित है। अनारका रस, लघु पंचमूल का काढा, सोंठ और धनिये का काढा, दही का तोड, सुक्त, खट्टीकांजी, गरम अभ्यंग, उबटना और स्नान, गाढे वस्त्रका ओढना, अगरकी धूपका अधिक सेवन, अगर और कुंकुमका लेपन हित हैं तथा सुंदर कुच, जंघा और कटिप्रदेशवाली स्त्रियां जिनकी अंगयष्टि यौवनमद से उष्ण हों और आनन्द से आलिंगनकरनेवाली ऐसी स्त्रियां देह के मर्दन में नियुक्त हों। ये सब बातें वातजमदात्यय में हितकारक हैं।

पित्तज मदात्यय।

पित्तोल्बणे बहुजलं शार्करं मधुना युतम्॥
रसैर्दाडिमखर्जूरभव्यद्राक्षापरूषकैः।
सुशीतं ससितासक्तुयोज्यं तादृक् च पानकम्
स्वादुवर्गकषायैर्वा युक्तं मद्यं समाक्षिकम्।

अर्थ—पित्तज मदात्यय में बहुत जल मिला हुआ शर्करा मद्य देना चाहिये, इसमें शहत और अनार, खजूर, कमरख, किसमिस और मीठे फालसे का रस भी मिला देना चाहिये; अथवा मिश्री धान का सत्तू मिलाकर शीतल पानक (पेय पदार्थ) देना चाहिये। अथवा मधुर वर्गोक्त द्रव्यों के कषाय से युक्त मधुमिश्रित मद्य देना चाहिये।

पित्तज मदात्यय में भोजन।

शालिषष्टिकमश्नीयाच्छशाजैणकपिंजलैः॥
सतीनमुद्गामलकपटोलीदाडिमैरपि।

अर्थ—खर्गोश, बकरा, हरिण और तीतर के साथ अथवा मटर, मूंग, आमला, पर्वल और अनार इनके यूष के साथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शाली चांवल और साठी चांवलों का भात खाना चाहिये।

पित्तजमदात्यय में वमनादि।

कफपित्तं समुत्क्लिष्टमुल्लिखेत्तृड्विदाहवान्॥
पीत्वांबु शीतं मद्यं वा भूरीक्षुरससंयुतम्।
द्राक्षारसं वा संसर्गी तर्पणादिपरं हितः
तथाग्निर्दीप्यते तस्य दोषशेषान्नपाचनः।

अर्थ–उस मदात्ययरोगी को जिसे तृषा और विदाह की प्रबलता हो अपने स्थान से हटे हुए कफ और पित्तको वमन द्वारा निकाल देने के लिये शीतल जल वा अधिक ईखके रससे युक्त मद्यपान अथवा दाखका रस पिलाना चाहिये। इसके पीछे पेयापानादि क्रम से उसे संसर्गी करै ऐसा करने से उसकी जठराग्नि प्रबल होजाती है और बचे हुए दोष से युक्त अन्नका परिपाक होजाता है।

कासान्वित उक्तरोग में चिकित्सा।

कासे सरक्तनिष्ठीवे पार्श्वस्तनरुजासु च
तृष्णायां सविदाहायां सोत्क्लेशे हृदयोरसि।
गुडूचीभद्रमुस्तानां पटोलस्याथवारसम्।
स शृंगवेरं युंजीत तित्तिरिप्रतिभोजनम्।

अर्थ–पित्तके मदात्यय में खांसी के साथ रुधिर आता हो, पसली और स्तन-प्रदेश में पीडा होती हो, तृषा, विदाह, हृदय और वक्षःस्थल में उत्क्लेश हो तो गिलोय, भद्रमोथा, अथवा पर्वलके रस में अदरख मिलाकर देना चाहिये इसमें तीतर का मांस पथ्य में दिया जाता है।

वातपित्त की अधिकता में कर्तव्य।

तृष्यते चाऽतिबलवद्वातपित्ते समुद्धते
वदाद्राक्षारसं पानं शीतं दोषानुलोमनम्।
जीर्णेऽद्यान्मधुराम्लेन छागमांसरसेन च

अर्थ–मदात्यय रोग में यदि तृषा की प्रबलता हो और वातपित्त की अधिकता हो तो शीतल द्राक्षारस का पान कराना चाहिये इससे दोषों का अनुलोमन होता है। द्राक्षारस के पचजाने पर मधुर और अम्ल रस से युक्त तथा बकरे के मांसरस के साथ भोजन करावै।

तृषा में अल्प मद्यपान।

तृष्यल्पशः पिबेन्मद्यं मेदं रक्षन् बहूदकम्।
मुस्तदाडिमलाजांबु जलं वा पर्णिनीशृतम्
पटोल्युत्पलकंदैर्वा स्वभावादेव वा हिमम्

अर्थ–पित्तज मदात्यय में यदि तृषा की अधिकता हो तो मेद की रक्षा करता हुआ (मेद में क्षीणता आदि किसी प्रकार की विकृति न होने पावै) बहुत जल मिला हुआ मद्यपान करावै अथवा मोथा, अनार और धानकी खीलका काढा अथवा शालपर्णी का काढा अथवा पर्वल और कमलकंद का काढा अथवा स्वाभाविक शीतल जल का पान कराना चाहिये।

जलीय धातु की क्षीणता में कर्तव्य।

मद्यातिपानादब्धातौ क्षीणे तेजसि चोद्धते॰
यः शुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेष्टते।
पाययेत्कामतोऽभस्तं निशीथपवनाहतम्।

अर्थ–मद्य के अधिक सेवन करने से जो जल धातु क्षीण होगई हो और तेजो धातु क्षोभित हो तथा कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूख गये हो और रोगी जीव को बाहर निकालकर इधर उधर करवटें लेता हुआ तडफडाता हो उसे ऐसा जल भर पेट पिलाना चाहिये जो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आधी रात की पवन के झकोरोंके लगने से शीतल हो रहा हो ।

मदात्यय में मुखालेप ।

कोलदाडिमबृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ।
पंचाम्लकोमुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ।

अर्थ–बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुक्रीका, और चूका का रस इन पांच खटाईयों का मुख लेप करने से तृषा तत्काल शांत हो जाती है ।

अन्य उपाय ।

त्वचं प्राप्तश्च पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्छितः
दाहं प्रकुरुते घोरं तत्राऽतिशिशिरो विधिः ।
अशाम्यति रसैस्तृप्तं रोहिणीं व्यधयेच्छिराम् ।

अर्थ–मद्य की गरमी त्वचा में पहुंचकर और पित्त रक्त से मिलकर घोर दाह उत्पन्न करती है इस में अत्यन्त शीतल उपचार करना चाहिये । शीतल उपचार करने पर भी यदि दाह की शांति न हो तो रोगी को मांस रस पानसे तृप्ति करके उस की रोहणी संज्ञक शिरा का वेधन करै ।

कफाधिक्य मदात्यय में कर्तव्य ।

उल्लेखनोपवासाभ्यां जयेत्श्लेष्मोल्बणंपिबेत्
शीतं शुंठीस्थिरोदीच्यदुःस्पर्शान्यतमोदकम् ।

अर्थ–कफाधिक्य मदात्ययको वमन और उपवास द्वारा दूर करने का उपाय करै, तथा सोंठ, शालपर्णी, नागरमोथा और दुरालभा इनमें से किसी एक का क्वाथ पान करै

अन्य उपाय ।

निरामं क्षुधितं काले पाययेद्बहुमाक्षिकम्
शार्करं मधु वा जीर्णमरिष्टं सीधुमेव च ।
रूक्षतर्पणसंयुक्तं यथानीनागराम्बितम् ।

अर्थ–आमरहित रोगी को भूख के उदय होने पर यथोचित काल में बहुत मधु मिला हुआ शार्कर मद्य अथवा माक्षीक मद्य पान करावै, अथवा रूक्षतर्पणों से युक्त अजवायन और सोंठ डालकर पुराना अरिष्ट वा सीधु पान कराना चाहिये ।

उक्त रोग में भोजनादि ।

यूषेण यवगोधूमं तनुनाऽल्पेन भोजयेत् ।
उष्णाम्लकटुतिक्तेन कौलत्थेनाल्पसर्पिषा ।
शुष्कमूलकजैश्छागै रसैर्वा धन्वचारिणाम् ।
साम्लेवेतसवृक्षाम्लपटोलीत्र्योषदाडिमैः"

अर्थ–पतला और थोडा, उष्ण अम्ल कटु तिक्त रसों से युक्त थोडा घी डाल कर तयार किये हुए कुलथी के यूष के साथ जौ और गैहूं के भक्ष्य पदार्थ का भोजन करना चाहिये अथवा सूखी मूली के यूष के साथ, अथवा बकरे वा अन्य किसी जांगल पशु के मांसरस के साथ, अम्लवेत, वृक्षाम्ल, पर्वल और त्रिकुटा मिलाकर वा जौ गैहूं के पदार्थों का सेवन करै ।

यथाग्नि पथ्यादि ।

प्रभूतशुंठीमरिचहरितार्द्रकपोशिकम् ।
बीजपूररसाद्यम्लभृष्टनीरसवर्तितम्
करीरकरमर्दादिरोचिष्णु बहुशालनम् ।
प्रव्यक्ताष्टांगलवणं विकल्पितनिमर्दकम्
यथाग्नि भक्षयन्मांसं माधवं निगदं पिबेत् ।

अर्थ–अधिक परिमाण में सोंठ, मिर्चे, हरी अदरखकी पेशी [चाकू वा छुरी से काट काट कर अदरख के लम्बे २ सूत निकाले जाते है, उन्हें पेशी कहते हैं,) डाल कर तथा बिजौरे के रस आदि की खटाईसे युक्त तथा स्नेहादिसे ऐसा भूना जाय जिसमें रस न रहकर सूखासा होजाय, ऐसे व्यंजन से युक्त तथा करील, करौंदा आदि रुचिकारक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुत से शालनसे युक्त तथा वक्ष्यमाण अष्टांग लवण से संयुक्त अनेक प्रकार से बनाये हुए मांस के पदार्थों को खा कर ऊपर से पुराना माधव संज्ञक मद्यपान करै।

कफप्राय मदात्ययमें अष्टांगलवण।

सितासौवर्चलाजाजीतिन्तिडीकाम्लवेतसम्॥
त्वगेलामरिचार्धांशमष्टांगलवणं हितम्।
स्रोतोविशुद्ध्यग्निकरं कफप्राये मदात्यये॥

अर्थ–कफकी अधिकतावाले मदात्यय में खांड, संचलनमक, कालाजीरा, इमली, अमलवेत, सब एक एक भाग, दालचीनी, इलायची और कालीमिरच प्रत्येक आधा भाग, ये अष्टांग लवण हित है, यह स्रोतोंको खोल देता है और जठराग्नि को बढ़ाता है।

कफज मदात्ययमें जागरणादि।

रूक्षोष्णोद्वर्तनोद्वर्षस्नानभोजनलंघनैः॥
सकामाभिः सह स्त्रीभिर्युक्त्या जागरणेन च॥
मदात्ययः कफप्रायः शीघ्रं समुपशाम्यति।

अर्थ–रूक्ष और उष्ण उबटना, घर्षण, स्नान, भोजन, लंघन और कामवती स्त्रियों का सहवास और युक्तिपूर्वक रात्रिजागरण इन बातोंसे कफकी अधिकता वाला मदात्यय शीघ्र नाश होजाता है।

सन्निपातज मदात्यय में चिकित्सा

यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति॥
सान्निपाते दशविधे तच्छेषेऽपि विकल्पयेत्

अर्थ–पृथक् पृथक् दोषोंकी जो चिकित्सा ऊपर वर्णन कर चुके हैं, जैसे तत्र वातोल्वणे मद्यमिति, पित्तोल्वणे बहुजलमित्यादि, तथा उल्लेखनोपतापाभ्यां जयेत् श्लेष्मोल्वणमित्यादि, इसके अनुसार दोष और बलपर ध्यान देकर उक्त चिकित्साविधि की अनेक प्रकार की कल्पना करके शेष दस × प्रकार के सान्निपातिक मदात्यय में प्रयोग करना उचित है। जैसे वाताधिक्य सान्निपातिक मदात्ययमें जो क्रिया कही गई है तथा पित्ताधिक्य सांनिपातिक मदात्यय में जो क्रिया कही गई है। उन दोनोंको मिलाकर वातापित्ताधिक्य सान्निपातिक मदात्यय में चिकित्सा करनी चाहिये। इस तरह दोष बलका बिचार करके सब प्रकारके सान्निपातिक मदात्ययों में चिकित्सा का मार्ग अवलंबन करना चाहिये।

उत्कर्षेण यदात्ये को मध्येन द्वौ तदाऽऽदिमः। उत्कर्षेण यदा द्वौतु मध्येनैको द्वितीयकः एको मध्येन दोषः स्याद द्वावल्पेन तृतीयकः। उत्कर्षेणैक एव स्यादल्पेन द्वौ चतुर्थकः उत्कर्षेण यदा द्वौ तु अल्पेनैकश्च पंचमः। एकोल्पेन तु मध्येन द्वौ दोषाविति षष्ठकः। उत्कर्षिणः समस्ताः स्युरेवं भवति सप्तमः। मध्येन सर्वेपि यदा तदा भवति चाष्टमः। अल्पेन सर्वेपि यदा तदा तु नवमः स्मृतः। अल्पेनैको मध्येनैकस्तरामन्य इति स्फुटाः। संनिपातस्य मुनिना दश भेदा प्रवर्तिताः। अर्थात् (१) एक दोष का उत्कर्ष, दो दोषों की मध्यावस्था। (२] दो दोषों का उत्कर्ष, एक दोष की मध्यावस्था। (३) एक दोष की मध्यावस्था, दो दोषों की अल्पावस्था। (४) एक दोष का उत्कर्ष, दो दोषों की अल्पता, (५] दो दोषों का उत्कर्ष, एक दोष की अल्पता [६] एक दोष की अल्पता दो दोषों की मध्यावस्था, (७) तीनों दोषों की उत्कर्षता, (८) तीनों दोषों की मध्यावस्था, (९) तीनों दोषों की अल्पावस्था (१०] एक दोष की अल्पावस्था, एक की मध्यावस्था और एक की उत्कर्षता। ये दश प्रकार के सन्निपात हैं॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सब मदात्ययों में रुच्यपानक ।

"त्वङ्नागपुष्पमगधामरीचाजाजिधान्यकैः
पत्रकमधूकैलासुराह्वैश्च सितान्वितैः ।
सकपित्थरसं हृद्यं पानकं शशिबोधितम् ॥
मदात्ययेषु सर्वेषु पेयं रुच्याग्निदीपनम् ।

अर्थ–दालचीनी, नागकेसर, पीपल, कालीमिरच, काला जीरा, धनियां, फालसा, मुलहटी, इलायची, देवदारू, इन सब द्रव्यों को घोट कर छानले फिर इसमें खांड और कैथ का रस मिलाकर कपूर से सुगंधित करै । यह पानक सब प्रकार के मदात्यय में हितकारी होता है इसके सेवन से अन्न में रुचि और जठराग्नि बढती है।

मदात्यय में हर्षणी क्रिया ।

नाविक्षोभ्य मनो मद्यं शरीरमविहन्य वा ॥
कुर्यान्मदात्ययं तस्माद्विध्यते हर्षणी क्रिया ।

अर्थ–मद्य मनको क्षुभित और शरीर को कष्ट पहुंचाये विना कुछभी नहीं कर सकता है इसलिये मदात्यय में प्रसन्नता करनेवाली क्रिया करना अभीष्ट है ।

मदात्यय में दूध ।

संशुद्धिशमनाद्येषु मद्दोषःकृतेष्वपि॥ ४८ ॥
न चेच्छाम्येत्कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे।
तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ॥
ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ।

अर्थ–संशोधन और संशमनादि क्रियाओं के करने पर भी यदि मदके दोषकी शांति न हो तो मदके द्वारा विदग्ध उस मनुष्य की सौम्यधातु कफके क्षीण होनेसे और अल्पकृशता होनेसे वातपित्त की अधिकता होजाती है । इसलिये उस वातपित्ताधिक्य वाले मद्यविदग्ध रोगी के लिये दूधही पथ्य होता है, जैसे ग्रीष्मसे जले हुए वृक्ष के लिये वर्षा हितकारी होती है ।

मद्यक्षीण में दूधका कारण ।

मद्यक्षीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेव पुष्यति॥
ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतं च मद्यतः ।

अर्थ–दूध ओज धातुके गुण के समान और मद्यगुण के विपरीत गुणवाला होता है इस लिये मद्यसे क्षीण रोगी की क्षीण हुई ओज धातुकोशीघ्रही पुष्ट करदेता है। अतएव मद्यसे क्षीण मनुष्य को दूध ही श्रेष्ठ पथ्य है ।

अल्पमद्य विधि ।

पयसा विजिते रोगे बले जाते निवर्तयेत्॥
क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।
न विट्क्षयध्वंसकोत्थैः स्पृश्येरंश्चोपद्रवैर्यथा ॥

अर्थ–जब दूध से मदात्यय रोग जाता रहै और शरीर में बल उत्पन्न होजाय तब दूध पीना छोडदे और थोडा थोडा मद्य पीना आरंभ करै, जिससे पुरीषक्षयसंबधी कायरोग और शिरोरोगादि तथा ध्वंसकोद्भव श्लेष्मनिष्ठीविनादि उपद्रव उत्पन्न न होने पावै ।

विट्क्षयादि में कर्तव्य ।

तयोस्तु स्यादघृतं क्षीरं वस्तयो बृंहणाः शिवाः ।
अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमन्नपानं च वातजित् ॥

अर्थ–यदि पुरीषक्षयजनित और ध्वंसकजनित उपद्रव खडे होजांय तो घृतपान, दुग्धपान, बृंहण, वस्तिप्रयोग, अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान और वातनाशक अन्नपान हित होते हैं ।

मद्यसंयोग में कारण ।

युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरुपजायते ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतोऽस्य वक्ष्यते योगो य सुखायैव केवलम्

अर्थ–यथोपयुक्त मद्यपान करनेसे मद्य जनित व्याधियां उत्पन्न नहीं होती है इस लिये अब हम मद्यसंबंधी उन प्रयोगों का वर्णन करते हैं जिससे सुखही उत्पन्न हो और किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न न हो।

सुराके गुण।

आश्विनं या महत्तेजो बलं सारस्वतं च या।
धत्तेऽत्यैंद्रं च या वीर्यं प्रभावं वैष्णवं च या॥
अस्त्रं मकरकेतोर्या पुरुषार्थो बलस्य या।
सौत्रामण्यां द्विजमुखे या हुताशे च हूयते॥
या सर्वौषधिसंपूर्णान्मथ्यमानात्सुरासुरैः।
महोदधेः समुद्भूताः श्रीशशांकामृतैः सह॥
मधुमाधवमैरेयसीधुगौडासवादिभिः।
मद्यशक्तिमनुज्झंती या रूपैर्बहुभिः स्थिता॥
यामासाद्य विलासिन्यो यथार्थं नाम बिभ्रति
कुलांगनाऽपि यां पीत्वा नयत्युद्धतमानसा॥
अनंगालिंगितैरंगैः कामपि चेतो मुनेरपि।
तरंगभंगभृकुटीतर्जनैर्मानिनीमनः॥ ६०॥
एकं प्रसाद्य कुरुते या द्वयोरपि निर्वृतिम्।
यथाकामं भटावाप्तिपरिहृष्टाप्सरोगणे॥
तृणवत्पुरुषा युद्धे यामासाद्य त्यजंत्यसून्।
यां शीलयित्वाऽपि चिरं बहुधा बहुविग्रहाम्
नित्यं हर्षातिवेगेन तत्पूर्वामिव सेवते।
शोकोद्वेगारतिमयैर्यो दृष्ट्वा नाभिभूयते॥
गोष्ठीमहोत्सवोद्यानं न यस्याः शोभते विना।
स्मृत्वा स्मृत्वा च बहुशो वियुक्तः शोचते यया
अप्रसन्नाऽपि या प्रीत्यै प्रसन्ना स्वर्ग एव या
अपीद्रं मन्यते दुःखं हृदयस्थितया यया॥
अनिर्देश्यसुखास्वादा स्वयंवेद्यैव या परम्।
इति चित्रास्ववस्थासु प्रियामनुकरोति या॥
प्रियातिप्रियतां याति यत्प्रियस्यं विशेषतः।
या प्रीतिर्या रतिर्या वाग्या पुष्टिरिति च स्तुता
देवदानवगंधर्वयक्षराक्षसमानुषैः।
पानप्रवृत्तौ सत्यां तां सुरां तु विधिना पिबेत्।

अर्थ–जो सुरा अश्विनीकुमार के महत्तेज को धारण करती है, जो सुरा सरस्वती के बल (उत्साह), इन्द्रके वीर्य और विष्णुके महात्म्यको धारण करती है, जो सुरा कामदेवका आयुध और बलभद्र का पुरुषार्थ है, जो सौत्रामणीयज्ञ में ब्राह्मण के मुख और अग्निमें होमी जाती है, जो संपूर्ण औषधियों से युक्त महासागर से देवता और असुरोंके मथने से लक्ष्मी, चन्द्रमा और अमृतके संग उत्पन्न हुई है, जो सुरा मधु, माधव, मैरेय सीधु, गौड और आसवादि अनेक रूपों में अवस्थित होकर भी अपनी मादक शक्ति का परित्याग नहीं करती है, जिस सुरा का पान करनेसे मृगलोचनी नवयुवतियोंका विलासिनी (विलासो विद्यते यासामिति) नाम सार्थक होजाताहै। जिस सुरा का पान करके कुलवती युवतियां भी उद्धतमना होकर अनंग द्वारा आलिंगित अंगसे मुनिजनों के भी चित्त को कहीं का कहीं लेजाती है जो सुरा कुटिल भृकुटियों की तर्जना अर्थात् प्रणयकलह विशेष से मानिनी कामिनीगणोंके मनको प्रसन्न करके दोनों स्त्री पुरुषों को सुख उत्पन्न करती है, जिस सुरा का आस्वादन करके मनुष्य अपने प्राणोंका उस समरभूमि में तृणवत् परित्याग करदेताहै जिसमें उसके शौर्य और पराक्रमको देखकर अप्सराओंके गण प्रसन्न होते हैं। जिस सुरा को आहारादि अनेक रूपमें और मधुमाधवादि अनेक विग्रह में चिरकाल तक सेवन करताहुआ भी हर्षके अतिवेगसे प्रतिदिन ऐसे पान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करताहै, जैसे आजही प्रथम सेवन करताहै जिस सुराके दर्शनमात्रसे ही शोक उद्वेग अरति और भय पराभव नहीं करसकते हैं, जिस सुराके विना गोष्ठी, महोत्सव और उद्यान शोभा को प्राप्त नहीं होतेहैं, जिस सुराके न मिलने से बार बार याद करके उसका अभ्यासी मनुष्य शोकसागर में निमग्न होजाताहै। जो सुरा अप्रसन्ना अर्थात् कलुषा होनेपर भी प्रसन्ना अर्थात् स्वच्छ होनेके कारण स्वर्ग ही प्रतीत होती है। जिस सुराके हृदयके भीतर स्थित होनेपर इन्द्र भी दुखित प्रतीत होताहै। जिस सुरा के आस्वाद का सुख वर्णनातीतहै, जिसके सुखका अनुभव केवल अपने आत्माही से जाना जाताहै। जो सुरा पूर्वोक्त विविध प्रकार से सेवन किये जानेपर प्राणवल्लभा का अनुकरण करती है ×। जिसके कारण सुराप्रेमी की प्रिया प्रत्यन्त प्रियता को प्राप्त होती है, जो सुरा प्रीतिहै, जो रतिहै जो वाणी है, जो पुष्टिहै और जिसकी देव,दानव गंधर्व, यक्ष, राक्षस और मनुष्य स्तुति करते है। ऐसी पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त सुराको विधि पूर्वक वेही लोग पीवें जिनको धर्मशास्त्रके अनुसार पीनेका अधिकारहै।

विधियुक्त मद्यके गुण।

संभवंति च ते रोगा मेदोऽनिलकफोद्भवाः।
विधियुक्ताद्ते मद्यात्ते न सिध्यंति दारुणाः॥

अर्थ—मेद, वायु, और कफके विकारों से जो दारुण रोग उत्पन्न होजाते है वे विधिपूर्वक अप्रयोजित मद्यके बिना अच्छे नहीं होतेहैं, अर्थात् उक्तरोगों के शमन के लिये मद्यका विधिपूर्वक पान आवश्यकीयहै।

निगदमद्यपान की विधि।

अस्तिदेहस्य सावस्थां यस्यां पानं निवार्यते।
अन्यत्र मद्यान्निगदाद्विधिभैषधसंभृतात्॥

अर्थ—देहकी एक वह भी अवस्था है जिसमें देहकी प्रक्लिन्नता और मेहादि रोगों की प्रबलता के कारण मद्यपान वर्जित है, परन्तु ऐसी अवस्था में भी अनेक प्रकार की औषधों से संस्कृत निगद नामक मद्य का प्रयोग किया जासकता है।

भुक्तमांसमें मद्यपान।

आनूपं जांगलं मांसं विधिनाऽत्युपकल्पितम्

+ प्रियापक्षमें—प्रणयकलह, अप्रसन्ना अर्थात् कुपिता, प्रसन्ना अर्थात् त्यक्तकोपा। अनिर्देश्यःसुखास्वादः अर्थात् वर्णनातीत सुखोपलंभ, इसीतरह तृणवत्पुरुषा, शीलयित्वा इत्यादि अर्थ भी प्रियापक्षमें योजनीयहै, जैसे जिस प्रियाके कारण मनुष्य तिनके की तरह अपने प्राणों को त्याग देताहै, बहुत काल तक सेवन करने पर नित्य नवीन समागम की तरह आनंदित होताहै, जिसे देखकर शोक, उद्वेग अरति और भय दूर भाग जातेहैं, जिसके विना हंसना, बोलना, विवाहादि महोत्सव और बाग वगीचेका परिभ्रमण फीका जचताहै, जिसके विरह में याद आ आ कर मन शोक सागरमें गोते मारने लगता है अप्रसन्न होनेपर प्रीति भरी उमगों से प्रसन्न होती हुई स्वर्ग का अनुभव कराती है। हृदयस्थितथा अर्थात् जिसके हृदयगामिनी होनेपर इन्द्रका इंद्रत्व भी तुच्छ मालूम होता है, जिसका सुखास्वाद अर्थात् जिसके सामीप्यका सुख और आस्वाद अर्थात् जाषका वर्णनसे बाहर है। इसतरह सुरा सब भांति प्राणवल्लभा का अनुकरण करती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मद्यं सहायमप्राप्य सम्यक् परिणमेत्कथम् ॥

अर्थ-पाकविधि के अनुसार प्रस्तुत किया हुआ आनूप और जांगल मांस मद्य की सहायता के बिना कैसे पच सकता है, अर्थात् उक्त मांसों को खाकर इनके पचाने के लिये मद्यपान करना अवश्कीय है।

पुनः मद्य की विशेषता।

सुतीव्रमारुतव्याधिघातिनो लशुनस्य च।
मद्यमांसवियुक्तस्य प्रयोगः स्यात्कियान् गुणः

अर्थ-दारुण वातव्याधियों का नाश करने वाला लहसन मांस और मदिरा के बिना कैसे गुण कर सकता है, अर्थात् मांस मदिरा के अनुपान सेही लहसन वातव्याधियों को दूर करता है।

मद्य के गुण।

निगूढशल्याहरणे शस्त्रक्षाराग्निकर्मणि।
पीतमद्यो विषहते सुखं वैद्यविकत्थनाम् ॥

अर्थ-गहरे गड़ेहुए शल्योंका निकालना शस्त्रकर्म, क्षारकर्म और अग्निकर्म इन वैद्य कृत यंत्रणाओंको मद्यपान किया हुआ रोगी सुखपूर्वक सहलेता है।

मद्य की उत्कृष्टता।

अनलोत्तेजनं रुच्यं शोकश्रमविनोदकम्।
न चाऽतः परमस्त्यन्यदारोग्यबलपुष्टिकृत् ॥

अर्थ-मद्य के समान अग्निवर्द्धक, रुचिकारक, शोक और श्रमनाशक, तथा आरोग्य, बल और पुष्टि करनेवाला और कुछ भी नहीं है।

मद्य की पेयत्व।

रक्षता जीवितं तस्मात्पेयमात्मवता सदा।
आश्रितोपाश्रितहितं परमं धर्मसाधनम् ७५

अर्थ-मद्य जीवन का रक्षक है इस लिये बुद्धिमान को उचित है कि सदा इसका पान करता रहै मद्य आश्रित और उपाश्रित दोनों के लिये हितकारक है और धर्मसाधनका परम उपाय है।

मद्यपान की विधि।

स्नातः प्रणम्य सुरविप्रगुरून्यथास्वं
वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य।
आपानभूमिमथ गंधजलाभिषिक्ता-
माहारमंडपसमीपगतां श्रयेत ॥ ७६ ॥
स्वास्तृतेऽथ शयने कमनीये
भृत्यमित्ररमणीसमवेतः।
स्वं यशः कथकचारसंघै-
रुद्धतं निशमयन्नतिलोकम् ॥ ७७ ॥
विलासिनीनां च विलासशोभि
गीतं सनृत्तं कलतूर्यघोषैः।
कांचीकलापैश्चलकिंकिणीकैः
क्रीडाविहंगैश्च कृतानुनादम् ॥ ७८ ॥
मणिकनकसमुत्थैरावनेयैर्विचित्रैः
सजलविविधलेखक्षौमवस्त्रावृतांगैः।
अपि मुनिजनचित्तक्षोभसंपादनीभि-
श्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिः प्रियाभिः
स्तननितंबकृतादतिगौरवा-
दलसमाकुलमीश्वरवत्क्रमात्।
इति गतं दधतीभिरसंस्थितं
तरुणचित्त विलोभनकामिनम् ॥ ८० ॥
यौवनासवमत्ताभिर्विलासाधिष्ठितात्मभिः।
संचार्यमाण युगपत्तन्वंगीभिरितस्ततः ॥
तालवृंतनलिनीदलानिलैः
शीतलीकृतमतीव शीतलैः।
दर्शनेऽपि विदधद्वशानुगं
स्वादितं किमुत चित्तजन्मनः ॥ ८२ ॥
चूतरसेंदुमृगैः कृतवासं
मल्लिकयोज्ज्वलया च सनाथम्।
स्फाटिकशुक्तिगतं सतरंगं
कांतमनंगभिवोद्वहदंगम् ॥ ८३ ॥
तालीसाद्यं चूर्णमेलादिकं वा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृद्यं प्राश्य प्राग्वयःस्थापनं वा ।
सत्प्रार्थिभ्यो भूमिभागे समृष्टे
तोयोन्मिश्रं दापयित्वा ततश्च ॥ ८४ ॥
धृतिमान् स्मृतिमान्नित्यमनूनाधिकमाचरन्
उचितेनोपचारेण सर्वमेवोपपादयन् । ८५ ।
जितविकसितासितसरोज-
नयनसंक्रांतिवर्धितश्रीकम् ।
कांतामुखमिव सौरभ-
हृतमधुपगणं पिबेन्मद्यम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—स्नान करनेके पीछे देवता, ब्राह्मण और गुरु लोगों को यथा योग्य प्रणाम करके तथा समस्त परिजनों के भोजनादि व्यापार को करके आहार मंडपके निकटवर्ती कपूर और खस आदि के शीतल जल से छिडकी हुई पानभूमि में जाना चाहिये । तदनंतर सुंदर और कोमल गद्दे तकियों से युक्तशय्यापरबैठे और अपने इष्टमित्र,सेवक और रमणीगणोंसे परिवृत होकर मद्यपानकरे और मद्यपान के समय कथक और चारण उसके यश और लोक विस्मयकारक कीर्तिका गुण गान करते रहें । विलासिनी स्त्रियोंके उठने, बैठने, चलने तथा हर्ष, भ्रकुटिसंचालन और कटाक्षादि विलासशोभी तथा नृत्य सहित सुंदर बाजों की मधुरध्वनि, कांची और किंकणियों की, गंभीर झनकार और सारसादि क्रीडा पक्षियों की गुंजार से अनुनादित पानभूमि होनी चाहिये । मणि और सुवर्ण से खचित पानपात्र तथा अनेक रंग के छहरियादार रेशमी वस्त्रों को धारण किये हुए शीतल जलसिक्त मुनिजनों के मनको हरनेवाली भयत्रस्त हरिणकी तरह नेत्रों को इधर उधर फेंकती हुई स्त्रियां उस पानभूमि को शोभित कर रही हों । अनवस्थित स्वरूपको धारण करती हुई, स्तन और नितंबों के भार से अलसाती हुई, ईश्वर के भयसे गमनमें आकुलमना तथा तरुणोंकेचित्त को वशीभूत करने में जादूका असर करने वाली । यौवन मदसे मत्त विलासवती तन्वंगी कामिनीगण इतस्ततः चलरही हों । तालवृंत और नलिनीदल अर्थात ताड के और कमलके शीतल पंखों से अति शीतल कियाहुआ मद्य देखने मात्रही से काम के वशीभूत करनेवाला फिर पीनेवाले के चित्त का तो कहना ही क्या है । आमके रसादि द्वारा सुगंधीकृत, विकासित मल्लिकाके फूलों से युक्त स्फटिक और सीपी के पात्रों में भराहुआ, तरंगों से युक्त, अनंगके सदृश रमणीक रूपको धारण करनेवाला मद्य को सन्मुख रखलिया जाय । मद्यपान से पहिले तालीसपत्रादि चूर्ण, अथवा एलादि चूर्ण अथवा रसायनोक्त वयःस्थापन चूर्णको खाकर, स्वच्छ की हुई भूमि में मद्यपान का अधिकारी देव दानव कूष्मांडादि के निमित्त जलमिश्रित मद्य अर्पण करके स्वयं बुद्धिमान् स्मृतिमान्, न्यूनता और अधिकतासे रहित उचित उपचारों से युक्त संपूर्ण उपादानों को एकत्रित करे । फिर खिलेहुए श्वेत कमलों को तिरस्कार करनेवाले नेत्रों के संचारसे बढीहुई शोभावाले, कांता के मुखके सदृश सौरभयुक्त और सौरभसे हृत भ्रमणगणों से युक्त मद्यका पानकरे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मद्यपान के पीछे का कर्म।

पत्नीवैद्यचषकद्वयं परिजनं सन्मान्य सर्वं ततो
गत्वा हारभुवं पुरः सुभिषजो भुंजीत-
भूयोऽत्र च।
मांसापूपघृतार्द्रकादिहरितैर्युक्तं ससौवर्चलै-
र्द्वित्रिर्वा निशि वाल्पमेव वनिता-
संचालनार्थं पिबेत्॥ ८७॥

अर्थ–उक्तरीति से दो प्याले मद्य के पीकर संपूर्ण परिजनों का सन्मान करके भोजनालय में जाकर वैद्यके सन्मुख मांस, मालपुआ, घृत, अदरख आदि के साथ आहार करता हुआ संचल नमक के साथ दो तीन प्याले पान करे और रात्रिमें कामिनी गणों को प्रसन्न करने के निमित्त थोडा मद्यपान करे।

मद्यकी प्रशंसा।

रहसि दयितामंके कृत्वा भुजांतरपीडना-
त्पुलकिततनुं जातस्वेदां सकंपपयोधराम्।
यदि सरभसं सीधूद्गारं न पाययते कृती
किमनुभवति क्लेशप्रायं ततो ग्रहतंत्रताम्॥

अर्थ–प्रवीण मनुष्य एकान्त स्थानमें दोनों भुजाओं से पीडित की हुई पुलकित शरीरवाली, पसीनों के युक्त, कंपित कुचों वाली स्त्रीको गोदमें बैठाकर एक चषक मद्य भी पान नहीं करताहै तो गृहस्थरूप इस भारी बोझके क्लेश को सहनेसे क्या लाभहै!

मद्यपानके पीछे शयन।

वरतनुवक्त्रसंगतिसुगंधितरं सरकम्
हृतमिव पद्मरागमणिमासवरूपधरम्।
भवति रतिश्रमेण च मदः पिबतोऽल्पमपि-
क्षयमतनुमोजसः परिहरन् स शयीत परम्।

अर्थ–अपनी प्राणप्यारी के सुंदर शरीर और मुखके स्पर्श से अधिकतर सुगंधिवाला और आसवरूपधारी द्रवीभूत पद्मराग मणि के सदृश मद्यको पीकर सोजाना चाहिये और रतिक्रिया के पश्चात् फिर मद्यपान करना उचित नहींहै क्योंकि रतिके परिश्रमसे थोडा मद्य पीनेपर भी नशा आजाताहै। यह मद्य ओजःपदार्थ के क्षयका हेतुहै, इस लिये ओजको क्षय करनेवाला मद्य न पीकर कामज क्षयको दूर करने के निमित्त सो जाना चाहिये।

मद्यपान की देवस्पृहणीयता।

इत्थम् युक्तया पिबेन्मद्यं न त्रिवर्गाद्विहीयते।
असारसंसारसुखं परमेवाधिगच्छति॥ ८०॥
ऐश्वर्यस्योपभोगोऽयं स्पृहणीयः सुरैरपि।

अर्थ–उक्त रीतिसे जो मनुष्ययुक्तिपूर्वक मद्यपान करताहै वह धर्म, अर्थ, और कामरूप त्रिवर्ग से हीन नहीं होताहै और इस असार संसार के परम सुखको प्राप्त होजाताहै। ऐसा मद्यपान देवताओं द्वारा स्पृहणीय और ऐश्वर्य का उपयोगहै॥

व्यवस्थापूर्वक मद्यपान।

अन्यथा हि विपत्सु स्यात्पश्चात्तापैधनं-
धनम्॥ ९७॥
उपभोगेन रहितो भोगवानिति निंद्यते।
निर्मितोऽतिकदर्योऽयं विधिना निधिपालकः
तस्माद्व्यवस्थया पानं पानस्य सततं हितम्।
जित्वा विषयलुब्धानामिंद्रियाणां स्वतंत्रताम्

अर्थ धन के होते जो मनुष्य मद्यका उपभोग नहीं करताहै तो विपतकालके उपस्थित होनेपर उस धनका अनुताप उसे ईंधन की तरह जलाताहै मद्यके सिवाय अन्य भोगों को भोगनेवाला व्यक्ति निंदाका आस्पद होताहै उसको तो ब्रह्माने केवल धनकी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्षाके लिये ही रचाहै। इसलिये विषयलोलुप इंद्रियों की स्वाधीनता को जीतकर व्यवस्थापूर्वक मद्यपान करना हितहै।

धनी लोगों की विधि।

विधिर्वसुमतामेष भविष्यद्वसवस्तु ये।
यथोपपत्तितैर्मद्यं पातव्यं मात्रया हितं।

अर्थ–धनवान् मनुष्योंके लिये मद्यपान की यही विधिहै। परंतु जो लोग धनी होना चाहते हैं वे भी अपने उपार्जित धनमें से युक्तिपूर्वक और मात्रापूर्वक पान करना उचित है।

मद्यपान से विरति।

यावत्तद्दृष्टेर्न संभ्रांतिर्यावच्च क्षोभते मनः।
तावदेव विरंतव्यं मद्यादात्मवता सदा ९५॥

अर्थ–दृष्टिमें भ्रान्ति और मनमें व्याकुलता होनेसे पहिलेही बुद्धिमान को उचित है कि मद्य पीना छोडदे।

वाताधिक्य में मद्यपान।

अभ्यंगोद्वर्तनस्नानवासधूपानुलेपनैः।
स्निग्धोष्णैर्भावितश्चान्नैः पानं वातोत्तरः पिबेत्॥ ९६॥

अर्थ–वातकी अधिकता वाले मनुष्यको उचित है कि अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान, सुंदर वस्त्रोंका धारण करना, धूपग्रहण, चंदनादि लेपन तथा स्निग्धोष्ण भोजन द्वारा मद्यपान करै।

पित्ताधिक्य में मद्यपान।

शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरास्निग्धशीतलैः।
पैत्तिको भावितश्चान्नैः पिबेन्मद्यं न सीदति

अर्थ–पित्तकी अधिकता वाले मनुष्य के चन्दनादि अनुलेपन प्रभृति शीतलक्रिया तथा मधुर स्निग्ध और शीतवीर्य अन्न भोजन द्वारा परितृप्त होनेपर मद्यपान करनेसे देह में शिथिलता नहीं होती है।

कफाधिक्य में मद्यपान।

उपचारैरुशिरैर्यवगोधूमभुक् पिबेत्।
श्लेष्मिको जांगलैर्मांसैर्मद्यं मरिचकैः सह॥

अर्थ–कफकी अधिकता वाला मनुष्य गरम उपचारों को करता हुआ कालीमिरच से संस्कृत जांगल मांसके साथ मद्यपान करै तथा गेंहू और जौकी रोटी खाय।

वातादि में मद्यविधि।

तत्र वाते हितं मद्यं प्रायः पैष्टिकगौडिकम्
पित्ते सांभो मधु कफे माद्वीकारिष्टमाधवम्

अर्थ–वातकी अधिकतामें प्रायः पैष्टिक और गौडिक मद्य, पित्तकी अधिकतामें जल और मधुमिश्रित मद्य तथा कफकी अधिकता में माद्वीक, अरिष्ट और माधव मद्यको पानकरे

मद्यपानका काल।

प्राक् पिबेत्श्लैष्मिको मद्यं भुक्तस्योपरि पैत्तिकः
वातिकस्तु पिबेन्मध्ये समदोषो यथेच्छया॥

अर्थ–कफाधिक्य वाला भोजन करनेसे पहिले, पित्ताधिक्य वाला भोजन करने के पीछे, वाताधिक्य वाला भोजन के बीचमें और समदोष वाला इच्छानुसार जब चाहै तब मद्यपान करै।

मदमें वातपित्तनाशनी चिकित्सा।

"मदेषु वातपित्तघ्नं प्रायो मूर्छासु चेष्यते।
सर्वत्राऽपि विशेषेण पित्तमेवोपलक्षयेत्॥

अर्थ-मद और मूर्छारोग में वातपित्त नाशक चिकित्सा करे, परंतु मद वा मूर्छा सब जगह में पित्तपर दृष्टि रखनी चाहिये।

उक्तरोगों में उपचार।

शीताः प्रदेहा मणयः सेकाभ्यंजनमारुताः।
सिताद्राक्षेक्षुखर्जूरकाश्मर्यः स्वरसाः पयः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धं मधुरवर्गेण रसा यूषाः सदाडिमाः।
षष्टिकाः शालयो रक्ता यवाः सर्पिश्च जीवनम्
कल्याणकं महातिक्तं षट्पलं पयसान्वितम्।
पिप्पल्यो वा शिलाह्वं वा रसायनविधानतः
त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा।

अर्थ–शीतल प्रलेप, मणिधारण, शीतल परिषेक, शीतल पंखोंकी हवा, खांड, दाख, ईख, खिजूर, खंभारी फल, तथा मधुर वर्गोक्त द्रव्योंकेसाथ सिद्ध कियाहुआ दूध, और मांसरस, अनारदाने की खटाईसे युक्त मुद्गादि यूष, शाली और साठी चांवलों का भात जौ, उन्मादचिकित्सितोक्त कल्याणक घृत, कुष्ठचिकित्सितोक्त, महातिक्तघृत, राजक्ष्मचिकित्सितोक्त, षट्पलघृत, दूधके साथ चीता, रसायन विधिके अनुसार पीपल और शिलाजीत, तथा घृत, मधु और खांड के साथ त्रिफला ये सब मदरोग में हितकारी हैं

प्रसक्तवेग में कर्तव्य।

प्रसक्तवेगेषु हितं मुखनासावरोधनम्॥
पिबेद्वा मानुषीक्षीरं तेन दद्याच्च नावनम्।
मृणालबिसकृष्णा वा लिह्यात्क्षौद्रेण सात्म्यया
दुरालभां वा मुस्तां वा शीतेन सलिलेन वा।
पिबेन्मरिचकोलास्थिमज्जोशीराहिकेसरम्॥
धात्रीफलरसे सिद्धं पथ्याक्वाथेन वा घृतम्।

अर्थ–मदादि रोगोंमें मदका वेग निरंतर होनेपर हाथोंसे रोगीके मुख और नाक रोक देने चाहिये। अथवा स्त्रीका दूध पीवै और स्त्रीके दूधकी ही नस्य देवै। अथवा कमलनाल, पीपल और हरडको शहतके साथ चाटै, अथवा दुरालभा वा मोथा शहतके संग चाटै, अथवा कालीमिरच, बेरकी गुठली की मिंगी, खस और केसर जलमें घोटकर पान करावै। अथवा आमले वा हरड के काढेमें घृत पकाकर सेवन करे।

दोषबलानुसार क्रिया।

कुर्यात्क्रियां यथोक्तां च यथादोषबलोदयम्॥

अर्थ–उक्त रोगमें दोष और बलके अनुसार यथोक्त क्रिया करना चाहिये।

मदादि में नस्यादि।

पंचकर्माणि चेष्टानि सेचनं शोणितस्य च।
सत्त्वस्यालंबनं ज्ञानमगृद्धिर्विषयेषु च॥

अर्थ–मदात्यय रोगोंमें पंचकर्म (वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और नस्य) रक्तमोक्षण (फस्द खोलना), सत्वावलंबीज्ञान, और विषयोंमें अनभिलाषता ये सब करने चाहिये।

सन्यासोक्त क्रिया।

मदेष्वतिप्रबुद्धेषु मूर्छायेषु च योजयेत्।
तीक्ष्णं संन्यासविहितं विषघ्नं विषजेषु च॥

अर्थ–मद और मूर्छा रोगोंके अति प्रबल होने पर संन्यासचिकित्सा में कहीहुई तीक्ष्ण नस्यका प्रयोग करे। विषज मदरोग में विषनाशनी क्रिया करनी चाहिये।

सन्यास चिकित्सा।

आशु प्रयोज्यं संन्यासे सुतीक्ष्णं नस्यमंजनम्
धूमप्रधमनं तोदः सूचीभिश्च नखांतरे॥
केशानां लुंचनं दाहो दंशो दशनवृश्चिकैः।
कटुवम्लगालनं वक्त्रे कपिकच्छूवचूर्णनम्।
उत्थितो लघुसंज्ञश्च लशुनस्यरसं पिबेत्।
खादेत्सव्योषलवणं बीजपूरककेसरम्॥
लघ्वन्नप्रतितीक्ष्णोष्णमद्यात्स्रोतोविशुद्धये।

अर्थ–संन्यास रोगमें तीक्ष्ण नस्य और तीक्ष्ण अंजनका शीघ्र प्रयोग करना चाहिये नाक में धूआं देना, नखोंके बीचमें सुई छेदना, केशोंका खींचना, दाह, बीछुओं से क-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

टवाना, कटु और अम्लरस का प्रयोग, देह में कैंचकी फली रिगडना, इन सब कामोंका करे। जब इन क्रियाओंसे रोगी बैठा होजाय और चेत करले तब उसे लहसन का रस पान कराना चाहिये। बिजौरे की केसर में त्रिकुटा और नमक मिलाकर खानेको दे और स्रोतोंकी विशुद्धिके निमित्त तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य अन्न खाने को दे।

अन्य उपाय

विस्मापनैः संस्मरणैः प्रियश्रवणदर्शनैः ॥
पटुभिर्गीतवाद्यशब्दैर्व्यायामशीलनैः ।
स्नसनोल्लेखनैर्धूमैः शोणितस्यावसेचनैः ॥
उपाचरेत्तं प्रततमनुबंधभयात्पुनः।
तस्य संरक्षितव्यं च मनः प्रलयहेतुतः" ॥

अर्थ–विस्मयोत्पादककर्म, प्रिय वस्तु का दर्शन, श्रवण और स्मरण, मनोहर गीत और बाजोंकी ध्वनि, व्यायाम का अभ्यास, वमन, विरेचन, धूमपान, रक्तमोक्षण, इन कर्मोंद्वारा मदात्यय रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये जिस से रोगोंकी पुनर्वार उत्पत्ति न हो, और प्रलयके हेतु मदात्ययसे रोगीके मनकी रक्षा करनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने मदात्ययाचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

अथाऽतोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां से अर्श चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अर्श में यंत्र प्रयोग ।

" काले साधारणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम्
विशुद्धकोष्ठं लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम् १ ॥
शुचिं कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविण्मूत्रमव्यथम् ।
शयने फलके वान्यनरोत्संगे व्यपाश्रितम् २
पूर्वेण कायेनोत्तानम् प्रत्यादित्यगुदम् समम्
समुन्नतकटीदेशमथ यंत्रणवाससा ॥ ३ ॥
सक्थ्नोः शिरोधरायां च-
परिक्षिप्तमृजुस्थितम् ।
आलंबितं परिचरैः सर्पिषाभ्यक्तपायवे ४ ॥
ततोऽस्मै सर्पिषाभ्यक्तं निदध्याद्ऋजुयंत्रकम्;
शनैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात् ॥
यंत्रे प्रविष्टम् दुर्नामश्लोतगुंठितयाऽनु च ।
शलाकयोत्पीडय भिषक् य थोक्तविधिना-
दहेत् ॥ ६ ॥
क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षारेण ज्वलनेन वा ।
महद्वा बलिनश्छित्वा धीतयंत्रमथानुरम् ॥
स्नेह्यक्तपायुजघनमवगाहे निधापयेत् ।
निर्वातमंदिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत्
एकैकमिति सप्ताहात्सप्ता हात्समुपाचरेत्।

अर्थ–साधारण काल में अर्थात् शरत और वसंत ऋतु में जिस दिन आकाश मेघाच्छन्न नहो, उस दिन ऐसा रोगी जो बहुत दुर्बल न हो और वमन विरेचन द्वारा जिसका कोष्ठ शुद्ध हो गया हो, और वात के अनुलोमन करनेवाले अन्न का भोजन किया हो, तथा जल और मृत्तिका द्वारा शुद्ध हो, तथा स्वस्त्ययन किया गया हो, जो मल और मूत्रका परित्याग कर चुका हो, पीडा से रहित हो, ऐसे अर्शरोगी को शय्या पर, वा तख्त पर अथवा किसी मनुष्य की गोदी में ऐसी रीति से बैठा देवै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कि ऊपर का शरीर कुछ उठा हुआ हो और गुदा का द्वार सूर्य के प्रकाश में हो और कमर का भाग ऊंचा हो, फिर एक पट्टी से पांव और ग्रीवा को बांधकर रोगी को सीधा करदे और सेवक से पकडवालेवे। फिर रोगी की गुदा पर घी चुपड दे, तदनंतर घी से चुपडा हुआ अर्शोयंत्र धीरे धीरे सीधा करके उसकी गुदा में लगा देवै। पीछे प्रवाहण यंत्र से देखकर यंत्र में प्रविष्ट बवासीर को कपडे से लिपटी हुई सलाई द्वारा यथोक्त रीति से क्षार लगाकर जलादे। तथा सूखी अर्श को क्षार वा अग्नि से जलावै। यदि रोगी बलवान और मस्से बडे हों तो अस्त्र से काट कर क्षार वा अग्नि से दग्ध करदे, फिर उसके बंधनको खोलकर गुदा और जांघ को धोकर स्नेह चुपडदे और रोगी को ऐसे स्थान में लेजावे जहां वायुका प्रवेश न हो फिर उष्णोदकाचारका व्यवहार करावै। इस रीति से सात सात दिन का अंतर देकर एक एक मांसांकुर का छेदनकरे, सबको एक साथ न काटे।

बहुवर्श में कर्तव्य।

प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शसृष्ठाग्रजं ततः ९॥ बहुवर्शसः

अर्थ—जिस रोगी के बहुत से मस्से हों उसके प्रथम दाहिनी ओर के, पीछे बांई ओर के मस्सों की तदनंतर पीठ के अग्रभागवाले मस्सों की चिकित्सा करे।

सुदग्धअर्श के लक्षण।

सुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता। रुचिरग्नेऽभिपदुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः १०

अर्थ- मस्सों के अच्छी तरह दग्ध होने पर वायुकी अनुलोमता, अन्न में रुचि, जठराग्नि की प्रखरता, स्वास्थ्य, वर्ण और बलका उदय होता है।

वास्तिशूल में कर्तव्य।

बस्तिशूले त्वधोनाभेर्लेपयेत्श्लक्ष्णकल्कितैः वर्षाभूकुष्ठसुरभिर्मिंशिलोहामरादवयैः ११॥

अर्थ—अर्शरोग में यदि वस्ति के स्थान में वेदना होती हो तो सांठ, कूठ, राल, सौंफ, और अगर देवदारु इन सब द्रव्यों को महीन पीसकर नाभि के नीचे लेप करे।

विष्टा और मूत्रके प्रतीघातमें चिकित्सा।

शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः। वरणालंबुपैरण्डगोकंटकपुनर्नवैः॥ १२॥ सुपक्वीसुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत्। सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम् १३ युंजीतान्नंशकृद्भेदि स्नेहान्वातघ्नदीपानान्।

अर्थ—अर्शरोगमें मल और मूत्रकी विबद्धता होनेपर बरना, गोरखमुंडी, अरंडकी जड, गोखरू, सांठ, कालाजीरा, रास्ना इन के गरम काथमें तेल मिलाकर परिषेक और अवगाहन में काममें लावे। अथवा वातनाशक औषधों से सिद्ध किया हुआ दूध अथवा बलातेल, परिषेक और अवगाहन में काम में लावे। मलकी विबद्धता को दूर करने वाला अन्न तथा वातनाशक और अग्निसंदीपन घी वा तेलका प्रयोग करे।

दाहयोग्य गुदकीलक में कर्तव्य।

अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान्कफवातजान् संस्तंभकण्डूरुक्शोफानभ्यज्य गुदकीलकान् विल्वमूलाग्निकक्षारकुष्ठै सिद्धेन सेचयेत्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तैलेनाहिबिडालोष्ट्रवराहवसयाथवा।
स्वेदयेदनुपिंडेन द्रवस्वेदेन वा पुनः।
सक्तुना पिंडिकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा
रास्नाया हपुषाया वा पिंडैर्वा कार्ष्ण्यगंधिकैः

अर्थ-दाहकर्मके अयोग्य, बाहर की ओर निकले हुए, कफवातसे उत्पन्न, स्तब्धता, खुजली, वेदना, सूजन इनसे युक्त गुदकीलकों को विल्वमूल, चीता, जवाखार और कूठ इनसे सिद्ध किये हुए तैल द्वारा अभ्यक्त करके सेचन करे। अथवा सर्प, बिल्ली, ऊंट, शूकर इनकी चर्बी से उन सब मस्सों को सेचित करै तदनन्तर पिंडस्वेद वा द्रवस्वेद से स्वेदन करे, अथवा घृत और तेलद्वारा स्निग्ध सत्तूके गोले बनाकर स्वेदित करे, अथवा रास्ना, वा हाऊबेर अथवा सहजने के गोले बनाकर इनसे स्वेदित करे।

अर्शमें धूपनविधि।

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम्।
मार्जारचर्मसर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम् १८॥
तथाश्वगन्धा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम्।

अर्थ-आक की जड, शमीपत्र, मनुष्य के बाल, सर्पकी काचली, बिल्ली का चर्म, और घी इनकी धूनी देना मस्सों को हितकारी है। अथवा असगंध, तुलसी, कटेरी, पीपल और घी इनकी अलग अलग धूनी देना भी हितकारी है। सबको मिलाकर देना बहुतही उपकारी है।

अर्शमें बत्ती।

धान्याम्लपिष्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकं मृदु॥
लेपितं छायया शुष्कम् वर्तिर्गुदजशातनी।

अर्थ-जीमूत के बीज और जीमूत के फलका जालभाग इनको कांजी में पीसकर हलका लेप करके छाया में सुखाले इनकी बत्ती बनाकर गुदा में लगादे इससे मस्से शिथिल पड जाते हैं।

अन्य बत्ती।

सजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते॥ २०॥
गुंजासूरणकूष्मांडबीजैर्वर्तिस्तथागुणा।

अर्थ-जीमूत के बीज और उसके फल के जाल को पीसकर उसमें क्षार मिलादे फिर इसमें चिरमिठी, जमीकंद, और कुम्हडा के बीज पीसकर मिलादे। इनकी वत्ती बनाकर गुदा में लगाने से पूर्ववत गुणकारक होती है।

अर्श पर लेप।

स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकालिकैः
कुक्कुटकुशकृत्कृष्णानिशागुंजाफलस्तथा।

अर्थ-थूहर के दूध में मिली हुई हल्दी का लेप करना हित है, अथवा मुर्गे की बीट, पीपल, हल्दी, और चिरमिठी इनको गोमूत्रमें पीसकर इनका लेप करने से मस्से शांत होजाते हैं।

अन्य लेप।

स्नुक्क्षीरपिष्टैः
षड्ग्रंथाहलिनीवारणास्थिभिः॥ २२॥
कुलीरशृंगीविजयाकुष्ठारुष्करतुत्थकैः।
शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिंबजैः॥
पीलुमूलेन बिल्वेन हिंगुना च समन्वितैः।

अर्थ-बच, कलहारी, हाथी की हड्डी, काकडासींगी, भांग, कूठ, भिलावेकी गुठली, नीलाथोथा, सहजने के बीज, मूली के बीज, कनेर के पत्ते, नीमके पत्ते, पीलुकी जड, बेलगिरी और हींग इनका लेप करने से मस्से शांत होजाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य लेप।

कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैंधवं गुडः॥
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम्।

अर्थ–कूठ, सिरसके बीज, पीपल, सेंधा नमक, गुड, आकका दूध, थूहर का दूध, और त्रिफला इन सबका लेपभी अर्श में हितकारी है।

अन्य लेप।

अर्के पयः स्नुहीकांडं कटुकालांबुपल्लवा॥
करंजो वस्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम्।

अर्थ–आकका दूध, थूहरका पत्ता, कुटकी, तूंबी के पत्ते, और कंजा इन सब औषधों को बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करना अर्श में हितकारी हैं।

अनुवासिनिक लेप।

आनुवासनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः

अर्थ–अनुवासन के योग्य द्रव्यों से अथवा पीपल आदि द्रव्यों द्वारा लेप करना अर्श में हितकारी है।

अभ्यंजनादि।

एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलान्यभ्यंजनानि च।

अर्थ–ऊपर जो द्रव्य लेपके लिये कहे गये हैं उनके द्वारा ही तेल अभ्यंजन सिद्ध करके अर्शरोग में काममें लाने चाहियें।

धूपनादिसेविगडे रुधिरका निकालना।

धूपनालेपनाभ्यंगैः प्रस्रवंति गुदांकुराः॥
संचितं दुष्टरुधिरं ततः संपद्यते सुखी।

अर्थ–धूप, आलेपन और तैलादि के लगाने से मस्सोंमें जो विगडा हुआ रुधिर इकठा होजाता है वह सब निकलने लगता है। इससे रोगीको सुख प्राप्त होता है।

मस्सोंसे रुधिर निकालना।

अवर्तमानमुच्छ्रूनकठिनेभ्यो हरेदसृक्॥
अर्शोभ्यो जलजाशस्त्रसूबीकूर्चैः पुनः पुनः।

अर्थ–जो मस्से फूले हुए और कठोर होते हैं, तथा जिनसे रुधिर नहीं निकलता है उनसे जोक, शस्त्र, सुई वा कूर्च यंत्र द्वारा वार वार रक्त निकालना चाहिये।

रक्तनिकालने का कारण।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरुपशाम्यति
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेच्चयेत्।

अर्थ–रुधिरके दूषित होनेपर जब शीतल, उष्ण, स्निग्ध वा रूक्ष कोई क्रिया काम नहीं देती है तब रुधिर निकालना ही हितकारी है।

अर्शमें गोरसपानादि।

यो जातो गोरसः

क्षीराद्बृन्हिचूर्णावचूर्णितात् ३०
पिबेत्तमेव तेनैव भुंजानो गुदजान् जयेत्।

अर्थ–गौके दूधका दही वा तक्र बनाकर उसमें चीता मिलाकर पीनेसे अथवा उसी गोरस के साथ भोजन करने से गुदा के मस्से प्रशमित होजाते हैं। किसी २ पुस्तक में 'बहुमूलावचूर्णितात्' पाठभी है, बहुमूला का अर्थ सितावर है।

अन्यपानादि।

कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत्॥
अश्नन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनामभिः।

अर्थ–कचनार का चूर्ण मिलाकर मथे हुए जलरहित तक्र को पीवे फिर पथ्य अन्न का सेवन करे, इससे अर्श नष्ट होजाताहै।

अन्य उपाय।

गुदभ्रंशयधुशूलार्तो मन्दाग्निर्गौल्मिकान्-
पिबेत्॥ ३१॥
हिंग्वादीननुतक्रां वा खादेद्गुडहरीतकीम्।
तक्रेण वा पिबेत्पथ्यावेल्लाभिरुटजत्वचः ३२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालिंगमगधाज्योतिः सूरणान्वांशवार्धितान् कोष्णांबुना वा त्रिपटुव्योषहिंग्वाम्लवेतसम्

अर्थ–अर्शरोग में यदि गुदा में सूजन हो, और शूल छिदने की सी वेदना होती हो और जठराग्नि मंद पडगई हो तो गुल्म चिकित्सा में कहे हुए हिंग्वादि चूर्ण का पान करे। अथवा गुड मिलाकर बडी हरड का चूर्ण, अथवा हरड, बायविडंग, चीता और कुंडी की छाल का चूर्ण, अथवा इन्द्र जौ, पीपल, चीता और जमीकंद उत्तरोत्तर एक एक भाग बढाकर तक्र के साथ पान करे अथवा तीनों नमक (विड, सैंधानमक और संचलनमक) त्रिकुटा, हींग और अम्लवेत का चूर्ण; इसको गरम पानी के साथ पीवै।

अर्श में यवशक्तू।

युक्तं बिल्वकपित्थाभ्यां गुडौषधविडेन वा। अरुष्करैर्यवान्यावा प्रदद्यात्तक्रतर्पणम् ३५ दद्याद्वा हपुषा हिंगु चित्रकं तक्रसंयुतम्। मासं तक्रानुपानानि खादेत्पीलुफलानि वा। पिबेदहरहस्तक्रम् निरन्नो वा प्रकामतः।

अर्थ–बेलगिरी और कैथ मिलाकर अथवा सोंठ और विडनमक मिलाकर अथवा भिलावे और अजवायन के साथ तक्र तर्पण (तक्र के साथ जौ का सत्तू) अर्शरोग में पान करावे अथवा हाऊबेर, हींग और चीता तक्र के साथ पान करावै, अथवा तक्र के साथ एक महिने तक पीलु के फलों का सेवन करे, अथवा अन्न न खाकर प्रतिदिन यथेष्ट तक्रपान करे तो भी अर्शरोग शांत होजाता है।

तक्र की उपयोगिता।

अत्यर्थं मन्दाकायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत्॥

अर्थ–जब अर्शरोगी की जठराग्नि अत्यन्त मंद पडगई हो तब केवल तक्र पान ही कराना चाहिये, अन्न खाने को न देवै।

तक्रके प्रयोग का काल।

सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा। बलकालविकारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत्॥ सायं वा लाजसक्तूनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम्। जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेयां ससैंधवाम्॥ तक्रानुपानम् सस्नेहं तक्रौदनमतः परं॥ यूषै रसैर्वा तक्राढ्यैः शालीन् भुंजीत मात्रया

अर्थ–सात दिन, दस दिन, पन्द्रह दिन वा महीने भर तक्र बल, काल और रोग की अवस्था पर विचार करके तक्र का पान करावै। जो रोगी केवल तक्र से निर्वाह न कर सकता हो, तो सायंकाल के समय धानकी खीलों के सत्तू में तक्र मिला कर देना चाहिये। अथवा तक्र के पच जाने पर तक्र के साथ सिद्ध की हुई पेया में सैंधा नमक डालकर पान कराना चाहिये। ऊपर से तक्र का अनुपान करे, तदनंतर थोडा घृत डालकर तक्र के साथ चांवलों का भात देना उचित है, अथवा मूंग आदि के यूष वा मांस रसके साथ यथामात्रा शाली चांवलों के भात में बहुतसा तक्र डालकर खानेको दे।

तक्रका त्रिविध प्रयोग।

रूक्षमर्धोधृतस्नेहम् यतश्चानुधृतं घृतम्। तक्रं दोषाग्निबलतस्त्रिविधम् तत्प्रयोजयेत्॥

अर्थ–वैद्यको उचित है कि रोगी के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोष का प्रकोप, जठराग्नि और बलका विचार करके अर्शरोग में रूक्ष तक्र (जिससे निशेष नवनीत निकाल लिया हो) कभी अर्द्धोधृत स्नेहतक्र (जिसमें से नवनीत का आधा भाग निकाल लिया हो) कभी अनुधृत स्नेहतक्र (जिसमें से नवनीत निकालाही न गया हो) इन तीन प्रकार से तक्रका प्रयोग करना उचित है।

तक्र प्रयोग के गुण।

न विरोहंति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः।
निष्किं तद्धि दहति भूमावपि तृणोलुपम्॥

अर्थ–तक्रके पीने से जो गुदांकुर अर्थात् मस्से नष्ट हो जाते हैं वे फिर पैदा नहीं होते हैं। जो तक्र पृथ्वी में सेचन किये जाने पर कठोर तिनुकों को जला देता है, तो फिर कोमल मांसांकुरों के जला देने में तो कोई संशय ही नहीं है।

तक्र के पीछे अन्नादि सेवन।

स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसो धातूनुपैति यः।
तेन पुष्टिर्बलम् वर्णः परं तुष्टिश्च जायते॥
वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तते॥

अर्थ–जब वातकफ से आवृत संपूर्ण स्रोत तक्रपान द्वारा विशुद्ध होजाते हैं तब आहार का रस धातुओं में पहुंचकर पुष्टि, बल, वर्ण और अत्यंत तुष्टि उत्पन्न करता है तथा वातकफ से उत्पन्न हुए सैकडों विकारों को नष्ट कर देता है।

तक्रविशेष का सेवन।

मथितं भाजने क्षुद्रवृहतीफललेपिते ४४॥
निशां पर्युषितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम्।

अर्थ–छोटी कटेरी को घोटकर किसी मिट्टी के पात्र के भीतर लेप करके उसमें तक्र भर कर रात्रिभर रहनेदे, फिर इसे दूसरे दिन पीवे तो गुदांकुर नष्ट होजाते हैं।

तक्रके अरिष्ट का पान।

धान्योपकुंचिकाजाजीहपुषापिप्पलीद्वयैः४५
कारवीग्रंथिकशुंठीयवान्याग्नियवानकैः।
चूर्णितैर्घृतपात्रस्थं नात्यम्लं तक्रमाप्लुतम्॥
तक्रारिष्टं पिबेज्जातम् व्यक्ताम्लकटुकामतः।
दीपनम् रोचनम् वर्ण्यं कफवातानुलोमनम्
गुदश्वयथु कंडूवार्तिनाशनं बलवर्द्धनम्।

अर्थ–धनियां, कालाजीरा, जीरा, हाऊबेर, दोनों पीपल, सौंफ, पीपलामूल, कचूर, अजवायन, चीता, अजमोद इनको पीसकर एक घी के पात्र में रखदे ऊपर से इसमें खटाई रहित तक्र भरदे, जब इसमें अम्ल और कटुरस स्पष्ट मालूम होने लगें तब इस तक्रारिष्ट का यथेच्छ पानकरे। यह अग्निसंदीपन, रुचिवर्द्धक, वर्णकारक, कफवातानुलोमक, तथा गुदाकी सूजन, खुजली और अरति को दूर करके बलको बढाता है (इसमें तक्र १०० पल और उक्त औषध एक एक पल डाली जाती हैं)।

तक्रविशेषकी विधि।

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुंभं प्रलेपयेत्॥
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरम् पिबेत्।

अर्थ–चीते की जडकी छालको पानी में पीसकर एक घडेके भीतर उसका लेप करदे, उसमें तक्र वा दही भरदे, इस तक्र वा दहीके पान करनेसे अर्श नष्ट होजाता है।

अन्य विधि।

भार्ग्यपराजितामृतापंचकोलेष्वाप्येष संविधिः

अर्थ–भारंगी, अपराजिता, गिलोय, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता इनको उक्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रीतिसे घडेके भीतर लेपकरके तक्र वा दही भरदे । इनके सेवन से भी अर्श रोग नष्ट हो जाता है ।

जठराग्निसंदीपन स्नेहादि ।

पिप्पलीगजकणापाठाकारवीपंचकोलकैः ।
तुंबर्वजाजीधनिकाबिल्वमध्यैश्च कल्पयेत् ॥
फलाम्लान्यमकस्नेहान् पेयायूषरसादिकान्
एभिरेवौषधैः साध्यं वारि सर्पिश्च-
दीपनम् ॥ ५१ ॥
क्रमोऽयं भिन्नशकृतां वक्ष्यते गाढवर्चसाम् ।

अर्थ–गजपीपल, पाठा, कालाजीरा, पंचकोल, धनियां, जीरा, बडा धनियां, और बेलगिरी इनके कल्क के साथ घृत, तेल, पेया, यूष रसादि को सिद्ध करके बिजौरे की खटाई डालकर पान करे अथवा उक्त औषधियों द्वारा सिद्ध किया हुआ जल और घी जठराग्निको बढानेवाले हैं ।

अब तकजो चिकित्सा कही गई है वह उन रोगियों के लिये है जिनका मल पतला होता है । अब उनकी चिकित्सा कहेंगे जिनका मल गाढा होता है ।

गाढपुरीषकी चिकित्सा ।

स्नेहाद्यैः सक्तुभिर्युक्तां लवणां वारुणीं पिबेत्
लवणा एव वा तक्रसीधुधान्याम्लवारुणीः ।

अर्थ–घृतादि बहुतसा स्नेह डालकर सत्तू के साथ लवणसंयुक्त वारुणी नामक मद अथवा केवल नमक डालकर तक्र, सीधु धान्याम्ल वा वारुणी का पान करे ।

अर्शपर कंजेके पत्ते ।

प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् सक्तुभिश्चावचूर्णितान्
कारंजपल्लवान् खादेद्वातवर्चोनुलोमनान् ।

अर्थ–कंजे के पत्तोंको घी और तेल में भूनकर सत्तूमें मिलाकर भोजन करने से पहिले सेवन करे, यह वायु और मल का अनुलोमन करनेवाला है ।

सगुड शुंठीपान ।

सगुडं नागरं पाठां गुडक्षारघृतानि वा ५४ ॥
गोमूत्राप्लुतामद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।

अर्थ–गुडके साथ सोंठ, अथवा पाठा का सेवन करे, अथवा गुड, जवाखार और घृत खाय, अथवा गोमूत्र में भीगी हुई हरडे को गुडके साथ सेवन करे तो अर्श रोग नष्ट हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

पथ्याशतद्वयं मूत्रद्रोणेनामूत्रजंक्षयात् ५५ ॥
पक्वान् खादेत्समधुना द्वे द्वे हन्ति कफोद्भवान्
दुर्नामकुष्ठश्वयथुगुल्ममेहोदरकृमीन् ५६ ॥
ग्रंथ्यर्बुदापचीस्थौल्यपांडुरोगाढ्यमारुतान् ।

अर्थ-दो सौ हरडको एक द्रोण गोमूत्र में पकावै, जब सब गोमूत्र जल जाय तब उतार कर दोदो हरड मधुके साथ सेवनकरने से कफजनित अर्श, कुष्ट, सूजन, गुल्मरोग प्रमेह, उदररोग, कृमि, ग्रंथि, अर्बुद, अपची, स्थूलता, पांडुरोग,और आढ्यवात नष्ट हो जाते हैं ।

अन्य औषध ।

अजशृंगीजटाकल्कमजामूत्रेण यः पिबेत् ॥
गुडवार्ताकभुक्तस्य नश्यंत्याशु गुदांकुराः ।

अर्थ–मेढासिंगी की जडको पीसकर जो बकरी के मूत्रके संग पान करता है तथा गुड और बेंगन खाता है उसके मस्से नष्ट होजाते है ।

अन्य उपाय ।

श्रेष्ठारसेन त्रिवृतां पथ्यां तक्रेण वा सह ५९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां गुडान्विताम्
अथवा सत्रिवृदंती भक्षयेदनुलोमनीम् ५८॥
हते गुदाश्रये दोषे गुदजा यांति संक्षयम्।

अर्थ–त्रिफलाके काढेके साथ निसोथ अथवा तक्रके साथ हरड, अथवा हरड और पीपलको घीमें भूनकर गुडके साथ अथवा दंती और निसोथके साथ हरडको विरेचन के योग्य बनाकर सेवन करे। इससे गुदाश्रित दोष क्षीण होकर मस्से नष्ट होजाते हैं।

अन्य उपाय।

दाडिमस्वरसाजाजीयवानीगुडनागरैः ६०॥
पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोनुलोमनम्।
सीधुं वा गौडमथवा सचित्रकमहौषधम् ॥
पिबेत्सुरां वा हपुषापाठासौवर्चलान्विताम्।

अर्थ–अनारका रस, जीरा, अजवायन, गुड, सोंठ, इनसे अथवा पाठासे युक्त तक्र अधोवायु और पुरीषका अनुलोमन करनेवाला है। अथवा सीधु वा गुडका मद्य चीता और सोंठ मिलाकर पीवै, अथवा हाऊबेर, पाठा और संचल नमक मिलाकर सुरापान करे।

बलवर्द्धक पान।

दशादिदशकैर्वृद्धाः पिप्पलीर्द्विपिचुं तिलान्
पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहुताशयोः।

अर्थ–वर्द्धमान पिप्पली के अनुसार प्रतिदिन दस दस पीपल अधिक करता हुआ चार तोले तिल के साथ सेवन करे, ऊपरसे दूध पीवे, इससे शरीरके बल और जठराग्नि की वृद्धि होती है। इसके सेवन का क्रम यह है कि पहिले दिन दस पीपल और चार तोले तिल, दूसरे दिन २० पीपल और चार तोले तिल तीसरे दिन तीस पीपल और चार तोले तिल इस तरह प्रतिदिन सेवन करे। कालका नियम इसलिये नहीं दिया गया है कि जब तक देह और अग्नि का बल पूर्णता को प्राप्त न हो तब तक पान करता रहे।

अन्य प्रयोग।

दुरुपर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा
एकैकेनाऽपि संयुक्ता पाठा हत्यर्शसां रुजम्

अर्थ–दुरालभा, बेल, अजवायन और सोंठ इनमें से एक एक के साथ पाठा का सेवन करनेसे अर्शकी वेदना जाती रहतीहै।

अभयारिष्ट।

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम्
प्रस्थं धात्र्या दसपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः
विशालांरोधमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम्
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले।
दत्त्वा प्रस्थं च धातक्या स्थापयेद् घृतभाजने
पक्षात्सशीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहंति च
गुदजग्रहणीपांडुकुष्ठोदरगरज्वरान्।
श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमीकृमीन्।

अर्थ–बडी हरडका वक्कल आधा प्रस्थ तथा आमला एक प्रस्थ, कैथ दस पल, तथा इन्द्रायण पांच पल, तथा लोध, कालीमिरच, पीपल, बायविडंग, एलुआ, प्रत्येक दो दो पल इन सब द्रव्योंको चार द्रोण पानीमें पकावै चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले फिर इसमें एक तुला गुड और आमलेका रस एक प्रस्थ डालकर घी के बर्तनमें भरदे। एक पक्ष पीछे इसका सेवन करना अग्निको बढाता है और मस्से, ग्रहणी, पांडुरोग, कुष्ठ, उदररोग, विषरोग, ज्वर, सूजन, प्लीहा, हृदयरोग, गुल्म, यक्ष्मा, वमन और कृमिरोगों को दूर करता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दन्त्यरिष्ट ।

जलद्रोणे पचेद्दंतीदशमूलत्रिफलाग्निकान् ।
पालिकान्पादशेषे तु क्षिपेद्गुडतुलां परम् ।
पूर्ववत्सर्वमस्य स्यादानुलोमितरस्त्वयम् ।

अर्थ–दंती, दशमूल, त्रिफला और चीता इनमें से हरएक को एक एक पल-लेकर एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब छानकर एक तुला गुड मिलादे । तदनंतर आमले का रस पूर्ववत् डालकर घृतके पात्र में पन्द्रह दिनतक रहने दे । यह अभयारिष्ट के समान गुणकारी है, तथा उससे भी अधिक बातानुलोभी होता है ।

दुरालभारिष्ट ।

पचेद्दुरालभाप्रस्थं द्रोणेऽपां प्रासृतैः सह ।
दंतीपाठाग्निविजयावासामलकनागरैः ॥
तस्मिन् सिताशतं दद्यात्पादस्थेऽन्यच्च पूर्ववत् ।
लिपेत्कुंभं तु फलिनीकृष्णाचव्याज्यमाक्षिकैः

अर्थ–दुरालभा एक प्रस्थ, तथा दंती, पाठा, चीता, विजया, अडूसा, आमला, सोंठ प्रत्येक दो दो पल, इन सबको एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले, फिर इसमें सौपलमिश्री मिलाकर फिर पकावे तथा अभयारिष्ट के समानही आमले का रस डालकर पन्द्रह दिन तक ऐसे कलश में रक्खे जिसके भीतर प्रियंगु, पीपल, चव्य, घी और शहत का लेप किया गया हो ।

भोजन से पहिले घृतादि ।

प्राग्भक्तमानुलोम्याय फलाम्लं वा पिबेद्घृतम्
चव्यचित्रकसिद्धं वा यवक्षारगुडान्वितम् ।
पिप्पलीमूलसिद्धं वा सगुडक्षारनागरम् ।

अर्थ–वायुके अनुलोमन के निमित्त भोजनकरने से पहिले बिजौरे आदि खट्टे फलों के साथ घृत पकाकर देवै । अथवा चव्य और चीते के साथ सिद्ध किया हुआ घृत अथवा जवाखार और गुड मिलाहुआ घी सेवन करे जथवा पीपलामूल के साथ सिद्ध किया हुआ घृत गुड, जवाखार और सोंठ मिलाकर सेवन करे ।

अन्य घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलधानकादाडिमैर्घृतम्
दध्ना च साधितं वातशकृन्मूत्रविबंधहृत् ।

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, धनियां और अनार के कल्क तथा दही के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत अधोवायु, विष्टा और मूत्रके विबंधको दूर करता है ।

पलाशादि घृत ।

पलाशक्षारतोयेन त्रिगुणेन पचेद्घृतम्
वत्सकादिप्रतीवापमर्शोघ्नं दीपनं परम् ।

अर्थ–तीनगुने ढाकके क्षारके जल में घी पकावे और इसमें वत्सकादि का प्रतीवापदे, यह अर्शनाशक और अत्यन्त अग्नि-संदीपन है ।

पंचकोलादि घृत ।

पंचकोलाभयाक्षीरयवानीविडसैंधवैः
सपाठाधान्यमरिचैः सबिल्वैर्दधिमद् घृतम्
साधयेत् तज्जयत्याशु गुदवंक्षणवेदनाम्
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।

अर्थ–पंचकोल, हरड, दूध, अजवायन विडनमक, सेंधानमक, पाठा, धनियां, काली मिरच, बेलगिरी, दूध और दही इनके साथ घृतको पकावै । यह घी गुदा और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेक्षण की वेदना, तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश मूत्रकृच्छ्र और गुदस्राव को दूर करताहै।

चांगेर्यादि घृत।

पाठाजमोदधनिकाश्वदंष्ट्रापंचकोलकैः
साबिल्वदधि चांगेरीस्वरसे च चतुर्गुणे।
हृत्याज्यं सिद्धमानाहं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकम्।
गुदभ्रंशार्तिगुदजग्रहणीगदमारुतान्।

अर्थ–पाठा, अजमोद, धनियां, गोखरू पंचकोल, और बेलागिरी इनको चौगुने दही और चौगुने चांगेरी के रसमें यथोक्तरीतिसे घृतका पाक करे। यह घृत आनाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, आर्ति, गुदांकुर ग्रहणी रोग तथा वातरोगों को नष्ट करदेताहै

मांसरसादि का प्रयोग।

शिक्षितित्तिरि लावानां रसानम्लान् सुसंस्कृतान्।
दक्षाणां बर्तकानां वा दद्याद्विडवातसंग्रहे।

अर्थ–मोर, तीतर, लवा, मुर्गा और बतक इनके मांसरस में अच्छीतरह खटाई डालकर सेवन करे तो विष्ठा और वातका विबंध दूर होजाताहै।

मंदाग्नि की चिकित्सा।

धान्यकाग्निविवृहतीपाठाम्लीकादिपल्लवान्।
अन्यच्च कफवातघ्नं शाकं चलघु भेदि च।
सहिंगु यमके भृष्टं सिद्धं दधिसरैः सह।
धनिकापंचकोलाभ्यांपिष्टाभ्यां दाडिमांबुना।
आर्द्रिकायाः किसलयैः शकलैरार्द्रकस्य च।
युक्तमंगारधूपेन हृद्येन सुरभीकृतम्।
सजीरकं समरिचं बिडसौवर्चलोत्कटम्॥
वातोत्तरस्य रूक्षस्य मंदाग्नेर्बद्धवर्चसः।
कल्पयेद्रक्तशाल्यन्नंव्यंजनं शाकवद्रसान्॥
गोगोधाछागलोष्ट्राणां विशेषात्कव्यभोजिनाम्

अर्थ–बथुआ, चीता, निसोथ, दंती, पाठा और इमली आदेके पत्ते तथा अन्य कफवातनाशक हलके और मलका भेदन करनेवाले शाक, घी और तेलमें हींगका छोंक देकर दही की मलाई डालकर पकावे और इसमें धनियां और पंचकोल पीसकर मिलादे और अनारदाने की खटाई, धनिये के पत्ते और अदरख का जीरा डालदे तथा हृदय को हितकारी अंगार की धूनीसे सुवासित करके जीरा, कालीमिरच, विडनमक, संचलनमक, डालकर प्रस्तुत करे। इसके सेवन से वातकी अधिकता, देहकी रूक्षता, मंदाग्नि, मलका विबंध ये सब दूर होजातेहैं रक्त शाली चांवलों का भात, शाकयुक्त व्यंजनकी तरह तयार करना चाहिये। तथा गौ, गोधा, बकरी, ऊंट, तथा विशेष करके मांसभक्षी जानवरों के मांसका रस उक्तरीति से संस्कृत करके देना चाहिये।

पानविधि।

मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम्॥
अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाल्पकं शृतम्।
धान्येन धान्यशुंठीभ्यां कंटकारिकयाऽथवा
अंते भक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोनुलोमनम्।

अर्थ–अधोवायु और मलके अनुलोमन के निमित्त मदिरा, शर्करा का मद्य, गौड, सीधु, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, मस्तु, पानी अथवा थोडा पकाया हुआ पानी, धनिये के साथ औटाया हुआ पानी, अथवा धनिये और सौंठके साथ औटायाहुआ पानी, अथवा कटेरी के साथ औटाया हुआ पानी, भोजन के बीचमें वा भोजनके अंतमें पीना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्शमें अनुलोमनका विधान।

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले गुदे शाम्यंति गुदजा पावकश्चाभिवर्धते।

अर्थ–अधोवायु, मल, कफ और पित्त के अनुलोमनसे गुदा निर्मल होजाती है और गुदाके निर्मल होनेसे गुदांकुर शांत होजाते हैं और अग्नि भी प्रदीप्त होजाती है विड् वातकफपित्तादि के अनुलोमन करनेवाले अन्नपानादि और औषध का सेवन करना चाहिये।

अर्शमें अनुवासन॥

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः॥ विलोमवाताः शूलार्तास्तेष्विष्टमनुवासनम्।

अर्थ–जो अर्शरोगी उदावर्त रोगसे पीडितहैं, जो अत्यन्त रूक्षहैं, जो विलोमगामी वात और शूलसे पीडितहैं, उन्हें अनुवासन वस्ति देना हितहै।

अनुवासन की विधि।

पिप्पलीं मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् कुष्ठं शुठीं पुष्करास्यं चित्रकं देवदारु च। पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतं॥ अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्। गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्॥ कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यामानाहं बंक्षणाश्रयं। पिच्छास्रावं गुदे शोफं वातवर्चोविनिग्रहम् उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात्।

अर्थ-पीपल, मैनफल, बेलगिरी, सौंफ, मुलहटी, बच, कूठ सौंठ, पुष्करमूल, चीता, देवदारु, इनको पीसकर दूना दूध डालकर तेल पकावै इस तेलको अनुवासन वस्ति देनेसे अर्शरोगी की मूढवात, गुदनिःसरण (गुदनाडी का बाहर निकलना] शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, ऊरु और पीठकी दुर्बलता, बंक्षणाश्रित आनाह, पिच्छास्राव, गुदा का शोफ, अधोवायुकी विबद्धता, मलकी रुकावट तथा बार बार अर्शकी उत्पत्ति ये सब रोग नष्ट होजाते हैं।

यहां जलका वर्णन नहीं किया गयाहै, तथापि चौगुना जल डालना अवश्यहै, अथांतरमें कहा भी है, स्नेहसक्षीरमांसार्थैः पाको यत्रेरितःक्वचित्। जलं चतुर्गुणं तत्र बीजादानार्थमावपेत्। न मुंचंति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम्। सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तोयं विनिःक्षियेत्।

निरूह का प्रयोग।

निरूहं वा प्रयुंजीत सक्षीरं पांचमूलिकम्॥ समूत्रलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः।

अर्थ–पंचमूलके क्वाथ में समान भाग दूध तथा अल्प परिमाण में गोमूत्र, तेल और नमक मिलाकर तथा पूर्वोक्त मैनफल प्रभृति का कल्क डालकर निरूहण वस्ति देनेसे अनुवासन वस्तिके समान गुण होताहै।

रक्तार्श का वर्णन।

अथ रक्तार्शसां वीक्ष्य मारुतस्य कफस्य वा अनुबंधं ततः स्निग्धं रूक्षं वा योजयेद्भिषग्

अर्थ-रक्तार्श में पित्त का नित्यसंबंध होने परभी कभी वायु और कभी कफका अनुबंध होता है। इसलिये वायुका अनुबंध देखकर स्निग्ध औषधादि और कफका अनुबंध देखकर रूक्ष औषधों का प्रयोग करना उचित है परंतु दोनों चिकित्साओं में ही पित्त के अत्यन्त सान्निध्य से शीतक्रिया करनी चाहिये, उष्णक्रिया न करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातकफानुबंध के लक्षण ।

सहरुच्छयावं खरं रूक्षमधो निर्याति नानिलः
कट्यरुगुदशूलं च हेतुर्यदि च रूक्षणम्।
तत्रानुबंधो वातस्य श्लेष्मणो यदि-
विट श्लथा ॥ ९६ ॥
श्वेता पीता गुरुः स्निग्धा सिपेच्छा-
स्तिमितौ गुदः।
हेतुस्निग्धगुरुर्विद्याद्यथास्वं चास्रलक्षणात् ॥

अर्थ–जिस रक्तार्श में पुरीष श्याववर्ण, कर्कश और रूक्ष हो, अधोवायु नीचे को प्रवृत्त हो । कमर, ऊरु और गुदा में शूल हो और इन सबकी उत्पत्ति का हेतु रूक्ष सेवन हो तो वातका अनुबंध समझना चाहिये । और यदि मलमें शिथिलता, तथा मलका वर्ण सफेद, पीला, भारी, चिकना, पिच्छिलतायुक्त हो तथा गुदा में स्तिमिता हो और इन विकारों की उत्पत्तिका हेतु भारी और चिकने पदार्थों का सेवन हो तो कफानुबंध समझना चाहिये । तथा सिरा-व्यधविधि में कहे हुए रक्त के लक्षणों से रक्त के श्यावारुणत्व होने से वायुका अनुबंध और स्निग्धादि लक्षणों से कफका अनुबंध समझना चाहिये ।

दूषितरक्तमें लंघनादि ।

दुष्टेऽस्रे शोधनं कार्यं लंघनं च यथाबलम् ।

अर्थ–वातादि दोषोंसे दूषित रक्तमें रोगी को बलके अनुसार शोधन और लंघनसे शुद्ध करना चाहिये अर्थात् दोषोंकी अधिकता होने पर विरेचनादि द्वारा शोधन और अल्पता होनेपर लंघन कराना चाहिये ।

दोषोंकी कलुषतामें रक्तस्राव ।

यावच्च दोषैः कालुष्यं स्रुतेस्तावदुपेक्षणम्

अर्थ–जब तक दोषसे कलुषता का रक्त स्राव होता हो, तब तक रक्त को बंद न करना चाहिये ।

रक्तस्रुतिकेपीछे तिक्तद्रव्यसेवन ।

दोषाणांपाचनार्थं च वह्निसंधुक्षणाय च ।
संग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तैरुपाचरेत्

अर्थ–जब रक्तस्राव की कलुषता दूर होजाय तब आम दोषके पचानेके लिये अग्नि को प्रदीप्त करनेके लिये और शुद्धरक्त को रोकने के लिये तिक्तरसयुक्त औषधद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

रक्तस्रावमें चिकित्सा ।

यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य वा ।
स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यंजनबस्तिषु ॥

अर्थ–जिस रोगीके दोष क्षीण होगये हों, अथवा वाताधिक्य वाले रोगीका जो रक्तस्राव होता है उसे घृतपान, घृताभ्यंग और घृतबस्तिद्वारा शोधन करना चाहिये ।

पित्ताधिक्य रक्त का स्तंभन ।

यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं घर्मकालेप्रवर्तते ।
स्तंभनीयं तदेकांतान्न चेद्वातकफानुगम्

अर्थ–जो पित्ताधिक्य रक्त गरमीके कारण स्राव होता है, उसको अवश्य ही रोक देना चाहिये क्योंकि न रोकने से भारी उपद्रव की आशंका होती है, किंतु ग्रीष्मकाल में यदि वातकफानुबंध से रक्तका स्राव होता हो तो रक्तको न रोककर लंघनादि शोधन द्वारा ही चिकित्सा करना चाहिये ।

कफानुगत रक्तमें कर्तव्य ।

सकफेऽस्रे पिबेत्पाक्यं शुंठीं कुटजबल्कलम
किराततिक्तकं शुंठीधन्वयासं कुचंदनम्
दार्वीत्वङ्निंबसेव्यानित्वचं वा दाडिमोद्भवाम्

अर्थ–कफानुबंधी रक्तस्रावमें सौंठ, कुडा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की छाल का क्वाथ अथवा चीता, सोंठ, दुरालभा, लालचंदन, दारुहलदी, त्वक, नीम खस इनका क्वाथ अथवा अनार की छाल का क्वाथ पीना चाहिये ।

अन्य औषध ।

कुटजत्वक्पलं तार्क्ष्यं माक्षिकं घृणवल्लभाम् ।
पिबेत्तंडुलतोयेन कल्कितं वा मयूरकम् ।

अर्थ–कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, रसौत, मधु और अतीस इन सब द्रव्यों का कल्क अथवा अँगा का कल्क तंडुल जलके साथ पान करना चाहिये ।

उक्तरोग पर अवलेह ।

तुलां विल्वांभसि पचेदार्द्रायाः कुटजत्वचः ॥
नीरसायां त्वचि क्वाथे दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान् ।
समंगाफलिनीमोचरसान्सुष्ठ्यंशकान्समान् ॥
तैश्च शक्रयवान्पूते ततो दर्वीप्रलेपनम् ।
पक्त्वावलेहं लीढ्वा च तं यथाग्निबलं पिबेत् ।
पेयां मंडं पयश्छागं गव्यं वा छागदुग्धभुक् ।
लेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीसारपायुजान् ।
बलवद्रक्तपित्तं च स्रवदूर्ध्वमधोऽपि वा ।

अर्थ–अंतरीक्ष जल में हरी कुडा की छाल एक तुला इतनी देर तक पकावे जब तक छाल नीरस होजाय (क्वाथका आठवां भाग रहने पर प्रायः छाल नीरस होजाती है) । फिर इस काढे में मजीठ, प्रियंगु और मोचरस चार चार तोले लेकर पीसकर डालदे और इन्द्रजौ इन सब के समान डालदे, जब पकते पकते इतना गाढा हो जाय कि कलछी से लगने लगे तब उतार ले । इस अवलेह को अग्नि के बल के अनुसार सेवन करना चाहिये । इस पर पेया, मंड, बकरी वा गौका दुग्ध पीवे वा बकरी के दूध के साथ भोजन करे । यह अवलेह रक्तातिसार, रक्तार्श, तथा प्रबल ऊर्ध्वगामी वा अधोगामी रक्तपित्त को शीघ्र दूर कर देता है ।

अन्य अवलेह ।

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषिताम् ॥
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रयम् ।
रोध्रद्वयं मोचरसं बलां दाडिमजां त्वचम् ॥
बिल्वकर्कटिकां मुस्तं समंगां धातकीफलम् ।
पलोन्मितं दशपलं कुटजस्यैव च त्वचः ॥
त्रिंशत्पलानि गुडतो घृतात्पूते च विंशतिः ।
तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥
सर्वार्शोग्रहणीदोषश्वासकासान्नियच्छति ।

अर्थ–एक तुला कुडा की छाल को एक द्रोण जल में पकावे, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान ले फिर इसमें रसौत, त्रिकुटा, दोनों लोध, मोचरस, खरैटी, अनार की छाल, बेलगिरी, नागर मोथा, मजीठ, धायके फल ये सब एक एक पल, कुडा की छाल १० पल, इन सब द्रव्यों को पीसकर डाल दे और पकावे, पकजाने पर उतार कर छानले, फिर इस में ३० पल गुड और बीस पल घी मिला देवे । फिर इसको पकावे जब गाढा होजाय तब इसे एक पात्र में भरकर अन्न के ढेर में गाढ दे । फिर पन्द्रह दिन पीछे इसका सेवन करने से सब प्रकार के अर्श, ग्रहणी दोष, श्वास और खांसी दूर होजाते हैं ।

अन्य उपाय ।

रोध्रं तिलान्मोचरसं समंगां चंदनोत्पलम् ॥
पायायित्वाऽजदुग्धेन शालींस्तेनैव भोजयेत् ।

अर्थ–लोध, तिल, मोचरस, मजीठ, चं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दन और नीलकमल इन सब औषधों को बकरी के दूध के साथ पान करावै और बकरी के दूध के साथही शाली चांवलों का भात खानेको दे । यह पूर्ववत् गुण करती है ।

अन्य प्रयोग ।

यष्ट्याह्वपद्मकानंतापयस्याक्षीरमोरटम् ॥
सासितामधु पातव्यं शीततोयेन तेन वा ।

अर्थ–मुलहटी, पदमाख, अनंतमूल, दुग्धका, क्षीरमोरटा, (मधुरस्रवा) इनके चूर्ण में मिश्री और शहत मिलाकर ठंडे जल वा बकरी के दूधके साथ पान कराना चाहिये।

अन्य प्रयोग ।

रोध्रकट्वंगकुटजसमंगाशाल्मलीत्वचम् ॥
हिमकेसरयष्ट्याह्वं सेव्यं वा तंडुलांबुना ।

अर्थ–लोध, कुटकी, कूठ, कुडाकी छाल, मजीठ, सेमर की छाल, इनको अथवा चंदन, केसर, मुलहटी, और खस इनको तंडुलजल के साथ पीने से रक्तार्श नष्ट होजाता है ।

यवान्यादि चूर्ण ।

"यवानीद्व्यबाः पाठा बिल्वशुंठीरसांजनम् ॥
चूर्णश्च लेहितःशूले प्रवृत्ते चाऽतिशोणिते

अर्थ–अजवाइन, इंद्रजौ, पाठा, बेलगिरी, सोंठ, रसौत इनका चूर्ण जलके साथ फांकने से अर्श की वेदना और रक्त की अति प्रवृत्ति दूर होती है ।

उक्त द्रव्य द्वारा सिद्ध घृत ।

दुग्धिकाकंटकारीभ्यां सिद्धं सर्पिः प्रशस्यते
अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्फलोत्पलैः ।
सकेसरैर्यवक्षारदाडिमस्वरसेन वा ।।१७।

अर्थ–दूधिया और कटेरी डालकर औटाया घी रक्तातिस्राव में प्रशस्त है, अथवा धाय के फूल, लोध, कुडा की छाल, इंद्रजौ, नीलकमल और नागकेसर के साथ सिद्ध किया हुआ घी, अथवा जवाखार और अनार के रस के साथ सिद्ध किया हुआ घृत उक्त रोग में गुणकारी है ।

अन्य घृत ।

शर्करांभोजकिंजल्कसहितं सह वा तिलैः ।
अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति ॥

अर्थ–खांड और कमलकेसर इनके साथ अथवा तिलोंके साथ नवनीत (माखन) का सेवन बहुत दिन तक करना रक्तार्श को शमन करदेता है ।

अन्य औषध ।

छागानि नवनीताज्यक्षीरमांसानि जांगलः ।
अनम्लो वा कदम्लो वा सवास्तुकरसो रसः
रक्तशालिः सरो दध्नः षष्टिकस्तरुणी सुरा ।
तरुणश्च सुरामंडः शोणितस्यौषधं परम् ॥

अर्थ–बकरी का नवनीत, घी, दूध वा मांस ये रक्तार्श की परम औषध हैं, अथवा जंगली पशुओं का मांस रस खटाई रहित वा थोड़ी खटाई डालकर बथुए के शाकके रससे युक्त सेवन करना भी रक्तार्श की परम औषध है । अथवा लाल शाली चांवलों का भात, दही की मलाई, सांठी चांवल, तरुणी सुरा (मीठेपन से युक्त-सुरा,) तरुण सुरामण्ड, ये सब भी रक्त की परम औषध है ।

अर्श पर पेयादि ।

पेयायूषरसाद्येषु पलांडुः केवलोऽपि वा ।
स जयत्युल्बणं रक्तं मारुतं च प्रयोजितः ॥

अर्थ–पेया यूष और मांसरसादिके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ प्याज का सेवन अथवा केवल प्याज के खाने से अत्यन्त दूषित रक्त और वायु नष्ट हो जाती है ।

वाताधिक्य अर्श में कर्तव्य ।

वातोल्बणानि प्रायेण भवंत्यस्रेऽतिनिःसृते ।
अर्शांसि तस्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत् ॥

अर्थ– रक्त के अत्यन्त निकलने पर सब प्रकारके अर्श रोग में वायु कुपित हो-जाता है इसलिये वायु की शांति के लिये विशेष यत्न करना चाहिये ।

अर्श में शीतोपचार ।

दृष्ट्वाऽस्रपित्तं प्रबलमबलौ च कफानिलौ ।
शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रशांतये ॥

अर्थ–जो रक्त पित्त प्रबल हो और कफ वात निर्बल हो तो उन को प्रशमन करने के लिये शीतोपचार अर्थात् ठण्डी चिकित्सा करना चाहिये ।

अन्य उपाय ।

तावदेव समस्तस्य स्निग्धोष्णैस्तर्पयेत्ततः ।
रसैः कोष्णैश्च सर्पिर्भिरवपीडकयोजितैः ॥
सेचयेत्तं कवोष्णैश्च कामं तैलपयोघृतैः ।

अर्थ–जो ऊपर कहे हुए किसी उपाय से भी अर्शका प्रशमन न हो तो स्निग्धो-ष्णमांसरस और ईषदुष्ण घृतपान द्वारा त-र्पण करना चाहिये तथा रोगानुपादनीया-ध्याय में कहे हुए ईषदुष्ण तेल दूध और घी के द्वारा अवपीडन करे ।

पिच्छावस्ति ।

यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पं च शाल्मलेः ।
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थशुंगाश्च द्विपलोन्मिताः ।
प्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थे च साधयेत् ।
क्षीरशेषे कषाये च तस्मिन्पूते घिमिश्रयेत्
कल्कीकृतं मोचरसं समंगां चंदनोत्पलम् ॥
प्रियंगु कौटजं बीजं कमलस्य च केसरम् ।
पिच्छावस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः ॥
प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ।

अर्थ-जवासे की जड, कासकी जड, सेमरके फूल, ढाक, गूलर और पीपलकी कोंपल, इनमें से प्रत्येक दो पल इन सबका कल्क करके तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ दूध में पकावै । जब दूध शेष रहजाय तब उतार कर छानले फिर इस काथ में मोचरस, मजीठ, चंदन, उत्पल, प्रियंगु, इंद्रजौ, कमलकेसर पीसकर प्रत्येक एक एक तोले मिलादेवै फिर घी, शहत और शर्करा मिलाकर पिच्छावस्तिका प्रयोग करे इससे प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्राव और ज्वर दूर होता है ।

अनुवासनविधि ।

यष्ट्याह्वपुंडरीकेण तथा मोचरसादिभिः ॥
क्षीरद्विगुणितः पक्को देयः स्नेहोऽनुवासनम्

अर्थ–मुलहटी, पुंडरीक, और ऊपर कहे हुए मोचरसादि का कल्क डालकर दूने दूधके साथ पकाया हुआ स्नेह अनुवासन वस्ति में हित है ।

मधुकादि घृत ।

मधुकोत्पलरोधांबुसमंगा बिल्वचंदनम् ॥
चविकातिविषामुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रजः ।
दार्विंत्वक्नागरं मांसी चित्रको देवदारु च॥
चांगेरिस्तरसे सर्पिः साधितं तैस्त्रिदोषजित्
अर्शोतिसारग्रहणीपांडुरोगज्वरारुचौ ।१३२।
मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे वस्त्याहे प्रवाहणे ।
पिच्छास्रावेऽशसां शूले देयं तत्परमोषधम्

अर्थ–मुलहटी, नीलकमल, लोध, नेत्र-वाला, मजीठ, बेलगिरी, चंदन, चव्य,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतीस, मोथा, पाठा, जवाखार, दारुहलदी सोंठ, जटामासी, चीता, और देवदारु इन सब द्रव्यों को पीसकर चांगेरी के रस में घृतको पकावै, यह घृत त्रिदोषनाशक तथा अर्श, अतिसार, ग्रहणीरोग, पांडुरोग, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र गुदभ्रंश, वस्ति का आनाह, प्रवाहण, पिच्छास्राव, तथा अर्श के शूल में देने से यह परम गुणकारकहै।

व्यत्यासमें मधुराम्लपानना।

व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि-
च योजयेत्।
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शःकृतान् गदान्॥

अर्थ–जठराग्नि के बल के अनुसार विपर्य्यय भावमें मधुर अम्ल तथा शीतल और उष्ण सेवन करने से अर्शजनित सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं।

उदावर्त में स्वेदादि।

उदावर्तार्तमभ्यज्य तैलैः शीतज्वरापहैः।
सुस्निग्धैः स्वेदयेत्पिंडैर्वर्तिमस्मै गुदे ततः॥
अभ्यक्तां तत्करांगुष्ठसन्निभामनुलोमनीम्।
दद्याच्छ्यामात्रिवृद्दंतीपिप्पलीनीलिनीफलैः।
विचूर्णितैर्विल्वजैर्गुडगोमूत्रसंयुतैः।
तद्वन्मागधिकाराठग्रहधूमैः ससर्षपैः॥

अर्थ–अर्शरोगी यदि उदावर्त से पीडित हो तो शीतज्वरनाशक तेल से अभ्यंग करके अतिस्निग्ध पिंडस्वेद से स्वेदित करके रोगी की गुदा में तेल लगाकर नीचे लिखे द्रव्यों की बत्ती बनाकर प्रवेश करे। यह बत्ती रोगी के अंगूठे के समान अनुलोमनकारी होनी चाहिये। श्यामा, दंती, निसोथ पीपल, नीलनी फल, सेंधानमक, विडनमक इनको पीसकर गुड और गोमूत्र मिलाकर बत्ती बनावै। अथवा सोंठ, मेनफल, घर का धूंआं, सरसों इनको पीसकर गुड और गोमूत्र में सानकर बत्ती बनाकर गुदा में रक्खै।

गुदामें उक्तद्रव्योंका चूर्ण।

एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाड्या विनिर्धमेत्।

अर्थ–उक्त सब द्रव्योंका चूर्ण एक नली में भरकर गुदाके भीतर प्रविष्ट करदेना चाहिये।

स्निग्ध वस्तिप्रयोग।

तद्विघाते सुतीक्ष्णं तु वस्तिं स्निग्धं प्रणीडयेत्
ऋजू कुर्याद्गुदशिरो विण्मूत्रमरुतोऽस्य सः।
भूयोऽनुबंधे वातघ्नैर्विरेच्यः स्नेहरेचनैः॥
अनुवास्यश्च रौक्ष्याद्धि संगो मारुतवर्चसोः

अर्थ–जो उक्त चूर्णके प्रयोग से कुछ लाभ नहो तो अत्यन्त तीक्ष्ण स्निग्ध बस्ति का ऋजुभाव में प्रयोग करना चाहिये। इस बस्तिसें गुदनाडी का ऊपर वाला भाग विष्टा, मूत्र और अधोवायु का अनुलोमन होताहै। इसपर भी यदि फिर अनुबंध हो तो वातनाशक स्नेहंबिरेचन और अनुवासन का प्रयोग करे, क्योंकि रूक्षता से अधोवायु और मलका विबंध होताहै।

कल्याणकक्षार।

त्रिकटुत्रिफलाश्रेष्मादंत्यरुष्करचित्रकम्॥
जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमंतर्धूमं विपाचयेत्।
शरावसंधौ मृल्लिप्ते क्षारः कल्याणकाह्वयः
स पीतः सर्पिषा युक्तो भक्ते वा-
स्निग्धभोजिना।
उदावर्तविबंधार्शोगुल्मपांडूदरकृमीन्॥
मूत्रसंगाश्मरीशोफहृद्रोगग्रहणीगदान्।
मेहप्लीहरुजानाहश्वासकासांश्च नाशयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–त्रिकुटा (सौंठ, मिरच, पीपल), त्रिपटु (सेंधानमक,कालानमक, विडनमक) श्रेष्ठा [हरड, बहेडा, आमला], दंती, मिलावा और चीता इनको गोमूत्रके साथ पीस कर घी मिलाकर एक मृत्तिकाके पात्रमें भरकर शरावसंपुट करके ऐसी रीतिसे मृत्तिका से लपेटे कि धूंआं बाहर न निकलने पावे। इसको कंडोंकी आगमें पकावे। ठंडा होनेपर निकाल लेवे। यह कल्याणक नामक क्षार होताहै। इसको घृतके साथ वा अन्नके साथ सेवन करे और घृतप्लुत भोजन करे तो उदावर्त, विबंध, अर्श,गुल्म रोग, पांडुरोग, उदररोग, कृमिरोग, मूत्रविघात, अश्मरी, सूजन, हृदयरोग, ग्रहणीरोग प्रमेह, प्लीहा, वेदना, आनाह, श्वास और खांसी ये सब नष्ट होजाते हैं।

अन्य उपाय।

सर्वं च कुर्याद्यत्प्रोक्तमर्शसां गाढवर्चसाम् ॥

अर्थ–मलके गाढे होनेकी चिकित्सा में जो पहिले उपाय लिखे गये हैं वे भी सब इस रोगमें प्रयुक्त करने चाहियें।

मस्सोंकी चिकित्सा।

द्रोणेऽपां पूतिवल्कद्वितुलमथ पचेत्पादशेषे च तस्मिन्
देयाशीतिर्गुडस्य प्रतनुकरजसो व्योषतोऽष्टौ पलानि।
यत्तन्मासेन जातं जनयति परमामूष्मणः पक्तिशक्तिं
शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं प्रजयति गुदजप्लीहगुल्मोदराणि ॥ १४४ ॥

अर्थ–पूतिकरंजकी ८०० तोले छाल एक द्रोण जलमें पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले, फिर इसमें ८० पल गुड, पिसी हुई त्रिकुटा ८ पल, मिलाकर किसी पात्रमें भरकर उसका मुख बंद करदे और एक महिने तक रक्खा रहनेदे। यह शुद्ध जठराग्निमें पाचनशक्ति पैदा करताहै और अनुलोमन करनेवाला होनेके कारण अर्श, प्लीहा, गुल्म और उदररोगों को दूर करदेता है।

अर्श पर चक्र।

पचेत्तुलां पूतिकरंजबल्कात्।
द्वे मूलतश्चित्रककंटकार्योः।
द्रोणत्रयेऽपां चरणावशेषे।
पूते शतं तत्र गुडस्य दद्यात् ॥ १४५ ॥
पालिकं च सुचूर्णितं त्रिजात-।
त्रिकटुग्रंथिकदाडिमाश्मभेदम्।
परपुष्करमूलधान्यचव्यं।
हपुषामार्द्रकमम्लवेतसं च ॥ १४६ ॥
शीतीभूतं क्षौद्रविंशत्यपेत-।
मार्द्रद्राक्षाबीजपूराधकैश्च।
युक्तं कामं गंडिकाभिस्तथेक्षोः।
सर्पिः पात्रे मासमात्रेण जातम् ॥
चुक्रकृकचमिवेंद्रदुर्नाम्नांवान्हिदीपनंपरमम्।
पांडुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाश्मकृच्छ्घ्नम्।

अर्थ–पूतिकरंजकी छाल एक तुला, चीते और कटेरी की जड दो तुला इनको तीन द्रोण पानीमें पकावे जब चौथाई शेष रहजाय तब उतार कर छानले और इस काथमें गुड सौ पल डालदे और त्रिजात [दालचीनी, इलायची तेजपात) त्रिकुटा, पीपलामूल, अनार की छाल, पाखानभेद, नागरमोथा, पुष्करमूल, धनियां, चव्य, हाऊबेर, अदरख, अमलबेत प्रत्येक एक एक पल लेकर बारीक पीसकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिलादे फिर ठंडा होनेपर बीस पल मधु, हरीदाख और बिजौरा १० पल और इच्छानुसार ईखकी गंडेलिया डालदे। फिर इसे घीके पात्रमें भरकर एक महिने तक रख छोडे। इससे जो चुक्र तयार होताहै यह अर्शको दूर करनेके लिये काटने की आरी के सदृश होताहै, तथा अत्यन्त अग्निसंदीपनहै। यह पांडुरोग, गरोग, उदररोग, गुल्मरोग, प्लीहा, आनाह, अश्मरी और मूत्र कृच्छ् को दूर करदेताहै।

अर्शोनाशक औषध।

द्रोणंपीलुरसस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भाजने
युंजीतात्रिपलैर्मधामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः।
पाठा माद्रिदुरालभाम्लबिदुलम्यो पत्त्वगेलो
ल्लकैः।
स्पृक्काकोललवंगबेल्लचपला मूलाग्निकैः। पालिकैः।
गुडपलशतयोजितं निधाते।
निहितमिदं प्रपिबंश्च पक्षमात्रात्।
निशमयति गुदांकुरान् सगुल्मा-
ननलबलं प्रबलं करोति चाशु।

अर्थ—पीलुके फलों का रस एक द्रोण वस्त्रमें छानकर घीके पात्रमें भरदे और इस में धायके फूल, दाख, पिंडखजूर, आमला, प्रत्येक दो दो पल। पाठा, रेणुका, दुरालभा अम्लवेत, त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, उल्लमल, स्पृक्का, बेर, लौंग, बायबिडंग, पीपलामूल, और चीता, प्रत्येक एक एक पल, और गुड १०० पल, डालकर इस पात्रको वायुरहित स्थानमें पंद्रह दिनतक रख छोडे। फिर इसका सेवन करनेसे गुदांकुर और गुल्मरोग दूर होजाते हैं, तथा जठराग्निके बलको शीघ्रही प्रबल करदेताहै।

अन्य प्रयोग।

एकैकशो दशपले दशमूलकुंभ-
पाठाद्वयार्कघुणबल्लभकट्फलानाम्।
दग्धे क्षुते नु कलशेन जलेन पक्वे
पादस्थिते गुडतुलां पलपंचकं च॥
दद्यात्प्रत्येकं व्योषचव्याभयानां
बह्वेर्मुष्टी द्वे यवक्षारतश्च।
दर्वीमालिपन् हंति लीढो गुडोऽयं
गुल्मप्लीहार्शःकुष्ठमेहाग्निसादान्॥

अर्थ—दशमूल, निसोथ, पाठा दोनों प्रकार के आक, अतीस और कायफल प्रत्येक दस दस पल लेकर आग में जला लेवै फिर इस को एक द्रोण जल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर एक तुला गुड़ तथा त्रिकुटा, चव्य और हरड़ प्रत्येक पांच २ पल, चीता दो पल, जवाखार दो पल पकावै जब कलछी से लगने लगे तब उतार ले. इस गुड़ के सेवन करने से गुल्मरोग, प्लीहा, अर्शरोग कुष्ठ, प्रमेह और अग्निमांद्य दूर होजाते हैं।

अन्य उपाय।

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धे
साध्यं यावत्पादजलस्थमध्येदम्।
अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि
क्काथ्यं भूयः सांद्रतया सममेतत्॥
त्रिकटुकमिसिपथ्याकुष्ठमुस्ताबरांग-
कृमिरिपुदहमैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः।
जयति गुरुजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि
प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः॥

अर्थ—आधे तुला चीते की जड़ को एक द्रोण पानी में पकाकर एक चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान ले इस में आठ पल पुराना गुड़ मिलाकर फिर अग्नि पर चढादे जब गाढा होजाय तब इसमें त्रिकुटा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सौंफ, हरड, कूठ, मोथा, दालचीनी, बायविडंग, चीता और इलायची इनको पीसकर उस में मिलादे, इस अवलेह को नित्य प्रति सेवन करने से मस्से, कोढ, प्लीहा, गुल्मरोग और उदर रोग, नष्ट होजाते हैं और जठराग्नि भी बढजाती है ।

त्रिकुटाद्यवलेह ।

गुडव्योषवरावेल्लतिलारुष्करचित्रकैः ।
अर्शांसि हंति गुटिका त्वग्विकारं च शीलिता

अर्थ–त्रिकुटा, त्रिफला, वायविडंग, तिल, भिलावा, और चीता इनको पीसकर पुराने गुडमें मिलाकर गोलियां बना लेवे । इनगोलियों के सेवनसे अर्शरोग और त्वचा विकार नष्ट होजाते हैं ।

अर्शपर जमीकंद ।

मृल्लिप्तं सौरणं कंदं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् ।
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥

अर्थ–जमीकंद पर कपडमिट्टी करके पुटपाककी तरह अग्निमें पकावे, फिर इसको तेल और नमक मिलाकर सेवन करे तो अर्शरोग नष्ट होजाता है ।

गुडादि गुटका ।

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान्
क्रमविवर्धितभागसमाहृतान् ।
शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान्
कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदः

अर्थ–कालीमिरच, पीपल, सोंठ, चीता इनको एक एक भाग बढा करले और चीते से चौगुना जमीकंद इनको गुडमें मिलाकर गोलियां बनालेवे, इनसे मस्से जाते रहते हैं ।

जमीकंद का अन्य प्रयोग ।

चूर्णीकृताःषोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्धौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिंडी ॥

अर्थ–जमीकंद के छोटे छोटे टुकडे १६ भाग, चीता आठ भाग, सोंठ २ भाग, मिरच १ भाग इनकी गुडके साथ गोली बनाकर सेवन करने से अर्श नष्ट होजाता है ।

अन्य चूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णांकरंजवेल्लाग्निभिः सितातुल्यैः ।
वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥१५९॥

अर्थ–हरड, सोंठ, पीपल, कंजा, बायविडंग और चीता प्रत्येक समान भाग और इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से प्रमाण से अधिक और गुरुपाकी भोजन कोभी अग्निकी तरह जला देता है ।

कालिंगादि वटिका ।

कलिंगलांगलीकृष्णावन्ह्यपामार्गतंडुलैः ।
भूनिंबसैंधवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥१६०॥

अर्थ–इन्द्रजौ, लांगली, पीपल, चीता, ओंगाके बीज, चिरायता, सेंधा नमक इनको पीसकर पुराने गुडमें गोलियां बनालेवे इससे गुदांकुर नष्ट होजाता है ।

तक्रपान ।

लवणोत्तमवन्हिकलिंगयवां-
श्चिरबिल्वमहापिचुमंदयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथितालुडितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥

अर्थ–सेंधा नमक, चीता, इन्द्रजौ, कंजा और महानिंब, इनका चूर्ण तक्र में मिलाकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सात दिनतक पीनेसे मस्से जाते रहते हैं।

शुष्क अर्शमें औषध।

शुष्केषु भल्लातकमग्र्यमुक्तं
भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक्।
सर्वेषु सर्वर्तुषु कालशेय-
मर्शःसु बल्यं च मलापहं च ॥ १६२ ॥

अर्थ—सूखी बवासीर में भिलावा, गीली बवासीर में कुडाकी छाल ये प्रधान औषध हैं और गीली सूखी दोनों प्रकारकी बवासीर में और संपूर्ण ऋतुओंमें तक प्रधान औषध हैं यह बलकारक और दोषनाशक होताहै।

औषधविचार।

"भित्त्वा विबंधाननुलोमनाय
यन्मारुतस्याऽग्निबलाय यच्च
तदन्नपानौषधमर्शसेन
सेव्यं विवर्ज्यं विपरीतमस्मात्। १६३।

अर्थ—अर्शरोगी को उचित है कि उसी अन्नपान और औषध का सेवन करै जो कफादिरूप मलकी विबद्धता का भेदन करके वायु का अनुलोमन और अग्नि के बलको बढातीहै। तथा इससे विपरीत अर्थात् वह अन्न, पान और औषध त्याग देना चाहिये, जो मलकी विबद्धता, वायुका प्रतिलोम और अग्निका मांद्य करती है।

अग्नि की रक्षा कर्तव्य।

अर्शोतिसारग्रहणीविकाराः
प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः।
सन्नेऽनले संति न संति दीप्ते
रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम्" ॥

अर्थ—अर्श, अतिसार और ग्रहणी ये आपस में एक दूसरे के निदान हैं अर्थात् एक रोगके होने पर दूसरा उत्पन्न होजाता है। परन्तु विशेष करके ये सब रोग अग्नि की मंदता से ही उत्पन्न होते हैं। अग्नि के प्रदीप्त होनेपर इन रोगों की उत्पत्ति नहीं होसकती है। इसलिये इन रोगों में विशेष करके अग्निकी रक्षा करनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने अर्शश्चिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अथातोऽतीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहांसे अतिसार चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अतीसार में लंघन।

"अतीसारो हि भूयिष्ठं भवत्यामाशयान्वयः
हत्वाग्निं वातजेऽप्यस्मात्प्राक् तस्मिल्लंघनं हितम् ॥ १ ॥

अर्थ—बहुधा अग्निको मंद करके अतिसार रोग आमाशय में उत्पन्न होता है, इसलिये वातज अतीसार में भी प्रथम उपवासरूप लंघन देना हित है। अपि शब्द से कफादिजन्य अतिसार में भी लंघन हित है। प्राक् शब्द के प्रयोग से यह समझना चाहिये कि उत्तर काल में लंघन कराना हित नहीं है।

अतिसार में वमन।

शूलानाहप्रसेकार्तं वामयेदतिसारिणम्।

अर्थ—जो रोगी शूल, आनाह और प्रसेक से पीडित हो उसे वमन कराना हितहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोषविशेष में पथ्यसेवन ।

दोषाः संनिचिता ये च विदग्धाहारमूर्छिता
अतीसारार्यं कल्प्यंते तेषूपेक्षेव भेषजम् ।
भूशोत्क्लेशप्रवृत्तेषु स्वयमेव चलात्मसु ।

अर्थ–जो दोष अत्यंत वृद्धि को प्राप्त हो-गये हैं, तथा विदग्ध अर्थात् पक्वापक्व आहार से मिलाकर अतिसार उत्पन्न करते हैं उन सब उत्क्लेशजनक अर्थात् अतिसार से उत्पन्न करने में समुद्यत और विना ही यत्न चलने में प्रवृत्त हुए दोषों में पाचनादि किसी औषधका प्रयोग न करके केवल पथ्य अर्थात् हितकारी आहार का ही सेवन कराना चाहिये ।

संग्राही औषध का निषेध ।

प्रयोज्यं नतु संग्राहि पूर्वमामातिसारिणि ।

अर्थ–अतिसार की पहिली अवस्था में संग्राही औषध देना उचित नहीं है ।

विबद्ध दोष में चिकित्सा ।

अपि चाध्मानगुरुता शूलस्तैमित्यकारिणि ॥
प्राणदा प्राणदा दोषे विबद्धं संप्रवर्तिनी ।

अर्थ–मलके विबद्ध होने पर अर्थात् थोडा थोडा करके निकलने के कारण उदर में अफरा, भारापन, शूल और स्तिमिता उत्पन्न हो तो मलको प्रवृत्त करनेवाली हरीतकी प्राणों को देनेवाली होती है ।

मध्यदोषातिसार में चिकित्सा ।

पिबेत्प्रकथितांस्तोये मध्यदोषो विशोषयन् ॥
भूतीकापिप्पलीशुंठीवचाधान्यहरीतकीः ।
अथवा विल्वधानिकामुस्तानागरवालकम् ॥
विडपाठावचापथ्याकृमिजिन्नागराणि वा ।
शुंठीघनवचामाद्रीबिल्ववत्सकहिंगु वा ॥

अर्थ–मध्यदोषवाला अतीसार रोगी लंघन करता हुआ कंजा, पीपल, सोंठ, वच, धनियां और हरड, इनका काढा बनाकर पीवे । अथवा बेलगिरी, धनियां, मोथा, सोंठ और नेत्रवाला अथवा विडनमक, पाठा, वच, हरड, बायबिडंग और सोंठ अथवा सोंठ, नागरमोथा, बच, अतीस, बेलगिरी, कुडा और हींग इन चार प्रयोगों मेंसे किसी एक को पीसकर और प्रमथ्यारूप काढा बनाकर पीना चाहिये ।

'प्रकथितायां' में प्र शब्द लगाने का यह तात्पर्य है कि प्रकर्ष करके अर्थात प्रमथ्यारूप से काढा बनाया जाय । प्रमथ्या के लक्षण अन्यग्रन्थ में इस तरह लिखे हैं "शृतः कषायो निर्यूहः क्वाथो यूषः कृतश्चसः । कृतयूषः प्रमथ्या च द्रव्यात्कल्की कृताच्छृतः" ।

अल्पदोषातिसार में कर्तव्य ।

शस्यते त्वल्पदोषाणामुपवासोऽतिसारिणाम्

अर्थ–अल्पदोषवाले अतिसार रोगीको लंघन कराना हित है । यहां तु शब्द अवधारणार्थ है अर्थात् अल्पदोष में केवल लंघनही हित है, बहुदोष और मध्यदोष में कही हुई चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है ।

वचादि पक्व जल ।

वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तापर्पटकेन वा ॥
ह्रीवेरनागराभ्यां वा विपक्वं पाययेज्जलम् ।

अर्थ–अतिसार रोग में तृषा उत्पन्न होने पर दोष, देश और कालादि की विवेचना करके कभी बच और अतीस, कभी नागरमोथा और पित्तपापडा, कभी नेत्रवाला

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और सोंठ इनके साथ पकाया हुआ जल पीनेको दे।

क्षुत्क्षामातिसार में पथ्य।

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघ्वन्नं प्रतिभोजयेत्॥
तथा स शीघ्रं प्राप्नोति रुचिमग्निबलं बलम्।

अर्थ—लंघन कराने के पीछे अतिसार रोगी को क्षुधा लगने पर उपयुक्त भोजन काल में हलकी अन्न खानेको दे। हलके अन्न से रोगी को शीघ्रही अन्नमें रुचि बढजाती है और उसकी जठराग्नि प्रदीप्त तथा देह बलिष्ठ होता चलाजाता है।

अतिसार पर पान।

तक्रेणावंतिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा॥
सुरया मधुना वाऽथ यथा सात्म्यमुपाचरेत्

अर्थ—ऊपर की रीति से भोजन के पीछे तृषार्त रोगी को कभी तक्र, कभी कांजी, कभी पेया, कभी तर्पण, कभी सुरा, कभी मधु, कभी मद्य द्वारा यथासात्म्य अर्थात् प्रकृति के अनुकूल उपचार करै।

अतिसाररोगी को भोजनादि।

भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं ग्राहिदीपनपाचनैः॥
बालबिल्वशठीधान्यहिंगुवृक्षाम्लदाडिमैः।
पलाशपुष्पाजाजीयवानीविडसैंधवैः॥
लघुना पंचमूलेन पंचकोलेन पाठया।

अर्थ—ऊपर कही हुई रीति से चिकित्सा करके ग्राही, अग्निसंदीपन और पाचन औषधियों द्वारा कल्पना करके भोजन देवै। वे द्रव्य ये हैं यथा—कच्ची बेलागिरी, कचूर, धनियां, हींग, बिजौरा, अनार, ढाक, जीरा, अजवायन, बिड नमक, सेंधानमक, लघु पंचमूल और पाठ।

कफपित्ताधिक अतिसार में पेया।

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता॥ १३॥
दाडिमाम्ला हिता पेया कफपित्ते समुल्वणे
अभयापिप्पलीमूलबिल्वैर्वातानुलोमनी॥

अर्थ—अतिसार में कफ और पित्त की अधिकता होने पर शालपर्णी, खरैटी, बेलगिरी, इनके साथ सिद्ध की हुई पेया में अनारदाने की खटाई डालकर पान करावै। तथा हरड, पीपलामूल और बेलगिरी इन के साथ पाक की हुई पेया का सेवन करने से वायुका अनुलोमन होता है।

बहुदोषातिसार में चिकित्सा।

विबद्धं दोषबहुलो दीप्ताग्नेर्योऽतिसार्यते।
कृष्णाविडंगत्रिफलाकषायैस्तं विरेचयेत्॥
पेयां युंज्याद्विरिक्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताम्।

अर्थ—यदि अतिसाररोगी की जठराग्नि प्रज्वलित हो तथा विबद्ध मल थोडा थोडा करके निकलता हो तो उसको पीपल, वायविडंग और त्रिफला इनके काढे से विरेचन देवै। विरेचन से शुद्ध होने के पीछे वातनाशक और अग्निसंदीपन औषधों द्वारा सिद्ध की हुई पेयापान करावै।

आमातिसार में चिकित्सा।

आमे परिणते यस्तु दीप्तेऽग्नावुपवेश्यते॥
सफेनपिच्छं सरुजं सविबंधं पुनः पुनः।
अल्पाल्पमल्पं समलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम्॥
दधितैलघृतक्षारैः स शुंठीं,सगुडां पिबेत्।
स्विन्नानि गुडतैलेन भक्षयेद्वदराणि वा॥
गाढविड्विहितैः शाकैर्बहुस्नेहैस्तथा रसैः॥
क्षुधितं भोजयेदेनं दधिदाडिमसाधितैः॥
शाल्योदनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम्,
शुल्या मूलकपोतायाः पाठायाः
स्वतिकस्यवा॥ ०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नुषायवानीकर्कारुक्षीरिणीचिर्भटस्य वा।
उपोदकाया जीवंत्या वाकुच्या वास्तुकस्य वा
सुवर्चलायाश्चंचोर्वा लोणिकाया रसैरपि।
कूर्मवर्तकलोपाकाशीखितित्तिरिकौक्कुटैः॥

अर्थ–जो अतिसार रोगी आमके परिपाक और अग्नि के प्रदीप्त होने पर झागदार, गिलगिला, वेदनायुक्त सविबंध, थोडा थोडा अल्प पुरीषयुक्त, वा पुरीषरहित, अथवा प्रवाहिकायुक्त मलका त्याग करता है, उसको दही, तेल, घी, दूध और गुड के साथ सोंठ दे। अथवा गुड और तेल के साथ सिद्ध किये हुए बेर खानेको दे। अथवा भूख के अधिक लगने पर गाढविड में कहे हुए वास्तुकादि शाक तथा बहुत स्नेह से युक्त दही और अनारदाने की खटाई डाल कर मांसरस के साथ शालीचांवलों का भात खाने को दे। अथवा तिल, उरद और मूंग के साथ सिद्ध किया हुआ शाली चांवलों का भात दे। अथवा सोंठ,छोटी मूली, लहसन, सुषा, अजवायन, काकडी, दुग्धका, फूट, पोई, जीवंती, वाकुची, वथुआ, सुवर्चला, चुंचु, लौनिया, इनके शाकों के रसके साथ शाली चांवलों को खाय। कछुआ, बतक, लोपाक, मोर,तीतर और मुर्गा इनके मांसरस के साथ शाली चांवलों का भात दे।

पक्वातिसार पर यवागू।

बिल्वमुस्ताक्षिभैषज्यधातकीपुष्पनागरैः।
पक्वातीसारजित्तक्रे यवागूर्दधिकी तथा॥
कपित्थकच्छुराफंजीयूथिकावटशैलुजैः।
दाडिमीशणकार्पासीशालमलीमोचपल्लवैः॥

अर्थ–बेलगिरी, नागरमोथा, मेढासिंगी, धायके फूल, और सोंठ, इनको डालकर तक्रके साथ पकाई हुई यवागू पक्वातिसार को नष्ट करदेती है। अथवा दहीके साथ कैथ, दुरालभा, भाडंगी, जुई, बट, कीकर, अनार, सन, कपास सेमर और मोचरस इनके पत्ते डालकर पकाई हुई यवागू पक्वातिसार को दूर करती है।

प्रवाहिका की औषध।

कल्को बिल्वशलाटूनां तिलकल्कश्च तत्समः
दध्नः सरोऽम्लः सस्नेहः खलो-
हंति प्रवाहिकाम्॥ २५॥

अर्थ–कच्ची बेलगिरीका कल्क और तिलका कल्क दोनों समान भाग लेकर दही की खट्टी मलाई इनके साथमें सिद्ध की हुई खल घृत मिलाकर सेवन करने से प्रवाहिका रोगको दूर करदेती है।

अन्य औषध।

मरिचं धनिकाजाजीतिन्तिडीकशठीविडम्।
दाडिमं धातकी पाठा त्रिफला पंचकोलकम्
यावशूकं कपित्थाम्रजंबूमध्यं सदीप्यकम्।
पिष्टैः षडगुणबिल्वैस्तैर्दध्नि मुद्गरसे गुडे॥
स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽयमपराजितः।
दीपनः पाचनो ग्राही रुच्यो बिबिशिनाशनः

अर्थ–कालीमिरच, धनियां, जीरा, इमली, कचूर, बिडनमक, अनार, धायकेफूल, पाठा, त्रिफला, पंचकोल, जवाखार, कैथ, आमकी गुठलीकागूदा, जामनका गूदा, अजवायन, प्रत्येक एक एक भाग बेलगिरी छः भाग, इन सब द्रव्यों को पीसकर दही मूंगका यूष, गुड और घी तथा तेलके साथ पकाई हुई खलको अपराजित कहतेहैं। यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अग्निसंदीपन, पाचन, ग्राही, रुचिकारक तथा प्रवाहिका को दूर करनेवाली है।

अन्य प्रयोग।

कोलानां बालबिल्वानां कल्कैः-
शालियवस्य च।
मुद्गमाषतिलानां च धान्ययूषं प्रकल्पयेत्॥
एकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसारिकम्।
वर्चःक्षये शुष्कमुखं शाल्यन्नं तेन भोजयेत्
दध्नः सरं वायमके भृष्टं सगुडनागरम्।
सुरां वा यमके भृष्टां व्यंजनार्थं प्रयोजयेत्
फलाम्लं यमके भृष्टं यूषं गृंजनकस्य वा।
भृष्टान्वा यमके सक्तून् खादेद्द्रव्योपावचूर्णितान्
मांसान् सुसिद्धांस्तद्वद्वा घृतमंडोपसेवनान्
रसं सुसिद्धं पूतं वा छागमेषांतराधिजम्॥
पचेद्दाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम्।
रक्तशाल्योदनं तेन भुंजानः प्रपिबंश्च तम्॥
वर्चःक्षयकृतैराशु विकारैः परिमुच्यते।

अर्थ–बेर, कच्चीबेलगिरी, शालीचांवल जौ, मूंग, उरद, तिल, इन सब द्रव्यों के कल्क मिलाकर मिलेहुए घी और तेलमें भूने फिर दही और अनारके रसकी खटाई डालकर धान्ययूष तयार करलेवे। इस यूषके साथ शालीचांवलों का भात खानेको दे अथवा दही की मलाई को घी और तेलमें भूनकर गुड और सौंठ मिलाकर व्यंजन के लिये काममें लावे। अथवा घी और तेलमें भुनी हुई सुरा व्यंजन के काममें लावै अथवा घी तेलमें भुना हुआ गाजर का यूष दाडिम आदि की खटाई डालकर व्यंजनार्थ उपयोग में लावे। अथवा यमक स्नेहमें भुनेहुए सत्तू में त्रिकुटा मिलाकर सेवन करे। अथवा घृत और मंड मिलाकर सिद्ध किये हुए उरद खानेको दे। अथवा बकरे वा भेडेके मध्य देहका मांसरस पकाकर छानले, फिर इसमें अनार के रसकी खटाई तथा धनियां और सौंठ डालकर घी में छोंकले, फिर इसके साथ रक्तशाली चांवलों का भात खाकर ऊपर से इसीको पीलेवे। इस रीतिसे पथ्य सेवन करने पर मलकी क्षीणतासे उत्पन्न हुए प्रवाहिकादि रोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

बालबिल्वादि लेह।

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम्
लिह्याद्धाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः।

अर्थ–कच्ची बेलगिरी, गुड, तेल, पीपल और सौंठ, इनको पीसकर इनका लेह सेवन करने से वायुके प्रकोपसे उत्पन्न हुई प्रवाहिका और शूलवत् वेदना नष्ट होजाती है।

अन्यप्रयोग।

वल्कलं शावरं पुष्पं धातुक्या बदरीदलम्॥
पिबेद्दधिसरक्षौद्रकपित्थस्वरसाप्लुतम्।

अर्थ–लोधकी छाल, धायके फूल, और बेरके पत्ते पीसकर दहीकी मलाई, शहत और कैथका रस इन सबको मिलाकर सेवन करे।

क्षीरसौहित्य का उपयोग।

विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः॥ ३७
सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तः क्षीरसौहित्यमर्हति।
यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत्
शृतमेरंडमूलेन बालबिल्वेन वा पुनः।

अर्थ–जिस अतिसार रोगीके अधोवायु और मलकी रुकावट हो, बहुत शूल युक्त प्रवाहिका हो, और रक्त सहित पिच्छिल मल निकलता हो तो इन सब उपद्रवों के उप-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थित होने पर तृप्तिपर्य्यन्त अर्थात् पेट भर कर दूध पानकरावै, अथवा यमक स्नेहपान करके धारोष्ण दुग्ध पान करे अथवा अरंड की जडके साथ सिद्ध किया हुआ अथवा कच्ची वेलगिरी के साथ औटाया हुआ दूध पान करै ।

वेदनायुक्त आमकी दवा ।

पयस्युत्काथ्य मुस्तानां विंशतिं-
त्रिगुणेऽम्भसि ॥ ३९ ॥
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ।

अर्थ-दूध चार पल, जल बारह पल, इनको मिलाकर इसमें एक पल नागरमोथा डालकर पकावै, जब दूध बचरहै, और पानी जलजाय तब उतार कर छानले, इस दूधके सेवन से वेदनायुक्त आम नष्ट होजाता है ।

प्रवाहिका पर पिप्पल्यादि चूर्ण ।

पिप्पल्या पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा
चिरकालानुषक्ताऽपि नश्यत्याशु प्रवाहिका

अर्थ-पीपल अथवा कालीमिरचको खूब बारीक पीसकर जलके साथ पीने से बहुत कालकी उत्पन्न हुई प्रवाहिका भी नष्ट होजाती है ।

निराम रूपमें घृतपान ।

निरामरूपं शूलार्तं लंघनाद्यैश्च कर्षितम् ॥
रूक्षकोष्ठमपेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद् घृतम् ।

अर्थ-जो प्रवाहिका से पीडित रोगीकी देह कृश होगई हो, कोष्ठ रूक्ष होगयाहो और वेदना रहती हो तथा आमसे रहितहो तो उसकी जठराग्नि के बल और शारीरक बल पर ध्यानदेकर घीमें जवाखार मिलाकर पिलाना उचित है ।

तैल प्रयोग ।

सिद्धं दधिसुरामंडे दशमूलस्य चांभसि ॥
सिंधूत्थ पंचकोलाभ्यां तैलं सद्योऽर्तिनाशनम्

अर्थ-दही और सुरामंडमें अथवा दशमूलके क्वाथमें सेंधानमक और पंचकोल का चूर्ण मिलाकर तेल पकाकर सेवन करने से प्रवाहिका और अतिसार से उत्पन्न हुई वेदना नष्ट होजाती है ।

अन्य तैल ।

षड्भिः शुंठ्याः पलैर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां
ग्रंथ्यग्निसैंधवात् ॥
तैलप्रस्थं पचेद्दध्ना निःस्सारकरजापहम् ।

अर्थ-सोंठ छः पल, पीपलामूल, चीता और सेंधानमक प्रत्येक दो दो पल, तेल एक प्रस्थ इनको ४ प्रस्थ दहीके साथ पकाकर सेवन करनेसे प्रवाहिका और अतिसार से उत्पन्न हुई वेदना शांत होजाती है ।

अन्य तैल ।

एकतो मांसदुग्धाज्यं पुरीषग्रहशूलजित् ॥
पानानुवासनाभ्यंगप्रयुक्तं तैलमेकतः ।
तद्धि वातजितामन्यं शूलं च विगुणोऽनिलः

अर्थ-मलकी विबद्धता और शूलको दूर करने में एक ओर मांस, दूध और घी है और दूसरी ओर पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा प्रयुक्त किया हुआ अकेला तेल ही मलकी विबद्धता और शूलको दूर करदेता है, इसका कारण यही है कि वातनाशक संपूर्ण द्रव्योंमें तेल ही प्रधान है । कुपित वायु ही शूल है । इसलिये तेल द्वारा वायु की विगुणता दूर होने पर वायुसे उत्पन्न वेदना और मलकी विबद्धता दूर होजाते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वायुकी विगुणता का हेतु।

धात्वंतरोपमर्दाद्धि चलो व्यापी स्वधामगः।
तैलं मंदानलस्याऽपि युक्तया शर्मकरं परम्
वाय्वाशये सतैले हि विधिसेवी नावातिष्ठते

अर्थ–पित्तकफादिक अन्य धातुओं के उपमर्द अर्थात् अन्यभाव को प्राप्त होने से सर्वशरीरव्यापी वायु अपने स्थान अर्थात् पक्वाशय में ही अधिकता से रहता है। इस अवस्था में मंदाग्नि वाले अतिसार रोगीको भी विधिपूर्वक प्रयुक्त किया हुआ तेल दुःख को शमन करनेवाला होता है। इसका हेतु यही है कि पक्वाशय के सतैल होनेपर प्रवाहिका किसी तरह रह नहीं सकती है।

तैलका ही सेवन

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु
दोषांतरेष्वीरण एकवीरे।
को निष्पतन्प्राणिति कोष्ठशूली
नांतर्बहिस्तैलपरो यदि स्यात्

अर्थ–पुरीषके क्षीण होने से वातको छोड कर पित्तकफादिक अन्य दोषोंके अपने अपने स्थानसे भ्रष्ट होजाने पर तथा वायु के एक मात्र नायक रह जाने पर कौन प्रवाहिका वाला रोगी जी सकता है, अर्थात् कोई भी नहीं जी सकता है, यदि पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा भीतर और बाहर दोनों ओर से तैलका प्रयोग न किया जाय। इसका सारांश यह है कि सशूल प्रवाहिका रोगी इस दशामें खाने और लगाने में तेलको काममें न लावैगा तो मरजायगा (आक्रंदन पूर्व सशूलमुपवेशनं निष्पतन्नुच्यते अर्थात् आक्रंदनपूर्वक वेदनायुक्त दस्त आते हों उसे निष्पतन कहते हैं)।

घृतका प्रयोग।

गुदरुग्भ्रंशयोर्युंज्यात्सक्षीरं साधितं हविः।
रसे कोलाम्लचांगेर्योर्दध्नि पिष्टे च नागरे

अर्थ–गुदाशूल और गुदभ्रंशमें कोलाम्ल और चांगेरी का रस, दही, पिसी हुई सोंठ, दूध और घी। इनको पाक विधिके अनुसार पकाकर सेवन करे। (घीसे कोलादि का रस चौगुना डाला जाता है)।

घृत का अन्य प्रयोग।

तैरेवचाऽम्लैःसंयोज्यसिद्धसुश्लक्ष्णकल्कितैः
धान्योषणबिडाजाजीपांचकोलकदाडिमैः

अर्थ–ऊपर कहे हुए बेर आदि खट्टे रस तथा धनियां, पीपल, मनयारी नमक, जीरा, पंचकोल इनके अच्छी तरह पिसेहुए कल्क के साथ सिद्ध कियाहुआ घी भी पूर्व वत् गुणकारी होता है।

गुदशूल में स्नेहवस्त्यादि।

योजयेत्स्नेहवर्त्तिं वा दशमूलेन साधितम्
शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया विल्वकेण वा

अर्थ–जिसकी गुदा में शूल होता हो, उसे दशमूल के साथ सिद्ध किया हुआ घी अथवा कचूर, सौंफ, कूठ के साथ अथवा बच के साथ अथवा चीते के साथ सिद्ध किया हुआ घी स्नेहवस्ति द्वारा प्रयोग किये जाने पर गुदभ्रंश और गुदशूल को नष्ट कर देता है।

अनुवासन वस्ति।

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे।
मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं वाप्यनुवासनम्

अर्थ–प्रवाहण, गुदभ्रंश, मूत्राघात और कटिग्रह में मधुर और अम्ल द्रव्यों से सिद्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया हुआ घी वा तेलका अनुवासन द्वारा प्रयोग करना चाहिये ।

पानाभ्यंगद्वारा तैलप्रयोग ।

प्रवेशयेद्गुदं ध्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु ।
कुर्याच्च गोफणाबंधं मध्यछिद्रेण चर्मणा

अर्थ–गुदनाडी के बाहर निकल आने पर तैल आदि से अभ्यक्त करके और मृदु स्वेदन करके भीतर को प्रवेश करदे । अथवा एक ऐसे चमडे से जिसके बीच में छिद्र हो उसमें गोफणाबंध लगा देवै ।

पित्तज गुदभ्रंश में चिकित्सा ।

पंचमूलस्य महतः काथं क्षीरे विपाचयेत् ।
उंदुरुं चांत्ररहितं तेन वातघ्नकल्कवत्
तैलं पचेद्गुदभ्रंशं पानाभ्यंगेन तज्जयेत् ।

अर्थ–महापंचमूल के काढे को और अंत्ररहित चूहे को दूध में पकावै और इसी दूध में तथा वातनाशक रास्ना और अरंडादिक द्रव्यों के कल्क में तेल को पकावै इस तेल को पीने और लगाने में प्रयोग करने से गुदभ्रंश दूर होजाता है ।

पित्तातिसार में चिकित्सा ।

पैत्ते तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लंघनम्

अर्थ–पित्तसे उत्पन्न हुए आमातिसार में तीक्ष्ण और उष्ण को छोडकर वातातिसार में शरीरका हलका करनेवाले जो जो कर्म कहे गये हैं, वे सब करने चाहियें ।

पित्तातिसार में अष्टांग जलपान ।

तृष्यान्पिबेत्षडंगांबु सभूनिंबं ससारिवम्
पेयादि क्षुधितस्यान्नमग्निसंधुक्षणं हितम् ।
बृहत्यादिगणाभीरुद्विबलाशूर्पपर्णिभिः ।

अर्थ–पित्तज अतिसार वाले को जब तृषा का वेग हो, तब चिरायता और अनन्त मूल डालकर ज्वरचिकित्सा में कहे हुए षडंग पानी को देना चाहिये । तथा भूख लगने पर अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले बृहत्यादि गणोक्त द्रव्य, सितावर, खरैटी, बडी खरैटी और सूपपर्णी आदि द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए अन्न की पेया देनी चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

पाययेदनुबंधे तु सक्षौद्रं तंडुलांभसा
वत्सकस्य फलं पिष्टं सबल्कं सघुणप्रियम्
पाठा वत्सकबीजत्वग्दार्वी ग्रथितशुंठि वा ।
क्वाथं चाऽतिविषाबिल्ववत्सकोदीच्यमुस्तजे
अथवाऽतिविषामूर्वानिशेंद्रयवतार्क्ष्यजम्
समध्वतिविषाशुंठीमुस्तेंद्रयवकट्फलम् ।

अर्थ–लंघन करने और पेयादि सेवन करने पर भी यदि अतिसार का अनुबंध रहे तो उसे अतिसार वाले रोगी को इन्द्रजौ कुडाकी छाल और अतीस इनके कल्क को शहतमें मिलाकर चांवलों के जलके साथ सेवन करे, अथवा पाठा, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल, दारुहलदी, पीपलामूल, और सोंठ इनको पीसकर शहतमें मिलाकर चांवलों के जलके साथ सेवन करे अथवा अतीस, बेलगिरी कुडाकी छाल, नेत्रवाला और मोथा इनके काथको अथवा अतीस, मरोडफली, हल्दी, इन्द्रजौ और रसौत, के काथको अथवा अतीस, सोंठ, मोथा, इन्द्रजौ, और कायफल इनके काथको शहत मिलाकर पानकरे ।

अन्य प्रयोग ।

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत्
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं सपैत्तं जठरामयम् ।
मुस्ताकषायमेवं वा पिबन्मधुसमायुतम्
सक्षौद्रं शाल्मलीवृंतकषायं वाऽहिमाद्वयं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-जो अतिसारवाला रोगी एक पल इन्द्रजौ का काथ, अथवा एक पल मोथा का काथ, मधुमिलाकर पीवै तौ पैत्तिक उदररोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं। अथवा सेमर के डंठलोंका काथ वा हिमकषाय शहत मिलाकर पीनेसे भी पूर्ववत् गुण होताहै। इसके ऊपर मांसरस का पथ्यहै॥

अन्य प्रयोग।

किरातातिक्तकं मुस्तं वत्सकं सुरसांजनम्
कटंकटेरी हविरं विल्वमध्यं दुरालभाम्।
तिलान् मोचरसं रोध्रं समंगां कमलोत्पलम्
नागरं धातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुत्पलम्।
अर्धश्लोकैः स्मृतायोगाःसक्षौद्रास्तंडुलांबुना

अर्थ-(१) चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ, रसौत, (२) दारुहलदी, नेत्रवाला, बेलगिरी और धमासा, [३] तिल, मोचरस, लोध, मजीठ और नीलकमल, [४] सोंठ, धायके फूल, अनारकी छाल और नीलकमल। आधे आधे श्लोक में कहे हुए इन चार प्रयोगों को शहत में मिलाकर चांवलों के जल के साथ पीने से पित्तातिसार दूर हो जाता है।

पक्वातिसार पर काढा।

निरोद्रयवरोध्रैलाक्वाथः पक्वातिसारनुत्।

अर्थ-हलदी, इन्द्रजौ, लोध, और इलायची इनका काढा पान करने से पक्वातिसार नष्ट होजाता है।

अन्य प्रयोग।

रोध्रांबष्ठाप्रियंग्वादिगणांस्तद्वत् पृथक् पिबेत्

अर्थ-लोध, पाठा, प्रियंग्वादि गणोक्त द्रव्यों का काढा शहत मिलाकर चांवलों के जल के साथ पान करै।

अन्य प्रयोग।

कट्वंगवल्कयष्ट्याह्वकलिनीदाडिमांकुरैः।
पेया विलेपी खलकान्-
कुर्यात्सदधिदाडिमान्। ६५॥
तद्वद्वाधित्थबिल्वाम्र जंबुमध्यैः प्रकल्पयेत्।

अर्थ-कुडा की छाल, मुलहटी, फलिनी और अनार के अंकुर इनसे सिद्ध किये हुए पेया, विलेपी और खल में दही और अनारदाने की खटाई डालकर सेवन करे अथवा कैथ, बेलगिरी, आम और जामन की गुठली का गूदा इनसे सिद्ध किये हुए उक्त पेयादि का सेवन करै।

निरामातिसार में दूध।

अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे तेन चेच्छमः॥
दोषाधिक्यान्न जायेत बलिनं तं विरेचयेत्।

अर्थ-निरामातिसार में बकरी के दूधका प्रयोग करना चाहिये। जो बकरी के दूधसे दोषोंकी अधिकता के कारण शांति न हो और रोगी बलवान् हो तो विरेचन देना चाहिये, दुर्बलको विरेचन देना उचित नहीं है।

अन्य प्रयोग।

व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा॥
पलाशफलनिर्यूहं युक्तं वा पयसा पिबेत्।
ततोऽनु कोष्णं पातव्यं क्षीरमेव यथाबलम्
प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः।

अर्थ-अतिसार वाला रोगी यदि पहिले मल और पीछे रक्त अथवा पहिले रक्त और पीछे मल इस पर्य्यायक्रमसे पुरीषोत्सर्ग करै तो उसे केवल ढाकके फलोंका काढा पान करावै, अथवा उक्त काढेमें दूध मिलाकर देवै, तदनंतर रोगीके बलके अनुसार सुहाता हुआ गरम दूध पीने को दे। इस दूधसे मल के निकलनेपर उदररोग प्रशमित होजातेहैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रायमाण का प्रयोग ।

पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधनी॥

अर्थ–ढाक के फलों के काढे के समान ही त्रायमाणा का काढा सेवन करने से भी कोष्ठ शुद्ध होजाता है ।

शूलमें अनुवासन ।

संसर्ग्यां क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्तते ।
स्नुतदोषस्य तं शीघ्रं यथावन्ह्यनुवासयेत् ॥

अर्थ–उक्त रीति से चिकित्सा द्वारा मल के निकाल देने से कोष्ठ के शुद्ध हो जाने पर भी यदि शूल होताहो तो जठराग्नि के बल के अनुसार उसकी शीघ्रही अनुवासन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

अनुवासन घृत ।

शतपुष्पावरीभ्यां च विल्वेन मधुकेन च ।
तैलपादं पयोयुक्तं पक्वमन्वासनं घृतम् ॥

अर्थ–सोंठ, सितावर, बेलगिरी और मुलहटी और दूध इनके साथ तेल से चौगुना घी पाक करके अनुवासन के काम में लावै ।

पिच्छावस्ति ।

अशांतावतिसारे पिच्छाबस्तिः परं हितः ।

अर्थ–उक्त अनुवासन से भी अतिसार की शांति न होतो पिच्छावस्तिका प्रयोग करना चाहिये । अल्प मात्रा में जो निरूहवस्ति दी जाती है उसको पिच्छावस्ति कहते हैं ।

पित्तातिसार में वस्ति ।

परिवेष्ट्य कुशैरार्द्रैरार्द्रवृतानि शाल्मलेः ॥
कृष्णमृत्तिकयाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना
मृच्छाधे तानि संभुद्य तत्पिंडं मुष्टिसंमितम्
मर्दयेत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः ।
नतयष्ट्याह्वकल्काढ्यक्षौद्रतैलवताऽनु च ।
स्नातो भुंजीत पयसा जांगलेन रसेन वा ॥
पित्तातिसारज्वरशोफगुल्म-
समीरणास्रग्रहणीविकारान् ।
जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृत्ति
विरेचनास्थापनयोश्च बस्तिः ॥ ७५॥

अर्थ–सेमर के हरे डंठलों को हरी कुशाओं से लपेट कर ऊपर से कालीमिट्टी लपेट देवै, फिर उपलों की अग्नि से उसे पकावै, जब मृतिका अग्नि के कारण सूख जाय, तब मिट्टी को दूर करके सेमर के डंठलों को कूट डालेइसमें से चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूध में मर्दन करै और छानकर रखले । फिर इसमें तगर और मुलहटी का कल्क तथा घी, शहत और तेल मिलाकर रख छोडे इसको निरूहवस्ति के काम में लावै। स्नान करके दूध के साथ अथवा मांसरस के साथ भोजन करे । इससे पित्तातिसार, ज्वर, सूजन, गुल्म, वातरक्त, ग्रहणी रोग तथा विरेचन और आस्थापन में जो दोषों की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है उसे भी शीघ्रही नष्ट कर देती है ।

सर्वातिसार पर प्रयोग ।

फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम् ।
वत्सकादिसमायुक्तं सांबष्ठादिसमाक्षिकम् ।

अर्थ–वत्साकादि गण और अंबष्ठादि गणों की औषधों से युक्त कुडा के क्वाथ में शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकार के अतिसार जाते रहते हैं ।

अन्य औषध ।

निरुक्तिरामं दीप्ताग्नेरपि साम्लं चिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् । ७७।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जो अतिसार शूलरहित, आम-रहित, दीप्ताग्निवाला, सरक्त, बहुत दिन का हो और अनेक वर्णों से युक्त हो तो पुटपाक द्वारा उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

अतिसार में रस विशेष।

त्वक्पिंडाद्दीर्घवृंतस्य श्रीपर्णीपत्रसंवृतात्। मृल्लिप्तादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं हिमम् अतीसारी पिबेद्युक्तं मधुना सितयाऽथवा।

अर्थ–दीर्घवृंत की छालका कल्क बनाकर उसे खंभारी के पत्तों में लपेट कर ऊपर से मृत्तिका की तह चढादे फिर इसको उपलों की अग्नि में स्विन्न करके मृत्तिका को दूर करके उसका रस निकालले, इस रस में शहत वा मिश्री मिलाकर सेवन करने से अतिसार जाता रहता है।

अन्य प्रयोग।

एवं क्षीरद्रुमत्वग्भिस्तत्प्ररोहैश्च कल्पयेत्॥ कट्वंगत्वग्घृतयुता स्वेदिता सलिलोष्मणा। सक्षौद्रा हंत्यतीसारं बलवंतमपि द्रुतम्॥

अर्थ–ऊपर कही हुई रीतिसे दूधवाले वृक्षों की छाल और अंकुरों को स्विन्न कर के उनके रसमें शहत मिलाकर सेवन करे अथवा श्यौनाककी छाल में घी लगाकर गरम जलकी भाफसे स्विन्न करके उसके रसमें शहत मिलाकर सेवन करै तो कैसा ही बलवान् अतीसार हो, शीघ्र नष्ट हो जाता है।

पित्तातिसार में अन्य प्रयोग।

पित्तातिसारी सेवेत पित्तलान्येव यः पुनः। रक्तातिसारं कुरुते तस्य पित्तं सतृड्ज्वरम् दारुणं गुदपाकं च तत्र छागं पयो हितम्।

पद्मोत्पलसमंगाभिः शृतं मोचरसेन वा॥ सारिवायष्टिरोध्रैर्वा प्रसवैर्वा वटादिजैः। सक्षौद्रशर्करं पाने भोजने गुदसेचने।८३।

अर्थ–जो पित्तातिसार वाला रोगी पित्त कारक द्रव्यों का सेवन करता है, उसके पित्त प्रकुपित होकर तृषा और ज्वरयुक्त रक्तातिसार और भयंकर गुदपाक करदेता है। इस दशा में पद्म, उत्पल और मजीठ के साथ पकाया हुआ अथवा मोचरस के साथ, अथवा सारिवा, मुलहटी, लोध इनके साथ, अथवा वट आदि दूधवाले वृक्षों के पत्तों के साथ पकाया हुआ बकरी का दूध खाने, पीने और गुदासेचन में हित है।

अन्य रसादि।

तद्वद्रसादपोऽनम्लाः साज्याः पानान्नयोर्हिताः। काश्मर्यफलयूषश्च किंचिदम्लः सशर्करः॥

अर्थ–इसी तरह मांसरसादिक खटाई से रहित घी मिलाकर सेवन करना चाहिये

रक्तातिसार पर पेया।

पयस्यर्धोदके छागे ह्रीबेरोत्पलनागरैः। पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्णी रसान्विता प्राग्भक्तं नवनीतं वा लिह्यान्मधुसितायुतम्

अर्थ–आधा जल मिले हुए बकरी के दूध में नेत्रवाला, उत्पल और पृश्निपर्णीका रस डालकर सिद्ध की हुई पेयापान कराना चाहिये अथवा भोजन करने से पहिले शहत और मिश्री मिलाकर नवनीत का सेवन करना चाहिये।

बलिष्ट रक्तमें उपाय।

बलिन्यस्रेऽस्रमेवाजं मार्गे वा घृतभर्जितम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षीरानुपानं क्षीराशी ह्यहं क्षीरोद्भवं घृतम् कपिंजलरसाशी वा लिहन्नारोग्यमश्नुते ।

अर्थ–रक्तातिसार में जो रक्त की वृद्धि हो तो घी में छोंके हुए बकरे वा मृग के रुधिर को पीना चाहिये । अनुपान में दूध, पथ्य में दूध और दूध से निकला हुआ घी तीन दिन तक देवै, अथवा कपिंजल पक्षी का मांसरस सेवन करने से भी शीघ्र ही आराम होता है ।

अन्य उपाय ।

पीत्वा शतावरीकल्कं क्षीरेण क्षीरभोजनः । रक्तातीसारं हंत्याशु तया वा साधितं घृतम्

अर्थ–दूध के साथ सितावर पीसकर सेवन करै, अथवा सितावरी के साथ पकाया हुआ घी सेवन करै और दूध का भोजन करे तो रक्तातिसार शीघ्र जाता रहताहै ।

सान्निपातिक अतीसार ।

लाक्षानागरवैदेहीकटुकादार्विवत्सकैः । सर्पिः सैद्रयवैः सिद्धं पेयामंडावचारितम् ॥ अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ।

अर्थ–लाख, सोंठ, पीपल, कुटकी, दारुहलदी की छाल और इन्द्रजौ इनको डाल कर पकाया हुआ घी पेया और मंडके साथ सेवन करने पर त्रिदोषवाला दारुण अतिसार भी बहुत जल्दी दूर होजाता है ।

अन्य उपाय ।

कृष्णमृच्छंखचूर्णाढ्यक्षौद्रासक्तंडुलोदकम् जयत्यस्रं प्रियंगुश्च तंडुलांबु मधुप्लुता ।

अर्थ-काली मृत्तिका, शंखकी भस्म, मुलहटी, शहत इनको चांवलों के जलमें मिलाकर पीनेसे अथवा चांवलोंके जलमें शहत मिला हुआ प्रियंगु पीनेसे रक्तातिसार दूर होजाता है ।

अन्य उपाय ।

" कल्कस्तिलानां कृष्णानां-
शर्करापांचभागिकः ॥ १ ॥
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ।

अर्थ–काले तिलोंको पीसकर उसमें पंचमांश खांड मिलाकर बकरी के दूध के साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार जाता रहताहै

अन्य प्रयोग ।

पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चंदनं तंडुलांबुना ॥ दाहतृष्णाप्रमोहेभ्यो रक्तस्रावाच्च मुच्यते ।

अर्थ–चांवलों के जलमें चंदन, मिश्री और शहत मिलाकर पीनेसे दाह, तृषा, मोह और रक्तस्राव जाता रहता है ।

गुददाहादि में उपाय ।

गुदस्य दाहे पाके वा सेकलेपा हिता हिमाः

अर्थ–गुदा के दाह वा पाकमें शीतल परिषेक और शीतल लेप हितकारी होतेहैं ।

रक्तातिसार में पिच्छावस्ति ।

अल्पाऽल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते । यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छ्राच्चरति वा न वा पिच्छावस्तिं तदा तस्य पूर्वोक्तमुपकल्पयेत्

अर्थ–जिस रक्तातिसार में थोडा थोडा करके बार बार बहुतसा रक्त वेदना सहित निकलता है, वायु रुकजाती है अथवा कठिनता से निकलती है वा नहीं भी निकलती है, तब उसे पूर्वोक्त पिच्छावस्ति देना उचित है ।

अन्य प्रयोग ।

पल्लवान् जर्जरीकृत्य शिंशिपाकोविदारयोः पचेद्यवांश्च स काथो घृतक्षीरसमन्वितः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पिच्छास्रुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरुजासु च ॥
पिच्छाबस्तिः प्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणबलावहः

अर्थ-शीशम और कचनार के पत्तों को कूटकर इनके साथ जौका काथ बनावे। इस काथमें घी और दूध मिलाकर इससे पिच्छा बस्ति देवे तो पिच्छिल स्राव, गुदभ्रंश और प्रवाहिका का शूल दूर होजाते हैं। यह बस्ति क्षतक्षीण मनुष्यों को बल देनेवाली है।

अनुवासनवस्ति ।

प्रपौंडरीकसिद्धेन सर्पिषा चाऽनुवासनम् ॥

अर्थ-प्रपौंडरीक के रसमें पकेहुए घृत की अनुवासन बस्ति हितहै।

रक्तातिसार में अवलेह ।

रक्तं विट्सहितं पूर्वपश्चाद्वा योऽतिसार्यते।
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥

अर्थ-जिस रोगी के मलके साथ अथवा मलसे पहिले वा पीछे रक्त निकलता हो उस के लिये शतावरी घृत देना चाहिये।

अन्य अवलेह ।

शर्कराधीशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम्।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः

अर्थ-ताजा नवनीत में आधा भाग चीनी और चौथाई भाग शहत मिलाकर सेवन करनेसे ऊपर कहेहुए रोग शीघ्र जाते रहते हैं, परन्तु पथ्यसे रहना उचितहै।

ऊर्ध्वरक्तमें उपाय ।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थशृंगानापोड्य वासयेत्।
अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनांभसा पचेत् ॥
तदर्धशर्करायुक्तं लेहयेत्क्षौद्रपादिकम्।
अधो वा यदि वाप्यूर्ध्वं यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥

अर्थ-बड, गूलर और पीपल इनकी कोंपलों को कूटकर एक दिन रात गरम जलमें भिगो देवै, फिर इस जलको छानकर इसमें घृत पकावे। घीसे आधी शर्करा और चौथाई शहत मिलाकर सेवन करे तो पूर्ववत् गुणकारी होताहै और रक्तकी प्रवृत्ति चाहै ऊपर के मार्गसे हो, चाहै नीचे के मार्ग से हो शीघ्र दूर होजाती है।

कफातिसार में कर्तव्य ।

श्लेष्मातिसारे वातोक्तं विशेषादामपाचनम्
कर्तव्यमनुबंधस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम्
बिल्वकर्कटिकामुस्तप्राणदाविश्वभेषजम्।
वचाविडंगभूतीकधानकामरदारु वा ॥
अथवा पिप्पलीमूल पिप्पलीद्वयचित्रकाः।

अर्थ-कफातिसार में उन औषधों का विशेष रूपसे प्रयोग करना चाहिये जो वातातिसार में आमके पचाने के निमित्त कही गई हैं। इससे भी जो व्याधि की शांति न हो तो बेलगिरी, मोथा, हरड और सौंठ, अथवा बच, वायविडंग, अजवायन, धनिया और देवदारू अथवा पीपलामूल, दोनों पीपल और चीता इनसे सिद्ध किया हुआ क्वाथ पान कराना चाहिये।

अन्य प्रयोग ।

पाठाग्निवत्सकग्रंथितिक्काशुंठीवचौभयाः ॥
क्वथिता यदि वा पिष्टाः-
श्लेष्मातीसारभेषजम्।

अर्थ-पाठा, चीता, कुडा की छाल, पीपलामूल, कुटकी सौंठ, बच और हरड इनका काथ वा चूर्ण सेवन करनेसे कफातिसार दूर होजाताहै।

कफातिसारपर अन्यऔषध ।

सौवर्चलवचाव्योषहिंगुप्रतिविषाभयाः ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्तश्चूर्णिता-
कोष्णवारिणा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-कफातिसार में संचलनमक, बच, त्रिकुटा, हींग, अतीस और हरड इनका चूर्ण गुनगुने पानीके साथ सेवन करने से कफातिसार जाता रहता है।

अन्य उपयोग।

मध्यं लीढ्वा कपित्थस्य सव्योषक्षौद्रशर्करम्
कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात्।

अर्थ-कैथका गूदा, त्रिकुटा के चूर्ण से युक्त शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करै अथवा कायफल में शहत मिलाकर चाटै तो उदररोग जाते रहते हैं।

अन्य उपाय।

कणां मधुयुतां लीढ्वा तक्रं पीत्वा सचित्रकम्
भुक्त्वा वा बालबिल्वानिव्यपोहत्युदरामयम्

अर्थ-पीपल और शहत मिलाकर चाटै अथवा चीता मिलाकर तक्रपान करै अथवा कच्ची बेलगिरी का सेवन करै तो उदररोग दूर होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

पाठामोचरसांभोदधातकीबिल्वनागरम्
सुकृच्छ्रमप्यतीसारं गुडतक्रेण नाशयेत्।

अर्थ-पाठा, मोचरस, मोथा, धायके फूल, बेलगिरी और सोंठ इन सब का चूर्ण खाकर ऊपर से गुड मिलाहुआ तक्र पीवै तो कष्टसाध्य अतिसार भी दूर होजाता है।

कपित्थाष्टक चूर्ण।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः।
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः
त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः।
चूर्णोऽतीसारग्रहणीक्षयगुल्मोदरामयान्
कासश्वासाग्निसादार्शः पीनसारोचकान्जयेत्

अर्थ-अजवायन, पीपलामूल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर), सोंठ, कालीमिरच, चीता, नेत्रवाला, जीरा, धनियां, संचलनमक, इन सबको समान भाग ले। तथा वृक्षाम्ल, धायके फूल, पीपल, बेलगिरी, अनार और अजमोद के तीन तीन गुने लेवै, शर्करा वृक्षाम्लादि से छः गुनी और कैथ आठ गुना लेवै। इनका चूर्ण बनाकर सेवन करने से अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्मरोग, उदररोग, खांसी, श्वास मंदाग्नि, अर्शरोग, पीनस और अरुचि रोग जाते रहते हैं।

दाडिमाष्टक चूर्ण।

कर्षोन्मिता तवक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम्
यवानीधान्यकाजाजीग्रंथिन्योषं पलांशकम्।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः
गुणैः कपित्थाष्टकधरचूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः।
भोज्यो वातातिसारोक्तैर्यथावस्थं खलादिभिः

अर्थ-बंशलोचन एक तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर प्रत्येक दो दो तोले, अजवायन, धनियां, जीरा, पीपलामूल, सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक चार चार तोले। अनार दाना १२ तोला, और मिश्री ३२ तोला इन सबका चूर्ण बना लेवै। यह दाडिमाष्टक चूर्ण कपित्थाष्टक चूर्णके समान गुणकारी है। इस चूर्णका सेवन वातातिसारोक्त खल और पेयादिके साथ करना चाहिये।

कफातिसार परखल।

सविडंगः समरिचः सकपित्थः सनागरः।
चांगेरीतक्रकोलाम्लःखलःश्लेष्मातिसारजित्

अर्थ-बायविडंग, कालीमिरच, कैथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और सौंठ इन सब द्रव्यों को पीसकर चांगेरी तक्र वा बेरके रसकी खटाई मिलाकर खल तयार करे। इससे कफातिसार नष्ट होजाताहै

अन्य उपाय।

क्षीणे श्लेष्मणि पूर्वोक्तमम्लं लाक्षादिषट्पलम्
पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूं मंडमिश्रिताम् ॥

अर्थ—कफके क्षीण होनेपर गुदशूल और गुदभ्रंशमें कहा हुआ घी, यक्ष्मामें कहा हुआ लाक्षादि षटपलघृत, अथवा यवागू और मंडमिश्रित पुराना घी पान करावै।

वातकफविबंधमें पिच्छावस्ति।

वातश्लेष्मविबंधे च स्रवत्यतिकफेऽपि वा।
शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छावस्तिः प्रशस्यते
वचाबिल्वकणाकुष्ठशताह्वबालवणान्वितः।

अर्थ—वायु और कफके विबंधमें, अथवा कफका अत्यन्त स्राव होनेपर, शूलवत् वेदनामें, अथवा प्रवाहिका में बच, बेलगिरी, पीपल, कूठ, सौंफ, और नमक मिलाकर पूर्वोक्त पिच्छावस्ति देना चाहिये।

कफवातार्त में अनुवासन।

बिल्वतलेन तैलेन वचाद्यैः साधितेन वा ॥
बहुशः कफवातार्तं कोष्णेनान्वासनं हितम्।

अर्थ—कफवातातिसार में बेलगिरी के तेलसे, अथवा वचादि द्वारा सिद्ध किये हुए तेलको थोडा गरम करके बारबार अनुवासन देना हितकारी है।

क्षीणकफादि में कर्त्तव्य।

"क्षीणे कफे गुदे दीर्घकालातीसारदुर्बले ॥
अनिलः प्रबलोऽवश्यं स्वस्थानस्थः प्रजायते।
सबली सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्
वायोरनंतरं पित्तं पित्तस्याऽनंतरं कफम्।
जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमः ॥

अर्थ—कफके क्षीण होनेपर दीर्घ कालानुबंधी अतीसार के कारण दुर्बल हुई गुदा में अपने स्थानमें स्थित हुई वायु अवश्य ही प्रबल होजाती है, यह प्रबल हुई वायु शीघ्र ही प्राणोंका नाश कर देती है, इसलिये इस को शमन करने का उपाय शीघ्र करना चाहिये। वायुके शमन करने के पीछे पित्तको और पित्तको शमन करने के पीछे कफको शमन करना चाहिये। अथवा इन तीनों में जो बलवान् हो पहिले उसीको जीतना चाहिये

वातनाशक क्रियाओंका वर्णन।

भीशोकाभ्यामपि क्षिप्रं कुप्यत्यतस्तयोः
कार्या क्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च ॥

अर्थ—भय और शोकसे वायु शीघ्र कुपित होजाती है, इसलिये इनसे उत्पन्न हुए अतिसार में बातनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा भय और शोक की निवृत्तिके लिये हर्षोत्पादक और आश्वासजनक कर्म करने चाहिये।

शांतोदर के लक्षण।

यस्योच्चारादिना मूत्रं पवनो वा प्रवर्तते।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य शांतस्तस्योदरामयः "

अर्थ—जब मलके विना अधोवायु और मूत्र निकलने लगे, तथा अग्नि प्रदीप्त हो और कोष्ठ हलका हो, तब जानलेना चाहिये कि उदररोग शांत हो गया है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने अतीसारचिकित्सितं नाम नवमोऽध्यायः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतोग्रहणीदोषचिकित्सितंव्याख्यास्यामः

अर्थ--अब हम यहांसे ग्रहणीदोषचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

ग्रहणी में अजीर्ण के उपचार ।

"ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत्

अर्थ--ग्रहणी में आश्रित दोषकी चिकित्सा अजीर्ण के सदृश करनी चाहिये और अतीसारोक्त चिकित्सा के अनुसार आमदोष को पकाना चाहिये ।

भोजन के समय यवागू आदि ।

अन्नकाले यवाग्वादि पंचकोलादिभिर्युतम् ।
वितरेत्पटुलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान् ॥

अर्थ--भोजन का समय होने पर जब भूख चैतन्य हो और देह हलकी हो तब पंचकोलादि अग्निसंदीपन द्रव्यों से सिद्ध की हुई यवागू, पेया ओदन आदि देना चाहिये इसी तरह नमकीन तथा मात्रा और प्रकृति दोनों तरह से हलका अन्न एवं खांडवादि अन्य दीपन योग देने चाहियें ।

आम में पेयादि ।

दद्यात्सातिविषां पेयामामे साम्लांसनागराम्
पानेऽतीसारविहितं वारि तक्रं सुरादि च

अर्थ--ग्रहणीरोग में आमकी अवस्था में अतीस और सोंठ के साथ संस्कृत पेया में थोडे अनारके रसकी खटाई डालकर पान कराना चाहिये । तथा अतीसारोक्त जल, तक्र और सुरादि का पान करना उचितहै ।

ग्रहणी में तक्रविधि ।

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राहि लाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम्
कषायोष्णविकाशित्वादूक्षत्वाच्चकफेहितम्
वातेस्वाद्वम्लसांद्रत्वात्सद्यस्कमविदाहितत्

अर्थ--ग्रहणीरोग में तक्र पथ्य होता है क्योंकि यह अग्निसंदीपन, मलसंग्राही और हलका होता है । तथा मधुरपाकी होने के कारण पित्तको भी दूषित नहीं करता है कषायरसान्वित, उष्णवीर्य, विकाशी और रूक्ष होने के कारण कफ में हित होता है। तथा मधुर, अम्ल और सान्द्र अर्थात् गाढा होनेके कारण वात में हितहै । ताजी तक्र अविदाही होता है । इन ऊपर कहे हुए गुणों से युक्त तक्र ग्रहणी रोग में पथ्य होता है और इससे विपरीत गुणविशिष्ट तक्र अपथ्य होता है, जैसे--अनुद्धृत स्नेह, वर्धितस्नेह, अम्ल, असद्यस्क और विदाही ।

ग्रहणीदोष में चूर्ण ।

चतुर्णां प्रस्थमम्लानांड्यूषणाच्च पलत्रयम्
लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम्
तच्चूर्णं शाकसूपान्नरागादिष्वनुचारयेत् ।
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पार्श्वामयशूलनुत्

अर्थ--बेर, अनार, वृक्षाम्ल और चूका इन चार प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ, त्रिकुटा तीन पल, नमक चार पल, शर्करा आठ पल इनका चूर्ण बनाकर शाक दाल, रोटी राग षाडव आदि में मिलाकर सेवन करे, इससे खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पार्श्वशूल आदि जाते रहते हैं । कोई कोई ऊपर लिखी हुई खटाइयों की जगह वृक्षाम्ल,अम्लवेत,अनार और बेर बताते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आमनाशकपानादि ॥

नागरातिविषामुस्तं पाक्यमामहरं पिबेत्।
उष्णांबुना वा तत्कल्कं नागरं
वाऽथवाऽभयाम्
ससैंधवं वचादिं वा तद्वन्मदिरयाऽथवा।

अर्थ--सोंठ, अतीस और मोथा इनका काथ अथवा गरम जलके साथ इनका कल्क अथवा गरमजलके साथ केवल सोंठ वा हरड का चूर्ण, अथवा गरम जलके साथ, वा मदिरा के साथ वचादिगणोक्त द्रव्योंके चूर्णमें सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से आम का नाश होजाता है।

आम पुरीष में उपाय।

वर्चस्यामे सप्रवाहे पिबेद्वा दाडिमांबुना
बिडेन लवणं पिष्टं बिल्वचित्रकनागरम्।
सामे कफानिले कोष्ठाऽरुष्करे
कोष्णवारिणा ॥१०॥

अर्थ--कच्चे वा प्रवाहिका के लक्षणों से युक्त पुरीष के होने पर बिड नमक को पीसकर अनार के जल के साथ सेवन करे अथवा जो कफ और वायु आमदोष युक्त हों और कोष्ठमें वेदना होती हो तो ईषदुष्ण जल के साथ बेलगिरी, चीता और सोंठ पीवै।

छर्द्यादि में उपाय।

कालिंगहिंग्वतिविषाबचासौवर्चलाभयम्।
छर्दिहृद्रोगशूलेषु पेयमुष्णेन वारिणा
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम्।

अर्थ--वमन, हृदयरोग और शूल हो तो इन्द्रजौ, हींग, अतीस, वच, संचल नमक और हरड इनको गरम जलके साथ पीवै, अथवा हरड, कालानमक, जीरा और काली मिरच इनके चूर्ण को गरम जलके साथ पीवै।

अग्निवर्द्धक पिप्पल्यादि चूर्ण।

पिप्पली नागरं पाठांसारिवां बृहतीद्वयम्।
चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपंचकम्।
चूर्णीकृतं दधिसुरा तन्मंडोऽम्लांबुकांजिकैः
पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम्।

अर्थ--पीपल, सोंठ, पाठा, सारिवा, कटेरी, बडी कटेरी, चीता, कुड़ाकी छाल जवाखार और पांचों नमक इनका चूर्ण दही सुरा, सुरामंड, उष्णजल वा कांजीके साथ पान करने से जठराग्नि की वृद्धि, और कोष्ठस्थ वायुका नाश होजाता है।

पाचन गुटका।

पट्टनि पंच द्वौ क्षारौ मरिचं पंचकोलकम्
दीप्यकं हिंगुगुलिका बीजपूररसे कृता।
कोलदाडिमतोये वा परं पाचनदीपनी ॥

अर्थ--पांचों नमक, (सेंधा, सांभर, बिट्, संचल और उद्भिद) दोनों खार (जवाखार और तुर्जीखार) काली मिरच पंचकोल, अजवायन और हींग, इनको बिजौरे के रसमें घोटकर गोली बनालेवै। अथवा बेर और अनार के रसमें गोली बनाकर सेवन करे। इससे आमका परिपाक और जठराग्नि की प्रदीप्ति होती है।

तालीसपत्रादि चूर्ण।

तालीसपत्रचविकामारिचानां पलं पलम्।
कृष्णा तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुंठी पलत्रयम्
चतुर्जातमुशीरं च कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णितम्
गुडेन वटकान्कृत्वा त्रिगुणेन सदा भजेत् ॥
मद्ययूषरसारिष्टमस्तुपेया पयोनुपः।
वातश्लेष्मामनां छर्दिग्रहणीपार्श्वहृद्गुजाम्॥
ज्वरश्वयथुपांडुत्वगुल्मपानात्ययार्शसाम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसेकपीनसश्वासकासानां च निवृत्तये ॥
अभयां नागरस्थाने दद्यादत्रैव विद्ग्रहे ।
छर्द्यादिषु च पैत्तेषु चतुर्गुणसितान्विताः ॥
पक्वेन वटकाः कार्या गुडेन सितयाऽपि वा
परं हि वह्निसंपर्कात्लघिमानं भजंति ते ॥

अर्थ–तालीसपत्र, चव्य और कालीमिरच प्रत्येक एक एक पल, पीपल और पीपलामूल प्रत्येक दो पल, सोंठ तीनपल, चातुर्जात और खस प्रत्येक एक कर्ष । इन सबको बारीक पीसकर कपडछन करले, फिर इसमें सबसे तिगुना गुड मिलाकर गोलियां बनालेवै । इन गोलियों को सेवन करके मद्य, यूष, मांसरस, अरिष्ट, मस्तु, पेया और दूधका अनुपान करे । इन गोलियों से वातकफाधिक्यवाले रोगियों के वमन, ग्रहणी, पसलीका दर्द, हृदयका दर्द ज्वर, सूजन, पांडुरोग, गुल्म, मदात्यय, अर्श, प्रसेक, पीनस, श्वास, और खांसी दूर होजाते हैं ।

यदि ऊपर के लिखे रोगों में मलकी विबद्धता हो तो सोंठ की जगह हरड डालना चाहिये । यदि उक्त रोगों में वातकफाधिक्य की जगह पित्ताधिक्य हो तो गोली बनाने में गुड न डालकर चौगुनी मिश्री डालकर गोली बना लेवै । प्रथम गुड वा चीनी को अग्नि में पकाकर अर्थात् चाशनी करके फिर इसमें उक्त द्रव्यों का चूर्ण मिला कर गोलियां बना लेवै । ये गोलियां अग्नि के संपर्क से अत्यंत हलकी होजाती है ।

वातग्रहणीरोग की चिकित्सा ।

अथैनं परिपक्वाममारुतग्रहणीगदम् ।
दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदल्पशो भिषक् ॥
किंचित्संधुक्षिते त्वग्नौ सक्तविष्मूत्रमारुतम् ।
स्नेहं स्नेहं वा सक्षेप्य स्विन्नाभ्यक्तं निरूहयेत्
ततः परंडतैलेन सर्पिषा तैल्वकेन वा ।
सक्षारेणाऽनिले शांते स्रस्तदोषं विरेचयेत् ॥

अर्थ–ग्रहणीरोग में आमावस्था की चिकित्सा ऊपर कह चुके हैं, अब निरामावस्था की चिकित्सा कहते हैं ।

वातज ग्रहणीरोग में आमदोष का परिपाक होने पर पंचकोलादि अग्निसंदीपन औषधों से सिद्ध किया हुआ घी थोडा थोडा देना चाहिये । इस तरह अग्नि के किंचिन्मात्र बढने पर भी जो विष्ठा, मूत्र और अधोवायु में रुकावट हो तो दो तीन दिन तक स्नेहन करके फिर स्नेहस्वेद देकर निरूहण बस्ति देना चाहिये । तदनंतर वायुके शांत होने पर अरंड के तेल से अथवा क्षारमिश्रित तैल्वक घृत से प्रच्युत दोष का विरेचन करै ।

अनुवासन प्रयोग ।

शुद्धरूक्षाशयं बद्धवर्चस्कं चाऽनुवासयेत् ।
दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन तं ततः ॥
निरूढं च विरिक्तं च-
सम्यक्चाऽप्यनुवासितम्
लघ्वन्नप्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥

अर्थ–ग्रहणीरोग में विरेचनादि द्वारा कोष्ठ शुद्ध और रूक्ष होजाता है, तथा कोष्ठ के शुद्ध और रूक्ष होने पर मल में विबद्धता होती है इसलिये ऐसे रोगी को दीपनीय शुंठ्यादि, वृक्षाम्लादि और वातनाशक कूठ रास्नादि से सिद्ध किये हुए तेल द्वारा अनुवासन देवै । इस तरह निरूहण, विरेचन और अनुवासन कर्मके पीछे उसको हलके अन्न का भोजन कराके घी का अभ्यास करावै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घृत का प्रयोग।

पंचमूलाभयाव्योषपिप्पलीमूलसैंधवैः।
राजार्कक्षीरद्वयाजाजीविडंगशठिभिर्घृतम्॥
शुष्केण मातुलिंगस्य स्वरसेनार्द्रकस्य वा।
शुष्कमूलककोलाम्लचुक्रिकादाडिमस्य च॥
तक्रमस्तुसुरामंडसौवीरकतुषोदकैः।
कांजिकेन च तत्पक्वमग्निवृद्धिकरं परम्॥
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम्।

अर्थ–पंचकोल, हरड़, त्रिकुटा, पीपलामूल, सेंधानमक, रास्ना, दोनोंक्षार (किसी किसी पुस्तक में क्षारकी जगह क्षीर पाठ करके गौ और बकरी का दूध ग्रहण किया है) जीरा, बायविडंग, कचूर, इन सब द्रव्यों को पीसले, तथा बिजौरे और अदरख का रस, सूखीमूली, बेर, चूका, और अनार इनका काढा, तथा तक्र मस्तु, सुरा, मंड, सौवीर, तुषोदक और कांजी इन सब द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी अत्यंत अग्निसंदीपन है, यह शूल, गुल्म, उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफको दूर करदेता है।

अन्य घृत।

सवीजपूरकरसे सिद्धं वा पाययेद्घृतम्॥

अर्थ–बिजौरे के रसमें सिद्ध किया हुआ घृत पान कराना चाहिये।

अभ्यंग के लिये तेल।

तैलमभ्यंजनार्थे च सिद्धमेभिश्चलापहम्।

अर्थ–उक्त पंचकोलादि द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल अभ्यंग में काम आता है। इसके लगाने से ग्रहणीरोग नष्ट होजाता है।

उक्तद्रव्यों का चूर्ण।

एतेषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखांबुना॥
वातश्लेष्माधृते सामे कफे वा वायुनोद्धते।

अर्थ–उक्त पंचकोलादि द्रव्योंका चूर्ण सुहाते हुए गरम जलके साथ फांकने पर कफावृत वायु, आमदोषान्वित वा वाताधिक्य कफ शांत होजाते हैं।

पित्तजग्रहणी की चिकित्सा।

अग्नेर्निर्वापकं पित्तं रेकेण वमनेन वा। ३२।
हृत्वा तिक्तलघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः।
अम्लैः संधुक्षयेदग्निं चूर्णैः स्नेहैश्च तिक्तकैः।

अर्थ–पतला होनेकी अधिकता से पित्त अग्निको बुझादेता है, इसलिये पित्तको वमन वा विरेचन द्वारा निकालकर तिक्त, लघु, ग्राही, अग्निसंदीपन और अविदाही तथा अम्ल द्रव्योंके चूर्ण और तिक्त द्रव्योंके स्नेहसे अग्नि को प्रबल करनेका यत्न करै।

पित्तजग्रहणी पर चूर्ण।

पटोलनिंबत्रायंतीतिक्तातिक्तकपर्पटम्।
कुटजत्वक्फलं मूर्वामधुशिग्रुफलं वचा॥
दार्वीत्वक्पद्मकोशीरयवानीमुस्तचंदनम्।
सौराष्ट्रमृत्तिक्याव्योषत्वगेलापत्रदारु च॥
चूर्णितं मधुना लेह्यं पेयं मद्यैर्जलेन वा।
हृत्पांडुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान्॥
कामलां सन्निपातं च मुखरोगांश्च नाशयेत्।

अर्थ–पर्वल, नीम, त्रायंती, कुटकी, चिरायता, पित्तपापडा, कुडाकी छाल, इंद्रजौ, मूर्वा, मिष्ट सहजने के बीज, बच, दारुहलदी की छाल, पद्माख, खस, अजवायन, मोथा, चंदन, सौराष्ट्रमृत्तिका, अतीस, त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, तेजपात और देवदारु इन सब द्रव्योंका चूर्ण मधु, मद्य, वा जलके साथ पान करै तो हृदयरोग, पांडुरोग, ग्रहणीरोग, गुल्म, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुखरोग जाते रहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य चूर्ण ।

भूनिंबकटुकामुस्ताव्योषैंद्रयवान् समान् ॥
द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत्
गुडशीतांबुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् ॥
कामलाज्वरपांडुत्वमेहारुच्यतिसारजित् ।

अर्थ–चिरायता, कुटकी, मोथा, त्रिकुटा, और इन्द्रजौ प्रत्येक एक एक भाग, चीता दो भाग, कुडाकी छाल १६ भाग, इन सबका चूर्ण बनाकर गुडके ठंडे शर्बतके साथ पीने से ग्रहणीरोग, गुल्मरोग, कामला, ज्वर, पांडु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार जाते रहते हैं ।

नागरादि चूर्ण ।

नागरातिविषामुस्ताधातकीबिल्वं रसांजनम् ॥
कुटजत्वक्फलं तिक्ता धातकी च कृतं रजः ।
क्षौद्रतंडुलवारिभ्यां पैत्तिके ग्रहणीगदे ॥
प्रवाहिकार्शोगुदरुग्रक्तोत्थानेषु चेष्यते ।

अर्थ–सोंठ, अतीस, मोथा, पाठा, बेलगिरी, रसौत, कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, कुटकी, और धायके फूल शहत और चांवलोंके जल के साथ फांकने से पित्तज ग्रहणी, प्रवाहिका अर्श, गुदशूल, और रक्तजविकार शांत होजातेहैं

चंदनादि घृत ।

चंदनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वां कुटंनटम् ॥
षड्ग्रंथासारिवाऽरुष्करोतासप्तपर्णाटरूषकान् ।
पटोलोदुंबराश्वत्थवटप्लक्षकपीतनम् ॥
कटुकां रोहिणीं मुस्तां निंबं च-
द्विपलांशकान् ।
द्रोणेऽपां साधयेत्तेन पचेत्सर्पिः पिचून्मितैः
किराततिक्तैंद्रयवबीरामागधिकोत्पलैः ।
पित्तग्रहण्यां तत्पेयं कुष्ठोक्तं तिक्तकं च यत् ॥

अर्थ-रक्तचंदन, पदमाख, खस, पाठा, मूर्वा, श्यौनाक, बच, सारिबा, श्यामालता, सप्तपर्णी, अडूसा, पर्वल, गूलर, पीपल, वट, पाकर, बेत, कुटकी, हरीतकी, मोथा और नीम प्रत्येक दो दो पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहनेपर छान कर इस क्वाथमें एक प्रस्थ घी तथा चिरायता, इन्द्रजौ, क्षीर काकोली, पीपल, उत्पल इनका कल्क डालकर पकावै, इस घीको पित्तजग्रहणी में पान करना चाहिये, तथा कुष्ठचिकित्सितमें कहा हुआ तिक्तघृत और महातिक्तघृत का भी इस रोगमें प्रयोग किया जाता है ।

कफजग्रहणी में चिकित्सा ।

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते
कटवम्ललवणक्षारैः क्रमादग्निं विवर्धयेत् ॥

अर्थ–कफसे दूषित ग्रहणी रोगमें प्रथम तीक्ष्ण द्रव्योंसे वमन कराके, कटु, अम्ल, लवण और क्षार द्रव्यों द्वारा क्रमसे जठराग्नि का प्रबल करनेका यत्न करें ।

कफजग्रहणी में पेया ।

पंचकोलाभयाधान्यपाठागंधपलाशकैः ।
बीजपूरप्रवालैश्च सिद्धैः पेयादि कल्पयेत् ॥

अर्थ–पंचकोल, हरड, धनियां पाठा, गंधपत्र और बिजौरे के अंकुरोंसे सिद्ध की हुई पेया कफजग्रहणी में सेवन करना चाहिये ।

कफजग्रहणी में आसव ।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडंगं च ततोऽर्धतः ।
चित्रकस्य ततोऽर्धेन तथा भल्लातकाढकम्
मंजिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत् ।
द्रोणशेषं श्रृतं शीतं मध्वर्धाढकसंयुतम् ॥
पलामृणालगुरुभिश्चंदनेन च रूक्षिते ।
कुंभे मासं स्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत्
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः पित्तरक्तनुत् ।
शोषकुष्ठकिलासानां प्रमेहाणां च नाशनः ॥

अर्थ–महुआ के फूल एक द्रोण बायबिडंग आधा द्रोण, चीता चौथाई द्रोण, भिलावा एक आढक, मजीठ आठ पल इन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सबको तीन द्रोण जलमें पकावै, जब एक द्रोण रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर आधा आढक शहत मिलादे और एक मिट्टीके घडे के भीतर इलायची, कमलनाल, अगर और चन्दन इनको पीसकर लेप करदे, जब सूखजाय तब इस घडे में उक्त क्वाथ भरदे और एक महिने तक बन्द करके रक्खा रहने दे। इस आसव का सेवन करनेसे ग्रहणी प्रदीप्त होतीहै, बल बढ ताहै पित्तरक्त दूर होजाताहै, शोषरोग, कुष्ठ, किलास और प्रमेह नष्ट होजाते हैं।

अन्य आसव।

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्धक्षयीकृतम्।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत्॥
तत्पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत्सर्वान् हिताशनः

अर्थ–महुआ के फूल एक सेर लेकर दो सेर जलमें पकावै, आधा शेष रहनेपर उतार कर छानले, फिर इसमें चौथाई मधु मिलाकर पूर्ववत् एलादि लिप्त पात्रमें एक महिने तक रक्खा रहनेदे। इसके पीनेसे सब प्रकारके ग्रहणी रोग नष्ट होजाते है, परन्तु पथ्यसे रहना बहुत आवश्यकीयहै।

अन्य आसव।

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत्॥

अर्थ–ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार दाख, ईख और खिजूरका आसव तयार करके पीना पूर्ववत् गुणकारक होताहै। जो स्वरस न मिले तो क्वाथ करलेना चाहिये।

ग्रहणी पर क्षार।

हिंगुतिक्तावचामाद्रीपाठेंद्रयवगोक्षुरम।
पंचकोलं च कर्षांशं पलांशं पटुपंचकम्॥
घृततैलद्विकुडवे दग्धः प्रस्थद्वये च तत्।
आपोथ्य क्वाथयेदग्नौ मृदावनुगते रसे॥
अंतर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णीकृत्य घृताप्लुतम्
पिबेत्पाणितलं तस्मिन् जीर्णे स्यान्मुधुराशनः
वातश्लेष्मामयान् सर्वान् हन्याद्विषगरांश्च सः

अर्थ–हींग, कुटकी, बच, अतीस, इन्द्रजौ, गोखरू, पंचकोल, प्रत्येक एक एक कर्ष, पांचों नमक प्रत्येक एक एक पल, घी और तेल दो कुडव, दही दो प्रस्थ। हिंग्वादि को कूटकर मंदी अग्निसे पकावै जब सब रस भीतर प्रविष्ट होजाय तब इस को एक कलश में भरकर ऐसी रीतिसे जलावै कि धूंआं भीतरही रहै। फिर इसको पीसकर इसमेंसे एक तोले घी में सानकर सेवन करे, इसकेपच जानेपर मधुर पदार्थ का भोजन करे। इससे वातकफसे उत्पन्न हुए संपूर्ण प्रकार के रोग, तथा विष और संयोगज विष संबंधी रोग नष्ट होजातेहैं।

अन्य क्षार।

भूनिंब रोहिणीं तिक्तां पटोलं निंबपर्पटम्॥
दग्ध्वा महिषमूत्रेण पिबेदग्निविवर्धनम्।

अर्थ–चिरायता, हरड, कुटकी, पर्वल, नीम और पितपापडा इन सब औषधों को जलाकर भैंसके मूत्रके साथ सेवन करनेसे जठराग्नि प्रबल होती है।

अन्यक्षार।

द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकः कटुरोहिणी॥
मुस्ता च छागमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः

अर्थ–दोनों हलदी, बच, कूठ, चीता, कुटकी, और मोथा इनको जलाकर क्षार बनालेवे इसको बकरी के मूत्रके साथ सेवन करने से अग्नि बढती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य वटिका।

चतुःपलं सुधाकांडात्रिपलंलवणत्रयात्॥
वार्ताककुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले।
दग्ध्वा रसेन वार्ताकात्रुटिकाभोजनोत्तराः
भुक्तमन्नं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिताः
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः॥

अर्थ–थूहरकी टहनी चार पल, तीनों नमक (सैंधा, संचल और बिड) तीन पल, पका हुआ सूखा बेंगन एक कुडव आक आठ पल, चीता दो पल इनको जलाकर बेंगन के रसमें घोटकर गोलियां बना लेवे, भोजन करने के पीछे इन गोलियोंका सेवन करने से खाया हुआ अन्न जल्दी पच जाता है, तथा खांसी, श्वास, अर्श, विसूचिका, प्रतिश्याय और हृदय के रोग विनष्ट होजाते हैं।

मातुलुंगादि चूर्ण।

मातुलुंगशठी रास्ना कटुत्रयहरीतकी।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारो पंचपटूनि च
सुखांबुपीतं तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम्॥

अर्थ–बिजौरा, कचूर, रास्ना, त्रिकुटा, हरीतकी, सज्जीखार, जवाखार, और पांचों नमक इनका चूर्ण गुनगुने जल के साथ फांकने से बल, वर्ण और अग्नि बढतेहैं।

कफज ग्रहणी में घृत।

श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे सवाते तैर्घृतं पचेत्॥
धान्वंतरं षट्पलं च भल्लातकघृताभयम्।

अर्थ–वातयुक्त कफज ग्रहणी रोग में उक्त मातुलुंगादि द्रव्यों द्वारा सिद्ध किया हुआ घी, अथवा प्रमेहोक्त धान्वन्तर घृत, पक्ष्मचिकित्सितोक्त षट्पल घृत, गुल्मोक्त भल्लातक घृत, अथवा उदर चिकित्सितोक्त अभयाघृत रोगानुसार देने चाहियें।

अन्य घृत।

बिडं काचोषलवणं स्वर्जिकायावशूकजान्॥
सप्तलां कंटकारीं च चित्रकं चैकतो वहेत्।
सप्तकृत्वः श्रुतस्याऽस्य क्षारस्याऽर्धाढके-
पचेत्॥ ६४॥
आढकं सर्पिषः पेयं तदाग्निबलवृद्धये।

अर्थ–बिडनमक, कालानमक, खारी नमक, सज्जीखार, जवाखार, सातला, कटेरी, और चीता इन सब द्रव्यों को एक ही पात्र में रखकर जलालेवे, फिर इस राख को पानी में घोल घोलकर सातबार छानै, इस छनेहुए आधे आढक क्षारजल में एक आढक घी पकाकर मात्रानुसार सेवन करने से अग्निका बल बढता है।

सान्निपातज ग्रहणी में कर्तव्य।

निचये पंचकर्माणि युंज्याच्चैतद्यथाबलम्॥

अर्थ–सन्निपातज ग्रहणीरोग में रोगी के दोष के बलके अनुसार वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और नस्यकर्म का प्रयोग करना चाहिये। प्रायः ग्रहणीदोष में नस्यकर्म का प्रयोजन नहीं पडा करता है। च शब्द से पृथक् पृथक् तीनों दोषों में कही हुई चिकित्साभी त्रिदोषज ग्रहणी रोगमें उपयोगी होती है।

यहां तक चारों प्रकार के ग्रहणीरोगों की चिकित्सा का वर्णन करके अब दोषानुसार और अवस्थानुसार मंदाग्नि का आश्रय लेकर चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रतिदोषानुसार चिकित्सा ।

प्रसेके श्लैष्मिकेऽल्पाग्नेर्दीपनं रूक्षतिक्तकम्।
योज्यं कृशस्य व्यत्यासात्स्निग्धरूक्षं कफोदये
क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम्।
दीपनं बहुपित्तस्य तिक्तं मधुरकैर्युतम् ॥

अर्थ–वातिक और श्लैष्मिक भेदों से प्रसेक दो प्रकार का होता है । इनमें से मंदाग्निवाले रोगी के कफके प्रकोप से उत्पन्न हुए प्रसेक में मंदाग्नि के उद्दीपन के निमित्त रूक्ष और तिक्त द्रव्यों का प्रयोग करे । इस में घृत वा मधुराम्ललवण द्रव्यों का उपयोग न करना चाहिये । कफप्रसेक का यह लक्षण है 'श्लेष्मणेऽति प्रसेकेन वायुःश्लेष्मणमस्यतीति । मंदाग्नि के साथ कृशता हो तो कफ के उदय में पर्य्यायक्रम से स्निग्ध और रूक्ष क्रिया करना चाहिये अर्थात् स्निग्ध क्रिया करके रूक्षक्रिया और रूक्ष क्रिया करके स्निग्ध क्रिया करना चाहिये । यदि कफाधिक्यवाले कृश और रूक्ष व्यक्ति के केवल रूक्षक्रिया ही की जायगी तो कृशता बढ जायगी । और केवल स्निग्धक्रिया करने से कफकी वृद्धि होगी पर्य्यायक्रम से स्निग्धक्रिया का विधान है । क्षीण और क्षाम शरीरवाले रोगी के कफोदय में घृतसंयुक्त पंचकोलादि दीपन औषधों की योजना करनी चाहिये । पित्ताधिक्य मंदाग्निवाले रोगी के लिये मधुर द्रव्यों से युक्त अग्निसंदीपन तिक्त द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये । वाताधिक्य मंदाग्निवाले रोगी के लिये अम्ल और लवण द्रव्यों से युक्त-स्नेह हित होता है ।

स्नेहकी उत्कृष्टता ।

स्नेहोऽम्ललवणैर्युक्तो बहुघातस्य शस्यते ।
स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ॥
नाऽलं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि ।

अर्थ–दुर्बल अग्निके उद्दीपनके लिये स्नेह परम प्रधान औषधहै, इसलिये दोषकी प्रतिपक्षी औषधोंसे सिद्ध किया हुआ स्नेह विशेष करके पथ्य होताहै । क्योंकि भारी अन्नका भोजन करनेसे भी स्नेह से उद्दीपित हुई अग्नि बुझ नहीं सकती है ।

घृतका अन्य प्रयोग ॥

योऽल्पाग्नित्वात्कफे क्षीणे वर्चः पक्वमपि स्रथम् ॥ ६९ ॥
मुंचेद्यद्बौषधयुतं स पिबेदल्पशो घृतम् ।
तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मण्यग्नि नियोजितः ॥
समानो दीपयत्यग्निमग्नेः संधुक्षको हि सः ।

अर्थ–अग्निके मंद पडजाने के कारण कफके क्षीण होनेपर जिस रोगी का पक्व मल भी शिथिल होजाताहै, उसको उचितहै कि सेंधानमक और शुंठी से युक्त घृत थोडा थोडा पान करे । ऐसा करनेसे समान वायु अपने मार्गपर आकर और अपने कर्ममें नियोजित होकर अग्नि को प्रदीप्त करती है, क्योंकि समान वायु ही अग्निको उद्दीपन करनेवाली है ।

अन्य प्रयोग ।

पुरीषं यश्च कृच्छ्रेण कठिनत्वाद्विमुंचति ॥
स घृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत् ।

अर्थ–जो मनुष्य मलके कठोर होजाने के कारण कठिनतासे त्यागताहै, उसको पांचों लवणसे युक्त घृतपान कराकर अन्न का भोजन करादे, ऐसा करनेसे घृतका सहसा ऊर्ध्व गमन रुकजाताहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रौक्ष्यमें स्नेहपान ।

रौक्ष्यान्मंदेऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैः पिबेत्

अर्थ–रूक्षता के कारण मंदाग्नि होने पर अग्निसंदीपन औषधों से युक्त घी वा तेल पानकराना चाहिये ।

स्नेह से हुई मंदाग्निमें उपाय ।

क्षारचूर्णासवारिष्टान् मंदे स्नेहातिपानतः ।

अर्थ–घृतादि स्नेहके अतिपान से उत्पन्न हुई मंदाग्निमें क्षार, चूर्ण, आसव और अरिष्ट पान करावै ।

उदावर्त में उपाय ।

उदावर्तात्प्रयोक्तव्या निरूहणस्नेहवस्तयः ।

अर्थ–उदावर्त से उत्पन्न हुई मंदाग्नि में निरूहण और स्नेहवस्तियों का प्रयोग करना चाहिये ।

दोषाधिक्य में मंदाग्नि ।

दोषाऽतिवृद्ध्याऽमंदेऽग्नौ संशुद्धोऽन्नविधिं चरेत्

अर्थ–दोषकी अतिवृद्धि से उत्पन्न हुई मंदाग्नि में वमनविरेचन से शुद्ध करने के पीछे पेयादि क्रम द्वारा उपचार करना चाहिये।

व्याधियुक्त मंदाग्नि ।

व्याधिमुक्तस्य मंदेऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम् ।

अर्थ–व्याधि दूर होनेपर भी जो मंदाग्नि रहै उसमें घृतपान कराने सेही अग्नि प्रदीप्त होती है ।

मार्गादिश्रमण से मंदाग्नि ।

अध्वोपवासक्षामत्वैर्यवाग्वा पाययेद्घृतम् ।
अन्नावपीडितं वल्यं दीपनं बृंहणं च तत् ॥

अर्थ–मार्गश्रमण, उपवास, और क्षीणता होने से जो मंदाग्नि होती है उसमें यवागू के साथ घृतपान कराना चाहिये, क्योंकि भोजन के बीचमें पान किया हुआ घी बलकारक, पुष्टिकारक और अग्निसंदीपन होता है ।

दीर्घकाल की मंदाग्नि ।

दीर्घकालप्रसंगात्तु क्षामक्षीणकृशान्नरान् ।
प्रसहानां रसैः साम्लैर्भोजयेत्पिशितादिनाम् ।
लघूष्णकटुशोधित्वाद्दीपयत्याशुतेऽनलम् ।
मांसोपचितमांसत्वात्परं बलवर्धनम् ॥

अर्थ–जो रोगी बहुत दिनसे रोगग्रस्त हो और इससे उसकी अग्नि मंद पडजाने के कारण दुर्बल, क्षीण और कृशहो गयाहो उसे मांसभक्षी प्रसहजीवों का मांसरस, अनारके रससे खट्टा करके भोजन में देना चाहिये । इसका कारण यह है कि प्रसह जीवों का मांसरस हलका, उष्ण और शोधनकर्ता होता है, इसलिये अग्नि को शीघ्र उद्दीप्त करता है, दूसरा कारण यहहै कि प्रसह प्राणियों का मांस, मांसद्वारा उपचित होता है, इसलिये भी शीघ्र बलवर्द्धक हैं ।

स्नेहादि अग्निवर्द्धक ।

स्नेहासवसुरारिष्टचूर्णक्वाथहिताशनैः ।
सम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते ॥

अर्थ–स्नेह, आसव, सुरा, अरिष्ट, चूर्ण, क्वाथ और हितकारी भोजन इनका यथायोग्य प्रयोग करने से देह और अग्नि दोनों का बल बढता है ।

अग्निवर्धन में दृष्टांत ।

दीप्तो यथैव स्थाणुश्च बाह्योऽग्निः सारदारुभिः
सस्नेहैर्जायते तद्वदाहारैः कोष्ठगोऽनलः ॥

अर्थ–जैसे स्नेहपदार्थयुक्त सारवृक्ष अर्थात् शमी और खदिरादि की लकडियों में लगी हुई अग्नि प्रज्वलित और स्थिर हो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाती है, वैसेही स्नेहयुक्त पथ्य आहारादि के सेवन से कोष्ठाग्नि तीव्र और स्थायी होजाती है।

भोजनातिभोजनसे नष्टाग्नि।

ना भोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात्।
यथा निरिंधनो वह्निरल्पो वाऽतींधनान्वितः

अर्थ—भोजन न करने से वा अतिभोजन करने से कोष्ठाग्नि ऐसे नष्ट होजातीहै, जैसे वाह्याग्नि ईंधन न मिलने से नष्ट हो जाती है वा अल्प अग्नि बहुत से ईंधन से दबने के कारण नष्ट होजाती है।

अग्निवर्धनप्रकार।

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पवनानुगम्।
प्रवृद्धं वर्धयत्यग्निं तदाऽसौ सानिलाऽनलः।
पक्त्वान्नमाशु धातूंश्च सर्वानोजश्च-
संक्षिपन्।
मारयेत्साशनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु-
ताम्यति॥ ८२॥
तृट्कासदाहमूर्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः

अर्थ—कफके क्षीण होने पर जब पित्त अपने स्थान अर्थात् आमाशय में प्रवृद्ध हो कर तथा वायुसे संयुक्त होकर जठराग्निको अत्यन्त बढाता है, तब यह वायुसे संधुक्षित जठराग्नि भुक्त अन्नका परिपाक कर के पचाने के लिये और कुछ न मिलने के कारण संपूर्ण धातुओं को पकाकर और ओजःपदार्थ का नाश करके शीघ्रही मनुष्य को मारडालता हैं। अत्यन्त अग्निवाला मनुष्य भोजन करने से सुस्थ होजाता हैं और भुक्त अन्न के पचने पर उपतप्त हो जाता हैं। अत्यग्नि से तृषा, खांसी, दाह, और मोहादि रोग उत्पन्न होजाते हैं।

भस्मक अग्निका शमनोपाय।

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धमंदसांद्रहिमस्थिरैः॥
अन्नपानैर्नयेच्छांतिं दीप्तमग्निमिवांबुभिः।

अर्थ—उस भस्मकाख्यं अत्यग्निको गुरु स्निग्ध, मंद, सान्द्र, हिम और स्थिर अन्नपान द्वारा शमन करना चाहिये जैसे प्रज्वलित अग्नि जलसे बुझाई जाती है।

अजीर्णमें भोज्यादि।

मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत्॥
निरिंधनोऽतरं लब्ध्वा यथैनं न विपादयेत्।

अर्थ-अजीर्णसे पीडित रोगीको भी बार बार भोजन देना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि अन्नके न मिलने से रोगी ऐसे न मरजाय, जैसे ईंधनके न मिलनेसे अग्नि मरजातीहै

भोजनके योग्यद्रव्य।

कृशरां पायसं स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम्॥
औदकानूपपिशितानि भृतानि च।
मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान् स्थिरतोयचराश्चये

अर्थ-जो रोगी अत्यग्निसे पीडित हो उसे खिचडी, खीर, स्निग्ध द्रव्य, पिष्टक, गुडके बने पदार्थ, औदक और आनूप जीवों का मांस, बराहादि मेदस्वी जीवोंका मांस; विशेष करके श्लक्ष्ण मत्स्य, तथा स्थिर जल में रहने वाली मछलियां आहारके काममें लावै।

मेंढे का मांस।

आविकं सुभृतं मांसमद्यादत्यग्निवारणम्।

अर्थ-अत्यन्त मेदुर मेंढे का मांस खाना उचित है, यह अत्यग्नि को रोकता है।

दूधका विधान।

पयः सहमधूच्छिष्टं घृतं वा तृषितः पिबेत्॥
गोधूमचूर्णपयसा, बहुसर्पिः परिप्लुतम्।
आनूपरसयुक्तान्वा स्नेहांस्तैलविवर्जितान्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्यामात्रिवृद्विपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ।
असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ।

अर्थ–अत्यग्नि से पीडित रोगी को प्यास लगने पर मोम मिलाहुआ दूध वा घी पान करावै । अथवा बहुत घी डालकर दूध में मिला हुआ गेंहूं का चूर्ण, अथवा तेल के सिवाय अन्य स्नेहों से युक्त आनूप जीवों का मांसरस, अथवा श्यामा और निसोथ के साथ पकाये हुए दूध का विरेचन देवे, अथवा पित्तको दूर करनेवाली खीरका बार बार आहार देवै ।

चिकित्सा का संक्षेप वर्णन ।

यत्किंचिदगुरु मेध्यं च श्लेष्मकारि च भोजनम्
सर्वं वत्यग्निहितं भुक्त्वा च स्वपनं दिवा ॥

अर्थ–वे संपूर्ण द्रव्य जो भारी, मेदस्कर और कफकारक हैं वे सब अत्यग्निमें हितहैं और भोजन करके दिनमें सोना भी हित है ।

उक्त कथन का हेतु ।

आहारमग्निः पचति दोषानाहारवर्जितः ।
धातून् क्षीणेषु दोषेषु जीवितं धातुसंक्षये ॥

अर्थ–अत्यग्नि प्रथम आहार को पचाती है, आहार न मिलने पर बातादि दोषों को तदनंतर रसरक्तादि धातुओं को पचाती है, तथा दोषों के क्षीण और धातुओं का संचय होने पर प्राणों का नाश करदेतीहै ।

विरुद्ध अन्न का वर्णन ।

एतत्प्रकृत्यैव विरुद्धमन्नं
संयोगसंस्कारवशेन चेदम् ।
इत्याद्यविज्ञाय यथेष्टचेष्टा-
श्चरंति यत्साऽग्निबलस्य शक्तिः ॥
तस्मादग्निं पालयेत्सर्वयत्नै-
स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव ।
दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगसंघै-
र्युक्ते नु स्यान्नीरुजो दीर्घजीवी " ॥

अर्थ–करोंदा, दही, सरसों, फाणित, सूखामांस, अंकुरित अन्न, कच्चीमूली और लकुच ये स्वभावविरुद्ध हैं । दूध खटाई, आनूप मांस और उरद ये संयोग विरुद्ध हैं हरितमांस शूल पर न भुना हुआ ये संस्कार विरुद्ध है, आदि शब्द से मात्राविरुद्ध, कालविरुद्ध और पात्रविरुद्ध अन्नों की बिना विवेचना किये आहार विहारादि को सेवन करता हुआ जीवित रहता है वह सब अग्नि के बल की सामर्थ्य है, इसलिये सब प्रकार से अग्निकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि अग्नि के नष्ट होने से मनुष्य शीघ्र मरजाता है । अग्नि के दोषों से ग्रस्त होने पर मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस लिया जाता है । और यदि अग्नि स्वच्छ हो तो मनुष्य निरोग रहता है और बहुत काल तक जीवित रहता है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने ग्रहणीदोषचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतोमूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे मूत्राघात चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूत्राघात में स्वेदादि ।

"कृच्छ्रे बातघ्नतैलाक्तमधोनाभेः समीरजे ।
स्निग्धैः स्वेदयेदंगं पिंडसेकावगाहनैः । १ ।

अर्थ–बातज मूत्राघात में वातनाशक बलातैलादि से अभ्यंग करके नाभि के नीचे के भाग में अच्छीतरह से स्निग्ध पिंडस्वेद, परिषेक और अवगाहन से स्वेदन करै ।

शूलनाशक तैल ।

दशमूलवलैरंडयवाभीरुपुनर्नवैः ।
कुलत्थबोलपत्तूरवृश्चीबोपलभेदकैः । २ ।
तैलसर्पिर्वराहक्ष्णवसाः क्षथितकल्कितैः ।
सपंचलवणाः सिद्धाः पीताः शूलहरा परम् ।

अर्थ–दसमूल, खरैटी, अरंड शतमूली सांठ, कुलथी, बेर, रक्तचंदन, लालसांठ, और पाखानभेद इनके क्वाथ और कल्क के साथ तेल घी अथवा शूकर वा घुग्घू की चर्बी को पकाकर पांचों नमक मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र की वेदना शांत होजाती है ।

अन्य प्रयोग ।

द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिंडोपनाहने ।
सहतैलफलैर्युज्यात्साम्लानि स्नेहवंति च ॥

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र के निवारण के लिये ऊपर लिखे हुए दशमूलादि द्रव्यों की अन्न पान में योजना करै । तथा नारियल और अखरोट आदि तैल फल को तक्र वा कांजी की खटाई से युक्त करके और बहुत सा स्नेह डालकर पिंडस्वेद और उपनाह स्वेद देना चाहिये । कोई २ तैल फलसे तिलों का ग्रहण करते हैं ।

उक्त रोग पर मद्यपान ।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां पिबेन्मूत्ररुजापहाम् ।

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र की वेदना की शांति के लिये बहुत सा कालानमक डालकर मद्यपान करना चाहिये ।

पैत्तिक मूत्राघात में उपाय ।

पैत्ते युंजीत शिशिरं सेकलेपावगाहनम् ॥

अर्थ–पित्तज मूत्राघात में ठंडे सेक, लेप और अवगाहन करने चाहिये ।

अन्य उपाय ।

पिबेद्वरीं गोक्षुरकं विदारीं सकसेरुकाम् ।
तृणाख्यं पंचमूलं च पाक्यं समधुशर्करम् ।

अर्थ–सितावर, गोखरू, विदारी कंद, कसेरू, और तृण पंचमूल इनके क्वाथ में शहत और शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज मूत्राघात नष्ट होजाता है ।

अन्य उपाय ।

वृषकं त्रपुसैर्वारु लट्वावीजानि कुंकुमम् ।
द्राक्षांभोभिः पिबेत्सर्वान्मूत्राघातान्व्यपोहति ॥

अर्थ–पाषाणभेद, खीरा के बीज, कसूम के बीज, और केसर इन सब द्रव्यों के कल्क को द्राक्षा के रसके साथ पीने से सब प्रकारके मूत्राघात नष्ट होजाते हैं ।

अन्य उपाय ।

एर्वारुबीजयष्ट्याह्वदार्वीर्वा तंडुलांबुना ।
तोयेन कल्कं द्राक्षायाः पिबेत्पर्युषितेन वा ॥

अर्थ–ककडी के बीज, मुलहटी, और दारुहलदी इनके कल्कको चांवलोंके जलके साथ पान करै, अथवा दाखके कल्कको बासी जलके साथ पानकरै तो पैत्तिक मूत्राघात शांत होजाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफजमूत्राघात में उपाय ।

कफजे वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णकटुभोजनम् ।
यवानां विकृतीः क्षारं कालशेयं च शीलयेत्

अर्थ–कफज मूत्रकृच्छ्रमें वमन, स्वेदन, तीक्ष्ण उष्ण और कटु भोजन, जौके बने हुए खाद्य पदार्थ, जवाखार और घोल हितकारी होतेहैं

अन्य प्रयोग ।

पिबेन्मधेन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा ।
सारसास्थिश्वदंष्ट्रैलाव्योषं वा मधुमूत्रवत् ॥
स्वरसं कंटकार्या वा पाययेन्माक्षिकान्वितम्
शितिवारकबीजं वा तक्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम्
धवसप्ताह्वकुटजं गुडूचीचतुरंगुलम् ।
कटुकैलाकरंजं च पाक्यं समधुसाधितम् ॥
तैर्वा पेयां प्रवालं वा चूर्णितं तंडुलांबुना ।
सतैले पाटलाक्षारं सप्तकृत्वाऽथवा शृतम्

अर्थ–मद्यके साथ छोटी इलायची पीस कर पानकरै, अथवा आमलेके रसके साथ इलायची पीवै । अथवा सारसकी अस्थि, गोखरू, इलायची और त्रिकुटा इनके चूर्णमें शहत और गोमूत्र मिलाकर पानकरै, अथवा कटेरीके रसमें शहत मिलाकर पीवै, अथवा कंजेके बीज बारीक पीसकर तक्रके साथ पीवै, अथवा धायके फूल, सातला, कुडाकी छाल, गिलोय, अमलतास, कुटकी, इलायची कंजा, इनके काढेमें शहत डालकर पीवै, अथवा धायके फूल आदि उक्त द्रव्योंके साथ सिद्ध की हुई पेया पानकरै । अथवा मूंगेकी भस्म चांवलोंके जलके साथ पीवै, अथवा पाटला के क्षारको जलमें घोलकर सात वार छानकर इस क्षारजलमें तेल मिलाकर पीवै ।

अन्य अवलेह ।

पाटलीयावशूकाभ्यां पारिभद्रं तिलादपि ।
क्षारोदकेन मदिरां त्यगेलोषकसंयुतम् ॥
पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान् पृथक्पृथक्

अर्थ–पाटला का क्षार और जवाखार अथवा नीमखार और तिलखार इनको जलमें घोलकर इस क्षारजल के साथ मदिरा तथा उसमें दालचीनी, इलायची, और क्षार मृत्तिका मिलाकर पीवै अथवा दालचीनी, इलायची और क्षारमृत्तिका को गुडकी चाशनी के साथ अलग अलग मिलाकर चाटै ।

सान्निपातिक मूत्राघात ।

सन्निपातात्मके सर्वं यथावस्थमिदं हितम् ॥
अश्मन्यथ चिरोत्थाने वातबस्त्यादिकेषु च

अर्थ–ऊपर जो पृथक् पृथक दोषोंसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा कही गई है वेही सब सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें रोगोंकी अवस्था पर विचार करके काममें लावै । थोडे कालके अश्मरी रोग, वातबस्ति, वातकुंडलिका रोगोंमें उक्त रीतिसे चिकित्सा कर्तव्य है।

अश्मरी में कर्तव्य ।

अश्मरी दारुणो व्याधिरंतकप्रतिमो मतः ॥
तरुणो भेषजैः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ।

अर्थ–पथरी रोग बडा भयंकर होता है, यह साक्षात् यमका सहोदर है, नये हुए रोग में औषध काम देजाती है, परंतु पुराना होने पर जब बढ जाता है तब अस्त्रप्रयोग की आवश्यकता होती है ।

पथरी के पूर्वरूप में कर्तव्य ।

तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १७

अर्थ–पथरी के पूर्वरूप में स्नेह, स्वेदन और वमन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

अश्मरी में स्नेहविधि ।

पाषाणभेदो वसुको वाशिरोऽश्मंतको वरी ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कपोतवंकातिबलाभल्लूकोशीरकंटकम् ॥१८
वृक्षादनी शाकफले व्याघ्री गुंठाखिकंटकम्।
यवाः कुलत्थाः कोलानि वरुणः कतकात्फलम्
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम्।
भिनत्ति वातसंभूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम्

अर्थ-पाखानभेद, शोरा, खारीनमक, अश्मंतक, सितावर, ब्राह्मी, अतिबला, श्यौनाक, खस, कंटक, रक्त चंदन अमरबेल, शाकफल, कटेरी, गुंठतृण, गोखरू, जौ, कुलथी, बेर, वरुणा और निर्मली इन सब द्रव्यों के काढे में ऊषकादि गणोक्त द्रव्यों का प्रतीवाप देकर घृत पकावै, इस घीके पीने से वातज अश्मरी नष्ट होजाती है (ऊषकादिगणः—क्षीरमृत्तिका, सेंधानमक शिलाजीत, दोनों प्रकार का कसीस हींग और तूतिया)।

वाताश्मरी का भेदन पान।

गंधर्वहस्तवृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात्।
मूलकल्कं पिबेद्भग्ना मधुरेणाऽश्मभेदनम् ॥

अर्थ-अरंड, दोनों कटेरी, गोखरू कालाईख इनकी जड़ को पीसकर मीठे दही के साथ पीने से पथरी टुकडे टुकडे होकर निकल जाती है।

पित्ताश्मरी की चिकित्सा।

कुशः काशः शरो गुंठइक्कटो मोरटोऽश्मभित्
दर्भो विदारी वाराही शाली मूलं त्रिकंटका
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरंटकः।
पुनर्नवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद्घृतम् ॥
पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनेंदीवरेण वा।
मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरिभेदनम् ॥

अर्थ-कुश, काश, सर, गुंठतृण, इक्कट मोरट, पाखानभेद, दाभ, विदारीकंद, वाराहीकंद, चौलाई की जड़, गोखरू, श्यौनाक, पाटली, पाठा, रक्तचंदन, कुरंटक, और सांठ इनके काढे में उक्त त्रपुसादि (खीरा ककडी, और कसूमके बीज) के बीज, नीलकमल के बीज मुलहटी और शिलाजीत का कल्क डालकर घृत पकावै, इस घृतका सेवन करने से पित्तज अश्मरी के टुकडे होजाते हैं।

कफजअश्मरी की चिकित्सा।

वरुणादिः समीरघ्नौ गणावेलाहरेणुका।
गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः ॥
तैः कल्कितैः कृतावापमूषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफजामाशु साधितं घृतमश्मरीम्

अर्थ-वरुणादिगण, वीरतरादिगण, विदार्यादिगण, इलायची, रेणुक, गूगल, कालीमिरच, कूठ, चीता, देवदारू, और ऊपर कहे हुए ऊषकादिगण इन सबका कल्क करके घृत पकावै। इस घृत के सेवन करने से कफज अश्मरी के टुकडे हो जाते हैं।

क्षारादि विधि।

क्षारक्षीरयवाग्वादि द्रव्यैः स्वैः स्वैश्च कल्पयेत्।

अर्थ-अपने अपने योग्य द्रव्यों से क्षार, दूध, और यवागू आदि की कल्पना करनी चाहिये।

शर्करा का उपाय।

पिचुकांकोलकतकशाकेंदीवरजैः फलैः ॥
पीतमुष्णांबु समुडं शर्करापातनं परम्।

अर्थ-कंजा, कंकोल, निर्मली, शाकफल और नीलकमल के बीज इनके उष्ण काढे को गुड के साथ पान करै, इससे शर्करारोग दूर होजाता है।

शर्करा का अन्य उपाय।

क्रौंचोष्ट्रखरसभाक्षीतेि श्वदंष्ट्रा तालपत्रिका ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अजमोदाकदंबस्य मूलं बिल्वस्य चौषधम्।
पीतानि शर्करां भिंद्युः सुरयोष्णोदकेन वा ॥

अर्थ–बगुला, ऊंट और गधे की अस्थि गोखरू, तालपत्री, अजमोद, कदंबकी जड, बेलगिरी और सोंठ इनके कल्क को मद्य वा गरम जल के साथ पान करने से शर्करा रोग जाता रहता है।

अश्मरी पर चूर्ण।

नृत्यकुंडकबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम् ॥

अर्थ–तुंवरी के बीजों का चूर्ण शहत में मिलाकर खाय उपर से भेडका दूध पीवै इस तरह सात दिन करने से अश्मरी रोग जाता रहता है।

अश्मरी पर क्वाथ।

क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदूष्णोऽश्मरिपातनः

अर्थ–सहंजने की जडका काढा गरम गरम पीने से अश्मरी रोग दूर होजाता है।

अश्मरी पर क्षार।

तिलार्कमार्गकदलीपलाशयवसंभवः। ३१।
क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च।

अर्थ–तिल, आंगा, केला, ढाक और जौ इनका क्षार भेडके दूध के साथ पीनेसे शर्करा और अश्मरी जाते रहते हैं।

अश्मरी पर कपोतवंका।

कपोतवंकामूलंवा पिबेदेकं सुरादिभिः॥
तत्सिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः।
हरीतक्यस्थिसिद्धं वा साधितं वा पुनर्नवैः॥
क्षीरान्नभुग्बर्हिशिखामूलं वा तंडुलांबुना।

अर्थ–अश्मरी और शर्करा रोग में वेदना होती हो तो केवल ब्राह्मी की जड पीस कर सुरा वा उष्ण जलके साथ पान करै, अथवा ब्राह्मी डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पीवै, अथवा हरीतकी की गुठली वा पुनर्नवा से सिद्ध किया हुआ दूध पीवै, अथवा मयूरशिखा की जड चांवलों के पानीके साथ पान करे और दूधके साथ अन्नका पथ्यकरै

मूत्राघात में क्रियाविभाग।

मूत्राघातेषु विभजेदतः शेषेष्वपि क्रियाम् ॥

अर्थ–मूत्रातीतादि बचेहुए मूत्राघात रोगों में उन चिकित्साओं की विवेचना करके देना चाहिये जो ऊपर कहीगई हैं।

सब प्रकारके मूत्राघात की चिकित्सा।

बृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणीकृतगोक्षुरे।
तोयं पयो वा सर्पिर्वा सर्वमूत्रविकारजित्

अर्थ–बृहत्यादि गणोक्त द्रव्य और दुगुना गोखरू इनका काढा अथवा इनके साथ सिद्ध किया हुआ दूध वा घृत सब प्रकारके मूत्रविकारों को दूर करदेता हैं।

देवदार्वादि पान।

देवदारुं घनं मूर्वां यष्टीं मधु हरीतकीम्।
मूत्राघातेषु सर्वेषु सुराक्षीरजलैः पिबेत् ॥

अर्थ–देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा, मुलहटी और हरीतकी इनमें से किसी एक द्रव्यको सुरा, क्षीर वा जलके साथ पानकरने से सब प्रकारके मूत्राघातरोग दूर होजातेहैं।

धन्वयासरसादिपान।

रसं वा धन्वयासस्य कषायं कक्षुभस्य वा।
सुखांभसा वा त्रिफलां पिप्पलीं सैंधवसंयुताम्
व्याघ्रीगोक्षुरकक्काथे यवागूं वा सफाणिताम्
क्वाथे वीरतरादेर्वा ताम्रचूडरसेऽपि वा ॥
अद्यद्वीरतरादेन भावितं वा शिलाजतु।

अर्थ–जवासे का रस, वा अर्जुन का क्वाथ, अथवा त्रिफला और सेंधानमक पीस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर गरम जल के साथ, अथवा कटेरी और गोखरू के काढ़े में सिद्ध की हुई यवागू गुड़ की राब के साथ, अथवा वीरतरादि गण के काढ़े अथवा मुर्गे के मांस रस के साथ सिद्ध की हुई पेया अथवा वीरतरादि गणोक्त द्रव्यों के काढ़े की भावना दिया हुआ शिलाजीत सेवन करै।

अन्य उपाय।

मद्यं वा निगदं पीत्वा रथेनाश्वेन वा व्रजन्॥
शीघ्रवेगेन संक्षोभात्तथाऽस्य च्यवतेऽश्मरी

अर्थ—पुराना मद्य पीकर शीघ्रगामी रथ में बैठकर वा घोड़े पर चढ़कर चलने से संक्षोभ उत्पन्न होने के कारण पथरी निकलजाती है।

अन्य उपाय।

सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः॥
रेकार्थं तैल्वकं सर्पिर्बस्तिकर्म च शीलयेत्।
विशेषादुत्तरान् वस्तीन्

अर्थ—वीरतरादि गणोक्त द्रव्यों का काढ़ा पेया और जलादि द्वारा सब प्रकार उपयोग में लाना अश्मरीमें हितकारक है। विरेचन के लिये तैल्वकघृत का प्रयोग करना चाहिये बस्तिकर्म में विशेष करके उत्तर बस्ति का प्रयोग करना हितकारी है।

शुक्राश्मरी की चिकित्सा।

शुक्राश्मर्यां च शोधिते॥ ४१॥
तैर्मूत्रमार्गे बलवान् शुक्राशयविशुद्धये।
पुमान् सुतृप्तो वृष्याणां मांसानां-
कुक्कुटस्य च॥ ४२॥
कामं सकामाः सेवेत प्रमदा मददायिनीः।

अर्थ—शुक्राश्मरी में उत्तरबस्ति द्वारा मूत्रमार्ग के शुद्ध होने पर शुक्राशय की विशुद्धि के निमित्त बलवान् पुरुषको उचित है कि तृप्ति पर्यन्त पौष्टिक द्रव्य और मुर्गे के मांसरस का यथेच्छ सेवन करै और मददायिनी कामिनी गणों के साथ उपभोग करे।

अश्मरी के इलाज में राजाज्ञा।

सिद्धैरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक्
इति राजानमापृच्छ्य शस्त्रं साध्ववचारयेत्

अर्थ—ऊपर कही हुई चिकित्साओंद्वारा यदि अश्मरी की शांति नहो तो राजाकी आज्ञा लेकर शस्त्रकर्म में प्रवृत्त होवै।

प्रश्न की रीति।

अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो-
भवेत्॥ ४४॥
निश्चितस्याऽपि वैद्यस्य बहुशः-
सिद्धकर्मणः।

अर्थ—हे राजन्! अश्मरीरोग में शस्त्र कर्म न करने से रोगी की मृत्यु अवश्य होगी और शस्त्रकर्म करने से शास्त्रार्थवित् और अनेक वार सिद्धकर्म वैद्यको भी रोगी के जीने न जीने में संदेह होता है। इस रीति से राजाकी अनुमति लेकर नीचे लिखी रीति से शस्त्रकर्म में प्रवृत होना उचितहै।

शस्त्रकर्म में कर्तव्य।

अथाऽतुरमुपस्निग्धशुद्धमीषच्च कर्शितम्॥
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमंगलम्।
आजानुफलकस्थस्य नरस्यांके व्यपाश्रितम्
पूर्वेण कायेनोत्तानं निषण्णं धनुराकुंचले।
ततोऽस्याऽऽकुंचितेजानुकूर्परे बाससा दृढम्
सहाश्रयमनुष्येण बद्धस्याऽऽश्वासितस्य च।
नाभेः समंतादभ्यज्याद्धस्तस्याश्च-
श्यामतः॥ ४८॥
मृदित्वा मुष्टिना कामं यावदश्मर्यधोगता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥
अदक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम्
आसाद्य वलयं नाभ्यामश्मरीं गुदमेढ्रयोः ॥
कृत्वांतरे तथा बस्तिं निर्बलीकमनायतम्।
उत्पीडेयदंगुलिभ्यां यावद्ग्रंथिरिवोन्नतम्
शल्यं स्यात्सेवनीमुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत्
अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत्
समग्रं सर्पवक्त्रेण स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः।
गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्संगवत्ततः ।
न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत्
मूत्रप्रसेकक्षरणान्नरस्याऽप्यपि चैकधा
बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न
तु द्विधा ।

अर्थ-जिस रोगी की पथरी निकालनी हो उसको स्नेहक्रिया द्वारा स्निग्ध और विरेचनादि शोधनक्रिया द्वारा शुद्ध तथा लंघनादि द्वारा थोडा कर्शित करके नाभिसे नीचे स्नेह मर्दन करे और स्वेदन करनेके पीछे विना भोजन कराये ही स्वस्तिवाचनादि कर्म करे। फिर रोगी को एक ऐसे आदमी की गोदी में बैठावे जो जानु तक पांव फैलाये हो, रोगी को वस्त्रके बंडल पर ऐसी रीतिसे बैठावे कि उसका ऊपरवाला देह ऊंचाहो, फिर रोगी की जानु सकोडकर कोहनी तक लेजाय और उनको उस मनुष्य समेत जिसकी गोदीमें बैठाहै एकवस्त्रसे कसकर बांधदे। रोगी को आश्वासजनक बातों से ढाढस देकर नाभिके नीचे तेल चुपडकर बांईओर को हाथसे दाब दाब कर पथरीको नीचेकी ओर सरका देवे। तत्पश्चात् बायें हाथकी बडेर नखोंवाली तर्जनी और मध्य, मा ऊंगली को तेलमें भिगोकर गुदाके भीतर बांईओर की सीमन तक प्रवेश करदे और नाभि की बलिके पास पहुंचाकर अश्मरी को गुदा और लिंगके बीचमें लावे और वस्तिस्थानको निर्बल और अविस्तीर्ण करके दोनों उंगलियों द्वारा उस समय तक उत्पीडित करे, जबतक अश्मरी गांठके सदृश ऊंची नहो ऊंची होनेपर सेवनी को जौके तुल्य छोड कर अश्मरी की जगह के बराबर नश्तर लगा देवे फिर सर्पमुख यंत्रसे पकडकर संपूर्ण पथरी को बाहर ऐसी रीतिसे खींचले कि टूटने न पावै। स्त्रियों की बस्ति गर्भाशय के पास पार्श्वभाग में होती है, इसलिये स्त्रियों के नीचे के भागमें शस्त्र लगावे, ऐसा न करनेसे व्रणमें होकर मूत्र आने लगेगा। बस्तिके विदीर्ण होनेसे पुरुषों के भी मूत्रस्रावी व्रण होजाताहै। एक बार अश्मरी निकालने के निमित्त जो बस्तिभेद किया जाताहै वह साध्य होताहै परन्तु यदि दूसरी वार बस्तिभेदन किया जाय तो असाध्य होता है।

रोगी को स्नानादि ॥

विशल्यमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत् ॥
तथा न पूर्यतेऽस्रेण बस्तिः पूर्णे तु पीड्यते
मेढ्रांतः क्षीरिवृक्षांबु

अर्थ-ऊपर लिखी हुई रीतिसे पथरी को निकाल कर रोगी को गरम जलसे भरी हुई नादमें बिठा देवे, ऐसा करनेसे बस्तिमें रुधिर न भर सकैगा। ऐसा करनेपर भी बस्तिमें रक्त भरजाय तो वड, गूलर, पीपल आदि दूधवाले वृक्षोंके क्वाथकी लिंगमें उत्तर बस्ति देवै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूत्रसंशोधन ।

मूत्रं संशुद्धयेत्ततः ॥ ५६ ॥
कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत् ।
द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः ॥
द्व्यहं दशाहं पयसा गुडाढ्येनाऽल्पमोदनम् ।
भुंजीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जांगलचारिणाम् ॥

अर्थ–तदनंतर मूत्रकी शुद्धिके निमित्त गुडका भोजन करावै । तदनन्तर घावपर शहत और घृत लगाकर मूत्रको शुद्ध करने वाले खीरा ककडी गोखरू आदि द्रव्योंके साथ सिद्ध की हुई यवागू घृत मिलाकर भोजनके दोनों कालमें ईषत् गरम तीन दिन तक पान करावै । तदनंतर दस दिनतक बहुत गुडमिले हुए दूधके साथ चांवलों का भातदे । दस दिन पीछे जांगल जीवोंके मांस रसके साथ बेर और अनार आदि की खटाई डालकर चांवलों का भात मात्राके अनुसार देवे ।

व्रण प्रक्षालन ।

क्षीरीवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् ।
प्रपौंडरीकमंजिष्ठायष्ट्याह्वनयनौषधैः ॥
व्रणाभ्यंगे पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः ।

अर्थ-दूधवाले वृक्षों के कषाय से घाव को धोकर प्रपौंडरीक, मजीठ, मुलहटी, और हीराकसीस इनको पीसकर घावपर लेप करदे । तथा ऊपर कहे हुए द्रव्यों में हलदी और बढाकर इसके साथ पकाया हुआ तेल व्रण पर लगाने के लिये तयार करले ।

व्रण पर स्वेदन ।

दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तराप्रतः ।
मूत्रे त्वऽगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना ।
स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरुपाचरेत् ॥
तं वस्तिभिः

अर्थ–दसदिन तक घावपर स्वेदन करै, किन्तु जो सात दिन में मूत्र अपने मार्गपर न आजाय तो पथरी के घावको अग्नि से दग्ध करदे, इस तरह मूत्र के स्वमार्ग में आजाने पर मधुरभूयिष्ठ द्रव्यों से साधित उत्तर वस्ति देना चाहिये ।

अन्य उपचार ।

न चारोहेद्वर्षं रूढव्रणोऽपि सः ।
नगनागाश्ववृक्षस्त्रीरथान्वाप्सु प्लवेत सः

अर्थ–घाव के पुरजाने पर भी पथरी रोगवाले को उचित है कि बरस दिन तक पर्वत, हाथी, घोडा, और वृक्षादि पर न चढे, स्त्रीसंगम न करै, जल में न तैरे ।

अश्मरी में वर्जित अंग ।

मूत्रशुक्रवहौ वस्तिवृषणौ सेवनी गुदम् ।
मूत्रप्रसेकं योनिं च शस्त्रेणाऽष्टौ विवर्जयेत्

अर्थ-पथरी निकालने के समय मूत्रवाही और शुक्रवाही स्रोतों को त्याग दे । तथा वस्ति, वृषण, सेवनी, गुदनाडी, लिंग और योनि इन आठ स्थानों को छोड देना चाहिये । अर्थात् इन पर नश्तर न लगने पावे । क्योंकि इन पर नश्तर लगने से मृत्यु, मूत्रस्राव, सूजन, वेदना, आदिउपद्रव उपस्थित होते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने मूत्राघातचिकित्सितंनाम एकादशोऽध्यायः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वादशोऽध्यायः।

अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम यहांसे प्रमेहचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

प्रमेहमें वमनविरेचन॥

मेहिनो बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने।
स्निग्धस्य सर्षपारिष्टनिकुंभाक्षकरंजकैः
तैलैस्त्रिकंटकाद्येन यथास्वं साधितेन वा।
स्नेहेन मुस्तदेवाह्वनागरप्रतिवापवत्॥ २॥
सुरसादिकषायेण दद्यादास्थापनं ततः।
न्यग्रोधादेस्तु पित्तार्ते रसैः शुद्धं च
तर्पयेत्॥ ३॥

अर्थ-जो प्रमेहरोग बलवान हो तो मेह के क्लेदको प्रशमन करनेके लिये प्रथमही वमन विरेचन देवे, तत्पश्चात् सरसों, नीम, दंती, भिलावा और कंजा इनके तेलसे अथवा गोखरू आदि के तेलसे, अथवा यथायोग्य अन्य औषधों से सिद्ध किये हुए स्नेह द्वारा रोगी को स्निग्ध करके मोथा, देवदारु और सोंठ इनके कल्कका प्रतीवाप देकर आस्थापन वस्ति देवै। और पित्तकी अधिकता हो तो न्यग्रोधादि के काथ में उक्त द्रव्यों का प्रतीवाप देकर आस्थापन वस्ति देवै। फिरजांगल जीवों के मांसरस से तर्पण देवै।

अनुबंध की रक्षा में शमनादि।

मूत्रग्रहरुजागुल्मक्षयाद्यास्त्वपतर्पणात्।
ततोऽनुबंधरक्षार्थं शमनानि प्रयोजयेत्॥४॥

अर्थ-प्रमेह रोग में अपतर्पण द्वारा मूत्र रोध, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, और क्षयादि रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये अनुबंध की रक्षा के निमित्त शमन औषधों का प्रयोग करना चाहिये, नहीं तो प्रमेह के शांत होने पर भी लेशमात्र रहने पर फिर उत्पन्न होजाता है।

शमन का प्रयोग।

असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत्

अर्थ-जो रोगी संशोधन के योग्य नहीं हैं उन्हें वमनविरेचन न देकर सब प्रकारके प्रमेहों में शमन औषधों का प्रयोग करना चाहिये। गर्भिणी स्त्री वमन के अयोग्य और नवज्वरी विरेचन के अयोग्य होताहै।

शमन औषध।

धात्रीरसप्लुतां प्राह्णे हरिद्रां माक्षिकान्विताम्॥ ५॥
दार्वीसुराह्वात्रिफला मुस्ता वा कथिता जले
चित्रकत्रिफलादार्वीकलिंगान्वा समाक्षिकान्
मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसमामलकस्य वा॥

अर्थ-हलदी को आंवले के रस में मिलाकर शहत डालकर प्रातःकाल के समय पान करावै। अथवा दारुहलदी, देवदारु त्रिफला और मोथा इनका काथ अथवा चीता, त्रिफला, दारुहलदी, और इन्द्रजौ इनका काथ अथवा गिलोय वा आमलेका रस शहत मिलाकर पान करावै।

कफपर तीन तीन योग।

रोध्राभयातोयदकट्फलानां
पाठाविडंगार्जुनधान्यकानाम्।
गायत्रिदार्वीकृमिहद्वचानां
कफे त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः॥ ७॥

अर्थ-(१) लोध, हरड, मोथा और कायफल, (२) पाठा, वायविडंग, अर्जुनकी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाल और धनियां, (३) खैर, दारुहलदी बायविडंग और वच इन तीन प्रकार के कषायों को शहत मिलाकर सेवन करने से कफज प्रमेह शांत होजाता है।

पित्तज प्रमेह पर तीन प्रयोग।

उशीररोध्रार्जुनचंदनानां
पटोलनिंवामलकामृतानाम्।
रोध्रांबुकोलीयकधातकीनां
पित्ते त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ८ ॥

अर्थ—(१) खस, लोध, अर्जुनकी छाल और लाल चंदन, (२) पर्वल, नीम, आमला और गिलोय, (३) लोध, नेत्रवाला, दारुहलदी और धायके फूल। इन तीन योगोंका पृथक् २ क्वाथ शहत मिलाकर सेवन करने से पित्तज प्रमेह शांत होजाता है।

प्रमेह पर अन्नपान विधि।

यथास्वमेभिः पानान्न यवगोधूमभावनम्।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोध्रादि छःप्रयोगों को यथोपयुक्त औषधों के साथ अन्न और जल तथा जौ और गेंहू की बनी हुई खाने की वस्तु भोजन के लिये देवै।

वातप्रमेह में चिकित्साविधि।

वातोल्वणेषु स्नेहांश्च प्रमेहेषु प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ—वाताधिक्य प्रमेह में उक्त रोध्रादि द्रव्यों द्वारा घृत तेल आदि स्नेह प्रस्तुत करके उपयोग में लाना चाहिये।

प्रमेहमें पथ्यविधि।

अपूपसक्तुवाट्यादिर्यवानां विकृतिर्हिता।
गवाश्वगुदमुक्तानामथवा वेणुजन्मनाम् ॥
तृणधान्यानि मुद्गाद्याः शालिजीर्णः सषष्टिकः
श्रीकुक्कुटोऽम्लः खलकास्तिलसर्षपकिट्टजः ॥
कपित्थं तिंदुकं जंबूस्तत्कृता रागखांडवाः।
तिक्तं शाकं मधु श्रेष्ठा भक्ष्याः शुष्काः ससक्तवः
धन्वमांसानि शूल्यानि परिशुष्कान्ययस्कृतिः
मद्यरिष्टासवा जीर्णाः सीधुः पक्वरसोद्भवः ॥
तथाऽसनादिसारांबुदर्भाभो माक्षिकोदकम्।

अर्थ—प्रमेहमें जौके बने हुए अपूप, सत्तू और बाटी आदि हितकर हैं। गौ वा घोडे की गुदासे निकले हुए जौ धोकर उनके अपूपादि भी प्रमेह में हितकर हैं। बांसके चावल भी पथ्य होते हैं। नीवार, श्यामाक, आदि तृणधान्य, मूंग आदि पुराने शालिचांवल साठी चांवल, तिल और सरसों की खल से बनाहुआ श्रीकुक्कुट संज्ञक खट्टा खल ये सब हितकारी हैं। कैथ, तिंदुक, जामन इनसे बनाये हुए राग और खांडवनामक पेय पदार्थ, तिक्तशाक, मधु, त्रिफला, सूखा सत्तू, शूल पर भुना हुआ जांगल जीवोंका परिशुष्कमांस, वक्ष्यमाण अयस्कृति, पुराना माधव मद्य, अरिष्ट, आसव, पक्वरस से उत्पन्न हुआ सीधु, असनादि सारवर्गों का काढा, कुशाका पानी और मधुमिश्रित पानी ये सब प्रमेह पर हितकारी हैं।

सक्तुपानादि।

वासितेषु हरीक्काथे शर्वरीशोषितेष्वहः ॥
यवेषु सुकृतान्सक्तून्सक्षौद्रान्सीधुना पिबेत्।

अर्थ—त्रिफला के काढेमें रातभर जौ भिगो देवै, दूसरे दिन उन जौओं को धूप में सुखाकर सत्तू बना लेवै। इसमें शहत मिलाकर सीधुके साथ पान करै।

कफपित्त प्रमेहपर पान।

शालसप्तच्छदकपिलवृक्षकाक्षकपित्थजम् ॥
रोहीतकं च कुसुमं मधुनाऽवास्य चूर्णितम्।
कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्रात्रीरसेन वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कफपित्त प्रमेहमें साल, सातला, कंपिल्ल, कुडा, बहेडा, कैथ और रोहेडा इनके फूलोंको पीसकर शहतके साथ वा आमले के रसके साथ पान करै ।

प्रमेहपर तैलादि ।

त्रिकंटकनिशारोध्रसोमवल्कवचार्जुनैः ।
पद्मकाशमंतकारिष्टचंदनागुरुदीप्यकैः॥ १७ ॥
पटोलमुस्तभंजिष्ठामाद्रीभल्लातकैः पचेत् ।
तैलं वातकफे पित्ते घृतं मिश्रेषु मिश्रकम् ॥

अर्थ–गोखरू, हलदी, लोध, सफेदखैर, बच, अर्जुन, पदमाख, अश्मंतक, नीम, लालचंदन, अगर, अजमोद, पर्वल, मोथा, मजीठ, अतीस और भिलावा इनें सब द्रव्योंके कल्कके साथ तेल पकाकर प्रयोग करने से वातकफज प्रमेह नष्ट होजाता है । पित्तज प्रमेह में इन्हीं सब द्रव्योंके साथमें पकाया हुआ घी सेवन करना चाहिये । मिले हुए दोषोंमें उक्त द्रव्योंके कल्कके साथ मिले हुए घी और तेल पकाकर उपयोग में लाने चाहियें ।

धान्वन्तर घृत ।

दशमूलं शठीं दंतीं सुराह्वं द्विपुनर्नवम् ।
मूलं स्नुगर्कयोः पथ्यां भूकदंबमरुष्करम् ॥
करंजवरुणान्मूलं पिप्पल्याः पौष्करं च यत् ।
पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्थतः ।
त्रींश्चाष्टगुणिते तोये विपचेत्पादवर्तिना ।
तेन द्विपिप्पलीचव्यवचानिचुलरोहिषैः ॥
त्रिवृद्विडंगकंपिल्लभार्गीविल्वैश्च साधयेत् ।
प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वांस्तन्मेहानपिटिकाविषम् ॥
पांडुवेद्राधिगुल्मार्शःशोफशोषग्रहोदरम् ।
श्वासं कासं वमिं वृद्धिं प्लीहानं वातशोणितम्
कुष्ठोन्मादापस्मारं धान्वंतरमिदं घृतम् ।

अर्थ–दशमूल, कचूर, दंती, देवदारु, लालसांठ, सफेद सांठ, थूहरकी जड, आककी जड, हरड, भूकदंब, भिलावा, कंजेकी जड, बरनाकी जड, पीपलामूल, पुष्करमूल, प्रत्येक दस पल लेवे, तथा जौ, बेर, कुलथी प्रत्येक एक प्रस्थ लेवे, इन सब द्रव्योंसे अठगुना जल लेकर अग्निपर चढादे, जब चौथाई शेष रहै तब छानकर उस काढेमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, वच, जलवेत, रोहिषतृण, निसोथ, बायविडंग, कंपिल्ल, भाडंगी, और बेलगिरी इनके कल्कके साथ एक प्रस्थ घीको पकावै । यह घृत संपूर्ण प्रकारकी प्रमेहसंबंधी फुंसी, विषरोग, पांडुरोग, विद्रधि गुल्म, अर्श, सूजन, शोष, गररोग, उदररोग, श्वास, खांसी, वमन, वृद्धि, प्लीहा, वातरक्त, कुष्ठ, उन्माद, और अपस्मार रोगोंको दूर करता है । इस घृतका नाम धान्वन्तर घृत है ।

रोध्रासव ।

रोध्रमूर्वाशठीवेल्लभार्गीनिंतनखप्लवान् ॥
कलिंगकुष्ठकमुकप्रियंग्वाविषाग्निकान् ।
द्वे विशाले चतुर्जातं भूनिंबे कटुरोहिणीम् ॥
यवानीं पौष्करं पाठां ग्रंथिं चव्यं फलत्रयम्
कर्षांशमंबुफलशे पादशेषे स्रुते हिमे ॥
द्वौ प्रस्थौ माक्षिकात्क्षिप्त्वा रक्षेत्पक्षमुपेक्षया
रोध्रासवोऽयं मेहार्शःश्वित्रकुष्ठारुचिकृमीन्
पांडुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलतां च नियच्छति ।

अर्थ–लोध, मूर्वा, कचूर, बायविडंग, तगर, नखी, क्षुद्रमोथा, इन्द्रजौ, कूठ, सुपारी, मालकांगनी, अतीस, चीता, दोनों इन्द्रायण, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, चिरायता, कुटकी, अजवायन, पुष्करमूल, पाठा, पीपलामूल, चव्य और त्रिफला इन सब द्रव्यों को एक एक कर्ष लेकर इनको १०२४ तोले पानीमें चढावै, जब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चौथाई शेष रहै, तब उतार कर छान ले, ठंडा होने पर दो प्रस्थ शहत मिलाकर एक कलश में भरकर पन्द्रह दिन तक रक्खा रहने दे, तदुपरांत इसका सेवन करने से प्रमेह, अर्श, श्वित्रकुष्ठ, अरुचि, कृमिरोग, पांडुरोग, ग्रहणीदोष और स्थूलता ये सब रोग दुर होजाते हैं, यह रोध्रासव है।

अयस्कृति।

साधयेदसनादीनां पलानां विंशतिं पृथक् ॥
द्विवहेऽपां क्षिपेत्तत्र पादशेषे द्वे शते गुडात्
क्षौद्राढकार्धे पलिकं वत्सकादि च कल्कितम्
तत्क्षौद्रपिप्पलीचूर्णं प्रदिग्धे घृतभाजने।
स्थितं दृढे जतुस्रुते यवराशौ निधापयेत् ॥
खदिरांगारतप्तानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत्।
तनूनि तीक्ष्णलोहस्य पत्राण्यालोहसंक्षयात्
अयस्कृतिः स्थिता पीता पूर्वस्मादधिका गुणैः

अर्थ—असनादि गणोक्त द्रव्यों में से हर एक २० पल लेकर आठ द्रोण जल में पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब उतार कर छान ले, ठंडा होने पर २०० पल गुड, शहत आधा आढक, वत्सकादिगणोक्त द्रव्य प्रत्येक एक एक पल पीसकर उक्त क्वाथ में डाल दे। फिर एक घडे के भीतर शहत में पिसी हुई पीपल मिलाकर लेप करदे उस घडे के चारों ओर लाख पुती हो और दृढ हो इस घडेको अमृतवान कहते हैं। इस घडे में उक्त काढा भरकर मुख बंद करके जौ के ढेर में गाढ देवै। तदनंतर एक प्रस्थ लोहे के बहुत पतले पतले पत्र बनवालेवै और इन पत्रों को खैरकी लकडी के कोयलों में अत्यंत गरमकर करके उक्त घडे में बुझाता रहै। इस तरह करते करते जब लोहे के पत्र नष्ट होजांय तब समझना चाहिये कि औषध तयार होगई। इस दवा का नाम अयस्कृति है। यह औषध रोध्रासव की अपेक्षा भी अधिकतर गुणकारक है।

प्रमेह में उद्वर्तनादि।

रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः ॥
यच्चाऽन्यच्छ्लेष्ममेदोघ्नं बहिरंतश्च तद्धितम्

अर्थ—प्रमेहरोग में रूखा और गाढा उबटना, व्यायाम, रात्रिजागरण, कफनाशक और मेदनाशक औषध बाह्य वा आभ्यंतर प्रयोग द्वारा हितकर होती है।

प्रमेह पर रसायन।

सुभावितां सारजलैस्तुलां पीत्वा-
शिलोद्भवात् ॥ ३३ ॥
सारांबुनैव भुंजानः शालिजांगलजै रसैः।
सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहूपद्रवानपि ॥
गंडमालार्बुदग्रंथिस्थौल्यकुष्ठभगंदरान्।
कृमिश्लीपदशोफांश्च परं चैतद्रसायनम् ॥

अर्थ—असन और खैरसारादि वृक्षों के काढे में एक तुला शिलाजीत को भावना देकर उक्त द्रव्यों के काथ के साथही सेवन करै तथा इसी काढे में पकाये हुए जांगल जीवों के मांसरस के साथ शाली चावलों का भोजन करै तो अनेक उपद्रवों से युक्त सब प्रकार के प्रमेह दूर होजाते हैं, तथा गंडमाला, अर्बुद, ग्रंथि, स्थूलता, कुष्ठ, भगंदर, कृमिरोग, श्लीपद, और शोफ रोगों का भी शमन होजाता है, यह औषध बडी रसायन है।

निर्धनप्रमेही का उपाय।

अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योजनानां शतं यायात्खनेद्वा सलिलाशयान् गोशकृन्मूत्रवर्तिर्वा गोभिरेव सह भ्रमेत् ।

अर्थ–निर्धन प्रमेहरोगी को उचितहै कि जूता और छत्री को छोडकर मुनियों की वृत्ति का अवलंबन करके सौ योजन तक पैदल चले अथवा जलाशयों को खोदे अथवा गोबर और गोमूत्र का सेवन करता हुआ बनमें गौओं को चराता फिरै ।

कृशकी औषध ।

बृंहणैर्दोषधात्वाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम् ॥

अर्थ–प्रमेहरोगी यदि कृश होगया हो तो ऐसी औषधियों से युक्त आहार द्वारा उसकी पुष्टि करै जो मेदोवर्द्धक और मूत्रकारक नहो।

प्रमेह पिटका की चिकित्सा ॥

शराविकाद्याः पिटिकाः शोफवत्समुपाचरेत् अपक्का व्रणवत्पक्काः

अर्थ–जो शराबकादि पिटिका पकी न हो तो सूजनके सदृश और पकगई हों तो व्रणके समान चिकित्सा करे ।

पिटिका के पूर्वरूपमें कर्तव्य ।

तासां प्राग्रूप एव च ॥ ३८ ॥

क्षीरिवृक्षांबु पानाय वस्तमूत्रं च शस्यते । तीक्ष्णं च शोधनं प्रायो दुर्विरेच्या हि मेहिनः

अर्थ--पिटकाओं की पूर्व रूपावस्थामें हो बटादि क्षीरवृक्षों का क्वाथ और बकरी का मूत्र पान कराये अथवा तीक्ष्ण विरेचन देकर रोगी को शुद्ध करे क्योंकि प्रमेहरोगी को जुलाव कठिनता से लगताहै ।

तैलादि विधि ।

तैलमेलादिना कुर्याद्व्रणेन व्रणरोपणम् । उद्वर्तने कषायं तु वर्गेणारग्वधादिना ॥ परिषेकोऽसनाद्येन पानान्न वत्सकादिना ।

अर्थ–एलादिगणोक्त द्रव्यों द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल व्रणके रोपण में हित है । आरग्वधादि का काथ उद्वर्तन में,असनादि वर्गोक्त द्रव्योंका कषाय परिषेक में और वत्सकादि गणोक्त द्रव्योंका काथ खानेपीने में श्रेष्ठहै ।

पाठादि अवलेह ।

पाठा चित्रकशार्ङ्गेष्टा सारिवा कंटकारिका सप्ताह्वं कौटजं मूलं सोमवल्कं नृपद्रुमम् । संचूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वचूर्णं नवायसम् ॥

अर्थ–पाठा, चीता, महाकरंज, अनन्तमूल, कटेरी, सातला, कुडाकीजड, सफेद खैर और अमलतास, इन सबका चूर्ण करके शहदके संग चाटे, अथवा नवायस चूर्णको शहत के संग चाटे ।

प्रमेह पर शिलाजीत ।

मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः। शिलाजतुतुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः॥

अर्थ--जो प्रमेहरोगी का प्रमेह मधुमेह के रूपमें परिणत होगयाहो, और वैद्य चिकित्सा करना छोड चुकेहों, वह भी यदि १०० पल शिलाजीत का सेवन करे तो फिर नवीनता को धारण करसकताहै ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायांचिकित्सितस्थानेप्रमेहचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विद्रधिवृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अब हम यहां से विद्रधि वृद्धि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे

विद्रधि की चिकित्सा।

विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत्समुपाचरेत्।
मतंत्र च हरेद्रक्तं पक्के तु व्रणवत्क्रिया॥ १॥

अर्थ–सब प्रकारकी बिना पकी हुई विद्रधियों की चिकित्सा सूजन के सदृश करनी चाहिये, तथा निरंतर रक्तको निकालता रहै, विद्रधि के पकजाने पर व्रणके समान चिकित्सा करै।

वातजविद्रधि की चिकित्सा।

पंचमूलजलैर्धौतं वातिकं लवणोत्तरैः।
भद्रादिवर्गयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेद्व्रणम्। २॥

अर्थ–वातज विद्रधिको पंचमूलके क्वाथ से धोकर भद्रदार्यादिगण, मुलहटी, तिल और सेंधानमक इन सबको पीसकर उक्त विद्रधि पर लेप करदे।

व्रणरोपणी क्रिया।

वैरेचनिकयुक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च।
विदारीवर्गसिद्धेन त्रैवृतेनैव रोपयेत्

अर्थ–वैरेचनिक द्रव्यों से युक्त त्रैवृतनामक घृतसे संशोधन करके विदारी गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ त्रैवृताख्य स्नेह लगाकर व्रण का रोपण करै।

पैत्तिक विद्रधि।

क्षालितं क्षीरितरुयेन लिपेद्यष्ट्यब्जुतातिलैः।
पैत्तं घृतेन सिद्धेन मंजिष्ठोशीरपद्मकैः
पयस्याद्विनिशाश्रेष्ठायष्ट्यादुग्धैश्च रोपयेत्।
न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वा

अर्थ–पैत्तिक विद्रधि को वटादि क्षीर वृक्षोंके काढे से धोकर मुलहटी, गिलोय और तिल को पीसकर लेप करदे। तथा मजीठ, खस, पदमाख, दुग्धिका, दोनों हलदी, त्रिफला और मुलहटी इन सब द्रव्यों का कल्क तथा जल और दूधके साथ पाक की रीतिसे घीको पकाकर लेपकरै, अथवा वट आदि वृक्षों के पत्ते, छाल और फल इनके साथ सिद्ध किये हुए घी से व्रण का रोपण करै।

कफजविद्रधि।

कफजं पुनः॥ ५॥
आरग्वधांबुना धौतं सक्तुकुंभनिशातिलैः।
लिपेत्कुलत्थिकादंतीत्रिवृच्छ्यामाभिरित्वकैः
ससैंधवैः सगोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम्।

अर्थ–कफज विद्रधिको अमलतास के पानी से धोकर सत्तू, गूगल, हलदी और तिल का लेप करै। इसी तरह कुलथी, दंती, निसोथ, श्यामा, चीता, लोध, सेंधानमक और गोमूत्र इनके साथ तेल पकाकर व्रण पर लेप करके उसको भरै।

रक्तादिजन्य विद्रधि।

रक्तागंतूद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया

अर्थ–रक्तज तथा आगन्तुज (चोट लगने से उत्पन्न) विद्रधि में पित्त विद्रधि के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

अंतरविद्रधि में पान।

वरुणादिगणक्वाथसपक्केऽभ्यंतरे स्थिते।
ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाह्णे विद्रधौ पिबेत्।

अर्थ–अंतर विद्रधि की अपक्व अवस्था में वरुणादि गणोक्त द्रव्यों के काढे में ऊषकादि का प्रतीवाप देकर पूर्वान्ह में पान करावै।

अन्य प्रयोग।

घृतं विरेचनद्रव्यैः सिद्धं ताभ्यां च पाययेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निरूहं स्नेहबस्तिं च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ--अरक्त अंतर्विद्रधि में दोषके अनुसार विरेचन द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ घी अथवा वरुणादि और ऊषकादि गणों से सिद्ध किया हुआ घी पान करावै तथा वरुणादि और ऊषकादि गणोक्त द्रव्यों से निरूहण और अनुवासन वस्तिओं की कल्पना करके प्रयोग करै ।

अन्य उपाय ।

पानभोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः ।
दत्तावापो यथादोषमपक्वं हंति विद्रधिम् ॥

अर्थ--खाने, पीने और लेप करने में लाल सहजने का प्रयोग करे, तथा दोषके अनुसार प्रतीवाप देने से मीठे सहजने का काढा अपक्व विद्रधि को नष्ट करता है ।

विद्रधिपर त्रायंत्यादि काढा ।

त्रायंतात्रिफलानिंबकटुकामधुकं समम् ।
त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥
मसूरान्निस्तुषादष्टौ तत्क्वाथः सघृतो जयेत् ।
विद्रधीगुल्मवीसर्पदाहमोहमदज्वरान् ॥
तृण्मूर्छाछर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ।

अर्थ-त्रायमाण, त्रिफला, नीम, कुटकी और मुलहटी इन सबको समान भाग ले, निसोथ चार भाग, पर्वल की जड चार भाग, बिना छिलके की मसूर आठ भाग इनके काढे को घृतके साथ सेवन करनेसे विद्रधि, गुल्म, विसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृषा, मूर्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित्त, कुष्ठ और कामला ये सब रोग जाते रहते हैं ।

अन्य घृत ।

कुडवं त्रायमाणायाः साध्यमष्टगुणेऽभसि ॥
कुडवं तद्रसाद्धात्रीस्वरसात्क्षीरतो घृतात् ।
कर्षांशं कल्कितं तिक्तात्रायंतीधन्वयासकम् ॥
मुस्तातामलकीवीराजीवंतीचंदनोत्पलम् ।
पचेदेकत्र संयोज्य तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः ॥

अर्थ--एक कुडव त्रायमाण को अठगुने जलमें पकावै । जब अष्टमांश शेष रहजाय तब इस काथमें एक कुडव आमले का रस एक कुडव दूध और एक कुडव घी तथा कुटकी, त्रायमाण, जवासा, मोथा, भूम्यामलकी, बीरा, जीवंती, चन्दन उत्पल इनका कल्क डालकर घी को पकावै । यह घृत पूर्ववत् गुणकारक है ।

अन्य घृत ।

द्राक्षा मधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी ।
पुरुषकाणि त्रिफला सत्काथे पाचयेद्घृतम् ॥
क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम् ।
तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः ॥

अर्थ-दाख, महुआ के फूल, खिजूर, विदारीकंद, सितावर, फालसे, और त्रिफला इनके काढे में दूध, ईखका रस, आमलेका रस, हरड, इनका कल्क मिलाकर इन सबको सामान्य परिभाषाके अनुसार मिलाकर घी को पकावै, जब यह ठंडा हो जाय तब चौलाई शर्करा और शहत मिला कर सेवन करै तो पूर्ववत् गुणकारक होता है ।

शृंगादिसे रक्तमोक्षण ।

हरेच्छृंगादिभिरसृक् सिरया वा यथांतिकम् ॥

अर्थ--सींगी, तूमी आदि लगाकर विद्रधि, का रक्त निकाल डाले, अथवा विद्रधि के पासवाली सिराकी फस्द खोले ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्रधिमें उपनाह ।

विद्रधिं पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरुन्नतं ॥
ज्ञात्वोपनाहयेत्

अर्थ–जो विद्रधि कोष्ठमें हो और ऊंची हो गई हो तथा पच्यमान अवस्थामें हो उस पर उपनाह अर्थात् पुलटिस बांधै ।

विद्रधि का भेदन ।

शूले स्थिते तत्रैव पिंडिते ।
तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेषु च।
पक्वः स्याद्विद्रधिं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत्।

अर्थ–जब कोष्ठकी विद्रधि पिंडाकार हो जाय, और जहां वह हो उसी जगह वेदना होती हो, और पासके स्थानको हाथसे दावने पर सुप्ति अर्थात् शून्यता का अनुभव हो, और दाह ऊष आदिमें कमी हो तब जान लेना चाहिये कि विद्रधि पक गई है, तब उसे चीरकर घावकी तरह चिकित्सा करै ।

भीतर की विद्रधि के चिन्ह।

अंतर्भागस्य चाप्येतच्चिह्नं पक्वस्य विद्रधेः ॥

अर्थ–कोष्ठस्थ पक्व विद्रधिके जो लक्षण होते हैं वेही अंतर भागमें स्थित पकी हुई विद्रधि के लक्षण होते हैं ॥

विद्रधिमें दोषविशेष की अपेक्षा ।

पक्वः स्रोतांसि संपूर्य सयात्यूर्ध्वमधोऽथवा
स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षन् भिषगुपद्रवान् ।
असम्यग्वहति क्लेदे वरणादिसुजांभसा ॥
पाययेन्मधुशिग्रुं वा यवागूं तेन वा कृताम् ।

अर्थ–विद्रधि पककर संपूर्ण स्रोतों को भरकर अपने आप ऊपर को वा नीचे को प्रवृत हो अर्थात् विद्रधि का पूय और रक्तादि क्लेद पदार्थ मुखद्वारा वा गुदाद्वारा निकलने लगे तो ऐसा करना चाहिये कि दस बारह दिनतक और किसी प्रकार की चिकित्सा न करके रोगी को पथ्य आहारादि से रक्खे । यदि क्लेद अच्छी तरह न निकले तो वरणादि गणोक्त औषधोंका ईषदुष्ण काथ अथवा मीठे सहजने का काथ, अथवा मीठे सहजने के काथसे करीहुई यवागू पान करावै ।

विद्रधि पर यूष ।

यवकोलकुलत्थोत्थयूषैरन्नं च शस्यते ॥

अर्थ–इस रोगपर जो, बेर और कुलथी के यूषके साथ अन्नका भोजन भी हितकारीहै

दसादिनपीछे शोधनादि ।

ऊर्ध्वं दशाहात्त्रायंतीसर्पिषा तैल्वकेन वा ।
शोधयेद्बलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत् ॥

अर्थ–दस दिन बीत जानेपर रोगी के बलके अनुसार त्रायंती घृत वा तैल्वक घृत पान कराके विरेचन करावे । विरेचन से शुद्ध होनेपर रोगी को शहत मिलाकर तिक्तक घृत का सेवन करावे ।

उक्तरोगमें गुल्मवत् चिकित्सा ।

सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत् ।

अर्थ–विद्रधि रोग में सब प्रकार से दोष के अनुसार गुल्मरोग के समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

विद्रधि पर गुग्गुलयोग ।

सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च ॥
कषायैर्योगिकैर्युंज्यात्स्वैःस्वैस्तद्वच्छिलाजतु

अर्थ–सब प्रकार की विद्रधियों में सब अवस्थाओं में यथायोग्य कषायों के साथ गूगल या शिलाजीतका प्रयोग करना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाक निवारण ।

पाकं च वारयेद्यत्नात्सिद्धेः पक्वं हि दैविकी
अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः
सोऽभिधीयते ।
सति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम्

अर्थ-जैसे होसकै वैसे ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे विद्रधि पकने न पावै । क्यों कि पकजाने पर अच्छा होना वा न होना दैवाधीन है, वैद्यके बसकी बात नहीं है । इसमें शीघ्र ही विदाह अर्थात् जलन पैदा होजाती है इसीलिये इसे विद्रधि कहते हैं । इसमें यदि प्रमेहरोग उत्पन्न होजाय तो प्रमेहोक्त चिकित्सा करनी चाहिये (किसी किसी पुस्तक में 'दैविकी' की जगह 'दैहिकी' पाठ करके यह अर्थ किया गया है कि इस रोग का अच्छा होना वा न होना शरीरकी अवस्था पर निर्भर है ।

स्तनविद्रधि में उपाय ॥

स्तनजे व्रणवत्सर्वं नत्वेनमुपनाहयेत् ।
गाढयेत्पालयन्स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ ॥
सर्वास्वामाद्यवस्थासु निर्दुहीत च तत्स्तनम् ।

अर्थ-जो विद्रधि स्तन में होती है उस में उपनाह को छोडकर सब प्रकार की चिकित्सा करना चाहिये । जो भेदन की आवश्यकता हो तो स्तन्यवाहिनी सिरा और स्तनों के काले अग्रभागों की रक्षा करता हुआ नश्तर लगावै । सब प्रकारकी विद्रधिओं की अपक्वावस्था में स्तनों से दूध निकलवाते रहना चाहिये । अब यहांसे आगे वृद्धि की चिकित्सा का वर्णनहै ।

वृद्धिचिकित्सा ।

शोधयेत्त्रिवृताद्यैर्घं वृद्धौ स्नेहैश्चलात्मके ॥
कोशातित्वकैरंडसुकुमारकमिश्रकैः ।

अर्थ-वातज वृद्धिरोग में त्रिवृतादि घृत द्वारा अच्छी तरह से स्निग्ध करके कोशातकी तिल्वक और अरंड के साथ सिद्ध किया हुआ स्नेह, सुकुमारक घृत और गुल्माचिकित्सितोक्त मिश्रित स्नेहों द्वारा चिकित्सा करे ।

वातनाशक निरूहादि ।

ततोऽनिलघ्ननिर्यूहकल्कस्नेहैर्निरूहयेत् ॥
रसेन भोजितं यष्टितैलेनान्वासयेदनु ।
स्वेदप्रलेपा वातघ्नाःपक्वे भित्त्वा व्रणक्रियाः॥

अर्थ-तदनंतर वातनाशक काथ, कल्क और स्नेह द्वारा निरूहण वस्तिका प्रयोग करे । निरूहण के पीछे मांसरस का पथ्य देकर मुलहटी के तेलसे अनुवासन करै । तथा वातनाशक स्वेद और प्रलेप करै । फिर पकजाने पर घावके समान चिकित्सा करे ।

पित्तज वृद्धि का उपाय ।

पित्तेरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम् ।
शोफव्रणक्रियां कुर्यात् प्रततं च हरेदसृक् ॥

अर्थ-पित्तज और रक्तज वृद्धि में चाहे कच्ची वा पक्की हो सूजन और व्रण के अनुसार यथायोग्य चिकित्सा करै । तथा निरंतर रक्तको निकालता रहै ।

कफज वृद्धि में उपाय ।

गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं श्लैष्मिके पतिदारुजम् ।
विम्लापनाद्यते चाऽत्र श्लेष्मग्रंथिक्रमो हितः
पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते व्रणशोधनम् ।
सुमनोरुष्करांकोल्लसप्तपर्णेषु साधितम् ॥
पटोलनिंबरजनीविडंगकुटजेषु च ।

अर्थ-कफज वृद्धिरोग में गौके मूत्रके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संग दारुहल्दी को घोटकर पीवै। इस रोग में विस्लापन अर्थात् उन उन मर्दनके उपायों के सिवाय कफज ग्रंथि में कहे हुए सब उपाय करने चाहियें। कफज ग्रंथिके पकने पर उसमें नश्तर लगाकर घावके शोधन के निमित्त चमेली, भिलावा, अंकोल, सातला, पर्वल, नीमकी छाल, हलदी, वायविडंग और कुडा की छाल इनके साथ सिद्ध किया हुआ तेल प्रयोग करै।

मेदोज वृद्धि में उपाय।

मेदोजं मूत्रपिष्टेन सुस्विन्नं रसादिना। ३५।
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा वर्जयन्फलसेवनीम्।
दारयेद्वृद्धिपत्रेण सम्यङ्मेदसि सूक्ष्मते॥
व्रणं माक्षिककासीससैंधवप्रतिसारितम्।
सीव्येदभ्यंजनं चास्य योज्यं मेदोविशुद्धये
मनःशिलैलांसुमनोग्रंथिभल्लातकैः कृतम्।
तैलमाव्रणसंधानात्स्नेहस्वेदो च शीलयेत्॥

अर्थ—मेदसे उत्पन्न हुई वृद्धि में सुरसादि गणोक्त द्रव्यों को गोमूत्र में पीसकर अथवा शिरोविरेचन के द्रव्यों द्वारा पसीना देकर वृद्धिपत्र नामक अस्त्रसे वृद्धि को काट डाले परंतु अंडकोष की सीमन को चीरा लगाते समय बचा देना चाहिये। मेदके अच्छी तरह निकलजाने पर घावकी जगह सोनामाखी, कसीस और सेंधा नमक इनके द्वारा प्रतिसारित व्रण को सी देवै। तदनंतर मेदकी शुद्धि के निमित्त मनासिल, इलायची, चमेली, पीपलामूल, भिलावा इन के साथ सिद्ध किया हुआ तेल चुपडता रहै। तथा जबतक व्रण न पुरै तब तक स्नेहस्वेद का बारबार प्रयोग करता रहै।

मूत्रज वृद्धि में उपाय।

मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्बलापट्टेन वेष्टितम्।
विध्येदधस्तात्सेवन्याः स्रावयेच्च यथोदरम्।
व्रणं च स्थगिकाबद्धं रोपयेत्

अर्थ—मूत्रज वृद्धिरोग में सीमन के नीचे के भागमें स्निग्ध स्वेदन करके तथा कपडे की पट्टी से बांधकर नश्तर लगावै और जलोदर की तरह स्राव होने दे तदनंतर स्थगिका नामक बंधन से बांधकर घावको पुरावै।

अंत्रज वृद्धि में उपाय।

अंत्रहेतुके।
फलकोशमसंप्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत्॥

अर्थ—अंत्रज वृद्धि यदि अंडकोष में न पहुंची हो तो उसकी चिकित्सा वातज वृद्धि के समान करनी चाहिये।

सुकुमार नामक रसायन।

पचेत्पुनर्नवतुलां तथा दशपलाः पृथक्।
दशमूलपयस्याश्च गंधैरंडशतावरीः॥
द्विदर्भशरकाशेक्षुमूलपोटगलान्विताः।
वहेऽपामष्टभागस्थे तत्र त्रिंशत्पलं गुडात्॥
प्रस्थमेरंडतैलस्य द्वौ घृतात्पयसस्तथा।
आवपेद् द्विपलांशं च कृष्णतन्मूलसैंधवम्
यष्टीमधुकमृद्वीकायवानी नागराणि च।
तात्सद्धं सुकुमाराख्यं सुकुमारं रसायनम्॥
वाततापाध्वयानादिपरिहार्येष्वयंत्रणम्।
प्रयोज्यं सुकुमाराणामीश्वराणां सुखात्मनाम्
नृणां स्त्रीवृद्धभर्तृणामलक्ष्मीकालिनाशनम्।
सर्वकालोपयोगेन कांतिलावण्यपुष्टिदम्॥
वर्ष्मविद्रधिगुल्माशोयोनिमेढानिलार्तिषु।
शोफोदरखुडप्लीहविड्विबंधेषु चोत्तमम्॥

अर्थ—सांठ की जड एक तुला, दशमूल दूधी, चंदन, अरंड, सितावर, दोनों डाभ सरकंडा कास, ईखकी जड, नरसल ये सब प्रत्येक दस दस पल इन सबको एक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रोण जलमें पकावै, जब आठवां भाग बच रहे, तब उतार कर छानले । इस काथमें तीस पल गुड, अरंडका तेल एक प्रस्थ, घृत २ प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ तथा पीपल, पीपलामूल, सेंधानमक, मुलहटी, द्राक्षा, अजवायन और सोंठ हर एक दो पल डालकर पकावै । इस घृतका नाम सुकुमार घृत है । यह सर्वोत्तम रसायन है । वायु, आतप, मार्गगमन, यानादि के परिहार में अयंत्रण है, यह सुकुमार, ऐश्वर्यवान् और सुखभोगियों के लिये उपयोगमें लाया जाता है, यह स्त्रियोंके समूहों के भर्तारोंकी अलक्ष्मी और कलह का नाश करने वालाहै यह सब कालों में उपयोग करनेके योग्य है, यह कांति, लावण्य और पुष्टिकारक है, तथा वर्ध्म, विद्रधि, गुल्म, अर्श योनि, मेढ्र, वातरोग, सूजन, उदररोग, खुड वात, प्लीहा, पुरीषविबंध इन सब रोगों में अत्यन्त हितकारी है ।

उक्तरोग में वस्त्यादि ।

यायाद्वर्ध्म न चेच्छांतिं स्नेहरेकानुवासनैः ।
बस्तिकर्म पुरःकृत्वा वंक्षणस्थं ततो दहेत् ॥
अग्निना मार्गरोधार्थं मरुतः

अर्थ—स्नेहप्रयोग, विरेचन और अनुवासन द्वारा यदि वर्ध्मरोग शांत न हो तो प्रथम बस्तिकर्म करके वायुका मार्ग रोकने के लिये वंक्षणस्थानको अग्निसे दग्ध करदे।

अग्निकर्ममें भिन्नमत ।

अर्धेंदुवक्त्रया ।
अंगुष्ठस्योपरि स्नावपीतं तंतुसमं च यत् ॥
उत्क्षिप्य छित्त्वा तात्तिर्यग्देहे छित्त्वा यतो गदः
ततोऽन्यपार्श्वेऽन्ये-
त्वाहुर्वेद्धाऽऽनामिकांगुलेः ॥ ५० ॥
गुल्मेऽन्यैर्वातकफजे प्लीह्नि चायम् विधिः स्मृतः ।
कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाच्यां च यतो गदः,

अर्थ—किसी किसी आचार्यका यह मत है कि जिस ओर को वृद्धि हो उसी ओर के अंगूठे के ऊपर तंतुके समान जो स्नायु है उसे ऊंची करके अर्धचन्द्राकार सुई से तिरछा नश्तर लगाकर अग्निसे जलादे । कोई यह कहते हैं कि जिधरको वृद्धि हो उसके दूसरी ओर के अंगूठेके ऊपर वाली नसको ऊंची करके पूर्ववत् बेधकर अग्निसे जलादे । कोई यह कहते हैं कि अनामिका उंगली के ऊपर वाली नसको पूर्ववत् दग्ध करै । किसी का यह मत है कि वातकफजन्य गुल्ममें और प्लीहा में यह विधि करनी चाहिये । कोई कहतेहैं विश्वाचीरोग जिस ओर हो उसी ओर की कनिष्ठका और अनामिका उंगलियोंके ऊपरवाली नसको पूर्ववत् दग्ध करै।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा टीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने विद्रधिवृद्धिचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम यहांसे गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

वातज गुल्मकी चिकित्सा ।

" गुल्मं बद्धशकृद्वातं वातिकं तीव्रवेदनम् ।
रूक्षशीतोष्णयं तैलैः साधयेद्वातरोगिकैः ? ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पानान्नान्वासनाभ्यंगैः स्निग्धस्य-
स्वेदमाचरेत्।
आनाहवेदनास्तंभविबंधेषु विशेषतः २॥
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्
भित्त्वा विबंधं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति

अर्थ—वातिक गुल्म रूक्ष और शीतल पदार्थों के सेवन से होता है, इसमें मल और अधोवायु की रुकावट होती है और वेदना भी बहुत तीव्र होती है। इसकी चिकित्सा वातरोग चिकित्सितोक्त तेलों द्वारा करनी चाहिये। स्नेहपान, स्निग्ध अन्न का भोजन, अनुवासन और अभ्यंग इनसे रोगी को स्निग्ध करके स्वेदन करावै। जो रोगी आनाह, वेदना स्तंभता और विबंध से पीडित हो तो विशेषरूप से स्वेदन करना चाहिये, इसका कारण यह है कि स्निग्ध मनुष्य को स्वेदन कराने से देह के संपूर्ण स्रोतों में मृदुता, उल्वण वायुकी समता और विबंधता का नाश होकर गुल्म शांत हो जाता है।

गुल्म में स्नेहपान।

स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे।
पक्वाशयगते बस्तिरुभयं जठराश्रये॥ ४॥

अर्थ—गुल्मरोग में स्नेहपान हितकारी होता है, विशेष करके नाभि के ऊपर होने वाले गुल्मरोग में विशेषरूप से स्नेहपान हित है। पक्वाशय के गुल्ममें वस्ति, तथा जठराश्रय के गुल्म में स्नेहपान और वस्ति दोनों हित हैं।

वातिक गुल्म में वृंहण।

द्वौ तेऽग्नी वातिके गुल्मे विबंधेऽनिलवर्चसोः
बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रदापयेत्
पुनः पुनः स्नेहपानं

अर्थ—वातिक गुल्म में यदि अग्नि तीव्र हो तथा, अधोवायु और पुरीषकी विबद्धता हो तो स्निग्ध और उष्णवीर्य बलकारक अन्नपानादि का सेवन कराना चाहिये तथा बार बार स्नेहपान कराना भी हित है।

गुल्म में सानुवासन निरूहण।

निरूहाः सानुवासनाः।
प्रयोज्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षिणः।

अर्थ—वातज गुल्म में कफ और पित्त की रक्षा के निमित्त अनुवासन और निरूहण का प्रयोग कराना चाहिये।

गुल्म पर वास्तिकर्म।

बस्तिकर्म परं विद्याद्गुल्मघ्नं तद्धि मारुतम्।
स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति।
तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मी निरूहैः सानुवासनैः
प्रयुज्यमानैः शाम्यंति वातपित्तकफात्मकाः

अर्थ—गुल्मका नाश करने के लिये वस्तिकर्म परम प्रधान उपाय है, यह पहिलेही पक्वाशयस्थ वायुको जीतकर तत्काल गुल्म का नाश करदेता है। इसलिये वातिक, पैत्तिक, कफज कैसाही गुल्म हो निरूहण और अनुवासन के निरंतर प्रयोग से शांत होजाता है।

वातगुल्म पर घृत।

हिंगुसौवर्चलव्योषविडदाडिमदीप्यकैः।
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः
शठीयवाजगंधैलासुरसैर्दधिसंयुतैः।
शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद्वातगुल्मिनाम्

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा, वायविडंग, अनार की छाल, अजवायन, पुष्करमूल, कालाजीरा, धनियां, अम्लवेत, जवा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खार, चीता, कचूर, बच, अजमोद, इलायची तुलसी और दही इनके साथ में पकाया हुआ घी पान करने से वातगुल्मवाले रोगी के शूल और आनाह नष्ट होजाते हैं । घी के पकाने की यह विधि है कि हींग से लेकर सुरसा पर्यंत द्रव्यों का जो परिमाण है उस से चौगुना घी, घी के समान दही, घीसे चौगना जल डालकर पकावै ।

अन्य घृत ।

हपुषोषणपृथ्वीकापंचकोलकदीप्यकैः ।
साजाजीसैंधवैर्दध्ना दुग्धेन च रसेन च
दाडिमान्मूलकात्कोलात्पचेत्सर्पिर्निहंति तत्
घातगुल्मोदरानाहपार्श्वहृत्कोष्ठवेदनाः
योन्यर्शोग्रहणीदोषकासश्वासारुचिज्वरान् ।

अर्थ–हाऊबेर, काली मिरच, इलायची, पंचकोल, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक, इन सब द्रव्योंका कल्क, दही, दूध, तथा अनार, मूली और बेरोंका रस इन सब द्रव्यों के साथ पाक विधिके अनुसार घृत पकाकर सेवन करनेसे वातजगुल्म, उदररोग आनाह, पसली का दर्द, हृदयशूल, कोष्ठशूल योनिरोग, अर्शरोग, ग्रहणीरोग, खांसी, श्वास अरुचि, और ज्वर ये सब दूर होजाते हैं ।

दाधिक घृत ।

दशमूलं यवां कालां सुषवीं द्वौ पुनर्नवौ
पौष्करैरंडराज्ञाश्वगंधभार्ग्यमृताशठीः ।
पचेद्वयधपलांशं च द्रोणेऽपां द्विपलोन्मितम्
यवैः कोलैःकुलत्थैश्च माषैश्च प्रास्थिकैः सह
क्वाथेऽस्मिन्दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत्
क्षवरसैर्दाडिमाघ्रातमातुलुंगोद्भवैर्युतम् ।
तथा तुषांबुधान्याम्लयुतैः क्षवणैश्च कल्कितैः
भार्गीतिंतुरुषड्ग्रंथाग्रंथिराज्ञाग्निधान्यकैः ।
यवानकयवान्यम्लवेतसासितजीरकैः ।
अजाजीहिंगुहपुषाकारवीवृषकोषकैः ।
निकुंभकुंभमूर्वेभपिप्पलीवेल्लदाडिमैः
श्वदंष्ट्राम्रपुसेर्बाहुत्वौजहिंस्राश्मभेदकैः ।
मिसिद्विक्षारसुरससारिवानीलिनीफलैः ॥
त्रिकट्वित्रिपट्वूपेतैर्दाधिकं तद्व्यपोहति ।
रोगानाशुतरान्पूर्वान्कष्टानपि च शीलितम्
अपस्मारगरोन्मादमूत्राघातानिलामयान् ।

अर्थ–दसमूल, खरेटी, नीलनी, कलोंजी दोनों प्रकारकी सांठ, पुष्करमूल, अरंड, रास्ना, असगंध, भाडंगी, गिलोय, कचूर और गंध पलास प्रत्येक दो दो पल, जौ, बेर, कुलथी, और उरद एक एक प्रस्थ इन सब द्रव्योंको एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस क्वाथ में समान भाग दही, एक प्रस्थ घी, तथा अनार, आमडा, और बिजौरे का रस डाल कर पकावै, इसीमें तुषांबु और कांजी भी डाल दे । तथा भाडंगी, धनियां, वच, पीपलामूल, रास्ना, चीता, धनियां, अजवायन, अजमोद, अमलवेत, कालाजीरा, सफेदजीरा, हींग, हाऊबेर, सौंफ, अडूसा, क्षारमृत्तिका, दंती, निसोथ, मूर्वा, गजपीपल, बायविडंग, अनार का छिलका, गोखरू, खीराककडीके बीज, जटा मांसी, पाखानभेद, सौंफ, जवाखार, सज्जी खार, गंधतृण, सारिवा, नीलनी, त्रिफला, त्रिकुटा, त्रिपटु (तीनोंनमक), इन सब द्रव्यों को महीन पीसकर डालदे । इसतरह इन सब द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ घी यथोक्त रीतिसे पाक करे इस घृतका नाम दाधिक घृतहै । इसके सेवन करनेसे पूर्वोक्त संपूर्ण भयानक रोग शीघ्र शांत होजाते हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सधा अपस्मार, गर, उन्माद, मूत्रावात और वातरोग भी जाते रहते हैं।

अन्य घृत।

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यचाविकावेल्लचित्रकैः
कल्कीकृतैर्घृतं पक्वं सक्षारं वातगुल्मनुत्।

अर्थ—गौका घी चार सेर, दूध ४ सेर जल १६ सेर तथा त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां चव्य, वायविडंग चीता इन सबको महीन पीसकर डालदे, यह पकाहुआ घृत वातगुल्म को नष्ट करदेता है।

अन्य घृत।

तुलां लशुनकंदानां पृथक्पंचपलांशकम्
पंचमूलं महच्चांबुभारार्धे तद्विपाचयेत्।
पादशेषं तदर्धेन दाडिमस्वरसं सुराम्
धान्याम्लं दधि चा ऽऽदाय सिद्धांश्चार्धपलांशकान्।
त्र्यूषणत्रिफलाहिंगुयवानीचव्यदीप्यकान्
साम्लवेतससिंधूत्थदेवदारून्यचेद्घृतात्।
तैः प्रस्थं तत्परं सर्ववातगुल्मविकारजित् २५

अर्थ—लहसन एक तुला, बृहत्पंचमूलप्रत्येक पांच पल इनको दस तुला जलमें पकावै चौथाई शेष रहनेपर उतार कर छानले, इसमें अनार का रस, सुरा, कांजी, दही प्रत्येक १२५ पल डाले तथा त्रिकुटा, त्रिफला, हींग, अजवायन, चव्य, अजमोद, अम्लवेत, सेंधानमक, देवदारू, प्रत्येक आधा आधा पल, घी एक प्रस्थ इन सबको पाकविधि के अनुसार पकाकर सेवन करने से सब प्रकार के वातगुल्मों के विकार दूर होजाते हैं।

वातगुल्मनाशक घृत।

षट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि।
प्रसन्नया वा क्षीरार्धः सुरया दाडिमेन वा २६
घृते मारुतगुल्मघ्नः कार्यो दध्नः सरेण वा॥

अर्थ—जो षट्पल घृत राजयक्ष्मामें कहा गया है वहभी हित है, अथवा दूधके बदले में प्रसन्ना, वा सुरा, वा दाडिमका रस वा दही की मलाई डालकर सिद्ध किया हुआ घी भी वातगुल्मनाशक होता है।

वातजगुल्म में कफोद्भवन।

वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाग्निमरुचिंयदि॥
हृल्लासं गौरवं तंद्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम्।

अर्थ—वातज गुल्ममें यदि कफ वृद्धिको प्राप्त होकर जठराग्नि को नष्ट कर के अरुचि हृल्लास, गौरव और तंद्रा को उत्पन्न करै तो उस कफको वमन द्वारा निकाल देवै।

शूलादि में क्वाथादि।

शूलानाहविबंधेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्
निर्यूहचूर्णवटकाःप्रयोज्या घृतभेषजैः।

अर्थ—गुल्मरोग में यदि शूल, आनाह और मलकी विबद्धता हो और कोष्ठमें घृतप्लुत औषधों के सेवन से स्निग्धता मालूम हो तो घृतपाक में कही हुई औषधों द्वारा तयार किया हुआ काढा, चूर्ण और गोलियां काम में लावै।

अन्य चूर्ण।

कोलदाडिमयर्मांबुतक्रमद्याम्लकांजिकैः
मंडेन वा पिबेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्य वा पुरः।

अर्थ—बेरका रस, अनारका रस, सूर्य की किरणों से तप्त जल, तक्र, मद्य, खट्टी कांजी और मंड इनमें से किसी के साथ घृतपाक में कही हुई औषधोंका चूर्ण प्रातःकाल वा भोजन करनेसे पहिले पान करावै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफ वातजगुल्ममें वटिका ।

चूर्णानि मातुलुंगस्य भावितान्यसकृद्रसे ।
कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् कफवातयोः ॥

अर्थ–कफवातज गुल्ममें घृतपाक की औषधों के चूर्ण में बिजौरे के रसकी बार बार भावना देकर गोलियां बनाकर दीजाती हैं, ये गोली तत्काल लाभकारक होती हैं ।

हिंग्वादि चूर्ण ।

हिंगुवचाविजयापशुगंधा
दाडिमदीप्यकधान्यकपाठाः ।
पुष्करमूलशठीहपुषाग्नि-
क्षारयुगत्रिपटुत्रिकटूनि ॥ ३१ ॥
साजाजिचव्यं सहतिन्तिडीकं
सवेतसाम्लं विनिहंति चूर्णम् ।
हृत्पार्श्ववस्तित्रिकयोनिपायु-
शूलानि वाय्वामकफोद्भवानि ॥ ३२ ॥
कृच्छ्रान् गुल्मान्यातविण्मूत्रसंगं
कंठे बंधं हृद्ग्रहं पांडुरोगम् ।
अन्नाश्रद्धार्शोहृदुर्नामहिध्मा-
वर्ध्माध्मानश्वासकासाग्निसादान् ॥

अर्थ- हींग, वच, हरड, अजमोद, अनारका छिलका, अजवायन, धनियां, पाठा पुष्करमूल, कचूर, हाऊबेर, चीता, दोनों खार, तीनों नमक (सेंधा, बिड, और काला) त्रिकुटा, कालाजीरा, चव्य, इमली, और अम्लवेत, इन सब द्रव्यों से बनाया हुआ यह हिंग्वादि चूर्ण वायु, आम और कफसे उत्पन्न हुए हृतशूल, पसली का दर्द बस्तिका दर्द, त्रिकका दर्द, योनिका दर्द, गुदाका दर्द तथा गुल्मरोग, अधो वायु, विष्ठा और मूत्र का विबंध, कंठरोग, हृद्ग्रह, पांडुरोग, अन्नमें अरुचि, प्लीहा, अर्श, हिध्मा, वर्ध्म, आध्मान, श्वास, खांसी और अग्निमांद्य इन सब रोगों को नष्ट कर देता है ।

लवणादि चूर्ण ।

लवणयवानीदीप्यक-
कणनागरमुस्तरोत्तरं वृद्धम् ।
सर्वसमांशहरीतकी-
चूर्णं वैश्वानरः साक्षात् ॥ ३४ ॥

अर्थ–नमक, अजवायन, अजमोद, पीपल, सोंठ इन सब द्रव्योंको उत्तरोत्तर एक एक भाग बढाकर लेवै और इन सबके समान हरड लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनालेवै यह लवणादि चूर्ण साक्षात् अग्निरूप है, अर्थात् अग्निके बढाने में प्रधान है ।

हिंग्वाष्टक चूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैंधवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः ।
प्रथमकवलभोज्यः सर्पिषा चूर्णकोऽयं
जनयति भृशमग्निं वातगुल्मं निहंति ॥

अर्थ–त्रिकुटा, अजमोद, सेंधानमक, कालाजीरा, सफेदजीरा, इन सब द्रव्योंको समान भाग और आठवां भाग हींग इनका चूर्ण बनाकर इस हिंग्वाष्टक चूर्णको भोजन करते समय घीमें मिलाकर प्रथम ग्रासके संग खालेवै, यह अग्निको बढाता है और वातगुल्म को नष्ट करता है । कोई कोई यह भी अर्थ करते हैं कि धरण पलका दसवां भाग होता है अर्थात् पांच माशेके लग भग । त्रिकुटादि उक्त द्रव्योंको एक एक धरण और हींग धरण का अष्टमभाग । इस चूर्णको प्रथम ग्रासके साथ सेवन करै । हींग अग्निपर फुलाकर डाली जाती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शार्दूल चूर्ण।

हिंगूग्राविडशुंठ्यजाजिविजयाबाट्यारमि-
धानामयै
श्चूर्णैःकुंमनिकुंभमूलसहितैर्भागोत्तरंवर्धितैः
पीतःकोष्णजलेन कोष्ठजरुजौगुल्मोदरादीमयं
शार्दूलः प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन्- ॥
मृगौघानिव ॥ ३६

अर्थ-हींग, वच, विडनमक, सोंठ, जीरा, हरड, पुष्करमूल, कूठ, निसोथ, और जमालगोटा की जड इन सब द्रव्योंको एक एक भाग बढाकर लेवै और इनका चूर्ण बनाकर गरमजल के साथ पीवै। इसके पीनेसे कोष्ठज वेदना, गुल्म और अन्य उदरादिरोग ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे शार्दूल हरिणों के समूह को नष्ट करदेता है।

सिंधूत्थ चूर्ण।

सिंधूत्थपथ्याकणदीप्यकानां
चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः।
प्रयाति नाशं कफवातजन्मा
नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः

अर्थ-सैंधानमक, हरड, पीपल, और अजवायन इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पान करै। यह वातज रोग समूहों को ऐसे खो देता है, जैसे कोई तीर से भेदन करता है।

अन्य चूर्ण।

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम्।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरव्वयथुपांडुगदेष्वेषु॥ ३८॥

अर्थ पूतिकरंज के पत्ते, गजपीपल, इन्द्रायण, चव्य, चीता, त्रिकुटा, इन सब द्रव्योंको इसी क्रमसे एक के ऊपर एक रखदे और सबके ऊपर नमक रखदे। फिर इस को जलाकर चूर्ण बना लेवै। इस चूर्ण को दही के तोड के साथ सेवन करना चाहिये, इससे गुल्म, उदर, सूजन, और पांडुरोग जाते रहते हैं।

अन्य चूर्ण।

हिंगुत्रिगुणं सैंधवमस्मात्त्रिगुणंतुतैलमैरंडम्
तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्धशूलघ्नम्॥

अर्थ-हींग, एक भाग, सेंधानमक तीन भाग, अरंडी का तेल नौ भाग, लहसन का रस २७ भाग इसका सेवन करने से गुल्म उदर, वृद्धि और शूल नष्ट हो जाते हैं।

अन्य प्रयोग।

मातुलुंगरसो हिंगुदाडिमं विडसैंधवम्।
सुरामंडेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम्॥

अर्थ-बिजौरे का रस, हींग, अनार, विडनमक, सैंधानमक, इन सबको सुरामंड के साथ पीनेसे वातज गुल्मकी वेदना शांत होजाती है।

शुंठयादि चूर्ण।

शुंठ्याः कर्षं गुडस्य द्वौ धौताकृष्णतिलात्पलम्।
खादन्नेकत्र संचूर्ण्य कोष्णक्षीरानुपोजयेत्।
वातहृद्रोगगुल्माशोंयोनिशूलशकृद्ग्रहान्।

अर्थ-सौंठ एक कर्ष, गुड दो कर्ष, धुली हुई सफेद तिली एक पल इनका चूर्ण बनाकर सेवन करे, ऊपरसे गरम दूधका अनुपान करे। इससे वातज हृद्रोग, गुल्म, अर्श, योनिशूल, और मलका विबंध दूर होजाते हैं॥

अन्य प्रयोग।

पिबेदैरंडतैलं तु वातगुल्मी प्रसन्नया॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लेष्मण्यनुबले वायो पित्ते तु पयसा सह।

अर्थ–वातगुल्मवाला रोगी वायु और कफका अनुबंध होनेपर प्रसन्ना के साथ अंड का तेल पान करे। यदि पित्तका अनुबंध हो तो दूधके साथ पीना चाहिये।

गुल्ममें विरेचनादि।

विवृद्धं यदि वा पित्तं संतापं वातगुल्मिनः॥
कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहैरानुलोमिकैः।
तापानुवृत्तौ वेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत्॥

अर्थ–वातगुल्मरोगी का पित्त वृद्धिको प्राप्त होकर यदि संताप करे तो स्नेहयुक्त अनुलोमन करनेवाले विरेचन के योग्य द्रव्यों से विरेचन करावै। ऐसा करनेपर भी यदि संताप रहै तो रक्तमोक्षण करना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम्।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाचयेत्॥
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्।
हृद्रोगं विद्रधिं शोषं साधयत्याशु तत्पयः॥

अर्थ–छिला हुआ और सूखा लहसन चार पल लेकर आठगुने दूध और पानी में पकावे, जब दूध बचरहे तब उतारकर छानले, इस दूधको पीनेसे वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि और शोषरोग शीघ्र दूर होजाते हैं।

गुल्मपर तैल।

तैलं प्रसन्नागोमूत्रमारनालं यवाम्लजः।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत्॥

अर्थ–तिलकातेल, प्रसन्ना, गोमूत्र, आरनाल और जवाखार इन सबको मिलाकर पीनेसे गुल्म, जठररोग आनाह दूर होजातेहैं।

चित्रकादि क्वाथ।

चित्रकार्कयवैरंडगुडूचीकाथः परं हितः।
शूलानाहविबंधेषु सहिंगुविडसैंधवः॥

अर्थ–चीता, पीपलामूल, अरंडकी जड और सोंठ इनका काढा करके फुलीहुई हींग विडनमक और सेंधानमक पीसकर मिलाकर पीवै तो शूल, आनाह और विबंध जाते रहते हैं।

पुष्करादि क्वाथ।

पुष्करैरंडयोर्मूलं यवधान्ययवासकम्।
जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहरुजापहम्।

अर्थ–पुष्करमूल, अरंडकी जड, जौ और जवासा इनका काढा पीनेसे कोष्टका दाह और वेदना शांत होजाती है।

अन्य प्रयोग।

वाट्याहवैरंडदर्भाणां मूलं दारु महौषधम्।
पीतं निःक्वाथ्य तोयेन कोष्ठपृष्ठांसशूलजित्

अर्थ–खरैटी की जड, अरंडकी जड, दाभकी जड, देवदारु, सोंठ, इनका काथ पीने से कोष्ठ, पीठ, और कंधा इनका दर्द जाता रहता है।

शिलाजीत का प्रयोग।

शिलाजं पयसाऽनल्पपंचमूलस्तेन वा।
वातगुल्मी पिबेद्वाऽस्यमुदावर्ते तु भोजयेत्।
स्निग्धं पैप्पलिकैर्यूषैर्मूलकानां रसेन वा।
बस्तिविण्मारुतोऽश्नीयात्क्षीरेणोष्णेन-
यावकम्॥ ५२॥
कुल्माषान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लघणोत्तरान्

अर्थ–वातगुल्ममें दूधके साथ अथवा बृहत्पंचमूल के साथ पकाये हुए दूध के साथ शिलाजीत पीना चाहिये, यदि उदावर्त हो तो स्नेहसंयुक्त खरैटी की जड को पीपल के यूष के साथ अथवा मूली के रस के साथ देवै। यदि मल और अधोवायुकी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विबद्धता हो तो गरम दूधके साथ जौ के पदार्थ अथवा अधिक स्नेह और अधिक नमक से युक्त कुल्माष (जौ और चना आदि की घूघरी) खाने को दे।

अन्य घृत।

नीलिनीत्रिवृतादंतीपथ्याकंपिल्लकैः सह ॥
समलाय घृतं देयं सविडक्षारनागरम्।

अर्थ—नीलिनी, निसोथ, दंती, हरड और कबीला, विडनमक, जवाखार और सोंठ इनके साथ घृत पान करने से मलयुक्त गुल्म नष्ट होजाता है।

नीलिनी घृत।

नीलिनीं त्रिफलां राम्नां वलां कटुकरोहिणीम्
पचेद्विडंगं व्याघ्रीं च पालिकानि जलाढके।
रसेऽष्टभागशेषं तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
दधः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च।
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूंमंडमिश्रितम् ॥
जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च भोजयेद्रसभोजनम्।
गुल्मकुष्ठोदरव्यंगशोफपांडूदामयज्वरान् ॥
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हंत्येतं नीलिनीघृतम्।

अर्थ-नीलिनी, त्रिफला, रास्ना, खरैटी कुटकी, बायविडंग, और कटेरी इन सब को एक एक पल लेकर एक आढक जल में पकावै, जब अष्टमांश शेष रहै तब उतार कर छानले। फिर इस काथ में, एक प्रस्थ घी, एक प्रस्थ दही, सेंहड का दूध एक पल, इन सबको अग्नि पर धरकर पकावै इस घृत में से एक पल लेकर यवागू वा मंडके साथ पीवै। घी के पचने और घी से अच्छी तरह विरेचन होने पर मांसरस के साथ भोजन करावै। इससे गुल्म, कुष्ठ उदररोग, व्यंग शोफ, पांडुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा, उन्माद, ये रोग दूर हो जाते हैं। इस घी का नाम नीलिनी घृतहै।

गुल्म पर कुक्कुटादि।

कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिश्चौचवर्तकाः ॥
शालयो मदिराः सर्पिर्वातगुल्मचिकित्सितम्

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, बगुला, बतक इनका मांस, शालीचांबल, मदिरा और घी ये सब वातगुल्म की औषध हैं।

पथ्यविधि।

मितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम्
समंडावारुणी पानं तसं वा धान्यकैर्जलम्।

अर्थ—वातगुल्मरोगी के लिये गरम, पतला, स्निग्ध और प्रमाणानुसार भोजन तथा मंडके साथ वारुणी नामक मद्य, अथवा धनिये का काढा पीने को देवै।

पैत्तिक गुल्म में विरेचन।

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्
द्राक्षाऽभयागुडरसं कंपिल्लं वा मधुद्रुतम्।
कल्पोक्तं रक्तपित्तोक्तं

अर्थ--पैत्तिक गुल्म यदि चिकने और गरम पदार्थों के सेवन से हुआ हो तो दाख हरड और गुडके रस द्वारा, अथवा मधुमिश्रित कबीले द्वारा अथवा कल्पस्थानोक्त वा रक्तपित्तोक्त विरेचन देना हितकारीहै।

पित्तगुल्म में संशमन।

गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः ॥ ६१ ॥
परं संशमनं सर्पिस्तिक्तं वासाघृतं श्रुतम्।
तृणाख्यपंचकक्काथे जीवनीयगणेन वा ॥
श्रृतं तेनैव वा क्षीरं न्यग्रोधादिगणेन वा।

अर्थ--यदि गुल्म रूक्ष और उष्ण पदार्थों के सेवन से हुआ हो तो कुष्ठचिकित्सितोक्त तिक्तक घी, वासा घी, अथवा तृणपंचकके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काढे में वा जीवनीयगणके काढे में सिद्ध किया हुआ घी अथवा जीवनीयगण वा न्यग्रोधादि गणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध देना चाहिये । यह औषध पित्त गुल्म को शमन करने के लिये बहुत श्रेष्ठ है ।

आत्ययिक गुल्म में विरेचन ।

तत्राऽपि स्रंसनं युंज्याच्छीघ्रमात्ययिकेभिषक् ॥ ६३ ॥
वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिषा पयसाऽपि वा ।

अर्थ--जो गुल्म साधारणतया उत्पन्न होकर असाध्य प्रतीत हो उसमें भी शीघ्र विरेचन देना चाहिये, यह विरेचन वैरेचनिक द्रव्योंके साथ सिद्ध किये हुए घी वा दूधके साथ दिया जाता है ॥

अन्य घृत ।

रसेनामलकेक्षूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
पथ्यापादं पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत्
पिंगेद्वा तैल्वकं सर्पिर्यच्चोक्तं पित्तविद्रधौ ॥

अर्थ-घी एक प्रस्थ, आमले और ईख का रस चार प्रस्थ, हरड का कल्क चौथाई प्रस्थ डालकर पकावै, इस घीके पीने से अथवा पित्तज विद्रधि में कहे हुए तैल्वक घृत के पीनेसे पित्तगुल्म नष्ट होजाता है ॥

द्राक्षादि पान ।

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चंदनं पद्मकं मधु ।
पिबेत्तंडुलतोयेन पित्तगुल्मोपशांतये ॥

अर्थ -पित्तगुल्मकी शांतिके लिये दाख, क्षीरकाकोली, मुलहटी, रक्तचंदन, पदमाख और शहत इन सब द्रव्योंको चांवलों के जलके साथ पान करै ॥

अन्य प्रयोग ।

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम् ।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत्
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम् ।
तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः

अर्थ--त्रायमाणा दो पलको दो प्रस्थ जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहने पर उतार कर छानले, फिर इसमें बराबर का दूध मिलाकर पीवै ॥ फिर इसके ऊपर अपने बलके अनुसार गरम दूध पीवे । इससे दोषों के निकलने पर पैत्तिक गुल्म शांत हो जाता है ।

पैत्तिक गुल्म में अभ्यंगादि ॥

दाहेऽभ्यंगो घृतैः शीतैः साज्यैर्लेपो-
हिमौषधैः ।
स्पर्शः सरोरुहां पत्रैः पात्रैश्च प्रचलज्जलैः ॥

अर्थ- पैत्तिक गुल्म में दाह हो तो शीतवीर्य द्रव्यों के साथ में पकाये हुए घीका अभ्यंग शीतल द्रव्यों घी में मिलाकर लेप, कमल के पत्तों वा प्रचज्जलपात्रों का स्पर्श करै ।

विदाहपूर्व गुल्म .

विदाहपूर्वरूपेषु शूले वह्नेश्च मार्दवे ।
बहुशोऽपहरेद्रक्तं पित्तगुल्मे विशेषतः ॥

अर्थ-जिस गुल्ममें विदाह पूर्वरूप है, या जिसमें शूल और अग्निमांद्य होता है, उसमें बार बार रक्त निकालना चाहिये । पितगुल्म में विशेष रूपसे रक्त निकालना चाहिये ।

रक्तमोक्षण में कारण ।

छिन्नमूला विदह्यंते न गुल्मा यांति च क्षयम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्ते हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चाऽस्तिरुक् ॥ ७१ ॥

अर्थ-रक्त के निकालने पर गुल्म की जड कटजाती है, इसलिये पकने नहीं पाते है, किंतु नष्ट होजाते हैं, क्योंकि रक्तही भीतर रहकर व्यम्ल होकर पक उठता हैं। इसलिये जब रक्त ही न रहेगा तो उससे वेदना भी उत्पन्न न होगी।

हृतदोष में घृतपान.

हृतदोषं परिम्लानं जांगलैस्तर्पितं रसैः।
समाश्वस्तं सशेषार्तिं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥

अर्थ-गुल्मरोगी दोषके निकलने पर पारिम्लान अर्थात् शिथिल और सुस्त हो तो उसे जांगल जीवों के मांसरस से तृप्तकरै और अच्छी तरह से उसको आश्वासन देकर घीका अभ्यास करावे, जिससे बचा हुआ रोगभी शांत होजाय।

पाकोन्मुख गुल्म में कर्तव्य !

रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्य वा।
गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्रधिवत्क्रिया

अर्थ-रक्त और पित्तकी अत्यंत वृद्धि से अथवा चिकित्सा में उपेक्षा होने से यदि गुल्म में पकने के लक्षण दिखाई देने लगें तो पित्तविद्रधि के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

पित्तजगुल्म में उपाय ।

शालिर्गव्याजपयसा पटोली जांगलं घृतम्।
धात्रीपरूषकं द्राक्षौ खर्जूरं दाडिमं सिताम्
भोज्यं पानेऽबुबलया वृहत्याद्यैश्च साधितम्

अर्थ-गौ वा बकरी के दूध के साथ शालीचांवलों का भात, पर्वल, जांगलमांस, घृत, आंवला, फालसा, दाख, खिजूर, अनार, मिश्री, ये सब द्रव्य खानेके लिये देवै, तथा खरैटी वा बृहत्यादि गणका काथ पीनेको दे

कफजगुल्म में उपाय ॥

श्लेष्मजे वाऽमयेत्पूर्वमवम्यमुपवासयेत् ॥
तिक्तोष्णकटुसंसर्ग्या वह्निं संधुक्षयेत्ततः।
हिंग्वादिभिश्च द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसैः ॥

अर्थ-कफज गुल्ममें प्रथम वमन कराना चाहिये, परंतु यदि रोगी वमन के अयोग्य अर्थात् बालक, वृद्ध, कृश वा गर्भिणीहो तो वमन न कराकर लंघन करावै। तत्पश्चात् सम्यक् लंघित होनेपर तिक्त, कटु और उष्णवीर्य द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई पेया देकर रोगी की अग्निको बढावै। तदनंतर हिंग्वादि चूर्ण देवै परंतु इसमें उक्त परिमाण से हींग, क्षार और अम्लवेत दूना डाले।

कफजगुल्म का संशोधन ॥

निगूढं यदि चोन्नतं स्तिमितं कठिनं स्थिरम्
आनाहादियुतं गुल्मं संशोध्य विनयेद्बु ॥
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना।

अर्थ-कफजगुल्म यदि निगूढ (छिपा हुआ), ऊंचा, स्तिमित, कठोर, अचल वा आनाहादि से युक्तहो तो वमन विरेचनादि द्वारा शोधन करके रोगीको क्षार और कटु द्रव्यों से संयुक्त घृतपान करावै।

अन्य घृत।

सव्योषक्षारलवणं सहिंगुविडदाडिमम् ॥
कफगुल्मं जयत्याशु दशमूलशृतं घृतम्।

अर्थ-त्रिकुटा, जवाखार, नमक, हींग, विडनमक और अनार इनको पीसकर दशमूल के काथमें मिलाकर घी पकावै, यह घी कफजगुल्म को शीघ्र शांत कर देता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भल्लातक घृत ।

भल्लातकानां द्विपलं पंचमूलं पलोन्मितम् ॥
अर्धं तोयाढके साध्यं पादशेषेण तेन च ।
तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेद्दक्षसंमितैः ॥
विडंगहिंगुसिंधूत्थयावशूकशठीबिडैः ।
सद्वीपिरास्नायष्टयाह्वपडूग्रंथाकणनागरैः ॥
एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपांड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥

अर्थ–मिलावा दो पल, लघुपंचमूल एक एक पल, इनको एक आढक जलमें पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, फिर इस काढेमें काढेके समान घी और दूध मिलावे । और बायविडंग, हींग, सेंधानमक, जवाखार, कचूर, बिडनमक, चीता, रास्ना, मुलहटी, वच, पीपल, और सोंठ प्रत्येक एक एक तोले पीसकर मिलाकर पकावे । यह भल्लातक घृत कफजगुल्म को नष्ट करदेता है । तथा प्लीहा, पांडुरोग, श्वास, ग्रहणी, और खांसीको भी दूर करदेता है ।

स्वेदनविधि ।

ततोऽस्य गुल्मे देहे च समस्ते स्वेदमाचरेत्

अर्थ–घृतपानके पीछे गुल्म तथा संपूर्ण देहमें स्वेदन करना चाहिये ।

स्नेहस्वेदन की उत्कृष्टता ।

सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते ।
या क्रिया क्रियते याति सा सिद्धिं न विरूक्षिते ।

अर्थ–सब प्रकार के गुल्मरोगों में प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म करके जो क्रिया की जाती है वह सिद्धि होजाती है, किंतु विरूक्षित गुल्ममें क्रिया की सिद्ध नहीं होती है ।

गुल्मके शिथिल होनेपर कर्तव्य ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते
यथोक्तां घटिकां न्यस्येद्गृहीतेऽपनयेच्च ताम् ।
वस्त्रांतरं ततः कृत्वा छित्वादृगुल्मं प्रमाणवित् ।
विमार्गाजपदादर्शैर्यथलाभं प्रपीडयेत् ।
प्रमृज्यादृगुल्ममेवैकं न त्वंत्रहृदयं स्पृशेत्

अर्थ–स्नेहन और स्वेदन से गुल्म के शिथिल होनेपर उसके उपर घटिका यंत्र स्थापित करे । जब गुल्म गृहीत होजाय तब घटिका को हटाले । तब गुल्मको कपडे से ढककर सूच्यादि से विदीर्ण करदे । तदनंतर विमार्ग, अजपद वा आदर्श इन यंत्रोंमें से गुल्मको पीडन करके पोंछ डाले । तथा अंत्र और हृदयका स्पर्श भी न करे ।

कफगुल्ममें प्रलेपादि ।

तिलैरंडातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च ।
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः स्नुह्योष्णैः स्वेदयेत्ततः

अर्थ–कफज गुल्मके ऊपर तिल, अरंडके बीज, अलसी वा सरसों का लेप करके थोडा गरम करकरके लोहेके पात्रसे स्वेदन करे ।

कफगुल्ममें शोधन ।

एवं च विसृतं स्थानात् कफगुल्मं विरेचनैः
सस्नेहैर्बस्तिभिश्चैनं शोधयेद्दशमूलकैः "

अर्थ–ऊपर लिखी क्रियासे कफ गुल्मके अपने स्थानसे चलित होजाने पर स्नेहयुक्त विरेचन, और दशमूल की वस्तिका प्रयोग करके शुद्ध करे ।

मिश्रित स्नेह ।

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाद्यैः पालिकैः पचेत् ।
एरंडतैलहविषोः प्रस्थौ पयसि षड्गुणे
सिद्धोऽयं मिश्रकः स्नेहो गुल्मिनां स्रंसनं हितम् ।
वृद्धिविद्रधिशूलेषु वातव्याधिषु चामृतम्

अर्थ–पीपल, आमला, दाख और श्या-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वादिवर्ग (सूत्रस्थान १५ वां अध्याय देखो) प्रत्येक एक एक पल, अरंडी का तेल और घी एक एक प्रस्थ, दूध छःगुना इन सबको यथोक्त रीति से पकावै। यह मिश्रत नामक स्नेह गुल्मरोगियों के विरेचन के लिये अत्यंत उत्तम औषध है। तथा वृद्धि, विद्रधि शूल और वातव्याधियों में अमृत के समान गुणकारक है।

नीलिका घृत।

पिबेद्वा नीलिनीसर्पिर्मात्रया द्विपलीकया।
तथैव सुकुमाराख्यं घृतान्यौदरिकाणि वा

अर्थ—पूर्वोक्त नीलिकाघृत अथवा विद्रधि चिकित्सितोक्त सुकुमार घृत अथवा उदररोग में कहे हुए सब प्रकार के घृत इनमें से विरेचन के लिये दो पल की मात्रा देवै।

दंत्यादि चूर्ण।

द्रोणेंभसः पचेद्दंत्याः पलानां पंचविंशतिम्।
चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे सुते
द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दंतीसमं गुडम्।
तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः
कणाकर्षौ तथा शुंठ्याः सिद्धे लेहे तु शीतले।
मधुतैलसमं दद्याच्चतुर्जाताच्चतुर्थिकाम्॥
अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन्।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः॥
गुल्महृद्रोगदुर्नामशोफानाहगरोदरान्।
कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीहग्रहणीविषमज्वरान्॥
अति दंतीहरीतक्यः पांडुतां च सकामलाम्

अर्थ—दंती २५ पल, चीते की जड २५ पल, हरड २५ पल, इन सबको एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतार कर छानले, फिर इसमें २५पल पुराना गुड, मिलादे और ऊपर कही हुई सिद्ध हरड, तिलका तेल ४ पल, निसोथका चूर्ण ४ पल, पीपल और सोंठ दो दो तोले इनको डालकर पकावै। जब यह लेहई के समान गाढा होजाय तब उतार ले, ठंडा होने पर शहत चार पल, चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर) प्रत्येक एक एक पल पीसकर मिला देवै। इसकी मात्रा दो तोला और एक हरड होती है। इसके सेवनसे विरेचन सुखपूर्वक होता है, तथा स्निग्धता के साथ साथ एक प्रस्थ मल निकल कर रोगी निरोग होजाता है। इससे गुल्म, हृद्रोग, अर्श, शोफ, आनाह, गर, उदररोग, कुष्ठ, उत्क्लेश, अरुचि प्लीहा, ग्रहणी, विषमज्वर, पांडुरोग और कामला नष्ट होजाते हैं। इस अवलेह का नाम दंती हरीतकी है।

अन्य चूर्ण।

सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम्॥
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वासाधुविरिच्यते

अर्थ—सेंहुड के दूध की भावना दिया हुआ और उसी से द्रव किया हुआ चूर्ण एक कर्ष मधु और घी के साथ चाटने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

अन्य चूर्ण।

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दंतीविजयाक्षारगुग्गुलुम्॥
गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा।

अर्थ—कूठ, श्यामा, निसोथ, दंती, हरड, जवाखार और गूगल, अथवा गूगल को गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिये।

गुल्मनाशकनिरूह।

निरूहान्कल्पसिद्धयुक्तान्योजयेद्गुल्मनाशनान्

अर्थ—कल्पसिद्धिस्थानमें कही हुई गुल्म-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाशक सब प्रकार की वस्ति देनी चाहिये ।

क्षार प्रयोग ।

कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम् ।
गूढमांसं जयेदुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥
एकांतरं त्र्यंतरं वा विश्रम्याऽथ वाऽप्यहम्
शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥

अर्थ–कृतमूल (जड पकडा हुआ), महावस्तु (विस्तारयुक्त], कठोर, स्तिमित, भारी और गूढ मांसवाले गुल्मको एक दिन दो दिन वा तीन दिन का विश्राम देदेकर क्षारकर्म, अरिष्ट और अग्निकर्म द्वारा दूर करनेका यत्न करै और शरीरके बढाने तथा दोषके बलको क्षीण करनेमें सदा उद्यत रहे।

कफाधिक्य गुल्ममें क्षार ।

अर्शोऽश्मरीग्रहण्युक्ताःक्षारा योज्याःकफोल्बणे

अर्थ–कफाधिक्य गुल्ममें अर्श, अश्मरी और ग्रहणी रोगोंमें कहे हुए क्षारों को उपयोग में लावे ।

अन्य क्षार ।

देवदारुत्रिवृद्वंतीकटुकापंचकोलकम् ॥
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठा पाठोपकुंचिकाः
कुष्ठं सर्पसुगंधां च द्व्यक्षांशं पटुपंचकम् ॥
पालिकं चूर्णितं तैलवसादधिघृताप्लुतम् ।
घटस्यांतः पचेत्पक्वमग्निवर्णे घटे च तम् ।
क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत्
गुल्मोदावर्तवर्ध्मार्शोजठरग्रहणीकृमीन्
अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्राश्मरीः ।
क्षारो गदोऽयं शमयेद्विषं चाखुभुजंगजम

अर्थ–देवदारू, निसोथ, दंती, कुटकी, पंचकोल, सज्जीखार, जवाखार, त्रिफला, पाठा, कलौंजी, कूठ, और नाकुली इनमेंसे हरएक दो दो तोले, पांचों नमक एक एक पल, इनका चूर्ण बनाकर तेल, चर्बी, दही और घी में आलोडित करके एक घडेमें भरकर मुख बंद करदे और अग्निमें रखदे, जब घडा लालगरम होजाय और भीतर की दवा जली हुई प्रतीतहो तब इसको निकाल ले इसतरह यह क्षार बनताहै । इसको दूध घी तक्र और मद्यके साथ सेवन करे । इससे गुल्म उदावर्त, वर्ध्म, अर्श, जठर, ग्रहणी, कृमि, अपस्मार, गर, उन्माद, योनिरोग, शुक्रदोष, अश्मरी दूर होजाते हैं तथा यह क्षार चूहे और सर्पके विषको भी दूर कर देताहै ।

क्षारद्वारा कफका अधःपतन ।

"श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धंरसक्षीरघृताशिनः ।
छित्त्वा भित्त्वा ऽऽशयं क्षारः
क्षारत्वात्पातयत्यधः ॥ १०६ ॥

अर्थ–मांसरस, दूध और घृतको खाने वाले मनुष्य के मधुर और स्निग्ध कफको क्षार अपने क्षारपने से कफाशय को छिन्न भिन्न करके नीचे गिरा देताहै ।

आसवादि का प्रयोग ।

मंदेऽग्नावरुचौ सात्म्यैर्मद्यैः सस्नेहमश्नताम्
योजयेदासवारिष्टाग्निगदान्मार्गशुद्धये ।

अर्थ–अग्नि की मंदता और अरुचि हो तो सात्म्य मद्यके साथ स्नेहयुक्त आहार खानेको दे, तथा मार्ग की शुद्धि के निमित्त आसव, अरिष्ट और निगद नामक मद्यकी योजना करै ।

पथ्यविधान ।

शालयः षष्टिका जीर्णाः कुलत्था जांगलं परम्
चिरिविल्वाग्नितक्रारीयवधान्यावरणांकुरः ॥
शिग्रुस्तरुणबिल्वानि वालं शुष्कं च मूलकम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥
व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्ते पानं तु वारुणी।
धान्याम्लं मस्तुतक्रंच यवानीविडचूर्णितम्
पंचमूलशृतं वारि जीर्णं माद्वीकमेव वा।

अर्थ–पुराने शाली चांवल, साठी चांवल, कुलथी, जांगल मांस, कंजा, चीता, अरंनी, अजवायन, वरणा के अंकुर, सहंजना, कच्ची बेलगिरी, कच्ची और सूखी मूली, विजौरा, हींग, अम्लवेत, जवाखार, अनार, त्रिकुटा, तक्र, घृत, तेल ये सब द्रव्य आहार के अर्थ प्रयुक्त करै । तथा वारुणी, धान्याम्ल, मस्तु, तक्र, तथा अजवायन और विडनमक डालकर पंचमूल का काढा, और पुराना माद्वीक मद्य पीनेको दे।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैंधवैः११२
सुरा गुल्मं जयत्याशु जांगलश्च विमिश्रितः

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, चीता, जीरा, सैंधानमक इनसे संयुक्त सुरा अथवा जांगल मांस गुल्मको दूर करनेवाले हैं ।

गुल्म में दाह ।

वमनैर्लंघनैः स्वेदैः सर्पिःपानैर्विरेचनैः।११६।
बस्तिक्षारासवारिष्टगुल्मिकापथ्यभोजनैः ।
श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति।
तस्य दाहं हृते रक्ते कुर्यादंते शरादिभिः ।

अर्थ–वमन, लंघन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वास्तिकर्म, क्षार, आसव, अरिष्ट, और गुल्म में पथ्य भोजन इन सब कामों के करने पर भी जड पकडा हुआ कफज गुल्म यदि शांत न हो तो गुल्म का रक्त निकालकर शरादि द्वारा दग्ध करना चाहिये ।

दाहविधान ।

अथ गुल्मं सपर्यंतं वाससांतरितं भिषक् ॥
नाभिबस्त्यंत्रहृदयं रोमराजीं च वर्जयेत् ।
नातिगाढं परिमृशेच्छरेण ज्वलताऽथवा ॥
लोहेनारणिकोत्थेन दारुणा तैंदुकेन वा।
ततोऽग्निवेगे शमिते शीतैर्लेपैः इव क्रिया ॥

अर्थ–नाभि, वस्ति, अंत्र, हृदय और रोमराजी को बचाकर किनारों तक गुल्मको कपडे से ढककर जलते हुए सरकंडे से गुल्म को हलका दग्ध करदे । अथवा लोहेकी शलाका से वा अरनी की लकडी से अथवा तिंदुकी लकडी से दग्ध करै तदनंतर अग्नि के वेगके शांत होनेपर शीतल लेपादि द्वारा घावकी तरह चिकित्सा करै ।

आमान्वय में कर्तव्य ।

आमान्वये तु पेयाद्यैः संयुध्यान्नि विलंघिते ।
स्वं स्वं कुर्यात्क्रमं मिश्रं मिश्रदोषे च-
कालवित्॥ ११८ ॥

अर्थ–गुल्मरोग में आमका संबंध होने पर अन्य पथ्य न देकर पेयादि द्वारा जठराग्नि के बढानेका यत्न करै। तत्पश्चात् वातादि दोषोंकी यथायोग्य चिकित्सा करै । मिश्र दोषोंमें मिश्रचिकित्सा करनी चाहिये ।

स्त्रीको स्नेहविरेचन ।

गतप्रसवकालायै नार्यै गुल्मेऽसृजंसंभवे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ–प्रसवकाल अर्थात् दसवां महिना बीत जानेपर स्त्रियोंको रक्तगुल्म में स्नेहन स्वेदन करने के पीछे स्नेहविरेचन देवै। बहुत काल पीछे चिकित्सा करने में कुछ हानि नहीं होती है क्योंकि पुराना रक्तगुल्म ही सुखसाध्य होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तजगुल्म में तिलका काढा।

तिलकाथो घृतगुडव्योषभार्गीरजोन्वितः।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः॥

अर्थ–स्त्रियों के लिये रक्तज गुल्म में घी, गुड, त्रिकुटा, भाडंगी, डालकर तिल का काढा पान करावै। जिन स्त्रियों का रज नष्ट होजाता है उनको भी यही देना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

भार्गीं कृष्णां करंजत्वग्ग्रंथिकामरदारुजम्।
चूर्णं तिलानां काथेन पीतं गुल्मरुजापहम्॥

अर्थ–भाडंगी, पीपल, कंजा की छाल, पीपलामूल और देवदारु इनका चूर्ण तिलके काढे के साथ पीने से गुल्मरोग प्रशमित होजाता है।

अन्य प्रयोग।

पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः।
गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्

अर्थ–ढाक का खार दो पात्र, तेल और घी दो पात्र इनको चौगुने जल में पकाकर मात्रानुसार सेवन करने से रक्तगुल्म शिथिल होजाता है।

योनिविरेचन।

नप्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम्।

अर्थ–इन उपायों से भी यदि रक्तगुल्म न फूटै तो योनिविरेचन देना चाहिये।

योनिविरेचन विधि।

क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा ततः॥
ताभ्यांवाभावितान्दद्याद्योनौ-
कटुकमत्स्यकान्।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्तकान्वा सुभावितान्
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये।
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा॥
लशुनंमदिरांतीक्ष्णांमत्स्यांश्चास्यैप्रयोजयेत्
वास्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम्॥

अर्थ–क्षार अथवा सेंहुड के दूध में संयुक्त किये हुए तिलों का कल्क योनि में रक्खै। अथवा क्षार वा सेंहुड के दूध से भावना दिये हुए कटु मत्स्य को योनि में धरै। अथवा शूकर वा मछली के पित्तेकी भावना दिये हुए कंजे योनि में धरै अथवा योनिकी शुद्धि के लिये सुरावीज, गुड और खार मिलाकर रक्खै। अथवा रक्तपित्तनाशक क्षारको घी और शहत के साथ चाटै अथवा लहसन, तीक्ष्ण मद्य, और मत्स्य खाने को दे अथवा कल्पस्थान में कहीहुई दूध, गोमूत्र और जवाखार से संयुक्त दशमूल के काढे की वस्ति का प्रयोग करे।

अवर्तमान रुधिर में कर्तव्य।

अवर्तमाने रुधिरे हितं गुल्मप्रभेदनम्।

अर्थ–जो रक्त का स्राव न हो तो वे औषध देनी चाहिये, जिनसे गुल्म विदीर्ण होजाय।

प्रवृत्तरक्त में कर्तव्य।

यमकाभ्यक्तदेहायाः प्रवृत्ते समुपेक्षणम्॥
रसौदनस्तथाऽहारः पानं च तरुणी सुरा।

अर्थ–रक्त के प्रवृत्त होने पर औषधकी उपेक्षा करना चाहिये। रोगी को केवल घी और तेल से अभ्यक्त करके मांसरस के साथ भोजन कराना हित है और नवीन मद्यपान भी हित है।

अतिप्रवृत्त रुधिर में कर्त्तव्य।

रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः॥
कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः।
आनाहादावुदावर्तबलासघ्न्यौ यथायथम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--रुधिर के अति प्रवृत्त होने पर रक्तपित्तनाशिनी संपूर्ण क्रिया करनी चाहिये तथा रोगी के वातपीडित होने पर वातनाशिनी क्रिया करे, इसीतरह आनाहादि होने पर उद्वर्त और कफनाशक क्रिया करनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने गुल्मचिकित्सितं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः।

अथाऽतउदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहां से उदरचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

उदररोग में विरेचन।

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात्।
संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत्॥

अर्थ--वातादि दोषों के अत्यन्त बढजाने के कारण स्रोतों का मुख रुकजानेही से उदररोग पैदा होते हैं, इसलिये उदररोग में सदा विरेचन कराना चाहिये।

उदररोग में स्निग्ध विरेचन।

पाययेत्तैलमैरंडं समूत्रं सपयोऽपि वा।
मासं द्वौ वाऽथवा गव्यं मूत्रं माहिषमेव वा
पिबेद् गोक्षीरभुग् स्याद्वा करभीक्षीरवर्तनः।
दाहानाहातितृष्मूर्छापरीतस्तु विशेषतः॥

अर्थ--गौके दूध वा गोमूत्र के साथ एक महिने वा दो महिने तक अंडी का तेल पान करावे, अथवा दोषानुसार गौ वा भैंस का मूत्र पान करावे। अथवा गौका दूध वा हथनी का दूध पीकर निर्वाह करै। दाह, आनाह, अतितृषा वा मूर्छारोग से पीडित रोगी को विशेष करके ऊपर लिखी रीति से रहना चाहिये।

विरेचन विधि।

रूक्षाणां बहुवातानां दोषसंशुद्धिकांक्षिणाम्
स्नेहनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि योजयेत्॥

अर्थ--रूक्ष देहवाले तथा वातदोष से अधिक पीडित उदररोगी को दोषोंकी शुद्धि के निमित्त स्नेहनीय और उदररोग नाशक घृतपान कराना चाहिये।

अन्य घृत।

षट्पलं दशमूलांबु मस्तुद्याढकसाधितम्।

अर्थ-घी चार सेर, पंचकोल और जवाखार प्रत्येक एक पल, इनको पीसकर दशमूल के सोलह सेर काढे में मिलादे, दही का तोडभी काढे के समान मिलाकर पाकविधि से पाक करे। यह छः पल कल्कों से सिद्ध किया हुआ षट्पलोपलक्षणलक्षित घृत उदररोग में प्रयोग करना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽढकम्॥
मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम्॥
कफपित्तसंभूते गुल्मे च परमं हितम्।

अर्थ--सोंठ तीन पल, घी तेल मिला हुआ एक प्रस्थ दही का तोड एक आढक, इन सबको यथोक्त रीति से पकावै। यह घी सब प्रकारके उदररोग तथा वातकफज गुल्म में परमोपयोगी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य घृत।

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत्॥

अर्थ–घी एक प्रस्थ, जल चार प्रस्थ, गोमूत्र दो प्रस्थ इनमें एक पल चीता पिसा हुआ मिलाकर पकावै। इस घृत में जवाखार मिलाकर सेवन करने से जठररोग शांत होजाते हैं।

अन्य घी।

यवकोलकुलत्थानां पंचमूलस्य चांभसा।
सुरासौवीरकाभ्यां च सिद्धं वा पाययेद्घृतं।

अर्थ–जौ, बेर, कुलथी और पंचमूल का काथ, सुरा और सौबीर इनके साथमें पकाया हुआ घी हितकारी होता है।

घृतपान के पीछे विरेचन।

एभिः स्निग्धाय संजाते बले शान्ते च मारुते
स्रस्ते दोषाशये द्यात्कल्पस्थं विरेचनम्॥

अर्थ–इन ऊपर कहे हुए स्नेहपान से रोगीके स्निग्ध होनेपर उसके देहमें बल आने पर वायुके शांत होनेपर और दोषाशय के शिथिल होनेपर कल्पस्थान में कहा हुआ विरेचन देना चाहिये।

अन्य चूर्ण।

पटोलमूलं त्रिफलां निशां वेल्लं च कार्षिकम्
कंपिल्लनीलिनीकुंभभागान् द्वित्रिचतुर्गुणान्
पिबेत्संचूर्ण्य मूत्रेण पेयां पूर्वं ततो रसैः।
विरक्तो जांगलैरद्यात्ततः षड्दिवसं पयः॥
शृतं पिबेद्वथोष्णयुतं पीतमेवं पुनःपुनः।
हंति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि॥

अर्थ–पर्वलकी जड, त्रिफला, हलदी, वा बायविडंग, प्रत्येक एक कर्ष, कबीला दो कर्ष, नीलिनी तीन कर्ष, निसोथ ४ कर्ष, इन सब का चूर्ण बनाकर गोमूत्र के साथ पानकरै। विरेचन के पीछे पेया पान कराके जांगल मांसरस के साथ भोजन करावै। तदनंतर छः दिन तक त्रिकुटा डालकर औटाया हुआ दूध पीनेको दे। इस तरह वार बार करने से सब प्रकारके उदररोग यहां तक कि संजात-जलोदर भी नष्ट होजाता है।

गवाक्षादि चूर्ण।

गवाक्षीशंखिनीं दंतीतिलवकस्यत्वचंवचाम्।
पिबेत्कर्कंधुमूत्राकाकोलांभोमूत्रसींधुभिः॥

अर्थ–इन्द्रायण, शंखनी, दंती, लोधकी छाल और वच इनके चूर्ण को बेर, दाख, वडवेरी, मूत्र और सींधुके साथ पान करै।

नारायण चूर्ण।

यवानी हपुषाधान्यं शतपुष्पोपकुंचिका।
कारवी पिप्पलीमूलमजगंधा शठी वचा॥
चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम्
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपंचकम्॥
विडंगं च समांशानि देया भागत्रयं तथा।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा॥
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः।
नैनं प्राप्याभिवर्धंते रोगा विष्णुमिवासुराः॥
तकेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्वेदरांबुना।
आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया॥१८॥
दधिमंडेन विट्संगे दाडिमांभोभिरर्शसैः।
परिकर्ते सवृक्षाम्लैरुष्णांबुभिरजीर्णके॥
भगंदरे पांडुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मंदेऽनले ज्वरे॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्॥

अर्थ अजवायन, हाऊबेर, धनियां, सौंफ कालाजीरा, कारवी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, चीता, सफेदजीरा, त्रिकुटा, स्व-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

र्णक्षीरी, त्रिफला, जवाखार, सज्जीखार, पुष्करमूल, कुडा, पांचोंनमक और वायविडंग प्रत्येक समान भाग, दंती तीन भाग, निसोथ और इन्द्रायण दो दो भाग, सातला ४ भाग, इन सबका चूर्ण नारायण चूर्ण कहाता है, यह सब रोग समूहों को दूर करदेता है इसके मिलजाने पर रोग ऐसे नहीं बढते हैं, जैसे विष्णुके मिलनेसे असुर। यह चूर्ण उदररोग में तक्रके साथ, गुल्मरोग में बेरके जलके साथ, आनाह वातमें सुराके साथ, वातरोग में प्रसन्ना के साथ, पुरीष विबंध में दधिमंड के साथ, अर्शमें अनारके रसके साथ, परिकर्तिका में वृक्षाम्ल के साथ, अजीर्ण में गरम जलके साथ, पीना चाहिये। तथा भगंदर, पांडुरोग, खांसी, श्वास, मलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी दोष, कुष्ठ, मंदाग्नि, ज्वर-दंष्ट्राविष, मूलविष, गररोग, कृत्रिमविष, इन रोगों में यथायोग्य स्नेहके प्रयोगसेकोष्ठ को स्निग्ध करके विरेचन औषधका पान कराना चाहिये

हपुषादि चूर्ण।

हपुषां कांचनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम्।
त्रायंतीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां-
वचाम् ॥ २२ ॥
सैंधवं काललवणं पिप्पलीं चेति चूर्णयेत्।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीहि सर्वोदरेषु च।
श्वित्रे कुष्ठेष्वजरके सदने विषमेऽनले ॥
शोफार्शः पांडुरोगेषु कामलायां हलीमके।
वातपित्तकफांश्चापि विरेकेण प्रसाधयेत् ॥

अर्थ-होऊबेर, स्वर्णक्षीरी, त्रिफला, नीलिनी, त्रायंती, हरड, कुटकी, सातला, निसोथ, बच, सेंधानमक, कालानमक, और पीपल इनका चूर्ण बनाकर अनार का रस, त्रिफला का क्वाथ, मांसरस, गोमूत्र वा गुनगुना पानी इनमेंसे रोगानुसार किसी एक के साथ पान करावै। यह चूर्ण सब प्रकारके गुल्मरोग, प्लीहा, सब प्रकारके उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, अजीर्ण, शिथिलता, विषमाग्नि शोफ, अर्श, पांडुरोग, कामला, हलीमक इन रोगों में विरेचन द्वारा वात, पित्त और कफको शांत करताहै।

नीलिन्यादिक चूर्ण।

नीलिनीं निचुलं व्योषं क्षारौ लवणपंचकम्।
चित्रकं च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत् ॥

अर्थ-नीलिनी, जलवेत, त्रिकुटा, जवाखार, सज्जीखार, पांचोंनमक, और चीता इनका चूर्ण बनाकर घृतके साथ सेवन करै तो उदररोग और गुल्मरोग जाते रहते है।

उदररोग में दुग्धपान ॥

पूर्ववच्च पिबेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽतरांतरः।
कारभं गव्यगाजं वा दद्यादात्ययिके गदे ॥
स्नेहमेव विरेकार्थं दुर्बलेभ्यो विशेषतः।

अर्थ-पूर्वोक्त पटोलमूलादि चूर्णके साथ पकाया हुआ दूध पान कराके विरेचन करावै, इसतरह क्षाम और शुद्ध होनेपर जांगल मांसरसके साथ भोजन करावै, फिर बीच बीचमें हथनी का दूध वा गौ का दूध वा बकरी का दूध देतारहै। जो रोग भयानक हो तो विरेचन के लिये स्नेह का प्रयोग करे। यदि रोगी दुर्बल हो तो विशेषरूपसे घृतपान कराना चाहिये।

अन्य चूर्ण।

हरीतकीसूक्ष्मरजः प्रस्थयुक्तं घृताढकम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अग्नौ विलाप्य मथितं खजेन यवपल्लके।
निधापयेत्ततो मासादुद्धृतं गालितं पचेत् ॥
हरीतकीनां काथेन दध्ना चाऽम्लेन-
संयुतम्।
उदरं गरमष्ठीलामानाहं गुल्मविद्रधिम् ॥
हन्त्येतत्कुष्ठमुन्मादमपस्मारं च पानतः।

अर्थ–एक प्रस्थ हरडका महीन चूर्ण एक आढक घृतमें अग्निपर चढादे और कलछी से चलाता रहे, पकजानेपर एक पात्र में भरकर जौके ढेरमें एक महीने तक गढा रहनेदें, फिर निकालकर पिघलाकर छानले। तदुपरांत हरडके क्वाथ, दही और कांजीके साथ इस घृतको फिर पकावे। यह घृत उदररोग, दूषीविष, अष्ठीला, आनाह, गुल्म विद्रधि, कुष्ठ, उन्माद और अपस्मार इन सब रोगों को दूर कर देता है।

स्नुही घृत ॥

स्नुक्क्षीरयुक्ताद्गोक्षीराच्छृतशीतात्खजाहृतात
यज्जातमाज्यं स्नुक्क्षीरसिद्धंतच्च तथागुणम्

अर्थ–सेंहुड के दूध को गौ के दूध में मिलाकर औटावै, फिर ठंडा होने पर कलछी से मथ कर घृत निकाल ले, इस घृत को सेंहुड के दूध के साथ फिर पकावै, यह घृत पूर्ववत् गुणकारी होता है।

अन्यघृत।

क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि ॥
जातं मथित्वा तत्सर्पिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणं

अर्थ–दूध एक द्रोण, आधा प्रस्थ सेंहुडका दूध इनको औटाकर दही जमाकर घी निकाल ले। इस घृत को निसोथ के साथ पकाकर सेवन करने से पूर्ववत् गुणकारक होता है।

अन्य विधि।

तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत् ॥
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च।

अर्थ–पूर्ववत् पकायाहुआ घी एक प्रस्थ आठगुने दूधमें पकावै, इसमें सेंहुड का दूध एक पल, तथा निसोथ का कल्क छः पल डाल देना चाहियें। यह घृत पूर्ववत् गुणकारक होता है।

पेयापान।

" एषां चाऽनु पिबेत्पेयां रसं स्वादु
पयोऽथवा ॥ ३४ ॥

अर्थ–इन सब प्रकार के घीओं को सेवन करने के पीछे, पेया, मिष्ट मांसरस वा दुग्ध का अनुपान करै।

घृत के पचनेपर कर्तव्य।

घृते जीर्णे विरिक्तश्च कोष्णं नागरसाधितं
पिबेदंबु ततः पेयां ततो यूषं कुलत्थजं ॥

अर्थ–घीके पचजाने और रोगी के विरिक्तहोने पर सोंठ डालकर औटाया हुआ गुनगुना पानी पीनेको दे, पीछे पेया और कुलथी का यूष खानेको दे।

बार बार घृत प्रयोग ॥

पिबेद्रूक्षस्त्र्यहंत्वेवं भूयो वाऽप्रतिभोजितः।
पुनः पुनः पिबेत्सर्पिरानुपूर्व्याऽनयैव च ॥

अर्थ–रूक्ष व्यक्ति तीन दिनतक इसक्रम से सेवन करके पेयादि पथ्यका सेवन करता हुआ इसी क्रमसे बार बार घृतपान करै।

घीके प्रयोग का विधान ॥

घृतान्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो-
भिषक्।
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च शांतये॥

अर्थ–कुशल वैद्यको उचित है कि पूर्वो-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्त सब प्रकार के घी तयार कर करके गुल्म गर दोष और उदररोगों की शांति के लिये प्रयोग करता रहै।

आनाह पर घी।

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम्।
तैल्वकं नीलिनीसर्पिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत्

अर्थ–पीलु के कल्क से सिद्ध किया हुआ घी, तैल्वक घृत, नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेहपान करने से आनाह रोग जाता रहता हैं।

दोष दूर होनेपर पथ्य।

हृतदोषः क्रमादश्नन् लघुशाल्योदनं प्रति।

अर्थ–पूर्वोक्त रीतिसे चिकित्सा करने से दोषों के निकलजाने पर शाली चांवलों का भात खानेको दे।

उदररोगमें हरीतकी सेवन।

उदरयुंजीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये ॥३९॥
हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोनुपः।
सहस्रं पिप्पलीनां वा क्षुक्षीरेण सुभावितम्
पिप्पलीवर्धमानां वा क्षीराशी वा शिलाजतु
तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरे तुल्यार्द्रकरसं तथा

अर्थ–उदररोगी को उचित है कि बचे हुए दोषों की निवृत्ति के लिये गोमूत्र से भावना दीहुई सहस्र हरीतकी वर्द्धमान रीति से सेवन करके दूधका अनुपान करता रहै अथवा सेंहुड के दूधकी भावना दीहुई सहस्र पीपल वर्द्धमान रीतिसे सेवन करै। अथवा केवल दूधको पीकर शिलाजीत, वा गूगल अथवा समान भाग अदरख और दूध मिलाकर उपयोग में लावै।

अन्य प्रयोग।

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत्।
मासं युक्तस्तथा हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम्

अर्थ–चीता और देवदारु का कल्क दूधके साथ पीवे अथवा गजपीपल और सोंठका कल्क नियमानुसार एक महिने तक दूधके साथ पीता रहै।

प्रवृद्ध उदरकी चिकित्सा।

विडंगं चित्रको दंती चव्यं त्र्योषं च तैः पयः।
कल्कैः कालसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत्

अर्थ–बायविडंग, चीता, दंती, चव्य, त्रिकुटा, इन सब द्रव्यों का एक तोले कल्क दूधमें मिलाकर पीने से बढा हुआ उदर रोग नष्ट होजाता है।

उदररोग में भोजन।

भोज्यं भुंजीत वा मांसं स्नुहीक्षीरघृतान्वितम्
उत्कारिकां वा क्षुक्षीरपीतपथ्याकणाकृताम्

अर्थ–सेंहुड के दूधसे सिद्ध किया हुआ घृत के साथ एक महिने तक भोजन करै, अथवा थूहर के दूधके साथ कुंटक, हरड और पीपल डालकर सिद्ध कीहुई उत्कारिका खानेको दे।

पार्श्वशूलादि की चिकित्सा॥

पार्श्वशूलमुपस्तंभहृद्ग्रहं च समीरणः।
यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारसमन्वितं पिबेत्
पक्वं वा टिंटुकबलापलाशं तिलनालजैः।
क्षारैः कदलयपमार्गतकारीजैः पृथक्कृतैः

अर्थ यदि कुपित हुवा वायु पसली में दर्द, स्तब्धता और हृद्रोगों को उत्पन्न करै तो बेलगिरी और जवाखार मिलाकर तेल को पीवे, अथवा टेंटू, खरैटी, केसू, और तिलनाल इनके साथ क्षारके साथ पकाया हुआ तेल अथवा केला, ओंगा और त-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कांरी इनके साथ क्षारके साथ पकाया हुआ तेल पान करावे।

अरंडी के तेलका प्रयोग ॥

कफे वातेन पित्ते वा ताभ्यां वाप्यावृतेऽनिले
बलिनः स्नौषधं युक्तं तैलमैरंडजं हितम्

अर्थ–वातावृत कफ वा वातावृत पित्त में अथवा पित्त और कफ से आवृत वायु में दोषानुसार औषधों के साथ सिद्ध किया हुआ अरंडी का तेल देना चाहिये। परन्तु इसका प्रयोग बलवान् मनुष्य के लियेहै।

उदर पर प्रलेप ॥

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः।
साश्वकर्णैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं बहिः

अर्थ–ऊपर कहे हुए प्रकार से विरेचन होने पर उदरमें ग्लानता होजाती है इस लिये देवदारु, पलाश, आक, गजपीपल, सहजना और अश्वकर्ण (शालवृक्ष विशेष) इन सबको पीसकर उदर पर लेप करै।

उदरका परिषेक ॥

वृश्चिकालीवचाशुंठीपंचमूलपुनर्नवात्।
वर्षाभूधान्यकुष्ठाच्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत्

अर्थ–भेंढासिंगी, वच, सोंठ, पंचमूल, पुनर्नवा, सांठ, धनियां और कूठ इनके काढे में गोमूत्र मिलाकर उदर पर परिषेक करै।

उदरवेष्टन ॥

विरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं साल्वलादिभिः।
वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नोऽध्मापयेत्पुनः

अर्थ–विरेचन द्वारा विरिक्त और कुंभलाये हुए उदर को साल्वल स्वेद से स्वेदित करके पेट को कपडे से लपेट देवै, कि जिस से वायु पेटमें अफरा न कर सके, साल्वलस्वेद की विधि सुश्रुत में लिखी है।

आध्मान में निरूहण।

सुविरिक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम्
सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत्

अर्थ–अच्छी रीति से विरेचन हो जाने पर भी यदि फिर अफरा हो तो उस को खटाई और नमक से युक्त सुस्निग्धनिरूहण देवे।

आध्मान में वस्ति।

सोपस्तंभोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम्
तीक्ष्णाःसक्षारगोमूत्राः शस्यंते तस्य वस्तयः

अर्थ–कफादि अधार से युक्त वायु जिस मनुष्य के पेट में अफरा उत्पन्न करै, उसको क्षार और गोमूत्र सहित तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहिये।

उदरचिकित्सा की समाप्ति।

इति सामान्यतःप्रोक्ताःसिद्धाजठरिणांक्रिया

अर्थ–जठररोग की सिद्धचिकित्सा सामान्य रीति से वर्णन करदी गई है, अब विशेष रूप से कहते हैं॥

वातोदर की चिकित्सा

वातोदरेऽथ बलिनं विदार्यादिशृतं घृतम्।
पाययेत्तु ततःस्निग्धं स्वेदितांगं विरेचयेत्।
बहुशस्तैल्वकेनैनं सर्पिषा मिश्रकेण वा॥

अर्थ–वातोदररोग में जो रोगी बलवान् हो तो विदार्यादिगण से सिद्ध किया हुआ घी पानकरावै, फिर रोगी को स्निग्ध स्वेदित करके तैल्वक वा मिश्रक घी का बार बार प्रयोग करके विरेचन करावै।

संसर्गके पीछे दूधपान।

कृते संसर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शयोत्क्लेशान्निवर्तेत बले लब्धे क्रमात्पयः

अर्थ–संसर्जन अर्थात् पेया पानादि क्रम के पीछे बल बढाने के निमित्त दूध पान कराना चाहिये। बल प्राप्ति के पीछे कफका संचय होने से पहिले दूध पीना छोड देना चाहिये।

उदररोगमें वस्तिप्रयोग।

यूषै रसैर्वा मंदाम्ललवणैरेधितानलम्।
सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेत्ततः
तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाशमूलिकवस्तिना

अर्थ–जो उदररोगमें उदावर्त भी हो तो प्रथम ही थोडीसी खटाई और नमक मिलाकर यूष वा मांसरस पान कराके अग्नि को प्रबल करै। फिर स्नेहस्वेद द्वारा रोगीको स्निग्ध और स्वेदित करके कल्पस्थानमें कही हुई अधोभाग से संयुक्त और दशमूल के काढेकी तीक्ष्ण निरूहण वस्ति देवै।

उदररोगमें अनुवासन।

तिलोरुबूकतैलेन वातघ्नाम्लशृतेन च॥
स्फुरणाक्षेपसंध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु।
रूक्षं बद्धशकृद्वातं दीप्ताग्निमनुवासयेत्॥
अविरेच्यस्य शमना वस्तिक्षीरघृतादयः।

अर्थ–तिल और अरंडके तेलमें बातनाशक और अम्ल द्रव्य मिलाकर अनुवासन वस्तिका प्रयोग उस दशामें किया जाता है, जब रोगी स्फुरण, आक्षेप, तथा संधि अस्थि, पसली, पीठ, और त्रिक इनकी वेदना से युक्त हो तथा रूक्षता, मल और वायु की विबद्धता और दीप्ताग्नि हो। यदि रोगी विरेचनके योग्य न हो तो शमन करने के लिये वस्ति, दूध और घृतादि का प्रयोग करना चाहिये।

पित्तज उदररोग की चिकित्सा।

बलिनं स्वादुसिद्धेन पैत्ते संलेह्य सर्पिषा॥
श्यामात्रिभंडीत्रिफलाविपक्वेन विरेचयेत्।
सितामधुघृताढ्येन निरूहोऽस्य ततो हितः॥
न्यग्रोधादिकषायेण स्नेहवस्तिश्च तच्छृतः।

अर्थ–पित्तज उदररोग में रोगी यदि ऐसा बलवान् हो कि औषधके वेगको सह सकता हो तो मधुरवर्गोक्त औषधों से सिद्ध किये हुए घृत द्वारा स्निग्ध करके विरेचन के लिये श्यामानिसोथ, निसोथ, और त्रिफला के काढे में पकाया हुआ घी देवै। तदनंतर न्यग्रोधादि गणोक्त द्रव्यों के काढेमें मिश्री, शहत और घी प्रमाण से अधिक मिलाकर इसके द्वारा निरूहण देवै। तथा इसी न्यग्रोधादि काढे से पकाई हुई स्नेहवस्ति अनुवासन में हित है।

दुर्बलको अनुवासनवस्ति।

दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरवस्तिभिः
जाते त्वग्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत्
क्षीरेणैं सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकशृतेन तम्॥
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन वा
सकफे वा समुद्भूते सतिक्ताज्येन सानिले॥
पयसान्यतमेनैषां विदार्यादिशृतेन वा।
भुंजीत उदरं चाऽस्य पायसेनोपनाहयेत्॥

अर्थ–दुर्बल रोगी को प्रथम अनुवासन वस्ति देकर क्षीरवस्ति द्वारा विरेचन देवै, फिर जठराग्नि के बलवान होजाने पर स्निग्ध रोगी को बार बार विरेचन देवै। विरेचन के लिये निसोथ के चूर्ण के साथ, अथवा अरंडी के तेल के साथ, वा सातला और त्रायमाणा के साथ, वा अमलतास के साथ औटाया हुआ दूध देवै कफान्वित पित्तज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदररोग में गोमूत्र के साथ दूध द्वारा और वातान्वित पित्तज उदररोग में कुष्ठचिकित्सा में कहा हुआ तिक्तक घृत मिलाकर दूध द्वारा अथवा ऊपर कहे हुए त्रिवृतादि द्रव्यों में से किसी के साथ सिद्ध किया हुआ दूध देकर विरेचन करावें। अथवा विदारीगण के साथ पकाये हुए दूधसे भोजन करावै और इसी दूधका जठर पर लेप करे।

दूध और वस्ति का बारबार प्रयोग।

पुनः क्षीरं पुनर्वस्तिं पुनरेव विरेचनम्।
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन्यतः पित्तोदरं जयेत्॥

अर्थ--बार बार दुग्धपान, बस्तिप्रयोग और विरेचन का प्रयोग करने से पित्तोदर निश्चय जाता रहता है।

कफोदर की चिकित्सा।

वत्सकादिविपक्वेन कफे संशोध्य सर्पिषा।
स्विन्नं स्नुक्क्षीरसिद्धेन बलवंतं विरेचितम्॥
संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः।

अर्थ--कफोदर में बलवान रोगी को वत्सकादि गणोक्त औषधों से सिद्ध किये हुए घी को पान कराकर स्निग्ध करै। तत्पश्चात् उसको स्वेदनकर्म से स्वेदित कर के सेंहुड के दूधसे सिद्ध किये हुए घी द्वारा विरेचन देकर कटु और क्षारयुक्त कफनाशक पेयादि अन्न का पथ्य देवै।

कफोदर में निरूहादि।

मूत्रव्योषणतैलाढ्यो निरूहोऽस्य ततो हितः॥
मुष्ककादिकषायेण स्नेहवस्तिश्च तच्छृतः।
भोजनं व्योषदुग्धेन कौलत्थेन रसेन वा॥

अर्थ--पेयादि पान कराने के पीछे मुष्ककादि गणोक्त द्रव्यों के काढे में अधिक परिमाण में गोमूत्र, त्रिकुटा और तेल मिला कर निरूहण देवै, तथा इसी काढे से सिद्ध की हुई स्नेहवस्ति देकर त्रिकुटा मिलाकर दूधके साथ अथवा कुलथी के यूषके साथ भोजन करावै।

कफोदरमें अरिष्ट सेवन।

स्तैमित्यारुचिहृल्लासैर्मंदेऽग्नौ मद्यपाय च।
दद्यादरिष्टान् क्षारांश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे॥

अर्थ--शराब पीनेवाले उदररोगी को यदि स्तिमिता, अरुचि, हृल्लास, मंदाग्नि तथा कफसे उदरमें गाढापन वा कठोरता हो तो अरिष्ट और क्षारों का प्रयोग करै।

उदररोग पर क्षार।

हिंगूपकुल्ये त्रिफलां देवदारु निशाद्वयम्।
भल्लातकं शिग्रुफलं कटुकां तिक्तकं वचाम्॥
शुंठीं माद्रीं घनं कुष्ठं सरलं पटुपंचकम्।
दाहयेज्जैरीकृत्य दधिस्नेहचतुष्कवत्॥
अंतर्धूमं ततः क्षाराद्विडालपदकं पिबेत्।
मंदिरादधिमंडोष्णजलारिष्टसुरासवैः॥
उदरं गुल्ममष्ठीलां तून्यौ शोफं विसूचिकाम्
प्लीहहृद्रोगगुदजानुदावर्तं च नाशयेत्॥

अर्थ--हींग, पीपल, त्रिफला, देवदारु, दोनों हलदी, भिलावा, सहजने की फली, कुटकी, चिरायता, वच, सोंठ, अतीस, मोथा, कूठ, सरल, पांचों नमक, इन सब द्रव्यों को पीसकर दही, घी, तेल, चर्बी और मज्जा मिलाकर ऐसी रीति से जलावे कि धूंआं बाहर न निकलने पावे। फिर इस क्षार में से दो तोले मदिरा, दही, सुरा-मंड, गरमजल, अरिष्ट, सुरा वा आसवके साथ सेवन करै। इससे उदररोग, गुल्म, अष्ठीला, तूनी, प्रतूनी, शोथ, विसूचिका, प्लीहा, हृदयरोग, अर्श और उदावर्त नष्ट होजाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदररोग में अरिष्टपान।

जयेदरिष्टगोमूत्रचूर्णायस्कृतिपानतः।
सक्षारतैलपानैश्च दुर्बलस्य कफोदरम्॥

अर्थ–दुर्बल कफोदर रोगी को अरिष्ट गोमूत्र, चूर्ण अयस्कृति, तथा क्षारसंयुक्त तेल पान कराके कफोदर को दूर करनेका उपाय करै।

उदररोग में उपनाह।

उपनाह्यं ससिद्धार्थकिण्वबीजैश्च मूलकात्।
कल्कितैरुदरस्वेदमभीक्ष्णं चाऽत्र योजयेत्॥

अर्थ–सफेद सरसों, सुराबीज, और मूली के बीजों का कल्क करके दुर्बल जठर रोगी के पेट पर लेप करके बार बार स्वेदन करे।

सन्निपातोदर की चिकित्सा।

सन्निपातोदरे कुर्यान्नातिक्षीणबलानले।
दोषोद्रेकानुरोधेन प्रत्याख्याय क्रियामिमाम्
दंतीद्रवंतीफलजं तैलं पाने च शस्यते।

अर्थ–सन्निपातज उदररोग में यदि रोगी का बल और जठराग्नि अत्यंत क्षीण न हुए हों तो प्रत्याख्यान करके जो दोष प्रबल हो उसी के अनुसार चिकित्सा करे इसमें दंती और द्रवंती के फलों का तेल पीना हित है। प्रत्याख्यान का यह तात्पर्य है कि चिकित्सा न करने पर रोगी अवश्य मर जायगा और चिकित्सा करने पर स्यात् जी पडे।

त्रिदोषज जठर में चिकित्सा।

क्रियानिवृत्ते जठरे त्रिदोषे तु विशेषतः॥
दद्यादपृच्छ्यतज्ज्ञातीन्पातुंमद्येनकल्कितम्
मूलं काकादनीगुंजाकरवीरकसंभवम्।७८।

अर्थ–सब प्रकार के उदररोगों में और विशेष करके सन्निपातोदर में जब किसी उपाय से फलासिद्धि नहो तब रोगीके परिवार के लोगों से पूछकर कि जो दवा हम देते हैं वह विष विषम है, इससे रोगी मरेगा वा जीवेगा इसमें संदेह है काकादनी, चिरमिठी और कनेर इनकी जडको पीसकर मदिरा के साथ पान करावै।

स्थावर विषका प्रयोग।

पानभोजनसंयुक्तं दद्याद्वा स्थावरं विषम्।
यस्मिन्वा कुपितः सर्पो विमुंचति फले विषम्॥७९॥
तेनास्य दोषसंघातः स्थिरो लीनो विमार्गगः
बहिः प्रवर्तते भिन्नो विषेणाशु प्रमाथिना॥
तथा व्रजत्यगदतां शरीरांतरमेव वा।

अर्थ–अथवा खाने और पीने में स्थावर अर्थात् वत्सनाभ विषका प्रयोग करे। अथवा जिस फलमें सर्प कुपित होकर विष उगले उस विषफलको देना चाहिये। इस प्रमाथी विषसे रोगी की धातुओं में लीन, विमार्गगामी, स्थिर दोषसमूह शीघ्र छिन्न भिन्न होकर बाहर निकलजाता है, इससे या तो रोगी निरोग होजाताहै, वा मरजाताहै।

हृतदोषमें कर्तव्य।

हृतदोषं तु शीतांबुस्नातं तं पाययेत्पयः॥
पेयां वा त्रिवृतशाकं मंडूक्या वास्तुकस्य वा
कालशाकंयवाख्यं वा खादेत्स्वरससाधितम्
निरम्ललवणस्नेहं स्विन्नास्विन्नमनन्नभुक्।
मासमेकं ततश्चैवं तृप्तिः स्वरसं पिबेत्॥

अर्थ–ऊपर कही हुई रीतिसे जब उदररोगी का दोष निकलजाय, तब उसको शीतल जलसे स्नान कराके शीतल दूध और पेया का पान करावै। अथवा निसोथ, मंडू-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की कालशाक वा यवशाक को इन्हीं के स्वरसमें सिद्ध करके सेवन करे।

इन शाकोंमें खटाई, नमक और स्नेह न डालना चाहिये। स्विन्न वा अस्विन्न अन्न याग देवे, तृषा लगनेपर शाकोंका स्वरस ही पीलेवे। इसतरह एक महिने तक करता रहै।

जठरमें हथनी का दूध।

एवं विनिर्हृते शाकैर्दोषे मासात् परं ततः।
दुर्बलाय प्रयुंजीत प्राणभृत्कारभं पयः॥

अर्थ–इसतरह शाक सेवनसे दोषके दूर होजानेपर एक महिने पीछे दुर्बल रोगी को बलवान् करनेके निमित्त हथनी का दूध पीने को दे।

प्लीहोदर की चिकित्सा।

प्लीहोदरे यथादोषं स्निग्धस्य स्वेदितस्य च।
सिरां भुक्तवतो दध्ना वामबाहौ विमोक्षयेत्।

अर्थ–प्लीहोदर में वातादि दोषके अनुसार रोगी को स्निग्ध और स्वेदित करके दही के साथ भोजन कराके बांये हाथकी फस्द खोलकर रुधिर निकाले।

उक्तरोगमें क्षारपानादि।

लब्धे बले च भूयोऽपि स्नेहपीतं विशोधितम्
समुद्रशुक्तिजं क्षारं पयसा पाययेत्तथा॥
अम्ल शृतं विडकणाचूर्णाढ्यं नक्तमालजम्
सोभांजनस्य वा क्वाथं सैंधवाग्निकणान्वितम
हिंग्वादिचूर्णं क्षाराज्यं युंजीत च यथाबलम्

अर्थ–रोगीके बलवान् होजानेपर फिर स्नेहपान कराके विरेचन देवे। फिर दूध के साथ समुद्रकी सीपीका खार पान करावे। अथवा कांजी के साथ सिद्ध किया हुआ और और विडनमक और पीपल का चूर्ण मिलाकर कंजेका अथवा सेंधानमक, चीता और पीपल का चूर्ण डालकर सहजने का काढा अथवा हिंग्वादि चूर्ण, क्षार वा षट्पलादि घृत का बलके अनुसार प्रयोग करे।

गरम जलके साथ चूर्ण।

पिप्पलीनागरं दंती समांशं द्विगुणामयम्॥
विडार्धांशयुतं चूर्णमिदमुष्णांबुना पिबेत्।

अर्थ–पीपल, सोंठ और दंती समान भाग हरड दो भाग, विडनमक आधा भाग इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ सेवन करै।

विडंगादि सेवन।

विडंगचित्रकं सक्तून् सघृतान् सैंधवं वचाम्
दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत्।

अर्थ–वायविडंग, चीता, सत्तू, घी, सेंधानमक और वच इनको ठीकरेमें जलाकर पीसले। इस क्षारका दूधके साथ सेवन करने से गुल्म और प्लीहा जाते रहते हैं।

अन्य प्रयोग।

तैलोन्मिश्रैर्बदरकपत्रैः संमर्दितैःसमुपनद्धः॥
मुशलेन पीडितोऽनु याति प्लीहा पयोभुजो-नाशम्।

अर्थ–बेरके पत्तों को बारीक पीसकर तेल मिलाकर प्लीहा पर लेपकर के ऊपर से एक मूसल द्वारा पीडित करै, ऊपर से दूध पीवै तो प्लीहा नष्ट होजाती है।

कामलादि रोगों पर क्वा।

रोहीतकलताः कल्पा खंडशश्च सभयाजले॥
मूत्रे वाऽऽसुनुयात्तत्तु सप्तरात्रस्थितं पिबेत्।
कामलाप्लीहगुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम्॥

अर्थ–रोहेडे की टहनीयों को टुकडे टुकडे करके हरड के साथ जलमें वा गोमूत्र में भिगोदे सातदिन पीछे इस जल वा मूत्रको

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पीवे, इससे कामला, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कृमिरोग, प्रमेह और उदररोग नष्ट होजातेहैं।

अन्य प्रयोग।

रोहीतकत्वचः कृत्वा पलानां पंचविंशतिम्।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत्॥
पालिकैः पंचकोलैस्तु तैः समस्तैश्च तुल्यया
हरीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयत्येतदाशु प्रयोजितम्।

अर्थ--रोहेडे की छाल २५ पल, बेर दो प्रस्थ इनका काथ करे फिर इसको छानकर इसमें पंचकोल प्रत्येक एक पल, बडी हरड का छिलका पांच पल, घी १ प्रस्थ इनको पाकविधिसे पकाकर सेवन करे तो अत्यन्त बढीहुई प्लीहा शीघ्र नष्ट होजाती है।

प्लीहा पर तेल।

कदल्यास्तिलनालानां क्षारेण क्षुरकस्य च
तैलं पक्वं जयेत्पानाच्लीहान् कफवातजम्।

अर्थ--केला, तिल की नाल, और तालमखाने का खार डालकर पकाया हुआ तेल पीने से कफ और वात से उत्पन्न हुई प्लीहा नष्ट होजाती है।

अन्य प्रयोग।

अशांतौ गुल्मविधिना योजयेदग्निकर्म च॥
अप्राप्तपिच्छास लिले प्लीह्नि वातकफोल्बणे।

अर्थ--ऊपर लिखे उपाय से वात कफज प्लीहा का शमन न हो और उसमें सेंमर के गोंद के समान, पिच्छिल जल की उत्पत्ति न होतो गुल्मकी चिकित्सा के अनुसार अग्निकर्म करै।

पैत्तिक प्लीहा का उपाय।

पैत्तिके जीवनीयानि सर्पींषि क्षीरबस्तयः॥
रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानं च शस्यते।

अर्थ--पित्तज प्लीहा में जीवनीयगणोक्त सिद्ध घी, क्षीरबस्ति, रक्तमोक्षण विरेचनादि द्वारा शोधन और दुग्धपान हितकारी है।

यकृत की चिकित्सा।

यकृति प्लीहवत्कर्म दक्षिणे तु भुजे सिराम्॥

अर्थ--यकृत रोग में प्लीहा के समान सब चिकित्सा करनी चाहिये, इसमें दाहिने हाथ की नस बेधकर रक्त निकाला जाता है, यही विशेषता है।

बद्धोदरकी चिकित्सा।

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्।
सतैलं लवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम्॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चास्मै-
विरेचनम्।
उदावर्तहरं कर्म कार्यं यच्चानिलापहम्

अर्थ--बद्धोदररोगी को स्वेदद्वारा स्विन्न करके गोमूत्र और तीक्ष्ण औषधों से युक्त तेल और नमक सहित निरूहण और अनुवासन देवै। पहिले अनुवासन फिर निरूहण और फिर अनुवासन ऐसे जठररोगी को अनुलोमनकर्ता अन्न और तीक्ष्ण विरेचन देवै तथा उदावर्तनाशक और वातनाशक क्रिया करै।

छिद्रोदरकी चिकित्सा।

छिद्रोदरमृते स्वेदात्स्रोतोदरवदाचरेत्।
जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तद्यापयेद्भिषक्

अर्थ--छिद्रोदर में स्वेदन कर्मके अतिरिक्त और सब चिकित्सा कफोदर के समान की जाती है। परंतु जब आंतोंमें छेद होकर उन में से जल टपक टपककर पेटको भरै तब उस जलको निकाल डाले। जितनी बार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जल इकट्ठा हो, उतनी ही बार निकाल डाले इसतरह वैद्य रोगीको बचाता रहै ।

उदकोदर की चिकित्सा ।

अपां दोषहराण्यादौ योजयेदुदकोदरे । ॥
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवंति च
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ।

अर्थ—जलोदरमें प्रथम गोमूत्र तथा अन्य विविध क्षारोंसे युक्त जलके दोषनाशक तीक्ष्ण औषधोंका प्रयोग करना चाहिये । तथा अग्निसंदीपन और कफनाशक आहार का सेवन करावै । पीछे वातादि दोषानुसार चिकित्सा करै ।

अन्य चिकित्सा ॥

क्षारं छागकरीषाणां शृतं मूत्रेऽग्निना पचेत्
घनीभवति तस्मिंश्च कर्षांशं चूर्णितं क्षिपेत् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं शुंठीलवणपंचकम्
निकुंभकुंभत्रिफलास्वर्णक्षीरीविषाणिकाः ।
स्वर्जिकाक्षारषडग्रंथासातलायवशूकजम्
कोलाभा गुटिकाः कृत्वा ततः
सौवीरकाप्लुताः ।
पिबेदजरकेशोफे प्रवृद्धे चोदकोदरे

अर्थ—बकरीकी मेंगनियों के क्षारको गो मूत्र में घोलकर अग्निमें पकावै । जब गाढा होजाय तब नीचे लिखे द्रव्योंका चूर्ण मिलादेवै । वे द्रव्य ये हैं:-पीपल, पीपलामूल, सोंठ, पांचों नमक, दंती, निसोथ, त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, मेंढासिंगी, सज्जीखार, वच, सातला, और जवाखार, फिर इनकी बेरके बराबर गोलियां बनालेवै । इन गोलियों को कांजीमें मिलाकर पीनेसे अजीर्ण, सूजन और बढाहुआ उदररोग शांत होजाते हैं ।

उदकोदरमें शस्त्रप्रयोग ।

हृत्पीपरिप्लवप्लीह्नि वद्धोदरादिषु ।
प्रयुंजीत भिषक् शस्त्रमार्तबंधुनृपार्थितः

अर्थ—बद्धोदर, और छिद्रोदर में यदि ऊपर लिखी चिकित्सासे शांत न हो तो वैद्य रोगीके स्वजन और राजासे पूछकर शस्त्र प्रयोग करै ।

शस्त्रप्रयोग विधि ।

स्निग्धस्विन्नतनोर्नाभेरधो बद्धशतांत्रयोः ।
पाटयेदुदरं मुक्त्वा वामतश्चतुरंगुलात्
चतुरंगुलमानं तु निष्कास्यांत्राणि तेन च
निरीक्ष्याऽपनयेद्वालमललेपोपलादिकम्
छिद्रे तु शल्यमुद्धृत्य विशोध्यांत्रं परिप्लवम् ।
मर्कोटैर्दंशयेच्छिद्रं तेषु लग्नेषु चाऽहरेत्
कायं मूर्धोऽनुचांत्राणि यथास्थानं निवेशयेत्
अक्तानि मधुसर्पिर्भ्यामथ सीव्येद्बहिर्व्रणम्
ततः कृष्णामृदाऽऽलिप्य-
बर्ब्बीयायष्टिमिश्रया
निधातस्थः पयोवृत्तिः स्नेहद्रोण्यां वसेत्ततः

अर्थ—बद्धोदर और छिद्रोदरमें रोगी को स्नेह स्वेदद्वारा स्निग्ध और स्विन करके नाभि के नीचे रोमराजीसे चार अंगुल हटकर बांई ओर चार अंगुल चीर दे और सब आंतोंको बाहर निकालकर बाल, मल, लेप, पत्थरकी किनकी आदि जो कुछ हो सबको साफ करदे । फिर आंतोंको घी और शहत से चुपड कर जहां की तहां लगाकर पेटमें टांके लगादे । यह बद्धोदर की चिकित्सा है । अब छिद्रोदरमें भी आंतोंमें से शल्यादि निकालकर आंतोंके स्रवनेका शोधन करके काली चींटियों से आंतोंके छिद्रको कट वावै । जब चींटियां आंतमें चिपट जायं तब उनके शरीरको काट काट कर निकालले और सिर आंतोंमें लगा रहने दे । तदनंतर सब आंतों में घी और मधु चुपडकर यथास्थान स्था-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित करके टांके लगादे फिर कालीमिट्टी और मुलहटीका पेटपर लेप करके बांधदे। फिर रोगीको वातरहित स्थानमें घी वा तेल की द्रोणीमें बैठाये रक्खे और केवल दूध पीनेको दे

अन्य जलोदरोंका उपाय।

सजले जठरे तैलैरभ्यक्तस्याऽनिलापहैः।
स्विन्नस्योष्णांबुनाऽऽकक्षमुदरे परिवेष्टिते॥
बद्धच्छिद्रोदितस्थाने विध्येदंगुलमात्रकम्।
निधाय तस्मिन्नाडीं च स्रावयेदर्धमंभसः॥
अथाऽस्य नाडीमाकृष्य तैलेन लवणेन च।
व्रणमभ्यज्य बध्वा च वेष्टयेद्वाससोदरम्॥

तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा यावदापोडशं दिनम्
तस्य विश्रम्य विश्रम्य स्रावयेदल्पशोजलं
विवेष्टयेद्वाढतरंजठरं च रुधाऽरुधम्।
निःघृते लंघितः पेयामश्नन्नेहलवणां पिबेत्

अर्थ—जलोदरमें तिलका तेल, सरसोंका तेल तथा अरंडादि का वातनाशक तेल, इनसे उदरको चुपड कर और गरमजल से स्वेदित करके कुक्षितक उदरको कपडेसे लपेट देवै फिर बद्धोदर वा छिद्रोदर में कही हुई रीतिसे नाभिके नीचे बाई ओर रोमराजी से चार अंगुल जगह छोडकर एक अंगुल चीरा लगाकर एक नल उस छिद्रमें प्रवेश करदे और उस नलके द्वारा पेटमें से आधा जल निकालले। फिर नलको निकालकर नमक और तेल से व्रणको चुपडकर और बांधकर पेटपर कपडा लपेट देवै, फिर तीन तीन वा चार चार दिनके अंतर से सोलह दिनतक थोडा थोडा जल निकालता रहे। एक ही बारमें संपूर्ण जल निकाल लेनेसे विशेष उपद्रवकी आशंका रहती है, जल निकलने के पीछे शिथिलपेट पर कसकर पट्टी बांध देवै और रोगीको अन्नका भोजन न देकर अल्पस्नेह और लवणान्वित पेयापान करने को दे।

जलोदरकी अन्य चिकित्सा।

स्यात्क्षीरवृत्तिःषण्मासांस्त्रीन्पेयांपयसापिबेत्
त्रींश्चाऽन्यान्पयसैवाद्यात् फलाम्लेन
रसेन वा।
अल्पशः स्नेहलवणं जीर्णे श्यामाककोद्रवम्।
प्रयतो वत्सरंजैवं विजयेत्तज्जलोदरम्

अर्थ—जल निकलने के पीछे रोगीको छः महिने तक केवल दूध, पीछे तीन महिने तक दूधके साथ पेया, फिर तीन महिने तक दूध, फलाम्ल वा मांसरसके साथ स्नेह और नमक से युक्त पुराने सोंखिया और कोदों खानेको देवै। इसतरह यत्नपूर्वक एक वर्षतक रहनेसे जलोदर जाता रहता है।

आहार में वर्ज्यावर्ज्य॥

वर्ज्येषु यंत्रितो विष्टे नात्यविष्टे जितेंद्रियः।

अर्थ—अम्ल और लवणादि वर्जित आहार विहार में उदररोगी को यत्नसे रहना चाहिये। अर्थात् इनको सर्वथा त्याग देवे। कथित अन्नपानादि में बहुत यत्नसे रहने की आवश्यकता नहीं, परन्तु परिमाण से भीतर रहना चाहिये। अकथित अन्नपानादि में जितेन्द्रियतासे रहे अर्थात् निर्लोलुप न होना चाहिये।

सर्वोदरचिकित्सा॥

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वा प्रशस्यते।

अर्थ—क्योंकि सब प्रकारके उदररोग प्रायः तीनों दोषोंके संघात से होते हैं, इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिये सब प्रकार की वातादिनाशिनी क्रिया करनी चाहिये।

उदररोग में पथ्य ॥

वन्हिर्मंदत्वमायाति दोषैःकुक्षौ प्रपूरिते ॥
तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि-
लघूनि च।
सपंचमूलान्यल्पाम्लपटुस्नेहकटूनि च ॥

अर्थ–दोषोंके द्वारा कुक्षिके भरजाने से अग्नि मंद पडजाती है, इसलिये अग्निसंदीपन और हलके भोजन करने चाहिये। भोजनमें पंचमूल, थोडी खटाई, नमक, स्नेह और कटु द्रव्य डालना चाहिये।

उदर में यवागूआदि।

भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां च तंडुलैः।
यवागूं पयसासिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ॥
पिबेदिक्षुरसं चानु जठराणां निवृत्तये।
स्वं स्वं स्थानं व्रजंत्येषां वातपि-
त्तकफास्तथा ॥ १२४ ॥

अर्थ–साठी चांवलों में गोमूत्र की भावना देकर दूध के साथ उन चांवलों की यवागू सिद्ध करके जठर रोगी को तृप्तिपर्यन्त पान करावै, ऊपर से ईख का रस पान करावै, ऐसा करने से कफ, वात और पित्त अपने अपने स्थान को चले जाते हैं।

उदररोग में त्याज।

अत्यर्थोष्णाम्ललवणं रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु।
गुडं तैलकृतंशाकं वारिपानावगाहयोः ॥
आयासाध्वदिवास्वप्नयानानि-
च परित्यजेत्।

अर्थ–अत्यन्त, उष्ण, अम्ल, लवण, रूक्ष, ग्राही, शीतल, भारी, गुड, तेल के पदार्थ, शाक, जलपान, स्नान, परिश्रम, मार्गपर्य्यटन, दिन में सोना, सवारी आदि पर चढना इन कार्यों का छोड देवै।

उदर में पानव्यवस्था।

नात्यर्थसांद्रं मधुरं तक्रं पाने प्रशस्यते ॥
सकणालवणं वाते पित्ते सोषणशर्करम्।
यवानीसैंधवाजाजीमधुव्योषैः कफोदरे ॥
व्योषक्षारलवणैः संयुतं निचयोदरे।
मधुतैलवचाशुंठीशताह्वाकुष्ठसर्षपैः ॥
प्लीहिनि वक्षे तु हपुषायवानीपट्वजादिभिः।
सकृष्णामाक्षिकं छिद्रे व्योषवत्सलिलोदरे ॥

अर्थ–जठर रोग में कफ गाढा, मधुर रस से युक्त तक्र श्रेष्ठ होता है, वातोदर में पीपल और सेंधानमक डालकर, पित्तोदर में काली मिर्च और खांड मिलाकर, कफोदर में अजवायन, सेंधानमक, जीरा, शहत और त्रिकुटा मिलाकर, सन्निपातोदर में त्रिकुटा जवाखार और नमक मिलाकर, प्लीहोदर में मधु, तेल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधानमक मिलाकर, वद्धोदर में हाऊबेर, अजवायन, सेंधानमक और जीरा आदि मिलाकर, छिद्रोदर में पीपल और, शहत मिलाकर तथा जलोदर में त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर पान कराना चाहिये।

वातकफादि में तक्रको श्रेष्ठता।

गौरवारोचकानाहमंदवन्ह्यतिसारिणाम्।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥

अर्थ–वात कफ से पीडित उदर रोग में यदि भारापन, अरुचि, आनाह, अग्निमांद्य, और अतिसार हो तो तक्र अमृत का काम देता है।

तक्र का प्रयोग।

प्रयोगाणां च सर्वेषामनुक्षीरं प्रयोजयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थैर्यकृत्सर्वधातूनां बल्यं दोषानुबंधहृत् ॥

अर्थ–उदर रोग में सब प्रकार की औषधी के सेवन के पीछे दूध और तक्र का अनुपान करना चाहिये, तक्र सम्पूर्ण धातुओं को स्थिर कर देता है, तथा बलकारक और दोषों के अनुबन्धन को दूर करनेवाला है।

दूध को श्रेष्ठता।

भैषजोपचितांगानां क्षीरमेवामृतायते ॥

अर्थ–जिस रोगी का देह औषधों के सेवन से पुष्ट होगया है, उसको दूध पान कराना ही अमृत तुल्य है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने उदरचिकित्सितंनाम पञ्चदशोऽध्यायः।

षोडशोऽध्यायः।

अथातःपांडुरोगचिकित्सितंव्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे पांडुरोगचिकित्सा नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

पांडुरोगमें कल्याणकघृत।

पांडवामयी पिबेत्सर्पिराद्यौ कल्याणकाह्वयम्।
पंचगव्यं महातिक्तं शृतं वाऽरग्वधादिना ॥

अर्थ–पांडुरोगी को प्रथमही कल्याणक घृतपान करावै, फिर अपस्मार चिकित्सित में कहा हुआ पंचगव्य घृत, कुष्ठचिकित्सा में कहा हुआ महातिक्तक घृत, अथवा आरग्वधादि गणोक्त द्रव्योंसे पकाया हुआ घी देना चाहिये।

अन्य घृत।

दाडिमात्कुडवौ धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम्
चित्रकाच्छृंगवेराच्च पिप्पल्यर्धपलं च तैः ॥
कल्कितैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिलाढके।
सिद्धं हृत्पांडुगुल्मार्शःप्लीहवातकफार्तिनुत् ॥
दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम्।
दुःखप्रसविनानां च वंध्यानां च प्रशस्यते ॥

अर्थ–अनार एक कुडव, धनियां आधाकुडव, चीता और सौंठ एक एक पल, पीपल आधा पल, इन सबका कल्क करके बीस पल घी समेत एक आढक जलमें पकावै। यह घृत हृद्रोग, पांडुरोग, गुल्मरोग, अर्शरोग, प्लीहा, वातकफ, श्वास और खांसी इन रोगों को दूर करताहै अग्निसंदीपनहै, मूढ वातका अनुलोमन करनेवालाहै, यह कष्टसे प्रसव होनेवाली और बंध्यास्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी है।

उक्तरोगमें वमनादि।

स्नेहितं वामयेत्तीक्ष्णैः पुनः स्निग्धं च शोधयेत्
पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा ॥ ५ ॥

अर्थ–पांडुरोगी को स्निग्ध करके तीक्ष्ण औषधियों द्वारा वमन करावै। फिर पुनर्वार स्निग्ध करके गोमूत्र और दूधसे अथवा केवल दूध द्वारा बार बार शोधित करे।

अन्य प्रयोग।

दंतीपलरसे कोष्णे काश्मर्याजलिमासुतम्।
द्राक्षांजलिं वा मृदितं तत् पिबेत्-
पांडुरोगाजित् ॥ ५ ॥
मूत्रेण पिष्टां पथ्यां वा तत्सिद्धं वा फलत्रयम्

अर्थ–पांडुरोगी के लिये दंती के एक पल कुछ गरम रसमें एक अंजली खंभारी के फलों का आसुत अथवा एक अंजली

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्राक्षाओं को मलकर पान करावे । अथवा गोमूत्र में हरड पीसकर पान करावे, अथवा गोमूत्र में त्रिफला औटाकर पान करावे । इस से पांडुरोग नष्ट होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

स्वर्णक्षीरीत्रिवृच्छ्यामाभद्रदारुमहौषधम् ॥
गोमूत्रांजलिना पिष्टं शृतं तेनैव वा पिबेत् ।
साधितं क्षीरमेभिर्वा पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥

अर्थ–स्वर्णक्षीरी, निसोथ, श्यामानिसोथ, देवदारु और सोंठ इन सब द्रव्योंको गोमूत्र के साथ पीसकर वा पकाकर पीना चाहिये । अथवा इन्हीं उक्त द्रव्यों के साथ पकाया हुआ दूध पांडुरोगी को पान करावे इससे दोषों का अनुलोमन होता है ।

अन्य प्रयोग ।

मूत्रे क्षिप्तं वा सप्ताहं पयसाऽयोरजः पिबेत् ।
जीर्णे क्षीरेण भुंजीत रसेन मधुरेण वा ॥ ९ ॥

अर्थ–लोहचूर्ण को सातदिन तक गोमूत्र में भिगोदेवे, फिर इसको दूधके संग पान करे । इसके पच जाने पर दूध के साथ अथवा मधुररसयुक्त मांसके साथ भोजन करावे ।

अन्य अवलेह ।

शुद्धश्चोभयतो लिह्यात्पथ्यां मधुघृतद्रुताम् ।

अर्थ–वमन और विरेचन दोनों प्रकार से रोगी को शुद्ध करके हरड को पीसकर मधु और घृत में मिलाकर चाटनेको दे ।

अन्य प्रयोग ।

विशालां कटुकां मुस्तां कुष्ठं दारुकलिंगकः ॥
कर्षांशाद्विपिचुमूर्वा कर्षांशा घृतप्रिया ।
पीत्वा तच्चूर्णमंभोभिः सुखैर्लेह्यात्ततो मधु ॥
पांडुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ।
गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत् ॥

अर्थ–इन्द्रायण, कुटकी, मोथा, कूठ, देवदारु और इन्द्रजौ, ये सब एक एक कर्ष, मूर्वा दो पिचु, अतीस आधा कर्ष, इनका चूर्ण बनाकर गरम पानी के साथ पीकर ऊपर से थोडासा शहत चाटे । इससे पांडुरोग, ज्वर, दाह, खांसी, श्वास, अरुचि, गुल्म, आनाह, आमवात और रक्तपित्त दूर हो जाते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

वासागुडूचीत्रिफलाकट्वीभूनिंबनिंबजः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हंति पांडुपित्तास्रकामलाः ॥

अर्थ–अडूसा, गिलोय, त्रिफला, कुटकी चिरायता और नीम इनके काढे में शहत मिलाकर पीने से पांडुरोग और रक्तपित्त, तथा कामला जाते रहते हैं ।

व्योषादि चूर्ण ।

व्योषाग्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः ।
चूर्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णांभोभिः
प्रयोजितम् ॥ १४ ॥
कामलापांडुहृद्रोगकुष्ठार्शोमेहनाशनम् ।

अर्थ–त्रिकुटा, चीता, बायविडंग, त्रिफला, मोथा, इन सबको समान भाग ले और इन सबके समान लोहभस्म इनका चूर्ण बनाकर मात्रा के अनुसार तक्र मधु, घी वा गुनगुने पानी के साथ सेवन करने से कामला, पांडुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और प्रमेह नष्ट होजाते हैं ।

पांडुरोग पर वटिका ।

गुडनागरमंडूरतिलांशान्मानतः समान् ॥
पिप्पलीद्विगुणान्दद्याद्गुटिकां पांडुरोगिणे ।

अर्थ–पुराना गुड, सोंठ, मंडूर और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तिल सब समान भाग और पीपल दोभाग इनकी गोली बनाकर सेवन करने से पांडु रोग जाता रहता है।

अन्य गुटिका।

ताप्यं दार्व्यास्त्वचं चव्यं ग्रंथिकं देवदारु च ॥
व्योषादि नवकं चैतच्चूर्णयेद् द्विगुणं ततः।
मंडूरं चांजननिभं सर्वतोऽष्टगुणेऽथ तत् ॥
पृथग्विपक्वे गोमूत्रे वटकीकरणक्षमे।
प्रक्षिप्य वटकान्कुर्यात्तान्खादेत्तक्रभोजनः ॥
एते मंडूरवटकाः प्राणदाः पांडुरोगिणाम्।
कुष्ठान्यजरकं शोफमूरुस्तंभमरोचकम् ॥
अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहान् शमयंति च

अर्थ—सोनामाखी, दारुहलदीकी छाल, चव्य, पीपलामूल, देवदारु, तथा ऊपर कहे हुए त्रिकुटा, चीता, बायबिडंग, त्रिफला और मोथा ये नौ द्रव्य, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवै। तथा काजल के समान पिसा हुआ मंडूर सबसे दुगुना लेवै। इस मंडूर चूर्ण को सब द्रव्यों से अठगुने गोमूत्र में पकाकर रखले जब यह गोलियां बंधने के योग्य होजांय तब ऊपर लिखा हुआ स्वर्णमाक्षिकादि चूर्ण डालकर गोलियां बनालेवे इनको खाकर तक्रके साथ भोजन करै। ये मंडूर वटिका पांडुरोगियों को प्राणदाता हैं तथा इनसे कुष्ठ, अजीर्ण, शोथ, ऊरुस्तंभ, अरुचि, अर्श, कामला, प्रमेह, और प्लीहा नष्ट होजाते हैं।

ताप्यादि चूर्ण।

ताप्यादिजतुरौप्यायोमलाः पंचपलाः पृथक्
चित्रकत्रिफलाव्योषविडंगैः पालिकैःसह।
शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना हुताः ॥
पांडुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमं ज्वरम्।
कुष्ठान्यजरकं मेहं शोफं श्वासमरोचकम् ॥
विशेषाद्वंत्यपस्मारं कामलां गुदजानि च।

अर्थ—सोनामाखी, शिलाजीत, रूपामाखी और मंडूर प्रत्येक पांच पांच पल, चीता, त्रिफला, त्रिकुटा, बायबिडंग, प्रत्येक एक पल, शर्करा आठपल, इन सबका चूर्ण बनाकर शहत में सानकर सेवन करे तो पांडुरोग, विषरोग, खांसी, यक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोफ श्वास, अरुचि, तथा विशेष करके अपस्मार, कामला और अर्श दूर होजाते हैं।

कौटजादि चूर्ण।

कौटजत्रिफलानिंबपटोलधवनागरैः। २३।
भावितानि दशाहानि रसैर्द्वित्रिगुणानि वा।
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥
त्वक्क्षीरीपिप्पली धात्री कर्कटाख्याः
पलोन्मिताः।
निर्दग्धाः फलमूलाभ्यां फल युत्या-
त्रिजातकम् ॥ २५ ॥
मधु त्रिपलसंयुक्तान् कुर्याद्रक्षसमान्गुडान्।
दाडिमांबुपयः पक्षिरसतोयसुरासवान् ॥
तान् भक्षयित्वानुपिबेन्निरन्नो भुक्त एव वा।
पांडुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगंदरम् ॥
हन्मूत्रपूतीशुक्राग्निदोषशोषगरोदरम्।
कासासृग्दरपित्तास्रकृच्छ्रशोफगुल्मगलामयान्।
मेहवर्त्मभ्रमान् हन्युः सर्वदोषहराः शिवाः।

अर्थ—कुडाकी छाल, त्रिफला, नीम, पर्वल, मोथा, सोंठ, ये सब एक एक पल, जल चौंसठ पल में काढा करे चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। इस काढेको आठ पल शिलाजीत में दस दिन, बीसदिन वा तीस दिन भावना दे फिर इतनी ही शर्करा तथा बंशलोचन, पीपल, आमला, काकडासींगी और कटेरी के फल तथा जड

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रत्येक एक पल, त्रिजातक (दालचीनी, इलायची और तेजपात) यथायोग्य और मधु तीन पल मिलाकर दो २ तोले की गोलियां बनालेवै । इसका अनुपान दाडिम का काढा, दूध, पक्षियों का मांसरस, जल सुरा और आसव है, ये गोलियां भोजन करनेसे पहिले वा भोजन करने से पीछे खाय। इन गोलियों का सेवन करने से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, तमकश्वास, अर्श, भगंदर, हृद्रोग, मूत्ररोग, शुक्रकी दुर्गंधि, अग्निदोष, शोष, गररोग, उदररोग, खांसी, प्रदर, रक्तपित्त, सूजन, गुल्म, कंठरोग प्रमेह, वर्ष्म, और भ्रम जाते रहते हैं, ये गोलियां संपूर्ण दोषों को हरनेवाली और कल्याणकारक हैं,

द्राक्षादि अवलेह ।

द्राक्षाप्रस्थं कणाप्रस्थं शर्कराधतुलां तथा ॥
त्रिपलं मधुकं शुंठीत्वक्क्षीरीं च विचूर्णितम्
धात्रीफलरसे द्रोणे तत्क्षिप्त्वा लेहवत्पचेत्
शीतान्मधुप्रस्थयुताद् लिह्यात्पाणितलं ततः
हलीमकं पांडुरोगं कामलां च नियच्छति ॥

अर्थ—दाख एक प्रस्थ, पीपल एक प्रस्थ, शर्करा आधी तुला, मुलहटी, सौंठ, बंशलोचन प्रत्येक दो पल, इनको पीसकर आमले के एक द्रोण रस में डालकर लेहईकी तरह पकावै । जब ठंडा हो जाय तब इस में एक प्रस्थ शहत मिलाकर प्रति दिन एक तोले चाटे इससे हलीमक पांडु रोग और कामला जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

कनीयं पंचमूलंतु शस्यते पानभोजने ।
पांडूनां कामलार्तानां मृद्वीकामलकाद्रसः ॥

अर्थ- पांडु और कामला रोगों के दूर करने के लिये लघु पंचमूल का काथ तथा दाख और आमले का रस खाने पीने में हित है ।

पांडुरोग की सामान्य चिकित्सा ।

" इति सामान्यतः
प्रोक्तं पांडुरोगभिषग्जितम् ।
विकल्प्य योज्यं विदुषा पृथग्दोषबलं प्रति ॥

अर्थ—इस तरह पांडुरोगकी सामान्य चिकित्सा कही गईहै । विद्वान् वैद्यकोउचितहै कि दोष और बलके अनुसार इन औषधों की योजना करे ।

दोषानुसार चिकित्सा ।

स्नेहप्रायं पवनजे तिक्तशीतं तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णं विमिश्रं सान्निपातिके

अर्थ—वातजपांडुरोग में स्नेहाधिक्य औषध, पैत्तिक में तिक्तरसान्वित, श्लैष्मिक में कटु, रूक्ष और उष्ण तथा सान्निपातिक में मिली हुई चिकित्सा करे ।

अन्यविधि ।

मृदं निर्यातयेत्कायात्तीक्ष्णैः संशोधनैः पुरः ।
बलाधानानि सर्पींषि
शुद्धे कोष्ठे तु योजयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो पांडुरोग मृत्तिका के खाने से होता है उस में तीक्ष्ण विरेचन देकर प्रथम देह से मृत्तिका को निकाल डालै । फिर कोष्ठ शुद्ध होने पर बलकारक औषधों का प्रयोग करै ।

मृत्तिका के पांडुरोग में उपाय ।

व्योषविल्वद्विरजनीत्रिफलाद्विपुनर्नवम् ।
हस्तान्योरजः पाठा विडंगं देवदारु च ॥
वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैःश्रुतं घृतम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान्

अर्थ–त्रिकुटा, बेलगिरी, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, दोनों सांठ, मोथा, लोहचूर्ण, पाठा, बायविडंग, देवदारू, वृश्चिकाली और भाडंगी ये सब घी से चौथाई, घी की बराबर दूध और चौगुना जल डाल कर पाक की रीति के अनुसार घी को पकाकर सेवन करे, इस घृत से मृत्तिका द्वारा उत्पन्न हुए संपूर्ण विकार प्रशमित हो जाते हैं।

केसरादि घृत।

तद्वत्केसरयष्ट्याह्वपिप्पलीक्षीरशाड्वलैः।

अर्थ–केसर, मुलहटी, पीपल, दूध और हरीदूब इन से पकाया हुआ घी पूर्ववत् गुणकारी होता है।

अन्य उपाय।

मृद्भक्षणाय तल्लोल्ये वितरेद्भावितां मृदम्॥
वेल्लाग्निनिंबप्रसवैः पाठया मूर्वयाऽथवा।

अर्थ–मृत्तिका के खाने की अभिलाषाही हो तो बायविडंग, चीता और नीम, इनके पत्ते, पाठा अथवा मूर्वा इनके क्वाथ की भावना दी हुई मिट्टी खानेको दे।

दोषानुसार औषध का प्रयोग।

मृद्भेदमिश्रदोषानुगमाद्योज्यं च भेषजम्॥

अर्थ–मृत्तिका के भेद के अनुसार वातादि दोषों की विवेचना करके औषध का प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् कषाय मृत्तिका के खाने से वायु, क्षारयुक्त मृत्तिका के सेवन से पित्त और मधुर मृत्तिका के सेवन से कफ प्रकुपित होता है। इसलिये प्रथम यह विचार करना चाहिये कि किस प्रकार की मिट्टी से विकार उत्पन्न हुआ है, फिर तदनंतर वातादि दोषका विचार करके मिट्टी खाने से उत्पन्न हुए पांडुरोग के दूर करने का उपाय करे।

कामला में पित्तनाशक औषध।

कामलायां तु पित्तघ्नं पांडुरोगाविरोधि यत्

अर्थ–कामला रोग में वह औषध देनी चाहिये जो पित्तनाशक हो और पांडुरोग के अविरोधी हो।

कामला पर घृत।

पथ्याशतरसे पथ्यावृंताद्यैशतकल्कितः॥
प्रस्थःसिद्धो घृतात्गुल्मकामलापांडुरोगनुत्।

अर्थ–सौ हरड के क्वाथ में ५० हरड के डंठलों का कल्क मिला कर एक प्रस्थ घी पकावै। इस से गुल्म, कामला और पांडुरोग दूर हो जाते हैं।

अन्य औषध।

आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य वा॥
सद्यूषगं विल्वमात्रं पाययेत्कामलापहम्।

अर्थ–अमलतास, ईख, विदारीकंद, व आमला इन में से किसी एक के रस के साथ एक पल त्रिकुटा का चूर्ण मिला कर सेवन करने से कामला रोग नष्ट होजाता है।

अन्य चूर्ण।

पिबेच्चिकुंभकल्कं वा द्विगुणे शीतवारिणा॥
कुंभस्य चूर्णं सक्षौद्रं त्रैफलेन रसेन वा।

अर्थ–कुंभी का चूर्ण दो पल ठंडे जलके साथ पीवै। अथवा निसोथ का चूर्ण शहत मिलाकर त्रिफला के क्वाथके साथ पीवै।

अन्य प्रयोग।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य-
वा रसम्॥ ४३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रातःप्रातर्मधुयुतं कामलार्तोय योजयेत् ।

अर्थ–त्रिफला, गिलोय, दारूहल्दी, और नीम इनमेंसे किसी एक के क्वाथके साथ शहत मिलाकर प्रातः काल सेवन करनेसे कामला रोग नष्ट होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

निशागैरिकाधात्रीभिः कामलापहमंजनम् ॥

अर्थ—हलदी, गेरु, और आमला इनका अंजन नेत्रों में लगाने से कामला रोग जाता रहताहै ।

अन्य प्रयोग ।

तिलपिष्टनिभं यस्तु कामलावान्मुञ्चेन्मलम् ।
कफरुद्धपथं तस्य पित्तं कफहरैर्जयेत् ॥

अर्थ—जो कामलारोगी तिलकी पिट्ठी के समान मलका त्याग करताहै उसके पित्तका मार्ग कफद्वारा रुक जाताहै । इसलिये उसे कफनाशक औषधें देनी चाहियें ।

अन्य चिकित्सा ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामबलनिग्रहैः ।
कफसंमूर्छितो वायुर्यदा पित्तं बहिः क्षिपेत् ।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः ।
भवेत्सटोपविड्भेदो गुरुणा हृदयेन च ॥
दौर्बल्यालस्यपार्श्वार्ति-
हिध्माश्वासारुचिज्वरैः ।
क्रमेणालेऽनुबध्येत पित्ते शाखासमाश्रिते ।
रसैस्तं रूक्षकटुकाम्लैः शिखितित्तिरिदक्षजैः ।
शुष्कमूलकजैर्यूषैः कुलत्थोत्थैश्च भोजयेत् ॥
भृशाम्लतीक्ष्णकटुकलवणोष्णं च शस्यते ।
सबीजपूरकरसं लिह्याद्योषं तथाशयम् ॥
स्वं पित्तमेति तेनाऽस्य शाम्यत्यनुबध्यते ।
वायुश्च याति प्रशमं सहाटोपाद्युपद्रवैः ॥
निवृत्तोपद्रवस्याऽस्य कार्यः-
कामलिको विधिः ।

अर्थ—रूक्ष, शीतल, भारी, मिष्ट अन्न भोजन, व्यायाम और बलनिग्रह, इन सब कारणों से वायु कुपित होकर और कफ से मिलकर जब पित्तको बाहर निकालतीहै तब रोगी के नेत्र, मूत्र, त्वचा, हलदीके रंगके होजातेहैं, मलका रंग सफेद और पेटमें गुडगुडाहट के साथ स्तब्धता होतीहै, हृदयमें दुर्बलता, मंदाग्नि, पार्श्ववेदना, हिचकी, श्वास, अरुचि, और ज्वर इन सब उपद्रवों के साथ क्रमसे कुपित हुई वायु शाखामें समाश्रित पित्तमें जा मिलतीहै । इस अवस्था में रोगीको रूक्ष कटु और अम्लरसयुक्त, मोर तीतर, और मुर्गेका मांसरस तथा सूखीमूली और कुलथी का यूष भोजन में देना चाहियें इसमें अत्यन्त खट्टे, तीखे चरपरे और नमकीन पदार्थ भी हितहैं, तथा त्रिकुटाके चूर्ण को बिजौरेके रसके साथ सेवन करै । ऐसा करनेसे पित्त अपने स्थानपर आजाता है । मलकी सफेदी दूर होकर पीलापन आजाता है । वायु भी आटोप और उपद्रवों के साथ प्रशमित होजातीहै । इस तरह सब उपद्रवों के शांत होनेपर कामलामें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

कुंभकामला की चिकित्सा ।

गोमूत्रेण पिबेत्कुंभकामलायां शिलाजतु ॥
मासं माक्षिकधातुं वा किट्टं वाऽथहिरण्यजम् ।

अर्थ–कुंभकामला में रोगी को शिलाजीत, वा सोनामाखी, वा रूपामाखी का एक महिने तक सेवन करावै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हलीमक की चिकित्सा।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितेन हलीमकी ॥
महिषीहविषा स्निग्धः पिबेद्धात्रीरसेन तु।
त्रिवृतां तद्विरिक्तोयात्स्वादु पित्तनिलापहम्
द्राक्षालेहं च पूर्वोक्तं सर्पीषि मधुराणि च।
यापनान्क्षीरबस्तींश्च शीलयेत्सानुवासनान्
माक्षीकारिष्टयोगांश्च पिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये।
कासिकं वाभयालेहं पिप्पलीमधुकं बलाम्
पयसा च प्रयुंजीत यथादोषं यथाबलम्।

अर्थ–हलीमक रोगी को गिलोय के रस और दूधमें सिद्ध किये हुए घी से स्निग्ध करके आमले के रसके साथ निसौथ पान करावै। इससे विरेचन होनेपर वातपित्त नाशक स्वादु पथ्य, पहिले कहा हुआ द्राक्षा लेहे, मधुरगणोक्त साधित घृत, प्राणवर्द्धक क्षीरबस्ति और अनुवासन देवे, तथा अग्नि की वृद्धिके लिये माक्षीक और अरिष्ट का प्रयोग करै। अथवा कास चिकित्सितोक्त अभयावलेह, दूधके साथ पीपल, मुलहटी और खरैटी इन सब औषधों का प्रयोग दोष और बलके अनुसार करना चाहिये।

पांडुरोगमें सूजनकी चिकित्सा।

पांडुरोगेषु कुशलः शोफोक्तं-
च क्रियाक्रमम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–पांडुरोग में कुशल वैद्यको शोफोक्त चिकित्सा की प्रणाली का अवलंबन करना चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा टीकायां चिकित्सितस्थाने पांडुरोग चिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः।

अथाऽतः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे सूजन की चिकित्सावाले अध्याय की व्याख्या करेंगे।

सूजनमें चिकित्सा क्रम।

"सर्वत्र सर्वांगसरे दोषजे श्वयथौ पुरा।
सामे विशोषितो भुक्त्वा लघुकोष्णांभसा-
पिबेत् ॥ १ ॥
नागरातिविषादारुविडंगेंद्रयवोषणम्।
अथवा विजयाशुंठीदेवदारुपुनर्नवम् ॥ २ ॥
नवायसं वा दोषाढ्यः शुध्यै मूत्रहरीतकीः।
यवाक्वाथेन कटुकाकुंभायस्कक्षूषणानिवा ॥
अथवा गुग्गुलुं तद्वज्जतु वा शैलसंभवम्।

अर्थ–वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुई सर्वांग सूजनमें पकनेसे पहिलेही लंघनद्वारा विशोषित करके हलका भोजन करनेके पीछे सौंठ अतीस, देवदारू, बायबिडंग, इन्द्रजौ, और कालीमिरच अथवा हरड, सौंठ, देवदारू, और सौंठ इनको गरम जलके साथ पान करे। जो रोगी दोषोंकी अधिकता से आक्रांत हो तो पांडुरोग में कहा हुआ नवायस चूर्ण सेवन करावै। विरेचन के लिये गोमूत्र के साथ हरड, अथवा त्रिफला के क्वाथ के साथ कुटकी, निसौथ, लोहचूर्ण और त्रिकुटा अथवा गूगल वा शिलाजीत का पान करावै।

मंदाग्निमें तक्रपान।

मंदाग्निः शीलयेदामगुरुमिश्रविबद्धविट् ॥
तक्रं सौवर्चलव्योषक्षौद्रयुक्तं गुडाभयाम्।
तक्रानुपानामथवा तद्वद्वा गुडनागरम् ॥

अर्थ–सूजन वाले रोगी को अग्नि मंद हो, तथा मल अपक्व, भारी, शिथिल वा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विबंध युक्त हो तो संचल नमक, त्रिकुटा, और शहतके साथ तक्र पान करे अथवा गुड और हरड खाकर तक्र पीवै अथवा गुड और सोंठ पर तक्रका अनुपान करै ।

अन्य प्रयोग ।

आर्द्रकं वा समगुडं प्रकुंचार्धविवर्धितम् ।
परं पंचपलं मासं यूषक्षीररसाशनः ॥ ६ ॥
गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहान्
श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् ।
सकामलाशोफमनोविकारान्
कासं कफं चैव जयेत्प्रयोगः ॥ ७॥ ॥

अर्थ–अदरख और गुड दोनों समान भाग लेकर आधे पल के समान प्रथम दिन सेवन करे फिर प्रतिदिन आधा पल बढाकर पांच पल तक बढादे फिर आधा २ पल घटाकर आधे पल तक उतर आवै । इस तरह एक महिने तक इस प्रयोग का सेवन करता रहै, यूष, क्षीर और मांसरस का पथ्य सेवन करे । इससे गुल्मरोग, उदर रोग, अर्श, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, सूजन, मनोविकार, खांसी और कफ जाते रहते हैं ।

शोफपर घृत ।

घृतमार्द्रैकनागरस्य कल्क-
स्वरसाभ्यां पयसा च साधयित्वा
श्वयथुक्षवथूदरान्निसादै-
रभिभूतोऽपि पिबन् भवत्यरोगः ॥ ८

अर्थ–अदरख के कल्क और उसी के रसके साथ पकाया हुआ घी सूजन, हिचकी, उदररोग, अग्निमांद्य, इन रोगों को दूर कर देता है ।

अन्य प्रयोग ।

निरामो बद्धशमलः पिबेच्छ्वयथुपीडितः
त्रिकटुत्रिवृतादंतीचित्रकैः साधितं पयः ॥
मूत्रं गोर्वा महिष्या वा सक्षीरं क्षीरभोजनः
सप्ताहं मासमथवा स्यादुष्टक्षीरवर्तनः ॥

अर्थ–आमरहित और बद्धमलवाले शोफ रोगी को त्रिकुटा, निसोथ, दंती, और चीता इन से सिद्ध किया हुआ दूध पीने को दे । अथवा गोमूत्र वा भैंस का मूत्र पीने को दे । दूधके साथ अन्न वा केवल दूधके साथ पथ्य देवै । अथवा सात दिन तक वा एक महिने तक ऊंटनी का केवल दूध देना चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

यवानकं यवक्षारं यवानीं पंचकोलकम् ।
मरिचं दाडिमं पाठां धानकाममम्लवेतसम् ॥
बालबिल्वं च कर्षांशं साधयेत्सलिलाढके ।
तेन पक्वो घृतप्रस्थः शोफार्शोगुल्ममेहहा ॥

अर्थ–अजवायन, जवाखार, अजमोद, पंचमूल, कालीमिरच, अनार, पाठा, धनियां, अम्लवेत, कच्ची बेलगिरी प्रत्येक एक कर्ष, घी एक प्रस्थ और जल एक आढक इनको पाकोक्त रीति से पकाकर सेवन करै तो शोफ, अर्श, गुल्म और प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

दध्नश्चित्रकगर्भाद्वा घृतं तत्तक्रसंयुतम् ।
पक्वं सचित्रकं तद्वद्दुर्नामयुंज्याच्च कालवित्॥
धान्वंतरं महातिक्तं कल्याणमभया घृतम् ।

अर्थ–चीते के चूर्ण से मिले हुए दूध को जमावर दही करले । फिर इस दहीको मथकर जो तक्र बनाया जाय, इस तक्र के साथ पका हुआ घी पूर्वोक्त गुणकारक होता है दोषानुसार कुशलवैद्य धान्वन्तर घृत,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महातिक्तक घृत, कल्याणक घृत और अमृताघृत का प्रयोग करै ।

अन्य प्रयोग ।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ॥
दत्त्वा गुडतुलां तस्मिन् लेहे दद्याद्विचूर्णितम्
त्रिजातकं त्रिकटुकं किंचिच्च यवशूकजम् ॥
प्रस्थार्धं च हिमे क्षौद्रात्तं निहंत्युपयोजितम् ।
प्रवृद्धशोफज्वरमेहगुल्म-
कार्श्यामवातामलकरक्तपित्तम् ।
वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोष-
श्वासारुचिप्लीहगरोदरं च ॥ १६ ॥

अर्थ--दसमूल के १६ सेर काढे में १०० हरड पकावै । इसमें १२॥ सेर गुड मिलावै । जब गाढा हो जाय तब त्रिजातक, त्रिकुटा, और जवाखार डालकर मिलादे । ठंडा होने पर आधा प्रस्थ शहत मिलावै, इसके सेवन से सूजन, ज्वर, मेह, गुल्म, कार्श्य, आमवात, अम्लरक्त, रक्तपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष, श्वास, अरुचि, प्लीहा, विषरोग, और उदररोग शांत हो जाते हैं ।

सूजन में पथ्य ।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलांबुसाधितम् ।
अलमल्पं पटुस्नेहं भोजनं क्षयथोर्हितम् ॥
क्षारव्योषान्वितैर्मुद्गैः कौलत्थैः सकणैर्रसैः
तथा जांगलजैः कूर्मगोधाशल्यकजैरपि ॥
अनम्लं मथितं पाने मद्यान्यौषधवंति च ।

अर्थ--दशमूलके क्वाथमें पकाये हुए थोडेसे पुराने जौ और शाली चांवल थोडा नमक और घी डालकर सूजन वाले रोगीको खाने के लिये देना हितहै । तथा इसी अन्नके साथ जवाखार और त्रिकुटा डालकर मूंगका यूष, वा पीपल मिलाकर कुलथी का यूष, वा जांगल मांसरस वा कछुआ जोधा और सेहका मांसरस इनके साथमें देवे । और पीनेके लिये आधा जल मिलाकर मथाहुआ मीठा तक्र वा यथा योग्य औषधोंसे युक्त मद्य देवै ।

सूजन पर पेया ।

अजाजीशठिजीवंतीकारवीपौष्करान्वितैः ॥
बिल्वमध्ययवक्षारवृक्षाम्लैर्बदरोन्मितैः ।
कृता पेयाऽऽज्यतैलाभ्यां युक्तिभृष्टा
परं हिता ॥ २० ॥
शोफातिसारहृद्रोगगुल्मार्शोऽग्ना-
ग्निमेहिनाम् ।
गुणैस्तद्वच्च पाठायाः पंचकोलेन साधिता

अर्थ--जीरा, कचूर, जीवंती, अजमोद पुष्करमूल, चीता, बेलगिरीका गूदा, जवाखार, और बिजौरा इनको डालकर पकाई हुई पेया युक्तिपूर्वक घी और तेलमें भूनकर सेवन करना परम हितकारीहै । इससे सूजन अतिसार, हृदय रोग, गुल्मरोग, अर्श मंदाग्नि और प्रमेह ये सब रोग नष्ट होजातेहैं । इसी तरहसे पाठा और पंचकोल डालकर सिद्धकीहुई पेया पूर्ववत् गुणकारकहै ।

सूजनपर अभ्यंजनादि ।

शैलेयकुष्ठस्थौणेयरेणुकागुरुपद्मकैः ।
श्रीवेष्टकनखस्पृक्कदेवदारुप्रियंगुभिः ॥ २२ ॥
मांसीमागधिकावन्यशाल्यघ्यामकवालकैः ।
चतुर्जातकतालीसमुस्तागंधपलांशकैः ॥
कुर्याद्भ्यंजनं तैलं लेपं स्नानाय तूदकम् ।
स्नानं वा निंबवर्षाभूनक्तमालार्कवारिणा ॥

अर्थ शिलाजीत, कूठ, स्थौणेय (थूनेर) रेणुक, अनार, पदमाख, सरलकाष्ट, नखी, स्पृक्का, देवदारू, प्रियंगु, जटामांसी, पीपल, जंगली धनियां, रोहिषतृण, नेत्रवाला, चा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तुर्जात, तालीसपत्र, मोथा, और हलदी, इन द्रव्योंके साथ पकायाहुआ तेल मर्दन में, इनका लेप, और इन्हीं के साथ पकाया हुआ जल स्नानके काममें लावै। तथा नीम के पत्ते, पुनर्नवा, कंजा और आक इनको डालकर औटाया हुआ पानी स्नानोपयोगी होता है

एकांग शोफ पर लेप।

एकांगशोफे वर्षाभूकरवीरकर्किशुकैः।
विशालात्रिफलालोध्रनलिकादेवदारुभिः॥
हिंस्राकौशातकीमाद्रीतालपर्णीजयंतिभिः।
स्थूलकाकादनीशालनाकुलीवृषपर्णिभिः॥
वृद्धिर्द्विहस्तिकर्णैश्च सुखोष्णैर्लेपनं हितम्।

अर्थ-एकांग सूजन में पुनर्नवा, कनेर, किंशुक (केसू) इन्द्रायण, त्रिफला, लोध, नलिका, देवदारु, बालछड कडवी तोरई, अतीस, तालपर्णी, जयंती, स्थूल काकादनी शाल, नाकुली, वृषपर्णी, वृद्धि, लालअरंड, सफेद अरंड, इन द्रव्यों को पीसकर सुहाता हुआ गरम लेप करना चाहिये। यह सूजन की सामान्यचिकित्सा कही गई है।

वातज सूजन की चिकित्सा।

अथाऽनिलोत्थे श्वयथौ मासार्धं त्रिवृतं पिबेत्॥ २७॥
तैलमैरंडजं वातबिड्विबंधे तदेव तु।
प्राग्भक्तं पयसा युक्तं रसैर्वा कारयेत्तथा॥
स्नेहाभ्यंगान्समीरघ्नान् लेपमेकांगगे पुनः।
मातुलुंगाग्निमंथेन शुंठीहिंस्रामरद्वयैः।२९।

अर्थ-वातजनित सूजन में पन्द्रह दिन तक निसोथ का चूर्ण वा अरंड का तेल पान करे। अधोवायु और मलकी विबंधता होने पर भोजन करने से पहिले दूध वा मांसरस के साथ अंडी का तेल पीवे। तथा एकांग शोफ में वातनाशक स्नेह और अभ्यंग तथा बिजौरा, अरनी, सोंठ, जटामांसी और देवदारु का लेप करै।

पित्तज सूजन की चिकित्सा।

पैत्ते तिक्तं पिबेत्सार्पिर्न्यग्रोधाद्येन वा शृतम्।
क्षीरं वृद्धदाहमोहेषु लेपाभ्यंगाश्च शीतलाः॥

अर्थ-पित्तज सूजन में न्यग्रोधादि गणोक्त द्रव्यों के साथ पकाया हुआ घी पान करे तृषा हो तो इन्हीं के साथ में पकाया हुआ दूध पीवै, तथा ठंडे लेप और अभ्यंग उपयोग में लावै।

पित्तज सूजन पर क्वाथादि।

पटोलमूलत्रायंतीयष्ट्याह्वकटुकाभयाः।
दारुदार्विहिमं दंती विशाला निचुलं कणा
तैः क्वाथः सघृतः पीतो-
हंत्यंतस्तापतृड्भ्रमान्।
ससन्निपातवीसर्पशोफदाहविषज्वरान्॥

अर्थ पर्वलकी जड, त्रायंती, मुलहटी, कुटकी, हरड, देवदारु, दारुहलदी, चंदन, दंती, इन्द्रायण, जलवेत्र और पीपल इनके काढे में घी डालकर पीने से अंतस्ताप, तृषा भ्रम, सन्निपात, विसर्प, सूजन, दाह, विष और ज्वर जाते रहते हैं।

कफज सूजन पर तैल।

आरग्वधादिना सिद्धं तैलं श्लेष्मोद्भवे पिबेत्

अर्थ-आरग्वधादिगण से सिद्ध किया हुआ तेल कफज सूजन पर पीना चाहिये।

अन्य उपाय।

स्रोतोविबंधे मंदेऽग्नावरुचौ स्तिमिताशयः॥
क्षारचूर्णासवारिष्टमूत्रतक्राणि शीलयेत्।

अर्थ स्रोतोविबंध, अग्निमांद्य, अरुचि और कोष्ठ में स्तिमिता होने पर क्षार, चूर्ण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आसव, अरिष्ट, मूत्र और तक्र पान करने चाहिये।

अन्य प्रलेपादि।

कृष्णापुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकतातसीः
प्रलेपोन्मर्दने युंज्यात्सुखोष्णाताः
मूत्राकर्षिकताः।

अर्थ–पीपल, पुरानी खल, सहजने की छाल, बालू और अलसी इन सबको गोमूत्र में पीसकर और थोडा गरम करके लेप करे और इसी से मर्दन करे।

सूजन पर स्नान विधि।

स्नानं मूत्रांभसी सिद्धे कुष्ठतर्कारिचित्रकैः।
कुलत्थनागराभ्यां वा चंडागुरुविलेपने।

अर्थ–कूठ, तर्कारी और चीता इनसे अथवा कुलथी और सोंठ डालकर सिद्ध किये हुए जल और गोमूत्र से स्नान करना तथा शंखपुष्पी और अगर का लेप करना हित है।

एकांग शोफ में लेप।

कालाजशृंगीसरलवस्तगंधाह्वयाह्वयाः॥ ३६
एकैकिकाश्च लेपः स्याच्छ्वयथोवेकगात्रजे।

अर्थ–नीलनी, मेंढासिंगी, सरलकाष्ठ, अजगंध, असगंध, और निसोथ इनका लेप करने से एकांगज सूजन जाती रहती है।

दोषानुसार शुद्धि।

यथादोषं यथास्थानं शुद्धिं रक्तावसेचनम्।
कुर्वीत मिश्रदोषे तु दोषोद्रेकबलात्क्रियाम्॥

अर्थ–दोषके अनुसार पासवाले स्थान की शुद्धि और रक्तमोक्षण करना चाहिये। और जो मिश्र दोष हों तो जो दोष अधिक हो उसके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

त्रिदोषज शोफ में चिकित्सा।

अजाजिपाठाधनपंचकोल-
व्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः।
शोफं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नंति भूनिंबमहौषधैश्च॥ ३८॥

अर्थ–कालाजीरा, पाढा, मोथा, पंचकोल, कटेरी, और हलदी इन सब द्रव्यों का चूर्ण गुनगुने जलके साथ पीने से त्रिदोषज सूजन जो बहुत दिनकी उत्पन्न हुई हो और बढगई हो, जाती रहती है। चिरायता और सोंठ का चूर्ण पीने से भी उक्त सूजन जाती रहती है।

अन्य प्रयोग।

अमृताद्वितयं सिवाटिका
सुरकाष्ठं सुपुरं सगोजलम्।
श्वयथूदरकुष्ठपांडुता
कृमिमेहोर्ध्वकफानिलाग्रहम्॥ ३९॥

अर्थ–गिलोय, हरड, शिवाटिका, देवदारु और गूगल इनको गोमूत्र के साथ पीने से सूजन, उदररोग, कोढ, पांडुरोग, कृमिरोग, प्रमेह, ऊर्ध्वकफ और ऊर्ध्ववात जाते रहते हैं।

क्षतोत्थ शोफ में कर्तव्य।

इति निजमधिकृत्य पथ्यमुक्तं
क्षतजनिते क्षतजं विशोधनीयम्।
स्रुतिहिमघृतलेपसेकरेकै-
र्विषजनिते विषजिच्च शोफ इष्टम्॥

अर्थ–पूर्वोक्त रीति से वातादि दोषों के अनुसार निज शोफका वर्णन किया गयाहै क्षतज सूजन में रक्तस्राव, शीतल घृत, शीतल लेप, शीतल परिषेक, और विरेचनादि शोधन क्रिया करना चाहिये। विष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से उत्पन्न हुई सूजन में विषनाशिनी क्रिया करनी चाहिये ।

शोफ में वर्जित मांसादि ।

ग्राम्यानूपं पिशितमबलं शुष्कशाकं-
तिलान्नम्
गौडं पिष्टं दधि सलवणं विज्जलं
मद्यमम्लम् ।
धानावल्लूरमशनमथो गुर्वसात्म्यं
विदाहि
स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदावान्वर्जयेन्मैथुनं च॥

अर्थ–ग्राम्य और आनूप मांस, निर्बल पशु का मांस, सूखा शाक, तिल, गुड के पदार्थ, पिष्टान्न, दही, नमक, जल रहित मद्य, खटाई, भुना हुआ अन्न, सूखा मांस, पथ्य और अपथ्य एक साथ खाना, भारी असात्म्य और विदाही अन्न का सेवन, रात में सोना और मैथुन ये सब सूजनवाले रोगी को वर्जित हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने श्वयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहां से विसर्प चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

विसर्प में लंघनादि ।

आदावेव विसर्पेषु हितं लंघनरूक्षणम् ।
रक्तावसेको वमनं विरेकः स्नेहनं न तु । १

अर्थ–विसर्प रोग में प्रथम ही लंघन, रूक्षण, रक्तमोक्षण, वमन, विरेचन और स्नेहन हित हैं ।

विसर्प में वमनादि ।

प्रच्छर्दनं विसर्पघ्नं सयष्टीद्वयवं फलम् ।
पटोलपिप्पलीनिंबपल्लवैर्वा समन्वितम् ॥

अर्थ–मुलहटी और इन्द्रजौ से युक्त मैनफल, अथवा पर्वल, पीपल, नीमके पत्ते इनसे युक्त मैनफल इनके द्वारा वमन कराने से विसर्प रोग शांत होजाता है ।

विसर्प में विरेचनादि ।

रसेन युक्तं त्रायंत्या द्राक्षायास्त्रैफलेन वा ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं पयसा सर्पिषाऽथवा ॥
योज्यं कोष्ठगते दोषे विशेषेण विशोधनम् ।

अर्थ–त्रायमाण के रस से, दाख के रस से वा त्रिफला के रससे निसोथ का चूर्ण अथवा दूध वा घी के साथ निसोथ का चूर्ण देने से दस्तों द्वारा विसर्प शान्त होजाता है । जो दोष कोष्ठ में पहुंचगयाहो तो विशेषरूपसे शोधन देना चाहिये ।

अल्पदोष में शमन विधि ।

अविशोध्यस्य दोषेऽल्पे शमनं चंदनोत्पलम्
मस्तुनिंबपटोलं वा पटोलादिकमेव वा ।
सारिवामलकोशीरमुस्तं वा क्वथितं जले ॥

अर्थ–जो अल्पदोष वाला विसर्परोगी शोधनक्रिया के योग्य न हो तो चन्दन और कमल, अथवा मोथा, नीम और पर्वल, अथवा पटोलादि गण अथवा सारिवा, आमला खस और मोथा ये सब क्वाथ शमन के लिये देने चाहिये ।

दुरालभादि पान

दुरालभां पर्पटकं गुडूचीं विश्वभेषजम् ।
पाक्यं शीतकषायं वा तृष्णावीसर्पवान्
पिबेत् ॥६।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–दुरालभा, पित्तपापडा, गिलोय और सोंठ इन सब द्रव्यों का काढा वा शीत कषाय पीने से तृषा और विसर्प शांत हो जाते हैं।

दार्व्यादि सेवन।

दार्वीपटोलकटुकामसूरत्रिफलास्तथा।
सनिंबयष्टीत्रायंतीः क्वथिता घृतमूर्छिताः॥

अर्थ–दारुहलदी, पर्वल, कुटकी, मसूर त्रिफला, नीमकी छाल मुलहटी, और त्रायंती इन सब द्रव्यों का काढा घृत मिलाकर सेवन करने से विसर्प रोग दूर होजाता है।

विसर्प में रक्तमोक्षण।

शाखादुष्टे तु रुधिरे रक्तमेवादितो हरेत्।
त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदो रक्तक्लेदाद्धि जायते॥

अर्थ–हाथ वा पांव का रक्त दूषित होने पर पहिले फस्द खोलना चाहिये क्योंकि रक्त के क्लेद से ही त्वचा, मांस और स्नायु में क्लेद होता है।

घृत सेवन।

निरामे श्लेष्मणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम्
घृतं तिक्तं महातिक्तं शृतं वा त्रायमाणया॥

अर्थ–पहिले यह कहचुके हैं कि विसर्प रोगी को स्नेहन न देना चाहिये, परंतु उक्त वाक्य के विपरीत अवस्था विशेष में प्रयोग किया जाता है। इसलिये विसर्प रोगी यदि आमरहित हो, कफ क्षीण होगया हो और वातपित्त की अधिकता हो तो तिक्तकघृत महातिक्तक घृत वा त्रायंतीघृत देना चाहिये

विसर्प पर लेपादि।

निर्हृतेऽस्रे विशुद्धेऽतर्दोषे त्वङ्मांससंधिगे।
बहिःक्रियाः प्रदेहाद्याः सद्यो वीसर्पशांतये।

अर्थ–रक्तमोक्षण से भीतर के दोषों के विशुद्ध होनेपर त्वचा, मांस और संधियों में प्रलेपादि बाहर की क्रिया करनेसे विसर्प का शमन होजाता है।

वातविसर्प में चिकित्सा।

शताह्वमुस्तबाराहीवंशार्तगलधान्यकम्।
सुराह्वा कृष्णगंधा च कुष्ठं वा लेपनं चले॥

अर्थ–वातज विसर्प में सौंफ, मोथा, बाराहीकंद, वंशकुर, नीलसहचर, धनियां, देवदारू, सहजना, और कूठ का लेप करना चाहिये।

पैत्तिक विसर्प की चिकित्सा

न्यग्रोधादिगणः पित्ते तथा पद्मोत्पलादिकम्।

अर्थ–पैत्तिकविसर्पमें न्यग्रोधादिगण तथा पद्म और उत्पलादि शीतवीर्य द्रव्यों का लेप हितहै। पद्मोत्पलादि यथा–पद्मोत्पल शैवालपंकदूर्वामृणालशृंगाटकसेरुकशर्कराहीबेर चन्दनमुक्तामणिगैरिकपयस्याप्रपौंडरीक मधुकपद्मकघृतक्षीराणीति।

अन्य लेप।

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः॥
बिसग्रंथिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः
पद्मिनीकर्दमः शीतः पिष्टं मौक्तिकमेव वा॥
शंखः प्रवालं शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम्।

अर्थ–बडकी डाढी, नये केले का भीतरका भाग और कमलनाल इनको पीसकर सौ बार धुले हुए घी में सानकर लेप करने से विसर्प में हितहै। कमल की ठंडी कीचड, जलमें पिसा हुआ मोती, शंख, मूंगा, सीपी वा गेरू इनको घीमें सानकर लगाना भी हितहै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफविसर्प पर लेप ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥
नलमूलान्यनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ।

अर्थ--त्रिफला, पद्माख, खस, मजीठ, कनेर, नरसल की जड, और अनन्तमूल इनका लेप करनेसे कफजविसर्प नष्ट हो जाताहै ।

अन्य लेप ।

धवसप्ताह्वखदिरदेवदारुकुरंटकम् ॥ १९ ॥
समुस्तारग्वधं लेपो वर्गो वा वरुणादिकः ।
आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मांतकोद्भवाः
इंद्राणीशाकं काकाह्वाशिरीषकुसुमानि च ।

अर्थ--धायके फूल, सातला, खैर, देवदारू कुरंटक, नागर मोथा और अमलतास इन द्रव्यों का लेप अथवा वरुणादिगणोक्त द्रव्योंका लेप अथवा अमलतास के पत्ते, लिसौडे की छाल, इन्द्रायण, शाकवृक्ष, मकोय और सिरस के फूल इनका लेप हितहै।

उक्तद्रव्यों द्वारा सेकादि ।

सेकव्रणाभ्यंगहविर्लेपचूर्णान् यथायथम् ॥
एतैरेवौषधैः कुर्याद्वायौ लेपा घृताधिकाः ॥

अर्थ--ऊपर जिन जिन द्रव्यों का लेप कहा गयाहै उन्हीं औषधियों द्वारा सिद्ध जलसे परिषेक, उन्हीं द्रव्यों द्वारा सिद्ध घृत वा घाव पर मर्दन, तथा वातविसर्पोक्त द्रव्यों में अधिक घी मिलाकर लेप करना ये सब हितहैं । तथा पित्तज और कफज विसर्प में जो जो लेप कहे गये हैं वे भी घी में मिलाकर लगाने चाहिये ।

सामवायुमें लेप ।

कफस्थानगते सामे पित्तस्थानगतेऽथवा ॥
आशीतोष्णा हिता रूक्षा रक्तपित्ते घृतान्विताः

अत्यर्थशीतास्तनवस्तनुवस्त्रांतरास्थिताः ॥
योज्याः क्षणेक्षणेऽन्येऽन्ये मंदवीर्यास्तथा च

अर्थ--विसर्परोगमें आमयुक्त वायु यदि कफके स्थानमें वा पित्तके स्थान में गत हो तो कुछ गरम और कुछ रूखे लेपोंमें घी मिलाकर काम में लाना चाहिये । इसीतरह यदि रक्तपित्त पित्तस्थान में गया हो तो अत्यन्त शीतल और पतला लेप पीडित स्थानपर एक बहुत पतला कपडा बिछाकर बार बार करना चाहिये । परन्तु यह लेप हरबार नया होना चाहिये क्योंकि पहिला किया हुआ मन्दवीर्य होजाता है ।

संसृष्ट दोष में कर्तव्य ।

संसृष्टदोषे संसृष्टमेतत्कर्म प्रशस्यते ॥ २०

अर्थ--मिले हुए दो दो दोष वा तीनों दोषवाले विसर्प में तीनों वा दो दो दोषोंकी मिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

अग्नि विसर्प की चिकित्सा ।

शतधौतघृतेनाऽग्नि प्रदिह्यात्केवलेन वा ।
सेचयेद्घृतमंडेन शीतेन मधुकांबुना ॥
शीतांभसांभोजजलैः क्षीरेणेक्षुरसेन वा ।
पानलेपनसेकेषु महातिक्तं परं हितम् ॥

अर्थ--अग्निविसर्प में सौ बार धुलाहुआ घी, वा केवल घृतमंड अथवा मुलहटी का शीतल क्वाथ, कमल का जल, दूध वा ईख का रस, इनका परिषेक करे । और महातिक्तक घृतको पान लेपन और परिषेक में काम में लावे ।

ग्रंथि विसर्प की चिकित्सा ।

ग्रंथ्याख्ये रक्तपित्तघ्नं कृत्वा-
सम्यग्यथोदितम् ।
कफानिलघ्नं कर्मेष्टं पिंडस्वेदोपनाहनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-ग्रंथिविसर्प में प्रथमही रक्तपित्त को नाश करनेवाली क्रिया करके पीछे वात कफनाशक कर्म, पिंडस्वेद और उपनाह करै।

ग्रंथि विसर्प में परिषेक।

ग्रंथिवीसर्पशूले तु तैलेनोष्णेन सेचयेत्।
दशमूलविपक्वेन तद्वन्मूत्रैर्जलेनवा ॥ २४ ॥

अर्थ-ग्रंथि विसर्पयुक्त शूल में दशमूल के काढे में तेल वा गोमूत्र पकाकर अथवा केवल दशमूल के काढे का परिषेक करे।

अन्य प्रलेपादि।

शुष्कोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया कृष्णगंधया।
नक्तमालत्वचा शुष्कमूलकैः कालिनाऽथवा

अर्थ-कृष्णगंधा, वा कंजा की छाल, वा सूखी मूली वा वहेडा इनको जलमें पीस कर गुनगुनी करके लेप करे।

दंत्यादि लेप।

दंती चित्रकमूलत्वक्सौधार्कपयसी गुडः।
भल्लातकास्थि कासीसं लेपो भिंद्याच्छिलामपि
बहिर्मार्गाश्रितं ग्रंथिं किं पुनः कफसंभवम्।
दीर्घकालस्थितं ग्रंथिमेभिर्भिंद्याच्च भेषजैः॥

अर्थ-दंती और चीते की जड की छाल सेंहुड का दूध, आक का दूध, गुड, भिलावे की गुठली, और हीरा-कसीस इनका लेप शिला को भी तोड देता है। फिर उस ग्रंथि का क्या कहना है जो कफ से उत्पन्न होकर बाहर को निकली हुई है। इन औषधों से बहुत काल की ग्रंथि भी नष्ट होजाती है।

ग्रंथि के भेदन का उपाय।

मूलकानां कुलत्थानां यूषैः सक्षारदाडिमैः।
गोधूमान्नैर्यवान्नैश्च ससीधुमधुशर्करैः २८
सक्षौद्रैर्वारुणीमंडैर्मातुलुंगरसान्वितैः।
त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पलयाः क्षौद्रसंयुतैः
देवदारुगुडूच्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च।
मुस्तमञ्जातसक्तूनां प्रयोगैर्माक्षिकस्य च॥
धूमैर्विरेकैः शिरसः पूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः।
तप्तायोहेमलवणपाषाणादिप्रपीडनैः॥ ३१॥

अर्थ-मूली का यूष, कुलथी का यूष, जवाखार और अनार रस से युक्त गेंहू और जौ का अन्न, सीधु मधु, शर्करा, शहत और निंबूरे के रससे युक्त वारुणीमंड, मधुसंयुक्त त्रिफला और मधुसंयुक्त पीपल के प्रयोग से देवदारु और गिलोय के प्रयोग से, गेरू, मोथा, मिलवा, सत्तू और शहत के प्रयोगों से, धूमप्रयोग से, शिरोविरेचन से, गुल्म को भेदन करनेवाले पूर्वोक्त प्रयोगों से, गरम लोहा, सुवर्ण, नमक पत्थर आदि के प्रयोगों से बहुत पुरानी ग्रंथि भेदित हो जाती है।

ग्रंथि के शांत न होने में दाह।

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्विविधाभिर्बले स्थितः।
ग्रंथिः पाषाणकठिनो यदि नैवोपशाम्यति॥
अयास्य दाहः क्षारेण शरैर्हेम्नाऽपि वा हितः
पाकिभिः पाचयित्वा तु पाटयित्वा समुद्धरेत्

अर्थ-ऊपर लिखे हुए अनेक प्रकार के सिद्ध प्रयोगों के करने पर भी यदि अत्यन्त बढी हुई और पत्थर के समान कठोर ग्रंथि प्रशमित न हो, तो क्षार के प्रयोग से अथवा अत्यन्त गरम किये हुए शर वा सुवर्ण द्वारा दग्ध करना चाहिये। और पकानेवाले द्रव्यों द्वारा पकाकर इसको अस्त्रद्वारा निकाल देना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रंथि में रक्त मोक्षण ।

मोक्षयेद्बहुशश्चास्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ।
पुनश्चापहृते रक्ते वातश्लेष्मजिदौषधम् ॥

अर्थ–ग्रंथि विसर्प वाले रोगी का रक्त यदि उत्क्लिष्ट अर्थात् विकार करने को उन्मुख होगया हो तो उसको बार बार निकालदेना चाहिये, रक्त के निकाल देने के पीछे वात-कफनाशक औषधों का प्रयोग करना हित है ।

व्रण के समान चिकित्सा ।

प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यां बाह्यांतव्रणवत्क्रिया ।
दार्वीविडंगकंपिल्लैः सिद्धं तैलं व्रणे हितम्
दूर्वास्वरससिद्धं तु कफपित्तोत्तरे घृतम् ,

अर्थ–दाह और पाक द्वारा विसर्प के प्रक्लिन्न होने पर भीतर वा बाहर के घाव के सदृश चिकित्सा करनी चाहिये । वात प्रधान विसर्प के घाव में दारुहलदी, बाय-विडंग और कबीला इनसे सिद्ध किया हुआ तेल हित होता है । तथा पित्तप्रधान और कफप्रधान व्रणों में दूर्वा के रसके साथ सिद्ध किया हुआ घृत उपयोग में लावे ।

रक्तहरण में हेतु ।

एकतः सर्वकर्माणि रक्तमोक्षणमेकतः॥ ३६॥
विसर्पो नह्यसंसृष्टः सोऽस्रपित्तेन जायते ।
रक्तमेवाश्रयश्चास्य बहुशोऽसृङ्न हरेदतः ३७

अर्थ–विसर्परोग में एक ओर संपूर्ण चिकित्सा है और दूसरी ओर रक्तमोक्षण है अर्थात् जो फलसिद्धि संपूर्ण चिकित्साओं से नहीं हो सकती है वह केवल एक रक्त मोक्षण से होसकती है । इसका कारण यह है कि विसर्परोग रक्त पित्तके संसर्ग से रहित नहीं है, यह रक्तपित्त से ही उत्पन्न होता है और रक्त ही इसका आश्रय है, इसलिये इस रोग में बार बार फस्द खोलने की आवश्यक्ता है ।

विसर्प में घृतका निषेध ।

न घृतं बहुदोषाय देयं यन्न विरेचनम् ।
तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वग्रक्तपिशितं पचेत्

अर्थ–बहुत दोषों से युक्त विसर्प में वह घृत नहीं देना चाहिये जो विरेचन करने वाला न हो, क्योंकि उस घृत से उपस्तंभित हुआ दोष त्वचा, रक्त और मांस को पका देता है । विसर्प में पित्त ही की चिकित्सा करना प्रधान है और पित्त की चिकित्सा में विरेचन प्रधान है, इसलिये विसर्प में वैरेचनिक घृतका प्रयोग ही करना चाहिये ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा टीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने विसर्पचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः॥

अर्थ–अब हम यहां से कुष्ठचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

कुष्ठ में स्नेहपान ।

कुष्ठिनं स्नेहपानेन पूर्वं सर्वमुपाचरेत् ।

अर्थ–कुष्ठरोग में त्वचा, रक्त और मांसादि दूषित हो जाते हैं इसलिये इस रोग में देहका कृश हो जाना अवश्य होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतएव कुष्ठरोगी की चिकित्सा करने से पहिले उसके शरीर को आप्यायन करने के निमित्त स्नेहपान कराना चाहिये।

वातोत्तर कुष्ठ में तैलादि।

तत्र वातोत्तरे तैलं घृतं वा साधितं हितम्॥
दशमूलामृतैरंडशार्ङ्गष्ठाभेषजांगिभिः।

अर्थ–वातप्रधान कुष्ठरोग में दसमूल, गिलोय, अरंड, महाकरंज और मेढासिंगी इनसे सिद्ध किया हुआ तेल वा घी काम में लावे।

पित्तकोढ का उपाय।

पटोलनिंबकटुकादार्वीपाठादुरालभाः॥ २॥
पर्पटं त्रायमाणां च पलांशं पाचयेदपाम्।
द्व्याढकेऽष्टांशशेषेण तेन कर्षोन्मितैस्तथा॥
त्रायंतीमुस्तभूनिंबकलिंगकणचंदनैः।
सर्पिषो द्वादशपलं पचेत्तत्तिक्तकं जयेत्॥
पित्तकुष्ठपरिसर्पपिटिकादाहतृड्भ्रमान्।
कंडूपांडूदमयान् गंडान् दुष्टनाडीव्रणापचीः
विस्फोटपिड्कागुल्मशोफोन्मादमदानपि।
हृद्रोगतिमिरव्यंगग्रहणीश्चित्रकामलाः॥६॥
भगंदरमपस्मारमुदरं प्रवरं गरम्।
अर्शोऽस्रपित्तमन्यांश्च
सुकृच्छ्रान् पित्तजान् गदान्॥ ७॥

अर्थ–पर्वल, नीम, कुटकी, दारुहलदी, पाठा, दुरालभा, पर्पटी, त्रायमाणा, प्रत्येक एक एक पल लेकर दो आढक जल में काढा करै, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छानले, फिर इसमें त्रायंती, मोथा, चिरायता, इन्द्रजौ, पीपल, और चंदन प्रत्येक एक कर्ष पीसकर डालदे और बारह पल घी डालकर पकावे। इस घृत के सेवन करने से पैत्तिक कुष्ठ, विसर्प, पिटिका, दाह, तृषा, भ्रम, कंडू, पांडुरोग, गंड, दुष्ट नाडव्रिण, अपची, विस्फोटक, विद्रधि, गुल्म, शोफ, उन्माद, मदरोग, हृद्रोग, तिमिर, व्यंग, ग्रहणी, श्वित्र, कामला, भगंदर, अपस्मार, उदररोग, प्रदर, गरदोष, अर्शरोग, रक्तपित्त तथा अन्य अन्य पित्त से उत्पन्न होनेवाले कष्टसाध्यरोग शांत हो जाते हैं।

महातिक्तक घृत।

सप्तच्छदः पर्पटक शम्याकः कटुका वचा।
त्रिफला-पद्मकं पाठा रजन्यौ सारिवे कणे॥
निंबचंदनरक्तह्वाविशालेंद्रयवामृताः।
किराततिक्तकं सेव्यं वृषो मूर्वा शतावरी॥
पटोलातिविषामुस्तात्रायंतीधन्वयासकम्।
तैर्जलेऽष्टगुणे सर्पिर्द्विगुणामलकीरसे १०॥
सिद्धं तिक्तान्महातिक्तं गुणैरभ्यधिकं मतम्

अर्थ- सातला, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी, बच, त्रिफला, पदमाख, पाठा, हलदी, दारुहलदी, सारिवा, रक्तसारिवा, छोटी पीपल, बडी पीपल, नीम की छाल, रक्तचंदन, मुलहटी, इन्द्रायण, इन्द्रजौ, गिलोय, चिरायता, खस, अडूसा, मूर्वा, सितावर, पर्वल, मोथा, त्रायमाणा, दुरालभा, इनको समानभाग लेकर अठगुने पानी और दूने आमले के रस में यथोक्तरीति से घृत को पकाकर सेवन करै। यह महातिक्तक घृत उक्तघृत से अधिक गुणकारक है।

। कफप्रधान कुष्ठ की चिकित्सा।

कफोत्तरे घृतं सिद्धं निंबसप्ताह्वचित्रकैः १२॥
कुष्ठोषणवचाशालप्रियालचतुरंगुलैः।

अर्थ–कफप्रधान कुष्ठ में नीमकी छाल, सातला चीता, कूठ, कालीमिरच, बच, साल, पियाल और अमलतास इन सब द्रव्यों के कल्क के साथ पकाया हुआ घी सेवन करना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वकुष्ठ चिकित्सा ।

सर्वेषु चारुष्करजं तौवरं सार्षपं पिबेत् १२
स्नेहं घृतं वा कृमिजित्पथ्याभल्लातकैः शृतं

अर्थ–सब प्रकार के कुष्ठरोगों में भिलावे का तेल, तूर का तेल, सरसों का तेल, अथवा वायविडंड, हरड और भिलावे का पकाया हुआ तेल हितकारी है ।

अन्य चिकित्सा ।

आरग्वधस्य मूलेन शतकृत्वः शृतं घृतम् ॥
पिबेत्कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखादिरं जलम्

अर्थ–अमलतास की जड से सौबार पकाया हुआ घी और खैर का जल पीनेसे कुष्ठरोग जाता रहता है ।

कुष्ठ पर अभ्यंजन ।

एभिरेव यथास्वं च स्नेहैरभ्यजनं हितम् ॥

अर्थ–दोषों के अनुसार पूर्वोक्त घृतद्वारा अभ्यंजन करना भी हित है ।

कुष्ठ में शोधनादि ।

स्निग्धस्य शोधनं योज्यं विसर्पे यदुदाहृतम्

अर्थ–जब स्नेह सेवन से रोगी स्निग्ध होजाय तब, विसर्प में कहे हुए योगों से विरेचन देना चाहिये ।

कुष्ठ में शिरावेधन ।

ललाटहस्तपादेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत्
प्रच्छानमल्पके कुष्ठेशृंगाद्याश्चयथायथम् ।

अर्थ–रोगी के बल के अनुसार रोगी के मस्तक, हाथ वा पांव में फस्द खोले । कुष्ठ थोडा होने पर पछना, सींगी आदि से थोडा थोडा रक्त निकाले ।

कुष्ठ में आप्यायन ।

स्नेहैराप्याययेच्चैनं कुष्ठघ्नैरंतरांतरा ॥
मुक्तरक्तविरिक्तस्य रिक्तकोष्ठस्य कुष्ठिनः ॥
प्रभंजनस्तथा ह्यस्य न स्याद्देहप्रभंजनः ।

अर्थ–फस्द खोलना और विरेचन देना इनके बीच बीच में कुष्ठनाशक स्नेहों से रोगी को आप्यायित करता रहै । ऐसा करने पर रुधिर के निकलने और विरेचन से कोष्ठ के खाली होने पर वायु देह को विदीर्ण नहीं कर सकती है ।

वज्रकघृत ।

वासामृतानिंबघरापटोल-
व्याघ्रीकरंजोदककल्कपक्वम् ॥
सर्पिर्विसर्पज्वरकामलास्र-
कुष्ठापहं वज्रकमामनंति ॥ १८ ॥

अर्थ अडूसा, गिलोय, नीमकी छाल, त्रिफला, पर्वल, कटेरी और कंजा इनके काढे और कल्क से पकाया हुआ घी विसर्प, ज्वर, कामला और रक्तकुष्ठ को दूर करता है, इसका नाम वज्रक घृत है ।

महावज्रक घृत ।

त्रिफलात्रिकटुद्विकंटकारी-
कटुकाकुंभनिकुंभराजवृक्षैः ।
सवचात्रिविषाग्निकैःसपाठैः
पिचुभागैर्नवबज्रदुग्धमुष्टया । १९ ।।
पिष्टैःसिद्धं सार्षपः प्रस्थमेभिः
क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।
कुष्ठश्वित्रग्रंथिहृद्वर्म्यशमगुल्मान्
हन्यात्कृच्छ्रांस्तन्महावज्रकाख्यम् २०

अर्थ- त्रिफला, त्रिकुटा, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, कुटकी, निसोथ, दंती, अमलतास, बच, अतीस, चीता और पाठा प्रत्येक एक तोला नये थूहर का दूध चार तोला इन सबको पीसकर चौगुना जल मिलाकर एक प्रस्थ घी पकावै । यह घृत क्रूर कोष्ठ में स्नेहन और विरेचन करता है तथा कुष्ठ, श्वित्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्लीहा, वर्ध्म, अश्मरी, गुल्म तथा अन्य कष्टसाध्य रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम महावज्रक घृत है।

वैरेचनिक घृत ॥

इत्याढकमपां द्रोणे पक्त्वातेनघृतंपचेत्
घाम्भार्गवपले पीते तद्दुर्ध्वाधो विशुद्धिकृत्

अर्थ- दंती एक आढक को एक द्रोण जल में औटावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर इसमें चार तोले कडवी तोरई डालकर एक प्रस्थ घी को पकावै। इस घी के सेवन से वमन और विरेचन द्वारा शुद्धि होजाती है।

अन्य उपाय।

आवर्तकीतुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषितम्।
तन्मूलैस्तत्र निर्यूहे घृतप्रस्थं विपाचयेत्
पीत्वा तदेकदिवसांतरितं सुजीर्णे
भुंजीत कोद्रवसुसंस्कृतकांजिकेन।
कुष्ठं किलासमपचीं च विजेतुमिच्छन्
इच्छन्प्रजां च विपुलां ग्रहणं स्मृतिं च

अर्थ--एक द्रोण जल में एक तुला दंती को पकावै, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर इस काढे में दंती की जड का कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घी पकावै इस घी को एक एक दिनका अंतर देकर सेवन करे। जब घी पचजाय तब कांजी के साथ कोदों धान्य का सेवन करे। इस से कुष्ठ, किलास, और अपची जाते रहतेहैं तथा इससे विपुल संतान और ग्रहणशक्ति और स्मरणशक्ति बढती हैं।

अन्य उपाय।

यस्तैलैलीतकवसा क्षौद्रजातीरसान्विता।
कुष्ठघ्नी समसर्पिर्वा सगायत्र्यसनादका॥

अर्थ-ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके जो लैलीतकवसा (कालानमक और तेल) को मधु और बोल के साथ सेवन करता है, अथवा समान भाग घृत के साथ अथवा खैर और अशनके काढे के साथ सेवन करता है तो उसका कोढजाता रहता है

कोढमें पथ्य।

शालयो यवगोधूमाः कोरदूषाः प्रियंगवः।
मुद्गा मसूरास्तुवरीतिक्तशाकानि जांगलम्॥
वरापटोलखदिरनिंबारुष्करयोजितम्।
मद्यान्यौषधगर्भाणि मथितं वेक्षुराजिमत्॥
अक्षपात्रं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम्।
दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेत्सराम्॥

अर्थ-शाली चांवल, जौ, गेहूं, कोदों, प्रियंगु, मूंग, मसूर, अरहर, तिक्तशाक और जांगलमांस इन सब द्रव्योंको त्रिफला, पर्वल, खैर, नीमकी छाल और भिलावा इनसे योजित करके, तथा मद्यको यथायोग्य औषधियों से संयुक्त करके, तथा जल रहित मथाहुआ घोल नामक तक्रमें बाकुची मिलाकर सेवन करै तो कुष्ठ में हित हैं। और खटाई, नमक, मिरच, दही, दूध, गुड, आनूपमांस, तिल और उरद ये सब कुष्ठरोग में त्याज्य हैं।

अन्य औषध।

पटोलमूलत्रिफलाविशालाः
पृथक्त्रिभागापचितत्रिशाणाः।
स्युर्ब्राह्मयमाजा कटुरोहिणी च
भागार्धिके नागरपादयुक्ते॥ २८॥
पलत्पलं जर्जरितं विपक्वं
जले पिबेद्दोषविशोधनाय।
जीर्णे रसैर्धन्वमृगद्विजानां
पुराणशाल्योदनमाददीत॥ २९॥
कुष्ठं किलासं व्रणपामदाह-
मर्शांसि कृमिकृष्णि हलीमकं च।
पङ्गुत्वमेतेन निहंति चेतद्
हृद्वस्तिशूलं विषमज्वरं च॥ ३०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पर्वल की जड़ त्रिफला और इन्द्रायण प्रत्येक सोलह धानक, बायमाणा और कटु रोहिणी प्रत्येक छः धानक, सोंठ चार धानक, ये सब मिलाकर एक पल हुए, इनको कूटकर जल में पकावै । इस काढे को दोषों की शुद्धि के निमित्त पीवै । इस औषध के पचजाने पर जांगल पशुपक्षियों का मांसरस, मिलाकर पुराने शाली चांवलों का भात खानेको दे । इस औषध का छः दिन तक सेवन करने से कुष्ठरोग, किलास प्रहणीदोष, कष्टसाध्य अर्श, हलीमक, हृद्शूल, बस्ति शूल और विषमज्वर जाते रहते हैं ।

जितेन्द्रियों की कोढ का उपाय ।

विडंगसारामलकाभयानां
पलत्रयं त्रीणि पलानि कुंभात् ।
गुणस्य च द्वादशमासमेव
जितात्मनां हंत्युपयुज्यमानः ॥ ३१ ॥
कुष्ठं श्वित्रं श्वासकासोदरार्शो-
मेहग्रीहाध्मयरुग्जंतुशूलान् ।
सिद्धं योगं प्राह यक्षो मुमुक्षो-
र्भिक्षोः प्राणान्माणिभद्रः किलेमम् ॥

अर्थ–बायविडंग, आमला और हरड प्रत्येक एक पल, निसोथ तीन पल और गुड बारह पल इनकी गोलियां बनाकर यथायोग्य मात्रानुसार सेवन करने से एक महीने में कोढ, श्वित्ररोग, श्वास, खांसी, उदररोग, अर्श, प्रमेह, प्लीहा, ग्रंथि, कृमिरोग, और गुल्म जाते रहते हैं । रोगी को पथ्य से रहना उचित है । यह सिद्ध योग माणिभद्र नामक किसी यक्ष ने मृतःप्राय किसी भिक्षुक को बताया था ।

अन्य प्रयोग ।

भूनिंबनिंबत्रिफलापद्मकातिविषाकणाः ।
मूर्वा पटोली द्विनिशा पाटातिक्तेंद्रवारुणीः ॥
सकलिंगवचास्तुल्या द्विगुणाश्च यवोत्तरम् ।
लिह्याद्यंती त्रिवृद्भाक्षीश्चूर्णिता मधुसर्पिषा
कुष्ठमेहप्रसुप्तीनां परमं स्यात्तदीषधम् ।

अर्थ–चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला पदमाख, अतीस, पीपल, मूर्वा, पर्वल, हलदी, दारू हलदी, पाठा, कुटकी, इन्द्रायण, इन्द्रजौ, और वच प्रत्येक समानभाग तथा दंती, निसोथ और ब्राह्मी उत्तरोत्तर दूनी लेवै । इन सब का चूर्ण बनाकर घी और शहद के संग चाटै, यह कुष्ठ, प्रमेह और प्रसुप्ति (शून्यता) इन रोगों की परम औषध है ।

कुष्ठ पर त्रिफलादि लेह ।

वराविडंगकृष्णा वा लिह्यात्तैलाज्यमाक्षिकैः

अर्थ–त्रिफला, बायविडंग, पीपल, इन के चूर्ण का तेल, घी और शहत मिलाकर सेवन करने से कुष्ठरोग जाता रहता है ।

त्वचारोग पर काढा ।

काकोदुंबरिकावेल्लनिंबाब्दव्योपफल्कवान् ।
हंति वृक्षकनिर्यूहः पानात्सर्वांस्त्वगामयान् ।

अर्थ–काकोदुंबर, बायविडंग, नीमकी छाल, मोथा और त्रिकुटा इनके कल्क को कुडाके काढे के साथ पीने से त्वचा के रोग जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

कुटजाग्निनिंबवृषतरुखदिरास-
नसप्तपर्णनिर्यूहे ।
सिद्धा मधुघृतयुक्ताः कुष्ठघ्नीर्भक्षयेदभया ॥

अर्थ–कुडा की छाल, चीता, नीमकी छाल, अमलतास, खैरकी लकडी, अर्जुन,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सातला, इनके काढे को सिद्ध करके घी और शहत के साथ खाने से कुष्ठरोग नष्ट होजाता है।

अन्य प्रयोग।

दार्वीखदिरनिंबानां त्वक् क्काथः कुष्ठसूदनः।

अर्थ—दारुहलदी, खदिर काष्ठ और नीमकी छाल, इनका काढा कुष्ठनाशक है।

अन्य प्रयोग।

निशोत्तमानिंबपटोलमूल-
तिक्तावचालोहितयष्टिकाभिः।
कृतः कषायः कफपित्तकुष्ठं
सुसेवितो धर्म इवोच्छिनत्ति॥ ३८।
एभिरेव च शृतं घृतमुख्यं-
भेषजैर्जयति मारुतकुष्ठम्।
कल्पयेत्खदिरनिंबगुडूची-
देवदारुरजनीः पृथगेषम्॥ ३९॥

अर्थ—हलदी, त्रिफला, नीम, पर्वलकी जड, कुटकी, वच, मजीठ, इनका काढा सेवन करने से कफपित्तज कुष्ठरोग जाता रहता है, जैसे अच्छी तरह धर्मके सेवन से पाप नष्ट होजाता है। इन्हीं द्रव्यों के काढे के साथ पकायाहुआ घी वातज कुष्ठको दूर करदेताहै॥ इसी तरह खैरकी लकडी, नीमकी छाल, गिलोय, देवदारु और हलदी इनका काढाभी कुष्ठको दूर करता है॥

अन्य प्रयोग।

पाठादार्वीवह्निघुणेष्टाकटुकाभि-
र्मूत्रं युक्तं शक्रयवैश्चोष्णजलं च।
कुष्ठी पीत्वा मासमरुक् स्याद्गुडकीली
मेहो शोफी पांडुरजोर्णी कृमिमांश्च॥ ४०॥

अर्थ—पाठा, दारूहलदी, चीता, अतीस और कुटकी इनके साथ वा इन्द्रजौ के साथ गोमूत्र वा गरमजल एक महिनेतक पीनेसे कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, सूजन, पांडुरोग, अजीर्ण और कृमिरोग नष्ट होजाता है॥

अन्य प्रयोग।

लाक्षादंतीमधुरसवराट्टीपिपाठाविडंग
प्रत्यक्पुष्पीत्रिकटुरजनीसप्तपर्णाटरूषम्।
रक्तानिंबं सुरतरुकृतं पंचमूल्यौ च चूर्णं
पीत्वा मासं जयति हितभुग्गव्यमूत्रेण कुष्ठम्

अर्थ—लाख, दंती, ईखकी जड, त्रिफला चीता, पाठा, वायविडंग, प्रत्यक्पुष्पी, त्रिकुटा, हलदी, सातला, अडूसा, मजीठ, नीमकी छाल, देवदारू, और दशमूल, इनका चूर्ण एक महिने तक गोमूत्रके साथ सेवन करने से कुष्ठ जाता रहता है।

कुष्ठकुष्ठ की चिकित्सा।

निशाकणामागरवेल्लतौवरं
सवह्निहाव्यं क्रमशो विवर्धितम्।
गवांबु पीतं घटकीकृतं तथा
निहंति कुष्ठानि सुदारुणान्यपि॥ ४२॥

अर्थ—हलदी, पीपल, सोंठ, वायविडंग, तूर, चीता, और सौना माखी इनसे एक एक भाग बढाकर चूर्ण बनाकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से भयंकर कुष्ठ जाता रहता है।

कोढ पर रसायन।

त्रिकटूत्तमातिलारु-
ष्करांज्यमाक्षिकसितोपला विहिता
गुलिका रसायनं स्यात्
कुष्ठजिच्च वृष्या च सप्तसमा॥ ४३॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, तिल, भिलावा घी, मधु और चीनी इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर गोलियां बना लेवे॥ ये गोली रसायन, कुष्ठनाशक और वृष्यहै॥

चन्द्रशकला गुटिका।

चंद्रशकलाग्निरजनी-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विडंगतुवरास्थ्यरुष्करात्रिफलाभिः।
वटका गुडांशकृताः
समस्तकुष्ठानि नाशयंत्यभ्यस्ताः॥ ४४॥

अर्थ–वाकुची, चीता, हलदी, बायविडंग, तुवर, भिलावे की गुठली, और त्रिफला ये सब समान भाग लेकर गुडके साथ गोलियां बनालेवे। इनका नित्य प्रति सेवन करनेसे सब प्रकार के कुष्ठरोग जाते रहतेहैं।

अन्य प्रयोग।

विडंगभल्लातकवाकुचीनां
सद्वीपिवाराहिहरीतकीनाम्।
लांगलीकृष्णातिलोपकुल्या
गुडेन पिंडी विनिहंति कुष्ठम्॥ ४५॥

अर्थ–वायविडंग, भिलावा, वाकुची, चीता, वारुणी कंद, हरड, कलहारी, काले तिल, पीपल इनके चूर्ण को गुडमें मिलाकर गोली बनाकर सेवन करने से कुष्ठरोग जाता रहता है।

शशांकलेखा अवलेह।

शशांकलेखा सविडंगमूला
सपिप्पलीका सहुताशमूला
सायोमला सामलका सतैला
कुष्ठानि कृच्छ्राणि निहंति लीढा॥ ४६॥

अर्थ–वाकुची, वायविडंग की जड, पीपलामूल, चीते की जड, लोहे का मैल और आमला इन सब द्रव्यों को तेलके साथ चाटने से कुष्ठ रोग जाते रहते हैं।

पथ्यादि गुटिका।

पथ्यातिलगुडैः पिंडी कुष्ठं सारुष्करैर्जयेत्।
गुडारुष्करजंतुघ्नसोमराजीकृताऽथवा॥

अर्थ–हरड, तिल, और भिलावा इनके चूर्ण को गुडके साथ अथवा भिलावा, वायविडंग और बावची इनके चूर्ण को गुड के साथ गोलियां बनाकर सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट होजाता है।

विडंगादि प्रयोग।

विडंगाद्रिजतु क्षौद्रं सर्पिष्मत्खादिरं रजः।
किटिभश्वित्रदद्रुघ्नं खादेन्मिलहिताशनः

अर्थ–बायविडंग, शिलाजीत, शहत, घी खैरकी लकडी इनका अवलेह बनाकर मिताहारी और पथ्याहारी मनुष्य सेवन करे तो किटिम, श्वित्र और दद्रु नष्ट होजाते हैं।

कुष्ठ पर सितादि अवलेह।

सितातैलकृतान्यान्नानि धान्यक्षौमलपिप्पलीः।
लिहानः सर्वकुष्ठानि जयेत्यासेनगुरूण्यपि

अर्थ–खांड, तेल, बायविडंग, आमला और पीपल इन द्रव्यों का अवलेह सेवन करने से सब प्रकार के कष्टसाध्य कुष्ठरोग दूर होजाते हैं।

कुष्ठ पर चूर्ण।

मुस्तं त्र्यूषं त्रिफला मंजिष्ठादारुपंचमूले द्वे
सप्तच्छदनिंबवरूसविशाला चित्रको मूर्वा
चूर्णं तर्पणभागैर्लिप्तैः संयोजितं समधुसर्पिः
नित्यं कुष्ठविषमेतत्प्रायोगिकं खादन्
श्वयथुं सपांडुरोगं श्वित्रं ग्रहणीप्रदोषमर्शांसि
वर्ष्मभगंदरपिडकाकंडूकोठापचीर्हंति॥

अर्थ–मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, गजीठ, दारुहलदी, दशमूल, सातला, नीमकी छाल, इन्द्रायण, चीता, मूर्वा, ये सब समानभाग सत्तू नौ भाग इसको शहत में मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से कुष्ठ, सूजन, पांडुरोग श्वित्र, ग्रहणीदोष, बवासीर, वर्ष्मरोग, भगंदर, पिडिका, कंडू, कोठ (पित्ती) और अपची ये सब रोग जाते रहते हैं।

अन्य रसायन प्रयोग।

रसायनप्रयोगेण तुवरार्ष्यानि शीलयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भल्लातकं वाकुचिकां वह्निमूलं शिलाह्वयम् ॥

अर्थ–रसायन के प्रयोग की विधि के अनुसार तुवर की गुठली, भिलावा, वाकुची चीते की जड वा शिलाजीत इनमें से किसी का सेवन करे।

कुष्ठ पर लेप।

"इति दोषे विजितेऽन्तस्तु
त्वक्स्थे शमनं बहिः प्रलेपादिहितम्।
तीक्ष्णालेपोत्क्लिष्ट
कुष्ठं हि विवृद्धिमेति मलिने देहे ॥

अर्थ–उक्त रीति से जब भीतर वाले दोष विजित होजांय तब त्वचा में स्थित दोषों की शांति के लिये लेप आदि का प्रयोग करना उचित है। यहां शंका होती है कि प्रथम लेपादि द्वारा बाहर के दोषों को जीतने का उपाय क्यों नहीं किया जाता है। इसका समाधान यहहै कि तीक्ष्ण लेपोंके करने से उत्क्लिष्ट हुआ कुष्ठ दोष से युक्त देह में वृद्धि को प्राप्त होजाता है। इसलिये प्रथम भीतर का शुद्धि करके फिर बाहरकी करनी चाहिये।

कुष्टमें स्वेदन।

स्थिरकठिनमंडलानां कुष्ठानां पोटलैर्हितः स्वेदः ॥
स्विन्नोत्सन्नं कुष्ठंशस्त्रैर्लिखितंप्रलेपनैर्लिंपेत्

अर्थ–जिन कुष्ठोंके मंडल संपूर्ण स्थिर और कठिन होते हैं उनमें पोटली स्वेद हितकारी होताहै। स्वेदनसे कोढके चकत्ते ऊंचे होनेपर अस्त्रद्वारा खुरचकर उनपर लेप करना चाहिये।

कुष्टपर क्षार प्रयोग।

येषु न शस्त्रं क्रमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनेषुकुष्ठेषु
तेषु निपात्यः क्षारो रक्तं दोषं विशोध्यम्

अर्थ–जो कुष्ठ त्वचा का नाश करदेतेहैं उनमें शस्त्रकाम नहीं देताहै इसलिये उनमें क्षार लगाना, फरद खोलना और दोष निकालना उचित हैं।

कुष्ठविशेष में लेप।

लेपोऽतिकठिनेपरुषेसुप्तेकुष्ठेस्थिरेपुराणे च
पीतागदस्य कार्यो विषैः समंत्रोऽगदैश्चानु

अर्थ–पत्थरके समान कठोर, छूनेमें खरदरा, सुन्न, स्थिर और पुराने कोढ में मंत्रपूर्वक विषका लेप करके फिर औषधोंका लेप करना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

स्तब्धातिसुप्तसुमान्यस्वेदनकुंडलानि कुष्ठानि
घृष्टानि शुष्कगोमयफेनकशस्त्रैः प्रदेह्यानि ॥

अर्थ–जो कुष्ठ, स्तब्ध, अतिसुप्त (स्पर्शके ज्ञान से रहित), स्वेदरहित और खुजली से युक्त हो तो सूखे गोबर और अस्त्रों से रिगड कर फिर लेप करना चाहिये।

मुस्तादि क्वाथ।

मुस्तात्रिफलामदनं करंज आरग्वधकलिंगयवाः।
सप्ताह्वकुष्ठफलिनीदार्व्यसिद्धार्थकं क्वानम्
एष कषायो वमनं विरेचनं वर्णकरस्तथोदूघर्षैः।
त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रबोधनः पांडुरोगघ्नः ॥

अर्थ–मोथा, त्रिफला, मैनफल, कंजा, अमलतास, इन्द्रजौ, सातला, कूठ, प्रियंगु, दारुहलदी, और सरसों इन सब द्रव्यों को डालकर जलको औटावै। इस जलसे कुष्ठ रोगी को स्नान करावै। यह क्वाथ वमन कारक, विरेचनकर्ता, वर्णकारक, रोमोत्पादक है, तथा त्वचाके दोष, कुष्ठ, शोथ और पांडुरोगों को नाश करनेवाला है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य क्वाथ।

करवीरनिंबकुटजाच्छस्याकार्कत्रिकाण्ड मूलानाम्।
भूपे दर्वीलेपी कार्यो लेपेन कुष्ठघ्नः॥ ६२॥

अर्थ—कनेर की जड, नीमकी जड, कुडाकी जड, अमलतास की जड, चीतेकी जड इनको गोमूत्र में पकावे, जब यह इतना गाढा होजाय कि कलछी से लगने लगे तब इसका लेप करे। यह लेप कुष्ठनाशक होताहै।

अन्य लेप।

श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरंजात्फलं त्वचो दार्व्याः।
सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः॥

अर्थ—सफेद कनेर की जड, इन्द्रजौ, कंजा, दारुहल्दी की छाल, चमेली के पत्ते, इन सब द्रव्योंका लेप कुष्ठनाशक होताहै।

अन्य लेप।

शैरीषित्वक्पुष्पं कार्पासस्याराजवृक्षपत्राणि।
पिष्टा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः।
व्योषसर्षपनिशागृहधूमै-
र्यावशूकपटुचित्रककुष्ठैः।
कोलमात्रगुटिकार्धविषाशाः
श्वित्रकुष्ठहरणो वरलेपः॥ ६४॥

अर्थ—सिरस की छाल, कपास के फूल अमलतास के पत्ते, और मकोय इनका लेप चार प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करदेताहै। त्रिकुटा, सफेद सरसों, हलदी, गृहधूम, अवाखार, पांशुनमक, चीता और कूठ, प्रत्येक समान भाग बिष आधा भाग इनको पीसकर बेर के बराबर गोलियां बनावै। इनका लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ जाता रहताहै।

कुष्ठ में उद्वर्तन।

निंब हरिद्रे सुरसं पटोले
कुष्ठाश्वगंधे सुरदारुशिग्रुः।
ससर्षपं तुंबरुधान्यवन्यं
चंडावचूर्णानि समानि कुर्यात्॥ ६५॥
तैस्तत्कपिष्टैः प्रथमं शरीरं
तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत।
तेनास्यकंडूपिटिकाः सकोठाः
कुष्ठानि शोफाश्च शमं व्रजंति। ६६।

अर्थ—नीमकी छाल, दोनों हलदी, तुलसी, पर्वल, कूठ, असगंध, देवदारू, सहजना, सफेद सरसों, तुंबरु, धनियां, चंडा इनको समानभाग लेकर तक्र में पीसलें। प्रथम शरीर पर तेल लगाकर उक्त उबटने से मर्दन करने पर कंडू, पिटिका, पित्ती, कुष्ठ और सूजन जाते रहते हैं। उबटने के रोगी को गरम जल से स्नान करावै।

दद्रुनाशक चूर्ण।

मुस्तामृतासंघकटंकटेरी-
कासीसकंपिल्लककुष्ठरोध्राः।
गंधोपलः सर्जरसो विडंगं
मनःशिलालेकरवीरकत्वक्
तैलाक्तगात्रस्य कृतानि चूर्णा-
न्येतानि मृद्यादवचूर्णनार्थम्।
दद्रुः सकंडूः किटिभानि पामा
विचर्चिका चेति तथा न संति। ६८।

अर्थ—मोथा, गिलोय, फिटकरी, कटेरी, कसीस, कबीला, कूठ, लोध, गंधक, एला, बायविडंग, मनसिल, हरताल, और कनेर की छाल, इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण बनाले। प्रथम पीडित शरीर पर तेल लगाकर इस चूर्ण को बुरक दे। इससे खुजलीवाला दाद, किटिभ, पामा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और विचर्चिका, ये सब रोग दूर हो जाते हैं।

विचर्चिका की चिकित्सा।

स्नुगंडे सर्षपात्कल्कः कुक्कुलानलपाचितः।
लेपाद्विचर्चिकां हंति रागवेग इव त्रपाम्॥
मनःशिलालेमरिचानि तैल-
मार्के पयः कुष्ठहरः प्रदेहः।
तथा करंजप्रपुनाटबीजं
कुष्ठान्वितं गोसलिलेन पिष्टम्॥ ७०॥

अर्थ–स्नुही की डाली में सरसों का कल्क भरकर गौ, गधे वा घोडे के ऊपलों की आग में भस्म करले। इसका लेप करने से विचर्चिका का रोग ऐसे नष्ट होजाता है जैसे रागके वेग से लज्जा नष्ट होजाती है। मनसिल, हरताल, मिरच, तेल और आक का दूध इनका लेप करने से कुष्ठरोग जाता रहता है। इसी तरह कंजा, पमाड के बीज, और कूठ इनको गौ मूत्र में पीस कर लेप करने से कुष्ठरोग जाता रहता है।

अन्य प्रयोग।

गुग्गुलुमरिचविडंगैः
सर्षपकासीससर्जरसमुस्तैः।
श्रीवेष्टकालगंधैर्मनःशिलाकुष्ठकर्पिल्लैः॥ ७१॥
उभयहरिद्रासहितैश्चाक्रिकतैलेन
मिश्रितैरेभिः।
दिनकरकरतापितैः कुष्ठं घृष्टं च नष्टं च॥

अर्थ–गूगल, कालीमिरच, बायविडंग, सरसों, कसीस, राल, मोथा, सरलकाष्ठ, हरताल, गंधक, मनसिल, कूठ, कबीला, दोनों हलदी इन सबको पीसकर पमाण के बीजों के तेल में मिलाकर लेप करने से रिगड खाया हुआ कुष्ठ दूर होजाता है। लेप करके उस अंग को धूप में सेकलेना चाहिये। चाक्रिक तेल घानी से तत्काल निकले हुए गरम तेल को भी कहते हैं इसे लोक में घानी का तेल कहते हैं।

सिध्म पर लेप।

मरिचं तमालपत्रं कुष्ठं समनःशिलं
सकासीसम्।
तैलेन युक्तमुषितं सप्ताहं भाजने ताम्रे॥ ७२॥
तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहादुघर्मसेविनोपैति।
मासान्नवं किलासं स्नानेन विना विशुद्धस्य॥

अर्थ–कालीमिरच, तमालूका पत्ता, कूठ, मनसिल, हीराकसीस, इनको पीसकर तेल में सानकर सातदिन तक तांबे के पात्र में रखदे फिर इसको सिध्म पर लगाकर धूप में सेकले। सात दिन तक ऐसा करने से सिध्म-रोग जाता रहता है। एक महिने लगाने से नया श्वित्ररोग नष्ट हो जाता है। औषध लगाने के काल में स्नान किये विनाही पोंछ ने से ही शरीर को साफ कर लेना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते।
सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यंगात्सिध्मनाशनम्

अर्थ–ओंगा के खार को सातबार पानी में छानले फिर इस क्षारजल को मालकांगनी के तेल में पकाकर लगाने से सिध्म नष्ट होजाता है।

अन्य प्रयोग।

घायसजंघामूलं घमनीपत्राणि मूलकाद्बीजम्
तक्रेण भौमवारे लेपः सिध्मापहः सिद्धः॥

अर्थ–काकजंघा की जड, कडवी तोरई के पत्ते, मूली के बीज, इन सब द्रव्यों को पीसकर तक्र में सानकर मंगलवार को लेप करने से सिध्मरोग दूर हो जाता है।

अन्य प्रयोग।

जीवंतीमंजिष्ठादार्वी कपिल्लके पयस्तुत्थम्।
एषघृतनैलपाकः सिद्धः सिद्धे च सर्जरसः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देयः समधूच्छिष्टो विपादिका तेन-
नश्यति ह्यक्ता।
चर्मैककुष्ठकिटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलसकं च॥

अर्थ-जीवंती, मजीठ, दारुहल्दी, कबीला, आक का दूध, तूतिया इन सबको तेल और घी में पकाकर राल और मोम मिलादेवै। इस औषध के लेप से विवाई, चर्मकुष्ठ, एककुष्ठ, किटिभ और अलसक यह रोग दूर होजाते हैं।

वज्रक तैल।

मूलं सप्ताह्वात्वक् शिरीषाश्वमारा-
र्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोतनिंबात्।
घृतं कांजे सार्षपं प्रापुनाटं
श्रेष्ठा जंतुघ्नं न्यूषणं द्वे हरिद्रे॥ ७९॥
तिलतैलं साधितं तैः समूत्रै-
स्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम्।
अभ्यंगेन श्लेष्मवातोद्भवानां
नाशायालं वज्रकं वज्रतुल्यम्॥ ८०॥

अर्थ-सातला की जड, सिरस की छाल, कनेर, आक, मालती, चीता, अपराजिता, नीम, कंजाके बीज, सरसों, पमाड के बीज, त्रिफला, बायबिडंग, त्रिकुटा, दोनों हलदी, ये सब द्रव्य डालकर गोमूत्र के संग सिद्ध किया हुआ तिलका तेल लगाने से त्वचा के दोष, दूषित नाडीव्रण तथा कफवातजन्य रोग शांत होजाते हैं। यह वज्रक नामक तेल वज्र के समान है।

महावज्रक तैल

एरंडतार्क्ष्यधननीपकदंबभार्गी-
कपिल्लेवल्लकलिनीसुरवारुणीभिः।
निर्गुंड्यरुष्करसुराह्वसुवर्णदुग्धा
श्रीवेष्टगुग्गुलुशिलापटुतालविश्वैः॥
तुल्यस्तुगार्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम्
अतिशयितवज्रकगुणं श्वित्रार्शोग्रंथिमालाघ्नं

अर्थ-अरंड की जड, रसौत, मोथा, नीप (कदंबका भेद), कदंब, भाडंगी, कबीला, बायबिडंग, प्रियंगु, इन्द्रायण, संभालू, भिलावा, देवदारू, स्वर्णक्षीरी, सरलकाष्ठ, गूगल, मनसिल, नमक, हरताल, सोंठ, ये सब समान भागले और तुल्यभाग स्नुही और आक का दूध मिलाकर तिलके तेलको पकावै। यह महावज्रक तैल अतिशय करके वज्रके गुण के समान है, यह श्वित्र, अर्श, और ग्रंथिमाला रोगों को दूर करता है।

अन्य तैल।

कुष्ठाश्वमारभृंगार्कमूत्रस्नुक्क्षीरसैंधवैः।
तैलं सिद्धं विपादापमभ्यंगात्कुष्ठजित्परम्॥

अर्थ-कूठ, कनेर, भांगरा, आक, गोमूत्र, स्नुही का दूध, सेंधानमक, तथा मीठे तेलिया का प्रतीवाप देकर तेल को पकावै। इस तेल के लगाने से कुष्ठ नष्ट होजाता है।

वल्लूवादि की औषध।

सिद्धं सिक्थकसिंदूरपूतिगंधकतार्क्ष्यजैः।
कच्छूंविचर्चिकांवाऽऽशु कटुतैलंनियच्छति

अर्थ- मोम, सिंदूर, गूगल, तूतिया और रसौत इनके साथ सरसों का तेल पकावै, इस तेल को लगाने से कच्छू और विचर्चिका शीघ्र दूर होजाते हैं।

लाक्षादि लेप।

लाक्षात्र्योषं प्रापुनाटं च बीजं
सप्तच्छिद्रं कुष्ठसिद्धार्थकाभ्यां।
तक्रोन्मिश्रः स्याद्धरिद्रा च लेपो
दद्रूक्ष्वेडं मूलकोत्थं च बीजम्॥

अर्थ-लाख, त्रिकुटा, पंवाडके बीज, सरलकाष्ठ, कुडा, सफेद सरसों और हलदी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इन सब द्रव्यों को अथवा मूली के बीजों को तक्र में पीसकर लगाने से दद्रु जाते रहते हैं।

चित्रकादि लेप।

चित्रकसोमांजनकौ गुडूच्यपामार्गदेवदारुणि।
खदिरो धवश्च लेपः श्यामा दंती द्रवंती च।
लाक्षा रसांजनेलापुनर्नवा चेति कुष्ठिनां लेपाः
दधिमंडयुताः पादैः षट् प्रोक्ता मारुतकफघ्नाः

अर्थ-(१) चीते की जड और सहजने की छाल, (२) गिलोय, अोंगा और देवदारु (३) खैर और धौ की छाल, (४) मालविका निसोथ, और द्रवंती, (५) लाख, रसौत और इलायची (६) सांठ। इन छः योगों को दही के तोड में मिलाकर लगाने से कफवात जन्य त्वचा के रोग नष्ट हो जाते हैं।

पित्त कफ कुष्ठ पर लेप।

जलवान्यलोहकेसरपद्मोदुंबरचंदनमृणालानि।
भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे।

अर्थ-नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, केसर, तेजपात, केवटीमोथा, चंदन और कमलनाल इनको उत्तरोत्तर एक भाग अधिक लेकर लेप करने से पित्तकफ जन्य कुष्ठ जाता रहता है।

कुष्ठ पर घृत विशेष।

तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगो दह्यमानकुष्ठेषु।
तैलैश्चंदनमधुकप्रपौंडरीकोत्पलयुतैश्च।
क्लेदे प्रपतति चांगे दाहे विस्फोटके च चर्मदले।
शीतांप्रदेहसेकाव्यधनविरेकौ घृतं तिक्तम्।

अर्थ-दाहयुक्त फोड में तिक्तक घृत और सौबार धुला हुआ घी मर्दन करै। क्लेद का स्राव होता हो तो चंदन, मुलहटी, पुंडरीक और उत्पल इनसे सिद्ध किया हुआ तेल लगावै। शरीर में दाह, विस्फोटक और चर्मदल कुष्ठ में शीतल प्रदेह और परिषेक, शिराव्यध, विरेचन और तिक्तक घृत प्रशस्त हैं।

अन्य प्रयोग।

खदिरवृषनिंबकुटजाः
श्रेष्ठाः कृमिजित्पटोलमधुपर्ण्यः।
अंतर्बहिः प्रयुक्ताः
कृमिकुष्ठनुदः खगोमूत्राः।

अर्थ-खैर, अडूसा, नीम, कुडा, त्रिफला, बायबिडंग, पर्वल और मुलहटी इनको गोमूत्र में पीसकर भीतर और बाहर प्रयोग किया जाय तो कृमिरोग और कुष्ठ जाता रहता है।

अन्य प्रयोग।

"वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यं।

अर्थ-वाताधिक्य कुष्ठ में प्रथम घृतपान कफाधिक्य में वमन, और पित्ताधिक्य में रक्तमोक्षण और विरेचन प्रधान हैं।

लेपोंकी सिद्धिका कारण।

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यंते निर्हृतासृग्दोषाणाम्।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम्

अर्थ-कुष्ठ रोगीके दूषित रक्त को निकालने के पीछे तथा आशयों के शुद्ध होने पर जो लेप उपयोग में लाये जाते हैं, वे तत्काल शुभफल देने वाले होजाते हैं।

कुष्ठ को साध्यता।

दोषे हृतेऽपनीते रक्ते बाह्यांतरे कृते शमने।
लेहे च कालयुक्ते न कुष्ठमतिवर्तते साध्यम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—वातादि दोषोंके निकलने पर तथा रक्तस्राव के पीछे तथा बाह्य और आभ्यंतरिक शमन क्रियाओं के करने पर और उचित काल में स्नेहन प्रयोग करने से साध्य कुष्ठ शांत होजाता है ।

बहुदोष कुष्ठको संशोधनत्व ।

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।
दोषे ह्यतिमात्रहृते वायुर्हन्याद्बलमाशु ॥

अर्थ-बहुत दोषों से युक्त कुष्ठरोगी का बार बार संशोधन करना चाहिये । परन्तु अधिक संशोधन से रोगी की प्राणहानि न होने पावै । क्योंकि दोषोंके अत्यन्त निकलने पर वायु रोगीको शीघ्र मारडालती है ।

कुष्ठरोगी का वमनादि काल ।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यम्युपेया-
न्मासान्मासाच्छोधनान्यप्यधस्तात् ।
शुद्धिर्मूर्ध्नि स्यात्त्रिरात्रात्त्रिरात्रात्
षष्ठे षष्ठे मास्यसृग्मोक्षणानि ॥ ९६ ॥

अर्थ—कुष्ठरोगी को प्रतिपक्ष में वमन, प्रतिमास में विरेचन, तीन तीन दिन के अंतर से शिरोविरेचन और छः छः महिने पीछे रक्तमोक्षण करना चाहिये ।

कुष्ठरोगी का दोषहरण ।

यो दुर्वान्तो दुर्विरिक्तोऽथवा स्यात
कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्यतेऽसौ ।
निःसंदेहं यात्यसाध्यत्वमेवं
तस्मात्कृत्स्नान्निर्हरेदस्य दोषान्

अर्थ—जिस कुष्ठरोगी को सम्यक् वमन वा विरेचन न हुआ हो, उसका कुष्ठ निःसंदेह असाध्य होजाता है । इसलिये सम्यक् वमन विरेचन देकर दोषको बिलकुल निःशेष करदेना चाहिये ।

कुष्ठ में व्रतादि ।

व्रतदमयमसेवात्यागशीलाभियोगो
द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री ।
शिवशिवसुततारासूर्यकाराधनानि
प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयंति ॥

अर्थ—कुष्ठरोग में व्रत (नियमपूर्वक रहना), दम (इन्द्रियों का निग्रह), यम (अहिंसा), त्यागशीलिता, ब्राह्मण, देवता और गुरूओं की पूजा, संपूर्ण जीवों में मैत्रीभाव, शिव, गणेश, तारा और सूर्यकी आराधना, इन सब कर्मोंके करने से दोष और पापोंसे उत्पन्नहुए कुष्ठ जडसे जाते रहते हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने कुष्ठचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतःश्वित्रकृमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहांसे श्वित्रकृमिचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

श्वित्रको भयानकत्व ।

कुष्ठादपि धीमत्सं यच्छीघ्रतरं च
यात्यसाध्यत्वम् ।
श्वित्रमतस्तच्छान्त्यै यतेत दीप्ते यथा भवने

अर्थ—श्वित्ररोग कुष्ठसे भी निंदित होता है और शीघ्रही भयानक होजाताहै, इसलिये जैसे जलते हुए घरकी रक्षा का शीघ्र यत्न किया जाताहै, वैसेही श्वित्र की शांतिका यत्नभी शीघ्रतापूर्वक करना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वित्रमें शोधनादि ।

संशोधनं विशेषात्प्रथमेऽत्र देहस्य ।
श्वित्रे क्षंसनमन्यं मलयूरस इष्यते सगुडः
तं पीत्वाऽभ्यक्ततनुर्यथाबलं सूर्यपादसंतापम्
सेवेत विरिक्ततनुस्त्र्यहं पिपासुः पिबेत्पेयाम्

अर्थ-श्वित्ररोग में प्रथमही देहके संशोधन के निमित्त यत्नकरै । श्वित्रमें बाकुची के क्वाथ के साथ थूहर का दूध मिलाकर विरेचन देना अच्छा है । इस काथको पीकर देहमें तेल लगाकर रोगी शक्तिके अनुसार धूपमें बैठारहे । विरेचन के कारण तृषा उत्पन्न होनेपर तीन दिन तक पेयापान करै।

फोडोंका कांटोंसे भेदन ।

श्वित्रेऽगे ये स्फोटा जायंते कंटकेन तान् भिद्यात् ।
स्फोटेषु निस्रुतेषु प्रातः प्रातःपिबेत् त्रिदिनम्
मलयमसनं प्रियंगूं शतपुष्पां चांभसा समुत्काथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथाबलं फाणितोपेतम्"

अर्थ-श्वित्र के ऊपर जो फोडे उत्पन्न होजांय, उनको कांटों से छेद देना चाहिये, फोडों से स्राव होजाने पर तीन दिन तक प्रातःकाल चंदन, असन, मालकांगनी, और सौंफ इनके काथमें शहत मिलाकर अथवा पलासके क्षारमें फाणित मिलाकर पीना चाहिये ।

उक्तरोग पर कल्क ।

फल्गवक्षवृक्षवल्कलनिर्यूहेणेंदुराजिकाकल्कं
पीत्वोष्णास्थितस्य जाते स्फोटे तकेण भोजनं निर्लवणम् ॥ ६ ॥

अर्थ-काकादुम्बर और बहेडे के वृक्ष की छालका काथ करके उसमें बाकुची का कल्क मिलाकर पीवै । पीकर धूपमें बैठनेसे फोडों के निकलने पर बिना नमक डाले तक्रके साथ भोजन करना चाहिये ।

उक्तरोग में गोमूत्रपान ।

गव्यं मूत्रं चित्रकत्र्यूषयुक्तं
सर्पिःकुंभे स्थापितं क्षौद्रमिश्रम् ।
पक्षादूर्ध्वं श्वित्रिभिः पेयमेतत्
कार्यं चास्मै कुष्ठहृद्यं विधानम् ॥ ७ ॥

अर्थ-गौ का मूत्र, चीता, त्रिकुटा का चूर्ण मधु मिलाकर पन्द्रह दिनतक घी से चिकनी हांडीमें भरकर रक्खा रहनेदे, पन्द्रह दिन पीछे श्वित्ररोगी को पान करावे तथा कुष्ठाचिकित्सितोक्त अन्य उपचारों का प्रयोग भी करे ।

अन्य प्रयोग ।

मार्कवमथवा क्षादेर्भृष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम्
बीजकशृतं च दुग्धं तदनुपिबेच्छ्वित्रनाशाय

अर्थ-लोहेकी कढाई में भांगरे को तेल से भूनकर सेवन करै, बिजौरे के रसके साथ पकाया हुआ दूध पीवे । इससे श्वित्र नष्ट होजाताहै ।

उक्त रोग पर लेप ।

पूतीकार्कव्याघिघातस्नुहीनां
मूत्रे पिष्टाः पल्लवा जातिजाश्च ।
घ्नंत्यालेपात्श्वित्रमेवंविधानां
पामाकोष्ठान्दुष्टनाडीव्रणांश्च ॥ ९ ॥

अर्थ-पूतीकरंज, आक, अमलतास, थूहर और चमेली के पत्ते इनको गोमूत्र में पीसकर लगाने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाताहै।

अन्य प्रयोग ।

व्याघ्रे दग्धे चर्म मातंगजे वा
श्वित्रे लेपस्तैलयुक्तो वरिष्ठः ।

अर्थ-व्याघ्र अथवा हाथी के चमडे को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भस्म करके तेल में मिलाकर लेप करने से श्वित्र रोग जाता रहता है। यह उपाय बहुत अच्छा है।

अन्य प्रयोग।

पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन
क्षारेणाक्तः श्वित्रमेकोऽपि हन्ति

अर्थ—पूती नामक कीड़े को अमलतास के क्षार में मिलाकर लेप करने से श्वित्ररोग प्रशमित होजाता है। पूति एक प्रकार का कीड़ा वर्षाऋतु में होता है, इसे पिलिंदाभी कहते हैं।

भिलावे का प्रयोग।

रात्रौ गोमूत्रे चासितान् जर्जरांगा-
नह्नि च्छायायां शोषयेत्स्फोटहेतून्।
एवं वारांस्तीस्तैस्ततः श्लक्ष्णपिष्टैः
लिह्या क्षीरेण श्वित्रनाशाय लेपः

अर्थ—फोड़ों को उत्पन्न करनेवाले भिलावों को कूटकर रात में गोमूत्र में भिगो देवै। और दिन में इनको छाया में सुखाले इस तरह गोमूत्र में भिगोना और छाया में सुखाना तीनदिन तक करै। फिर इनको थूहर के दूधके साथ अच्छी तरह पीसकर महीन करले और श्वित्र पर लगाता रहे, इससे श्वित्र नष्ट होजाता है।

अन्य लेप।

अक्षतैलकृतो लेपः कृष्णसर्पोद्भवा मषी।
शिखिपित्तं तथा वृश्चंहीबेरं वा तदाप्लुतम्

अर्थ—काले सर्प के कोयले बहेड़े के तेल में मिलाकर लेप करने से अथवा मोर के पित्त का लेप करने से अथवा नेत्रवाला को जलाकर बहेड़े के तेल में मिलाकर लेप करने से श्वित्र नष्ट होजाता है।

सवर्ण करने के लेप।

कुष्ठवोबल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणं परं श्वित्रे।

अर्थ—बाकुची के बीज चार पल, हरिताल एक पल इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से देह का रंग एकसा होजाता है।

अन्य लेप।

क्षारे सुदग्धे गजलिंडजे च
गजस्य मूत्रेण परिप्लुते च।
द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बोजमबल्गुजानाम्
श्वित्रं जयेच्चिक्कणतांगतेन
तेन प्रलिप्तम्बहुशः प्रवृष्टम्।
कुष्ठं मषी वा तिलकालकं वा
यद्वा व्रणे स्यादधिमांसजातम्॥ १५॥

अर्थ—हाथी की लीदको अच्छी तरह जलाकर इस क्षार को एक द्रोण लेकर यथा योग्य हाथी के मूत्र में घोलकर क्षारकी रीति से इक्कीस बार छानले। इस छने हुए क्षार जल में क्षारका दशमांश बाकुची का चूर्ण मिलाकर पकावै। जब इस क्षार में चिकनाई आजाय तब उतार कर रखले। फिर श्वित्र को खुरचकर अर्थात् किसी वस्त्रादि से रिगड कर इस क्षार का बार बार लेप करे इससे श्वित्र नष्ट होजाता है। इस क्षार से कुष्ठ, गस्से, तिलकालक और व्रण का अधिमांस नष्ट होजाता है।

भल्लातकादि लेप।

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं
गुंजाफलव्यूषणशंखचूर्णम्।
तुल्यं सकुष्ठं लवणानि पंच
क्षारद्वयं लांगलिकां च पक्त्वा॥ १६॥
स्नुगर्कदुग्धे घनमायसस्थं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शलाकया तद्विदधीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालकेषु
मांसेषु दुर्नामसु चर्मकीले ॥ १७ ॥
शुद्धा शोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्च-
सक्तूनाम्।
श्वित्रं कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीणपापस्य ॥

अर्थ—भिलावा, चीतेकी जड, सेंहुडकी जड, आककी जड, चिरमिठी, त्रिकुटा, शंखका चूर्ण, तूतिया, कूठ, पांचोंनमक, दोनों खार, और कल्हारी, इन सब द्रव्यों को थूहर और आक के दूधमें लोहे के पात्र में पकावै। जब गाढा होजाय तब उतार कर धरले। इस लेपको सलाई से लगावै। इससे कुष्ठ, किलास, तिलकालक, अर्श, और चर्मकील नष्ट होजाते हैं। पापोंके क्षीण हो जानेपर किसी २ मनुष्य का श्वित्ररोग वमनविरेचनादि शुद्धि, रक्तमोक्षण, विरूक्षण और सक्तुभक्षण से भी शांत होजाताहै।

इति श्वित्रचिकित्सा।

कृमिचिकित्सा।

"स्निग्धस्विन्ने गुडक्षीरमत्स्याद्यैः कृमिणोदरे
उत्क्लेशितकृमिकं शर्वरीं तां सुखोषिते ॥
सुरसादिगणं मूत्रे काथयित्वार्धवारिणि।
तं कषायं कणागोमूत्रिकाकल्कयोजितम् ॥
सतैलस्वर्जिकाक्षारं युञ्ज्याद्वस्तिं ततोऽनिलि।
तस्मिन्नेव निरूढं तं पाययेत विरेचनम् ॥
त्रिवृत्कल्कं फलकणाकषायालोडितं ततः।
ऊर्ध्वाधः शोधितं कुर्यात्पञ्चकोलयुतं क्रमम् ॥
कटुतिक्तकषायाणां कषायैः परिषेचनम्।
काले विडंगतैलेन ततस्तमनुवासयेत् ॥

अर्थ—जो पेटमें कीडे पडगये हों तो स्नेहन और स्वेदन द्वारा रोगी के उदर को स्निग्ध और स्विन्न करके गुड, दूध तथा मछली आदिका भोजन कराके पेटके कीडे और कफको स्थानसे च्युत करके रात्रिके समय रोगी को खाने के लिये कुछ भी न देवै। दूसरे दिन सुरसादि गणोक्त द्रव्यों को आधा पानी और आधा गोमूत्र मिलाकर क्वाथ करले। इस क्वाथ में पीपल और बायविडंग का कल्क मिलाकर तथा तेल और सज्जीखार मिलाकर वस्ति देवै। फिर उसी दिन निरूहण के पीछे विरेचन करनेवाला निसोथ का कल्क और वमन करानेवाला मैनफल पीपल के क्वाथमें मिलाकर देवै। इसतरह वमन विरेचन द्वारा रोगीके शुद्ध होनेपर पंचकोल समेत पेया और विलेपादि का पथ्य देवै। तदनंतर कटु, तिक्त और कषाय द्रव्यों के क्वाथसे परिषेक करै। तदनन्तर अग्निके प्रदीप्त होनेपर बायविडंग के तेल से अनुवासन का प्रयोग करै।

मूर्धागतकृमिकी चिकित्सा।

शिरोरोगनिषेधोक्तमाचरेन्मूर्धगेष्वनु।
उद्रिक्ततिक्तकटुकमल्पस्नेहं च भोजनम् ॥

अर्थ—जो मस्तक में कीडे पडगये हों तो शिरोरोग प्रतिषेधनीय अध्यायमें जो चिकित्सा कही गई है वही काममें लावै। तत्पश्चात् अति कटु और तिक्त रसान्वित थोडा घी डालकर भोजन करावै।

कृमिरोगमें पेयापान।

विडंगकृष्णामरिचपिप्पलीमूलशिग्रुभिः।
पिबेत्सस्वर्जिकाक्षारं यवागूं तक्रसाधिताम्

अर्थ—बायविडंग, पीपल, कालीमिरच,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पीपलामूल, सहजना, इन सब मसालों को डालकर तक्रके साथ पेया तयार करके उसमें सज्जीखार मिलाकर रोगी को पान करावै ।

कृमिरोग में शिरीषादि रस ।

रसं शिरीषार्कणिहिपारिभद्रकर्कंधुकात् ।
पलाशबीजपत्तरपूतिकाद्वा पृथक् पिबेत ॥
सक्षौद्रं सुरसादीन्वा लिह्यात्क्षौद्रयुतान् पृथक् ।

अर्थ--सिरस, किणही, [गिरिकर्णी] नीम, केमुआ, ढाक के बीज, लालचंदन, और कंजा इनमें से किसीके रसमें शहत मिलाकर अथवा सुरसादि गणोक्त द्रव्यों के रसमें शहत मिलाकर सेवन करै ।

अन्य अवलेह ।

शतकृत्वोश्वविड्चूर्णं विडंगक्वाथभावितम् ॥
कृमिमान्मधुना लिह्याद्भावितं वा वरारसैः ।

अर्थ--घोडेकी लीदको वायविडंग के काढे में वा त्रिफला के रसमें बहुत बार भावना देकर शहत मिलाकर चटनेसे कृमिरोग जाता रहता है ।

नस्यार्थ चूर्ण ।

शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णं प्रध्मनं च तत् ॥

अर्थ-शिरोगत कृमिरोग में शिरोरोग प्रतिषेध में कहे हुए चूर्ण नल द्वारा नासिका में फूंकने चाहियें ।

अन्य प्रयोग ।

आखुकर्णीकिसलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।
पक्त्वा पूपलिकां खादेद्धान्याम्ले च पिबेदनु ।
रूपं बकोललवणमसांद्रं तक्रमेव वा ।

अर्थ--मूषककर्णी के पत्तों को महीन पीसकर शालीचांवलों के चूनमें मिलाकर पिट्ठी बना लेवै इस पिट्ठी की पूरी बनाकर खाय, ऊपर से कांजी पीवै । अथवा पतले तक्रमें पंचकोल और नमक मिलाकर अनुपान करे ।

अन्य प्रयोग ।

नीपार्कवानिर्गुंडीपल्लवेष्वप्ययं विधिः ॥
विडंगचूर्णमिश्रैर्वा पिष्टैर्भक्ष्यान् प्रकल्पयेत् ।

अर्थ-कदंब, भांगरा, संभालू के पत्ते, पूर्ववत् शालीचांवलों के चूनमें मिलाकर पूरी बनावै, अथवा वायविडंग के चूर्ण में शाली चांवलों का चून मिलाकर पूरी बना कर सेवन करै ।

तैल का प्रयोग ।

विडंगतंडुलैर्युक्तमर्धांशैरातपस्थितम् ॥
दिनमारुष्करं तैलं पाने बस्तौ च योजयेत् ।
सुराह्वसरलजेऽहं पृथगेवं प्रकल्पयेत् । ३२ ।

अर्थ--मिलावे के तेलमें आधेभाग वायविडंग के बीजों का चूर्ण मिलाकर एक दिन धूपमें रक्खे, फिर इस तेलको पीने वा वस्तिकर्म में प्रयोग करै । इसी तरह से देवदारु और सरलकाष्ठ के तेलमें भी विडंग के बीजों का चूर्ण मिलाकर पान वा वस्ति कर्म में योजित करै ।

पुरीषज कृमिमें चिकित्सा ।

पुरीषजेषु सुतरां दद्याद्बस्तिविरेचने ।

अर्थ--विष्टा में उत्पन्न होने वाले कीडों में वस्तिकर्म और विशेषरूप से विरेचन देना चाहिये ।

कफजकृमिरोग में कर्तव्य ।

शिरोविरेकं वमनं शमनं कफजन्मसु॥३३॥

अर्थ--कफजन्य कृमिरोग में नस्य, वमन और शमनक्रिया करना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तजकृमि की चिकित्सा ।

रक्तजानां प्रतीकारंकुर्यात्कुष्ठचिकित्सितात्।
इंद्रलुप्तविधिश्चात्र विधेयोरोमभोजिषु ॥

अर्थ–रक्तजकृमिरोग में वह चिकित्सा करनी चाहिये, जो कुष्ठरोग में कही हुई है तथा रोमभोज कृमियों की चिकित्सा इन्द्रलुप्त में कही हुई चिकित्सा के अनुसार औषध का प्रयोग करना चाहिये ।

कृमिरोग में क्षीरादि निषेध ।

क्षीराणि मांसानि घृतं गुडं च
दध्यानि शाकानि च पर्णवंति।
समासतोम्लान्मधुरान् रसाश्च
कृमीन् जिहासुः परिवर्जयेच्च ॥

अर्थ–जो रोगी कृमिरोग से छुटकारा पानेकी इच्छा करता है, उसे उचित है कि दूध, मांस, घी, गुड, दही, पत्ते के शाक, तथा खट्टे मीठे रसों को त्यागदेवे ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने श्वित्रकृमिचिकित्सितं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–अब हम यहां से वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वातव्याधि में स्नेहोपचार ।

केवलं निरुपस्तंभमादौ स्नेहैरुपाचरेत्
वायुं सर्पिर्वसामज्जतैलपानैर्नरं ततः ॥ १ ॥

स्नेहाक्तं समाश्वास्य पयोभिः स्नेह्येत्पुनः
यूषैर्ग्राम्योदकानूपरसैर्वा स्नेहसंयुतैः ॥ २ ॥
पायसैः कृसरैः साम्ललवणैः सानुवासनैः।
बातघ्नैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धैः स्नेहयेत्ततः॥
स्वभ्यक्तं स्नेहसंयुक्तैः शंकराद्यैः पुनः पुनः।

अर्थ–उपस्तंभ से रहित अर्थात् जिसमें कफपित्तादि के कारण किसी प्रकार की अवरुद्धता न हो ऐसी केवल वायुको स्नेहों द्वारा उपचारित करे । अर्थात् घी, वसा, मज्जा और तेल इनका पान कराके रोगीको स्नेहित करे । पश्चात् स्नेहाक्रान्त वातव्याधि पीडित रोगी को दूध के प्रयोग से समाश्वासित करके फिर स्नेहन करे । इस काम के लिये स्नेहयुक्त मुद्गादियूष, ग्राम्य, औदक और आनूप पशुपक्षियों का मांसरस, पायस, कृसरा (खिचडी), खटाई और नमक से युक्त वातनाशक अनुवासन, तर्पण और सुस्निग्ध अन्नका बार बार प्रयोग करके तथा रोगी को अच्छी तरह से अभ्यक्त करके स्नेहसंयुक्त शंकरस्वेद द्वारा बार बार स्वेदित करे ।

स्वेदन के गुण ।

स्नेहाक्तं स्विन्नमंग तु वक्रं स्तब्धं सवेदनम्
यथेष्टमानामयितुं सुखमेव हि शक्यते ।

अर्थ–वक्र, स्तब्ध और वेदनायुक्त अंग को स्नेह से चुपडकर स्वेदद्वारा स्विन्न करके तत्पश्चात् जैसी इच्छा हो वैसेही सुखपूर्वक अंगको नवाया जा सकता है ।

उक्तविषय पर दृष्टान्त ।

शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः॥
शक्यं कर्मण्यतां नेतुं किमु गात्राणि जीवताम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—जब सूखे हुए निर्जीवकाष्ठ भी स्नेह स्वेदन से जैसी इच्छा हो वैसेही उपयोग में लाये जा सकते हैं, तब सजीव देहवालों का तो कहना ही क्या है।

हर्षादि का शमन।

हर्षतोदरुगायामशोफस्तंभग्रहादयः ॥ ६ ॥
स्विन्नस्यांशु प्रशाम्यंति मार्दवं चोपजायते

अर्थ—स्वेदन करने से रोमांच, सोद, वेदना, आयाम, सूजन, स्तब्धता और देह की जकडन जाती रहती है और शरीर नरम पडजाता है।

स्नेहप्रयोग का फल।

स्नेहश्च धातून् संशुष्कान् पुष्णात्याशु-
प्रयोजितः ॥ ७ ॥
बलमग्निबलं पुष्टिं प्राणं चाऽस्याभिवर्धयेत्।

अर्थ—स्वेदन के पीछे स्नेहका प्रयोग करने से वातरोगी की सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्ट हो जाती हैं और उसके बल, अग्निबल, पुष्टि और आयुकी वृद्धि होती है।

अन्य प्रयोग।

असकृत्तं पुनः स्नेहैः स्वेदैश्च प्रतिपादयेत् ॥
तथा स्नेहमृदौ कोष्ठे न तिष्ठत्यनिलामयाः।

अर्थ—वातरोगी को बार बार स्नेहन और स्वेदन द्वारा स्निग्ध और स्विन्न करता रहै, क्योंकि ऐसा करने से कोष्ठ कोमल हो जाता है और वातरोग नष्ट होजाते हैं।

औषध का प्रयोग।

यद्येतेन सदोषत्वात्कर्मणा न प्रशाम्यति ॥
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्भषजैस्तं विशोधयेत्।

अर्थ—यदि उक्त कर्म से दोष की अधिकता के कारण वातरोग प्रशमित न हो तो स्नेहयुक्त कोमल औषध अर्थात् अमलतासादि द्वारा विरेचन देवै।

वातरोग पर घृत।

घृतं तिल्वकसिद्धं वा सातलासिद्धमेव वा ॥
पयसैरंडतैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम्।

अर्थ—वातरोग में लोध के साथ अथवा सातला के साथ पकाया हुआ घी देना चाहिये अथवा दूध के साथ अरंड का तेल देने से भी वातव्याधि शांत होजाती है।

वायुके अनुलोमन में हेतु।

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हि मलश्चितः
स्रोतो रुध्वाऽनिलं रुध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत्

अर्थ—चिकने, खट्टे, नमकीन और उष्णवीर्यादि आहार के करने से दोष वृद्धि को पाकर स्रोतों को रोकते हुए वायुको रोक देते हैं, इसलिये वायुका अनुलोमन करना चाहिये।

विरेचनके योग्यको निरूहण।

दुर्बलो यो विरेच्यः स्यात्तं निरूहैरुपाचरेत्।
दीपनैः पाचनीयैर्वा भोज्यैर्वा तद्युतैर्नरम्।
संशुद्धस्येतिथते चाऽग्नौ स्नेहस्वेदौ पुनर्हितौ

अर्थ—जो वातरोग दुर्बल और विरेचन के योग्य हो, उसे दीपन और पाचन औषधों से युक्त निरूहण देवे। अथवा दीपन और पाचन द्रव्यों से युक्त भोजन करावै। निरूहादि के प्रयोग से शुद्ध हुए रोगी की अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर फिर स्नेहन और स्वेदन देना चाहिये।

आमाशयगत वायु में कर्तव्य।

आमाशयगते वायौ वमितप्रतिभोजिते।
खुखांबुना षट्पचरणं पचादिं वा प्रयोजयेत् ॥
संशुद्धक्षितेऽग्नौ परतो विधिःकेवलवातिक.।
मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थे
सिद्धान्बिल्वशलाटुभिः ॥ १५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जब वायु दूषित होकर आमाशय में चली जाय तब रोगी को वमित और प्रतिभोजित करके उसे षट् चरण वा वचादि चूर्ण गरम पानी के साथ देवै। इससे अग्नि के संधुक्षित होने पर केवल वातनाशक क्रिया करनी चाहिये। यदि वायु नाभिप्रदेश में स्थित हो तो बेलगिरी के साथ पकाई हुई मछली देवै। षट्चरण का योग संग्रह में यह लिखा है कि 'दार्वी कलिंगकटुकातिविषाग्निपाठामूत्रेण सूक्ष्मरजसा धरणप्रमाणाः पीता जयंति गुदजोदर कुष्ठमेहकोष्ठानिलाढ्यपवनग्रहणीप्रदोषानिति। अर्थात् दारुहल्दी, इन्द्रजौ, कुटकी, अतीस, चीता और पाठा इन छः द्रव्यों को गोमूत्र के साथ एक धरण अर्थात् पांचमाशे के लगभग पीने से अर्श, उदररोग, कुष्ठ, प्रमेह, कोष्ठानिल, वातग्रहणी दोष नष्ट होजाते हैं।

अधोनाभिस्थ वायु में अवपीडक।

बस्तिकर्म त्वधोनाभिः शस्यते-
ऽवपीडकः।

अर्थ–वायु के नाभि से नीचे स्थित होने पर बस्तिकर्म और अवपीडक का प्रयोग करे।

कोष्ठस्थ वायु में कर्तव्य।

कोष्ठगे क्षारचूर्णाद्या हिताः
पाचनदीपनाः॥ १६॥

अर्थ–वायुके कोष्ठगामी होने पर पाचन और अग्निसंदीपन चूर्णादि हितकारी होतेहैं।

हृदयादिगत वायु में कर्तव्य

हृत्स्थे पयः शिरास्थिद्रम्
शिरोबस्तिः शिरोगते।
स्नेहिकं नावनं धूमः श्रोत्रादीनां च तर्पणम्

अर्थ–कुपित वायुके हृदयगामी होने पर शालिपर्णी डालकर औटाया हुआ दूध हितकारी होता है। वायु के शिरोगामी होने पर शिरोबस्ति, स्नैहिक नस्य, धूमपान और कर्णादि तर्पण का प्रयोग करना चाहिये।

त्वचागामी वायु में कर्तव्य।

स्वेदाभ्यंगानि वातानि हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते

अर्थ–वायुके त्वचा में जाने पर ऊपर लिखे हुए स्नेहन, स्वेदन और हृदय को हितकारी द्रव्यों का प्रयोग करे।

रक्तस्थ वायु में कर्तव्य।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम्

अर्थ–वायु के रक्तस्थ होने पर शीतल लेप, विरेचन और रक्तमोक्षण हितकारी हैं।

मांस मेदस्थ वायु में कर्तव्य।

विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च

अर्थ–वायुके मांस और मेदा में स्थित होने पर विरेचन, निरूहण और शमन क्रिया करनी चाहिये।

अस्थिमज्जागत वायु।

बाह्याभ्यंतरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत्॥

अर्थ–वायु के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर स्नेह का बाह्य और अभ्यंतर प्रयोग करके उसके दूर करने का उपाय करे।

शुक्रस्थ वायु में कर्तव्य।

प्रहर्षोन्नं च शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम्।

अर्थ–शुक्रस्थ वायु में प्रहर्षण तथा बल और वीर्य को बढानेवाले अन्न हितकारी होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रुद्धमार्ग शुक्र में कर्तव्य।

विबद्धमार्गं दृष्ट्वा तु शुक्रं दद्याद्विरेचनम्
विरिक्तं प्रतिभुक्तं च पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम्

अर्थ—जब वायु वीर्य के मार्ग को रोकले तब विरेचन देना चाहिये, विरेचन के पीछे पथ्य देकर पूर्वोक्त रीति से चिकित्सा करना उचित है।

वायुद्वारा शुष्क गर्भ में कर्तव्य।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां च विशुष्यताम्
सिताकाश्मर्यमधुकैः सिद्धमुत्थापने पयः।

अर्थ—वायु के द्वारा गर्भ के शुष्क होने पर मिश्री, कल्हारी और मुलहटी डालकर औटाया हुआ दूध पान कराने से सूखा हुआ गर्भस्थ बालक पुष्ट होजाता है।

स्नायुगत वायु में कर्तव्य।

स्नायुसंधिशिरःप्राप्ते स्नेहदाहोपनाहनम्॥

अर्थ—वायु जब स्नायु, संधि और शिरा में प्रविष्ट होजाय तब दाह और उपनाह का प्रयोग करना चाहिये।

अंग के संकुचित होने पर कर्तव्य।

तैलं संकुचितेऽभ्यंगो माषसैंधवसाधितम्।

अर्थ—वायुद्वारा देह के सुकडजाने पर उरद और सेंधा नमक डालकर सिद्ध किये हुए तेल का मर्दन हितकारी होता है।

रक्तस्राव में लेप।

आगारधूमलवणतैलैर्लेपः स्रुतेऽसृजि २३
दुष्टेऽगे वेष्टयुक्ते तु कर्तव्यमुपनाहम्।

अर्थ-किसी अंग से रक्त का स्राव होने पर घरका धूआं और नमक मिला हुआ तेल लगाना चाहिये जो अंग सो जाय अर्थात् जिसमें स्पर्श का ज्ञान न हो वा बांयटे आते हों तो उपनाहन करना चाहिये।

अपतानक में चिकित्सा।

अथाऽपतानकेनार्तमस्रस्ताक्षमवेपथुम् २४
अस्तब्धमेढ्रमस्वेदं बहिरायामवर्जितम्।
अखट्वाघातिनं चैनं त्वरितं समुपाचरेत्॥

अर्थ--अपतानक रोग में यदि रोगी स्रस्ताक्ष (शिथिल नेत्र) अकंपित शरीर, अस्तब्ध मेढ्र, स्वेदरहित, बहिरायाम से रहित हो तथा खाट पर न सो सकता हो तो इसकी चिकित्सा बहुत शीघ्रता पूर्वक करनी चाहिये।

उक्तरोग में नस्यादि।

तत्र प्राग्वच्च स्निग्धं स्विन्नाङ्गेतीक्ष्णनावनम्
स्रोतोविशुद्धये युंज्यादच्छपानं ततो घृतम्
विदार्यादिगणक्काथदधिक्षीररसैः शृतम्॥
नाऽतिमात्रं तथा वायुर्व्याप्नोति सहसैव वा

अर्थ--अपतानक रोग में प्रथम ही रोगी को स्निग्ध और स्विन्न करके स्रोतों की विशुद्धि के लिये त्रिकुटादि द्वारा तीक्ष्ण नस्य देना चाहिये। पीछे विदार्यादि गण के काढे, दही दूध और मांसरस के साथ सिद्ध किया हुआ घृत का अच्छपान देना चाहिये ऐसा करने से वायु अधिकता के साथ वा अधिक वेग से व्याप्त नहीं होता है।

वातनाशक स्नेहस्वेद।

कुलत्थयवकोलानि भद्रदार्वादिकं गणम्।
निःक्काथ्यानूपमांसं च तेनाम्लैःपयसाऽपि च
स्वादुस्कंधप्रतीवापं महास्नेहं विपाचयेत्।
सेकाभ्यंगावगाहान्नपाननस्यानुवासनैः॥
संहंति वातं तेते च स्नेह स्वेदाःकृतोजिताः

अर्थ--कुलथी, जौ, बेर, भद्रदार्वादि गण, और आनूप मांसोंका काढा, बनाकर कांजी; दूध तथा मधुरगणोक्त द्रव्यों का प्रतीवाप देकर नियमपूर्वक महास्नेह का पाक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करै। यह महास्नेह परिषेक, अभ्यंग, अवगाह, अन्नपान, नस्य और अनुवासन द्वारा प्रयोजित किये जानेपर वात का नाशकरेत हैं, तथा सम्यक् स्नेह और स्वेदन से भी वातका नाश होता है।

वेगांतर में शिरोविरेचनादि।

वेगांतरेषु मूर्धानमसकृच्चास्य रेचयेत् ३ अवपीडैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैः श्लेष्मनिबर्हणैः। श्वसनासु विमुक्तासु तथा संज्ञां स विंदति

अर्थ—उक्त वातरोगों में जब वायुका वेग शांतहो तब कफको निकालने वाले तीक्ष्ण अवपीड और प्रधमन नस्य द्वारा बार बार शिरोविरेचन देवै, इससे श्वसना अर्थात् हृदयाश्रिता प्राणनाडी के कफसे मुक्तहोने पर रोगी चेत करलेता है। द्रव्यों का कल्क करके उसका रस निचोडकर जो नाक में डालाजाता है उसे अवपीड कहते हैं और जो द्रव्यों का चूर्ण करके नलद्वारा नाक में फूंका जाता है उसे प्रधमन कहते हैं।

वाताधिक्यमें घृत।

सौवर्चलाभयाव्योषसिद्धं सर्पिश्चलेऽधिके

अर्थ—कालानमक, हरड और त्रिकुटा इनसे सिद्ध किया हुआ घी वातकी अधिकता में हितकारक होता है।

वातनाशक अन्य घृत।

पलाष्टकं तिल्वगतो वरायाः
प्रस्थं पलांशं गुरुपंचमूलम्।
सैरंडसिद्धीत्रिवृतं घटेऽपां
पक्त्वा पचेत्पादशृतेन तेन ॥ ३२ ॥
दध्नः पात्रे यावशूकात्रिबिल्वैः
सर्पिःप्रस्थं हंति तत्सेव्यमानम्।
वृद्धाव्याधीन्कृत्स्नवातोद्भवांश्च

योनिव्यापद्गुल्मवर्ध्मोदरं च ॥ ३३ ॥

अर्थ—लोध आठ पल, त्रिफला एक प्रस्थ, वृहत्पंचमूल, अरंड, कटेरी और निसोथ प्रत्येक एक पल इनको एकद्रोण जलमें पकावै, जब चौथाई शेषरहै तब दही एक आढक, जवाखार तीन पल और घी एक प्रस्थ डालकर पाकविधि के अनुसार पाक करे, इसके सेवन से दुष्टवात, एकांगवात, सर्वांगवात, योनिरोग, गुल्म, वर्ध्म और उदररोग शांत होजाते हैं।

अन्य विधि।

विधिस्तिस्वकवज्ञेयो शम्याकाशोकयोरपि

अर्थ—लोधके साथ घृतपाक करने का जो नियम ऊपर लिखागया है, वही नियम अमलतास और अशोक के साथ घृत पाक करनेका है।

शुद्ध अपतानक की चिकित्सा।

चिकित्सितमिदंकुर्याच्छुद्धवातापतानके ३४ संसृष्टदोषे संसृष्टं

अर्थ—अन्य दोषों के संसर्ग से रहित शुद्ध वात से उत्पन्न हुए अपतानक में ऊपर लिखी हुई चिकित्सा करनी चाहिये। और जो अपतानक मिश्रित दोषों से युक्त होतो दो दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करनी चाहिये।

कफयुक्त अपतानक की चिकित्सा।

चूर्णयित्वा कफान्विते।
तुंबुरुत्र्यभयाहिंगुपौष्करं लवणत्रयम् ॥
यवक्षाराधुना पेयं हृत्पार्श्वोर्त्यपतंत्रके।
हिंगु सौवर्चलं शुंठी दाडिमं साम्लवेतसम्।
पिबेद्वा श्लेष्मपवनहृद्रोगार्के च शस्यते।

अर्थ—कफयुक्त अपतानक में धनिया,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरड़, हींग, पुष्करमूल और तीनों नमक, इनका चूर्ण बनाकर जौ के क्वाथके संग पान करे । हृदयका दर्द, पसली का दर्द, और अपतंत्रक में हींग, कालानमक, सौंठ, अनार और अम्लवेत इनका चूर्ण जौ के क्वाथके साथ सेवन करै, तथा वातकफजन्य हृदयरोग में कही हुई संपूर्ण औषधियो को काममें लावै ।

आयाम में चिकित्सा ।

आयामयोरर्दितवद्बाह्याभ्यंतरयोः क्रिया ॥
तैलद्रोण्यां च शयनमांतरोऽत्र सुदुस्तरः ।

अर्थ–बहिरायाम और अंतरायाम की चिकित्सा अर्दितके समान करना चाहिये । रोगी को तेलकी द्रोणी में शयन करावे । इन दोनों में अंतरायाम बहुत कष्टसाध्य होताहै ।

विवर्णता का फल ।

विवर्णदंतवदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः ३८ ॥
प्रस्विन्नश्चैव धनुष्कंभी दशरात्रं न जीवति ।

अर्थ–जिस धनुष्कंभवाले रोगी के दांतों का रंग बिगड जाय, देह कुरूप होजाय, अंगशिथिल हो, होश हवास जाते रहैं, देहपर पसीने आने लगे तो वह रोगी दस दिनमें ही मरजाता है ।

मंदवेग में चिकित्सा ।

वेगेष्वतोऽन्यथा जीवेन्मंदेषु विनतो जडः ॥
खंजः कुणिः पक्षहृतः पंगुलो विकलोऽथवा
हनुस्रंसे हनु स्निग्धस्विन्नौ स्वस्थानमानयेत्
उन्नमयेच्च कुशलश्चिबुकं विवृते मुखे ।
नामयेत्संवृते शेषमेकायामवदाचरेत् ४१ ॥

अर्थ–धनुष्कंभवाले रोगी के यदि ऊपर लिखे हुए बुरे लक्षण उपस्थित न हुए हो और वायु का वेग भी यदि कमहो तो रोगी मरता नहीं है, परन्तु उसका शरीर झुक जाताहै, देहमें जकडन होजाती है, लूला, लंगडा, टींटा, पक्षाघात ग्रस्त और विकलांग होजाता है । हनुस्रंसरोग में दोनों हनुओंको स्नेहन और स्वेदन द्वारा स्निग्ध और स्विन्न करके यथास्थानमें लगा देवै । जो मुख खुला रहजाय तो कुशल वैद्यको उचित है कि ठोडी को ऊंची उठावै । संवृत मुखमें ठोडी को नीचे नवावै शेष रोगों में एकायाम की तरह चिकित्सा करै ।

जिव्हास्तंभ की चिकित्सा ।

जिह्वास्तंभे यथावस्थं कार्यं वातचिकित्सितम्

अर्थ–जिव्हास्तंभ में अवस्था के अनुसार वातरोग की चिकित्सा करनी चाहिये ।

अर्दितरोग की चिकित्सा ।

अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं श्रोत्राक्षितर्पणम् ॥
सशोफे वमनं दाहरागयुक्ते सिराव्यधः ।

अर्थ–अर्दित रोगमें नस्य, सिर में तेल तथा कान और आंख का तर्पण हित है । जो अर्दित सूजनसे युक्त होतो वमन तथा दाह और रोगसे युक्त हो तो फस्द खोलना चाहिये ।

पक्षाघात में चिकित्सा ।

स्नेहनं स्नेहसंयुक्तं पक्षाघाते विरेचनम् ४३

अर्थ–पक्षाघात में स्नेहन तथा स्नेहयुक्त विरेचन देना हित है ।

अवबाहु में नस्यादि ।

अवबाहौ हितं नस्यं स्नेहश्चोत्तरभक्तिकः ।

अर्थ–अवबाहु रोगमें नस्य तथा भोजन के पीछे स्नेहपान हित है ।

ऊरुस्तंभमें नस्यादि निषेध ।

ऊरुस्तंभे न च स्नेहो न च संशोधनं हितम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लेष्ममेदोबहुल्याद्युक्तथा तत्क्षपणान्यतः
कुर्याद्रूक्षोपचारांश्च यवश्यामाककोद्रवाः॥
शाकैरलवणैः शस्ताः किंचित्तैलैर्जलैः शृतैः
जांगलैरघृतैर्मांसैर्मध्वंभोरिष्टपायिनः ४६॥
वत्सकादिर्हरिद्रादिर्वचादिर्वा ससैंधवैः।
आमवाते सुखांभोभिः पेयः षट्चरणोऽथवा

अर्थ--ऊरुस्तंभ में यदि कफ, आम और मेदकी अधिकता हो तो स्नेहन तथा वमन और विरेचन हितकारी नहीं होते हैं। इस लिये कफ, आम और मेदा को क्षीण करने वाली औषधों का प्रयोग करना चाहिये। इस रोगमें रूक्ष क्रिया, जौ, सोंखिया, कोदों धान्य, थोडा नमक और तेल मिलाकर जल में पकाया हुआ शाक, घृतरहित जांगल मांसरस, मधु मिला हुआ जल, तथा अरिष्ट और आसव हितकारी होते हैं। आमवात में सेंधेनमक से युक्त वत्सकादि, हरिद्रादि वचादि वा षट्चरण ईषदुष्ण गरम जलके साथ सेवन करने चाहिये।

उक्तरोगमें लेहादि।

लिह्यात्क्षौद्रेण वा-
श्रेष्ठाचव्यातिविषाकणाधनान्।
कल्कं समधु वा चव्यपथ्याग्नितुरदारुजम्॥
मूत्रैर्वा शीलयेत्पथ्यां गुग्गुलुं गिरिसंभवम्।

अर्थ--ऊरुस्तंभमें त्रिफला, चव्य, कुटकी पीपल, और नागर मोथा इनका कल्क अथवा चव्य हरड, चीता और देवदारू इन के कल्कमें शहत मिलाकर अथवा हरड गूगल वा शिलाजीत गोमूत्र में मिलाकर सेवन करना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

व्योषाग्निमुस्तत्रिफला विडंगैर्गुग्गुलं समम्
खादन् सर्वान् जयेद्व्याधीन् मेदः-
श्लेष्मामवातजान्।

अर्थ--त्रिकुटा, चीता, मोथा, त्रिफला और बायविडंग, इन नौ द्रव्यों के बराबर गूगल मिलाकर खानेसे मेद, कफ, आम और वातसे उत्पन्न हुई सब प्रकार की व्याधियां शांत होजाती है।

वायुके शमन का प्रयोग।

शाम्यत्येवं कफाक्रांतः समेदस्कः प्रभंजनः॥
क्षारमूत्रान्वितान् स्वेदान् सेकानुद्वर्तनानि च
कुर्याल्लिह्याच्च मूत्राढ्यैः करंजफलसर्षपैः॥
मूलैर्वाप्यर्कतर्कारीनिंबजैः ससुराह्वयैः।
सक्षौद्रसर्षपाकल्कोष्ठवल्मीकमृत्तिकैः ५२॥

अर्थ--ऊपर लिखी हुई रीति से चिकित्सा करने पर कफाक्रांत समेदस्कवायु शांत होजाती है। इस रोग में जवाखार और गोमूत्र में मिलाकर स्वेदन परिषेक और उद्वर्तन करना चाहिये। कंजा और सरसों को गोमूत्र में मिलाकर अथवा आक, तर्कारी, नीम और देवदारू इनकी जड, सरसों, कच्ची मिट्टी और बांबी की मिट्टी इन सबको शहत में मिलाकर लेपकरै।

उक्तरोग में व्यायामादि।

कफक्षयार्थं व्यायामे सहो चैनं प्रवर्तयेत्।
स्थलान्युल्लंघयेन्नारीः शक्तितः परिशीलयेत्॥
स्थिरतोयं सरः क्षेमं प्रतिस्रोतो नदीं तरेत्
श्लेष्ममेदःक्षये चाऽत्र स्नेहादीनवचारयेत्॥

अर्थ- ऊरुस्तंभवाले रोगी को कफ के क्षयके निमित्त सहने के योग्य व्यायाम करने में प्रवृत करे किसी जगह का लांघना, शक्ति के अनुसार स्त्रीसेवन, बंध हुए जलवाले और ग्राहादि से वर्जित तालाव में अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नदी के स्रोतामि मुख तैरना, इनकामों को करावे । इन कामों से कफ और मेद के क्षीण होनें पर स्नेहादि का प्रयोग करे ।

शेष अंगोंकी चिकित्सा ॥

स्थानं दूष्यादि चालोच्य कार्या शेषेष्वपि-क्रिया ।

अर्थ—इनसे अतिरिक्त वातरोग में देह के अवयव और दूष्यादि को देखकर चिकित्सा करना चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

सहचरं सुरदारु सनागरं
कथिततंभसि तैलविमिश्रितम् ।
पवनपीडितदेहगतिः पिबेद्
द्रुतविलंबितगो भवतीच्छया ॥ ५५ ॥

अर्थ--सहचर, देवदारु, सोंठ, इन के काढे में तेल मिलाकर पीवे । इसको पीने से पवनद्वारा पीडित देह और गतिवाला मनुष्य इच्छानुसार शीघ्र वा विलंब से चलने वाला होजाता है ।

रास्नादि घृत ।

रास्नामहौषधद्वीपिपिप्पलीशठिपौष्करम् ।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥

अर्थ--रास्ना, सोंठ, चीता, पीपल, कचूर और पुष्करमूल इनके कल्क के साथ पाककी रीतिसे पकाया हुआ घृत सेवन करे, यह वातरोगों के दूर करने में बहुत उत्तम औषध है ।

अन्य प्रयोग ।

निंबामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान्पृथक्दशपलान्विपचेज्जलेऽपाम्
अष्टांशशेषितरसेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥
पाठाविडंगसुरदारुगजीपकुल्या
द्विक्षारजागरनिशाभिंशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रेणिक्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥५८॥
मंजिष्ठयातिविषया विषया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पंचसंख्यैः ।
तत्सेवितं प्रथमतः प्रबलं समीरं
संध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥
नाडीव्रणार्बुदभगंदरगंडमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोफ-
हृत्पांडुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥

अर्थ- नीमकी छाल, गिलोय, अडूसा, पर्वल और कटेरी प्रत्येक दस दस पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । अष्टमांस शेष रहने पर छानले फिर इसमें एक प्रस्थ घी डालदे । तथा पाठा, वायविडंग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सौंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, मालकांगनी, काली मिरच इन्द्र जौ, अजवायन, चीता, कुटकी मिलावा बच, पीपलामूल, मजीठ अतीस, कलहारी और अजवायन प्रत्येक एक तोला, शुद्ध किया हुआ गूगल पांच पल इनका कल्क डालकर पाक की रीतिसे पकावे । इस घृतके सेवन करनेसे संधिगत, अस्थिगत और मज्जागत प्रबलवायु, कुष्ठरोग, नाडीव्रण, अर्बुद, भगंदर गंडमाला, जत्रुके के ऊपर के रोग, गुल्मरोग अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खांसी, सूजन, हृद्रोग, पांडुरोग, मदात्यय, विद्रधि और वातरक्त नष्ट होजाते हैं ।

शिरोगत वायु में नस्य ।

बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमंडं विपाचयेत् ।
तस्य शुक्तिः प्रकुंचो वानस्यं वाते शिरोगते

अर्थ—शिरोगतवायु में खरैटी और बेल-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गिरी डालकर औटाये हुए दूध में घृतमंड का पाक करके इसमें से चार वा आठ तोले तक नस्य देना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

तद्वत्सिद्धा वसा नक्रमत्स्यकूर्मचुलूककजा।
विशेषेण प्रयोक्तव्या केवले मातरिश्वनि॥

अर्थ–ऊपर लिखे हुए घृतमंड के अनुसार तक्र, मछली, कच्छप, और सूंस की चर्बी को पकाकर सेवन करने से वातरोग में विशेष लाभ होता है।

अन्य तैल।

जीर्णे पिण्याकं पंचमूलं पृथक्
काथ्यं काथाभ्यामेकतस्तैलमाभ्याम्।
क्षीरादष्टांशं पाचयेत्तेन पानाद्
वाता नश्येयुः श्लेष्मयुक्ता विशेषात्॥

अर्थ–पुरानी खल और पंचमूल इनका अलग २ काढा करके इन काढोंसे अठगुना दूध डालकर इसमें तेल पकावे, इस तेल के पान करने से विशेष करके कफसंयुक्त वात रोग दूर होजाते हैं।

अन्य तेल।

प्रसारिणी तुलाकाथे तैलप्रस्थं पयः समम्।
द्विमेदामिशिमंजिष्ठाकुष्ठरास्नाकुचंदनैः॥
जीवकर्षभकाकोलीयुगुलामरदारुभिः।
कल्कितैर्विपचेत्सर्वमारुतामयनाशनम्॥६९॥

अर्थ–प्रसारिणी के एक तुला काथ में एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दूध मिलावे तथा मेदा, महामेदा, सोंफ, मजीठ, कूठ, रास्ना रक्तचंदन, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, और देवदारु इनका कल्क डालकर विधिपूर्वक पाक करे, इस तेल से सब प्रकार के वातज रोग नष्ट होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

समूलशाखस्य सहाचरस्य-
तुलां समेतां दशमूलतश्च।
पलानि पंचाशदभीरुतश्च-
पादावशेषं विपचेद्वहेऽपाम्॥६६॥
तत्र सेव्यनखकुष्ठहिमैला-
स्पृक्कूप्रियंगुनालिकांबुशिलाजैः।
लोहितानलदलोहसुराह्वैः-
कोपनामिशितुरुष्कनैतश्च॥६७
तुल्यं क्षीरं पालिकैस्तैलपात्रं-
सिद्धं कृच्छ्रान्शीलितं हंति वातान्।
कंपाक्षेपस्तंभशोषादियुक्तान्
गुल्मोन्मादौ पीनसं योनिरोगान्॥

अर्थ–कुरंट की जड और शाखा एक तुला, दशमूल एक तुला, सितावर ५० पल जल एक द्रोण इनका काढा करे चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले इसमें खस, नखी, कुंडा, चंदन, इलायची, स्पृक्का, प्रियंगु, नलिका, नेत्रवाला, शिलाजीत, मजीठ, बालछड, अगर, देवदारु, कोपना, सोंफ, शिलारस, तगर प्रत्येक एक पल, इनका कल्क डाले, तथा एक पात्र तेल और इतना ही दूध मिलाकर पाककी रीति से तेल को पकावे। इसके सेवन करनेसे अत्यन्त कष्टप्रद वातरोग, कंपन, आक्षेप, स्तंभ, शोष गुल्म, उन्माद पीनस और योनिरोग जाते रहते हैं।

वातकुंडलिकादिनाशक तैल।

सहाचरतुलायास्तु रसे तैलाढकं पचेत्।
मूलकल्काद्दशपलं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम्॥
अथवा नतषड्ग्रंथास्थिराकुष्ठसुराह्वयान्।
सैलानलदशैलेयशताह्वारक्तचंदनान्॥७०॥
सिद्धेऽस्मिन् शर्करा चूर्णादष्टादशपलं-
क्षिपेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भेडस्य संमतं तैलं तत्कृच्छ्रानानिलामयान् ॥
वातकुंडलिकोन्मादगुल्मवर्म्मादिकान् जयेत्

अर्थ-कुरंट के एक तुला काढे में एक आढक तेल, दसपल मूली का कल्क और चार आढक दूध डालकर पाक की रीति से पकावै । अथवा पूर्वोक्त सहचरी के काढे में तगर, वच, शालपर्णी, कुडा, देवदारु, इलायची, बालछड, शिलाजीत, सोंफ, लाल चंदन इनको डालकर तेलको पकावै, इसमें अठारह पल खांड मिलादे । यह तेल कष्ट-साध्य वातरोग, वातकुंडलिका, उन्माद, गुल्म वर्म्म आदि रोगों को जीत लेता है । यह तेल भेड मुनि का लिखा हुआ है ।

बला तैल ।

बलाशतं छिन्नरुहापादं रास्नाष्टभागिकम् ॥
जलाढकं शते पक्त्वा शतभागस्थिते रसे ।
दधिमस्त्यश्वनिर्यासशुल्कैस्तैलाढकं समैः ॥
पचेत्साजपयोधांशं कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
शठीसरलदार्वेलामंजिष्ठागुरुचंदनैः ॥ ७४ ॥
पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णीहरेणुभिः ।
यष्ट्याह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः ॥
पलाशरसकस्तूरीनीलिकाजातिकोशकैः ।
स्थूलकांकुमशैलेयजातिकाकट्फलांबुभिः ॥
त्वक्क्षीरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः ।
लवंगनखकंकोलकुष्ठमांसीप्रियंगुभिः ॥
शौणेयतगरध्यामवचामदनकुष्ठकैः ।
सनागकेसरैः सिद्धे दद्याच्चाऽवतारिते ॥
पत्रकल्कं ततः पूतं विधिना तत्प्रयोजितम् ।
कासश्वासज्वरच्छर्दिमूर्छागुल्मक्षतक्षयान् ॥
प्लीहशोषमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।
बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिविनाशनम् ॥

अर्थ-खरैटी १०० पल, गिलोय २५ पल, रास्ना साढे बारह पल, जल सौ आढक इनका काढा करै जब एक आढक शेष रहजाय तब दही का तोड ईखका रस, कांजी और तेल एक एक आढक डालै, बकरीका दूध आधा आढक मिलावे । फिर इस में कचूर, सरलकाष्ठ, देवदारु, इलायची, मजीठ, अगर, चंदन, पद्माख, अतिबला, मोथा, सूपपर्णी, हरेणु, मुलहटी, सुरस, व्याघ्रनख, जीवक, ऋषभक, केशू, रसौत, कस्तूरी, नीलिका, जावित्री, वाही, केसर, शिलाजीत चमेली, कायफल, नेत्रबाला, दालचीनी, कुंदरु, कपूर, शिलारस, श्रीवेष्ट, लौंग, नखी, कंकोल, कुडा, जटामांसी, प्रियंगु, गाजर, तगर, रोहिषतृण, बच, मैनफल, कैवर्तक मोथा, नागकेसर प्रत्येक एक पल इनका कल्क डालकर पाकविधि से पाक करै । फिर इसे उतार कर छानले और तेजपात का चूर्ण मिलादे । यह तेल खांसी, श्वास ज्वर, वमन, मूर्छा, गुल्म क्षत, क्षयी, प्लीह शोष, अपस्मार और अलक्ष्मी को दूर करता है । तथा सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट कर देता है ।

उक्त तेलोंका फल ।

" पाने नस्येऽन्वासनेऽभ्यंजने च
स्नेहाः काले सम्यगेते प्रयुक्ताः ।
दुष्टान्वातानाशु शांतिं नयेयु-
र्वंध्या नारीः पुत्रभाजश्च कुर्युः ॥ ८१ ॥

अर्थ-ऊपर कहेहुए सब प्रकार के स्नेह उपयुक्त कालमें पान, नस्य, अनुवासन और अभ्यंजन द्वारा प्रयोग किये जानेपर बिगडे हुए वातरोगों को शीघ्र नष्ट करदेते हैं, इस के सेवन से बन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र हो जाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बस्तिप्रयोग।

स्नेहस्वेदैर्हृतः श्लेष्मा यदा पक्वाशये स्थितः।
पित्तं वा दर्शयेद्रूपं बस्तिभिस्तं विनिर्जयेत्॥

अर्थ–स्नेह और स्वेद द्वारा जब कफ पतला होकर पक्वाशय में स्थित होजाता है और वहां अपने रूपको दिखाता है अथवा पित्त अपने रूपको दिखाता है तो उस कफ वा पित्तको बस्तिद्वारा दूर करने का उपाय करे।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां चिकित्सितस्थाने वातव्याधिचिकित्सितनाम एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः।

अथाऽतो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से वातरक्त चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वातरक्तमें रक्तहरण।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत्
अल्पाल्पं पालयन् वायुं यथादोषं यथाबलम्

अर्थ–वातरक्तवाले रोगी को स्निग्धकर के उसके दोषदूष्यादि और बलका विचार करते हुए बार बार थोडा थोडा रक्त निकालता रहे, जिससे वायु कुपित न होने पावै।

रुधिर निकालने की विधि।

रूग्रागतोददाहेषु जलौकाभिर्विनिर्हरेत्।
शृंगतुंबैश्चिमिचिमाकंडूरुग्दूयनान्वितम्॥
प्रच्छानेन सिराभिर्वा देशादेशांतरं व्रजत्।

अर्थ–यदि वातरक्तमें वेदना, ललाई, तोद और दाह होतो जोंक लगाकर रुधिर निकाले। जो चिमचिमाहट, खुजली, वेदना और जलन होतीहो तो सींगी वा तूंबी लगाकर रुधिर निकालै। जो रक्त एक स्थानसे दूसरे में जाताहो तो पछने लगाकर वा सिराव्यध द्वारा रक्तको निकाल दे।

रुधिर निकालने का निषेध॥

अंगम्लानौ तु न स्राव्यं रूक्षं वातोत्तरं चयत्॥ ३॥
गंभीरं श्वयथुं स्तंभं कंपस्नायुसिरामयान्।
म्लानिमन्यांश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात्॥ ४॥

अर्थ–जो अंग म्लान होतो रक्तनिकालना उचित नहीं है। तथा जो वातरक्त रूक्षता और वातकी अधिकता से युक्त हो तोभी रक्त नहीं निकालना चाहिये। क्योंकि रक्त के क्षीण होजाने से गंभीर सूजन, स्तब्धता कंपन, स्नायुरोग, सिरारोग, ग्लानि तथा और भी अनेक प्रकार के वातजनित रोग पैदा होजाते हैं।

वातरक्त में विरेचन।

विरेच्यः स्नेहयित्वा तु स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः।

अर्थ–जो रोगी विरेचन के योग्य हो उसे स्निग्ध करके स्नेहयुक्त विरेचन देवै।

वातप्रधान वातरक्त में घृत।

वातोत्तरे वातरक्ते पुराणं पाययेद्घृतम् ५

अर्थ–वातप्रधान वातरक्त में पुराने घी का पान कराना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिणीजीवकैः समैः।
सिद्धं सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–आवणी, क्षीरकाकोली, खिरनी, जीवक और सरसों इनका कल्क डालकर दूधके साथ घी को पकावै । इस घी के पीने से वातरक्त नष्ट होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

द्राक्षामधूकक्वारिभ्यां सिद्धं वा सासितोपलम् ।
घृतं पिबेत्तथा क्षीरं गुडूचीस्वरसे शृतम् ॥
तैलं पयः शर्करां च पाययेद्वा सुभावितम् ।

अर्थ–वातरक्त रोग में दाख और मुलहटी के काढे में सिद्ध किये हुए घी खांड मिलाकर पानकरे अथवा गिलोय के काढे में दूध पकाकर सेवन करे अथवा तेल, दूध और खांड इन तीनों को मिलाकर सेवन करे ।

अन्य प्रयोग ।

बलाशतावरीरास्नादशमूलैः सपीलुभिः ।
श्यामैरंडास्थिराभिश्च वातार्तिघ्नं शृतंपयः ।

अर्थ–खरैटी, सितावर, रास्ना, दशमूल और पीलु इनके साथ पकाये हुए दूधके सेवन करने से अथवा श्यामानिसोथ, अरंड और शालपर्णी द्वारा पकाये हुए दूधके पीने से वातजनित व्याधियां दूर होजाती हैं

अन्य प्रयोग ।

धारोष्णं मूत्रयुक्तं वा क्षीरं दोषानुलोमनम् ।

अर्थ–गौके थनों से निकलता हुआ गरम दूध गोमूत्र मिलाकर पीने से भी वातरक्त का शमन होता है ।

पित्तजवातरक्त की चिकित्सा ।

पैत्ते पक्त्वा वरीतिक्तापटोलत्रिफलामृताः ।
पिबेद्घृतं वा क्षीरंवास्वादु तिक्तकसाधितम् ।

अर्थ–पित्ताधिक्य वातरक्त में शतमूली कटकी, पर्वल, त्रिफला, गिलोय इनका काढा अथवा मधुर और तिक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी वा दूध सेवन करै ।

वातरक्त में विरेचन ।

क्षीरेणैरंडतैलं च प्रयोगेण पिबेन्नरः ।
बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरोदनाशनः ११

अर्थ–वातरक्त में यदि दोषों की अधिकता हो तो विरेचन के निमित्त दूधके साथ अरंड का तेल पीवे और इसके पचने पर दूधके साथ अन्न का भोजन करे ।

अन्य प्रयोग ।

कषायमभयानां वा पाययेद्घृतभर्जितम् ।
क्षीरानुपानं त्रिवृताचूर्णं द्राक्षारसेन वा १२

अर्थ–हरीतकी के काढे को घी में छोंककर पान करावै, इसका सेवन करके दूध पीवै अथवा दाखके रसके साथ निसोथ का चूर्ण सेवन करे ।

वातरक्त में क्षीरवस्ति ।

निर्हरेद्वा मलं तस्य सघृतैः क्षीरवस्तिभिः ।
नहि वस्तिसमं किंचिद्वातरक्तचिकित्सितम् ।
विशेषात्पायुपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरार्तिषु ।

अर्थ–घृतसंयुक्त क्षीरवस्तिद्वारा वातरक्त रोगी का मल निकालना उचित है । वातरक्त में वस्ति के समान और कोई चिकित्सा गुणकारी नहीं है । गुदा, पसली, ऊरु, जोड, अस्थि और जठरवेदना में विशेश करके वस्ति देना चाहिये ।

कफोल्वणवातरक्त में चिकित्सा ।

मुस्ताद्राक्षाहरिद्राणां पिबेत्क्वाथं कफोल्बणे ।
सक्षौद्रं त्रिफलाया वा गुडूचीं वाथथा तथा ।

अर्थ–कफाधिक्य वातरक्त में मोथा, दाख और हलदी का काढा अथवा त्रिफला के काढे में शहत मिलाकर पीवे अथवा गि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोध्र को क्वाथ, कल्क वा चूर्ण द्वारा सेवन करे।

स्नेहन के पीछे रूक्षण।

यथाऽर्हस्नेहपीतं च धामितं मृदु रूक्षयेत्

अर्थ–यथायोग्य स्नेह द्वारा मृदु विरेचन देकर वातरक्त रोगी को रूक्षण करावै।

शूलयुक्त वातरक्त की चिकित्सा।

त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षारीचित्रकं वचाम्। विडंगं पिप्पलीमूलं लोमशं वृषकं त्वचम्। ऋद्धिं लांगलिकं चव्यं समभागानि पेषयेत्। कल्कैर्लिप्त्वायसीं पात्रीं मध्याह्नेभक्षयेदिदम्। वातास्रे सर्वदोषेऽपि परं शूलान्विते हितम्।

अर्थ–त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, बायविडंग, पीपलामूल, काकजंघा, अडूसे की छाल, दालचीनी, ऋद्धि, कलहारी, चव्य इन सबको समान भाग लेकर पीस डाले, इस कल्क को एक लोहे के पात्र में लेपन करदे और दुपहर के समय इस कल्क का सेवन करे यह सब दोषों से युक्त वेदनावाले वातरक्त को नष्ट करदेता है।

अन्य क्वाथ।

कोकिलाक्षकनिर्यूहः पीतस्तच्छाकभोजिना कृपाभ्यास इव क्रोधं वातरक्तं नियच्छति।

अर्थ–कृपा करने का अभ्यास करने से जैसे क्रोध शांत होजाता है, वैसेही कोकलाक्षी के शाक को कोकलाक्षी के काढे के साथ पीने से वातरक्त नष्ट होजाता है।

खुडरोग पर प्रयोग।

पंचमूलस्य शाखा वा रसैर्लेलीतकीं वसाम्। खुडं खुरूढमप्यंगे ब्रह्मचारी पिबन् जयेत्।

अर्थ–पंचमूल के रस, वा आमले के रसके साथ लेलीतकी की चर्बी का पान करने से अति स्थिरहुई खुडवात जाती रहती है, परन्तु इस प्रयोग के सेवन में ब्रह्मचर्य से रहना उचित है।

बाह्यचिकित्सा का विधान।

इत्याभ्यंतरमुद्दिष्टं कर्म बाह्यमतः परम् २०

अर्थ–वातरक्त की आभ्यंतर चिकित्सा इस प्रकार कही गई है, अब बाह्यचिकित्सा का वर्णन करते हैं।

पकाई हुई राल।

आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम्। प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिशुत्परम् २१

अर्थ–एक आढक कांजी में चौथाई तेल और उसमें चौथाई राल डालकर पकावै फिर इस तेल को बहुत से पानी में मथकर लगाने से ज्वर, दाह, वेदना शांत होजाती है।

पिंडतैल।

समधूच्छिष्टमंजिष्ठं ससर्जरससारिवम्। पिंडतैलं तदभ्यंगाद्वातरक्तरुजापहम् २२

अर्थ–मोम, मजीठ, राल और सारिवा इनके कल्क के साथ पूर्वोक्त तेल को पकावै, इस पिंडनामक तेल के लगानेसे वातरक्त से उत्पन्न हुई वेदना जाती रहती है।

दशमूलादि घृत।

दशमूले शृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम्। परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा २३

अर्थ–दशमूल डालकर औटाये हुए दूध का परिषेक करनेसे वेदना तत्काल जाती रहती है। वाताधिक्य वातरक्त में कुछ गरम घी के परिषेक से भी वही फल होता है।

स्तंभादि में उपाय।

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वा चतुर्भिः परिषेचयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तंभाक्षेपकशूलार्ते कोष्णोदाहे तु शीतलैः

अर्थ–मधुरगणोक्त द्रव्यों के साथ घृत, तेल, वसा, मज्जा इन चारों प्रकार के स्नेहों को पकाकर स्तंभ, आक्षेप और शूलयुक्त वातरक्त में कुछ गरम करके परिषेक करना चाहिये और जो दाह हो तो ठंडा ही लगादेवे

अन्य प्रयोग ।

तद्वद्द्रव्याविकच्छागैः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।

अर्थ–गौ, भेड वा बकरी का दूध तेलमें मिलाकर पहिले की तरह स्तंभ, आक्षेप और शूलमें कुछ गरम करके और दाह में ठंडेका परिषेक करै ।

अन्य प्रयोग ।

निःक्काथैर्जीवनीयानां पंचमूलस्य वा लघोः ।

अर्थ–जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का अथवा लघुपंचमूल वा ईषदुष्ण क्वाथ पूर्वोक्त स्तंभादि रोगों पर सेवन करै, और दाह हो तो ठंडा करके परिषेक करै ।

परिषेक की औषध ।

द्राक्षेक्षुरसमद्यानि दधिमस्त्वम्लकांजिकम् ।
सेकार्थं तंडुलक्षौद्रं शर्कराभश्च शस्यते ।

अर्थ–जो वातरक्त में दाह हो तो द्राक्षा रस, ईखका रस, मद्य, दहीका तोड, खट्टी कांजी, तंडुलोदक, मधुमिश्रित जल और खांडका जल परिषेक के लिये काममें लावै ।

दाहनाशक उपाय ।

प्रियाः प्रियंवदा नार्यश्चंदनार्द्रकरस्तनाः ।
स्पर्शशीताः सुखस्पर्शा घ्नंति दाहं रुजंक्रमम् ।

अर्थ–चन्दन से भीगे हुए हाथ और स्तनवाली, छूनेमें शीतल और सुखदायिनी प्रियवादिनी, प्रिय कामिनी गणोंके आलिंगन से दाह, वेदना और क्लांति जाते रहते हैं ।

वातरक्त में लेप ।

सरागे सरुजे दाहे रक्तं हृत्वा प्रलेपयेत् ।
प्रपौंडरीकमंजिष्ठादार्वीमधुकचंदनैः ।
सक्षितोपलकासेक्षुमसूरैरकसक्तुभिः ।
लेपो रुग्दाहवीसर्परागशोफनिबर्हणः ॥

अर्थ–राग, वेदना और दाहयुक्त वातरक्त में रक्त निकालकर प्रपौंडरीक, मजीठ दारुहल्दी, मुलहटी, चन्दन, मिश्री, कांस, ईख, मसूर, और एरका बीजका चूर्ण इनका लेप करनेसे वेदना, दाह, विसर्प, ललाई और सूजन जाती रहती है ।

वातरक्त में उपनाहन ।

वातघ्नैः साधितः स्निग्धःकृशरो मुद्गपायसः ।
तिलसर्षपपिंडैश्च शूलघ्नमुपनाहनम् ॥

अर्थ–वातनाशक औषधों से सिद्ध किया हुआ स्नेहयुक्त खिचडी, वा मूंग का पदार्थ खीर, तिल वा सिरसों का कल्क इनका लेप करने से शूल जाता रहताहै ।

अन्य उपनाह ।

औदका प्रसहानूपवसेवाराः सुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताः स्युरुपनाहने ॥
स्तंभतोदरुगायामशोफांगग्रहनाशनाः ।
जीवनीयौषधैःसिद्धाः सपयस्काःसरोऽपिवा

अर्थ–औदक, प्रसह और आनूप जीवों का अस्थिरहित मांस से बनाया हुआ वेसवार जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ स्नेहयुक्त और सम्यक् संस्कार किया हुआ उपनाहन काम में लावे, अथवा उक्त जीवों की चर्बी जीवनीय गणोक्त औषधों से सिद्ध की हुई दूधमें मिलाकर उपनाहन के काम में लावै । इन प्रयोगों से स्तंभ, तोद वेदना, आयाम, सूजन और अंगग्रह जाते रहते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य लेप ।

घृतं सहचरान्मूलं जीवंतीच्छागलं पयः ।
लेपः पिष्ट्वा तिलास्तद्वद्वृष्टाः पयसि निर्वृताः

अर्थ--सहचरी और जीवंती की जडोंके कल्क में घी और बकरी का दूध मिलाकर लेप करे, अथवा तिलों को भूनकर दूधमें डालकर लेप करनेसे पूर्वोक्त गुण होताहै ।

अन्य लेप ।

क्षीरपिष्टेथुमालेपमेरंडस्य फलानि वा ।
कुर्याच्छूलानिवृत्त्यर्थंशताह्वां वाऽनिलेऽधिके॥

अर्थ--अलसी, वा अरंड के बीज अथवा सौंफ को दूधमें पीसकर लेप करनेसे ऐसा शूल जाता रहताहै, जो वातकी अधिकता से हो ।

अन्य घृत ।

मूत्रक्षारसुरापक्वं घृतमभ्यंजने हितम् ।

अर्थ--गोमूत्र, जवाखार और सुरा के साथ, पकाया हुआ घी पाक करके मर्दन करै तो वातजन्य वेदना शांत होजाती है ।

अन्य प्रयोग ।

सिद्धं समधुशुक्तं वा सेकाभ्यंगे

अर्थ--उक्तरोग में मधुमिश्रित शुद्ध परिषेक और अभ्यंग द्वारा हितकारी होताहै ।

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

कफोत्तरे ॥ ३५ ॥

ग्रहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ।
प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते

अर्थ--कफाधिक्य वातरक्त में गृहधूम, बच, कूठ, सौंफ, हलदी और दारुहलदीका लेप करने से शूल नष्ट होजाता है ।

वातकफाधिक्य की चिकित्सा ।

वातकफोत्तरे ॥ ३६ ॥

मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्वृजिं धान्याम्लसंयुतम् ।

अर्थ--वातकफाधिक्य वातरक्त में छाल सहजने के बीजों को कांजी में पीसकर लेप करना हितकारी है ।

वातकफाधिक्य में परिषेक ।

मुहूर्तलिप्तमम्लैश्च सिंचेद्वातकफोत्तरे ॥

अर्थ--इस लेप करने के एक घंटे पीछे कांजी आदि अम्ल द्रव्यों के परिषेक से वातकफाधिक्य वातरक्त जाता रहता है ।

उत्तान वातरक्त की चिकित्सा ।

उत्तानं लेपनाभ्यंगपरिषेकावगाहनैः

अर्थ-उत्तान वातरक्त की चिकित्सा लेप, अभ्यंग, परिषेक और अवगाहन द्वारा करनी चाहिये ।

गंभीर वातरक्त की चिकित्सा ।

बिरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गंभीरमाचरेत् ॥

अर्थ--गंभीर वातरक्त की चिकित्सा विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान द्वारा करनी चाहिये ।

वातकफोत्तर में लेप ।

वातश्लेष्मोत्तरे कोष्णा लेपाद्यास्तत्र शीतलैः
विदाहशोफरुक्कंडूविवृद्धिः स्तंभनाद्भवेत् ।

अर्थ--वातकफाधिक्य वातरक्त में कुछ गरम लेप हितकारी होते हैं । इसमें ठंडे लेप करने से स्तंभन के कारण विदाह, सूजन वेदना और खुजली की वृद्धि होती है ।

पित्तरक्तोत्तर में लेप ।

पित्तरक्तोत्तरे वातरक्ते लेपाद्यो हिमाः ।
उष्णैः प्लोषोपरुग्रागस्वेदापदरणोद्भवः ।

अर्थ--पित्तरक्ताधिक्य वातरक्त में ठंडे लेप करने चाहियें, इसमें गरम लेपोंके करने से दाह, वेदना, ललाई, पसीना और विदरण अर्थात् फटना पैदा होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातरक्त में तैल ।

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशोषिते ।
तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।
स्थिरातामलकीदूर्वापयस्याभीरुचंदनैः ।
लोहहंसपदीमांसीद्विमेदाम धुपर्णिभिः ।
काकोलीक्षीरकाकोलीशतपुष्पार्द्धिपद्मकैः ।
जीवंतीजीवकर्षभकत्वक्कूपत्रनखवालकैः ॥
प्रपौंडरीकमंजिष्ठासारिवेंद्रीवितुन्नकैः ।
चतुःप्रयोगं वातासृक्कूपित्तदाहज्वरार्तिनुत् ॥

अर्थ–मुलहटी सौपल लेकर कही हुई विधि के अनुसार काढा करै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, इस काढे में एक आढक तेल और इतनाही दूध मिलाकर शालपर्णी, भूम्यामलकी, दूब, दुग्धका, सितावर, चंदन, अगर, हंसपदी, जटामांसी मेदा, महामेदा, मधुपर्णी, काकोली, सौंफ, ऋद्धि, पदमाख, जीवक, ऋषभक दालचीनी, तेजपात, नखी, नेत्रबाला, पुंडरीक, मजीठ, सारिवा, इन्द्रायण, और धनियां प्रत्येक एक पल । इन सब द्रव्यों को कूट पीसकर ऊपर लिखे काढे में डालकर पाक विधि के अनुसार पाक करै । इस तेलका पान, नस्य, अनुवासन और बस्ति इन चार रीतियों से प्रयोग करने पर वातरक्त, पित्त दाह, ज्वर, और वेदना शांत होजाते हैं ।

अन्य तैल ।

बलाकल्ककषायाभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत्
सहस्रशतपाकं तद्वातासृग्वातरोगनुत् ॥
रसायनं मुख्यतममिंद्रियाणां प्रसादनम् ।
जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रास्रदोषनाशनम् ॥

अर्थ–खरैटी के कल्क और काढे के साथ समान भाग दूध और तेलको सौ वा सहस्र बार पकावै । इस तेल से वातरक्त और वातरोग नष्ट होजाते हैं । यह उत्तम रसायन इन्द्रियों को प्रफुल्लित करनेवाला, जीवन, बृंहण, स्वरकारक, तथा वीर्य और रक्त दोष को नाश करनेवाला है ।

वातरक्त में स्नेहनादि ।

कुपिते मार्गसरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।
अतिवृद्ध्यानिले शस्तमादौ स्नेहनबृंहणम् ॥
कृत्वा तत्राढ्यवातोक्तं वातशोणितिकं ततः ।
भेषजं स्नेहनं कुर्याद्यच्च रक्तप्रसादनम् ॥

अर्थ–मेद वा कफकी अतिवृद्धि से मार्ग के रुकजाने के कारण जो वायु कुपित हो जाय तो प्रथम स्नेहन और बृंहण क्रिया करना चाहिये । तत्पश्चात् आढ्यवात में कही हुई चिकित्सा करके वातरक्त में कही हुई स्नेहन और रक्तको शुद्ध करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ।

प्राणादि चिकित्सा

प्राणादिकोपे युगपद्यथोद्दिष्टं यथामयम् ।
यथासन्नं च भैषज्यं विकल्प्यं स्याद्यथाबलम् ॥

अर्थ–प्राणादि पांच वायुके एक साथ कुपित होनेपर यथोक्त अर्थात् वातव्याधि चिकित्सा के अनुसार, यथामय अर्थात् प्राणापानादि वायुके प्रकोप से उत्पन्न रोगानुसार, यथासन्न अर्थात् प्राणादि पंचवायु के निकटवर्ती स्थान के अनुसार और यथाबल अर्थात् प्राणादि पंचवायु के बलके अनुसार औषधकी कल्पना करनी चाहिये ।

शुद्धवात की चिकित्सा ।

नीते निरामतां सामे स्वे स्वेदलंघनपाचनैः ।
रूक्षैश्चालेपसेकाद्यैः कुर्यात्केवलवाननुत् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–आमदोषों से युक्त वायु जब स्वेद, उपवास, पाचन, तथा रूक्ष प्रलेप और परिषेकादि द्वारा जब आम दोष से रहित हो जाय तब केवल वातनाशक औषधों का प्रयोग करना चाहिये।

अंगशोषादि में चिकित्सा।

शोषाक्षेपणसंकोचस्तंभस्वपनकंपनम्।
हनुस्तंसोर्दितं खांज्यं पांगुल्यं खुडवातता॥
संधिच्युतिः पक्षवधो मेदोमज्जास्थिगा गदाः
एते स्थानस्य गांभीर्यात्सिध्येयुर्यत्नतो न वा॥
तस्माज्ज्ञेयत्रयानेतान् बलिनो निरुपद्रवान्।

अर्थ–अंगशोष, आक्षेप, अंगसंकोच, अंग लकडी की तरह जकडना, स्पर्शज्ञान की शून्यता, कंपन, हनुस्तंस, अर्दित, खंजता, पांगलापन, खुडवात, संधियोंका हटजाना, पक्षाघात, मेदा, मज्जा और अस्थि के रोग ये सब स्थान की गंभीरता के कारण थोडे दिन के होने पर भी बहुत यत्न करने पर अच्छे हो भी जाते हैं और नहीं भी होते हैं। इसलिये उचित है कि रोगी की देह में बल रहते रहते उत्पन्न होते ही जब तक किसी प्रकार का उपद्रव उपस्थित न होने पावै इस रोग की चिकित्सा करनी चाहिये।

पित्तावृत वायुमें कर्तव्य।

वायौ पित्तावृते शीतामुष्णां च बहुशः
क्रियाम्॥ ५३॥
व्यत्यासाद् योजयेत्सर्पिर्जीवनीयं च पाययेत्
जम्बमांसं यवाः शालिर्यैरेकः क्षीरश्चान्मृदुः

अर्थ–वायु के पित्त से आवृत होने पर बार बार शीतल और उष्ण क्रिया करना चाहिये। तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ स्नेह पान कराना चाहिये। इसमें जांगल मांस, शालिचावल, तथा दूध से युक्त मृदु विरेचन देना हित है।

उक्तरोग में वस्ति।

सक्षीरा वस्तयः क्षीरं पंचमूलबलाशृतम्।
काले ऽनुवासनं तैलं मधुरौषधसाधितम्॥

अर्थ–पित्तावृत वायु में दूधसे युक्त वस्ति बृहत्पंचमूल और खरैटी डालकर औटाया हुआ दूध तथा मधुर द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल इनका उपयुक्त काल में अनुवासन द्वारा प्रयोग करे।

उक्तरोग में परिषेक।

यष्टीमधुबलातैलघृतक्षीरैश्च सेचनम्।
पंचमूलकषायेण वारिणा शीतलेन च॥

अर्थ–पित्तावृत वायु में मुलहटी का तेल, बलातेल, घी, दूध, पंचमूलका काथ और शीतल जल से परिषेक करना हितहै।

कफावृत वायु में चिकित्सा।

कफावृते यवान्नानि जांगला मृगपक्षिणः।
स्वेदास्तीक्ष्णा निरूहाश्च वमनं सविरेचनम्
पुराणसर्पिस्तैलं च तिलसर्षपजं हितम्।

अर्थ–कफावृत वायु में जौ का अन्न, जांगल पशु पक्षियों का मांस, स्वेद, तीक्ष्ण निरूह, वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल का तेल और सरसों का तेल ये सब हितकारी हैं।

संसृष्ट वायु का उपाय।

संसृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत्

अर्थ–कफ और पित्त द्वारा वायु के संसृष्ट होने पर प्रथम पित्त को जीतकर फिर कफवात के जीतने का उपाय करे।

रक्तसंसृष्ट वात का उपाय।

कारयेद्रक्तसंसृष्टे वाते शोणितिकीं क्रियाम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–रक्तसंसृष्ट वात में वातरक्त की चिकित्सा करना उचित है ।

मांसावृत वायु ।

स्वेदाभ्यंगरसाः क्षीरं स्नेहो मांसावृते हितः

अर्थ–मांसावृत वायु में स्वेद, अभ्यंग मांसरस, दूध और स्नेह हित हैं ।

आढ्यवात की चिकित्सा ।

प्रमेहमेदोघातघ्नमाढ्यवाते भिषग्जितम् ।

अर्थ–आढ्यवात में प्रमेह, मेद और वातनाशिनी चिकित्सा करनी चाहिये ।

रेतसावृत वायु की चिकित्सा ।

महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्वोक्तं रेतसावृते

अर्थ–अस्थि और मज्जागत वायु में महा स्नेह (घृत, मज्जा, वसा तेल) तथा शुक्रावृत वायु में उन औषधों का प्रयोग करना चाहिये जो पहिले वातव्याधि में कही गई हैं ।

अन्नावृत में कर्तव्य ।

अन्नावृते पाचनीयं वमनं दीपनं लघु ।

अर्थ–अन्नावृत वायु में पाचनीय, वमन कारक, अग्निसंदीपन और लघु औषध हितकारी होती हैं ।

मूत्रावृतमें कर्तव्य ।

मूत्रावृते मूत्रलानि स्वेदा उत्तरवस्तयः ६१

अर्थ- मूत्रावृतवायु में खीरा आदि मूत्रकारक तथा स्वेद और उत्तरवस्ति हितहै ।

वर्चसावृतमें चिकित्सा ।

एरंडतैलं वर्चःस्थे बस्तिस्नेहाश्च भेदिनः ।

अर्थ–पुरीषावृत वायुमें अरंड का तेल, तथा भेदक वस्ति और स्नेहका प्रयोग करना चाहिये ।

सर्वस्थानावृतमें कर्तव्य ।

कफपित्ताविरुद्धं यद्यच्च वातानुलोमनम् सर्वस्थानवृते त्वाशु तत्कार्यं वातरिश्चमि ।

अर्थ–सर्वधातुगत वायुमें जो सब औषध कफ और पित्तकी अविरोधी हैं तथा जो वायुका अनुलोमन करनेवाली हैं, वे सब औषध शीघ्र प्रयोग करनी चाहिये ।

सर्वधात्वावृतमें कर्तव्य ।

अनभिष्यंदि च स्निग्धं स्रोतसांशुद्धिकारणम् पाचना बस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासना प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु कार्यविरेचनम् । रसायनानां सर्वेषामुपयोगाः प्रशस्यते । शिलाह्वस्य विशेषेण पयसा शुद्धगुग्गुलोः लेहो वा भार्ङ्गवस्तद्वदेकादशशसिता सितः ।

अर्थ–सम्पूर्ण धातुओं से आवृत वायु में अनाभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों को शुद्ध करनेवाली औषधें देना उचित है । पाचनसंज्ञक वस्ति, तथा मधुर द्रव्यों का अनुवासन, रोगी के बलके अनुसार मृदुविरेचन, रसायन अधिकार में कहे हुए संपूर्ण योग, दूधके साथ शिलाजीत और गूगल, ब्राह्मरसायनमें कहा हुआ च्यवनप्राश, तथा एकादशसितासित नामक औषध का देना हित है ।

अपानावृतमें कर्तव्य ।

अपाने त्वावृते सर्वं दीपनं ग्राहि भेषजम् । वातानुलोमनं कार्यं मूत्राशयविशोधनम् ।

अर्थ–अपानवायु जिसके द्वारा आवृत हो उसमें अग्निसंदीपन, ग्राही, वातानुलोमनकर्ता और मूत्राशय को शुद्ध करनेवाले सब काम करने चाहियें ।

सामान्य कर्तव्य ।

इति संक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्वितर्कंस्वयमेव तत्।

अर्थ-ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार आवृत प्राणादि की चिकित्सा संक्षेप से कही गई है। वैद्यको इन सबका विचार करके उपयोग में लाना चाहिये।

विमार्गवायुका स्वमार्गानयन।

उदानं योजयेदूर्ध्वमपानं चानुलोमयेत्॥
समानं शमयेद्विद्वांस्त्रिधा व्यानं च योजयेत्।
प्राणोरक्षयश्चतुर्भ्योऽपितस्थितोदेहसंस्थितिः
स्वं स्वं स्थानं नयेदेवं वृत्तान्वातान्विमार्गगान्

अर्थ- उदानवायु का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है, अपानवायु का स्वभाव अधोगामी है, समानवायु स्वस्थानस्थ, व्यानवायु सर्वगामी है, इसलिये वही चिकित्सा करना चाहिये जिससे उदानवायु का ऊर्ध्वगमन, अपानवायुका अनुलोमन, समानवायुका स्वस्थान में रहना, और व्यानवायु का सर्वत्रगमन स्थिर रहे। इन चारों से प्राणवायुकी सदा रक्षा करना चाहिये, जिससे उनके द्वारा प्राणवायु को किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे। इसका कारण यही है कि प्राणवायु की स्थितिसे ही शरीर की स्थिति है, प्राणवायुके अतिरिक्त किसी प्रकार से जीवन संभव नहीं है। इसलिये इसकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये। इन उपायों से विमार्गगामी वायुओं को अपने अपने स्थान में लाना चाहिये।

पित्तरक्त वर्जित सर्वावरण।

सर्वे चावरणं पित्तरक्तसंसर्गवर्जितम्॥
रसायनविधानेन लङ्घनो हंति शीलितः।

अर्थ-पित्तरक्त को छोडकर वायु के सब आवरण रसायन विधि में कही हुई रीति से लङ्घन का सेवन करने से जाते रहते हैं।

पित्तावृत में चिकित्सा।

पित्तावृते पित्तहरं मरुतश्चानुलोमनम्॥

अर्थ-पित्तावृत में उदानादि वायुके पित्त से आवृत होने पर पित्तनाशक और वातानुलोमक क्रिया करनी चाहिये।

रक्तावृतमें चिकित्सा।

रक्तावृतेऽपि तद्वच्च खुडोक्तं यच्च भेषजम्।
रक्तपित्तानिलहरं विविधं च रसायनम्॥

अर्थ-उदानादि वायुके रक्तसे आवृत होने पर पित्तनाशक और वातानुलोमक क्रिया हित हैं तथा वातरक्तमें कही हुई चिकित्सा, तथा रक्त, पित्त और वातनाशक क्रिया, तथा अनेक प्रकार की रसायन औषध दोष दूष्यादि के अनुसार देनी चाहिये।

आयुर्वेदकी फलभूत चिकित्सा

यथानिदाननिर्दिष्टमितिसम्यक्चिकित्सितम्
आयुर्वेदफलं स्थानमेतत्सद्योर्तिनाशनम्॥

अर्थ-इसरीति से निदान के अनुसार चिकित्सित स्थान का सम्यक् रूपसे वर्णन किया गया है। यह आयुर्वेद का फलस्वरूप है क्योंकि इसके द्वारा सब प्रकार के रोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

औषधके पर्य्याय।

चिकित्सितं हितं पथ्यं प्रायश्चित्तं भिषग्जितम्।
भेषजं शमनं शस्तं पर्यायैः स्मृतमौषधम्॥

अर्थ-औषध के पर्य्यायवाची शब्द ये हैं यथा-चिकित्सित, हित, पथ्य, प्रायश्चित्त, भिषग्जित, भेषज, शमन और शस्त।

इतिश्री मथुरानिवासिश्रीकृष्णलाल कृतायां भाषाटीकान्वितायां अष्टांगहृदय संहितायां चिकित्सितस्थाने वातशोणितचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ॐ

श्रीहरिम्बन्दे *

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ❀

॥ अथ कल्पस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ॥
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अर्थ–आत्रेयादि महर्षि कहने लगे कि-अब हम यहां से वमनकल्प नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे–

वमन विरेचन की प्रधान औषध ।

वमने मदनं श्रेष्ठं त्रिवृन्मूलं विरेचने ॥

अर्थ–वमन के विषय में मैनफल और विरेचन के विषय में निसोथ प्रधान औषध है ।

व्याधि के योग से जीमूत को-विशिष्टता ।

नित्यमन्यस्य तु व्याधिविशेषेण विशिष्टता ॥

अर्थ–किन्तु व्याधि विशेष के अनुसार जीमूतादि अन्य औषधों को भी विशिष्टता है ।

वमन में मैनफल का योग ।

फलानि तानि पांडूनि न चाऽतिहरितान्यपि
आदायाऽर्द्रे प्रशस्तर्क्षे मध्ये ग्रीष्मवसंतयोः ॥
प्रभृज्य कुशमुत्तोल्यां क्षिप्त्वा बध्वा प्रलेपयेत्
गोमयेनानुमुत्तोलीं धान्यमध्ये निधापयेत् ॥
मृदुभूतानि मर्दित्वा गंधानि कुशवेष्टनात् ।
निष्कृष्य निर्गतेऽष्टाहे शोषयेत्तान्यथातपे ॥
तेषां ततः सुशुष्काणामुद्धृत्य फलपिप्पलीः ।
दधिमध्वाज्यपललैर्मृदित्वा शोषयेत्पुनः ॥
ततः सुगुप्तं संस्थाप्य कार्यकाले प्रयोजयेत् ।

अर्थ–ग्रीष्म और वसंत ऋतु के बीच वाले दिनों में किसी शुभ नक्षत्र में ऐसे मैनफल लावे जो पक कर अत्यन्त पीले न होगये हों और कच्चे होनेके कारण हरे भी न हों । इन फलों का मैल आदि दूर करके कुशाओं के संपुट में रखकर ऊपर से गोबर लपेट दे । गोबर के सूखजाने पर इसको अन्न के ढेर में गाढ दे । जब ये मैनफल नरम होजांय और इनमें मदिरा वा इष्ट कीसी गंध आने लगे तब आठ दिन के पीछे कुशाओं को अलग करके धूप में सुखा लेवे । अच्छी तरह सूखजाने पर फलों के बीजों को निकाल डाले और इनमें दही, शहत, घी और तिल का चूर्ण मर्दन करके फिर सुखावे फिर इनको काच के पात्र में भरकर डाट लगाकर वमनकाल के समय में काम में लावै ।

मैनफल के सेवन की विधि ।

अथाऽदाय ततो मात्रां जर्जरीकृत्य वासयेत् ॥
शर्वरीं मधुयष्ट्या वा कोविदारस्य वा त्वचे ।
कर्वुदारस्य बिल्वस्य वा नीपस्य विदुलस्य वा
शणपुष्प्याः सदापुष्प्याःप्रत्यक्पुष्प्युदकेऽथवा
ततः पिबेत्कषायं तं प्रातर्मृदितगालितम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूत्रोदितेन विधिना साधु तेन तथा वमेत्।
श्लेष्मज्वरप्रतिश्यायगुल्मांतर्विद्रधीषु च॥
प्रच्छर्दयेद्विशेषेण यावत्पित्तस्य दर्शनम्।"

अर्थ–तदनंतर देश काल और पात्र के अनुसार इनकी यथायोग्य मात्रा लेकर पीस डाले, फिर इस चूर्ण को मुलहटी, लाल-कचनार, सफेद कचनार, बिंबी, कदम्ब, वेत, शणपुष्पी, सदापुष्पी, प्रत्यकपुष्पी इन में से किसी के क्वाथ में रात्रि भर भिगोदेवै, दूसरे दिन प्रातःकाल इनको मलकर और कपडे में छानकर सूत्रस्थानोक्त विधि के अनुसार जब तक पित्त का दर्शन हो वमन करे, यह कफ, ज्वर, पीनस, गुल्म और अन्तर्विद्रधि इन रोगों में विशेष उपयोगी है।

अन्य प्रयोग।

फलकिंप्पलिचूर्णं वा क्वाथेन स्वेन भावितम्
त्रिभागत्रिफलाचूर्णं कोविदारादिवारिणा।
पिबेज्ज्वरारुचिच्छेषं ग्रंथ्यपच्यर्बुदोदरी॥
पित्ते कफस्थानगते जीमूतादिजलेन तत्।

अर्थ–ज्वर और अरुचि रोगोंमें मेनफल के बीजों को उन्हीं के क्वाथ की भावना देकर इस चूर्ण में तिगुना त्रिफला का चूर्ण मिलाकर कचनार के क्वाथ के साथ पीवे। तथा ग्रंथि, अपची, अर्बुद और उदर रोगों में पित्त के कफ के स्थान में जानेपर मेंन-फल को नागरमोथा आदि के क्वाथ के संग पान करे।

हृद्दाह में मेनफल।

हृद्दाहेऽधोगपित्ते च क्षीरं तत्पिप्पलीशृतम्
क्षीरेयी वा

अर्थ–हृदय के दाह और अधोगामी रक्त पित्त में मेनफल के साथ दूध वा दूधकी पेया का सेवन करै।

कफच्छर्दि में मेनफल।

कफच्छर्दिप्रसेकतमकेषु तु।
दध्युत्तरं वा दधि वा तच्छृतक्षीरसंभवम्॥

अर्थ–कफज वमन, प्रसेक और तमक में मेनफल के साथ दही की मलाई, वा दही अथवा औटे हुए दूध से निकाला हुआ घी हित है।

कफाभिभूत अग्नि में वमन।

फलादिक्वाथकल्काभ्यांसिद्धंतत्सिद्धदुग्धजम्
सर्पिः कफाभिभूतेऽग्नौ शुष्यद्देहे च वामनम्

अर्थ–मेनफल जीमूत आदि के काढे और कल्क से सिद्ध किये हुए दूधसे निका-ला हुआ घी फिर उन्हीं के काढे और कल्क में पका लिया जाय, जिसकी अग्नि कफके कारण मंदी पडगई है और देह सूख गई है उनको वमन के लिये यह घृत देना चाहिये।

वमन में लेह विशेष।

स्वरसं फलमज्जो वा भल्लातकविधिश्रृतम्।
आदर्वीलेपनात्सिद्धं लीढा प्रच्छर्दयेत्सुखम्
तं लेहं भक्ष्यभोज्येषु तत्कषायांश्च योजयेत्

अर्थ–भिलावे की विधि के अनुसार मेनफल के गूदे के स्वरस को ऐसा पकावे कि गाढा होकर कल्छी से लगने लगे। इस औषध के चाटने से वमन सुखपूर्वक होती है। इस अवलेह को तथा मेनफल के काढे को भक्ष्य और भोज्य के साथ सेवन करे।

अन्य कषाय।

वत्सकादिप्रतीवापः कषायः फलमज्जजः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निंबार्कान्यतरक्काथसमायुक्तो नियच्छति ।
बद्धमूलानपि व्याधीन्सर्वान्संतर्पणोद्भवान् ॥

अर्थ–मेनफलके गूदे के काढे में वत्सकादि गण के द्रव्यों का प्रतीवाप देकर इसको नीम वा आक के काढे के साथ पान करे इससे संतर्पण से उत्पन्न हुई व्याधियां जो जड पकड लेती हैं वे भी नष्ट होजाती हैं ।

फूल सूंघने से वमन ।

राठपुष्पफलश्लक्ष्णचूर्णैर्मौल्यं सुरक्षितम् ।
वमेन्मंडरसादीनां तृप्तो जिघ्रन् सुखं सुखी ॥

अर्थ–मेनफल के फूल और फलों को अच्छी तरह पीसकर मालती के पुष्प में रखे, फिर मंडरस, कृशरा, क्षीर, यवागू से तृप्त होकर उक्त फूल को सूंघे तो सुखपूर्वक वमन हो ।

अन्य फल ।

एवमेव फलाभावे कल्प्यं पुष्पं शलादु वा।

अर्थ–मेनफल के अभाव में उसके फूलों को कूटकर मुलहटी आदि के काथ में रात भर भिगोकर उक्त विधि से दूसरे दिन पान करे । अथवा मेनफल के कच्चे फलों का उक्तरीति से सेवन करे ।

जीमूतादि का प्रयोग ।

जीमूताद्यश्च फलवत्
जीमूतं तु विशेषतः ॥ १९ ॥
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासकासहिध्मादिरोगिणाम्

अर्थ–मेनफल के सदृश ही जीमूत, तूंबी, कोशातकी आदि की कल्पना करनी चाहिये । परन्तु ज्वर, श्वास, खांसी, हिचकी आदि रोगों में विशेष करके जीमूत का प्रयोग करना चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

पयः पुष्पेऽस्य निर्वृत्ते फले पेया पयस्कृता ॥
लोमशे क्षीरसंतानं दध्युत्तरमलोमशे ।
शृते पयसि दध्यम्लं जाते हरितपांडुके ॥
आसुत्य वारुणीमंडं पिबेन्मृदितगालितम् ।
कफादरोचके कासे पांडुत्वे राजयक्ष्मणि ॥

अर्थ–इस जीमूत के पुष्प के निवृत होने पर जीमूत डालकर औटाया हुआ दूध और फलके निवृत होने पर जीमूत डालकर औटाये हुए दूध की पेया पान करानी चाहिये । जीमूत कच्ची अवस्था में लोमयुक्त और पकने पर लोमरहित होता है । लोमयुक्त फल के साथ सिद्ध किये हुए दूध में जो मलाई पड़जाती है उसका सेवन करे । अथवा लोम रहित जीमूत के साथ पकाये हुए दूध के जमाने से उत्पन्न हुए दही की मलाई को पान करे । हरा पीला जीमूत का फल जो लोमयुक्त और लोमरहित होकर मध्यावस्था को प्राप्त हुआ हो । इस फलके साथ दूध को सिद्ध करके उस दूध से उत्पन्न हुआ खट्टा दही, अथवा जीमूत के फल से वारुणीमण्ड का आसुत बनाकर उसका मर्दन करके और वस्त्र में छान कर कफज, अरुचि, खांसी, पांडुरोग और यक्ष्मा रोग में वमन के निमित्त देवे ।

तुंबी आदि की कल्पना ।

इयं च कल्पना कार्या तुंबीकोशातकीष्वपि।

अर्थ–तूंबी और तोरई में भी ऊपर लिखी हुई पुष्प के निवृत होने से लेकर वारुणीमण्ड पर्यन्त सम्पूर्ण कल्पना करनी चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्तकफज्वर में चूर्णादि।

परागतानां शुष्काणां फलानां वेणिजन्मनाम्
चूर्णस्य पयसा शुक्लं वातपित्तार्दितः पिबेत्
द्वे वा त्रीण्यपि वाऽपोथ्य क्वाथे तिक्तोत्तमस्य
वा ॥ २४ ॥
आरग्वधादिनवकादासुत्यान्यतमस्य वा।
विमृद्य पूतं तं क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरी पिबेत् ॥

अर्थ--सम्यक् रीतिसे पाकको प्राप्त हुए और सूखे हुए देवदाली के फलों के दो तीले चूर्णको दूधके साथ वातपित्त से पीडित रोगी को देना चाहिये। पित्त कफ ज्वरवाले रोगी को जीमूतके दो तीन फल कूटकर नीमके काथके संग अथवा आरग्वधादि नौ द्रव्यों में से किसी एक द्रव्यके क्वाथमें जीमूत के दो तीन फलों का आसुत बनाकर मलकर और कपड़े में छानकर पान करावै। घरावरी, वेणी, देवदाली और जीमूत ये चारों शब्द पर्यायवाची हैं।

पित्तज्वर में पानादि।

जीमूतचूर्णं कल्कं वा पिबेच्छीतेन वारिणा।
ज्वरे पैत्ते कवोष्णेन कफवातात्कफादपि ॥

अर्थ--पित्तज्वर में देवदाली के कल्क वा चूर्ण को ठंडे जलके साथ पीवै, तथा वातकफ ज्वरमें वा कफज्वर में गुनगुने जलके साथ पान करावै।

इक्ष्वाकु का प्रयोग।

कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्ते कफकर्शिते।
इक्ष्वाकुर्वमने शस्तः प्रताम्यति च मानवे ॥

अर्थ--खांसी, श्वास, विष, वमन और ज्वरसे पीडित रोगी को, तथा कफसे कर्शित और प्रतमकवाले रोगी को वमन कराने के लिये कडवी तूंबी का प्रयोग हितकारी है।

इक्ष्वाकुके दूधका प्रयोग।

फलपुष्पविहीनस्य प्रवालैस्तस्य साधितम्।
पित्तश्लेष्मज्वरे क्षीरं पित्तोद्रिक्ते प्रयोजयेत् ॥

अर्थ-जिस तूंबी में फल और पुष्प पैदा न हुए हों उसके पत्तोंसे सिद्ध किया हुआ दूध पित्तकफ ज्वर में पित्तका प्रकोप होने पर देना चाहिये।

वमनमें दहीका प्रयोग।

हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि।
स्यात्तदा कफजे कासश्वासे वम्यं च
पाययेत् ॥ २९ ॥

अर्थ--पकी हुई तूंबी का बीचका भाग अर्थात् गूदा निकाल कर दूध भरदे। जब दूध जमकर दही होजाय तब उसे कफ से उत्पन्न हुए खांसी और श्वास रोगोंमें वमन कराने के लिये देवै।

अन्य प्रयोग।

मस्तुना वा फलान्मध्यं पांडुकुष्ठविषार्दितः।
तेन तक्रं विपक्वं वा पिबेत्सक्षौद्रसैंधवम्

अर्थ--तूंबीके गूदेको दहीके तोडके साथ अथवा इसको तक्रके साथ पकाकर शहत और सेंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे पांडुरोग कुष्ठ और विषदोष दूर हो जाते हैं।

अन्य प्रयोग।

भावयित्वाऽजदुग्धेन बीजं तेनैव वा पिबेत्
विषगुल्मोदरग्रंथिगंडेषु श्लीपदेषु च

अर्थ--तूंबीके बीजोंमें बकरी के दूधकी भावना देकर उसको बकरी के दूधके साथ ही पान करे तो विषदोष, गुल्म, उदररोग, ग्रंथि, गंड और श्लीपद शांत होजाते हैं।

मंथका प्रयोग।

सक्तुभिर्वा पिबेन्मंथं तुंबीस्वरस भाविते:।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफोद्भवे ज्वरे कास गलरोगेष्वरोचके

अर्थ–तूंबी के रस की भावना देकर सत्तू के साथ मंथ पीने से कफज ज्वर, खांसी, गलरोग और अरुचि जाते रहतेहैं ।

अन्य प्रयोग ।

गुल्मे ज्वरे प्रसक्ते च कल्कं मांसरसैः पिबेत् नरः साधु वमत्येवं नच दौर्बल्यमश्नुते तुंब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरव चूर्णितम् छर्दियेन्माल्यमाघ्राय गंधसंपत्सुखोचितः

अर्थ–गुल्मरोग तथा दीर्घकालानुबंधी ज्वरमें तूंबी के कल्कको मांसरस के साथ सेवन करै । अथवा तूंबीके रसकी उसके ही पुष्पों में भावना देकर घूपमें सुखाकर पीसले और इसको किसी सुगंधित पुष्प पर अवचूर्णित करके सूंघले इससे मनुष्यको अनायास वमन होजाती है और दुर्बलता भी नहीं होने पाती ।

अन्य प्रयोग ।

कासगुल्मोदरगरे वाते श्लेष्माशयस्थिते । कफे च कंठवक्त्रस्थे कफसंचयजेषु च धामार्गवो गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च ।

अर्थ–खांसी गुल्म, उदर, विष, कफाशय में स्थित वायु, कण्ठ और मुख में स्थित कफ तथा कफसंचयजनित रोग और दीर्घ कालानुबन्धी तथा बड़े रोगों में वमन के लिये तोरई हितकारक है ।

अवलेह का प्रयोग ।

जीवकर्षभकौ वीरा कपिकच्छुः शतावरी काकोली श्रावणी मेदा महामेदा मधूलिका तद्वज्जीवंतिभिः पृथग्लेहा धामार्गवरजोऽन्विताः कासे हृदयदाहे च शस्ता मधुसिताद्रुताः ।

अर्थ–जीवक ऋषभक, वीरा, केंच, सितावर, काकोली, श्रावणी, मेदो, महामेदा मुलहटी इनमें से प्रत्येक के चूर्ण में बहुत सा शहत और मिश्री मिलाकर इसमें तोरई का चूर्ण मिलाकर अवलेह बनावे । इस से खांसी और हृदय का दाह मिट जाते हैं ।

पित्तोष्मसह कफ में कर्तव्य ।

ते सुखांभोनुपानाः स्युः पित्तोष्मसहिते कफे

अर्थ–पित्तकी उष्मा से संयुक्त कफ में ऊपर लिखा हुआ अवलेह चाटकर थोड़ासा गरम पानी पीलेनेसे वमन होजाती है ।

विष रोग पर धान्यादि कल्क ॥

धान्यतुंबरुयूषेण कल्कस्तस्य विषापहः ।

अर्थ–कड़वी तोरई के कल्कको धनियां और तुंबरु के काढेके साथ पीनेसे विषरोग नष्ट हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

बिंब्याः पुनर्नवाया वा कासमर्दस्य वा रसे एकं धामार्गवं द्वे वा मानसे मृदितं पिबेत् । तच्छृतक्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः

अर्थ–बिंबी पुनर्नवा वा कसौंदी इनमेंसे किसी के काढेमें एक वा दो तोरई गलकर पीवे अथवा तोरई के साथ औटाये हुए दूध से निकाले हुए घी को मैनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु, धामार्गव, कोशातकी और कुटज इन छः द्रव्योंके साथ पकाकर सेवन करनेसे उन्मादादि मानसिक रोग वमनद्वारा नष्ट हो जाते हैं ।

क्ष्वेडका प्रयोग ।

क्ष्वेडोऽतिकटुतीक्ष्णोष्णः प्रगाढेषु प्रशस्यते कुष्ठपांडवामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु

अर्थ–अत्यन्त कटु, अतितीक्ष्ण और उष्णवीर्य कडवी तोरई प्रगाढ कोढ, पांडुरोग,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्लीहा, शोफ, गुल्म और विषरोगों में वमन के लिये हित है।

आनूपमांसका प्रयोग।

पृथक् फलादिषट्कस्य क्वाथे मांसमनूपजम्
कोशातक्या समं सिद्धं तद्रसं लवणं पिबेत्

अर्थ--मैनफलादि छः द्रव्यों में से किसी एक के काढे में आनूपमांस और इसके समान तोरई के साथ पाक करके उसमें से थोडा नमक मिलाकर वमनके लिये पान करै।

अन्य प्रयोग।

फलादिपिप्पलीतुल्यं सिद्धं क्ष्वेडरसेऽथवा
क्ष्वेडक्वाथे पिबेत्सिद्धं मिश्रमिक्षुरसेन वा

अर्थ--मैनफलादि छः द्रव्यों के बीज और उनके समान आनूप मांस को पीली तोरई के काढे के साथ पकाकर सेवन करै, अथवा इसी काढे में सिद्ध किया हुआ आनूप मांसरस ईखका रस और नमक मिला कर सेवन करै।

कुटजका प्रयोग।

कुटजं सुकुमारेषु पित्तरक्तकफोदये।
ज्वरे विसर्पे हृद्रोगे खुडे कुष्ठे च पूजितम्

अर्थ--ऐसे सुकुमारों के लिये जो वमन कारक औषधों के वेगको न सह सकते हों उन्हें पित्त, रक्त और कफके उद्रेक में ज्वर में, विसर्पमें हृद्रोग में और कुष्ठमें कुडाकी छालके प्रयोग से वमन कराना हित है।

अन्य प्रयोग।

सर्षपाणां मधूकानां तोयेन लवणस्य वा।
पाययेत्कौटजं बीजं युक्तं क्षारस्याऽथवा४५
सप्ताहं वार्कदुग्धाक्तं तच्चूर्णंपाययेत्पृथक्
फलजीमूतकेक्ष्वाकुजीवंतीजीवकोदकैः ४६

अर्थ--सरसों वा मुलहटी के काढे के साथ अथवा नमक के जलके साथ अथवा कुटज बीजोंका चूर्ण करके सात दिन तक आक के दूधमें भिगोकर इनके चूर्णको मैनफल, देवदाली, कटुतुंबी, जीवंती और जीवक इनके पानी के साथ पान करावै। कुटज बीजों को इन्द्रजौ कहते हैं।

वमनमें अन्यान्य औषध।

" वमनौषधमुख्यानामिति कल्पदिगीरिता
बीजेनानेन मतिमानन्यान्यपि च कल्पयेत्

अर्थ--ऊपर वमनकारक औषधों में से प्रधान प्रधान औषधों का कल्प दिग्दर्शनमात्र वर्णन किया है, इसी प्रकारसे अन्यान्य वमनोपयोगी औषधों की कल्पना करना चाहिये।

इतिश्री मधुरानिवासि श्रीकृष्णलालकृत भाषाटीकान्वितायां अष्टांगहृदयसंहितायां कल्पस्थाने वमनकल्पः प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

अथाऽतो विरेचनकल्पं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहांसे विरेचन कल्प नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

निसोथका स्वरूप।

" कषायामधुरा रूक्षा विपाकेकटुकात्रिवृत्
कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी

अर्थ--निसोथ कसीली, मीठी, रूक्ष, विपाक में कटु, कफ पित्त का नाश करने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाली तथा रूक्ष होने के कारण वात को प्रकुपित करने वाली होती है ।

निसोथको सर्वरोगजितत्व ।

सेव्यनीयौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः ।
कल्पवैशेष्यमास्थाय जायतेसर्वरोगजित् ॥

अर्थ--उपरोक्त गुणोंसे युक्त निसोथ, वात पित्त और कफनाशक औषधों के संयोग से तथा विशेष २ कल्पनाओं से कल्पित होकर विरेचनसाध्य सब प्रकार की व्याधियों को जीतनेवाली होजाती है ।

निसोथकी जडके दोभेद ।

द्विधा ख्यातं च तन्मूलं श्यामं श्यामारुणं त्रिवृत्
त्रिवृदाख्यं वरतरं निरपायं सुखं तयोः ३ ॥
सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तद्धितम्

अर्थ--निसोथ की जड दो प्रकार की होतीहै । एक श्यामवर्ण वाली श्यामा दूसरी श्यामारुण वर्णवाली त्रिवृत होती है इन दोनों में से त्रिवृत नामक निसोथ श्रेष्ठ है, यह निरापद और सुखसेव्य होती है । यह सुकुमार, बालक वृद्ध और मृदुकोष्ठ वालों के लिये बहुत हितकारी है ।

श्यामाके लक्षण ।

मूर्छासंमोहहृत्कंठकर्षणक्षपणप्रदम् ॥ ४ ॥
श्यामं तीक्ष्णाशुकारित्वादतस्तदपि शस्यते
क्रूरे कोष्ठे बहौ दोषे क्लेशक्षमिणि चातुरे

अर्थ--श्यामा निसोथ मूर्छा और मोह को दूर करती है, कंठ को खींचती है और बाधा पहुंचाती है । कोई २ यह भी अर्थ करते हैं कि श्यामा निसोथ मूर्छा, मोह, हृदय और कंठ में कर्षण और क्षय उत्पन्न करती है । तीक्ष्ण और आशुकारी होने पर भी क्रूर कोष्ठवाले बहुत दोषों से युक्त तथा कृश और दुर्बल रोगियों के लिये हित होती है ।

निसोथ की जड लानेकी रीति

गंभीरानुगतं श्लक्ष्णमतिर्यग्विसृतं च यत् ।
गृहीत्वा विसृजेत्काष्ठं त्वचंशुष्कांनिधापयेत्

अर्थ--जो निसोथ भूमि में बहुत गहरी सीधी चलीगई हो तथा चिकनी भी हो उसे लाकर उसकी छालको सुखाकर रखले और भीतर वाले काठको फेंक दे ।

वातरोगों में निसोथका प्रयोग ।

अथ काले तु तच्चूर्णं किंचिन्नागरसैंधवम्
वातामये पिबेदम्लैः पित्ते साज्यसितामधु
क्षीरद्राक्षेक्षुकाश्मर्यस्वादुस्कंधवरारसैः ।
कफामये पीलुरसमूत्रमद्याम्लकांजिकैः ८ ॥
पंचकोलादिचूर्णैश्च युक्तया युक्तं कफापहैः

अर्थ--उचित समय में निसोथ की जड की छालको पीसकर थोडी सौंठ और सेंधानमक मिलाकर खट्टी कांजी के साथ वात रोगों में देना चाहिये । पित्तज रोगों में इसको घी, मिश्री मिलाकर दूधके साथ अथवा दाख, ईख, खंभारी, मधुर द्रव्य वा त्रिफला इनमेंसे किसी के रसके साथ देवै । कफरोगों में इसको पीलूके रस, गोमूत्र, मद्य और खट्टी कांजी के साथ पान करावै । अथवा कफनाशक पंचकोलादि के चूर्ण के साथ उचित रीतिसे मिलाकर पीलुरसादि के साथ पान करावै ।

वैरेचनिक लेह ।

त्रिवृत्कल्ककषायेण साधितः ससितो हिमः
मधुत्रिजातसंयुक्तो लेहो हृद्यं विरेचनम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–निसौथ को पीसकर काथ करले और इस काढे में मिश्री, शहत, दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण मिलाकर पकावै, गाढा होनेपर ठंडा करले यह अवलेह विरेचन में हृदय को हितकारी होताहै।

अन्य अवलेह ।

अजगंधा तवक्षीरी विदारी शर्करा त्रिवृत् ।
चूर्णितं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वासाधु विरिच्यते ।
सान्निपातज्वरस्तंभपिपासादाहपीडितः ११

अर्थ–संनिपात ज्वर, स्तब्धता, पिपासा और दाहसे पीडित रोगी को अजगंध, वंशलोचन, विदारीकंद, खांड और निसौथ के चूर्ण में शहत और घी मिलाकर सेवन करावै इसके चाटनेसे सुखपूर्वक विरेचन होताहै।

विरेचनमें ईखकी गंडेली ॥

लिपेदंतस्त्रिवृतया द्विधा कृत्वेक्षुगंडिकाः ।
एकीकृत्य पचेत्स्विन्नं पुटपाकेन भक्षयेत्

अर्थ–ईखकी गंडेली को बीचमें से चीर कर उसके भीतर निसौथ का चूर्ण भरदे फिर इन दोनों टुकडों को मिलाकर पुटपाक की रीतिसे पकाकर सेवन करै।

विरेचनार्थ चूर्ण ।

त्वगेलाभ्यां समानीली तैस्त्रिवृत्तैश्चशर्करा ।
चूर्णं फलरसक्षौद्रासक्तुभिस्तर्पणं पिबेत् ॥
वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च ।
नरेषु सुकुमारेषु निरपायं विरेचनम् १४ ॥

अर्थ–दालचीनी एक भाग, इलायची एक भाग, नीली दो भाग, निसौथ चार भाग, शर्करा आठ भाग, इन सबका चूर्ण बनाकर फलके रस, मधु और सत्तू के साथ मिलाकर तर्पण तयार करै, यह तर्पण निरापद होताहै, इसके सेवन से वातपित्त और कफसे उत्पन्न हुए रोगों में, तथा अल्पाग्नि वाले को, अथवा सुकुमार मनुष्यों को सुखपूर्वक विरेचन होता है।

गुल्मादि रोगपर अवलेह ।

विडंगतंडुलवरा यावशूकफणा त्रिवृत् ।
सर्वेभ्योऽर्धेन तल्लीढं मध्वाज्येन गुडेन वा ।
गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम् ।
कफवातकृतांश्चान्यान्परिमार्ष्टि गदान्बहून्

अर्थ–वायविडंग, त्रिफला, जवाखार, पीपल, सब समान भाग, इन सबसे आधी निसौथ इनका चूर्ण बनाकर शहत और घी मिलाकर अथवा गुड मिलाकर चाटे, इससे गुल्म, प्लीहोदर, खांसी, हलीमक, अरुचि तथा कफवात से उत्पन्न हुए अन्यान्य बहुत से रोग प्रशमित होजाते हैं।

कल्याणक गुड ।

विडंगपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकम् ।
मरीचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहरितपिप्पलीः
दीप्यकं पंचलवणं चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ
धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन्गुडार्धतुलान्विता
पक्त्वामृद्वग्निना खादेत्ततो मात्रामथाश्नतः॥
कुष्ठार्शःकामलागुल्ममेहोदरभगंदरान् ।
ग्रहणीपांडुरोगांश्च हंति पुंसवनश्च सः ॥
गुडः कल्याणको नाम सर्वेष्वृतुषु यौगिकः

अर्थ–वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चीता, कालीमिरच, इन्द्रजौ, जीरा, पीपल, गजपीपल, अजवायन और पांचों नमक इनमें से प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर पीसडाले, तथा तिलका तेल आठ पल, निसोथ का चूर्ण आठ पल, आमले का रस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीन प्रस्थ, गुडआधी तुला । इनको मिलाकर मंदी आग पर पकावै, इसका उपयुक्त मात्रा द्वारा सेवन करने से कूठ, अर्श, कामला, गुल्म, प्रमेह, भगंदर, ग्रहणी, और पांडुरोग नष्ट होजाते हैं,तथा यह पौरुषवर्द्धक, भी है, यह कल्याणक नामक गुड संपूर्ण ऋतुओं में योजनीय है ।

अन्य गोली ।

त्र्योषत्रिजातकांभोदकृमिघ्नामलकै स्त्रिवृत् सर्वैः समा समसिताः क्षौद्रेणगुटिकाःकृता मूत्रकृच्छ्रज्वरच्छर्दिकासश्वासभ्रमक्षय २२ । तापेपांडवामयेऽलेऽग्नौशस्ताःसर्वेविषेपुच

अर्थ–त्रिकुटा, त्रिजातक, मोथा, बायबिडंग, और आमला प्रत्येक समान भाग, निसोथ और चीनी सबके समान भाग, इन सबको कूट,पीसकर गुड में मिलाकर गोलियां बना लेवे । ये गोलियां मूत्रकृच्छ्र,ज्वर,वमन, खांसी, भ्रम, क्षय, संताप, पांडुरोग, अग्निमांद्य, और संपूर्ण प्रकार के विषरोगों को दूर करती हैं ।

अन्य विरेचन ।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ क्षौद्रद्राक्षारसोपेतं वर्षाकाले विरेचनम् ।

अर्थ–निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ इनके चूर्ण में शहत और द्राक्षारस मिलाकर सेवन करने से वर्षा ऋतु में विरेचन होता है ।

शरदऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृद्दुरालभामुस्तशर्करोदीच्यचंदनम् ॥ द्राक्षांबुना सयष्ट्याह्वं सातलं जलदात्यये ।

अर्थ–शरदऋतु में निसोथ, दुरालभा, मोथा, चीनी, नेत्रवाला, चंदन और मुलहटी इनके चूर्णको द्राक्षारस के साथ विरेचनार्थ प्रयोग करे ।

हेमंतमें विरेचन ।

त्रिवृता चित्रकं पाठामजाजी सरलं वचाम् ॥ स्वर्णक्षीरीं च हेमंते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ।

अर्थ–निसोथ, चीता, पाठा, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और स्वर्णक्षीरी इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे हेमंतऋतु में विरेचन होता है ।

ग्रीष्ममें विरेचन ।

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥

अर्थ–निसोथ का चूर्ण और बराबर की खांड मिलाकर जलके साथ पीनेसे ग्रीष्मकाल में विरेचन होता है ।

स्निग्ध के लिये विरेचन ।

त्रिवृत्त्रायंतिहपुषासातलाकटुरोहिणीः । स्वर्णक्षीरीं च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत्यहम् एषसर्वर्तुको योगःस्निग्धानां मलदोषहृत् ।

अर्थ–निसोथ, त्रायमाणा, हाऊबेर, सातला, कुटकी, और स्वर्णक्षीरी इनका चूर्ण बनाकर तीन दिनतक गोमूत्रकी भावना देवै । यह योग सब ऋतुओं में स्निग्ध पुरुषों के मल दोषों को हरनेवाला है ।

रूक्षपुरुषों को विरेचन ।

श्यामात्रिवृद्दुरालंभाहस्तिपिप्पलिवत्सकम् नीलिनीकटुकामुस्ताश्रेष्ठायुक्तंसुचूर्णितम् । रसाज्योष्णाम्बुभिःशस्तंरूक्षाणामपिसर्पिषा ॥

अर्थ–श्यामा तृवृता, दुरालभा, गजपीपल इन्द्रजौ, नीलवृक्ष, कुटकी, मोथा, त्रिफला, इन के चूर्णको मांसरस, घी वा उष्ण जलके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ विरेचन के लिये देवै। यह योग सब ऋतुओं में रूक्ष पुरुषोंको और अपि शब्दसे स्निग्धों को भी उपयोगी होता है।

ज्वरमें राजवृक्षका प्रयोग।

ज्वरहृद्रोगघातासृग्दावर्तादिरोगिषु।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः॥

अर्थ-ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्तादि रोगोंमें अमलतास का विरेचन अन्य विरेचनों की अपेक्षा गुणकारक होता है। यह मृदु मधुर और शीतल होता है।

अन्य प्रयोग।

बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे।
योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः॥

अर्थ-बालक, वृद्ध, क्षय, क्षीण और सुकुमार व्यक्तियों के लिये अमलतास देकर विरेचन करावे क्योंकि यह मृदु और निरापद विरेचन है।

अमलतासका ग्रहणादि।

फलकाले परिणतं फलं तस्य समाहरेत्।
तेषां गुणवतां भारं सिकतासु विनिक्षिपेत्॥
सप्तरात्रात्समुद्धृत्य शोषयेच्चातपे ततः।
ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ पात्रे निधापयेत्

अर्थ-फलके कालमें अमलतास के अच्छी तरह पके हुए सौ पल फल लाकर बालूमें गाढदे। सातदिन पीछे निकालकर घूपमें सुखाले। फिर इनका गूदा निकालकर एक शुद्ध पात्र में रखदे।

अमलतासके प्रयोगकी विधि।

द्राक्षारसेन तं दद्याद्धोदावर्तपीडिते।
चतुर्थेंशे सुखं बाले यावद्वृद्धादशवार्षिके॥

अर्थ-उदावर्त से पीडित रोगीको तथा चार वर्षसे बारह वर्षकी अवस्था तक के बालक को अमलतास का गूदा दाखके रसके साथ देनेसे सुखपूर्वक विरेचन होता है।

अमलतासका काढा।

चतुरंगुलमज्ज्ञो वा कषायं पाययेद्भिषम्।
दधिमंडसुरामंडधात्रीफलरसैः पृथक्॥
सौवीरकेण वा युक्तं कल्केन त्रैवृतेन वा।

अर्थ-अमलतास के गूदेका शीत कषाय प्रस्तुत करके उसको दही के तोड, सुरामंड, आमले के रस, सौवीर वा निसोथ के कल्क के साथ विरेचनार्थ पान करावे।

अन्य प्रयोग।

दन्तीकषाये तन्मज्ज्ञो गुडं जीर्णं च निक्षिपेत्
तमरिष्टं स्थितं मासं पाययेत् पक्षमेव वा।

अर्थ-दंतीके काथमें अमलतास का गूदा और पुराना गुड मिलाकर किसी पात्रमें एक महिने वा एक पक्ष तक रहने दे। फिर मात्रानुसार इस अरिष्ट का पान करावै।

अमलतासका अन्यप्रयोग।

त्वचं तिल्वकमूलस्य त्यक्त्वाभ्यंतरवल्कलम्
विशोष्य चूर्णयित्वा च द्वौ भागौ गालयेत्ततः
रोध्रस्यैव कषायेण तृतीयं तेन भावयेत्॥
कषाये दशमूलस्य तं भागं भावितं पुनः।
शुष्कं चूर्णं पुनः कृत्वा ततः पाणितलं पिबेत्।
मस्तुमूत्रसुरामंडकोलधात्रीफलांबुभिः।

अर्थ-लोधकी जड की बाहर वाली छाल को दूर करके भीतरकी छाल को सुखा कर चूर्ण करले फिर इसे तीन भागोंमें बांट कर इनमें से दो भाग लेकर लोधके ही काथ में आलोडित करके वस्त्रमें छान लेवै। इस काढेको बचे हुए लोधके एक भागकी भावना देवे। फिर इसको दशमूल के काढेकी भावना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देकर सुखाले इस चूर्णको दहीके तोड, गोमूत्र, सुरामंड, बेरका रस, वा आमले का रस इनमें से किसीके साथ पान करावे। इसकी मात्रा दो तोले दी जाती है।

लोधका अवलेह।

लिह्यात्कल्कस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः॥
सघृतः साधितो लेहः सच श्रेष्ठो विरेचनम्।

अर्थ—लोध का कल्क और काढा शर्करा और घृत मिलाकर पकावै जब यह लेहई के समान गाढा होजाय, तब उतार कर चाटे, यह बडा उत्तम विरेचन है।

थूहरके दूधका निषेध।

सुधा भिनत्ति दोषाणां महांतमपि संचयम्॥
आशुचैव कष्टविभ्रंशात्रैव तां कल्पयेत्ततः।
मृदौ कोष्ठेऽबले बाले स्थविरे दीर्घरोगिणि॥

अर्थ—थूहर दोषोंके बडे संचय को भी शीघ्र भेद डालता है, तथापि कोष्ठको शीघ्र विभ्रंश करने के कारण मृदु कोष्ठवाले को, निर्बलको, बालक को, वृद्ध को और दीर्घ रोगीको थूहर का दूध न देना चाहिये।

थूहरका प्रयोग।

कल्प्या गुल्मोदरगरत्वग्रोगमधुमोहिषु।
पांडौ दूषीविषे शोफे दोषविभ्रांतचेतसि॥
सा श्रेष्ठा कंटकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता।

अर्थ—गुल्म रोग, उदररोग, विषरोग, त्वचारोग, मधुमेह, पांडुरोग, दूषी विष, सूजन और चित्तकी विभ्रांति इनमें थूहर के दूधका प्रयोग करना चाहिये, जो थूहर बहुत से पैने कांटों से युक्त होता है, वह श्रेष्ठ होता है।

सुधा गुटका।

द्विवर्षा वा त्रिवर्षा वा शिशिरांते विशेषतः॥
तां पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः।
बिल्वादीनां वृहत्योर्वा काथेन सममेकशः।
मिश्रयित्वा सुधाक्षीरं ततोऽगारेषु शोषयेत्॥
पिबेत्कृत्वा तु गुटिकां मस्तुमूत्रसुरादिभिः।

अर्थ—दो वा तीन वर्षके पुराने थूहर को शिशिर ऋतुके अंतमें चीरकर दूध निकाल ले। पीछे बेलगिरी के काढे और दोनों कटेरियों के काढे में अलग अलग मिलाकर अग्नि पर सुखाले और गोलियां बना लेवे। इन गोलियों को दही के तोड गोमूत्र वा मदिरा के साथ पान करै।

घृतके साथ निसोथपान।

त्रिवृतादिनवकं स्वर्णक्षीरीं ससातलाम्।
सप्ताहं स्नुक्पयःपीतान् रसेनाज्येन वा पिबेत्॥

अर्थ—तृवृतादि नौ द्रव्य (त्रृवृत, श्यामा, अमलतास, निसोथ, थूहर, शंखनी, सातला, दंती, द्रवंती), तथा त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, सातला, इनको सातदिन तक सेंहुंड के दूधकी भावना देकर मांसरस वा घृत के साथ पान करै।

व्योषादि सेवन।

तद्वद्व्योषोक्तमाकुंभनिकुंभादीन् गुडांबुना।

अर्थ—ऊपर लिखी रीतिके अनुसार त्रिकुटा, त्रिफला, निसोथ और दंती आदि विरेचक औषधों को गुडके शर्बत के साथ पीना चाहिये।

कफरोगों में चिकित्सा।

नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शंखिन्या निस्तुषीकृतम्
ससलायास्तथा मूलं ते तु तस्याविकाषिणी
श्लेष्ममयोदरगरश्वयथ्वादिषु कल्पयेत्॥

अर्थ—शंखनी का ऐसा फल लावे जो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुत सूखा न हो, इसके छिलके दूर करदे, तथा सातला की जड इन दोनों विरेचक द्रव्यों को कफरोग, उदररोग, गरदोष और सूजन आदिमें देना चाहिये ये तीक्ष्ण विरेचकहैं

अन्य प्रयोग ।

अक्षमात्रं तयोः पिंडं मदिरालवणान्वितम्।
हृद्रोगे वातकफजे तद्वद्गुल्मे प्रयोजयेत् ॥

अर्थ–शंखनी और सातला इन दोनों को अक्षमात्र लेकर पीसले, इसको मदिरा और लवणके साथ सेवन करनेसे वातकफजहृद्रोग तथा गुल्म नष्ट होजाते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

दंतिदंतस्थिरं स्थूलं मूलं दंतीद्रवंतिजम् ।
आताम्रश्यावतीक्ष्णोष्णमाशुकारि-
विकाशि च॥ ५१ ॥
गुरु प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम्

अर्थ–दंती और द्रवंती की जड जो हाथी के दांतके समान दृढ और स्थूल हो तथा जो कुछ ताम्रवर्ण और श्यामवर्ण और बहुत तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, आशुकारी, विकाशी भारी, वातप्रकोपी और पित्त कफनाशक होती है ।

अन्य प्रयोग ।

तत्क्षौद्रपिप्पलीलिप्तं स्वेद्यं मृद्भर्वेष्टितम् ॥
शोष्यं धूमे रातपे ऽग्न्यर्कौहतोह्यस्यविकाशिताम
तत्पिबेन्मस्तुमदिरातक्रपीलुरसासवैः।
अभिष्यन्नतनुर्गुल्मी प्रमेही जठरी गरी।
गोमृगाजरसैः पांडुः कृमिकोष्ठी भगंदरी ।

अर्थ--ऊपर कही हुई दंती और द्रवंती की जडको शहत और पीपल के चूर्ण से लपेटदे तथा इसको कुशा और मृत्तिका से लपेटकर अग्निमें स्वेदित करे, फिर धूपमें सुखा लेवे, जिससे इसकी विकाशिता जाती रहती है । फिर इस जडको दहीके तोड, मदिरा, तक्र, पीलुरस और आसवके साथ सेवन करै । कफाधिक्यवाला रोगी, तथा गुल्म, प्रमेह, जठर, गर, पांडु; कृमि और भगंदर इन रोगों से पीडित मनुष्य गौ, मृग और बकरे के मांसरस के साथ पान करै ।

विसर्प की चिकित्सा ।

सिद्धं तत्काथकल्काभ्यां दशमूलरसेन च।
विसर्पविद्रध्यलजीकक्षादाहान् जयेद्घृतम्
तैलं तु गुल्ममेहार्शोविबंधकफमारुतान् ।
महास्नेहः शुक्रवृद्धिकवातसंगानिलव्यथा ॥

अर्थ–दंती द्रवंती की जडके कल्क और क्वाथ तथा दशमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ घृत विसर्प, विद्रधि, अलजी और कक्षादाहको नष्ट करता है । तथा इन्हीं के साथमें पकाया हुआ तेल गुल्म, अर्श, गलकी विबद्धता और वातकफको दूर करताहै । तथा इन्हीं के साथमें पकाया हुआ महास्नेह मल, शुक्र और वातकी विबद्धता तथा वेदना को नष्ट करता है ।

त्रिवृतादि को प्रधानत्व ।

विरेचने मुख्यतमा नवैते त्रिवृतादयः ।

अर्थ–त्रिवृतादि नौ द्रव्य विरेचन में श्रेष्ठ है ।

हरीतकी का ग्रहण ।

हरीतकीमपि त्रिवृद्विधानेनोपकल्पयेत् ॥

अर्थ–विरेचन के लिये जो कल्पना त्रिवृतादि नौ द्रव्यों की कही गई है वही कल्पना हरीतकी की भी करनी चाहिये । अ-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

र्थात् उचितकाल में हरडके चूर्णको कुछ सौंठ और सेंधेनमक के साथ मिलाकर वातिक रोगमें खट्टी कांजी के साथ पान करै। पित्तज रोगमें घी, चीनी और शहत मिलाकर दूधके साथ अथवा द्राक्षा, ईख, खंभारी और भूमिकूष्मांड इनमें से किसी एक के रसके साथ सेवन करै।

विरेचन के लिये मोदक।

गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्यात्पलं पलम्
दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश॥
प्रकुट्य मोदकानेव दशमैं दशमेऽहनि।
उष्णांभोऽनु पिबेत्स्वादैस्तान्खर्वान्विधिना-
मुना॥ ५९॥
एते निःपरिहाराः स्युः सर्वव्याधिनिबर्हणाः
विशेषाद्ग्रहणीपांडुकडूकोठार्शसां हिताः॥

अर्थ—गुड आठ पल, हरड बीस पल, दंती एक पल, चीता एक पल, पीपल एक कर्ष, निसोथ एक कर्ष इन सबको पीसकूटकर दस मोदक बनालेवे। इनमें से एक एक मोदक दसवें दसवें दिन सेवन करें, ऊपर से गरम जल पीवै। इसके सेवन से सब प्रकार के रोग और विशेष करके ग्रहणी, पांडुरोग, कंडू, कोठ और अर्श जाते रहते हैं, यह विरेचन आपदरहित है।

संश्लेषादिमें कर्तव्य।

अल्पस्याऽपि महार्थत्वं प्रभूतस्याऽल्पकामताम्
कुर्यात्संश्लेषविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः॥

अर्थ संयोग, वियोग, काल, संस्कार और युक्ति विशेषद्वारा ये औषध थोडी मात्रा में देने पर भी बहुत काम करती हैं। और बहुत मात्रा मे देने परभी थोडा काम करती है

विरेचनमें त्वचा और केसर।

त्वक्केसराम्रातकदाडिमैला-
सितोपलामाक्षिकमातुलिंगैः।
मद्यैश्च तैस्तैश्च मनोनुकूलै-
युक्तानि देयानि विरेचनानि"॥ ६२॥

अर्थ—दालचीनी, नागकेसर, आमला, दाडिम, इलायची, मिश्री, मधु, बिजौरा, मद्य तथा मनोनुकूल अन्यान्य द्रव्योंके साथ विरेचक औषधों का प्रयोग करना चाहिये ऐसा करने से विरेचन का सम्यक् योग होता है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां कल्पस्थाने विरेचनकल्पोनाम द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

अथाऽतो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धि-
व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से वमन विरेचन व्यापत्सिद्धि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे—

अधोगत वमन में पुनर्वमन॥

वमनं मृदुकोष्ठस्य क्षुद्वतोऽल्पकफेन वा।
अतितीक्ष्णहिमस्तोकमजीर्णे दुर्बलेन वा॥
पीतं प्रयात्यधस्तस्मिन्निष्ठानिर्मलोदयः।
वामयेत्तं पुनः स्निग्धं स्मरन् पूर्वमतिक्रमम्॥

अर्थ—जो मनुष्य मृदुकोष्ठ, क्षुधार्त, अल्पकफयुक्त, दुर्बल वा अजीर्णी हो उसको अति तीक्ष्ण, अति शीतल और अल्प मात्रा में वमनकारक औषध दीजाय तो वह ऊर्ध्वगामी न होकर अर्थात् वमन का काम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न देकर अधोगामी होजाता है। अर्थात् विरेचन का काम देती है, इससे वमनकार्य की हानि और वमनसाध्य कफ का उद्रेक होता है, इसलिये इस बात का स्मरण करके कि प्रथम दी हुई औषध का कुछ फल नहीं है, रोगी को पुनर्वार स्निग्ध कर के फिर वमनकारक औषध देवै ॥

अजीर्ण में पूर्ववत कर्तव्य।

अजीर्णिनः श्लेष्मवतो व्रजत्यूर्ध्वं विरेचनम्।
अतितीक्ष्णोष्णलवणमद्रव्यमतिभूरि वा-
तत्र पूर्वोदिता व्यापत्सिद्धिश्च न तथाऽपि चेत् ॥ ३ ॥
आशये तिष्ठति तत्स्तृतीयं नावचारयेत्।
अन्यत्र सात्म्याद्रुद्याद्वा भेषजाग्निरपायतः ॥

अर्थ—जो रोगी अजीर्ण वा बहुत कफसे युक्तहो उसको अत्यन्ततीक्ष्ण अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त नमकीन, अद्रव्य वा अधिक परिमाण युक्त विरेचन औषध दीजातीहै वह अधोगामी न होकर ऊर्ध्वगामी होजाती है। अर्थात् विरेचन का काम न देकर वमन का काम देती है और इस से विरेचन कार्य की हानि और विरेचनसाध्य रोगों की अधिकता होती है, इसलिये रोगी को पुनर्वार स्निग्ध करके फिर विरेचन औषध देवै। यदि दुबारा विरेचन से भी विपरीत फल हो तो सात्म्य, द्रव्य और निरापद औषध देकर तृतीयवार विरेचन देवै ॥

बिना स्नेहन स्वेदन के औषधनिषेध।

अस्निग्धस्विन्नदेहस्य पुराणं रूक्षमौषधम्।
दोषानुत्क्लेश्य निर्हर्तुमशक्तं जनयेद्गदान् ५ ॥
विभ्रंशं श्लथयेत् हिध्मं तमसो दर्शनं तृषम्।
पिंडिकोद्वेष्टनं कण्डूमूर्वोः सादं विवर्णताम् ॥
स्निग्धस्विन्नस्य वात्वल्पं दीताग्नेर्जीर्णमौषधम्
शीतैर्वा स्तब्धमामे वा समुत्क्लेश्य-
हरेन्मलान् ॥ ७ ॥
तानेव जनयेद्रोगानयोगः सर्व एव सः।

अर्थ—स्नेहद्वारा स्निग्ध और स्वेदनद्वारा स्विन्न किये बिना जिस रोगी को पुरानी और रूक्षी विरेचन औषध दीजाती है, और वह दी हुई औषध दोषों को बाहर नहीं निकाल सकती है, केवल उनको उत्क्लेशित करके, अर्थात् अपने स्थान से च्युत करके विभ्रंश, सूजन, हिध्मा, अंधकारदर्शन, तृषा, पिंडिलियों में ऐंठन, खुजली, ऊरुओं में शिथिलता और विवर्णता इन रोगों को उत्पन्न कर देती है। अथवा स्निग्ध और स्विन्न दीप्ताग्नि वाला मनुष्य यदि अल्प मात्रा में विरेचन औषध सेवन करे, तो भी वह औषध प्रबल अग्नि से जीर्ण होकर दोषों को उत्क्लेशित कर देती है परन्तु बाहर नहीं निकाल सकती है, इससे भी पूर्वोक्त विभ्रंशादि रोग पैदा होजाते हैं, अथवा शीतल पदार्थों द्वारा वा आमरस द्वारा सेवन की हुई औषध स्तब्ध होकर केवल दोषोंको उत्क्लेशित कर देती है और बाहर नहीं निकाल सकती है। इस से भी पूर्वोक्त विभ्रंशादि रोग पैदा होजाते हैं। औषधों के इस योग का नामही अयोग है।

उत्क्लिष्ट दोष में अनुवासन ॥

तं तैललवणाभ्यक्तं स्विन्नं प्रस्तरशंकरैः ८ ॥
निरूढं जाङ्गलरसैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत्।
फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया ९ ॥
स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत्

अर्थ—ऊपर कहे हुए हेतुओं से जिस रोगी के दोष उत्क्लेशित होगये हों उसे तेल और नमक से अभ्यक्त करके तथा प्रस्तर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शंकर स्वेद से खिन्न करके निरूहण देवै । और जाङ्गल मांसरसके साथ भोजन करके मैनफल, पीपल, और देवदारु इनके साथ सिद्ध किये हुए तेल से अनुवासन करै । फिर वातनाशक तेलों से रोगी को स्निग्ध करके तीक्ष्ण विरेचन द्वारा शोधन करै ।

आध्मान में कर्तव्य ।

बहुदोषस्य रूक्षस्य मंदाग्नेरल्पमौषधम् १०
सोदावर्तस्य चोत्क्लेश्य दोषान्मार्गं निरुध्यतैः
भ्रंशमाध्मापयेन्नाभि पृष्ठपार्श्वशिरोरुजम् ॥
श्वासं विण्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्याच्च-
दारुणम् ।
अभ्यंगस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम् १२
उदावर्तहरं सर्वं कर्माध्मातस्य शस्यते ।

अर्थ—प्रबल दोषों से आक्रांत, रूक्ष, मन्दाग्नि वाला रोगी जब उदावर्त रोग से भी पीडित हो उसको अल्प मात्रा में विरेचन औषध देने से वह दोषों को उत्क्लेशित करके दोषों के निकलनेके मार्ग को रोककर नाभिप्रदेश में अत्यन्त अफरा, पीठ पसली मस्तक में वेदना, श्वास तथा मल मूत्र और वायु की अत्यन्त विबद्धता उत्पन्न कर देती है । इस में अभ्यङ्ग, स्वेद, वर्त्यादि, निरूहण, अनुवासन तथा सब प्रकार के उदावर्त नाशक उपाय करना उत्तम है ॥

शूलनाशिनी यवागू ।

पञ्चमूलयवक्षारवचाभूतिकसैंधवैः ॥१३॥
यवागूः सकृता शूलविबंधानाहनाशनी ।

अर्थ—पंचमूल, जवाखार, बच, अजवायन और सेंधानमक इनके साथ पकाई हुई यवागू सेवन करने से शूल, विबंध और आनाह रोगों को दूर करदेती है ।

प्रवाहिकादि में पिप्पल्यादि ।

पिप्पलीदाडिमक्षारहिंगुशुंठ्यम्लवेतसान् ।
ससैंधवान्पिबेन्मद्यैः सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
प्रवाहिकापरिस्रावे वेदनापरिकर्तने १५ ॥

अर्थ—पीपल, अनार, जवाखार, हींग, सोंठ, अम्लवेत और सेंधानमक इनको मद्य, घी वा उष्णोदक के साथ पीने से प्रवाहिका, परिस्राव, वेदना और परिकर्तन रोग दूर होजाते हैं ।

कुपितवात के कर्म ।

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मारुतादयः ।
कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वंति हृद्ग्रहम् ॥
हिध्मापार्श्वरुजाकासदैन्यलालादिविभ्रमैः
जिह्वां खादति निःसंज्ञो दंतान्कटकटाययन् ।

अर्थ—पीत औषध का वेग रोकने से वातादि दोष कुपित होकर और हृदय में जाकर हृद्ग्रह, हिध्मा, पार्श्ववेदना, खांसी, दीनता, लालास्राव और नेत्रविभ्रम आदि भयंकर रोगों को उत्पन्न कर देते हैं । रोगी बेहोश होकर जिह्वा को चबा जाता है और दांतों को किटकिटाता है ।

उक्तअवस्था में वमनप्रयोग ।

न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु तं भिषक् ।
मधुरैः पित्तमूर्छार्तं कटुभिः कफमूर्छितम् ॥
पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषं विपाचयेत् ।
कायाऽग्निं च बलं चास्य-
क्रमेणाऽभिप्रवर्तयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर वैद्यको उचित है कि अपने संशय को दूर कर के शीघ्रही वमन करावै । पित्तमूर्च्छित रोगी को मधुर द्रव्यों से और कफमूर्च्छित रोगी को कटु औषधों से वमन करावै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्पश्चात् पाचनीय औषधियों द्वारा रोगी के बचे हुए दोषको पचाकर कायाग्नि और बल को धीरे धीरे बढ़ाने का प्रयत्न करे।

अतिवमित का उपाय।

पवनेनाऽतिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते।
तस्मै स्निग्धाम्ललवणम्-
दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥ २० ॥

अर्थ–अत्यन्त वमन होने के कारण वायुद्वारा जिस रोगी का हृदय पीडित हो उसे स्निग्ध, अम्ल और नमकीन पथ्यदेवै। तथा पित्त और कफ कुपित हों तो इससे विपरीत मधुर शीतादि का प्रयोग करै।

वातनाशक स्वेदादि का प्रयोग।

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहेण कफेन वा।
रुद्धोति वा विशुद्धस्य गृह्णात्यंगानि-
मारुतः ॥ २१ ॥
स्तंभवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्तिभेदनैः।
तत्र वातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि शस्यते २२

अर्थ–पान की हुई औषधके वेग रोकने से, अथवा कफसे अथवा अति विशोधन से वायु कुपित और रुद्ध होकर स्तब्धता, वेपथु, निस्तोद, अंगग्लानि, उद्वेष्टन, वेदना और भेदन उत्पन्न कर देती है इसमें सब प्रकार के वातनाशक स्नेहन और स्वेदन देना उत्तम है।

विरेचनादियोग में कर्तव्य।

क्षुतक्षिणं क्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम्
हृत्वाऽऽशु विट्पित्तकफान् धातूनाक्रामवेत् द्रवान् २३

अर्थ–क्षुधा से पीडित मृदु कोष्ठ वाले रोगी को प्रमाण से अधिक तीक्ष्ण विरेचन दिया जाय तो उससे विष्ठा, पित्त और कफ शीघ्र निकलजाते हैं और फिर वह औषध इन धातुओं को निकालती है।

विरेचनाति योगमें चिकित्सा।

तशातियोगे मधुरैः शेषमौषधमुल्लिखेत्॥
योज्योऽतिवमने रेको विरेके वमनं मृदु॥
परिषेकावगाहाद्यैः सुशीतैः स्तंभयेच्च तम्

अर्थ–विरेचन के अतियोग में वमनकारक मधुर औषधों द्वारा पी हुई शेष औषध का वमन कराके निकाल डाले। वमन के अतियोगमें विरेचन और विरेचन के अतियोगमें मृदु वमन देना चाहिये। शीतल परिषेक और शीतल अवगाहादि द्वारा विरेचनको रोक देना चाहिये।

विरेकातियोगनाशकऔषध।

अंजनं चंदनोशीरमज्जास्रक्शर्करोदकम् २५
लाजचूर्णैः पिबेन्मंथमतियोगहरं वरम्।

अर्थ–अंजन, चंदन, खसकी मज्जा, मजीठ, खांडका शर्बत और खीलका चूर्ण ये विरेचन के अतियोग की श्रेष्ठ औषधहै।

वमनातियोगकी चिकित्सा।

वमनस्याऽतियोगे तु शीतांबुपरिषेचितः।
पिबेत्फलरसैर्मंथं सघृतक्षौद्रशर्करम्॥
सोद्गारायां भृशं छर्द्यामूर्वायां धान्यमुस्तयोः
समधूकांजनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम्।

अर्थ–वमनके अतियोग में रोगी को ठंडे जलसे परिषेक कराकर घी, शहत और शर्करा से युक्त मंथको दाडिमादि फलों के रसके साथ पान करावे। जो वमनके साथ डकारों के वेगकी अधिकता हो तो मूर्वा, धनियां, मोथा, मुलहटी और रसौत का चूर्ण शहतके साथ चटावै।

जिह्वाकेभीतरघुसजानेमेंचिकित्सा।

वमनेऽतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः २८

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्निग्धाम्ललवणा हृद्या यूषमांसरसा हिताः फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतोनराः निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तांप्रवेशयेत्

अर्थ–अत्यन्त वमन करनेसे जिह्वा के भीतर घुसजाने पर कवलधारण, चिकने खट्टे और नमकीन रसोंसे युक्त हृदय को हितकारी यूष, तथा बकरे के मांसरस का प्रयोग करै । उस रोगी के सन्मुख दूसरे आदमी को खट्टा फल खाने को दे । जिव्हा के बाहर निकल आनेपर तिल और दाखका कल्क जिव्हा पर लगाकर उसे भीतर करदे ।

वाग्ग्रहादिमें यवागू ।

वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधिताम् ॥ यवागूं तनुकां दद्यात्स्नेहस्वेदौ च कालवित् ।

अर्थ–वाणी के रोकनेवाले वातरोगों में घी और मांसरस के साथ सिद्ध की हुई यवागू को पतली करके पान करावै तथा स्नेह और स्वेदन देवै ।

जीवरक्त की परीक्षा ।

अतियोगाच्च भैषज्यं जीवंहरति शोणितम् तज्जीवादानमित्युक्तमादत्ते जीवितं यतः । शुने काकाय वा दद्यात्तेनान्नमसृजासह । भुक्ते तस्मिन् वदेज्जीवमभुक्ते पित्तमादिशेत् शुक्ले वा भक्षितं वल्मावानं कोष्णवारिणा प्रक्षालितं विवर्णं स्यात्पित्ते शुक्लं तु शोणिते

अर्थ–जो विरेचन औषध के अतियोग से जीवनामक रक्तका हरण करती है उस औषध को जीवादान अर्थात् जीवरक्त को हरनेवाली कहते हैं । परन्तु विरेचन के अतियोग से जो रक्त निकलता है वह रक्त है वा पित्तहै, इस बातकी परीक्षा के लिये इस रक्तमें अन्न मिलाकर कुत्ते वा कौए को खाने को दे । जो इसको कुत्ते वा कौए खालें तो जीवरक्त जानना चाहिये और न खांय तो पित्त समझना चाहिये । दूसरी परीक्षा यह है कि किसी सफेद वस्त्रपर इस रक्तको लगाकर धूपमें सुखाले और गरम जलसे धोवै यदि कपडे पर मैलापन आजाय तो पित्त समझना चाहिये और किसी प्रकार का दाग न रहै तो जीवशोणित समझना चाहिये ।

तृषादि में प्राणरक्षण क्रिया ।

तृष्णामूर्छामदार्तस्य कुर्यादामरणं क्रियाम् । रक्तपित्तातिसारघ्नीं तस्याशु प्राणरक्षणीम् । मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक् ॥ पिबेज्जीवाभिसंधानं जीर्णं तद्धयाशु गच्छति तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तौ निषेचयेत् ॥

अर्थ–तृषा, मूर्छा और मद रोगसे पीडित रोगीका वैरेचनिक औषध के अतियोग से जीवशोणित निकल जाय तो रक्तपित्तातिसार के नाश करनेवाली प्राणरक्षणी क्रिया को तत्काल उपयोग में लावे । हरिण गौ और भैंस का ताजी रुधिर पान करावै । यह रुधिर शीघ्रही जीवशोणित से मिलकर उसे पुष्ट कर देता है । तथा इन्हीं मृगादि के रक्तमें नई पैदा हुई कुशाको मलकर वस्तिस्थान में सेवन करे ।

उक्तरोग में दुग्धपान ।

श्यामाकाइमर्यशृङ्गवेरदूर्वाशरैः शृतं पयः । घृतमंडांजनयुतं वास्तं वा योजयेद्भिषम् ॥ पिच्छाबास्तं सुशीतं वा घृतमंडानुवासनम्

अर्थ- श्यामा, खंभारी, मुलहटी, दूर्वा और खसकी जड इनके साथ औटाये हुए दूधमें घृतमंड और रसौत मिलाकर ठंडी हो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने पर वस्तिद्वारा प्रयोग करे। अथवा पिच्छावस्ति वा घृतमंड का अनुवासन देवै।

गुदभ्रंश की चिकित्सा।

गुदं भ्रष्टं कषायैश्च स्तंभयित्वा प्रवेशयेत्।

अर्थ—गुदा के बाहर निकल आनेपर कषायरसयुक्त द्रव्यों के काढे द्वारा इसको स्तंभित करके भीतर प्रवेश करदे।

संज्ञानाश में गायनश्रवण।

विसंज्ञं श्रावयेत्साम वेणुगीतादिनिस्वनम्

अर्थ—जो रोगी बेहोश हो गयाहो तो सामवेद के भजन, बंशी की ध्वनि वा गीत सुनाना उचित है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां कल्पस्थाने तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतो दोषहरणसाकल्यं बस्तिकल्पं व्याख्यास्यामः॥

अर्थ—अब हम यहांसे दोषहरण साकल्य बस्तिकल्प नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

सर्वगदप्रमाथी वस्ति।

" बलां गुडूचीं त्रिफलां सराष्नां
द्विपंचमूलं च पलोन्मितानि।
अष्टौ फलान्यर्धतुलां चमांसा-
च्छागात्पचेदप्सु चतुर्थशेषम्॥ १॥
पूतो यवान्यादिफलावशेष-
वचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम्।
कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैः सतैलै-
र्युक्तः सुखोष्णो लवणान्वितश्च॥ २॥
बस्तिः परं सर्वगदप्रमाथी
स्वस्थे हितो जीवनबृंहणश्च।
बस्तौ च यस्मिन्पाठितो न कल्कः
सर्वत्र दद्यादमुमेव तत्र॥ ३॥

अर्थ—खांटी, गिलोय, त्रिफला, रास्ना और दशमूल प्रत्येक एक पल, मेनफल आठ पल, बकरे का मांस पचास पल, इन सब द्रव्यों से चौगुना जल डालकर पकावै चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले। फिर इस काढेमें अजवायन, मेनफल, बेलागिरी, कूठ, बच, सोंफ, नागरमोथा इनका कल्क डालदे गुड, मधु, घृत, तेल, और नमक इनमें से घी और तेल बातमें काढे से चौथाई, पित्त में षष्ठांश, और कफमें अष्टमांस मिलावे तथा गुड, मधु, और नमक भी ऐसे प्रमाण से मिलावे कि जिससे न तो अत्यन्त अच्छता और न अधिक नमकीनता हो। फिर इस काढेका वस्तिद्वारा प्रयोग करे। यह सर्वरोग नाशक और सुस्थ मनुष्यों को हितकारी तथा जीवन और वृंहण है। यदि वस्ति के किसी प्रयोग में कल्कका वर्णन न हो तो यही यवान्यादिक कल्क समझना चाहिये।

निरूहण वस्ति।

द्विपंचमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः
सच्छागमांसस्य स पूर्वकल्कः।
त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरूहः
सर्वानिलव्याधिहरः प्रदिष्टः॥ ४॥

अर्थ—दशमूल का काढा बकरे के मांस के साथ कांजी मिलाकर और पूर्वोक्त यवानी आदि का कल्क डालकर घी, वसा और मज्जा इन तीनों स्नेहों से युक्त निरूहण वस्ति सर्वोत्तम और सब प्रकार की वात-व्याधियों को दूर करनेवाली है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बलादि निरूहण ।

बलापटोली लघुपंचमूल-
त्रायन्तिकैरंडयवात्सुसिद्धात् ।
प्रस्थो रसाच्छागरसार्धयुक्तः
साध्यः पुनःप्रस्थसमः स यावत् ॥ ५ ॥
प्रियंगुकृष्णाधनकल्कयुक्तः
सतैलसर्पिर्मधुसैंधवश्च ।
स्याद्दीपनो मांसबलप्रदश्च
चक्षुर्बलं चोपदधाति सद्यः ॥ ६ ॥

अर्थ–खरैटी, पर्वत, लघुपंचमूल, त्रायमाण, अरंड, और जौ इनका काढा एक प्रस्थ और बकरे के मांसका रस एक प्रस्थ इन दोनों को मिलाकर पकावे जब एक प्रस्थ रहजाय, तब उतार ले । फिर इसमें प्रियंगु, पीपल और मोथा इनका कल्क तथा तेल, घी और सेंधानमक डालकर वस्तिका प्रयोग करे । यह अग्निसंदीपन, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और आंखों की ज्योति को बढानेवाला है ।

अन्य प्रयोग ।

एरंडमूलात्रिपलं पलाशा-
त्तथा पलांशं लघुपंचमूलम् ।
रास्नाबलाछिन्नरुहाश्वगंधा-
पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ ७ ॥
फलानि चाऽष्टौ सलिलाढकाभ्यां
विपाचयेदष्टमशेषितेऽस्मिन् ।
वचाशताह्वाहपुषाप्रियंगु-
यष्टीकणावत्सकबीजमुस्तम् ॥ ८ ॥
दद्यात्सुपिष्टं सहसार्ध्यशैल-
मक्षप्रमाणं लवणांशयुक्तम् ।
समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो
बस्तिर्जयेल्लेखनदीपनोऽसौ ॥ ९ ॥
जंघोरुपादत्रिकपृष्ठकोष्ठ-
हृद्गुह्यशूलं गुरुतां विबंधम् ।
गुल्माश्मवर्चग्रहणीगुदोत्थां-
स्तांस्तांश्च रोगान्कफवातजातान् ॥

अर्थ–अरंड की जड तीन पल, केसू तीन पल, लघुपंचमूल एक पल, रास्ना, खरैटी, गिलोय, असगंध, सांठ, अमलतास और देवदारू प्रत्येक एक पल, मेनफल आठ नग इन सबको एक आढक जल में पकावे जब अष्टमांश शेष रहे तब उतार कर छान ले । फिर इसमें बच, सोंफ, हाऊबेर, प्रियंगु, मुलहटी, पीपल, इन्द्रजौ, मोथा और रसौत प्रत्येक एक तोला, सेंधानमक चौथाई कर्ष, इन सबको बारीक पीसकर डालदें, फिर इसमें शहत, तेल और गोमूत्र भी मिलाकर बस्ति की कल्पना करे ।

पित्तरोगनाशनी वस्ति ।

यष्ट्याह्वरोध्राभयचंदनैश्च
शृतं पयोन्यं कमलोत्पलैश्च ।
सशर्करक्षौद्रघृतं सुशीतं
पित्तामयान्हंति सजीवनीयम् ॥ ११ ॥

अर्थ–मुलहटी, लोध, खस, चंदन, कमल और नीलोत्पल इनको डालकर औटाया हुआ दूध इसमें जीवनीयगणोक्त द्रव्यों का कल्क डाले, तथा ठंडा होने पर घी, शहत और खांड मिलाकर वस्ति देवे, इससे सब प्रकार के पैत्तिक रोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्यवस्ति ।

रास्नां वृषं लोहितिकामनंतां
बलां कनीयस्तृणपंचमूल्यौ ।
गोपांगनाचंदनपद्मकधौं-
यष्ट्याह्वरोध्राणि पलार्धकानि ॥ १२ ॥
निःक्काथ्य तोयेन रसेन तेन
शृतं पयोर्धाढकमंबुहीनम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवंतिमेदर्धिवरीविदारी
वीराद्विकाकोलिकसेरुकाभिः ॥ १३ ॥
सितोपलाजीवकपद्मरेणु-
प्रपौंड्रीकोत्पलपुंडरीकैः।
लोहात्मगुप्तामधुयष्टिकाभि-
र्नागाह्वमुंजातकचंदनैश्च ॥ १४ ॥
पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं
ससैंधवं शीतलमेव दद्यात्।
प्रत्यागते धन्वरसेन शालीन्
क्षीरेण वाऽद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ १५ ॥
दाहातिसारप्रदरास्रपित्त-
हृत्पांडुरोगान्विषमज्वरं च।
सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्
सर्वामयान् पित्तकृतान्निहंति ॥ १६ ॥

अर्थ–रास्ना, बासक, मजीठ, अनंतमूल खैर, लघुपंचमूल, तृणपंचमूल, कालीसारिवा, रक्तचन्दन, पद्माख, ऋद्धि, मुलहटी और लोध, प्रत्येक आधा पल, इनका क्वाथ करले, इसमें आधा आढक दूध पकावै, जब दूध शेषरहे तब उतारकर छानले। फिर इसमें जीवंती मेदा, ऋद्धि, सितावर, विदारीकंद, काकोली खीरकाकोली, कसेरू, शर्करा, जीवक, कमलकेसर, प्रपौंडरीक, उत्पल, पद्म, अगर, कमाच, मुलहटी, लक्षणामूल, मुंजातक और रक्तचंदन इन सब द्रव्योंका कल्क तथा घी शहत और सेंधानमक मिलाकर ठंडा होनेपर वस्तिद्वारा प्रयोग करै। वस्तिके प्रत्यागत होनेपर रोगी को परिषिक्त करके साम्य के अनुसार जांगल मांसरस के साथ अथवा दूधके साथ शाली चांवलों का भात खाने को दे। इस वस्तिसे दाह, अतिसार, प्रदर रक्तपित्त, हृद्रोग, पांडुरोग, विषमज्वर, गुल्म मूत्राघात, और कामलादि पित्तज रोग सब नष्ट होजाते हैं।

कफजरोगों में निरूहण ॥

कोशातकारग्वधदेवदारु-
मूर्वाश्वदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः।
पक्त्वा कुलत्थान्वृहतीं च तोये
रसस्य तस्य प्रसृता दश स्युः ॥ १७ ॥
तान् सर्षपैलामदनैः सकुष्ठै-
रक्षप्रमाणैः प्रसृतैश्च युक्तान्।
क्षौद्रस्य तैलस्य फलाह्वयस्य
क्षारस्य तैलस्य ससर्षपस्य च ॥ १८ ॥
दद्यान्निरूहं कफरोगिताय
मंदाग्नये चाशनविद्विषे च।

अर्थ–घीया तोरई, अमलतास, देवदारू, मूर्वा, गोखरू, इन्द्रजौ, आक, पाठा, कुलथी और कटेरी इन सब द्रव्यों को इकट्ठा करके इनमें इतना जल डाले कि चौथाई शेष रहने पर दस प्रसृत रहजाय, फिर इस क्वाथमें सरसों, इलायची, मैनफल, और कुडा इनका कल्क प्रत्येक दो तोले, तथा मधु और मैनफल का तेल, क्षारतेल और घी इनमें से प्रत्येक दो पल मिला उस रोगी को निरूहण देवे जिसकी अग्निमंद पडगई हो और भोजन में अरुचि हो।

सुकुमारों को निरूहण ॥

वक्ष्ये मृदून्स्नेहकृतो निरूहान्
सुखोचितानां प्रसृतैः पृथक् स्युः ॥
अथेमान्सुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान्मृदून्
कर्मणा विप्लुतानां तु वक्ष्यामि प्रसृतैः पृथक्॥

अर्थ–अब हम सुकुमार और सुखी मनुष्यों के संबंधमें प्रसृत परिमित मृदु और स्नेहन निरूहों का पृथक् पृथक् वर्णन करेंगे। जो सुकुमार है और वमनादि कर्मसे भ्रष्ट हैं उनके संबंधवाली स्नेहन और मृदु निरूहण पृथक् २ प्रसृति परिमाण से वर्णन करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातनाशक वस्ति ।

क्षीराद् द्वौ प्रसृतौ कार्यौ मधुतैलघृतात्प्रयः ।
खजेन मथितो वस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत् ॥

अर्थ–दूध चार पल, तथा मधु तेल और घी चार प्रसृत, इन सब द्रव्यों को रई से मथकर वस्ति द्वारा प्रयोग करना चाहिये । यह वस्ति वातनाशक तथा बल और वर्ण को करनेवाली है ।

वातनाशक वस्ति ।

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषाम् ।
बिल्वादिमूलकाथाद् द्वौ कौलत्थाद् द्वौ स वातजित् ॥ ४२ ॥

अर्थ–तेल, प्रसन्ना, मधु और घृत प्रत्येक एक प्रसृत, बिल्वादि पञ्चमूल का क्वाथ दो प्रसृत, इनकी वस्ति वातनाशक है ।

अभिष्यन्दादिनाशक वस्ति ।

पटोलनिंबभूतीकरास्नासप्तच्छदांभसः ।
प्रसृतं पृथगाज्याच्च वस्तिः सर्षपकल्कवान्
सपंचतिक्तोऽभिष्यंदकृमिकुष्ठप्रमेहहा ।

पर्वल, नीमकी छाल, चिरायता, रास्ना और सातला इनमें से प्रत्येक का काढा एक प्रसृत, घी एक प्रसृत, इनके साथ सरसों का कल्क और पञ्चतिक्त घृत मिलाकर उसकी वस्ति देनाचाहिये, इससे अभिष्यन्द कृमि, कुष्ठ और प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ।

विट्संगादि नाशकवस्ति ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमंडाम्लकांजिकात् ॥
प्रसृताः सर्षपैः पिष्टैर्विट्संगानाहभेदनः ।

अर्थ–तेल, गोमूत्र, दहीका मंड और अम्लकांजी प्रत्येक चार प्रसृत, इनमें सरसों पीसकर मिलादेवै । इससे वस्ति प्रयोग करनेसे विष्टाका विबंध और आनाह जाता रहता है ।

शुक्रकारक वस्ति ।

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषाम् ।
एकैकप्रसृतो वस्तिः कृष्णाकल्को वृषत्वकृत्

अर्थ–दुधिका, ईखकी जड, शालपर्णी रास्ना, विदारीकंद, शहत और घी प्रत्येक एक प्रसृत और इनके साथ में पीपलका कल्क मिलाकर वस्ति देने से शुक्रकी वृद्धि होती है ।

सिद्धवास्तियों का वर्णन ।

सिद्धवस्तीनतो वक्ष्ये सर्वदा यान्प्रयोजयेत्
निर्व्यापदो बहुफलान्बलपुष्टिकरान् सुखान्

अर्थ–अब हम यहां से सिद्ध वस्तियों का वर्णन करते हैं, इनका प्रयोग सदा किया जाता है । ये वस्तियां निर्व्यापद बहुत गुणकारक, बल और पुष्टि करनेवाली हैं, तथा सुखकारक भी हैं ।

प्रमेहनाशक वस्ति ।

मधुतैले समे कर्षैः सैंधवाद् द्विगुणैर्युतैः
एरंडमूलकाथेन निरूहो मधुतैलिकः ।
रसायनं प्रमेहार्शः कृमिगुल्मांत्रवृद्धिनुत् ॥

अर्थ–मधु और तैल समान भाग, सेंधानमक एक कर्ष, सोंफ दो पिचु, इन सब द्रव्यों को अरंड के काढेमें मिलाकर देने से यह रसायन है प्रमेह, अर्श, कृमि, गुल्म और अंत्रवृद्धि को दूर करताहै । इस निरूहण वस्ति में मधु और तैलका अधिक संयोग होता है, इससे इसे मधुतैलिक कहते हैं ।

नेत्रोंको हितकारक वस्ति ।

सयष्टिमधुकश्चैष चक्षुष्यो रक्तपित्तजित् ।

अर्थ–मुलहटी से संयुक्त की हुई वस्ति नेत्रोंको हितकारक तथा रक्तपित्तनाशक होती है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाठादि रोगनाशक वस्ति ।

यापनो घनकल्केन मधुतैलरसाज्यवान् ।
पायुजंघोरुवृषणबस्तिमेहनशूलजित् ।

अर्थ–मोथे के कल्कके साथ मधु, तेल, मांसरस और घृत मिलाकर जो वस्ति दी जाती है वह गुदा, जंघा, ऊरु, वृषण, वस्ति मेहन और शूल को जीतने वाली होती है।

निरूहणकी कल्पना ॥

प्रसृतांशैर्घृतक्षौद्रवसातैलैः प्रकल्पयेत् ३०

अर्थ–घृत, मधु, वसा और तेल प्रत्येक दो पल, सेंधानमक एक तोला, हाऊबेर दो तोला इन सब द्रव्यों से यापना वस्ति की कल्पना करनी चाहिये।

युक्तरथनामा वस्ति ॥

एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलः ससैंधवः ।
एष युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफलः॥

अर्थ–अरंड की जडके काढेमें मधु, तेल और सेंधानमक तथा वच, पीपल और बेलफल का कल्क मिलाकर वस्ति का प्रयोग करे। यह वस्ति युक्तरथ कहलाती है। सुश्रुत में कहा है, रथेष्वपिहि युक्तेषु हस्त्यश्वेष्वपियोजयेत्। तस्मान्नप्रतिषिद्धोयमतो युक्तरथः स्मृतः। अर्थात् यह हाथी घोडे आदि से जुते हुए रथमें भी प्रतिषिद्ध नहीं होती है।

दोषनाशक वस्ति ।

स क्वाथो मधुषट्पंथशताह्वाहिंगुसैंधवः ।
सुरदारुवचाराह्नाबस्तिर्दोषहरः परः ३२

अर्थ–अरण्ड की जड़ के काढे के साथ शहत, बच, सौंफ, हींग, सेंधानमक, सफेद बच, रास्ना मिलाकर वस्तिका प्रयोग करने से दोषों का नाश होजाता है, यह औषध बहुत उत्तम है।

सिद्ध वस्ति ।

पंचमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु
ससैंधवः समधुकः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः

अर्थ=पञ्चमूल का काढा, तिल का तेल, पीपल, शहत, सेंधानमक, और मुलहटी मिलाकर वस्ति की कल्पना करै। यह सिद्ध वस्ति है।

कफादिनाशक वस्ति ।

द्विपंचमूलत्रिफलाफलबिल्वानि पाचयेत् ॥
गोमूत्रेण च पिष्टैश्च पाठायत्सकतोयदैः ॥
सफलैः क्षौद्रतैलाभ्यां क्षारेण लवणेन च ।
युक्तो बस्तिः कफव्याधिपांडुरोगविसूचिषु
शुक्रानिलविबंधेषु बस्त्याटोपे च पूजितः

अर्थ–दशमूल, त्रिफला, बेलफल और बेलगिरी, इन सब द्रव्यों को गौ मूत्र में पकाकर काथ करले, इस काथमें पाठा, इन्द्रजौ, मोथा और बेलफल पीसकर डालदे, तथा मधु, तिलका तेल, जवाखार और सेंधानमक मिलाकर वस्ति का प्रयोग करै, इस बस्तिसे कफरोग, पांडुरोग, विसूचिका वीर्यरोध, वायु विबंध तथा आटोप रोग दूर होजाते हैं ॥

वातनाशक वस्ति ।

मुस्तापाठामृतैरंडयलाराह्नापुनर्नवा ॥३६॥
मंजिष्ठारग्वधोशीरत्रायमाणाक्षरोहिणीः ।
कनीयः पंचमूलं च पालिकं यद्वनाष्टकम् ॥
जलाढके पचेत्तच्च पादशेषं परिस्रुतम् ।
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं क्षीरशेषं पुनः पचेत् ॥
सपादजांगलरसः ससर्पिर्मधुसैंधवः ।
पिष्टैर्यष्टिमिसिंड्यामाकलिंगकरसांजनैः ॥
बस्तिःसुखोष्णोमांसाग्निबलशुक्रविवर्धनः ॥
वातातृड्नोहसंहारी गुल्मविण्मूत्रसंग्रहम्॥
विषमज्वरवीसर्पवर्त्मध्मानप्रवाहिकाः ।
वंक्षणोरुकटीकुक्षिमन्याश्रोत्रशिरोरुजः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हन्यादक्षुद्ररोगान्वशोफकासाश्मकुंडलान्।
बध्नुयः पुरुषो राज्ञां यापनानां रसायनम्॥

अर्थ—मोथा, पाठा, गिलोय, अरंड की जड, खरैटी, रास्ना, पुनर्नवा, मजीठ, अमलतास, खस, त्रायमाणा, बहेडा, हरड, और लघुपंचमूल प्रत्येक एक पल, मैनफल, आठ, इन सबको एक आढक जलमें पकावै चौथाई शेष रहनेपर उतारकर छानले, फिर इस काढेमें दो प्रस्थ दूध मिलाकर फिर पकावै, जब दूध शेष रहजाय तब उतारकर छानले। फिर उसमें दूधसे चौथाई जांगल मांसरस तथा घी शहत और सेंधानमक मिलादे। तथा मुलहटी, सौंफ, श्यामा, इन्द्रजौ और रसौत इनको पीसकर मिलादे। इसको ईषदुष्ण अवस्था में प्रयोग करै। यह मांस जठराग्नि, बल और वीर्यको बढानेवालाहै, तथा वातरक्त, मोह, प्रमेह, अर्शो, गुल्म,मल और मूत्रका विबंध, विषमज्वर, विसर्प, वर्त्म आध्मान, प्रवाहिका, वंक्षण ऊरु, कमर, कूख,मन्या,श्रोत्र और सिरका दर्द, अमृग्दर, उन्माद, सूजन, खांसी, अश्मरी और वातकुंडलिका जाते रहते हैं। यह नेत्रों को हितकारी, पुत्रदायक, और राजाओं के कष्टसाध्य रोगमें रसायनहै।

शुकनर्द्धकवस्ति।

मृगाणां लघुवृद्धानां दशमूलस्य चांभसा।
हपुषामिसिगांगेयीकल्कैर्वातहरः परम्॥
मिश्रहोत्यर्थवृष्यश्च महास्नेहसमन्वितः।

अर्थ—छोटे और बडे दोनों प्रकार के मृगोंका मांस और दशमूल इनका काढा करके उसमें हाऊबेर, सौंफ, और नागरमोथा पीसकर मिलादे यह वातनाशक परमोत्तम औषधहै। तथा इसमें महास्नेह का संयोग किया जाय तो यह अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है।

मयूरादि की कल्पना।

मयूरं पक्षपित्तांत्रपादविद्वतुण्डवर्जितम्॥
लघुना पञ्चमूलेन पालिकेन समन्वितम्।
पक्त्वा क्षीरजले क्षीरशेषम्-
सघृतमाक्षिकम्॥ ४५॥
तद्विरारिकणाग्रंथ्यशताह्वाफलकल्कवत्।
बस्तिरीषत्पटुयुतः परमं बलशुक्रकृत्॥ ४६॥

अर्थ—पंख, आंत, पांव, पुरीष, और चोंच दूर करके मोर का मांस तथा लघुपंचमूल प्रत्येक एक पल इनका काढा करले, चौथाई शेष रहने पर छानले फिर इसमें दूध मिलाकर पकावे, दूध शेष रहने पर घी शौर शहत मिलादेवै, पीछे इसमें विदारीकंद, पीपल, मुलहटी, सोंफ, मेनफल तथा थोडा सा सेंधानमक इन सबको पीसकर मिलादेवै। यह वस्ति अत्यन्त बल और वर्यिको बढानेवाली है।

तीतिरआदि की कल्पना।

कल्पनेयं पृथक् कार्या तित्तिरिप्रभृतिष्वपि
विष्किरेषु समस्तेषु प्रतुदप्रसहेषु च ४७॥
जलचारिषु तद्वच्च मत्स्येषु क्षीरवर्जिता।

अर्थ—तीतिर आदि पक्षी, तथा सब प्रकार के विष्किर, प्रतुद, प्रसह और जलचर जीवों के मांसकी ऊपर लिखी हुई रीति से वस्ति की कल्पना करै। परन्तु मछलियों की मांसकी वस्ति में दूध नहीं डालना चाहिये क्योंकि दूध और मछली विरुद्ध हैं।

गोधादि की वस्ति।

गोधानकुलमार्जारशल्यकोलूकजं पलम्॥
पृथक् दशपलं क्षीरे पंचमूलं च साधयेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्पयः फलवैदेहीकल्काढ्यलषणान्वितम् ॥
सासितातैलमध्वाज्यो बस्तिर्योज्यो-
रसायनम् ।
व्यायाममथितोरस्कक्षीणेंद्रियबलौजसाम्
विबद्धशुक्रविण्मूत्रखुडवातविकारिणाम् ।
गजवाजिरथक्षोभभग्नजर्जरितात्मनाम् ५१
पुनर्नवत्वं कुरुते वाजीकरणसत्तमः ।

अर्थ–गोह, न्यौला, बिल्ली, सेह चूहा इनका मांस और पंचमूल इनको अलग अलग दस पल लेकर दूधके साथ पकावै। फिर इसमें मेनफल और पीपल, सेंधानमक और बिडनमक पीसकर मिलादे, तथा मिश्री, तेल, शहत और घी मिलाकर वस्तिकी कल्पना करै, यह वस्ति रसायन है। इसके प्रयोग से व्यायाम से मथित वक्षःस्थलवाला क्षीण इंद्रिय बल और ओजवाला, शुक्र विष्ठा मूत्र की विबंधतावाला खुडवात रोगी, तथा हाथी, घोडा, रथ, इनकी सवारी से जर्जरित देहवाला फिर नवीनता को धारण करता है। यह श्रेष्ठ वाजीकरण औषध है।

केंचकीफली के साथ पथ्य।

सिद्धेन पयसा भोज्यमात्मगुप्तोक्षतेक्षुरैः ५१

अर्थ–केंचके बीज, चिरमिठी और तालमखाने के साथ सिद्ध किये हुए दूधकी वस्ति देवै।

स्नेहवस्ति।

स्नेहांश्च यंत्रणान् सिद्धान्सिद्धद्रव्यैः
प्रकल्पयेत् ।

अर्थ–बहुत से सिद्ध द्रव्यों के साथ यंत्रणारहित स्नेहवस्ति की कल्पना करै।

अन्यस्नेह वस्ति।

"क्षीरघ्नाः सर्वरीहारा वक्ष्यंते स्नेहबस्तयः
दशमूलं बलां रास्नामश्वगंधां पुनर्नवाम् ।
गुडूच्यैरण्डभूतीकभार्गीं वृषकरोहिषम् ॥
शतावरीं सहचरं काकनासां पलांशकम् ।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रस्तोन्मितान्
वहे विपाच्य तोयस्य द्रोणशेषेण तेन च ।
पचेत्तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥
अनुवासनमित्येतत्सर्ववातविकारनुत् ।

अर्थ–अब हम यहां से सपरिहार वस्तियों का वर्णन करते हैं, ये दोषों को नाश करनेवाली होती है। दशमूल, खरैटी, रास्ना, असगंध, पुनर्नवा, गिलोय, अरंड की जड, अजवायन, भाडंगी, अडूसा, रोहिषतृण, सितावर, कुरैटा, काकजंघा, प्रत्येक एक पल, जौ, उरद, अलसी, बेर, कुलथी, प्रत्येक दो पल इन सबको एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतार कर छानले। और इसमें एक आढक तेल तथा एक एक पल जीवनीय गणोक्त द्रव्य पीसकर डालकर मिलादे। यह अनुवासन वस्ति सब प्रकार के वातरोगों को दूर करनेवाली है।

आनूप जीवों की वसा।

अनूपानां वसा तद्वज्जीवनीयोपसाधिता ॥

अर्थ–जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ पकाई हुई आनूप जीवों की चर्बी की वस्ति पूर्ववत् गुणकारक होती है।

अन्य तैल।

शतावाचेरिबिल्वाम्लैस्तैलं सिद्धंसमीरणे

अर्थ सौंफ, कंजा और कांजी इन से सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन वस्ति वातनाशक होती है।

अन्य घृत प्रयोग।

क्षीरेवेनाग्निवर्णेन तप्तं वाऽनिलजिद्घृतम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सैंधेनमक के डेले को लाल गरम कराके घी में बुझावै, इस घृत के सेवन से वातरोग दूर होजाते हैं ।

पौष्टिक अनुवासन ।

जीवंतीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम् ।
शतावर्षभकौ कृष्णां काकनासां-
शतावरीम् ॥ ५९ ॥
क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शठी-
वचाम् ।
पिष्ट्वा तैलघृतंक्षीरे साधयेत्तच्चतुर्गुणे ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्धनम् ।
रजःशुक्रामयहरं पुत्रीयमनुवासनम् ६१ ॥

अर्थ–जीवंती, मैनफल, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकजंघा, सितावर, केंच, क्षीरकाकोली काकडासींगी, कचूर, बच, इन सबको पीसकर चौगुने दूध में मिलाकर घी और तेल को पकावै । यह अनुवासन वस्ति बृंहण वातपित्तनाशक, बल, वीर्य और अग्नि को बढानेवाली, रज और वीर्य संबंधी रोगोंको दूर करने वाली, और पुत्रोत्पादन में हितकारी है ।

अन्य अनुवासन ।

सैंधवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलो वचा ।
ह्रीवेरं मधुकं भार्गी देवदारुसकट्फलम् ॥
नागरं पुष्करं मेदा चविका चित्रकः शठी ।
विडंगातिविषा श्यामा हरेणुर्नीलिनी-
स्थिरा ॥ ६३ ॥
बिल्वाजमोदचपला दन्ती राह्ना च तैः समैः
साध्यमेरण्डतैलं वा तैलं वा कफरोगजुत् ॥
वर्म्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान्
आनाहमश्मरीं चाशु हन्यात्तदनुवासनम् ॥

अर्थ–सैंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, जवखेत, बच, मेत्रवाला, मुलहटी, भाडंगी, देवदारु, कायफल, सोंठ, पुष्करमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, बिडंग, अतीस, श्यामा, हरेणु, नीलिनी, शालपर्णी, बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती और रास्ना इन सबको समान भाग ले, इनके साथ अरंड का तेल वा तिल का तेल वा अरंड और तिल का तेल मिलाकर पकावै । यह अनुवासन वस्ति कफरोगनाशक, वर्म्म, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह और अश्मरी इन सब रोगों को शीघ्र नष्ट कर देती है ।

कफनाशक तेल

" साधितं पंचमूलेन तैलं बिल्वादिनाऽथवा
कफघ्नं कल्पयेत्तैलं द्रव्यैर्वा कफघातिभिः ॥
फलैरष्टगुणैश्चाम्लैः सिद्धमन्वासनं कफे ।

अर्थ–बिल्वादि पंचमूल अथवा कफनाशक द्रव्यों के साथ में अठगुनी कांजी आदि के साथ सिद्ध किया हुआ तेल कफ में सिद्ध प्रयोग है ।

तीक्ष्णादि वस्ति ।

मृदुवस्तिर्जडीभूते तीक्ष्णोऽन्यो वस्तिरिष्यते ।
तीक्ष्णैर्विकर्षितः स्निग्धो मधुरः शिशिरोमृदुः ।

अर्थ–मधुरस्निग्धशीतलात्मक मृदु वस्ति के जडीभूत होने पर अर्थात् कोष्ठही में स्थित होने पर तीक्ष्ण वस्ति का प्रयोग करे । गोमूत्रादि तीक्ष्ण वस्तियों से कोष्ठके विकर्षित होने पर स्निग्ध मधुर और शीतल मृदु वस्ति का प्रयोग करना चाहिये ।

वस्तिको मृदु तीक्ष्णत्व ।

तीक्ष्णत्वं मूत्रपीलुभ्यां लवणक्षारसर्षपैः ।
प्रातःकाले विधातव्यं घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ॥

अर्थ–उचित काल का विचार करके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोमूत्र, पीलु, चीता, सेधा नमक, जवाखार और सरसों के योग से वस्ति में तीक्ष्णता तथा घी और दूधके संयोग से मृदुता करे।

सिद्धवस्ति का फल।

बलकालरोगदोषप्रकृतीः प्रविभज्य योजितो वस्तिः।
स्वैः स्वैरौषधवर्गैःस्वान् रोगान्निवर्तयति।

अर्थ—बल, काल, रोग, वातादि दोष और रोगीकी प्रकृति का विचार करके वातादि नाशक औषधों के संयोग से सिद्ध की हुई वस्तियां उन उन रोगोंको नष्ट करदेती हैं

वस्तियोजना का प्रकार।

उष्णार्तानांशीतांश्छीतार्तानांतथासुखोष्णांश्च तद्योग्यौषधयुक्तान्वस्तीन्संतर्क्य युंजीत।

अर्थ—यथायोग्य औषधोंसे युक्त वस्ति उष्णता से पीडित व्यक्तियोंको शीतल और शीत से पीडित व्यक्तियों को सुखोष्ण वस्ति देनी चाहिये।

विशोधन के योग्य।

वस्तीन्न बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विशोधनीयेषु
मेदस्विनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः
न क्षीणक्षत दुर्बलमूर्छित कृशशुष्कशुद्धदेहानाम्।
दद्याद्विशोधनीयान् दोषनिबद्धायुषो ये च,,

अर्थ—वमनविरेचन द्वारा शोधन के योग्य व्याधियों में बृंहण वस्तियोंका प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि मेदस्वी तथा कुष्ठ और प्रमेह से पीडित रोगी विशेष करके शोधन के योग्य होते हैं। क्षीण, क्षत, दुर्बल, मूर्छित कृश, शुष्क और शुद्ध देहवाले रोगीको वस्ति न देना चाहिये क्योंकि वस्ति के देनेसे दोषों के अति क्षीण होनेपर आयु नष्ट हो जाती है

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां कल्पस्थाने वस्तिकल्पश्चतुर्थोऽध्यायः।

पंचमोऽध्यायः।

अथाऽतो वस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहांसे वस्तिव्यापत्सिद्धि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अस्निग्ध देहमें वस्तिका प्रयोग।

"अस्निग्धस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः
शीतोऽल्पस्नेहलवणद्रव्यमात्रो घनोऽपि वा
वस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादबहिर्हरन्
करोत्ययोगं तेन स्याद्वातमूत्रशकृद्ग्रहः।
नाभिबस्तिरुजाटोहो हृल्लेपः श्वयथुर्गुदे॥
कंडूर्गंडानि पैषण्यमरतिर्वह्निमार्दवम्॥

अर्थ—जिस रोगीको पहिले स्नेह और स्वेदन न दिया गया हो और उसका कोष्ठ भारी हो उसको शीतल, अल्पस्नेह और नमक सेयुक्त अथवा गाढी वस्ति दीजाय तो वस्ति दुर्बल होनेके कारण दोषोंको बाहर नहीं निकाल सकती है, किन्तु उन्हों को संक्षोभित कर देती है और इससे अयोग हो जाता है ऐसा होनेसे अधोवायु, मूत्र और विष्टा का विबंध हो जाता है। नाभि और वस्तिमें दाह और वेदना होती है, हृदयमें उपलेप, गुदामें सूजन, खुजली, गंड, विवर्णता, अरति और अग्निमांद्य हो जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्तदशा में कर्तव्य ।

क्वाथद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि
उष्णस्य तस्माद्धयेकस्य तत्र पानं प्रशस्यते
फलवर्त्यस्तथास्वेदाः कालज्ञात्वाविरेचनम्
बिल्वमूलाग्निबृहत्यग्रकोलकुलत्थवान् ५
सुरादिमांसस्तत्रबस्तिः सप्राक्पेप्यस्तमानयेत्

अर्थ—इन लक्षणों के उपस्थित होनेपर अतिसार चिकित्सा में कहे हुए दो काथों में से एक (भूतीक पिप्पल्यादि वा बिल्वधनिको) क्वाथको गरम गरम पीना, फलवर्ती, स्वेद, अवस्थानुसार विरेचन, बेलगिरी की जड, निसोथ, देवदारु, जौ, बेर, कुलथी, इनकी वस्ति तथा सुरायुक्त वस्ति, इनमें यमान्यादि पूर्वलिखित द्रव्योंका कल्क मिलाकर देने चाहिये । इन प्रयोगोंसे उत्क्लिष्ट दोषोंका आकर्षण हो जाता है ।

वस्तिसेवायुरोध ।

युक्तोल्पवीर्यो दोषाढ्ये रूक्षेक्रूराशयेऽथवा ।
वस्तिर्दोषावृते रुद्धमार्गो रुंध्यात्समीरणम्
सविमार्गोनिलः कुर्याद्धाध्मानं मर्मपीडनम् ।
विदाहं गुदकोष्ठस्य मुष्कवंक्षणवेदनाम् ।
रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति ८

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रूक्षदेह तथा क्रूर कोष्ठवाले रोगी को अल्प वीर्यवाली वस्ति देनेसे वातादि दोषों द्वारा आवृत होने के कारण उसका मार्ग रुकजाताहै, और इससे वायुके गमनागमन के मार्ग को रोक देतीहै और इस कारण से वायु विमार्गगामी होकर आध्मान, मर्मवेदना, गुदा और कोष्ठमें विदाह, मुष्क और वंक्षण में वेदना होती है। हृदय में रुकजानेके कारण शूल करती हुई वायु इधर उधर घूमती है ।

फलवर्तिका प्रयोग ।

स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तत्र वर्तिं प्रयोजयेत्
बिल्वादिश्च निरूहः स्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान्
सरलामरदारुभ्यां साधितं वाऽनुवासनम्

अर्थ—रोगी को तेल द्वारा उत्तम रूपसे अभ्यक्त तथा स्वेदन कर्मसे स्विन्न करके अवस्था विशेष में फलवर्ति का प्रयोग करना चाहिये, अथवा पीलु, सरसों, गोमूत्र और बिल्वादि से युक्त निरूहण देवै । अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु से सिद्ध की हुई अनुवासन देवै ।

वेगसंरोधमें वस्तिका फल ।

कुर्वतो वेगसंरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया ।
अस्निग्धलवणोष्णो वा बस्तिरल्पोल्पभेषजः
मृदुर्बामारुतेनोर्ध्वं विक्षिप्तोमुखनासिकात्
निरेति मूर्छाहृल्लासतृड्दाहादीन्प्रवर्तयन् ।

अर्थ—मलमूत्रादि वेगों के रोकनेवाले रोगी को तथा अति मात्रा में दी हुई वस्ति से पीडित रोगी को, अथवा स्निग्धतारहित लवणोष्ण वस्ति वा अल्पमात्रा की वस्ति, वा अल्पऔषधान्वित वस्ति, अथवा मृदुवस्ति के प्रयोग से वायुद्वारा ऊपर को फेंकी हुई वस्ति मूर्च्छा, हृल्लास, तृषा और दाहादि उपद्रव उत्पन्न करके मुख और नासिका द्वारा बाहर निकल आती है ।

उक्तअवस्था में कर्तव्य ।

मूर्छाविकारंदृष्ट्वास्यांसिचेच्छीतांबुनामुखम्
व्यजेदाक्लमनाशाच्च प्राणायामंचकारयेत्
पृष्ठपार्श्वोदरं मृज्यात्करैरुष्णैरधोमुखम् १३
केशेषूत्क्षिप्यधुन्वीत भीषयेद्वथालदंष्ट्रिभिः
शस्त्रोल्काराजपुरुषैर्हसेति तथा ह्यधः ॥
पाणिवस्त्रैर्मलापीडं कुर्योन्न म्रियते यथा ।
प्राणोदाननिरोधाद्धि सुप्रसिद्धतरायनः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपानः पवनो बस्तिं तमाम्बेवापकर्षति।
कुष्ठकक्कफलं वा पाययेतामलसंयुतम् ॥
औष्ण्यात्तीक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च बस्तिं सोऽस्या
नुलोमयेत्।
गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं चाधोनुलोमनम्
पक्वाशयस्थिते स्विन्ने निरूहो दशमूलिकः
मधुकोलकुलत्थैश्च विधेयो मूत्रसाधितैः ॥
बस्तिगोमूत्रसिद्धैर्वा सामृतावंशपल्लवैः।
पूतीकरञ्जत्वक्पत्रशठीदेवाह्वरोहिषैः ॥
सतैलगुडसिंधूत्थो विरेकौषधकल्कवान्।
बिल्वादिपञ्चमूलेन सिद्धो बस्तिरुरःस्थिते
शिरःस्थे नावनं धूमःप्रच्छार्द्य सर्षपैः शिरः।

अर्थ-उक्त हेतुओं से मूर्च्छादि रोगों के उपस्थित होनेपर मुखपर ठंडे जलके छींटे मारे। जब तक क्लांति दूर न हो तब तक ताडके पंखोंसे हवा करता रहे और रोगीसे प्राणायाम करावे, प्राणायामसे ऊर्ध्वक्षिप्त वस्ति नीचे को आजाती है। हाथों को गरम कर करके रोगी के पीठ, पसली और उदर पर फेरे। रोगी को औंधा मुख करके उसका केश पकड कर हिलावे। सिंहादि हिंसक जीव, शस्त्र, उल्का और राजपुरुषों का रोगी को भय दिखावे। इन कामों से ऊर्ध्वगामी वस्ति नीचे को प्रवृत्त होजाती है इस रीतिसे कि रोगी मरने न पावे हाथ वा वस्त्रसे रोगी का गला घोटे। ऐसा करनेसे प्राण और उदान वायु के रुक जाने के कारण अपानवायु वस्ति को शीघ्रही नीचे को खींच लेती है।

कूठ और सुपारी का कल्क कांजी मिला कर पान कराने से वह उष्णता, तीक्ष्णता और सरता के कारण वस्ति का अनुलोमन करता है।

निसोथ और हरड को पीसकर गोमूत्र के साथ पान कराने से भी वस्तिका अनुलोमन होता है। दोषके पक्वाशय में स्थित होने पर स्वेदन करके दशमूल के काढे की वस्ति देवे। अथवा जौ, बेर और कुलथी को गोमूत्र में सिद्ध करके वस्ति देवे। अथवा गिलोय, बांसके पत्ते, पूतीकरंज की छाल और पत्ते, कचूर, देवदारु और रोहिषतृण इन सब द्रव्यों को गोमूत्र में सिद्ध करके इसमें तेल, गुड, सेंधा नमक, तथा विरेचक औषधें डालकर वस्ति देवे। दोष के हृदय में स्थित होने पर बिल्वादि पंच मूल से सिद्ध की हुई वस्ति देवे। तथा दोषके सिरमें स्थित होने पर नस्यकर्म, धूम प्रयोग, तथा सरसों से मस्तक को आच्छादन करदेना उत्तम है।

अत्युष्णवस्तिका फल।

बस्तिरत्युष्णतीक्ष्णाम्लघनोत्तिस्वोदितस्य-
वा ॥ २१ ॥
अल्पे दोषे मृदौ कोष्ठे प्रयुक्तो वा पुनः पुनः।
अतियोगत्वमापन्नो भवेत्कुक्षिरुजाकरः २२
विरेचनातियोगेन स तुल्याकृतिसाधनः।

अर्थ-बिना स्वेदन कर्म किये अति उष्ण, अतितीक्ष्ण, अत्यम्ल वा अतिघन वस्ति देने से अथवा अल्प दोष में वा मृदु कोष्ठ में बार बार वस्ति देने से अतियोग होजाता है और ऐसा न होने से कुक्षि में वेदना होने लगती है। विरेचन के अतियोग में जो लक्षण और चिकित्सा कहे गये हैं, वेही इसमें भी जानने चाहियें।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पैत्तिक में कर्तव्य ।

बस्तिः क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णलवणः-
पैत्तिकस्य वा ॥ २३ ॥
गुदं दहन् लिखन् क्षिप्रङ्करोत्यस्य-
परिस्रवम् ।
सविदग्धं स्रवत्यस्रं वर्णैः पित्तं च भूरिभिः ॥
बहुशश्चातिवेगेन मोहं गच्छति सोऽसकृत्
रक्तपित्तातिसारघ्नी क्रिया तत्र प्रशस्यते ॥
दाहादिषु त्रिवृत्कल्कंमृद्वीकावारिणा पिबेत्
तद्धि पित्तशकृद्वातान्हृत्वादाहादिकान्जयेत्
विशुद्धश्च पिबेच्छीतां यवागूं शर्करायुताम्
युञ्ज्याद्वातिविरिक्तस्यक्षीणविद्कस्यभोजनम्
माषयूषेण कुल्माषान्पानं दध्यथवा सुराम् ।

अर्थ–क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और लवण से युक्त वस्तिका प्रयोग करना अथवा पित्तवाले रोगी को वस्ति देना, इनसे गुदा में दाह, खुरचन और फेंकने की सी दशा होकर परिस्राव होने लगता है । इस स्राव में विदग्ध रक्त तथा अनेक वर्णों से युक्त पित्त निकलता है, यह स्राव बहुत वेग से और बार बार होता है इससे रोगी अचेत होजाता है । इस दशा में रक्तपित्तनाशिनी तथा रक्तातिसारघ्नी चिकित्सा करना उत्तम है । दाह और बेचैनी में निसोथ के कल्क को दाखके काढे के साथ पान करावे इस से पित्त, विष्ठा और वायु निकलकर दाहादिक नष्ट होजाते हैं । जो रोगी विरेचन से शुद्ध होगया हो उसे शर्करा मिलाकर ठण्डी यवागू देना चाहिये । अतिरिक्त और क्षीण पुरीष वाले रोगी को उरद के यूष के साथ कुलमाष खाने को दे । तथा दही वा मद्य पीने को देवें ॥

स्नेहानुवासन का वर्णन ।

सिद्धिर्बस्त्यापदामेषं स्नेहबस्तेस्तु वक्ष्यते ।

अर्थ–यहां तक निरूह वस्तियों की व्याप्त सिद्धि का वर्णन किया गया है । अब यहां से स्नेहवस्ति (अनुवासन) की व्याप्तासिद्धि का वर्णन करेंगे–

वाताधिकयोग में चिकित्सा ।

शीतोल्पो वाऽधिके वाते पित्तेत्युष्णःकफेमृदु
अतिभुक्ते गुरुर्वर्चः संचयेऽल्पबलस्तथा ।
दत्तस्तैरावृतस्नेहो नायात्यभिभवादपि ।
स्तंभोरुसदनाध्मानज्वरशूलांगमर्दनैः ३० ॥
पार्श्वहृत्वेष्टनैर्विद्याद्वायुना स्नेहमावृतम् ।
स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तं रास्नापीतद्रुतैलिकैः
सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसाधितैः ।
निरूहैर्निर्हरत्सम्यक् समूत्रैः पंचमूलकैः
ताभ्यामेव च तैलाभ्यां सायं भुक्ते
ऽनुवासयेत् ।

अर्थ–वातकी अधिकता में अल्पमात्रामें शीतलवस्ति, पित्तकी अधिकता में अति-उष्ण वस्ति, और कफकी अधिकता में अति मृदु वस्ति दीजाय, तथा अतिभुक्त में मात्रा वा वीर्य दोनों प्रकार से भारी वस्ति और मलके संचय में मात्रा और वीर्य दोनों से अल्पबल वाली वस्ति दीजाय, तो वह वस्ति शीतादि कारण से कुपितदोष द्वारा आवृत होने से गुदा के मार्ग द्वारा प्रत्यागत नहीं होती है और इससे निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं । वायुद्वारा स्नेह से आवृत वस्ति में स्तंभता, दोनों ऊरुओं में शिथिलता, आध्मान, ज्वर, शूल, अंगमर्द, पार्श्ववेदना और अंगडाई आदि उपद्रव होते हैं। वातावृत स्नेहवस्ति को पीछे लिखे हुए

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्ण निरूहण द्वारा निकाल देवै। वे निरूहण ये हैं, यथा—कांजी, मदिरा, बेर, कुलथी, जौ इनसे सिद्ध किये हुए रास्ना और हलदी के तेल से, अथवा गोमूत्र से साधित किये हुए उक्ततेलों से वा पंचमूल के काढे से सिद्ध किये हुए तेलसे वा रास्ना वा हलदी के पृथक् पृथक् तेलों से निरूहण देवे। अथवा इन्हींतेलों से सायंकाल के भोजन के पीछे अनुवासनवस्ति देवै।

पित्तावृत वस्तिमें उपाय।

तृड्दाहरागसंमोहवैवर्ण्यतमकज्वरैः ३३ ॥
विद्यात्पित्तावृतं स्वाद्वतिक्तैस्तं बस्तिभिर्हरेत्

अर्थ—पित्तावृत स्नेह वस्तिमें तृषा, दाह राग, मोह, विवर्णता, तमकश्वास और ज्वर ये उपद्रव होते हैं पित्तावृत वस्तिको मधुर और तिक्त द्रव्यों की वस्ति द्वारा निकालना चाहिये।

कफावृत स्नेहवास्तिमें उपाय।

तंद्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः ३४ ॥
संमूर्छांग्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्नेहमावृतम्
कषायतिक्तकटुकैः सुरामूत्रोपसाधितैः ३५
फलतैलयुतैः साम्लैर्बस्तिभिस्तं विनिर्हरेत्।

अर्थ—तंद्रा, शीतज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि भारापन, मूर्च्छा और ग्लानि हो तो जान लेना चाहिये कि स्नेहवस्ति कफसे आवृत है। कषाय, कटु और तिक्त रसोंसे युक्त सुरा और गोमूत्र से साधित खट्टेद्रव्यों से मिली हुई फल तैल से युक्त वस्तिद्वारा उसको निकाले। यहां फल तैलसे उष्ण वीर्यवाले अखरोटादि फलों के तेलका ग्रहण है कोई कोई मेनफल और तिलका तेल मिला हुआ इनके द्वारा वस्तिका प्रयोग मानते हैं।

अत्यशनावृत स्नेहवस्तिका उपाय।

छर्दिमूर्छारुचिग्लानिशूलनिद्रांगमर्दनैः।
आमलिंगैः सदाहैस्तं विद्यादत्यशनावृतम्।
कटूनां लवणानां च कषायैश्चूर्णैश्च पाचनम्
मृदुर्विरेकः सर्वं च तत्रमविहितं हितम्।

अर्थ—वमन, मूर्च्छा, अरुचि, ग्लानि, शूल, निद्रा और अंगमर्द इन सब लक्षणों के प्रस्तुत होने पर जान लेना चाहिये कि स्नेहवस्ति अतिभोजन से आवृत है इसमें आम दोष के लक्षण और दाह भी होता है इसमें कटु और लवण द्रव्योंके क्वाथ और चूर्ण द्वारा पाचन हितकारी है। तथा मृदु विरेचन और आम चिकित्सा में कही हुई सब औषधें हितकारी होती हैं।

पुरीषावृतस्नेहवस्ति।

विण्मूत्रानिलसंगार्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः ॥
स्नेहं विद्यावृतज्ञात्वास्नेहस्वेदैः सवर्तिभिः।
श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्चनिरूहैःसानुवासनैः
निर्हरेदुद्धिना सम्यगुदावर्तहरेण च।

अर्थ—मल, मूत्र और अधोवायु की रुकावट, वेदना, देहमें भारापन, अफरा, हृदग्रह इन लक्षणों के उपस्थित होनेपर जान लेना चाहिये कि स्नेहवस्ति विष्टासे आवृतहै। इसको स्नेहन, स्वेदन, वातप्रयोग तथा श्यामा और बिल्वादि पंचमूल से सिद्ध की हुई निरूहण और अनुवासन देवै, तथा उदावर्त में कहीहुई संपूर्ण विधियों द्वारा पुरीषावृत वस्तिको निकालने का उपाय करै।

अभुक्तादि में स्नेहवस्ति।

अभुक्ते शूलपायौ वा पेयामात्राशितस्य च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुदे प्रणिहितः स्नेहो वेगाद्धावत्यनावृतः ॥
ऊर्ध्वं कायं ततः कंठादूर्ध्वेभ्यः स्रोभ्य एत्यपि
मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धो यवकोलकुलत्थवान्
तत्सिद्धतैलो देयः स्यान्निरूहः सानुवासनः
कंठादागच्छतस्तंभकंठग्रहविरेचनैः ।
छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्च तस्यकुर्यान्निबर्हणम्

अर्थ–बिना कुछ भोजन किये वा पेयामात्र आहार करनेके पीछे गुदामें लगाई हुई वस्ति अथवा जिसकी गुदामें सूजन हो उसके वस्ति प्रयोग करनेसे वह वस्ति किसी दोषादि से आवृत न होने के कारण ऊपर की देह में वेगसे दौडती है और कंठके ऊपर वाले मुख नासादि स्रोतों द्वारा निकल पडती है । इसमें गोमूत्र, श्यामानिसोथ, निसोथ इनका काथ, तथा जौ, बेर और कुलथी का कल्क डालकर सिद्ध किया हुआ तेल निरूहण वा अनुवासन द्वारा देवै । स्नेहके कंठसे निकलने पर स्तंभ, कंठग्रह, विरेचन तथा वमननाशक क्रियाओं द्वारा स्नेह को निकालना चाहिये ।

अपक्व स्नेहमें उपाय ।

नापक्वं प्रणयेत्स्नेहं गुदं स ह्युपलिंपति ।
ततःकुर्यात्सरुङ्मोहकंडूशोफान्क्रियाऽक्षमा
तीक्ष्णो बस्तिस्तथा तैलमर्कपत्ररसे शृतम् ।

अर्थ–ऊपर की कही हुई दशामें गुदा द्वारा अपक्व स्नेहका प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि कच्चे घीसे गुदा लिप्त जाती है, और इससे वेदना,मोह, खुजली,सूजन आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं, ऐसा होनेपर तीक्ष्ण वस्ति तथा आकके पत्तोंके रसमें सिद्ध किये हुए तेलका प्रयोग करना चाहिये ।

अन्य उपाय ।

अनुच्छ्वास्य तु बद्धे वा दत्ते निःशेष एव च
प्रविश्य क्षुभितो वायुः शूलतोदकरो भवेत्
तत्राभ्यंगो गुदे स्वेदो वातघ्नाश्यशनानि च

अर्थ–उच्छ्वसित करके वस्तिका मुख बद्ध करने पर अथवा निःशेष वस्तिके देने पर वस्तिके भीतरवाली वायु भीतर प्रविष्ट होकर और क्षुभित होकर शूल और तोद उत्पन्न करती है । ऐसा होनेपर अभ्यंग, गुदा में स्वेद और वातनाशक भोजन का प्रयोग करना चाहिये ।

शीघ्रप्रणीति में चिकित्सा ।

द्रुतं प्रणीते निष्कृष्टे सहसोत्क्षिप्त एव वा ।
स्यात्कटीगुदजंघोरुबस्तिरुक्स्तंभभार्तिभेदनम् ।
भोजनं तत्र वातघ्नं स्वेदाभ्यंगाः सबस्तयः

अर्थ–वस्ति यदि शीघ्र दीजाय, शीघ्र निकल आवे और सहसा उत्क्षिप्त होजाय तो कमर, गुदा, जंघा, ऊरु, तथा वस्तिमें स्तब्धता, वेदना और फटनेकी सी पीडा होती है । इसमें वातनाशक भोजन, स्वेद, अभ्यंग और वस्तिका प्रयोग करना चाहिये।

पीड्यमान वस्ति में चिकित्सा ।

पीड्यमानेतरा मुक्ते गुदे प्रतिहतोनिलः ४८
उरः शिरोरुजं सावमूर्वोश्च जनयेद्बली ।
बस्तिः स्यात्तत्र बिल्वादिफलैः-
श्यामादिमूत्रवान् ॥ ४९ ॥

अर्थ–वस्ति पुटके पीड्यमान होने पर बीचमें ही कदाचित् गुदाके मुक्त होने पर वायु प्रतिहत और बलवान होकर वक्षःस्थल में और सिरमें वेदना करती है तथा दोनों ऊरुओं में शिथिलता हो जाती है ऐसी अवस्था में बिल्वादि पंचमूल,मेनफल और श्यामादिगणोक्त द्रव्योंको गोमूत्रसे साधित करके वस्ति देवै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतिपीडित वस्तिपुटक ।

अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठत्यायाति वा गलम् ।
तत्र बस्तिर्विरेकश्च गलपीडादि कर्म च ५०

अर्थ–वस्तिपुटके के अत्यन्त प्रपीडित होने पर औषध कोष्ठमें जाकर ठहर जाती है, वा गले तक आजाती है, ऐसी अवस्था में वस्ति, विरेचन वा गलपीडन आदि चिकित्सा काममें लानी चाहिये ।

वमनादि में रक्षा ।

वमनाद्यैर्विशुद्धं च क्षामदेहबलानलम् ।
यथांडं तरुणं पूर्णं तैलपात्रं यथा तथा ५१
भिषक् प्रयत्नतो रक्षेत्सर्वस्मादपवादतः ।

अर्थ–जैसे नवीन अंडेकी और तेल से भरे हुए पात्रकी रक्षा की जाती है,इसी तरह उस मनुष्य की बडी सावधानी से रक्षा की जाती है जो वमनविरेचनादि द्वारा शुद्ध होने के कारण क्षीण बल और क्षीण अग्निवाला हो जाता है ।

उक्तदशामें चिकित्सा ।

दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोम्ललवणौ रसौ ५२
स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः

अर्थ–उक्त रोगीको प्रथम मधुर हितकारी तत्पश्चात् खट्टे और नमकीन, पश्चात् मीठे और तीखे, तत्पश्चात् कसेले और कटुरस का पथ्य देवै ।

विकृतको प्रकृतिपर लाना ।

अन्योन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरूक्षयोः
व्यत्यासादुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत् ।

अर्थ–परस्पर प्रतिपक्षी अर्थात् एक दूसरे की विरोधी मधुरादि रस तथा आपस में प्रतिपक्षी रूक्ष और स्निग्ध द्रव्योंको विपर्य्यय रीतिसे उपयोग में लाकर वमनादि द्वारा विशुद्ध रोगीको उसकी प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक दशा पर लावै । जैसे पहिले मधुररसका प्रयोग करके फिर उसके प्रतिपक्षी अम्लादि किसी रसका प्रयोग करे, अम्ल द्रव्यका प्रयोग करके मधुरादिद्रव्यों में से किसी का प्रयोग करे, इसी तरह स्निग्ध वा रूक्ष का प्रयोग करके वमनादि से शुद्ध रोगीको जैसे हो वैसे प्रकृति पर लावै ।

प्रकृतिगत के लक्षण ।

सर्वसहः स्थिरबलो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः ५३

अर्थ–वमनादि से शुद्ध रोगी जब सब बातों को सहने लगजाय और उसमें शारीरक बल दृढ हो जाय, तब जानना चाहिये कि रोगी अपनी प्रकृति पर आगया है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां कल्पस्थाने वस्तिव्यापत्सिद्धिर्नाम पंचमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो भेषजकल्पं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–अब हम यहां से भेषजकल्प नामक अध्यायकी की व्याख्या करेंगे ।

प्रशस्त भेषजके लक्षण ।

" धन्वसाधारणे देशे समेसन्मृत्तिकेशुचौ
श्मशानचैत्यायतनभ्रवल्मीकवर्जिते
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते ।
अफालकृष्टेऽनाक्रांते पादपैर्बलवत्तरैः
शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः ।
अस्वजग्धं दग्धदग्धमविदग्धं च वैकृतैः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूतैरछायातपांब्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम् अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम्

अर्थ–जांगल और साधारण देश में समभूमि पर जो ऊंची हो न नीची हो, उत्तम मृत्तिका से युक्त क्षेत्रमें, पवित्र स्थान में, जिसमें श्मशान, चैत्य, गर्त वा सर्पकी बांबी नहो, तथा छूने में कोमल और अनुकूल जल से युक्त जिसमें कुशा और रोहिष तृण उगते हों, जिसमें हल न चला हो, और बडे बडे ऊंचे वृक्षों से आक्रांत न हो, ऐसे स्थान में अपने वर्ण और रसादि से युक्त पैदा हुई औषध उत्तम होती है । तथा जिसमें कीडे न लगे हों, जो अग्नि से न जली हो, और आकाशादि विकृत भूतों से अनासेवित, छाया, धूप और जल से उचित काल में सेवित, जिसकी जड पृथ्वी में बहुत दूर तक गई हो और जो उत्तर दिशाका आश्रय लेकर अवस्थित हो, ऐसी सब औषधें उत्तम होती हैं ।

औषधलाने की विधि ।

अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः। गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥

सक्षीरं तदसंपत्तायनतिक्रांतवत्सरम्। अक्षते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडंगतः

अर्थ–उक्त गुणविशिष्ट औषध को लाने के लिये स्वस्त्ययनादि मंगल करके श्रद्धावान्, पवित्र और उपवास किया हुआ मनुष्य जाय और औषधको लाकर सावधानी से रक्खे । तदनंतर उचित काल में इस औषधको दूध में डालकर मीली करे । यदि हरी औषध न मिल सके तो एक वर्षके भीतरकी लावे। परन्तु गुड, घी, शहत, धनियां, पीपल और वायविडंग जितने पुराने हों उतनाही अच्छा है, इनको नया न लावे ।

पयआदि का ग्रहणप्रकार ।

पयो वार्ष्कयणं ग्राह्यं विण्मूत्रं तच्च नीरुजम् वयोबलवतां धातुपिच्छ शृंगखुरादिकम्

अर्थ–वार्ष्कयणी अर्थात् जिसका बच्चा तरुण होगया हो उस गौका दूध, गोबर और मूत्र ग्रहण करे क्योंकि ये निर्दोष होते हैं । तथा तरुण और बलवान् प्राणी के रक्तादि धातु, पूंछ, सींग और खुर आदिका ग्रहण करे ।

कषायोनि पांचरस ।

कषायोनयः पंच रसा लवणवर्जिताः । रसः कल्कः श्रुतः शीतः फांटश्चेति प्रकल्पना ॥ ८ ॥

पंचधैवं कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिका ।

अर्थ–छः रसोंमें से नमकरस को छोड कर मधुरादि पांचरस कषाययोनि होते हैं, अर्थात् इन पांचरसों से ही स्वरसादि पांच प्रकार के कषायों की कल्पना होती है । लवणरस से स्वरसादि किसी की भी कल्पना नहीं होती है । स्वरस, कल्क, शृत, शीत और फांट, इन पांच प्रकार की कषायकल्पना होती हैं इन पांचों में यथापूर्व अधिक गुणशाली होते हैं, अर्थात् फांट की अपेक्षा शीतकषाय, शीतकषायकी अपेक्षा शृतकषाय, शृतकषायकी अपेक्षा कल्क, और कल्ककी अपेक्षा स्वरस बलशाली होता है ।

स्वरस के लक्षण ।

सद्यः समुद्धृतक्षुण्णाद्यः सद्येत्पटपीडितात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वरसः स समुद्दिष्टः

अर्थ–किसी औषधि को समान भूमि से उखाड कर उसी समय पत्थर पर कूट कर वस्त्रमें निचोडले, इस निकले हुए रस को स्वरस कहते हैं।

कल्क के लक्षण।

कल्कः पिष्टो द्रवाप्लुतः।

चूर्णोऽशुष्कः

अर्थ–पत्थर पर पानी डाल डाल कर जो द्रव्य पीसा जाता है, उसे कल्क कहते हैं जो द्रव्य सूखेहुए महीन पीसे जाते हैं, उसको चूर्ण कहते हैं।

क्वाथ के लक्षण।

श्रृतः क्वाथः

अर्थ–जो द्रव्य पानी में औटाकर छान लिया जाता है, उस औटेहुए जलको क्वाथ कषाय वा काढा कहते हैं।

शीतकषाय के लक्षण।

शीतो रात्रिं द्रवेस्थितः ॥ १० ॥

अर्थ–रातभर किसी द्रव्यको पानीमें भिगोकर प्रातःकाल मलकर छान लिया जाता है, उसे शीतकषाय कहते हैं।

फांट के लक्षण।

सद्योभिषुतपूतस्तु फांटः

अर्थ–तत्काल गरम पानी में डालकर और मलकर कोई द्रव्य छान लियाजाता है उसे फांट कहते हैं।

योजना विधि।

तन्मानकल्पने ॥

युज्याद्व्याध्यादिबलस्तथा च वचनं मुनेः।
मात्रायानव्यवस्थाऽस्तिव्याधिकोष्ठबलंवयः
आलोच्य देशकालौ च योज्या तद्वच्च कल्पना

अर्थ–इन स्वरसादि का परिमाण और कल्पना व्याधि और कोष्ठके बलके अनुसार स्थिर करने चाहियें। सुश्रुत ने कहा है कि मात्रा का कोई नियम नहीं है, व्याधि, रोगी का कोष्ठ, रोगी का बल और अवस्था तथा देश और काल इन सबकी विवेचना करके औषधकी मात्रा निर्दिष्ट करना चाहिये। इसी तरह व्याध्यादि और देशकालादि को देखकर स्वरसादि पांच प्रकारमें से कोई एक कल्पना करनी चाहिये।

स्वरसका मध्यम मान।

मध्यं तु मानं निर्दिष्टं स्वरसस्य चतुःपलम्

अर्थ–स्वरसकी मध्यम मात्रा का परिमाण चार पल है।

कल्कादिका मध्यम मान।

पेष्यस्य कर्षमालोड्य तद्द्रवस्थं पलत्रये

अर्थ–पिसेहुए द्रव्य अर्थात् कल्क वा चूर्ण का मध्यम परिमाण एक कर्ष है, इस को तीनपल पतले पदार्थ में मिलाकर सेवन करे।

क्वाथ का प्रमाण।

क्वाथं द्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्धे पादशेषितम्।

अर्थ–एकपल द्रव्यको आधे प्रस्थ पानी में डालकर औटावे और चौथाई शेषरहने पर उतारकर छान लियाजाय, यह क्वाथ का परिमाण है।

शीतकषाय का प्रमाण।

शीतं पले पलैः षड्भिः

अर्थ–एक पल द्रव्यको छः पल द्रवमें मिलाकर जो बनाया जाता है, उसे शीत कषाय कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फांट का प्रमाण ।

चतुर्भिश्च ततोऽपरम् ॥ १४ ॥

अर्थ–एक पल द्रव्य, चार पल द्रवमें डालकर जो बनाया जाता है उसे फांट कहते हैं ।

यह सब मध्यम मात्रा का मान है, परन्तु वैद्य अपनी बुद्धि से देश कालादि को देखकर न्यूनाधिक कर सकता है ।

स्नेहपाक का प्रमाण ।

स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम् कल्कस्नेहद्रवं योज्यम्

अर्थ–तैलादि स्नेहके पाकमें जो कल्क स्नेह और द्रव पदार्थ का परिमाण न दिया गयाहो तो उत्तरोत्तर चौगुना लेवे अर्थात् कल्कसे चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना द्रव पदार्थ लेना चाहिये ।

शौनक का मत ।

अधीते शौनकः पुनः ॥१५ ॥

स्नेहे सिध्यति शुद्धांबुनिःक्वाथस्वरसैः क्रमात् ।

कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् पृथक् स्नेहसमं द्द्यात्पंचप्रभृति तु द्रवम् ।

अर्थ–इस विषय में शौनक का यह मत है कि स्नेह कभी शुद्ध जल के साथ कभी क्वाथ के साथ और कभी स्वरस के साथ पकाया जाता है, ऐसी दशा में कल्क का परिमाण स्नेह से चौथा, छटा वा आठवां भाग होता है, अर्थात् केवल जल के साथ स्नेहपाक करने में स्नेह से कल्क चौथाई डालना चाहिये । क्वाथ के साथ पाक करने में कल्क का स्नेह से छटा भाग स्वरस के साथ पाक करने में कल्क का स्नेह से आठवां भाग डालनाचाहिये । यदि स्नेहपाक में पांच वा पांच से अधिक द्रव पदार्थ हो तो प्रत्येक द्रव पदार्थ स्नेह के समान लेना चाहिये ॥

पाक के लक्षण ।

नांगुलिग्राह्यता कल्के न स्नेहेऽग्नौ चटच्चटा वर्णादिसंपच्च यदा तदैनं शीघ्रमाहरेत् ।

अर्थ–कल्क जब उँगली से न लगे, और अग्नि में डालने पर चट चट शब्द न हो और तेल का जब उपयुक्त वर्ण, रस और स्पर्श हो तब जान लेना चाहिये कि पाक होगया है, उस समय अग्नि से शीघ्र उतार लेना चाहिये ।

स्नेहपाक का अन्य लक्षण ।

घृतस्य फेनोपशमस्तैलस्य तु तदुद्भवः लेहस्य तंतुमत्तासु मज्जनं शरणं नच ।

अर्थ- पकाते २ घी में जब झाग उठना बन्द होजाय और तेल में झागों की उत्पत्ति हो तब जान लेना चाहिये कि घी वा तेल का सम्यक् पाक होगया है । लेह जब अच्छी तरह पक जाता है तब उस में तार निकलते हैं, और पानी में डालने से नीचे बैठ जाता है ये लेह के पाक के लक्षण हैं । यह जल में डालने से घुलता नहीं है ॥

पाक के तीनभेद ।

पाकस्तु त्रिविधो मंदश्चिक्कणः खरचिक्कणः॥
मंदः कल्कसमे किंचिच्चिक्कणो मधुनोपमे ।
किंचित्सीदति कृष्णे च वर्तमाने च पश्चिमः॥
दग्धोत्क्लेदेनिःकार्यःस्यादामस्त्वग्निसादकृत्
मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यंगे पाने वस्तौ च चिक्कणः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–स्नेहपाक तीन प्रकार का होता है, यथा––मंद, चिक्कण और खरचिक्कण। स्नेहपाकविधि में कल्क के समान कोई वस्तु उंगली से लगजाती है, कोई नहीं लगती है, उसे मंदपाक कहते हैं। जो उंगली बहुत लगाने से उंगली के लगने लगे वह चिक्कण है। जो थोडीही उंगली लगाने से बिखर जाय और काला काला बत्ती के सदृश होजाय वह खरचिक्कण है। इससे आगे की अवस्था दग्धपाक की होती है। यह दग्धपाक होने पर निरूपित कार्य नहीं कर सकता है क्योंकि निर्वीय होजाता है। आमपाक स्नेह अर्थात् कच्चापक्का स्नेह अग्नि को मंदकर देता है। मंदपाक स्नेह नस्यकर्म में, अभ्यंग में खरचिक्कणपाक पीने वा बस्तिकर्म में चिक्कणपाक उपयोग में लाया जाता है।

मानसंज्ञा।

शाणं पाणितलं मुष्टिः कुडवं प्रस्थमाढकम्।
द्रोणं वहं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम्॥

अर्थ–शाण, पाणितल, मुष्टि, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और वह ये उत्तरोत्तर हर एक से चौगुनी होती हैं। जैसे शाण से चौगुना पाणितल और पाणितल से चौगुना मुष्टि आदि आदि।

गीलेसूखे द्रव्योंकी योजना।

द्विगुणं योजयेदार्द्रे कुडवादि तथा द्रवम्।

अर्थ–एक ही योग में सूखे और गीले दोनों प्रकार के द्रव्य तुल्य परिमाण में कहे गयेहों तो सूखे द्रव्यकी अपेक्षा गीला (हरा) द्रव्य दूना लेना चाहिये एकही योगमें यदि सूखा द्रव्य न मिले तो उसकी जगह वही गीला द्रव्य दूना लेलेना चाहिये। यदि एक ही योगमें सूखे द्रव्य और द्रव अर्थात् पतले द्रव्य तुल्य परिमाण में कहे गयेहों तो शुष्क द्रव्यकी अपेक्षा कुडवादि परिमाण में कहे हुए द्रव द्रव्य दूने मिलाने चाहिये।

अनुक्तद्रवमें पानीकी योजना।

पेषणालोडने वारि स्नेहपाके च निर्दिशेत्॥ २३

अर्थ–पीसने और मिलाने के काम में अथवा स्नेहपाक में यदि किसी पतले पदार्थ का वर्णन न किया गया हो तो जल मिलाना चाहिये।

द्रव्यमें अनुक्तपरिमाण में कर्तव्य।

कल्पयेत्सदृशान्भागान्प्रमाणं यत्र नोदितम्।
कल्कीकुर्याच्च भैषज्यमनिरूपितकल्पनम्॥

अर्थ–जिस जिस योगमें द्रव्यों का परिमाण न दिया गया हो उन योगोंमें सब द्रव्यों का समान भाग ग्रहण करना चाहिये और जहां औषध की स्वरसादि कल्पना न कही गई हो वहां वहां कल्क बनाकर ही प्रयोग में लावे।

बटकादि संज्ञा।

द्वौ शाणौ वटकः कोलं बदरं तिंदुकश्च तौ।
अक्षं पिचुः पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः २५॥
कर्षो विडालपदकं तिंदुकः पाणिमानिका।
शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे शुक्तिरष्टमिका पिचू
पलं प्रकुंचो बिल्वं च मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।
द्वे पले प्रसृतस्तौ द्वावंजलिस्तौ तु मानिका॥
आढकं भाजनं कंसो द्रोणः कुंभो घटोर्मणम्।
तुलापलशतम् तानि विंशतिर्भार उच्यते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-दो शाणका एक बटक होताहै । कोल, बदर और द्रंक्षण ये तीन बटक के पार्य्यायवाची शब्दहैं । दो द्रंक्षण अर्थात् दो बटिका का एक अक्ष होताहै । पिचु, पाणितल, सुवर्ण, कवलग्रह, कर्ष, विडालपदक, तिंदुक और पाणिमानिका, ये आठ शब्द अक्षके पर्य्यायवाची है । दो पिचुकी एक शुक्ति होती है । शुक्ति और अष्टमिका दोनों पर्य्यायवाची शब्द है । दो शुक्तिका एक पल होताहै । प्रकुंच, विल्व, मुष्टि, आमू और चतुर्थिका ये पलके पर्य्यायवाची शब्द है । दो पलका एक प्रसृत होता है । दो प्रसृतका एक अंजलि, दो अंजलिका एक मानिका । आढक, भाजन और कंस ये आपस में पर्य्यायवाची शब्द हैं, इसी तरह द्रोण, कुंभ, घट और अर्मण ये भी आपस में पर्य्यायवाचक शब्द हैं । सौ पलकी एक तुला और बीस तुला का एक भार होताहै ।

यहां मान का परिमाण शाणसे आरंभ किया गयाहै, परन्तु शाण का परिमाण कुछ भी नहीं बतलाया गया है, इसलियें किसी मानका भी परिमाण निश्चित नहीं होसकता है, अत एव इस विषय में जो संग्रह में लिखा है उसे उद्धृत करते हैं । छः वंशी की एक मरीची । छः मरीच की एक सर्षप । आठ सर्षपका एक तंडुल । दो तंडुल का एक धान । दो धानकी एक जौ । तीन जो का एक कुच वा रत्ती । बारह रत्ती का १ माशा होताहै । भिन्न २ आचार्य पांच छः आठ, दश वा बारह रत्ती का माषा मानते हे, चार माशे का एक शाण होता है इससे आगे कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और वह उत्तरोत्तर चौगुने होते हैं । पलका दसवां भाग धरण कहलाता है । मापका पर्य्याय हेम, कर्षका षोडशिका, द्रोणका नल्वण होता है दो द्रोणका एक शूर्प होता है ।

शैलभेद से द्रव्य विशेष ।

हिमवद्विंध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुंधरा सौम्यं पथ्यं च तत्राद्यमाग्नेयं वैंध्यमौषधम् ,

अर्थ-वसुंधरा प्रायः हिमालय और विन्ध्याचल से व्याप्त है । हिमालय में उत्पन्न हुई सब औषधें सौम और पथ्य होती हैं । तथा विन्ध्याचल पर उत्पन्न हुई औषधें आग्नेय होती हैं । ये गुणों में हिमालय की औषधों से न्यून होती है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां मथुरानिवासि श्रीकृष्णलालकृत भाषाटीकान्वितायां कल्पस्थाने भेषजकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं कल्पस्थानम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ॐ

॥ श्रीहरिस्वन्दे ॥

❀ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ❀

॥ उत्तरस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालोपचरणीयमध्यायम्-
व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

अर्थ–तदनंतर भगवान आत्रेयादि महर्षि कहने लगे कि अब हम यहांसे बालोपचरणीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

जनाते ही बालक का शोधन ।

" जातमात्रं विशोध्योल्बाद्घृतं सैंधवसर्पिषा
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् १ ॥
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।
अथास्य दक्षिणे कर्णे मंत्रमुच्चारयेदिमम् ॥
" अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभिजायसे ।,,
"आत्मा व पुत्रनामासि स जीवशरदांशतम्'
"शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि,,
" नक्षत्राणि दिशोरात्रिरहश्चत्वाभिरक्षतु,,

अर्थ–जरायु से बालक के पृथ्वी पर आते ही सेंधे नमक से युक्त घी के द्वारा अनेक प्रकार से शोधित करके प्रसवक्लेश को दूर करने के निमित्त बला तैल से सेचित करे । और बालक के कान में दो पत्थरों का शब्द करे, और उसके दाहिने कान में इस मंत्र का उच्चारण करे कि हे बालक ! तू अंग २ से पैदा होता है, हृदय से पैदा होता है । तू आत्मा से उत्पन्न पुत्र नामधारी है, तू सौ वर्ष तक जी, तू शतायु हो और सौ वर्ष तक की दीर्घ आयु को प्राप्त कर, नक्षत्र, दिशा, रात्रि और दिन तेरी रक्षा करें ।

स्वस्थीभूत बालक के कर्म ।

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरंगुलात्
बद्धवोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवसंजयेत्
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्क्षपयेद्वनु ।
क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगंधोदकेन वा ॥ ६ ॥
कोष्णेन तप्तरजततपनीयनिमज्जनैः ।

अर्थ–बालक को आश्वासित करके उसकी नाभि नाडी को सूत्र से बांधकर चार अंगुल छोडकर काटदे । और उस नाडी से बंधे हुए सूत्र को बालककी ग्रीवा से बांध देवै और नाडी को कुष्ठतैल से चुपडता रहे, अथवा अश्वत्थादि दूध वाले वृक्ष, या चन्दनादि सब प्रकार के सुंगधित द्रव्यों के काढे में चांदी वा सुवर्ण को गरम कर करके बुझावे, जब वह कुछ गरम हो जाय तब उस काढे से नाभि को सेचन करे । इसी को नाल छेदन विधि कहतेहैं ।

तालु उठाने की विधि ।

ततो दक्षिणतर्जन्या तालूत्तम्भावगुंठयेत् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिरासि स्नेहपिचुना प्राङ्मुखं तस्य प्रयोजयेत् ।
हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमंत्रितम् ॥ ८ ॥
पेंद्रीब्राह्मीवचाशंखपुष्पीकल्कं घृतंमधु ।

अर्थ–तदनंतर दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली से बालक के तालु को ऊंचा करके सिर पर तेल का भीगा हुआ कपडा रखदे इसके पीछे इन्द्रायण, ब्राह्मी, बच और शंखपुष्पी इनका कल्क घी और शहत मिलाकर पूर्वोक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर के छोटी मटर के बराबर बालक को चटावे, इससे बालककी बुद्धि और आयु बढतीहै।

अन्य अवलेह ।

स्वामीकरवचाब्राह्मीताप्यपथ्या रजीकृताः ९
सिद्धाम्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा ।

अर्थ–सुवर्ण, बच, ब्राह्मी, चांदी और हरीतकी इनका बहुत महीन चूर्ण, अथवा सुवर्ण और आमले का चूर्ण शहत और घी मिलाकर बालक को चटावै ।

गर्भाभ की वमन ।

गर्भोभः सैंधवयुता सर्पिषा वामयेत्ततः ।

अर्थ–तदनंतर सेंधा नमक और घी मिलाकर देने से गर्भजल को वमन द्वारा निकालदे ।

बालक का जातकर्म ।

आद्यापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत्

अर्थ–तदनंतर वेदोक्त रीति से गृह्यसूत्र की विधिपूर्वक बालक का जातकर्म करावै ।

स्तन्यप्रवर्तन में हेतु ।

सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात्प्रसूतितः
तृतीयेऽहि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते

अर्थ–प्रसवके कारण से स्त्रियों की हृदयस्थ सिरा निवृत होजाती हैं, इसलिये तीसरे दिन वा कभी चौथे दिन स्तन्य की प्रवृत्ति होती है ।

बालक का प्रथम दिनका वर्तन ।

प्रथमे दिवसे तस्मात्त्रिकालं मधुसर्पिषी १२
अनंतामिश्रिते मंत्रपाविते प्राशयेच्छिशुम् ।

अर्थ–इसलिये प्रथम दिन तीनों काल में अर्थात् प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल में दुरालभा में शहत और घी मिलाकर बालक को चटावै ।

दूसरे तीसरे दिनकी विधि ।

द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं ततः १३
प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्यतत्पाणितलसम्मितम्
स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत्

अर्थ–दूसरे और तीसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध किया हुआ घी तीनों काल में चटावै । प्रथम जिसको दूधका निषेध किया गया है उस बालक की हथेली के समान नौनी घी दोनों समय देकर ऊपरसे स्तन्यपान का अनुपान करावै ।

उत्तमस्तन्य का प्रकार ।

मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये ।
स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये तदसंपदि वत्सले ।
अव्यंगे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः समे ।
नीरुजे मध्यवयसौ जीवद्वत्से न लोलुपे ।
हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्छते ।

अर्थ–बालक को माता का ही दूध पीना चाहिये क्योंकि यह बालककी देहको पुष्ट करने में परमोत्तम है । किसी कारण से माता का दूध न मिले तो दूध पिलाने वाली दो धाय, नियत करनी चाहिये, वे धाय बालक पर स्नेह करनेवाली हों तथा वात्सल्यभाव रखती हों । उनके अंग में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किसी प्रकार की विकलता न हो, ब्रह्मचर्य से रहती हों अर्थात् मैथुन से रहित हों, वर्ण और प्रकृति में समान हों, रोगरहित हों, मध्यम अवस्थावाली हों, उनके बालक जीते हों, लोलुपता अर्थात् कामादि प्रसंग से रहित हों। इन धायों को आहार विहार द्वारा अत्यन्त आदर से रखनां उचित है।

स्तन्यनाश के कारण।

शुक्रकोधलंघनायासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः
स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजारसाः
क्षीरं क्षीरिण्यओषध्यः शोकादेश्चविपर्ययः

अर्थ—शोक, क्रोध, उपवास और परिश्रम ये दूधः के नाश के हेतुः हैं। और सीधु के सिवाय मद्य, आनूप मांसरस, दूध दूधवाली औषधें और शोकादि का विपर्यय अर्थात् हर्ष, क्रोधराहित्य, तृप्ति पर्यन्त भोजन और विश्राम ये दूध के हेतु हैं।

दूधको रोगका हेतुत्व।

विरुद्धाहारभुक्तायाः क्षुधितायाश्चिचेतसः।
प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः

अर्थ—जो गर्भिणी विपरीत आचरण करने वाली है, भूखी रहती है, जिसका चित्त भ्रांतियुक्त होता है और जिसकी धातु दूषित होती हैं, ऐसी स्त्रियों का दूध बालक को रोग उत्पन्न करनेवाला होता है।

दूधकेअभावमें कर्तव्य।

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्
ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम्।

अर्थ—जो माता का वा धायका दूध न मिले तो बकरी का दूध पिलाना चाहिये अथवा लघुपंचमूल, वा शालपर्णी डालकर औटाया हुआ गौ का दूध मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये। इस तरह सिद्ध किया हुआ गौ का दूध भी बकरी के दूधके समान गुणकारी होजाता है।

छठीरातका विधान।

षष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः।
जागृयुर्बोधवास्तस्य दधतः परमां मुदम् २१

अर्थ—छठी रातके दिन बालक की रक्षा के लिये बलिदानादि मंगल क्रिया करके उस बालक के स्वजन जन अत्यन्त आनंद करते हुए जागरण करें।

दसवें दिनका कर्तव्य।

दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः
कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चार्चितम्
विन्यसेऽगैर्मनोह्वालरोचनागुरुचन्दनम्।
नक्षत्रदेवतायुक्तं बांधवं वा समाक्षरम् २३

अर्थ—अपने कुलकी मर्यादा के अनुसार दसदिन पूरे होनेपर सूतिका का उत्थान करै और बालक के देहपर मनसिल, हरताल गोरोचन, अगर और चन्दन लगाकर कुलानुगत नक्षत्रके देवताओं से युक्त समाक्षर वाला नाम बालक का रक्खै।

आयुपरीक्षा।

ततःप्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुः परीक्षणम्।
प्रागुदक्शिरसःकुर्यात्बालस्यज्ञानवान्भिषक्
शुचिधौतापधानानि निर्व्रणानि मृदूनि च।
शय्यास्तरणवासांसि रक्षोघ्नैर्धूपितानि च

अर्थ—नामकरण के पीछे ज्ञानवान् वैद्य को उचितहै कि प्रकृति भेदके अनुसार विकृताविज्ञानीयाध्याय में कहे हुए लक्षणों के द्वारा बालक की आयुकी परीक्षा करै। बालक के शयन कराने के निमित्त पवित्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उज्ज्वल धुली हुई, समान और कोमल बिछौना से युक्त शय्या बिछावै, इस शय्या को रक्षोघ्ननाशिनी धूनी देवै और इस शय्या का सिरहाना उत्तर व पूर्व दिशा में करके बालक को उसपर शयन करावै ।

बालक का मणिधारण ।

काको विशस्तःशस्तश्च धूपनेत्रिवृतान्वितः
जीवत्सवक्त्रविश्रृंगोत्थान् सदा बालः शुभान् मणीन् ॥ २६ ॥
धारयेदौषधीः श्रेष्ठा ग्राह्यैर्द्वीजीवकादिकाः
हस्ताभ्यां ग्रीवयामूर्ध्ना विशेषात्सततंवचाम्
आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थकरीरक्षोभिरक्षिणीम्

अर्थ–जीते हुए गेंडे आदि के सींगोंसे उत्पन्न तथा सर्पादि की मणियों को बालक का शुभ कार्मोके लिये धारण कर तथा वाही, इन्द्रायन, और जीवक इन औषधों का हाथमें धारण करै और वचको बालक की ग्रीवा और सिरमें विशेष रूपसे बांधे । ये आयु, मेधा, स्मृति और स्वस्थता को देने वाली तथा राक्षसों के भयको दूर करने वाली हैं ।

पांचवें छटे महिने में कर्तव्य ।

पंचमे मासि पुण्येऽन्हि धरण्यामुपवेशयेत्
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत् ।

अर्थ–पांचवें महिने में शुभ दिन देखकर बालक को पृथ्वी पर बैठावै । छटे महिनेमें अन्नप्राशन करावै । फिर क्रमसे अन्य शुभ कर्म करावै ।

कर्णव्यधका काल ।

षट्सप्तमाष्टमाब्देषु नीरुजस्य शुभेऽहनि ॥
कर्णौ हिमागमे विध्येद्वाम्यंकस्थस्य-
सांत्वयन्

अर्थ–छटे सातवें वा आठवें महिने में शुभदिन देखकर बालक के निरोग होनेपर शीत कालमें बालक को धायकी गोदीमें बैठाकर आश्वासन देता हुआ बालक के दोनों कानों को बेधे ।

कर्णव्यधकी रीति ।

प्राग्दक्षिणं कुमारस्य भिषग्घ्राणं तु योषितः ॥
दक्षिणेन दधत्सूचीं पालिमन्येन पाणिना ।
मध्यतः कर्णपाठिस्य किंचिद्वंडाश्रयं प्रति ॥
जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।
धृतस्य निश्चलम् सम्यगलक्तकरसांकिते ॥
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जु लाघवात् ।
नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाधः शिरास्तत्र-
हि संश्रिताः ॥ ३३ ॥
कालिका मर्मरी रक्ता-

अर्थ–प्रथम ही बालक का दाहिना कान और बालिका का बांया कान बेधे और दाहिने हाथमें सुई और बांये हाथसे कर्णपाली को पकडे और कानकी पीठके बीचवाले भागके समीपवर्ती गंडस्थल में जहां केवल झिल्ली के समान खाल होती है और उसमें होकर सूर्यकी किरण का आभास पडता हो उस दैवकृत छिद्रमें अलक्तक रससे अंकित जगह में ऐसी रीति से पकडे कि हिलने न पावै फिर इसमें एकही बार हलके हाथसे सीधा छेद करे, ऊपर नीचे वा पसवाडे को छोडदे क्योंकि वहां कालिका, मर्मरी और रक्ता नसों का जाल होता है ।

सिराव्यध में रोगादि ।

तद्व्यधाद्वागरुग्ज्वराः ।
सशोफदाहसंरम्भमन्यास्तंभापतानकाः ॥

अर्थ–इन कालिकादि सिराओं के विधने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से ललाई, वेदना, ज्वर, सूजन, दाह, संरंभ मन्यास्तंभ, और अपतानक रोग होते हैं।

रागादि की चिकित्सा।

तेषां यथामयं कुर्याद्विभज्याशु विकित्सितम्

अर्थ-ऊपर कहे हुए दुर्वेधसे उत्पन्न हुए रोगोंमें यथायोग्य चिकित्सा करना चाहिये।

उचितस्थान में बिधनेका फल।

स्थाने व्यधन्न रुधिरं न रुजागादिसम्भवः॥

अर्थ-यथायोग्य स्थानमें विद्ध होने से न रुधिर क्षरता है, न वेदना और ललाई पैदा होती है।

सूत्रस्थापन।

स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं सूत्रं चानु निधापयेत्।
आमे तैलेन सिंचेच्च वहलां तद्वदारया ३६
विच्येत्पाली हितभुजः संचार्याथ स्वयीयसी
वर्तिरन्यहास्ततो रूढं वर्धयेत शनैः शनैः३७

अर्थ-कर्ण वेधन के पीछे सुई में पोये हुए डोरे को स्नेहाक्त करके कानमें लगा देवे। आमावस्था में तेल चुपडता रहे। जो पाली मोटी हो तो पूर्ववत् आरा से वेधकर हितकारी पथ्य देवे। फिर तीन दिन पीछे अधिक मोटी बत्ती प्रवेशित करे। फिर कानका छेद सूख जाने पर उसे धीरे धीरे बढावै।

दांतनिकलने पर कर्तव्य।

अथैनं जातदशनं क्रमेणापानयेत्स्तनात्।
पूर्वोक्तं योजयेत्क्षीरमन्नं च लघु बृंहणम्॥

अर्थ-जब बालक के दांत निकल आवें तब धीरे धीरे उसे स्तनपान करना छुडा देवे और पूर्वोक्त रीति से बकरी आदि का दूध और लघु तथा बृंहण अन्नका सेवन करावे

बालक को मोदक।

प्रियालमज्जमधुक मधुलाजासितोपलैः।
अपस्तनस्य संयोज्यः प्रीणनो मोदकः शिशोः
दीपनो बालबिल्वैलाशर्करालाजसंकुलैः।
संग्राही धातुकपुष्पशर्करालाजतर्पणैः ४०

अर्थ-स्तनपान का त्याग करानेके पीछे चिरौंजी की मिंगी, मुलहटी, मधु, धानकी खील, और मिश्री इनसे बनाकर प्रीणन मोदक देवे। तथा कच्ची बेलगिरी, इलायची, शर्करा, और खील इनको डालकर अग्निको संदीपन करानेवाले मोदक देवे, तथा धाय के फूल, शर्करा और धानकी खील के बने हुए संग्राही मोदक बालक को खाने के लिये देवे।

सौम्यौषध सेवन।

रोगांश्चास्य जयेत्सौम्यैर्भेषजैरविषादकैः।
अन्यत्रात्ययिकदृष्ट्याधेर्विरेकं सुतरां त्यजेत्॥

अर्थ-यदि बालक के किसी प्रकार का रोग होजाय तो उसे क्षोभरहित और सौम्य औषधों से दूर करे। जो किसी प्रकार का भयंकर उपद्रव न हुआ हो तो विरेचन कदापि न देना चाहिये।

बालक को त्रासनिषेध।

त्रासयन्नविधेयंतं त्रस्तं गृह्णंति हि ग्रहाः।

अर्थ-बालक को कभी वृथा भय नहीं दिखाना चाहिये क्योंकि भयभीत बालक को बहुधा ग्रह ग्रहण करलेते हैं।

वस्त्रादि द्वारा रक्षण।

वस्त्रवातात्खरस्पर्शात् पालयेल्लंघितात्त्वचम्॥ ४२॥

अर्थ-बालक के शरीर पर अन्य मनुष्य के कपडे की वायु न लगे, कोई कर्कशता से उसे स्पर्श न करे, अथवा कोई उसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लांघने न पावे। इन बातों पर विशेष दृष्टि रखना चाहिये।

घृतपान विधि।

ब्राह्मीसिद्धार्थकवचासारिवाकुष्ठसैंधवैः।
सकणैःसाधितं पीतं-
बालमेधास्मृतिकृद्घृतम्॥ ४३॥
आयुष्यं पाप्मरक्षोघ्नं भूतोन्मादनिबर्हणम्।

अर्थ—ब्राह्मी, सफेद सरसों, वच, सारिवा, कूठ, सेंधानमक और पीपल इनसे सिद्ध किया हुआ घी सेवन कराने से बालक की वाणी, मेधा, स्मृति और आयु बढती है। यह घृत पापनाशक, रक्षोघ्न और भूतोन्माद निवारक होता है।

अन्य प्रयोग।

वचेंदुलेखा मंडूकी शंखपुष्पी शतावरी ४४
ब्रह्मसोमामृताब्राह्मीः कल्कीकृत्य-
पलांशिकाः।
अष्टांक्ष विपचेत्सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम्॥
तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत्

अर्थ—वच, बावची, मंडूकपर्णी, शंखपुष्पी, सितावर, सोमलता, गिलोय, और ब्राह्मी प्रत्येक एक एक पल लेकर पीसले और घी एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ, इन सबको यथोक्त रीति से पाक करे। यह अष्टांग घृत आयु, वाणी, मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढानेवाले हैं।

सारस्वत घृत।

अजाक्षीराभयाव्योषपाठेभाक्षिभुसैंधवैः॥
सिद्धम् सारस्वतं-
सर्पिर्वाङ्मेधास्मृतिवह्निकृत्।

अर्थ—बकरी का दूध, हरड, त्रिकुटा, पाठा, बच, सहजने के बीज, सेंधानमक इनके साथ सिद्ध किया हुआ सारस्वत नामक घृत वाणी, मेधा, स्मृति और जठराग्नि को बढानेवाला है।

अन्य घृत।

वचामृताशठीपथ्याशंखिनीवेल्लनागरैः ४७
अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद्गुणैः।

अर्थ—वच, सौंठ, कचूर, हरड, शंखनी बायबिडंग, सौंठ, और ओंगा डालकर सिद्ध किया हुआ घी पूर्ववत् गुणकारक है।

चार योग।

हेमश्वेतवचाकुष्ठमर्कपुष्पी सकांचना ४८॥
हेममत्स्याक्षकः शंखः कैडर्यः कनकं वचा।
चत्वार एते पादोक्ताः प्राह्या मधुघृतप्लुताः
वर्षं लीढा वपुर्मेधाबलवर्णकराः शुभाः।

अर्थ—(१) सुवर्ण, सफेद वच और कूठ। (२) अर्कपुष्पी और कांचना (३) सुवर्ण, मछेछी और शंख तथा (४) कायफल, सुवर्ण और वच। इन चार योगों को मधु वा घी में मिलाकर एक वर्ष तक लेहन करे। इससे शरीर मेधा, बल, और वर्णकी वृद्धि होती है।

वचादि का प्रयोग।

वचायष्ट्याह्वसिंधूत्थपथ्यानागरदीप्यकैः।
शुध्यते वाग्घविर्लीढैः सकुष्ठकणजीरकैः।

अर्थ—वच, मुलहटी, सेंधानमक, हरड, सौंठ, अजवायन, कूठ, पीपल, और जीरा इनके साथ पकाया हुआ घी सेवन करनेसे वाणी शुद्ध होजाती है।

इतिश्री मथुरानिवासी श्रीकृष्णलालकृत भाषाटीकान्वितायां अष्टांगहृदयसंहितायां उत्तरस्थानेवालो पचरणीयोनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वितीयोऽध्यायः

अथाऽतो बालामयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे बालामयप्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

त्रिविध बालक।

" त्रिविधः कथितो बालःक्षीराशोभयचर्तनः
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यांदुष्टाभ्यांरोगसंभवः;

अर्थ–बालक तीन प्रकार के होते हैं, दुग्धाशी (केवल दूध पीनेवाला) दुग्धान्नाशी (दूध और अन्न खानेवाला), अन्नाशी (केवल अन्न खानेवाला), दूषित दूध वा अन्नके सेवन से रोगों की उत्पत्ति होती है और अदूषित दूध और अन्न के सेवन से निरोगता रहती है।

शुद्ध दूधके लक्षण।

यद्द्विरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम्।
तद्विशुद्धं पयः

अर्थ–जो दूध पानी में डालने से जल में मिलकर बिलकुल एक होजाता है और जिसमें वातादि दोषों का अधिष्ठान नहीं होता है, वह शुद्ध दूध होता है।

वातदुष्टदूधके लक्षण।

वातादुष्टं तु प्लवतेऽम्भसि
कषायं फेनिलं रूक्षं घर्चोमूत्रविबंधकृत्।

अर्थ–वात से दूषित हुआ दूध पानीमें तैरता है, कसीला, झागदार और रूक्ष होता है तथा विष्टा और मूत्रका बिबंध करता है।

पित्तदुष्टके लक्षण।

पित्तादुष्टाम्लकटुकं पीतंतज्ज्यप्सु दाहकृत्

अर्थ–पित्तसे दूषित हुआ दूध खट्टा और कटु होता है, पानी में डालने से पीली रेखायें पड़जाती है तथा दाहकारक होता है।

कफदुष्टदूधके लक्षण।

कफात्सलवणं सांद्रं जलेमज्जति पिच्छिलम्

अर्थ–कफसे दूषित दूध नमकीन, गाढा, और पिच्छिल होता है, तथा पानी में डूब जाता है।

सान्निपातिक दूधके लक्षण।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम्

अर्थ–दूध जो दोदो दोषों से दूषित होता है, उसमें दो दो दोषों के लक्षण पाये जाते हैं और जो तीनों दोषों के लक्षण से युक्त होता है वह दूध तीनों दोषों से दूषित होता है।

उक्तदूधपीनेके लक्षण।

यथास्वलिंगांस्तद्व्याधीन्जनयत्युपयोजितं

अर्थ–बालक जो इन वातादि दोषों से दूषित दूधको पीता है, उसके उस उस दोषके लक्षणवाली व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं।

रोनेसे पीडाका ज्ञान।

शिशोस्तीव्राणामतीव्राणांचरोदनाल्लक्षयेद्रुजं

अर्थ–बालक के रोनेसे ही उसके रोग की दशा पहंचानी जाती है, जो पीडा बहुत हो तो बालक अधिक रोता है और कम हो तो कम रोता है।

अवयवविशेष में रोग।

सोयं स्पृशेद्यं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः।
तत्र विद्याद्रुजं

अर्थ–बालक देहके जिस अवयव को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बार बार छूता हो, या जिस जगह हाथ न लगा सकता हो वहीं पीडा समझना चाहियें।

सिरकी पीडाका ज्ञान ।

मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ६
हृदि जिह्मौष्ठदशनश्वासमुष्टिनिपीडितैः ।
कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः ७
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ।
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगत्रासादिगीक्षणैः॥

अर्थ–जो बालक आंख बंद करलेता हो तो उसके सिर में दर्द समझना चाहिये जो जोभ और ओष्ठ को डसता हो, श्वास लेता हो, मुट्ठी बन्द करता हो तो उसके हृदय में पीडा समझना चाहिये । जो मल का विबंध, वमन, धायके स्तनों का काटना और अंत्रकूज हो तो कोष्ठ में दर्द समझना चाहिये । कोष्ठ के दर्द में अफरा, पीठ का झुकना, जठर ऊंचा होना ये उपद्रव भी होते हैं । जो बस्ति वा गुदा में वेदना हो तो मलमूत्रका विबंध और त्रसित होकर इधर उधर देखना ये लक्षण होते हैं ।

धात्रीका उपचार ।

अथ धात्र्याः क्रियां कुर्याद्यथादोषम्-
यथामयम् ।

अर्थ–धायकी चिकित्सा भी दोषानुसार और रोगानुसार करना चाहिये ।

वातात्मक स्तन्यकी चिकित्सा ।

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं ह्यहे पिबेत्॥
अथवाग्निबचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।
सभार्गीशारुसरलवृश्चिकालीकणोषणम् ॥

अर्थ--स्तन्य के वातसे दूषित होनेपर धायको तीन दिन तक दशमूल का काढा अथवा चीता, बच, पाठा, कुटकी, कूठ, अजवायन, भाडंगी, देवदारु, सरलकाष्ठ, मेंढासिंगी, पीपल, काकोमिरच, इनका काढा तीन दिन तक पानकरावे ।

वातनाशक घृत ।

ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम् ।
अनु चाच्छसुरामेयं स्निग्धं मृदु विरेचयेत्॥
बस्तिकर्म ततः-
कुर्यात्स्वेदाद्यंश्चानिलापहान् ।

अर्थ–तदनंतर वातरोग नाशक किसी घृतको पिलाकर अच्छ सुराका अनुपान करावे और धायके स्निग्ध होने पर उसे मृदु विरेचन देवे । तदनंतर बस्तिकर्म करके वातनाशक स्वेद अभ्यंगादि का प्रयोग करे ।

बालकके लिये अवलेह ।

रास्नाजमोदासरलदेवदारुरजोन्वितम् १२
बालो लिह्याद् घृतक्षौद्रौ वा पिप्पलिसंसितोपलम्

अर्थ–रास्ना, अजमोद, सरलकाष्ठ, देवदारु, इनका चूर्ण करके घृत मिलाकर अथवा रास्नादि के काढेके साथ घी और मिश्री पकाकर बालक को चटावे ।

पित्तदूषित स्तन्यमें चिकित्सा ।

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिंबचंदनम् १३॥
धात्री कुमारश्च पिबेत् कषायीकृत्य वा-
सत्रायिवम् ।
अथवा त्रिफलामुस्तमूर्वीबकटुरोहिणीः ॥
सारिवादि पटोलादि पद्मकादिं तथा गणम्

अर्थ--पित्तसे दूषित स्तन्य में गिलोय, सितावर, पर्वल, नीमकी छाल, रक्तचंदन और अनंतमूल इनका काढा धाय और बालक दोनोंको पान करावे अथवा त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी इनका काढा अथवा सारिवादि पटोलादि वा पद्मकादि गणोक्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रव्यों का काढा धाय और बालक दोनों को पान करावे।

घी और अवलेह।

घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम्
शीतांश्चाभ्यंगलेपादीन् युंज्यात्-

अर्थ--पूर्वोक्त सारिवादि गणोक्त द्रव्योंके साथ अलग अलग सिद्ध किया हुआ घृत, तथा पित्तनाशक विरेचन और शीतल अभ्यंग तथा लेपों को उपयोग में लावे।

कफात्मकस्तन्य की चिकित्सा।

श्लेष्मात्मके पुनः।
यष्ट्याह्वसैंधवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम्॥
सिंधूत्थपिप्पलीमद्वा पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ।
राठपुष्पैः स्तनौ लिंपेच्छिशोश्च-
दशनच्छदौ॥ १७॥

सुखमेवं वमेद्बालः

अर्थ--कफात्मक स्तन्यमें मुलहटी और सेंधानमक मिलाकर अथवा पीपल और सेंधानमक इनमें घृत मिलाकर बालकको पान करावे। मेनफल के फूलोंको पीसकर शहत में मिलाकर धायके स्तनों पर और बालक के ओष्ठोंपर लगादे। ऐसा करने से बालकको सुखपूर्वक वमन होजाती है।

धायको वमन।

तीक्ष्णैर्धात्रीं तु वामयेत्।
यथाचरितसंसर्गीं मुस्तादिकाथितं पिबेत्॥
तद्वत्तगरपृथ्वीकासुरदारुकलिंगकान्।
अथवाऽतिविषामुस्तपटूप्रन्थापंचकोलकम्

अर्थ--धायको वमनकारक तीक्ष्ण औषध देकर वमन करावे। तत्पश्चात् पेयादि का पथ्य देकर मुस्तादि गण का काथ पान करावे, अथवा तगर, इलायची, देवदारु और इन्द्रजौ इनका काढा, अथवा अतीस, मोथा बच और पंचकोल इन सब द्रव्यों का काढा पान करावे।

त्रिदोषदुष्ट स्तन्यके उपद्रव।

स्तन्ये त्रिदोषमालिने दुर्गंध्यामं जलोपमम्।
विषद्रुमच्छदं बिच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते॥
शकृन्नानाव्यथापूर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम्।
ज्वरारोचकतृच्छर्दिश्वष्कोद्गारविजृंभिकाः॥
अङ्गभंगोऽगविक्षेपः कूजनं वेपथुर्भ्रमः।
घ्राणाक्षिमुखपाकाद्या जायंतेऽन्येऽपि तं-
गदम्॥ २२॥
क्षीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम्।

अर्थ--जब स्तनों का दूध वातादि तीनों दोषों द्वारा दूषित हो जाता है तब दुर्गंधित कच्चा, जलके सदृश, बंधा हुआ, पतला, फटा हुआ और झागदार दस्त होने लगता है तथा मूत्र भी अनेक तरह की वेदनाओं से युक्त, पीले, सफेद आदि वर्णोंसे युक्त और गाढा होने लगता है। इनके सिवाय ज्वर, अरोचक, तृषा, वमन, सूखी डकार, जंभाई, अंगभंग (अंगडाई) अंगविक्षेप (हाथ पांव फेंकना), अंत्रकूजन, कंपन, भ्रम, नासिका आंख और मुखमें पाक तथा और भी बहुत से रोग पैदा होजाते हैं। इसको क्षीरालसक कहते हैं, यह रोग बडा भयंकर होता है।

उक्तरोगमें चिकित्सा क्रम।

तत्राशु धात्रीं बालं च वमनैरुपपादयेत्॥

अर्थ--इस रोगमें धाय और बालक दोनों को शीघ्र ही वमन करावे।

अन्य उपाय।

विहितायां च संसर्ग्यां वचादि योजयेद्गणम्
निशादिं वाऽथवामाद्रीपाटातिक्तांघ्रिनामथाम्

अर्थ--तदनंतर पेयादि क्रमसे पथ्य देकर वचादि गण वा हरिद्रादि गण का काढा अथवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतीस, पाठा, कुटकी, मोथा और कूट इन का काढ़ा पान करावे ।

पाठादि का प्रयोग ।

पाठाशुंठ्यमृतातिक्तातिक्तादेवाह्वसारिवाः ।
समुस्तमूर्वेंद्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम् २५

अर्थ–पाठा, सोंठ, गिलोय, चिरायता, कुटकी, देवदारु, अनन्तमूल, मोथा, मूर्वा और इन्द्रजौ ये स्तनों के दूधका दोष हरनेवाली परमोत्तम औषध हैं ।

अनुबंधानुसार चिकित्सा ।

अनुबंधे यथाव्याधि प्रकुर्वीत कालावित् ।

अर्थ–व्याधिके अनुबंधमें देशकालानुसार चिकित्सा करना उचित है ।

दंतोद्भेदको रोगोंका हेतुत्व ।

दंतोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम् ।
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दि शिरोरुजाम्
अतिस्पंदस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते

अर्थ–दांतोंका निकलना सब रोगोंका कारण है । इसमें विशेष करके ज्वर, मलका फटना, खांसी, वमन, सिरका दर्द, अतिस्यंदन पोथकी (नेत्ररोग विशेष), और विसर्प ये उपद्रव उपस्थित होते है ।

दंतोद्भवमें पीडा पर दृष्टांत ।

पृष्ठभंगे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे ।
दंतोद्भवे च बालानां नहि किंचिन्न दूयते २८

अर्थ–बिल्ली की पीठके टूटने में, मोर की शिखाके उपजने में और बालक के दांत निकलने पर संपूर्ण देहमें पीडा हुआ करती है ।

दोषानुसार प्रयोग ।

यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम् ।
विभज्यदेशकालादींस्तत्रयोज्यमिषग्जितम्

अर्थ–दोष, रोग, दोषकी अधिकता, दोषका स्थान इनके अनुसार देश और काल की विवेचना करके औषध का प्रयोग करना चाहिये ।

बालक की चिकित्सा ।

तएव दोषादूष्याश्चज्वराद्याव्याधयश्चयत्
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ।
सौकुमार्यालपकायत्वात्सर्वान्नादुपसेवनात्

अर्थ–युवा आदि व्यक्तियों के जो वातादि दोषहैं, रसादि दूष्यहै, ज्वरादि रोगहैं वेही दोष, वेही दूष्य, वेही ज्वरादिरोग बालक के भी होते हैं, इसलिये बालक को भी वेही औषध देना चाहिये जो ज्वरादि प्रकरणों में अलग अलग कही गई है । परन्तु बालक का देह कोमल और शरीर छोटा होताहै और वह सब प्रकार के अन्न सेवन नहीं कर सकताहै, इसलिये उसको युवा की अपेक्षा ह्रस्वमात्रा देना चाहिये ।

बालकों को मृदुवमन ।

स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात्
सद्यस्तान्वमनं तस्मात्पाययेन्मतिमान् मृदु

अर्थ–घी दूधका सदा सेवन करते रहने से बालक सदा ही स्निग्ध हुआ करते हैं, इसलिये बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि बालकको शीघ्रही मृदुवमन पान करावै । इस कहने का तात्पर्य यह है कि वमनसे पहिले स्नेहन की आवश्यकता नहीं है ।

स्तन्यतृप्त को वमन ।

स्तन्यस्य तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीरान्नसेविनम्

अर्थ–दूध पीनेवाले तथा दूध और अन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को सेवन करने वाले बालक को स्तनपान से तृप्त कराके वमन करावे।

पेयापानवाले को वमन।

पीतवंतं तनुं पेयामश्नादं घृतसंयुताम् ॥

अर्थ—अन्न खानेवाले बालक को घी मिली हुई पतली पेया पानकराके वमन करावे।

विरेचनसाध्यरोग में कर्तव्य।

बस्तिं साध्ये विरेकेण मर्शेन प्रतिमर्शनम्।
युंज्याद्विरेचनादींस्तुधात्र्या एव यथोदितान्

अर्थ—विरेचनसाध्य रोगों में बस्ति और मर्शसाध्यरोगों में प्रतिमर्श का प्रयोग करना चाहिये। धायको भी विरेचनादि औषधों का सेवन करना चाहिये।

स्तन्यदोषनाशक लेह।

मूर्वात्र्योषवराकोलजंबूत्वग्दारुसर्षपाः ३४
सपाठा मधुना लीढाः स्तन्यदोषहराः परम्

अर्थ मूर्वा, त्रिकुटा, त्रिफला, बेर, जामन की छाल, देवदारू, सरसों और पाठा इनका चूर्ण करके शहत के साथ चाटने से स्तन्यदोष जाते रहते हैं।

दंतपाली का प्रतिसारण।

दंतपालीं समधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ३५
पिप्पल्या धातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा।

अर्थ-पीपल का चूर्ण अथवा धाय के फूल और आमले का चूर्ण शहत में मिला कर बालक के मसूडों पर धीरे धीरे मर्दन करे, इससे भी दांत निकल आते हैं।

लावादि चूर्ण।

लावतित्तिरवल्लूररजः पुष्परसप्लुतम् ३६
द्रुतं करोति बालानां दंतकेसरवन्मुखम्।

अर्थ—लवा और तीतर के सूखे हुए मांसको पीसकर शहत में मिलाकर बालक के मसूडों पर धीरे धीरे मर्दन करने से दांत बहुत शीघ्र निकल आते हैं।

दांतों के निकलने में घी।

वचाद्विवृहतीपाठाकटुकातिविषाधनैः ३७
मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजन्मनि।

अर्थ—वच, दोनों कटेरी, पाठा, कुटकी, अतीस और मोथा तथा मधुरगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी सेवन करने से दांत शीघ्र निकल आते हैं।

रजन्यादिचूर्ण का लेह।

रजनी दारुसरलःश्रेयसी बृहतीद्वयम् ३८
पृश्निपर्णीशताह्वाच लीढं माक्षिकसर्पिषा
ग्रहणीदीपनं श्रेष्ठं मारुतस्यानुलोमनम् ३९
अतीसारज्वरश्वासकामलापांडुकासनुत्।
बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्णदम् ४० ॥

अर्थ—हलदी, देवदारू, सरलकाष्ठ, हरड़, दोनों कटेरी, पृश्निपर्णी और सौंफ इनका चूर्ण करके घी और शहत में मिलाकर चाटे। यह अवलेह ग्रहणी को प्रदीप्त करने में उत्तम है, वायुका अनुलोमन करनेवाला है, अतीसार, ज्वर, श्वास, कामला, पांडुरोग, खांसी को दूर करदेता है। बालकों के सब रोगों में हितकारी है तथा बल और वर्ण को बढानेवाला है।

अन्य प्रयोग।

समंगाधातकीरोधकुटंनटबलाद्वयैः।
महासहाक्षुद्रसहाक्षुद्रबिल्वदलादुभिः ४१
सकार्पासीफलैस्तोये साधितैः साधितं-
घृतम्।
क्षीरमस्तुयुतं हंति शीघ्रं दंतोद्भवोद्भवान् ॥
विधिधानामयानेतद्बृद्धकश्यपनिर्मितम्।

अर्थ—मजीठ, धायके फूल, लोध, कैवटी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोथा, खरैटी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, कच्ची बेलगिरी, बिनोले इनके जल में दूध और दहीका का पानी मिलाकर उसमें सिद्ध किया हुआ घी दांत से उत्पन्न हुए हुए रोगों को शीघ्र नष्ट करदेता है तथा और भी अनेक प्रकार के रोगों को दूर करदेता है। यह औषध वृद्धकश्यप की बनाई हुई है।

दंतोद्भव में अतियंत्रणका निषेध।

दंतोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियंत्रयेत् ४३॥
स्वगमप्युपशाम्यंति जातदंतस्य यद्गदाः।

अर्थ-दांतों के निकलने के रोगमें बालक को चिकित्सा आदि का बहुत कष्ट न देवै क्योंकि दांतों के निकल आने पर ये सब रोग अपने आप शांत होजाते हैं।

बालक को अरोचकादि।

अत्यहः स्वप्नशीतांबुश्लेष्माभिष्कस्तन्यसेविनः
शिशोः कफेन रुद्धेषु स्रोतःसु रसवाहिषु।
अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः

अर्थ-दिनमें सोना, शीतल जल, कफ दूषित स्तन्य इनको अत्यन्त सेवन करने से बालक के रसवाही स्रोत कफ से रुकजाते हैं और इससे अरोचक, प्रतिश्याय, ज्वर और खांसी उत्पन्न होजाते हैं, बालक सूखता चला जाता है और उसके मुख और आंख चिकने और सफेद होजाते हैं।

उक्त अवस्था में उपाय।

सैंधवव्योषशार्ङ्गेष्टापाठांगिरिकदंबकान् ४६
शुष्यतो मधुसर्पिर्भ्यामरुच्यादिषु योजयेत्।

अर्थ-पूर्वोक्त अरोचकादि रोग से सूखे हुए बालक को सेंधा नमक, त्रिकुटा, कंजा पाठा और गिरिकदंब इनको पीसकर शहत और घी में मिलाकर सेवन कराता रहै।

अन्य प्रयोग।

अशोकरोहिणीयुक्तं पंचकोलं च चूर्णितम्॥
बदरीधातकीधात्रीचूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम्।

अर्थ-अशोक की छाल, कुटकी, और पंचकोल इनका चूर्ण अथवा बेर, धाय के फूल, और आमले का चूर्ण घी में सानकर सेवन करावे।

अन्य प्रयोग।

स्थिराबचाद्विबृहतीकाकोलीपिप्पलीनतैः॥
निचुलोत्पलवर्षाभूमार्गामुस्तैश्च कार्षिकैः।
सिद्धं प्रस्थार्धमाज्यस्य स्रोतसां शोधनम्परम्॥ ४९॥

अर्थ-शालपर्णी, बच, दोनों कटेरी, काकोली, पीपल, तगर, निचुल, उत्पल, सांठ, भाडंगी और मोथा प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर इसके साथ आधा प्रस्थ घी पकावे। इसके सेवन से स्रोत खुलजाते हैं यह इस कामके लिये सर्वोत्तम औषध है।

अन्य घृत।

सिंह्यश्वगन्धा सुरसा कणागर्भं च तद्गुणम्।

अर्थ-कटेरी, असगंध, तुलसी और पीपल इनके कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घी पूर्वोक्त गुणकारक है।

अन्य घृत।

यष्ट्याह्वपिप्पलीरोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः॥
तालीसपत्रिकाभ्यां च साधितं-
शोषजिद्घृतम्।

अर्थ-मुलहटी, पीपल, लोध, पद्माख नीलोत्पल, रक्तचंदन, तालीसपत्र और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारिवा इनसे सिद्ध किया हुआ घृत भी प्रयोग में लाना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

शृंगीमधूलिकाभार्गीपिप्पलीदेवदारुभिः ५१
अश्वगन्धाद्विकाकोलीराम्नार्षभकजीवकैः।
सूपर्णीत्रिडंगैश्च कल्कितैः साधितम्-
घृतम् ॥ ५२ ॥
शशोलूकांगनिर्यूहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम्।

अर्थ-काकडासींगी, मुलहटी, भाडंगी पीपल, देवदारु, असगंध, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना, ऋषभक, जीवक, शूर्पपर्णी और बायबिडंग इनके कल्क तथा खर्गोश के सिरके काढे के साथ सिद्ध किया हुआ घी सूखे हुए बालक को अत्यन्त पुष्टि कारक है।

अभ्यंजन के लिये तेल।

वचावयस्थातगरकायस्थाचोरकैः श्रृतम्॥
बस्तमूत्रसुराम्यां च तैलमभ्यंजने हितम्।

अर्थ-बच, आमला, तगर, हरड, और चोरक इनके कल्क तथा बकरे के मूत्र और सुराके साथ पकाया हुआ तेल अभ्यंजनमें हितहै।

बालककी खांसीआदि में लेह।

लाक्षारससमं तैलंप्रस्थं मस्तुचतुर्गुणम्॥
अश्वगन्धामिशादारुकौंतीकुष्ठाब्दचन्दनैः।
समूर्वारोहिणीरास्नाशताह्वामधुकैः समैः॥
सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यंजनादिदम्।
बल्यं ज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत्
यक्षराक्षसभूतघ्नम् गर्भिणीनां च शस्यते।

अर्थ-एक प्रस्थ तेल और इतनाही लाखका रस और चौगुना दही का पानी, तथा असगंध, हलदी, देवदारु, रेणुक, कूठ, नागरमोथा, रक्तचंदन, मूर्वा, कुटकी, रास्ना, सितावर, और मुलहटी, इन सबको समान भाग लेकर इनका कल्क करके तैल पाककरे। यह लाक्षादि तैल मर्दन करने से बल को बढाता है, ज्वर, क्षयी, उन्माद, श्वास, अपस्मार तथा वात रोगों को दूर करता है। यक्ष, राक्षस और भूतों का नाश करता है। गर्भिणी स्त्रियों के लिये भी उत्तम है।

लाक्षादि तैल।

मधुनाऽतिविषाशृंगीपिप्पलीलेंहयेच्छिशुम्
एकां वातिविषां कासज्वरछर्दिरुपद्रुतम्।

अर्थ-अतीस, काकडासींगी, पीपल, इन के चूर्ण को अथवा केवल अतीस के चूर्ण को शहत के साथ चटाने से बालक की खांसी, ज्वर, वमन, आदि उपद्रव जाते रहते हैं।

अन्य अवलेह।

पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा॥
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत्।
पिप्पली पञ्चलवणं कृमिजित्पारिभद्रकम्॥
तद्वल्लिह्यात्तथा व्योषं मयूरी वा रोमचर्मणाम्
लाभतः-
शल्यकश्वाविधोरभ्रशिखिजन्मनाम् ६० ॥

अर्थ-जो बालक दूध पीते ही वमन कर देता है उसे दोनों प्रकार के बेंगनोंका रस वा पंचकोल का चूर्ण घी और शहत के साथ चटावै। इसी तरह पीपल, पांचों नमक, बायबिडंग और नीमको चटावै। अथवा त्रिकुटा का चूर्ण अथवा शल्यक, सेह, गोधा, रीछ और मोर इनके चमडे वा रोमों की राख और शहत मिलाकर चाटै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य घी ।

खदिरार्जुनतालीसकुष्ठचन्दनजे रसे ।
सक्षीरं साधितं सर्पिर्वमथुं विनियच्छति ॥

अर्थ–खैर, अर्जुनकी छाल, तालीसपत्र, कूठ, और रक्तचंदन इनके काथ में दूधके साथ घी पकाकर पीनेसे बालककी वमन रुक जाती है ।

दांतवाले बालककी चिकित्सा ।

सदंतो जायते यस्तु दंताः प्राग्वस्य वोत्तराः
कुर्वीत तस्मिन्नुत्पाते शांतिकम् च-
द्विजायते ॥ ६२ ॥
दद्यात्सदक्षिणं बालं नैगमेषं च पूजयेत् ।

अर्थ–जो बालक दांतों समेत जन्मलेता है, अथवा जिसके पहिले ऊपरवाले दांत निकलते हैं, उसकी स्वस्तिवाचन शांति कर्म करने चाहियें । दक्षिणा सहित उस बालक को ब्राह्मण के लिये दान करदेवे और नैगमेषकी पूजा करे ।

तालुकंटक ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ॥
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ।
तालुपातेस्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम्
तृड्दास्यकण्ठचक्षिरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः

अर्थ–मधुर आहारादि के सेवन से कफ क्रुद्ध होकर तालुमांस में तालुकंटक नाम रोग को पैदा कर देता है । इससे मस्तक के तालु प्रदेश में नीचापन, तालुपात, स्तनद्वेष कठिनता से पानी वा दूधका पीना, दस्तका पतलापन, तृषा, मुखमें खुजली, आंखों में दर्द गरदन का न ठहरना और वमन ये उपद्रव उपस्थित होते हैं ।

उक्तरोग में उपाय ।

तत्रोत्क्षिप्य यवक्षारक्षौद्राभ्यां-
प्रतिसारयेत् ॥ ६५ ॥
तालु तद्वत्कणाशुंठीगोशकृद्रससैंधवैः ।

अर्थ–तालुकंटक रोगमें तालुको उठाकर शहत और जवाखार अथवा पीपल, सोंठ गोबर का रस और सैंधानमक मिलाकर प्रतिसारण करै ।

अन्य औषध ।

शृङ्गवेरनिशाभृंग कल्कितं घटपल्लवैः ६६
बध्वा गोशकृता लिप्तं कुकूले स्वेदयेत्ततः ।
रसेन लिंपेत्तालव्यास्यं नेत्रे च परिषेचयेत् ॥

अर्थ–अदरख, हलदी और भांगरा इन तीनोंको पीसकर लुगदी बनाकर ऊपर बड के पत्ते लपेट देवे, ऊपरसे गोबर पोतकर तुष की अग्निमें स्वेदित करे । फिर इसका रस निचोडकर तालु और मुख पर लेपन करे नेत्रों को परिषेचन करे ।

तालुकंटक की दवा ।

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कम् माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात्

अर्थ–हरड, बच और कूठ इनका कल्क करके शहत मिलाकर स्तनके दूधमें मिलाकर पीनेसे बालकका तालुकंटक रोग जाता रहताहै

तमनामिक रोग ।

मलोपलेपात्स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भवः ।
ताम्रो व्रणोऽन्तः कण्डूमान् जायते भूर्युपद्रवः
केचित्तं मातृकादोषं वदंत्यन्येऽपि पूतनम् ।
मंडारुगुदकुंदं च केचिच्च तमनामिकम् ७०

अर्थ–बालक की गुदाके अच्छी तरह न धोनेसे मल लगे रहने के कारण अथवा पसीने से रक्त और कफसे गुदाके भीतर एक ताम्रवर्ण घाव हो जाता है, इसमें खुजली चल चल कर बहुत से उपद्रव हो जाते हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसे कोई मातृकादोष कोई पूतनारोग, कोई पृष्ठारु, कोई गुदकुंद और कोई अनामिक रोग कहते हैं।

उक्तरोगमें कर्तव्य।

तत्र धात्र्या पयः शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः

अर्थ—इस रोगमें पित्तकफ नाशक औषधियों द्वारा धायकादूध शुद्ध करना चाहिये।

व्रणलेपन

शृतशीतं च शीतांबुयुक्तमंतरपानकम् ७१॥
सक्षौद्रतार्क्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत्।
त्रिफलावदरीपल्लक्षत्वक्क्वाथपरिषेचितम्
कासीसरोचनातुत्थमनोह्वालरसांजनैः।
लेपं येदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वाथचूर्णयेत् ७३
शुभ्रलक्ष्णैरथवा यष्टीशंखसौवीरकांजनैः।
सा रिवाशंखनाभिभ्यामशनस्य·
त्वचाऽथवा॥ ७४॥
रागकण्डूत्कटे कुर्याद्रक्तस्रावं जलौकसा।
सर्वे च पित्तव्रणजिच्छस्यते गुदकुट्टके ७५

अर्थ—शहत और रसौत मिलाकर ठंडा पानी अथवा औटाये हुए ठंडे पानी में शहत और रसौत डालकर पान करै और इसी जलका घाव पर लेप करै। त्रिफला, बेर, और पाकड की छालके क्वाथ से सेचन करके उसपर हीरा कसीस, गोरोचन, नीलाथोथा, हरताल, रसौत इनको कांजी में पीसकर लेप करदे। अथवा उक्त त्रिफलादि का चूर्ण महीन पीसकर बुरकदे। अथवा मुलहटी, शंख, सौवीरांजन अथवा असनकी छाल का चूर्ण बुरकदे। जो घाव में खुजली की अधिकता और ललाई हो तो जोक लगाकर रुधिर निकाल डाले। गुदकुट्टकरोग में पित्त व्रणके समान चिकित्सा करना उत्तम है।

अन्य लेह।

पाठावेल्लत्रिरजनीमुस्तभार्गीपुनर्नवैः।
सविल्वच्यूषणैः सर्पिर्वृश्चिकालीयुतैः-
क्षतम्॥ ७६॥
लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः।

अर्थ—पाठा, वायबिडंग, हलदी, दारुहलदी, मोथा, भाडंगी, पुनर्नवा, बेलगिरी, त्रिकुटा, और वृश्चिकाली इनके कल्क के साथ पकाया हुआ घी यथायोग्य मात्रा से सेवन करने पर बालक के मृत्तिका के खाने से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

व्याधेर्यस्य भैषज्यं स्तनस्तेन प्रलेपितः।
स्थितो मुहूर्तं धौतोनु पीतस्तं तम्-
जयेद्ग्रहम्॥ ७७॥

अर्थ—जिस जिस रोग में जो जो औषध कही गई हैं उन औषधों को घोटकर स्तनों पर लेप करदे। दो घडी पीछे सूख जानेपर लेपको उतार दे और स्तनों को अच्छी तरह धोकर बालकको स्तनपान करावे तो बालक के वे वे रोग नष्ट हो जाते हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने बालामय प्रतिषेधोनाम द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

अथाऽतो बालग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहांसे बालग्रह प्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बारहप्रकार के ग्रह ।

" पुरागुरस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना
मनुष्यविग्रहाःपंच सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः १

अर्थ–पुरातन कालमें शूलपाणि शिवजी ने अपने पुत्र स्वामिकार्तिक की रक्षाके निमित्त बारह ग्रह निर्माण कियेथे, उनमें से पांचग्रह मनुष्यरूप और सात स्त्री रूप थे ।

ग्रहोंके नाम ।

स्कंदोविशाखोमेषाख्यः श्वग्रहःपितृसंज्ञितः
शकुनिः पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना २
मुखमंडलिका तद्वद्रेवती शुष्करेवती ।

अर्थ--स्कंद, विशाखा, मेषाख्य, श्वग्रह, और पितृग्रह ये पांच पुरुषाकृति थे और शकुनि, पूतना, शीतपूतना, दृष्टिपूतना, मुखमंडलिका, रेवती और शुष्करेवती ये सात ग्रह नारीरूप थे ।

ग्रहों द्वारा ग्रहणकेलक्षण।

तेषां ग्रहीष्यतां रूपं प्रततं रोदनं ज्वरः ।३।

अर्थ–बालक को जब ग्रह ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वह बालक निरंतर रोने लगता है उसको ज्वर होता है ।

ग्रहों का सामान्यरूप ।

सामान्यं रूपमुत्रासजृंभाभ्रूक्षेपदीनताः ।
फेनस्रावीर्ध्वदृष्टयोष्ठदंतदंशप्रजागराः ॥४॥
रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम् ।
नखैरकस्मात्पतितः स्वधात्यंगविलेखनम् ।

अर्थ–ग्रहों के आक्रमण का सामान्य रूप यहहै कि जब ग्रह बालक पर झपटते हैं तब बालक भयत्रस्त होता है, जंभाई लेता है, भृकुटियों को इधर उधर चलाता है, कातर होता है, झाग डालता है, उंची दृष्टि करके देखता है, ओष्ठ और दांतों को चबाता है, जगता रहता है, रोता है, कूजता है, स्तन पीना छोडदेता है, उसका स्वर बिगडजाता है, नखसे अकस्मात् अपने और धायके अंगको खुरच डालता है ।

स्कंद गृहीत के लक्षण ।

तमेकनयनस्रावी शिरो विक्षिपते मुहुः ।
हतैकपक्षः स्तब्धांगः सस्वेदो नतकंधरः ६
दंतखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति विस्वरः
वक्रवक्त्रो घर्मेल्लालां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते
यस्यासृग्गंधिरुद्विग्नो बद्धमुष्टिश्चकृच्छिशुः ।
चलितैकाक्षिगंडभ्रूः संरक्तोभयलोचनः ८
स्कंदार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भवेद्ध्रुवम्

अर्थ–जो बालक स्कंदग्रह के झपाटे में आताहै, उसी एक आंखसे पानी निकला करता है, बार बार सिरको इधर उधर फेंकताहै, वह पक्षाघात, अंगकी जकडन, पसीनों की अधिकता से पीडित होताहै, उसके कंधे झुक जाते हैं, दांतों को किटकिटाताहै स्तन पीना छोड देताहै, डरताहै, रोताहै, उसके स्वरमें विकृति होजाती है, मुख टेढा पडजाता है, लार बहुत डालताहै, ऊपर को बहुत देखता है, उसके देहसे चर्बी और रुधिर की सी गंध आने लगती है, उद्विग्न होजाताहै, मुट्ठी बांध लेताहै उसका दस्त रुकजाता है । उसकी एक ओर की आंख गंडस्थल और भृकुटी कांपने लगती है, दोनों नेत्र लाल होजाते हैं । इस रोगमें अत्यन्त विकलता और मरण निश्चय होताहै ।

विशाखागृहीतके लक्षण ।

संज्ञानाशो मुहुः केशलुंचनं कंधरानतिः ९
विनम्य जृंभमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम् ।
फेनोद्वमनमूर्ध्वाक्षहस्तभ्रूपादनर्तनम् १०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तनस्यजिह्वासंदंशसरभज्वरजागराः।
पूयशोणितगंधत्वं स्कंदापस्मारलक्षणम्।

अर्थ—जिस बालक पर विशाख आक्रमण करता है उसके होश हवास जाते रहते हैं, वह बार बार केशों को खेंचता है, कंधों को झुकाता है, जंभाई लेता हुआ कंधों को झुकाकर मलमूत्र का त्याग करता है, झाग डालता है, सिर आंख, हाथ भृकुटी और पांवों को नचाता है, माता के स्तन और अपनी जिह्वा को काटता है संरंभ, ज्वर, निद्रानाश, राध और रुधिर की सी गंध ये सब उपद्रव स्कंदापस्मार से आक्रांत बालक के उपस्थित होते हैं।

मेषगृहीत के लक्षण।

आध्मानं पाणिपादास्यस्पंदनं फेननिर्वमः।
तृण्मुष्टिबंधातीसारस्वरदैन्यविवर्णताः १५
कूजनं स्तनतं छर्दिः कासहिध्माप्रजागराः
ओष्ठदंशांगसंकोचस्तंभवस्तामगंधताः १३
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः।
मूर्छैकनेत्रशोफश्च नैगमेषग्रहाकृतिः १४

अर्थ-पेट पर अफरा, हाथ पांव और मुखका फडकना, झाग डालना, तृषा, मुट्ठी बांधना, अतीसार, स्वरमें दीनता, विवर्णता अव्यक्तकूजन, बादल की गर्जकासा शब्द, वमन, खांसी, हिचकी, निद्रानाश, ओष्ठदंशन, अंगसंकोच, स्तब्धता, देहमें बकरे की सी गंध वा आमगंध, ऊपर को देखना, हंसना, देहके मध्यभाग का झुकजाना, ज्वर, मूर्च्छा, एक आंख में सूजन ये सब उपद्रव नैगमेषग्रह के आक्रमण में उपस्थित होते हैं।

श्वग्रहगृहीत के लक्षण।

कंपो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम्।
बहिर्निष्क्रमणं जिह्वादंशोऽतः कंठकूजनम्
धावनं विट् सगंधत्वं क्रोशनं श्वानवच्छुनि

अर्थ—कांपना, रोमांच, खडे होना, स्वेदन, नेत्रों को बन्द करलेना, बहिरायाम, जीभ काटना, कंठ के भीतर कबूतर की सी कूजन, धावना, देह से विष्ठा की सी गंध निकलना, और कुत्तेकी तरह कूंय कूंय करना, ये सब लक्षण श्वग्रह से पीडित बालक के होते हैं।

पितृग्रहगृहीत के लक्षण।

रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः।
कासातीसारवमथुजृंभातृट्शवगंधताः।
अंगेष्वाक्षेपविक्षेपः शोषस्तंभविवर्णताः १७
मुष्टिबंधः स्रुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्यस्युःपितृग्रहे

अर्थ—रोमांच खडे होना, बार बार डर कर उछल पडना, अकस्मात् रोपडना, ज्वर, खांसी, अतिसार, वमन, जंभाई, तृषा, मुर्देकी सी गंध, देहका इधर उधर फेंकना, शोष, स्तब्धता, विवर्णता, मुट्ठी बांधना, आंखोंसे पानी बहना। ये सब लक्षण पितृग्रह के आक्रमण से होते हैं।

शकुनिग्रह के लक्षण।

स्रस्तांगत्वमतीसारो जिह्वातालुगलेव्रणाः
स्फोटाः सदाहरुक्पाकाःसंधिषु स्युःपुनःपुनः
निश्यन्हि प्राविर्लीयंतो पाकोवक्त्रेगुदऽपिवा
भयं शकुनिगंधत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे।

अर्थ—देहमें शिथिलता, अतीसार, जिह्वा तालु और गाल में घाव, दिनरात दाह वेदना और पाक से युक्त फोडों का संधियों में बार बार उत्पन्न हो हो कर मिटजाना, मुखका पकना, गुदाका पकना, भय देहमें पक्षियों की सी गंध, और ज्वर ये सब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लक्षण शकुनि नामक ग्रह के द्वारा आक्रमण होने पर उपस्थित होते हैं ।

पूतनाग्रह के लक्षण ।

पूतनायां वमिः कंपस्तंद्रा रात्रौ प्रजागरः
हिध्माध्मानं शकृद्भेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः
स्रस्तरुष्टांगरोमत्वं काकवत्पूतिगंधता २१

अर्थ–वमन, कंपन, तंद्रा, रातमें नींद न आना, हिचकी, अफरा, मलका फटजाना, तृषा का वेग, मूत्रका कम होना, देहमें शिथिलता, रोमांच खडे होना और कौए के समान सडी हुई गंधका देहसे निकलना ये सब लक्षण पूतना रोगमें उपस्थित होतेहैं ।

शीतपूतना के लक्षण ।

शीतपूतनया कंपो रोदनं तिर्यगीक्षणम्
तृष्णांत्रकूजोऽतीसारो वसायद्विस्रगंधता ।
पार्श्वस्थैकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च ।

अर्थ–कांपना, रोना, तिरछी, दृष्टि से देखना, तृषा, अंत्रकूजन, अतीसार, चर्बीके समान सडी हुई गंध, एक पसवाडे में ठंडापन और दूसरे में गरमाई ये सब लक्षण शीतपूतना के आक्रमण में होते हैं ।

अंधपूतना के लक्षण ।

अंधपूतनया छर्दिर्ज्वरः कासोऽल्पवन्हिता
वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गंध्यान्यंगशोषणम् ।
दृष्टिसादोऽतिरुक्कंडूपोथकीजन्मशून्यताः ।
हिध्मोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्ये स्वरतीक्ष्णता ।
वेपथुर्मत्स्यगंधित्वमथवा साम्लगंधिता ।

अर्थ–वमन, ज्वर, खांसी, मंदाग्नि, मलका फटना, विवर्णता, दुर्गंधि, देहका सूखना, दृष्टिमें शिथिलता, अत्यन्त वेदना, खुजली, पोथकी (नेत्ररोग), देहमें सुन्नता, हिचकी, उद्वेग, स्तनपान न करना, विवर्णता, स्वर में तीखापन, कांपना, देहमें मछली की सी वा खट्टी गंध आना ये सब लक्षण अंधपूतना, के आक्रमण में होते हैं । दृष्टिपूतना भी अंधपूतना का दूसरा नामहै।

मुखमंडिताके लक्षण ।

मुखमंडितया पाणिपादस्य रमणीयता ।
सिराभिरसिताभिराचितोदरता ज्वरः ।
अरोचकोऽगग्लपनं गोमूत्रसमगंधता ।

अर्थ–हाथ पावों में रमणीयता, काली काली सिराओं द्वारा पेटका व्याप्त होजाना ज्वर, अरोचक, अंगग्लानि, और देहमें से गोमूत्र की सी गंध आना ये सब लक्षण मुखमंडिता के आक्रमण के होते हैं ।

रेवती के लक्षण ।

रेवत्यां श्यावनीलत्वं कर्णनासाक्षिमर्दनम् ।
कासहिध्माक्षिविक्षेपवक्त्रवक्त्रत्वरक्तताः ।
वस्तगंधो ज्वरः शोषः पुरीषे हरितं द्रवम्

अर्थ–देहका श्याव वा नीलवर्ण होना, कान नाक और आंखोंका मर्दन, खांसी हिचकी, आंखों का इधर उधर फेंकना, मुख का टेढापन, ललाई, देहमें बकरे की सी गंध आना, ज्वर, शोष, मलका हरा और और पतला होजाना । ये सब रेवतीनामक ग्रहके आक्रमण के लक्षण हैं ।

शुष्करेवती के लक्षण ।

जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वांगसंक्षयः ।

अर्थ–शुष्करेवतीके आक्रमण से बालक का संपूर्ण देह धीरे धीरे सूखता चलाजाताहै ।

ग्रहोंके असाध्य लक्षण ।

केशशातोक्षविद्वेषः स्वरदैन्यं विवर्णता २९
रोदनं गृध्रगंधित्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ।
उदरे ग्रंथयो वृत्ता यस्य नानाविधं शकृत्
जिव्हायानिम्नतामध्येदयावंतालु चतैत्यजेत्

अर्थ–ग्रहोंसे पीडित होनेपर जिस बा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लकके बाल झडजाते हैं, अन्न नहीं खाता है, स्वर में क्षीनापन और शरीर के वर्णमें विकृति होजाती है, रोताहै, जिसके देहमें गिद्ध की सी गंध आने लगती है, जो रोग बहुत पुराना पडजाता है, जिसके उदर में गोल गोल गांठ पैदा होजाती हैं, विष्टा का रंग अनेक प्रकार का होजाता है जीभ बीचमें नीची पडजाती है और तालुमें श्यामवर्णता होजातीहै। ऐसा बालक असाध्य होजाताहै।

शुष्करेवती द्वारा वध।

भुंजानोऽन्नं बहुविधं यो बालः परिहीयते
तृष्णागृहीतक्षामाक्षो हंति तं शुष्करेवती।

अर्थ–जो बालक अनेक प्रकार के भोजन करते करते भी क्षीण होता चला जाता है और प्यासकी अधिकता से जिसकी आंखों पर क्षीणता होती चली जाती है उस बालक को शुष्करेवती नामक ग्रह मार डालताहै।

ग्रहग्रहण के लक्षण।

हिंसारत्यर्चनाकांक्षा ग्रहग्रहणकारणम्।

अर्थ–हिंसा, रति और अर्चनाकांक्षा इन तीन कारणों से ग्रह बालक पर आक्रमण किया करते हैं।

हिंसात्मक ग्रहके लक्षण।

तत्र हिंसात्मकेबालोमहान् वाप्लुतनासिकः
क्षतजिह्वः क्षणेदू ढाढमसुखी साश्रुलोचनः
दुर्वर्णो हीनवचनः पूतिगंधिश्च जायते।
क्षामो मूत्रपुरीषं स्वं मृद्नाति न जुगुप्सते।
हस्तौ घोषयन्संरब्धोहंत्यात्मानं यथापरम्
तद्वच्च शस्त्रकाष्ठाद्यैरग्निं वा दीप्तमाविशेत्।
अप्सु मज्जेत्पतेत्कूपे कुर्यादन्यच्च तद्विधम्।
मुहुर्दाहमोहान् पूयस्य छर्दनं च प्रवर्तयेत्
एकं च सर्वमार्गेभ्यो रिष्टोत्पत्तिश्च तं त्यजेत्

अर्थ–जब बालक वा बडा हिंसात्मक ग्रहों द्वारा आक्रमित होता है तब उसकी नाक में से जल बहने लगता है। जिह्वा में घाव होजाते हैं, बुरी तरह कराहता है, अपने को असुखी कहने लगता है, नेत्रोंमें जल भरता है, विवर्णता, बोली में क्षीनापन, और दुर्गंधि पैदा होजाती है क्षीण होजाता है, अपने मलमूत्र को आपही कुरेदता है निंदित नहीं समझता है। क्रुद्धित हो दोनों हाथों को उठाकर अपने तई वा औरों को मारता है, इसी तरह शस्त्र वा लाठी से भी करने लगता है। जलती, हुई अग्निमें घुस पडता है, पानी में डूबता है, कूएमें गिरता है वा और भी ऐसे ही काम करता है, तृषा, दाह, प्रमोह, से पीडित होता है। राधकी वमन करता है। और संपूर्ण स्रोतों द्वारा रुधिर निकलने लगता है। ऐसे अरिष्ट लक्षणों से आक्रान्त रोगी को त्याग देना चाहिये।

रतिकामी ग्रहोंके लक्षण।

रहः स्त्रीरतिसंलापगंधस्रग्भूषणप्रियः ३७
हृष्टः शांतश्चदुःसाध्यो रतिकामेन पीडितः

अर्थ–रतिकामी ग्रहोंसे पीडित रोगी एकान्त में स्त्रियों के साथ रमण और वार्तालाप में प्रवृत होता है। सुगंधित द्रव्य, माला और आभूषणादि से प्रेम रखता है, प्रफुल्लित चित्त और शांत रहता है। रतिकाम से पीडित रोगी दुःसाध्य होता है।

अर्चाकामी ग्रहोंके लक्षण।

दीनः परिमृशेद्वक्त्रं शुष्कोष्ठगलतालुकः।
शंकितं वीक्षतेरौति ध्यायत्यायातिदूनताम्
अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नाति बुभुक्षते।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गृहीतं बलिकामेन तं विद्यात्सुखसाधनम् ।

अर्थ–जब ग्रह अपनी पूजा कराने की कामना से आक्रमण करते हैं तब बालक दीन होकर अपने हाथों से मुखको मलता है उसके ओष्ठ, तालु और कंठ सूख जाते हैं। शंकित चित्त होकर चारों ओर देखने लगता है, रोता है, ध्यान में बैठ जाता है, दीनता प्राप्त कर लेता है, भोजन की इच्छा होनेपर भी खाता नहीं है ऐसा रोगी सुखसाध्य होताहै

उक्तरोगों की चिकित्सा ।

हंतुकामं जयेद्धोमैः सिद्धमंत्रप्रवर्तितैः ४०
इतरौ तु यथाकामं रतिबल्यादिदानतः ।

अर्थ–हिंसात्मक ग्रहोंको वेदोक्त मंत्रों द्वारा होमादि से जय करे । तथा रतिकामी अर्चाकामी ग्रहोंको यथाभलषित रतिप्रदान और बलिप्रदानादि से जीतने का उपाय करे।

धूपन विधि ।

अथ साध्यग्रहं बालं विविक्ते शरणे स्थितम्
त्रिरहः सिक्तसंसृष्टे सदा सन्निहितानले ।
विकीर्णभूमिकुसुमपत्रबीजान्नसर्षपे ४२ ॥
रक्षोघ्नतैलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि ।
व्यवायमद्यपिशितनिवृत्तपरिचारके ॥ ४३
पुराणसर्पिषाभ्यक्तं परिषिक्तं सुखांबुना ।
साधितेन बलानिंबवैजयंतीन्द्रदुमैः ४४ ॥
पारिभद्रककट्वंगजंबूवरुणकद्रुतृणैः ।
कपोतवंकापामार्गपाटलामधुशिग्रुभि ४५ ॥
काकजंघामहाश्वेताकपित्थक्षीरपादपैः ।
सकदंबकरंजैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत् ॥
द्वीपिव्याघ्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्धृतमिश्रितैः ।

अर्थ–जो बालक साध्य ग्रहों से आक्रांत हो उसे जनशून्य स्थान में रखना चाहिये। उस घर में प्रतिदिन तीन बार प्रोक्षण और सफाई करनी चाहिये । सदा अग्नि पास में रक्खे । भूति औषध के पत्ते, फूल और बीज, अन्न तथा सरसों उस घर में बखेर देनी चाहिये । राक्षसों का नाश करनेवाला तेल दीपक में भरकर जलावे जिससे पापों का क्षय हो । रोगी का परिचारक स्त्रीसंगम मद्यपान, मांसभक्षण का परित्याग कर देवे। पुराना घी देह पर लगाकर खैरटी, नीमके पत्ते, जैती, अमलतास, इन द्रव्यों से सिद्ध किये हुए सुहाते हुए गरम पानी से बालक को स्नान करावे अथवा नीम, सोनापाठा, जामन, बरना, कटतृण, ब्राह्मी, ओंगा, पाटला, मीठा सहजना, काकजंघा महाश्वेत, कैथ, बटादि दूधके वृक्ष कदंब और कंजा इन द्रव्यों के जल से स्नान करावे । तत्पश्चात् गेंडा, व्याघ्र, सर्प, सिंह, रीछ, इनके चमडों में घी मिलाकर धूनी देवे ।

अन्य धूप ।

पूतीदशांगीसिद्धार्थवचाभल्लातदीप्यकैः ४७
सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ।

अर्थ–कंजा, दशांग, सरसों, वच मिलावा, अजवायन और कूठ इनमें घी मिला कर धूप देने से संपूर्ण ग्रहों की शांति हो जाती है ।

दशांग धूप ।

वचाहिंगुविडंगानि सैंधवं गजपिप्पली ४८
पाठा प्रतिविषाव्योषं दशांगः कश्यपोदितः

अर्थ–वच, हींग, बायविडंग, सेंधा नमक, गजपीपल, पाठा, अतीस और त्रिकुटा इन दस द्रव्यों की धूनी को दशांग कहते हैं, यह कश्यप की बनाई हुई है ।

अन्य धूप ।

सर्षपा निंबपत्राणि मूलमश्वखुरा वचा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूतघ्नंपयं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारणः।

अर्थ-सरसों, नीम के पत्ते, मुल, गिरिकर्णिका, बच, और भोजपत्र इनको कूट कर घी में मिलाकर धूनी देने से सम्पूर्ण ग्रहों की शांति होजाती है।

अन्य प्रयोग।

अनंतात्रास्थितगरं मरिचं मधुरो गणः ५०
शृगालविघ्ना मुस्ता च कल्कितैस्तैर्घृतं पचेत्
दशमूलरसक्षीरं युक्तं तद्ग्रहजित्परम् ५१॥

अर्थ-अनंतमूल, आमकी गुठली, तगर, कालीमिरच, मधुरगणोक्त द्रव्य, प्रश्नपर्णी और मोथा इनका कल्क तथा दशमूल का रस और दूध इन सब के साथ में पकाया हुआ घी पान कराने से संपूर्ण ग्रह शांत हो जाते हैं। यह बालक के लिये अच्छा पथ्य है।

अन्य घृत।

रास्नाश्वंशुमतीवृद्धपञ्चमूलवचाघनात्।
क्वाथे सर्पिः पचेत्पिष्टैः सारिवाव्योषचित्रकैः
पाठाविडंगमधुकपयस्याहिंगुदारुभिः।
सग्रंथिकैः सैंद्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम्
सर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम्।

अर्थ-रास्ना, बाला, शालपर्णी, बृहत्पंचमूल, बच और नागरमोथा इनका काढा करले। तथा सारिवा, त्रिकुटा, चीता, पाठा वायविडंग, मुलहटी, दुद्धी, हींग, देवदारु, पीपलामूल और इन्द्रजौ इनका कल्क मिला कर पाकोक्त विधिसे घृत को पकावै। बालक के लिये यह घृत निरंतर हितकारी है, संपूर्णरोगों का नाश करने वाला है, अग्निसंदीपन है तथा बल और वर्ण को बढाने वाला है।

अन्य घृत।

सारिवासुरभीब्राह्मीशंखिनीकृष्णसर्षपैः ५४
वचाश्वगन्धासुरसायुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत्।
तन्नाशयेद्ग्रहान्सर्वान्पानेनाभ्यंजनेन च ५५

अर्थ-सारिवा, रास्ना, ब्राह्मी, शंखनी, काली सरसों, बच, असगंध और तुलसी इनके काढे के साथ पकाया हुआ घी पान और अभ्यंजन द्वारा प्रयुक्त किये जानेपर संपूर्ण ग्रहों को शांत करदेता है।

अन्य धूप।

गो शृंगलोमशालाहिनिर्मोकवृषदंशविट्।
निंबपत्राज्यकटुका मदनं बृहतीद्वयम् ५६॥
कार्पासास्थियवच्छागरोमदेवाह्वासर्षपम्।
मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम् ५७॥
मृद्भांडे धस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णचूर्णितम्
धूपनार्थं हितं सर्वं भूतेषु विषमे ज्वरे ५८॥

अर्थ-गौ का सींग, रोम, पूंछके बाल, सर्पकी काचली, बिल्ली का बिष्टा, नीमके पत्ते, घी, कुटकी, मेनफल, दोनों कटेरी, बिनौला, जौ, बकरी के रोम, देवदारु, सरसों, मयूरपुच्छ, सरलकाष्ठ, बहेडा, बालछड, हींग, इन सब द्रव्यों को एक मृतिका के पात्रमें रखदेवे और बकरे के मूत्रकी भावना देकर सुखाकर महीन पीसकर धूप देवे इससे संपूर्ण ग्रहविकार और विषम ज्वर दूर हो जाते हैं।

भूतविद्या के द्रव्य।

घृतानि भूतविद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानि च
युंज्यात्तथा बलिं होमं स्नपनं मंत्रतंत्रवित् ५९

अर्थ-भूतविद्या में जो जो घृत कहेगये हैं वे सब घृत, तथा बलिदान, होम, और स्नानादि का प्रयोग मंत्र तंत्रका जाननेवाला करै।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नानार्थ जल।

पूतीकरंजत्वक्पत्रं क्षीरिभ्यो बदराद्पि।
तुंबीविशालारलुकाशमीबेल्वकपित्थकाः॥
उत्क्वाथ्य तोयं तद्वारि बालानां स्नपनम्-
शिशम्।

अर्थ–पूतिकरंज की छाल और पत्ते, दूधवाले वटादि वृक्षों के छाल और पत्ते, तिलवण के छाल और पत्ते, तूंवी, इन्द्रायण पाठा, शमी, बेल और कैथ इनको डालकर जल औटावै और इस जलसे बालक को रात्रिके समय स्नान करावै।

बालरोग में उपचार विधि।

अनुबन्धान्यथा कृच्छ्रं ग्रहापायेष्युपद्रवान्।
बालामयनिषेधोक्तभेषजैः समुपाचरेत्॥

अर्थ-ग्रहों के अनुबंध के अनुसार जैसा कष्टहो तथा ग्रहों के मोक्षणमें जो जो उपद्रव हों उनको बालामय प्रतिषेधोक्त औषधियों द्वारा दूर करनेका यत्नकरे।

इति श्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने बालग्रह प्रतिषेधोनाम तृतीयोऽध्याय.३
इति कुमारतंत्रम्।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः॥

अर्थ–अब हम यहां से भूतविज्ञानीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

भूतग्रह के लक्षण।

लक्षयेज्ज्ञानविज्ञानवाक्चेष्टाबलपौरुषम्।
पुरुषेऽपौरुषं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत्

अर्थ–जिस व्यक्ति में अमानुषी ज्ञान, विज्ञान, वाणी, चेष्टा, बल और पौरुष दिखाई दें, उसीको भूतग्रह कहते हैं, ये भूत विज्ञान के सामान्य लक्षण हैं।

भूतों के भेद।

भूतस्य रूपप्रकृतिभाषागत्यादिचेष्टितैः।
यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं समादिशेत्
सोऽष्टादशविधो देवदानवादिविभेदतः।

अर्थ–जो व्यक्ति जिस भूत के रूप, प्रकृति, भाषा, और गति आदि चेष्टाओं का अनुकरण करता है, उसको उसी भूत से आविष्ट जानना चाहिये। ये भूत देव दानवादि भेद से अठारह प्रकारके होते हैं।

भूतोनुषंग में हेतु।

हेतुस्तदनुषक्तौ तु सद्यः पूर्वकृतोऽथवा
प्रज्ञापराधः सुतरां तेन कामादिजन्मना।
लुप्तधर्मव्रताचारः पूज्यानप्यतिवर्तते
तं तथा भिन्नमर्यादं पापमात्मोपघातिनम्।
देवादयोप्यनुघ्नंति प्रहाश्छिद्रप्रहारिणः

अर्थ–भूताभिषंग में इस जन्म के हाल के किये हुए वा पूर्व जन्म के किये हुए प्रज्ञापराध ही हेतु होते हैं। कामक्रोधादि जन्य प्रज्ञापराध से मनुष्य धर्म, व्रत और आचार से भ्रष्ट होकर पूज्य व्यक्तियों का भी उल्लंघन कर देता है। अतएव उस मर्यादा से भ्रष्ट, पापाचारी, तथा आत्मोपघाती को छिद्रप्रहारी देवादिक मारडालते हैं। छिद्रप्रहारी उसे कहते हैं जो किसी पापादि कर्म के मौके को देखकर प्रहार करते हैं।

ग्रह के ग्रहण में हेतु।

छिद्रं पापक्रियारंभः पाको ऽनिष्टस्य कर्मणः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एकस्य शून्येऽवस्थानं श्मशानादिषु
वा निशि ॥ ६ ॥
दिग्वासस्त्वं गुरोर्निंदा रतेरविधिसेवनम्।
अशुचेर्देवतार्चादिपरसूतकसंकरः ॥ ७ ॥
होममंत्रबलीज्यानां विगुणं परिकर्म च।
समासाद्दिनचर्यादिप्रोक्ताचारव्यतिक्रमः

अर्थ—पापक्रिया के आरंभका नाम छिद्र है, यह अनिष्ट कर्मों का पाक अर्थात् फल है। निर्जन स्थान में रहना, रात्रिमें मरघट में बास करना, नग्न फिरना, गुरुनिंदा विधिरहित स्त्रीसंगम, अपवित्र अवस्था में देवादि का पूजन, परायें सूतक में मिला रहना, होम, मंत्र, बलि, और यज्ञों को उलटी रीति से करना, तथा दिनचर्या में कहे हुए आचारों से विपरीत कर्म। ये सब ग्रहों द्वारा गृहीत होने के हेतु हैं।

भूतगृहण का काल।

गृह्णंति शुक्लप्रतिपत्त्रयोदश्योः सुरा नरम्।
शुक्लत्रयोदशीकृष्णद्वादश्योर्दानवा ग्रहाः
गंधर्वास्तु चतुर्दश्यां द्वादश्यां चोरगाः पुनः
पंचम्यां शुक्लसप्तम्येकादश्योकादयोस्तु
धनेश्वराः ॥ १० ॥
शुक्लाष्टपंचमीपूर्णमासीषु ब्रह्मराक्षसाः।
कृष्णे रक्षः पिशाचाद्या नवद्वादशपर्वसु
दशामावास्ययोरष्टनवम्योः पितरोपरे।
गुरुवृद्धाद्यः प्रायः काले संध्यासु लक्षयेत्

अर्थ—देवग्रह शुक्लपक्ष की प्रतिपदा और त्रयोदशी को, दानवग्रह शुक्लपक्ष की त्रयोदशी और कृष्णपक्ष की द्वादशी को, गंधर्व चतुर्दशी और द्वादशी को, सर्पग्रह पंचमी को, यक्षग्रह शुक्लपक्षकी सप्तमी और एकादशीको, ब्रह्मराक्षसग्रह शुक्लपक्षकी अष्टमी, पंचमी और पूर्णिमाको, राक्षस और पिशाचादिग्रह कृष्णपक्ष की नवमी और द्वादशी को तथा पर्वोंके दिन, पितृग्रह दशमी और अमावास्याको तथा इनसे अतिरिक्त और गुरुवृद्धादिग्रह अष्टमी और नवमी के दिन मनुष्य पर आक्रमण करते हैं। ये सब ग्रह प्राय. संधिकाल में आक्रमण किया करते हैं।

देवगृहगृहीत के लक्षण।

फुल्लपद्मोपममुखं सौम्यदृष्टिमकोपनम्।
अल्पवाक् स्वेदविण्मूत्रभोजनानभिलाषिणम्
देवद्विजातिपरमं शुचिसंस्कृतवादिनम्
मीलयंतं चिराक्षेत्रे सुरभिं वरदायिनम्
शुक्लमाल्यांबरसरिच्छैलोच्चभवनप्रियं ॥
अनिद्रमप्रधृष्यं च विद्याद्देववशीकृतम् ॥

अर्थ-जिसे देवगण ग्रहण करते हैं उस का मुख विकसित कमलके समान होजाता है, उसकी दृष्टि सौम्य और स्वभाव कोपरहित होता है। कम बोलना, कम पसीने, थोडा मल, थोडा मूत्र, भोजन में अरुचि, देवता और ब्राह्मणों में परम भक्ति, पवित्र संस्कृत वाणी बोलना, बहुत देरतक दोनों नेत्र बंद रखना, शरीर से सुगंध निकलना वर देना, सफेद फूलमाला धारण करना, नदी, शैल और ऊंचे मकान प्रिय लगना, निद्रानाश और पराभव न होना। ये सब लक्षण देवग्रहगृहीत के होते हैं।

दैत्यग्रह के लक्षण।

जिह्मदृष्टिं दुरात्मानं गुरुदेवद्विजद्विषम् ॥
निर्भयं मानिनं शूरं क्रोधनं व्यवसायिनम्॥
रुद्रः स्कंदो विशाखोऽर्यमेंद्रोऽहमितिवादिनम्
सुरामांसरुचिं विद्यात् दैत्यग्रहगृहीतकम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य पर दैत्यग्रह आक्रमण करते हैं, उसकी दृष्टि टेढी होजाती है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और वह दुरात्मा, गुरुदेव और द्विजद्वेषी, निर्भय, मानी, शूर, क्रोधी, व्यवसायी, मद्यपी और मांसभक्षी होजाता है, तथा अपने को रुद्र, स्कंद, विशाख और इन्द्र कहने लगता है।

गंधर्वग्रह के लक्षण।

स्वाचारं सुरभिं हृष्टं गीतनर्तनकारिणम्। स्नानोद्यानरुचिं रक्तस्रङ्माल्यानुलेपनम्॥ शृंगारलीलाभिरतं गंधर्वाभ्युदितं वदेत्।

अर्थ-गंधर्व ग्रहसे आक्रांत मनुष्य अपने कर्तव्यकर्ममें परायण, सुगंधि युक्त प्रफुल्लित, गाने नाचने में तत्पर, न्हाने में रुचि, रखने वाला बाग बगीचे की सैर में दत्त चित्त, लाल वस्त्र लाल माला और रक्तचंदन इनका धारण करना, शृंगार करना, क्रीडा में तत्पर इन लक्षणों से युक्त होजाता है।

सर्वग्रह के लक्षण।

रक्ताक्षं क्रोधनं स्तब्धदृष्टिं वक्रगतिं चलम्। श्वसंतमनिशं जिह्वालालिनं सृक्किणीलिहम् प्रियकुंथगुडस्नानमधोवदनशायिनम् २०॥ उरगाधिष्ठितं विद्यात्रस्यंतं चातपत्रतः।

अर्थ-लाल आंख, क्रोधी स्वभाव, दृष्टि में स्तब्धता, चालमें टेढापन, चंचलता, निरंतर श्वासप्रश्वास, जीभसे लार गिरना, ओष्ठ के अग्रभागों का चाटना, दूध और गुड से प्रेम, स्तनमें रुचि, औंधे मुख सोना, छत्री से डरना ये सब लक्षण उस मनुष्य के होते हैं जो सर्वग्रहों से आक्रमित होता है।

यक्षग्रह के लक्षण।

विप्लुतं अस्तरक्ताक्षं शुभगंधं सुतेजसम्। प्रियनृत्यकथागीतस्नानमाल्यानुलेपनम्। मत्स्यमांसरुचिं हृष्टं तुष्टं बलिनमव्ययम् २२ चलिताग्रकरं कस्मै किं ददामीति वादिनम् रहस्यभाषिणं वैद्यद्विजातिपरिभाविनम्। अल्परोषं हृतगतिं विद्याद्यक्षगृहीतकम्।

अर्थ-आंखों में पानी भरना, आंखों का भयान्वित और लाल होना, शरीर में सुगंधि आना, तेज होना, नाचना, बातचीत कहना सुनना, गाना, स्नान करना, माला धारण करना, चंदन लगाना, मछली के मांस में रुचि, हर्षित होना, संतुष्ट होना, अव्यय बल धारण करना, हाथ आगेको बढाकर कहना कि किसको क्या दूं, गूढ बातोंका कहना, वैद्य और ब्राह्मण का तिरस्कार करना, अल्पक्रोध करना, और सीधीगति से न चलना ये सब लक्षण यक्षग्रह के आक्रमण में होते हैं।

ब्रह्मराक्षस के लक्षण।

हास्यनृत्यप्रियं रौद्रचेष्टं छिद्रप्रहारिणम्। आक्रोशिनं शीघ्रगतिं देवद्विजभिषग्द्विषम् आत्मानं काष्ठशस्त्राद्यैर्घ्नंतं भोःशब्दवादिनम् शास्त्रवेदपठं विद्याद् गृहीतं ब्रह्मराक्षसैः।

अर्थ-ब्रह्मराक्षस से आक्रांत मनुष्य हंसने लगता है, नाचनेलगता है, उसकी चेष्टा भयानक होजाती है, तथा छिद्रप्रहारी, आक्रोशी, शीघ्रगामी, देवद्वेषी, द्विजद्वेषी, वैद्यद्वेषी, शस्त्र और लाठी से आत्मघाती, भो भो शब्दका उच्चारण, शास्त्र और वेदपाठ इन लक्षणों से युक्त होता है।

पिशाचगृहीतके लक्षण।

सक्रोधदृष्टिं भ्रुकुटिमुद्वहंतं ससंभ्रमम् २६ प्रहरंतं प्रधावंतं शब्दंतं भैरवाननम् २७ अन्नाद्विनापि बलिनं नष्टनिद्रं निशाचरम्। निर्लज्जमशुचिं शूरं क्रूरं परुषभाषिणम्। रोषणं रक्तमाल्यस्त्रीरक्तमद्यामिषप्रियम् २८

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृष्ट्वा च रक्तं मांसं वा लिहानंदशनच्छदौ
हसंतमन्नकाले च राक्षसाधिष्ठितं वदेत् ॥

अर्थ-क्रोधयुक्त दृष्टि, ससंभ्रम भृकुटी को इधर उधर फेंकना, प्रहार करना, दौडना, शब्द करना, भयानक मुखबनाना, बिना भोजन किये भी बलवान् रहना, नींद का नाश होजाना, रात्रिमें घूमना, निर्लज्ज होना अपवित्र रहना, शूर, क्रूर, कर्कष बोलना, क्रोधकरना, लाल माला, स्त्रीमें रत रहना, मद्य और मांस से प्रेम रखना, रक्त और मांसको देखकर ओष्ठों को चाटना, भोजन करते करते हंसना ये सब लक्षण राक्षसों द्वारा आक्रांत होने पर होते हैं।

पिशाच के लक्षण।

अस्वस्थचित्तं नैकत्र तिष्ठंतं परिधाविनम्।
उच्छिष्टनृत्यगांधर्वहासमद्यामिषप्रियम् ३०
निर्भर्त्सनादीनमुखं रुदंतमनिमित्ततः।
नखैर्लिखंतमात्मानं रूक्षध्वस्तवपुःस्वरम् ३१
आवेदयंतं दुःखानि संबद्धाबद्धभाषिणम्।
नष्टस्मृतिं शून्यरतिं लोलं नग्नं मलीमसम्।
रथ्याचैलपरीधानं तृणमालाविभूषणम्।
आरोहंतं च काष्ठाश्वं तथा संकरकूटकम्।
बह्वाशिनं पिशाचेन विजानीयादधिष्ठितम्।

अर्थ-चित्तमें उद्विग्नता, एक जगह न बैठना, इधर उधर दौडना, उच्छिष्ट भोजन, नाचना, गाना, हंसना, मद्य और मांसमें प्रेम रखना, धमकाने से दीनमुख होजाना, बिना कारण रोना, नखोंसे शरीर पर लिखना, शरीरका रूक्ष और पतित हो जाना, सदा दुख ही दुख की आयोजना, जो मनमें आवे सोई बकना, ज्ञान नष्ट हो जाना, एकान्त अच्छा लगना, चंचलता, नंगारहना, मलीनता फटी चीर लपेट लेना, तिनुकों की माला पहनना, काठ के घोडे पर चढना, कूडे पर बैठना, बहुत भोजन करना इन लक्षणों के होने पर जान लेना चाहिये कि यह मनुष्य पिशाच से गृहीत है।

प्रेतगृहीत के लक्षण।

प्रेताकृतिक्रियागंधं भीतमाहारविद्विषम्।
तृणच्छिदं च प्रेतेन गृहीतं नरमादिशेत्।

अर्थ-प्रेतकी सी सूरत कर्म और गंध, भययुक्त मन, आहार से द्वेष, और तिनुके तोडना इन लक्षणों से युक्त मनुष्य प्रेत से गृहीत होता है।

कूष्मांडगृहीत के लक्षण।

बहुप्रलापं कृष्णास्यं प्रविलंबिनयायिनम्।
शून्यालंबवृषणं कूष्मांडाधिष्ठितं वदेत्।

अर्थ- बहुत बकना, मुख पर कालापन, धीरे धीरे ठहरते हुए चलना, अंडकोषों पर सूजन और लटक पडना। इन सब लक्षणों से कूष्मांड गृहीत समझना चाहिये।

निषादगृहीत के लक्षण।

गृहीत्वा काष्ठलोष्टादि भ्रमंतं चीरवाससम्
नग्नं धावंतमुद्वस्तदृष्टिं तृणविभूषणम्।
श्मशानशून्यायतनं रथ्यैकद्रुमसेविनम्।
तिलान्नमद्यमांसेषु सततं सक्तलोचनम्।
निषादाधिष्ठितं विद्याद् वदंतं परुषाणि च

अर्थ-लकडी वा मिट्टी को लेकर चाहे जहां घूमना, फटे हुए चीर कतीर पहना, नंगा रहना, दौडना, भयान्वित दृष्टि होना तिनुके पहरना, मरघट में वा सूने घर में रहना, गलियों में घूमना, वृक्ष पर चढना, तिलान्न, मद्य और मांस पर निरंतर दृष्टि रखना और कर्कश शब्दों का बोलना।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ये सब निषादगृहीत मनुष्य के लक्षण जानने चाहिये ।

औकिरण के लक्षण ।

याचितमुदकं चान्नं त्रस्तालोहितलोचनम् ।
उग्रवाक्यं च जानीयान्नरमौकिरणादितम् ।

अर्थ–जल और भिक्षा मांगते फिरना, त्रस्त और लोहित वर्ण नेत्रों का होना, उग्र वाक्य कहना ये सब लक्षण औकिरण गृहीत के होते हैं ।

वेतालगृहीत के लक्षण ।

गंधमाल्यरतिं सत्यवादिनं परिवेषिनम् ।
बहुच्छिद्रं च जानीयाद्वेतालेन वशीकृतम् ।

अर्थ–सुगंधित द्रव्य और पुष्पमालाओं का धारण करना, सत्य बोलना, कांपना, और बहुत से व्यसनों में आसक्त होना ये सब वेतालगृहीत के लक्षण हैं ।

पितृगृह के लक्षण ।

अप्रसन्नदृशं दीनवदनं शुष्कतालुकं ।
चलन्नयनपक्ष्माणं निद्रालुं मंदपावकं ४१
अप्रसव्यपरीधानं तिलमांसगुडप्रियम् ।
स्खलद्वाचं जानीयात् पितृग्रहवशीकृतम् ।

अर्थ–दृष्टिमें अप्रसन्नता, मुखपर मलीनता, तालु का सूखना, नेत्र और पलकों का चंचल होना, निद्रालु न रहना, अग्निमांद्य, उलटे वस्त्र पहरना, तिल मांस और गुड का भोजन करना, मुख से टूटते हुए शब्द कहना, ये सब पितृग्रह गृहीतके लक्षण होते हैं ।

सामान्य लक्षण ।

गुरुवृद्धर्षिसिद्धाभिशापार्चितानुरूपतः ।
व्याहाराहारचेष्टाभिर्यथास्वं तद्ग्रहं वदेत्

अर्थ–गुरु, वृद्ध, ऋषि और सिद्ध जनों के अभिशाप और चिंतानुरूप आहार विहार और चेष्टाओं द्वारा यथायोग्य ग्रहों के लक्षण जानने चाहियें ।

असाध्य लक्षण ।

कुमारवृंदानुगतं नग्नमुद्धतमूर्धजम् ।
अस्वस्थमनसं दैर्घ्यकालिकं तं ग्रहे त्यजेत्

अर्थ–ग्रह से आक्रांत मनुष्य यदि बालकों के पीछे दौडे, नंगा होजाय, मस्तक के बालों को खोलकर घुमावे, चित्तमें बेचैनी हो, और रोग देह में दीर्घ काल से व्याप्त होगया हो तो जान लेना चाहियें कि यह रोगी असाध्य है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने भूतविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः

अथाऽतो भूतप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहांसे भूतप्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अहिंसक भूतोंका उपाय ।

" भूतं जयेदहिंसेच्छं जपहोमबलिव्रतैः ।
तपः शीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः १

अर्थ–अहिंसा की इच्छा न रखने वाले भूत को जप, होम, बलिदान, व्रत, तप, शील, समाधान, ज्ञान, दान और दया आदि के करने से शांत करने का उपाय करे ।

ग्रहनाशक प्रयोग ।

हिंगुव्योषालनेपालीलशुनार्कजटाजडाः ।
अजलोमी सगोलोमी धूतकेशी वचा लता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुक्कटी सर्पगंधाख्या तिलाः कालविषाणिके
वज्रयोक्ता वयस्था च शुंगी मोहनवल्लुवपि
स्रोतोऽञ्जनरक्षोघ्नं रक्षोघ्नं चान्यदौषधम्
खराश्वगवाविकुष्ठ्यृक्षगोधानकुलशल्यकान्।
द्वीपिमार्जारगोसिंहव्याघ्रसामुद्रसत्त्वतः।
चर्मपित्तद्विजनखा वर्गेऽस्मिन् साधयेद्धृतम्
पुराणमथवा तैलं नवं तत्पाननस्ययोः।
अभ्यंगे च प्रयोक्तव्यमेषां चूर्णे च धूपने ६
एभिश्च गुटिकां कुर्याद्रंजनं सावपीडने।
प्रलेपे कल्कनेतेषां क्वाथं च परिषेचने ७॥
प्रयोगोऽयं ग्रहान्माशान्सापस्माराञ्शमं नयेत्

अर्थ-हींग, त्रिकुटा, हरिताल, कातूरी, लहसन, आक की जड, जटामांसी, अजलोमी, सफेद दूब, भूतकेशी, वच, प्रियंगु, कुक्कुटी (शितिवारक), सर्पगंधा (नाकुली), तिल, काकोली, क्षीरकाकोली, केऊ कदंब, हरड, शुंगी, (काकनासिगी वा अतीस), मंदाक, सौवीरांजन, गुग्गल तथा अन्य रक्षोनाशक औषध, गधा, घोडा, श्वाविद, ऊंट, रीछ, गोधा, नकुल, सेह, गेंडा, बिल्ली, गौ, सिंह, व्याघ्र, और समुद्र के जीव, इनका चमडा, पित्त, दांत और नख इन सब द्रव्यों के साथ पुराना घी वा नया तेल पकावै। इसको पान, नस्य वा अभ्यंग द्वारा प्रयोग करे, अथवा इन सब द्रव्यों को पीसकर इनका चूर्ण करे और इसकी धूप देवै। अथवा इसकी गोली बना कर अंजन वा अवपीडन द्वारा प्रयोग करे। इन द्रव्यों का कल्क लेपमें और क्वाथ परिषेक में काममें लावै। यह प्रयोग ग्रह, उन्माद और अपस्मार इनको शांत करदेताहै

अन्य प्रयोग।

गजाह्वापिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ८
गोधानकुलमार्जाररक्षपित्तप्रपेषितान्।
नावनाभ्यंगसेकेषु विदध्यात ग्रहापहान् ९

अर्थ-गज पीपल, पीपलामूल, त्रिकुटा, आमला, सरसों, गोधा, नकुल, बिल्ली, और मछली इनके पित्ते को अच्छीतरह पीसकर नस्य, अभ्यंजन और परिषेक द्वारा प्रयोग करने से ग्रह दूर होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

सिद्धार्थकं वचा हिंगु प्रियंगुरजनीद्वयम्।
मंजिष्ठा श्वेतकटभी वचा श्वेताद्रिकर्णिका।
निंबस्य पत्रं बीजं तु नक्तमालशिरीषयोः।
सुराहं त्र्यूषणं सर्पिर्गोमूत्रे तैश्चतुर्गुणे।
सिद्धं सिद्धार्थकनामपानेनस्ये च योजितम्
ग्रहान्सर्वान्विहंत्याशु विशेषादासुरान् ग्रहान्
कृत्यालक्ष्मीविषोन्माद्ज्वरापस्मारपाप्म च

अर्थ-सफेद सरसों, वच, हींग, प्रियंगु, दोनों हलदी, मजीठ, सफेद चिरमिठी, वच, सफेद गिरिकर्णिका, नीमके पत्ते, कंजा और सिरस के बीज, देवदारु और त्रिकुटा इनका कल्क तयार करले। घी और चौगुना गोमूत्र मिलाकर पाक करो। यह सिद्धार्थक नामक घी पान और नस्यद्वारा प्रयोग किये जाने पर सब प्रकार के ग्रहों को और विशेष करके असुरग्रहों को शीघ्र नष्ट करदेता है। तथा कृत्या, अलक्ष्मी, विष, उन्माद, ज्वर, अपस्मार और पापको दूर करदेता है (वच दोबार लिखीगई है इसलिये दुगुनी लेनी चाहिये)।

अन्य प्रयोग।

एभिरेवौषधैस्त्वारिष्टा कल्पितो गदः १३
पाननस्यांजनालेपस्तनोद्वर्षणयोजितः।
गुणैः पूर्वैर्युदिष्टो राजद्वारे च सिद्धिकृत्।

अर्थ-बकरे के मूत्रके साथ ऊपर कही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुई संपूर्ण औषधियों को प्रस्तुत करके पान, नस्य, अंजन, आलेप और देहपर घर्षण द्वारा प्रयोग करे यह पूर्ववत् गुणयुक्त है और राजदर्बार में सिद्धिका देनेवाला है ।

अन्य प्रयोग ।

सिद्धार्थकव्योषवचाश्वगंधा ।
निशाद्वयं हिंगुपलांडुकंदम् ।
बीजं करंजात्कुसुमं शिरीषात्
फलं च वल्कश्च कपित्थवृक्षात् १५
समाणिमंथं सनतं सकुष्ठं
स्यौनाकमूलं क्षिणिही सिता च ।
बस्तस्य मूत्रेण विभावितंतत्
पित्तेन गव्येन गुडान् विदध्यात् १६ ॥
दुष्टव्रणोन्मादतमो निशांधा-
नुद्वृद्धकान् वारिनिमग्नदेहान् ।
दिग्धाहतान् दर्पितसर्पदष्टां-
स्ते साधयंत्यंजननस्यलेपैः ॥ १७ ॥

अर्थ–सफेद सरसों, त्रिकुटा, वच, असगंध, दोनों हलदी, हींग, प्याज, कंजाके बीज, सिरस के फूल, कैथके फल और छाल सेंधानमक, अगर, कूठ, इयौनामूल, क्षिणही और मिश्री, इन सबको बकरे के मूत्रकी भावनादेकर गौके पित्ते में मर्दन करके गोलियां बनालेवे । इन गोलियों का नस्य, अंजन और लेप द्वारा प्रयोग करनेसे दुष्ट व्रण, उन्माद, तिमिर, रतौंधी तथा उद्वृद्धक जलमें डूबे हुए देहवाले को, लेपसे आहत को, क्रोधी सर्पसे काटे हुओं को गुणकारकहै ।

स्कंदादिनाशक धूनी ।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छ-
वृहतीनिर्मोल्यपिंडीतक-
त्वङ्मांसीवृकदंशविद्रुत-
षचाकेशाहिनिर्मोचनैः ।
नखिगद्विजशृंगहिंगुमरि-
चैस्तुल्यैः कृतं धूपनम् ।
स्कंदोन्मादपिशाचराक्ष-
ससुरावेशज्वरघ्नं परम् ,, ॥ १८ ॥

अर्थ–बिनौला, मयूरपुच्छ, बडोकटेरी, शिवनिर्माल्य, पिंडीतक, दालचीनी, जटामांसी, बिल्ली का विष्टा, तुष, बच, केश, सर्पकी काचली, हाथीदांत, सींग, हींग, कालीमिरच, इन सबको समान भाग लेकर सबकी धूनी स्कंद, उन्माद, पिशाच, राक्षस, देवग्रहों का आवेश और ज्वर को दूर करदेती है ।

भूतरावाह्वय घृत ।

त्रिकटुकदलकुंकुमग्रंथिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्मांबुशुक्राह्वयैः ।
सितलशुनफलत्वयोशीरिलक्षावचा-
मुत्थयष्टीवलालोहितैलाशिलापद्मकैः ।
दधितगरमधूकसारप्रियाह्वाग्निशा-
ख्याविषातार्क्ष्यदैलैः सचव्यामयैः ।
कल्कितैर्घृतमनवमशेषमृगांशसिद्धं मतम्-
भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् १९

अर्थ–त्रिकुटा, तमालपत्र, कुंकुम, पीपलामूल, जवाखार, कटेरी, हलदी, देवदारू, सफेद सरसों, पीलीसरसों, नेत्रवाला, इन्द्रजौ सफेद लहसन, त्रिफला, खस, कुटकी, बच, नीलाथोथा, मुलहटी, खरैटी, रक्तचन्दन, इलायची, मनसिल, पद्माख, दही, तगर, महुआ, गालवांगनी, अतीस, काकोली, रसौत, चव्य और कूठ । इन सब द्रव्योंका कल्क और गोमूत्रादि अष्टमूत्र के साथ सिद्ध किया हुआ नवीन घी पान करनेसे ग्रह नष्ट हो जातेहैं । इस उत्तम घृतका नाम भूतरावहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाभूतराव घृत।

नतमधुकरंजलाक्षापटोलीसमंगावचा-
पाटलींहिंगुसिद्धार्थसिंहीनिशा-
गुग्गुलतारोहिणी।
बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकुमिघ्नाजगंधा
मरांकोल्लकोशातकीशिग्रुनिंबांबुदैंद्राह्वयैः।
गदशुष्कतरुपुष्पबीजोग्रवर्ग-
द्विकर्णीनिकुम्भा-
भिधैल्वैः समैः कल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं-
घृतम्।
विधिविनिहितमाशु सर्वैःकमैर्थोजितं हंति-
सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महा भूतरावं-
स्मृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—तगर, महुआ, कंजा, लाख, पर्वल, मजीठ, वच, पाटला, हींग, सफेद सरसों, कटेरी, हलदी, दारुहलदी प्रियंगु कुटकी, बेर, त्रिकुटा, त्रिफला, थूहर, देवदारू, बायविडंग, अजगंध, गिलोय, अंकोल, कोशातकी, सहंजना, नीम, नागर मोथा, इन्द्रजौ, कूठ, सिरस के फूल और बीज, अजवायन, मुलहटी, अपराजिता, दंती, चीता और बेलगिरी इन सब को समान भाग लेकर पीसले तथा मूत्रवर्ग के साथ सिद्ध किया हुआ घी अभ्यंग, पान और नस्यादि द्वारा विधिवत् प्रयोग किये जाने पर सब प्रकार के ग्रहोन्माद, कुष्ठरोग, और ज्वर को दूर करदेता है। इस घृतका नाम महाभूतराव है।

ग्रहग्रहण में बलिदानादि।

"ग्रहा गृह्णंति ये येषु तेषां तेषु विदोषतः।
दिनेषु बलिहोमाद्यैस्तप्पयुंजीत चिकित्सकः ॥

अर्थ—जो ग्रह जिस दिन रोगी पर आक्रमण करे उसी दिन उसके निमित्त विशेष विशेष बलिदान और होमादि करे।

ग्रहानुसार दानादि।

स्नानवस्त्रवसामांसमद्यक्षीरगुडादि च।
रोचते यद्यदा येभ्यस्तत्तेषामाहरेत्तदा २२॥

अर्थ—स्नान, वस्त्र, वसा, मांस मद्य, क्षीर और गुडादिक जो जो वस्तु जिस जिस ग्रहको प्रियहों वही उस ग्रहके निमित्त उसी दिन देनी चाहिये।

अन्यद्रव्यों का दान।

रत्नानि गंधमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषी।
भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो-
विधिरित्ययम् ॥ २३ ॥

अर्थ—रत्न, गंध, माल्य, पंचादि बीज, मधु, घृत तथा सब प्रकार के भक्ष्य पदार्थ ग्रहों के निमित्त प्रदान करे। यह सब ग्रहों की सामान्य विधि है।

विशेष विधि।

सुरर्षिगुरुवृद्धेभ्यः सिद्धेभ्यश्च सुरालये।
दिश्युत्तरस्यां तत्राऽपि देवायोपहरेद्बलिम्
पश्चिमायां यथाकालं दैत्यभूताय चत्वरे।
गंधर्वाय गवां मार्गे सवस्त्राभरणं बलिम् ॥
पितृनागग्रहे नद्यां नागेभ्यः पूर्वदक्षिणे।
यक्षाय यक्षायतने सरित्तीर्थे समागमे २४
चतुष्पथे राक्षसाय भीमेषु गहनेषु च।
रक्षसां दक्षिणस्यांतु पूर्वस्यां ब्रह्मरक्षसाम्
शून्यालये पिशाचाय पश्चिमांदिशमाश्रिते

अर्थ—देवता, ऋषि, गुरु, वृद्ध और सिद्ध, इन पांच प्रकार के ग्रहों की बलि देवालय में देवै। इनमें से भी देवग्रह का बलि उत्तर दिशा में, और दैत्यभूतों का बलि पश्चिम दिशा में चौराये में देवै। गंधर्व ग्रहों के लिये गौके आने जाने के मार्ग में वस्त्र और आभरणसहित बलि प्रदान करे। पितृनाशकग्रह के लिये नदी-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तट पर, नागग्रह के लिये पूर्वदक्षिण में, यक्षग्रह के लिये यक्षग्रहमें अथवा नदियों के संगम पर, राक्षसग्रह के लिये चौराहे पर तथा सचत्वर बनमें, रक्षोग्रह के लिये दक्षिण दिशा में ब्रह्मराक्षस के लिये पूर्वदिशा में, पिशाच के लिये पश्चिम दिशामें शून्य स्थानमें बलिप्रदान करे।

देवताओं की बलि।

शुचिशुक्लानि माल्यानि गन्धाः क्षैरेयमोदनम् २८॥
दधि छत्रं च धवलं देवानां बलिरिष्यते॥

अर्थ—पवित्र सफेद पुष्प, गंध, दूधका पदार्थ, चांवल, दही और सफेद, छत्र, ये द्रव्य देवताओं की बलिके निमित्त देवै।

घृतपान से ग्रहमोचन।

हिंगुसर्षपपञ्चाग्र्याव्योषैरर्धपलोन्मितैः २९॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
तत्पाननावनाभ्यंगैर्देवग्रहविमोक्षणम् ३०॥

अर्थ—हींग, सरसों, श्वेतवच और त्रिकुटा प्रत्येक आधा पल, चौगुने गोमूत्र में एक प्रस्थ घी पाकाविधि से पकाकर रख लेवे। इस घी का पान, नस्य और अभ्यंग द्वारा प्रयोग करने से देवग्रह की शांति हो जाती है।

ग्रहमोचनार्थ नस्यांजन।

नस्यांजनं वचाहिंगुलशुनं वस्तवारिणा।

अर्थ—वच, हींग और लहसन इनको बकरे के मूत्र में पीसकर नस्य और अंजन द्वारा प्रयोग करने से देवग्रह की शांति हो जाती है।

दैत्यग्रह की शांति।

दैत्ये बलिर्बहुफलः सोशीरकमलोत्पलः ३१

अर्थ—दैत्यग्रह की शांति के निमित्त अनेक प्रकार के फल, खस, कमल और नीलोत्पल की बलि देवै।

नागग्रहों की बलि।

नागानां सुमनोलाजगुडापूपशुडोदनैः।
परमान्नमधुक्षीरकृष्णमृन्नागकेसरैः॥ ३२॥
वचापद्मपुरोशीरकोत्पलदलैर्बलिः।
श्वेतपत्रं च रोध्रं च तगरं नागसर्षपाः ३३॥
शीतेन वारिणा पिष्टं नावनांजनयोर्हितम्।

अर्थ—नागग्रहों की शांति के निमित्त चमेली के फूल, धान की खील, गुड के पूआ, मीठा भात, खीर, शहत, दूध, काली मिट्टी, नागकेसर, वच, कमल, गूगल, खस, लाल कमल इन द्रव्यों का बलि देवै। श्वेत कमल, लोध, तगर, नागेश्वर और सरसों, इन सब द्रव्यों को ठंडे जल में पीसकर नस्य और अंजन का प्रयोग करे।

यक्षों की बलि।

यक्षाणां क्षीरदध्याज्यमिश्रकोदनगुग्गुलुः॥
देवदारूत्पलं पद्ममुशीरं वस्त्रकांचनम्।
हिरण्यं च बलिर्योज्यो-
मूत्राज्यक्षीरमेकतः॥ ३५॥
सिद्धं समोन्मितं पानावनाभ्यंजने हितम्।

अर्थ—यक्षों के लिये दूध, दही, घी, मिश्रित अन्न, गूगल, देवदारु, नीलोत्पल, पद्म, खस, सुनहरी वस्त्र और सुवर्ण का बलि देवे। समान भाग गोमूत्र, घी और दूध इनको पकाकर पान, नस्य और अभ्यंजन द्वारा प्रयोग करना हित है।

अन्य प्रयोग।

हरीतकी हरिद्रे द्वे लशुनो मरिचं वचा ३६
निंबपत्रं च वस्तांबुकल्कितं नावनांजनम्।

अर्थ—हरड, हलदी, दारुहलदी, लहसन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काली मिरच, बच और नीमके पत्ते इनको बकरे के मूत्र में पीसकर सूंघने वा आंखमें आंजने से यक्षग्रह की शांति होती है।

ब्रह्मराक्षसों की बलि।

ब्रह्मरक्षोबलिः सिद्धयवानां पूर्णमाढकम्॥
तोयस्य कुम्भः पललं छत्रं वस्त्रं विलेपनम्॥

अर्थ ब्रह्मराक्षसों के निमित्त पके हुए जौ का भरा हुआ एक पात्र, जलका कलश तिलका कल्क, छत्र, वस्त्र और विलेपन इन द्रव्यों का बलि देना चाहिये (यहां आढक शब्द पात्र वाचक है, मान वाचक नहीं है)।

घृतका प्रयोग।

गायत्रीविंशतिपलक्वाथेऽर्धपलिकैः पचेत्।
श्यूषणत्रिफलाहिंगुपटूग्रन्थाभिशिरुर्षपैः।
सप्तनक्तपलयुतैः कुडवान्सप्तसर्पिषः ३९॥
गोमूत्रे त्रिगुणे पाने नस्याभ्यंगेषु ताडितम्।

अर्थ–खैरके बीस पल क्वाथमें त्रिकुटा, त्रिफला, हींगबच, सौंफ, सरसों, नीमके पत्ते और लहसन प्रत्येक आधा पल, तथा सातकुडव घी, तथा तिगुना गोमूत्र इनको पाक विधिके अनुसार पकावै। इस घी का पान, नस्य और अभ्यंग द्वारा प्रयोग करनेसे अत्यंत हितकारी है।

रक्षोंकी बलि।

रक्षसां पललं शुक्लं कुसुंभमिश्रकोदनम्॥
बलिः पक्वाममांसानि निष्पावा रुधिरोक्षिताः

अर्थ–रक्षोग्रह के निमित्त तिलका कल्क सफेद फूल, खिचडी, पक्व अपक्व मांस, रुधिर में भिगोये हुए मोंठ इनका बलि देना चाहिये।

नस्याभ्यंजन प्रयोग।

नक्तमालशिरीषत्वङ्मूलपुष्पफलानि च॥
तद्वच्च कृष्णपाटल्या विल्वमूलं कटुत्रिकम्।
हिंग्विंद्रयवसिद्धार्थलशुनामलकीफलम्॥
नावनांजनयोर्योज्यो वस्तमूत्रहृतो गदः।

अर्थ–करंज, सिरस, और कृष्ण पाटली इन तीनों की छाल, मूल, फूल और फल, बेलगिरी, त्रिकुटा, हींग, इन्द्रजौ, सफेद सरसों, लहसन और आमला, इन सब द्रव्यों को बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य और अंजन द्वारा प्रयोग करनेसे हितकारी होता है।

घृतका प्रयोग।

एभिरेष घृतं सिद्धं गवां मूत्रे चतुर्गुणे ४३॥
रक्षोग्रहान् वारयते पानाभ्यंजननावनैः।

अर्थ–इन ऊपर कही हुई औषधियों के साथ चौगुने गोमूत्र में सिद्ध किया हुआ घी पान, अभ्यंजन और नस्य द्वारा प्रयोग किये जानेपर रक्षोग्रह को शांत करदेताहै।

पिशाच ग्रहकी बलि।

पिशाचानां बलिः सीधुपिण्याकः पललं दधि।
मूलकं लवणं सर्पिः सभूतौदनयावकम्।

अर्थ–पिशाच ग्रहोंकी शांति के निमित्त सीधु, तिलकल्क, दही, मूली, नमक, सरसों भूतौदन और यवके पदार्थ इनकी बलि देनी चाहिये।

घृत प्रयोग।

हरिद्राद्वयमंजिष्ठामिशिसैंधवनागरम् ४५॥
हिंगुप्रियंगुत्रिकटुरसोनत्रिफला वचा।
पाटलाश्वेतकटभीशिरीषकुसुमैर्घृतम् ४६
गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाभ्यंजननस्ययोर्हितम्॥

अर्थ–दोनों हलदी, मजीठ, सौंफ, सेंधानमक, सोंठ, हींग, प्रियंगु, त्रिकुटा, लहसन, त्रिफला, बच, पाटला सफेद चिरमिठी, और सिरस का फूल, इनके कल्क के साथ चौगुने गोमूत्र में पाक विधिके अनुसार सिद्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया हुआ घी पान और अभ्यंजन द्वारा प्रयोग किये जानेपर पिशाच ग्रहों की शांति कर देता है ।

नस्य प्रयोग ।

वस्तांबुपिष्टैस्तैरेव योज्यमंजननावनम् ४७

अर्थ–ऊपर कहे हुए संपूर्ण द्रव्यों को बकरे के मूत्रमें पीसकर अंजन और नस्य द्वारा प्रयोग करना चाहिये ।

वर्ज्यावर्ज्य ।

" देवर्षिपितृगंधर्वे तीक्ष्णं नस्यादि वर्जयेत् ।
सर्पिः पानादिमृद्वस्मिन् भैषज्यमवचारयेत्

अर्थ-देव, ऋषि, पितृ और गंधर्व ग्रहों में तीक्ष्ण नस्यादि का प्रयोग न करना चाहिये । इनमें मृदु घृतपानादि व्यवहार में लाना उचित है ।

ग्रहों में प्रतिकूलाचरण निषेध

ऋते पिशाचान्सर्वेषु प्रातिकूल्यं च नाचरेत् ।
सवैद्यमातुरं घ्नंति क्रुद्धास्ते हि महौजसः ॥

अर्थ–पिशाच ग्रह के सिवाय और किसी ग्रह के निमित्त प्रतिकूल आचरण न करना चाहिये क्योंकि देवादि ग्रह महातेजस्वी होते हैं, ये कुपित होकर वैद्य और रोगी दोनों को नष्ट करदेते हैं ।

सर्वगृहार्थजपादिशेष ।

ईश्वरं द्वादशभुजं नाथमार्यावलोकितम् ।
सर्वव्याधिचिकित्सार्थं जपन्सर्वग्रहान् जयेत्
तथोन्मादानपस्मारादन्यं वा चित्तविप्लवं

अर्थ– सर्वरोग नाशक द्वादशभुजी भैरव का मंत्र और जपकरनेसे सब प्रकार के रोग, उन्माद, अपस्मार तथा अन्य चित्त के विकार नष्ट होजाते हैं ।

महाविद्याश्रवण ।

महाविद्यां च मायूरीं शुचिं तत्रावयेत्सदा ॥

अर्थ– उस ग्रहपीडित रोगी को स्नानादि द्वारा पवित्र करके मायूरी महाविद्या का स्तोत्र सदा सुनाता रहे ।

भूतेश की पूजादि ।

भूतेशं पूजयेत् स्थाणुं प्रमथाख्यांश्च-
तद्गणान् ।
जपन् सिद्धांश्च तन्मंत्रान्-
ग्रहान्सर्वानपोहति ॥ ५२ ॥

अर्थ–भूतनाथ शिवजी, तथा प्रमथ नामक महादेवके गणों का पूजन करे । तथा संपूर्ण ग्रहों की शांतिके निमित्त सिद्ध मंत्रोंका जपभी करना चाहिये ।

अन्य हितकारक कर्म ।

यद्यानंतरयोः किंचिद्वक्ष्यतेऽध्याययोर्हितम्
यच्चोक्तमिह तत्सर्वं प्रयुंजीत परस्परम् ५३

अर्थ–यहां से आगे उन्माद और अपस्मार प्रतिषेध नामक दो अध्यायों में जो कुछ कहेंगे तथा जो जो चिकित्सा देवग्रहादिकों की शांति के निमित्त इसी अध्याय में कही गई हैं, ये सब देवग्रहों की परस्पर शांतिके निमित्त उपयोग में लाना चाहिये ।

इति श्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने भूतप्रतिषेधो नाम पंचमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽत उन्मादप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम यहां से उन्मादप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उन्मादके छः भेद।

" उन्मादाः षट्-

पृथग्दोषनिचयाधिविषोद्भवाः।

अर्थ-उन्माद रोग छः प्रकारके होते हैं यथा-वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, आधिज और विषज।

उन्माद का स्वरूप।

उन्मादो नाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः १॥
शारीरमानसैर्दुष्टैरहिताद्वा पानतः।
विषमस्याल्पसत्त्वस्य व्याधिवेगसमुद्भवात्।
क्षीणस्य-
चेष्टावैषम्यात्पूज्यपूजाव्यतिक्रमात्॥
आधिभिश्चित्तविभ्रंशाद्विषेणोपविषेण च
एभिर्विहीनसत्त्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः॥
धियो विधाय कालुष्यं हत्वा मार्गान्-
मनोवहान्।
उन्मादं कुर्वते तेन धीविज्ञानस्मृतिभ्रमात्
देहो दुःखसुखभ्रष्टो भ्रष्टसारथिवद्रथः।
भ्रमत्यचिंतितारंभः

अर्थ-शारीरक और मानसिक दूषित विकारों से,अहित अन्न पान के सेवन से, तथा विकृत, असात्म्य और दोषयुक्त भोजन से, विषम उपयोग से, विषम और अल्प-बलवाले मनुष्य के व्याधि के वेगकी अधिकता से, दुर्बल मनुष्य की मल्लयुद्धादि विषमचेष्टा से, गुरुवृद्धादि पूज्य व्यक्तियों की अवज्ञासे, मानसिक पीडाओं द्वारा चित्त के विभ्रंश होने से, विष और उपविषों के सेवनसे,इन सब कारणोंसे सत्वगुणहीन मनुष्य में वातादि तीनोंदोष हृदय में प्रदूषित होकर बुद्धिको कलुषित करके, तथा मनोवाही स्रोतों को दूषित करके उन्माद रोगको पैदाकर देते हैं। इस रोग से बुद्धि, विज्ञान और स्मृतिका विभ्रम होकर देह सुख और दुखके ज्ञान से रहित होजाता है और रोगी अचिंतितारंभ (कर्तव्याकर्तव्यविचारसे रहित) होकर सारथीहीन रथकी तरह भ्रमण करने लगता है।

वातजउन्माद के लक्षण।

तत्र वातात्कृशांगता॥ ६॥
अस्थाने रोदनाक्रोशहसितास्यितनर्तनम्।
गीतवादित्रवागंगविक्षेपास्फोटनानि च ७
असाक्षा वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः।
आस्यात्फेनागमोऽजस्रमटनं बहुभाषिता ८
अलंकारोचितालंकारैरयानैर्गमनोद्यमः।
गृद्धिरन्यवहार्येषु तल्लाभे वाधमानता ९॥
उत्पिंडिताऽरुणाक्षित्वं जीर्णे भोज्ये गदोद्भवः।

अर्थ-वातजउन्माद में देहमें कृशता, अस्थान में अर्थात् बिना कारण ही रोना, चिल्लाना, हंसना,मुस्कुराना, नाचना,गाना, बजाना, बकना, हाथ पांव फेंकना, किसी वस्तुका तोडना फोडना, उद्धतपन से वेणु, वीणादि के सदृश शब्द करना, मुखसे झाग गिरना, निरंतर घूमते रहना, बहुत बोलना, अलंकारके अयोग्य वस्तुओं से अलंकार बनाना, यानगम्य स्थानों में बिना यानके ही जाने की कोशिश करना, सब प्रकार की खाने की वस्तुओं में लोलुपता, खाने की वस्तु मिलने पर अपमान करदेना, नेत्रों में गोलाई और ललाई तथा भोजन के पचनकाल में व्याधिकी अधिकता ये सब उपस्थित होते हैं।

पित्तजउन्माद के लक्षण।

पित्तात्संतर्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्टाद्यभिद्रवः।
शीतच्छायोदकाकांक्षा नग्नत्वं पीतवर्णता।
असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ११

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—पैत्तिकउन्माद में संतर्जन(भर्त्सना), क्रोध, मुष्टी वा मिट्टी के ढेले से अंगको कूटना, शीतलता, छाया, और जल की अकांक्षा, नंगापन, पीतवर्णता, अग्निकी लोइ, तारागण और दीपक के न होने पर भी इनका दिखाई देना, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफजउन्माद के लक्षण।

कफादरोचकच्छर्दिरल्पेहाहारभाषिता।
स्त्रीकामता रहः प्रीतिर्लाल्यासंघाणकस्रुतिः
बैभत्स्यं शौचविद्वेषो निद्राऽवयधुरानने।
उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते।

अर्थ—कफजउन्माद में अरुचि, वमन, अल्पचेष्टा, अल्पाहार, अल्पभाषण, स्त्रीसंगम की इच्छा, निर्जन स्थान में रहने की इच्छा, लालास्राव, नासास्राव, बीभत्सता, पवित्रता से द्वेष, निद्रा, मुखपर सूजन, रात्रि के समय और भोजन करते ही रोग की अधिकता। ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

सन्निपातज उन्माद।

सर्वायतनसंस्थानसन्निपाते तदात्मकम्।
उन्मादं दारुणं विद्यात् तं भिषक्परिवर्जयेत्।

अर्थ—जिस उन्माद में वातादि तीनों दोषों के हेतु और लक्षण विद्यमान हों वह सन्निपातज उन्माद होता है, यह भयंकर रोग असाध्य होता है।

पित्तज उन्माद।

धनकांतादिनाशेन दुःसहेनाभिषंगधान्।
पांडुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति परिदेवते॥
रोदित्यकस्मान्त्रियते तद्गुणान् बहु मन्यते।
शोकक्लिष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते॥

अर्थ—धनके क्षीण होने से अथवा कांता के वियोग से उत्पन्न दुःसह शोकमें निमग्न मन होनेके कारण आधिज उन्माद होता है। इससे रोगी पीला और दीन होजाता है, तथा बार बार मूर्च्छित होकर हाय हाय पुकारने लगता है। शोक से उद्विग्न होकर नष्ट हुए धन और कांतादि का ध्यान करता हुआ उनके गुणों को बढ़ा बढ़ा कर कहने लगता है। बहुत जागता है और चेष्टारहित हो जाता है।

विषज उन्माद।

विषेण श्याववदनो नष्टच्छायाबलेंद्रियः।
वेगांतरेऽपि संभ्रांतो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत्॥

अर्थ—विषज उन्माद में रोगीका देह काला पडजाता है, देहकी कांति, बल और संपूर्ण इन्द्रियां विनष्ट होजाती हैं। रोगके वेग के बीचमें भी रोगी अच्छी तरह विभ्रांत और रक्ताक्ष होजाता है, ऐसा रोगी असाध्य होता है।

वातज उन्माद में उपाय।

अथानिलज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत्।
पूर्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम्॥

अर्थ—वातज उन्माद में स्नेहपान करानाचाहिये। किन्तु यदि वायुका मार्ग किसी अन्यदोष के कारण रुका हो तो स्नेहपान से पहिले स्नेहयुक्त मृदु विरेचनादि देवै।

कफपित्तज उन्माद।

कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं सविरेचनम्।
स्निग्धस्विन्नस्यबस्तिंचशिरसःसविरेचनम्।
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः।

अर्थ—कफ वा पित्तसे उत्पन्न हुए उन्माद में रोगीको स्निग्ध और स्विन्न करके क्रम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वक पहिले वमन और विरेचन कराके अर्थात् कफज उन्माद में प्रथम वमन और पित्तज उन्माद में प्रथम विरेचन कराना चाहिये अपि शब्दके प्रयोग से यह जानना चाहिये कि जैसे वातज उन्माद में प्रथम स्नेहपान कराया जाता है वैसे ही कफज वा पित्तज में कराना चाहिये। कैसा ही उन्माद क्यों न हो सबमें वस्ति और शिरोविरेचन देना हित है। वस्ति द्वारा शुद्ध होने पर रोगी का मन प्रसन्न होजाता है।

तीक्ष्णनस्यांजन प्रयोग।

इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमंजनम् ॥
हर्षणाश्वासनोत्त्रासभयताडनतर्जनम्।
अभ्यंगोद्वर्तनालेपधूमान् पानं च सर्पिषः ॥
युंज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयंति प्रकृतिं मनः।

अर्थ-इस तरह चिकित्सा किये जानेपर भी यदि उन्माद की शांति न हो तो तीक्ष्ण नस्य और अंजन हर्षोत्पादन, आश्वासन, त्रास भय, ताडना, तर्जन, अभ्यंग, उद्वर्तन, आलेपन, धूमप्रयोग और घृतपान का प्रयोग करना चाहिये। इन उपायों से शुद्धि होनेपर रोगीका मन अपनी प्रकृति पर आजाता है।

अन्य घृत।

हिंगुसौवर्चलाभ्यांचैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥
सिद्धं समूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम्।

अर्थ-हींग, कालानमक, त्रिकुटा प्रत्येक दो पल, घी एक आढक इनको गोमूत्र के साथ पाक की रीतिसे पकावै। यह घी उन्माद, भूत और अपस्मार के दूर करने में परमोत्तम है।

ब्राह्मी घृत।

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद्ब्राह्म्या घृतप्रस्थं च साधितम् ॥२३॥
त्र्योषश्यामात्रिवृद्दंतीशंखपुष्पीनृपद्रुमैः।
ससप्तलाक्षमिहरैः कल्कितैरक्षसंमितैः ॥
पलवृद्ध्या प्रयुंजीत परं मात्राचतुष्पलम्।
उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वंध्यासुतप्रदम् ॥
वाक्स्वरस्मृतिमेधाकृद्धन्यं ब्राह्मीघृतं स्मृतम्"।

अर्थ-ब्राह्मीका रस दो प्रस्थ, घी एक प्रस्थ तथा त्रिकुटा, श्यामा, निसोथ, दंती, शंखपुष्पी, अमलतास, सातला, और वायविडंग प्रत्येक आधा पल। इन सबको पाककी रीतिसे पकालेवै। यह ब्राह्मीघृत प्रतिदिन एक पल बढाकर चार पल तक लेवै। अर्थात् पहिले दिन एक पल, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन और चौथे दिन चार पल लेवे। इससे अधिक न बढावै, फिर प्रतिदिन चार पल लेता रहै। इससे उन्माद कुष्ठ और अपस्मार जाते रहते हैं, वंध्या के पुत्र पैदा होजाता है, वाणी स्वर स्मृति और मेधा बढजाते हैं। यह ब्राह्मी घृत सर्वोत्तम है।

कल्याणक घृत।

वराविशालाभद्रैलादेवदार्वेलवालुकैः ॥
द्विसारिवाद्विरजनीद्विस्थिराफलिनीनतैः।
वृहतीकुष्ठमंजिष्ठामागधीसरदारुभिः ॥
वेल्लतालीसपत्रैलामालतीमुकुलोत्पलैः।
सदंतीपद्मकाहिभैः कर्षांशैः सर्पिषः पचेत् ॥
प्रस्थं भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपाप्मसु।
पांडुकंडूविषे शोफे मोहे मेहे गरे ज्वरे ॥
अरेतस्यप्रजसि वा दैवोपहतचेतसि।
अमेध्यसि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके
बल्यं मंगल्यमायुष्यं कांतिसौभाग्यपुष्टिदम्
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥

अर्थ-त्रिफला, इन्द्रायण, बडीइलायची, देवदारू, एलुआ, दोनों सारिवा, दोनोंहल्दी,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, प्रियंगु, तगर, कटेरी, कूठ, मजीठ, नागकेसर, अनार, वायविडंग, तालीसपत्र, छोटी इलायची, मालती के मुकुल, नीलोत्पल, दंती, पदमाख, और चंदन, प्रत्येक एक कर्ष तथा एक प्रस्थ घी, इनको पाक की रीतिसे पाक करे । यह घी भूतग्रह, उन्माद, खांसी, अपस्मार पाप, पांडुरोग, खुजली, विषरोग, सूजन, मूर्छा, प्रमेह, गरविष, ज्वर, शुक्रक्षीणता, वन्ध्यत्व दैवोपहितचित्तता अर्थात् दैवकृत मनकी विभ्रांति, मेधाहीनता, अटकती हुई वाणी, स्मृति कामना, और अग्निमांद्य इन सब उपद्रवों में यह कल्याणक घृत उपयोग में लाना चाहिये यह घृत बल वर्द्धक, मंगलीक आयुवर्द्धक, कांतिदायक, सौभाग्यकारक, और पौष्टिक होताहै । यह घृत पुंसवनमें श्रेष्ठहै ।

महा कल्याणक घृत ।

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिः
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पि गृष्टिक्षीरचतुर्गुणम् ॥
वीराद्विमेदाकाकोलीकाकोलीक्षीरविषाणिभिः ।
शूर्पपर्णीयुतैरेतन्महाकल्याणकं परम् ॥
बृंहणं सन्निपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ।

अर्थ–ऊपर कहे हुए कल्याणक घृतमें से पहिले सात द्रव्य त्रिफलासे लेकर एलुआ तक छोडकर बाकी सारिवादिसे लेकर चंदन तक इक्कीस द्रव्यों को लेकर घी से सोलह गुने जलमें अग्नि पर चढादे चौथाई शेष रहनेपर उतार कर छानले फिर इस क्वाथ में प्रथम बार ब्याही हुई गौका चौगुना दूध डाले और क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, काकोली, कमांच, काकडासींगी और सूर्पपर्णी इनका कल्क मिलाकर पाक विधिसे पाक करै यह महाकल्याणक घृत बृंहणकर्ता और सन्निपातनाशक होताहै और कल्याण घृतकी अपेक्षागुणों में अधिक होता है ।

महापैशाचक घृत ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ॥
त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ।
कायस्था शूकरी छत्रा अतिच्छत्रा पलंकषा ॥
महापुरुषदंती च वयस्थानाकुलीद्वयम् ।
कटंभरा वृश्चिकाली शालिपर्णी च तैर्वृतम्
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम्
बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानां चांगवर्धनम् ।

अर्थ–जटामांसी, हरड, गंधमांसी, पद्म चारिणी, केंच, बच, त्रायमाण, अरणी, काकोली, चंडा, कुटकी, आमला, वृद्धदारक धनियां, सौंफ, लाख, सितावरी, क्षीर काकोली, सर्पाक्षी, सर्पगंधा, कटंभरा, वृश्चिकाली और शालपर्णी इन सब द्रव्यों के साथ घी पकावै । इस घी का नाम महा पैशाचक है, यह चातुर्थकज्वर, उन्माद, ग्रह, अपस्मार को नष्ट कर देता है । बुद्धि, मेधा और स्मृतिको बढाने वालाहै, बालकोंको अंगको बढाने वाला अमृत के समान गुणकारी है ।

अन्य प्रयोग ।

ब्राह्मीमैंद्रीयविडंगानिव्योषं हिंगु जटां मुराम्
रास्नां विशल्यांलशुनं विपच्यां सुरसांवचाम्
ज्योतिष्मतीं नागविदामनंतां सहरीतकीम्
काच्छीं च हस्तिसूत्रेण पिष्ट्वा
छायाविशोषिता ।
वर्तिर्नेत्रयोंजनालेपधूपैरुन्मादसूदनी ॥ ४० ॥

अर्थ–ब्राह्मी, इन्द्रायण, बायविडंग, त्रिकुटा, हींग, जटामांसी, मुरा, रास्न ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलहारी, लहसन, अतीस, तुलसी, वच, मालकांगनी, नागदंती, धमासा, हरड, मुलतानी मिट्टी, इन सब द्रव्यों को हाथी के मूत्र में पीसकर बत्ती बना लेवे और इस बत्ती को छाया में सुखाले। इस बत्ती का नस्य, अंजन, प्रलेप और धूंआं देने से उन्मादरोग नष्ट होजाता है।

उन्माद में अवपीडन।

अवपीडाश्च विविधाः सर्षपाः स्नेहसंयुताः।
कटुतैलेन चाभ्यंगो धूमापेयास्य तद्भजः
सहिंगुस्तीक्ष्णधूमश्च सूत्रस्थानोदितो हितः।

अर्थ-सरसों के तेल से संयुक्त अनेक प्रकार के अवपीडन, सरसों के तेल का अभ्यंग, सरसों के चूर्ण का प्रधमन, तथा सूत्रस्थान में कहा हुआ हींग मिलाकर तीक्ष्ण धूम। ये सब हितकारी हैं।

अन्य प्रयोग।

शृगालशाल्यकोलूककजलूकावृषवस्तजैः
मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्मभिराचरेत्।
धूपधूमांजनाभ्यंगप्रदेहपरिषेचनम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-शृगाल, सेह, उल्लू, बिलाई, बैल बकरा, इनके मूत्र, पित्त, मल, रोम, नख और चर्म द्वारा धूनी देना, धूमपान कराना, अंजन लगाना, मर्दन करना, लेप करना तथा परिषेक करना उन्माद में हित है।

अन्य धूनी।

धूपयेत्सततं चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः।
वातश्लेष्मात्मके प्रायः ॥

अर्थ-कुत्ता, गौ और मछली इनके सडे हुए मांस की निरंतर धूनी देना उन्माद रोग में हित है। तथा वातकफात्मक उन्माद में तो विशेष रूप से हित है।

पैत्तिक उन्माद में उपाय।

पैत्तिके तु प्रशस्यते ॥ ४४ ॥
तिक्तकं जीवनीयं च सर्पिः स्नेहश्च मिश्रकः
शिशिराण्यन्नपानानि मधुराणि लघूनि च

अर्थ-पित्तज उन्माद में तिक्तक और जीवनीय घृत, मिश्रक स्नेह (घी तेल आदि मिलाये हुए स्नेह) तथा ठंडे, मिष्ट, मधुर और हलके अन्नपान हित हैं।

उन्माद में सिराव्यध।

विध्येच्छिरां यथोक्तां वा तृतं मेध्यामिषस्य वा
निवाते शाययेदेवं मुच्यते मतिविप्लवात्

अर्थ-उन्मादरोगी की सिराव्यधे में कही हुई नसकी फस्द खोले। ऐसे रोगी को पेट भरकर मद्यमांस का भोजन कराके निर्वात स्थानमें शयन करावे। इन उपायों से रोगी अपनी बुद्धि की विभ्रांतिसे मुक्त होजाताहै।

निर्जल कूपमें डालना।

प्रक्षिप्याऽसलिले कूपे शोषयेद्वा बुभुक्षया।
आश्वासयेत्सुदृप्तं वा वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः
ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेदद्भुतानि वा।
बद्ध्वा सर्षपतैलाक्तं न्यस्तं चोत्तानमातपे
कपिकच्छ्वाथधातैलोहितैलजलैः स्पृशेत्।
कशाभिस्ताडयित्वा वा वह्निं श्वभ्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ४९ ॥
अथवा वीतशल्यादमजने संतमसे गृहे।
सर्पैणोद्धतदंष्ट्रेण दंशैः सिंहैर्गजैश्च तम्
अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा दृढंयुतम्।
भापयेयुर्वधेनैनं तर्जयंतो नृपाज्ञया ॥ ५१ ॥
देहदुःखमयेभ्यो हि परं प्राणिभयं मतम्।
तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः

अर्थ-उन्माद रोगी को जलहीन कूपमें डालकर भूखसे शोषित करावे अर्थात् खाने को न दे। तथा धर्मार्थ मिश्रित बातों से उसका आश्वासन करै। अथवा किसी प्रिय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्तुके नष्ट होनेका समाचार सुनावै, अथवा कोई अद्भुत पदार्थ उसको दिखावै। अथवा उसके देहपर सरसों का तेल लगाकर हाथ पांव बांधकर धूपमें चित्त डालदे। उसके देहमें कैंचकी फली रिगड दे। अथवा गरम लोह, तेल वा जल उसके देहपर डाले। अथवा उसके देह पर कोडे लगावै, अथवा गढे में डालदे। अथवा किसी अंधेरे गढे में वा शस्त्र, पत्थर और मनुष्य रहित घरमें बंद करदे। अथवा ऐसे सर्पसे जिसके दांत उखाड लिये गये हों, अथवा दमन किये हुये सिंह वा हाथियों से उसे डरावै। अथवा राजा के सिपाही उसको बाहर लेजाकर अच्छी तरह बांधकर खूब धमका कर इस बातसे डरावै कि राजाने तुझको मार डालने के लिये आज्ञा दी है, क्योंकि शारीरक क्लेश से प्राणोंको भय अधिक होताहै। इन उपायों से विप्लवको प्राप्त हुए रोगी का मन शांत होजाता है।

उक्त क्रिया का विधान।

सिद्धा क्रिया प्रयोज्येयं देशकालाद्यपेक्षया।

अर्थ–उक्त सिद्ध क्रिया देश और काल का विचार करके काम में लानी चाहिये।

इष्ट विनाशजन्यउन्माद।

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते॥५३॥
तस्य तत्सदृशप्राप्तिः सांत्वाश्वासैः शमंनयेत्

अर्थ–धनादिक किसी प्यारी वस्तु के नष्ट होजाने से जिसका मन चञ्चायमान हो गया है उसे धनादि की प्राप्ति का समाचार, तथा सांत्वना और आश्वासन द्वारा उसके चित्त को शांत करने का उपाय करे।

कामादिज उन्माद में कर्तव्य।

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसंभवान् ५४
परस्परप्रतिद्वंद्वैरेभिरेव शमं नयेत्।

अर्थ–काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या, लोभ इनसे उत्पन्न हुए उन्माद रोगों में इनके प्रतिपक्षी उपायों को काममें लाकर शांति का उपाय करे।

भूतोन्माद में कर्तव्य।

भूतानुबंधमीक्षेत प्रोक्तलिंगाधिकाकृतिम्।
यद्युन्मादे ततः कुर्याद्भूतनिर्दिष्टमौषधम्।

अर्थ–छः प्रकार के उन्मादों के जो लक्षणादि कहे गये हैं, उन लक्षणों से अधिक लक्षण पाये जांय तो उसे भूतोन्माद कहते हैं। इस भूतोन्मादमें यह चिकित्सा करनी चहिये तो भूत चिकित्सित में कही गई है।

उन्माद में बलिप्रदान।

बलिं च दद्यात्पललं यावकं सक्तुपिंडिकाम्
स्निग्धं मधुरमाहारं तंडुलान् रुधिरोक्षितान्।
पक्वामकानि मांसानि सुरामैरेयमासवम्।
अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जात्याः सहचरस्यच
चतुष्पथे गवां तीर्थे नदीनां संगमेषु च ५८

अर्थ–भूतानुबंधी उन्मादमें तिलका चूर्ण, कुलथी, सक्तुपिंडिका, स्निग्ध और मधुर आहार, रुधिरप्लुत चांवलों का भात, कच्चा पक्का मांस, सुरा, मैरेय और आसव, माधवीलता, चमेली, वा सहचरी के फूल, इन सब द्रव्यों को एक पात्रमें रखकर चौराहे में वा गोशाला में वा नदी के संगम पर रखदे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उन्माद की अप्राप्ति ।

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः
निजागंतुभिरुन्मादैः सत्ववान्न स युज्यते ५८

अर्थ–जो मनुष्य मद्य मांसका सेवन न करके हितकारी भोजन करता है, जो संयमवान और पवित्र होता है वह सात्विक पुरुष दोषज वा आगन्तुज किसी प्रकारके उन्माद से पीडित नहीं होता है ।

विगत उन्माद के लक्षण ।

प्रसाद इंद्रियार्थानां बुध्यात्मामनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ।

अर्थ–संपूर्ण इन्द्रियों के विषय, तथा बुद्धि, आत्मा और मनकी प्रसन्नता हो जाय तथा संपूर्ण धातु अपनी प्रकृति पर आजावें तब जान लेना चाहिये कि उन्माद रोग जाता रहा है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने उन्मादप्रतिषेधोनाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

अथाऽतोऽपस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां से अपस्मार प्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अपस्मार के लक्षण ।

"स्मृत्यपायोऽपस्मारः संधिसत्वाभिसंप्लवात्
जायतेऽभिहते चित्ते चिंताशोकभयादिभिः ।
उन्मादवत्प्रकुपितैश्चित्तदेहगतैर्मलैः ।
हृते सत्वे हृदि व्याप्ते संज्ञावाहिषु खेषु च २
तमोविशन्मूढमतिर्बीभत्साः कुरुते क्रियाः ।
वृंतानुत्खादनभ्रमणं हस्तौपादौ च विक्षिपन्
पश्यन्नसंतिरूपाणि प्रस्खलन्पतति क्षितौ ।
विजिह्माक्षिभ्रुवो दोषवेगेऽतीते विबुध्यते ४
कालांतरेण स पुनः श्चैवमेव विचेष्टते ।

अर्थ–जिस रोग में स्मृति का नाश हो जाता है, उसे अपस्मार कहते हैं । बुद्धि और सत्वगुण में विप्लव होने के कारण चिंता शोक और भयादि द्वारा आक्रमित हुआ चित्त तथा उन्माद के सदृश चित्त और देहमें रहनेवाले प्रकुपित दोषों से सत्वगुण नष्ट होकर हृदय और संज्ञावाही संपूर्ण स्रोतों में व्याप्त होजाता है इसी से स्मृति का नाश होकर अपस्मार उत्पन्न होता है । अपस्मार में रोगी की आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है, और वह मूढमति होकर निंदित कामों को करने लगता है, दांतों को चलाता है, झाग डालता है, हाथ पांवों को इधर उधर फेंकता है, अनहुए रूप और आकृतियों को देखकर सहसा भूमि में गिर पडता है, उसकी आंख और भृकुटी टेढी पडजाती है, दोषका वेग दूर हो जाने पर रोगी होश में आजाता है, समयान्तर में फिर ऊपर लिखी हुई दशाको प्राप्त होजाता है ।

अपस्मार के भेद ।

अपस्मारश्चतुर्भेदो वाताद्यैर्निचयेन तु ५ ॥

अर्थ–अपस्मार के चार भेद होते हैं, यथा वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातज

अपस्मार का पूर्वरूप ।

रूपमुत्पित्स्यमानेऽस्मिन्हृत्कंपः शून्यताभ्रमः
तमसो दर्शनं ध्यानं भ्रूव्युदासोक्षिवैकृतम् ६
अशब्दश्रवणं स्वेदो लालासिंघाणकस्रुतिः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अविपाकोऽरुचिर्मूर्छा कुक्ष्याटोपो बलक्षयः निद्रानाशोऽगमर्दस्तृट् स्वप्ने गानं सनर्तनम् पानं मद्यस्य तैलस्य तयोरेव च मेहनम् ८

अर्थ-अपस्मार के पूर्वरूप ये हैं। हृदय में कंपन, सन्नाटा, चक्कर आना, आंखों के आगे अंधेरा दिखाई देना, ध्यान बंध जाना, भकुटियों में कुटिलता, आंखोंमें विकृति शब्द न होनेपर भी सुनना, पसीना, लाला स्राव, नासामलस्राव, अविपाक, अरुचि, मूर्छा, पेटमें गुडगुडाहट, बलकानाश, निद्रानाश, अंगमर्द, तृषा, स्वप्नावस्था में गाना, नाचना, मद्यपान, तैलपान, तथा मद्य वा तेल के समान ही मूत्र होना । ये सब लक्षण अपस्मार रोग होनेके पहिले उत्पन्न होते है।

वातज अपस्मार के लक्षण ।

तत्र वातात्स्फुरत्सक्थि प्रपतंश्च मुहुर्मुहुः । अपस्मारेति संज्ञां च लभते विस्वरं रुदन् उत्पिण्डिताक्षः श्वसिति फेनं वमति कंपते । आविध्यति शिरोदंतान् दशत्याधमातकंधरः परितो विक्षिपत्यंगं विषमं विनतांगुलिः । रूक्षश्यावारुणाक्षित्वङ्नखास्यः कृष्णमीक्षते चपलं परुषं रूपं विरूपं विकृताननम् ।

अर्थ-इनमेंसे वातज अपस्मार में रोगी का पांव कांपने लगता है और बार बार गिरता पडता है, उसका ज्ञान नष्ट होकर स्वर विकृत रुदन करनेलगता है आंखे गोलसी हो जाती हैं श्वास लेता है मुखसे झाग डलताहै कांपने लगता है, सिरको घुमाता है, दांतों को चबाता है, कंधों को ऊंचे करता है, अंगको चारों ओर फेंकता है, देहमें विषमता होजाती है, संपूर्ण उंगलियां टेडी पडजाती हैं। आंखें, त्वचा, नख और मुख रूक्ष, श्याव, अरुण वा काले पड जाते हैं। रोगी को चंचल, कर्कश विरूप और विकृतानन संपूर्ण वस्तु दिखाई देने लगती हैं ।

पित्तज अपस्मार ।

अपस्मरति पित्तेन मुहुः संज्ञां च विंदति । पीतफेनाक्षिवक्त्रत्वगास्फलयति मेदिनीम् भैरवादीप्तरुषितरूपदर्शी तृषान्वितः ॥१३॥

अर्थ-पित्तज अपस्मार में रोगी बार बार चेत करलेता है, उसके झाग, आंख, मुख और त्वचा पीले पडजाते हैं, भूमिको खोदने लगता है उसे प्यास लगती है, इसको भयानक, प्रदीप्त, और क्रोधित रूप दिखाई देने लगते हैं ।

कफज अपस्मार ।

कफाच्चिरेण ग्रहणं चिरेणैव विबोधनम् । चेष्टाऽल्पा भूयसी लाला शुक्लनेत्रनखास्यता शुक्लाभरूपदर्शित्वं सर्वलिंगं तु वर्जयेत्

अर्थ--कफज अपस्मार में रोगी देरमें बेहोश होता है और देरमें ही रोगसे मुक्त हो कर होश में आता है, इसमें रोगी चेष्टा कम करता है, मुखसे लार अधिक गिरती है, नेत्र नख और मुख सफेद होजाते हैं, रोगीको शुक्लवर्ण की वस्तु दिखाई देने लगती हैं। त्रिदोषज अपस्मार जिसमें तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं असाध्य होता है ।

वमनादि प्रयोग ।

अथाऽवृतानांधीचित्तबुद्धिस्मृतिज्ञानांप्राक्प्रबोधनम् तीक्ष्णैः कुर्यादपस्मारे कर्मभिर्वमनादिभिः ।

अर्थ-जब अपस्मार के स्वरूप का ज्ञान हो जाय तब दोषोंसे आवृत बुद्धि, चित्त,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदय और संपूर्ण स्रोतों का प्रबोध कराने के निमित्त तीक्ष्ण वमनादि कर्मका प्रयोग करै

दोषानुसार विरेचनादि।

वातिकं बस्तिभूयिष्ठैः पैत्तं प्रायो विरेचनैः।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत्।

अर्थ–वातिक अपस्मारमें बस्तिप्रधान चिकित्सा द्वारा, पैत्तिक अपस्मारमें विरेचन प्रधान चिकित्साद्वारा और कफज अपस्मार में वमनप्रधान चिकित्साद्वारा उपचार करे।

संशमन औषधियों का विधान।

सर्वतस्तु विशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्यच
अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्संशमनान् शृणु।

अर्थ–वमनविरेचनादि द्वारा सब तरहसे शुद्ध हुए तथा पेयापानादि द्वारा संसर्गी करके सम्यक् आश्वासन किये हुए रोगी को अपस्मार की शांति के निमित्त जिन संशमनादि औषधियों का प्रयोग किया जाता है, उनका वर्णन करते हैं।

अपस्मारनाशक घृत।

गोमयस्वरसक्षीरदधिमूत्रैः शृतं हविः।
अपस्मारज्वरोन्मादकामलांतकरं पिबेत्।

अर्थ–गोबर का रस, दूध, दही और गोमूत्र इनके साथ घृत पकाकर पान करावै, इससे अपस्मार, ज्वर, उन्माद और कामलारोग शांत होजाते हैं।

महत्पंचगव्य घृत।

द्विपंचमूलीत्रिफलाद्विनिशाकुटजत्वचः॥
सप्तपर्णशमीपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम्।
शंख्याकपुष्करजटाफल्गुमूलदुरालभाः॥
द्विपलाः सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषते।
भार्गीपाठाढकीकुंभनिकुंभव्योषरोहिषैः॥
मूर्वाभूतिकभूनिंबधेयसीतारिवाद्वयैः।
मदयंत्यग्निनिचुलैरक्षांशैः सर्पिषः पचेत्॥

प्रस्थं तद्वद्द्रवैः पूर्वैः पंचगव्यमिदं महत्।
ज्वरापस्मारजठरभगंदरहरं परम्॥ २३॥
शोफार्शःकामलापांडुगुल्मकासग्रहापहम्।

अर्थ–दशमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुडाकी छाल, सातला, अोंगा, नीलनी, कुटकी, अमलतास, पुष्करमूल, जटामांसी, काकोडुम्बर की जड, और दुरालभा प्रत्येक दो पल इनको एक द्रोण जलमें पकाकर चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर भाडंगी, पाठा, अरहर, निसोथ, दंती, त्रिकुटा, रोहिषतृण, मूर्वा, अजवायन, चिरायता, हरड, दोनों सारिवा, मदयंती, चीता, और जलबेत प्रत्येक एक तोला इनका कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घी तथा पूर्वोक्त द्रव्य अर्थात गोबर का रस, दूध, दही और गोमूत्र मिलाकर पाककी रीतिसे पाक करे इस घृत का नाम महत्पंचगव्य घृत है। इसके पान करने से ज्वर, अपस्मार, उदर रोग और भगंदर दूर होजाते हैं तथा शोफ, अर्श, कामला, पांडुरोग, गुल्मरोग, खांसी और ग्रह इन के दूर करने में परमोत्तम है।

उन्माद पर अन्य घृत

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पी शृतं घृतम्॥
पुराणं मेध्यमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित्।

अर्थ–ब्राह्मी का रस, बच, कूठ और शंखपुष्पी इनके साथ पकाया हुआ पुराना घी मेधावर्द्धक है तथा उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप रोगों को जीतनेवालाहै।

उक्त रोग पर तेल।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः॥
क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविमोक्षणम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जीवनीयगणोक्त प्रत्येक द्रव्य एक पल लेकर कल्क बनालेवे, इस में एक द्रोण दूध, एक प्रस्थ घी मिलाकर पका लेवै । यह प्रयोग अपस्मार को दूर करनेवालाहै ।

वातपित्तज अपस्मार का उपाय ।

कंसे क्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ॥
कार्षिकैर्जीवनीयैश्च सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ।
वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं निहंति तत् ॥

अर्थ–दूध और ईख का रस एक आढक, खंभारी का रस आठ प्रस्थ, जीवनीय गणोक्त द्रव्य प्रत्येक एक कर्ष, घी एक प्रस्थ इनको पाक की विधि से पकावै । यह घात पित्त से उत्पन्न हुए अपस्मार रोग को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ।

अन्य प्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशकाथशृतं पयः ।

अर्थ–कांस, विदारीकंद, ईख और कुशा इनके काढे के साथ औटाये हुए दूध के सेवन से उक्त फलसिद्धि होती है ।

अन्य प्रयोग ।

कूष्मांडस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे शृतम् ॥
यष्टीकल्कमपस्मारहरं धीवाक्स्वरप्रदम् ।

अर्थ–घी से अठारह गुना कोयले का रस मिलाकर घी पकावै और इसमें मुलहटी का कल्क डालदे । इससे अपस्मार रोग जाता रहता है । यह बुद्धि, वाणी और स्वर का बढाने वाला है ।

नस्य का प्रयोग ।

कपिलानां गवां पित्तं नावनं परमं हितम् ॥
श्वशृगालविडालानां सिंहादीनां च पूजितम्

अर्थ–कपिलवर्ण गौ का पित्ता नस्य द्वारा प्रयोग किये जाने पर परम हितकारी है तथा कुत्ता, शृगाल, बिल्ली और सिंह का पित्ता भी तद्वत् गुणकारी है ।

अन्य तैल प्रयोग ।

गोधानकुलनागानां वृषभर्क्षगवामपि ॥
पित्तेषु साधितं तैलं नस्येऽभ्यंगे च शस्यते ।

अर्थ–गोधा, न्यौला, सर्प, बैल, रीछ और गौ इनके पित्तों में सिद्ध किया हुआ तेल नस्य अभ्यंग द्वारा श्रेष्ठ होता है ।

अन्य प्रयोग ।

त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्झकैः ॥
श्यामापामार्गकारंजवीजैस्तैलं विपाचितम् ।
वस्तमूत्रे हितं नस्यं चूर्णं वाध्मापयेद्भिषक् ॥

अर्थ–चौगुने बकरी के मूत्र में त्रिफला त्रिकुटा, सरलकाष्ठ, जवाखार, तुलसी, श्यामालता, ओंगा, और कंजा के बीज इनके कल्क के साथ पकाया हुआ तेल नस्य द्वारा प्रयोग करे अथवा इन्हीं त्रिफलादि के चूर्ण का नाक में प्रधमन करे ।

धूमप्रयोग ।

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुंडैः पक्षैः पुरीषैश्च धूममस्य प्रयोजयेत् ॥

अर्थ–नकुल, उल्लूक, बिल्ली, गिद्ध, कीट, सर्प और कौआ इनकी चोंच, पंख और बीट का धूम प्रयोग करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ।

लशुनादि तैल ।

शीलयेत्तैलं लशुनं पयसा वा शतावरीम् ।
ब्राह्मीरसं कुष्ठरसं वचां वा मधुसंयुताम् ॥

अर्थ–तिलके तेलके साथ लहसन, अथवा दूधके साथ सितावर अथवा ब्राह्मी का रस वा कूठका रस अथवा शहत मिलाकर बचका प्रयोग करनेसे अपस्मार रोग जाता रहताहै ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असाध्यकी चिकित्सा।

समं क्रुद्धैरपस्मारो दोषैः शारीरमानसैः।
यज्जायते यतश्चैष महामर्मसमाश्रयः॥
तस्माद्रसायनैरेनं दुश्चिकित्स्यमुपाचरेत्।
तद्वर्ति चाग्नितोयादेर्विषमात्पालयेत्सदा॥

अर्थ—शारीरक और मानसिक संपूर्ण दोष एक साथ कुपित होकर अपस्मार रोग को उत्पन्न करते हैं तथा यह रोग महामर्म का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है इसलिये यह अपस्मार रोग असाध्य होजाता है। इस दुश्चिकित्स्यरोग की रसायन द्वारा चिकित्सा करना उचितहै। तथा इस रोगके होनेपर रोगी को अग्नि और जलके विषम स्थलों से सदा बचाता रहै।

कुत्सित वाक्योंका निषेध।

मुक्तं मनोविकारेण त्वमित्थ कृतवानिति।
न ब्रूयाद्विषयैरिष्टैः क्लिष्टं चेतोऽस्य बृंहयेत्॥

अर्थ—जब अपस्मार रोगी का अपस्मार का वेग शांत होजाय, तब उस रोगी से वेग के समय का कुछ भी वृत्तान्त न कहै कि तूने यह किया था, वा तेरी ऐसी दशा होगई थी। तथा उसके क्लिष्ट चित्तको प्रिय वाक्यों द्वारा सुस्थ करनेका उपाय करै।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने अपस्मार प्रतिषेधोनामसप्तमोऽध्यायः॥७॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथाऽतो वर्त्मरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहांसे वर्त्मरोग विज्ञानीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

नेत्ररोगकी संप्राप्ति।

सर्वरोगनिदानोक्तैरहितैः कुपिता मलाः।
अचक्षुष्यैर्विशेषेण प्रायः पित्तानुसारिणः॥
शिराभिरूर्ध्वं प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः।
वर्त्मसंधि सितं कृष्णं दृष्टिं वा सर्वमक्षि वा॥
रोगान् कुर्युः

अर्थ—कठिनता से खोलने मूंदने आदि पलकों के रोगको वर्त्मरोग कहते हैं। सर्वरोगनिदानोक्त का तिक्तादि अहित आहार और विहार द्वारा तथा विशेष करके उन कारणों से जो नेत्रों को अहित हैं संपूर्ण दोष प्रकुपित और पित्तानुगामी होकर संपूर्ण सिराओं के द्वारा जत्रुसे ऊपर फैंके जाकर नेत्रके अवयवों को अर्थात् वर्त्मकी संधियों को वा सफेद भाग को वा काले भाग को वा दृष्टिको वा संपूर्ण नेत्रगोलक को ग्रहण करके अनेक प्रकार के नेत्ररोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

कृच्छ्रोन्मीलन के लक्षण।

चलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः।
सुप्तोत्थितस्य कुरुते वर्मस्तंभ सवेदनम्॥
पांशुपूर्णाभनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमश्रु च।
विमर्दनात्स्याच्च शमः कृच्छ्रोन्मील-
वर्दति तम्॥ ४॥

अर्थ—प्रकुपितवायु नेत्रों के वर्त्मभाग वाला संपूर्ण शिराओं का आश्रय लेकर सोकर उठे हुए मनुष्य के नेत्रों में वर्त्मस्तंभ अर्थात् नेत्र के कोयों में स्तब्धता करदेता है, इस रोग में वेदना, आंखों में धूलसी भरना, कठिनता से आंखों का खुलना और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आंसू बहना ये लक्षण होते हैं, परंतु हाथ से मीडने पर कुछ शांति होजाती है। इस रोगको कृच्छ्रोन्मीलन कहते हैं।

निमेषाख्य रोग।

चालयन्वर्त्मनी वायुर्निमेषोन्मेषणं मुहुः।
करोत्यरुङ् निमेषोऽसौ

अर्थ–वायु नेत्रवर्त्मों को चलायमान करता हुआ बार बार नेत्रों को खोलता, और बन्द करता है, इस में दर्द नहीं हुआ करता है, इस रोग को निमेष कहते हैं।

वातहतरोग।

वर्त्म यत्तु निमील्यते ॥ ५॥
विमुक्तसंधि निश्चेष्टं हीनं वातहतं हि तत्।

–अर्थ–यदि वायुद्वारा नेत्रका वर्त्म संधियों से युक्त, चेष्टारहित और हीन होकर निमीलित होजाता है, उसे वातहताख्य रोग कहते हैं।

कुंभीसंज्ञक पिटिका।

कृष्णाः पित्तेन बह्वोऽतवर्त्मकुंभीकवीजवत्
आध्मायंते पुनर्भिन्नाः पिटिकाः कुंभिसंज्ञिताः

अर्थ–पित्तके कारण से नेत्रके कोयों में जमालगोटा के बीज के समान काले रंगकी बहुत सी फुंसियां पैदा होजाती हैं,और फटकर फिर फूल जाती हैं। इन फुंसियों को कुंभी कहते हैं।

पित्तोत्क्लिष्ट रोग।

सदाहक्लेदनिस्तोदं रक्ताभं रुपर्शनाक्षमम् ॥
पित्तेन जायते वर्त्म पित्तोत्क्लिष्टमुशंति तत्।

अर्थ–पित्त के कारण से वर्त्मभाग में दाह,क्लेद,सूची वेधनवत् पीडा और,ललाई हो तथा हाथ न लगाया जासके उसे पित्तोत्क्लिष्ट कहते हैं।

पक्ष्मशात के लक्षण।

करोति कंडूं दाहं च पित्तं पक्ष्मांतमाश्रितम्
पक्ष्मणां शातनं चानु पक्ष्मशाते वदंति तम्।

अर्थ–पित्त पलकों के भीतर के भाग का आश्रय लेकर खुजली और दाह पैदा करदेता है, पीछे पलकों के बाल गिर पडते हैं, इसे पक्ष्मशात कहते हैं।

पोथकी का लक्षण।

पोथक्यः पिटिकाः श्वेताः सर्षपाभा
घनाः कफात् ॥ ९ ॥
शोफोपदेहबहुकंडूपिच्छिलाश्रुसमन्विताः।

अर्थ–कफके कारण से सघन सरसोंके समान छोटी छोटी फुंसियां होजाती हैं, इनका रंग सफेद होता है, इसमें सूजन उपदेह (लिहसावट) नेत्रमें खुजली, पिच्छिलता और आंसू बहना ये लक्षण होते हैं।

कफोत्क्लिष्ट रोग।

कफोत्क्लिष्टं भवेद्वर्त्म स्तब्धक्लेदोपदेहवत् ॥

अर्थ–जिस रोगमें स्तब्धता, लिहसावट और क्लेद होताहै उसे कफोत्क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं

लगण रोग।

ग्रंथिः पांडुरुकपाकः कंडूमान् कठिनः
कफात्।
कोलमात्रःश्लगणःकिंचिदल्पस्ततोऽपि वा

अर्थ–कफके कारण से नेत्रके वर्त्ममें पांडुवर्ण की वेदनारहित, पाकरहित, खुजलीसे युक्त कठोर और बेरके बराबर अथवा इससे कुछ छोटी गांठ पैदा हो जाती है। इसे लगण कहते हैं।

उत्संगके लक्षण।

रक्ता रक्तेन पिटिकास्तत्तुल्यपिटिकाचिताः।
उत्संगाख्यः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-रक्तके कारण से वर्त्मभें लालरंग की फुंसी पैदा हो जाती हैं और इन फुंसियों के चारों ओर वैसी ही और भी फुंसियां हो जाती हैं। इस रोग को उत्संग कहते हैं

उत्क्लिष्ट वर्त्मरोग।

तथोत्क्लिष्टं राजिमत्स्पर्शमाक्षमम् १२॥

अर्थ-उत्संग के सदृश ही उत्क्लिष्ट नामक वर्त्मरोग होता है, इसमें रेखासी होती हैं और हाथ नहीं लगाया जाता है।

नेत्रार्श के लक्षण।

अर्शोऽधिमांसं वर्त्मांतः स्तब्धं स्निग्धं-
सदाहरुक्।
रक्तं रक्तेन तत्स्रावी छिन्नं छिन्नं च वर्धते १३

अर्थ-वर्त्मके भीतर की ओर रक्तके कारण एक मांसका अंकुर पैदा हो जाता है यह स्तब्ध, स्निग्ध, दाह और वेदना से युक्त लाल रंग का होता है, इसमें से रक्तका स्राव हुआ करता है, यह बार बार छिन्न होनेपर भी बढ जाता है, इसे नेत्रार्श कहते हैं।

अंजन पिटिका।

मध्ये वा वर्त्मनोऽते वा कण्डूपारुष्यवती स्थिरा
मुद्गमात्रास्रुजा ताम्रा पिटिकांजननामिका॥

अर्थ-रक्तके कारण से वर्त्मके बीचमें वा किनारे की तरफ खुजली, दाह और वेदना से युक्त, कठोर मूंगके बराबर तांबेके से रंग की फुंसियां होती हैं इसे अंजनरोग कहते हैं

विसवर्त्मके लक्षण।

दोषैर्वर्त्म बहिः शूनं यदंतः सूक्ष्मखाचितम्।
सस्रावमंतरुदकं बिसाभं बिसवर्त्म तत्१५

अर्थ-वातादि दोषोंके कारण नेत्रों के वर्त्मका बहिर्भाग सूज जाता है और भीतर के भागमें छोटे छोटे छिद्र हो जाते हैं और वर्त्म स्रावयुक्त तथा जलमें स्थित कमलनाल की तरह सछिद्र होता है, इस रोग को विसवर्त्म कहते हैं।

उत्क्लिष्ट वर्त्म।

यद्वर्त्मोत्क्लिष्टमुत्क्लिष्टमकस्मान्म्लाना-
नतामियात्।
रक्तदोषत्रयोत्क्लेशाद्वदंत्युत्क्लिष्टवर्त्म तत्

अर्थ-रक्त और वातादि तीनों दोषों के उत्क्लेश के कारण वर्त्म उत्क्लिष्ट होकर अकस्मात् स्तब्ध होकर म्लान हो जाता है, उसे उत्क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं।

श्यावर्त्मके लक्षण।

श्यावं वर्त्म मलैः सास्रैः श्यावं रुक्क्लेदशोफवत्

अर्थ-रक्त अथवा वातादि दोषोंके कारण वर्त्म श्यामवर्ण तथा वेदना, क्लेद और सूजनसे युक्त होजाताहै तब इसे श्यावर्त्म कहते हैं।

श्लिष्टवर्त्मके लक्षण।

श्लिष्टाख्यवर्त्मनी श्लिष्टे कंडूश्वयथुरागिणी

अर्थ- जिस रोगमें नेत्रके ऊपर नीचे के पलक गोंदके कारण चिपट जातेहैं, तथा नेत्रों में खुजली, सूजन और ललाई पैदा होजाती हैं, उसे श्लिष्टवर्त्म कहते हैं। किसी किसी पुस्तक में श्लिष्टकी जगह 'क्लिष्ट' पाठ भी है।

सिकतावर्त्म।

वर्त्मनोऽतः खरारूक्षाः पिटिकाः सिकतोपमाः
सिकतावर्त्म

अर्थ-नेत्रके पलकों के भीतर खरदरी और रूक्ष फुंसियां बालूके समान पैदा हो जाती हैं, इन्हें सिकतावर्त्म कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्दमरोग ।

कृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम् १८

अर्थ-कीचके सदृश वा काले रंगकी फुंसियों को कर्दम कहते हैं ।

बहलरोग का वर्णन ।

बहलं बहलैर्मांसैः सवर्णैश्चीयते समैः ।

अर्थ—नेत्रोंके पलकों को त्वचाके रंगके समान जो सघन मांसके अंकुरवर्त्म में पैदा होजाते हैं, उसे बहल वर्त्मरोग कहते हैं ।

कुकूणक का लक्षण ।

कुकूणकः शिशोरेव दंतोत्पत्तिनिमित्तजः ।
स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः
स वर्त्मशूलपैच्छिल्यकर्णनासाक्षिमर्दनः ।

अर्थ—दांत निकलने के समय बालक के कुकूणक नामक रोग होता है, यह रोग बालक को ही होता है, क्योंकि दांतों की उत्पत्ति का हेतु है । इसमें बालक की आंख फूल जाती हैं और तांबे के से रंगकी होजातीहै, बालक देखने में असमर्थ होजाता है, कान, नाक और आंखों को मीडने लगताहै उसके पलकों में पिच्छिलता और शूलवत् वेदना होने लगती है ।

वर्त्मसंकोचादि ।

पक्ष्मोपरोधे संकोचो वर्त्मनां जायते तथा ।
खरतांतर्मुखत्वं च लोम्नामन्यानि वा पुनः ।
कंटकैरिव तीक्ष्णाग्रैर्घृष्टं तैरक्षिसूयते ।
ह्यते चानिलादिद्विडलपाद्यः शांतिरुद्भूतैः

अर्थ—पक्ष्मोपरोध रोगमें वर्त्म में सुकडापन, तथा पलक खरदरे और भीतर को मुख वाले होजाते हैं, अथवा पुनर्बार लोम उत्पन्न होजाते हैं । पैनी नोक वाले रोमों से नेत्र कांटों से बिंधे से होजातेहैं । इस रोगमें नेत्रों में दाह होने लगताहै, हवा और धूपको सह नहीं सकता है । रोमों को उखाड डालनेसे वेदना शीघ्र शांत होजाती है । इस रोगको परवाल कहते हैं ।

अलजीनामक ग्रंथि ।

कनीनके बहिर्वर्त्म कठिनो ग्रंथिरुन्नतः ।
ताम्रः पक्वोऽस्रपूयास्रदलज्याभ्मायते मुहुः

अर्थ—वर्त्म के बाहर की ओर कनीनका में एक कठोर और ऊंची गांठ होती है, उसका रंग तांबे के सदृश, पकने पर राध और रुधिर बहानेवाली होती है, इसे अलजी कहते हैं, यह बार बार फूल जाती है ।

अर्बुद का लक्षण ।

वर्त्मांतर्मांसपिंडाभः श्वयथुर्ग्रंथितो रुजः ।
सास्रैः स्यादर्बुदो दोषैर्विषमो बाह्यतश्चलः

अर्थ—वर्त्मके भीतर मांसके पिंडके सदृश एक गांठदार सूजन होती है यह रक्त तथा वातादि तीनों दोषों के कारण पैदा होती है, इसमें दर्द नहीं होता है, इसे अर्बुद कहते हैं । जब यह वर्त्मके बाहर होती है, तब यह चलायमान और विषम आकृतिवाली होती है ।

वर्त्मसंश्रयीरोगों की संख्या ।

चतुर्विंशतिरित्येते व्याधयो वर्त्मसंश्रयाः ।

अर्थ—ऊपर कही हुई चौबीस व्याधियां वर्त्मके आश्रयवाली हैं ।

उक्तव्याधियों का साध्यासाध्यत्व ।

आद्योऽत्र भेषजैः साध्यो द्वौ ततोऽर्शइव त्यजेत् ॥ २५ ॥
पक्ष्मोपरोधो याप्यः स्याच्छेषाञ्छस्त्रेण साधयेत् ।

अर्थ—इनमें से पहिला रोग अर्थात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुच्छ्रोन्मीलन औषधियों द्वारा साध्य होता तत्पश्चात् निमेष, वातहत और अर्श ये तीनों असाध्य हैं, पक्ष्मोपरोध याप्य है, शेष सब शस्त्रसाध्य हैं।

पक्ष्मसदन का उपाय।

कुट्टयेत्पक्ष्मसदनं छिद्यात्तेष्वपि चार्बुदम्
भिद्याल्लगणकुंभीकाविसोत्संगांजनालजीः।
पोथकीश्यावसिकताश्लिष्टोत्क्लिष्टचतुष्टयम्
सकर्दमं सबहलं विलिखेत्सकुकूणकम्॥

अर्थ–शस्त्रसाध्य इक्कीस नेत्ररोगोंमें से पक्ष्मसदननामक रोगको सूची और कूर्च द्वारा कुट्टित करे। नेत्रार्बुद को वृद्धिपत्रादि शस्त्रद्वारा छिन्न करै। लगण, कुंभीका, विसवर्त्म, उत्संग, अंजन और अलजी इनको व्रीहिमुख अस्त्रद्वारा भेदन करे। तथा पोथकी, श्यावर्त्म, सिकता, श्लिष्ट, पित्तोत्क्लिष्ट, कफोत्क्लिष्ट, रक्तोत्क्लिष्ट, और उत्क्लिष्ट वर्त्म तथा कर्दम, बहल और कुकूणक ये ग्यारह रोग लेख्य अर्थात् छीलने के योग्यहैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायांउत्तरस्थाने वर्त्मरोग विज्ञानीयो नामाऽष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

अथाऽतोवर्त्मरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से वर्त्मरोग प्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

कुच्छ्रोन्मीलन की चिकित्सा।

" कुच्छ्रोन्मीले पुराणाज्यं द्राक्षाकल्कांवुसाधितम्।
ससितं योजयेत्स्निग्धं नस्यधूमांजनादि च

अर्थ–कुच्छ्रोन्मील नामक नेत्ररोग में पुराना घी दाख के कल्क और काढे के साथ सिद्ध करके शर्करा मिलाकर सेवन करावै। इस में स्निग्ध नस्य धूम और अंजनादि का प्रयोग करना चाहिये।

कुंभीकावर्त्म का उपाय।

कुंभीकावर्त्मलिखितं सैंधवप्रतिसारितम्।
यष्टीधात्रीपटोलीनां क्वाथेन परिषेचयेत्।

अर्थ–कुंभीकावर्त्म को वृद्धिपत्रादि शस्त्र द्वारा लिखित करके सेंधेनमक से प्रतिसारण करके मुलहटी, आमला और पर्वल इनके काढे से परिषेक करै।

वर्त्म के विलेखन की रीति।

निवातेऽधिष्ठितस्यात्तैःशुद्धस्योत्तानशायिनः
बहिःकोष्णांबुतप्तेन स्वेदितं वर्त्म वाससा
निर्भुज्य वस्त्रांतरितं वामांगुष्ठांगुलीधृतम्।
न स्रंसते चलति वा वर्त्मैवं सर्वतस्ततः।
मंडलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदांकितम्
लिखेत्तेनैव पत्रैर्वा शाकशोफालिकादिजैः।
फेनेन तोयराशेर्वा पिचुना प्रमृजन्नसृक्।
स्थिते रक्ते सुलिखितं सक्षौद्रैःप्रतिसारयेत्
यथास्वमुक्तैरनु च प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा
घृतेनासिक्तमभ्यक्तं बध्नीयान्मधुसर्पिषा
ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्वा पिंडं च यवसक्तुभिः
द्वितीयेऽहनि मुक्तस्य परिषेकं यथायथम्
कुर्यात् चतुर्थे नस्यादीन्मुंचेदेवाह्नि पंचमे।

अर्थ–अब हम यहां से नेत्र के वर्त्म के विलेखन की रीति लिखते हैं। जिसके वर्त्म का विलेखन करना हो उसको वातरहित

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थान में रखकर वमन विरेचनादि द्वारा शुद्ध करके चित्त लिटा देवै, फिर गरम जल में वस्त्र को भिगोकर उसके वर्त्मको स्वेदित करके तथा बांये हाथके अंगूठे और तर्जनी उंगली द्वारा टेढा करके पकडले जिससे वर्त्म ढीला होकर इधर उधर चलायमान नहो। तदनंतर इस वर्त्म में मंडलास्त्र को तिरछा लगाकर शाक वा शोफालकादि पत्रद्वारा अथवा समुद्रफेन द्वारा उस शस्त्रांकित वर्त्मको विलेखन करना चाहिये। और रुईके फोयेसे रुधिर को पोंछ डाले और रुधिर के बन्द होजाने पर वर्त्मको अच्छी तरह खुरचा हुआ जान कर शहत और सेंधेनमक से प्रतिसारण करे। फिर गरमजल से धोकर घी चुपडकर शहत और घी से अभ्यक्त करके जौ के सत्तूका पिंडा लगाकर दोनों कानों के ऊपर नीचे पट्टी से बांध देवे। दूसरे दिन खोलकर यथायोग्य औषधियों के क्वाथ से धोकर फिर बांध देवे। चौथे दिन नस्यादि का प्रयोग करे और पांचवें दिन बिलकुल खोलदेवै।

सुलिखितवर्त्मके लक्षण ॥

समं नखनिभं शोफकंडूघर्षोपपीडितम् ॥
विद्यात्सुलिखितं वर्त्म लिखेद् भूयो विपर्यये

अर्थ—सूजन खुजली और रिगड से पीडित वर्त्म यदि नखके सदृश हो तो उसको सुलिखित समझना चाहिये। इससे विपरीत होने पर वर्त्मको दुबारा लेखन करना चाहिये।

अतिलेखन के उपद्रव ॥

रुक्पक्ष्मवर्त्मसदनं स्रंसनाद्तिलेखनात् ॥
स्नेहस्वेदादिकस्तत्रसंमिश्रो वातहरः क्रमः।

अर्थ—वर्त्मका अतिलेखन होने से वेदना तथा पलक और वर्त्ममें शिथिलता होती है। अतिलेखनमें स्नेहस्वेदादि वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

अतिलेखन में उपाय ।

अभ्यज्य नवनीतेनश्वेतरोध्रं प्रलेपयेत् ११
परंडमूलकल्केन पुटपाके पचेत्ततः ।
स्विन्नं प्रक्षालितं शुष्कंचूर्णितंघोटलीकृतम्
स्त्रियाः क्षीरेछगल्या वा मृदितंनेत्रसेचनम्

अर्थ—सफेदलोध पर नौनी घी चुपडकर अरंड की जडका कल्क उसके चारों ओर लगादे और फिर पुटपाक की रीति से पकावै। सीजने पर धोडालै और धूप में सुखाकर पीसकर चूर्ण करले, तदनंतर इस चूर्ण को कपडे की पोटली बनाकर स्त्री के दूध वा बकरी के दूधमें भिगो भिगोकर आंख में निचोडे।

अन्य उपाय ।

शालितंडुलकल्केन लिप्तं तद्वत्परिप्लुतम्
कुर्याच्चेऽतिलिखितं मृदितं दधिमस्तुना
केवलेनाऽपि वा सेकंमस्तुना जांगलाशिनः

अर्थ—नेत्रके अतिलिखित होनेपर सफेद लोध पर नवनीत लगाकर ऊपर से शाली चांवलों का कल्क लपेट देवै और पुटपाक की रीति से पकाकर धोडाले, फिर धूप में सुखाकर चूर्ण करके पोटली बांधकर दही के पानी में भिगो भिगोकर अथवा केवल दही के पानी को ही आंखमें निचोडे। इस पर जांगल मांस का पथ्य है।

कठोरपिटिका की चिकित्सा ।

पिटिकाग्रंहिवक्त्रेण भित्त्वा तु कठिनोन्नताः
निर्पाडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–कठोर और ऊंची फुंसी को व्रीहि-मुख शस्त्रद्वारा भेदन करके निष्पीडित करे। तदनंतर प्रलेप, बंधन, क्षालन, सेचन आदि पहिले की तरह करै।

उक्त क्रम का विधान।

लेखने भेदने चायं क्रमः सर्वत्र वर्त्मनि।

अर्थ–सब प्रकार के वर्त्मरोगों में लेखन और भेदन की चिकित्सा का यही क्रम है।

पित्तरक्तोत्क्लिष्ट में कर्तव्य।

पित्तास्रोत्क्लिष्टयोःस्वादुस्कंधसिद्धेनसर्पिषा सिराविमोक्षःस्निग्धस्यात्रिवृच्छ्रेष्टविरेचनम् लिखिते स्रुतरक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम् यष्टीकषायः सेकस्तु क्षीरं चंदनसाधितम्

अर्थ–पित्तोत्क्लिष्ट और रक्तोत्क्लिष्ट रोगों में मधुरगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी सेवन कराके रोगी को स्निग्ध करे फिर उसकी सिराको खोलै। तदनंतर निसोथ और त्रिफला का विरेचन देवै। जिस वर्त्म का लेखन और रक्त मोक्षण कर चुके हों उसको मुलहटी के काढे से धोना चाहिये और चन्दन डालकर औटाये हुए दूध से परिषेक करना हित है।

पक्ष्मसात की चिकित्सा।

पक्ष्मणां सदने सूच्या रोमकूपान् विकुट्टयेत् ग्राहयेद्वा जलौकोभिः पयसेक्षुरसेन वा। वमनं नावनं सर्पिः शृतं मधुरशीतलैः॥

अर्थ–पक्ष्मसदन रोग में रोमकूपों को सुई से छेदन करे अथवा जोकों द्वारा पकडवावै दूध वा ईख का रस देकर वमनकरावै और मधुर तथा शीतल औषधों के साथ सिद्ध किये हुए घी की नस्य देवै।

पक्ष्मशात में अंजन।

संचूर्ण्य पुष्पकासीसं भावयेत्सुरसारसैः। ताम्रे दशाहं परमं पक्ष्मशाते तदंजनम्

अर्थ–हीराकसीस को पीसकर किसी तांबे के पात्र में रखकर दस दिन तक तुलसी के पत्तों के रसकी भावना देता रहै, फिर इस अंजन के लगाने से पक्ष्मशात रोग दूर होजाता है।

पोथकी की चिकित्सा।

पोथकीलिखिताः शुंठीसैंधवप्रतिसारिताः। उष्णांबुक्षालिताःसिंचेत्खदिराढकिंशिंशुभिः अस्सिद्धैर्द्विनिशाश्रेष्ठामधुकैर्वा समाक्षिकैः।

अर्थ–पोथकी को बृद्धिपत्रादि शस्त्रद्वारा लिखित, सोंठ और सेंधे नमक द्वारा प्रतिसारित करके गरम जल से धोवै तदनंतर खैर, अडहर, और सहजने के काढे से अथवा हलदी, स्थलपद्मनी और मुलहटी के काढे में मधु मिलाकर परिषेक करे।

कफोत्क्लिष्ट का उपाय।

कफोत्क्लिष्टे विलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् सूक्ष्मैः सैंधवकासीसमनोह्वाकणतार्क्ष्यजैः। वमनांजननस्यादि सर्वं च कफजिद्धितम्॥

अर्थ–कफोत्क्लिष्ट में लेखन करके सेंधा नमक, कसीस, मनसिल, पीपल और रसौत इनको महीन पीसकर शहत मिलाकर प्रतिसारण करे, इस में वमन, अंजन, नस्यादि सब प्रकार के कफ को दूर करने वाली क्रिया हितकारी है।

लगण का उपाय।

कर्तव्यं लगणेप्येतद्यशांतावग्निना वहेत्।

अर्थ–लगण रोग में ऊपर कही हुई सब क्रिया हितकारी होती हैं। इन सब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से शांति न होने पर अग्नि से दग्ध करदेना चाहिये।

कुकूणक का उपाय।

कुकूणे खदिरश्रेष्ठार्निंबपत्रैः शृतं घृतम् ॥
पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टीसर्षपसैंधवैः।

अर्थ-कुकूणक रोग में खैर, त्रिफला, नीमके पत्ते इनके साथ में पकाया हुआ घी बालक को स्तनपान करानेवाली धाय पीकर पीपल, मुलहटी, सरसों और सेंधा नमक देकर वमन करदेवे।

उक्तरोग में विरेचन।

अभयाशिप्पलीद्राक्षाक्काथेनैनां विरेचयेत् ॥

अर्थ-हरड, पीपल और दाख इनका काढा पान कराके उक्त रोग में धायको विरेचन करादेवे।

कुचों का लेप।

मुस्ताद्विरजनीकृष्णाकल्केनालेपयेत्स्तनौ।
धूपयेत्सर्षपैः साज्यैः

अर्थ-नागरमोथा, दोनों हलदी और पीपल इनको पीसकर धायके कुचों पर लेप करदे और सरसों और घी मिलाकर धूनी दे देवे।

क्वाथपान।

शुद्धां क्काथं च पाययेत् ॥
पटोलमुस्तमृद्वीकागुडूचीत्रिफलोद्भवम्।

अर्थ वमनविरेचनादि से धायको शुद्ध करके पर्वल, नागरमोथा, दाख, गिलोय और त्रिफला इनके काथका पान करावै।

लिखितवर्त्ममें परिषेक।

शिशोस्तुलिखितवर्त्मस्रुतासृग्वांबुजन्मभिः
धात्र्यर्जुनकजंबूत्थपत्रक्काथेन सेचयेत्।

अर्थ-बालक के वर्त्म में से लेखनद्वारा वा जोक द्वारा रक्त निकालकर आमला, अर्जुनक और जामनके पत्तोंके क्वाथ का परिषेक करै।

वमनको श्रेष्ठत्व।

प्रायः क्षीरघृताशित्वाद् बालानां श्लेष्मजा-
गदाः ॥ २८ ॥
तस्माद्वमनमेवाग्रे सर्वव्याधिषु पूजितम्।

अर्थ-अधिक घी और दूध खाने के कारण बालकों के कफजरोग होजाया करते हैं, इसलिये सब रोगों में ही बालक को वमन कराना श्रेष्ठहै।

वमन की विधि।

सिंधूत्थकृष्णापामार्गं बीजाज्यस्त
न्यमाक्षिकम् ॥ २९ ॥
चूर्णो वचायाः सक्षौद्रो मदनंमधुकान्वितम्
क्षीरं क्षीरान्नभुक्तं च भजतःक्रमशः शिशोः
वमनं सर्वरोगेषु विशेषेण कुकूणके।

अर्थ-सेंधानमक, पीपल, औंगा के बीज घी, स्तनोंका दूध और शहत इनके द्वारा दूध पीने वाले बालक को वमन करावै। शहत और वच मिलाकर इसके द्वारा दूध और अन्न खानेवाले बालक को वमन करावै, तथा अन्न खानेवाले बालक को मैनफल और मुलहटी द्वारा वमन करावै। तथा कुकूणक रोगमें विशेष करके वमन देना हितकारी है।

वमनविरेचन।

सप्तलारससिद्धाज्यं योज्यंचोभयशोधनम्

अर्थ-सातलाके रसमें सिद्ध किया हुआ घी देकर वमन और विरेचन दोनों करावै।

अन्य प्रयोग।

द्विनिशारोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिंबपल्लवैः।
कुकूणके हिता वर्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोन्वितैः
क्षीरक्षौद्रघृतोपेते दग्धं वा लोहितं रजः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–दोनों हलदी, लोध, मुलहटी, हरड नीमके पत्ते, और ताम्रचूर्ण इन सब द्रव्यों को जलमें पीसकर बत्ती बनाकर कुकूणक रोगमें प्रयोग करना हितकारी है। अथवा लोहचूर्ण दग्ध करके उसको दूध शहत वा घी के साथ सेवन कराने से भी उपकार होता है।

अन्यवर्त्म।

एलारसोनकतकशोषणफणिज्झकैः ३३॥
वर्तिः कुकूणपोथक्योः सुरापिष्टैः सकट्फलैः

अर्थ–इलायची, रसौत, निर्मली, शंख, पीपल, तुलसी इन सब द्रव्यों को सुरा में पीसकर बत्ती बनावे। यह बत्ती कुकूणक और पोथकी रोगों में हितकारी होती है।

पक्ष्मरोध में चिकित्सा।

पक्ष्मरोधे प्रवृद्धेषु शुद्धदेहस्य रोमसु ३४
उत्सृज्यद्वौभ्रुवोऽधस्ताद्भागौभागं च पक्ष्मलः
यवमात्रंयवाकारंतिर्यक्छित्वाऽऽर्द्रवाससा
अपनेयमसृक् तस्मिन्नल्पीभवतिशोणितम्।
सीव्येत्कुटिलया सूच्या भ्रुवमात्रांतरैः पदैः
बद्ध्वा ललाटे पट्टं च तत्र सीवनसूत्रकम्।
सातिगाढंस्रवं सूच्या निक्षिपेत्थ योजयेत्
मधुसर्पिःकवालिकां न चास्मिन्बंधमाचरेत्।
न्यग्रोधादिकषायैश्च सक्षीरैः सेचयेद्बुधि।
पंचमे दिवसे सूत्रमपनीयावचूर्णयेत्।
नैरिकेण व्रणं युंज्यात्तीक्ष्णं नस्यांजनादि च

अर्थ–पक्ष्मरोधरोग में रोगों के अधिक बढजाने पर शुद्ध शरीरवाले मनुष्य की भृकुटियों के नीचे दो भाग पक्ष्मों के निकट एक भाग त्यागकर जौ के बराबर जौके आकार के सदृश तिरछा छेदन करके गीले कपडे से रुधिर को रोकदे, इस तरह जब रुधिर निकलना कम होजावे तब घाव के दोनों किनारों को मूंगके बराबर अंतर पद से टेढी सुई से टांके भरदे और मस्तक में पट्टी बांधकर सीने के डोरे को उस में न कडा, न ढीला बांध देवे। तत्पश्चात् घी और शहत की कवलिका का प्रयोग करै, परन्तु इसको बांधना न चाहिये। वेदना कम न हो तो न्यग्रोधादिगण के काढे में दूध मिलाकर वेदना की जगह परिषेक करे। पांचवें दिन डोरा खोलकर घाव में गेरू पीसकर लगादे। इसमें तीक्ष्ण नस्य और अंजन का प्रयोग करना भी उचित है।

अशांति में दाहादि।

दहेदशांतौ निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रयां वलीम्।
संदंशेनाधिकं पक्ष्म हृत्वा तस्याश्रयं दहेत्
सूच्यग्रेणाग्निवर्णेन दाहो बाह्यालजेः पुनः।
भिन्नस्यक्षारवह्निभ्यांसुच्छिन्नस्यार्बुदस्य च

अर्थ–उक्त उपायों का अवलंबन करने पर भी जो रोग की शांति न हो तो वर्त्मदोष के आश्रयवाली वलीको टेढी करके दग्ध करदेवै। तथा बढे हुए बालोंको चिमटी से नोचकर अग्निवत् तप्त सलाई की नोक से दग्ध करदेवै। बाह्य अलजी का भेदन करके उसको दग्ध करदेवै और अर्बुदको अच्छी तरह छेदन करके क्षार और अग्निद्वारा दग्ध करदेना चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने वर्त्मरोगप्रतिषेधोनाम नवमोऽध्यायः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतः संधिसितासितरोगविज्ञानमारभ्यते

अर्थ-अब हम यहां से नेत्रोंकी संधि, शुक्लविभाग और कृष्णविभाग में होनेवाले रोगों के विज्ञानाध्याय का आरंभ करते हैं।

संधिरोगों का वर्णन ।

"वायुःकुद्धःशिराःप्राप्यसलाभंजलवाहिनीः
अश्रु स्रावयते वर्त्म शुक्लसंधेः कनीनकात्
तेन नेत्र सरुग्रागशोफं स्यात्स जलास्रवः ।

अर्थ-कुपित हुआ वायु संपूर्ण जलवाहिनी शिराओं में पहुंचकर वर्त्म और शुक्लविभाग की संधि कनीनका से जलके सदृश आंसुओं का स्राव करता है । इस अश्रुस्राव से नेत्रों में दर्द, ललाई और सूजन पैदा हो जाती है । इसी को जलास्रवरोग कहते हैं।

कफस्रव का लक्षण ।

कफात्कफस्रवे श्वेतंपिच्छिलं बहलं स्रवेत्

अर्थ-कफसे जो कफस्रवरोग होता है, उसमें सफेद रंगका पिच्छिल और गाढास्राव होता है ।

उपनाह के लक्षण ।

कफेन शोफस्तीक्ष्णाग्रः क्षारबुद्बुदकोपमः ।
पृथुमूलचलः स्निग्धः सवर्णमृदुपिच्छिलः ।
महानपाकः कंडूमानुपनाहः स नीरुजः ।

अर्थ-कफके कारण से पैनीनोकवाली क्षार बुदुद के सदृश एक प्रकार की सूजन होती है, इसकी जड मोटी होती है तथा वेग से उठती है, यह स्निग्ध, सवर्ण, मृदु और पिच्छिल होती है, इसमें बड़ा पाक होता है, खुजली चलती है पर दर्द नहीं होता है, इसे उपनाह कहते हैं ।

रक्तस्रव के लक्षण ।

रक्ताद्रक्तस्रवे ताम्रं बहूष्णं चाश्रु संस्रवेत्

अर्थ-रक्तसे रक्तस्रवरोग होता है, इसमें तांबेके से रंग के, अधिकता से गरम आंसू निकलते हैं ।

पर्व्वणी के लक्षण ।

वर्त्मसंध्याश्रया शुक्ले पिटिका दाहशूलिनी ।
ताम्रामुद्रोपमा भिन्ना रक्तं स्रवति पर्व्वणी

अर्थ-वर्त्म की संधिमें नेत्रके शुक्लमंडल में एक फुंसी पैदा होती है जिसमें दाह और शूल होता है । यह ताम्रवर्ण की मूंग के समान होती है, इसे पर्व्वणी कहते हैं, जब यह फूट जाती है, तब इसमें से रक्तस्राव होता है ।

पूयास्राव के लक्षण ।

पूयास्रावे मलाःसास्रावर्त्मसंधेः कनीनका
स्रावयंति मुहुःपूयं सास्रत्वङ्मांसपाकतः

अर्थ-पूयस्रावाख्य रोगमें रक्तसहित त्वचा और मांसके पकजाने के कारण रक्तसहित दोषत्रय वर्त्मसंधिके कनीनक से बार बार पूयस्राव होता है ।

पूयालस के लक्षण ।

पूयालसो व्रणः सूक्ष्मः शोफसंरंभपूर्वकः ।
कनीनसंधावाश्मार्यी पूयास्रावी सवेदनः

अर्थ-प्रथम सूजन और वेदना होती है पीछे कनीनक की संधि में एक छोटा सा व्रण होता है जिसमें फूलापन, वेदना और पूयस्राव होता है, इसे पूयालस कहते हैं ।

अलजी के लक्षण ।

कनीनस्यांतरलजी शोफो रुक्तोदवाहवान् ।

अर्थ-कनीन के बीच में वेदना, तोद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और दाहयुक्त जो सूजन होती है उसको अलजी कहते हैं।

कृमिग्रंथि के लक्षण।

अपांगे वा कनीने वा कंडूपापक्ष्मपोटवान्॥
पूयस्रावी कृमिग्रंथिर्ग्रंथिकृमियुतोऽतिमान्

अर्थ-अपांग (कटाक्षस्थान) वा कनीन में खुजली, दाह और पक्ष्मपोटयुक्त पूयस्रावी, कृमियुक्त और वेदना सहित जो गांठ उत्पन्न होती है, उसे कृमिग्रंथि कहते हैं।

शस्त्रसाध्यासाध्य रोग।

उपनाहकृमिग्रंथिपूयालसकपर्वणीः॥ ९॥
शस्त्रेण साधयेत्पंचसालजी नास्रवांस्त्यजेत्

अर्थ-उपनाह, कृमिग्रंथि, पूयालस और पर्वणी इन चार रोगोंमें अस्त्रचिकित्सा करनी चाहिये। तथा जलास्रव, रक्तास्रव, पूयास्रव और अलजी इन पांचों को त्याग देना चाहिये।

शुक्लिका रोग।

पित्तं कुर्यात्सिते बिंदूनसितश्यावपीतकान्
मलाक्तादर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरुक्।
रोगोऽयं शुक्लिकासंज्ञः सशकृद्भेदतृड्ज्वरः॥

अर्थ-नेत्रसंबिगत नौ रोगों का वर्णन करके अब शुक्लमंडलगत रोगों का वर्णन करते हैं। नेत्रके सफेद भागमें पित्त काले, श्याव और पीले पीले बहुत से बिन्दु पैदा कर देता है अथवा नेत्रके संपूर्ण श्वेत भाग को ऐसा कर देता है जैसे मैल से लिप्त हुआ दर्पण, इन दोनों प्रकार के रोगों को शुक्लिका कहते हैं, इसमें दाह, वेदना, मल भेद, तृषा और ज्वर उपस्थित हो जाते हैं।

शुक्लार्मक के लक्षण।

कफाच्छुक्ले समं श्वेतं चिरवृद्ध्यधिमांसकम्।
शुक्लार्म

अर्थ-कफसे नेत्रके शुक्लभाग में जो सफेद रंगके आकार का मांस उत्पन्न होता है, उसे शुक्लार्म कहते हैं, यह दीर्घकाल में बढता है।

बलासग्रथित के लक्षण।

शोफस्त्वरुजः सवर्णो बहलो मृदुः॥
गुरुः स्निग्धांऽबुबिंद्वाभो बलासग्रथितः स्मृतम्।

अर्थ-जो सूजन वेदनारहित त्वचाके वर्ण के सदृश, गाढी, कोमल, भारी, स्निग्ध और जल बिन्दुके सदृश होती है उसे बलासग्रथित कहते हैं।

पिष्टक के लक्षण।

बिंदुभिः पिष्टधवलैरुत्सन्नैः पिष्टकं वदेत्॥

अर्थ-नेत्रके सफेद भागमें पिट्ठी के सदृश सफेद और ऊंचे जो बिन्दु उत्पन्न होते हैं उनको पिष्टकरोग कहते हैं।

शिरोत्पात के लक्षण।

रक्तराजीतते शुक्लमुपैति यत्सवेदनम्।
अश्रोफाश्रुपतद्दं च शिरोत्पातः सशोणितम्

अर्थ-रक्तके दूषित होनेके कारण नेत्र की सफेदी लाल रंगकी रेखाओं से व्याप्त हो तथा उसमें दाह और वेदना होती हो उसे शिरोत्पात रोग कहते हैं। इसमें सूजन, अश्रुपात और लिहसाहट नहीं होती है।

सिराहर्ष का लक्षण।

उपेक्षितः सिरोत्पातः राजीस्ता एव वर्धयन्
कुर्यात्साश्रं सिराहर्षं तेनाक्ष्युद्वीक्षणाक्षमम्

अर्थ-शिरोत्पात की चिकित्सा में उपे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षा करने से वे लाल रेखा वृद्धिको प्राप्त हो कर सरक्त सिराहर्ष नामक रोगको पैदा कर देती है। इस रोगमें वस्तुओं के देखने की शक्ति जाती रहती है।

सिराजाल का लक्षण।

सिराजाले सिराजालं वृहद्रक्तं घनोन्नतम्।

अर्थ–सिराजालनामक रोगमें संपूर्ण शिरा वृहत, रक्तवर्ण, घन और उन्नत होजातीहै।

शोणितार्म के लक्षण।

शोणितार्मसमंश्लक्ष्णंपद्माभमधिमांसकम्॥

अर्थ–नेत्रकी सफेदी में जो समान आकार वाला, चिकना और कमल के सदृश मांस उत्पन्न होता है उसे शोणितार्म कहतेहैं।

अर्जुनके लक्षण।

नीरुक्सुरक्तगोऽर्जुनंबिंदुःशशलोहितलोहितः

अर्थ–नेत्रकी सफेदी में जो खरगोश के रक्तके समान लाल, वेदनारहित और चिकने बिन्दु होते हैं, उन्हें अर्जुन कहते हैं।

प्रस्तार्यर्मके लक्षण।

मृद्वाशुवृद्ध्यरुङ्मांसं प्रस्तारिश्यावलोहितम्
प्रस्तार्यर्म मलैः सास्रैः

अर्थ–नेत्रकी सफेदी में जो कोमल, शीघ्र बढने वाला, फैला हुआ श्याव लोहित वर्ण मांस पैदा होजाता है उसे प्रस्तार्यर्म कहते हैं यह त्रिदोष और रक्तसे होता है।

स्नावार्म के लक्षण।

स्नावार्मस्नावसन्निभम्।

अर्थ–जो मांस स्नावकी तरह हो उसे स्नावार्म कहते हैं।

अधिमांसार्म के लक्षण।

शुक्लासृक्पिंडवच्छ्यावं यन्मासं वहलं पृथु
अधिमांसार्म तद्

अर्थ–नेत्रकी सफेदी में सफेद, लाल, काला, मोटा, हलका और पिंडके सदृश जो मांस उत्पन्न होजाता है, उसे अधिमांसार्म कहते हैं।

सिरासंज्ञकपिटिका।

दाहघर्षवत्यः सिरावृताः।
कृष्णासन्नाःसिरासंज्ञाःपिटिकाःसर्षपोपमाः

अर्थ–नेत्रके काले भागमें दाह और वेदना से युक्त, सिराओं से व्याप्त, सरसों के आकार के समान जो फुंसियां उत्पन्न होती है, उन्हें सिरासंज्ञक पिटिका कहतेहैं।

उक्तेरह रोगोंकी साधन विधि।

शुक्लिहर्षशिरोत्पातपिष्टकग्रथितार्जुनम्।
साध्यैदोषधैःषट्कं शेषं शस्त्रेण सप्तकम्॥
नवोत्थं तदपि द्रव्यैः

अर्थ शुक्लिका हर्ष, शिरोत्पात, पिष्टक ग्रथित और अर्जुन, इन छः प्रकार के रोगों की चिकित्सा जो नेत्रके सफेद भागमें होते हैं औषध द्वारा करनी चाहिये। बचे हुए सात रोगों की चिकित्सा अस्त्रद्वारा करनी चाहिये। ये सात रोग यदि नये उठे हुए हों इनकी चिकित्सा भी औषध द्वारा हो सकती है।

वर्जितरोग।

अर्मोक्तं यच्च पंचधा।
तच्छेद्यमसितप्रायं मांसस्रावसिरावृतम्॥
चर्मोदालवदुच्छ्रायि दृष्टिप्राप्तं च वर्जयेत्।

अर्थ–पांच प्रकारके अर्म अर्थात् शुक्लार्म, शोणितार्म, प्रस्तार्यर्म, स्नावार्म और अधिमांसार्म का छेदन करना चाहिये। और जो रोग नेत्र के काले भागमें पहुंच जाते हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा मांस, स्नायु और सिरा से व्याप्तचर्मी दाल की तरह ऊंचा तथा जो दृष्टिमंडल में पहुंच जाता है, ये सब रोग त्याज्य हैं।

क्षतशुक्लक का लक्षण।

पित्तं कृष्णेऽथवा दृष्टौ शुक्लं तोदानुरागवत्
छित्वा त्वचं जनयति तेन स्यात्कृष्णमंडलम्
पक्वजंबूनिभं किंचिन्निम्नं च क्षतशुक्लकम्॥
तत्कृच्छ्रसाध्यं याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात्
तत्र तोदादिबाहुल्यं सूचीविद्धाभकृष्णता॥
तृतीयपटलच्छेदादसाध्यं निचितं व्रणैः।

अर्थ-अब हम यहांसे कृष्णमंडलगत अर्थात आंखके काले भागमें होने वाले रोग का वर्णन करते हैं।

पित्त पहिले पर्देका भेदन करके कृष्णमंडल में वा दृष्टिमंडल में सुई छिदने की सी वेदना, आंसू और ललाई लिये हुए शुक्ल को पैदा करता है। इस शुक्लके कारण संपूर्ण का लालमंडल जामन के फलके रंगके सदृश हो जाता है और इसके बीचका भाग कुछ नीचा हो जाता है यह रोग क्षतशुक्लक कहलाता है। क्षतशुक्लक कष्टसाध्य होता है। किन्तु दूसरे परदे का भेदन करने पर तोदादि यंत्रणा अधिकता से होती है और कालामंडल सुई छिदने के समान होजाता है। यह याप्य होता है। जो क्षतशुक्ल तीसरे पर्दे को भेदकर उत्पन्न होता है वह व्रणों से उपचित और असाध्य होता है।

शुद्धशुक्ल के लक्षण।

शंखशुक्लं कफात्साध्यमनातिरुक् शुद्धशुक्लकम्

अर्थ-शंखके समान सफेद वा श्यावर्ण और अल्पवेदनायुक्त जो शुक्ल होता है, उसे शुद्ध शुक्ल कहते हैं, यह कफ से उत्पन्न होता है।

आजका के लक्षण।

आताम्रपिच्छलास्रस्रुदाताम्रपिटिकातिरुक्
अजाविदूसदृशोच्छ्रायकार्ष्ण्या-
वर्ज्यास्रजाजका॥ २५॥

अर्थ-जो शुक्ल कुछ तांबेके से रंग का, पिच्छिल, रक्तस्रावी, कुछ तांबेके से रंग की फुंसियों से युक्त, अत्यन्त वेदनासहित, बकरी की मेंगनी के सदृश ऊंचा और कृष्णवर्ण होता है, उसे आजका कहते हैं, यह रक्त से उत्पन्न होता है और असाध्य भी है।

सिराशुक्ल के लक्षण॥

सिराशुक्लं मलैः सान्नैस्तज्जुष्टं कृष्णमंडलम्
सतोददाहताम्राभिः सिराभिरवतन्यते
अनिमित्तोष्णशीताच्छघनास्रस्रुक् च
तत्त्यजेत्।

अर्थ-रक्त तथा वातादि तीनों दोषों से सिराशुक्ल उत्पन्न होता है और नेत्रके काले भागमें तोद और दाह से युक्त, ताम्रवर्ण और सिराओं से व्याप्त होता है इसमें से कभी गरम, कभी ठंडा, कभी पतला, कभी गाढा रक्त निकला करता है यह सिराशुक्ल असाध्य होता है।

तीव्रवेदनायुक्त शुक्ल।

दोषैः सान्नैः सकृत्कृष्णं नीयते शुक्लरूपताम्
धवलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाकृति
अतितीव्ररुजारागदाहश्वयथुपीडितम्॥
पाकात्ययेन तच्छुक्लं वर्जयेत्तीव्रवेदनम्।

अर्थ- रक्त तथा वातादि तीनों दोषों के कारण संपूर्ण कृष्णमंडल एक साथही सफेद बादलों से आच्छादित आकाश की तरह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सफेद पड जाता है यह चैला के आधे बीजकी आकृति के तुल्य होता है । इसमें तीव्रवेदना, ललाई, दाह और सूजन होते हैं, । पाक का अत्यय होने पर यह तीव्रवेदनावाला शुक्र असाध्य होजाता है ।

वर्जयेशुक्र ।

यस्य वाऽऽलिंगनाशोंऽतः श्यावं यद्वा सलोहितम् ।
अत्युत्सेधावगाढं वा सास्रनाडीव्रणावृतम्
पुराणं विषमंमध्ये विच्छिन्नं यच्च शुक्रकम्

अर्थ--जिस शुक्र के बीचमें भीतर की दृष्टि का नाश होजाय और श्यामवर्ण हो, तथा बीचमें कुछ लाल अथवा बहुत ऊंचा और अवगाढ हो, जो सरक्त नाडियों से व्याप्त हो, जो बहुत पुराना पड़ गया हो, जिसकी आकृति विषम हो, जिसके बीचका भाग छिन्नभिन्न हो, ऐसे सब शुक्र दुश्चिकित्स्य होते हैं ।

कृष्णमंडलगतरोगों की संख्या ।

पंचेत्युक्ता गदाःकृष्णे साध्यासाध्यविभागतः

अर्थ -साध्यासाध्य विभाग के अनुसार कालेमंडल में होनेवाले रोग पांच प्रकार के होते हैं ।

आंखकी खुजली पर जो सफेद दाग पड जाता है उसे शुक्र वा फुली कहते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने संधिसितासितरोग विज्ञानीयोनाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

—:※०※:—

अथातः संधिसितासितरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ -अब हम यहां से संधिसितासित रोग प्रतिषेध नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

उपनाह की चिकित्सा ।

उपनाहं भिषक् स्विन्नं स्निग्धं व्रीहिमुखेन च
लेखयेन्मंडलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत्
पिप्पलीक्षौद्रसिंधूत्थैर्वध्नीयात्पूर्ववत्ततः ।
पटोलपत्रामलकक्काथनाश्चोतयेच्च तम् ॥

अर्थ--उपनाह नामक संधिरोग में गरम जलमें वस्त्रके टुकडे को भिगो भिगोकर आंखको सेककर मंडलाग्र शस्त्र द्वारा उपनाह को लेखन करके और व्रीहिमुख नामक अस्त्र से भेदन करके पीपल, शहत और सेंधानमक इनके द्वारा प्रतिसारण करे । तत्पश्चात् पहिले की तरह गरमजल से धोना घी का परिषेक, घी और मधु द्वारा कानों के ऊंचे और नीचे भागोंका अभ्यंजन करके जौ के सत्तूकी पिंडी द्वारा बांध देवे, तथा पर्वलके पत्ते और आमले के काथ का आश्च्योतन करे अर्थात् इस काथको आंख में टपकावे ॥

संधिरोग लेखादि ।

पर्वणी बडिशेनात्ता बाह्यसंधित्रिभागतः ।
वृद्धिपत्रेण वर्ध्यार्धे स्यादश्रुगतिरन्यथा
चिकित्सा चार्मवत्क्षौद्रसैंधवप्रतिसारिता ।

अर्थ--बाहरवाली संधिके त्रिभाग में पर्वणी को बडिश नामक शस्त्रसे पकडकर

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृद्धिपत्र से उसके अर्द्धभाग में छेदन कर देना चाहिये, इससे अधिक छेदन में आंसू अधिकता से बहने लगते हैं। इसकी चिकित्सा अर्मके सदृश होती है। इसमें शहत और सेंधानमक मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये।

पूयालस की चिकित्सा।

पूयालसे सिरां विध्येत्ततस्तमुपनाहयेत्। कुर्वीत चाक्षिपाकोक्तं सर्वं कर्म यथाविधि

अर्थ-पूयालस में सिरा को वेधकर उस पर लेप करे। इसमें अक्षिपाक के सब उपाय करने उचित है।

अन्य प्रयोग।

सैंधवार्द्रककासीसलोहताम्रैः सचूर्णितैः। चूर्णाञ्जनं प्रयुंजीत सक्षौद्रैर्वा रसक्रियाम्।

अर्थ-सेंधानमक, अदरख, हीराकसीस, लोह और ताम्र इनके चूर्णका अंजन लगावे और इसी चूर्णमें शहत मिलाकर रसक्रिया करनी चाहिये॥

कृमिग्रंथि का उपाय।

कृमिग्रंथिकरीषेणस्विन्नं भित्त्वाविलिख्य च। त्रिफलाक्षौद्रकासीससैंधवैः प्रतिसारयेत्।

अर्थ-कृमिग्रंथि को उपलों से स्वेदित करके व्रीहिमुखादि शस्त्रों से स्वेदित और विलेखित करके उसमें त्रिफला, शहत, हीरा कसीस और सेंधेनमक द्वारा प्रतिसारण करे।

शुक्लाख्यरोग का उपाय।

पित्ताभिष्यंदवच्छुक्लिं

अर्थ-शुक्लिरोगमें पित्ताभिष्यंद के सदृश चिकित्सा करना चाहिये।

कफग्रंथित और पिष्टक।

श्लेष्मग्रंथ्यर्बुदे पिष्टके॥ ७॥ कफाभिष्यंदवन्मुक्त्वा सिराव्यधमुपाचरेत्। बीजपूररसाक्तं च व्योषकट्फलमंजनम्

अर्थ-कफग्रंथित और पिष्टक रोगमें सिराव्यध को छोडकर अन्य सब उपाय कफाभिष्यन्द की तरह करने चाहिये। त्रिकुटा और कायफल के चूर्णको बिजौरे के रसमें घोटकर अंजन लगाना हितहै।

अन्य प्रयोग।

जातीमुकुलसैंधूत्थदेवदारुमहौषधैः। पिष्टैः प्रसन्नया वर्तिः शोफकंडूघ्नमंजनम्

अर्थ-चमेली की कली, सेंधानमक, देवदारु और सौंठ इन सबको प्रसन्ना नामक सुराके साथ पीसकर वत्ती बनालेवे, इस बत्ती को आंजनेसे सूजन और खुजली जाती रहती है।

शिरोत्पात का उपाय।

रक्तस्यंदवदुत्पातहर्षजालार्जुनेक्रिया।

अर्थ-शिरोत्पात, शिराहर्ष, सिराजाल और अर्जुन इन रोगों में रक्ताभिष्यन्द के तुल्य चिकित्सा करनी चाहिये।

उक्तरोगों में विशेषता।

सिरोत्पाते विशेषेण घृतमाक्षिकमंजनम्॥ शिराहर्षे तु मधुना श्लक्ष्णपूतं रसांजनम्। अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्चोतनं हितम स्फटिकःकुंकुमं शंखो मधुको मधुनांजनम्। मधुना चांजनं शंखः फेनो वा सितया सह

अर्थ-सिरोत्पात में विशेष करके घी और शहत आंजना चाहिये। सिराहर्ष में शहत के साथ महीन पिसी हुई रसौत लगावे। अर्जुनरोग में शर्करा, दही का तोड और शहत इनको मिलाकर आंख में टपकावे। अथवा स्फटिक, केसर, शंख, मुलहटी और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसौत इनको शहत के साथ पीसकर लगावें अथवा शंख, वा समुद्रफेन को शर्करा के साथ मिलाकर आंखों में लगावै ।

अर्मकी चिकित्सा ।

अर्मोक्तं पंचधा तत्तु तनु धूमाविलं च यत् ।
रक्तंदधिनिभं यच्च शुक्लवर्त्मन्यभेषजम् ॥

अर्थ–अर्म पांच प्रकार के कहे गये हैं। इनमें से जो पतला, धूंऐ की तरह गदला, लाल और दही के सदृश होता है उसकी चिकित्सा फुली की चिकित्सा के समान करनी चाहिये ।

अर्ममेंशस्त्र चिकित्सा ।

उत्तानस्येतरत् स्विन्नं सर्सिधूत्थेन चांजितं
रेसन बीजपूरस्यनिमील्याक्षिविमर्दयेत् १४
इत्थं संरोषिताक्षस्य प्रचलेऽर्माधिमांसके
धृतस्य निश्चलंमूर्ध्नि वर्त्मनोश्च विशेषतः
अपांगमीक्षमाणस्यवृद्धेर्मणिकनीनकात् ।
बली स्याद्यत्र तत्रार्म बडिशेनावलंबितम् ।
नात्यायतं मुचुंडया वा सूच्यासूत्रेण वा ततः
स्रमंतान्मंडलाग्रेण मोक्षयेदथ माक्षिकम् १७
कनीनकमुपानीय चतुर्भागावशेषितम् ।
छिंद्यात्कनीनके रक्षेद्वाहिनीश्चाश्रुवाहिनीः ।
कनीनकव्यधादश्रुनाडी चास्मि प्रवर्तते ।
वृद्धेर्मणितथाऽपांगात्पश्यतोऽस्यकनीनकात्

अर्थ–रोगी को चित्त लिटाकर उसकी बांई वा दाहिनी किसी एक आंखको स्वेदित करके तथा सेंधानमक और बिजौरे का रस आंजकर मींड डाले । रोगी को उचित है कि मींडने के समय आंखों को बंद करले। ऐसा करने से नेत्रके क्षुभित होने के कारण अर्मका मांस चलायमान होगा, उस समय मस्तक को और विशेष करके वर्त्म को स्थिर भाग में रखना चाहिये तथा रोगी कटाक्ष की ओर दृष्टि करलेवै । ऐसा होने से कनीनक से अर्म बढ जायगा । जिस जगह मांस में सलवट पडे उसी जगह बडिशयंत्र द्वारा पकडकर मुचुंडी, शूची, वा सूत्रद्वारा मोचन करै । तत्पश्चात् उस छूटे हुए अर्मको चतुर्भागावशिष्ट करके मंडलाग्र शस्त्रद्वारा ऐसी रीति से छेदन करे जिससे कनीनक में आंसू बहानेवाली धमनी में किसी प्रकार की चोट न पहुंचे, क्योंकि कनीनक के वेधसे अश्रुनाडी नेत्रमें प्रवृत्त होजाती है । इसलिये अपांग देशमें दृष्टि डालने के समय जब अर्म कनीनक से बढे तबही छेदन करना चाहिये ।

छेदन की रीति ।

सम्यक् छिन्नं मधुव्योषसैंधवप्रतिसारितम्
उष्णेन सर्पिषा सिक्तमभ्यक्तं मधुसर्पिषा
बध्नीयात्सेचयेन्मुक्त्वा तृतीयादिदिनेषु च ।
करंजबीजसिद्धेन क्षीरेण कथितैस्तथा ॥
सक्षौद्रैर्द्विनिशारोध्रपटोलीयष्टिकिंशुकैः ।
कुरंटमुकुलोपेतैर्मुच्चेदेवाह्नि सप्तमे ॥ २२ ॥

अर्थ–अर्मके अच्छी तरह छिन्न होनेपर तथा शहत, त्रिकुटा और सेंधेनमक से प्रतिसारित होने पर गरम घी का परिषेक करके तथा घी चुपडके बांध देना चाहिये। तीसरे दिन पट्टी खोलकर कंजे के बीज डालकर औटाये हुए दूध से तथा हलदी, दारुहलदी, लोध, पर्वल, मुलहटी, केसू और कुरंटाकी कली के काढे में शहत मिलाकर परिषेक करे । फिर सातवें दिन पट्टी को खोल देवै ।

छेदनानंतर बंधनादि ।

सम्यक् छिन्ने भवेत्स्वास्थ्य-
हीनातिच्छेदजान्गदान् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेकांजनप्रभृतिभिर्ज्ञेयेलेखनबृंहणैः ॥ २३ ॥

अर्थ–अर्मके सम्यक् छिन्न होनेपर रोगी को सुस्थता होती है, न्यून वा अधिक छेदन से जो रोग उत्पन्न होते हैं उनमें यथोपयुक्त चिकित्सा अर्थात् परिषेक और अभ्यंजनादि तथा लेखन और बृंहणादि क्रिया करना चाहिये।

तिमिरादि पर अंजन।

सितामनःशिलालेयलवणोत्तमनागरम्।
अर्धकर्षोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुघृतम् ॥
अंजनं श्लेष्मतिमिरपिल्लशुक्लार्मशोषजित्।

अर्थ–मिश्री, मनसिल, एलुआ, सेंधानमक, और सोंठ प्रत्येक आधाकर्ष, रसौत आधापल इनको पीसकर शहत में मिलाकर आंखों में आंजे, इससे श्लेष्मार्म, तिमिर, पिल्ल, शुक्लार्म और शोष नष्ट हो जाते हैं।

तिमिरनाशक अंजन।

त्रिफलैकतमद्रव्यत्वचं पानीयकल्किताम् ॥
शरावपिहितां दग्ध्वा कपाले चूर्णयेत्ततः।
पृथक्शोषौषधरसैः पृथगेव च भाविता ॥
सा मषी शोषिता पेष्या भूयो द्विलवणान्विता
त्रीण्येतान्यंजनान्याहु लेखनानि परे निमिः ॥

अर्थ–त्रिफला में से किसी एक द्रव्यकी छाल को जलमें पीसकर कल्क करले, फिर इसको ठीकरे में रखकर ऊपरसे एक ठीकरा ढकदे और नीचे अग्नि लगाकर भस्म करले। फिर इसको पीसकर त्रिफला के बचे हुए दो द्रव्यों की (हरड बहेडा, वा हरड आमला, वा आमला बहेडा) इनके क्वाथ की अलग अलग भावना देवे। जब यह सूख जाय तब इसे फिर पीसले। फिर इसमें सेंधानमक और बिडनमक मिलाकर फिर पीसकर अंजनके काममें लावे, ये तीन अंजन निमि वैद्यके बनाये हुए हैं और तिमिर के नाश करने में परमोत्तम हैं। तीन अंजन, यथा- (१) हरड के कल्क की भस्ममें बहेडे और आमले के क्वाथ की भावना, (२) बहेडे के कल्क में हरड और आमले के काढे की भावना और (३) आमले के कल्क में हरड और बहेडे के काढेकी भावना से तयार किये जाते हैं।

सिराजाल की चिकित्सा।

सिराजाले सिरायास्तु कठिनालेखनौषधैः।
न सिद्ध्यत्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम्

अर्थ–सिराजाल में जो सिरा कठोर होती है और लेखन औषधियों द्वारा जिनका अच्छा होना कठिन है उनकी और पिटकाओं की चिकित्सा अर्मके सदृश करनी चाहिये

शुक्रकी चिकित्सा।

दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्धरूक्षं वराघृतम्।
तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्रावो रेकसेकादि चेष्यते ॥

अर्थ–शुक्ररोग में दोषके अनुसार कभी रूक्ष और कभी स्निग्ध त्रिफला हितकारी होती है तथा तिक्तक घृत, मस्तकसे रक्त निकलना शिरोविरेचन और परिषेकादि हितकरहैं

क्षतशुक्रमें पक्कघृत पानादि।

त्रिखिर्वृद्धारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत्।
सिरया तु हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात्
सिद्धेनोत्पलकाकोलीद्राक्षायष्टिविदारिभिः।
ससितेनाजपयसा सेचनं सलिलेन वा ॥
रागश्चवेदनाशांतौ परं लेखनमंजनम्।

अर्थ–क्षत शुक्ररोगमें निसोथ के काढे में घृतको तीन बार पकाकर पीना चाहिये, पीछे फस्द खोलकर वा जोक लगाकर नेत्रों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से रक्त निकालना चाहिये तथा नीलोत्पल, काकोली, दाख, मुलहटी और विदारीकंद इनके साथ बकरी का दूध या जल औटाकर चीनी मिलाकर परिषेक करे। लालई, आंसू और दर्द की शांति होनेपर लेखनसंज्ञक अंजन का प्रयोग करना चाहिये।

क्षत शुक्रनाशक वर्त्ती।

वर्तयो जातिमुकुललाक्षागैरिकचंदनैः॥
प्रसादयंति पित्तास्रं शमयंति च क्षतशुक्रकम्।

अर्थ–चमेली की कली, लाख, गेरू और चंदन इनको पीसकर वर्त्ती बना लेवे इस वर्त्ती का प्रयोग करने से पित्तरक्त और क्षतशुक्र नष्ट होजाता है।

दांतों की वर्त्ती।

दंतैर्गवाश्वाजखरोद्भवैः॥ ३३॥
सशंखमौक्तिकांभोधिफेनैर्मारिचपादिकैः।
क्षतशुक्रमपि व्याप्ति दंतवर्तिर्निवर्तयेत्॥

अर्थ–हाथी, शूकर, ऊंट, गौ, घोडा, बकरी और गधा इनके दांत, तथा शंख, मोती, समुद्रफेन, चौथाई काली मिरच, इनकी बनाई हुई दंतवर्त्ति व्यापी क्षतशुक्र को भी निवारण कर देती है।

सर्वशुक्रनाशक वर्त्ति।

तमालपत्रं गोदंतशंखफेनोऽस्थि गार्दभम्।
ताम्रं च वर्तिर्मूत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी ३५

अर्थ–तमालपत्र, गोदंत, शंख, समुद्रफेन, गधे की हड्डी, और तांबा इन सब द्रव्यों को गोमूत्र में पीसकर गोली बनाकर नेत्रों में लगावे, इस से सब प्रकार के शुक्र जाते रहते हैं।

अन्य अंजन।

रत्ननिर्दलनाशृंगाणि धातवस्त्र्यूषणं त्रुटिः।
करंजबीजं लशुनो व्रणसादि च भेषजम्।
सवणाव्रणगंभीरत्वक्स्थशुक्रघ्नमंजनम्।

अर्थ–मोती आदि सब रत्न, गजादि पशुओं के दांत, बकरी आदि के सींग, गेरू आदि धातु, त्रिकुटा, छोटी इलायची, कंजाके बीज, लहसन, तथा स्वर्णक्षीरी आदि क्षतनिवारक औषध इनका अंजन व्रणसहित, व्रणरहित, गहरा त्वचावाला शुक्र इन सबका नाश कर देता है।

निम्नशुक्रोन्नमन।

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसांजनैः। ३७
सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम्।

अर्थ–स्नेहपान नस्य और रसांजनद्वारा भीतर को नवे हुए शुक्र को ऊंचा करना चाहिये। वेदना युक्त और वेदनारहित शुक्र को तर्पण और पुटपाकद्वारा ऊंचा करे।

शुद्धशुक्र में कर्तव्य।

शुद्धशुक्रे निशायष्टीसारिवाशोधरांभसा ३८
सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णांभोमय्यथवा

अर्थ–शुद्ध शुक्ररोग में हलदी, मुलहटी अनंतमूल, और सावरलोध इनके काढे से अथवा लोध का चूरा कर पोटली में बांध गरम जल में भिगोकर आंख में सेचन करे।

शुक्रनाशक गोली।

वृहतीमूलयष्ट्याह्वताम्रसैंधवनागरैः ३९
धात्रीफलांबुना पिष्ट्वैर्लेपितं ताम्रभाजनम्।
यवाग्यामलकीपर्णैर्बहुशो धूपयेत्ततः ४०
तच्च कुर्वीत गुटिकास्ता जलक्षौद्रपेषिताः।
महानीला इति ख्याताः शुद्धशुक्रहराः परम्

अर्थ–कटेरी की जड, मुलहटी, तांबा सेंधा नमक, सोंठ, इन सब द्रव्यों को आ-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मले के काढे में पीसकर इनसे एक तांबे के पात्र को लीपदे। फिर इस पात्र को जौ घी और आमले के पत्तों की बारबार धूनी दे, फिर उस पात्र की औषधको जल और शहत से मर्दन करके गोलियां बना लेवै। इन गोलियों का नाम महानीला है। ये शुद्ध शुक्र को दूर करने के लिये परमोत्तम औषध है।

अन्य प्रयोग।

स्थिरे शुक्रे घने चाऽस्य बहुशोऽपहरेदसृक्
शिरः कायविरेकांश्च पुटपाकांश्च भूरिशः।

अर्थ–रोगी का शुक्र कठोर हो तो बार बार रक्तमोक्षण तथा बार बार शिरोविरेचन, कायविरेचन और पुटपाक देना चाहिये।

शुक्रपर घर्षण।

कुर्यान्मरिचवैदेहीशिरीषफलसैंधवैः।
घर्षणं त्रिफलक्काथपीतेन लवणेन वा ४३॥

अर्थ–कालीमिरच, पीपल, सिरस का फल, सेंधानमक इनसे अथवा त्रिफला के काढे में मिले हुए सेंधेनमक से नेत्रकी फुली पर रिगडना चाहिये।

फुलीपर अंजन।

कुर्यादंजनयोगौ वा श्लोकार्धभणदितावुभौ।
शंखकोलास्थिकतकद्राक्षामधुकमाक्षिकैः।
सुरादंतार्णवमलैः शिरीषकुसुमान्वितैः।

अर्थ–शंख, बेरकीमुठली, निर्मली, राख, मुलहटी और सौनामाखी अथवा सुरा, गजादि पशुओं के दांत, समुद्रफेन और सिरसके फूल। आधे आधे श्लोक में कहे हुए इन दो अंजनों को तयार करके फुली पर रिगडे।

शुक्रहर्षण अंजन।

धात्रीफणिज्झकरसे क्षारौ लांगलिकोद्भवः।
उषितः शोषितश्चूर्णः शुक्रहर्षणमंजनम्।

अर्थ–आमले और मरुए के रसमें कलहारी के खारको भिगोकर दूसरे दिन धूप में सुखाकर पीसकर लगाने से फुली का हर्षण दूर होजाता है।

मुद्गांजन।

मुद्गा वा निस्तुषाः पिष्टाशंखक्षौद्रसमायुताः
सारोमधूकान्मधुमान्मज्जावाक्षात्समाक्षिका

अर्थ–छिलके दूर किये हुए मूंग, शंख और मधु मिलाकर पीसकर इनका अंजन अथवा महुआ के सार में शहत मिलाकर अथवा बहेडे के गूदे में शहत मिलाकर अंजन बनाकर लगाने से शुक्ररोग जाता रहता है।

दृष्टशुक्र नाशक वटिका।

गोखराश्वेभदृग्दशनाः शंखःफेनः समुद्रजः।
वर्तिरर्जुनतोयेन दृष्टशुक्रकनाशिनी।

अर्थ–गौ, गधा, घोडा, ऊंट इनके दांत और शंख तथा समुद्रफेन इनको पीसकर अर्जुन के रस में बत्ती बनाकर लगाना दृष्ट शुक्र को दूर करदेता है।

शुक्र का लेखन॥

उत्सन्नं वा सशल्यं वा शुक्लं बालादिभिर्लिखेत्

अर्थ–उठे हुए और शल्ययुक्त शुक्र को बाल और शाकपत्रादि से लेखन करे।

सिराशुक्र की चिकित्सा॥

शिराशुक्रे त्वदृष्टिघ्नेचिकित्सा व्रणशुक्रवत्

अर्थ–दृष्टिका नाश न करने वाले सिरा शुक्र की चिकित्सा व्रणशुक्र की तरह करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्यवर्ति ॥

पुंड्र्यष्टयाद्रकाकोलीसिंहीलोहनिशांजनम् ।
काकिकं छागदुग्धेन सघृतैर्धूपितं यवैः ।
धात्रीपित्तैश्च पर्यायाद्वर्तिर्नेत्रांजनं परम् ५७

अर्थ--पुंडरिया, मुलहटी, काकोली, कटेरी, लोह, हलदी और रसौत, इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पीसकर सघृत आमले के साथ पर्य्याय क्रम से बत्ती बनाना चाहिये ! यह बत्ती नेत्रांजन में अत्यन्त हितकारी है ।

शस्त्रप्रयोग ।

अशांतावर्मवच्छस्त्रमजकाख्ये च योजयेत् ।

अर्थ–उक्त उपायों से पीडा की शांति न होनेपर अजकाख्य रोगमें अर्मकी तरह शस्त्रका प्रयोग उचित है ।

असाध्यअजका में कर्तव्य ।

अजकायामसाध्यायां शुक्रेऽन्यत्र च तद्विधैः
वेदनोपशमं स्नेहपानासृक्स्रवणादिभिः ।
कुर्याद्बीभत्सतां जेतुं शुक्रस्योत्सेधसाधनम्

अर्थ–असाध्य अजका रोगमें तथा शुक्ररोगमें यथायोग्य स्नेहपान और रक्तमोक्षणादि द्वारा वेदना की शांति करनी चाहिये । बीभत्सता को दूर करने के लिये शुक्रका उत्सेधन करना उचित है ।

असाध्य शुक्रमें अंजन ।

नालिकेरास्थिभल्लाततालवंशकरीरजम् ।
भस्माद्भिःस्रावयेत्ताभिर्भावयेत्करभास्थिजम्
चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येषु तद्वैवर्ण्यघ्नमंजनम् ।
साध्येषु साधनायालमिदमेव च शीलितम्

अर्थ–नारियल का खप्पड, भिलावा, ताल, बांस और करील इनकी भस्म को जलमें स्रावित करे, उस क्षार जलमें हाथी की हड्डी के चूर्णकी भावना देकर अंजन लगावै । इससे असाध्य शुक्र रोगकी विवर्णता जाती रहती है तथा साध्य शुक्र में इस अंजनका अभ्यास करनेसे शुक्र जाता रहताहै।

अजकर्मे वेधनादि ।

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ।
समं प्रपीडयांगुष्ठेन वसार्द्रेणानुपूरयेत् ५५
व्रणं गोमांसचूर्णेन बद्धं बद्धं विमुच्य च ।
सप्तरात्राद् व्रणे रूढे कृष्णभागे समे स्थिरे ॥
स्नेहांजनं च कर्तव्यं नस्यं च क्षीरसर्पिषा ।
तथापि पुनराध्माने भेदच्छेद्यादिकां क्रियाम्
युक्त्याकुर्याद्यथानातिच्छेदेन स्यान्निमज्जनम्

अर्थ–अजका को सुई से चारों ओर से वेधकर जल निकाल डाले, फिर अंगूठे से प्रपीडन करके चर्बी चुपड कर घावमें गोमांसका चूर्ण भरदेना चाहिये और व्रणको बार बार खोलकर बांध देना उचितहै । सातदिन पीछे व्रणके भरजाने पर और काले भाग के समान और स्थिर होनेपर स्नेहांजन और क्षार घृतकी नस्यका प्रयोग करना चाहिये । यदि फिर फूलजाय तो ऐसी रीति से छेदन भेदन करना चाहिये जिससे अति छेदन द्वारा दृष्टिका निमज्जन न हो ।

पक्वघृत प्रयोग ।

नित्यं च शुक्रेषु सृतं यथास्वं
पाने च मर्शे च घृतं विदध्यात् ।
न हीयते लब्धबला तथांत-
स्तीक्ष्णांजनैर्हृक् सततं प्रयुक्तैः ॥ ५८ ॥

अर्थ–शुक्ररोग में यथायोग्य औषध के साथ घृतको पकाकर इस घृतको पान और नस्यद्वारा सदा प्रयुक्त करता रहै । घृतपानादि से दृष्टि बल प्राप्त करलेती है इससे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भीतर की ओर तीक्ष्ण अंजनों का प्रयोग करने से दृष्टिको कुछ हानि नहीं पहुंच सकती है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने संधिसितासितरोगप्रतिषेधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः।

अथाऽतो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहांसे दृष्टिरोगविज्ञानीय नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

तिमिररोग के लक्षण।

सिरानुसारिणि मले प्रथमं पटलं श्रिते।
अव्यक्तमीक्षते रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः॥

अर्थ–वातादि दोषों में से कोई सा एक दोष सिरानुगामी होकर पहिले अर्थात् बाहर वाले पर्देका आश्रय लेलेता है, तब रोगी को स्पष्ट दिखाई नहीं देता है और कभी बिना कारण ही स्पष्ट दिखाई देने लगता है। इसे तिमिररोग कहते हैं।

दूसरेपटल में प्राप्तहुए के लक्षण।

प्राप्ते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति।
भूतं तु बलादासन्नं दूरे सूक्ष्मं च नेक्षते॥
दूरांतिकस्थं रूपं च विपर्यासेन मन्यते।
दोषे मंडलसंस्थाने मंडलानीव पश्यति॥
द्वित्वैकं दृष्टिमध्यस्थे बहुधा बहुधा स्थिते।
दृष्टेरभ्यंतरगते ह्रस्ववृद्धविपर्ययम्॥ ४॥
बांतिकस्थमधः संस्थे दूरगं नोपरि स्थिते।
पार्श्वे पश्येन्न पार्श्वस्थेतिमिराख्योऽयमामयः

अर्थ–जब दोष दूसरे पटलमें पहुंच जाता है तब रोगी बिना हुए पदार्थों को भी देखता है। पासवाले पदार्थ को बडे यत्न से देख सकता है, दूरकी छोटी वस्तु दिखाई नहीं देती है। दूरवाली वस्तु विपरीत भाव में दिखाई देती है अर्थात् दूरवाली पास और पासवाली दूर दिखाई देती है। दोषके मंडल में स्थित होनेपर वस्तु गोलाकार दिखाई देती हैं, दृष्टिके मध्यमें स्थित होनेपर एक वस्तु दो और बहुत प्रकार से स्थित होनेपर एक ही वस्तु बहुत दिखाई देती है। जब दोष दृष्टिके भीतर चले जाते हैं तब छोटी वस्तु बडी और बडी छोटी दिखाई देने लगती है और दोषके अधोभाग में स्थित होनेपर पासवाली वस्तु, ऊपर के भागमें स्थित होनेपर दूरवाली वस्तु तथा पार्श्व में स्थित होनेपर पार्श्वगत अर्थात इधर उधर की वस्तु दिखाई नहीं देती हैं। इसी को तिमिररोग कहते हैं

तृतीयपटलगत के लक्षण।

प्राप्नोति काचतां दोषे तृतीयपटलाश्रिते।
तेनोर्ध्वमीक्षते नाधस्तनुचैलावृतोपमम्॥
यथावर्णं च रज्येत दृष्टिर्हीयेत च क्रमात्।

अर्थ–जब दोष तीसरे पटलमें पहुंच जाते हैं तब काचता प्राप्त होती है। इस काचता के कारण ऊपर को देख सकता है पर नीचेको नहीं देख सकता। इस रोगमें ऐसा हो जाता है जैसे कोई बहुत पतला कपडा ढका हुआ है। दृष्टिका रंग दोषके अनुसार हो जाता है, जैसे वात दोषसे श्यावादि। तथा दृष्टि धीरे धीरे कम होती चली जाती है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चतुर्थपटल के लक्षण ।

तथाप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थं पटलं गतः ॥ ७ ॥
लिंगनाशं मलः कुर्वन् छादयेषु दृष्टिमंडलम् ।

अर्थ--यदि ऊपर की अवस्था में चिकित्सा नहीं की जायगी तो दोष चौथे पटलमें पहुंच जाते हैं और वहां दृष्टिका नाश करते हुए दृष्टिमंडल को आच्छादित कर लेते हैं ।

वातज तिमिर के लक्षण ।

तत्र वातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति ॥
चलाविलारुणाभासं प्रसन्नं वेक्षते मुहुः ।
जालानि केशान्मशकान्-
रश्मींश्चोपेक्षितेऽत्र च ॥
काचीभूते दृगरुणा पश्यत्यास्यमनासिकम् ।
चंद्रदीपार्चनेकत्वं ऋजुमप्यृजु मन्यते ॥
वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रोधूमावृतामिव ।
स्पष्टारुणाभां विस्तीर्णां सूक्ष्मां वा-
हतदर्शनाम् ॥ ११ ॥
स लिंगनाशो

अर्थ--इनमें से वातिक तिमिर में रोगी वायु की चंचल प्रकृति के कारण दृश्य वस्तु को चंचल, धूंएके सदृश धुंधली, अरुणाभास, प्रसन्न और व्याविद्ध की तरह देखता है । कभी जल, कभी बाल, कभी मच्छर और कभी किरणों को देखता है, इसकी उपेक्षा करनेसे दृष्टि काचता को प्राप्त होकर लाल होजाती है और रोगी मुख को नासिकारहित, चन्द्रमा और दीपक में अनेकता और सीधी वस्तु को टेढा देखता है । काचता के बढ जानेपर दृष्टि धूल और धूंएकी तरह आवृत दिखाई देती है, अथवा दृष्टिमें स्पष्टता, ललाई, विस्तीर्णता, सूक्ष्मता वा नष्टदर्शनता होजाती है । यह वातज लिंगनाश अर्थात् दृष्टिनाश कहलाता है ।

वातसे दृक्सिरासंकोचन ।

वाते तु संकोचयति दृक्सिराः ।
दृग्मंडलं विशत्यंतर्गंभीरा दृगसौ स्मृता ॥

अर्थ--वायुके कारण दृष्टि और सिरा सब संकुचित होजाती है, और दृष्टि का मंडल भीतर को होजाता है, इसे गंभीर दृष्टि कहते हैं ।

पित्तज तिमिर के लक्षण ॥

पित्तजे तिमिरे विद्युत्खद्योतोद्योतदीपितम् ।
शिखितित्तिरिपिच्छाभं प्रायोनीलंचपश्यति ॥
काचे दृक् काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति
अर्केन्दुपरिवेषाग्निमरीचींद्रधनूंषि च ॥
भृंगनीला निरालोका दृक् स्निग्धा लिंगनाशतः
दृष्टिः पित्तेन ह्रस्वाख्या साह्रस्वा ह्रस्वदर्शिनी
भवेत्पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना ।

अर्थ--पित्तज तिमिर में बिजली और जुगनू आदि के प्रकाश से प्रकाशित मोर और तीतर की पुच्छकी कांतिके समान प्रायः नीलवर्ण दिखाई देने लगताहै । काचरोग में दृष्टि नील काचके सदृश होजातीहै और वैसाही रूप भी दिखाई देने लगताहै । रोगी को चंद्र और सूर्य का मंडल, अग्नि, किरण और इन्द्रधनुष दिखाई देने लगताहै । लिंग नाशसे दृष्टि भौंरे के समान नीली, निरालोक और स्निग्ध होजाती हैं । पित्तके कारण दृष्टि ह्रस्व संज्ञक होजाती है, दृष्टि भी छोटी होजाती है और वस्तु भी छोटी दिखाई देने लगती है, पित्तविदग्धा दृष्टि पीली होजाती है और इसमें रोगीको सब वस्तु पीली दिखाई देतीहैं ।

कफजतिमिर के लक्षण ॥

कफेन तिमिरे प्रायः स्निग्धं श्वेतं च पश्यति
शंखेंदुकुंदकुसुमैः कुमुदैरिवचाचितम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का ये तु निःप्रभेदृक्कैप्रदीपाद्यैरिवाचितम् ॥
सिताभा सा च दृष्टिः स्याल्लिंगनाशे तु लक्ष्यते
मूर्तः कफो दृष्टिगतः स्निग्धो दर्शननाशनः
पद्मिनीपुटसंस्थितः।
उष्णे संकोचमायाति छायायां परिसर्पति
शंखकुंदेंदुकुमुदस्फटिकोपमशुक्लिमा।

अर्थ—कफजतिमिर रोग में रोगी प्रायः स्निग्ध और श्वेतवर्ण वस्तुओं को देखता है और उसे शंख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प और कमोदनी के सदृश व्याप्त दिखाई देता है। काच रोग में प्रभारहित चन्द्र, सूर्य और दीपकसे व्याप्त सा दिखाई देता है। लिंगनाश में दृष्टि शुक्लाभ होजाती है। दृष्टिगत कफ कठोर, स्निग्ध और पद्मिनीपत्र के ऊपर जलविन्दु के सदृश चंचल होजाता है, यह कफविन्दु धूपमें संकुचित और छायामें फैलनेवाला हो जाता है। तथा शंख, कुंद, इंदु, कमोदनी, और स्फटिक के समान सफेदी होजाती है।

रक्तजपित्त के लक्षण।

रक्तेन तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति
काचेनरक्तकृष्णा वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति
लिंगनाशेऽपि तादृग् दृक् निःप्रभाहतदर्शना

अर्थ—रक्तजतिमिररोग में रोगी रक्तके सदृश वा अंधकार के समान देखता है, काचरोग मे दृष्टि लाल वा काली होजाती है। लिंगनाश में दृष्टि रक्त वा कृष्णवर्ण तथा प्रभाहीन और हतदर्शन होजाती है।

संसर्गजतिमिर के लक्षण।

संसर्गसन्निपातेषु विद्यात्संकीर्णलक्षणान्।
तिमिराद्यैरकस्माच्च तैःस्याद्व्यक्ताकुलेक्षणम्
तिमिरे शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते।

अर्थ—संसर्गज और सान्निपातज तिमिररोग में उपरोक्त सब लक्षण मिले हुए होते हैं। रोगी द्वंद्वज और सान्निपातिक तिमिर रोगमें विनाकारण ही अस्पष्ट रूप से पदार्थों को देखने लगता है। तिमिररोग में तथा काचरोग और लिंगनाश में दृष्टिमें विचित्र रोग पैदा होता है।

नकुलांध के लक्षण।

द्योत्यते नकुलस्येवयस्य दृङ् निचिता मलैः
नकुलांधः स तत्राहि चित्रं पश्यति नो निशि

अर्थ—जिस रोगीकी दृष्टि दोषसमूहों द्वारा व्याधित होकर नकुल की दृष्टि के समान देदीप्यमान होजाती है वह नकुलांध कहलाता है, नकुलान्धरोग में रोगी को दिनमें विचित्र पदार्थ दिखाई देते हैं, परन्तु रातमें दिखाई नहीं देता है।

दिवादर्शन में युक्ति।

अर्केऽस्तमस्तकन्तस्तगभस्तौ स्तंभमागताः
स्थगयंति दृशं दोषा दोषांधः स गदोपरः।
दिवाकरकरस्पृष्टा भ्रष्टा दृष्टिपथान्मलाः २५
विलीनलीना यच्छंति व्यक्तमभ्रान्हि दर्शनम्

अर्थ—जब सूर्य की रश्मि अस्ताचल के मस्तक पर पहुंच जाती हैं अर्थात् जब दिन अस्त होने लगता है तब संपूर्ण दोष स्तंभित होकर दृष्टि का आच्छादन करलेते हैं, इसको दोषांध वा रतौंध कहते हैं। और सूर्यकी किरणों के स्पर्श से भ्रष्ट हुए दोष दृष्टिपथ को छोडकर विलीन होजाते हैं, इसलिये ऐसे रोगी को दिनमें स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

उष्णविदग्धा दृष्टि।

उष्णतप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात्
त्रिदोषरक्तसंपृक्तो यात्यूष्मोर्ध्वं ततोऽक्षिणी
दाहोषे मलिनं शुक्लमह्न्याविलदर्शनम्
रात्रावांध्यं च जायेत विदग्धोष्णेन सा स्मृता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–गरमी के कारण तप्त होकर झटपट शीतल पानी में निमज्जन करने से त्रिदोष और रक्त से संपृक्त ऊष्मा ऊपर को उठकर नेत्रोंमें पहुंच जाती है । इससे नेत्रोंमें दाह और संताप पैदा होता है और सफेद भाग में मैलापन आजाता है । इस रोग में दिनमें धुंधला दिखाई देने लगता है और रात्रिमें देखने की शक्ति सर्वथा नष्ट होजाती है, इसीको उष्णाविदग्धा दृष्टि कहते हैं ।

विदग्धाम्ला दृष्टि ।

भृशमम्लाशनाद्दोषैः सास्रैर्या दृष्टिराचिता
सक्लेदकंडूकलुषा विदग्धाम्लेन सा स्मृता।

अर्थ–अत्यन्त खट्टी वस्तुओं के खाने से दृष्टि वातादि दोष और रक्तसे व्याप्त होजाती है । इसमें दृष्टि क्लेदयुक्त खुजलीयुक्त और कलुषित होजाती है, इसे विदग्धाम्ला दृष्टि कहते हैं ।

धूमररोग के लक्षण ।

शोकज्वरशिरोरोगसंतप्तस्यानिलादयः
धूमाविलां धूमदर्शीं दृशं कुर्युः स धूमरः ।

अर्थ–शोक, ज्वर और शिरोरोग द्वारा संतप्त मनुष्य की दृष्टि को वातादिदोष धूंऐ के समान धुंधली और धूमवत देखनेवाली कर देते हैं । इस रोगको धूमर कहते हैं ।

औपसर्गिकलिंगनाशक ।

सहसैवाल्पसत्त्वस्य पश्यतो रूपमद्भुतम्
भास्वरं भास्करादिं वा वाताद्या नयनाश्रिताः
कुर्वंति तेजः संशोष्य दृष्टिं मुषितदर्शनाम्
वैदूर्यवर्णां स्तिमितां प्रकृतिस्थामिवाव्यथाम्
औपसर्गिक इत्येष लिंगनाशो

अर्थ–जब अल्पसत्ववाला रोगी सहसा किसी अद्भुत रूपको देखताहै वा सूर्यादि देदीप्यमान पदार्थों को देखता है, तब चकाचौंधी के कारण उस मनुष्यके नेत्रों में वातादि दोष आश्रय लेकर तेज को संशोषित करके दृष्टिको मुषितदर्शनवाली, वैदूर्य के रंगके समान, स्तिमित और प्रकृतिस्थ की तरह वेदनारहित करदेते हैं । इसी को औपसर्गिक लिंगनाशक कहते हैं ।

दृष्टिमंडलके सत्ताईसरोग ।

त्यक्त्वा कफालिंगनाशान् गंभीरां ह्रस्वजामपि
षट् काचा नकुलांधत्रं याप्याः शेषांस्तु साधयेत् ।
द्वादशेति गदा दृष्टौ निर्दिष्टाः सप्तविंशतिः

अर्थ–कफज लिंगनाशक को छोडकर वातज, पित्तज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, रक्तज और औपसर्गिक लिंगनाशक वर्जित हैं । गंभीरा और ह्रस्वजा ये दोनों भी वर्जितहैं । वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज ये छः प्रकार के काचरोग और सातवां नकुलान्ध ये सात प्रकार के नेत्ररोग याप्य अर्थात् कष्टसाध्य हैं । तथा वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज ये छः प्रकार के तिमिररोग, एक कफज लिंगनाश, पित्तविदग्धा दृष्टि, दोषान्ध, उष्ण विदग्धा दृष्टि, विदग्धाम्ला दृष्टि और धूमर ये बारह रोग साध्य होते हैं । इस तरह ऊपर वाले पंद्रह सब मिलाकर सत्ताईस नेत्र रोग हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने दृष्टिरोग विज्ञानीयं नाम द्वादशोऽध्यायः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथाऽतस्तिमिरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब यहांसे तिमिर प्रतिषेधनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

तिमिरकी चिकित्सा में शीघ्रता॥

"तिमिरं काचतां याति काचेऽन्ध्यमुपेक्षया
नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद्द्रुतम्।

अर्थ–तिमिर रोगकी चिकित्सा में उपेक्षा करनेसे काचरोग होजाता है और काचरोग से अंधापन उत्पन्न होजाता है, इससे यह रोग सब नेत्ररोगों में भयानक होता है, इसलिये इसकी चिकित्सा में शीघ्रता करनी चाहिये।

तिमिरनाशक घृत॥

तुलां पचेत जीवंत्या द्रोणेऽपां पादशेषिते।
तत्काथे द्विगुणं क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्
प्रपौंडरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैंधवैः।
शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ॥३॥
कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहरं परम्।
द्राक्षाचंदनमंजिष्ठाकाकोलीद्वयजीवकैः ॥४॥
सिताशनावरीमेदापुंड्राह्वमधुकोत्पलैः।
पचेज्जीर्णे घृतप्रस्थं समक्षीरं पिचून्मितैः ५
हंति तत्काचतिमिररक्तराजीशिरोरुजः।

अर्थ–एक तुला जीवंती को एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहनेपर उतार कर छानले फिर इस क्वाथमें दुगुना दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै और इसमें प्रपौंडरीक, काकोली, पीपल, लोध, सेंधानमक, सौंफ, मुलहटी, दाख, मिश्री, देवदारू, त्रिफला प्रत्येक एक कर्ष मिलादे, इसको रातमें पीनेसे तिमिर रोग नष्ट होजाताहै। यह इस रोग पर उत्तम औषध है।

अथवा दाख, चंदन, मजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मिश्री, सितावर, मेदा, प्रपौंडरीक, मुलहटी और नीलोत्पल प्रत्येक एक तोला, एक प्रस्थ पुराना घी और इतना ही दूध मिलाकर सबको पकावे, यह काचरोग तिमिररोग, रक्तराजी और शिरोवेदना इन रोगों को नष्ट कर देता है।

काचनाशक घृत।

पटोलनिंबकटुकादार्वीसेव्यवरावृषम् ६
सधन्वयासत्रायंती पर्पटं पालिकं पृथक्।
प्रस्थमामलकानां च काथयेन्नल्वणेऽभसि।
तदाढकेऽर्धपलिकैः पिष्टैः प्रस्थं घृतात्पचेत्
मुस्तभूनिंबयष्ट्याह्वकुटजोशीर्ष्यचंदनैः ८
सपिप्पलीकैस्तत्सर्पिर्घ्राणकर्णास्यरोगजित्
विद्रधिर्ज्वरदुष्टास्रविसर्पापचिकुष्ठनुत् ९
विशेषाच्छुक्रतिमिरनक्तांध्योष्णाम्लदाहनुत्

अर्थ–पर्वल, नीमकी छाल, कुटकी, दारुहलदी, नेत्रवाला, त्रिफला, अडूसा, जवासा, त्रायमाण, पित्तपापडा, प्रत्येक एक पल, आमला दो सेर, इन सबको एक द्रोण जल में औटावे, चौथाई शेष रहनेपर उतार कर छानले, फिर इसमें मोथा, चिरायता, मुलहटी, कुडा, नेत्रवाला, रक्तचंदन और पीपल, प्रत्येक आधा आधा पल लेकर पीसकर मिलादे, और एक प्रस्थ घी डालकर पाक की विधि से पकावे। इस घृतका सेवन करने से नासिका, कर्ण, और मुखरोग, तथा विद्रधि, ज्वर, दुष्टव्रण, विसर्प, अपची और कुष्टरोग और विशेष करके शुक्ल, धुंध,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उष्णाविदग्धा, और अम्लाविदग्धा दृष्टिरोग जाते रहते हैं।

त्रिफला घृत।

त्रिफलाष्टपलं काथ्यं पादशेषं जलाढके। तेन तुल्यपयस्केन त्रिफलापलकल्कवान्। अर्धप्रस्थो घृतात्सिद्धः सितया माक्षिकेण वा युक्तं पिबेत्तत्तिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम्।

अर्थ–त्रिफला आठ पलको एक आढक जलमें औटावे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, फिर इसके समान दूध त्रिफला का कल्क एक पल, आधा प्रस्थ घृत इन सबको पाकविधि के अनुसार पकाकर खांड वा शहत के साथ पानकरे तो तिमिररोग जाता रहता है, तथा दोषदूष्यादि के अनुसार इस घृत को त्रिफला के काढेके साथ सेवन करे। यह त्रिफलाघृत कहलाता है।

महात्रिफल घृत।

यष्टीमधुद्विकाकोलीव्याघ्रीकृष्णामृतोत्पलैः। पालिकैः सशिताद्राक्षैर्घृतप्रस्थं पचेत्समैः। अजाक्षीरवरावासामार्कवस्वरसैः पृथक् १३ महात्रैफलमित्येतत्परं दृष्टिविकाराजित्।

अर्थ–मुलहटी, काकोली, क्षीरकाकोली, कटेरी, पीपल, गिलोय, नीलोत्पल, मिश्री और दाख इनको एक एक पल लेकर कल्क कर लेवे। तथा बकरी का दूध, त्रिफला का काढा, अडूसे का रस तथा भांगरे का रस एक एक प्रस्थ लेकर इसमें एक प्रस्थ घी को पाकविधि के अनुसार पकावे, इसके सेवनसे दृष्टिविकार नष्ट हो जाते हैं। इस घृत को महात्रैफल घृत कहते हैं।

गारुडीदृष्टि प्राप्तकरने का अवलेह।

त्रैफलेनाथ हविषा लिह्यान्नक्तिफलां निशि। यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम्। मासमेकं हिताहारः पिबन्नामलकोदकम्। सौपर्णं लभते चक्षुरित्याह भगवान्निमिः।

अर्थ–त्रिफलाघृत में त्रिफला, मुलहटी और मधु मिलाकर रात्रिमें चाटै, हितकारी भोजन आमले का रसपान करता रहे, इस तरह एक महिने तक इस प्रयोग के करने से मनुष्य की दृष्टि गरुड की सी हो जाती है। यह निमिमुनि का अनुभूत प्रयोग है।

तिमिररोग पर त्रिफला।

ताप्यायोहेमयष्ट्याह्वसिताजीर्णाज्यमाक्षिकैः संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी हरा वरा।

अर्थ–सौनामाखी, लोह, सुवर्ण, मुलहटी मिश्री, पुराना घी, और शहत इनमें त्रिफला मिलाकर यथेच्छ सेवन करने से तिमिर नष्ट होजाता है, यह प्रयोग बहुत उत्तम है।

अन्य प्रयोग।

सघृतं वा वराकाथं शीलयेत्तिमिरामयी। अपूपसूपसक्तून्वा त्रिफलाचूर्णसंयुतान्।

अर्थ–तिमिररोगी को उचित है कि त्रिफला के काढे में घृत मिलाकर सेवन करने का अभ्यास करे। अथवा त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर मालपुआ, दाल और सत्तू का सेवन करे।

तिमिररोग में पायस।

पायसं वा वरायुक्तं शीतं समधुशर्करम्। प्रातर्भक्तस्य वा पूर्वमथात्पथ्यां पृथक् पृथक् मृद्वीकां शर्कराक्षौद्रैः सततं तिमिरातुरः॥

अर्थ–प्रातःकाल के समय त्रिफला डाल कर दूध की खीर को ठंडी करके शहत और खांड मिलाकर सेवन करे, अथवा भोजन करने से पहिले हरड वा मुनक्का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दाख को अलग अलग खांड और शहत में मिलाकर तिमिररोगी को निरंतर सेवन करना चाहिये।

सर्वतिमिरनाशक अंजन।

स्रोतोजांशांश्चतुःषष्टिं ताम्रायोरूप्यकांचनैः
युक्तान् प्रत्येकमेकांशैरधमूषोदरस्थितान्।
आपयित्वा समाकृष्टं ततस्तच्च निषेचयेत्
रसरक्तकफक्षयेषु सप्तकृत्वः पृथक् पृथक्।
वैदूर्यमुक्ताशंखानां त्रिभिर्भागैर्युतं ततः।
चूर्णीकृतं प्रयुंजीत तत्सर्वं तिमिरापहम्॥

अर्थ—सुर्मा ६४ भाग, तांबा लोहा, चांदी सौना प्रत्येक एक एक भाग, इन सबको मिलाकर अंधमूषा नामक यंत्र के भीतर रखकर अग्नि से फूंके फिर शिला पर अच्छी तरह पीसकर इसको मधुरादि द्रव्यों के काढे में सातबार डाले, तदनंतर मूंगा, मोती और शंख इनको तीन तीन भाग मिलाकर महीन पीस डाले। यह अंजन सब प्रकार के तिमिर रोगों को नष्ट कर देता है।

तिमिरादि शांतिकारक अंजन।

मांसीत्वक्पातकायःकुंकुमनीलोत्प-
लाभयातुत्थैः।
सितकाचशंखफेनकमरिचांजनाधिष्य-
लीमधुकैः॥ २३॥
चेद्रेऽश्विनीसनाथे-
सुचूर्णितैरंजयेद्यगुलमस्णोः।
तिमिरार्मरक्तराजिकंडूकाचादिशमिच्छन्

अर्थ—जटामांसी, तेजपात, इलायची, दालचीनी, लोह, कुंकुम, नीलकमल, हरड, नीलाथोथा, सफेद काच, शंख समुद्रफेन, काली मिरच, अंजन, पीपल, मुलहटी, इन सबको पीतले। फिर जिस दिन अश्विनी नक्षत्र में चन्द्रमा हो उस दिन दोनों नेत्रों में इस अंजन को लगावै, इससे तिमिर, अर्म, रक्तराजी, कंडू, काच आदि रोग शांत होजाते हैं।

कफामय नाशक चूर्ण।

मरिचवरलवणभागौ भागौ द्वौ-
कणसमुद्रफेनाभ्याम्।
सौवीरभागनवकं चित्रायां चूर्णितं-
कफामयाजित्॥ २५॥

अर्थ—काली मिरच और सेंधानमक दो भाग, पीपल और समुद्रफेन दो भाग, सुर्मा नौ भाग इनको चित्रानक्षत्र में पीसकर चूर्ण बना लेवै। इसके आंजने से नेत्र संबंधी कफके रोग जाते रहते हैं।

सर्वाक्षिरोग पर अंजन।

द्राक्षामृणालिस्वरसे क्षीरमधवसासु च।
पृथक्पृथिव्याप्सुस्रोतोंजसप्तकृत्वोनिषेचयेत्॥
तच्चूर्णितं स्थितं शंखे दृक्प्रसादनमंजनम्।
शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहाधिपतिनिर्मितम्॥

अर्थ—दाख और कमलनाल के स्वरस में, दूधमें, मद्यमें, चर्बीमें, और आंतरीक्ष जलमें अलग अलग सात सात बार सुर्मेको सेचित करे, फिर इसको पीसकर शंखमें रखले, यह अंजन दृष्टिको स्वच्छ करता है और संपूर्ण प्रकार के नेत्ररोगों में प्रशस्त है। यह अंजन विदेहाधिपति का बनाया हुआ है।

भास्करांजन।

निर्दग्धं चादरांगारैस्तुत्थं चेत्थं निषेचितम्
क्रमादजापयः सर्पिः क्षौद्रे तस्मात् पलद्वयम्
कार्षिकैस्ताप्यमरिचस्रोतोजकटुकान्वितैः।
पटुरोध्रिशलापथ्याकणैलांजनफेनिकैः॥
युक्तं पलेन यष्ट्याश्च मूषांतर्भांडचूर्णितम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हंति काचार्मनक्तांध्यरक्तराजीः सुशीलितः॥
चूर्णो विशेषात्तिमिरं भास्करो भास्करो यथा

अर्थ—नीलाथोथा लेकर बेरकी लकडियों में जला देवै और क्रमपूर्वक बकरी के दूध, घी और शहत में पहिले की तरह बुझावै। फिर इसमें से दोपल, सौनामाखी कालीमिरच अंजन कुटकी तगर सेंधानमक लोध मनसिल हरड पीपल रसौत समुद्रफेन और मुलहटी प्रत्येक एक कर्ष। इन सब द्रव्यों को मूषके भीतर रखकर जलादेवै। यह भास्करांजन नित्यप्रति लगाने से काचरोग, अर्म, रतौंध, रक्तराजी और विशेष करके तिमिररोग को ऐसे नष्ट करदेता है, जैसे सूर्य अंधकार का नाश करदेता है।

द्वितीय भास्करांजन।

त्रिंशद्भागा भुजंगस्य गंधपाषाणपंचकम्।
शुल्वतारकयोर्द्वौ द्वौ वंगस्यैकोऽजनात्रयम्॥
अंधमूषीकृतं ध्मातं पक्वं विमलमंजनम्।
तिमिरांतकरं लोके द्वितीय इव भास्करः॥

अर्थ—सीसा ३० भाग, गंधक ५ भाग, तांबा और हरताल दो दो भाग, वंग एक भाग, तथा सौवीरांजन तीन भाग इन सब को अंधमूषायंत्र में भर कर फूंकले। यह अंजन नेत्रों को निर्मल करदेता है और तिमिररोग को दूर करने में दूसरे सूर्य के समान है।

दृष्टिवर्द्धक नीलाथोथा।

गोमूत्रे छगणरसेऽम्लकांजिके च
स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च।
यत्तुत्थं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं
तत्कुर्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः॥ ३३॥

अर्थ—नीलाथोथे की एक डेली लेकर बारबार अग्नि में तपाकर गोमूत्र, गोबर का रस, खट्टी कांजी, स्त्रीके स्तनों का दूध, घी, विष और शहत में बारबार बुझावै इस नीलाथोथे का अंजन लगाने से दृष्टि गरुड के समान होजाती है।

सीसे की शलाका।

श्रेष्ठाजलं भृंगरसं सविषाज्यमजापयः।
यष्टीरसं च यत्सीसं सप्तकृत्वः पृथक् पृथक्॥
तप्तं तप्तं पायितं तच्छलाका
नेत्रे युक्ता सांजनानंजना वा।
तैमिर्यार्मस्रावपैच्छिल्यपैल्लं
कंडूं जाड्यं रक्तराजीं च हंति॥ ३५॥

अर्थ—त्रिफला का क्वाथ, भांगरे का रस, विष, घी, बकरी का दूध, मुलहटी का रस इनमें अलग अलग सात सात बार सीसे को आग में तपा तपाकर बुझावै। फिर इस सीसे की सलाई बनाकर इसमें अंजन लगाकर वा बिनाही अंजन इसको आंखों में फेरे। इससे तिमिर, अर्म, स्राव, पिच्छिलता, पैल्ल, कंडू, जडता और रक्तराजी जाते रहते हैं।

गिद्धदृष्टिकारक योग।

रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथांजनम्।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं तिमिरापहम्॥ ३६॥
यो गृध्रस्तरुणरविप्रकाशगल्-
स्तस्यास्यं समयमृतस्य गोशकृद्भिः।
निर्दग्धं समघृतमंजनं च पेय्यं
योगोऽयं नयनबलं करोति गार्ध्रम्॥

अर्थ—पारा और सीसा समान भाग लेकर इन दोनों के बराबर सुरमा और सोलहवां भाग कपूर लेकर सबको बारीक पीस डालै, इसको अंजने से तिमिररोग नष्ट हो जाता है। तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कपोलस्थलवाला गिद्ध जो समय पाकर आप ही मर जाय उसके मस्तक को काटकर आरने ऊपलोंकी आगमें भस्म करदे, फिर उसके समान घी और सुरमा मिलाकर मर्दन करके नेत्रों में आंजे। इससे गिद्धके समान दृष्टि हो जाती है।

भिन्नतार नेत्रका चूर्ण।

कृष्णसर्पवदनेन सहविष्कं दग्धमंजनमनिः-
सृतधूमम्।
चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नतारमपि-
रक्षति चक्षुः ॥ ३८ ॥

अर्थ—काले सर्पके मुखमें घी और सौवीरांजन भरकर ऐसी रीति से जलावे कि धूआं बाहर न निकलने पावै। फिर इसमें जटामांसी के पत्ते मिलाकर महीन पीसडाले इसको नेत्रों में आंजने से भिन्नतारक चक्षु भी अच्छे हो जाते हैं (भिन्नतारक कहने से औषध की परमोत्कृष्टता दिखाई गई है वास्तवमें भिन्नतारक चक्षु की रक्षा होना असंभव है, ऐसे ही गरुड की सी दृष्टि हो जाना, इत्यादि वाक्यों में जानना चाहिये)।

अंधेको भी दृष्टिप्रदान।

कृष्णं सर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्चापि-
वृश्चिकान्।
क्षीरकुंभे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वाथ
मंथयेत् ॥ ३९ ॥
तत्र यन्नवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम्।
अंधस्तस्य पुरीषेण पश्यते ध्रुवमंजनात् ॥

अर्थ—मरे हुए काले सर्प और चार बिच्छुओं को दूधके कलश में भरकर तीन सप्ताह तक रहने दे। पीछे इस दुग्ध को मथकर माखन निकाल ले। इस माखन को एक मुर्गेको खिलावे। इस मुर्गे की बीटका अंजन लगाने से अंधेको दिखाई देने लगता है

अंधोंकी दृष्टिवर्द्धक रसक्रिया।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकात् फलमंजनम्।
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥

अर्थ—काले सर्पकी वसा, शंख, निर्मलीफल और सुर्मा इनकी रसक्रिया से अंधेकी दृष्टि शीघ्र बढ जाती है।

अप्रतिसाराख्य अंजन।

मरिचानि दशार्धपिचु-
स्तावत्तत्थात्पलं पिचुर्यष्ट्याः।
क्षीरार्द्रदग्धमंजन-
मप्रतिसाराख्यमुत्तमं तिमिरे ॥ ४२ ॥

अर्थ—कालीमिरच दस, सौनामाखी आधा पिचु, नीलाथोथा आधा पल, और मुलहटी एक पिचु, इन सब द्रव्यों को दूध में भिगोकर अग्नि में भस्म करले। इस अंजन का नाम अप्रतिसार है, यह तिमिररोग की परमोत्तम औषध है।

तिमिरनाशक गोली।

अक्षबीजमरिचामलकत्वक्
तुत्थयष्टिमधुकैर्जलपिष्टैः।
छाययैव गुटिकाः परिशुष्का
नाशयंति तिमिराण्यचिरेण ॥ ४३ ॥

अर्थ-बहेडे का बीज, कालीमिरच, आमला, दालचीनी, नीलाथोथा, मुलहटी इन को जल में पीसकर गोली बनाकर छाया में सुखाले, इससे तिमिररोग बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है।

तिमिरनाशक योग।

मरिचामलकजलोद्भव-
तुत्थांजनताप्यधातुभिःक्रमवृद्धैः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

षण्माक्षिक इति योग-
स्तिमिरार्मक्लेदकाचकंडूहंता ॥ ४४ ॥

अर्थ-कालीमिरच, आमला, कमल, नीलाथोथा, सुर्मा और सौनामाखी इन छः द्रव्यों को उत्तरोत्तर एक एक भाग बढाकर लेवे। इसका अंजन बनाकर लगाना चाहिये, यह षण्माक्षिक योग तिमिर, अर्म, क्लेद, काच और कंडू रोगों को दूर करदेता है।

दृष्टिरोगनाशक चूर्ण ।

रत्नानि रूप्यं स्फटिकं सुवर्णं
स्रोतोंजनं ताम्रमयः सशंखम् ।
कुचंदनं लोहितगैरिकं च
चूर्णांजनं सर्वदृगामयघ्नम् ४५

अर्थ-हीरा, मरकत आदि यथाप्राप्त रत्न रूपा, स्फटिक, सुवर्ण, सुर्मा, तांबा, लोहा, शंख, रक्तचंदन, और लाल गेरू, इनको पीसकर अंजन लगाने से संपूर्ण प्रकार के नेत्ररोग दूर होजाते हैं।

दृष्टिबलकारक नस्य ।

तिलतैलमक्षतैलंभृंगस्वरसोऽसनाद्यनिर्यूहः
आयसपात्रविपक्वं करोति दृष्टेर्बलं नस्यम् ।

अर्थ-तिलका तेल, बहेडेका तेल, भांगरे का रस, और असन का क्वाथ, इन सबको लोहे के पात्रमें पकाकर अंजन लगाने से दृष्टि बलवान होजाती है।

नेत्ररोगमें स्नेहादि ।

दोषानुरोधेन च नैकशस्तं
स्नेहासृगविस्रावणरेकनस्यैः ।
उपाचरेदंजनमूर्धबस्ति-
बस्तिक्रियातर्पणलेपसेकैः ४७

अर्थ-दोषके अनुसार बार बार स्नेहप्रयोग, रक्तमोक्षण, विरेचन, नस्य, अंजन, गंडूषादि विधि में कही हुई मूर्धबस्ति, बस्ति विधानोक्त बस्ति क्रिया, तर्पण, प्रलेप और परिषेकादि द्वारा नेत्ररोगी की चिकित्सा करनी चाहिये।

पृथक्चिकित्साका उपदेश ।

सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषमतः शृणु ।

अर्थ-यहांतक नेत्ररोग की सामान्य चिकित्सा का वर्णन किया गयाहै, अब यहां से वातादि दोषानुसार चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

वातजतिमिर की चिकित्सा ।

वातजे तिमिरे तत्र दशमूलांभसा घृतम् ।
क्षीरे चतुर्गुणे श्रेष्ठाकल्कपक्वं पिबेत्ततः ।
त्रिफलापंचमूलानां कषाये क्षीरसंयुतम् ।
एरंडतैलसंयुक्तं योजयेच्च विरेचनम् ।

अर्थ-वातजतिमिर रोगमें दशमूल का क्वाथ, चौगुने दूधके साथ त्रिफला का कल्क डालकर पाकविधि के अनुसार घी को पकावै और पान करने के पीछे विरेचन के लिये त्रिफला और पंचमूल के काढे में दूध और अरंडका तेल मिलाकर उपयोग में लावै।

ऊर्ध्वजत्रुरोगनाशक नस्य ।

समूलजालजीवंतीतुलां द्रोणेऽमसः पचेत्
अष्टभागस्थिते तस्मिंस्तैलप्रस्थं पयः समं ।
बलात्रितयजीवंतीवरीमूलैः पलोन्मितैः ।
यष्टीपलैश्चतुर्भिश्च लोहपात्रे विपाचयेत् ।
लोह एव स्थितं मासं नावनादूर्ध्वजत्रुजान् ।
वातपित्तामयान् हंतितद्विशेषाद् दृगाश्रयान् ।
केशास्यकंधरास्कंधपुष्टिलावण्यकांतिदम् ।

अर्थ-जड और जाली सहित जीवंती सौपल लेकर एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले और इसमें एक प्रस्थ तेल और इतना ही दूध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिलावे तथा बला, अतिबला, नागबला, जीवंती और शतावरी प्रत्येक एक एक पल लेकर पीसकर मिलाकर पाकविधिके अनुसार पकावै। पाक होचुकनेपर उसको उसी लोहे के पात्रमें एक महिने तक रक्खे। इस तेल का नस्य द्वारा प्रयोग करनेसे ग्रीवा से ऊपर होनेवाले समस्त रोग वातपैत्तिक दृष्टि गतरोग नष्ट होजाते हैं। इससे केश मुख ग्रीवा और कंधों की पुष्टि तथा देहमें लावण्य और कांति बढते हैं।

अन्य प्रयोग।

सितैरंडजटाल्लिहीफलदारुयवत्वानतैः।
घोषया बिल्वमूलैश्च तैलं पक्वं पयोन्वितम्
नस्यं सर्वोर्ध्वजत्रुत्थव्याधिश्लेष्मामयांस्तैजेत्

अर्थ-सफेद अरंड की जड, कटेरी के फल, देवदारु, यव, तगरमूल, तोरई और बेलगिरी की जड, तथा दूध इनके साथ तेल पकाकर नस्य लेने से जत्रु से ऊपर होनेवाले सब प्रकार के वातकफज रोग नष्ट होजाते हैं।

अंजन में व्याघ्र की वसा।

वसांजने च वैय्याघ्री वाराही वा प्रशस्यते
गृध्राद्दिकुक्कुटोत्था वा मधुकेनान्विता पृथक्

अर्थ-व्याघ्र वा शूकर की वसा अथवा गिद्ध, सर्प वा मुर्गे की वसा में मुलहटी मिलाकर अंजन लगाने से बहुत लाभ होता है।

तिमिरनाशक प्रयोग।

प्रत्यंजने च स्रोतोजे रक्तक्षीरघृते क्रमात्।
निर्विकं पूर्ववद्योज्यं तिमिरघ्नमनुत्तमम्।

अर्थ-प्रत्यंजन में सौवीरांजन को क्रम से मांसरस, दूध और घी में बुझाकर पूर्ववत् प्रयोग करे, यह तिमिर को दूर करने वाली परमोत्तम औषध है।

तर्पण प्रयोग।

नचेद्देवं शमं याति ततस्तर्पणमाचरेत् ५७

अर्थ-उक्त रीति से तिमिर रोग की शांति न होने पर तर्पण का प्रयोग करना चाहिये।

तर्पण में घृत की श्रेष्ठता।

शताह्वाकुष्ठनलदकाकोल्लिद्वययष्टिभिः।
प्रपौंडरीकसरलापिप्पलीदेवदारुभिः ५८
सर्पिरष्टगुणक्षीरं पक्वं तर्पणमुत्तमम्।

अर्थ--शतमूली, कूठ, बालछड, काकोली क्षीरकाकोली, मुलहटी, पुंडरिया, सरलकाष्ठ, पीपल और देवदारू इन सब द्रव्यों के साथ आठगुने दूधमें घी को पाक करके सेवन करे। यह परमोत्तम तर्पण है।

अन्य तर्पण।

मेदस्तद्वदैणेयाहुध्वसिद्धात् खजाहतात्
उद्धृतं साधितं तेजो मधुकोशीरचंदनैः।

अर्थ-इसी तरह काले हिरण के मेद को दूध में पकाकर रुई से मथडाले ऐसा करने से जो तेजः पदार्थ निकलता है, उसको मुलहटी और चंदन के साथ सेवन करे, यह उत्तम तर्पण है।

अन्य प्रयोग।

श्वाविच्छल्यकगोधानां दक्षतित्तिरिबर्हिणाम्
पृथक्पृथगनेनैव विधिना कल्पयेद्वसाम्।

अर्थ-दोनों प्रकार की सेह, गोधा, तीतर और मोर इनमें से हर एक की चर्बी को पूर्वोक्त विधान के अनुसार कल्पना करे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुटपाक विधि ।

प्रसादनं स्नेहनं च पुटपाकं प्रयोजयेत् ६१

अर्थ--तर्पण और पुटपाक के विधान में कहा हुआ प्रसादन और स्नेहन पुटपाक का प्रयोग करना चाहिये ।

वातजतिमिर में अनुवासनादि ।

वातपीनसवच्चात्र निरूहं सानुवासनम् ।

अर्थ--वातजतिमिर रोगमें पीनस की तरह निरूहण और अनुवासन का प्रयोग करना चाहिये ।

पैत्तजतिमिर की चिकित्सा ।

पित्तजे तिमिरे सर्पिर्जीवनीयफलत्रयैः ६२
विपाचितंपाययित्वास्निग्धस्यव्यधयेत्सिराम्

अर्थ--पित्तज तिमिररोग में जीवनीय गण और त्रिफला के साथ घी को पकाकर यह घी रोगी को पान करावे । घृतपान द्वारा स्निग्ध होने पर रोगी की फस्द खोलना चाहिये ।

उक्त रोग में विरेचन ।

शर्करैलात्रिवृच्चूर्णैर्मधुयुक्तैर्विरेचयेत् ६३।

अर्थ--शर्करा, इलायची, निसोथ और शहत इन सब द्रव्यों को देकर रोगी को विरेचन करावै ।

नेत्ररोग में परिषेकादि ।

सुशीतान् सेकलेपादीन् युंज्यान्नेत्रास्यमूर्धसु

अर्थ--पैत्तिक तिमिररोग में नेत्र, मुख और मस्तक में शीतल परिषेक और प्रलेपादि का प्रयोग करना चाहिये ।

सारिवादि वर्ती ।

सारिवापद्मकोशीरमुक्ताशाबरचंदनैः ६४
वर्तिः शस्तांजने चूर्णस्तथा पद्मोत्पलांजनैः ।
समागपुष्पकपूर्व्यष्टयाह्वस्वर्णनैरिकैः ६५

अर्थ--सारिवा, पद्माख, खस, मोती, लोध और चंदन इनकी बत्ती तथा तेजपात सौवीरांजन, नागकेसर, कपूर, मुलहटी और स्वर्णगैरिक । इन सब द्रव्यों से बनाई हुई वत्ती का अंजन लगाना तिमिर रोग में उत्तम है ।

अन्य अंजन ।

सौवीरांजनतुत्थकशृंगीधात्रीफलस्फटिक-
कर्पूरम्
पंचांशं पंचांशत्र्यंशमर्धैकांशमंजनंतिमिरघ्नम्

अर्थ--सौवीरांजन पांच भाग, नीलाथोथा पांच भाग, काकडासींगी और आमला प्रत्येक तीन भाग, स्फटिक और कपूर प्रत्येक एक भाग, यह अंजन तिमिर नाशक है ।

पक्व घृत की नस्य ।

नस्यं चाज्यं शृतं क्षीरजीवनीयसितोत्पलैः

अर्थ--जीवनीयादि गण में चौगुने दूध के साथ पकाया हुआ घी नस्य द्वारा प्रयोग करने से तिमिररोग जाता रहता है ।

कफजतिमिर की चिकित्सा ।

श्लेष्मोद्भवेऽमृताक्काथवराकणशृतं घृतम् ।
विध्येत्सिरां पीतवतो दद्याच्चानु विरेचनम् ।
क्वाथं पूगाभयाशुंठीकृष्णाकुंभनिकुंभजम्

अर्थ--कफज तिमिररोग में गिलोय का काढा, त्रिफला और पीपल के काढे में पकाया हुआ घी पान करावै । पान कराने के पीछे फस्द खोले । पीछे विरेचन के लिये सुपारी, हरड, सोंठ, पीपल, निसोथ और दंती के काढे का प्रयोग करे ।

तेल की नस्य ।

ह्रीबेरदारुद्विनिशाकृष्णाकल्कैः पयोन्वितैः ।
द्विपंचमूलनिर्यूहे तैलं पक्वं च नावनम् ६९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--नेत्रवाला, देवदारु, हलदी, दारु-हलदी और पीपल इनका कल्क तथा दूध और दसमूल का काढा इन सबके साथ पाक विधि के अनुसार तेल पकाकर नस्य द्वारा प्रयोग करे।

कोकिलावर्ती।

शंखप्रियंगुनेपालीकटुत्रिकफलत्रिकैः।
दग्धैर्मल्यायविमला वर्तिः स्यात्कोकिलापुनः
कृष्णलोहरजोव्योषसैंधवत्रिफलांजनैः।

अर्थ--शंख, मालकांगनी, मनासिल, त्रिकुटा और त्रिफला इन सब द्रव्यों से बनाई हुई वर्ति को विमल वर्ती कहते हैं, यह दृष्टि के मैल को दूर करती है। तथा कृष्णलोह चूर्ण, त्रिकुटा, सेंधानमक, त्रिफला और सौवीरांजन इनसे बनाई हुई बत्ती को कोकिलावर्ति कहते हैं। यह भी दृष्टि को निर्मल करती है।

तिमिरशुक्रनाशिनी बत्ती।

शशगोखरसिंहोष्ट्रद्विजालालाटमस्थि च ७१
श्वेतगोवालमरिचशंखचंदनफेनकम्।
पिष्टंस्त्र्याजदुग्धाभ्यां वर्तिस्तिमिरशुक्राजित्

अर्थ--खर्गोश, गौ, गधा, सिंह और ऊंट इनके दांत और ललाट की अस्थि, सफेद गौ की पूछ के बाल, काली मिरच, शंख, चंदन, और समुद्रफेन इन सब द्रव्यों को स्त्री के दूध और बकरी के दूध में पीसकर तयार करे, इसको नेत्रों में लगाने से तिमिर और फूला जाते रहते हैं।

रक्तज तिमिर का उपाय।

रक्तजे पित्तवत्सिद्धैः शीतैश्चास्रंप्रसादयेत्

अर्थ--रक्तज तिमिर के सदृश चिकित्सा करनी चाहिये, इसमें शीतोपचार द्वारा चिकित्सा की जाती है।

रक्तज तिमिर की औषध।

द्राक्षया नलदरोध्रयष्टिभिः
शंखताम्रहिमपद्मपद्मकैः।
सोत्पलैरुडगलदुग्धवर्तितै-
रक्तजं तिमिरमाशु नश्यति ॥ ७३ ॥

अर्थ--दाख, बालछड, मुलहटी, शंख, तांवा, कपूर, कमल, पदमाख और नीलोत्पल इनको बकरी के दूध में अच्छी तरह पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रों में लगाने से तिमिर रोग शीघ्र जाता रहता है।

संसर्गज तिमिर की चिकित्सा।

संसर्गसन्निपातोत्थे यथा दोषोदयं क्रिया।

अर्थ--संसर्गज और सन्निपातज तिमिर रोग में दोष के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

नस्य और मुखलेप।

सिद्धं मधूकरूमिजिन्मरिचामरदारुभिः ७४
सक्षीरं नावनं तैलं पिष्टैर्लेपो मुखस्य च।

अर्थ--मुलहटी, बायविडंग, कालीमिरच, देवदारु इनका कल्क करके दूध के साथ तेल पकाकर नस्य का प्रयोग करे अथवा उक्त द्रव्यों को जल में पीसकर मुख पर लेप करे।

नस्य और शिरोवस्ति।

नतनीलोत्पलानंतायष्ट्याह्वसुनिषण्णकैः ॥
साधितं नावने तैलं शिरोवस्तौ च शस्यते।

अर्थ तगर, नीलकमल, धमासा, मुलहटी, चौपतिया इन से सिद्ध किया हुआ तेल नस्य और शिरोवस्ति के काममें लावे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य अंजन ।

क्वाथादुशीरनिर्यूहचूर्णितं कणसैंधवम् ॥
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने क्षिपेत् ।
शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरे-
ऽञ्जनम् ॥

अर्थ--खस के काढे में पीपल और सेंधेनमक का चूर्ण डालकर पकावे । फिर इसमें घृत मिलाकर फिर पकावे । जब क्वाथ गाढा होजाय तब उतारकर ठंडा होने पर इसमें शहद मिला देवै । इसको आंजने से त्रिदोषज तिमिररोग जाता रहता है ।

सान्निपातिक तिमिर में अंजन ।

अस्थीनि मज्जपूर्णानि सत्त्यानां रात्रिचा-
रिणाम् ।
स्रोतोऽंजनयुक्तानि वहत्यंभसि वासयेत् ।
मासं विंशतिरात्रं वा ततश्चोद्धृत्य शोषयेत्
समेषशृंगीनिष्पावजिलयष्ट्याह्वानितानि तु ।
चूर्णितान्यंजनं श्रेष्ठं तिमिरे सान्निपातिके ।

अर्थ--रात में फिरनेवाले प्राणियों की मज्जा से भरी हुई अस्थि लाकर उस में सुरमा भरकर बहते हुए पानी में एक महिने वा बीस दिन तक रक्खे । फिर निकालकर धूपमें सुखाले । इस हड्डी को मेढासिंगी के के फूल और मुलहटी के साथ पीसकर आंखों में लगावै । सान्निपातिक तिमिररोग में यह अंजन उत्तम है ।

काचरोगमें कर्तव्य ।

काचेऽप्येषा क्रिया मुक्त्वा सिरां यंत्र-
निपीडिताः ॥
आंध्याय स्युर्मला दद्यात्साध्ये रक्ते
जलौकसः ।

अर्थ--शिराव्यध को छोडकर यही चिकित्सा काचरोग में करनी चाहिये । शिरोपयोगी यंत्रद्वारा निपीडित दोष आंध्यरोग को उत्पन्न करते हैं यदि रक्त निकालने की आवश्यकता हो तो जोक लगादे पर फस्द न खोले ।

अंजनकाचपापन ।

गुडः फेनांजनं कृष्णा मरिचं कुंकुमाद्रजः ॥
रसक्रियेयं सक्षौद्रा काचघ्नमंजनम् ।

अर्थ--गुड, समुद्रफेन, सुर्मा, पीपल, कालीमिरच और कुंकुम इनके चूर्ण में शहद मिलावै । यह रसक्रिया काचरोग में उत्तम अंजन है ।

रतौंधका अंजन ।

नकुलांधे त्रिदोषोत्थे तैमिर्यविहितो विधिः

अर्थ--त्रिदोषज नकुलांध नेत्ररोगमें तिमिरोक्त क्रिया हित है ।

नक्तान्ध्यनाशक वर्ति ।

रसक्रियाघृतक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतैः ॥
तार्क्ष्यगैरिकतालीसैर्निशांध्ये हितमंजनम् ।

अर्थ--रसौत, गेरू और तालीसपत्र इन सब द्रव्यों के चूर्ण को घी, शहत और गोबर के रसमें मिलाकर रतौंध में अंजन लगाना चाहिये ।

रतौंधनाशक वर्ति ।

दध्ना विघृष्टं मरिचं रात्र्यांध्येंजनमुत्तमम् ॥

अर्थ--दही में कालीमिरच घिसकर नेत्रों में लगाने से रतौंध जाती रहती है ।

अन्य प्रयोग ।

करंजिकोत्पलस्वर्णगैरिकांभोजकेसरैः ॥
पिष्टैर्गोमयतोयेन वर्तिर्दोषांध्यनाशिनी ।

अर्थ--कंजा, कमल, स्वर्णगेरू और कमलकेसर इनको गोबर के रसमें पीसकर बत्ती बनाकर लगाने से रतौंध जाती रहती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य प्रयोग ।

अजामूत्रेण वा कौंतीकृष्णाश्लोतोजसैंधवैः॥

अर्थ–रेणुका, पीपल, सुर्मा और सेंधानमक इनको बकरी के दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर लगाने से रतौंध जाती रहती है ।

अन्य प्रयोग ।

कालानुसारीत्रिकटुत्रिफलालमनःशिलाः ॥
सकेनाश्छागदुग्धेन राज्यंधे वर्तयो हिताः।

अर्थ–शैलेय, त्रिकुटा, त्रिफला, हरताल, मनसिल, और समुद्रफेन इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर अंजन लगाने से रतौंध जाती रहती है ।

अन्य प्रयोग ।

सन्निवेश्य यकृन्मध्ये पिप्पलीरदहन्पचेत् ॥
ताः शुष्का मधुना घृष्टा निशांध्ये श्रेष्ठमंजनम्।

अर्थ–यकृतके बीचमें पीपलों को रखकर आगपर ऐसी रीतिसे सेके कि जलने न पावे । फिर उस पीपल को शहतमें घिसकर आंखों में आंजे इससे रतौंध जाती रहती है ।

अन्य उपाय ।

खादेच्च प्लीहयकृती माहिषे तैलसर्पिषा ।

अर्थ–इस रोगमें घी और तेलके साथ भैंसकी तिल्ली और यकृति खाने चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

घृते सिद्धानि जीवंत्याः पल्लवानि च भक्षयेत्
तथातिमुक्तकैरंडशेफाल्यभिरुजानि च ।
भृष्टं घृतं कुंभयोनेः पत्रैः पाने च पूजितम् ॥

अर्थ–जीवंती के पत्ते, अथवा गावपत्र अंडी के पत्ते, संभालू के पत्ते और शतमूली के पत्ते घी में भूनकर खाना चाहिये तथा अगस्तिके पत्तोंके साथ घी को पकाकर पीना चाहिये ।

धूमरादिरोग की चिकित्सा ।

धूमराम्लपित्तोष्णविदाहे ऊर्णसर्पिषा ।
स्निग्धं विरेचयेच्छीतैः शीतैर्द्विधाच्च सर्वतः

अर्थ--धूमर, अम्लविदग्धा, पित्तविदग्धा और उष्णविदग्धा दृष्टिमें पुराने घी के द्वारा अभ्यंजन, शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन और लेपका प्रयोग करना चाहिये ।

अन्य अंजन ।

गोशकृद्रसदुग्धाज्यैर्घृतं पक्वं शस्यतेऽजनम् ।
स्वर्णगैरिकतालीसचूर्णावापा रसक्रिया ।

अर्थ--गोबरकारस, दूध और घी इनके साथ पकाया हुआ सुर्मा हितकारी होता है, तथा स्वर्णगेरू और तालीसपत्र के चूर्णसे युक्त रसक्रिया हितकारी होती है ।

घृतकी नस्य ।

मेदाशावरकानंतामंजिष्ठादार्वियष्टिभिः ।
क्षीराष्टांशं घृतं पक्वं सतैलं नावनं हितम् ।

अर्थ--मेदा, सावरलोध, अनंतमूल, मजीठ दारूहलदी और मुलहटी इन सब द्रव्यों तथा अठगुने दूधके साथ तेल मिला हुआ घी पकाकर नस्यद्वारा प्रयोग करै ।

अन्य प्रयोग ।

" तर्पणं क्षीरसर्पिः स्यादशाम्यति सिरा-
व्यधः ।

अर्थ--दूधसे उत्पन्न हुए घी का तर्पण द्वारा प्रयोग करै । यदि इससे शान्ति न हो तो सिराबेध करना चाहिये ।

अन्य प्रयोग ॥

चिंताभिघातभीशोकरौक्ष्यात्सोत्कटकाम-
नात् ॥
विरेकनस्यवमनपुटपाकादिविभ्रमात् ।
विदग्धाहारवमनात्क्षुत्तृष्णादिविधारणात् ।
अक्षिरोगातिसाराच्च पक्ष्येत्तिमिररोगिवत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ- तिमिररोग न होने पर भी चिंता चोट, भय, शोक, रूक्षता, उकडू बैठना, तथा विरेचन, नस्य, वमन और पुटपाकादि के विभ्रमसे, विदग्ध भोजन की वमनसे, क्षुधा तृषा आदि के वेगों के रोकने से और नेत्ररोग के अवसानसे, इन सब कारणों से मनुष्य तिमिररोगी की तरह देखता है।

उक्तरोग में चिकित्सा।

यथास्वं तत्र युंजीत दोषादीन वीक्ष्य भेषजम्।

अर्थ- ऊपर लिखे हुए रोगमें दोष, दूष्य और देशादि की विरेचना करके चिकित्सा करनी चाहिये।

अन्यनेत्ररोगों में कर्तव्य।

सूर्योपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य।
संतर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
तथांजनं हेमघृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

अर्थ--सूर्यग्रहण, अग्नि, बिजली, तथा आदि शब्द से अति सूक्ष्म और अति भासुर पदार्थों के देखने से जिस मनुष्य की दृष्टि मारी जाती है उसे स्निग्ध हिमादि संतर्पण और घी में घिसे हुए सुवर्ण का अंजन लगाना चाहिये।

नेत्ररक्षाकारक।

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-
र्यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिंदिवानां
पुंसामंधानां विद्यमानेऽपि वित्ते।९७।

अर्थ--मनुष्य जब तक जीने की इच्छा रखता हो, तब तक उसे यत्नपूर्वक नेत्रों की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि अंधों के लिये दिन रात एक से होते हैं। उनके पास अतुलधन होने पर भी निरर्थक होताहै।

नेत्ररोग में त्रिफला।

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धि-
र्मनसोनिर्वृतिरंजनं च नस्यम्।
शकुनाशनता सपादपूजा
घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ९८ ॥

अर्थ--त्रिफला, रक्तस्राव, विरेचनादि विशोधन, मनकी शांति, अंजन, नस्य, पक्षियों का भोजन, जूते आदि पहरना, और घृतपान, इन सबका प्रयोग करने से नेत्रों की रक्षा होती है।

नेत्ररोग में अहिताशनत्याग।

अहिताद्अशनात्सदा निवृत्ति-
र्भृशभास्वच्चलसूक्ष्मवीक्षणाच्च।
मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्
परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम ॥ ९९ ॥

अर्थ--अहित भोजन का सर्वदा त्याग, अत्यन्त भासुर, चंचल और सूक्ष्म वस्तुओं का देखना इन सबसे निवृत्त होजाना अर्थात् इनका त्याग देना नेत्ररोगों से बचने का परमोत्तम साधन है। यह निमि महाराज का उपदेश है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने तिमिरप्रतिषेधनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथातो लिंगनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहां से लिंगनाश अर्थात् दृष्टिनाश की चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कफजन्यलिंगनाश में कर्तव्य ।

विध्येत्सुजातं निःप्रेक्ष्यं लिंगनाशं कफोद्भवम्
आवर्तक्यादिभिः षड्भिर्विवर्जितमुपद्रवैः ॥

अर्थ-आवर्तकी आदि छः उपद्रवों से रहित कफज लिंगनाश जो अच्छी तरह से घनीभूत और निष्प्रेक्ष अर्थात् देखने की शक्ति से हीन हो उसका व्यध करना चाहिये ।

वेधन का हेतु ।

सोऽसंजातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः
शलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरूर्ध्वं प्रपद्यते । २।
करोति वेदनां तीव्रां दृष्टिं च स्थगयेत्पुनः ।
श्लेष्मलैः पूर्यते चाशु सोऽन्यैः
सोपद्रवैश्चिरात् ॥ ३ ॥

अर्थ-यदि यह लिंगनाश असम्यक् रीति से उत्पन्न और विषमाकृतिवाला हो तथा दहीके तोडकी सी कांतिवाला और पतला हो, ऐसा होने पर शलाई से खींचे जाने पर भी फिर ऊपर को उठता हुआ तीव्र वेदना उत्पन्न करता है तथा दृष्टि को आच्छादित करता है । कफकारक आहार करने से शीघ्र भरजाता है और अन्य उपद्रवों से युक्त होने के लिये बहुत काल लगता है ।

श्लेष्मादिक लिंगनाशक के लक्षण ।

श्लैष्मिको लिंगनाशो हि सितत्वात्श्लेष्मणः सितः ।
तस्यान्यदोषाभिभवाद्भवत्यानीलिका गदः ॥

अर्थ-कफकी सफेदाई के कारण लिंगनाश सफेद होता है, किंतु वातादि अन्यदोषों के कारण यह नीलरूप होजाता है ।

आवर्तकी दृष्टि ।

तत्रावर्तचला दृष्टिरावर्तक्यरुणा सिता ।

अर्थ-आवर्तकी दृष्टिरोग में दृष्टि जल की भंवर के समान चंचल होती है और यह अरुण वा कृष्णवर्ण होती है ।

शर्करा दृष्टि ।

शर्करार्कपयोलेशनिचितेव घनाति च ॥

अर्थ-शर्करादृष्टि आक के दूधके कणों से उपचितवत् और अतिघन होती है ।

राजीमती दृष्टि ।

राजीमतीशबलीनिचिता शालिशूकाभराजिभिः

अर्थ-राजीमतीदृष्टि शालीधान्यों के शूक से व्याप्त की तरह होती है ।

विषमादृष्टि ।

विषमाच्छिन्नदग्धाभासरुक्छिन्नांशुकास्मृता

अर्थ-जो दृष्टि विषम, छिन्न, दग्धाभ और वेदनायुक्त हो तो इसे छिन्नांशुका कहते हैं ।

चन्द्रकी दृष्टि ।

दृष्टिः कांस्यसमच्छाया चंद्रकी चंद्रकाकृतिः

अर्थ-कांजी के समान छायावाली और मोरकी चन्द्रका के समान जो दृष्टि होती है उसे चन्द्रकी कहते हैं ।

छत्रकी दृष्टि ।

छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ॥

अर्थ-जो दृष्टि अनेक वर्णों से युक्त छत्रके आकार कीसी होती है उसे छत्रकी नीलिका कहते हैं ।

अविध्य दृष्टि ।

न विध्येदसिरार्होणं दृक्पीनसकासिनाम्
नाजीर्णिभीरुवमिताशिरःकर्णाक्षिशूलिनाम्

अर्थ-जो रोगी शिरावेधके योग्य नहीं है, जो दृष्टिरोग, पीनस और खांसी से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पीडित है, जो अजीर्ण, भीरु, वमित तथा जो सिर, कान और आंखके शूलसे पीडित है, उसके लिंगनाश को वेधना न चाहिये ।

दक्षिणादि व्यध प्रकार ।

अथ साधारणे काले शुद्धसंभोजितात्मनः ।
देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः ॥
यंत्रितस्योपविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः
अंगुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्ट्वोद्धृतं मलम् ॥
स्वनासां प्रेक्षमाणस्य निष्कंपं मूर्ध्नि धारिते ।
कृष्णाद्धांगुलं मुक्त्वा तदर्धांधमपांगतः ॥
तर्जनीमध्यमांगुष्ठैःशलाकां निश्चलं-
धृताम् ।
दैवाच्छिद्रं नयेत्पार्श्वादूर्ध्वमामंथयंश्च्यि १२
स्वयं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् ।
विध्येत्

अर्थ–लिंगनाश के विद्ध करने की यह रीति है कि साधारण कालमें अर्थात् जिस समय अत्यन्त गर्मी, वर्षा वा जाडा न पड रहा हो उसी समय लिंगनाश का व्यध करना चाहिये । विद्ध करने से पहिले विरेचनादि द्वारा रोगी को संशोधित करे और भोजन कराके अच्छी तरह तृप्त करदे । जिस जगह चांदना अच्छा हो उसी जगह रोगी को बैठाकर शस्त्रका प्रयोग करे । शस्त्रका प्रयोग प्रातःकाल करना उचित है । वैद्य जानुकी बराबर ऊंचे आसन पर बैठकर शस्त्र प्रयोग करे । शस्त्रका प्रयोग करने के समय रोगी हिलने न पावै ऐसी रीति से उसको सुयंत्रित करे, शस्त्रके प्रयोगसे पहिले मुखकी भाफ से रोगी के नेत्रको स्वेदित करे फिर उस स्विन्न नेत्रको अंगूठे से मर्दित करे, इस तरह जब नेत्रका मल फूल उठे तब रोगी के मस्तक को सीधा करके पकडले । रोगी को उचित है कि अपनी दृष्टि नासिका के अग्रभाग में लगा लेवै । फिर वैद्य तर्जनी उंगली और अंगूठे से निश्चलरूप से सलाई को पकडकर कृष्णमंडल से आधे अंगुल और अपांग से चौथाई अंगुल स्थान छोडकर दैवकृत छिद्र के समीप लेजाय और ऊर्ध्व भाग में आलोडन करके शलाई का प्रयोग करे । तथा दाहिने हाथ से बांये नेत्रको और बांये हाथ से दाहिने नेत्र को विद्ध करे ।

सुविद्ध के लक्षण ।

सुविद्धे शब्दः स्यादरुक्चांबुलवस्रुतिः ।
सांत्वयद्धातुरं चानु नेत्रं स्तन्येन सेचयेत् ।
शलाकायास्ततोऽग्रेण निर्लिखेन्नेत्रमंडलम्
अबाधमानः शनकैर्नासां प्रतिमुदंस्ततः ।
उत्सिंचनाच्चापहरेदृष्टिमंडलगं कफम् १५
अथ दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः १६
स्थिरे दोषे चले वापि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः
घृतप्लुतं पिचुंदत्त्वा बद्धाक्षं शाययेत्ततः ।
विद्धादन्येन पार्श्वेन तमुत्तानं द्वयोर्व्यधे १७
निवाते शयनेऽभ्यक्तशिरःपादे हिते रतम्

अर्थ–सुविद्ध होनेपर शब्द होता है, वेदना नहीं होती और लेशमात्र जलका स्राव होता है । विद्ध करने के पीछे रोगी को आश्वासन देना चाहिये तथा स्त्रीका दूध नेत्रों पर डालना चाहिये, फिर सलाई की नोक से दृष्टिमंडल को ऐसी रीतिसे विलेखन करै कि दर्द न हो । फिर धीरे धीरे सुडक सुडक कर दृष्टिमंडल के कफको खींचकर नासिका द्वारा निकाल देवै । जो दोष स्थिर वा चलायमान हो तो नेत्रमें अधिकता से स्वेदन करके जब वह दुष्ट पदार्थ दिखाई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देने लगे तब धीरे धीरे उसे सलाई से खींच लेवै। तदनंतर कपडे को घी में भिगोकर आंख पर बांधदे और रोगीको वातरहित स्थानमें विपरीत रीति से शयन करावै अर्थात् जो दक्षिण नेत्र विद्ध हुआ हो तो बांई करवट से, वामनेत्र विद्ध हुआ हो तो दाहिनी करवट से और दोनों नेत्र विद्ध हुए हों तो चित्त शयन करादे उसके मस्तक और दोनों तळुओं पर तेल चुपडदे तथा हितकारी आहार विहारादि में रत रक्खै।

सात दिनतक वार्जित कर्म।

क्षवथुं कासमुद्गारं छीवनं पानमंभसः १८
अधोमुखस्थितिं स्नानं दंतधावनभक्षणम्।
सप्ताहं नाचरेत्स्नेहपीतवच्चात्र यंत्रणा १९

अर्थ-छींक, खांसी, डकार, छीवन, जलपान, अधोमुखस्थिति, स्नान और दंतधावन ये काम सातदिन तक नेत्रविद्धरोगी को छोड देने चाहिये और इसमें स्नेहपीत के समान नियमपूर्वक रहना उचित है।

शक्तिके अनुसार लंघनादि।

शक्तितो लंघयेत्तंको यावद्रुजि कोष्णेन सर्पिषा
सव्योषामलकं वातघ्नक्वाथसंयुतं द्रवम्
विलेपी वा व्यहाच्चास्य क्वाथैर्मुक्त्वाक्षि सेचयेत्।
वातघ्नैःसप्तमे त्वह्नि सर्वथैवाक्षि मोचयेत्

अर्थ--शक्तिके अनुसार रोगी को लंघन कराना चाहिये, जब तक पीडा बिलकुल दूर न हो तब तक गुनगुना घी ऊपर से डालता रहै। त्रिकुटा और आमला मिलाकर घृतके साथ मुंने हुए जौ का पना वा विलेपी खाने को दे। तीन दिन पीछे नेत्रों की पट्टी खोलकर वातनाशक क्वाथ से परिषेक करे। एक सप्ताह पीछे एक बार खोलदे और फिर न बांधे।

अतिसूक्ष्मदर्शन निषेध।

यंत्रणामनुरुध्येत दृष्टेरास्थैर्यलाभतः।
रूपाणि सूक्ष्मदीप्तानि सहसा नावलोकयेत्

अर्थ--जब तक दृष्टिमें स्थिरता न हो तब तक नियमपूर्वक रहना उचित है। दृष्टिके स्थिर होनेपर भी अति सूक्ष्म और चमकीली वस्तुओं को सहसा नहीं देखना चाहिये।

उपद्रवोंके अनुसार चिकित्सा।

शोफरागरुजादिनामधिमंथस्य चोद्भवः।
अहितैर्वेधदोषाच्च यथास्वं तानुपाचरेत्

अर्थ--अहित सेवन और वेध दोष के कारण अधिमंथ में सूजन, ललाई और वेदनादि उपद्रव होते हैं, इन उपद्रवों को यथायोग्य चिकित्सा के अनुसार शांत करे।

मुखलेप।

कल्कितैः सघृता दूर्वायवगौरिकसारिवाः।
मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपशांतये॥

अर्थ--वेदना और रोगकी शांति के निमित्त दूब, जौ, गेरू और अनंतमूल इन सब द्रव्यों को पीसकर और घी में सानकर मुख पर लेप करना चाहिये।

अन्य प्रयोग।

ससर्षपास्तिलास्तद्वन्मातुलुंगरसाप्लुताः।
पयस्यासारिवानंतामंजिष्ठामधुयष्टिभिः॥
अजाक्षीरयुतैर्लेपः सुखोष्णः शर्मकृत्परम्।

अर्थ--तेल और सरसों को पीसकर और बिजौरे के रसमें सानकर लेप करनेसे पूर्ववत् गुण होता है। दुग्धका, श्यामालता अनन्तमूल, मजीठ, मुलहटी, इन सब द्रव्यों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को बकरी के दूधमें सानकर और आगपर गुनगुना करके लेप करनेसे विशेष उपकार होता है ।

आश्चोतनविधि ।

रोध्रसैंधवमृद्वीकामधुकैरुद्धगलं पयः ।
शृतमाश्चोतनं योज्यं रुजारागविनाशनम् ।

अर्थ–लोध, सेंधानमक, दाख और मुलहटी इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पकाकर आश्चोतन (आंखमें टपकाना) करने से वेदना शांत होजाती है ।

अन्य प्रयोग ।

मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितान्वितैः
वातघ्नसिद्धे पयसि शृतं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
पद्मकादिप्रतीवापं सर्वकर्मसु शस्यते २८

अर्थ–मुलहटी, नीलकमल, कूठ, दाख, लाख और चीनी इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पकाकर आश्चोतन करे । वातनाशक द्रव्यों के काढे के साथ घी से चौगुना दूध और पद्मकादिगण का कल्क डाल कर पाकविधि से घृत पकाकर आश्चोतन के काम में लावे ।

सिरामोक्षादि ॥

सिरां तथानुपशमे स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्
मंथोक्तां च क्रियां कुर्याद्व्यधे रूढेऽञ्जनं मृदु

अर्थ–ऊपर कही हुई विधियों से वेदना शांत न होने पर रोगीको स्निग्ध और स्विन्न करके उसकी सिरा को खोल दे, तथा गंथरोग में कही हुई चिकित्सा काममें लावे । सिराव्यधका घाव सूखजाने पर अंजन लगावे।

विद्ध नेत्रमें वर्ति ॥

आढकीमूलमरिचहरितालरसांजनैः ।
विद्धेऽक्षिणि सगुडावर्तिर्योज्यादिव्यांबुपेषिता.

अर्थ–अडहर की जड, काळीमिरच, हरताल और रसौत इन सब द्रव्यों को वृष्टि के जलमें पीसकर और गुड मिलाकर बत्ती बनाकर विद्ध नेत्रमें लगावे ।

विद्धनेत्रमें पिंडाजन ॥

जातीशिरीषधवमेषविषाणिपुष्प-
वैडूर्यमौक्तिकफलं पयसा सुपिष्टम् ।
आजेन ताम्रमसुना प्रतनु प्रदिग्धं
सप्ताहतःपुनरिदं पयसैव पिष्टम् ३१
पिंडांजनं हितमनातपशुष्कमक्ष्णि
विद्धे प्रसादजननं बलकृच्च दृष्टेः ।

अर्थ–चमेली, सिरस, धायके फूल, मेंढासिंगी, वैडूर्यमणि, मोती इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पीसकर इसको एक तांबेके पात्र पर पतला पतला लीपदे । एक सप्ताह पीछे तांबे के पात्रके प्रलेपको बकरी के दूधमें फिर पीसे । फिर इस पिंडाजन को छाया में सुखाकर विद्ध नेत्रमें लगावे । यह दृष्टिको प्रफुल्लित करनेवाला और बलकारक है

अन्य प्रयोग ॥

स्रोतोजविद्रुमशिलांबुधिफेनतार्क्ष्यै-
रस्यैव तुल्यमुदितं गुणकल्पनाभिः ।

अर्थ–सुर्मा, मूंगा, मनसिल और समुद्रफेन इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें पीसकर पूर्ववत् पिंडांजन करे । यह भी पूर्वोक्त गुणविशिष्ट होता है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने लिंगनाशप्रतिषेधं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पंचदशोऽध्यायः।

—:※:—

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः

अर्थ--अब हम यहां से सर्वाक्षिरोगविज्ञाननामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वातज नेत्राभिष्यंद के लक्षण।

"वातेननेत्रेऽभिष्यंदेनासानाहोऽल्पशोफता शंखाक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम् १ शुष्कालंबूपिकाशीतमच्छमश्रु चला रुजः निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राज्जंतूनामिव सर्पणम्। अस्थाभ्रातमिवाभातेसूक्ष्मैःशल्यैरिवाचितम् स्निग्धोष्णैरुपशमनं

अर्थ—वात करके अभिष्यन्दित हुए नेत्र में नासानाह, अल्पसूजन, कनपटी, आंख, भृकुटी, ललाट, तोद, स्फुरण, भेदन, नेत्रके मलमें सूखापन और अल्पता, निर्मल और शीतल अश्रुपात, वेदना में अस्थिरता, बडे कष्टसे नेत्रका खुलना मुंदना, आंखों में चींटी सी चलना, नेत्र फूला हुआ और छोटे छोटे कांटों से व्याप्त तथा स्निग्ध और उष्ण उपचार से शांति ये लक्षण होते है।

अधिमंथ में कर्णनादादि॥

सोऽभिष्यंद उपेक्षितः॥
अधिमंथो भवेत्तत्र कर्णयोर्नदनं भ्रमः।
अरण्येव च मथ्यंते ललाटाक्षिभ्रुवादयः।

अर्थ—वाताभिष्यन्द रोग की चिकित्सा करनेमें उपेक्षा करने से अधिमंथकी उत्पत्ति होती है। इसमें कर्णनाद और भ्रम की उत्पत्ति होजाती है, तथा ललाट, नेत्र और भृकुटी आदि में अरणी के मथने की सी पीड़ा होती है।

हताधिमंथ।

हताधिमंथःसोऽपिस्यात्प्रमादात्तेनवेदनाः अनेकरूपाजायंते व्रणोदृष्टौ च दृष्टिहा॥५॥

अर्थ—आधिमंथ की उपेक्षा करने से हताधिमंथ की उत्पत्ति होती है, इसमें अनेक प्रकार की वेदना होती है तथा दृष्टि मण्डलनाशक व्रण उत्पन्न हो जाता है।

अन्यतोवात के लक्षण॥

मन्याक्षिशंखतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयेत्।
व्यथां तीव्रामपैच्छिल्यरागशोफं विलोचनम्
संकोचयति पर्यश्रु सोऽन्यतो वातसंज्ञितः।

अर्थ—जिस रोग में वायु मन्या और कनपटी से अथवा अन्य स्थान से तीव्र वेदना उत्पन्न करती है इसके द्वारा नेत्र संकुचित होजाते हैं, इसमें नेत्रों में पिच्छिलता, ललाई और सूजन कुछ नहीं होता हैं, किंतु आंसू बहा करते हैं।

वातविपर्यय के लक्षण।

तद्वन्नेत्रभवेज्जिह्मसूनं वातविपर्यये॥७॥

अर्थ—अन्यतोवात की तरह वातविपर्य्य में नेत्र टेढे और छोटे होजाते हैं।

पित्ताभिष्यन्द के लक्षण।

दाहो धूमायनं शोफः श्यावता वर्त्मनो बहिः
अंतःक्लेदोऽश्रुपीतोष्णं रागः पीताभदर्शनम्
क्षारोक्षितक्षताक्षित्वं पित्ताभिष्यंदलक्षणम्

अर्थ—पित्ताभिष्यन्द नेत्ररोग में नेत्रों में दाह, नेत्रों से धूआं निकालने की वेदना, सूजन, पलकों के बाहर श्यावतर्णता, भीतर क्लेद, आंसू पीले और गरम, नेत्र में ललाई और पीला दिखाई देना, क्षार द्वारा व्याप्तता और घाव ये सब लक्षण उपस्थित होतेहैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्ताधिमंथ के लक्षण।

ज्वलदंगारकीर्णाभं पक्वपिंडसमप्रभम् ९
अधिमंथे भवेन्नेत्रं

अर्थ--पित्ताभिष्यन्द से उत्पन्न अभिष्यन्द में नेत्र जलते हुए अंगार के सदृश और और पक्कत पिंड के समान कांति वाला हो जाता है।

कफाभिष्यन्द के लक्षण।

स्यंदे तु कफसंभवे।
जाड्यं शोफोमहान्कंडूर्निद्रान्नानभिनंदनम्
सांद्रस्निग्धबहुश्वेतपिच्छावद्वर्त्मकाश्रुता।
अधिमंथे नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमंडलम् ११
प्रसेको नासिकाध्मानं पांशुपूर्णाभिवेक्षणम्

अर्थ-कफाभिष्यन्द नेत्र रोग में जड़ता, महान् सूजन, खुजली, निन्दा, अन्न में अनभिलाषा, आंखों के मैल और आंसुओं में गाढापन, स्निग्धता, अधिकता, श्वेतता और पिच्छिलता होती है। तथा आधिमंथ रोग में काले मण्डल में नीचापन और सफेद मण्डल में ऊंचापन होता है। प्रसेक नासिका में फूलापन, नेत्रों में धूलसी भर-जाना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

रक्ताभिष्यन्द के लक्षण।

रक्ताश्रुराजीदूषीकशुक्लमंडलदर्शनम् १२
रक्तस्यंदेन नयनं सपित्तस्यंदलक्षणम्।

अर्थ-रक्ताभिष्यन्द में आंसू, नेत्र की शिरा, आंखका मल, शुक्लमंडल और दृष्टिमंडल ये सब लाल होजाते हैं, तथा इसमें पित्ताभिष्यन्द के संपूर्ण लक्षण पाये जाते हैं।

रक्ताधिमंथ के लक्षण।

मंथेऽक्षि ताम्रपर्यंतमुत्पाटनसमानरुक् १३
रागेण बंधूकनिभं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम्।
असृङ्निमग्नारिष्टाभं कृष्णमग्न्याभदर्शनम्

अर्थ--अधिमंथमें नेत्रों के किनारे तांबे के से रंगके तथा नेत्रों में उखाडने की सी वेदना होती है। इसरोग में बन्दूक के फूल के समान ललाई, ग्लानि, हाथका न सहना रुधिर में निमग्नवत, नीमके सदृश कांति, फालापन और अग्नि के समान चमक होजाती है।

अधिमंथ में विषेशता।

अधिमंथाश्चयथास्वंचसर्वेस्यंदाधिकव्यथाः
शंखदंतकपोलेषु कपाले चातिरुक्करः १५

अर्थ--वातादि अधिमंथरोगों में वातजादि अभिष्यन्द के सब लक्षण उपस्थित होते हैं, तथा कनपटी, दांत, खोपडी और कपोल में अधिक वेदना होती है।

शुष्काक्षिपाक के लक्षण।

वातपित्तोत्तरं घर्षतोदभेदोपदेहवत्।
रूक्षदारुणबर्त्माक्षिरुच्छ्रोन्मीलनमीलनम् १६
विकूणनं विशुष्कत्वं शीतेच्छा शूलपाकवत्
उक्तः शुष्काक्षिपाकोऽयं

अर्थ--इसरोग में नेत्रमें करकरापन, तोद, कटनेकी सी वेदना, मलकी हिलसावट, नेत्र के वर्त्मों में रूक्षता और कर्कशता, आंखों के खोलने और बन्द करने में कष्ट होना, आंख में सुकडापन, सूखापन, शीतल वस्तु की इच्छा, शूल और पाक ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग को शुष्काक्षि-पाक कहते हैं, यहरोग वातपित्त की अधिकता से होता है।

सूजनवाला नेत्ररोग।

सशोफः स्याद्भिर्मलैः ॥ १७ ॥
सरक्तैस्तत्र शोफोऽतिरुग्दाहस्रावमानवान्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पक्कोदुंबरसंकाशं जायते शुक्लमंडलम् ॥
अश्रुष्णशीतविशदापिच्छिलाच्छघनं मुहुः।

अर्थ--सशोफनामक नेत्ररोग में सूजन, वेदनाकी अधिकता, दाह और पीडनादि उपद्रव उपस्थित होते हैं, आंखों का श्वेत-मंडल पके हुए गूलकर के समान हो जाता है आंसू कभी गरम, कभी ठंडे, कभी विशद, कभी पिच्छिल, कभी पतले और कभी गाढे निकलते हैं। यह रोग तीनों दोष तथा रक्त द्वारा उत्पन्न होता है।

अक्षिपाकात्ययरोग।

अल्पशोफेऽल्पशोफस्तुपाकोन्यैर्लक्षणैस्तथा
अक्षिपाकात्यये शोफः संरंभः कलुषाक्षता।
कफोपदिग्धमसितं सितं प्रक्लेदरागवत् ॥
वाहो दर्शनसंरोधो वेदनाश्चानवस्थिताः।

अर्थ--अल्प शोफरोग में सूजन कम होती है, अक्षिपाकनामक रोग में शुक्लाक्षि पाक के संपूर्ण लक्षण उपस्थित होते हैं। इनके सिवाय अक्षिपाकात्ययरोग में सूजन, संरंभ, आंखुओं में कलुषता, कालेमंडल में कफकी लिप्तावट, सफेदमंडल में गीलापन और ललाई, दाह, दृष्टिका संरोध, वेदना और उद्विग्नता ये लक्षण होते हैं।

अम्लोषित के लक्षण।

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोल्वणैर्मलैः ॥
शिराभिर्नेत्रमारूढः करोति श्यावलोहितम्।
सशोफरागपाकाश्रु भृशं चाबिलदर्शनम् ॥
अम्लोषितोऽयम्

अर्थ--पित्त और रक्त की अधिकतावाले दोषों के कारण अन्नका सारभाग खट्टा होकर शिराओं में होता हुआ नेत्रको श्यावलोहित वर्ण करदेता है। तथा सूजन, दाह, पाक अश्रुपूर्ण और धुंधलापन पैदा करदेता है। यह अम्लोषित के लक्षण हैं।

सर्वनेत्ररोगोंकीसंख्या।

इत्युक्ता गदाः षोडश सर्वगाः।

अर्थ--इस प्रकार से सर्वाक्षिगत रोग सोलह प्रकार के होते हैं।

असाध्यरोग।

हताधिमंथमेतेषु साक्षिपाकात्ययं त्यजेत् ॥

अर्थ--इन सब रोगों में से हताधिमंथ और अक्षिपाकात्यय ये दोनों रोग त्याज्यहैं।

दृष्टिनाशनमें कालपरिमाण।

घातोद्भूतः पंचरात्रेण दृष्टिं
क्लेदाहेन श्लेष्मजातोऽधिमंथः।
रक्तोत्थो हंति तद्वच्छिरास्राव-
मिथ्याचारात् पैत्तिकः सप्त पञ्च ॥ २४ ॥

अर्थ--मिथ्या आहार विहारादि से वातज अधिमंथ पांच दिनमें, कफज अधिमंथ सात दिनमें, रक्तज अधिमंथ तीन दिन में और पैत्तिक अधिमंथ में तत्काल दृष्टि का नाश होजाता है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने सर्वाक्षिरोगविज्ञानीयः पंचदशोऽध्यायः॥

षोडशोऽध्यायः।

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधं-
व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहांसे सर्वाक्षिरोग प्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राग्रूपमें कर्तव्य ।

प्राग्रूप एव स्यंदेषु तीक्ष्णगंडूषनावनम् ।
कार्येदुपवासं च कोपादन्यत्र वातजात् ॥

अर्थ—वातज अभिष्यन्द के अतिरिक्त अन्य अभिष्यंदों में रोगका पूर्वरूप उपस्थित होते ही तीक्ष्ण गंडूष, तीक्ष्ण नस्य और उपवास कराना चाहिये ।

दाहशान्तिमें विडालादिकारण ।

दाहोपदेहरागाश्रुशोफशांत्यै विडालकम् ।
कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः ॥
सरसांजनयष्ट्याह्वनतचंदनसैंधवैः ।
सैंधवं नागरं तार्क्ष्यं भृष्टं मंडेन सर्पिषः ॥
वातजे घृतभृष्टं वा बोज्यं शबरदेशजम् ।
मांसीपद्मककाकोलीयष्ट्याह्वैः पित्तरक्तयोः ॥
मनोह्वाफलिनीक्षौद्रैः कफे सर्वैस्तु सर्पजे ।

अर्थ दाह, लिहसावट, ललाई, आंसू, सूजन, इनकी शांतिके लिये विडालक करना चाहिये । सब प्रकार के अभिष्यंदों में तेजपात, इलायची, कालीमिरच, स्वर्णगेरू, रसौत, मूलहटी, तगर, चंदन, सेंधानमक, इन सबका विडालक लेप करें । वातज अभिष्यन्द में घृतमंड में भूना हुआ सेंधा नमक, सौंठ और रसौत अथवा घी में भुना हुई सावरलोध का प्रयोग करना चाहिये । रक्तपित्तज अभिष्यंदमें जटामांसी, पदमाख, काकोली, और मुलहटी का लेप करना चाहिये कफज अभिष्यन्द में मनसिल, प्रियंगु और शहत का लेप करें । और सान्निपातज अभिष्यन्द में ऊपर कही हुई संपूर्ण औषधों को मिलाकर विडालक करना चाहिये । पक्ष्म को छोडकर जो लेप सब जगह किया जाता है उसे विडालक कहते हैं ।

चूर्णावगुंठन ॥

सितमरिचभागमेकं चतुर्मनोह्वं-
द्विरष्टशावरकम् ।
संचूर्ण्य वस्त्रबद्धं प्रकुपितमात्रेऽवगुंठनं नेत्रे

अर्थ-नेत्रके प्रकुपित होते ही सहंजने का बीज एक भाग, मनसिल चार भाग, और लोध १६ भाग, इन सब द्रव्यों को अच्छी तरह पीसकर और पतले वस्त्रमें बांधकर उससे नेत्रको ढकना चाहिये ।

अन्य चूर्ण ॥

आरण्याइछगणरसे पटावबद्धाः
सुस्विन्नानखविसुपीकृताःकुलत्थाः ।
तच्चूर्णं सकृदवचूर्णनान्निशीथे
नेत्राणां विधमति सद्य एव कोपम् ॥

अर्थ—वन कुलथी को पोटली में बांधकर गोबर के रस में भिगोकर उसको नखों से छीलकर साफ करले, फिर इसको आधीरात के समय पीसकर अवचूर्णित करने से नेत्र कोप जाता रहता है ।

नेत्र में औषधधारण ॥

घोषाभयातुत्थकयष्टिरोध्रै-
र्मृती सलूक्ष्मैः श्रथवस्त्रबद्धैः ।
ताम्रस्थधान्याम्लनिमग्नमूर्ति-
रक्तिं जयत्यक्षिणि नैकरूपाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—कडवी तोरई, हरड, नीलाथोथा, मुलहटी, लोध इन सब द्रव्योंको महीन पीस कर पतले कपडे में बांधे और तांबे के पात्र में कांजी भरकर उस में उस पोटली को डबोदे और इसको आंख में निचोड़ने से अनेक प्रकार की वेदना दूर होजाती है ।

सर्व दोषों में परिषेक ॥

षोडशभिः सलिलपलैः
पलं तयैकं कटंकटेर्याः सिद्धम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेकोष्टभागशिष्टः
क्षौद्रयुतः सर्वदोषकुपिते नेत्रे ॥ ८ ॥

अर्थ--चौंसठ तोले पानी में चार तोले दारुहलदी को पकावै, जब आठवां भाग शेष रहै तब उतार कर छानले, इस क्वाथ में शहत मिलाकर परिषेक करने से सब प्रकार के कुपित नेत्र शांत होजाते हैं।

नेत्रपीड़ा पर सहजने का रस ॥

वातपित्तकफसान्निपातजां
नेत्रयोर्व्यथुविधामपि व्ययम्।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः
शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ ९ ॥

अर्थ--केवल सहजने के पत्तों के रस में शहत मिलाकर प्रयोग करने से वातज, पित्तज, कफज वा त्रिदोषज सब प्रकार की नेत्र पीड़ा जाती रहती है।

नेत्ररोग पर सक्तु पिण्डिका ॥

तरुणमुरुबूकपत्रं
मूलं च बिभिद्यासिद्धमाजे क्षीरे।
वाताभिष्यंदरुजं
सद्योविनिहंति सक्तुपिंडिका चोष्णा।

अर्थ- अरंड की कोपल और जड़ को कूटकर बकरी के दूध में सिद्ध करके नेत्रों में लगावै इससे वातज अभिष्यन्द शीघ्र जाता रहता है, अथवा दोषादिके अनुसार अरण्डकेजड़ और पत्तोंकी पिण्डी गरम कर के बांध देवे।

वातज अभिष्यन्द में आश्चोतन ॥

आश्चोतनंमारुतजे क्वाथोबिल्वादिभिर्हितः
कोष्णः सहैरंडजटावृहतीमधुशिग्रुभिः ११
हीबेरवक्त्रशाङ्गेष्टोदुंबरत्वक्षु साधितम्।
सांभसा पयसाजेन शूलाश्चोतनमुत्तमम्।
मञ्जिष्ठारजनीलाक्षाद्राक्षाद्विमधुकोत्पलैः।
क्वाथः सशर्करः शीतः सेचनंरक्तपित्तजित्

अर्थ--वातज अभिष्यन्द में अरण्ड की जड़, कटेरी, लाला सहजना और बिल्वादि गण का क्वाथ कुछ गरम २ आंख में टपकाना हित है, नेत्रवाला, तगर, केजा की बेल, गूलर इनकी छाल को जल और बकरी के दूध में पकावै, इसका आश्चोतन करने से नेत्र पीड़ा शांत होजाती है, मजीठ, हलदी, लाख, किशमिश, दोनों प्रकार की मुलहटी और कमल इनके काढे में शर्करा मिलाकर ठंडा करके आंखों में डाले तो रक्तपित्त अभिष्यन्द जाता रहता है।

रक्तपित्ताभिष्यन्द की औषध ॥

कसेरुयष्ट्याह्वरजस्तांतवे शिथिलं स्थितम्
अम्बुद्विद्यासु निहितं हितं स्यादेऽस्रपित्तजे

अर्थ--रक्तपित्ताभिष्यन्द में कसेरू और मुलहटी के चूर्ण को पतले वस्त्र में ढीला बांधकर वर्षा के जल में भिगो भिगोकर आंख में निचोड़ना चाहिये।

दाहादिनाशक रोग ॥

पुंड्रयष्टीनिशामृतापृक्ता स्तन्ये सशर्करे।
छागदुग्धेऽथवा दाहरुग्रागाश्रुनिवर्तनी१५

अर्थ--श्वेतकमल, मुलहटी, हलदी इन को पीसकर पोटली बनाकर स्त्री वा बकरी के शर्करायुक्त दुग्ध में भिगो देवै, इनको बार बार आंख में निचोड़ने से दाह, वेदना, ललाई और आंसुओं का गिरना बन्द हो जाता है।

पित्तादिनाशक प्रयोग।

श्वेतरोध्रं समधुकं घृतभृष्टं सुचूर्णितम्।
वस्त्रस्थं स्तन्यमृदितं पित्तरक्ताभिघातजित्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सफेद लोध और मुलहटी को घी में भूनकर महीन पीसले, इसको पोटली में बांधकर स्त्री के दूधमें मलकर इस दूधको नेत्रोंमें निचौडे। इससे पित्तरक्तज और अभिघातज अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ।

कफाभिष्यंद की औषध ।

नागरत्रिफलानिंबवासारोध्ररसः कफे ।
कोष्णमाश्चोतनं

अर्थ–कफज अभिष्यन्दमें सोंठ, त्रिफला नीम, अडूसा, और लोध इनके काढेका ईषदुष्ण अवस्था में आश्चोतन करे ।

त्रिदोषज अभिष्यंद में कर्तव्य ।

मिश्रैर्भेषजैः सान्निपातिके ।

अर्थ–सान्निपातिक अभिष्यंदमें वातजादि अभिष्यंदों में कही हुई सब प्रकार की मिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

अन्य प्रयोग ।

सर्पिःपुराणं पवने पित्ते शर्करयान्वितम् ।
व्योषसिद्धं कफे पीत्वा यवक्षाराक्षचूर्णितम्
स्रावयेदुधिरं भूयस्ततः स्निग्धं विरेचयेत् ।

अर्थ–वातजअभिष्यंदमें पुराना घृत और पित्तजमें शर्करायुक्त घृत हितकारी है । कफज अभिष्यंद में त्रिकुटा के साथ घी को पकाकर उसमें जवाखार मिलाकर उस घी को पान कराके रक्तमोक्षण करे । पीछे स्निग्ध विरेचन का प्रयोग करे ।

लेपादि प्रयोग ।

आनूपवेसवारेण शिरोवदनलेपनम् १९
उष्णेन शूले दाहे तु पयः सर्पिर्युतैर्हिमैः ।

अर्थ–अभिष्यंदरोग में शूलके समान वेदना होनेपर आनूप मांसके वेसवार को कुछ गरम करके सिर और मुखपर लेपकरे । किन्तु दाह होने पर दूध और घी मिलाकर शीतल लेप करना चाहिये ।

तिमिरादि में यथायोग्य चिकित्सा ।

तिमिरप्रतिषेधं च धीमान्कुर्याद्यथायथम् ।
अयमेव विधिः सर्वो मंथादिष्वपि शस्यते

अर्थ–तिमिररोग को दूर करने के निमित्त दोषादि का विचार करके चिकित्सा करनी चाहिये । मंथादि रोगों में उक्त संपूर्ण विधि हितकारक है ।

भ्रुवादि दाह ।

अशांतौ सर्वथा मंथे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ।

अर्थ–उक्त उपायों के करने पर भी यदि मंथरोग की शांति न हो तो भृकुटियों के ऊपर दाह करना चाहिये ।

वातादिरोगनाशिनी वर्ति ।

रूप्यं रूक्षेण गोदध्ना लिंपेन्नीलत्वमागते ।
शुष्के तु मस्तुना वर्तिर्वाताक्ष्यामयनाशिनी

अर्थ–चांदी के पत्रपर नवनीत निकाले हुए गौके दही का लेप करे, जब यह नीला होजाय और सूखजाय तब उस दही की बत्ती बनाकर प्रयोग करे इससे वातसंबंधी नेत्ररोग जाते रहते हैं ।

पित्तरक्तनाशिनी वर्त्ती ।

सुमनः कोरकः शंखत्रिफला मधुकं बला ।
पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा

अर्थ–चमेली के फूल की कली, शंख, त्रिफला, मुलहटी और खरैटी इनको वर्षा के जल में पीसकर बत्ती बनाकर प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग जाते रहते हैं ।

कफाक्षिरोगनाशिनी वर्त्ती ।

सैंधवं त्रिफला व्योषं शंखमाभिः समुद्भवः ।
फेनः शैलेयकं सर्जो वर्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सेंधानमक, त्रिकुटा, त्रिफला, शंख, नाभि, समुद्रफेन, शैलेय और राल इनकी बत्ती कफज नेत्ररोगों पर हितकारी है।

पाशुपत नामक योग।

प्रपौंडरीक यष्ट्याह्वं दार्वीत्वक्पत्रलंपचेत् ॥
जलद्रोणे रसे पूते पुनः पक्वे घने क्षिपेत् ॥
पुष्पांजनाद्दशपले कर्षं च मरिचात्ततः।
कृतश्चूर्णोऽथवा वर्तिः सर्वाभिष्यंदसंभवान्
हंति रागरुजाघर्षान् सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत्।
अयं पाशुपतो योगो रहस्यं भिषजां परम् ॥

अर्थ–श्वेतकमल, मुलहटी और दारुहल्दी प्रत्येक आठ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। इस काढेको फिर पकावै, गाढा होनेपर पुष्पांजन दस पल और काली मिरच एक कर्ष इनको महीन पीसकर मिला देवै। इनका चूर्ण वा बत्ती बनाकर प्रयोग करने से संपूर्ण प्रकार के अभिष्यंदों से उत्पन्न हुई नेत्रकी ललाई, वेदना, घर्ष और किरकिराहट तत्काल जाती रहती है तथा दृष्टि स्वच्छ हो जाती है। इसका नाम पाशुपत योग है। यह वैद्योंकी परम गुप्त औषध है।

शुष्काक्षिपाक की चिकित्सा।

शुष्काक्षिपाकेहविषःपानमक्ष्णोश्चतर्पणम्।
घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना ॥
परिषेको हितश्चात्र पयः कोष्णं ससैंधवम्

अर्थ–शुष्काक्षिरोग में घृतपान, तथा जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृतका नेत्रतर्पण, अणु तैल का नस्य और सेंधानमक मिलाकर ईषदुष्ण दुग्ध का परिषेक हितकारी है।

उक्तरोग में अंजन।

सर्पिर्युक्तं स्तन्यपिष्टमंजनं हि महौषधम ॥
वसा चानूपसत्त्वोत्था किंचित्सैंधवनागरा।

अर्थ–स्त्रीके दूध में पिसी हुई सोंठ का अंजन घी मिलाकर अथवा सेंधानमक और सोंठ मिलाकर आनूप जीवोंकी चर्बी का अंजन हितकारी है।

श्रेष्ठांजन।

घृताक्तान् दर्पणे घृष्टान् केशान् मल्लकसंपुटे ॥
दग्ध्वाज्यपिष्टा लोहस्था सा मषी श्रेष्ठमंजनम्

अर्थ–कुछ बालों को घी में भिगोकर दर्पण पर घिस ले और इनको मलकसम्पुट में जलाकर इस काजल को लोहे के पात्र में रखले, फिर घी में सानकर अञ्जन लगावै, यह परमोत्तम अञ्जन है।

सिराव्यधादि।

सशोफे चाल्पशोफे च स्निग्धस्य
व्यधयेत्सिराम् ॥ ३१ ॥
रेकः स्निग्धैः पुनर्द्राक्षापथ्याकाथात्रिवृद्घृतैः।

अर्थ–सूजनवाले वा अल्प सूजन वाले रोगी को स्निग्ध करके उसकी फस्त खोलनी चाहिये, पीछे किशमिश और हरडके काढे में निसोत और घी मिलाकर विरेचनार्थ देवै।

शूलनाशक परिषेक।

श्वेतरोध्रं घृतभृष्टं चूर्णितं तांतवास्थितम् ॥
उष्णांबुना विमृदितं सेकः शूलहरः परम्।

अर्थ–घी में भुनी हुई सफेद लोध को पीसकर वस्त्र में बांधले और गरम जल में मर्दन करके आंखमें सेक करे, इससे नेत्र शूल जाता रहता है।

आश्चोतन में क्वाथ।

दार्वीमपौंडरीकस्य काथो वाश्चोतने हितः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–दारुहलदी और प्रपौंडरीक का काढा आश्चोतन में हितकारी है ।

संधाव प्रयोग ।

संधावाख्य प्रयुंजीत घर्षरागाश्रुरुग्धरान् ।

अर्थ–रिगड, ललाई, आंसू पडना, और वेदना ये सब संधावाख्य औषधों के प्रयोग से जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

ताम्रे लोहे मूत्रघृष्टं प्रयुक्तं
नेत्रे सर्पिर्धूपितं वेदनाघ्नम् ।
ताम्रैर्घृष्टो गव्यदध्नः सरो वा
युक्तः कृष्णासैंधवाभ्यां वरिष्ठः ॥ ३४ ॥

अर्थ–लोहे के पात्र में गोमूत्र डालकर एक तांबे के टुकडे को घिसकर उसमें घी की धूनी देकर नेत्रों में लगावै तो वेदना जाती रहती है, अथवा गौके दूधकी मलाई में तांबा घिसकर उसमें पीपल और सेंधा नमक मिलाकर आंख में आंजने से भी दर्द कम होजाता है ।

अन्य प्रयोग !

शंखं ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः
शम्याः पत्रैर्धूपितं तद्वयैश्च ।
नेत्रे युक्तं हंति संधावसंज्ञं
क्षिप्रं घर्षं वेदनां चातितीव्राम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–तांबे के पात्र में स्त्री के दूध के साथ शंखको घिसकर घृत में भीगे हुए शमीपत्र वा जौ की धूनी देवै । इस संधावसंज्ञक औषधको नेत्र में लगाने से घर्ष और तीव्र वेदना शीघ्र जाते रहते हैं ।

दाहनाशक प्रयोग ।

उदुंबरफलं लोहे घृष्टं स्तन्येन धूपितम् ।
साज्यैः शमीच्छदैर्दाहशूलरागाश्रुहर्षजित् ॥

अर्थ–लोहे के पात्र में दूध के साथ गूलर को घिसकर घृताक्त शमीपत्र की धूनी देकर आंख में लगावै इससे दाह, शूल, ललाई, आंसू और हर्ष जाते रहते हैं ।

शोफनाशक प्रयोग ।

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसंपुटे ।
घृतेन धूपितो हंति शोफार्शोऽक्षिवेदनाः ॥

अर्थ–सहजने के पत्तों के रसको तांबे के पात्र में तांबे से घिसकर घी की धूनी देकर आंख में लगाने से सूजन, घर्ष, आंसू और वेदना जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

तिलांभसा मृत्कपालं ताम्रेघृष्टं सुधूपितम्
निंबपत्रैर्घृताभ्यैकर्घर्षशूलाश्रुरागजित् ॥

अर्थ–कांसी के पात्र में तिलके जलके साथ मिट्टी के ठीकरे को घिसकर घृताक्त नीमके पत्तों की धूनी देकर आंख में लगाने से घर्ष, शूल, आंसू और ललाई जाते रहते हैं ।

आश्चोतन ।

संधावेनांजिते नेत्रे विगतौषधवेदने ।
स्तन्येनाश्चोतनं कार्यं त्रिः परं नांजयेच्च तैः ॥

अर्थ–संधावसंज्ञक औषध के नेत्रों में लगाने के पीछे जब दर्द जाता रहै और औषध का असर भी दूर होजाय तब स्त्री के स्तनों का दूध आंखों में टपकावै । संधाव नामक अंजन तीन बार से अधिक नहीं लगाना चाहिये ।

घर्षादिनाशक गुटिका ।

तालीसपत्रचपलागतलोहरजांजनैः ।
जातीमुकुलकासीससैंधवैर्मूत्रपेषितैः ॥
ताम्रमालिप्य सप्ताहं धारयेत्पेषयेत्ततः ।
मूत्रेणैवानु गुटिकाः कुर्याच्छायविशोषिताः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ताः स्तन्यघृष्टा घर्षाश्रुशोफकंडूविनाशनाः।

अर्थ–तालीसपत्र, चपला, तगर, लोह चूर्ण, सौवीरांजन, चमेली के फूल की कली हीराकसीस, सेंधा नमक इन सबको गोमूत्र में पीसकर तांबे के पात्र पर पोतकर सात दिन तक रहने दे। सात दिन पीछे इस औषधको तांबे के पात्र से खुरचकर फिर गोमूत्र में पीसकर गोली बनावै। इन गोलियों को छाया में सुखाकर स्तनदुग्ध में घिसकर नेत्रमें लगावे। इस से घर्ष, आंसू गिरना, सूजन और खुजली जाते रहते हैं।

शोफनाशक अन्यप्रयोग।

व्याघ्रीत्वङ्मधुकं ताम्ररजोजाक्षीरकल्कितम्
शम्यामलकपत्राज्यधूपितं शोफरुक्प्रणुत्।

अर्थ कटेरी की छाल, मुलहटी और तांबे का चूर्ण इन सब द्रव्यों को बकरी के दूधमें रिगडकर घी में सने हुए शमी और आमले के पत्तों की धूनी देकर आंख में लगाने से सूजन और दर्द जाता रहताहै।

अम्लोषित की चिकित्सा।

अम्लोषिते प्रयुंजीत पित्तामिष्यंदसाधनम्॥

अर्थ–अम्लोषित में पित्तामिष्यन्द के समान चिकित्सा करना चाहिये।

उत्क्लिष्टादिक १८ रोग।

उत्क्लिष्टाः कफपित्तास्रनिचयोत्थाः कुकूणकः
पक्ष्मोपरोधः शुष्काक्षिपाकः पूयालसो बिसः
पोथकयम्लोषितोल्पाख्यः स्यंदमंथा विनानिलात्
एतेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुबंधिनः।
चिकित्सा पृथगेतेषां स्वंस्वमुक्ताथ वक्ष्यते

अर्थ–कफज, पित्तज, रक्तज और सन्निपातज उत्क्लिष्ट, कुकूणक, पक्ष्मोपरोध, शुष्काक्षिपाक, पूयालस, बिस, पोथकी, अम्लोषित, अल्पाख्य अभिष्यन्द और वात रहित सब प्रकार के अधिमंथ इन अठारह प्रकार के दीर्घकालानुबंधी रोगों को पिल्ल कहते हैं। इनकी अलग अलग चिकित्सा का वर्णन कर दिया गया है, अब पिल्लीभूत इन सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया जायगा।

पिल्लीभूत की सामान्य चिकित्सा।

पिल्लीभूतेषु सामान्यादथ पिल्लाक्षिरोगिणः
स्निग्धस्य छर्दितवतः शिराविद्धहृतासृजः।
विरिक्तस्य च वर्त्मानु निर्लिखेदाविशुद्धितः

अर्थ–रोगों के पिल्लीभूत होने पर रोगी को स्नेहद्वारा स्निग्ध, वमनकारक औषध द्वारा वमन, शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण, तथा विरेचक औषध द्वारा विरेचन देकर विशुद्ध होने तक वर्त्म को लेखन करता रहै।

पिल्लनाशक सेक।

सुस्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः।
त्रिंशताकांजिकपलैः पिष्ट्वाताम्रेनिधापयेत्
पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि।
तत्सेकेनोपदेहास्तु कंडूशोफांश्च नाशयेत्

अर्थ-नीलाथोथा एक पल, सहजने के बीज बीस, कांजी तीस पल इनको तांबे के पात्र में पीसकर तांबे के पात्र में रखदे। इस कांजी द्वारा परिषेक करनेसे दीर्घ कालोत्पन्न पिल्ल का अपिल्ल होजाता है। तथा लिहसावट, अश्रुपतन, खुजली और सूजन जाते रहते हैं।

पिल्ल में अंजन।

करंजबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संक्षुद्य साधयेत्काथे पूते तत्र रसक्रिया ५०
अंजनं पिल्लभैषज्यं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ।

अर्थ--कंजा के बीज, तुलसी, चमेली की कली, इनको कूट कर जल में औटावै जब काथ होजावै तब छानकर इसके द्वारा रसक्रिया अंजन का प्रयोग करै । यह पित्त रोग की प्रधान औषध है, इस औषध से पक्ष्म उगने लग जाते हैं ।

अन्य अंजन ।

रसांजनं सर्जरसो रीतिपुष्पं मनःशिला ।
समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
अंजनं मधुना पिष्टं क्लेदकंडूघ्नमुत्तमम् ५२

अर्थ--रसौत, राल, पुष्पांजन, मनसिल समुद्रफेन, सेंधानमक, गेरूमट्टी और काली मिरच इन सब द्रव्यों को शहत में पीसकर अंजन लगाने से क्लेद और खुजली जाते रहते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ।
भावितं वस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ५३

अर्थ हरीतकी के काढे में तगरको पीसकर अंजन लगाने से पिल्लजाता रहताहै तथा स्नेहयुक्त देवदारू को बकरीके मूत्रकी भावना देकर अंजन लगाने से पिल्लरोग जाता रहता है ।

पिल्लशुक्रनाशक वर्ति ।

सैंधवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशंखनाभयः ।
सताम्ररजसो वर्तिः पिल्लशुक्रकनाशिनी ।

अर्थ--सेंधानमक, त्रिफला, पीपल, कुटकी, शंखनाभि और ताम्रचूर्ण इन सब द्रव्यों की वर्ति पिल्ल और शुक्ररोग को दूर करती है ।

अन्य प्रयोग ।

पुष्पकासीसचूर्णो वा सुरसारसभावितः ।
ताम्रे दशाहं तत् पैल्लबपक्ष्मशातजिदंजनम्

अर्थ–पुष्प हीराकसीसके चूर्णको तुलसी के रसकी भावना देकर दस दिनतक तांबे के पात्र में रक्खे । इसका अंजन लगाने से पैल्ल और पक्ष्मशात जाता रहता है ।

पिल्लमें रोमवर्द्धकचूर्ण ।

अलं च सौवीरकमंजनं च
ताभ्यां समं ताम्ररजश्च सूक्ष्मम् ।
पिल्लेषु रोमाणि निषेवितोसौ
चूर्णःकरोत्येकशलाकयापि ॥ ५६ ॥

अर्थ–हरिताल एक भाग, सुर्मा एक भाग, तांबा दो भाग, इनको बारीक पीसकर एक शलाई द्वारा नेत्रमें लगाने से पिल्लरोग में पक्ष्म उत्पन्न होजाते हैं ।

पिल्लरोपण काजल ।

लाक्षानिर्गुंडीभृंगदार्वीरसेन
श्रेष्ठं कार्पासं भावितं सप्तकृत्वः ।
दीपः प्रज्वाल्यः सर्पिषा तत्समुत्था
श्रेष्ठा पिल्लानां रोपणार्थे मषी सा ५७

अर्थ–लाख, निर्गुंडी, भांगरा और दारुहल्दी के काढे में उत्तमरुई को भावित करके उसकी बत्ती बनाकर घीका दीपक जलावै, और काजल पाडे । इस काजल के लगाने से पिल्ल रोपित होजाता है ।

अन्य कर्तव्यादि ।

वर्त्मावलेखं बहुशस्सदूच्छोणितमोक्षणम् ।
पुनः पुनर्विरेकं च नित्यमाश्चोतनांजनम् ।
नावनं धूमपानं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ।
पूयालसे त्वशांतेतर्वाहः सूक्ष्मशलाकया ५९

अर्थ–पिल्लरोगी को बार बार वर्त्मलेखन, रक्तमोक्षण, विरेचन, आश्चोतन, अंजन, नस्य और धूमपान कराना चाहिये । यदि इनसे पूयालस शांत न हो तो एक पतली सलाई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से वर्त्म के भीतर के भाग को दाग देना चाहिये।

स्वस्थनेत्र में सेवनविधि।

चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोर्हेतुलक्षणसाधनैः।
परस्परमसंकीर्णैः कार्त्स्न्येन गदिता गदा।
सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः
पुराणयवगोधूमशालिषष्टिककोद्रवान्।
मुद्गादीन्कफपित्तघ्नान्भूरिसर्पिःपरिप्लुतान्
शाकं चैवंविधंमांसं जांगलं दाडिमं सिताम्
सैंधवं त्रिफलां द्राक्षां वारि पाने चनामसम्
आतपत्रं पत्रत्राणं विधिवद्दोषशोधनम्॥

अर्थ-नेत्ररोगों के ९४ हेतु,लक्षण और उनके साधन संपूर्ण रूपसे वर्णन किये गये हैं। नेत्ररोगी को रोग से छूटने पर भी नेत्रों पर हित रखने की इच्छा से सदा बडी सावधानी से रहना चाहिये। पुराने जौ, गेंहू, शालीचांवल, साठीचांवल, कोदों, अत्यन्त घृतप्लुत कफपित्तनाशक मूंग आदि, कफपित्तनाशक शाक, जांगल मांस,अनार, चीनी, सेंधानमक, त्रिफला, दाख, आंतरीक्ष जल, छत्री, जूता, तथा विधिवत् दोषशोधन अर्थात् दोषानुसार विरेचन। इन सबका निरंतर सेवन करना चाहिये।

वेगसंरोधादिक वर्जन।

वर्जयेद्वेगसंरोधमजीर्णाध्यशनानि च।
शोककोधदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च॥
विदाहि विष्टम्भकरं यच्चेहाहारभेषजम्।

अर्थ—नेत्ररोग से छूटा हुआ मनुष्य मलमूत्रादि वेगधारण,अजीर्ण,अध्यशन,शोक क्रोध, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण, तथा विदाही और विष्टंभी आहार, विहार और औषध इन सबका परित्याग करदेवे।

पादशिराओं की नेत्रोंसे संलग्नता।

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे
शिरे गते ते बहुधा च नेत्रे।
ताम्रक्षणोद्वर्तनलेपनादीन्
पादप्रयुक्तान्नयनं नयंति॥ ६५॥
मलोष्णसंघट्टनपीडनाद्यै-
स्ता दूषयंते नयनानि दुष्टाः।

अर्थ—दोनों पांवों में दो मोटी सिरा होती हैं, जो बहुतसी शाखा प्रशाखाओं में विभक्त होती हुई नेत्रों तक फैलीहुई हैं। तैलादि अक्षण, उद्वर्तन और प्रलेपादि कोई भी दवा जो पांवमें लगाई जाती है, वह इन सिराओंके संयोग से नेत्रों में पहुंच जातीहै मल पदार्थ, उष्णता, संघट्टन, और पीडनादि द्वारा वह सिरा दुष्ट होकर नेत्रकोभी दूषित करदेती है।

उपानहादि सेवन।

भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्माद्
उपानदभ्यंजनधावनानि॥ ६६॥

अर्थ—पांवमें लगे हुए दूषित पदार्थों द्वारा नेत्रभी दूषित हो जाते हैं, इसलिये नेत्रों की रक्षाके निमित्त सदा जूते पहनता रहै, तथा दोनों पांवों में तेल लगाना और पांवों का धोना ये काम करना उचित है।

इति श्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने ऽक्षिरोगप्रतिषेधोनाम षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः।

अथाऽतः कर्णरोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से कर्णरोग विज्ञानीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कानमें दर्दका हेतु ।

प्रतिश्यायजलक्रीडाकर्णकंडूयनैर्मरुत् ।
मिथ्यायोगेन शब्दस्य कुपितोन्यैश्च कोपनैः
प्राप्य श्रोत्रशिराः कुर्याच्छूलंस्रोतसिवेगवत्
अर्धावभेदकं स्तंभं शिशिरानभिनंदनम् ॥
चिराच्च पाकं पक्वं तु लसिकामल्पशः स्रवेत्
श्रोत्रे शून्यमकस्माच्चस्यात्संचाराविचारवत्

अर्थ–प्रतिश्याय, जलविहार, कानखुजाना, शब्दका मिथ्यायोग (भीषण और अयोग्य बातका सुनना) इन सब कारणों से, तथा अन्य संपूर्ण कोप करनेवाले हेतुओं से वायु प्रकुपित होकर कानोंकी सिराओं में पहुंचकर कानोंके छिद्रों में प्रबल शूल, अर्द्धावभेदक, कानोंमें स्तब्धता, ठंडे पदार्थों से द्वेष, देरमें पाक, पकने पर धीरे धीरे लसीका का स्राव, अकस्मात् कानों में सुन्नता, तथा संचरण और विचरण युक्तता ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

पित्त से दाहादि ।

शूलं पित्तात्सदाहोषाशीतेच्छाश्वयथुज्वरम्
आशु पाकं प्रपक्वं च सपीतलसिकास्रुति ॥
सा लसीका स्पृशेद्यद्यत्तत्पाकमुपैति च ।

अर्थ–पित्तज कर्णरोगमें दाह और शूल होता है, तथा संताप, शीतसेवनकी इच्छा, सूजन, ज्वर, शीघ्र पकाव, पकनेपर पीले रंग की लसीका का स्राव, उस उस स्थान का पाक जहां यह लसीका लगै । ये लक्षण होते हैं ।

कफज कर्णरोग ।

कफाच्छिरोहनुग्रीवागौरवं मंदता रुजः ॥
कंडूःश्वयथुरुष्णेच्छा पाकात्श्वेतघना स्रुतिः

अर्थ–कफज कर्णरोग में सिर, हनु और ग्रीवा में भारापन, मंदता, वेदना, खुजली, सूजन, उष्ण पदार्थकी इच्छा, पकने पर सफेद और गाढा स्राव होना, ये लक्षण उपस्थित होते हैं ।

रक्तज कर्णशूल ।

करोति श्रवणे शूलमभिघातादि दूषितम् ॥
रक्तं पित्तसमानार्तिं किंचिद्वाधिकलक्षणम् ।

अर्थ–चोट आदि लगने के कारण दूषित हुआ रक्त कानमें शूल उत्पन्न कर देता है । इसमें पित्तके समान ही वा कुछ अधिक लक्षण दिखाई देते हैं ।

सान्निपातिक कर्णशूल ।

शूलं समुदितैर्दोषैः सशोफज्वरतीव्ररुक् ॥
पर्यायादुष्णशीतेच्छं जायते स्रुतिजाड्यवत्
पक्वं सितासितारक्तघनपूयप्रवाहि च ॥

अर्थ–सान्निपातिक दोषसे जो कानों में शूल होता है, उसमें सूजन, तीव्रज्वर, वेदना कभी गरम और कभी ठंड की इच्छा, कान में जडता, पकने पर सफेद काला वा लाल गाढा स्राव, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं

कर्णनाद के लक्षण ॥

शब्दवाहिसिरासंस्थे शृणोति पवने मुहुः ।
नादानकस्माद्विविधान्कर्णनादं वदंति तम् ॥

अर्थ–वायुके शब्दवाही सिरा में स्थित होनेपर रोगी बिना कारण ही अनेक प्रकार के शब्दों को बार बार सुनने लगता है । इसीको कर्णनाद रोग कहते हैं ।

बधिरता का कारण ।

श्लेष्मणानुगतो वायुर्नादो वा समुपेक्षितः ।
उच्चैः रुच्छ्रात्श्रुतिं कुर्याद्बधिरत्वं क्रमेण च ॥

अर्थ–वायुके कफानुगत होनेपर अथवा कर्णनाद की चिकित्सा में उपेक्षा करने से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कानमें कठिनता से पुकारकर बोलने का शब्द पहुंचता है। इसीसे धीरे धीरे बहिरापन हो जाता है।

प्रतीनाह का लक्षण ॥

वातेन शोषितः श्लेष्मास्रोतोलिप्तस्तोमवेत्
रुग्गौरवं विधानं च स प्रतीनाहसंज्ञितः ॥

अर्थ-वायुके द्वारा कफ सूखकर कर्णस्रोत को रोक देता है, इससे कानमें वेदना भारापन और ढकाव सा होता है। इसीको प्रतीनाह कहते हैं।

कंडूशोफ रोगोंके लक्षण ॥

कंडूशोफौ कफाच्छ्रोत्रेस्थिरौतत्संश्रयारमृतौ

अर्थ-कफके कारण कानमें स्थिर खुजली और स्थिर सूजन हो जाती है, इसीसे इन रोगोंको स्थिर कंडू और स्थिर शोफ कहते हैं।

पूतिकर्ण के लक्षण ॥

कफो विदग्धः पित्तेन सरुजं नीरुजं त्यपि ॥
घनपूतिबहुक्लेदं कुरुते पूतिकर्णकम्।

अर्थ-पित्तके द्वारा कफ जलकर कान को वेदनायुक्त वा वेदनारहित कर देता है तथा गाढा और दुर्गन्धित क्लेद उत्पन्न कर-देता है। इसको पूतिकर्णक रोग कहते हैं।

कृमिकर्णक के लक्षण ॥

वातादिदूषितं श्रोत्रं मांसासृक्क्लेदजा रुजम्
व्यापंतो जंतवः कुर्युस्तीव्रां सा कृमिकर्णकः

अर्थ-वातादि दोष द्वारा कानके दूषित होनेपर उसमें कीडे पडजाते हैं। ये सब कीडे कानोंको खाने लगते हैं। तथा मांस रक्त और तोद से तीव्र वेदना होने लगती है, इसे कृमिकर्णक कहते हैं।

कर्णविद्रधि।

श्रोत्रकंडूयनाज्जाते क्षते स्यात्पूर्वलक्षणः।
विद्रधिः पूर्ववच्चान्यः

अर्थ-खुजाने से कानोंमें घाव होकर पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त एक कर्णविद्रधि होती है, निदान में कह चुके हैं यः शोफो बहिरन्तर्वा महामूलो महारुजः। वृतः स्यादायतो यो वा स्मृतः षोढास विद्रधिः।

कर्णार्श और कर्णार्बुद ॥

शोफोऽर्शोऽर्बुदमीरितम्।
तेषु रुक्पूतिकर्णत्वं बधिरत्वं च बाधते।

अर्थ-कानके रोगोंमें कर्णार्श और कर्णार्बुद भी होते हैं। इनमें वेदना, पूतिकर्णत्व और बहरापन ये उत्पन्न होते हैं।

कूचिकर्ण रोग ॥

गर्भेऽनिलात्संकुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः

अर्थ- वायुके कारण कानके भीतर का छिद्र सुकड जाता है, इसको कूचिकर्णक कहते हैं।

कर्णपिप्पली ॥

एको नीरुगनेको वा गर्भे मांसांकुरः स्थिरः
पिप्पलीपिप्पलीमानः

अर्थ-कानके छिद्रके भीतर एक वा एक से अधिक पीपल के समान कठोर और वेदनारहित मांसके अंकुर पैदा होजाते हैं, इन को कर्णपिप्पली कहते हैं।

विदारिका के लक्षण ॥

सन्निपाताद्विदारिका
सवर्णः सरुजः स्तब्धः श्वयथुः स उपेक्षितः
कटुतैलनिभं पक्वः स्रवेत् कृच्छ्रेण रोहति।
संकोचयति रूढा च सा ध्रुवं कर्णशष्कुलीम्

अर्थ-सन्निपात के कारण कानके भीतर स्तब्ध, वेदनायुक्त और त्वचा के समान वर्ण वाली एक सूजन होती है, उसे विदारिका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहते हैं। इसकी उपेक्षा करने पर कडवे तेल के सदृश स्राव होने लगता है, विदारिका पकने पर बडी कठिनता से भरती है। यह सूखने पर भी कर्णशष्कुली को संकुचित कर देती है ॥

पालीशोष ॥

सिरास्थः कुरुते वायुः पालीशोषं तदाह्वयम्

अर्थ–वायु शिरा में स्थित होकर कर्णपाली को सुखा देती है, इसको पालीशोष कहते हैं ॥

तंत्रिका के लक्षण ॥

कृशा दृढा च तंत्रीवत् पाली वातेन तंत्रिका

अर्थ–वायुके कारण कर्णपाली कृश, दृढ और तंत्रीके समान होजाती है, इसको तंत्रिका कहते हैं ॥

परिपोट के लक्षण ॥

सुकुमारे चिरोत्सर्गासहसैव प्रमार्धिते ।
कर्णे शोफः सरुक्पाल्यामरुणः परिपोटवान्
परिपोटः स पवनात्

अर्थ–कोमल कानको सहसा खींचकर छोड देने से कानमें सूजन और वेदना होती है तथा कर्णपाली में ललाई और फटाव होता है, इसको परिपोट रोग कहते हैं ॥

उत्पात के लक्षण ॥

उत्पातः पित्तशोणितात् ।
गुर्वाभरणभारादैः श्यावो रुग्दाहपाकवान्।
श्वयथुः स्फोटपिटकारागोपाङ्क्लेदसंयुतः ।

अर्थ--भारी आभूषणों के कारण पित्त और रक्त के कुपित होने से कर्णपाली में वेदना, दाह, पाक, स्फोटन, श्यावता, सूजन, पिटका, राग, ऊषा और क्लेद होता है। इस रोग को उत्पात कहते है ॥

गल्लिर के लक्षण ।

पाल्यांशोफोनिलकफात्सर्वतोनिर्व्यथःस्थिरः
स्तब्धः सवर्णः कंडूमानुन्मंथोगल्लिरश्चसः

अर्थ–वातकफके कारण कर्णपाली में जो वेदनारहित, स्थिर, स्तब्ध, त्वचा के समान वर्णवाली, कंडूयुक्त सूजन होती है, उसको उन्मंथ वा गल्लिर कहते हैं ॥

दुःखवर्द्धन के लक्षण ।

दुर्विद्धे वर्धिते कर्णे सकंडूदाहपाकरुक् २३
श्वयथुः सन्निपातोत्थः स नाम्नादुःखवर्धनः

अर्थ–कानके दुर्विद्ध होने पर वा बढने पर उसमें जो खुजली, दाह, पाक और वेदना से युक्त जो सन्निपातात्मक सूजन पैदा होती है, उसे दुःखवर्द्धन कहते हैं ।

लेह्या के लक्षण ।

कफासृक्कृमिजाः सूक्ष्माः सकंडूक्लेदवेदनाः ।
लेह्याख्याः पिटिकास्ता हि लिह्युः
पालीमुपेक्षिताः ।

अर्थ–कर्णपाली में कफ, रक्त और कृमि से जो छोटी छोटी फुंसियां पैदा हो जाती हैं, उनको लेह्या कहते है, इनमें खुजली, क्लेद और वेदना हुआ करती है। इनकी चिकित्सा न करनेपर ये संपूर्ण कर्ण पाली को चाट जाती हैं, इससे इन्हें लेह्या कहते हैं ।

साध्यासाध्य विचार ।

पिप्पलीसर्वजं शूलं विदारी कूचिकर्णकः ।
एषामसाध्यायाश्चैकातंत्रिकान्यांस्तुसाधयेत्
पंचविंशतिरित्युक्ताः कर्णरोगा विभागतः ,,

अर्थ–कर्णपिप्पली, सान्निपातिक कर्णशूल, विदारिका और कूचिकर्णक ये रोग कानके रोगों में असाध्य हैं। एक तंत्रिका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कष्टसाध्य है। शेष बीस रोग साध्य होतेहैं, इस प्रकार से सब मिलाकर कानके पच्चीस रोग कहे गयेहैं।

इति श्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने कर्णरोग विज्ञानीयोनाम सप्तदशोऽध्यायः

अष्टादशोऽध्यायः।

अथाऽतः कर्णरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः॥

अर्थ--अब हम यहां से कर्णरोग प्रतिषेधनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

वातज कर्णशूल मे कर्तव्य।

कर्णशूले पवनजे पिबेद्रात्रौ रसादितः।
वातघ्नसाधितं सर्पिः कर्णे स्विन्नं च पूरयेत्
पत्राणां पृथगश्वत्थबिल्वार्कैरंडजन्मनाम्।
तैलसिंधूत्थदिग्धानां स्विन्नानां पुटपाकतः॥
रसैः कवोष्णैस्तद्वच्च मूलकस्यारलोरपि।

अर्थ--वातज कर्णशूल में रोगी को मांसरस सहित अन्नका पथ्य देकर रात्रि के समय वातनाशक औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी पान कराना चाहिये। कान में स्वेदन करके पीपल, नीम, आक वा अरंड इनमें से किसी एक के पत्तों पर तेल और सेंधानमक लगाकर अग्नि में पुटपाक की रीति से सिद्ध करके उसके गुनगुने रसको कान में भरदे। मूली और अरलू के रससे भी कानको इसी तरह भरना चाहिये।

कर्णशूल पर महास्नेहतैल।

गणे वातहरेऽम्लेषु मूत्रेषु च विपाचितः॥
महास्नेहो हुते हंति सुतीव्रामपि वेदनाम्।

अर्थ--वातनाशक अम्ल द्रव्यों और गोमूत्र के साथ पकाया हुआ महास्नेह कान में डालने से अत्यन्त तीव्र वेदना भी शीघ्र शांत होजाती है।

अन्य प्रयोग।

महतः पंचमूलस्य काष्ठात्क्षौमेण वेष्टितात्॥
तैलसिक्तात्प्रदीप्ताग्रात् स्नेहः सद्यो रुजापहः।

अर्थ--बृहत्पंचमूल की अलग अलग एक एक लकडी लेकर रेशमी वस्त्रसे लपेट दे इसको तेल में भिगोकर अग्निसे जलावे और नीचे एक पात्र रखदे। इस पात्रमें जो तेल टपके उसे कानमें डालनेसे वेदना शीघ्र जाती रहती है॥

अन्य प्रयोग।

योज्यश्चैवंभद्रकाष्ठात्कुष्ठात्काष्ठाच्छसारलात्

अर्थ--देवदारु, कूठ और सरल इनकी लकडी को भी वस्त्रसे लपेटकर तेलमें भिगोकर अग्निसे जलाकर ऊपर की तरह तेल टपकावे। इस तेलको कानमें लगाने से वेदना जाती रहती है।

अन्य प्रयोग।

वातव्याधिप्रतिश्यायविहितं हितमत्र च।
वर्जयेच्छिरसा स्नानं शीतांभःपानमप्यपि॥

अर्थ--वातव्याधि और प्रतिश्यायरोग में जो जो औषध कही गई हैं, वे सब इस जगह उपयोग में लानी चाहिये।

इसरोग में सिर से स्नान करना और दिनमें भी ठंडा पानी पीना वर्जित है।

पित्तजशूल में कर्तव्य।

पित्तशूले सितायुक्तं घृतक्षिप्तं विरेचयेत्।
द्राक्षायष्टिशृतं स्तन्यं शस्यते कर्णपूरणम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पित्तजशूल में घी और चीनी मिलाकर स्निग्ध विरेचन देवे। दाख और मुलहटी के साथ सिद्ध किया हुआ स्त्री का दूध कानमें भरना चाहिये।

शूलनाशक तेल।

यष्ट्यनंताहिमोशीरकाकोलीरोध्रजीवकैः।
मृणालबिसमंजिष्ठासारिवाभिश्च साधयेत्
यष्टीमधुरसप्रस्थं क्षीरद्विप्रस्थसंयुतम्।
तैलस्य कुडवं नस्यपूरणाभ्यंजनैरिदम॥
निहंति शूलदाहोषाः केवलं क्षौद्रमेव वा।

अर्थ–मुलहटी, अनन्तमूल, चंदन, खस काकोली, लोध, जीवक, कमलनाल, मजीठ, सारिवा इनका कल्क करले। मुलहटीका रस एक प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, तेल एक कुडव, इन सब को पाकोक्त रीतिसे पकावे। इस तेलको नस्य, कर्णपूरण और अभ्यंजन द्वारा प्रयोग करने से कर्णशूल, दाह और संताप दूर होजाते है केवल मधु द्वारा भी शूलादे शांत होजाते हैं।

कर्णलेपन।

यष्ट्यादिभिश्च सघृतैः कर्णौ दिह्यात्समंततः

अर्थ–ऊपर कहे हुए मुलहटी से आदि लेकर सब द्रव्यों को घी के साथ पकाकर इस घीको कानके चारों ओर लेप करे। इससे कर्णशूल जाता रहता है।

कफजकर्णशूल की चिकित्सा।

वामयेत् पिप्पलीसिद्धसर्पिःस्निग्धं कफोद्भवे
धूमनावनगंडूषस्वेदान् कुर्यात्कफापहान्॥

अर्थ–कफज कर्णशूलमें पीपल के साथ घी पकाकर इस घी से स्निग्ध पुरुष को वमन करावे तथा कफनाशक धूमपान, नस्य गंडूष, और स्वेदादि का प्रयोग भी उचित है

कर्णपूरण प्रयोग।

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरूण्या मूलकस्य च।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे॥

अर्थ–लहसन, अदरख, सहजना, तुलसी मूली और केला इनके स्वरसको गरम करके सुहाता सुहाता कानमें डाले। यह कफज कर्णरोग की उत्तम औषध है।

शूलनाशक रस।

अर्काकुरानम्लपिष्टांस्तैलाल्लवणान्वितान्।
संनिधाय स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृतान्
स्वेदयेत्पुटपाकेन स रसः शूलजित्परम्।

अर्थ–आकके अंकुरों को कांजीमें पीसकर तेल और सेंधेनमक से सानकर सेंहुड की पोली डंडी में भरकर उसी के पत्तों से ढक दे और पुटपाक की रीतिसे स्वेदित करके उसके रसको कानमें डाले। यह शूल को दूर करने की परमोत्तम औषध है।

बिजौरे का रस।

रसेन बीजपूरस्य कपित्थस्य च पूरयेत्॥
सूक्तेन पूरयित्वा वा फेनेनान्यवचूर्णयेत्।

अर्थ–बिजौरे का रस वा कैथ का रस अथवा कांजी इनसे कानको भरदे। फिर समुद्रफेन को पीसकर ऊपर से बुरक दे।

अन्य प्रयोग।

अजाविमूत्रवंशत्वक्सिद्धं तैलं च पूरणम्॥
सिद्धं वा सार्षपं तैलं हिंगुतुंबुरुनागरैः।

अर्थ–बकरी और भेडका मूत्र, बांसकी छाल इनसे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें भरे। अथवा हींग, धनियां और सोंठ के साथ पकाया हुआ सरसों का तेलभी कान में भरना हित है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तज कर्णशूल की चिकित्सा।

रक्तजे पित्तवत्कार्यं शिरां चाशु विमोक्षयेत्

अर्थ--रक्तज कर्णशूलमें पित्तज कर्णशूल के समान चिकित्सा करना चाहिये। तथा शीघ्र ही फस्तखोलना चाहिये।

पक्वकर्ण की चिकित्सा।

पक्के पूयवहे कर्णे धूमगंडूषनावनम्।
युंज्यान्नाडीविधानं च दुष्टव्रणहरं च यत्॥

अर्थ-जिस कानमें पकने के पीछे राध बहने लग गई हो उसमें धूमप्रयोग, गंडूष और नस्यका प्रयोग करना चाहिये। तथा नाडीव्रण और दुष्टव्रण में जो जो उपाय लिखेगये हैं, वे सब यहां करने चाहिये।

पिचुवर्तिका प्रयोग।

स्रोतः प्रमृज्य दिग्धंतु द्वौकालौपिचुवर्तिभिः
पूरयेद्धूपयित्वा तु माक्षिकेण प्रपूरयेत्॥
सुरसादिगणक्काथफाणिताक्तां च योजयेत्।
पिचुवर्तिं सुसूक्ष्मैश्च तच्चूर्णैरवचूर्णयेत्॥

अर्थ--दोनों समय कान के छिद्रों को रुई की बत्तीसे पोंछकर गूगलकी धूनदेकर शहत भरदेना चाहिये और सुरसादि गणके काढेके फाणित में रुई की बत्ती को भिगो कर कानमें भरदे और सुरसादिगण के द्रव्यों को महीन पीसकर कानमें बुरक दे।

शूलादिनाशक विधि।

शूलक्लेदगुरुत्वानां विधिरेष निवर्तकः।

अर्थ--ऊपर जो बिधिकही गई हैं, इन से कर्णशूल, क्लेद और भारापन जाते रहते है।

स्रावनाशक प्रयोग।

प्रियंगुमधुकांबष्ठाधातक्युत्पलपार्णिभिः॥
मंजिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन च।
पचेत्तैलं तदाक्षावं निगृह्णात्याशु पूरणात्॥

अर्थ--मालकांगनी, मुलहटी, पाठा, धायके फूल, पृश्निपर्णी, शालपर्णी, मजीठ, लोध, लाख इनके कल्कसे और कैथके रस के साथ तेलको पकावे, इस तेलको कानमें भरने से तत्काल स्राव बन्द होजाता है।

नादबाधिर्यका उपाय।

नादबाधिर्ययोः कुर्याद् वातशूलोक्तमौषधम्
श्लेष्मानुबंधे श्लेष्माणं प्राज्जयेद्वमनादिभिः॥

अर्थ--कर्णनाद और बहरेपनमें वातज शूल के समान चिकित्सा करनी चाहिये। और कफानुबंध में वमनादि द्वारा कफको जीतने का उपाय करे।

अन्य तैल।

परंडशिग्रुवरुणमूलकात्पञ्जे रसे।
चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणोन्मिते॥
यष्ट्याह्वाक्षीरकाकोलीकल्कयुक्तं निहंति तत्
नादबाधिर्यशूलानि नावनाभ्यंगपूरणैः॥

अर्थ--अंड, सहंजना, बरना और मूली इनके पत्तोंका रस चार भाग, तेल एकभाग दूध आठ भाग में मुलहटी और क्षीरकाकोली का कल्क डालकर पकावे। इस तेल को नस्य अभ्यंग और कर्णपूरण द्वारा प्रयोग करने से कर्णनाद, बहरापन और शूल का नाश होजाता है।

वेदनादिनाशक तैल।

पक्वं प्रतिविषाहिंगुमिशित्वक्क्षवार्जकोषणैः
ससूक्तैः पूरणात्तैलं रुक्स्रावश्रुतिनादनुत्॥

अर्थ--अतीस, हींग, सौंफ, दालचीनी, सज्जी, कालीमिरच और कांजी इनके साथ में पकाया हुआ तेल कानमें भरना वेदना स्राव और कर्णनाद को दूर करता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य तैल।

कर्णनादे हितं तैलं सर्षपोत्थं च पूरणे।

अर्थ--कानमें सरसों का तेल डालने से भी कर्णनाद रोग जाता रहता है।

अन्य प्रयोग।

शुष्कधूलकखंडानां क्षारो हिंगु महौषधम्॥
शतपुष्पाबचाकुष्ठदारुशिग्रुरसांजनम्।
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकौद्भिदसैंधवम् २७
भूर्जग्रंथिबिडं मुस्तामधुसूक्तं चतुर्गुणम्।
मातुलुंगरसस्तद्वत् कदलीस्वरसश्च तैः २८
पक्वं तैलं जयत्याशु सकृच्छ्रानपि पूरणात्।
कंडूं क्लेदं च बाधिर्यं पूतिकर्णं च कृष्णकर्मीम्
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदंतामयेषु च।

अर्थ--सूखी हुई मूली के टुकडों का क्षार, हींग, सोंठ, सोंफ, वच, कूठ, देवदारू, सहंजना, रसौत, संचलनमक, जवाखार, सज्जीखार, उद्भिद नमक, सेंधानमक भोजपत्र, पीपलामूल, विडनमक, मोथा, ये सब समान भाग ले। तथा शहत, बिजौरे का रस, कांजी, केले का रस, प्रत्येक चार भाग, तेल एक भाग। इनको पाकोक्त रीति से पकावै। इस तेल द्वारा कानको भरने से, खुजली, क्लेद, बधिरता, पूतिकर्ण, वेदना और क्रिमिरोग जाता रहता है। मुख और दांत के रोगोंमें भी यह क्षार तैल श्रेष्ठ औषध है।

कर्णसुप्ति की चिकित्सा।

अथसुप्ताविव स्यातां कर्णौ रक्तं हरेत्ततः।

अर्थ--जब कानों में सुन्नता होजाय तब रक्तमोक्षण करना चाहिये।

अन्य उपाय॥

सशोफक्लेदयोर्मेदस्रुतेर्वमनमाचरेत्।

अर्थ--कानों में यदि सूजन और क्लेद हो और थोडा थोडा स्राव भी होता होतो वमन कराना चाहिये।

वार्जित रोगी।

बाधिर्यं वर्जयेद्बालवृद्धयोरिचरजं च यत्।

अर्थ--बालक और वृद्धका बहरापन तथा बहुत कालका बहरापन असाध्य होते हैं।

प्रतिनाह में कर्ण शोधन।

प्रतिनाहे परिक्लेद्य स्नेहस्वेदैर्विशोधयेत्।
कर्णशोधनकेनाशु कर्णौ तैलस्य पूरयेत् ३२
ससूक्तसैंधवमधोर्मातुलुंगरसस्य वा।
शोधनाद् रूक्षतोत्पन्नौ घृतमंडस्य पूरणम्

अर्थ--प्रतिनाह रोगमें स्नेहन और स्वेदन द्वारा कानके क्लेद को नरमकरके कान को शुद्ध करने वाली औषधसे कानके क्लेद को दूर करदेवे। फिर कांजी और सेंधेनमक से युक्त शहत वा बिजौरे का रस कान में भरदे। यदि शोधन से कानमें रूखापन हो जाय तो कानमें घृतमंडका प्रयोग करना चाहिये।

कटूष्ण लेपन।

क्रमोऽयं मलपूर्णेऽपि कर्णेकंडूयांकफापहम्
नस्यादितद्वच्छोफेऽपिकटूष्णैश्चात्र लेपनम्

अर्थ--कानमें मल भरा होने परभी यही प्रतिनाहोक्त औषध करनी चाहिये। कर्ण कंडू रोगमें कफनाशक नस्यादि की व्यवस्था करना उचित है। कर्णशोथमें भी इसी विधिका अवलंबन करना उचित है। इसमें कटु और उष्ण लेप करना हितकारी है।

पूतिकर्णादि का उपाय।

कर्णस्रावोदितं कुर्यात्पूतिकृमिककर्णयोः।
पूरणं कटुतैलेन विशेषात् कृमिकर्णके ३५

अर्थ--पूतिकर्ण और कृमिकर्ण में कर्ण-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्रावोक्त चिकित्सा करना चाहिये। कृमि-कर्ण में कडवे तेलका भरना हित है॥

कर्णविद्रधि का उपाय।

वमिपूर्वा हिता कर्णविद्रधौ विद्रधिक्रिया।

अर्थ–कर्ण विद्रधिमें वमन क्रिया कराने के पीछे विद्रधिमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये।

क्षतविद्रधि का उपाय।

पित्तोत्थकर्णशूलोक्तं कर्तव्यं क्षतविद्रधौ।

अर्थ–कर्णविद्रधिमें पैत्तिक कर्णशूलोक्त चिकित्सा करना चाहिये।

अर्शोर्बुद की चिकित्सा।

अर्शोऽर्बुदेषु नासाद्

अर्थ–कर्णार्श और कर्णार्बुद की चिकित्सा नासिका की तरह करनी चाहिये।

कर्णविदारिका का उपाय।

आमा कर्णविदारिका
कर्णविद्रधिवत्साध्या यथादोषोदयेन च।

अर्थ–विना पकी कर्णविदारिका की चिकित्सा दोषकी अधिकता के अनुसार कर्णविद्रधि के समान करनी चाहिये।

पालीशोष की चिकित्सा।

पालीशोषेऽनिलश्रोत्रशूलघ्नस्यलेपनम्।
स्वेदं च कुर्यात्स्विन्नां च पालीमुद्वर्तयेत्तिलैः
प्रियालबीजसुरसाह्वयगंधाययवाग्निजैः।
ततः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यंगं नित्यमाचरेत्।

अर्थ-पालीशोष में वातिक कर्णशूल रोग के समान नस्य प्रलेप और स्वेद द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। फिर स्वेदित होने के पीछे कर्णपाली में तिल, चिरौंजी, मुरहटी, असगंध और जौ का उवटना तथा पुष्टिकारक स्नेह द्वारा नित्यप्रति मर्दन करना चाहिये।

पालीपुष्टकरतैल।

सितावरीवाजिगंधायष्ट्यैरंडजीवकैः।
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम्

अर्थ–सितावर, असगंध, दूधिका अरंड जीवक, और दूध इनके साथ में पकाया हुआ तेल कर्णपाली को बहुत पुष्ट करताहै।

अन्य प्रयोग।

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम्।
आनूपमांसक्वाथे च पालीपोषणवर्धनम्।

अर्थ–जीवनीयगण का कल्क, दूध और आनूप मांस का काढा, इनके साथमें पकाया हुआ तेल कर्णपाली को पुष्ट करता है और बढाता है।

पालीछेदन।

पाली छित्त्वातिसंक्षीणांशेषांसंधाय पोथयेत्

अर्थ–अत्यन्त क्षीण हुई पालीको काटकर बची हुई को जोडकर फिर बढावै।

अन्य विधि।

याप्येवं तंत्रिकाख्यापि परिपोटेप्ययं विधिः

अर्थ–तंत्रका और परिपोटक दोनों रोग उक्तविधि से याप्य हो सकते हैं।

उत्पात में शीतल लेप।

उत्पाते शीतलैर्लेपो जलौकोहृतशोणिते।

अर्थ–उत्पात रोगों में जोकों से रुधिर निकाल कर फिर शीतल लेपादि का प्रयोग करे।

अभ्यंजन में तैलादि।

जंब्वाम्रपल्लववलायष्टीरोध्रैति लोत्पलैः।
सधान्याम्लैः समंशिष्टैःसकदंबैःसचंदनैः।
सिद्धमभ्यंजनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च।

अर्थ–जामन और आमके पत्ते, बला, मुरहटी, लोध, तिल, नीलोत्पल, अजीठ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कदंब और अनन्तमूल इनको कांजीके साथ पीसकर इनके साथ पकाया हुआ तेल तथा विसर्प रोग में कहा हुआ घी अभ्यंजन में हितकारी है ।

उन्मंथ की चिकित्सा ।

उन्मंथेऽभ्यंजनं तैलं गोधाकर्कवसान्वितम् तालपत्र्याश्वगंधार्कवाकुचीतिलसैंधवैः ४५॥ सुरसालांगलीभ्यां च सिद्धं तीक्ष्णं च नावनम्

अर्थ–उन्मंथरोग में ताल पत्री, असगंध आक, वाकुची, तिल, सेंधा नमक इनके साथ में तेल को पकाकर उसमें गोधा और केंकड़े की चर्बी मिलाकर अभ्यंजन के काम में लावे । तथा तुलसी और कल्हारी से सिद्ध किये हुए तेल की तीक्ष्ण नस्य हित है ।

दुर्विद्ध में पालीसेचन ।

दुर्विद्धे ऽर्कमंजम्बामूपत्रक्वाथेन सेचितम् । तैलेन पाली स्वभ्यक्तांसुस्निग्धैरवचूर्णयेत् । चूर्णैर्मधुकमंजिष्ठाप्रपुंड्राहवनिशोद्भवैः ॥ लाक्षाविडंगसिद्धं च तैलमभ्यंजने हितम् ।

अर्थ–कान के दुर्विद्ध होने पर अर्कमंत जामन के पत्ते, आमके पत्ते, इनके काढ़े से कर्णपाली को सेचन करके उस पर मुलहटी, मजीठ, पुंडरिया और हलदी इनके चूर्ण से अवचूर्णित करै । तथा लाख और वायविडंग के साथ सिद्ध किये हुए तेल से अभ्यंजन करे ।

परिलेहिका की चिकित्सा ।

स्विन्नां गोमयजैः पिंडैर्बहुशः परिलेहिकाम् विडंगसारैरालिंपेदुरभ्रीमूत्रकल्किकैः । कोटजेंगुदकारंजवर्षाभूशाम्याकवल्कलैः ॥ अथवाभ्यंजने क्षौद्रा कटुतैलं विपाचयेत् । सनिंबपत्रमरिचमदनैर्लेहिकाव्रणे ॥ ५० ॥

अर्थ–परिलेहिका रोग में गोबर को गरम गरम लगाकर कर्णपाली को स्वेदित करके उसपर भेड के मूत्र में पिसे हुए वायविडंग का लेप करै । अथवा इन्द्रजौ, इंगुदी, कंजा के बीज, अमलतास की छाल इनका लेप करे अथवा उक्त इन्द्रजौ आदि तथा नीम के पत्ते, काली मिरच और मेनफल । इनके साथ में पाक किया हुआ तेल परिलेहिका पर लगाना चाहिये ।

छिन्नकर्ण की चिकित्सा ।

छिन्नं तु कर्ण शुद्धस्य बंधमालोच्ययौगिकम् शुद्धास्रं लागयेल्लग्नसद्यश्छिन्नेविशोधनम् ॥

अर्थ–कानके फटजाने पर जब रुधिर शुद्ध हो जाय तब उस पर पट्टी बांध देवे । बांधने के पीछे विरेचनादि शोधन क्रिया करनी चाहिये ।

कर्णरोग विधान ।

अथ ग्रथित्वा केशांतं कृत्वा छेदनलेखनम् । निवेश्य संधिं सुघृतं न निम्नं न समुन्नतम् ॥ अभ्यज्य मधुसर्पिर्भ्यां पिचुश्लोतावगुंठितम् सूत्रेणगाढशिथिलं बद्धवा चूर्णैरवाकिरन् । शोणितस्थापनैर्व्रण्यमाचारं चादिशेत्ततः । सप्ताहादामतैलाक्तं शनैरपनयेत् पिचुम् ॥

अर्थ–प्रयोजनानुसार केशके समीपवाले मागमें ग्रथित करके तथा छेदन और लेखन करके संधिको न ऊंची, न नीची समान रूपसे सन्निवेशित करे । फिर शहत और घी चुपडकर रुई वा वस्त्रके टुकडे से ढककर डोरे से ऐसी रीति पर बांधे, जिससे बहुत कडी वा ढीली न हो, फिर मुलहटी और गेरू आदि रुधिर को बन्द करनेवाले

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रव्यों को बुरक कर व्रणमें हितकारी संपूर्ण नियमों का पालन करना चाहिये। सातदिन पीछे कच्चा तेल लगा लगाकर धीरे धीरे रुई को हटादेवै ॥

कर्णवर्द्धन की रीति

सुरूढं जातरोमाणं श्लिष्टसंधिसमस्थिरम्।
सुवर्णाभं सुरागं च शनैः कर्णं विवर्धयेत् ॥

अर्थ—जब फटा हुआ कान अच्छी तरह भर जाय, रोम उग आवें, छूटी हुई संधि दृढ हो जाय, सुन्दर रूप और रंग हो जाय तब कानको धीरे धीरे बढाना चाहिये ॥

कर्णवर्द्धक अभ्यंग।

जलशूकः स्वयंगुप्ता रजन्यौ वृद्धदारुद्वयम्।
अभ्यंगधावलाहस्तिपिप्पलीगौरसर्षपाः ५३
मूलं कोशातकाश्वघ्नरूपिकासप्तपर्णजम्।
लुलुंदरीकालमृतायूहंमधुकरीकृतम् ५७ ॥
जतूका जलजन्माच तथा शावरकन्दकम्।
एभिः कल्कैः खरं पक्वं सतैलं माहिषं घृतम्
हस्त्यश्वमूत्रेण परमभ्यंगार्कर्णेवर्धनम्॥

अर्थ—सिवार, केंच, दोनों हलदी, दोनों कटेरी, असगंध, खरैटी, गजपीपल, सफेद सरसों, तोरई, कनेर, आक और सातला की जड, अपने आप मरी हुई चकचूंदड, शहत की मक्खी का छत्ता, पेचापक्षी, जोक और लहसन इन सबके कल्कके साथ भैंसका घी और तेल, हाथी और घोडे का मूत्र इन सब का खरपाक करके कान पर लगाने से कान बढते हैं ॥

नाससंधान।

अथ कुर्याद्व्यस्थस्य छिन्नांशुद्धस्य नासिकाम्
छिंद्यान्नासासमं पत्रं तत्तुल्यं च कपोलतः।
त्वङ्मांसं नासिकासन्ने रक्षंस्तत्तनुतां-
नयेत् ॥ ६० ॥
सीव्येत् गण्डं ततः सूच्या सेविम्या-
पिचुयुक्तया।
नासाच्छेदे च लिखितेपरिवर्त्योपरि त्वचम्
कपोलबंधं संदध्यात्सीव्येन्नासां च यत्नतः
नाडीभ्यामुत्क्षिपेदंतः सुखोच्छ्वासप्रवृत्तये
घृतमतैलेन सिक्त्वा तु पतंगमधुकांजनैः।
शोणितस्थापनैश्चान्यैः सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत्
ततोमधुघृताभ्यक्तं बद्धवा चारिकमादिशेत्
ज्ञात्वावस्थांतरं कुर्यात् सद्योव्रणविधिं ततः
छिद्यादूर्द्धेऽधिकं मांसं नासोपांते च चर्मवत्
सीव्येत्ततश्च श्लक्ष्णं हीनं संवर्धयेत्पुनः।

अर्थ—जिस युवा मनुष्य की नाक न हो और नाक लगानी हो तो प्रथम उसको विरेचनादि द्वारा शुद्ध करे और फिर कटी हुई नाक के बराबर एक पत्ता ले और उस पत्ते के बराबर कपोल से त्वचा काटकर नाक को सुरचकर उसको जोडदे और गंड-स्थल के व्रणको तथा नासिका को जो सीने योग्य हों तो सीं देवे। और श्वास के सुख-पूर्वक आने जाने के लिये इस कृत्रिम नासिका के छिद्रको ऊंचा कर देना चाहिये फिर कच्चा तेल लगाकर पतंग, मूलहटी और रसौत को पीसकर बुरकदे। फिर इसपर शहत और घी लगाकर परिचारक को करने योग्य कामों का उपदेश देवै। फिर अवस्थान्तर पर दृष्टि देकर सद्योव्रणचिकित्सितोक्त विधिका अवलंबन करै, इस तरह जब नाक का व्रण भर जाय और उसके इधर उधर मांस अधिक हो, उसको फिर सीमे और जो कम हो तो बढावे।

छिन्नोष्ठ में कर्तव्य।

निवेशिते यथान्यासं सद्यश्छेदेऽप्ययं विधिः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाडीयोगमहिनीहस्य नासासंधानवद्विधिः ।

अर्थ-जो नासिका हाल ही में कटी हो तो भी उक्त रीति से चिकित्सा करनी चाहिये। और कटे हुए ओष्ठ में यदि नाडी का योग न हो तो नासिका के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने कर्णरोग प्रतिषेधोनामाष्टमोऽध्यायः।

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथाऽतो नासारोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहां से नासिका रोग विज्ञानीयनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

दोषों को प्रतिश्यायजनकत्व।

" अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः
नीचात्युच्चोपधानैर्न पीतेनान्येन वारिणा ।
अत्यंबुपानरमणच्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः ।
रुद्धा वातोल्बणादोषा नासायांस्त्यानतांगताः
जनयंति प्रतिश्यायं वर्धमानं क्षयप्रदम् ।

अर्थ-ठंड, वायु धूलि, अत्यन्त भाषण, अतिनिद्रा, अतिजागरण, अति नीचा वा अतिऊंचा तकिया लगाना, अन्यस्थान का जलपान, अति जलपान, जलकेलि, वमन और बाष्पके वेगको रोकना, इन सब कारणों से वातादिरूप दोष नासिका में रुककर गाढे होजाते हैं और इससे प्रतिश्याय की उत्पत्ति होजाती हैं। और प्रतिश्याय के बढने से क्षयी पैदा होजाती है।

वातज प्रतिश्याय के लक्षण।

तत्र वातात्प्रतिश्याये मुखशोषो भृशं क्षवः ।
घ्राणोपरोधशिरस्तोददंतशंखशिरोव्यथाः ।
कीटका इव सर्पंति मन्यते परितो भ्रुवौ ।
स्वरसादश्चिरात्पाकः शिशिराच्छकफस्रुतिः

अर्थ-वातजप्रतिश्याय (जुकाम) में मुखशोष, छींकों की अधिकता, कान में रुकावट, निस्तोद, दांत कनपटी और मस्तक में वेदना, दोनों भृकुटियों के चारों ओर चींटियों कासा रेंगना, स्वर में शिथिलता, चिरकाल में पाक तथा ठंडे और पतले कफका झडना। ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

पित्तज प्रतिश्याय के लक्षण।

पित्तात्तृष्णाज्वरघ्राणपिटिकासंभवभ्रमाः ।
नासाग्रपाको रूक्षोष्णस्ताम्रपीतकफस्रुतिः

अर्थ-पित्तजप्रतिश्याय में तृषा, ज्वर, नासिका में फुंसियों की उत्पत्ति, भ्रम, नासिका के अग्रभाग में पकाव, तथा रूखे गरम, तांबे और पीले रंग के कफका निकलना ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफज प्रतिश्याय के लक्षण।

कफात्कासोऽरुचिःश्वासोवमथुर्गात्रगौरवम्
माधुर्यं वदने कंडूः स्निग्धशुक्लघना स्रुतिः।

अर्थ-कफजप्रतिश्याय में खांसी, अरुचि, श्वास, वमन, देहमें भारापन, मुख में मीठापन तथा खुजली और चिकने सफेद और कफका निकलना। ये लक्षण उपस्थित होतेहैं

त्रिदोषज प्रतिश्याय।

सर्वैर्लक्षणैःसर्वैरकस्माद्वृद्धिशांतिमान् ॥

अर्थ-त्रिदोषज प्रतिश्याय में वातादि तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं। यह अकस्मात् बढभी जाता है और घट भी जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूषितरक्त से प्रतिश्याय ।

दुष्टं नासासिराः प्राप्य प्रतिश्यायं करोत्यसृक् ।
उरसः सुप्तताताम्रनेत्रत्वं श्वासपूतिता ॥
कंडूः श्रोत्राक्षिनासासु पित्तोक्तं चात्र-
लक्षणम् ।

अर्थ–दूषितरक्त नासिका के सिरासमूहों में प्राप्त होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करदेता है। इस रक्तजप्रतिश्याय से वक्षःस्थल में सुप्तता, नेत्रों में तांबेका सा रंग, श्वास में दुर्गंधि, आंख कान और नाक में खुजली, ये सब लक्षण तथा पित्तजप्रतिश्याय के संपूर्ण लक्षण उपस्थित होते हैं ।

दुष्ट प्रतिश्याय के लक्षण ।

सर्व एव प्रतिश्याया दुष्टतां यांत्युपेक्षिताः ॥
यथोक्तोपद्रवाधिक्यात्स सर्वेन्द्रियतापनः ।
सादिलाद्यज्वरश्वासकासोरःपार्श्ववेदनः ॥
कृच्छ्रात्यकस्माद्दुश्शो मुखदौर्गंध्यशोफकृत् ।
नासिकाक्लेदसंशोषशुद्धिरोधकरो मुहुः ॥
पूयोपमा सिता रक्तग्रथिता श्लेष्मसंस्रुतिः ।
मूर्छेति चात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः ॥

अर्थ–सब प्रकार के प्रतिश्याय चिकित्सा में उपेक्षा होने से दुष्टता को प्राप्त हो जाते हैं । यह दुष्ट प्रतिश्याय पहिले कहे हुए मुखशोषादि उपद्रवों की अधिकता के कारण संपूर्ण इन्द्रियों में संताप, अग्निमें शिथिलता, ज्वर, श्वास, खांसी, वक्षःस्थल और पसवाडे में वेदना, सहसा बार बार व्याधि का प्रकोप, मुखमें दुर्गन्धि सूजन कभी नासिका में गीलापन, कभी सूखापन, कभी शुद्धि, कभी रुकावट, तथा राधके समान काले रंग वाली रुधिर की गांठों से युक्त कफका स्राव । ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं । इस दुष्ट प्रतिश्याय में लंबे, चिकने, सफेद रंगके बहुत पतले पतले कीडे पैदा हो जाते हैं ।

पक्वप्रतिश्याय के लक्षण ।

पक्वलिंगानि तेष्वंगलाघवं क्षपथोः शमः ।
श्लेष्मा स्निग्धः पीतो ज्ञाने च रसगंधयोः ।

अर्थ–अंगमें हलकापन, छींकों की शांति, चिकना और पीला कफ, रस और गंधका यथावत् ज्ञान । इन बातों के पैदा होने से प्रतिश्याय के पकने के लक्षण जाने जाते हैं।

नासाशोष के लक्षण ।

तीक्ष्णघ्राणोपयोगार्करश्मिसूत्रतृणादिभिः ।
वातकोपिभिरन्यैर्वा नासिकातरुणास्थिनि ॥
विघट्टितेऽनिलः कुद्धो रुद्धः शृंगाटकं व्रजेत् ।
निवृत्तः कुरुतेऽत्यर्थं क्षवथुं स भृशं-
क्षवः ॥ १५ ॥

अर्थ–मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्यों के उपयोग से, सूर्यकी किरणों से, डोरे वा तिनुके से अथवा वातको प्रकुपित करनेवाली अन्य क्रियाओं से नासिका की तरुण अस्थि विघट्टित होजावै, और वायु कुपित होकर और रुककर शृंगाटक मर्म में पहुँच कर अत्यन्त छींक पैदा करदेती है, इसे क्षवरोग कहते हैं ।

नासिकाशोष के लक्षण ।

शोषयन्नासिकास्रोतः कफं च कुरुतेऽनिलः ।
शूकपूर्णमिवास्यं स्यात्कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः ।
स्मृतोऽसौ नासिकाशोषो

अर्थ–वायु नासिका के छिद्र और कफ को सुखाकर नासाशोष नामक रोगको पैदा करदेती है, इस रोगमें नासिका काटों से भरी हुईसी प्रतीत होने लगती है, और श्वास भी बडी कठिनता से लियाजाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नासानाह के लक्षण।

नासानाहे तु जायते।
गुरुत्वमिव नासायाः श्लेष्मरुद्धेन वायुना॥
निःश्वासोच्छ्वाससंरोधात्स्रोतसीसंवृते इव

अर्थ-नासानाह रोग में नासिका में भारापन होता है और कफके रुके हुए वायु द्वारा श्वास लिया जाता है और नासिकाके दोनों छिद्र श्वासके अवरोध से रुके हुएसे होजाते हैं।

घ्राणपाक।

पचेन्नासापुटे पित्तं त्वङ्मांसं दाहशूलवत्॥
स घ्राणपाकः

अर्थ-घ्राणपाकरोग में पित्त नासिकापुट के त्वचा और मांस को पकाकर दाह और शूल पैदा कर देता है।

घ्राणस्राव रोग।

स्रावस्तु तत्संज्ञः श्लेष्मसंभवः।
अच्छो जलोपमोऽजस्रं विशेषान्निशि जायते

अर्थ-घ्राणस्राव रोग केवल कफसे उत्पन्न होता है। इसमें सदाही और विशेष करके रात्रि में जल के समान स्वच्छ स्राव निरंतर होता रहता है।

अपीनस रोग का लक्षण।

कफः प्रवृद्धो नासायां रुध्वा स्रोतांस्यपीनसम्
कुर्यात्सघुर्घुरं श्वासं पीनसाधिकवेदनम्॥
अथेरिव स्रवत्यस्य प्रक्लिन्ना तेन नासिका।
अजस्रं पिच्छिलं पीतं पक्वं सिंघाणकं घनम्।

अर्थ-कफ बढ़कर नासिका के संपूर्ण स्रोतों को रोककर घुर्घुर श्वासयुक्त और पीनस से अधिक एक प्रकार का रोग उत्पन्न कर देता है, जिसे अपीनस कहते हैं। इसमें रोगी की नासिका भेड की नाफ की तरह झरती रहती है। तथा पिच्छिल, पीला पकाया हुआ और गाढा गाढा नासिका का मल निरंतर निकलता रहता है।

दीप्ति के लक्षण।

रक्तेन नासादग्धेन बाह्यांतः स्पर्शनासहा।
भवेद्धूमोपमात्श्वासा सा दीप्तिर्दहतीव च

अर्थ-नासिका में रक्त विदग्ध होकर नासिका के भीतर और बाहर अत्यन्त वेदना उत्पन्न कर देता है। निश्वास धूंए के सदृश निकलता है और नासिका में जलन पैदा होजाती है। यह रोग दीप्ति-संज्ञक है।

पूतिनासा के लक्षण।

तालुमूले मलैर्दुष्टैर्मुखनासिकात्।
श्लेष्मा च पूतिर्निर्गच्छेत्पूतिनासंवदंतितम्

अर्थ-तालु की जड में दोषों के दूषित होने से मुख और नासिका के द्वारा दुर्गंधित कफ और वायु निकलने लगता है। इसी को पूतिनासा रोग कहते हैं।

पूयरक्त के लक्षण।

निचयादभिघाताद्वा पूयासृङ्नासिका स्रवेत्
तत्पूयरक्तमाख्यातं सिरोदाहरुजाकरम् २४

अर्थ-त्रिदोष के प्रकोप से अथवा चोट लगने से नासिका से राध और रुधिर निकलने लगता है। इसे पूयरक्त रोगकहते हैं। इससे मस्तक में दाह और वेदना होने लगती है।

पुटक लक्षण।

पित्तश्लेष्मावरुद्धौऽन्तर्नासायांशोषयेन्मरुत्
कफं सशुष्कपुटतां प्राप्नोति पुटकं तु तत्।

अर्थ-वायु पित्त और कफसे रुक कर नासिका के भीतर कफको सुखा देती है। इससे वह कफ शुष्क पुटता को प्राप्त हो जाताहै। इसे पुटक रोग कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्शोऽर्बुद के लक्षण।

अर्शोर्बुदानि विभजेद्दोषलिंगैर्यथायथम्।

अर्थ-दोषों के लक्षणों के अनुसार अर्श अर्बुद की पहंचान होती है।

उक्तरोगों के उपद्रव।

सर्वेषु कृच्छ्रात्प्रश्वसनं पीनसः प्रततं क्षवः सानुनासिकवादित्वं पूतिनासःशिरोव्यथा।

अर्थ—सब प्रकार के नासार्श और नासार्बुद रोगों में श्वास बडे कष्ट से आता जाता है। पीनस, लगातार छींक, बोलने में गिनागिनाहट, पूतिनासा और शिरोवेदना ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

दुष्टपीनस को याप्यत्व।

अष्टादशानामित्येषां याप्येदुष्टपीनसम् २७

अर्थ—ऊपर कहे हुए अठारह प्रकार के पीनस रोगों में दुष्ट पीनस याप्य होता है।

इतिश्री अष्टांगहृदय संहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने नासारोग विज्ञानीयो नामैकोन विंशोऽध्यायः॥१९॥

विंशोऽध्यायः

—:०:—

अथाऽतो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से नासारोग प्रतिषेधनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

पीनस में स्नेहनादि।

" सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत्
स्नेहनस्वेदवमनधूमगंडूषधारणम्॥ १॥
वातश्लेष्मगुरूष्णं शिरसः क्षुद्यमं परिवेष्टनम्।
लघ्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम्।
धन्वमांसगुडक्षीरचणकत्रिकटूत्कटम्।
यवगोधूमभूयिष्ठं दधिदाडिमसाधितम् ३
बालमूलकजो यूषः कुलत्थोत्थश्च पूजितः।
कषोष्णं दशमूलांबुजार्णो वा धारणंपिबेत्
जिघ्रेच्चोरकतर्कारीवचाजाज्युषकुंचिकाः।

अर्थ—सब प्रकार के पीनस रोगों में वायुरहित स्थान में बैठना चाहिये। स्नेहन स्वेदन, वमन, धूमपान, गंडूषधारण, भारी और गरमी रेशमी वा ऊनी वस्त्र पहनना, सिर पर बडा कपडा लपेटना, हलका खट्टा नमकीन स्निग्ध उष्ण और गाढा भोजन करना, जांगलमांस, गुड, दूध, चना, त्रिकुटा, जौ, गेंहू, दही, अनार, कचीमूली का यूष, कुलथी का यूष, दसमूल का गुनगुना काढा, और पुराना मद्य। ये सब खाने पीने में हितकारी हैं। चोरक, तर्कारी वच, दोनों प्रकार का जीरा इनको सूंघना चाहिये।

पीनसादिनाशक औषध।

व्योषतालीसवचिकातिन्तिडीकाम्लवेतसम्
साम्यजाजीद्विपालिकात्वगेलापत्रपादिकम्
जीर्णाद्गुडात्तुलार्धेन पक्वेन वटकीकृतम् ६
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम्।

अर्थ-त्रिकुटा, तालीसपत्र, कच्चा इमली अम्लवेत, चीता और जीरा प्रत्येक दो पल दालचीनी, इलायची और तेजपात प्रत्येक दो तोले। इन सब द्रव्यों को २०० तोले पुराने गुड में पकाकर गोलियां बनालेवे। इनके सेवन से पीनस, श्वास और खांसी जाते रहते हैं। तथा रुचि और स्वर ठीक होजाते हैं।

धूमपान विधि।

शताह्वात्वग्बलामूलं स्योनाकैरंडविल्वजम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारग्वधं पिबेद्धूमं बलाज्यमदनाऽन्वितम् ।
अथवा घृतान्सक्तून्कृत्वा मल्लकसंपुटे ८

अर्थ–सोंफ, दालचीनी, खैरटी की जड श्यौनाक, अरंड और अमलतास की जड, इन सब द्रव्यों में चर्बी, घी और मेनफल मिलाकर धूमपान करे । अथवा घृतप्लुत सत्तू को मल्लकसंपुट में दग्ध करके धूमपान करे ।

स्नानादि निषेध ।

त्यजेत्स्नानं शुचं क्रोधंभूशंशय्यांहिमंजलम्

अर्थ–पीनसादि रोग में स्नान, शोक, क्रोध, निरंतर शयन और ठंडा जल त्याग देना चाहिये ।

वातज प्रतिश्याय में कर्तव्य ।

पिबेद्वातप्रतिश्याये सर्पिर्वातघ्नसाधितम् ।
पटुपंचकसिद्धं वा विदार्यादिगणेन वा ।
स्वेदनस्यादिकां कुर्यात् चिकित्सामर्दितोदिताम् ॥ १० ॥

अर्थ–वातिक प्रतिश्याय में रास्नादि वातनाशक औषधों के साथ अथवा सैंधवादि पांचों नमक के साथ अथवा विदार्यादि गण के साथ घी को पकाकर इस घृतको पीवे । इसमें अर्दित चिकित्सा में कहा हुआ स्वेद और नस्य देना चाहिये ।

पित्तरक्तज प्रतिश्याय ।

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।
परिषेकाम्प्रदेहांश्च शीतैः कुर्यात शीतलान्

अर्थ–पित्त और रक्त से उत्पन्न हुए प्रतिश्याय में मधुरगणोक्त द्रव्यों के साथ घृत को पकाकर उस घृत को पान करावे तथा शीतवीर्य द्रव्यों का शीतल शीतल परिषेक और प्रलेप काम में लाना चाहिये ।

नस्यकर्म का प्रयोग ।

धवत्वक्त्रिफलाश्यामाभीरुपर्यार्यबिल्वकैः
क्षीरे दशगुणे तैलं नावनं सनिशैः पचेत् ।

अर्थ–धायकी छाल, त्रिफला, इयामालता, खंभारी, मुरहटी, बिल्व और हल्दी इनके कल्क के साथ दस गुने दूधमें तेल पकाकर नस्य द्वारा प्रयोग करना चाहिये ।

कफजप्रतिश्याय में उपाय ।

कफजे लंघनं लेपः शिरसो गौरसर्षपैः ।
सक्षारं वा घृतं पीत्वा वमेत् पिष्टैस्तु-
नावनम् ॥ १३ ॥
वस्तांबुना पटुव्योषवेल्लवत्सकजीरकैः ।

अर्थ–कफजप्रतिश्याय में लंघन, सिरपर सफेद सरसों का लेप, जवाखारमिश्रित घृतपान करके वमन करना, तथा सेंधानमक, त्रिकुटा, बायविडंग और इन्द्रजौ । इन सबं द्रव्यों को बकरी के मूत्रमें पीसकर नस्य का प्रयोग करना चाहिये ।

सान्निपातिक प्रतिश्याय ।

कटुतीक्ष्णैर्घृतैर्नस्यः कवलैः सर्वजं जयेत् ॥

अर्थ–सान्निपातिक प्रतिश्याय में कटु और तीक्ष्ण घृत का नस्य तथा कवल प्रयोग करना चाहिये ।

दुष्टपीनस की चिकित्सा ।

यक्ष्मकृमिघ्नं कुर्वन् पाययेद्दुष्टपीनसे ।

अर्थ–दुष्ट पीनसरोग में यक्ष्मानाशक और कृमिनाशक चिकित्सा करना चाहिये ।

नासिकाद्वारा धूमपान ।

व्योषोरुबूककृमिजिद् दारुमाद्वीगदे धुवम् ॥
वार्ताकबीजं त्रिवृता सिद्धार्थः पूतिमत्स्यकः
अग्निमंथस्य पुष्पाणि पीलुशिग्रुफलानि च ॥
अश्वविड्रससूत्राभ्यां हस्तिमूत्रेण चैकतः ।
क्षौमगर्भां कृतां वर्तिं धूमं प्राणास्यतः पिबेत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–त्रिकुटा, अरंड, बायविडंग, देवदारू, अतीस, कूठ, सोंदी, बेंगन का बीज, निसोथ, सफेद सरसों, सडी मछली, अरनी के फूल, पीलू, सहंजने के फल, इन सब द्रव्यों को इकट्ठा करके घोडे की लीदके रसमें घोडे और हाथी के मूत्रों में पीसकर उसको रेशमी वस्त्र पर लीपकर बत्ती बनावै। इस बत्तीके धूंएको मुख और नासिका द्वारा पान करे।

पुटपाक का उपाय।

क्षवथौ पुटपाकाख्ये तीक्ष्णैः प्रधमनं हितम्

अर्थ–पुटपाकनामक क्षवथुरोगमें तीक्ष्ण द्रव्यों का प्रधमन करना चाहिये।

क्षवपुटनाशक प्रयोग।

शुंठी कुष्ठकणाबेल्लद्राक्षाकल्ककषायवत् ॥
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवपुटप्रणुत्।

अर्थ–सोंठ, कूठ, पीपल, बायविडंग, और दाख इनके कल्क और काढे के द्वारा घी और तेलको पकाकर नस्य देनेसे क्षवथु पुटपाकरोग जाता रहता है।

नासाशोष का उपाय।

नासाशोषे बलातैलं पानादौ भोजनं रसैः ॥
स्निग्धोधूमस्तथास्वेदोनासानाहेऽप्ययंविधिः

अर्थ–नासाशोषरोग में पान और नस्यादि में बलातेल हितकारी है। इसमें मांसरस के साथ भोजन, स्निग्ध धूमपान, और स्वेद हितकारी है। नासानाहरोग में भी ऐसी ही चिकित्सा करना चाहिये।

नासापाकादि का उपाय।

पाके दीप्तौ च पित्तघ्नं तीक्ष्णं नस्यादिसंस्कृतौ

अर्थ–नासापाक और नासादीप्तरोग में पित्तनाशक तीक्ष्ण नस्यादि का प्रयोग करना चाहिये।

पूतिनासा का उपाय।

कफपीनसवत्पूतिनासापीनसयोः क्रिया।

अर्थ–पूति नासा और पूतिपीनस रोग में कफपीनस की तरह चिकित्सा करना उचित है।

वमन प्रयोग।

लाक्षाकरंजमरिचवेल्लहिंगुकणागुडैः ॥
अविमूत्रद्रुतैर्नस्यं कार्येद्वमने कृते।

अर्थ–लाख, कंजा, कालीमिरच, बायविडंग, हींग, पीपल और गुड इन सब द्रव्यों को भेडके मूत्रमें सानकर इसके द्वारा वमन कराके नस्य देवै।

अन्य प्रयोग।

शिग्रुसैंहीनिकुंभानां बीजैः सव्योषसैंधवैः।
सवेल्लसुरसैस्तैलं नावनं परमं हितम्।

अर्थ–सहंजना, कटेरी, दंती की जड, त्रिकुटा, सेंधानमक, बायविडंग और तुलसी इनके साथ तेल पकाकर इस तेल का नस्य द्वारा प्रयोग करने से पूतिनासा और पूतिपीनसरोग नष्ट होजाते हैं।

नवीन पूयरक्त का उपाय।

पूयरक्ते नवे कुर्याद् रक्तपीनसवत्क्रियाम्॥
अतिप्रवृद्धे नाडीवत्

अर्थ- नवीन पूयरक्तरोग में रक्तज पीनस के समान चिकित्सा करनी चाहिये। तथा अत्यन्त बढजाने पर नाडीव्रण के समान चिकित्सा करना उचित है।

अर्शोव्रणचिकित्सा।

व्रणेष्वर्शोव्रणेषु च।
निकुंभकुंभार्कसैंधूत्थमनोह्वाक्षवजातिकैः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कल्कितैर्घृतमभ्वाक्तां घ्राणे वर्तिं प्रवेशयेत् । शिग्वादिनावनंचात्रपूतिनास्योऽपि तं भजेत्

अर्थ–नासार्श और नासार्बुद को दग्ध करके निसोथ, दंती, सेंधानमक, मनसिल, हरताल, पीपल, और चीता इन सब द्रव्यों के कल्क द्वारा बनाई हुई वर्त्ती को घी में भिगोकर नासिका के छिद्र में प्रवेश करदे, इसमें पूतिनासा में कही हुई शिग्रु आदिकी नस्यका प्रयोग करना चाहिये ।

इति श्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां नासारोगप्रतिषेधोनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

—०:☺:०—

अथाऽतो मुखरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां से मुखरोग विज्ञानीय नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

मुखरोग का हेतु ।

मत्स्यमाहिषवाराहपिशितामकमूलकम् । माषसूपदधिक्षीरसुकेक्षुरसफाणितम् ॥ अवाक् शय्या च भजतो द्विषतो दंतधावनम् धूमच्छर्दनगंडूषानुचितं च सिराव्यधम् ॥ कुद्धाः श्लेष्मोल्बणा दोषाः कुर्वंत्यतर्मुखे- गदान् ।

अर्थ–मछली, भैंस का मांस, शूकरका मांस, कच्चीमूली, उरद की दाल, दही, दूध, कांजी, ईखका रस, फाणित, नीचे सिरहाने की शय्या, दंतधावन का त्याग, धूमपान वमन गंडूष का त्याग करना, सिरा व्यधका त्याग । इन सब कामोंके करनेवाले के कफाधिक्यवाले कुपित हुए दोष मुख के भीतर रोगों को पैदा करदेते हैं ।

खंडौष्ठ के लक्षण ।

तत्र खंडौष्ठ इत्युक्तो वातेनोष्ठो द्विधा कृतः ॥

अर्थ- वायुके द्वारा ओष्ठके दो भाग हो जाते हैं, इसे खंडौष्ठरोग कहते हैं ।

ओष्ठकी स्तब्धता ।

ओष्ठकोपे तु पवनात् स्तब्धावोष्ठौ महारुजौ दाल्येते परिपाट्येते परुषासितकर्कशौ ॥

अर्थ–वातजनित ओष्ठ प्रकोपमें दोनों ओष्ठ स्तब्ध, महावेदनान्वित, दलने और फटने की सी पीडा से युक्त, खरदरे, काले और कर्कश हो जाते हैं ।

पित्तदूषित ओष्ठ ।

पित्तात्तीक्ष्णासहौपीतौसर्षपाकृतिभिश्चितौ पिटिकाभिर्महाक्लेदावाशु पाकौ

अर्थ–पित्तजनित ओष्ठप्रकोप में दोनों ओष्ठ तीक्ष्ण द्रव्यको सहने में अशक्त हो जाते हैं । पीले रंगकी सरसों के आकार वाली फुंसियों से व्याप्त हो जाते हैं, तथा महाक्लेदयुक्त और शीघ्रपाकी हो जाते हैं ।

कफदूषित ओष्ठ ।

कफात्पुनः ॥ ५ ॥

शीतासहौ गुरू श्लक्ष्णौ सवर्णापिटिकाचितौ ।

अर्थ–कफजनित ओष्ठप्रकोप में दोनों ओष्ठ शीतलता को नहीं सहसकते हैं, भारी, फूली हुई तथा त्वचा के समान वर्णवाली पिटकाओं से व्याप्त हो जाते हैं ।

सान्निपातदूषित ओष्ठ ।

सन्निपातादनेकाभौ दुर्गंधास्रावपिच्छिलौ ॥ अकस्मान्म्लानसंशूनरुजौ विषमपाकिनौ ।

अर्थ–सन्निपात द्वारा उत्पन्न हुए ओष्ठ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकोपमें दोनों ओष्ठ अनेक वर्णकी फुंसियों से व्याप्त, दुर्गंधित स्रावयुक्त और पिच्छिल, अकस्मात् म्लान, अकस्मात् स्फीत, अकस्मात् वेदनान्वित और विषमपाकी होते हैं।

रक्तोपसृष्ट ओष्ठके लक्षण।

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ७
खर्जूरसदृशं चाऽत्र क्षीणे रक्तेऽर्बुदं भवेत्।

अर्थ-रक्तद्वारा उपसृष्ट दोष रक्तस्रावी और रुधिर के समान होता है। रक्तके क्षीण होने पर ओष्ठमें खिजूर के समान अर्बुद पैदा हो जाता है।

मांसोपसृष्ट ओष्ठके लक्षण।

मांसपिंडोपमौमांसात्स्यातांमूर्छत्कृमीक्रमात्

अर्थ-मांससे दूषित ओष्ठ मांसपिंड के समान हो जाता है। इनमें धीरे धीरे कीडे पैदा होजाते है।

मेदोदुष्ट ओष्ठके लक्षण।

तैलाभस्रवथुक्लेदौ सकंडूयौ मेदसामृदू।

अर्थ-मेदासे दूषित ओष्ठ तेलके सदृश स्रवन और क्लेद से युक्त होते हैं, इनमें खुजली चलती है, और मृदुता होती है।

क्षतज ओष्ठके लक्षण।

क्षतजावपदीर्येते पाट्येते वासकृत्पुनः ९
ग्रथितौ च पुनः स्यातां कंडूलौ दशनच्छदौ

अर्थ-क्षतज ओष्ठप्रकोपमें दोनों ओष्ठ ग्रथित, खुजलीयुक्त, तथा निरंतर विदीर्ण और फटने की सी वेदना से युक्त होते है।

ओष्ठमें जलार्बुद।

जलबुद्बुदवद्वातकफाद्योष्ठे जलार्बुदम् १०

अर्थ-वात और कफके प्रयोग से ओष्ठ में बुदबुद के समान अर्बुद उत्पन्न होता है उसे जलार्बुद कहते है॥

गंडालजी के लक्षण।

गंडालजी स्थिरःशोफो गंडे दाहज्वरान्वितः

अर्थ-गंडस्थल में जो दाह और ज्वर से युक्त स्थिर सूजन पैदा होती है, उसे गंडालजी कहते हैं। ये ग्यारह प्रकार के ओष्ठरोग कहे गये हैं। अब दांत के रोगों का वर्णन करते हैं॥

शीतरोग।

वातादुष्णसहा दंताःशीतस्पर्शाधिकव्यथाः
क्ष्वेल्यते इव शूलेन शीताख्यो दालनश्च सः

अर्थ-वायुके प्रकोपसे दांत उष्णता को सह सकते हैं। ठंडी वस्तुके स्पर्श से उनमें अधिक पीडा हुआ करती है। शूलके कारण दांत दले हुए से हो जाते हैं। इसरोग को शीतदंत वा दालन कहते हैं॥

दंतहर्ष के लक्षण।

दंतहर्षे प्रवाताम्लशीतभक्ष्याक्षमा द्विजाः।
भवंत्यम्लाशनेनैव सरुजाश्चलिता इव।

अर्थ-दंतहर्षरोग में दांत प्रचंडवायु, खटाई और शीतल पदार्थों का खाना नहीं सह सकते हैं। खटाई खाने से दांतों में वेदना और चलितता होजाती है॥

दंतभेदके लक्षण।

दंतभेदे द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विताः।

अर्थ-दंतभेद रोगमें दांतों में तोद, भेद, वेदना और फटनेकी सी पीडा हुआ करती है

चालाख्यरोग।

चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः।

अर्थ-दांतोंको चलाने और उनसे किसी वस्तुके चबाने में अधिक वेदना हुआ करती है, इसको चाल रोग कहते हैं॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कराळरोग ।

कराळः सुकराळानां दशनानां समुद्भवः ।

अर्थ--जिस रोगमें दांतों की विकट सूरत होजाती है । उसे कराळ रोग कहते हैं ।

अधिदंत के लक्षण ।

दंताधिकोऽधिदंताख्यः स चोक्तःखलुवर्धनः
जायते जायमानेऽतिरुग् जाते तत्रशाम्यति

अर्थ--जिस रोगमें दांतके ऊपर दांत निकल आता है, उसे अधिदंत रोग कहते हैं।इसकादूसरानामवर्द्धन भी है, इस दांतके पैदा होने के समय बडा कष्ट हुआ करता है । पैदा होनेके पीछे वेदना शांत होजाती है

पूतिगंधरोग का लक्षण ।

अधावनान्मलो दंते कफो वा वातशोषितः
पूतिगंधः स्थिरीभूतःशार्करा सोऽप्युपेक्षितः

अर्थ--दंतधावन न करने से दांतों का मैल वा कफ वायुद्वारा शोषित होकर पूतिगंधयुक्त और स्थिर होजाता है। इसकी ठीक समय पर चिकित्सा न किये जाने से यह शर्करारोग में बदल जाता है ॥

कपालिका के लक्षण ।

शीर्यत्यणुशो दंतात्कपालानि कपालिका।

अर्थ--जिस रोगमें दांतों से छोटे छोटे टुकडे झड पडते हैं, उसे कपालिकारोग कहते हैं ।

श्याव के लक्षण ।

श्यावःश्यावत्वमाथाता रक्तपित्तानिलैर्द्विजाः।

अर्थ-रक्तपित्त और वायुके कारण संपूर्ण दांत काले रंगके होजाते हैं । इस रोगको श्यावदंत कहते हैं ।

प्लुनका लक्षण ।

समूलं दंतमाश्रित्य दोषैकत्वमुपागतैः ।
शोषिते मज्जि सुषिरे दंतेऽन्नमलपूरिते ॥
पूतित्वात्कृमयःसूक्ष्मा जायंते जायते ततः ।
अहेतुतीव्रार्तिशमःसंरंभो क्षितदंतकः ॥
प्रभूतपूयरक्तस्तु स चोक्तःकृमिदंतकः ।

अर्थ--वातादिक्य संपूर्ण दोष दांतोंकी जड समेत आश्रयलेकर दांतों की मज्जा को शोषित करदेता है और दांतों में छिद्र करके उनको अन्नके मल से भरदेते हैं । उस अन्नके मलके सडने पर छोटे छोटे कीडे पैदा होजाते हैं । इस रोगमें दांत सचल, काले और सूजन से युक्त होजाते हैं । इस में बिनाकारण ही कभी वेदना होने लगती है और कभी मिट जाती है । इसमें राध लोहू अधिकता से निकलता है । इसरोग को कृमिदंत भी कहते हैं ये दस प्रकार के दंतरोग हैं ।

शीताद के लक्षण ।

श्लेष्मरक्तेन पूतीनि वहंत्यस्रमहेतुकम् ॥
शीर्यंते दंतमांसानि मृदुक्लिन्नासितानि च ।
शीतादोऽसौ

अर्थ -दूषितहुए कफ और रक्तद्वारा दांतों का मांस दुर्गंधित, रक्तस्रावी, अकारण, वेदनायुक्त, शीर्ण, मृदु, क्लिन्न, और काला होजाता है । इसे शीतादरोग कहते हैं ।

उपकुश के लक्षण ।

उपकुशः पाकः पित्तासृग्गुल्मवः ॥
दंतमांसानि दह्यंते रक्तान्युत्सेधवंत्यतः ।
कंडूमंति स्रवंत्यस्रमाश्मायंतेऽसृजि स्थिते ॥
चला मंदरुजो दंताः पूतिवक्त्रं च जायते ।

अर्थ--दूषित रक्तपित्त के कारण दंतमांस पकजाता है, इसको उपकुशरोग कहते हैं । उपकुशरोग में दंतमांस दाहयुक्त लाल रंगका, सूजन और खुजलीसे युक्त तथा रक्तस्रावी होता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। रुधिरका निकलना बन्द होने पर फूल जाता है। इस रोग में दांत चल और मंदवेदना से युक्त तथा मुखदुर्गंधित हो जाता है।

दंतपुप्पुट के लक्षण।

दंतयोस्त्रिषु वा शोफो बदरास्थिनिभो घनः॥
कफासृक्तीव्ररुक् शीघ्रं पच्यते दंतपुप्पुटः।

अर्थ-दो अथवा तीन दोषों में बेरकी गुठली के समान गाढा शोफ होजाता है। तथा कफ और रक्तके कारण इनमें तीव्र वेदना होने लगती है, इसमें पकाव बहुत शीघ्र होजाता है। इसरोग का नाम दंतपुप्पुट है।

दंतविद्रधि के लक्षण।

दंतमांसे मलैः साम्रैर्बाह्यांतः श्वयथुर्गुरुः॥
सरुग्दाहः स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दंतविद्रधिः।

अर्थ--दांतों के मांसमें भीतर और बाहिर की ओर वातादि तीनों दोष और रक्तके कुपित होने से दाह और वेदना से युक्त भारी सूजन पैदा होजाती है और इस सूजन के फटने पर राध और लोहू निकलने लगता है। इसरोग को दंतविद्रधि कहते हैं।

सुषिर के लक्षण।

श्वयथुर्दंतमूलेषु रुजावान् पित्तरक्तजः।
क्लालस्रावी स सुषिरो दंतमांसप्रशातनः।

अर्थ--पित्तरक्त के प्रकोप के कारण दांतों की जड में वेदना से युक्त और लार टपकाने वाली सूजन पैदा होजाती है। इस रोग में दांतों का मांस झड पडताहै। इसको सुषिर रोग कहते हैं।

महा सुषिररोग।

स सन्निपातज्वरवान् सपूयरुधिरस्रुतिः।
महासुषिर इत्युक्तो विशीर्णद्विजबंधनः।

अर्थ--दांतों की जड में एक सूजन होती है जिसमें सन्निपातज ज्वर होता है और इस सूजन में से राध और लोहू निकलता रहता है इससे दांतों के बंधन ढीले पडजाते हैं, इसे महासुषिररोग कहते हैं।

अधिमांसक रोग।

दंतांते कीलवच्छोफो हनुकर्णरुजाकरः॥
प्रतिहंत्यभ्यवहृतिं श्लेष्मणा सोऽधिमांसकः

अर्थ-जिस रोग में दांतों के अंत में कील के समान सूजन पैदा होजाती है और जिसके कारण ठोडी और कान में दर्द होने लगता है। इसमें भोजन करना भी कठिन होजाता है। यह रोग कफ से उत्पन्न होता है और अधिमांसज कहलाताहै।

विदर्भ के लक्षण।

घृष्टेषु दंतमांसेषु संरंभो जायते महान्॥
यस्मिंश्चलंति दंताश्च स विदर्भोऽभिघातजः।

अर्थ--दंतकाष्ठादि द्वारा दांतों के मांस के रिगड खाजाने पर दांतों की जड में दारुण सूजन पैदा होजाती है। इसके कारण सब दांत हिलने लगजाते हैं। यह व्याधि चोट के कारण से होती है, इसे विदर्भरोग कहते हैं।

पांच प्रकार की गति।

दंतमांसाश्रितान् रोगान् यः साध्यान्-
प्युपेक्षते॥
अंतस्तस्यस्रवन् दोषः सूक्ष्मां संजनयेद्गतिम्
पूयं मुहुः सा स्रवति त्वङ्मांसास्थिप्रभेदिनी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ताः पुनः पंच विज्ञेया लक्षणैः स्वैर्यथोदितैः।

अर्थ–दांतों के मांसमें होनेवाले संपूर्ण साध्यरोगों की भी उपेक्षा करने से वातादि दोष भीतर ही भीतर पतली पतली नाली पैदा करलेते हैं इन नालियों में होकर बार बार राध निकला करती है तथा त्वचा, मांस और अस्थि अलग अलग होजाते हैं। वातादि दोष से ये नाली पांच प्रकार की होती हैं, यथा–वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और अभिघातज। इन सब का दोषानुसार वर्णन किया जायगा। दांत की जड में तरह प्रकार के रोग हुआ करते हैं।

वातादि दूषित जिह्वा के लक्षण।

शाकपत्रखरा सुप्ता स्फुटिता वातदूषिता ॥
जिह्वापित्तात् सदाहोषा रक्तैर्मांसांकुरैश्चिता
शाल्मलीकंटकाभैस्तु कफेन बहुला गुरुः ॥

अर्थ–शाकपत्र के समान खरदरी, सुप्त और फटी हुई जीभ वात दूषित होती है। पित्त दूषित जिह्वा दाह और तापसे युक्त तथा लाल रंगके मांसांकुरों से उपचित होती है। कफ दूषित जिह्वा भारी तथा सेमर के कांटों के सदृश मांस के अंकुरों से व्याप्त होती है।

अलसके लक्षण।

कफपित्ताद्धः शोफो जिह्वास्तंभकरुन्नतः।
मत्स्यगंधिर्भवेत्पाकः सोऽलसो मांसशातनः

अर्थ–कफपित्त के प्रकोप में जिह्वाके नीचे के भागमें जिह्वा को स्तंभन करनेवाली ऊंची सूजन पैदा होजाती है। इसके पकने पर मछली के समान आमगंध आती है, ऐसे रोगको अलस रोग कहते हैं, अलस रोगमें मांस झड पडता है।

अधिजिह्वा के लक्षण ॥

प्रबंधनेऽधो जिह्वायाः शोफो जिह्वाप्रसन्निभः।
सांकुरः कफपित्ताभ्यां लालास्रावी सतृट्तप्तः स्तब्धः खरस्पर्शो सरुक्कंडूर्वाक्याहारविघातकृत।

अर्थ–जिह्वाकी जडके नीचे के भागमें कफपित्त और रक्तके प्रकोप में जिह्वा के अग्रभाग की तरह आकृति से युक्त मांसके अंकुरों से व्याप्त, लालास्रावी, संतप्त, स्तब्ध, खरस्पर्श, वेदना और खुजली से युक्त तथा वाणी और आहार को रोकनेवाली सूजन पैदा हो जाती है। इसरोग को अधिजिह्वा कहते हैं।

उपजिह्वा के लक्षण।

तादृगेवोपजिह्वस्तु जिह्वाया उपरि स्थितः

अर्थ–जिह्वा की जडके ऊपरवाले भाग में जब ऐसी सूजन पैदा हो जाती है, तब उसको उपजिह्वा कहते हैं।

तालुपिटका के लक्षण।

तालुमांसेनिलाद्दुष्टे पिटिकाः सरुजः खराः।
बहवो घनाः स्रावयुक्तास्तास्तालुपिटिकाः स्मृताः ॥

अर्थ–वायुके प्रकोप के कारण तालु के मांसमें ऐसी बहुत सी फुंसियां हो जाती है जिनमें दर्द, खरदरापन और गाढास्राव होता है। इसको तालुपिटका रोग कहते हैं।

गलशुंडिका के लक्षण ॥

तालुमूले कफात्साम्रात मत्स्यवस्तिनिभो मृदुः।
प्रलंबः पिच्छिलः शोफो नासयाऽऽहारमीरयन् ॥
कंठोपरोधस्तमूत्कासवमिकृद्गलशुंडिका।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ—तालु की जडमें कफरक्त से मछली की वस्ति के सदृश कोमल, लंबी और पिच्छिल सूजन पैदा होजाती है. इसे गलशुंडिका कहते हैं। गलशुंडिका सूजन में भोजन का द्रव्य नासिका में होकर बाहर निकल पडता है इसमें कंठरोध, तृषा, खांसी और वमन ये उपद्रव उपस्थित होते हैं।

तालुसंहति ॥

तालुमध्ये निरुग्मांसं संहतं तालुसंहतिः ॥

अर्थ—तालु के बीचमें वेदनारहित कठोर सूजन होती है, उसे तालुसंहति कहते हैं।

अर्बुद के लक्षण ॥

पद्माकृतिस्तालुमध्ये रक्ताच्छ्वयथुरर्बुदम् ।

अर्थ—रक्तके प्रकोप से तालुके बीचमें पद्मके आकार के समान जो सूजन होती है उसे अर्बुद कहते हैं।

कच्छप के लक्षण।

कच्छपः कच्छपाकारश्चिरवृद्धिः कफादरुक्

अर्थ—कफके प्रकोप से तालु के बीचमें कछुए की आकृति के समान जो वेदना से रहित सूजन होती है उसे कच्छप कहते हैं यह देरमें बढती है।

पुप्पुट के लक्षण।

कोलाभः श्लेष्ममेदोभ्यां पुप्पुटो नीरुजः स्थिरः

अर्थ—जो सूजन कफ और मेद से उत्पन्न होकर बेरकी आकृति के समान वेदना रहित और स्थिर होती है, उसे पुप्पुट कहते हैं

तालुपाक के लक्षण।

पित्तेन पाकः पाकाख्यः पूयास्रावी महारुजः

अर्थ—दूषित पित्तके कारण तालुके पकजानेपर राध निकलने लगती है और घोर वेदना होती है।

तालुशोष के लक्षण।

वातपित्तज्वरायासैस्तालुशोषस्तदाह्वयः।

अर्थ—वातपित्तज्वर और आयासद्वारा जो तालुशोष होता है, उसको तालुशोष रोग कहते हैं।

रोहिणी के लक्षण।

जिह्वाप्रबंधजाः कंठे दारुणा मार्गरोधिनः।
मांसांकुराः शीघ्रचया रोहिणी शीघ्रकारिणी

अर्थ—कंठस्थान में जिह्वा की जड में जो कंठके मार्गको रोकनेवाले मांसके अंकुर उत्पन्न होजाते हैं। उनको रोहिणी कहते हैं। ये शीघ्रही बढजाते हैं और बहुत जल्दी प्राणों का नाश करदेते हैं।

वातरोहिणी के लक्षण।

कंठास्यशोषकृद्वातात्सा हनुश्रोत्ररुक्करी।

अर्थ—वातजन्य रोहिणी रोगमें कंठ और मुखमें शोष, तथा हनुभाग और कानमें दर्द होता है।

पित्तरोहिणी का कर्म।

पित्ताज्ज्वरोषातृष्मोहकंठधूमायनान्विता।
क्षिप्रजा क्षिप्रपाकार्तिरागिणी स्पर्शनासहा।

अर्थ—पित्तजरोहिणी रोगमें ज्वर, ऊषा, तृषा, मोह, तथा कंठमें धूंआंसा घुमडना, ये सब लक्षण प्रकाशित होते हैं, यह शीघ्र उत्पन्न होकर शीघ्र पकनेवाली, अत्यन्त लाल और स्पर्शको न सह सकनेवाली होतीहै।

कफजरोहिणी का कर्म।

कफेन पिच्छिला पांडुः

अर्थ—कफजरोहिणी रोगमें पिच्छिलता और पांडुवर्णता होती है।

रक्तजरोहिणी का कर्म।

मस्रजा स्फोटकाचिता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तप्तांगारनिभा कर्णरुक्करी पित्तजाकृतिः ।

अर्थ–रक्तजरोहिणी में फोडोंकी व्याप्ति, तप्त अंगार की सदृशता, कानमें दर्द तथा पित्तजरोहिणी के लक्षण उपस्थित होते हैं ।

सान्निपातिकरोहिणी का कर्म ।

गंभीरपाका निचयात्सर्वलिंगसमन्विता ॥

अर्थ–त्रिदोषजरोहिणी में गूढपाक तथा संपूर्ण दोषों के लक्षण पाये जाते हैं ।

कंठशालूकरोग ।

दोषैः कफोल्बणैः शोफः कोलवद्ग्रथितोन्नतः;
शूककंटकवत्कंठे शालूको मार्गरोधनः ।

अर्थ–कफप्रधानवातादि दोष द्वारा कंठमें बेरके समान ऊंची गांठ होजाती है और वह शूक के कांटों की तरह कंठके मार्ग को रोक देती है । उसको कंठशालूक कहते हैं ।

वृन्दा रोग ।

वृंदो वृत्तोन्नतो दाहज्वरकृद्गलपार्श्वगः ॥

अर्थ–गले के पास गोल, ऊंची, दाहोत्पादक और ज्वरकारक जो गांठ होती है उसे वृन्द कहते हैं ।

तुंडिकेरिका रोग ।

हनुसंध्याश्रितः कंठे कार्पासीफलसन्निभः ।
पिच्छिलोमंदरुक्शोफः कठिनस्तुंडिकेरिका

अर्थ–कंठभागमें हनुका आश्रय लेकर कपास के फलके समान आकृति से युक्त, गिलगिली, थोडे दर्दवाली और कठोर सूजन पैदा होजाती है । उसको तुंडकेरिका रोग कहते हैं ।

गलौघ रोग ।

बाह्यांतः श्वयथुर्घोरो गलमार्गार्गलोपमः ।
गलौघो मूर्धगुरुतातंद्रालालाज्वरप्रदः ४८

अर्थ–कंठप्रदेश के भीतर और बाहर कंठमार्ग की अर्गला के सदृश जो अत्यन्त भयानक सूजन होती है, उसको गलौघ कहते हैं, इस रोग में माथे में भारापन, तन्द्रा लार गिरना और ज्वर उपस्थित होते हैं ।

वलय रोग ।

वलयं नातिरुक् शोफस्तद्वदेवायतोन्नतः ।

अर्थ–कंठप्रदेश में थोडे दर्द वाली, लंबी, ऊंची, कंकण के आकार की जो सूजन होती है, उसे वलय कहते हैं ।

गलायुका रोग ।

मांसकीलो गलेदोषैरेको ऽनेको ऽथवाल्परुक्
कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यवहृतिःपृथुमूलोगलायुकः

अर्थ–दुष्ट वातादि दोष द्वारा गले के भीतर कील के समान मोटी जडवाली, अल्प वेदना से युक्त एक वा एक से अधिक मांसकी कील सी पैदा होजाती हैं, इनको गलायुक रोग कहते हैं । इस रोग में श्वास के लेने निकालने में और आहार में बडी कठिनता होती है ।

शतघ्न रोग ।

भूरिमांसांकुरावृता तीव्रतृड्ज्वरमूर्धरुक् ५०
शतघ्नी निचिता घर्तिः शतघ्नीवातिरुक्करी

अर्थ–बहुत से मांसके अंकुरों से आवृत तीव्र तृषा ज्वर और माथे के दर्दसे युक्त, शतघ्नी के समान कांटों से व्याप्त जो वर्ती पैदा होती है, उसे शतघ्नी कहते हैं । लोहे के कांटों से आवृत एक प्रकार के शस्त्र को शतघ्नी कहते हैं, इसके तुल्य होने से इस रोग को भी शतघ्नी कहतेहैं ।

गलविद्रधि रोग ।

व्याप्तसर्वगलः शीघ्रमम्लपाको महारुजः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूतिपूयनिभस्रावी श्ववथुर्गलविद्रधिः।

अर्थ–सर्वकंठव्यापी जो सूजन होती है, उसे गलविद्रधि कहते हैं। यह रोग शीघ्र पैदा होकर शीघ्र पक जाता है। इस में दर्द बहुत होता है और सडी हुई राध सी निकलती है।

गलार्बुद रोग।

जिह्वाधसाने कंठादाधपाकं श्वयथुं मलाः।
जनयंति स्थिरं रक्तं नीरुजं तद्गलार्बुदम्।

अर्थ–वातादि दोष के कारण जीव के अंतिम भाग में कंठ के ओर पास पाक से रहित, कठोर, रक्तवर्ण और वेदनारहित जो सूजन उत्पन्न होती है, उसे गलार्बुद कहते हैं।

गलगंड रोग।

पवनश्लेष्ममेदोभिर्गलगंडो भवेद्बहिः।
वर्धमानः स कालेन मुष्कवल्लंबते निरुक्।

अर्थ–वायु कफ और मेद के कारण गले के बाहर गलगंड नामक रोग होता है, काल के क्रम से बढकर यह अंडकोष की तरह झूलने लगता है, इसमें दर्द नहीं होता है।

वातगलगंड रोग।

कृष्णोऽरुणो वा तोदाढ्यः स वातात्कृष्ण राजिमान्।
वृद्धस्तालुगले शोषं कुर्याच्च विरसास्यताम्

अर्थ–वातिक गलगंड काला वा लाल, काले रंग की सिराओं से व्याप्त होता है यह बढकर तालु और गले को सुखा देता है और मुखको विरस कर देता है।

कफज गलगंड।

स्थिरः सवर्णः कंडूमान् शीतस्पर्शो गुरुः कफात्।
वृद्धस्तालुगले लेपं कुर्याच्च मधुरास्यताम्।

अर्थ–कफज गलगंड कठोर, त्वचा के समान वर्णवाला, छूने में ठंडा और भारी होता है। यह बढकर तालु और गले में लिसाबट और मुख में मधुरता करता है।

मेदोगलगंड।

मेदसः श्लेष्मवद्धानिवृद्धयोःसोऽनुविधीयते
देहं वृद्धश्च कुरुते गले शब्दस्वरेऽल्पताम्।

अर्थ- मेद से उत्पन्न हुआ गलगंड, कफज गलगंड के लक्षणों से युक्त होता है देह के घटने और बढने से यह भी घट बढ जाता है। मेदोज गलगंड बढकर गले में शब्द और स्वर में अल्पता करता है।

श्लेष्मगलगंड।

श्लेष्मरुद्धाऽनिलगतिः शुष्ककंठो हतस्वरः।
ताम्यन्प्रसक्तंश्वसितियेन स स्वरहानिलात्

अर्थ–दूषित कफद्वारा वायुकी गति रुक जाने पर मनुष्य शुष्ककंठ, हतस्वर और वर्द्धित होकर निरंतर श्वास लेने लगताहै। यह वातप्रकोपज व्याधि स्वरघ्न कहलाती है।

मुखपाक का लक्षण।

करोति वदनस्यांतर्व्रणान्सर्वसरोऽनिलः।
संचारिणोऽरुणान्रूक्षानोष्ठौतास्रौचलत्वचौ
जिह्वा शीतासहा गुर्वीस्फुटिताकंटकाचिता
विवृणोति च कृच्छ्रेण मुखपाको मुखस्य च

अर्थ–दूषितहुई वायु मुखके भीतर इधर उधर घूमती हुई मुखपाक नामक रोगको उत्पन्न करती है। इससे मुखके भीतर सब जगह लाल रंगके रूक्ष संचारी व्रण पैदा होजाते हैं और दोनों ओष्ठ तांबे के रंगके सदृश और चलायमान त्वचावाले होजाते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं, तथा जिह्वा शीतलता को सहन नहीं कर सकती है, तथा भारी, फटीहुई, और कांटों से व्याप्त होजाती है । इस रोगमें रोगी बडी कठिनता से मुखफाड सकता है।

ऊर्ध्वगद ।

अधः प्रतिहतो वायुरशोंगुल्मकफादिभिः ।
यात्यूर्ध्वं वक्त्रदौर्गंध्यं कुर्वन्नूर्ध्वगदस्तु सः ।

अर्थ–अर्श, गुल्म और दूषित कफादि द्वारा वायु नीचे को प्रतिहत होकर मुखमें दुर्गन्धि पैदा करता हुआ ऊपर को उठता है । इसे ऊर्ध्वगद कहते हैं ।

पित्तजमुखपाक के लक्षण ।

मुखस्य पित्तजे पाके दाहोषे तिक्तवक्त्रता ।
क्षारोक्षितक्षतसमा व्रणाः

अर्थ–पित्तज मुखपाकरोग में मुखमें दाह, संताप, कडवापन और क्षार से जले हुए घावके समान घाव होजाता है ।

रक्तज मुखपाक ।

तद्वच्चरक्तजे ॥ ६१ ॥

अर्थ–रक्तज मुखपाक में पित्तजमुखपाक के से लक्षण होते हैं ।

कफजमुखपाक ।

कफजे मधुरास्यत्वं कंडूमत्पिच्छिलव्रणाः

अर्थ–कफजमुखपाकरोग में मुखमें मीठापन तथा खुजली से युक्त गिलगिला घाव होजाता है ।

कफज अर्बुद ।

अंतःकपोलमाश्रित्य श्यावपांडु कफोर्बुदम् ।
कुर्यात्तत्पाटितं छिन्नं मृदितं च विवर्धते ।

अर्थ–बढा हुआ कफ कपोलस्थल का आश्रय लेकर श्याव और पांडुवर्ण के अर्बुद को उत्पन्न करता है । यह अर्बुद फटकर, छिन्न होकर और मृदित होकर बढजाता है।

सान्निपातिक मुखपाक ।

मुखपाको भवेत्सान्नैः सर्वैः सर्वोल्बणैर्मलैः

अर्थ–वातादि संपूर्ण दोष और रक्तके प्रकोपसे जो मुखपाक होता है वह वातादि संपूर्ण दोषोंके लक्षणों से युक्त होता है ।

मुखदुर्गंधि ।

पूत्यास्यता च तैरेव दंतकाष्ठादिविद्विषः ।

अर्थ–जो मनुष्य दंतकाष्ठादि अर्थात् दांतन आदिको व्यवहार में नहीं लाते हैं उनके मुखमें इन्हीं वातादि दोषोंद्वारा दुर्गन्धि पैदा होजाती है ।

रोगोंकी संख्या ।

ओष्ठे गंडे द्विजे मूले जिह्वायां तालुके गले ।
घ्रके सर्वत्र चेत्युक्ताः पंचसप्ततिरामयाः ।
एकादशैको दश च त्रयोदश तथा च षट् ।
अष्टावष्टादशाष्टौ च क्रमात्

अर्थ–ओष्ठमें ग्यारह, गंडदेशमें, एक, दांतों में दस, दांतों की जडमें तेरह, जीभ में छः, तालुमें आठ, गलेमें अठारह, और मुखमें आठरोग होते हैं । इस तरह सब मिलकर मुखसंबंधी ७५ रोग हैं । अब इनमें से जो जो रोग असाध्य हैं उनका वर्णन करते हैं ।

असाध्य रोगोंका वर्णन ॥

तेष्वनुपक्रमाः ।
करालो मांसरक्तोष्ठावर्बुदानिजलाह्विना ।
कच्छपस्तालुपिटिका गलौघःक्षुषिरो महान्
स्वरघ्नोर्ध्वगवः श्यावः शतघ्नीवलयालसाः
नाडयोष्ठकोपोनिचयात्रक्तात्सर्वंश्चरोहिणी
दशने स्फुटिते दंतभेदः पक्वोपजिह्विका ।
गलगंडःस्वरभ्रंशःकुच्छ्रोच्छ्वासोऽतिघातसरः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

याप्यस्तु हर्षो भेदश्चशेषान्शस्त्रौषधैर्जयेत्

अर्थ–कराल नामक दंतरोग, मांस दुष्ट और रक्त दुष्ट ओष्ठरोग, जलार्बुद को छोड कर शेष सब अर्बुदरोग, कच्छपरोग, तालु पिडिकारोग, गलौघरोग, महासुषिर नामक दंतरोग, सुरुग्न नामक गलरोग, ऊर्ध्वगद नामक मुखरोग, श्यावदंतरोग, शतघ्नी रोग, वलयरोग, अलसरोग, अधिजिह्व रोग, दंतमूलज सान्निपातिक नाली, त्रिदोषज ओष्ठप्रकोप, रक्तज और त्रिदोषज रोहिणी रोग, वह दंतभेद रोग जिसमें दांत फट जाते हैं, पक्कोपजिह्विका, गलगंड, स्वरभ्रंश, तथा वातरोगातीत कृच्छ्रश्वास, ये सब रोग असाध्य होते हैं। दंतहर्ष और दंतभेद याप्य होते हैं तथा बाकी के सब रोग शस्त्रद्वारा वा औषधद्वारा साध्य होते हैं

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने मुखरोगविज्ञानीयं नाम एकविंशो ऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

—:※:—

अथाऽतो मुखरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहां से मुखरोग प्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

खंडोष्ठ चिकित्सा।

खंडौष्ठस्य विलिख्यांतौस्यूत्वाव्रणवदाचरेत्

अर्थ--स्नेहन और स्वेदनके पीछे खंडोष्ठ के दोनों प्रान्तोंको रेशमी सूत्रसे सीकर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् इसमें सौवार धुले हुए घी की कवलिका का प्रयोग करना उचित है।

अन्य उपाय॥

यष्ट्याह्वज्योतिष्मतीरोध्रश्रावणीसारिवोत्पलैः। पटोल्या काकमाच्या च तैलमभ्यंजनं पचेत्

अर्थ--मुलहटी, मालकांगनी, लोध, गोरखमुंडी, अनन्तमूल, नीलोत्पल, पर्वल और मकोय, इन सब द्रव्यों के साथ तेल पकाकर अभ्यंजन करे॥

नस्यप्रयोग॥

नस्यं च तैलं वातघ्नमधुरस्कंधसाधितम्।

अर्थ--वातनाशक मधुर गणोक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ तेल नस्यके द्वारा उपयोग में लावै॥

वातज ओष्ठकोपका उपाय॥

महास्नेहेन वातौष्ठे सिद्धेनाकः पिचुर्हितः। देवधूपमधूच्छिष्टगुग्गुल्यमरदारुभिः॥ ३॥

अर्थ--राल, मोम, गूगल, और देवदारु, इनके साथ महास्नेह (घी,तेल,वसा,मज्जा) पकाकर इस पक्व महास्नेह में रुईका फोआ भिगोकर वातज ओष्ठप्रकोप में प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है॥

महास्नेहद्वारा प्रतिसारण।

यष्ट्याह्वचूर्णयुक्तेन तेनैव प्रतिसारणम्।

अर्थ–उसी महास्नेह में मुलहटी का चूर्ण मिलाकर प्रतिसारण करनेसे वातजकोपका शमन होजाता है।

वातौष्ठ में स्वेदन।

नाडयोष्ठं स्वेदयेद्दुग्धसिद्धैरेरंडपल्लवैः॥४॥

अर्थ–दूधके साथ अरंड के पत्ते पकाकर नाडी स्वेद से वातज ओष्ठ प्रकोप शांत होजाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्तरोग में नस्यादि ।

खंडौष्ठविहितंनस्यतस्य मूर्ध्नि च तर्पणम् ।

अर्थ–वातजनित ओष्ठ प्रकोप में खंडौष्ठविहित नस्य तथा मस्तक पर तर्पण का प्रयोग करे ।

पित्तजओष्टकोपमें रक्तस्राव ।

पित्ताभिघातजावोष्ठौ जलौकोभिरुपाचरेत्

अर्थ–पित्तज तथा अभिघातज ओष्ठप्रकोप में जोक लगाकर रक्त निकाल डालना चाहिये ।

उक्तरोगमें प्रतिसारण ।

रोध्रसर्जरसक्षौद्रमधुकैः प्रतिसारणम् ।

अर्थ–उक्तरोगों में लोध, राल, शहत और मुलहटी द्वारा प्रतिसारण करना चाहिये ।

उक्तरोगमें अभ्यंजन ।

गुडूचीयष्टिपत्तंगसिद्धमभ्यंजनेघृतम् ॥

अर्थ–गिलोय, मुलहटी, और लालचंदन इनसे सिद्ध किया हुआ घृत अभ्यंजन के काम में लावे ।

अन्य विधि ।

पित्तविद्रधिवच्चात्र क्रिया

अर्थ–उक्तरोगों में पित्तविद्रधि के समान क्रिया करना चाहिये ।

रक्तजओष्ठप्रकोपका उपाय ।

शोणितजेऽपि च।
इदमेव भवेत्कार्यं कर्म

अर्थ–रक्तज ओष्ठ प्रकोप में भी इसी उक्त रीतिसे चिकित्सा करनी चाहिये ।

कफजओष्ठ प्रकोप ।

ओष्ठे तु कफोत्तरे ॥
पाठाक्षारमधुव्योषैर्हृताम्रे प्रतिसारणम् ।
धूमनावनगंडूषाः प्रयोज्याश्च कफच्छिदः ॥

अर्थ–कफजओष्ठ प्रकोप में जोकों द्वारा रक्त निकालकर पाठा, जवाखार, मधु और त्रिकुटा द्वारा प्रतिसारण करे । तथा कफको नाश करनेवाले धूम, नस्य और गंडूष का प्रयोग करे ।

मेदोज ओष्ठकोपका उपाय)

स्विन्नं भिन्नं विमेदस्कं दहेन्मेदोजमग्निना ।
प्रियंगुरोध्रत्रिफलामाक्षिकैः प्रतिसारयेत् ॥

अर्थ--मेदासे उत्पन्न हुए ओष्ठप्रकोप में पसीनों से ओष्ठ को स्विन्न और अस्त्र से चीरकर मेदा को निकालकर अग्निसे दग्ध करे, तथा प्रयंगु, लोध, त्रिफला, और मधु द्वारा प्रतिसारण करे ।

जलार्बुदकी चिकित्सा ।

सक्षौद्रा घर्षणं तीक्ष्णा भिरुशुद्धे जलार्बुदे ।
अवगाढेऽतिवृद्धे वा क्षारोऽग्निर्वा प्रतिक्रिया

अर्थ -जलार्बुद को चीरकर छेदको उसमें से निकालकर पीपल और मिरचादि तीक्ष्ण वीर्य द्रव्यों का चूर्ण मधु मिलाकर रिगडे, इसके अवगाढ होने वा अत्यन्त बढनेपर क्षार वा अग्निसे दग्ध करदे ।

अलजी का उपाय ॥

आमाद्यवस्थास्वलजीं गंडे शोफवदाचरेत् ।

अर्थ--गंडस्थल में उत्पन्न हुई अलजी की चिकित्सा उसके विनापके ही करनी चाहिये ।

शीतदंत की चिकित्सा ।

स्विन्नस्य शीतदंतस्य पालीं विलिखितां दहेत् ॥
तैलेन प्रतिसार्यां च सक्षौद्रघनसैंधवैः ।
दाडिमत्वग्वरातार्क्ष्यकांताजांब्वस्थिनागरैः॥
कवलः क्षीरिणां क्काथैरणुतैलं च भावनम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–शीतदंत की पाली को व्रीहिमुख यंत्रद्वारा विलेखन करके अत्यन्त गरम तेल से दग्ध करे, तथा उसमें शहत, मोथा, सेंधानमक, अनार की छाल, त्रिफला, रसौत, प्रियंगु, जामन की गुठली और सोंठ इनके द्वारा प्रतिसारण करे। वड और पीपल आदि दूधवाले वृक्षों के क्वाथका कवल तथा अणुतैल की नस्य लेवे।

दंतभेदादि का उपाय।

दंतहर्षे तथा भेदे सर्वा वातहरा क्रिया॥
तिलयष्टीमधुशृतं क्षीरं गंडूषधारणम्।

अर्थ–दंतहर्ष और दंतभेद में सब प्रकार की वातनाशिनी क्रिया करनी चाहिये। इसमें तिल और मुलहटी के साथ दूध पकाकर गंडूष धारण करे।

दांतों के हिलनेका उपाय।

सस्नेहं दशमूलांबु गंडूषः प्रचलत्सु दंतेषु॥१४
तुत्थैरोध्रकणाश्रेष्ठापत्तंगपंड्वर्षणम्।
स्निग्धाःशीलयायथावस्थंनस्यान्नकवलादयः

अर्थ–दांतों के हिलने में दशमूल के काढेमें स्नेहमिलाकर गंडूष धारण करे। तथा नीलाथोथा, लोध, पीपल, त्रिफला, लालचंदन और नमक से घर्षण करे। तथा अवस्था अनुसार स्निग्ध नस्य, अन्न और कवलादिक का अभ्यास करे।

अधिकदंत का उपाय।

अधिदंतकमालिप्तं यदा क्षारेण जर्जरम्।
कृमिदंतमिवोत्पाट्य तद्वच्चोपचरेत्तदा॥
अनवस्थितरक्ते च दग्धे व्रण इव क्रिया।

अर्थ–अधिदंत को क्षारद्वारा लिप्त करदे। ऐसा करने से जब वह जर्जरीभूत होजाय तब इनको कृमिदंत की तरह उखाडकर कृमिदंत की तरह चिकित्सा करे। उस अधिदंत के उखाडने पर वहां रुधिर की स्थिति न हो तो उस स्थान को दग्ध करके व्रण के समान चिकित्सा करे।

शर्करानाशक उपाय।

अहिंसन् दंतमूलानि दंतेभ्यः शर्करां हरेत्॥
क्षारचूर्णैर्मधुयुतैस्ततश्च प्रतिसारयेत्।

अर्थ–दांतकी जड में कुछ हानि न पहुंचे, ऐसी रीतिसे दंतलेखक शस्त्रके द्वारा सब शर्करा को खुरच खुरच कर दांतोंसे निकाल देवे। पीछे शहत और क्षार मिलकर वहां रिगड देवे॥

कपालिका का उपाय।

कपालिकायामप्येवं हर्षोक्तं च समाचरेत्॥

अर्थ–कपालिका रोगमें भी यही चिकित्सा तथा दंतहर्षोक्त चिकित्सा करनी चाहिये॥

कृमिदंत का उपाय।

जग्धेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदंतकम्।
स्निग्धैश्चालेपगंडूषनस्याहारैश्चलापहैः॥
गुडेन पूर्णं सुषिरं मधूच्छिष्टेन वा वहेत्।
सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित्।

अर्थ–न हिलनेवाले कृमिदंत को प्रथम स्वेदित करके विस्रावण द्रव्यों के द्वारा लालादि स्राव कराकर तथा वातनाशक द्रव्य, स्निग्ध प्रलेप, गंडूष, नस्य और आहार का प्रयोग करना चाहिये। गुड वा मोंमसे कोडों के किये हुए छेदको भरकर तप्त सलाई से दग्ध करदे। सातला और आक का दूध भरने से भी कीडोंद्वारा किया हुआ शूल निवारित होजाता है।

अन्य प्रयोग।

हिंगुकटुफलकासीससर्जिकाकुष्ठवेल्लजम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रजो रुजं जयत्याशु वस्त्रबद्धं दशने धृतम् ॥

अर्थ--हींग, कायफल, हीराकसीस, सज्जी, कूठ और बायबिडंग । इनके चूर्णको कपडे की पोटली में बांधकर दांतों में दाबने से भी कीडों का दर्द जाता रहता है ॥

गंडूष विधि ।

गंडूषं धारयेत्तैलमेभिरेव च साधितम् ।
क्वाथैर्वा युक्तमेरंडद्विव्याघ्रीभूकदंबजैः ॥

अर्थ--ऊपर कहे हुए हींग कायफल आदि द्रव्यों के साथ तेल पकाकर इस तेल को अथवा अरंड, दोनों कटेरी और भूकदंब इनके काढेमें तेल मिलाकर गंडूष धारण करना चाहिये ॥

अन्य उपाय ।

क्रियायोगैर्बहुविधैरित्यशांतरुजं भृशम् ।
दृढमप्युद्धरेद्दंतं पूर्वं मूलाद्विमोक्षितम् ॥
सदंशकेन लघुना दंतनिर्घातनेन वा ।
तैलं क्षयथ्वाहुवरजो गंडूषो मधुना ततः ॥

अर्थ--इस प्रकार से अनेक उपायों के करने पर भी यदि पीडा शांत न हो तो दृढ दांतको भी जो जडसे हटगया हो छोटी संडासी या दांत उखाडने के शस्त्रसे उखाडकर मुलहटी मिले हुए तेल वा शहत का गंडूष धारण करे ।

नस्य प्रयोग ।

ततो विदार्यिक्ष्वाहुव शृंगाटककसेरुभिः ।
तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं युंजीत नावनम् ॥

अर्थ-तदनंतर भूमिकूष्मांड, मुलहटी, सिंघाडा, और कसेरू इनके कल्क तथा दस गुने दूधके साथ तेल पकाकर नस्यद्वारा प्रयोग करे ।

दांत उखाडने का निषेध ।

कृशदुर्बलवृद्धानां वातार्तानां च नोद्धरेत् ।
नोद्धरेच्चोत्तरं दंतं बहूपद्रवकृद्धि सः ॥
एषामप्युद्धृतैः स्निग्धः स्वादुः शीतः क्रमो हितः ।

अर्थ--कृश, दुर्बल, वृद्ध और वातपीडित रोगियों का दांत न उखाडना चाहियेऊपर वाले दांतको भी न उखाडे क्योंकि उसके उखाडने से बहुत से उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं । दांत उखाडने की आवश्यकताही हो तो दांत उखाडने के पीछे स्निग्ध मधुर और शीतल उपचार करना चाहिये ।

शीतादं का उपाय ।

विस्रावितास्रे शीतादे सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्
मुस्तार्जुनत्वक्त्रिफलाफलिनीतार्क्ष्यनागरैः ।
तत्क्वाथः कवलो नस्यं तैलं मधुरसाधितम् ।

अर्थ--शीतादरोग में रक्तमोक्षण करके मोथा, अर्जुनकी छाल, त्रिफला, प्रियंगु, रसौत, सोंठ, और इन द्रव्यों के द्वारा प्रतिसारण करे । तथा इन्हीं के काढे का कवल और मधुरगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किये हुए तेल का नस्य प्रयोग करे ।

उपकुश का उपाय ।

दंतमांसान्युपकुशे स्विन्नान्युष्णांबुधारणैः ।
मंडलाग्रेण शाकादिपत्रैर्वा बहुशो लिखेत् ॥
ततश्च प्रतिसार्याणि घृतमंडमधुद्रुतैः ।
लाक्षाप्रियंगुपतंगलघणोत्पलगैरिकैः ॥
सकुष्ठशुंठीमरिचयष्टीमधुरसाजनैः ।
सुखोष्णो घृतमंडोऽनु तैलं वा कवलग्रहः ॥
घृतं च मधुरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ।

अर्थ--उपकुशरोग में गरमजल का गंडूष धारण करके दांतों के मांस को स्वेदित करे । फिर मंडलाग्र शस्त्रसे वा शाकादि पत्रों से बार बार खुरचै तदनंतर लाख, प्रियंगु, पतंग, सेंधानमक, गेरू, कूठ, सोंठ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालीमिरच, मुलहटी और रसौत इनके चूर्ण को घृतमंड और शहत में सानकर इससे प्रतिसारण करे। तदनंतर सुखोष्ण घृतमंड वा तेलका कवल धारण, तथा मधुरगणोक्त द्रव्यों के साथ घृत पकाकर इस घृतका कवल वा नस्य की व्यवस्था करना चाहिये।

दंतपुप्पुट का उपाय।

दंतपुप्पुटके स्विन्नछिन्नभिन्नविलेखिते॥
यष्ट्याह्वस्वर्जिकाशुद्धसैंधवैः प्रतिसारणम्।

अर्थ–दंतपुप्पुटरोग को स्वेदद्वारा स्विन्न तथा शस्त्रद्वारा छिन्न भिन्न और विलेखित करके मुलहटी, सज्जीखार, सोंठ और सेंधेनमक के चूर्ण द्वारा प्रतिसारण करे।

दंतविद्रधि का उपाय।

विद्रधौ कटुतीक्ष्णोष्णरूक्षैः कवललेपनम्॥
घर्षणं कटुकाकुष्ठवृश्चिकालीयवोद्भवैः।
रक्षेत्पाकं हिमैः पक्वः पाटयो दाह्योऽथवाऽदकः॥

अर्थ–दंतविद्रधिरोग में कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और रूक्ष द्रव्यों से कवल और प्रलेपन की व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें कुटकी, कूठ, वृश्चिकाली और जौका चूर्ण रिगड दे। शीतवीर्य औषधों के द्वारा पाक निवारण करे। पकने पर उखाडनी चाहिये। अत्यगाढ दंतविद्रधि को अग्निद्वारा दहन करना चाहिये।

सौषिरका उपाय।

सौषिरे छिन्नलिखिते लक्षौद्रैः प्रतिसारणम्
रोध्रमुस्तमिशिष्ठातार्क्ष्यपत्रंगकिंशुकैः॥
सकटूफलैः कषायैश्च तेषां गंडूष इष्यते।
यष्टीरोध्रोत्पलानंतासारिवागरुचंदनैः॥
सगैरिकसिताघृतैः सिद्धं तैलं च नावनम्।

अर्थ–सौषिर रोगको शस्त्रसे छिन्न करके और खुरचकर लोध, मोथा, जटामांसी, त्रिफला, रसौत, पतंग, केसू, कायफल और शहत इनके द्वारा प्रतिसारण करे, तथा इन्ही के काढेका गंडूष धारण करै। मुलहटी, लोध, नीलोत्पल, श्यामालता, अनंतमूल, अगर, चंदन, गेरू, सफेदकटेरी और पौंडा इनसे सिद्ध किये हुए तेलका नस्य द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

अधिमांस का उपाय।

छित्त्वाधिमांसकं चूर्णैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत्।
वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायवशूकजैः।
पटोलनिंबत्रिफलाकषायः कवलो हितः॥

अर्थ–अधिमांस का छेदन करके बच, मालकांगनी, पाठा, सज्जी, जवाखार और शहत इनके द्वारा प्रतिसारण करे। इसमें पर्वल, नीमकी छाल, और त्रिफला के काढे का कवल हितकारी है।

विदर्भ का उपाय।

विदर्भे दंतमूलानि मंडलाग्रेण शोधयेत्।
क्षारं युंज्यात्ततो नस्यं गंडूषादि च शीतलम्

अर्थ–विदर्भरोग में मंडलाग्र शस्त्र से दांतों की जड का शोधन करके क्षार लगाना चाहिये। तत्पश्चात् शीतवीर्य वाले द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ नस्य और गंडूषादि धारण की व्यवस्था करना उचित है।

दंतनाली का उपाय।

संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपचरेत्ततः।
नाडीं दंतानुगां दंतं समुद्धृत्याग्निना दहेत्॥
कुर्ज्जां नैकगतिं पूर्णां मदनेन गुडेन वा।
धावनं जातिमदनखदिरस्वादुकंटकैः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षीरिवृक्षाम्बुगंडूषो नस्यं तैलं च तत्कृतम् ।

अर्थ–विरेचन और नस्यादि द्वारा देह और मस्तक दोनोंका संशोधन करके दंत मूलगत नाडी की चिकित्सा करनी चाहिये। दांतको उखाड कर उस स्थान को अग्नि से दग्ध करदे । बहुमुख वक्रगति वाली नाडी को मैनफल वा गुडसे भरकर दग्ध करदे। चमेली, बकुल, खैर, और गोखरू की टहनियों से दंतधावन करे । बटपिप्पलादि दूधवाले वृक्षोंके काढे से गंडूष धारण तथा इन्हीं दूधवाले वृक्षोंसे तेल पकाकर इस तेल की नस्य ग्रहण करनी चाहिये ।

वातकंटक की चिकित्सा ।

कुर्याद्वातोष्ठकोपोक्तं कंटकेष्वनिलात्मसु ॥ जिह्वायां

अर्थ-वातात्मक जिह्वाकंटकरोगमें वातज ओष्ठ प्रकोप में कही हुई चिकित्सा करे ।

पित्तजिह्वा का उपाय ।

पित्तजातेषु घृष्टेषु रुधिरे स्रुते ।
प्रतिसारणगंडूषनावनं मधुरैर्हितम् ॥

अर्थ–पित्तज जिव्हाकंटक रोगमें जिव्हा को रिगड कर रुधिर को निकाले फिर मधुर द्रव्यों का प्रतिसारण, गंडूष, और नस्य प्रयोग करे ।

कफजजिव्हाकंटक ।

तीक्ष्णैः कफोत्थेष्वेवं सर्षपव्यूषणादिभिः

अर्थ–कफज जिव्हाकंटक रोगमें ऊपर कही हुई रीतिसे जिव्हा को रिगड कर रक्त निकालकर सरसों और त्रिकुटादि तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा प्रतिसारण करे ।

नवीन जिह्वालस का उपाय ।

नवे जिह्वालसेऽप्येवं तं तु शस्त्रेण न स्पृशेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ–नवीन जिह्वालस रोगमें ऐसी ही चिकित्सा करनी चाहिये. अर्थात् इसमें सर्षपादि तीक्ष्ण द्रव्यों के द्वारा प्रतिसारण करे, किन्तु इसमें शस्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये

अधिजिह्वाका उपाय ।

उन्नम्य जिह्वामाकृष्टां बडिशेनाधिजिह्विकाम् ।
छेदयेन्मंडलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादि च

अर्थ–अधिजिह्वा को बडिश यंत्रसे खींचकर और उठाकर मंडलाग्र शस्त्रसे छेदन करे । पीछे तीक्ष्ण और उष्णवीर्य द्रव्यों से घर्षण और प्रतिसारणादि करे ।

उपजिह्वाका उपाय ॥

उपजिह्वां परिस्राव्य यवक्षारेण घर्षयेत् ।

अर्थ–उपजिह्वा को शाकपत्र वा अंगुलिशस्त्रसे परिस्रावित करके जवाखारसे रिगडे

शुंडिका का उपाय ॥

कफघ्नैः शुंडिका साध्या नस्यगंडूषघर्षणैः

अर्थ–शुंडिका रोगीकी चिकित्सा कफनाशक नस्य, गंडूष वा घर्षण द्वारा करे ।

वृद्धगल शुंडिका का उपाय ।

पेर्वारुबीजप्रतिमं वृद्धायामाशिरातनम् ।
अग्रे निविष्टं जिव्हाया बडिशाद्यवलंबितम्
छेदयेन्मंडलाग्रेण नात्यग्रे न च मूलतः ।
छेदेऽत्यग्रक्षयान्मृत्युर्हीने व्याधिर्विवर्धते

अर्थ–गलशुंडिका के बढने पर जीभके अग्रभाग पर दीर्घ आकारवाली ककडी के बीज के सदृश जो आकृति पैदा हो जाती है, उसको बडिशादि यंत्रसे पकडकर मंडलाग्र शस्त्र से काट डाले, परन्तु इस बात का ध्यान रखै कि बहुत किनारे की ओर व जीभ के मूलकी ओर न कटने पावे,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्योंकि अधिक कटने से रक्तक्षय के कारण मृत्यु तककी संभावना है, और कम कटने से रोगकी वृद्धि हो जाती है।

सम्यक् छिन्नमें कर्तव्य ॥

मरिचातिविषापाठावचाकुष्ठकुटंनटैः।
छिन्नायां सपटुक्षौद्रैर्घर्षणं कवलः पुनः ॥
कटुकातिविषापाठानिंबरास्नावचांबुभिः।

अर्थ—गलशुंडिका के ठीक रीतिसे कटने पर कालीमिरच, अतीस, पाठा, वच, कूठ, और केवटी मोथा पीसकर नमक और शहत मिलाकर उस स्थान पर रिगडे, अथवा कुटकी, अतीस, पाठा, नीम, रास्ना और वच के क्वाथ के कुल्ले करे।

पुप्पुटादि का उपाय।

संघाते पुप्पुटे कूर्मे बिलिख्यैवं समाचरेत्॥

अर्थ—तालुसंहिति, तालुपुप्पुट, और तालुकच्छप रोगों की चिकित्सा उक्त रीतिसे विलेखन करके करनी चाहिये।

अपक्व तालुपाक की चिकित्सा।

अपक्वे तालुपाके तु कासीसक्षौद्रतार्ष्यजैः।
घर्षणं कवलः शीतकषायमधुरौषधैः

अर्थ—अपक्व तालुपाकमें हीरा कसीस, शहत और रसौत द्वारा घर्षण तथा शीतकषाय और मधुर औषधोंका कवल धारण करे

पक्वतालुपाक का उपाय।

पक्वेऽष्टापदवद्भिन्ने तीक्ष्णोष्णैः प्रतिसारणम्
वृषनिंबपटोलाद्यैस्तिक्तैः कवलधारणम्

अर्थ—पक्वतालुपाक में तीक्ष्ण और उष्णवीर्य द्रव्यों द्वारा प्रतिसारण करके मंडलाग्र शस्त्र द्वारा शतरंज की चालके समान छेदन करके अडूसा, नीम और पर्वल आदि तीक्ष्ण द्रव्यों का कवल धारण करे।

तालुशोष में कर्तव्य।

तालुशोषे घृतृष्णस्य सर्पिरुत्तरभक्तिकम्।
कणशुंठीसृतं पानमम्लैर्गंडूषधारणम् ५३
धन्वमांसरसाः स्निग्धाःक्षीरसर्पिश्चनावनं

अर्थ—तालुशोषरोग में यदि तृषा की अधिकता न हो तो भोजनके पीछे घृतपान करावे। इस रोगमें पीपल और सोंठके साथ सिद्ध किया हुआ जल पान करावे, कांजी आदि खट्टे द्रव्योंका गंडूष धारण, स्निग्ध जांगल मांस का आहार, तथा दूधके घी की नस्य का प्रयोग करे।

कंठरोग में कर्तव्य।

कंठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च
क्वाथःपानं च दार्वीत्वक्पर्पटोनिंबतार्ष्यकैः कलिंगजः
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः

अर्थ—सब प्रकार के कंठरोगों में रक्तमोक्षण, तीक्ष्ण द्रव्यों का नस्य, और गंडूषादि धारण हितकारी होते हैं। इस में दारुहलदी की छाल, नीम, रसौत और इन्द्रजौ का काढा अथवा मधुमिश्रित हरीतकी का काढा पान कराना चाहिये।

कंठरोग में प्रतिसारण।

श्रेष्टाव्योषयवक्षारदार्वीद्वीपिरसांजनैः।
सपाठातेजिनींनिंबैः सूक्तगोमूत्रसाधितैः।
कवलो गुटिका चाऽत्र कल्पिता प्रतिसारणं

अर्थ—कंठरोग में त्रिफला, त्रिकुटा, जवाखार, दारुहलदी, चीता, रसौत, पाठा, मालकांगनी, नीम इन सबको कांजी और गोमूत्र में पकाकर इस काढे का कवलधारण अथवा इस काढे से तयार किये हुए गुटका द्वारा प्रतिसारण करे।

उक्त रोग पर लेप।

निचुलं कटभीमुस्तं देवदारुमहौषधम् ५७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वचादंती च मूर्वा च लेपःकोष्णोर्तिशोफहा

अर्थ-जलबेत, मालकांगनी, मोथा, देवदारु, सोंठ, वच, दंती और मूर्वा इन सब द्रव्यों को पीसकर अग्नि पर रखकर कुछ गरम करके लेप करने से दर्द और सूजन दूर होजाते हैं।

वातज रोहिणी का उपाय।

अथाऽतर्बाह्यतःस्विन्नांवातरोहिणिकांलिखेत्
अंगुलीशस्त्रकेणाऽशु पटुयुक्तनखेन वा ।
पंचमूलांबुकवलस्तैल गंडूषनावनम् ५९

अर्थ-वातज रोहिणी को भीतर और बाहर दोनों ओर से स्वेदित करके अंगुलि शस्त्रद्वारा लवण संयुक्त नख द्वारा शीघ्र विलेखन करके पंचमूल के काढे का कवल धारण करे तथा तेल का गंडूष और नस्य का प्रयोग करे।

पित्तजरोहिणी की चिकित्सा।

विस्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः
घर्षेत्सरोध्रपत्तंगैः कवलः काथितैश्च तैः ६०
द्राक्षापरूषककाथो हितश्च कवलग्रहे ।

अर्थ-पित्तज रोहिणी में प्रथम रुधिर निकालकर चीनी, मधु और प्रियंगु द्वारा घर्षण करे। दाख और फालसे के काढे का कवल भी इस रोग में हितकारी है।

रक्तज रोहिणी का उपाय।

उपाचरेद्देवमेव प्रत्याख्यायास्रसंभवाम् ६१

अर्थ-रक्तज रोहिणी में रोगी के स्वजनों से कह देना चाहिये कि इस रोग का दूर होना न होना दैवाधीन है, यह कहकर पित्तज रोहिणी के सदृश चिकित्सा करनी चाहिये।

कफज रोहिणी का उपाय।

सागारधूमैः कटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
नस्यगंडूषयोस्तैलं साधितं च प्रशस्यते ।
अपामार्गफलश्वेतादंतीजंतुघ्नसैंधवैः ।

अर्थ-कफजरोहिणी में घर के धूंए से युक्त कटुवर्गोक्त द्रव्यों द्वारा प्रतिसारण करे अथवा, त्रिफला, अपराजिता, दंती, बायविडंग, सेंधानमक इन के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तेल नस्य और गंडूष द्वारा प्रयुक्त करे।

वृन्दादि की चिकित्सा।

तद्वच्च वृंदशालूकतुंडकेरीगिलायुषु ६३

अर्थ-वृन्दा, शालूक, तुंडकेरी, और गिलायु रोगमें उक्त रीति से चिकित्सा करना चाहिये।

विद्रधि का उपाय।

विद्रधौ स्राविते श्रेष्ठारोचनातार्क्ष्यगैरिकैः ।
सरोध्रपटुपत्तंगकट्फलैर्गंडूषघर्षणे ॥ ६४ ॥

अर्थ-गलविद्रधि को शस्त्रद्वारा स्रावित करके त्रिफला, रोचना, रसौत, गेरू, लोध, नमक, पतंग और पीपल इन के द्वारा गंडूष और प्रतिसारण का प्रयोग करे।

वातज गलगंड की चिकित्सा।

गलगंडः पवनजः स्विन्नो निःस्रुतशोणितः ।
तिलैर्बीजैश्चलद्वोमाप्रियालशणसंभवैः ६५
उपनाह्यो व्रणे रूढे प्रलेप्यश्च पुनः पुनः ।
शिग्रुतिल्वकतर्कारीगजकृष्णापुनर्नवैः ६६
कालामृतार्कमूलैश्च पुष्पैश्च करहाटजैः ।
एकैषिकान्वितैः पिष्टैः सुरया कांजिकेन वा ।

अर्थ--वातज गलगंड में स्वेदन करके रुधिर निकालना चाहिये, फिर तिल, कंजा के बीज, जवासे के बीज, चिरौंजी, सनके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बीज, इनका लेप करना चाहिये। घाव भर जाने पर सहजना, लोध, जयंती, गजपीपल, सांठ, कालादाना, गिलोय, आक की जड अकरकरा के फूल और निसोथ इन सब द्रव्यों को सुरा वा कांजी में पीसकर बार बार उनका लेप करै।

गलगंडमें तैलपान।

गुडूचीनिंबकुटजहंसपादीबलाद्वयैः।
साधितं पाययेत्तैलं सकृष्णादेवदारुभिः।

अर्थ--गिलोय, नीम, कुडा की छाल, हंसपादी, खरैटी, अतिबला, पीपल और देवदारू इनके साथ सिद्ध किया हुआ तेल गलगंडरोगी को पान कराना चाहिये।

कफज गलगंडका उपाय।

कर्तव्यं कफजेप्येतत्स्वेदविम्लापने त्वति।
लेपोजगंधातिविषाविशल्यासविषालिकाः
गुंजालाबुशुकाह्वाश्च पलाशक्षारकल्किताः

अर्थ--कफज गलगंडमें वातज गलगंड के सदृश चिकित्सा करना चाहिये इसमें स्वेदन और विम्लापन अधिकता से करना चाहिये। तथा अजगंध, अतीस, कलहारी, मेढासिंगी, चिरमिठी, तूंबी, क्षुद्रमोथा, और ढाक का क्षार इन सब द्रव्यों को पीसकर इनका लेप करना चाहिये।

उष्ररोगमें क्षारपानादि।

मूत्रशुते हठक्षारं पक्त्वा कोद्रवभुक् पिबेत्
साधितं वत्सकाद्यैर्वा तैलं सपटुपंचकैः।
कफघ्नान् धूमवमननावनादींश्च शीलयेत्

अर्थ--क्षार पाक की रीतिसे सेवाल के खारको गोमूत्र में पकाकर जलके साथ पान करे इसमें कोदों का सेवन पथ्यहै अथवा पांचोंनमक और वत्सकादि गणके साथ तेल को पकाकर इस तेलसे मर्दन करे। इसमें कफनाशक धूमपान, वमन और नस्यादि का सदा सेवन करना चाहिये।

मेदोभव गलगंडका उपाय।

मेदोभवे सिरां विध्येत्कफघ्नं च विधिं भजेत्
असनादिरजश्चैनं प्रातर्मूत्रेण पाययेत् ७२

अर्थ--मेदसे उत्पन्न हुए गलगंड में सिरावेध और कफनाशक संपूर्ण क्रिया करनी चाहिये। और असनादि की छालका चूर्ण गोमूत्रके साथ प्रातःकाल पान करना चाहिये।

अशान्तिमें कर्तव्य।

अशांतौ पाटयित्वा च सर्वानिव्रणवत्क्रियेत्

अर्थ--ऊपर लिखे हुए उपायोंसे गलगंड की शांति न होनेपर सब प्रकार के गलगंडों को शस्त्र से चीरकर घावके सदृश चिकित्सा करना चाहिये।

मुखपाक का उपाय।

मुखपाकेषु सक्षौद्राः प्रयोज्या मुखधावनाः
क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीका जातिपल्लवाः
निष्ठ्यूताभक्षयित्वा वा कुठेरादिगणोऽथवा।

अर्थ-मुखपाक रोगमें त्रिफला, पाठा, दाख, चमेली के पत्ते इन सब द्रव्यों के काढे द्वारा मुखको धोना चाहिये। अथवा ये सब द्रव्य और कुठेरादि गणके द्रव्यों को चबाकर थूकना चाहिये।

वातजमुखपाक का उपाय।

मुखपाकेऽनिलात्कृष्णापट्वेलाःप्रतिसारणं
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः।

अर्थ--वातज मुखपाक में पीपल, सेंधानमक और इलायची इसके द्वारा प्रतिसारण करे। इसमें वातनाशक द्रव्यों के साथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पकाये हुए तेलका कवल और नस्यद्वारा प्रयोग करे॥

रक्तज और कफज मुखपाक।

पित्तास्रे रक्तपित्तघ्नःकफघ्नश्च कफे विधिः

अर्थ–रक्तपित्तज मुखपाक में रक्तपित्त नाशिनी तथा कफज मुखपाक में कफनाशिनी क्रिया करनी चाहिये।

पिटिकाओं का विलेखन।

लिखेच्छाखादिपत्रैश्च पिटिकाः कठिणाः स्थिराः॥ ७६॥

अर्थ–सब प्रकार की कठोर और स्थिर फुंसियों को शाकपत्रादि कर्कश पत्रों द्वारा विलेखित करे।

सान्निपातिक मुखपाक।

यथादोषोदयं कुर्यात्सन्निपाते चिकित्सितम्

अर्थ–सान्निपातिक मुखपाक रोगमें जिस दोषकी अधिकता हो उसी दोष के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

नवीन अर्बुद का उपाय।

नवेऽर्बुदे त्यसंवृद्धे छेदितं प्रतिसारणम् ७७
स्वर्जिकानागरक्षौद्रैः क्वाथो गंडूष इष्यते।
गुडूचीनिंबकल्कोत्थो मधुतैलसमन्वितः७८
यत्राऽभ्युक् तीक्ष्णतैलनस्याभ्यंगास्तथाचरेत्।

अर्थ–जो अर्बुद नया हो और अच्छी तरह बढ़ा भी न हो उसको छेदन करके सज्जीखार सोंठ और मधुद्वारा प्रतिसारण करे। इस में गिलोय और नीम के काढ़े का गण्डूष धारण करे, और तीक्ष्ण तेल की नस्य और अभ्यंग हितकारी है, इसमें भी का पथ्य देना चाहिये।

पूतिमुखका उपाय।

वमिते पूतिवदने धूमस्तीक्ष्णः सनावनः॥
समंगाधातकीरोध्रफलिनीपद्मकैर्जलम्।
धावनं वक्त्रमस्यांतश्चूर्णितैरवचूर्णनम्।
शीतादोपकुशोक्तं च नावनादि च शीलयेत्

अर्थ–पूति मुखमें वमन कराकर तीक्ष्ण धूम और तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करे। मजीठ, धाय के फूल, लोध, प्रियंगु और पद्माख इनके काढ़े से मुख को भीतर से धोकर इन्हीं का चूर्ण मुखके भीतर बुरकदे इसमें शीतादि उपकुश में कहा हुआ नस्य प्रयोग करना चाहिये।

कंठरोगनाशक गोली।

फलत्रयपटोपिक्किरातातिक्त-
यष्ट्याह्वसिद्धार्थकटुत्रिकाणि।
मुस्ताहरिद्राद्वययावशूक-
वृक्षाम्लकाम्लाम्रिमवेससाश्च॥
अश्वत्थजंब्वार्जुनधनंजयत्वक्
त्वक् चाहिमारात्खदिरस्य सारः
क्वाथेन तेषां घनसंगतेन
तच्चूर्णयुक्ता गुटिका विधेयाः॥
ता धारिता घ्नंति मुखेन नित्यं
कंठौष्ठतालुव्यधिगदान सुकृच्छ्रान्।
विशेषतो रोहिणिकास्यशोष-
गंधान् विदेहाधिपतिप्रणीताः॥

अर्थ–त्रिफला, चीता, चिरायता, मुलहटी, सरसों सफेद, त्रिकुटा, मोथा, हलदी, दारुहलदी, जवाखार, बिजौरा, अम्लबेत, पीपल, जामन, आम, अर्जुनवृक्ष की छाल अहिमार की छाल और खैरसार इनके काढ़े को गाढा करके इन्हीं के चूर्ण को मिलाकर गोलियां बनावै। इन गोलियोंको नित्यप्रति मुख में धारण करने से कण्ठ ओष्ठ और तालु आदि में होनेवाले अत्यन्त दारुण रोग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सब शांत होजाते हैं । रोहिणी, मुखशोष और पूतिमुख रोगों की यह परमोत्तम औषध है। यह औषध विदेहाधिपति की बनाई हुई है ।

सर्वरोगनाशक तैल ।

खदिरतुलामंबुघटे पक्त्वा तोयेन तेन पिष्टैश्च ।
चंदनजोंगकुंकुमपरिपेलवथालकोशीरैः ॥
सुरतरुरोध्रद्राक्षामंजिष्ठाचोत्पलकविडंगैः
स्पृक्कानंतमखकट्फलसूक्ष्मैलाध्यार्धकैः सपत्तंगैः ॥
तैलप्रस्थं विपचेत्
कर्षांशैः पाननस्यगंडूषैस्तत् ।
हृत्वास्ये सर्वगदान् जनयति
गार्ध्रीं दृशं श्रुतिं च वाराहीम् ॥

अर्थ–एक तोला खैर को एक घट जल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, इस काढे में चन्दन, अगर, कुंकुम, केवटी मोथा, नेत्रबाला, खस, देवदारू, लोध, दाख, मजीठ, दालचीनी, पदमाख, बायविडंग, बाली, तगर, नखी, कायफल, छोटी इलायची, रोहिषतृण और पतंग प्रत्येक एक कर्ष इन सबका कल्क और एक प्रस्थ तेल डालकर फिर पकावै । इस तेल को पान, नस्य और गंडूष द्वारा मुखमें धारण करने से मुख में होनेवाले सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं। इसके सेवनसे गिद्ध के समान तीव्र दृष्टि और शूकर के समान श्रवणशक्ति हो जाती है ।

मुखका उद्वर्तन ।

उद्वर्तितं च प्रपुन्नाटरोध्र-
दार्वीभिरभ्यक्तमनेन वक्त्रम् ।
निर्व्यंगनीलीमुखदूषिकादि
संजायते चंद्रसमानकांति ॥

अर्थ–उक्त तेल को देह पर लगाकर पंवाड, लोध और दारुहलदी का उबटना करने से व्यंग, नीली और मुखदूषकादि रोग नष्ट होजाते हैं और मुख चन्द्रमा के समान कांतिमान होजाता है ।

अन्य तैल ॥

पलशतं वाणात्तोयघटे
पक्त्वारसेऽस्मिंश्च पलार्धिकैः ।
खदिरजंबूयष्ट्यानंताम्रै-
राहिमारनीलोत्पलान्वितैः ॥
तैलप्रस्थं पाचयेत्श्लक्ष्णपिष्टै-
रेभिर्द्रव्यैर्भारितं तन्मुखेन् ।
रोगान्सर्वान् हंति वक्त्रो विशेषा-
त्स्थैर्यं धत्ते दंतपंक्तेश्चलायाः ॥

अर्थ–एक तुला नील कुरंटे को एक घट जल में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, इस काढे में खैर, जामन की छाल, मुलहटी, अनंतमूल, अहिमार, नीलकमल, प्रत्येक एक पल इनका कल्क और एक प्रस्थ तेल डालकर फिर पकावै इस तेल को मुख में धारण करने से सब प्रकार के मुखरोग नष्ट होजाते हैं । विशेष करके हिलते हुए दांतों को दृढ करने के लिये तो बहुतही उत्तम है ॥

अन्य गुटिका ।

खदिरसारादू द्वे तुले पचेद्दशकात्तुलां
चारिमेदसः ।
घटचतुष्के पादशेषेऽस्मिन् पूते पुनः
क्वाथनादू घने ॥
आक्षिकं क्षिपेत्सूक्ष्मं रजः सैन्धवपत्तं-
गकैरिकम् ।
चंदनद्वयरोध्रपुंड्राह्वये यष्ट्याह्वलाक्षांजन-
द्वयम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धातकीकट्फलार्द्धानिशात्रिफलाचतुर्जातजोंगकम्।
मुस्तमंजिष्ठान्यग्रोधप्ररोहमांसीयवासकम्।
पद्म केलेयसमंगाश्च शीते तस्मिंस्तथा पालिकां पृथक्।
जातिपत्रिकां सजातीफलां सहलवंगकंकोलकाम्
स्फटिकशुभ्रसुरभिकर्पूरकुडवंचतत्रावपेत्ततः
कार्य्येद्गुटिकाः सदा चैता धार्या मुखे तद्रदाग्रहः ॥ ९४ ॥

अर्थ–दो तुला खैरसार और एक तुला खैर की छाल इनको चार घट पानी में औटावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। इस काढे को फिर पकावे और गाढा होने पर इसमें खस, नेत्रवाला, पतंग गेरू, सफेद चन्दन, रक्तचंदन, लोध, पुंडरिया, मुलहटी, लाख, रसौत, सौवीरांजन धाय के फूल, कायफल, हलदी, दारुहलदी त्रिफला, चातुर्जात, अगर, मोथा, मजीठ, वटके अंकुर, जटामांसी, दुरालभा, पद्माख, एलुआ और मजीठ, प्रत्येक दो तोला इनका चूर्ण करके मिला देवे, फिर ठंडा होनेपर इसमें जावित्री, जायफल, लौंग, कंकोल, प्रत्येक एक पल तथा स्फटिक के सदृश सफेद कपूर एक कुडव मिलाकर गोलियां बनालेवे। इन गोलियों को मुखमें धारण करने से मुखमें होनेवाले संपूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं।

अन्य तैल।

काथौषधव्यत्ययप्रयोजनेन
तैलं पचेत्कल्पनयाऽनयैव।
सर्वास्यरोगोद्धृतये तदाहु-
रैतास्थिरत्वे त्विदमेव मुख्यम् ॥

अर्थ–ऊपर कहे हुए तेलके काथ द्रव्यों को विपर्य्यय करके अर्थात् एक तुला खैरसार और दो तुला खैरकी छाल लेकर काढा करे। शेष सब द्रव्य ऊपर लिखे प्रमाण से डालदेवै इस तेलको पकाकर मुख में धारण करने से सम्पूर्ण मुखरोग जाते रहते हैं। हिलते हुए दांतों को दृढ करने के लिये यह प्रधान औषध है।

अन्य प्रयोग।

खदिरेणैता गुटिका-
स्तैलमिदं वारिमेदसा प्रथितम्।
अनु शीलयन् प्रतिदिनं
स्वस्थोऽपि दृढद्विजो भवति ॥

अर्थ–खैर की उक्त गोलियां तथा अरिमेद से बनाया हुआ उक्त तेल। इनको नित्य प्रति सेवन करने से मनुष्य स्वस्थ और दृढदंत होजाते हैं।

मुखनाशक अन्य प्रयोग।

क्षुद्रागुडूचीसुमनःप्रवाल-
दार्वीयवासत्रिफलाकषायः।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽस्य
सर्वामयान् वक्त्रगतान्निहंति ॥

अर्थ–कटेरी, गिलोय, चमेली के अंकुर दारूहलदी, दुरालभा, और त्रिफला इनके काढे में शहत मिलाकर कवल धारण करने से सम्पूर्ण मुखरोग जाते रहतेहैं।

उक्तरोगों पर चूर्ण।

पाठादार्वीत्वक्कुष्ठमुस्तासमंगा-
तिक्तापीतांगारधूमतेजोवतीनाम्।
चूर्णः सक्षौद्रो दंतमांसार्तिकंदु-
पाकस्रावाणां नाशनो घर्षणेन ॥

अर्थ–पाठा, दारुहलदी, दालचीनी, कूठ, नागरमोथा, मजीठ, कुटकी, पीतलोध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और मालकांगनी इनको पीसकर शहत में सानकर दांतों पर रिगड़ने से दांतके मसूढ़ों का दर्द, खुजली, पाक और स्राव जाते रहते हैं।

कालक चूर्ण।

गृहधूमतार्क्ष्यपाठाव्योषक्षाराग्न्ययोवरा-
तेजोह्वैः।
मुखदंतगलंविकारे सक्षौद्रः कालको
विधार्यश्चूर्णः॥

अर्थ-घर का धूँआं, रसौत, पाठा, त्रिकुटा, जवाखार, चीता, अगर, त्रिफला और मालकांगनी इनको पीसकर शहत में मिलाकर मुख में धारण करने से मुख दांत और गलगण्डादि रोग जाते रहते हैं। इस चूर्ण का नाम कालक है।

पीतक चूर्ण।

दार्वीत्वक्सिंधूद्भवमनःशिलायावशू-
कहरितालैः।
घार्यः पीतकचूर्णो दंतास्यगलामये
समभवाज्यः॥

अर्थ-दारूहलदी की छाल, सेंधानमक, मनसिल, जवाखार, हरताल इन सब द्रव्यों के चूर्ण को घी और शहत में मिलाकर मुख में धारण करने से मुख दांत और गले के सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं। इस चूर्ण का नाम पीतक है।

गलरोगनाशिनी गुटिका।

द्विक्षारधूमत्रपंचपट्वोषवेल्लगिरितार्क्ष्यैः
गोमूत्रेण विपक्का गलामयघ्नी रसक्रियैषा।

अर्थ-जवाखार, सज्जीखार, गृहधूम, त्रिफला, पांचों नमक, त्रिकुटा, वायविडंग और रसौत इन सब द्रव्यों को गोमूत्रमें पकाकर गोलियां बनावे। यह रसक्रिया गले के रोगोंको दूर करनेवाली है।

हरीतकी का सेवन।

गोमूत्रक्वथनविलीनविग्रहाणां
पथ्यानां जलमिशिकुष्ठभावितानाम्।
अत्तारं नरमणवोऽपि वक्त्ररोगाः
श्रोतारं नृपमिव न स्पृशंत्यनर्थाः॥

अर्थ-प्रथम गोमूत्रके क्वाथमें भिगोई हुई फिर नेत्रबाला, सोंफ और कूठ इनकी भावना दी हुई हरडका सेवन करने वाले मनुष्य के मुखको किंचिन्मात्र भी मुखरोग स्पर्श नहीं कर सकते हैं, जैसे मंत्रियों की युक्तिपूर्वक बातों को सुननेवाले राजा के अनर्थ स्पर्श नहीं कर सकते हैं।

मुखपाकनाशक क्वाथ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचंदनैश्च
क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य॥

अर्थ-सातला, खस, पर्वल, मोथा, हरड, कुटकी, मुलहटी, अमलतास और रक्तचन्दन इनका काढा पीनेसे मुखपाक जाता रहता है

मुखरोग नाशक कषाय।

पटोलकुंठीत्रिफलाविशाला-
त्रायंतितिक्ताद्विनिशामृतानाम्।
पीतः कषायो मधुना निहंति
मुखस्थितश्चास्यगदानशेषान्॥

अर्थ-पर्वल, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण, त्रायंती, कुटकी, हलदी, दारूहलदी और गिलोय इनके काढेमें शहत मिलाकर पान करे अथवा मुखमें गंडूष धारण करे तो सब प्रकार के मुखरोग दूर हो जाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुखपाकनाशक प्रयोग ।

" स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतः सगैरिकः ।
आस्यस्थः समधुर्वक्त्रपाकनाडीव्रणापहः ।

अर्थ–दारुहलदी के रसको अग्नि पर पकाने से गाढा हो जाने पर उसमें गेरु और शहत मिलाकर मुखमें धारण करने से मुखपाक और नाडीव्रण दूर हो जाते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

पटोलनिंबत्वक्पृथ्वाहववासाजात्यरिमेदसाम् ।
खदिरस्य वरायाश्च पृथगेवं प्रकल्पना ।

अर्थ–पर्वल, नीमकी छाल, मुलहटी, अडूसा, चमेली, दुर्गंधित खैर और त्रिफला इनकी भी उक्त रीतिसे अलग अलग कल्पना करनी चाहिये ।

दंतदृढीकरण गंडूष ।

खदिरायोवरापार्थमदयंत्यहिमारकैः ।
गंडूषोऽनुशृतैर्धार्यो दुर्बलद्विजशांतये १०७

अर्थ–खैर, अगर, त्रिफला, अर्जुन की छाल, मदयंती, अहिमारक इन सब द्रव्यों का काढा करके गंडूष धारण करने से दुर्बल दांत दृढ हो जाते हैं ।

मुखरोग में रक्तस्राव ।

मुखदंतमूलगलजाः प्रायो रोगाः कफाच्च भूयिष्ठाः
तस्मात्तेषामसकृद् रुधिरं विस्रावयेदुदृष्टम् ।

अर्थ–मुख, दांतकी जड और गले में होनेवाले रोग में प्रायः कफ और रक्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ करते हैं । इसलिये इन सब रोगोंमें बार बार दुष्ट रक्त निकालना चाहिये ।

ऊर्ध्वरोगों में संशोधन ।

कार्यशिरसोविरेकोवमनं कफलग्रहाइच कटुकतिक्ताः ।
प्रायः शस्तं तेषां कफरक्तहरं तथा कर्म ।

अर्थ–इन संपूर्ण रोगोंमें कायविरेचन, शिरोविरेचन, वमन, कटु और तिक्त द्रव्यों का कवल, तथा कफरक्तनाशक संपूर्ण उपाय विशेष रूपसे करने चाहियें ।

मुखरोगों में पथ्य ।

यवतृणधान्यं भक्ष्यं विदलैःक्षारोषितैरपस्नेहाः
यूषा भक्ष्याश्चहिताय चान्यत्कफश्लेष्मनाशाय

अर्थ–इन सब दांतके रोगोंमें जौ और तृण धान्यका अन्न, क्षारोषित मूंग आदिका घृतरहित यूष तथा अन्य कफनाशक खाद्य पदार्थों का सेवन करना हित है ।

मुखरोगके उपायमें शीघ्रता ।

प्राणानिलपथसंस्थाः श्वसितमपि निरुणद्धि प्रमादवतः ।
कंठामयादिचिकित्सितमतो द्रुतं तेषु कुर्वीत

अर्थ–प्राणवायुके मार्गमें स्थित हुए भयानक कंठरोग प्रमादी मनुष्य के श्वासको रोक लेते हैं, इसलिये इन रोगोंकी चिकित्सा में शीघ्रता करना परम आवश्यकीय है ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने कंठरोगप्रतिषेधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

अथाऽतः शिरोरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः

अर्थ–अब हम यहां से शिरोरोग विज्ञानीय नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिरोरोग का कारण।

" धूमातपतुषारांबुक्रीडातिस्वप्नजागरैः।
उत्स्वेदाधिपुरोवातबाष्पनिग्रहरोदनैः १
अत्यंबुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः।
उपधानमृजाभ्यंगद्वेषाधः प्रततक्षणैः। २
असात्म्यगंधदुष्टामभाष्याद्यैश्च शिरोगताः
जनयंत्यामयान् दोषाः

अर्थ-धूंआ, धूप, सर्दी, जलक्रीडा, दिनमें बहुत सोना, रात्रि में जागना, ऊर्ध्व-स्वेद, सामनेकी प्रबल वायु, अथवा पूर्वदिशा की वायु, आंसुओं का रोकना, रोना, अधिक जलपीना, अधिक मद्यपान करना, कृमि, मलमूत्रादि के वेगको रोकना, बिना तकिया लगाये शयन करना, स्नान न करना, तैलादि न लगाना, नीचेको अधिक दृष्टि रखना, असात्म्यगंध, दुष्ट आम और अतिभाषणादि कारणों से शिरोगत संपूर्ण दोष सिर के रोगों को उत्पन्न करते हैं।

वातजशिरोरोग।

तत्र मारुतकोपतः॥ ३॥
निस्तुद्येते भृशं शंखौ घाटा संभिद्यते तथा।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च पततीवातिवेदनम् ४
बाध्येते स्वनतः श्रोत्रे निष्कृष्येत इवाक्षिणी
घूर्णतीव शिरः सर्वं संधिभ्य इव मुच्यते।
स्फुरत्यतिशिराजालं कंधराहनुसंग्रहः।
प्रकाशासहता घ्राणस्रावोऽकस्माद्व्यथाशमौ
मार्दवं मर्दनस्नेहस्वेदबंधैश्च जायते।
शिरस्तापोऽयम्

अर्थ-इनमें से वायुके कारण दोनों कनपटियों में सुई छिदने की सी पीडा होती है और घाटामें भेदनवत् वेदना होती है। दोनों भृकुटियों के बीचमें और ललाट में गिरने के से समान अत्यन्त वेदना होती है। शब्द के कारण दोनों कानोंमें वेदना होने लगती है, आंखें निकली हुई सी मालूम होती है, संपूर्ण मस्तक घूमता हुआ दिखाई देता है, और संधियों से हटा हुआ मालूम होने लगता है। सिराजाल फडकने लगता है, कंधे और हनुप्रदेश क्रियाहीन से प्रतीत होते हैं, चांदना अच्छा मालूम नहीं देता है नासिका से जल टपकने लगता है, अकस्मात् दर्द उठकर शान्ति हो जाता है, मर्दन स्नेह स्वेदन और बन्धन द्वारा पीडा का ह्रास होता है। इस शिरोरोग को शिरस्ताप भी कहते हैं।

अर्द्धावभेदक के लक्षण।

अर्धे तु मूर्ध्नः सोर्धावभेदकः॥ ७॥
पक्षात्कुप्यति मासाद्वास्वयमेव च शाम्यति
अतिवृद्धस्तु नयनं श्रवणं वा विनाशयेत् ८
शिरोभितापे पित्तोत्थेशिरो धूमायनं ज्वरः
स्वेदोक्षिदहनं मूर्छा निशि शीतैश्चमार्दवम्

अर्थ--मस्तक के आधेभागमें जो शिरोविकार होता है, उसे अर्द्धावभेदक कहते हैं। यहरोग पन्द्रहवेंदिन वा महिने महिने में कुपित होता है और औषध के विना अपने आप शांत होजाता है। अर्द्धावभेदक प्रबल होजाने पर नेत्र वा कानों को मारदेता है, पित्तजनित शिरोभिताप में मस्तक से धूआं निकलने कीसी पीडा होती है,ज्वर, पसीना, नेत्रों में दाह, और मूर्च्छा, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। रात्रिके समय शीतल उपचारों से दर्दमें कमी होजाती है।

कफजशिरोऽभिताप।

अरुचिः कफजे मूर्ध्नो गुरुस्तिमितशीतता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिरानिस्पंदतालस्यंरुग्मंदान्हयधिकानिशि तंद्राशूनाक्षिकूटत्वं कर्णकंडूयने वमिः ।

अर्थ-कफज शिरोभिताप में माथेमें भारापन, स्तिमिता, शीतलता, शिराओं का फडकना, आलस्य, दिनमें दर्दकी कमी, रात्रिमें अधिकता, तंद्रा, नेत्रगोलक में सूजन, तथा कान खुजाने में वमन । ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

रक्तजशिरोभिताप ।

रक्तात् पित्ताधिकरुजः

अर्थ--रक्तज शिरोभितापमें पैत्तिक शिरोभिताप की अपेक्षा वेदना अधिक होती है ।

सान्निपातिक शिरोभिताप ।

सर्वैःस्यात्सर्वलक्षणः ।

अर्थ--सान्निपातिक शिरोभितापमें वातादिक तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं।

सिरमेंकीडों का कारण ।

संकीर्णैर्भोजनैर्मूर्ध्नि क्लेदिते रुधिरामिषे । कोपिते सन्निपाते च जायंते मूर्ध्नि जंतवः शिरसस्ते पिबंतोऽसृं घोराः कुर्वंति वेदनाः चित्तविभ्रंशजननीर्ज्वरः कासो बलक्षयः १३ रौक्ष्यशोफे व्यधच्छेददाहस्फुटनपूतिताः । कपाले तालु शिरसोः कंडूः शोषप्रमीलकः ताम्रच्छर्सिघाणकता कर्णनादश्च जंतुजे ।

अर्थ--संकीर्ण भोजनों के कारण सिर तथा रक्त और मांस क्लेदित होजाते हैं और वातादि तीनों दोषों के प्रकुपित होजाने के कारण मस्तक में कीडे पड जाते हैं और ये कीडे सिरके रुधिर को पीते हुए मनको नष्ट करनेवाली घोर वेदना को उत्पन्न करदेते हैं । क्रिमिज शिरोरोग में ज्वर, खांसी, बलकी क्षीणता, रूखापन, सूजन, छिदने और भिदने कीसी पीडा, दाह, फूटन, दुर्गंधि, तालु, और मस्तक में खुजली, शोष, प्रमीलक, तांबे के से रंगका स्वच्छ नासिकामल, और कर्णनाद । ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

सिरकंप के लक्षण ।

वातोल्बणाः शिरः कंपं तत्संज्ञे कुर्वतेमलाः

अर्थ-संपूर्ण वाताधिक्य रोगे शिरःकंपनामक रोगको उत्पन्न करते हैं, इसमें सिर हिलने लगता है ।

पित्तप्रधानदोषों के रोग ।

पित्तप्रधानैर्वाताद्यैः शंखे शोफः सशोणितैः तीव्रदाहरुजारागप्रलापज्वर तृड्भ्रमाः १६ तिक्तास्यः पीतवदनः क्षिप्रकारी स शंखकः त्रिरात्राज्जीवितं हंतिसिध्यत्यप्याशुसाधितः

अर्थ--पित्ताधिक्य तथा रक्तसहित वातादि दोषों के द्वारा कनपटी में सूजन, तीव्रदाह, व्यथा, ललाई, प्रलाप, ज्वर, तृषा, मुखमें कडवापन, तथा पीलापन होता है । इसको शंखकरोग कहते हैं । यह शीघ्रही पककर तीन दिनमें ही प्राणों को नष्ट करदेता है । इसलिये इस रोगकी चिकित्सा शीघ्र करनी चाहिये ।

सूर्यावर्त के लक्षण ।

पित्तानुबद्धः शंखाक्षिभ्रूललाटेषु मारुतः । रुजं सस्पंदनां कुर्यादनुसूर्योदयोदयाम् १८ मामध्यान्हंविवर्धिष्णुःक्षुद्वृतः सा विशेषतः अव्यवस्थितशीतोष्णसुखाशाभ्यत्यतःपरम् सूर्यावर्तः स

इत्युक्ता दश रोगाः शिरोगता ।

अर्थ--पित्तयुक्त वायु कनपटी, आंख,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भृकुटी, और ललाट में ऐसी वेगवती वेदना को उत्पन्न करदेती है कि जो सूर्योदयकाल से बढने लगतीहै और मध्यान्ह तक बढती चलीजाती है। और मध्यान्ह से पीछे धीरे धीरे घटती चली जाती है। इसे सूर्यावर्त कहते हैं, यह रोग भूखे मनुष्य को बहुत सताता है, इसमें कभी ठण्ड और कभी गरम अच्छा लगताहै।

कपालगत नौ व्याधि।

शिरक्षेदं च वक्ष्यंते कपाले व्याधयो नव।

अर्थ–मस्तक की तरह कपाल में भी नौ व्याधियां होती हैं, अब उनका वर्णन करते हैं।

उपशीर्षकरोग।

कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते।
सवर्णो नीरुजःशोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम्।

अर्थ–कपाल में वायु दूषित होकर गर्भस्थ बालकके भी देहके वर्ण के सदृश वेदना रहित सूजन को पैदा करदेती है। इसको उपशीर्षक रोग कहते हैं।

पिटकादि के लक्षण।

यथादोषोद्भवं ब्रूयात् पिटिकार्बुदविद्रधीन्।

अर्थ–पिटका, अर्बुद और विद्रधि इन रोगों में जिस दोष की अधिकता हो उस को उसी दोष से उत्पन्न हुई जानना चाहिये

अरूंषिका के लक्षण।

कपाले क्षेत्रधूलाभः पित्तास्रकफश्लेष्मजंतुभिः
कंगुसिद्धार्थकनिभाः पिटिकाःस्युरुंषिकाः

अर्थ=पित्तरक्त श्लेष्मा और कृमिद्वारा कपाल में जो कांगनी और सफेद सरसों के समान कलेदाधिक्य वाली फुंसियां होजाती है। उनको अरूंषिका कहते हैं।

दारुणक के लक्षण।

कंडूकेशच्युतिस्वापरौक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः
सुसूक्ष्मं कफवाताभ्यां विद्याद्दारुणकं तु तत्

अर्थ–कफ और वायु के प्रकोप से मस्तक का चर्म बहुत बारीक २ फटजाता है और उसमें खुजली, बच्चों का गिरना, और सुन्नता पैदा होजाती है। इसको दारुणक रोग कहते हैं।

इन्द्रलुप्त के लक्षण।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम्।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः
रोमकूपान् रुणद्ध्यस्य तेनान्येषामसंभवः॥
तदिंद्रलुप्तं रूढ्यां च प्राहुश्चाचेति चापरे।

अर्थ–रोमकूपानुगत पित्त वायुके साथ मिलकर सम्पूर्ण रोमों को गिरा देता है। इस से पीछे सरक्त कफ रोमकूपों को रोक देता है। इस लिये इस जगह और रोम उगने नहीं पाते हैं, इस रोग को इन्द्रलुप्त कहते हैं, और चाच भी बोलते हैं।

खलतिके लक्षण।

खलतेरपि जन्मैव सदृशं तत्र तु क्रमात्॥

अर्थ–खलित रोग की उत्पत्ति इन्द्रलुप्तके समानही होती है, इस रोग में बाल धीरे २ गिरते हैं। इन्द्रलुप्त में सहसा गिर पड़ते हैं, इन दोनों रोगों में यही भेद है।

वातजखलति।

सा वातादग्निदग्धाभा पित्तात्स्विन्नशिरावृता
कफाद्भनत्वग्वर्णाच्च यथास्वंनिर्दिशेत्त्वचि
दोषैः सर्वाखलतिः सर्वैरसाध्या सा नक्षत्रभा
दग्धाग्निनेव निर्लोमा सदाहा या च जायते

अर्थ–वात प्रकोप में खलति अग्निदग्ध के समान, पित्त प्रकोप में स्विन्न शिरावृत तथा कफ प्रकोप में खलित के स्थान की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वचा घन और दोषानुरूप वर्ण विशेष हो-जाती है, और दोष के अनुसार त्वचा का रंग होजाता है। सान्निपातिक खलित में तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं। जो खलित नख की कांतिके समान, अग्निदग्ध के सदृश रोम रहित और दाहयुक्त होती है, वह असाध्य होती है।

पलित का कारण।

शोकश्रमक्रोधकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
केशान् सदोषः पचति पलितं संभवत्यतः

अर्थ—शोक, श्रम और क्रोधके कारण शरीर की ऊष्मा सिरमें पहुंचकर और दोषों से मिलकर संपूर्ण केशों को पका देती है। इसीसे पलितरोग की उत्पत्ति होती है। केशों के कुसमय सफेद होजाने को पलित कहते हैं।

पलित के लक्षण।

तद्वातात्स्फुटितं श्यावं खरं रूक्षं जलप्रभम्
पित्तात्सदाहं पीताभं कफात् स्निग्धं विवृद्धिमत
स्थूलं सुशुक्लं सर्वैस्तु विद्याद्यामिश्रलक्षणम्

अर्थ-वायुसे उत्पन्न पलित स्फुटित, श्यामवर्ण, खर, रूप, और जल के समान होता है। पित्तज पलित दाहयुक्त और पीलापन लिये होता है। कफजपलित स्निग्ध, वृद्धिशील, स्थूल और शुक्ल होता है। त्रिदोषजपलित में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं।

शिरोरोग पलित।

शिरोरुजोद्भवं चान्यद्विवर्णं स्पर्शनासहम्।

अर्थ—शिरकी वेदना से उत्पन्न हुआ पलित विवर्ण और स्पर्श को न सहनेवाला होता है।

असाध्य खलितादि।

असाध्या सन्निपातेन खलतिः पलितानि च

अर्थ—सान्निपातिक खलित और पलित रोग असाध्य होते हैं।

पलितादि में रसायन।

शरीरपरिणामोत्थान्यपेक्षंते रसायनम्॥

अर्थ-शरीर के परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था के कारण उत्पन्न हुए पलितरोग में रसायन क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने शिरोरोगविज्ञानीयोनाम त्रियोविंशोऽध्यायः।

चतुर्विंशोऽध्यायः।

अथाऽतः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम यहां से शिरोरोग प्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वातजशिरोभिताप की चिकित्सा।

शिरोऽभितापेऽनिलजे वातव्याधिविधिं चरेत्।

अर्थ—वातज शिरोभिताप में वातव्याधि की चिकित्सा के समान क्रिया करनी चाहिये।

अन्य उपाय।

घृताभ्यक्तशिरा रात्रौ पिबेदुष्णपयोनुपः॥
माषान् मुद्गान् कुलत्थान्वा तद्वत्खादेत्
घृतान्वितान्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तैलं तिलानां कल्कं वा क्षीरेण सह पाययेत्। पिंडोपनाहस्वेदश्च मांसधान्यकृता हिताः। वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम्॥ स्निग्धं नस्यं तथा धूमः शिरःश्रवणतर्पणम्।

अर्थ—वातज शिरोरोग में मस्तक पर घी लगाकर रात्रिके समय घी पीना चाहिये, अथवा उरद, मूंग, वा कुलथी खाकर गरम दूधका अनुवासन करना चाहिये। अथवा तिलका तेल वा कल्क दूधके साथ पीवै। इस रोगमें मांस और धान्यकृत पिंडस्वेद, उपनाह स्वेद, तथा वातनाशक दसमूलादि से सिद्ध किये हुए दुग्धका परिषेक, स्निग्ध नस्य, धूमपान, मस्तक और कर्णतर्पण हितकारी हैं।

शिरोरोग में नस्य।

वरणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्धोदकं पचेत्॥ क्षीरावशिष्टं तच्छीतं मथित्वा सारमाहरेत्। ततो मधुरकैः सिद्धं नस्यं तत्पूतितं हविः॥

अर्थ—वरुणादि गण के कल्क के साथ आधा जल मिला हुआ दूध पकाकर दूध शेष रहने पर उतार कर छानले। ठंडा होने पर इसको मथकर माखन निकाल लेवै। फिर मधुरगणोक्त द्रव्यों के साथ इस घी को पकाकर इसकी नस्य लेवै। यह नस्य वातज शिरोरोग में बहुत उत्तम है।

उक्तरोग में घृतपान।

वर्गेऽत्र पक्वं क्षीरे च पेयं सर्पिः सशर्करम्।

अर्थ—वरुणादिगण और दूधके साथ घृत को पकाकर चीनी मिला कर पीना उत्तम है।

अन्य नस्य।

कार्पासमज्जात्वक्पुत्तासुमनःकोरकाणि च नस्यमुष्णांबुपिष्टानि सर्वमूर्धरुजापहम्।

अर्थ—कपास की मज्जा, तज, नागरमोथा, और चमेली की कली इन सब द्रव्यों को गरम जलके साथ पीसकर नस्य लेनेसे सब प्रकार के शिरोरोग जाते रहते हैं।

रक्तपित्तज शिरोरोग।

शर्करा कुंकुमशृतं घृतं पित्तासृगन्वये॥ प्रलेपः सघृतैः कुष्ठकुटिलोत्पलचंदनैः। वातोद्रेकभयाद्रक्तं न चास्मिन्नवसेचयेत्॥ इत्यशांतौ जले दाहः कफे चोष्णं यथोदितम्

अर्थ—रक्तपित्तज शिरोरोग में शर्करा और कुंकुम के साथ पकाया हुआ घी हितकारी होता है। इसमें कूठ, तगर, नीलोत्पल और चन्दन का लेप भी हितकारी है। रक्तमोक्षण से वायु का प्रकोप होता है, इसलिये इसमें रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिये। इन उपायों के करने पर भी यदि वायुकी शांति नहो तो वायु में दाह और कफ में यथोक्त उष्ण क्रिया इष्टहै।

अर्द्धावभेदक का उपाय।

अर्धावभेदकेष्येषा यथादोषान्वयात्क्रिया॥

अर्थ—अर्द्धावभेदक में दोषों का संबंध विचारकर इसी रीति से चिकित्सा करनी चाहिये।

उक्तरोग में नस्यादि।

शिरीषबीजापामार्गमूलं नस्यं विडान्वितम्। स्थिरारसो वा लेपे तु प्रपुन्नाटोऽम्लकल्कितः

अर्थ—सिरस के बीज, ओंगा की जड, और विडनमक, इनकी नस्य अथवा शालपर्णीके काढे की नस्य अथवा कांजी के साथ पिसेहुए पुनर्नवा के बीजों का लेप हितकारी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूर्यावर्त की चिकित्सा ।

सूर्यावर्ते तु तस्मिंस्तु शिरव्यमपहरेदसृक् ।

अर्थ–सूर्यावर्त, शिरोरोग में भी इसी तरह से चिकित्सा करना चाहिये । इस रोग में फस्द द्वारा रुधिर निकालना उचित है ।

पित्तज शिरोभिताप का उपाय ।

शिरोऽभितापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ॥ ११ ॥
शीताः शिरोमुखालेपसेकशोधनबस्तयः ।
जीवनीय शृते क्षीरसर्पिषी पाननस्ययोः ।

अर्थ–पित्तज शिरोरोग में स्नेहके प्रयोग से रोगी को स्निग्ध करके फस्द खोलना चाहिये । तथा मस्तक और मुख पर शीतल लेप और शीतल परिषेक करना उचित है । इसमें शोधन वस्ति, तथा जीवनीय गण के साथ दूध और घृत को पकाकर इस दूध वा घी को पान और नस्य द्वारा व्यवहार में लावे ।

रक्तजशिरोरोग का उपाय ।

कर्तव्यं रक्तजेऽप्येतत् प्रत्याख्याय च शंखके

अर्थ–रक्तज शिरोरोग में तथा शंखक में, ऐसी ही रीति से चिकित्सा करनी चाहिये । शंखक रोग की चिकित्सा केवल ईश्वर के भरोसे पर करनी चाहिये ।

कफजशिरोरोग की चिकित्सा ।

श्लेष्माभितापैर्जीर्णाज्यास्नोहितः कटुकैर्वमेत्
स्वेदप्रलेपनस्याद्या रूक्षतीक्ष्णोष्णभेषजैः ।
शस्यते चोपवासोऽत्र निचये मिश्रमाचरेत्

अर्थ–कफज शिरोरोग में मस्तक पर पुराना घी मलकर कटु द्रव्य द्वारा वमन करावे। इसमें रूक्ष, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य औषधों का स्वेद, प्रलेप और नस्यादि तथा उपवास हितकारी हैं । सन्निपात में वातादि दोषों की मिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये

कृमिशिरोरोग का उपाय ।

कृमिजे शोणितं नस्यं तेन मूर्छंति जंतवः ।
मत्ताः शोणितगंधेन निर्यांति घ्राणवक्त्रयोः
सुतीक्ष्णनस्यधूमाभ्यां कुर्यान्निर्हरणं ततः ।

अर्थ–कृमिज शिरोरोग में रुधिर की नस्य देना चाहिये। क्योंकि रुधिर की गंध से सब कीडे मूर्छित और मत्त होकर मुख और नाक द्वारा निकल पडते हैं । पीछे अत्यन्त तीक्ष्ण द्रव्यों की नस्य और धूंए का प्रयोग करने से बचे हुए कीडों को भी बाहर निकाल देना चाहिये ।

नस्यविधि ।

विडंगस्वर्जिकादंतीहिंगुगोमूत्रसाधितम् ।
कटुनिंबगुदीपीलुतैल नस्यं पृथक् पृथक् ।

अर्थ–बायविडंग, सज्जीखार, दंती, हींग और गोमूत्र इनके साथ सरसों का तेल, नीमका तेल, गोंदी का तेल, अथवा पीलु का तेल पकाकर उसकी नस्य देवै । इनमें से हर एक की नस्य हितकारी है ।

कृमिनाशक योजना ।

अजामूत्रद्रुतंनस्येकृमिजित् कृमिजित्परम्

अर्थ–बायविडंग को बकरी के मूत्र में पीसकर नस्य देना चाहिये । यह कृमिजनित रोग की प्रधान औषध है ।

नस्यद्रव्यों का धूआं ।

पूतिमत्स्ययुतैः कुर्याद् धूमं भावनभेषजैः ।

अर्थ–कृमिज शिरोरोग में नस्योपयोगी द्रव्यों के साथ सडी हुई मछली मिलाकर धूआं देना चाहिये ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्तमोक्षण का निषेध।

कृमिभिः पीतरक्तत्वाद्रक्तमत्र न निर्हरेत्।

अर्थ–कृमिजनित शिरोरोगमें कीडे ही शरीर के रक्तको पान करते रहते हैं इस लिये इसमें और रक्तमोक्षण की आवश्यकता नहीं है।

कंपकी चिकित्सा।

वाताभितापविहितः कंपे दाहाद्विना क्रमः।

अर्थ–शिरःकंपरोग में दाह के सिवाय अन्य सब वातज शिरोरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये।

पित्तजशिरोभिताप का उपाय।

नवे जन्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके १९
वातव्याधिक्रियां पक्के कर्मविद्रधिचोदितम्

अर्थ–जन्मसे पीछे होनेवाले नवीन उपशीर्षकरोग में वातव्याधिमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये। पकने पर विद्रधिके समान चिकित्सा करना उचित है।

आमादि का उपाय।

आमपक्के यथायोग्यं विद्रधीपिटिकार्बुदे।

अर्थ–विद्रधि, पिटिका और अर्बुद रोगों की चिकित्सा उनकी पक्व और अपक्व दशा के अनुसार करनी चाहिये।

अरूंषिका का उपाय।

अरूंषिकाजलौकोभिर्हृतास्रा निंबवारिणा।
सिक्ता प्रभूतलवणैर्लिंपेदश्वशकृद्रसैः॥
पटोलनिंबपत्रैर्वा सहरिद्रैः सुकल्कितैः।
गोमूत्रजीर्णपिण्याककृकवाकुमलैरपि॥

अर्थ–अरूंषका रोगमें जोक लगाकर रुधिर को निकाल डाले और उस पर नीम के काढे का परिषेक करे। घोडे की लीद के रसमें बहुत सा नमक मिलाकर लेप करे अथवा पर्वल, नीमके पत्ते और हलदी इनको पीसकर लेप करदे, अथवा पुरानी खल और मुर्गेका विष्ठा गोमूत्र में पीसकर उसका लेप करे।

अन्य प्रयोग।

कपालभृष्टं कुष्ठं वा चूर्णितं तैलसंयुतम्।
रूंषिकालेपनं कंडूक्लेददाहार्तिनाशनम्॥

अर्थ कूठको ठीकरे में भूनकर पीसले और इसमें तेल मिलाकर अरूंषिका पर लेप करने से खुजली, क्लेद और दाह नष्ट हो जाता है।

उत्करोग में तैलमर्दन।

मालतीचित्रकाश्वघ्ननक्तमालप्रसाधितम्।
वचारूंषिकयोस्तैलमभ्यंगः क्षुरघृष्टयोः।

अर्थ–मालती, चीता, और कनेर कंजा इनके साथ वच और भिलावे का तेल पकाकर इस तेलका मर्दन करे।

उत्करोग में वमनादि।

अशांतौ शिरसः शुद्ध्यै यतेत वमनादिभिः।

अर्थ–इन सब उपायों के करने पर भी यदि रोगी की शांति न हो तो मस्तक के शोधन के निमित्त वमनादि का प्रयोग करना चाहिये।

दारुणक का उपाय।

विध्येच्छिरां दारुणके लालाद्यां शीलयेन्मृजाम्॥
नावनं मूर्ध्नि वर्स्तिं च लेपयेच्च समाक्षिकैः।
प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैःससर्षपैः॥
लाक्षाशम्याकपत्रैडगजधात्रीफलैस्तथा।
कोरदूषतृणक्षारधारिप्रक्षालनं हितम्॥

अर्थ–दारुणकरोग में लालादि शिराबेध, शुद्धि, नस्य शिरोवस्ति का सेवन करना चाहिये। तथा चिरौंजी, मुलहटी, कूठ, उर्द

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और सरसों इन सब द्रव्यों के कल्क को शहत में मिलाकर लेप करे, अथवा लाख, अमलतास, पमाड, और आमले का लेप तथा कोदों और तृणधान्य के खार मिले हुए पानी से धोना। ये सब हितकारी हैं।

इन्द्रलुप्त की चिकित्सा।

इंद्रलुप्ते यथासन्नं सिरां विद्ध्वा प्रलेपयेत्।
प्रच्छाय गाढं कासीसमनोह्वातुत्थकोपलैः।
वन्यामरतरुम्यां वा गुंजामूलफलैस्तथा।
तथा लांगलिकामूलैः करवीररसेन वा॥
सक्षौद्रक्षुद्रवार्ताकस्वरसेन रसेन वा।
धत्तूरकस्य पत्राणां भल्लातकरसेन वा॥
अथ वा माक्षिकहरितालपुष्पशिकंटकैः।

अर्थ–इन्द्रलुप्तरोग में पासवाले स्थान की सिराको बेधकर अच्छी तरह से जल से धोवे फिर हीराकसीस, मनसिल, नीलाथोथा, और कालीमिरच का लेप करे। अथवा वन्या और देवदारू से अथवा चिरमिठी की जड और फलसे अथवा कलहारी की जड वा कनेर के रससे, अथवा मधुमिश्रित क्षुद्र वार्ताक के रससे अथवा धतूरे के पत्तों के रससे अथवा भिलावे के रससे अथवा घी और शहत मिले हुए तिलके फूल और गोखरू का लेप करना चाहिये।

अन्य औषध।

तैलाक्ता हस्तिदंतस्य मषी वा चौषधं परम्।

अर्थ–हाथीदांत की स्याही को तेल में सानकर लगाना भी इन्द्रलुप्त की परमोत्तम औषध है।

श्वेत केशों की चिकित्सा।

शुक्लरोमोद्गमे तद्वन्मषी मेषविषालजा।

अर्थ–इन्द्रलुप्त में जो सफेद बाल उगने लगें तो मेढा के सींगों की स्याही तेल में सानकर लगानी चाहिये।

जलसेक का निषेध।

वर्जयेद्वारिणा सेकं यावद्रोमसमुद्भवः।

अर्थ–इन्द्रलुप्त में जबतक बाल न उगें तबतक जल का परिषेक न करना चाहिये।

खलत्यादि में नस्यादि।

खलतौ पलिते वल्यां हरिल्लोम्नि च शोधितम्।
नस्यकवक्त्रशिरोभ्यंगप्रदेहैः समुपाचरेत्॥

अर्थ–खलति, पलित, वली और हरिद्वर्ण रोमों में रोगी को शोधित करके नस्य तथा मुख और मस्तक पर अभ्यंग और प्रदेह की व्यवस्था करनी चाहिये।

अन्य उपाय।

सिद्धं तैलं बृहत्याद्यैर्जीवनीयैश्च नावनम्।
मासं वा निंबजं तैलं क्षीरभुङ्नावयेद्यतिः॥

अर्थ–बृहत्यादि और जीवनीय गण के साथ तेल पकाकर इस तेल की वा नीम के तेल की नस्य एक महिने तक सेवन करनी चाहिये। नस्यग्रहण के समय ब्रह्मचर्य से रहना और केवल दूध पीना चाहिये।

पलितनाशक नस्य।

नीलीशिरीषकोरंटभृंगस्वरसभावितम्।
शेलुवक्षतिलरामाणां बीजं काकांडकीसमम्
पिष्ट्वाऽजपयसा लोहालिप्तादर्कशुताऽपितात्।
तैलं शृतं क्षीरभुजो नावनात्पलितांतकृत्।

अर्थ–नील, सिरस, कुरंटा और भांगरा इनके स्वरस में शेलु, बहेडा, तिल, और महानिंब के समान भाग बीजों को लेकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावना दे लेवै। फिर इनको पीसकर किसी लोहे के पात्र पर लीपदे, इस पात्रको धूप में गरम करले। ऐसा करने से जो तेल निकले, उसको नस्य द्वारा ग्रहण करे। इससे पलित जाता रहता है इस पर दूध का पथ्य करना चाहिये।

अन्यनस्य।

क्षीरात्सहचराद् भृंगरजसः सौरसाद्रसात्
प्रस्थैस्तैलस्य कुडवः सिद्धा यष्टीपलान्वितः॥
नस्यं शैलोद्भवे भांडे शृंग मेषस्य वा स्थितः

अर्थ–दूध, नीलकुंटा, भांगरा और तुलसी हरएक का रस एक प्रस्थ, तेल एक कुडव, मुलहटी एक पल इन सबको पाक विधि से पकावै। फिर इस तेल को किसी पत्थर के पात्र में रखदे। अथवा मेंढे के सींग के पात्र में रक्खे। इस तेल का नस्य लेने से पलित का नाश होजाता है।

अन्य प्रयोग।

क्षीरेण श्लक्ष्णपिष्टौ वा दुग्धिकाकरवीरकौ॥
उत्पाट्य पलितं देयावाशोय पलितापहौ।

अर्थ–दूध और कनेर को दूध में घोट डाले, फिर सफेद बालों को नोचकर उनकी जडपर ऊपर वाले द्रव्यका लेप करे, इससे पलित रोग जाता रहता है।

अन्य लेप।

क्षीरं प्रियालंयष्ट्याह्वंजीवनीयोगणस्तिलाः
कृष्णाः प्रलेपो वक्त्रस्य हरिल्लोमवलीहितः

अर्थ–चिरौंजी, मुलहटी, जीवनीयगण के द्रव्य, और काले तिल इन सबको दूध में पीसकर मुख पर लेप करना चाहिये। यह हरिद्रोम और वलीरोग में हितकारी है।

अन्य प्रयोग।

तिलाः सामलकाः पद्मकेशरं मूलको मधुकं मधु॥
वृंहयेच्च रजेच्चैतत् केशान्मूर्धप्रलेपनात्।

अर्थ–तिल, आमला, पद्मकेशर, मुलहटी और शहत इन सब द्रव्यों का लेप लगाने से केश बढजाते हैं और उन पर रंग चढ जाता है।

केशवर्धन प्रयोग।

मांसीकुष्ठतिलाःकृष्णाः सारिवानीलमुत्पलम्
क्षौद्रं च क्षीरपिष्टानि केशसंवर्धनं परम्।

अर्थ–जटामांसी, कूठ, कालेतिल, अनन्तमूल, नीलकमल और शहत इन सब द्रव्यों को दूध में पीसकर मस्तक पर लेप करने से बाल बढते हैं।

पलित में चूर्णादिक।

अयोरजो भृंगरजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका॥
स्थितमिक्षुरसे मासं समूलं पलितं रजेत्।

अर्थ–लोहेका चूर्ण, भांगरा, त्रिफला, कालीमिट्टी इन सब द्रव्यों को एक महिने तक ईखके रसमें पडा रहने दे। इसका लेप करने से पलित केश जडसे काले पड जाते हैं

अन्य प्रयोग।

माषकोद्रवधान्याम्लैर्यवागूस्त्रिदिनोषिता॥
लोहशुक्तोत्कटा पिष्टा बलाकामपि रंजयेत्।

अर्थ–उरद, कोदों और कांजी से बनाई हुई यवागू को तीन दिन रक्खी रहने दे। इसका लेप करने से सफेद बगला भी काला पड जाता है, इससे यदि सफेद बाल काले हो जांय तो कोई संदेह की बात नहीं है

शिरोरोगनाशक तेल।

प्रपौंडरीकमधुकापिप्पलीचंदनोत्पलैः॥
सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यंजनेन च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वान् मूर्ध्वगतान् हंति पलितानि च-
शीलितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ–पुंडरिया, मुलहटी, पीपल, चंदन और नीलकमल इनके कल्क में और आमले के रसमें तेलको पकाकर इस तेलका नस्य और अभ्यंजन द्वारा प्रयोग करे, इससे पलित और सब प्रकार के सिरमें होनेवाले रोग नष्ट हो जाते हैं ।

अन्य नस्य ।

सरीजीवंतितिनिर्यासपयोभिर्यमकं पचेत् ।
जीवनीयैश्च तन्नस्यं सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥

अर्थ–सितावर और जीवंती का क्वाथ, दूध और जीवनीय गणका कल्क इनके साथ घी और तेलको मिलाकर पाक करे । इसकी नस्य लेने से ग्रीवा से ऊपर होनेवाले संपूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ।

मायूर घृत ।

मयूरं पक्षपित्तांत्रपादघिरतुंडवर्जितम् ।
दशमूलबलाराास्नामधुकैस्त्रिपलैर्युतम् ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत्
कल्कितैर्मधुरद्रव्यैः सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥
तद्भ्यासिकृतं पानं वस्त्यंभ्यजननाधनैः ।

अर्थ–पंख, पित्त, आंत, पंजा, विष्ठा और चोंचको दूर करके मोरका मांस लेवै, तथा दशमूल, बच, रास्ना, और मुलहटी प्रत्येक तीन पल लेकर जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी मधुरगणोक्त द्रव्यों के कल्कके साथ पाक करके पान, अभ्यंजन, वस्ति और नस्य द्वारा इस घृतका सेवन करनेसे ग्रीवासे ऊपर के भागमें होनेवाले संपूर्ण रोग नष्ट होजातेहैं

महामायूर घृत ।

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ।
जीवंतीत्रिफलामेदामृद्वीकादिपरूषकैः ॥
सर्पगाचविकाभार्गीकाश्मरीकर्कटाह्वयैः ।
आत्मगुप्तामहामेदाशतालखर्जूरमुस्तकैः ॥
मृणालीधसखर्जूरयष्टीमधुकजीवकैः ।
शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुगैः ॥
दूर्वाश्ववृंदूर्षभकशृंगाटककसेरुकैः ॥
राास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशठिपौष्करैः ॥
पुनर्नवातवक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ।
मधूकाक्षोटवाताममुंजातालभिषुकैरपि ॥
महामायूरमित्येतन्मयूरादधिकं गुणैः ।
धात्विंद्रियस्वरभ्रंशश्वासकासार्दितापहम् ॥
योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वंध्यासुतप्रदम् ।

अर्थ–ऊपर लिखेहुऐ मायूर घृतोक्त कषाय में चौगुना दूध मिलाकर एक प्रस्थ घीको पकावै और उसमें नीचेलिखे हुए द्रव्य प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर मिलादेवै, वे द्रव्य ये है, यथा– जीवंती, त्रिफला, मेदा, दाख, फालसा, मजीठ चव्य, भांडगी, खंभारी, काकडासिंगी, कैंच, महामेदा, ताल, खिजूर, मोथा, कमलनाल, कमलकन्द, छुहारा, मुलहटी, जीवक, सितावर, विदारीकन्द, ईख, बड़ीकटेरी, दोनों अनन्तमूल, दूब, गोखरू, ऋषभक, सिंहाड़ा, कसेरू, रास्ना, शालपर्णी, भूम्यामलक, छोटी इलायची, सज्जी, पुहकरमूल, सांठी, बंशलोचन, काकोली, दुरालभा, मुलहटी, अखरोट, बादाम, मुंजातक और पिस्ता इन सब द्रव्यों का कल्क डालकर पाक विधि से पाक करै । यह महा मायूर घृत है, इस में मयूर घृत की अपेक्षा गुण अधिक होते हैं । इसके सेवन से धातु और इन्द्रियों की दुर्बलता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वरभ्रंश, श्वास, खांसी और अर्दित रोग जाते रहते हैं। यह योनिरोग और वीर्यरोग में हितकारक है, इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री के भी पुत्र होजाता है।

अन्य प्रयोग।

आखुभिःकर्कटैर्हंसैः शशैश्चेति प्रकल्पयेत्

अर्थ–चूहा, केकडा, हंस और खर्गोश के मासों से भी ऊपर लिखी रीति से घृत तयार किया जाता है।

रोगों की संख्या।

जत्रूर्ध्वजानां व्याधीनामेकत्रिंशशतद्वयम्।
परस्परमसंकीर्णं विस्तरेण प्रकाशितम॥

अर्थ–जत्रु से ऊपर के भाग में होनेवाले २३१ रोग हैं, ये परस्पर असंकीर्ण हैं और विस्तार सहित वर्णन किये गये हैं।

उक्त रोगकी चिकित्सा में शीघ्रता।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः।
मूलप्रहारिणस्तस्मादू रोगान् शीघ्रतरं जयेत्

अर्थ–ऋषियोंने पुरुषोंको ऊर्ध्वमूल और अधःशाख कहकर शास्त्रोंमें वर्णन किया है। (गीता में इसका सविस्तर वर्णन लिखा है) इस लिये मूल को प्रहार करनेवाले इन ऊर्ध्व जत्रुगत रोगोंकी चिकित्सा में बहुत शीघ्रता करनी चाहिये।

वैद्य को उपदेश।

सर्वेंद्रियाणि येनास्मिन् प्राणायेनचसंश्रिताः
तेन तस्योत्तमांगस्य रक्षायामादतो भवेत्॥

अर्थ–उत्तमांग अर्थात् सिर ही सम्पूर्ण इन्द्रियों का अधिष्ठान है और सिर ही में प्राणों की स्थिति होती है, इस लिये इसकी रक्षा के निमित्त बहुत सावधानी रखनी चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषा टीकाविन्तायां उत्तरस्थाने शिरोरोग प्रतिषेधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।

पंचविंशोऽध्यायः।

अथाऽतो व्रणविज्ञानीयप्रतिषेधं-
व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहांसे व्रणविज्ञानीय प्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

व्रणको द्विविधत्व।

व्रणो द्विधा निजागंतुदुष्टशुद्धविभेदतः।
निजो दोषैः शरीरोत्थैरागंतुर्बाह्यहेतुजः॥
दोषैरधिष्ठितो दुष्टःशुद्धस्तैरनधिष्ठितः।

अर्थ–निज और आगंतु इन दो भेदों से व्रण दो प्रकार का होता है। व्रणके दो भेद और भी हैं, एक दुष्टव्रण दूसरा शुद्ध व्रण, जो घाव शारीरक दोषों से होता है उसे निज तथा जो बाह्य अर्थात् ईंट, पत्थर, लाठी आदि की चोट लगने से होता है उसे आगंतु व्रण कहते हैं। जो घाव वातादि दोषों से दूषित होता है उसे दुष्ट और जो वातादि दोषों से रहित होता है उसे शुद्ध व्रण कहते हैं।

दुष्टव्रण की आकृति।

संवृतत्वं विवृतता काठिन्यं मृदुताऽपि वा
अत्युत्सन्नावसन्नत्वमस्यौष्ण्यमतिशीतता।
रक्तत्वं पांडुता कार्ष्ण्यं पूतिपूयपरिस्रुतिः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूतिमांससिराजालयुक्तश्चतोत्सांगेतातिरुक् ।
संरंभदाहश्वयथुकंडूवादिभिरुपद्रुतिः ॥ ४ ॥
दीर्घकालानुबंधश्च विद्यादुष्टव्रणाकृतिम् ।

अर्थ-जो व्रण बहुत संवृत (रुकाहुआ) बहुत निवृत (फटाहुआ), कठोर वा मृदु हो, जो अत्यन्त ऊंचा वा अत्यन्त नीचा हो, अत्यन्त गरम वा अत्यन्त ठंडा हो, जो लाल पीला, वा काला हो, जिसमें से दुर्गंधयुक्त राध निकलती हो, जो व्रण दुर्गंधित मांस अथवा शिरा वा स्नायु से आच्छादित हो, जो भीतर को घुस रहा हो, जिसमें अत्यन्त वेदना, संरंभ, दाह, सूजन और खुजली आदि उपद्रव हो, जो बहुत दिनका हो गया हो, ऐसे व्रणको दुष्ट लक्षणों वाला समझना चाहिये ।

दुष्टव्रण के भेद ।

स पंचदशधा दोषैः सरक्तैः

अर्थ-व्रण वातादि दोष और रक्तसे पंद्रह प्रकारका होता है, यथा- वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, वातपित्तकफज, वातरक्तज, पित्तरक्तज, कफरक्तज, वातपित्तरक्तज, वातकफरक्तज, पित्तकफरक्तज, वातपित्तकफरक्तज और केवल रक्तज ।

वातज व्रणके लक्षण ।

तत्र मारुतात् ॥ ५ ॥
श्यावः कृष्णो भस्मकपोतास्थिनिभोऽपिच
मस्तुमांससपुलाकांबुतुल्यतन्वल्पसंस्रुतिः
निर्मांसस्तोदभेदाढ्यो रूक्षश्चटचटायते ।

अर्थ-इनमें से वातजव्रण श्याववर्ण, काला वा लाल भस्म, कबूतर वा अस्थि के सदृश होता है । इसमें से दही के तोड, मांसके धोवन के जल, वा पुलाक के जल के सदृश थोडा और पतला स्राव होता है, इसमें मांसरहित, सुई चुभने की सी वेदना फटाव, रूक्षता और चटचटापन होता है ।

पित्तज व्रणके लक्षण ।

पित्तेन क्षिप्रजः पीतोऽनीलः कपिलपिंगलः
मूत्रकिंशुकभस्मांबुतैलाभोष्णबहुस्रुतिः ।
क्षारोक्षितक्षतसमव्यथो रागोष्मपाकवान् ।

अर्थ-पित्तज व्रण शीघ्रही बढता चला जाता है, यह पीला, नीला, कपिल और पिंगल वर्णका होता है, इसमें से मूत्र वा केसूकी राखके सदृश जल, वा तेलके सदृश बहुत अधिक गरम गरम स्राव होता है । तथा इसमें क्षारदग्धके समान वेदना तथा वर्ण में लाल और गरम पाक होता है ।

कफजव्रण के लक्षण ॥

कफेन पांडुः कंडूमान् बहुश्वेतघनस्रुतिः ।
स्थूलौष्ठःकठिनःस्नायुसिराजालस्ततोल्परुक्

अर्थ-कफज व्रण में पीलापन, खुजली तथा बहुत परिमाण में सफेद और गढासूाव होता है, इस घाव के किनारे मोटे और कठोर होते हैं यह स्नायु और सिरा के जाल से व्याप्त और अल्प वेदनावाला होता है ।

रक्तजव्रण के लक्षण ॥

प्रवालरक्तो रक्तेन सरक्तं पूयमुद्गिरेत् ।
वाजिस्थानसमो गंधे युक्तोलिंगैश्चपैत्तिकैः

अर्थ-रक्तज व्रण मूँगा के सदृश लाल वर्ण का होताहै, इसमेंसे लाल राध झरतीहै तथा इसमें हयशाला कीसी दुर्गन्ध आतीहै इसके शेष सब लक्षण पित्तजव्रण के सदृश होते है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संसर्गव्रण के लक्षण ॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चसर्वैश्च विद्याल्लक्षणसंकरात्

अर्थ–दो दो दोष वा तीन दोष से युक्त घाव के लक्षण मिले हुए दोष के लक्षणों के सदृश होते है।

शुद्ध व्रण के लक्षण ॥

जिह्वाप्रभो मृदुःश्लक्ष्णःश्यावौष्ठपिटिकःसमः
किंचिदुन्नतमध्यो वा व्रणःशुद्धोऽनुपद्रवः।

अर्थ–जो घाव जिह्वा के सदृश मृदु, श्लक्ष्ण होता है तथा जिसके किनारे और पिटिका श्यामवर्ण के होते हैं, जो बीच में कुछ उठा हुआ होता है। वह घाव उपद्रव रहित और शुद्ध होता है।

व्रण को दुस्साध्यत्व ॥

त्वङ्मांसिराशिरास्नायुसंध्यस्थीनि व्रणाशयाः
कोष्ठोमर्म च तान्यष्टौदुःसाध्यान्युत्तरोत्तरम्

अर्थ–त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि कोष्ठ और मर्म, ये आठव्रणके स्थानहै इनमें से उत्तरोत्तर दुःसाध्य है, अर्थात् त्वचा के व्रण से मांस का व्रण, मांस के व्रण से शिरा का व्रण कष्टसाध्य होता है, इसी तरह और भी जानो।

सुसाध्य के लक्षण ॥

सुसाध्यः सत्त्वमांसाग्निवयोबलवति व्रणः।
वृत्तो दीर्घस्त्रिपुटकश्चतुरस्राकृतिश्च यः।
तथास्त्रिकरायुमेढ्रोष्ठपृष्ठांतर्वक्त्रगंडयोः।

अर्थ–सत्व, मांस, अग्नि, वय और बलयुक्त पुरुष का घाव सुसाध्य होता है, गोल, बड़ा, त्रिपुट, और चतुष्कोण घाव भी सुसाध्य है, तथा कूल्हे, गुदा, लिंग, पीठ, मुख के भीतर और कपोल में हो, ये सब घाव सुसाध्य होते है।

कष्टसाध्य घाव।

कृच्छ्रसाध्योक्षिदशननासिकापांगनाभिषु।
सेवनीजठरश्रोत्रपार्श्वकक्षास्तनेषु च १५

अर्थ–आंख, दांत, नाक, अपांग, नाभि, सीमन, पेट, कान, पसली, कक्षा और स्तन में होनेवाले घाव कष्टसाध्य होते हैं।

अन्य दुस्साध्य व्रण ॥

फेनपूयानिलवहः शल्यवानूर्ध्वनिर्व्रणी।
भगंदरोंतर्वदनस्तथा कटध्यस्थिसंश्रितः।
कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम्
व्रणाःकृच्छ्रेणसिद्ध्यंतियेषांच स्युश्चणे व्रणाः

अर्थ–जिन घावों से झाग और वायु निकलते हैं, जिनमें शल्य होता है, या जो ऊपर को स्राव नहीं करते हैं, जिस भगंदर का मुख भीतर को होता है, जो कमर की हड्डी में होता है, तथा कोढ, विष, शोष और मधुमेही के घाव, तथा जो घाव के भीतर घाव होता है, ये सब दुःसाध्य होते हैं।

असाध्य व्रण।

नैव सिद्ध्यंति वीसर्पज्वरातीसारकासिनाम्
पिपासूनामानिद्राणां श्वासिनामाविपाकिनाम्
भिन्ने शिरःकपाले वा मस्तुलुंगस्य दर्शने।

अर्थ–विसर्प, ज्वर, अतिसार, खांसी, तृषा, निद्रानाश, श्वास, अजीर्ण, इन सब रोगों से पीडित रोगी के व्रण अच्छे नहीं होते है, अथवा जिसके सिरकी हड्डी टूटकर भेजा बाहर निकल आता है वह भी अच्छा नहीं होता है।

साध्यव्रणको असाध्यता।

स्नायुक्षेदात्सिराच्छेदाद्भांभीर्यात्कृमिभक्षणात्
अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वा-
दतार्कितात्।
मिथ्याबंधादतिस्नेहाद्रौक्ष्याद्रोमातिघट्टनात्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षोभादशुद्धकोष्ठत्वात्सौहित्यादतिकर्शनात् मद्यरात्र्यादिवास्वापाव्यायाद्रात्रिजागरात् व्रणो मिथ्योपचाराच्च नैव साध्योऽपिरोहति

अर्थ-स्नायु के छेदसे, [illegible] के कटने से, घावके गहरेपनसे, कीड़ों के द्वारा खाये जाने से, हड्डियों के टूटने से, घावमें कांटा होने से, विषजुष्टता से, असावधानी से, पट्टी अच्छी न बांधने से, अत्यन्त चिकनाई वा रूखापनसे, रोमों के घर्षणसे, क्षोभसे, कोष्ठ के शुद्ध न होने से, अत्यन्त पेट भरकर खाने से, उपवासादि द्वारा अत्यन्त कृशता होनेसे, मद्यपानसे, दिनमें सोनेसे, मैथुनसे, रातमें जगनेसे, तथा मिथ्या उपचारसे साध्यव्रण भी असाध्य होजाते हैं।

घावभरने के लक्षण ।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यांताः क्लेदवर्जिताः । स्थिराश्चिपिटिकावंतो रोहतीति तमादिशेत्

अर्थ-जिनघावों का वर्ण कबूतर के वर्णके सदृश होजाता है, जिनमें से क्लेदता जाती रहती है, जो स्थिर, पिटकाओं से युक्त होते हैं, ऐसे घाव भरने की दशा में होते हैं।

घावमें शोधन ।

अथाऽप्रशोफावस्थायांयथासन्नंविशोधनम् योज्यं शोफो हि शुद्धानांव्रणश्चाशु- प्रशाम्यति ।

अर्थ-जो घावमें सूजन हो तो पासवाले मार्ग से शोधन करना चाहिये, अर्थात् जो घाव ऊपर की देहमें हो तो वमन, और नीचेके देहमें हो तो विरेचन देना चाहिये। शोधन करनेसे सूजन और घाव दोनों शीघ्र शांत होजाते हैं।

शोफावस्था में शीतोपचार ।

कुर्याच्छीतोपचारं तु शोफावस्थस्य संततम् दोषाग्निरग्निवत्तेन प्रयाति सहसा शमम् ।

अर्थ-घावमें सूजन हो तो शीतोपचार करना चाहिये, क्योंकि जैसे शीतल द्रव्य के संयोग से अग्नि शीघ्र बुझजाती है, वैसे ही शीतोपचार से दोषाग्नि शांत होजाती है।

सूजन और घावमें रक्तहरण ।

शोफे व्रणे च कठिने विवर्णे वेदनान्विते ॥ विषयुक्ते विशेषेण जलौकाद्यैर्हरेदसृक् । दुष्टास्रेऽपगते सद्यः शोफरागरुजां शमः ॥

अर्थ-सूजन, और घाव में यदि कठोरता, विवर्णता, वेदना और विषयुक्तता हो तो जोक आदि द्वारा विशेषरूपसे रक्तको निकाले, क्योंकि बिगडे हुए रुधिर के निकल जाने पर सूजन, ललाई और वेदना शीघ्र शांत होजाते हैं।

घावके पीछे लेपादि ।

हृते हृते च रुधिरे सुशीतैः स्पर्शवीर्ययोः । सुश्लक्ष्णैस्तद्दहः पिष्टैः क्षीरेक्षुस्वरसद्रवैः ॥ शतधौतघृतोपेतैर्मृदुरन्यैरशोषिभिः । प्रतिलोमं हितो लेपः सेकाभ्यंगाश्च तत्कृताः

अर्थ-रुधिर के बारबार निकलने पर शीत स्पर्श और शीतवीर्यवाले द्रव्योंको महीन पीसकर उसी दिन लेप करे, उस लेपको बासी करके न लगावे। तथा दूध वा ईखका रस, वा सौवार धुला हुआ घी वा शोषणकारी द्रव्यों का लेप, सेक और अभ्यंग द्वारा प्रतिलोम रीतिसे प्रयोग करे।

शोफनाशक प्रदेह ।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसबल्कलैः । प्रदेहो भूरिसर्पिर्भिः शोफनिर्वापणः परम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–वड, गूलर, पीपल, पाकर और बेत इनकी छाल को पीसकर घी में सानकर लेप करने से सूजन जाती रहती है।

दाहादिनाशक लेप।

वातोल्वणानांस्तब्धानांकठिनानांमहारुजाम्
स्रुतासृजां च शोफानां व्रणानामपिचेदृशाम्
आनूपवेसवारार्द्धैः स्वेदः सोमास्तिलाः पुनः
भृष्टा निर्वापिताः क्षीरे तप्तिप्टा दाहरुग्घराः

अर्थ–वे सूजन और वे घाव जिनमें वातकी अधिकता हो, स्तब्धता, कठोरता, और अत्यन्त वेदना हो, जिनसे रक्त निकला हो, उनमें जांगल मांसके वेसवारादि से स्वेदन देना चाहिये। तथा अलसी और तिल को भूनले और दूधमें ठंडा करके दूध के साथ पीसकर लेप करे तो दाह और वेदना शांत हो जाते हैं।

मंदवेदना में स्वेदादि।

स्थिरान् मंदरुजः शोफान् स्नेहैर्वातकफापहैः
अभ्यज्य स्वेदयित्वाच वेणुनाङ्घ्राशनैः शनैः
विस्लापनार्थंमृद्नीयात् तलेनांगुष्ठकेन वा।
यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धीपिष्टैः प्रलेपयेत्॥

अर्थ–स्थिर और मंद वेदना वाले सूजनों में वातनाशक स्नेहों द्वारा अभ्यंजन करके स्वेदन करे और इसके विस्लापनके लिये बांस की नली से वा अंगूठे से धीरे धीरे मर्दन करे, तथा जौ, गेंहूं और मूंग को पकाकर पीसकर लेप करे।

सूजन पर उपनाहादि।

विलीयते स चेत्तैर्यंततस्तमुपनाहयेत्।
अविदग्धस्तथाशांतिं विदग्धःपाकमश्नुते।

अर्थ–ऐसा करने पर भी यदि सूजन कम न हो तो हन करे। उपनाहन करने से अविदग्ध शोफ बैठ जायगी और विदग्ध शोफ पक जायगी।

उपनाहनमें सक्तूका गोला।

सकोलतिलवल्लोमाद्रव्यम्लासक्तुपिंडिका।
साकिण्वकुष्ठलवणा कोष्णा शस्तोपनाहने।

अर्थ–बेर, तिल, अलसी, सक्तुपिंडिका, किण्व, कूठ, नमक इन से प्रस्तुत की हुई खट्टे दही में मिलाकर गरम गरम पिंडिका उपनाहन के लिये श्रेष्ठ है।

सूजनमें विदारण प्रयोग।

सुपक्वे पिंडिते शोफे पीडनैरुपपीडिते।
दारणं दारणार्हस्य सुकुमारस्य चेष्यते॥

अर्थ–सूजनके अच्छी तरह पक जाने पर तथा पिंडाकार और पीडन द्रव्योंसे उपपीडित होने पर विदारण के योग्य सुकुमार मनुष्यकी सूजनको विदीर्ण कर देना चाहिये जो द्रव्य सूजनके भीतर से मवाद को बाहर निकाल लाते हैं, उन्हें पीडन द्रव्य कहते हैं।

पक्वशोफके विदारक द्रव्य।

गुग्गुल्वतसिगोदंतस्वर्णक्षीरी कपोतविट्।
क्षारौषधानिक्षाराश्चपक्वशोफविदारणम्

अर्थ–गूगल, अलसी, गोदंती हरताल, स्वर्णक्षीरी, कबूतर की बीट, क्षारौषध और क्षार विधिमें कहे हुए क्षार पकी हुई सूजन को विदीर्ण करने वाले होते हैं। जिन द्रव्यों से सूजन फट जाती है उन्हें विदारक कहते हैं

पूयगर्भसूजन का पीडन।

पूयगर्भानणु द्वारान् सोत्संगान्मर्मगानपि।
निःस्नेहैः पीडनद्रव्यैः समंतात्प्रसिपीडयेत्।

अर्थ–जिस सूजन के भीतर राध पडगई हो, छोटा छिद्र हो, उत्संगयुक्त और मर्म-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गामी हो तो स्नेहरहित पीडन द्रव्य द्वारा चारों ओर से उपपीडित करे ।

लेपविशेष ।

शुष्यंते समुपेक्षेत व्रलेपं पीडनं प्रति ।
न मुखे चैनमालिंपेत् तथा दोषः प्रविच्यते

अर्थ–पीवको निकालने के निमित्त जो लेप लगाया जाता है, उसको सूखने तक सूजन पर रहने दे, घावके मुखपर लेप न लगावे क्योंकि उसके द्वारा राध निकलती रहती है ।

कलायादिक प्रपीडन ।

कलाययवगोधूममाषमुद्गहरेणवः ।
द्रव्याणांपिच्छलानांत्वक्मूलानिप्रपीडनम्

अर्थ–मटर, जौ, गेहूं, उरद, मूंग और हरेणु, तथा और भी पिच्छिल द्रव्यों की जड और छाल इनसे प्रपीडन अर्थात् राध का आकर्षण होता है ।

अन्य प्रयोग ।

सप्तसु क्षालनाद्येषु सुरसारग्वधादिकौ ।
व्रणं दुष्टे व्रणे योज्यौ मेहकुष्ठव्रणेषु च ॥

अर्थ–क्षालन (धोना), लेप, घी, तेल, रसक्रिया, चूर्ण और वर्ति इन सातों में तथा दुष्टव्रण और प्रमेह तथा कुष्ठके व्रणमें सुरसादि और आरग्वधादिगण के द्रव्य प्रयोग में लाये जाते हैं ।

व्रणके धोने में क्वाथ ।

अथवा क्षालनं क्वाथः पटोलीनिंबपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः।

अर्थ–जो घाव शुद्ध नहीं हुआ है उसके धोने के लिये पर्वल और नीमके पत्तों का काढा हितहै । और शुद्ध हुए घावमें न्यग्रोधादि गणके द्रव्योंकी छालके काढे से धोना हित है ।

घावके शुद्ध करनेवाला लेप ।

पटोलीतिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दंतीनिशाद्वयम् ।
निंबपत्राणि चालेपः सपटुव्रणशोधनः ॥

अर्थ–पर्वल, तिल, मुलहटी, निसोथ, दंती, दोनों हलदी, नीमके पत्ते इनमें थोडा सा नमक डालकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाता है ।

घावके शोधनमें वर्त्ती ।

व्रणान् विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान् संधिमर्मगान् ।
कृतया त्रिवृतादंतीलांगलीमधुसैंधवैः ४४

अर्थ–जिन घावों का मुख छोटा होताहै और जो संधि तथा मर्मतक पहुंच गये हैं उनको निसोथ, दंती, कलहारी, मधु और सेंधेनमक की वर्त्ती द्वारा शुद्ध करे ।

वातजव्रणों में धूपन ।

वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ४५

अर्थ–जिन घावों में वातकी अधिकता हो तथा स्राव और दर्द की भी अधिकता तो जौ, घी, भोजपत्र, मैनफल, सरलकाष्ठ और देवदारू की धूप देना हितहै ।

पित्तादिव्रण में कर्तव्य ।

निर्वापयेच्छृतशीतैः पित्तरक्तविषोल्बणान् ।

अर्थ–पित्तरक्त और विषयुक्त घावों को शीतक्रिया से निर्वापित करना चाहिये ।

गंभीरव्रण में उत्सादनादि ।

शुष्कालघ्वंसे गंभीरे व्रण उत्सादनं हितम् ।
न्यग्रोधपद्मकाद्यैर्वा श्यामश्वदंष्टाबलाजिह्वैः ।
अद्यान्मांसादमांसानि विधिनोपहितानि च ।
मांसं मांसादमांसेन वर्धते शुद्धचेतसः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–सूखे हुए, अल्पमांस से युक्त और गंभीर घाव में न्यग्रोधादि, और पद्मकादि गण द्वारा तथा असगंध, खरैटी और तिल द्वारा उत्सादन करना चाहिये। तथा मांसाहारी प्राणियों का मांस खूब मसाले डालकर खाना चाहिये, क्योंकि मांसभक्षियों का मांस खाने से शुद्ध चित्तवालों का मांस बढ़ता है।

अन्य अवसादन ॥

उत्सन्नमृदुमांसानां व्रणानामवसादनम्।
जातीमुकुलकासीसमनोह्वालपुराग्निकैः।

अर्थ–ऊंचे उठे हुए और कोमलमांस वाले घावमें चमेली के फूलकी कली, हीराकसीस, मनसिल, हरताल, गूगल और चीता इनसे अवसादन करना चाहिये।

उत्सन्नव्रणों का शोधन ॥

उत्सन्नमांसान् कठिनान् कंडूयुक्तांश्चिरोत्थितान्॥
व्रणान्सुदुःखशोध्यांश्च शोधयेत्क्षारकर्मणा॥

अर्थ–जो घाव ऊंचे, कठोर, खुजलीवाले बहुत दिनके और कष्टसे शोधन के योग्य होते हैं उन्हें क्षारकर्म से शुद्ध करना चाहिये।

घाव में अग्निकर्म ॥

स्रवतोऽश्मरिजामूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः।
छिन्नाश्च संधयो येषां यथोक्तैर्यैं च शोधनैः
शोध्यमाना न शुद्धयंति शोध्याः स्युस्तेग्निकर्मणा॥ ५१॥
शुद्धानां रोपणं योज्यमुत्सादाय यदीरितम्

अर्थ–पथरी से उत्पन्न हुए सब प्रकार के घावोंमें से मूत्र निकलता हो, जिन घावों में से रक्त बहताहो, जिनकी संधियां छिन्न होगई हों, जो यथायोग्य शोधन क्रियाओं से भी शुद्ध न होते हों उनको अग्निकर्म से शुद्ध करना चाहिये। जो द्रव्य उत्सादन में कहे गये हैं उन सबका शुद्ध घावमें रोपणक्रिया द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

घावको पुरानेवाले द्रव्य ॥

अश्वगंधारुहारोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका॥
समंगाधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम्।

अर्थ–असगंध, दूब, लोध, कायफल, मुलहटी, मजीठ, और धायके फूल ये सब द्रव्य घावको भरनेवाले हैं।

घावमें तिलका कल्क ॥

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्
कल्कं संरोहणं कुर्यात्तिलानां मधुकान्वितम्

अर्थ–मांसस्थ जिस घावसे सडा हुआ मांस दूर होगया हो और फिर भी न भरता हो तो तिल और मुलहटी का कल्क लगाना चाहिये।

तिलकी श्रेष्ठता ॥

स्निग्धोष्णतिक्तमधुरकषायगुणैः स सर्वजित्
सक्षौद्रनिंबपत्राभ्यां युक्तः संशोधनं परम।
पूर्वाभ्यां सर्पिषा चासौ युक्तः स्यादाशु रोपणः॥ ५५॥

अर्थ–स्निग्ध, गरम, तिक्त, मधुर और कषाय ये सब गुण तिलमें हैं, इसलिये तिलका कल्क सर्वरोगनाशक होता है। शहत और नीमके पत्तों से संयुक्त तिलका कल्क व्रणके शोधनमें परमोत्तम है। तथा नीमके पत्ते, घी शहत और तिलका कल्क मिलाकर प्रयोग करने से घाव शीघ्र भर जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जौ का कल्क ।

तिलवद्यवकल्कं तु केचिदिच्छंति तद्विदः ।

अर्थ-कुशल वैद्यों का यह मत है कि तिलके कल्कके समान ही जौका कल्क होता है

घावमें घृतका प्रयोग ।

सासृक्पित्तविषार्तानुगभीरान्सोष्मणो व्रणान् ।
क्षीरस्थापणभैषज्यशृतेनाज्येन रोपयेत् ।
रोपणौषधसिद्धेन तैलेन कफवातजान् ५७

अर्थ-दूध और रोपण करने वाली औषधोंके साथ पकाया हुआ घी रक्तपित्त और विषसे उत्पन्न हुए गरमी से युक्त गंभीर घाव का रोपण कर देता है, तथा रोपण औषधों के साथ सिद्ध किया हुआ तेल कफवातजन्य घावों को भर देता है ।

रोपण तैल ॥

काक्षीरोध्राभयासर्जसिंदूरांजनतुत्थकम् ।
चूर्णितं तैलमदनैर्युक्तं रोपणमुत्तमम् ५८ ॥

अर्थ-गुंजा, लोध, हरड, राल, सिंदूर, रसौत, नीलाथोथा और मेनफल इन सब द्रव्यों के चूर्ण के साथ पकाया हुआ तेल घाव के भरने में बहुत उत्तम है ।

घावमें चूर्ण ।

समानां स्थिरमांसानां त्वक्स्थानां चूर्ण-
इष्यते

अर्थ-समान आकृतिवाले और स्थिर मांसकी त्वचावाले घावों में चूर्ण हितकारी होता है ।

अन्य चूर्ण ।

ककुभोदुंबराश्वत्थजंबूकट्फलरोध्रजैः ५९॥
त्वचमाशु निगृह्णंति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः ।

अर्थ-अर्जुन, गूलर, पीपल, जामन, कायफल और लोधकी छाल इनका चूर्ण पीसकर बुरकने से घाव में शीघ्र अंकुर जमजाते हैं ।

त्वचाको शुद्ध करनेवाला लेप ।

लाक्षागनोह्वामंजिष्ठाहरितालनिशाद्वयैः ॥
प्रलेपः सघनक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परम् ।

अर्थ--लाख, मनसिल, मजीठ, हरताल, दोनों हलदी, इनको पीसकर घी और शहत मिलाकर लेप करने से त्वचा अत्यन्त शुद्ध हो जाती है ।

सवर्णकारक लेप ।

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ॥
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परम् ।

अर्थ--कालीयकलता आमकी गुठली, हेमकाल, रसोत्तम इनके चूर्णको गोबर के रसमें मिलाकर लेप करने से त्वचाके सदृश घाव का स्थान हो जाता है ।

रोमोद्भव लेप ।

दग्धो वारणदंतोंतर्धूमं तैलं रसांजनम् ६२ ॥
रोमसंजननो लेपस्तद्वत्तैलपरिप्लुता ।
चतुष्पान्नखरोमास्थित्वक्शृंगखुरजा मषी

अर्थ--अंतर्धूम से जलाई हुई हाथी के दांतकी राख, तेल, रसौत, इनका लेप करने से रोम उत्पन्न होते हैं । इसी तरह चौपाये जानवरों के नख, रोम, अस्थि, त्वचा, सींग, और खुर इनकी राख भी तेल में सानकर लगाने से रोम जम जाते हैं ।

घावमें पथ्य ।

व्रणिनः शस्त्रकर्मोक्तं पथ्यापथ्यान्नमादिशेत्

अर्थ--घाववाले रोगी को शस्त्रकर्म में कहे हुए पथ्यापथ्य का विचार करना चाहिये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाताधिक्यमें वातनाशक प्रयोग।

द्वे पञ्चमूले वर्गश्च वातघ्नो वातिके हितः
न्यग्रोधपञ्चकाद्यौ तु तद्वत्पित्तप्रदूषिते।
आरग्वधादिः श्लेष्मघ्नः कफे मिश्रस्तु मिश्रके

अर्थ—वाताधिक्य में दशमूल और वातनाशक वर्ग हितहै। पित्ताधिक्य में न्यग्रोधादि और पञ्चकादिगण हितहै। कफज में कफनाशक और आरग्वधादिगण हितहै। तथा मिश्र दोषों में मिश्रित औषधों का प्रयोग करना चाहिये।

व्रणमें यथायोग्य औषध।

एभिः प्रक्षालनालेपघृततैलरसक्रियाः।
चूर्णो वर्तिश्च संयोज्या व्रणे सप्त यथायथम्

अर्थ—प्रक्षालन, आलेपन, घी, तेल, रसक्रिया, चूर्ण और वर्ति इन सातों का यथायोग्य घावमें प्रयोग करना चाहिये।

घृत प्रयोग।

जातीनिंबपटोलरक्तकटुकाद्वार्वीनिशासारिवा-
मंजिष्ठाभयसिद्धतुल्यमधुकैर्नक्तांह्रयवर्वी-
जात्विषैः।
सर्पिः साध्यमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः क्लेदिनो
गंभीराः सरुजो व्रणाः सगतयः शुध्यंति
रोहंति च ॥ ६७ ॥"

अर्थ—चमेली के पत्ते, नीमके पत्ते, कुटकी, दारुहलदी, हलदी, अनंतमूल, मजीठ, खसकीजड, कालाधतूरा, नीलाथोथा, मुलहटी, और कंजा, इनके साथ घी पकाकर इस घृतका प्रयोग करनेसे छोटे मुखवाले, मर्माश्रित, क्लेदयुक्त, गंभीर, वेदनावाले, और नाडीव्रण शुद्ध होकर भरजाते हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने व्रणप्रतिषेधो-
नाम पंचविंशोऽध्यायः।

षड्विंशोऽध्यायः।

अथाऽतः सद्योव्रणप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम यहांसे सद्योव्रणप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

व्रणजुष्ट आठप्रकारके अंग।

सद्योव्रणा ये सहसा संभवंत्यभिघाततः।
अनैतैरपि तैरंगमुच्यते जुष्टमष्टधा॥ १ ॥
घृष्टावकृत्तविच्छिन्नप्रविलंबितपातितम्।
विद्धं भिन्नं विदलितं

अर्थ-किसी प्रकार की चोट लगने से जो शरीर में सहसा घाव उत्पन्न होजाते हैं उन्हें सद्योव्रण कहते हैं। यद्यपि ये असंख्य होते हैं परन्तु मुख्य आठही प्रकार के होते हैं, जैसे घृष्ट, अवकृत, विच्छिन्न, प्राविलंबित पातितविद्ध, भिन्न, और विदलित।

आठों के लक्षण।

तत्र घृष्टं त्वसृक्क्रियां ॥ २ ॥
रक्तलेशेन वा युक्तं सप्लोषं छेदनात् स्रवेत्।
अवगाढं ततः कृत्तं विच्छिन्नं स्यात्ततोऽपि च
प्राविलंबि सशेषेऽस्थि पतितं पातितं तनोः।
सूक्ष्मास्यशल्यविद्धं तु विद्धं कोष्ठविघाजितम्
भिन्नमन्याद्विदलितं मज्जरक्तपरिप्लुतम्।
प्रहारपीडनोत्पेषात्सहारक्षा पृथुत्वा गतम्

अर्थ--इन आठों में घृष्टव्रण वे हैं जो किसी वस्तुकी रिगड लगने से त्वचा के उडजाने से पैदा होते हैं। इनमें से रक्तमिश्रित स्राव होता रहताहै। घृष्टकी अपेक्षा अवगाढ घावको अवघृष्ट कहते हैं। इससे भी अवगाढ को विच्छिन्न कहते हैं। जिसको अस्त्र द्वारा काटने से अस्थिमात्र शेष रहजाय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसे प्रविलेखित कहते हैं । छेदन द्वारा शरीर का कोई अंग अलग होजाय तो उसे पाति-तवाव कहते हैं । कोष्ठ को छोडकर अन्य स्थान में छोटे मुखवाला घाव जो शल्य के विधने से होता है वह विद्ध कहलाता है । कोष्ठके विद्ध होनेपर जो घाव होता है उसे भिन्न घाव कहते हैं । प्रहार, पीडन और उत्प्रेषण द्वारा कोई अंग अस्थिसे चिपट गया हो तो और उसमें से मज्जा वा रक्त निकलता हो तो उसे विदलित कहते हैं ।

सद्योव्रण में सेचन ।

सद्यः सद्यो व्रणं सिंचेदथ यष्ट्याह्वसर्पिषा ।
तीव्रव्यथं कवोष्णेन बलातैलेन वा पुनः ॥

अर्थ–व्रण का स्वरूप जानकर वेदना से युक्त ताजी घाव पर मुलहटी डालकर सिद्ध किया हुआ ईषदुष्ण घी वा बला का तेल बार बार डाले ।

घाव की गरमी पर लेप ।

क्षतोष्मणोनिग्रहार्थंतत्कालं विशृतस्य च ।
कषायशीतमधुरस्निग्धा लेपादयो हिताः ॥

अर्थ–तत्काल उत्पन्न हुए गरमी को दूर करने के लिये कषाय, शीतवीर्य, मधुर और स्निग्ध लेपादिक करने चाहियें ।

आयत व्रणकी चिकित्सा ।

सद्योव्रणेष्वायतेषु संधानार्थं विशेषतः ।
मधुसर्पिश्च युंजीत पित्तघ्नीश्च हिमाः क्रियाः ॥ ८ ॥

अर्थ–जो तत्काल का उत्पन्न हुआ घाव फैलगया हो तो उसके जोडने के लिये शहत और घी का प्रयोग करना चाहिये । इसमें पित्तनाशनी तथा शीतल क्रिया हित होती है ।

ससंरंभ व्रणका शोधन ।

ससंरंभेषु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
उपवासो हितं भुक्तं प्रततं रक्तमोक्षणम् ॥

अर्थ–सूजनवाले घाव में वमन और विरेचन देकर शोधन करना चाहिये । उपवास, अवस्थानुसार पूर्वोक्त हितकारी भोजन, तथा बार बार रक्तमोक्षण हितकारी होता है ।

पृष्टादि की चिकित्सा ।

पृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।
तयोर्ह्यल्प स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाशु जायते ॥

अर्थ–पृष्ट और विदलित घावमें पूर्वोक्त चिकित्सा करना चाहिये । पृष्ट और विद-लित में रक्त कम निकलता है, इसलिये ये जल्दी पकजाते हैं ।

विक्षत में स्नेहपानादि ।

अत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशोऽन्यत्र विक्षते ।
ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥
स्नेहपानपरिषेकस्वेदलेपोपनाहनम् ।
स्नेहबस्तिं च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधितम् ॥

अर्थ–पृष्ट और विदलित व्रणोंके सिवाय अन्य सब घावों में से बहुत रक्त निकलता है इसलिये वे पकते नहीं हैं । रक्तके तीक्ष्ण होने से वायु कुपित होकर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है । इसलिये इनमें स्नेहपान परिषेक, स्वेद, प्रलेप, उपनाह और वात नाशक औषधियों से सिद्ध की हुई स्नेहवस्ति का प्रयोग करना चाहिये ।

सातदिन के पीछे का विधान ।

इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्यो व्रणहितो विधिः ।
सप्ताहाद्व्रतवेगे तु पूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥ ९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--सद्योव्रण में सातदिन तक इस प्रकार चिकित्सा करने से प्रशमन होजाता है। यदि सात दिनमें घाव अच्छा नहोतो पूर्वोक्त चिकित्सा करना चाहिये।

घृष्ट व्रणमें चूर्ण।

प्रायः सामान्यकर्मेदं वक्ष्यते तु पृथक्पृथक्
घृष्टे रुजं निगृह्याशु व्रणे चूर्णानि योजयेत्॥

अर्थ--सब प्रकार के ताजी घावों की चिकित्सा कही गई है, अब इन घृष्टादि घावों की चिकित्सा का विशेषरूपसे अलग अलग वर्णन करते हैं। घृष्ट व्रणमें वेदना को शान्त करके चूर्ण का प्रयोग करना चाहिये।

अवकृत्त की चिकित्सा।

कल्कादीन्यवकृत्ते तु

अर्थ--अवकृत्त नामक घाव में कल्कादि का प्रयोग करना चाहिये।

अविलंबित का उपाय।

विच्छिन्नप्रविलंबिनोः।
सीवनं विधिनोक्तेन बंधनं चानुपीडनम्॥

अर्थ--विच्छिन्न और प्रविलंबी घावोंमें पूर्व कथित विधि के अनुसार सीवन बंधन और अनुपीडन करना चाहिये।

स्फुटितनेत्र में कर्तव्य।

असाध्यं स्फुटितं नेत्रमदीर्णं लंबते तु यत्।
सन्निवेश्ययथास्थानमध्याविद्धसिरंभिषक्।
पीडयेत् पाणिना पद्मपलाशांतरितेन तत्।

अर्थ--नेत्र फूटजाने पर असाध्य होताहै जो नेत्र फूटता नहीं है और दीर्ण होकर लटक पडता है उसकी सब शिराओं को ऐसी रीति से इकट्ठी करे कि बिद्ध न होने पावे और नेत्र को अपने स्थान पर लगाकर कमल के पत्तों से लिपटी हुई उंगली द्वारा पीडन करे।

नेत्ररोग पर घृत।

ततोऽस्य सेचने नस्ये तर्पणे च हितं हविः।
विपक्वमाजं यष्ट्याह्वजीवकर्षभकोत्पलैः।
सपयस्कैः परं तद्धि सर्वनेत्रामिघातजित्।

अर्थ--इस तरह नेत्र को अपने स्थान पर स्थापित करके, मुलहटी, जीवक, ऋषभक और उत्पल इनका कल्क करके दूधके साथ बकरी का घी पकाकर इस घीकोसिचन नस्य और तर्पण द्वारा उपयोग में लावै। यह घी नेत्रों की सब प्रकार की चोटमें हितकारी होताहै।

नेत्रका अन्यरोग।

गलपीडावसन्नेऽक्षिणि वमनोल्लेशनक्षवाः।
प्राणायामोऽथवाकार्यःक्रियाचक्षुस्तनेत्रवत्।

अर्थ--गलेके दर्दके कारण जो नेत्र अवसन्न होगये होंतो वमन, उल्लेश, छींक वा प्राणायाम करना चाहिये। इसमें नेत्रके घावके सदृश चिकित्सा करना हितकारी होता है।

कान में सीवन।

कर्णे स्थानाच्च्युते स्यूते स्रोतस्तैलेन पूरयेत्।

अर्थ--कान जब अपने स्थान से भ्रष्ट होजाय तब वहांटांके लगाकर कानके छेदमें तेल भरदे।

छिन्नकृकाटिका में सीवन।

कृकाटिकायांछिन्नायांनिर्गच्छत्यपि मारुते॥
समंनिवेश्यबन्धीयात्स्यूत्वाशीघ्रंनिरंतरम्

अर्थ--ग्रीवाके छिन्न होजाने पर यदि वायु उसमें होकर निकलने लगे तो उसको शीघ्रतापूर्वक यथास्थान में स्थापित करके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

टांके भरदे और ऐसी रीति से बांधदे कि फटा हुआ न रहै ।

उत्करोग में घृतपरिषेक ।

आजेन सर्पिषा चाऽत्र परिषेकः प्रशस्यते ।
उत्तानोऽन्नानि भुंजीत शयीत च सुयंत्रितः ॥

अर्थ–ग्रीवाके छिन्न होजाने पर बकरी के घी से सेचन करे । और ऊंची गर्दन करके भोजन करे और अच्छी तरह बंधन लगाकर शयन करै ।

हाथ में सीवनादि ।

घातंशाखासुतिर्यक्स्थंगात्रेसम्यङ्निवेशिते
स्थूत्वा बेल्लितबंधेनबध्नीयाद्घृतवाससा ।
चर्मणा गोष्फणाबंधः कार्यश्चासंगते व्रणे ।

अर्थ–हाथ और पांव में तिरछी चोट लगने से उस चोट लगे हुए स्थानको यथा-स्थान में स्थापित करके टांके लगादे और गाढेकपडे की पट्टी से बेल्लितनामक बंधन द्वारा बांधदे । यदि घाव सम्यक् रीतिसे न मिलसके तो चमडे का बंधन गोष्फण रीति से बांधदेना चाहिये ।

बिल्वविमुष्कस्य सीवनादि ।

पादौ बिल्वविमुष्कस्य प्रोक्ष्येनेत्रे चवारिणा ।
प्रवेश्य वृषणौ सीव्येत् सेवन्या तुन्नसंज्ञया ।
कार्यश्चगोष्फणाबंधःकटयामावेष्यपट्टकम्
स्नेहसेकं न कुर्वीत तत्र क्लिद्यति हि व्रणः ।

अर्थ–जिस रोगीका अंडकोष लटक पडा हो उसके पांव और नेत्रों को जलसे प्रोक्षण करके (छींटे मारकर वा धोकर) अंडोंको भीतर प्रविष्ट करके तुन्न नामक सीवने से टांके भरदे । और गोष्फण नामक बंधन द्वारा कपडे से बांधकर उस कपडे को कमर से बांधदे । इस घावमें स्नेह का परि-षेक करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्नेह से व्रणमें क्लेदता उत्पन्न हो जाती है ।

उत्करोगमें तेल ।

कालानुसार्यगुर्वेलाजातीचंदनपर्पटैः ।
शिलाहार्य्यमृतातुत्थैः सिद्धं तैलंचरोपणम् ।

अर्थ–कालानुसारी (शीशमके वृक्ष का निर्यास), अगर, इलायची, चमेली के पत्ते, चंदन, पित्तपापडा, मनसिल, दारुहलदी, गिलोय और नीलाथोथा इनको पीसकर इस के साथ तेल पकाकर अंडकोषों में लगावे । यह अंडकोष के घावको भरने के लिये उत्तम मरहम है ।

छिन्नशाखा का दग्धकरना ।

छिन्नांनिःशेषतः शाखांदग्ध्वातैलेनयुक्तितः ।
बध्नीयात् कोशबंधेन ततो व्रणवदाचरेत् ॥

अर्थ–विशेष छिन्न हुए हाथ पांवोंको युक्तिपूर्वक गरम तेलसे दग्ध करके कोश-नामक बंधन से बांध देवै और घाव की तरह चिकित्सा करना चाहिये ।

सिरमें वर्तिप्रयोग ।

कार्या शल्याहृते विद्धे भंगाद्विदलिते क्रिया ।
शिरसोपहृते शल्ये वालवर्तिं प्रवेशयेत् ॥
मस्तुलुंगस्रुते क्रुद्धो हन्यादेनं चलोऽन्यथा ।
व्रणे रोहति चैकैकं शनैरपनयेत्कचम् ॥
मस्तुलुंगस्रुतौखादेन्मस्तिष्कानन्यजीवजान् ।

अर्थ–शल्य के द्वारा मस्तक के अत्यन्त विद्ध होनेपर अथवा चोट लगने से विद लित होने पर भी चिकित्सा करते ही रहना चाहिये । शल्यके सिरसे आहृत होने पर बालों की बत्ती प्रवेश करना चाहिये । यदि शल्य न निकला हो तो बत्ती नहीं लगाना चाहिये । यदि बत्ती लगाई जायगी तो मस्तु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लुंग का स्राव होने से वायुकुद्ध होकर रोगी को मार डालेगी। घावके भर जाने पर एक एक करके धीरे धीरे बालों को निकाल डालना चाहिये। मज्जानामक मस्तुलुंग के निकल जाने पर अन्य जीवों के मस्तक का मस्तुलुंग खाने को देना चाहिये।

शल्य निकलने पर स्नेहवर्ति।

शल्ये हृतेंगादन्यस्मात्स्नेहवर्तिं निधापयेत्।

अर्थ–मस्तक के सिवाय और किसी अंग में शल्य लगाना हो तो उसको निकाल कर स्नेहवर्ति लगाना चाहिये॥

गहरे घावोंका उपाय।

दूरावगाढाःसूक्ष्मास्याये व्रणाःस्रुतशोणिताः।
सेक्तव्येऽक्तैलेन सूक्ष्मनेत्रार्पितेन ताम्॥

अर्थ–जो घाव बहुत गहरे हों, जिनके मुख छोटे हों और जिनसे रक्त झरता हो उनमें छोटे नेत्रवाले नालिका यंत्र द्वारा चक्रतेल (घानी का तेल) भरना चाहिये।

भिन्नकोष्ठ में उपाय।

भिन्ने कोष्ठेऽस्रजापूर्णे मूर्छाहृत्पार्श्ववेदनाः।
ज्वरो दाहस्तृडाध्माने भक्तस्यानभिनंदनम्।
संगो विण्मूत्रमरुतां श्वासः स्वेदोक्षिरक्तता।
लोहगंधित्वमास्यस्यस्यादगात्रेचविगंधता।

अर्थ–शल्यद्वारा कोष्ठ के विदीर्ण हो जाने पर यदि वह रुधिरसे भरजाय तो मूर्च्छा, हृदय और पसली में वेदना, ज्वर, दाह तृषा और असाध्य, भोजनमें अरुचि, मलमूत्र और अधोवायु का अवरोध, श्वास, पसीना, नेत्रोंमें ललाई, मुखमें रक्तकी सी गंध और देहमें विकृत गंध ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

आमाशयस्थरुधिर में कर्तव्य।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि।
आध्मानेनाऽतिमात्रेण शूलेन च विशस्यते।

अर्थ–शल्यके द्वारा विधकर यदि आमाशय में रुधिर भरजाय तो रक्तकी वमन, अत्यन्त अफरा और शूल उत्पन्न होकर आहतव्यक्ति को मारडालता है।

पक्वाशयस्थ रुधिर।

पक्वाशयस्थे रुधिरे सशूलं गौरवं भवेत्।
नाभेरधस्ताच्छीतत्वंखेभ्यो रक्तस्य चागमः।

अर्थ–रुधिरके पक्वाशय में भरजाने पर शूल, देहमें भारापन, नाभिके नीचेके भाग में शीतलता, तथा रोमकूपों में होकर रुधिर का निकलना ये सब लक्षण उपस्थित होतेहैं।

अभिन्नाशयका रुधिरसे भरना।

अभिन्नोऽप्याशयः सूक्ष्मैः स्रोतोभिरभिपूर्यते।
असृजास्यंदमानेन पार्श्वं मूत्रेण बस्तिवत्

अर्थ–जैसे मूत्र पसलियों के स्रोतों से झरझर कर बस्तिको भरदेता है, वैसेही कोई आशय शल्य द्वारा भिन्न होने पर भी छोटे छोटे स्रोतों द्वारा रक्त झरझर कर अभिन्न आशय को भरदेता है।

अंतर्लोहितादि का वर्जन।

तत्रांतर्लोहितं शीतपादोच्छ्वासकराननम्
रक्ताक्षं पांडुवदनमामं च विवर्जयेत् ३७

अर्थ–ऐसा रोगी जिसके भीतर रुधिर भरजाने से हाथ पांव श्वास और मुख ठंडे होगये हों, आंखों में ललाई, देहमें पांडुवर्णता और अफरा भी हो तो उसकी चिकित्सा न करे।

आमाशयस्थरक्त में वमनादि।

आमशयस्थे वमनं हितं पक्वाशयाश्रये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरेचनं निरूहं च निःस्नेहोष्णैर्विशोधनैः ।

अर्थ–रक्तके आमाशय में स्थित होने पर वमन, पक्वाशयमें स्थित होनेपर विरेचन, हितकारी होते हैं तथा स्नेहरहित उष्णवीर्य विशोधन द्वारा निरूहण का प्रयोग हितकारी है ।

अन्यविधि ।

बकोलकुलत्थानां रसैः स्नेहविवर्जितैः ।
भुञ्जीताऽन्नं यवागूं वा पिबेत्सैंधवसंयुताम्

अर्थ–बिना चिकनाई डाले जौ, बेर और कुलथी के काढे के साथ अन्न भोजन अथवा सेंधेनमक के साथ पेया देना हितहै।

रक्तपानविधि ।

अतिनिःस्रुतरक्तस्तु भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक् ।

अर्थ–जिसका रुधिर बहुत निकलगया है और कोष्ठ फटगया है उसको रुधिरपान कराना चाहिये ।

कोष्ठ भेदन में दो विधि ।

क्लिन्नभिन्नांत्रभेदेन कोष्ठभेदो द्विधा स्मृतः ।
मूर्छादयोऽल्पाः प्रथमे द्वितीये त्वतिबाधकाः
क्लिन्नांत्रः संशयी देही भिन्नांत्रो नैव जीवति

अर्थ–क्लिन्नांत्र और भिन्नांत्र भेदों से कोष्ठ दो प्रकार का होता है । क्लिन्नांत्र में मूर्छादिक रोग बहुत कम दशा में उत्पन्न होते हैं, परन्तु भिन्नांत्र में ये लक्षण अधिकता से उत्पन्न होते है । क्लिन्नांत्र रोगी के जीवन में संशय रहता है जीवै भी और न भी जीवै । परन्तु भिन्नांत्र रोगी किसी प्रकार नहीं जी सकता है ।

भिन्नकोष्ठ में जीवन के लक्षण ।

यथास्वं मार्गमापन्ना यस्य विण्मूत्रमारुताः
व्युपद्रवः स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवत्यसंशयम्

अर्थ–कोष्ठ के भिन्न होने पर भी यदि रोगी के मल मूत्र और अधोवायु अपने २ मार्ग द्वारा प्रवृत होते हों और कोई उपद्रव भी न हो तो भिन्न कोष्ठवाला रोगी निःसंदेह जी पड़ता है ।

अंत्र प्रवेश में मत ।

अभिन्नमंत्रं निष्कांतं प्रवेश्यं न त्वतोऽन्यथा
उत्पंगिलशिरोप्रस्तं तदप्येके वदंति तु ४३

अर्थ–जो आंत बिना भिन्न हुएही बाहर निकल पड़ी हो तो उसे भीतर प्रविष्ट करदे और यदि कटकर बाहर निकली हो तो काली चींटियों के मस्तक द्वारा जुड़वाकर भीतर प्रवेश करदे ।

अंत्र के भीतर प्रवेश करने की विधि ।

प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांसुभिः
प्रवेशयेत्कृत्तनखोघृतेनाक्तं शनैः शनैः ४४

अर्थ–बाहर निकली हुई आंत के तिनुके रुधिर वा धूल को धोकर और उसपर घी चुपड़ कर धीरे २ भीतर करदे । वैद्य को उचित्त है कि इस काम को करने से पहिले अपने नख कटवाले ।

अंत्रव्रण सीवन ।

क्षीरेणार्द्रीकृतं शुष्कं भूरिसर्पिःपरिप्लुतम्
अंगुल्या प्रमृशेत्कंठं जलेनोद्वेजयेदपि ४५
तथांत्राणि विशंत्यंतस्तत्काले पीडयंति च ।

अर्थ–सूखी हुई आंत को दूध से गिलो कर और बहुत से घी में आप्लुत करे । तदनंतर रोगीके कण्ठमें उँगली प्रवेश करदे तथा जल के छींटे मारकर उद्वेजित करे । ऐसा करने से आंत भीतर घुस जाती है ।

अन्य उपाय ।

व्रणसौक्ष्म्याद्बहुत्वाद्वा कोष्ठमंत्रमनाविशत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्प्रमाणेन जठरं पाटयित्वा प्रवेशयेत् । यथास्थानं स्थिते सम्यगंत्रे सीव्येदनुव्रणम् स्थानाद्पेतमादत्ते जीवितं कुपितं च तत् । वेष्टयित्वानुपट्टेन घृतेन परिषेचयेत् ॥ ४८ ॥ पाययेत्तं ततः कोष्णं चित्रातैलयुतं पयः । मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये । अनुवर्तेत वर्षं च यथोक्तां व्रणयंत्रणाम् ।

अर्थ–घाव का मुख छोटा होने के कारण और आंतों की अधिकता के कारण यदि निकली हुई आंतें उदर में न घुस सकें तो उनके प्रमाण के अनुसार उदर को चीर फर आंतों को भीतर करदे, इस तरह यथा स्थान में स्थापित करके व्रण के मुख को मिलाकर टांके भरदे, स्थान भ्रष्ट आंत कुपित होकर शीघ्रही प्राणी को मार डालती है। इस लिये इसपर पट्टी लपेट कर घी डालदे, तदनंतर चित्रा का तेल मिलाकर कुछ गरम दूध पान करावे, मल को ढीला करने के लिये और अधोवायु के प्रवृत करने के लिये एक वर्ष तक व्रण के हितकारी यथोक्त नियमों का सावधानी से प्रतिपालन करे।

मेदोवर्तिके निकलने में कर्तव्य ।

उदराम्मेदसो वर्तिं निर्गतां भस्मना मृदा । अथकार्यं कषायैर्वा श्लक्ष्णैर्मूलैस्ततः समम् छित्वा च सूत्रेण वर्धयेत्कुशलो भिषक् तीक्ष्णेनाग्निप्रतप्तेन शस्त्रेण सकृदेव तु । स्यादन्यथा रुगाटोपो मृत्युर्वा छिद्यमानया सक्षौद्रे च व्रणे बद्धे सुजीर्णेऽन्ने घृतं पिबेत् क्षीरं वा शर्कराचित्रालाक्षागोक्षुरकैः शृतम् रुग्दाहजित्सयष्ट्याह्वैः परं पूर्वोदितो विधिः मेदोग्रंथ्युदितं तत्र तैलमभ्यंजने हितम् ।

अर्थ–उदर से मेदकी वर्त्ती बाहर निकालने पर भस्म अथवा मृत्तिकाद्वारा अथवा कषायरसान्वित किसी जडके महीन चूर्णको बुरककर डोरे से दृढ बांध देवे और अग्नि से तप्त तीक्ष्ण शस्त्रसे कुशल वैद्य शीघ्र वर्धन करे। इसका अन्यथा छेदन होने से वेदना, आटोप और मृत्यु भी हो जाती है। छेदन के पीछे मधु लगाकर व्रणको बांध देवे और अन्नके पच जाने पर घी पान करावे अथवा शर्करा, चीता, लाख, गोखरू और मुलहटी डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पान करावे। इससे वेदना और दाह शांत हो जाते हैं। तदनंतर पूर्वोक्त संपूर्ण चिकित्सा करना चाहिये इसमें मेद और ग्रंथि चिकित्सा में कहे हुए तेल अभ्यंजन में हित हैं ॥

घावमें रोपण तैल ।

तालीसं पद्मकं मांसीहरेण्वगुरुचंदनम् । हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः । पक्वं सद्योव्रणेपूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ।

अर्थ–तालीसपत्र, पदमाख, जटामांसी, हरेणु, अगर, चंदन, हलदी, दारुहलदी, कमलगट्टा, खस, और मुलहटी इनसे पकाया हुआ तेल ताजी घावोंके भरनेमें परमोत्तम है

गूढ प्रहारमें कर्तव्य ।

गूढप्रहाराभिहते पतिते विषमोच्चकैः ५६ कार्यं यातान्नजित्तृप्तिमर्दनाभ्यंजनादिकम्

अर्थ–लाठी वा घूंसे से भीतरी चोट लगने के कारण अथवा विषम रीति से गिरने के कारण वा ऊंचे स्थान से गिरने के कारण पेट भरकर भोजन, मर्दन, और वातनाशक अभ्यंजनादि का प्रयोग करना चाहिये

तेलकी द्रोणीमें निवास ।

विश्लिष्टदेहं माथतं क्षीणं मर्महताहतम् । वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाशिनम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–विशिष्टदेह, मथित, क्षीण और मर्माहत रोगी को तेल की भरी हुई द्रोणीमें बैठावे और मांसरसका भोजन करावै ॥

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने सद्योव्रणप्रतिषेधो नाम षड्विंशोऽध्यायः।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भंगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहांसे भंगप्रतिषेधनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

भंग के दो भेद ।

पातघातादिभिर्द्वेधा भंगोऽस्थ्नां संध्यसंधितः
प्रसारणाकुंचनयोरशक्तिः संधिमुक्तता ॥
इतरस्मिन्भृशं शोफः सर्वावस्थास्वतिव्यथा
अशक्तिश्चेष्टितेऽल्पेऽपि पिंडितमाने-
सशब्दता ॥ २ ॥
समासादिति भंगस्य लक्षणं बहुधा तु तत् ।
भिद्यते भंगभेदेन तस्य सर्वस्य साधनम्
यथा स्यादुपयोगाय तथा तदुपदेक्ष्यते ।

अर्थ–गिरने से वा चोट लगने से अस्थियों का भंग दो प्रकार का होता है। एक संधिभंग, दूसरा कांडभंग, संधिभंगमें अंगके फैलाने वा सकोडने में सामर्थ्य नहीं रहती अथवा संधि अपने स्थान से हट जाती है। कांडभंग में सूजनकी अधिकता और सोने बैठने आदि सब अवस्थाओं में वेदना बहुत होती है। अल्प चेष्टाके काममें भी असामर्थ्य और भग्नस्थान में दबाने से शब्द की उत्पत्ति होती है। ये भंगके सामान्य लक्षण कहे गये हैं। भंगभेद से इसके अनेक भेद हैं, इस भंगभेद के यथायोग्य उपायों का वर्णन किया जायगा ॥

दुःसाध्य भंग ।

प्राज्याणुदारियस्त्यस्थिस्पर्शशब्दंकरोतियत्
यत्राऽस्थिलेशः प्रविशेन्मध्यमस्थ्नो
विदारितः ।
भग्नं यच्चाभिघातेन किंचिदेवावशेषितम् ॥
उन्मथ्यमानं क्षतवच्च मज्जनि मज्जति ।
तद्दुःसाध्यं कृशाशक्तवातलाल्पाशिनामपि

अर्थ–जिस अस्थि में छोटी २ दरारें पडगई हों, जिसके छूने में शब्द होता हो, जिसकी दरार में दूसरी अस्थि के कण घुसगये हों, जो चोट लगने से टूट कर थोडी सी जुडी रहगई हो, जिसको उठाने से घाव सा दिखाई दे, जो मज्जा के भीतर गपक गई हो वह अस्थिभंग दुःसाध्य होता है। तथा कृश, असमर्थ, वातल और अल्पाशी मनुष्यों को अस्थिभंग भी असाध्य होता है ।

अन्य वर्जित अस्थि ।

भिन्नं कपालं यत् कट्यां संधिमुक्तं
च्युतं च यत् ।
जघनं प्रति पिष्टं च भग्नं यत्तद्विवर्जयेत् ।

अर्थ–कमर की जो अस्थि टूटगई हो, जो अस्थि अपने जोड से हटगई हो, जो अस्थि संधिस्थान से नीचे को गिरगई हो और जो जघन स्थान की हड्डी टूटकर चूरा होगई हो, ये सब वर्जित हैं ।

अन्य वर्जित अस्थिभंग ।

असंश्लिष्टकपालं च ललाटं चूर्णितं तथा ।
यच्च भग्नं भवेच्छंखशिरः पृष्ठस्तनांतरे ॥ ८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-ललाट की बे मिली हुई अथवा टूटी हुई अस्थि, तथा कनपटी, सिर, पीठ और स्तनों के मध्यवाली अस्थि असाध्य होती हैं।

दुर्न्यास में वर्जन।

सम्यग्यामितमप्यस्थिदुर्न्यासाद्बन्धनात् संक्षोभादपि यद्भ्रंशेद्विक्रियां तद्विवर्जयेत्। आदितो यच्च दुर्जातमस्थिसंधिरथापि वा।

अर्थ-टूटी हुई अस्थि अच्छी तरह से बांधने पर भी बुरी तरह लगाने से, वा बांधने से वा संक्षोभसे जो विकृतिको प्राप्त होजाय, उसे त्याग देना चाहिये। जो हड्डी प्रथम से ही अच्छी तरह नहीं उत्पन्न होती है, वह भी दुःसाध्य होती है।

अन्य दुःसाध्य।

तरुणास्थीनिभुज्यंते भज्यंते नलकानि तु। कपालानि विभिद्यंते स्फुटंत्यन्यानि भूयसा

अर्थ-तरुण अस्थि टेढी पडजाती हैं, नलकास्थि टूटजाती हैं, कपाल की हड्डी टुकडे टुकडे होकर विदीर्ण होजाती हैं, तथा अन्य हड्डियां फूट जाती हैं।

भंग में चिकित्सा की रीति।

भग्नावनतमुन्नम्यमुन्नतं चावपीडयेत् १२ आंछेदितिक्षिप्तमयोगतं चोपरि वर्तयेत्।

अर्थ-टूटी हुई हड्डी की अवस्था देखकर झुकी हुई हड्डी को ऊंची नीची करदे, ऊंची को नीची, अस्तव्यस्त को यथास्थान में लगा देवे।

मध्यम प्रकार के बंधनकी रीति

आंछनोत्पीडनोन्नामचर्मसंक्षेपबंधनैः १३ संधीन्शरीरगान्सर्वान्चलानप्यचलानपि इत्येतैः स्थापनोपायैः सम्यक् संस्थाप्य निश्चलम् १३ पट्टैः प्रभूतसर्पिर्भिर्वेष्टयित्वा सुखैस्ततः। कदंबोदुंबराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः॥ वंशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनुभिः सुनिवेशितैः। सुश्लक्ष्णैः सुप्रतिस्तंभैर्बलकैरपि॥ कुशाह्वयैः समंबध्य पट्टस्योपरि योजयेत्।

अर्थ-आंछन, उत्पीडन, उन्नमन, चर्म संक्षेप और बंधन इन सब स्थापनोपायों से देह की चल और अचल सब संधियों को अच्छी रीति से स्थापन करके बहुतसा घी डाल देवे और सुखोत्पादक कपडे की पट्टी ऊपर से लपेट देवे और इस कपडे के ऊपर गूलर, पीपल, साल, अर्जुन, और ढाक की छाल अथवा बांस की खपच, लगाकर समान रीति से बांध देवे। इन छाल वा बांसकी खपचियों को छीलकर चौडी, पतली और मुलायम करलेवे इस बंधन को कुश बंधन कहते हैं।

शिथिल और गाढबंधन।

शिथिलेन हि बंधेन संधेः स्थैर्यं न जायते। गाढेनातिरुजादाहपाकश्वयथुसंभवः।

अर्थ-ढीले बंधन से संधि स्थिर नहीं रहती है और अत्यन्त कठोर बंधन से वेदना, दाह, पाक और सूजन उत्पन्न होजाती है, इस लिये ऐसा बंधन बांधे जो न ढीला हो न कडा हो।

ऋतुविशेष में मोचनकाल।

त्र्यहात्र्यहादतौ घर्मे सप्ताहान्मोक्षयेद्भिषक् साधारणे तु पंचाहाद् भंगदोषवशेन वा।

अर्थ-गरम ऋतु में तीसरे दिन पट्टी खोल दे, जाडे में सातवें दिन और साधारण कालमें अर्थात् शरत और बसन्तऋतुमें पांच दिनके अंतर से वा भग्नकी अवस्था के अनुसार पट्टी खोलदे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संधि पर परिषेक ।

न्यग्रोधादिकषायेण ततः शीतेन सेचयेत्
तं पंचमूलपक्केन पयसा तु सघेदनम्।

अर्थ–बंधन खोलकर न्यग्रोधादिगण के ठण्डे क्वाथसे संधि पर सेचन करे। अत्यन्त वेदना होने पर पंचमूल डालकर औटाये हुए दूध से परिषेक करना चाहिये।

चक्रतेल का प्रयोग ।

सुखोष्णं वातवर्चस्यात्त्वक्तैलंविज्ञानता
विभज्य देशकालौ च वातघ्नौषधसंयुतम्।

अर्थ–देश और कालके अनुसार अवस्था की विवेचना करके वातनाशक औषधों से युक्त सुहाता हुआ गरम ताजी घानी के घी का प्रयोग करे।

शीतल परिषेक ।

प्रततं सेकलेपांश्चविदध्याद् भृशशीतलान्।

अर्थ–अत्यन्त शीतल परिषेक और लेपों का निरंतर प्रयोग करे।

गृष्टि क्षीरपान ।

प्राष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्।
प्रातःप्रातःपिबेद्भग्नः शीतलंलाक्षयायुतम्।

अर्थ–टूटी हुई अस्थिवाला मनुष्य पहलौन गौ का दूध मधुर गणोक्त द्रव्यों के साथ औटाकर, उसमें घी और लाक्षारस मिलाकर ठण्डा करके प्रति दिन पान करे।

सव्रण भग्नकी चिकित्सा ।

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणा मधुघृतोत्तरैः।
कषायैः प्रतिसार्योऽथ शेषो भंगोदितः क्रमः

अर्थ–घाववाले भग्न रोगी के घाव का घी और शहत से संयुक्त कषाय द्वारा प्रतिसारण करे, शेष सब उपाय भग्न के समान करने चाहिये।

व्रणका संधान ।

लंबानि व्रणमांसानि प्रालिप्य मधुसर्पिषा।
संदधीत व्रणान् वैद्यो बंधनैश्चोपपादयेत्।

अर्थ-घाव का मांस लटक पड़ने पर घी और शहत का लेप करके घाव को मिला देवे, फिर यथायोग्य बंधन से बांध देवे।

व्रण पर अवचूर्णन ।

तान्समान्सुस्थितान् ज्ञात्वा फलिनीरोधकट-
फलैः।
समंगाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत्।
धातकीरोध्रचूर्णैर्वा रोहत्याशु तथा व्रणाः।

अर्थ ऊपर लिखी हुई रीति से जब घावोंकी समान आकृति और एकसी स्थिति होजाय तब उसपर प्रियंगु, लोध, कायफल मजीठ, धाय के फूल इनका चूर्ण बुरक देवे, अथवा धाय के फूल और लोध का चूर्ण बुरक दे, इससे घाव जलदी भरजाता है।

साध्यासाध्य घाव।

इति भंग उपक्रांतः
स्थिरधातोर्ऋतौ हिमे॥
मांसलस्याल्पदोषस्यसुसाध्योदारुणोऽन्यथा

अर्थ–इस तरह भंगचिकित्सा का वर्णन किया गया है।

जिसकी धातु स्थिर है, जो बहुत पुष्ट है और जो अल्पदोषों से आक्रांतहै उसके घाव हिमऋतुमें साध्य होतेहैं। इन अवस्थाओं से विपरीत अवस्था में अर्थात् धातु की अस्थिरता, देहकी कृशता, दोषकी अधिकता और गरमी की ऋतु होनेके कारण घाव असाध्य होता है।

संधिकीस्थिरता का काल ।

पूर्वमध्यांतवयसामेकद्वित्रिगुणैः क्रमात्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मासैःस्वैर्यमयेःसंधेर्यथोक्तंभजतोविधिम् ।

अर्थ–यथोक्त रीति से चिकित्सा करने पर बालक की संधिके जोडने में जितना काल लगता है, उससे दूने कालमें मध्यमावस्थावाले की हड्डी जुडती है और तिगुने काल में वृद्धमनुष्यकी संधि जुडती है ।

कट्यादिभग्नमें कर्तव्य ।

कटीजंघोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम् ।
यंत्रणार्थं तथा कीलाःपंच कार्यानिबंधनाः।
जंघोर्वोः पार्श्वयोर्द्वौ द्वौ तलएकश्चकीलकः
श्रोण्यांवा पृष्ठवंशे वा वक्षस्यक्षकयोस्तथा

अर्थ–कमर, जांघ और ऊरुके टूटनेपर रोगी को काठके तख्ते पर शयन करावे, रोगी हिलने न पावे इसलिये उस काठ के तख्ते में पांच कील गाढकर बांध देवै । दोनों जांघों के इधर उधर एक एक, दोनों ऊरुओं के इधर उधर एक एक, और पदतल में एक कील गाढे । श्रोणी और पीठ का बांसा टूटने पर भी पांच कीलोंसे बांधे दोनों पसवाडों में दो दो और तलेमें एक । वक्त्र और अक्षक के टूटने पर भी पांचही लगाई जाती हैं ।

पट्टीखोलने की विधि ।

विमोक्षे भग्नसंधीनां विधिमेवं समाचरेत्

अर्थ–भग्नसंधिकी पट्टी खोलनेमें भी इसी उपायका अवलंबन करना चाहिये ।

चिरविमुक्तसंधि में स्नेहन

संधींश्चिरापयुक्तांस्तु स्निग्धान्स्विन्नान्
मृदूकृतान् ।
उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च यथास्वंस्थानमानयेत्

अर्थ-बहुत दिनके हटे हुए जोडों में स्नेहन, और स्वेदन से मृदु की हुई संधियों को अपनी बुद्धिके अनुसार कही हुई रीतिसे यथास्थान में स्थापित करे ।

असंधिभग्न में कर्तव्य ।

असंधिभग्ने रूढे तु विषमोल्बणसाधिते ।
आपोथ्य भंगं यमयेत्ततो भग्नवदाचरेत् ३१

अर्थ–संधिके सिवाय अन्य स्थान की भग्नता में घावके पुर जानेपर विषम और उल्बण रीति से साधितकर भग्नस्थान को तोडकर योजना कर देवे और भग्नवत् चिकित्सा करे ।

भग्नके न पकने का उपाय।

भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
पक्वमांससिरास्नायुसंधिः श्लेषं न गच्छति

अर्थ--जिस तरह भग्नस्थान पकने न पावे, वही उपाय करे । क्योंकि संधिका मांस सिरा और स्नायु के पकजाने से फिर जुड नहीं सकता है ।

भग्नमें स्नेहप्रयोग ॥

वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहान् भग्नस्य
योजयेत् ॥ ३३ ॥
चतुः प्रयोगान् बल्यांश्च बस्तिकर्म
च शीलयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ--भग्नमें वातरोगों में कहे हुए स्नेह के चार बलकारक प्रयोगों को पान, नस्य, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा प्रयोग करे, तथा वस्तिकर्म भी करे ।

भग्न में मात्रादि द्वारा उपचार ।

शाल्याज्यरसदुग्धाद्यैः पौष्टिकैरविदाहिभिः
मात्रयोपचरेद्भग्नं संधिसंश्लेषकारिभिः ॥
ग्लानिर्नैवास्यतेतस्यसंधिविश्लेषकृद्भिसा

अर्थ–भग्न मनुष्य को शालिचांवलों का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भात, घी, मांसरस तथा पौष्टिक और अविदाही दुग्धादि और संधि को जोड़नेवाले सब प्रकार के खाद्य पदार्थ खाने को देवै। भग्न में ग्लानि पैदा न होने दे, क्यों कि ग्लानि से संधि जुड़ने नहीं पाती है।

भग्न में निषिद्ध द्रव्य।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम्।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षं च भोजनम्।

अर्थ–भग्नवाला रोगी नमक, कटुरस क्षार, खटाई, मैथुन, धूप, व्यायाम और रूक्ष भोजन इनका परित्याग करदेवै।

वात पित्तज दोषों पर गंधतैल।

कृष्णांस्तिलान् विरजसो दृढवस्त्रबद्धान्
सप्त क्षपा वहति वारिणि वासयेत।
संशोषयेदनुदिनं प्रवसार्य चैतान्
क्षीरे तथैव मधुककथिते च तोये ॥ ३६ ॥
पुनरपि पीतपयस्कां-
स्तान् पूर्ववदेव शोषितान् घाढम्।
विगततुषानरजस्कान्
संचूर्ण्य सुचूर्णितैर्युञ्जयात् ॥ ३७ ॥
मलवालकलोहितयष्टिका-
नखमिशिलुबकुष्ठबलात्रयैः।
अगरुचंदनकुंकुमसारिवा-
सरलसर्जरसामरदारुभिः ॥ ३८ ॥
पद्मकादिगणोपेतैस्तिलपिष्टं ततश्च तत्।
समस्तगंधभैषज्यसिद्धदुग्धेन पीडयेत् ॥
शैलेयरास्नांशुमतीकसेरु-
कालानुसारीनतपत्ररोध्रैः।
सक्षीरयुक्तैः सपयस्कदूर्वै-
स्तैलं पचेत्तत्सलदादिभिश्च ॥ ४० ॥
गंधतैलमिदमुत्तममस्थि-
स्थैर्यकृज्जयति चाशु विकारान्।
वातपित्तजनितानतिवीर्यान्
व्यापिनोऽपि विविधैरुपयोगैः ॥ ४१ ॥

अर्थ–काले तिलों की धूल मिट्टी साफ करके एक दृढ वस्त्र में बांधकर सात रात तक किसी बहती हुई नदी में डाल दे, परंतु प्रतिदिन सवेरे ही पानी में से निकाल कर फैलाकर सुखालिया करे। ऐसे सात दिन रात दूधमें भिगोकर सुखा लिया करे फिर सात दिन रात मुलहटी के काढे में भिगोकर सुखालिया करे। फिर भी एक वार दूध में भिगोकर सुखाले। फिर इन तिलों के छिलके, मिट्टी आदि दूर करके पीसडाले। और खस, नेत्रवाला, मजीठ, नखी, जटामांसी, गंधतृण, कूठ, बला, अतिबला, नागबला, अगर, चंदन, कुंकुम, सारिवा, सरलकाष्ठ, राल, देवदारु, और पदमाख इन सब का चूर्ण करके मिलादेवे। फिर संपूर्ण गंध द्रव्यों के साथ औटाये हुए दूध में उक्त चूर्ण को मिलाकर तेल निकाले फिर शिलारस, रास्ना, शालपर्णी, कसेरू, शशिम, तगर, तेजपात, लोध, दूब इनमें पूर्वोक्त नलदादि चूर्ण डालकर उक्त तेल को पकावै। यह गंधतैल अस्थियों के जोडने में बहुत गुणकारी है। इसका पान नस्यादि विविध प्रकार के प्रयोगों द्वारा सेवन करने से वात पित्त से उत्पन्न हुई संपूर्ण देह में व्याप्त होनेवाली बडी बडी बलवान् व्याधियां जाती रहती हैं।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने भग्नप्रतिषेधो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अष्टाविंशोऽध्यायः।

अथाऽतो भगंदरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम यहां से भगंदर प्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

भगंदर के लक्षण।

दूरस्थाश्वपृष्ठगगनकठिनोत्कटकासनैः।
अर्शोनिदानाभिहितैरपरैश्च निषेवितैः॥
अनिष्टादृष्टपाकेन सद्यो वा साधुगर्हणैः।
प्रायेण पिटिकापूर्वो यौगुलेद्यंगुलेऽपि वा॥
पायोर्बहिर्गतर्वाह्यो वा दुष्टासृङ्मांसगो भवेत्
वस्तिमूत्राशयाभ्यासगतत्वात्स्पंदनात्मकः।
भगंदरः स

अर्थ-हाथी और घोड़ेकी पीठ पर चढ़कर चलने से, कठोर और उत्कट आसनों पर बैठने से, अर्शोनिदान में कहे हुए हेतुओं से वा ऐसेही अन्य कारणों से, पूर्वजन्म में किये हुए अशुभ पापोंके फलसे, साधुओं की निंदासे, गुदासे एक वा दो अंगुल दूर पर बाहर वा भीतर को दूषित रक्त और मांस में एक व्रण हो जाता है, इसी को भगंदर कहते है। भगंदर होने से पहिले प्रायः फुंसी उत्पन्न होती है, यह फुंसी पककर फूट जाती है तभी भगंदर होता है। तथा वस्ति और मूत्राशय के समीपवर्ती होने से झरने लगता है।

भगंदर की क्रिया।

सर्वथ्च द्वारयत्यक्रियावतः।
भगवस्तिगुदांस्तेषु दीर्यमाणेषु भूरिभिः॥
वातमूत्रशकृच्छुक्रं स्वैः सूक्ष्मैर्घमति क्रमात्

अर्थ-सम्यक् रीतिसे चिकित्सा न किये जाने पर भगंदर सब तरह से भग, वस्ति और गुदा को विदीर्ण कर देता है और छोटे छोटे छिद्रोंमें होकर अधोवायु, मूत्र, विष्ठा और वीर्य निकलने लगता है।

भगंदर के भेद।

दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरागंतुः सोष्टमः स्मृतः॥

अर्थ-भगंदर आठ प्रकार का होता है, यथा-वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सन्निपातज और आगन्तुज।

पिटिका और भगंदर का अंतर।

अपक्वं पिटिकामाहुः पाकप्राप्तं भगंदरम्।

अर्थ-गुदाके पासवाली सूजन जब तक नहीं पकती है तब तक उसे पिटिका वा फुंसी कहते हैं, पकनेपर उसे भगंदर कहते हैं

भगंदरजनकपिटिका।

गूढमूलां ससंरंभां रुगाढ्यां रुद्धकोपिनीम्॥
भगंदरकरीं विद्यात् पिटिकां न त्वतोऽन्यथा

अर्थ-जिस पिटका की जड गहरी होती है, जो क्षोभयुक्त, वेदनान्वित और होते ही प्रकोपक हो उसे ही भगंदर को उत्पन्न करनेवाली पिटिका समझनी चाहिये, इससे विपरीत लक्षणवाली केवल पिटिका कहलाती है

वातज पिटिका के लक्षण।

तत्र श्यावारुणा सोदभेदस्फुरणरुक्करी॥
पिटिका मारुतात्

अर्थ-जिस पिटिका का वर्ण श्याव और अरुण हो तथा जिसमें सुई छिदने की सी पीडा, भेदन, फडकन और चक्रके चलते हों उसे वातज पिटिका जाननी चाहिये।

पित्तज पिटिका के लक्षण

पित्तादुष्टर्प्यावदुच्छ्रिता।
रागिणी तनुरुष्माढ्या ज्वरधूमायनान्विता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--जो पिटिका ऊंटकी गरदन की तरह ऊपरको उठी हो, जिसमें ललाई, पतलापन गरमाई हो, तथा जिसके होने से ज्वर हो और धूआंसा घुमडता हो उसे पित्तज पिटिका समझना चाहिये ।

कफज पिटिका के लक्षण ।

स्थिरा स्निग्धा महामूला पांडुः कंडूमती कफात्

अर्थ--कफसे उत्पन्न हुई पिटिका स्थिर, स्निग्ध, मोटीजडवाली, पांडवर्ण और खुजलीयुक्त होती है ।

वातपित्तज पिटिका ।

श्यावा ताम्रा सदाहोषाघोररुग्वातपित्तजा

अर्थ--वातपित्तज पिटका श्यामवर्ण, ताम्रवर्ण, दाह और ऊषासे युक्त और भयंकर वेदना वाली होती है

वातकफज पिटका ।

पांडुरा किंचिदाश्यावा कृच्छ्रपाका-
कफानिलात् ।

अर्थ--वातकफज पिटका पांडुवर्ण वा कुछ श्यामवर्ण और कठिन से पकनेवाली होती है

त्रिदोषज पिटका ।

पादांगुष्ठसमा सर्वैर्दोषैर्नानाविधव्यथा ॥
शूलारोचकतृड्दाहज्वरच्छर्दिरुपद्रुता ।

अर्थ--त्रिदोषज पिटिका पांवके अंगूठेके सदृश होती है । इसमें शूल, अरुचि, तृषा, दाह, ज्वर और वमनादि अनेक उपद्रव होते हैं

उक्त पिटिकाओं में प्रमादका फल ।

व्रणतां यांति ताः पक्वाः प्रमादात्

अर्थ--ऊपर कही हुई पिटका प्रमाद से अर्थात् चिकित्सामें उपेक्षा करनेसे पकजाती है

शतपोनक भगंदर ।

तत्र वातजा ॥ ११ ॥
दीर्यतेणुमुखैश्छिद्रैः शतपोनकवत् क्रमात् ।
अच्छं स्रवद्भिरास्रावमजस्रं फेनसंयुतम् ।
शतपोनकसंज्ञोऽयम्

अर्थ--इनमें से वातज पिटका में छोटे छोटे मुखवाले चालनी की तरह अनेक छिद्र होते हैं, इनमें से झागदार अच्छा स्राव निरंतर होता रहता है । चालनी की तरह असंख्य छिद्र होने से इसे शतपोनक भगंदर कहते हैं ।

उष्ट्रग्रीव भगंदर ।

उष्ट्रग्रीवस्तु पित्तजः ।

अर्थ--पित्तज पिटिका ऊंटकी गरदन के सदृश ऊंची होती हैं इसलिये इसे उष्ट्रग्रीव भगंदर कहते हैं ।

परिस्रावी भगंदर ।

बहुपिच्छापरिस्रावी परिस्रावी कफोद्भवः

अर्थ--कफसे उत्पन्न हुए भगंदर में पिच्छिल स्राव अधिकता से निकलता है, इसलिये इसे परिस्रावी भगंदर कहते हैं ।

परिक्षेपी भगंदर ।

वातपित्तात्परिक्षेपी परिक्षिप्य गुदं गतिः ।
जायते परितस्तत्र प्राकारपरिखेव च १४

अर्थ--वातपित्तज भगंदरको परिक्षेपी कहते हैं । जैसे नगर के बाहर परकोटा के चारों ओर खाई होती है, इसी तरह इस भगंदर की गति भी चारों ओर से गुदा नाडियों द्वारा घिरी हुई होती है ॥

ऋजुसंज्ञक भगंदर ।

ऋजुर्वातकफाद्ज्ञेया गुदो गत्या तु दीर्यते

अर्थ- वात कफके प्रकोपसे ऋजुसंज्ञक भगंदर उत्पन्न होता है । यह अपनी सीधी गति से गुदनाड़ी को विदीर्ण कर देता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्शो भगंदर ।

कफपित्ते तु पूर्वोत्थं वुर्नामाश्रित्यकुप्यतः ।
अर्शोमूले ततः शोफः कंडूदाहादिमान्भवेत्
स शीघ्रं पक्वभिन्नोस्य क्लेदयन्मूलमर्शसः ।
स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमर्शो भगंदरः ।

अर्थ–कफ पित्त यदि पहिले उत्पन्न हुई अर्श का आश्रय लेकर कुपित होजाय तो उसके कारण से अर्श की जड़ में खुजली और दाहादि युक्त सूजन पैदा होजाती है। यह सूजन पककर फूट जाती है और अर्श की जड़ को भिन्न करके नाली में होकर निरन्तर स्राव होने लगता है। ऐसी सूजन को अर्शोभगंदर कहते हैं।

शंबुकावर्त भगंदर ।

सर्वजः शंबुकावर्तः शंबुकावर्तसन्निभः ।
गतयोदारयंत्यस्मिन् रुग्वेगैर्दारुणैर्गुदम् ।

अर्थ–तीनों दोषों के प्रकोप से शंबुकावर्त नामक भगंदर उत्पन्न होता है, इस की आकृति शंबुक के समान होती है, इस में दारुण वेदना के वेगों से गुदनाड़ी विदीर्ण होजाती है।

उन्मार्गी भगंदर ।

अस्थिक्लेशोऽभ्यवहृतोमांसगृह्णात्यदागुदम्
क्षतमेति तिर्यङ्निर्गच्छन्मार्गक्षतंतो गतिः
स्यात्ततः पूयदीर्णायां मांसकोथेन तच्च च
जायंते कृमयस्तस्य खादंतः परितो गुदम् ।
विदारयंति न चिरादुन्मार्गी क्षतजश्च सः

अर्थ–मांसभक्षी मनुष्य जब मांस के साथ हड्डी के छोटे कण को खाजाता है और अस्थिका कण आढा पड़कर गुदनाड़ी में घाव करदेता है, फिर इस घाव में राध पड़ जाती है और इधर उधर का मांस सड़ने लगता है तब कीड़े उत्पन्न होकर गुदा को विदीर्ण कर देते हैं, इस भगंदर को उन्मार्गी वा क्षतज कहते हैं।

भगंदर में वेदनादि ।

तेषु रुग्दाहकंडूवादीन् विद्याद्व्रणनिषेधतः

अर्थ–भगंदर में वेदना, दाह और खुजली आदि वैसेही चलती है जैसा व्रण प्रतिषेध अध्याय में वर्णन किया गया है।

भगंदर का साध्यासाध्य विचार ।

षट्कृच्छ्रसाधनास्तेषां निचयक्षतजौ त्यजेत्
प्रवाहिनीं वलीं प्राप्तं सेवनीं वा समाश्रितम्

अर्थ–इन भगंदरों में से छः तो कष्ट साध्य होतेहैं। तथा सन्निपातज और क्षतज असाध्य होते हैं, जो भगंदर प्रवाहिनी वली और सेवनी वली में पहुँच जाताहै वह भी असाध्य होता है।

पिटका के न पकने का यत्न ।

अथाऽस्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत्
शुद्धयास्कृत्स्रुतिसेकाद्यैर्यथापाकं न गच्छति

अर्थ–भगंदर में पिटका होने के साथही शोधन, फस्त खोलना, और परिषेकादि द्वारा विशेष रूप से यत्न करे जिससे पकने न पावे। क्योंकि पकने परही भगंदर का साध्य होना निर्भर है॥

भगंदर का अवलेकन ।

पाके पुनरुपाक्लिग्धं स्वेदितं चावगाहतः ।
यंत्रयित्वार्शसमिव पश्येत्सम्यग्भगंदरम् ।
अर्वाचीनं पराचीनमंतर्मुखबहिर्मुखम् २४

अर्थ–भगंदर के पकने पर स्नेहन और अवगाहन से स्वेदित करके अर्शकी तरह उसे सुयंत्रित करके देखना चाहिये कि भगं-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दर अधोमुख है वा ऊर्ध्वमुख है अथवा अंतर्मुख है वा बहिर्मुख है ।

अन्तर्मुखादि में उपाय ।

अथांतर्मुखमेषित्वा सम्यक्शस्त्रेण पाटयेत् बहिर्मुखे च निःशेषं ततः क्षारेण साधयेत् अग्निना वाग्निवत् साधुक्षारेणैवोष्ट्रकंधरम्

अर्थ–अंतर्मुखवाले भगंदर को एषणी नामक शलाका यंत्रसे अन्वेषित करके दूसरे शस्त्र से चीर डाले । बहिर्मुखवाले भगंदर को निःशेष काटकर क्षार वा अग्निकर्मद्वारा दग्ध करदे । उष्ट्रग्रीव भगंदर को केवल क्षार द्वारा दग्ध करना चाहिये ।

शतपोनक भगंदर का यत्न ।

नाडीरेकांतराः कृत्वा पाटयेच्छतपोनकम् । तासु रूढासु शेषाश्चमृत्युर्वर्ष्मे गुरेऽन्यथा

अर्थ–शतपोनक नामक भगंदर में सब नाडियों को बार बार न काटकर एक एक करके काटना चाहिये । काटी हुईको पहिले शुद्ध करके फिर दूसरी काटना चाहिये यदि एक साथ काटी जायगी तो रोगी मर जायगा ।

परिक्षेपी का उपाय ।

परिक्षेपिणि चाप्येवं नाडयुक्तैःक्षारसूत्रकैः ।

अर्थ–परिक्षेपी भगंदरको भी इसी रीति से एक एक नाडी में क्रम क्रमसे क्षारसूत्र का प्रयोग करना चाहिये ।

अर्शोभगंदर की चिकित्सा ।

अर्शोभगंदरे पूर्वमर्शांसि प्रतिसाधयेत् । त्यक्त्वोपचर्यः क्षतजः शल्यं शल्यवतस्ततः आहरेच्च तथा दद्यात्कृमिघ्नं लेपभोजनम् पिंडनाडयादयःस्वेदाःसुस्निग्धारुजिपूजिताः

अर्थ–अर्शोभगंदर में प्रथम अर्शकी चिकित्सा करना चाहिये । क्षतजभगंदर को असाध्य कहकर उसकी चिकित्सा करना चाहिये । यदि उसमें शल्य हो तो शल्यको निकालकर क्रिमिनाशक प्रलेप और पथ्य देना चाहिये । इससे यदि वेदना शांत न हो तो सुस्निग्ध पिंडस्वेद और नाडी स्वेद आदि की व्यवस्था करनी चाहिये ।

बहुछिद्र भगंदर ।

सर्वत्र च बहुच्छिद्रे छेदानालोच्य योजयेत् गोतीर्थसर्वतोभद्रदललांगललांगलान् ३०

अर्थ–बहुत से छिद्रवाले भगंदरों में गोतीर्थ, सर्वतोभद्र, दललांगल और लांगल इन चार प्रकारके छेदोंको भगंदर की दशा पर विशेषरूप से आलोचना करके शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये ।

गोतीर्थादि के लक्षण ।

पार्श्वं गतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थको मतः सर्वतः सर्वतोभद्रः पार्श्वच्छेदोर्धलांगलः । पार्श्वद्वये लांगलकः

अर्थ–जो छिद्र पसवाडे की ओर होता है उसे गोतीर्थक कहते हैं । जो छेद चारों ओर होता है उसे सर्वतोभद्र, जो एक पसवाडे को होता है उसे अर्द्धलांगल और जो दोनों ओर होता है उसे लांगल कहते हैं ।

भगंदर में अग्निदाह ।

समस्तांश्चाग्निना दहेत् । आस्रावमार्गाभिःशेषान्नैवं विकुरुते पुनः ॥

अर्थ–स्राव के संपूर्ण मार्गों को अग्निसे बिलकुल दग्ध करदे, जिससे घावमें फिर किसी प्रकार का विकार न होने पावे ।

भगंदरमें कोष्ठकी शुद्धि ।

यतेत कोष्ठशुद्धौच भिषक् तस्यांतरांतरा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–भगंदरवाले रोगी का कोष्ठ शुद्ध करने के लिये बीच में यत्न करना चाहिये।

घाव पर लेप।

लेपो व्रणे विड्गालाखिवित्रफलारसकल्कितम्

अर्थ–त्रिफला के काढे में बिल्ली की हड्डी घिसकर लेप करने से भगंदरके घाव पर गुण करता है।

अभ्यंगार्थ तेल।

ज्योतिष्मतीमलयुलांगलिशेलुपाठा-
कुंभाग्निसर्जकरवीरवचासुधार्कैः।
अभ्यंजनाय विपचेत भगंदराणां
तैलं वदंति परमं हितमेतदेषाम्॥

अर्थ–मालकांगनी, काकोडुंबर, कठूमर, मोरकी शिखा, पाठा, निसोथ, चीता, राल, कनेर, बच, सेंहुड और आक। इन सब द्रव्यों के साथ तेल पकाकर इस तेलको भगंदरमें काम में लावे।

अन्य तेल।

मधुकरोध्रकणाश्रुटिरेणुका-
द्विरजनीफलिनीपटुसारिवाः।
कमलकेसरपद्मकधातकी-
मदनसर्जरसामयरोध्रकाः॥ ३५॥
सबीजपूरच्छदनैरभिस्तैलं विपाचितम्।
भगंदरापचीकुष्ठमधुमेहव्रणापहम्॥ ३६॥

अर्थ–मुलहटी, लोध, पीपल, छोटी इलायची, रेणुक, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु, सेंधानमक, अनंतमूल, कमलकेसर, पदमाख, धायके फूल, मेनफल, राल, बिडंग, लोध और बिजौरे के पत्ते। इन सब द्रव्यों के साथ पकाया हुआ तेल प्रयोग करने से भगंदर, अपची, कुष्ठ, मधुमेह और व्रण जाते रहते हैं।

भगंदर पर लेह।

मधुतैलयुताविडंगसार-
त्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः।
कृमिकुष्ठभगंदरप्रमेह-
क्षतनाडीव्रणरोहणा भवंति॥ ३७॥

अर्थ–बायबिडंग, त्रिफला, पीपल, इनके चूर्ण को शहत और तेल मिलाकर लेहन करने से कृमिरोग, कुष्ठ, भगंदर, प्रमेह के घाव और नाडीव्रण भरजाते हैं।

पिटिकादि पर औषध।

अमृताश्रुटिवेल्लवत्सकं
कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः।
क्रमवृद्धमिदं मधुद्रुतं
पिटिकास्थौल्यभगंदरान् जयेत्॥ ३८॥
मागधिकात्रिकलिंगविडंगै-
र्विल्वघृतैः सवरापलशुष्कैः।
गुग्गुलुना सदृशेन समेतैः
क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः॥ ३९॥

अर्थ–गिलोय, इलायची, बायबिडंग, इन्द्रजौ, बहेडा, हरड़, आमला, और गूगल इनमें से हर एक को उत्तरोत्तर एक एक भाग बढाकर ले। इनका चूर्ण करके शहत मिलाकर चाटने से पिटिका, स्थौल्य और भगंदर जाते रहते हैं। अथवा पीपल, चीता, इन्द्रजौ, बायबिडंग और बिल्ववृत प्रत्येक एक पल, त्रिफला, छः पल, और इन सब के समान गूगल मिलाकर शहत के संग चाटने से संपूर्ण रोग दूर होजाते हैं।

स्वाधंभुवाख्य गूगल।

गुग्गुलुपंचपलं पालिकांशा
मागधिका त्रिफला च पृथक्स्यात्।
त्वक् श्रुटिकर्षयुतं मधुलीढं
कुष्ठभगंदरगुल्मगतिघ्नम्॥ ४०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-गूगल पांच पल, पीपल और त्रिफला प्रत्येक एक पल, दालचीनी और छोटी इलायची प्रत्येक एक कर्ष। इन सब का चूर्ण बनाकर शहत के संग चाटने से कुष्ठ, भगंदर, गुल्म और नाड़ीगत रोगोंको दूर करता है, इसका नाम स्वायंभुव गूगल है।

वात रोगनाशक औषध।

शुंगवेररजोयुक्तं तदेव च सुभावितम्।
क्वाथेन दशमूलस्य विशेषाद्वातरोगजित्॥

अर्थ-ऊपर लिखेहुए गूगल आदि द्रव्यों को सोंठ के चूर्ण के साथ मिलाकर दसमूल के काढे की भावना देकर सेवन करे। इस के सेवन से वात रोग शीघ्र जाता रहताहै।

अन्य प्रयोग।

उत्तमाखदिरसारजं रजः
शीलयञ्जसनवारिभावितम्।
इंति तुल्यमहिषाक्ष्यमाक्षिकं
कुष्ठमेहपिटिकाभगंदरान्॥ ४२॥

अर्थ-त्रिफला और खैरके चूर्णमें असन के क्वाथ की भावना देकर उसमें समान भाग गूगल और शहत मिलाकर सेवन करने से कुष्ठ प्रमेह पिटका और भगंदर जाते रहते हैं। इसे तुल्य महिषाक्ष्य माक्षिक कहते हैं।

अन्य भगन्दरों की यथायोग्य-चिकित्सा।

"भगंदरेष्वेष विशेष उक्तः
शेषाणि तु व्यंजनसाधनानि।
व्रणाधिकारात्परिशीलनाच्च
सम्यग्विदित्वौषधिकं विदध्यात्॥

अर्थ-विशेष २ भगंदरों में विशेष उपचार कह दिये गये हैं। अन्य व्रणों की चिकित्सा उनके लक्षणों के अनुसार व्रण के अधिकार और व्रण प्रतिषेधनीय अध्याय की कही हुई रीतियों से यथायोग्य औषधों की व्यवस्था करनी चाहिये।

रूढ भगन्दर में वर्जितकर्म।

अश्वपृष्ठगमनं चलरोधं
मद्यमैथुनमजीर्णमसात्म्यम्।
साहसानि विविधानि च रूढे
वत्सरं परिहरेदधिकं वा॥ ४४॥

अर्थ-भगंदर के भरजाने पर एक बरस तक घोड़े की पीठ पर चढना, अधोवायु का रोकना, मद्य, मैथुन, अजीर्ण और असात्म्य भोजन तथा अन्य साहसिक कामों का परित्याग कर देना चाहिये।

इतिश्री अष्टांगहृदय संहितायां
भाषाटीकान्वितायां उत्तर-
स्थाने भगन्दरप्रतिषेधोनाम
ऽष्टाविंशोऽध्यायः २८॥

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथाऽतो ग्रंथ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीविज्ञानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम यहांसे ग्रंथिरोग, श्लीपद, अपची और नाड़ीविज्ञान नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

ग्रंथि की उत्पत्ति।

कफप्रधानाः कुर्वंति मेदोमांसासृगा मलाः।
वृत्तोन्नतं यं श्वयथुं स ग्रंथिर्ग्रथनात्स्मृतः॥

अर्थ--कफ प्रधान वातादि दोष मेद, मांस और रक्त का आश्रय लेकर गोल और ऊँची

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूजन पैदा कर देते हैं, इसी का नाम ग्रंथि है ग्रथन के कारणसे इसे ग्रंथि कहते हैं।

ग्रंथि के नौ भेद।

दोषासृङ्मांसमेदोऽस्थिसिराव्रणभवा नव।

अर्थ-सब प्रकारकी ग्रंथियां वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, सिरा, और व्रण से उत्पन्न होती हैं, इससे नौ प्रकार की कही गई हैं॥

वातज ग्रंथि।

तेषु वाताद्यायामतोदान्वितो सितः॥२॥
स्थानात्स्थानांतरगतिरकस्माद्धानिवृद्धिमान्
मृदुर्वस्तिरिवानद्धो विभिन्नोच्छं स्रवत्यसृक्

अर्थ-इन सब ग्रंथियोंमें से वातजग्रंथिमें आयाम, तोद (सूची वेधवत् वेदना), और फटने की सी पीडा होती है। इसका रंग काला होता है, और एक स्थान से दूसरे स्थानमें हटती रहती है, कभी घट जाती है और कभी बढ जाती है। वस्तिके समान मृदु और आनाह युक्त होती है, फटने पर इसमें से निर्मल रुधिर झरने लगता है।

पित्तज ग्रंथि।

पित्तात्सदाहःपीताभो रक्तो वा पच्यते द्रुतम्
भिन्नोऽसृगुष्णं स्रवति

अर्थ-पित्तज ग्रंथिमें दाह होता है, इस का वर्ण पीला वा लाल होता है, यह शीघ्र पक जाती है। इसके फटने पर गरम रुधिर का स्राव होता है।

कफज ग्रंथि।

श्लेष्मणा नीरुजो घनः।
शीतः सवर्णः कंडूमान् पक्वः पूयंस्रवेद्घनम्

अर्थ-कफज ग्रंथिमें वेदना नहीं होती है यह सघन, शीतल, त्वचा के वर्ण के सदृश और खुजलीयुक्त होती है। पकने पर उसमें से गाढा स्राव निकलता है।

दोषदुष्ट रक्तकी ग्रंथि।

दोषैर्दुष्टेऽसृजि ग्रंथिर्मांसेजन्मूर्छत्सु जंतुषु ५
सिरामांसं च संश्रित्य सःस्वापःपित्तलक्षणः

अर्थ-रक्तके वातादि दोषों द्वारा दूषित होनेपर ऐसी ग्रंथि उत्पन्न होती है जो सिरा और मांसका आश्रय लेती है। यह ग्रंथि कीडों के उत्पन्न होने से होती है, इसमें छूने से कुछ भी ज्ञान नहीं होता है और इसमें पित्त की ग्रंथिके समान लक्षण दिखाई देते हैं

दूषित मांसकी ग्रंथि।

मांसलैर्दूषितं मांसमाहारैर्ग्रंथिमावहेत् ६
स्निग्धं महांतं कठिनं सिरानद्धंकफाकृतिम्

अर्थ-मांसको बढानेवाले आहारों के सेवन से मांस दूषित होकर ग्रंथिको उत्पन्न करदेता है। यह ग्रंथि चिकनी, बडी, कठोर, सिराजाल से व्याप्त और कफके आकारवाली होती है।

मेदोग्रंथि के लक्षण।

प्रवृद्धं मेदुरैर्मेदो नीतं मांसेऽथवा त्वचि॥
वायुना कुरुते ग्रंथिं भृशं स्निग्धं मृदुं चलम्
श्लेष्मतुल्याकृतिं देहक्षयवृद्धिक्षयोदयम्॥
स विभिन्नो घनं मेदस्तान्नाऽसितसितं स्रवेत्

अर्थ-मेदवर्द्धक आहार के सेवने से मेद बढकर वायुद्वारा मांस वा त्वचामें ले जाया जाता है, उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है वह अत्यन्त स्निग्ध, मृदु, चलायमान, कफके समान आकृतिवाली होती है। यह गांठ देह के घटने के साथ घटती है और बढने के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ बढती है। इसके फटने पर ताम्रवर्ण, काला वा सफेद गाढा गाढा स्राव होने लगताहै

अस्थि ग्रंथि के लक्षण ।

अस्थिभंगाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत् स्रोऽस्थिग्रंथिः

अर्थ–जो हड्डी के टूटने से अथवा उस में चोट लगने से वा ऊँची नीची होजाने से जो गांठ पैदा होजाती है उसे अस्थि ग्रंथि कहते हैं ।

सिरा ग्रंथि के लक्षण ॥

पदातेस्तु सहसांभोवगाहनात् ।
व्यायामाद्वाप्रतांतस्यासिराजालंसशोणितम्
वायुःसंपीड्यसंकोच्यवक्रीकृत्यविशोष्यच ।
निःस्फुरं निरुजं ग्रंथिं कुरुते स सिराह्वयः ॥

अर्थ–पैदल चलने से, सहसाजल में तैरने से, कसरत करने से, जो मनुष्य श्लान्त होजाता है उस के वात क्रुद्ध होकर सरक्त सिराजाल को संपीडित, संकोचित, वक्र और विशोषित करके एक ऐसी गांठ पैदा कर देती है जो न स्फुरण करती है और न दर्द करती है ।

व्रण ग्रंथि ।

अरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः ।
स्नाग्वे वा बंधरहिते गात्रेऽश्मादिहतेऽथवा
वातोल्बणमसृक्तं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणम् ।
कुर्यात्सदाहः कंडूमान् व्रणग्रंथिरयं स्मृतः

अर्थ–घाव के बिना भरे वा भरतेही जो मनुष्य मधुरादि संपूर्ण रसों को खाने लगजाता है, अथवा जिसका घाव गीला होने पर भी बिना पट्टी बांधे खुला छोड दिया जाता है, अथवा उस पर पाथर आदि की चोट लगजाती है, तब वायु बिना निकले हुए दूषित रक्त को सुखाकर गांठ पैदा कर देती है । इस में दाह होताहै और खुजली चलती है इसको व्रणग्रंथि कहते हैं ।

साध्यासाध्य ग्रंथियों का वर्णन ।

साध्यादोषासृमेदोजा न तु स्थूलखरास्थिलाः
मर्मकंठोदरस्थाश्च

अर्थ–इनमें जो ग्रंथिएं वातादि दोष, रक्त और मेद से उत्पन्न होती हैं वे साध्य होती है, तथा जो स्थूल, छूने से खरखरी चलायमान, मर्म स्थान कण्ठ और उदर में होती है वे असाध्य होती है ।

अर्बुद के भेदादि ।

महत्तु ग्रंथितोऽर्बुदम् १४

तल्लक्षणं च मेदोंतैः षोढादोषादिभिस्तुतत्
प्रायोमेदःकफाढ्यत्वात्स्थिरत्वाच्च न पच्यते

अर्थ–गांठ की बड़ी सूजन को अर्बुद कहते हैं । अर्बुद छः प्रकार का होता है, वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मांसज और मेदोजा यह मेद और कफकी अधिकता तथा स्थिरता होने के कारण प्रायःपकती नहीं है।

रक्तार्बुद के लक्षण ।

सिरास्थंशोणितंदोषःसंकोच्यांतःप्रपीडयच
पाचयेत तदानद्धं साम्रावं मांसपिंडितम् ।
मांसांकुरैश्चितं याति वृद्धिं चाशु अपेक्षतः
अजस्रं दुष्टरुधिरं भूरि तच्छोणितार्बुदम् ॥

अर्थ–वातादि किसी दोषसे सिरास्थरक्त भीतरही भीतरसे संकुचित होकर पकउठताहै, यह पकी हुई सूजन फूलकर मांस के अंकुरों से उपचित मांस का पिण्डासा होजाता है, और इसमें स्राव होने लगता है । बढने पर इसमें से जल्दी २ अधिक स्राव होने लगता है, यही रक्तार्बुद कहलाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्बुद में साध्यासाध्य विचार।

तेष्वसृङ्मांसजेवर्ज्येचत्वार्यन्यानिसाधयेत्।

अर्थ इन छः प्रकार के अर्बुदों में से रक्तज और मांसज असाध्य होते हैं, शेष सब साध्य होते हैं।

श्लीपद के लक्षण।

ग्रस्थिता वंक्षणोर्वादिमधःकायं कफोल्वणाः
दोषा मांसासृगाः पादौ कालेमाश्रित्य कुर्वते
शनैः शनैर्घनं शोफं श्लीपदं तत्प्रचक्षते॥

अर्थ-कफकी अधिकता वाले वातादि दोष मांस और रक्त में आश्रित होकर वंक्षण और ऊरुओं द्वारा नीचे के देह में गमन करते हैं, अथवा काल पाकर पैरों में पहुंच कर धीरे २ घन शोथ उत्पन्न कर देते हैं। इसीको श्लीपद कहते हैं।

वातज श्लीपद।

परिस्फोटयुतं कृष्णमनिमित्तरुजं खरम्।
रूक्षं च वातात्

अर्थ-वातज श्लीपद में देहका चमडा फटा हुआ सा होजाता है, इसका कृष्णवर्ण होता है, इसमें बिना कारण ही वेदना होने लगती है, यह हाथ लगाने से खरदरा और रूखा होता है।

पित्तज और कफज श्लीपद।

पित्तात्तु पीतं दाहज्वरान्वितम्॥
कफादुदग्निग्धमरुक्चितं मांसांकुरैर्बृहत्।

अर्थ-पित्तज श्लीपद पीतवर्ण, दाह और ज्वर युक्त होता है। कफज श्लीपद भारी, स्निग्ध, वेदनारहित, मांसांकुरों से व्याप्त और बडा होता है।

श्लीपद का साध्यासाध्य विचार।

तस्यजेद्वत्सरातीतं सुमहत्सु परिस्रुति॥

अर्थ-जिस श्लीपद को बरस दिन बीत गया हो, जो बडा और स्रावयुक्त हो वह असाध्य होता है।

हाथ में श्लीपद।

पाणिनासौष्ठकर्णेषु यदंस्येके तु पादवत्।
श्लीपदं जायते तच्चदेशेऽनूपे भृशं भृशम्॥

अर्थ-कोई कोई कहते हैं कि पांवों की तरह हाथ नाक ओष्ठ और कानोंमें भी श्लीपद होता है। यह आनूप देश में अधिकतर होता है।

गंडमाला की उत्पत्ति।

मेदस्थाः कंठमन्याक्षकक्षावंक्षणगा मलाः।
सवर्णान् कठिनान् स्निग्धान्
वार्ताकामलकाकृतीन्॥ २३॥
अवगाढान् बहून् गंडांश्चिरपाकांश्च कुर्वते
पच्यंतेऽल्परुजस्त्वन्ये स्रवंत्यन्येतिकंडुराः॥
नश्यंत्यन्ये भवंत्येते दीर्घकालानुबंधिनः।
गंडमालापची चेयं पूर्ववेव क्षयवृद्धिभाक्॥

अर्थ-मेदा में स्थित वातादि दोष कंठ, मन्या, अक्ष, कक्षा और वंक्षण में स्थित होकर त्वचा के वर्ण के समान कठोर, स्निग्ध, बेंगन वा आमले के समान आकृति वाले। अवगाढ, बहुत और देर में पकने वाले गंडों को उत्पन्न करदेते हैं। इसीको गंडमाला कहते हैं। इनमें से कितनों ही में दर्द होकर पकाव पैदा होजाता है कितने झरने लगते हैं और कितनों ही में खुजली चलती है। कितने ही होकर मिटजाते हैं और कितने ही नवीन पैदा होजाते हैं। इसी को अपची भी बोलते हैं, यह दूजकी तरह घटती बढती है और बहुत काल तक रहती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असाध्य गंडमाला।

तांत्यजेत्सज्वरच्छर्दिपार्श्वरुक्कासपीनसाम्

अर्थ–जिस गंडमाला में ज्वर, वमन, पसली में वेदना, खांसी और पीनस होती है वह असाध्य होती है।

नाडीविज्ञान।

अभेदात्पक्वशोफस्य व्रणे चापथ्यसेविनः॥
अनुप्रविश्य मांसादीन् दूरं पूयोऽभिधावति
गतिः सा दूरगमनान्नाडी नाडीव संस्रुतेः॥
नाड्येकानृजुरन्येषां सैवानेकगतिर्गतिः।

अर्थ–पकेहुए शोफ में चीरा न लगाया जाय, वा घाव होने पर रोगी अपथ्य सेवन करे तो राध बाहर नहीं निकलसकती है। और भीतर ही मांसादिक में प्रविष्ट होकर दूरतक चलीजाती है। दूरतक जाने के कारण इसे गति कहते हैं और नल के छेद की तरह इसमें से राध निकलती है, इससे इसे नाडी भी कहते हैं। अन्य ग्रंथकारों का यह मत है कि यदि नाडी वक्र और एकही हो तो उसे नाडी कहते हैं और यदि अनेक छिद्रोंद्वारा गति हो तो इसे गति कहते हैं।

नाडी के भेद।

सा दोषैः पृथगेकस्थैः शल्यहेतुश्च पंचमी॥

अर्थ–नाडी के पांचभेद होते हैं, यथा–वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातज और शल्यज।

वातजनाडी के लक्षण।

वातात्सरुक्सूक्ष्ममुखी विवर्णा फेनिलोद्गमा
स्रवत्यभ्यधिकं रात्रौ

अर्थ–वातजनाडी वेदनान्वित, सूक्ष्ममुख, विवर्ण, झागदार और पूयस्रावी होती है। इसमें से रातके समय अधिक स्राव होता है।

पित्तजनाडी के लक्षण।

पित्तात्तृड्ज्वरदाहकृत्॥ २९॥
पीतोष्णपूतिपूयास्रादिवा चाऽतिनिषिंचति।

अर्थ–पित्तजनाडी तृषा, ज्वर और दाह उत्पन्न करती है। इसका वर्ण पीला होता है इसमें से गरम दुर्गंधयुक्त राध निकला करती है। इसमें से दिनके समय अधिक राध निकला करती है।

कफजनाडी के लक्षण।

घनपिच्छिलसंस्रावा कंडूला कठिना कफात्
निशि चाऽभ्यधिकक्लेदा

अर्थ–कफजनाडी में गाढा और गिलगिला स्राव होता है, इसमें खुजली चला करती है और कठोरभी होता है। रातके समय इसमें से अधिक क्लेदता निकला करती है।

त्रिदोषज नाडी।

सर्वैः सर्वाकृतिं त्यजेत्।

अर्थ–त्रिदोषनाडी में वातादि तीनों दोषों के कहे हुए लक्षण मिले हुए दिखलाई देते हैं। त्रिदोषनाडीरोग असाध्य होता है।

शल्यजनाडी।

अंतःस्थितं शल्यमनाहृतं तु
करोति नाडी वहते च साऽस्य।
फेनानुविद्धं तनुमल्पमुष्णं
सास्रं च पूयं सरुजं च नित्यम्॥ ३१॥

अर्थ–भीतर स्थित हुआ शल्य बाहर न निकलसका हो वह व्रणमें नाडी उत्पन्न करदेता है। इस शल्यजनाडीमें से पतली,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गरम, झागदार, वेदनान्वित, थोडी, रुधिर मिली हुई राध निकला करती है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडी विज्ञानं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतो ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब हम यहां से ग्रंथि, अर्बुद, श्लीपद, अपची, और नाडीप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

अपक्व ग्रंथिकी चिकित्सा।

ग्रंथिष्वामेषु कर्तव्या यथास्वंशोफवत्क्रिया

अर्थ—जो गांठ पकी न हो तो सूजनके समान चिकित्सा करनी चाहिये।

ग्रंथिपर स्नेहादि।

बृहतीचित्रकव्याघ्रीकणासिद्धेन सर्पिषा १ स्नेहयेच्छुद्धिकामं च तीक्ष्णैःशुद्धस्यलेपनम्

अर्थ—बडी कटेरी, चीता, छोटी कटेरी और पीपल इनके साथ सिद्ध किया हुआ घी प्रयोग करके रोगी की शुद्धि करे फिर तीक्ष्ण द्रव्यों का लेप करे।

ग्रंथिका स्वेदनादि।

संस्वेद्य बहुशोग्रंथिं विमृद्नीयात् पुनः पुनः

अर्थ—ग्रंथिको बहुत बार स्वेदित करके उसको अंगूठे से मर्दन करे।

अपक्व ग्रंथिका छेदनादि।

एष वाते विशेषेण क्रमः पित्तास्रजे पुनः। जलौकसो हिमं सर्वं कफजे वातिकोविधिः

अर्थ—ऊपर कहा हुआ चिकित्साक्रम वातज ग्रंथिमें विशेष उपयोगी है। पित्तरक्तज ग्रंथिमें जोक लगाकर रक्तको निकाल डाले और सदा ठंडे लेपों का प्रयोग करता रहै। कफज ग्रंथिमें वातज ग्रंथिके सदृश चिकित्सा करना चाहिये।

ग्रंथिमें अग्नि कर्म।

तथाप्यपक्के छित्त्वैनं स्थिते रक्तेऽग्निना दहेत् साध्वशेषं सशेषो हि पुनराप्यायते ध्रुवम्

अर्थ—जो उक्त उपायों से ग्रंथि न पके तो इसको जडसे काटकर रुधिर के स्थित रहने पर अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये। ग्रंथिको शेष न रखना चाहिये क्योंकि शेष रहने से ग्रंथि निश्चय फिर बढ जाती है।

मांसज ग्रंथि।

मांसव्रणोद्भवौ ग्रंथी पाटयेदेवमेव च।

अर्थ—मांसज और व्रणज ग्रंथियों को भी उक्त रीति से काटना चाहिये।

मेदोज ग्रंथिका उपाय।

कार्यं मेदोभवेष्येतत्तत्तैः फालाविभिश्च तम् प्रमृद्यात्तिलदिग्धेन छन्नं द्विगुणवाससा। शस्त्रेण पाटयित्वा वा दहेन्मेदसि सूक्ष्मते।

अर्थ—मेदसे उत्पन्न हुई ग्रंथि में भी इसी प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् ग्रंथि को काटकर तिलके कल्क का लेप करदे। फिर इस पर दुहरा कपडा ढककर लोहे का फलक गरम कर करके उस पर फेरै, अथवा मेदको निःशेष काटकर अग्नि से दग्ध कर देवै।

सिराग्रंथि की चिकित्सा।

सिराग्रंथौ नवे पेयं तैलं सार्द्धचरं तथा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपनाहोनिलहरैर्यैस्तिकर्मसिराव्यधः ७

अर्थ--थोडे दिन की ग्रंथि में रोगी को साहचर का तेल पान करना चाहिये । इस में वातनाशक तेलों का उपनाह वस्तिकर्म तथा सिराव्यध भी हितकारी हैं ।

अर्बुद की चिकित्सा ।

अर्बुदे ग्रंथिवत् कुर्याद्व्रणयेत्स्वंसुतरां हितम्

अर्थ--अर्बुद रोग में सब प्रकार से ग्रंथि के समान चिकित्सा करना चाहिये ।

वातज श्लीपद का उपाय ।

श्लीपदेऽनिलजेविध्येत्स्निग्धस्विन्नोपनाहिते
सिरामुपरि गुल्फस्य द्व्यंगुले पाययेच्च तम्
मासमेरंडजं तैलं गोमूत्रेण समन्वितम् ।
जीर्णे जीर्णाश्नमश्नीयाच्छुंठीशृतपयोन्वितम्
त्रैवृतं वा पिबेत्त्रैवमशांतावग्निना दहेत् १०
गुल्फस्याधः सिरामोक्षः

अर्थ-वातज श्लीपद में स्नेह द्वारा स्निग्ध स्वेद द्वारा स्विन्न और उपनाह द्वारा उपनाहित करके टकनेसे दो अँगुल ऊपर फस्द खोलदे । और उस रोगी को एक महिने तक गोमूत्र में अरण्ड का तेल मिलाकर पान करावे । तेल के पचजाने पर पुराने शाली चांवलों का भात सोंठ डालकर औटाये हुए दूध के साथ सेवन करावे । अथवा त्रैवृत घृत का पान करावे, इन उपायों से भी शांत न होने पर अग्नि से दग्ध करै और टकने के नीचे फस्द खोले ।

पित्तज श्लीपद की चिकित्सा ।

पित्ते सर्वं च पित्तजित् ।

अर्थ-पित्तज श्लीपद में सब प्रकार की पित्तनाशनी क्रिया करना हितकारक है ।

कफज श्लीपद की चिकित्सा (

सिरामंगुष्ठके विध्येत्कफजे शीलयेद्यवान्
सक्षौद्राणि कषायाणि वर्धमानास्तथाभयाः
लिंपेत्सर्षपवार्ताकीमूलाभ्यां धान्ययाथवा

अर्थ-कफज श्लीपद में अंगूठे की फस्द खोलकर रोगी को जौका अन्न खानेको दे, इसमें शहत मिले हुए कषायगुण युक्त द्रव्य हितकारी होते हैं । इसमें बर्धमान हरीतकी का सेवन हितहै । इसमें सरसों और बेंगन की जड़ का लेप, अथवा जवासे का लेप करना चाहिये ।

अपची की चिकित्सा ।

ऊर्ध्वाधः शोधनं पेयमपच्यांसाधितंघृतम्
दंतीद्रवंतीत्रिवृताजालिनीदेवदालिभिः १३
शीलयेत्कफमेदोघ्नं धूमगंडूषनावनम् ।
सिरयाऽपहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेणसार्कजम् १४

अर्थ-अपची रोग में वमन विरेचन के द्वारा ऊपर और नीचे के अंगों का शोधन करके दन्ती, द्रवंती, निसोथ, कोषातकी (कडवी तोरई) और देवदाली इन सब द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ घी पान करना चाहिये । कफ मेद नाशक धूप, गण्डूष और नस्यका प्रयोग हितकारी है । नस में नश्तर लगाकर रुधिर निकाले और गोमूत्र में रसौत मिलाकर पान करावे ।

अपक्व ग्रंथियों पर लेप ।

ग्रंथीनपक्वानालिंपेन्नाकुलीपटुनागरैः ।
स्विन्नान् लवणपोटल्या कठिनाननुमर्दयेत्

अर्थ-अपक्व ग्रंथि पर नाकुली, पांशुलवण, और सोंठ का लेप करना चाहिये । कठोर ग्रंथि पर सेंधनमक की पोटली से स्वेदन करके अंगूठे से मर्दन करे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लेप की विधि।

शमीमूलकशिग्रूणां बीजैः सयवसर्षपैः।
लेपः पिष्टोम्लतक्रेण ग्रंथिगंडविलापनः १६

अर्थ--शमी के बीज, सहंजने के बीज, जौ और सरसों इन सब द्रव्यों को खट्टे तक्र में पीसकर लेप करने से ग्रंथि और गण्ड रोग बैठजाते हैं।

पाकोन्मुख ग्रंथि का उपाय।

पाकोन्मुखान्नुतास्रस्यपित्तश्लेष्महरैर्जयेत्
अपक्वानेव चोद्धृत्य क्षाराग्निभ्यामुपाचरेत्

अर्थ--जो ग्रंथि पकने लगगई हो उसका रुधिर निकालकर पित्त कफनाशक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। अपक्व ग्रंथि को शस्त्र से उधृत करके क्षाराग्नि से दग्ध करदेवै।

गंडमाला की चिकित्सा।

काकादनीलांगलिकानहिकोशुंडिकीफलैः।
जीमूतबीजकर्कोटीविशालाकृतवेधनैः १८
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत्।
प्रस्थं कारंजतैलस्य निर्गुंडीस्वरसाढकैः।
अनेन मालागंडानां चिरजा पूयवाहिनी।
सिध्यत्यसाध्यकल्पाऽपिपानाभ्यंजननावनैः

अर्थ--काकादनी, कल्हारी, तुंडकी, नागरमोथा, ककडी के बीज, इन्द्रायण, कटु तोरई, और पाठा प्रत्येक आधा पल, विष एक कर्ष इनका कल्क करके एक प्रस्थ कंजे के तेल, और एक आढक निर्गुंडी के रसके साथ पकावै। इस तेलको पान, अभ्यंजन और नस्य द्वारा सेवन करने से बहुत दिनकी गंडमाला भी जिससे राध बहने लगगई हो और असाध्य भी हो चुकी हो नष्ट होजाती है।

अपची पर तेल।

तैलं लांगलिकीकंदकल्कपादे चतुर्गुणे।
निर्गुंडीस्वरसे पक्वं नस्याद्यैरपचीप्रणुत् २१

अर्थ--कल्हारी की जड का कल्क एक भाग, तेल चार भाग, निर्गुंडी का रस चार भाग। इनको पाकविधि से पकावै। फिर नस्यद्वारा इस तेल का सेवन करनेसे अपची रोग जाता रहता है।

कुष्ठादि नाशक तैल।

भद्रश्रीदारुमरिचहरिद्राश्रिवृद्घनैः।
मनःशिलालनलदविशालाकरवीरकैः २२
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च।
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् २३
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति।
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठं दुष्टनाडीव्रणापचीः।

अर्थ--चंदन, देवदारु, कालीमिरच, हलदी, दारुहलदी, निसोथ, मोथा, मनसिल, हरताल, बालछड, इन्द्रायण, कनेर प्रत्येक एक पल विष आधा पल इन सबको गोमूत्र में घोट डाले। इस कल्क के साथ ब्राह्मी का रस, आक का दूध, और गोबर का रस मिलाकर एक प्रस्थ सरसों का तेल पकावै। पान, अभ्यंजन और नस्य द्वारा इस तेलका प्रयोग करने से कुष्ठ, दुष्टनाडी व्रण और अपची रोग जाते रहते हैं।

अपचीनाशक अन्य तैल।

वचाहरीतकीलाक्षाकटुरोहिणिचंदनैः।
तैलं प्रसाधितं पीतं समूलामपचीं जयेत्।

अर्थ--वच, हरड, लाख, कुटकी और चंदन इनके कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तेल पान करने से अपची जड से जाती रहती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य प्रयोग ।

शरपुंखोद्भवं मूलं पिष्टं तंदुलवारिणा ।
नस्याल्लेपाच्च दुष्टास्रपचीविषजंतुजित् ।

अर्थ-शरपुंखा (सरफोंका) की जड तंदुलोदक के साथ पीसकर नस्य और प्रलेप द्वारा उपयोग में लाने से दुष्ट व्रण, अपची, विषरोग और कीडे जाते रहते हैं।

अन्य तैल ।

मूलैरुत्तमकारुण्याःपीलुवर्ण्याःसहाचरात् ।
सरोध्राभयवत्सादनी शता ह्वाह्वीपिचारुभिः ।
तैलं क्षीरसमं सिद्धं नस्येऽभ्यंगे च पूजितम्

अर्थ-करंज की जड, पालु की जड, सहचरी, लोध, हरड, मुलहटी, सौंफ,चीते की जड और देवदारु, इनका कल्क डाल कर समान भाग दूध और तेल मिलाकर पाकविधि के अनुसार तेल को पकाकर नस्य और अभ्यंग द्वारा प्रयोग में लाना चाहिये ॥

तेलका लेप ।

गोऽश्वजाश्वखुरादग्धाकटुतैलेन लेपनम् ।
वैगुदेन तु कृष्णाहिर्वायसो वा स्वयं मृतः

अर्थ-गौ, भेंढा और घोडे के खुर जलाकर राख करले । इस राखको कडवे तेल में मिलाकर अपची पर लेप करे । अथवा काला सर्प या अपने आप मराहुआ कौआ इनकी राखको इंगुदी के तेल में मिलाकर लेप करने से भी विशेष लाभ होता है ।

दाह विधि ।

इत्यशांतौ गवस्यान्यपार्श्वजंघासमाश्रितम्
बस्तेरूर्ध्वमधस्ताद्वा मेदो हृत्वाग्निना दहेत्

अर्थ-इन उपायों के करने पर भी रोग शान्त न हो तो जिधर रोग हो उसके दूसरी ओर पसली और जांघ के आश्रित बस्तिप्रदेश के ऊपर या नीचे मेद को काट कर उस स्थानको अग्नि से दग्ध करदे ।

निमिमुनि का मत ।

स्थितस्योर्ध्वं पदं भित्त्वा तन्मानेन च पार्ष्णितः
तत ऊर्ध्वं हरेत् ग्रंथीनित्याह भगवान्निमिः ।

अर्थ-इस विषय में निमि मुनिका यह मत है कि रोगी को बैठाकर उसके ऊर्ध्व पद को भेदकर एडी को भी उसी प्रमाण से भेदकर ऊपर की संपूर्ण गांठको निकाल देना चाहिये ।

सुश्रुत का मत ।

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चांगुलानि
मुक्त्वेंद्रवस्तिं च गदान्यपार्श्वे ।
विदार्यमत्स्यांडनिभानि मध्या-
ज्जालानि कर्षेदिति सुश्रुतोक्तिः ॥ ३१ ॥

अर्थ-इन्द्रवस्ति को छोडकर एडी के सन्मुख बारह अंगुल भेदन करके रोग की दूसरी ओर को विदीर्ण करके बीच में से मछली के अंड के सदृश सब जलको खींचले यह सुश्रुत का मत है ।

अन्य आचार्यों का मत ।

आगुल्फकर्णात्सुमितस्य जंतो-
स्तस्याष्टभागं खुडकाद्विभज्य ।
घ्राणार्जवेधः सुरराजवस्ते-
र्भित्त्वाक्षमार्धं त्वपरे वदंति ॥ ३२ ॥

अर्थ-अन्य आचार्यों का यह मतहै कि कान से टकने तक जितना देहका परिमाण है उसके नौ भाग करके आठ भाग त्याग देवे । और इन्द्रवस्ति से नीचे गुल्फ तक नवें भाग को विदीर्ण करदे ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातनाडीमें शस्त्र प्रयोग।

उपनाह्यानिलान्नाडीं पाटितां साधु लेपयेत्।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तैलैः पिष्टैः ससैंधवैः।

अर्थ--वातज नाडीमें उपनाह देकर अच्छी तरह से चीर देना चाहिये। पश्चात् ओंगा और मेनफल को तेल और सेंधेनमक के साथ पीसकर नाडी पर लेप कर देवै।

पित्तज नाडी।

पैत्तीं तु तिलमंजिष्ठानागदंतीशिलाह्वयैः।

अर्थ--पित्तज नाडीपर तिल, मजीठ, नागदंती और शिलाजीत का लेप करना चाहिये परन्तु प्रथम इसको उक्त रीति से शस्त्रद्वारा चीर देना चाहिये।

कफज नाड़ी॥

श्लैष्मिकीं तिलसौराष्ट्रीनिकुंभारिष्टसैंधवैः।

अर्थ--कफज नाड़ी को पूर्ववत् पाटित करके उस पर तिल, मुलतानी मिट्टी, दन्ती, नीम और सेंधानमक इनका लेप करना चाहिये।

शल्यजा नाड़ी

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम्

अर्थ--शल्यजा नाड़ी को पाटित और शोधित कर के उस पर तिल शहत और घी का लेप करे।

छेदनायोग्य नाडी का दारण

अशस्त्रकृत्यामेषिण्या भित्त्वांते सम्यगोषिताम्
क्षारपूर्तेन सूत्रेण बहुशो दारयेद् गतिम्।

अर्थ--जो नाडी शस्त्र से पाटन के योग्य न हो तो उस में एषणी नाम शस्त्र प्रविष्ट कर के नाडी के भीतर के भागों को विद्ध कर के छिद्र के मार्ग से नाली के बीच में बार बार क्षार सूत्र का प्रयोग कर के उस को विदीर्ण करदे।

नाडी का उपाय

व्रणेषु दुष्टसूक्ष्मास्यगंभीरादिषु साधनम्॥
या वर्त्यो यानितैलानि तन्नाडीष्वपि शस्यते

अर्थ--दुष्ट व्रण में, सूक्ष्म मुख वाले व्रण में, गंभीरादि गुणों से युक्त व्रण में, जो जो शोधन के उपाय, वर्ति प्रयोग तथा जो जो तेल कहे गये हैं, वे सब नाड़ीव्रण में भी हितकारी होते हैं।

नाडी व्रण पर लेप।

पिष्टं चंचुफलं लेपान्नाडीव्रणहरं परम॥

अर्थ--चंचु के बीजों को पीस कर लेप करना नाडीव्रण में परमोपयोगी है।

नाडी व्रण पर कल्क।

घोंटाफलत्वग्लवणंसलाक्षं
बूकस्य पत्रं वनितापयश्च।
स्नुगर्कदुग्धान्वित एष कल्को
वर्तीकृतो हंत्यचिरेण नाडीम्॥ ३८॥

अर्थ--सुपारी के वृक्ष की छाल, सेंधा नमक, लाख, अरंड के पत्ते, प्रियंगु, स्त्रीका दूध, सेंहुंड का दूध, आक का दूध इन को पीस कर वर्ती बनाले इस बत्ती को प्रयोग करने से नाडी व्रणशीघ्र प्रशमित हो जाता है।

गतिनाशक उपाय।

सामुद्रसौवर्चलसिंधुजन्म
सुपक्वघोंटाफलवेश्मधूमाः।
आम्रातगायत्रिजपल्लवाश्च
कदंकटेर्वावथ चेतकी च॥ ३९॥
कल्केऽभ्यंगे चूर्णे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वर्त्ती चैतेषु सेव्यमानेषु ।
अगतिरिव नश्यति गति-
श्चपला चपलेषु भूतिरिव ॥ ४० ॥"

अर्थ—खारी नमक, काला नमक, सेंधा नमक, पकी हुई सुपारी, घरका धूंआं, अंवाडा, खैर के पत्ते, हलदी, दारुहलदी, और हरड इन सब द्रव्यों का कल्क, अभ्यंग, चूर्ण और वर्ति रूप से प्रयोग करने पर गति रोग ऐसे नष्ट हो जाता है मानो कभी हुआ ही नहीं था । जैसे चपल मनुष्यों की चपलता धनका शीघ्र नाश कर देती है, तैसे ही उक्त औषध गति का शीघ्र नाश कर देती है ।

इति अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायांउत्तरस्थाने ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापची नाड़ीप्रतिषधो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः क्षुद्ररोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम यहां से क्षुद्ररोग विज्ञानीय अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अजगल्लिका के लक्षण ।

"स्निग्धास्वर्णाग्रथिता नीरुजा मुद्गसंमिता पिटिका कफवाताभ्यां बालानामजगल्लिका

अर्थ-वातकफ के प्रकोप से बालकों के एक प्रकार की पिटका होती हैं उन्हें अजगल्लिका कहते हैं । ये स्निग्ध, त्वचा के समान वर्णवाली, गांठदार, वेदनारहित और मूंगके समान होती हैं ।

यवप्रख्या ।

यवप्रख्यायवप्रख्या ताभ्यां मांसाश्रिताघना

अर्थ—जो फुंसियां वातकफ के प्रकोप से मांसका आश्रय लेकर जौके समान पैदा होती हैं और सघन भी होती हैं, उन्हें यवप्रख्या कहते हैं ।

कच्छपी पिटिका ।

अवक्काश्चालजीवृत्तास्तोकपूया घनोन्नताः ग्रंथयः पंच वा षड्वा कच्छपी कच्छपोन्नता

अर्थ—जो पिटिका बिनामुखवाली, अलजी के समान, गोलाकार, थोडी राध से युक्त, घन और ऊंचे को उठी हुई होती है और पांच छः इकट्ठी पैदा होकर कछुए की पीठ की तरह ऊंची होजाती है उन्हें कच्छपी कहते हैं ।

पनसिका के लक्षण ।

कर्णस्योर्ध्वं समंताद्वा पिटिका कठिनोग्ररुक् शालूकाभा पनसिका

अर्थ—कानके ऊपर अथवा चारों ओर कठोर और अत्यन्त वेदना से युक्त शालूक के सदृश जो पिटिका होती हैं, वे पनसिका कहलाती है ।

पाषाणगर्दभ ।

शोफस्त्वल्परुजः स्थिरः ।
हनुसंधिसमुद्भूतास्ताभ्यांपाषाणगर्दभः

अर्थ—वातकफके प्रकोप से हनुकी संधियोंमें जो अल्पवेदनायुक्त स्थिर सूजन पैदा होजाती है उसे पाषाणगर्दभ कहते हैं

मुखदूषिका के लक्षण ।

शाल्मलीकंटकाकाराः पिटिकाः सरुजोघनाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मेदोगर्भा मुखे यूनां ताभ्यां च मुखदूषिकाः

अर्थ–सेंमर के कांटोंके आकारवाली वेदनान्वित ठोस फुंसियां जो युवापुरुषों के मुखपर वातकफके कारण मेदोगर्भवाली हो जाती है,उन्हें मुखदूषिका वा मुहांसे कहतेहैं।

पद्मकंटका के लक्षण।

ते पद्मकंटका ज्ञेया यैः पद्ममिव कंटकैः।
चीयते नीरुजैःश्वेतैः शरीरं कफवातजैः

अर्थ–जो श्वेतवर्ण और वेदनारहित फुंसियां कफवात से उत्पन्न होकर कमल के कांटों की तरह शरीर में व्याप्त होजाती हैं, उन्हें पद्मकंटका कहते हैं।

विवृता पिटिका।

पित्तेन पिटिका वृत्ता पक्वोदुंबरसन्निभा।
महादाहज्वरकरी विवृता विवृताननाः ॥ ७ ॥

अर्थ–जो फुंसियां पित्तसे उत्पन्न होकर गोलाकार, पकेहुए गूलर की आकृतिवाली अत्यन्त जलन और ज्वरवाली और खुले हुए मुखवाली होती हैं,उन्हें विवृता कहते हैं।

मसूरिका के लक्षण।

गात्रेष्वंतश्च वक्त्रस्य दाहज्वररुजान्विताः
मसूरमात्रास्तद्वर्णास्तत्संज्ञाः पिटिका घनाः

अर्थ–शरीर में और मुखके भीतर जो दाह, ज्वर और वेदनासे अन्वित मसूर के तुल्य और वैसेही आकार की जो फुंसियां होती हैं, उन्हें मसूरिका कहते हैं।

विस्फोटा के लक्षण।

ततः कष्टतराः स्फोटा विस्फोटाख्या महारुजाः।

अर्थ–जो फुंसियां मसूरका से अधिक कष्टदायक होती हैं और जिनमें अत्यन्त वेदनावाले फोडे पैदा हो जाते हैं, उन्हें विस्फोटक कहते हैं।

विद्धा के लक्षण।

या पद्मकर्णिकाकारा पिटिका पिटिका चिता
सा विद्धा वातपित्ताभ्यां

अर्थ–जो फुंसियां कमल की कर्णिका के सदृश बहुत सी अन्य फुंसियों से व्याप्त होती हैं उनको वातपित्त से विद्ध समझनी चाहिये।

गर्दभी पिटिका।

ताभ्यामेव च गर्दभी।
मंडला विपुलोत्सन्ना सरागपिटिकाचिता।

अर्थ–इन्हीं वातपित्त के प्रयोगसे गर्दभी नामक फुंसियां होती हैं। ये मंडलाकार, विपुल, उत्सन्न और लोहितवर्ण पिटिकाओं से व्याप्त होती हैं।

गर्दभी कक्षा।

कक्षेति कक्षासन्नेषु प्रायो देशेषु सानिलात्

अर्थ–कक्षा अर्थात् बगल के निकट जो गर्दभीकक्षा नामक फुंसियां होती हैं, उन्हें कक्षा कहते हैं, ये वातसे उत्पन्न हुआ करती हैं। इसे लोकमें कखराई कहते हैं।

पित्तज कक्षा।

पित्ताद्भवंति पिटिकाः सूक्ष्मा लाजोपमा घना

अर्थ–बगल में जो छोटी छोटी फुंसियां धानकी खीलके सदृश और कठोर होती हैं ये पित्तज पिटिका कहलाती हैं।

गंधनामा पिटिका।

तादृशी महती त्वेका गंधनामेति कीर्तिता।

अर्थ–ऊपर के लक्षणों से युक्त बडी पिटिकाओं को गंधनाम कहते हैं।

राजिका के लक्षण।

घर्मस्वेदपरीतेऽगे पिटिकाः सरुजो घनाः।
राजिकावर्णसंस्थानप्रमाणा राजिकाह्वयाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-धूप और पसीनों के कारण देहमें जो राई के समान आकृति और वर्णवाली वेदनान्वित ठोस फुंसियां हो जाती हैं उन्हें राजिका कहते हैं ।

जालगर्दभ पिटिका ।

दोषैः पित्तोल्बणैर्जैर्वैर्विसर्पतिविसर्पवत्
शोफोऽपाकस्तनुस्ताम्रो ज्वरकृज्जालगर्दभः

अर्थ–पित्ताधिक्य वातादि दोषोंके कारण विसर्प की तरह फैलनेवाली पतली और ताम्रवर्ण सूजन पैदा हो जाती है, यह पकती नहीं है और ज्वर पैदा कर देती है, इसे जालगर्दभ कहते हैं ।

अग्निरोहिणी के लक्षण ।

मलैःपित्तोल्बणैःस्फोटाज्वरिणोमांसदारणाः
कक्षाभागेषुजायंतेयेऽग्न्याभाःखाऽग्निरोहिणी
पंचाहात्सप्तरात्राद्वा पक्षाद्वा हंति जीवितम्

अर्थ–पित्ताधिक्य वातादि दोषों के कारण बगल में ज्वर पैदा करने वाली, मांसको विदीर्ण करनेवाली अग्नि के समान तीक्ष्ण जो फुंसियां हो जाती हैं उन्हें अग्निरोहिणी कहते हैं । ये पांच वा सात वा पन्द्रह दिन में रोगी का प्राणनाश कर देती हैं ।

इरिवेल्लिका ।

त्रिलिंगा पिटिकावृत्ता जत्रूर्ध्वमिरिवेल्लिका

अर्थ–जत्रु अर्थात् गर्दन के जोतोंसे ऊपर होनेवाली तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त जो गोलाकार फुंसियां होती है, उन्हें इरवेल्लिका कहते हैं ।

विदारी पिटिका ।

विदारीकंदकठिना विदारी कक्षवंक्षणे ।

अर्थ--बगल और वंक्षण (जंघाकी संधि) में जो विदारीकंद के समान कड़ी फुंसियां होती हैं उन्हें विदारी कहते हैं ।

शर्करार्बुद के लक्षण ।

मेदोऽनिलकफैर्ग्रंथिः स्नायुमांससिराश्रयैः ।
भिन्नो घसाज्यमध्वाभस्रवेत्सश्लेष्मणोऽनिलः
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करामुपपादयेत्
दुर्गंधं रुधिरं क्लिन्नं नानावर्णं ततो मलाः ।
तां स्रावयंति निचितां विद्यात्तच्छर्करार्बुदम्

अर्थ--मेद, वायु और कफ स्नायु, मांस और सिराओं का आश्रय लेकर गांठ पैदा कर देते हैं । जब यह गांठ फट जाती है तब इसमें से चर्बी, घी और मधुके समान स्राव होने लगता है । उस समय वायु कुपित होकर मांसको शुष्क करता हुआ शर्करा को उत्पन्न करता है । तदनंतर वातादि दोष इस संचित शर्करा से दुर्गंधयुक्त, रुधिर और अनेक प्रकार के क्लेदका स्राव करते हैं । इसको शर्करार्बुद कहते हैं ।

वल्मीक पिटिका ।

पाणिपादतले संधौ जत्रूर्ध्वं वोपचीयते ।
वल्मीकवच्छनैर्ग्रंथिस्तद्वद्व्रणमुखैर्मुखैः ।
रुग्दाहकंडूक्लेदाढ्यो वल्मीकोऽसौसमस्तजः

अर्थ--हथेली में, पांवके तलुए में, संधियों में अथवा जत्रुसे ऊपर जो गांठ पैदा होकर सांपकी बांबी के तुल्य धीरे धीरे बहुत से छोटे छोटे छिद्रोंसे युक्त हो जाती हैं । उन्हें वल्मीक कहते हैं । वल्मीक में अत्यन्त वेदना, दाह, खुजली, और क्लेद उत्पन्न होता है । यह व्याधि त्रिदोष से पैदा होती है ।

कदर के लक्षण ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत्

अर्थ--पांवके तलुओं में शर्करादिद्वारा मथित वा कांटे आदि के कारण घाव होनेपर कील के समान ऊंची गांठ हो जाय उसे कदर-रोग कहते हैं।

रुद्धगुद के लक्षण।

वेगसंधारणाद्वायुरपानोऽपानसंश्रयम्।
अणूकरोति बाह्यान्तर्मार्गमस्य ततः शकृत्।
कृच्छ्रान्निर्गच्छति व्याधिरयं रुद्धगुदो मतः।

अर्थ- मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से प्रकुपित अपान वायु अपान का आश्रय लेकर गुदा के छिद्र को भीतर और बाहर से बहुत छोटा कर देती है, इससे मल बड़े कष्ट से होने लगता है, ऐसी व्याधि को रुद्धगुद कहते हैं॥

अक्षतरोग के लक्षण।

कुर्यात्पित्तानिलः पाकं नखमांसे सरुग्ज्वरम्
चिप्यमक्षतरोगं च विद्यादुपनखं च तम्।

अर्थ--वात पित्त कुपित होकर नख के मांसको पका देते हैं जिससे वेदना और ज्वर पैदा होजाते हैं, इस रोग को चिप्य, अक्षत वा उपनख रोग कहते हैं॥

कुनख के लक्षण।

कृष्णोऽभिघाताद्रूक्षश्च खरश्च कुनखो नखः

अर्थ--चोट लगने से जो नख काला, रूक्ष और खरदरा होजाता है, उसे कुनख कहते हैं।

अलस के लक्षण।

पुष्पकैर्मांससंस्पर्शात्कंडूक्लेदान्वितांतराः।
अंगुल्योऽलसमित्याहुः

अर्थ--बिगड़ी हुई कीचड़ के स्पर्श से जो उँगलियों में खाज और क्लेद होने लगता है उसे अलसक कहते हैं।

तिलकालक के लक्षण।

तिलाभांस्तिलकालकान्॥ २५॥
कृष्णानवेदनांस्त्वक्स्थान्

अर्थ--त्वचा के ऊपर काले तिल के समान वेदना से रहित जो चिन्ह पैदा हो जाता है उसे तिलकालक वा तिल कहतेहैं।

माष के लक्षण।

माषांस्तानेव चोन्नतान्।

अर्थ--जब तिल ऊंचे होजाते हैं, तब इन्हें माष कहते हैं।

चर्मकील के लक्षण।

माषेभ्यस्तून्नततरांश्चर्मकीलान्-
सितासितान्॥ २६॥

अर्थ--जो उरद से भी बहुत ऊंचे हो जाते हैं, उन्हें चर्मकील वा मस्से कहते हैं, ये काले और सफेद होते हैं।

जतुमणि के लक्षण।

तथाविधौ जतुमणिः सहजो लोहितस्तु सः

अर्थ--ऊपर के लक्षणों से युक्त जो जन्म से ही होता है और जिसका वर्ण लाल होता है उस जतुमणि कहते हैं। यह एक प्रकार का ल्हसन होता है।

लांछन के लक्षण।

कृष्णं सितं वा सहजं मंडलं लांछनं समम्॥

अर्थ--काले और सफेद गोलाकार चिन्ह जो जन्मके साथही पैदा होते हैं उन्हें लांछन वा ल्हसन कहते हैं।

व्यंग और नीलिका।

शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुखे तनु।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्यामलं मंडलं व्यंगं वक्त्राद्यन्यत्र नीलिका ॥

अर्थ–शोक और क्रोध से कुपित हुए वातपित्त मुखपर पतले पतले, काले मंडल से पैदा करदेते हैं, इन्हें व्यंग वा झांई कहते हैं । मुखसे अन्यत्र होनेपर इसेही नीलिका कहते हैं ।

वातादि दोषजन्य व्यंगके लक्षण ।

परुषं परुषस्पर्शं व्यंगं श्यावं च मारुतात् ।
पित्तात्ताम्रान्तमानीलश्वेतान्तंकंडुमत्कफात्
रक्तादुक्तांतमाताम्रं शोथं चिमचिमायते ।

अर्थ–वातसे उत्पन्न हुआ व्यंग खराकृति, खरस्पर्श और श्यावर्ण होताहै पित्तज व्यंग ताम्रांत और ईषत् नीलवर्ण होताहै । कफजन्य व्यंगमें खुजली चलती है और रक्तज व्यंगमें रक्तान्त, कुछ तांबेकासा रंग, शोथ और चिमचिमाहट होता है ।

प्रसुप्ति के लक्षण ।

वायुनोदीरितः श्लेष्मात्वचंप्राप्यविशुष्यति ॥
ततस्त्वग्जायते पांडुः क्रमेण च विचेतना ।
अल्पकंडुराविक्लेदा सा प्रसुप्तिःप्रसुप्तितः ॥

अर्थ–वायुसे प्रेरित हुआ कफ त्वचा में पहुंचकर उसे शुष्क करदेता है । इससे त्वचा का रंग पीला पडजाता है और धीरे धीरे इसमें विचेतना होती जाती है । इसमें थोडी २ खुजली चलती है परंतु क्लेद नहीं होता है । त्वचा प्रसुप्त होजाती है, इसीलिये इसे प्रसुप्ति रोग कहते हैं ।

कोठके लक्षण ।

अतस्त्वग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्माग्निनिग्रहैः
मंडलान्यतिकंडूनि रागवंति बहूनि च ॥
उत्कोठः साऽनुबद्धस्तु कोठ इत्यभिधीयते ।

अर्थ–अच्छी तरह से वमन न होने के कारण बाहर को निकलने के लिये उन्मुख हुए कफपित्त तथा अन्नके रुकजाने से बहुत से गोल गोल चकत्ते पैदा होजाते हैं जिनमें अत्यंत खुजली चलती है और ललाई पैदा होजाती है । इन्हें उत्कोठ कहते हैं । जब यह बार बार उठते हैं तब इसे कोठरोग कहते हैं ।

छत्तीस क्षुद्ररोग ।

प्रोक्ताः षट्त्रिंशदित्येते क्षुद्ररोगा विभागशः

अर्थ -इस प्रकार से इन्हें छत्तीस प्रकार के क्षुद्ररोग कहते हैं ॥

इति श्रीअष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने क्षुद्ररोग विज्ञाननामैकत्रिंशोऽध्यायः

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः क्षुद्ररोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहांसे क्षुद्ररोगप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

अजगल्लिका का उपाय ।

विस्रावयेज्जलौकोभिरपक्वामजगल्लिकाम् ।

अर्थ–जो अजगल्लिका पकी न हो तो जोक लगाकर उसका रुधिर निकाल डालै ।

यवप्रख्या का उपाय ।

स्वेदयित्वा यवप्रख्यां विलयाय प्रलेपयेत् ॥
दारुकुष्टमनोहाल्लैः

अर्थ–यवप्रख्या पर स्वेदनकर्म करके उसको बैठाने के लिये दारुहलदी, कूठ, मनसिल और हरताल का लेप करे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाषाणगर्दभ का उपाय।

इत्यपाषाणगर्दभात्।
विधिस्तांश्चाचरेत्पक्वान्

अर्थ--पाषाणगर्दभ तक सब रोगोंकी अर्थात् ग्रंथि, अच्छ, शालूक और पाषाणगर्दभ की उक्तरीति से चिकित्सा करना उचित है। अजगल्लिकादि सब रोगोंकी चिकित्सा पकजाने पर व्रणके समान करनी चाहिये।

मुखदूषिका की चिकित्सा।

रोध्रकुस्तुंबरुवचाप्रलेपो मुखदूषिके।
वटपल्लवयुक्ता वा नारिकेलोत्थशुक्तयः॥
अशांतौ मवनं नस्य ललाटे च सिराव्यधः।

अर्थ-मुखदूषिका पर लोध, धनियां और वचका लेप करना चाहिये। अथवा बडके पत्ते और नारियल का रस तथा सीपी मिलाकर लेप करे। यदि इस तरह भी शांत न हो तो वमन, नस्य और ललाटकी फस्द इन कामों को उपयोग में लावे।

पद्मकंटकमें उपाय॥

निंबांबुपांतो निबांबुसाधितं पद्मकंटके॥
पिबेत्क्षौद्रान्वितं सर्पिर्निंबारग्वधलेपनम्।

अर्थ-पद्मकंटकरोग में रोगी को नीमका काथ पान कराके वमन करावे तथा नीमके काथमें सिद्ध किया हुआ घी मधु मिलाकर पान करावे। तथा नीम और अमलतास का लेप करे।

विवृतादिकी चिकित्सा॥

विवृतार्शस्तु
जालांतांश्चिकित्सेत्सेरिवेल्लिकान्।
पित्तवीसर्पवत्तद्वत्प्रत्याख्यायाग्निरोहिणीम्

अर्थ--विवृतासे लेकर जालगर्दभ तक सब रोगों की तथा इरिवेल्लिका की चिकित्सा पित्तविसर्पके समान करनी चाहिये। अग्निरोहिणी को असाध्य कहकर चिकित्सा करनी चाहिये।

जालक गर्दभ में कर्तव्य।

विलंघनं रक्तविमोक्षणं च
विरूक्षणं कायविशोधनं च।
धात्रीप्रयोगान् शिशिरप्रदेहान्
कुर्यात्सदा जालकगर्दभस्य॥ ६॥

अर्थ--जालक गर्दभरोग में अवस्थानुसार लंघन, रक्तमोक्षण, रूक्षण, वमनविरेचनादि देहके संशोधन, आमले का प्रयोग तथा अन्य शीतल लेपों का प्रयोग करना चाहिये।

विदारिका की चिकित्सा।

विदारिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत्।

अर्थ--विदारिका रोगमें रक्तमोक्षण करके कफग्रंथिके समान चिकित्साकरना उचितहै।

शर्करार्बुद की चिकित्सा।

मेदोर्बुदक्रियां कुर्यात्सुतरां शर्करार्बुदे॥ ७॥

अर्थ-शर्करार्बुद में मेदोज अर्बुद रोग की चिकित्सा विशेष रूप से करनी चाहिये।

बल्मीक की असाध्यता।

प्रवृद्धं सुबहुच्छिद्रं सशोफं मर्मणि स्थितम्।
वल्मीकं हस्तपादे चवर्जयेद्

अर्थ--जो बल्मीक रोग बहुत बढगया हो, जिस में बहुत से छिद्र हों, सूजन हो तथा मर्मस्थान में उत्पन्न हुआ हो, तथा हाथ पांवों में होने वाला बल्मीक असाध्य होता है।

अन्य बल्मीक रोग पर लेप

इतरत्पुनः॥ ८॥
शुक्तस्यास्ते हृते लिंपेत् सपद्मवारिवतामृतैः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्यामाकुलत्थिकामूलदंतीपलाशसक्तुभिः ॥

अर्थ ऊपर कहे हुए वल्मीकों से अतिरिक्त वल्मीक में रोगी को विरेचनादि द्वारा शुद्ध करके वल्मीक में से रुधिर निकाल कर नमक, अपलतास, गिलोय, काली निशोत, कुलथी की जड, दंती और तिल का चूर्ण इन संपूर्ण द्रव्यों का लेप करै ।

पक्ववल्मीक का उपाय ।

पक्के तु दुष्टमांसानि गतीः सर्वाश्च शोधयेत् शस्त्रेण सम्यगनु च क्षारेण ज्वलनेन वा ॥

अर्थ--पक्व वल्मीक में बिगडे हुए मांस की संपूर्ण गतियों को शस्त्रसे शोधित करके क्षारकर्मसे वा अग्निकर्मसे दग्ध करै ।

कदर का उत्कर्तनादि ॥

शस्त्रेणोत्कृत्य निःशेषं स्नेहेन कदरं दहेत् ।
निरुद्धमणिवत्कार्यं रुद्धगायोश्चिकित्सितम्

अर्थ=कदर रोग को जड़ से शस्त्र द्वारा काटकर स्नेह से कदर को दग्ध करे । तथा रुद्ध गुदकी चिकित्सा भी निरुद्धमणि की चिकित्सा भी करनी चाहिये ।

चिप्प की चिकित्सा ॥

विप्यशुद्धयाजितोष्माणंसाधयेच्छस्त्रकर्मणा

अर्थ=चिप्प रोग में विरेचनादि शोधन क्रिया द्वारा उसकी ऊष्मा को दूर करके शस्त्र कर्मसे सिद्ध करे ।

दुष्ट कुनख में कर्तव्य ॥

दुष्टे कुनखमप्येवं

अर्थ--दुष्ट कुनख की चिकित्सा भी चिप्प की तरह की जाती है ।

अलसक की चिकित्सा ॥

चरणाधलसे पुनः ॥ १२ ॥

धान्याम्लसिक्तोकाशीसपटोलीरोचनातिलैः सनिंबपत्रैरालिंपेद्

अर्थ--अलस रोगों में दोनों पावों पर कांजी डालकर कसीस, पर्वल, गोरोचन, तिल और नीमके पत्तों का लेप करे ।

तिलकालकादि की चिकित्सा ।

दहेत्तु तिलकालकान् ॥
माषांश्च सूर्यकांतेन क्षारेण यदि वाऽग्निना ।

अर्थ--तिलकालक और माष रोग में गरम सूर्यकांत मणि, क्षार वा अग्निकर्म से दग्ध करे ॥

चर्मकील और जतुमणि ।

तद्वदुत्कृत्य शस्त्रेण चर्मकीलजतूमणी ॥

अर्थ--चर्मकील और जतुमणि को शस्त्र से काटकर पूर्ववत् दग्ध कर देना चाहिये ।

लांछनादि का उपाय ।

लांछनादित्रये कुर्याद्यत्रासृक् सिराव्यधम् ।
लेपयेत्क्षीरपिष्टैश्च क्षीरिवृक्षत्वगंकुरैः ॥

अर्थ--लांछनादि तीन रोगोंमें अर्थात् लांछन, व्यंग और नीलीका रोगोंमें पास वाली सिराको बेधकर दूधवाले वटादि वृक्षों के त्वचा और अंकुरों को दूध में पीसकर लेप करना चाहिये ।

व्यंगादि में लेपन ।

व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिका
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मषी ॥

अर्थ--व्यंग आदि रोगोंमें अर्जुन की छाल वा मजीठ को पीसकर शहत में गिलाकर लेप करे अथवा सफेद घोडे के खुर की भस्म को नवनीत में सानकर लेप करदे ।

व्यंग नाशक लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठाकुष्ठरोधप्रियंगवः ।
वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-रक्तचन्दन, मजीठ, कूठ, लोध, प्रियंगु, वटके अंकुर और मसूर इनका लेप व्यंग रोग को दूर करता है, और मुख को कांति देनेवाला है।

अन्य लेप ।

द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्षपाः पयसा सह।
पिष्टाः कुर्वंति वक्त्रेंदुमपास्तव्यंगलांछनम्

अर्थ-काला जीरा, सफेद जीरा, काले तिल, सरसों इनको दूध के साथ पीसकर लेप करने से व्यंग और लांछन रोग दूर होजाते हैं, तथा मुख चन्द्रमा के समान कांतिमान होजाता है।

अन्य लेप ।

क्षीरपिष्टा घृतक्षौद्रयुक्ता वा भृष्टनिस्तुषाः।
मसूराः क्षीरपिष्टा वा तीक्ष्णाः शाल्मलिकंटकाः
सगुडः कोलमज्जा वा शशासृक्क्षौद्रकल्कितः
सप्ताहं मातुलुंगस्थं कुष्ठं वा मधुनान्वितम्।
पिष्टा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौशली जटा
गोरस्थि मुशलीमूलयुक्तं वा साज्यमाक्षिकम्

अर्थ-भुनीहुई और छिलके दूर की हुई मसूर को दूध के साथ पीसकर वा घी और शहत में मिलाकर लेप करना चाहिये। अथवा सेमर के पैने कांटों को दूध में पीस कर लेप करे, अथवा बेर का गूदा और खर्गोश का रुधिर इन को पीसकर गुड़ और शहत मिलाकर लेपकरे, अथवा कूठ को सात दिन तक बिजौरे में रखकर शहत में मिलाकर लेप करे, अथवा मूसली की जटा को बकरी के दूध के साथ पीसकर शहत में मिलाकर लेपकरे, अथवा गौ की अस्थि और मूसली की जड़ को पीसकर घी और शहत मिलाकर लेप करे।

सवर्ण कारक लेप ।

जंब्वाम्रपल्लवा मस्तुहरिद्रे द्वे नवो गुडः।
लेपःसवर्णकृत् पिष्टं स्वरसेन च तिंतुकम्॥

अर्थ-जामन के पत्ते, आम के पत्ते, दही का तोड़, दोनों हलदी और नया गुड़ इनको पीसकर लेप करने से व्यंगादि रोग शांत होजाते हैं, अथवा तेंदू को उसी के रस में पीसकर लेप करने से सवर्णता होजाती है।

उबटना ।

उत्पलपत्रं तगरं प्रियंगुकालीयकं बदरमज्जा
इदमुद्वर्तनमास्यं करोति शतपत्रसंकाशम्॥

अर्थ-कमलपत्र, तगर, चिरौंजी, दारुहलदी, कदंब, बेरका गूदा इनका उबटना करने से मुख कमल के समान होजाता है।

अभ्यंग ।

एभिरेवौषधैः पिष्टैर्मुखाभ्यंगाय साधयेत्।
यथादोषर्तुकान् स्नेहान् मधुककाथसंयुतैः॥

अर्थ-ऊपर कही हुई औषधों का कल्क डालकर मुलहटी का काथ मिलाकर दोष और ऋतुके अनुसार सिद्ध किये हुए घी की मालिश करना अच्छा है।

अन्य अभ्यंग ।

यवान् सर्जरसं रोध्रमुशीरं चंदनं मधु।
घृतं गुडं च गोमूत्रे पचेदादर्विलेपनात्॥
तदभ्यंगान्निहंत्याशु नीलिकाव्यंगदूषिकान्।
मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ॥

अर्थ-जौ, राल, लोध, खस, रक्तचंदन, शहत, घी, गुड इनको गोमूत्र में पकावै जब कलछी से लगने लगे तब उतार ले। इसका मर्दन करने से नीलिका, व्यंग और मुखदूषिकादि रोग दूर होकर मुख कमल के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समान हो जाता है और पांव कमलदल के तुल्य हो जाते हैं ।

नीलिकादि नाशक नस्य ।

कुंकुमोशीरकालीयलाक्षायष्ट्याह्वचंदनम् ।
न्यग्रोधपादांस्तरुणान् पद्मकं पद्मकेसरम् ॥
सनीलोत्पलमंजिष्ठं पालिकं सतिलाढके ।
पक्त्वा पादावशेषेण तेन पिष्टैश्च कार्षिकैः ॥
लाक्षापत्तंगमंजिष्ठायष्टीमधुककुंकुमैः ।
अजाक्षीरद्विगुणितं तैलस्य कुडवं पचेत् ॥
नीलिकापलितव्यंगवलीतिलकदूषिकान् ।
हंति तन्नस्यमभ्यस्तं मुखोपचयवर्णकृत् ॥

अर्थ—केसर, खस, दारुहलदी, लाख, मुलहटी, चंदन, बडकी नई डाढी, पदमाख, कमल केसर, नीलकमल और मजीठ, प्रत्येक एक एक पल इनको एक आढक जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । फिर इसमें लाख, पतंग, मजीठ, मुलहटी, केसर, प्रत्येक एक कर्ष, बकरी का दूध दो कुडव, तेल एक कुडव डालकर पाकविधि के अनुसार पकावे । इस तेलका नस्य द्वारा प्रयोग करने से नीलिका, पलित, व्यंग, झुर्री, तिलकालक, मुखदूषिका आदि रोग दूर होजाते है, तथा यह मुखको पुष्टकारक और कांतिवर्द्धक होता है ।

व्यंगादिनाशक औषध ।

मंजिष्ठाशबरोदुंबरधातकीलाक्षाहरिद्राद्वयं
नेपालीहरितालकुंकुमगदागोरोचनागैरिकम् ।
पत्रं पांडुवटस्य चंदनयुगं कालीयकं पारदं
पत्तंगं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा-
केसरम् ॥ ३१ ॥
सिक्थं तुत्थं पद्मकाद्यो वसाज्यं
मज्जा क्षीरं क्षीरिवृक्षांबु चाग्नौ ।
सिद्धं सिद्धं व्यंगनील्यादिनाशे
वक्त्रे छायामैंदवीं चाशु धत्ते ॥ ३२ ॥

अर्थ—मजीठ, सावरलोध, सौराष्ट्रमृत्तिका, लाख, दोनों हलदी, मनसिल, हरताल, केसर, कूठ, गोरोचन, गेरू, कचे बटके पत्ते, सफेद चंदन, लालचंदन, कालाचंदन, पारा, पतंग, ढाक की छाल, कमल के बीज, कमलकेसर मोम, नीलाथोथा, पद्मकादि गणोक्त औषध, चर्बी, घी, मज्जा, दूध, दूधवाले वृक्षों का रस इन सब द्रव्यों को अग्निपर पकावै । यह व्यंग और नीलकादि औषधों के नाश करने में अनुभूत औषध है । इस औषध से मुख चन्द्रमा के समान कांतिमान हो जाता है ।

नस्य प्रयोग ।

मार्कवस्वरसक्षीरतोयपिष्टानि नावने ।

अर्थ—भांगरे का रस, दूध और जल मिलाकर नस्य देना हित है ।

प्रसुप्ति की चिकित्सा ।

प्रसुप्तौ वातकुष्ठोक्तं कुर्याद्दाहं च वह्निना ।

अर्थ—प्रसुप्तिरोग में वातकुष्ठरोगमें कही हुई चिकित्सा करना चाहिये और रोमस्थान को अग्निसे दग्ध करदेना हित है ।

उत्कोठ की चिकित्सा ।

उत्कोठे कफपित्तोक्तं कोठे सर्वं च कौष्ठिकम्

अर्थ—उत्कोठरोग में कफपित्तोक्त तथा कोठरोग में कुष्ठाधिकार में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने क्षुद्ररोगप्रतिषेधोनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

——०:(५):०——

अथाऽतो गुह्यरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम यहां से गुह्यरोगविज्ञान नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

उपदंशादितेईस रोग।

स्त्रीष्वयायनिवृत्तस्य सहसा भजतोऽथवा।
दोषाःप्लुषितसंकीर्णमलिनानुरजः पथाम्॥
अन्ययोनिमनिच्छंतीमगम्यां नवसूतिकाम्।
दूषितं स्पृशतस्तोयं रतांतेष्वपि नैव वा॥
विवर्धयिषया तीक्ष्णान् प्रलेपादीन् प्रयच्छतः
मुष्टिदंतनखोत्पीडाविषवच्छुक्रपातनैः॥
वेगनिग्रहदीर्घातिखरस्पर्शीविघट्टनैः।
दोषा दुष्टा गता गुह्यं त्रयोविंशतिमामयान्
जनयंत्युपदंशादीन्

अर्थ–एक साथ मैथुन करते करते हट जाना, अथवा सहसा मैथुनमें प्रवृत्त होजाना, अथवा जिसस्त्री की योनि वातादि दोषों से दूषित, तंग, मलीन वा सूक्ष्ममार्गवाली स्त्री के साथ गमनकरना, बकरीभेंस आदि अन्ययोनि में गमन करना, संगमकी इच्छा न रखनेवाली स्त्रीके साथ गमन करना, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करना, नवप्रसूता (हालकी जनी) स्त्रीके साथ गमन करना, रतांत में दूषित जलसे गुह्येन्द्रिय प्रक्षालन वा सर्वथा अप्रक्षालन, अथवा गुह्येन्द्रिय को बढाने के निमित्त तीक्ष्ण प्रलेपादि करना, कामोन्मत्ता स्त्रीके मुष्टि, दांत, वा नख द्वारा लिंग का आहत करना, विषवत् वीर्यपतन, वीर्यका वेग रोकना, दीर्घ और अत्यन्त खरस्पर्शवाली योनि से बहुत कालतक गुह्येन्द्रियघर्षण, इत्यादि बातों से वातादिदोष प्रकुपित होकर उपदंशादितेईस प्रकारके रोगों को उत्पन्न करदेते हैं।

उपदंश के भेद।

उपदंशोऽत्र पंचधा।
पृथग्दोषैः सरुधिरैः समस्तैश्च

अर्थ–उपदंशरोग पांच प्रकार के होतेहैं, यथा—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और त्रिदोषज।

वातजउपदंश के लक्षण।

अत्र मारुतान्॥ ५॥
मेढ्रशोफेरुजश्चित्राः स्तंभस्त्वक्परिपोटनम्

अर्थ–वातजउपदंश में मेढ्रमें सूजन, अनेक प्रकार की वेदना, स्तब्धता और त्वचा का फटना ये लक्षण होते हैं।

पित्तजउपदंश।

पक्वोदुंबरसंकाशः पित्तेन श्वयथुर्ज्वरः॥

अर्थ–पित्तजउपदंश में पके हुए गूलर के समान लालवर्ण, सूजन और ज्वर होताहै।

कफजउपदंश।

श्लेष्मणाकठिनःस्निग्धःकंडूमान्शीतलोगुरुः

अर्थ–कफजउपदंश में कठोरता, चिकनाई, खुजली, शीतलता और भारापन होता है।

रक्तजउपदंश।

शोणितेनासितस्फोटसंभवोऽक्षक्षुतिर्ज्वरः॥

अर्थ–रक्तज उपदंश में काली काली फुंसियों की उत्पत्ति, रक्तस्राव और ज्वर होता है।

त्रिदोषज उपदंश।

सर्वजे सर्वलिंगत्वं श्वयथुर्मुष्कयोरपि।
तीव्रा रुगाशुपचनं व्रणं कृमिसंभवः॥

अर्थ–त्रिदोषज उपदंश में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं, तथा अंड

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोप में सूजन, तीव्र वेदना, आमुवाक, फटने और क्रिमियों की उत्पत्ति ये लक्षण होते हैं।

उपदंश में साध्यासाध्यता।

याप्यो रक्तोद्भवस्तेषां मृत्यवे सन्निपातजः।

अर्थ—इनमें से रक्तजउपदंश याप्य और त्रिदोषज उपदंश असाध्य होता है।

मांसकीलक का वर्णन।

जायंते कुपितैर्दोषैर्गुह्यास्रक्मांसाश्रयैः॥
अंतर्बहिर्वा मेढ्रस्य कंडूला मांसकीलकाः।
पिच्छिलास्रस्रवा योनौ तद्वच्च छत्रसन्निभाः
तेशोंस्युपेक्षया घ्नंति मेढ्रपुंस्त्वभगार्तवम्।

अर्थ—कुपित हुए वातादि दोष स्त्री वा पुरुष की गुह्येन्द्रिय के मांस वा रक्तके आश्रित होकर मेढ्रके बाहर वा भीतर मांसके अंकुर उत्पन्न करदेते हैं इनमें बडी खुजली चलती है और पिच्छिल रक्तका स्राव होताहै योनि में उत्पन्न होकर ये छत्राकार होजाते हैं इन दोनों प्रकार की चर्मकीलकों को लिङ्गार्श कहते हैं। इनकी चिकित्सा में उपेक्षा करने से ये पुरुष के पुंस्त्व को और स्त्रीके रजको नाश करदेते हैं।

सर्षपिका पिटिका।

गुह्यस्य बहिरंतर्वा पिटिकाः कफरक्तजाः॥
सर्षपामाणसंस्थाना घनाः सर्षपिकाः स्मृताः

अर्थ—गुह्यस्थान के भीतर वा बाहर कफरक्तसे ऐसी छोटी छोटी फुंसियां पैदा होजाती है जो आकार और परिमाण में सरसों के समान और कठोर होती है, इन्हें सर्षपका कहते हैं।

अवमंथ के लक्षण।

पिटिका बहवो दीर्घा दीर्यंते मध्यतश्च याः॥
सोऽवमंथः कफास्रभ्यां वेदनारोमहर्षवान्।

अर्थ—दीर्घ आकार वाली बहुत सी ऐसी फुंसियां पैदा होजाती है, जो बीचमें फटजाती है, ये कफ और रक्तसे पैदा होती है, इनमें वेदना और रोमहर्ष होता है। इन्हें अवमंथ कहते हैं।

कुंभीका पिटिका।

कुंभीका रक्तपित्तोत्थाजांबवास्थिनिभाऽशुभा

अर्थ—रक्तपित्त से उत्पन्न हुई फुंसियां जो जामन की गुठली के सदृश पैदा होती है उन्हें कुंभीका कहते हैं। ये बहुत जल्दी पैदा होजाती है।

अलजी के लक्षण।

अलजी मेहवद्विद्यात्

अर्थ—जैसी अलजी नामक पिटिका प्रमेह में होती है, वैसी ही इसमें भी होती है।

उत्तमापिटिका।

उत्तमां रक्तपित्तजाम्।
पिटिकां माषमुद्गाभा

अर्थ—रक्तपित्त के प्रकोप से जो उरद वा मूंगके समान फुंसियां गुह्यस्थान में होती हैं उन्हें उत्तमा कहते हैं।

पुष्करिका के लक्षण।

पिटिका पिटिकाचिता॥ १४॥
कर्णिका पुष्करस्येव ज्ञेया पुष्करिकेति सा।

अर्थ—जो फुंसी और बहुतसी फुंसियों से व्याप्त होती है, तथा जो कमल के बीज कोषके आकार वाली होती है, उन्हें पुष्करका कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संव्यूढ पिटिका ॥

पाणिभ्यां भृशसंव्यूढे संव्यूढपिटिका भवेत्

अर्थ–हाथ के द्वारा अत्यन्त रिगडने से जो फुन्सियां होजाती है। उन्हें संव्यूढ पिटिका कहते हैं।

मृदित के लक्षण ॥

मृदितं मृदितं वस्त्रसंरुध्यं वातकोपतः।

अर्थ–लिंग का मर्दन करने से या वस्त्र से घिसनेसे वायु के प्रकोप से मृदित नामक रोग होता है।

अष्ठीलिका के लक्षण ॥

विषमा कठिनाभुग्नावायुनाऽष्ठीलिकास्मृता

अर्थ–वायु के प्रकोप से जो फुंसियां विषम (ऊँची नीची) कठोर और टेढी होती है। उन्हें अष्ठीलिका कहते हैं।

निवृत्तसंज्ञक रोग ॥

विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्ममेढ्रजम्
निवर्तते सरुग्दाह क्वचित्पाकं च गच्छति ॥
पिंडितं ग्रंथितं चर्म तत्प्रलंबमधोमणेः।
निवृत्तसंज्ञं सकफं कण्डुकाठिन्यवत्तु तत् ॥

अर्थ-मर्दन करने से दूषित हुआ वायु मेढ्रकी त्वचा को उलट देताहै, इसमें वेदना और दाह होने लगता है, तथा कभी कभी पकाव भी होजाता है, यह चमडा लिंगमणि (लोकेसुपारीतिनाम्ना प्रसिद्धः) के नीच पिंडाकार और ग्रंथित अर्थात् इकट्ठा होकर लटक पडता है। इस रोग को निवृत्त है।

अवपाटिका ॥

दुरूढं स्फुटितं चर्म निर्दिष्टमवपाटिका।

अर्थ-यदि मेढ्रका चर्म फटकर कठिनता से भरै तो उसे अवपाटिका कहते हैं।

निरुद्धमणि रोग ॥

वातेन दूषितं चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत् ॥
स्रोतोमूत्रं ततोऽभ्येति मंदधारमवेदनम्।
मणेर्विकाशरोधश्च सनिरुद्धमणिर्गदः ॥

अर्थ–वायुके कारण पुरुष की जननेंद्रिय का चमडा दूषित होकर लिंगमणि से चिपट कर मूत्र के मार्ग को रोकदे और इससे मूत्र की धार बहुत धीरे धीरे निकले, परन्तु वेदना न होती हो, चर्मावरुद्ध होने के कारण मणिका मुख न खुलसके तब ऐसी व्याधि को रुद्धमणि कहते हैं।

ग्रथितास्य रोग।

लिंगं शूकैरिवापूर्णं ग्रथितास्यं कफोद्भवम्

अर्थ–जिस रोग में पुरुष की गुप्तेन्द्रिय यवशूक (जौ के कांटे) की तरह व्याप्त होजाय उसे ग्रथित कहते हैं।

स्पर्शहानि रोग।

शूकदूषितरक्तोत्था स्पर्शहानिस्तदाह्वया।

अर्थ–शूक से दूषित होकर रक्त लिंग में स्पर्शहानि नामक रोगको उत्पन्न करता है, इसके होने से लिंग में छूने का अनुभव नहीं होता है।

शतपोनकके लक्षण।

छिद्रैरणुमुखैर्यस्तु मेहनं सर्वतश्चितम्।
वातशोणितकोपेन तं विद्याच्छतपोनकम्।

अर्थ–वात रक्त के प्रकोप से लिंग का सम्पूर्ण अवयव छोटे छोटे मुखवाले छिद्रों से व्याप्त होजाय तो उसे शतपोनक रोग कहते हैं।

त्वक् पाक रोग।

पित्तासृग्भ्यां त्वचः पाकस्त्वक्पाको ज्वरवाहवान्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पित्त रक्त के प्रकोप से लिंग की त्वचा पकजाती है, इस से इसे त्वक्पाक रोग कहते हैं । इस में ज्वर और दाह होता है ।

मांसपाक रोग ।

मांसपाकः सर्वजः सर्ववेदनो मांसशातनः ।

अर्थ–त्रिदोष के प्रकोप से मांस पाक नामक रोग उत्पन्न होता है, इस में तीनों दोषों के लक्षणवाली वेदना होती है, और मांस सड़ २ कर गिर पड़ता है ।

रक्तार्बुद ।

सरागैरसितैःस्फोटैःपिटिकाभिश्चयीडितम् ।
मेहनं वेदनाश्चोग्रास्तं विद्यादसृगर्बुदम् ।

अर्थ--कुछ ललाई लिये हुए काले रंग के फोड़े और बहुतसी फुंसियां लिंगपर पैदा होकर कष्ट देने लगती है, इससे गुह्येन्द्रिय में बड़ी प्रखर बेदना होने लगती है, इसे रक्तार्बुद कहते हैं ।

मांसार्बुद के लक्षण ।

मांसार्बुदं प्रागुदितं विद्रधिश्च त्रिदोषजः ।

अर्थ–ग्रंथ्यादिरोग विज्ञानीयाध्याय में मांसार्बुद का वर्णन करदिया गया है, यह सान्निपातिक होते हैं । विद्रधि भी त्रिदोषज है, इसका वर्णन भी विद्रधि विज्ञानीयाध्याय में करदिया गया है ।

तिलकालक के लक्षण ।

कृष्णानि भूत्वा मांसानि विशीर्यंते समंततः ।
पक्वानि सन्निपातेनतान् विद्यात्तिलकालकान् ।

अर्थ–त्रिदोषके प्रकोप से लिंगके चारों ओर का मांस काला पडकर गल जाता है इस व्याधिको तिलकालक कहते हैं ।

वर्जितरोग ।

मांसोत्थमर्बुदं पाकं विद्रधिं तिलकालकान् ।
चतुरो वर्जयेदेतांश्छेषांश्छीघ्रमुपाचरेत् ।

अर्थ–मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार रोग असाध्य होते हैं । इनसे अतिरिक्त अन्यरोग साध्य होते हैं, ये सब चिकित्सा के योग्य हैं ।

योनिके बीसभेद ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्जायंते दुष्टभोजनात् ।

अर्थ–दूषित आहार के करनेसे योनि-संबंधी बीस प्रकारके रोग होते हैं ।

योनिसंबंधी वात की व्यापत् ।

विषमस्थांगशयनभूशमैथुनसेवनैः ।
दुष्टार्तवादपद्रव्यैर्बीजदोषेण दैवतः ॥ १८॥
योनौरुक्षेऽनिलःकुर्याद्रुक्तोदायामसुप्तता ।
पिपीलिकासंसर्पमिव स्तंभं कर्कशतां स्वनम् ।
फेनिलारुणकृष्णाल्पतनुरूक्षार्तवस्रुतिम् ।
क्रमं वंक्षणपार्श्वादौ व्यथां गुल्मं क्रमेण च ।
तांस्तांश्च स्वान्गदान्व्यापद्वातिकी नाम सा स्मृता ।

अर्थ–विषमस्थानमें अंग रखने से, ऊंची नीची जगह में सोनेसे, अत्यन्त मैथुनसे, दुष्ट मासिक रजके प्रवृत्त होनेसे, अहित पदार्थों के खानेसे, दैवी बीजदोषसे, वायुकुपित होकर योनिमें वेदना, तोद, आयाम और छूने का ज्ञान न होना, चींटीसी चलना, स्तब्धता, कर्कशता, शब्द, झागदार लाल वा काला थोडा थोडा पतला वा रूक्ष आर्तव निकलना, ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं । तत्पश्चात् वंक्षण और पार्श्वादिस्थान में शिथिलता और व्यथा तथा क्रमसे गुल्म और अनेक प्रकार की वातज पीड़ा पैदा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होजाती हैं। ऐसी योनि व्यापत् को वातिकी व्यापत् कहते है।

अतिचरणा योनि।

सैवातिचरणा शोफसंयुक्तातिव्यवायतः।

अर्थ–अत्यन्त मैथुन करने के कारण जिस योनिमें सूजन होजाती है उसे अतिचरणा कहते हैं।

प्राकरणा।

मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजंघोरुवंक्षणम्।
रुजन्संदूषयेद्योनिं वायुः प्राकरणेति सा।

अर्थ–अत्यन्त छोटी अवस्थावाली स्त्रीके साथ अत्यन्त मैथुन करनेसे वायु उसकी पीठ, जांघ, ऊरू और वंक्षणमें वेदना करता हुआ योनिको दूषित करदेता है। इसरोग को प्राकरणा कहते हैं।

उदावृत्ता व्यापत्।

वेगोदावर्तनाद्योनिं प्रपीडयति मारुतः।
सा फेनिलं रजः कृच्छ्रादुदावृत्तं विमुंचति।
इयं व्यापदुदावृत्ता

अर्थ–जब वायु कुपित होकर ऋतुस्रावी शोणित को बडे वेगसे उलटा फिराकर ऊपर को लेजाती है और योनिको प्रपीडित करती है। तब वात प्रपीडित योनि बडे कष्टसे उदावृत्ता झागदार रक्तको बाहर निकालती है। इस योनि व्यापत्को उदावृत कहते ह।

जातघ्नी व्यापत्॥

जातघ्नी तु यदानिलः।
जातं जातं सुतं हंति रौक्ष्यादुष्टार्तवोद्भवम्

अर्थ–जब वायु रूक्षता के कारण दुष्ट आर्तव से उत्पन्न संतान को पैदा होते होते मार डालती है उसे जातघ्नी व्यापत् कहते हैं

अंतर्मुखी योनि॥

अत्याशिताया विषमं स्थिताया सुरते मरुत्।
अन्नेनोत्पीडितोयोनेःस्थितःस्रोतांसि वक्रयेत्।
सास्थिमांसं मुखं तीव्ररुजमंतर्मुखीति सा।

अर्थ–यदि स्त्री बहुत भोजन करके विषमरीति से बैठकर पुरुषसंगम में प्रवृत हो तब वायु भुक्त अन्न से प्रपीडित होकर योनि के स्रोतमें अवस्थित होकर योनिके मुखको टेढा करदे। ऐसा होने से योनि की हड्डी और मांसमें घोर वेदना होने लगती है। इस रोग का नाम अंतर्मुखी योनिव्यापत् है।

सूचीमुखी योनि॥

वातलाहारसेविन्यां गर्भिण्यां कुपितोऽनिलः।
स्त्रियो योनिमुखद्वारं कुर्यात्सूचीमुखीति सा

अर्थ–जो गर्भवती स्त्री वातवर्द्धक भोजन करती है, उसकी योनि के द्वार को वायु कुपित होकर बहुत छोटा कर देती है ऐसी योनिव्यापत् को सूचीमुखी कहते हैं।

शुष्का व्यापत्।

वेगरोधात्तु वायुर्दुष्टो विण्मूत्रसंग्रहम्।
करोतियोनेःशोषं च शुष्काख्यासातिवेदना

अर्थ–ऋतुकाल में मलमूत्रादि का वेग रोकने से वायु कुपित होकर मलमूत्रका रोध और योनिका शोषण करती है, इसीको शुष्का योनिव्यापत् कहते हैं। इसमें बडी भयंकर वेदना होती है॥

वामनी के लक्षण।

षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत्।
वमेत्सरुङ्नीरुजो वा यस्याः सा वामिनीमता

अर्थ–प्रकुपित वायु छः सात दिन पीछे गर्भाशय से वीर्यको निकाल देती है। ऐसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योनि को वामनी योनि कहते है, इसमें वेदना होती भी है और नहीं भी होती है ॥

षंडसंज्ञकयोनि ।

योनौ वातोपतप्तायां स्त्रीगर्भे बीजदोषतः
नृद्वेषिण्यस्तनी च स्यात्षंढसंज्ञाऽनुपक्रमा।

अर्थ--वायुसे उपतप्त योनिमें स्त्रीके गर्भमें बीजके दोषके कारण मनुष्य से द्वेष और स्तनहीनता रोग होता है, इसे षंढ कहते है, यह असाध्य होता है ॥

महायोनि ।

दुष्टो विष्टभ्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः
कुरुते विवृतांस्रस्तां वातिकीमिवदुःखिताम्
उत्सन्नमांसां तामाहुर्महायोनिं महारुजाम्

अर्थ--दुष्ट हुआ वायु योनिके मुख और गर्भाशय को विष्टब्ध करके योनिको विवृत, शिथिल और वातकीवत् दुखित और उत्सन्न मांस कर देती है। इसको महायोनि कहते हैं इसमें घोर वेदना होती है ॥

पैत्तिकी व्यापत् ।

यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।
करोति दाहपाकोषापूतिगंधज्वरान्विताम्
भृशोष्णाभूरिकुणपनीलपीतासितार्तवाम् ।
सा व्यापत्पैत्तिकी

अर्थ-पित्त अपने प्रकुपित करने वाले हेतुओं से प्रकुपित होकर योनि में अवस्थिति करके उसमें दाह, पाक, उत्ताप और दुर्गंधि पैदा कर देता है। इसमें ज्वर भी हो जाता है। और योनि से अत्यन्त गरम, मुर्देकी सी गंधवाला, नीला, पीला और काला आर्तव अधिकता से निकलता है। इसे पैत्तिकी योनि व्यापत् कहते हैं।

रक्तयोनि ।

रक्तयोन्याख्यासृगतिस्रुतेः

अर्थ--योनिसे जो रक्तस्राव होता हो तो उसे रक्तयोनि कहते हैं।

श्लैष्मिकी व्यापत् ।

कफोभिष्यंदिभिः क्रुद्धः कुर्याद्योनिमवेदनाम्
शीतलां कंडुलांपांडुपिच्छिलांतद्विधस्रुतिम्
सा व्यापच्छ्लैष्मिकी

अर्थ--अभिष्यंद कारक भोजनादि हेतुओं से कफकुपित होकर योनिको वेदना रहित शीतल, खुजलीयुक्त, पांडुवर्ण और पिच्छिल कर देती है, इस रोग मे योनि से पीला और गिलगिला स्राव होताहै। इसे श्लैष्मिकी व्यापत् कहते हैं ॥

लोहितक्षया ॥

वातपित्ताभ्यां क्षीयते रजः सदाहकार्श्यवैवर्ण्ये यस्यां सा लोहितक्षया

अर्थ--वात और पित्त के प्रकोप से रज क्षीण होकर दाह, कृशता और विवर्णता उत्पन्न करता है। इसको लोहितक्षया व्यापत् कहते हैं।

परिप्लुता व्यापत् ॥

पित्तलाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात् ।
पित्तयुक्तेन मरुता योनिर्भवति दूषिता ।
शूनास्पर्शासहा सार्तिर्नीलपीतास्रवाहिनी
वस्तिकुक्षिगुदत्वातीसारारोचककारिणी ।
श्रोणिवंक्षणरुक्तोदज्वरकृत्सा परिप्लुता ।

अर्थ--पित्त प्रकृतिवाली स्त्री पुरुष समागम के समय छींक वा डकार को रोक लेती है, तब वात और पित्त प्रकुपित होकर योनि को प्रदूषित कर देते हैं। इससे योनि फूल जाती है, हाथ को नहीं सह सकती है और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दर्द करती है, और योनि से पीला वा नीला रक्त निकलने लगता है। इसके सिवाय वस्ति (पेडू) और कूखमें भारापन, अतिसार अरुचि, तथा श्रोणि और वंक्षणमें वेदना, तोद, और ज्वर ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी योनिको परिप्लुता कहते हैं।

उपप्लुतायोनि ।

वातश्लेष्मामयव्याप्ता श्वेतापिच्छिलवाहिनी ॥ उपप्लुता स्मृता योनि-

अर्थ—वातकफरोग से पीडित योनि जिस में से सफेद और गिलगिला स्राव होता है, उसे उपप्लुता योनि कहते हैं।

विप्लुतायोनि ।

विप्लुताख्या त्वधावनात् संजातजंतुः कंडूला कंड्वा चातिरतिप्रिया

अर्थ—योनिको न धोने से उसमें कीडे पैदा हो जाते हैं, और बडी खुजली चलने लगती है, खुजली के कारण पुरुषके संगमकी इच्छा बढ जाती है। इसे विप्लुता योनि कहते हैं।

कर्णिनी के लक्षण ।

अकालवाहनाद्वायुः श्लेष्मरक्तविमूर्छितः। कर्णिकां जनयेद्योनौ रजोमार्गनिरोधिनी । सा कर्णिनी

अर्थ—अधोवायुका वेग उपस्थित न होने पर बलपूर्वक वायु निकालने से वह वायु कुपित होकर तथा कफ और रक्तसे मिलकर योनि के मार्गमें एक कर्णिका अर्थात् मांसांकुर पैदा कर देती है, जिससे योनिका मार्ग रुक जाता है। ऐसी योनिको कर्णिनी योनि कहते हैं।

सान्निपातकी व्यापत् ।

त्रिभिर्दोषैर्योनिगर्भाशयाश्रितैः । यथास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्सा सान्निपातिकी ॥

अर्थ—योनि और गर्भाशयका आश्रय लेकर वातादि तीनों दोष अपने अपने उपद्रवों को पैदा कर देते हैं। इसको सान्निपातिकी योनिव्यापत् कहते हैं।

गर्भ के ग्रहण करने का कारण ।

इति योनिगदा नारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति ततो गर्भं न गृह्णाति रोगांश्चाप्नोति दारुणान् असृग्दराशोगुल्मादीनावाधाश्चानिलादिभिः

अर्थ—ऊपर के कहे हुए योनि रोगों के कारण स्त्री वीर्य ग्रहण करने में असमर्थ होजाती है, इस लिये उसके गर्भ की स्थिति नहीं होने पाती है, तथा ऐसी स्त्री के असृग्दर, अर्श, गुल्म और वातादि जनित अनकानेक रोग उत्पन्न होजाते हैं।

इति अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायांउत्तरस्थाने गुह्यरोगविज्ञानं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुह्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम यहांसे गुह्य रोग प्रतिषेध नामक अध्यायकी की व्याख्या करेंगे।

नवीन उपदंश की चिकित्सा ।

मेढ्रमध्ये सिरां विध्येदुपदंशे नवोत्थिते । शीतां कुर्यात् क्रियां शुद्धिविरेकेण विशोधतः तिलकल्कघृतक्षौद्रैर्लेपः पक्के तु पाटिते ।

अर्थ— उपदंश के उत्पन्न होतेही लिंग के बीचवाली सिरा को वेध देना चाहिये। इसमें ठण्डे लेप और ठण्डा परिषेक हितहै,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसमें विरेचन द्वारा शुद्ध करना परमावश्यक है, उपदंश को पकाने पर काटकर घी और शहत मिलाकर तिल के कल्क का लेप करना चाहिये ।

धोने का क्वाथ ।

जम्ब्वाम्रसुमनोनीपश्वेतकांबोजिकांकुरान् ॥
शाल्लकीवदरीबिल्वपलाशत्वचतिनिशोद्भवाः ।
त्वचः क्षीरिद्रुमाणां च त्रिफलां च जले पचेत् ।
स क्वाथः क्षालनं तेन पक्वं तैलं च रोपणम् ।

अर्थ–जामन, आम, चमेली, कदम्ब, और सफेद खैर इनके अँकुर, शल्लकी, बेर, बेलगिरी, ढाक, तिनिश और वटादि दूधवाले वृक्षों की छाल और त्रिफला इन सब द्रव्यों को जल में औटाकर इस काढे से उपदंश को धोना चाहिये और इसी काढे में तेल पकाकर उपदंश के घावों को भरने के लिये यह तेल लगाना चाहिये ।

उपदंश पर लेप ।

नृत्थगैरिकलोध्रैलामनोह्वालरसांजनैः ॥
हरेणुपुष्पकासीसासौराष्ट्रीलवणोत्तमैः ।
लेपः क्षौद्रयुतैः सूक्ष्मैरुपदंशव्रणापहः ॥ ५ ॥

अर्थ–नीलाथोथा, गेरू, लोध, इलायची मनसिल, रसौत, हरेणु पुष्प कसीस, मुलतानी मृत्तिका, सेंधानमक इन सब को बारीक पीसकर शहत में मिलाकर लेप करने से उपदंश के घाव जाते रहते हैं ।

उपदंश पर रोपण ।

कपाले त्रिफला दग्धा सघृता रोपणं परम् ।

अर्थ–त्रिफला को खपड़े में जलाकर पीसकर घी में सानकर लगाने से उपदंश के घाव भरजाते हैं ।

प्रतिदोष चिकित्सा ।

सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषं तु शोफवत् ॥

अर्थ–जो कुछ अबतक कहा गया है वह उपदंश की सामान्य चिकित्सा है वातादि दोष भेद में इसकी चिकित्सा सूजन के समान करनी चाहिये ।

पाक के अभाव में अतियत्न ॥

न च याति यथा पाकं प्रयतेत तथा भृशम् ।
पक्वैःस्नायुसिरामांसैः प्रायो नश्यति हि ध्वजः

अर्थ–उपदंश में जिस तरह पाक न हो वह यत्न विशेष रूप से करना चाहिये क्योंकि स्नायु, सिरा और मांस के पकजाने पर प्रायः लिंगेन्द्रिय का नाश होजाता है ।

छिन्नदग्ध में उपदंशवत् क्रिया ॥

अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ।

अर्थ–लिंगार्श को काटकर और दग्ध करके उपदंशवत् चिकित्सा करना चाहिये ।

सर्षपादि में लेखन ॥

सर्षपा लिखिताः सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ॥
तैरेवाभ्यंजनं तैलं साधयेद् व्रणरोपणम् ।

अर्थ-शस्त्र से सर्षपादि को खुरचकर ऊपर कहे हुए जामन आदि कषाय द्रव्यों का चूर्ण बनाकर बुरक दे और इन्ही कषाय द्रव्यों के साथ पकाया हुआ तेल घाव के भरने के लिये लगावै ।

अवमंथ की चिकित्सा ॥

क्रियेयमवमंथेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ॥

अर्थ–अवमंथ में भी सर्षपका के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये । तथा अवमंथ और सर्षपका दोनों में रक्तमोक्षण करना हित है ।

कुंभीका की चिकित्सा ॥

कुंभीकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तिवृत्कत्रिफलारोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥

अर्थ-कुंभिका रोगमें रक्तमोक्षण करना हित है। पकजाने पर व्रण को राध से शुद्ध करके तेंदू, त्रिफला, और लोध का लेप करे, तथा इन्हीं से पकाया हुआ तेल घाव के भरने में लगावै।

अलजी की चिकित्सा ॥

अलज्यां क्षुतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः।

अर्थ-अलजी में भी रक्तमोक्षण करके कुंभिका के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये।

उत्तमाकी चिकित्सा ॥

उत्तमाख्यांतुपिटिकांसांडियषाडिशोद्धृताम् ॥
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत्

अर्थ-उत्तमा नामवाली पिटिका को बाडिश नामक यंत्र से उद्धृत करके छेदन करे, और इसपर कषाय द्रव्यों का चूर्ण और कल्क मधुमिश्रित करके लगावै।

पुष्करव्यूढ की चिकित्सा ॥

क्रमःपित्तविसर्पोक्तः पुष्करव्यूढयोर्हितः ॥

अर्थ-पुष्कर और व्यूढ में पित्तविसर्प के समान चिकित्सा करना चाहिये।

त्वक्पाक की चिकित्सा ॥

त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेद्

अर्थ-लिंग की त्वचा के पकजाने पर और स्पर्श का ज्ञान नष्ट होजाने पर परिषेक करना चाहिये।

मृदित की चिकित्सा।

मृदिते पुनः।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥

अर्थ-मृदितनामक लिंग रोग पर आगे आनेवाले बला तेल से परिषेक करे, तथा मधुर गणोक्त द्रव्यों का ईषदुष्ण कल्क घी में सानकर उपनाहन करे।

अष्ठीला की चिकित्सा।

अष्ठीलिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत्।

अर्थ-अष्ठीलिका रोगमें रक्तमोक्षण करके कफज ग्रंथिरोग के समान चिकित्सा करना चाहिये।

निवृत्तरोग की चिकित्सा।

निवृत्तं सर्पिषाऽभ्यज्य स्वेदयित्वोपनाहयेत्
त्रिरात्रं पंचरात्रंवासुस्निग्धः शाल्वलादिभिः
स्वेदयित्वा ततो भूयःस्निग्धंचर्मसमानयेत्॥
मणिं प्रपीड्य शनकैः प्रविष्टे चोपनाहनम्।
मणौ पुनःपुनःस्निग्धं भोजनं चाऽत्र शस्यते

अर्थ-निवृत्तनामक लिंगरोग में घी चुपडकर स्वेदन करै। फिर अवस्थानुसार तीन दिन वा पांच दिन तक सुस्निग्ध शाल्वलादि द्वारा उपनाहन करे। तदनंतर फिर स्वेदन करै। इस तरह चमडे के कोमल हो जाने पर उसे उपस्थके अग्रभाग अर्थात् मणि पर धीरे धीरे ले आवै। चर्मके भीतर मणि के प्रविष्ट हो जाने पर बार बार उपनाहन करे तथा भोजन के लिये स्निग्ध पदार्थों का प्रयोग करे।

अवपाटिका में कर्तव्य।

अयमेव प्रयोज्यः स्यादवपाट्यामपि क्रमः।

अर्थ-अब पाटिका रोगमें भी इस क्रम का अवलंबन करना चाहिये।

निरुद्धमणि की चिकित्सा।

नाडीमुभयतो द्वारां निरुद्धे जंतुना सृताम् ॥
श्लेष्माकां स्रोतसि न्यस्य सिंचेत्क्षौद्रैश्चलापहैः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्र्यहात्र्यहात्स्थूलतरां नस्यनाडीं विवर्धयेत् स्रोतोद्वारमसिद्धौ तु विद्वान् शस्त्रेणपाटयेत् सेवनीं वर्जयन् गुंज्यात्सद्यःक्षतविधिं ततः ॥

अर्थ–विरुद्धमणि नामक लिंगरोग में एक लोहे वा काठका बनाहुआ दो मुखवाला नल लेकर उस पर लाख का लेप करदे और घी चुपडकर उसको लिंगेन्द्रिय के स्रोत में लगा देवै। फिर इस नलमें होकर वातनाशक बलादि तेलका सेचन करे। तीनदिन पीछे और भी मोटा नल लिंगस्रोत में प्रविष्ट करके स्रोतका मुख बढावै। इससे भी फलसिद्धि न होने पर बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि सीमन को छोडकर शस्त्रसे चीर डाले, फिर तत्काल घावके समान चिकित्सा करने में प्रवृत्त हो।

ग्रंथित की चिकित्सा।

ग्रंथितं स्वेदितं नाड्या स्निग्धोष्णैरुपनाहयेत्

अर्थ–ग्रंथित रोगमें नाडीस्वेद देकर उस पर स्निग्ध और उष्ण उपनाह का प्रयोग करै। नलके द्वारा भाफ पहुंचाकर जो स्वेद दिया जाता है उसे नाडीस्वेद कहते हैं।

शतपोनक का उपाय।

लिपेत्कषायैः सक्षौद्रैर्लिखित्वा शतपोनकम्॥

अर्थ–शतपोनक नाम लिंगरोग को शस्त्रसे छीलकर कषाय द्रव्यों के चूर्ण में शहत मिलाकर लेपन करे।

रक्तार्बुद का उपाय।

रक्तविद्रधिवत्कार्या चिकित्सा शोणितार्बुदे

अर्थ–रक्तार्बुदमें रक्तविद्रधि के समान चिकित्सा करना उचित है।

अवस्थानुसार उपचार।

व्रणोपचारं सर्वेषु यथावस्थं प्रयोजयेत्॥

अर्थ–सब प्रकार के लिंगरोगों में रोगकी अवस्था के अनुसार अंतःशुद्धि, कषाय, लेप, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण, शोधन और रोपणादि द्वारा घावका उपचार करे॥

योनिव्यापत् में चिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् स्नेहनस्वेदवस्त्यादि वातजासु विशेषतः॥

अर्थ–योनिव्यापत् रोग समूहों में बहुधा वातनाशिनी क्रिया करनी चाहिये। वातजनितयोनिव्यापद् में स्नेहन, स्वेदन, और वस्ति आदि का प्रयोग विशेषरूप से करना चाहिये।

उक्त क्रिया में हेतु।

नहि वाताहते योनिर्दोषैर्नितानां प्रदुष्यति। अतो जित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम्

अर्थ–वात के सिवाय और किसी कारण से स्त्री की योनि दूषित नहीं होसकती है। इसलिये प्रथम वातको जीतकर फिर अन्य चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिये।

बलातैलादि का प्रयोग।

पाययेत बलातैलं मिश्रकं सुकुमारकम्। स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्समाम्॥
पाणिनोन्नमयेज्जिह्मां संवृत्तां व्यधयेत्पुनः। प्रवेशयेच्च ऋजुतां च विवृतां परिवर्तयेत्॥
स्थानापवृत्ता योनिर्हि शल्यभूतास्त्रियोभवेत्

अर्थ–योनिव्यापत् से ग्रस्त स्त्री को बलातैल, मिश्रक, वा सुकुमार नामक स्नेहपान कराना चाहिये। तथा दुःस्थित योनि को स्निग्ध और स्विन्न करके समान भाव में स्थापित करे। कुटिल योनिको हाथ से बनादे। संवृत योनिको प्रसारित करके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेचन करे। बाहर निकली हुई योनि को भीतर कर देवै। निवृत हुई योनि को परिवर्तित करे। क्योंकि अपने स्थान से हटी हुई योनि स्त्रियों को शल्य के समान कष्टकारक होती है। इसलिये उसको स्थान पर लगाने का यत्न करे।

वमनादि का प्रयोग।

कर्मभिर्वमनाद्यैश्च मृदुभिर्योजयेत्स्त्रियम्॥
सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते।
वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेप पिचुधारणम् २७

अर्थ—योनिव्यापत् रोग में मृदु वमनादि कर्म का प्रयोग करना चाहिये। वमन और विरेचन द्वारा स्त्रीको ऊपर नीचे से शुद्ध करके वस्ति, अभ्यंग, परिषेक, प्रलेप और पिचुधारण (रुई का फोआ लगाना) की व्यवस्था करे।

घृत का प्रयोग।

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दानिशाद्वयैः।
गुडूचीसैर्यकाभीरुशुक्लनासापुनर्नवैः २८
पटुषकैश्च विपेचत्प्रस्थमक्षसमैर्घृतात्।
योनिवातविकारघ्नं तत्पीतं गर्भदं परम्।

अर्थ—खंभारी, त्रिफला, दाख, कसौंदी, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, सैर्यक, शतमूली, श्योना, पुनर्नवा और फालसा प्रत्येक दो तोला। इनका कल्क करके एक प्रस्थ घी पाक की रीति से पकावे। इस घृतके पीने से योनि में होनेवाले संपूर्ण वातरोग नष्ट होजाते हैं। यह गर्भोत्पादक परमोत्तम औषध है।

अन्य औषध।

वचापटूचकाजाजीकृष्णावृषकसैंधवम्।
अजमोदायवक्षारशर्कराचित्रकान्वितम्।
पिष्ट्वाप्रसन्नयाऽलोड्यखादेत्सद्यृतभर्जितम्
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्माशोविनिवृत्तये।

अर्थ—वच, काला जीरा, सफेद जीरा, पीपल, अडूसा, सेंधानमक, अजमोद, जवाखार, शर्करा, और चीता इन सब औषधों को प्रसन्ना नामक सुरा में पीसकर और आलोडित करके घी में भूनकर खाना चाहिये। इसके सेवन करने से योनिशूल पसली का दर्द, हृद्रोग, गुल्मरोग और अर्शरोग नष्ट होजाते हैं।

वृषकादि पान।

वृषकं मातुलुंगस्य मूलानि मद्यंतिकाम्।
पिबेन्मद्यैः सलवणैस्तथा कृष्णोषकुंचिकैः।

अर्थ—अडूसा की जड, बिजौरे की जड और मदयंती की जड, इन सब द्रव्यों को अथवा पीपल और कालाजीरा इनको पीसकर नमक मिलाकर मद्य के साथ पान करने से योनिशूलादि रोग नष्ट होजातेहैं।

रास्नादि दुग्ध।

रास्नाश्वदंष्ट्यावृषकैः शृतं शूलहरं पयः।

अर्थ—रास्ना, गोखरू और अडूसा, इनके साथ में औटाया हुआ दूध पान करने से योनिशूल नष्ट होजाता है।

योनिमें परिषेक।

गुडूचीत्रिफलादंतीकाथैश्च परिषेचनम्।

अर्थ—गिलोय, त्रिफला और दंती इनके काढे का योनि में परिषेक करना हितहै।

योनिमें पिचुप्रयोग।

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैंधवामरदारुभिः।
तैलात्प्रसाधिताद्वार्यः पिचुर्योनौ हितःपरः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-तगर, बेंगन, कूठ, सेंधानमक, और देवदारु इनके साथ सिद्ध किये हुए तेल में रुई का फोया भिगोकर योनि के भीतर रखदेवे । इससे योनि की वेदना नष्ट होजाती है ।

पित्तल योनियों का उपाय ।

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यंगपिचुक्रिया शीताःपित्तान्वितः कार्योःस्नेहनार्थंघृतानि च

अर्थ-पित्त से दूषित हुई योनि में पित्त नाशक शीतगुण से संयुक्त परिषेक, अभ्यंग और पिचुप्रयोग करना चाहिये । तथा स्नेहन के लिये उसमें घी का प्रयोग करना चाहिये ।

योनि दोषपर अवलेह ।

शतावरीमूलतुलाचतुष्कात्क्षुण्णपीडितात् रसेन क्षीरतुल्येन पाचयेत घृताढकम् । जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकामिः परूषकैः । पिष्टैः प्रियालैस्त्वाक्षांदौर्मधुकाद्यिवकान्वितैः सिद्धशीते तु मधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् शर्कराया दशपलं क्षिपेल्लिह्यात्पिचुं ततः । योऽन्यसृक्कृशुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं परम् क्षतं क्षयमसृक्पित्तं कासं श्वासंहलीमकम् कामलां वातरुधिरं विसर्पं हच्छिरोग्रहम् । अपस्मारार्दितायाममदोन्मादांश्च नाशयेत्

अर्थ-सितावर की जड चार तुला लेकर कूटले और कपडे के द्वारा निचोड कर रस निकाललेे । इस रसके समान ही दूध मिलाकर एक आढक घृत पकावै । तथा इसमें जीवनीय गण के द्रव्य, सितावर, दाख फालसा, चिरौंजी, मुलहटी, दोनों खैरेटी प्रत्येक एक तोला इन सबको शिला पर पीसकर कल्क करले और उसमें पकते समय डालदे । पकने पर उतार कर छानले और ठंडा होने पर मधु आठ पल, पीपल आठ पल, शर्करा दश पल मिला देवै । इसमें से प्रतिदिन एक तोले सेवन करनेसे योनिव्यापत्, रक्तदोष और शुक्रदोष दूर हो जाते हैं यह वृष्य और अत्यन्त पुंसवन है । तथा क्षतरोग, क्षयीरोग, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्ग्रह, शिरोग्रह, अपस्मार, अर्दित, आयाम, मद और उन्माद रोगों को नष्ट कर देता है ।

रोगनाशक घृत ।

एवमेव पयः सर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् । गर्भदं पित्तजानां च रोगाणां परमं हितम् ।

अर्थ-इस तरह से जीवनीयगण के साथ दूध वा घी पकाकर इस दूध वा घी को पीनेसे योनि में होनेवाले पित्तज रोग नष्ट होजाते हैं

वातपित्त योनिरोग ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं पचेत् । क्षीरे चतुर्गुणे कृष्णाकाकनासासितान्वितैः जीवंती क्षीरकाकोलीस्थिरावीरार्द्धजीरकैः पयस्याश्रावणीमुद्गपीलुपर्णीभिः । वातपित्तामयान्हत्वापानाद्गर्भदधातितत्

अर्थ-खैरेटी के दो द्रोण क्वाथ में एक आढक घी और तेल तथा चार आढक दूध मिलाकर पकावै और पीपल, काकजंघा, मिश्री, जीवंती, क्षीरककोली, शालपर्णी, सितावर, ऋद्धि, जीरा, दूध, गोरखमुण्डी, मुद्गपर्णी, पीलुपर्णी, मापपर्णी इनका कल्क डालदेवै । इस घृत को पीने से वात पित्त जन्ययोनि रोगों के दूर होजाने पर स्त्री गर्भ धारण कर लेती है ।

रक्तयोनि की चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबंधमवेक्ष्य च ४४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यथादोषोदयं युंज्याद् रक्तस्थापनमौषधम्

अर्थ–रक्तयोनि रोग में रुधिर के रंगसे दोषों का अनुबन्ध देखकर दोषों के अनुसार रक्त को स्थापन करने वाली औषधों का प्रयोग करे।

पुष्यानुग चूर्ण ॥

पाठाजंबवाम्रयोरस्थिशिलोद्भेदं रसांजनम्
अंबष्ठांशालमलीपिच्छांसमंगांवत्सकत्वचम्
वाहलीकविल्वातिविषारोध्रतोयदगैरिकम्
शुंठीमधूकमाचीकरक्तचंदनकट्फलम्।
कट्वंगवत्सकांनंताधातकीमधुकार्जुनम्॥
पुष्ये गृहीत्वा संचूर्ण्य सक्षौद्रं तंदुलांभसा
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते।
दोषाजंतुकृता ये च बालानांतांश्चनाशयेत्
योनिदोषं रजोदोषं श्यावश्वेतारुणासितम्
चूर्णंपुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्।

अर्थ–पाठा, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, पाखानभेद, रसौत, अंवाडा, सेमर, मोचरस, मजीठ, कुडाकी छाल, फेसर, बेलगिरी, अतीस, लोध, नागरमोथा, गेरू, सोंठ, महुआ, माचीक, रक्तचन्दन, कायफल, श्यौना, इन्द्रजौ, अनंतमूल, धाय के फूल, मुलहटी और अर्जुन इन सब द्रव्यों को पुष्यनक्षत्र में इकट्ठी करके महीन पीस छे। इस चूर्ण को शहत में मिलाकर चांवलों के जल के साथ पान करै। इसके सेवन करनेसे अर्श, अतिसार, रक्तातिसार, बालकोंका कृमिरोग, योनि दोष, रजोदोष, धूसर रंग, झांइ, लकाई, कालापन ये सब दूर होजाते है। यह चूर्ण पुष्यानुग नाम महर्षि आत्रेय का बनाया हुआ है।

कफदूषितयोनिका उपाय।

श्लेष्मणा बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम्

अर्थ–कफदूषित योनिमें सब प्रकार के रूक्ष और उष्णवीर्य औषधों का प्रयोग करना चाहिये।

योनिशूलनाशक तेल।

धातकयामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः।
अंबाम्रसारकासीसरोध्रकट्फलार्जुनैः।
सौराष्ट्रिकादाडिमत्वग्गुडूचीवरशालदुमैः।
अक्षमात्रैरजामूत्रेक्षीरे च द्विगुणे पचेत्।
तैलप्रस्थं तदभ्यंगपिचुधारास्तिषु योजयेत्।
शूनोत्तानोन्नता स्तब्धा पिच्छिला स्रावणी तथा।
विप्लुतोपप्लुता योनिः सिद्ध्येत्तस्मिन्स्फोटशूलिनी।

अर्थ–धायके फूल, आमले के पत्ते, रसौत, मुलहटी, नीलकमल, जामन की गुठली, आमकी गुठली, हीराकसीस, लोध, कायफल, तेंदू, मुलतानी मिट्टी, अनार की छाल, कच्चा गूलर, प्रत्येक एक तोला, दो प्रस्थ दूध, दो प्रस्थ बकरी का मूत्र और एक प्रस्थ तेल, इन सब को पाक की रीति से पकावै। इस तेल का अभ्यंग, पिचुधारण और वस्तिकर्म-द्वारा प्रयोग किये जाने पर शून (सूजी हुई) उत्तान, उन्नत, स्तब्ध, गिलगिली, स्रावयुक्त, विप्लुता, उपप्लुता, स्फोटयुक्त और शूलयुक्ता योनि रोगरहित होजाती है।

यवान्नादि प्रयोग।

यवान्नमभयारिष्टं सीधुतैलं च शीलयेत्।
पिप्पलयश्चोरजःपथ्याप्रयोगांश्चसमाक्षिकान्

अर्थ–यवान्न, हरड, अरिष्ट, सीधु और तेल तथा पीपल, लोहचूर्ण और हरड इन को मधुके साथ सेवन करने से योनिरोग पीडित स्त्री निरोग हो जाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशदता कारक चूर्ण ।

कासीसत्रिफलाकांक्षीसाम्रजम्ब्वरिष्टधातुकी पैच्छिल्ये क्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णो वैशद्यकारकः

अर्थ–हीराकसीस, त्रिफला, मुलतानी-मिट्टी, आम की गुठली, जामन की गुठली, और धाय के फूल इन सब द्रव्यों के चूर्ण में शहत मिलाकर सेवन करने से योनि की पिच्छिलता दूर होजाती है ।

दुर्गंधादियुक्तयोनि का उपाय ।

पालाशधातकी जंबूसमंगामोचसर्जजः ।
दुर्गंधे पिच्छिले क्लेदस्तंभनश्चूर्ण इष्यते ।
आरग्वधादिवर्गस्य कषायः परिषेचनम् ।

अर्थ–ढाक के फूल, धाय के फूल, जामन, मजीठ, मोचरस और राल इनका दुर्गन्धि, पिच्छिलता और क्लेद में स्तम्भन कर्ता है । तथा अरग्वधादि गणोक्त द्रव्यों का क्वाथ परिषेचन में हित है ।

मृदुताकारक प्रयोग ।

स्तब्धानां कर्कशानां च कार्यं मार्दवकारकम्
धारणं वेसवारस्य कृसरापायसस्य च ॥

अर्थ–स्तब्ध और कर्कश योनियों में वेसवार, कृसरा वा पायस रखने से उन में मृदुलता होजाती है।

दुर्गंधितयोनि में काढा ।

दुर्गंधानां कषायः स्यात्तैलं वा कल्क एव वा
चूर्णो वा सर्वगंधानां पूतिगंधापकर्षणः ॥

अर्थ-सुगंधित द्रव्यों का क्वाथ, कल्क, चूर्ण वा उनसे सिद्ध किया हुआ तेल लगाने से योनि की दुर्गन्धि जाती रहती है ।

कफदुष्टयोनि में वस्ति ।

श्लेष्मलानां कटुप्रायाःसमूत्रा वस्तयो हिताः
पित्ते समधुकक्षीराः वाते तैलाम्लसंयुता :

अर्थ–कफदूषित योनियों में कटु द्रव्यों से युक्त तथा गोमूत्र से युक्त वस्ति देना हित है, तथा पित्त दूषित योनि में तेल और कांजी मिलीहुई वस्ति देनी चाहिये ।

सन्निपातज योनिरोग ।

सन्निपातसमुत्थायाः कर्म साधारणं हितम्

अर्थ–सन्निपात से दूषित योनि में वातादि दोषों में कही हुई साधारण चिकित्सा करनी चाहिये ।

शुद्धयोनि में गर्भाधान ।

एवं यासु शुद्धासु गर्भं विंदंति योषितः ॥
अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे सति ।

अर्थ–ऊपर कही हुई चिकित्साओं द्वारा योनि के शुद्ध होजाने पर तथा दोष रहित गर्भोत्पादन के लिये प्राकृत बीज डालने से स्त्री गर्भ को धारण करलेती है ।

दुष्टशुक्र की परीक्षा ।

पंचकर्मावशुद्धस्य पुरुषस्याऽपि चेंद्रियम् ॥
परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्घ्नैरुपाचरेत् ।

अर्थ–वातादि दोषों के द्वारा शुक्र के भेदकी परीक्षा करके प्रथमवमन विरेचनादि पांच कर्म से पुरुष को संशोधित करके उस दोष को दूर करनेवाली औषधों का प्रयोग करै ।

योनिशुक्र दोष पर घृत ।

मंजिष्ठाकुष्ठतगरत्रिफलाशर्करावचाः ॥
द्वे निशे मधुकं मेदा दीप्यकः कटुरोहिणी ।
पयस्यार्हिंगुकाकोली शीजिगंधाशतावरीः ॥
पिष्ट्वाक्षांशैर्घृतप्रस्थं पचेत्क्षीराष्टगुणम्
योनिशुक्रप्रदोषेषु तत्सर्वेषु च शस्यते ।
आयुष्यं पौष्टिकं मेध्यं धन्यं पुंसवनं परम्
फलसर्पिरिति ख्यातं पुष्ये पीतं फलाययत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्रियमाणप्रजानां च गर्भिणीनां च पूजितम्। एतत्परं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम् ६७

अर्थ-मजीठ, कूठ, त्रिफला, शर्करा, वच हलदी, दारुहलदी, मुलहटी, मेदा, अजवायन, कुटकी, दूधी, हींग, काकोली, असगंध और सितावर प्रत्येक एक तोला लेकर कल्क करले एक प्रस्थ घी और चार प्रस्थ दूध मिलाकर इन सबको पाकोक्तविधि से पकावै। यह फल-घृत सब प्रकार के योनि और शुक्रदोषों में प्रशस्त है। यह घृत आयुवर्द्धक, पौष्टिक, मेधावर्द्धक, और अत्यन्त उत्तम पुंसवन औषध है। इस घी को पुष्य नक्षत्रमें पीनेसे निश्चय संतान होती है, तथा जिन स्त्रियों की संतान होकर मरजाती है और जो गर्भ-वती हैं, उनके लिये यह घृत परमोत्तम है। यह घृत बालकों के ग्रहों को दूर करने तथा उनकी देहको बढाने में परमोत्तम है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटी-कान्वितायां उत्तरस्थाने मुखरोगप्र-तिषेधोनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

पंचत्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतो विषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम यहांसे विषप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

विषकी उत्पत्ति।

मथ्यमाने जलनिधावमृतार्थं सुरासुरैः। जातः प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः। दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरित्केशोऽनलेक्षणः। जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वातेनाऽसौ विषसंज्ञितः हुंकृतो ब्रह्मणा मूर्ती ततः स्थावरजंगमे। सोध्यतिष्ठन्निजं रूपमुज्झित्वा वंचनात्मकम्

अर्थ-जब अमृत उत्पन्न करने के लिये देवता और असुरों ने मिलकर समुद्रको मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से पहिले एक भयंकर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका तेज बडा प्रचंड था उसके चार डाढ और हरे केश थे तथा आंखें अग्निकी शिखा के समान जलती थीं। इस भयंकर पुरुष को देखकर संपूर्ण जगत विषण्ण होगया इस लिये इसका नाम विष हो गया। यह वंचनस्वभाव पुरुष ब्रह्मा की हुंकार से अपने स्वरूप को त्याग-कर स्थावर और जंगमात्मक दो मूर्तिवाला हो गया।

स्थावर विषका वर्णन।

स्थिरमत्युल्बणं वीर्ये यत्कंदेषु प्रतिष्ठितम्। कालकूटद्रवत्साख्यशृंगीहालाहलादिकम्।

अर्थ-जो विष कंद में रहता है तथा वीर्य में अतिउग्र है वह स्थावर विष होता है स्थावर विष कालकूट, वत्सनाभ, शृंगी और हालाहलादि नाम से पुकारा जाता है।

जंगमविष का वर्णन।

सर्पलूतादिदंष्ट्रासु दारुणं जंगमं विषम्।

अर्थ-जो विष सर्प वा मकडी आदि जानवरों की डाढों में रहता है वह जंगम-विष कहलाता है यहां दंष्ट्रा केवल उपलक्षण मात्र है। जंगमविष नख, सींग और मूत्रा-दिक में भी रहता है।

विष और गर का अन्तर।

स्थावरं जंगमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः।
हंति योगवशेनाशु चिराच्चिरतराच्च तत्।
शोफपांडूदरोन्मादवृद्धर्शादीन् करोति च।

अर्थ–स्थावर और जंगम ये दोनों प्रकार के विष अकृत्रिम होते हैं। और गरविष कृत्रिम होता है, अनेक औषधियों के संयोग से गरविष उत्पन्न होता है, गरविष योग के वश से बहुत शीघ्र वा बहुत काल में मारता है, तथा शोफ, पांडुरोग, उदर-रोग, उन्माद, और अर्शादि रोगों को उत्पन्न करता है।

विष के गुण।

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु।
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च।

अर्थ–सब प्रकार के विष तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, विशद, व्यवायी, आशु-कारी, लघु, विकाशी, सूक्ष्म, अव्यक्तरस, और विषमपाकी होते हैं।

विषको प्राणनाशकत्व।

ओजसो विपरीतं तत् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणैः
वातपित्तोत्तरं तूर्णां सद्यो हरति जीवितम्

अर्थ–विष में तीक्ष्णादि दस गुण होते है, इस से यह ओज के विपरीत होता है, तथा वात और पित्त की अधिकता के कारण प्राणों का तत्काल नाश करनेवाला है।

प्राणनाशका हेतु।

विषं हिदेहं संप्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम्
कफपित्तानिलांश्चानुसमं दोषान्सहाशयान्
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्प्यते।

अर्थ–विष शरीरमें व्याप्त होकर प्रथम ही सर्वशरीरगामी रक्त को दूषित करदेता है, तदनंतर कफ वात पित्त इन तीनों दोषों को तथा इनके स्थानों को भी दूषित कर देता है, तत्पश्चात् दोषों के साथ हृदय में स्थित होकर देह को नष्ट कर देता है।

प्रथम वेग के लक्षण।

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे पूर्वे प्रजायते।
जिह्वायाःस्यावतास्तंभोमूर्छात्रासःक्लमोवमिः

अर्थ–स्थावर विष के शरीर में स्थित होने पर उसके प्रथम वेग में जिह्वा में कालापन, जकडन, मूर्छा, त्रास, क्लांति और वमन होती है।

दूसरा वेग।

द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कंठे च वेदना।
विषं चामाशयं प्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम्।

अर्थ–विष के दूसरे वेग में कम्पन, पसीना, दाह और कण्ठ में वेदना होती है, तथा आमाशय में पहुँचकर हृदय में वेदना करता है।

तीसरा वेग।

तालुशोषस्तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम्
दुर्बले हरिते शूने जायते चास्य लोचने।
पक्वाशयगते तोदहिध्माकासांत्रकूजनम्।

अर्थ–विष के तीसरे वेग में तालु का सूखना, आमाशय में शूल छिदने कीसी अत्यंत वेदना, तथा दोनों नेत्रों में दुर्बलता हरापन और सूजन होती है। इसके पक्वा-शय में पहुँचने पर सुई छिदने कीसी वेदना हिचकी, खांसी और आंतों में कूजन होती है।

चौथा वेग।

चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–विष के चौथे वेग में सिर में अत्यन्त भारापन होजाता है, च शब्द से उक्त तीनों के लक्षण भी होते हैं।

पंचम वेग।

कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे।
सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना।

अर्थ–विष के पांचवें वेग में कफ का गिरना, देह में विवर्णता, सन्धियों में वेदना सम्पूर्ण दोषों का प्रकोप तथा पक्वाशय में वेदना होती है।

छटा वेग।

षष्ठे संज्ञाप्रणाशश्च सुभृशं चाऽतिसार्यते

अर्थ–विष के छटेवेग में बेहोशी तथा अत्यन्त दस्त होने लगते हैं।

सातवां वेग

स्कंधपृष्ठकटीभंगो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे॥

अर्थ–विषके सातवें वेग में कंधे, पीठ और कमर में टूटने कीसी पीडा तथा रोगी की मृत्युभी होजाती है।

प्रथम वेगकी चिकित्सा।

प्रथमे विषवेगे तु वांतं शीतांबुसेचितम्।
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्तमगदं पाययेद् द्रुतम्॥

अर्थ–स्थावर विषकी प्रथमावस्था में रोगीको प्रथम वमन कराकर उसके शरीर पर ठंडे जलकी धार डाले। तत्पश्चात् बहुत शीघ्र शहत और घी मिलाकर विषनाशक औषधियों का पान करावे।

द्वितीय वेगकी चिकित्सा॥

द्वितीये पूर्ववद्वांतं विरिक्तं चाऽनुपाययेत्

अर्थ–दूसरेवेग में प्रथमवेग की तरह वमन और शीतल जलका प्रयोग करके विरेचक विषनाशक औषधों का पान करावे।

तीसरे वेगकी चिकित्सा।

तृतीये गदपानं तु हितं नस्यं तथांजनम्।

अर्थ–तीसरेवेग में विषनाशक औषधियों का पान, नस्य और हितकारक अंजन होताहै।

चौथा वेग।

चतुर्थे स्नेहसंयुक्तमगदं प्रतियोजयेत्।

अर्थ–चौथेवेग में स्नेहसंयुक्त औषध प्रयोग करना चाहिये।

पांचवां वेग।

पंचमे मधुकक्वाथमाक्षिकाभ्यां युतं हितम्।

अर्थ–पांचवेंवेग में मुलहटी का काढा और शहत के साथ विषनाशक औषधों का पान करावै।

छटा वेग।

षष्ठेऽतिसारवत्सिद्धिः

अर्थ–छटेवेगमें अतिसारके सदृश चिकित्सा करना उचित है।

सातवां वेग॥

अवपीडस्तु सप्तमे।
मूर्ध्नि काकपदं कृत्वासास्र्यापिशितंक्षिपेत्

अर्थ–सातवेंवेग में रोगानुत्पादनीय अध्याय में कहा हुआ अवपीडन नाम नस्य देना चाहिये अथवा मस्तक पर काकपद नामक शस्त्रसे चिन्ह करके उसपर रुधिर साहित मांसको स्थापित करदे।

सर्व विषनाशक यवागू॥

कोशातक्यग्निकः पाठासूर्यवल्यमृतास्नयाः।
शेलुः शिरीषः किणिही हरिद्रे क्षौद्रसाह्वया
पुनर्नवे विकटुकं बृहत्यौ सारिवे बला।
पचा यवागूं निर्यूहेऽशीतां घृतमाक्षिकाम्
युंजाद्वेगांतरे सर्वविषघ्नीं कृतकर्मणः।

अर्थ–कडवी तोरई, चीता, पाठा, सूर्य-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बली (कनेर के सदृश पुष्पवाली) गिलोय हरड, शेलु, (लिसुआ) सिरस, किणही, हलदी, दारुहलदी, वटमाक्षिक, दोनों पुनर्नवा त्रिकुटा, दोनों कटेरी, दोनों सारिवा, खरैटी इनके काढेमें यवागू पकाकर ठंडा करले । फिर इस में घी और शहत मिलाकर देवे तथा वेग के बीचमें सब प्रकारकी विषनाशनी क्रिया करै ।

पेयाका विधान ॥

तद्वन्मधूकमधुकपद्मकेसरचंदनैः ॥ २३ ॥

अर्थ–महुआ, मुलहटी, कमलकेसर और रक्तचंदन इनके काढेमें पेया तयार करके ठंडी होने पर घी और शहत मिलाकर देवै ।

चन्द्रोदय औषध ।

अंजनं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
फलिनी त्रिकटु स्पृक्का नागपुष्पं सकेसरम् ॥
हरेणु मधुकं मांसी रोचना काकमालिका ।
श्रीवेष्टकं सर्जरसः शताह्वा कुंकुमं वला ॥
तमालपत्रतालीसभूर्जोशीरे निशाद्वयम् ।
कन्योपवासिनी स्नातां शुक्लवासा मधुद्रुतैः ॥
द्विजानभ्यर्च्य तैः पुष्पैः कल्पयेदगदोत्तमम् ।
वैद्यश्चात्र तदा मंत्रं प्रयतात्मा पठेदिमम् ॥
नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च ।
यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम् ।
एतेन सत्यवाक्येन अगदो मे प्रसिद्ध्यतु ।
नमो वैडूर्यमाते हुलुहुलु रक्ष मां सर्वविषेभ्यः
गौरि गांधारि चंडालि मातंगि स्वाहा ।
पिष्टे च द्वितीयो मंत्रः

ओ३म्हरिमायि स्वाहा ॥

अशेषविषवेतालग्रहकार्मणपाप्मसु ।
मरकव्याधिदुर्भिक्षयुद्धाशनिभयेषु च ॥
पानस्यांजनालेपमणिबंधादियोजितः ।
एष चंद्रोदयो नाम शांतिः स्वस्त्ययनं परम् ॥

अर्थ–रसौत, तगर, कूठ, हरिताल, मनसिल, प्रियंगु, त्रिकुटा, स्पृक्का, केसर-सहित नागपुष्प, हरेणु, मुलहटी, जटामांसी, गोरोचन, काकमालिका, सरलकाष्ठ, राल, सोंफ, केसर, खरैटी, तमालपत्र, तालीस पत्र, भोजपत्र, खस, हलदी और दारुहलदी इन सब द्रव्यों को संग्रह करले । फिर एक कन्या को उपवास कराके पुष्यनक्षत्र में स्नान कराके सफेद वस्त्र धारण कराके ब्राह्मणों का पूजन कराके उक्त द्रव्यों को उस कन्या से पिसवावै, पीसते समय वैद्य जितेन्द्रिय होकर 'नमःपुरुषसिंहाय' से लेकर स्वाहा तक प्रथम मंत्र का पाठ करता रहे । पिस जाने पर 'ॐ हरिमायि स्वाहा', इस दूसरे मंत्र का पाठ करे । इस चन्द्रोदय नामक अगद को पान, नस्य, अभ्यंजन और आलेपन द्वारा प्रयोग करे तथा पहुँचे पर बांध दे, यह औषध शांति स्वरूप और परम स्वस्त्ययन है । इसके सेवन से सब प्रकार के विष, वेतालग्रह, कार्मण क्लेश मारकरोग, दुर्भिक्ष, युद्ध और बज्रपात का भय ये सब दूर होजाते हैं ।

दूषीविष पीडित के लक्षण ।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा
दावाग्निघातातपशोषितं वा ।
स्वभावतो वा गुणहीनं युक्तं
दूषीविषाख्यं विषमभ्युपैति ॥ ३३ ॥
धीर्यौल्यभावादधिभाज्यमेत-
त्कफावृतं वर्षगणानुबंधि ।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुष्टान्नरोगी वृद्धरोचकार्तः ॥ ३४ ॥
मूर्छन् वमन् गद्गदवाक् विमुह्यन्
भवेच्च दूष्योदरलिंगजुष्टः।
आमाशयस्थे कफवातरोगी
पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो विष बहुत पुराना होगया है वा जो विषनाशक औषधियों के प्रयोग द्वारा हतवीर्य होगया है, जो दावाग्नि, वायु वा धूपके कारण शोषित होगया है, अथवा जो स्वाभाविक सुन्दर गुणोंसे युक्त नहींहै वह दूषीविष कहलाता है। दूषीविष वीर्य में अल्प होता है, इससे देखने में नहीं आताहै यह कफ से आवृत होने के कारण देह में बहुत काल पर्य्यन्त स्थिर रहता है, दूषीविष से पीडित मनुष्य का पुरीष फट जाताहै और उसके वर्ण में विकृति होजाती है, रक्त में दुष्टि, पिपासा, अरुचि, मूर्छा, वमन, वाणी में गद्गदता, मोह, तथा, दुष्योदर के लक्षणोंसे जुष्टता ये सब उपद्रव उपस्थित होते है। दूषीविषके आमाशय में स्थित होने पर कफ वात रोग तथा पक्वाशय में स्थित होने पर वात पित्त रोग पैदा होजाते हैं।

रसस्थ विष के लक्षण।

भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहांगो
विलूनपक्षः स यथा विहंगः।
स्थितं रसादिष्वयथा विचित्रान्
करोति धातुप्रभवान् विकारान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—दूषी विष से पीडित मनुष्यों के सिर के बाल उड़कर वह ऐसा होजाता है, जैसे पंखहीन पक्षी, अथवा रसादि धातुओं में स्थित होकर धातु में होनेवाले अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है।

दूषीविष पीडित के लक्षण।

प्रग्वाताजीर्णशीताभ्रदिवास्वप्नहिताशनैः
दुष्टं दूषयते धातूनतो दूषीविषं स्मृतम्।

अर्थ-पुरोवात, अजीर्ण, शीतलता, बादल, दिवानिद्रा, अहित भोजन इन कारणोंसे दूषित होकर वह रसरक्तादि धातुओं को दूषित कर देता है इससे इसे दूषीविष कहते हैं।

दूषी विषपर अवलेह।

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्ध्वाधश्चशोधितम्
दूषीविषारिमगदं लेहयेन्मधुना प्लुतम्।

अर्थ—दूषी विषसे पीडित रोगी को स्वेद द्वारा स्वेदित और वमन विरेचन द्वारा ऊपर नीचे के मार्गों से संशोधित करके दूषी विषनाशक औषधों को शहत में मिलाकर देवे

दूषीविषनाशक औषध।

पिप्पल्यो ध्यामकं मांसीरोध्रमेला सुवर्चिका
कुटंनटं मतं कुष्ठं यष्टी चंदनगैरिकम्।
दूषीविषारिनाम्नाऽयं चान्यत्राऽपि बाध्यते।

अर्थ—पीपल, रोहिषतृण, जटामांसी, लोध, इलायची, सज्जीखार, सौनापाठा, तगर, कूट, मुलहटी, चन्दन और गेरू, इन सब द्रव्यों को कूट पीसकर गोलियां बना लेवै। इसका नाम दूषीविसारि है अर्थात विषेश करके दूषी विषके दूर करनेमें प्रयुक्त होती है, परन्तु अन्य रोगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

विषलिप्तशस्त्रसे विद्धके लक्षण।

विषदिग्धेन विद्धस्तु प्रताम्यति मुहुर्मुहुः।
विवर्णभावं भजते विषादं चाशु गच्छति।
कीटैरिवावृतं चास्य गात्रं चिमिचिमायते
श्रोणिपृष्ठशिरः स्कंधसंधयः स्युः सवेदना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृष्णदुष्टास्रविस्रावी तृष्मूर्छाज्वरदाहवान् दृष्टिक्लोम्न्यवमथुश्वासकासकरः क्षणात्। आरक्तपीतपर्यंतः श्यावमध्योतिरुग्व्रणः ४३ सूयते पच्यते सद्योगत्वामांसं च कृष्णताम् प्रक्लिन्नं शीर्यतेऽभीक्ष्णं सपिच्छिलपरिस्रवम् कुर्यादमर्मविद्धस्य हृद्यावरणं द्रुतम्।

अर्थ–जो मनुष्य विषलिप्त अर्थात् जहर के बुझे हुए शस्त्रसे विद्ध होता है, वह बार बार मूर्च्छित होजाता है, उसका देह विवर्ण होजाता है, शीघ्रही विषाद को प्राप्त होताहै, और उसका देह कीडों से व्याप्त की तरह चिपचिपाहट करता है। कमर, पीठ, सिर कंधा और संधियों में वेदना होने लगती है, काला और बिगडा हुआ रुधिर निकलने लगता है, रोगी को तृषा, मुर्च्छा, ज्वर और दाह, पीडित करते हैं, दृष्टिमें कलुषता, वमन श्वास, खांसी ये उपद्रव शीघ्र पैदा होजाते हैं। उसके ऐसे घाव होजाते हैं जो किनारों पर ललाई लिये हुए पीले होते हैं और बीचमें श्यामवर्ण के होते हैं और इनमें घोर वेदना होने लगती है, घाव सूजकर शीघ्र पकजाता है, और मांस झटपट काला होकर प्रक्लिन्न होता हुआ गिर पडता है और उसमें से निरंतर पिच्छिल स्राव होता रहता है। मर्मस्थान के विद्ध न होनेपर भी हृदय का आवरण शीघ्रता पूर्वक होजाता है।

शल्याकर्षण में कर्तव्य।

शल्यमाकृष्य तप्तेन लोहेनानु वहेद्व्रणम्। अथवा मुष्ककश्वेतासोमत्वक्तार्कवार्द्रितः। शिरीषाद्रु गृध्रनख्याश्चक्षारेणप्रतिसारयेत् शुकनासामतिविषाव्याघ्रीमूलैश्च लेपयेत्

अर्थ–शल्यको खींचकर लोहे की प्रतप्त शलाका से व्रणको दग्ध कर देना चाहिये अथवा मोरवा, सफेद कटेरी, सोमकी छाल मजीठ, सिरस और बहवेरी इनमें से किसी एकके क्षारसे प्रतिसारणकरे। तथा श्योनाक की छाल, अतीस और कटेरी की जड इन का लेप करे।

विषलिप्तशस्त्रविद्ध की चिकित्सा।

कीटदष्टचिकित्सां च कुर्यात्तस्य यथार्हतः

अर्थ–विषलिप्त शस्त्रसे बिंधे हुए रोगी की चिकित्सा कीटदष्ट के सदृश करनी चाहिये।

दुर्गंधितव्रण का उपाय।

व्रणे तु पूतिपिशिते क्रिया पित्तविसर्पवत्

अर्थ–दुर्गंधित मांसवाले व्रणकी चिकित्सा पित्तविसर्प के समान करनी चाहिये।

विष देनेवालों का वर्णन।

सौभाग्यार्थैस्त्रियोभर्त्रे राज्ञेवाऽरातिचोदिताः गरमाहारसंयुक्तं यच्छेयुरासन्नवर्तिनः।

अर्थ–कोई कोई स्त्रियां सौभाग्य प्राप्ति केलिये अर्थात् स्वामी की आदरिणी होने के निमित्त भर्ता को विषमिश्रित भोजन दे देती है, तथा शत्रु से प्रेरित हुए राजा के निकटवर्ती मनुष्य राजा को विष देदेते हैं।

गर के लक्षण।

नानाप्राण्यंगशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम्। विषाणांचाल्पवीर्याणां योगो गरइति स्मृतः

अर्थ–अनेक प्रकार के जीवों के अंग और पुरीष, विरुद्ध औषधियों की भस्म और अल्पवीर्य विष इनके योग को गर अर्थात् संयोगज विष कहते हैं।

गरपीडित के लक्षण।

तेन पांडुःकृशोल्पाग्निःकासश्वासज्वरार्दितः वायुना प्रतिलोमेन स्वप्नचिंतापरायणः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महोदरयकृत्प्लीहीदीनवाग्दुर्बलोऽलसः।
शोफवान्सततार्ताघ्मातः शुष्कपाकरः क्षयी
स्वप्ने गोमायुमार्जारनकुलव्यालवानरान्।
प्रायः पश्यतिशुष्कांश्चवनस्पतिजलाशयान्
मन्यते कृष्णमात्मानं गौरी गौरं च कालकः
विकर्णनासानयनं पश्येत्तद्विहतेंद्रियः।

अर्थ--गर विष से पीडित रोगी पांडुवर्ण, कृश, मन्दाग्नियुक्त, खांसी, श्वास और ज्वर से पीडित होता है। वायुकी प्रतिलोमता, निद्रालुता, चिंतापरायणता, महोदर, यकृत प्लीहा, वचन में दीनता, दुर्बलता, आलस्य, सूजन, निरंतर उदराध्मान, हाथपांव में सूखा पन, क्षयी, स्वप्नमें गीदड, बिलाव, नकुल सर्प और बन्दरों का प्रायः दिखाई देना, तथा सूखी हुई वनस्पति और जलाशयों का दिखाईदेना, ये लक्षण होते हैं। और रोगी गौर वर्ण हो तो अपने तांई कृष्णवर्ण और कृष्णवर्ण हो तो गौरवर्ण मानता है, और गरविष के कारण हतेंद्रिय होकर अपने को नाक, कान और नेत्रहीन देखता है।

गरपीडित का नाश।

एतैरन्यैश्च बहुभिः क्लिष्टो घोरैरुपद्रवैः॥
गरार्तो नाशमाप्नोति काश्चित्सद्यो
ऽचिकित्सितः।

अर्थ--ऊपर कहेहुए इन उपद्रवों से तथा अन्य बिना कहे हुए घोर उपद्रवों से पीडित हुआ गरविष पीडित कोई २ रोगी चिकित्सा न किये जाने पर शीघ्रही मर जाता है।

गरपीडित का कृत्य।

गरार्तो वांतवान् भुक्त्वा तत्पथ्यं-
पानभोजनम्॥
शुद्धहृच्छालियेद्धेम सूत्रस्थानविधेः स्मरन्।

अर्थ--गरपीडित व्यक्ति वमन करने के पीछे हितकारी पान भोजन करके शुद्ध हृदय होनेपर सूत्रस्थानोक्त विधि के अनुसार सुवर्ण की भस्म का अभ्यास करे।

गरविषपर अवलेह।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम्।

अर्थ--सौनामाखी और सुवर्ण की भस्म इनको मिश्री और शहत मिलाकर चाटे इस के सेवन से अत्यन्त उग्र और सब प्रकार का संयोगज दारुण गरविष शांत होजाता है

गरोपहताग्नि का उपाय।

मूर्वामृतानतकणापटोलीचव्यचित्रकान्।
वचामुस्तविडंगानि तक्रं कोष्णांबुमस्तुभिः।
पिबेद्रसेन वाम्लेन गरोपहतपावकः॥५८॥

अर्थ--गरविष में अग्नि के नष्ट होनेपर मूर्वा, गिलोय, तगर, पीपल, पर्वल, चव्य, चीता, वच, नागरमोथा, वायविडंग, ये सब सम्पूर्ण द्रव्य तक्र, ईषदुष्णजल, दही का तोड़ वा अम्लरस के साथ पीने को देवै।

विषजन्य तृषाका उपाय।

पारावतामिषशटीपुष्करार्द्रं शृतं हिमम्।
गरतृष्णारुजाकासश्वासहिध्माज्वरापहम्॥

अर्थ--कबूतर का मांस, कचूर, पुष्करमूल, इनको डालकर औटाया हुआ जल ठंडा करके पान कराने से गरविष से उत्पन्न तृषा, वेदना, श्वास, हिचकी और ज्वर जाते रहते है।

सौ में एकका जीवन।

विषप्रकृतिकालाम्लदोषदृष्यादिसंगमे।
विषसंकटमुद्दिष्टं शतस्यैकोऽत्र जीवति॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–विषसे पीडित रोगी में यदि इन सब का समावेश हो अर्थात् उसकी प्रकृति यदि पैत्तिक हो, विषार्त होने का काल वर्षा हो, भोजन यदि सर्षपादि हो, दोष यदि पित्त हो, दूष्य यदि रक्त हो तो इन सब बातोंके होने पर सौ रोगियों में से एक भी बचे वा न बचै, यह संदेह है। विषप्रकृत्यादि सब योगों को विषसंकट कहते हैं।

क्षुधादि द्वारा विषकी वृद्धि।

क्षुत्तृष्णाघर्मदौर्बल्यक्रोधशोकभयश्रमैः।
अजीर्णदवचौ द्रवतः पित्तमारुतवृद्धिभिः॥
तिलपुष्पफलाघ्राणभूबाष्पघनगर्जितैः।
हस्तिमूषिकवाद्यानिःस्वनैर्विषसंकटैः॥
पुरोवातोत्पलामोदमदनैर्वर्धते विषम्।

अर्थ–क्षुधा, तृषा, पसीना, दुर्बलता, क्रोध शोक, भय, परिश्रम, अजीर्ण, मलकी द्रवता, पित्तवात की वृद्धि, तिलके फूल और फलों का सूंघना, भूवाष्प (पृथ्वी की भाप अर्थात् अबखरे) मेघध्वनि, हाथी और चूहे की खाल से मढे हुए बाजों का शब्द, विषसंकट, पुरोवात, उत्पल, आमोद और मदनप्राबल्य से विष की वृद्धि होती है।

शरदमें विषकी मंदवीर्यता।

वर्षासु चांबुयोनित्वात्सक्लेदं गुडवद्व्रजेत्॥
विसर्पति घनापाये तद्गस्त्यो हिनस्ति च।
प्रयाति मंदवीर्यत्वं विषं तस्मादुघनात्यये॥

अर्थ–वर्षाऋतु जल की योनि है, इस लिये सब वस्तु क्लिन्न हो जाती हैं। इसलिये इस ऋतु में विष गुडके समान क्लिन्न होकर शरीर में फैल जाता है और वर्षा के दूर होनेपर शरद ऋतुमें अगस्त्यरूप विषको नष्ट कर देता है, इसलिये इस ऋतुमें विष को मन्दता हो जाती है।

वैद्यको उपदेश।

इति प्रकृतिसात्म्यर्तुस्थानवेगबलाबलम्।
आलोच्य निपुणं बुध्या कर्मानंतरमाचरेत्॥

अर्थ–इस तरह प्रकृति, सात्म्य, ऋतु, स्थान, विषका वेग, रोगी का बलाबल इन सब बातों को विचारकर चिकित्सा में प्रवृत होना चाहिये।

कफज विषमें कर्तव्य।

श्लैष्मिकं वमनैरुष्णरूक्षतीक्ष्णैः प्रलेपनैः।
कषायकटुतिक्तैश्च भोजनैः शमयेद्विषम्॥

अर्थ–कफज विषकी शांति के लिये उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा वमन, तथा इन्हीं के द्वारा लेप और कषाय, कटु तथा तिक्त द्रव्यों के भोजन देवै।

पैत्तिक विषमें कर्तव्य।

पैत्तिकं स्रंसनैः सेकप्रदेहैर्भृशशीतलैः।
कषायतिक्तमधुरैर्घृतयुक्तैश्च भोजनैः॥

अर्थ–विरेचन, अत्यन्त शीतल परिषेक और लेप तथा कषाय, तिक्त और मधुर द्रव्य घृतयुक्त का आहार कराके पैत्तिक विषको शांत करना चाहिये।

वातिकविषका उपाय।

वातारमंकजयेत्स्वादुस्निग्धाम्ललवणान्वितैः।
सघृतैर्भोजनैर्लेपैस्तथैव पिशिताशनैः॥
नाघृतं स्रंसनं शस्तं प्रलेपो भोज्यमौषधम्।

अर्थ–वातिकविषको मधुर, अम्ल और लवणरस युक्त घृतसहित भोजन द्वारा, लेप द्वारा, कषायतिक्त और मधुर रसान्वित सघृत मांसका भोजन देकर शांत करना चाहिये। विषरोग में घृतहीन विरेचन, प्रलेप, भोजन वा कोई औषध प्रयोग न करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषमें घृतकी उत्तमता।

सर्वेषु सर्वावस्थेषु विषेषु न घृतोपमम्॥
विद्यते भेषजं किंचिद्विशेषात्प्रबलेऽग्निले।

अर्थ—सब प्रकार के विषोंमें तथा विष की संपूर्ण अवस्थाओं में घृत के समान और कोई औषध नहीं है। विशेष करके वाताधिक्य विष में घीअत्यन्त फलदायक औषधहै

विषको साध्यासाध्यत्व।

अयत्नात्श्लैष्मिकं साध्यं यत्नात् पित्ताशयाश्रयम्।
सुदुःसाध्यमसाध्यं वा वाताशयगतं विषम्

अर्थ—कफगतविष अल्पयत्नसे ही साध्य होता है, पित्ताशयगत विष यत्नसे साध्य होता है, तथा वाताशयाश्रित विष अत्यन्त दुःसाध्य वा असाध्य होता है।

इति अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायांउत्तरस्थाने विषप्रतिषेधो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः।

—(--०--)—

अथाऽतः सर्पविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहांसे सर्पविष प्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

सर्पोंके तीन भेद।

दर्वीकरा मंडलिनो राजीमंतश्च पन्नगाः।
त्रिधा समासतो भौमा भिद्यंते ते त्वनेकधा
व्यासतो योनिभेदेन नोच्यंतेऽनुपयोगिभिः।

अर्थ—संक्षेपसे सर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—दर्वीकर, मंडली और राजिमान् इनका स्थान भूमि होता है। ये योनिभेद से विस्तारपूर्वक अनेक प्रकार के होते हैं। विस्तारपूर्वक वर्णन की आवश्यकता न होने के कारण यहां सविस्तर वर्णन नहीं किया गया है।

दर्वीकरादि के विषकेगुण।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम्
विषं दर्वीकरादीनां क्रमाद्वातादिकोपनम्।

अर्थ—दर्वीकर, मंडली और राजिमान् इन तीनों प्रकार के सर्पोंके विष अतिशय रूक्ष, कटु, अम्ल, उष्णवीर्य, स्वादु और स्पर्श में शीतल होते है। इनके विष क्रमपूर्वक वात, पित्त और कफके प्रकोपक होते हैं।

विषोल्वणता का काल।

तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च॥
विषोल्वणा भवंत्येते व्यंतरा ऋतुसंधिषु।

अर्थ—दर्वीकरादि सर्पोंके विष तरुणावस्था से मध्यावस्था में और मध्यावस्था से वृद्धावस्था में वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसी तरह वर्षाऋतु की अपेक्षा जाडे में और जाडेकी अपेक्षा गरमी में इनका विष बढता है। तथा विजातियोंका विष ऋतुकी संधियों में बढता है।

दर्वीकर सर्पों के लक्षण।

रथांगलांगलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः॥
फणिनः शीघ्रगतयः सर्पा दर्वीकराः स्मृताः

अर्थ—चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक (सथिया) और अंकुश के चिन्हवाले, फणवाले, और शीघ्रगामी सर्प दर्वीकर होते हैं।

मंडली के लक्षण।

ज्ञेया मंडलिनोऽभोगा मंडलैर्विविधैश्चिताः
प्रांशवो मंदगमना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–जो सर्प अनेक प्रकार के मंडलाकार चिन्हों से युक्त, छोटे फणवाले, अंशुमान और मंदगामी होते हैं वे मंडली कहलाते हैं।

राजिमान् के लक्षण ।

राजीमंतस्तु राजिभिः ।
स्निग्धाविचित्रवर्णाभिस्तिर्यगूर्ध्वैर्विचित्रिताः

अर्थ–जिन सर्पों के देह पर तिरछी आडी लहरियादार रंगबिरंगी रेखा होती हैं उन्हें राजिमान् कहते हैं।

गोधर के लक्षण ।

गोधासुतस्तु गौधेरो विषे दर्वीकरैः समः ।
चतुष्पाद्

अर्थ–गोह के बच्चे को गोधेर वा गुहेरा कहते हैं, यह विषमें दर्वीकर के समान और चार पैर वाला होता है।

व्यंतरा के लक्षण ।

व्यंतरास्त्विथादेतेषामेव संकरात् ॥
व्यामिश्रलक्षणास्ते हि संन्निपातप्रकोपनाः।

अर्थ–दर्वीकरादि सर्पों के मेल से जो सर्प पैदा होते हैं, उन्हें व्यंतर कहते हैं। व्यंतर सर्पों के लक्षण मिश्रित होते हैं, इनके विष में त्रिदोष का प्रकोप होता है।

सर्पके काटने का कारण ।

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात् क्रुधः
पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात्।
दशंति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम्

अर्थ–भूख लगने पर, अथवा भय से, अथवा पांव लगजाने से, वा विषकी अधिकता से वा क्रोध से सर्प काटा करता है। अथवा पापवृत्ति से, किसी पुरातन बैर से, देवऋषि वा यमकी प्रेरणा से सर्प काटा करता है। इन सब हेतुओं में उत्तरोत्तर विषकी अधिकता होती है अर्थात् आहारार्थ से भय में, भयदंशन से पादस्पर्शदंशन में इत्यादि इत्यादि।

कारणानुसार चिकित्सा ।

आदिष्टकारणं ज्ञात्वा प्रतिकुर्याद्यथायथम्

अर्थ–सर्पदंशन के जो हेतु ऊपर कहे गये हैं, उनको जानकर यथायोग्य चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिये।

व्यंतरसर्प का मार्ग में बैठना ।

व्यंतरः पापशीलत्वान्मार्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥

अर्थ–व्यंतर भुजंगम का पापाचार शील स्वभाव होता है, इसलिये यह आने जानेके मार्ग में बैठ जाता है।

दष्टका साध्यासाध्य विचार ।

यत्र लालापरिक्लेदमात्रं गात्रे प्रदृश्यते।
न तु दंष्ट्राकृतं दंशं तत्तुंडाहतमादिशेत् ॥
एकं दंष्ट्रपदं द्वे वा व्यालीढाख्यमशोणितम् ।
दंष्ट्रापदे सरक्ते द्वे व्यालुप्तं त्रीणि तानि तु ॥
मांसच्छेदादविच्छिन्नरक्तवाहीनि दंष्ट्रकम् ।
दंष्ट्रापदानि चत्वारि तद्वदष्टनिपीडितम् ॥
निर्विषं द्वयमत्राद्यमसाध्यं पश्चिमं वदेत् ।

अर्थ–शरीर में यदि सर्पकी लार का चिन्ह दिखाई दे और दांत लगने का चिन्ह दिखाई न दे तो उसे तुंडाहत कहते हैं। यदि सर्पकी एक वा दो डाढके चिन्ह दिखाई दें पर रुधिर न निकला हो तो उसे व्यालीढ कहते हैं। दो डाढों के चिन्ह रुधिर समेत हों तो व्यालुप्त होता है। यदि तीन डाढों के चिन्ह हों और मांसमें छेद होकर निरंतर रक्त बहता हो तो उसे दंष्ट्रक कहते हैं। यदि चार डाढों के चिन्ह हों और दंष्ट्रक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की तरह मांसमें छिद्र होकर निरंतर रुधिर बहता हो उसे दष्टनिपीडित कहते हैं। इनमें से पहिले दो निर्विष होने के कारण साध्य है, बीचके दो कष्टसाध्य हैं और पांचवां दष्ट-निपीडित असाध्य होता है।

रक्तमें मिलकर विषका बढना।

विषंनाद्येयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः ॥ १४ ॥
रक्तमप्यपि तु प्राप्तं वर्धते तैलमंबुवत्।

अर्थ-सर्पका विष रक्तसे बिना मिले शरीर में नहीं फैलता है, रक्तसे मिलकर ही देह को नष्ट कर देता है, विष किंचिन्मात्र रक्तसे मिलजाने पर भी शरीर में चारों ओर ऐसे व्याप्त होजाता है, जैसे पानी के संसर्ग से तेल फैलता चला जाता है।

सर्पागाभिहत के लक्षण।

भीरोस्तु सर्पसंस्पर्शाद्भयेन कुपितोमिलः ॥
करोत्यकस्मात्कुरुते शोफं सर्पागाभिहतं तु तत्।

अर्थ-डरपोक आदमी के सर्पका स्पर्श हो जाने से जो भय उत्पन्न होता है, उससे कभी कभी सूजन पैदा हो जाती है, उसे सर्पागाभिहत कहते हैं।

शंकाविष के लक्षण।

दुरंधकारे विद्धस्य केनचिद्दष्टशंकया
विषोद्वेगो ज्वरच्छर्दिर्मूर्छादाहोऽपिवा भवेत्
ग्लानिर्मोहोतिसारो वा तच्छंकाविषमुच्यते

अर्थ-यदि अत्यंत अंधकार में कोई जंतु काट खाय और यह मालूम न हो सके कि किसने काटा है और सर्पके काटने की शंका हो तो विषोद्वेग, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार उत्पन्न होता है। इसी को शंकाविष कहते हैं।

साविषानिर्विषदंश के लक्षण।

तुद्यते सविषो दंशः कंडूशोफरुजान्वितः।
दह्यते ग्रथितः किंचिद्विपरीतस्तु निर्विषः ॥

अर्थ-जिस दंशमें सुई छिदने की सी पीडा, खुजली, सूजन, वेदना और दाह होता है तथा कुछ गांठ सी दिखाई देती है, उसे साविषदंश कहते हैं और इसके विपरीत लक्षण हों अर्थात् तोदादि न हों तो निर्विष समझना चाहिये।

दर्वीकरादि का प्रथम वेग।

पूर्वे दर्वीकृतां वेगे दुष्टं स्रावीभवत्यसृक्।
श्यावता तेन वक्त्रादौ सर्पतीव च कीटकाः

अर्थ-दर्वीकर सर्पों के विषके प्रथम वेग में श्यावर्ण दूषित रक्तका स्राव होता है। ऐसे विषके कारण काटे हुए व्यक्ति का मुख नासिका आदि श्यावर्ण हो जाते हैं और सब देहमें चींटियां सी चलने लगती हैं।

दर्वीकरके द्वितीयादि वेग।

द्वितीये ग्रंथयो वेगे तृतीये मूर्धि गौरवम्।
दुर्गंधो दंशविच्छेदश्चतुर्थे क्लीवनं वमिः ॥
संधिविश्लेषणं तंद्रा पंचमे पर्वभेदनम्।
दाहो हिध्मा च षष्ठे च हृत्पीडा गात्रगौरवम्
मूर्छा विपाकोऽतीसारः प्राप्य शुक्रं तु सप्तमे
स्कंधपृष्ठकटीभंगः सर्वचेष्टानिवर्तनम् ॥

अर्थ-दर्वीकर सर्पों के विष के दूसरे वेग में देह में ग्रंथि पैदा होजाती है। तीसरे वेग में मस्तक में भारापन, देह में दुर्गंध और दंश में क्लेद पैदा होजाता है। चौथे वेग में क्लीवन, वमन, संधिविश्लेषण और तन्द्रा होती है। पांचवें वेग में संधिविश्लेष तन्द्रा, वमन, पर्वभेद, दाह और हिध्मा होते हैं। छटे वेग में हृदय पीडा, देह में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारापन, मूर्च्छा, अविपाक और अतिसार होता है। सातवें वेग में विष शुक्र में पहुँच कर कंधा, पीठ, और कमर में टूटने कीसी पीड़ा पैदा होती है तथा शारीरक और मानसिक चेष्टाओं का सब प्रकार नाश करदेता है।

मण्डलिदष्ट के वेगों का लक्षण।

अथ मंडलिदष्टस्य दुष्टं पीतीभवत्यसृक्।
तेन पीतांगता दाहो द्वितीये श्वयथूद्भवः॥
तृतीये देशविक्लेदः स्वेदस्तृष्णा च जायते।
चतुर्थे ज्वर्यते दाहः पंचमे सर्वगात्रगः॥

अर्थ–मण्डली सर्प के विष के प्रथम वेग में रक्त दूषित और पीतवर्ण होजाताहै। इसी से देह में पीलापन और दाह पैदा हो जाता है, दूसरे वेग में सूजन, तीसरे वेग में पसीना, तृषा और देशस्थान में क्लेदता, चौथे वेग में ज्वर, और दाह और पांचवें वेग में सम्पूर्ण देह में दाह पैदा होजाता है।

राजिमान् के वेगों के लक्षण।

दष्टस्य राजिलैर्दुष्टं पांडुतां याति शोणितम्
पांडुता तेन गात्राणां द्वितीये गुरुताऽतिच॥ २५॥
तृतीये देशविक्लेदो नासिकाक्षिमुखस्रवाः।
चतुर्थे गरिमा मूर्धो मन्यास्तंभश्च पंचमे॥
गात्रभंगो ज्वरः शीतः शेषयोः पूर्ववद्भवेत्

अर्थ–राजिमान सर्प के विष के प्रथम वेग में बिगड़ा हुआ रक्त पीला पड़जाता है और इसी से देह भी पांडुवर्ण होजाता है। दूसरे वेग में देह में भारापन, तीसरे वेग में देशस्थान में क्लेद तथा मुख, नाक और नेत्रों से स्राव होने लगताहै। चौथे वेग में मस्तक में भारापन और मन्या स्तंभित हो जाती है। पांचवें वेग में गात्रभंग, ज्वर और शीत, छटे और सातवें वेग में ये सब लक्षण उपस्थित होतेहैं, जो दर्वीकार विषों के छटे सातवें वेग में होते हैं॥

वेगों का साध्यासाध्यत्व।

कुर्यात्पंचसु वेगेषु चिकित्सां न ततः परम्

अर्थ=प्रथम वेग से पांचवें वेग तक चिकित्सा करनी चाहिये। इससे आगे असाध्य समझकर चिकित्सा न करै।

जल के सर्पों का वर्णन।

जलाप्लुता रतिक्षीणा भीता नकुलनिर्जिताः
शीतवाततपव्याधिक्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः।
तूर्णं देशांतरायाता विमुक्तविषकंचुकाः।
कुशौषधीकंटकवद्ये चरंति च कानने।
देशं च दिव्याध्युषितं सर्पास्तेऽल्पविषामताः

अर्थ–जल में रहनेवाले, रतिक्रिया से क्षीण, डरेहुए, नकुल द्वारा पराजित, शीत वात आतप रोग क्षुधा तृषा और श्रम से पीडित, अन्य देश से शीघ्र आया हुआ, जिसने काचली छोड़दी हो जो कुशा औषधों और कांटों के वन में घूमते हैं। जो देवताओं के स्थान में निवास करते हैं, ये सब अल्प विषवाले होते हैं।

त्याज्य विषदष्ट के लक्षण।

श्मशानचितिचैत्यानौ पंचमीपक्षसंधिषु।
अष्टमीनवमीसंध्यामध्यरात्रिदिनेषु च।
याम्यानेयमघाश्लेषाविशाखापूर्वनैर्ऋते।
नैर्ऋताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत्
दष्टमात्रः सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः
स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति।

अर्थ–मरघट, ईंटों का पंजावा, बौद्धों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के पूजास्थान में, पंचमी अष्टमी और नवमी तिथियों में, पक्षकी संधिमें, सायंकाल वा आधीरात वा दुपहर के समय, भरणी, कृत्तिका, मघा, श्लेषा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुन और मूल नक्षत्रों में सूर्यास्त और सूर्योदय के समय, तथा मर्म स्थान में सर्प से काटा हुआ मनुष्य असाध्य होता है। काटते ही यदि रोगी का मुख और आंख सफेद पडजांय, सिरके बाल गिरपडें, जिह्वा अकड जाय, बार बार मूर्च्छा हो और ठंडा श्वास चलने लगे तो समझलेना चाहिये कि यह रोगी न जीवेगा।

अन्य लक्षण।

हिध्मा श्वासोवमिःकासोदृष्टमात्रस्यदेहिनः जायंते युगपद्यस्य स हृच्छूली न जीवति।

अर्थ--सर्पके काटते ही हिचकी, श्वास, वमन, और खांसी जिसके एक साथ उत्पन्न होजांय और हृदय में शूल होने लगे तो वह रोगी नहीं जीता है।

अन्य लक्षण।

फेनं वमति निःसंज्ञः श्यावपादकराननः। नासाग्रसादो भंगोंगे विक्लेदः ग्रथसंधिता विषपीतस्य दष्टस्य दिग्धेनाभिहतस्य च भवंत्येतानि रूपाणि संप्राप्ते जीवितक्षये।

अर्थ--जिसने विष पान किया हो, जिसको सर्पने काटा हो, जो विष लिप्त शस्त्र से विद्धहो, वह झाग डालने लगे, बेहोश होजाय उसके हाथ पांव और मुख काले पडजांय, नासिका टेढी पडजाय वा बैठजाय, अंगभंग होजाय, मल फटजाय और संधियां शिथिल होजांय तो जानलेना चाहिये कि इस मनुष्य की मृत्यु निकट आ पहुंची है।

अन्य लक्षण।

न नस्यैरचेतना तीक्ष्णैर्न क्षतात्क्षतजागमः दंडाहतस्य नोराजिः प्रयातस्य यमांतिकम्

अर्थ- जिस विषपीडित रोगी को तीक्ष्ण नस्य देनेसे भी होश न हो, देह में घाव करने से रुधिर न निकले, लकडी से मारने पर देह पर चिन्ह न हो तो जान लेना चाहिये कि इस रोगी की मृत्यु निकट आ पहुंची है।

विषकी शांति में शीघ्रता।

अतोऽन्यथा तुत्वरया प्रदीप्तागारवाग्निवत् रक्षन् कंठगतान् प्राणान्विषमाशुशमंनयेत्

अर्थ--इन उक्त लक्षणों से विपरीत लक्षणोंके होनेपर अर्थात तीक्ष्ण नस्यके प्रयोग से होश होनेपर, घावसे रुधिर निकलने पर लकडी का चिन्ह होनेपर कंठगत प्राणों की विषसे ऐसी शीघ्रतापूर्वक रक्षा करनी चाहिये जैसे जलते हुए घर की अग्निसे रक्षा करने के लिये प्रयत्न में शीघ्रता की जाती है।

विषके फैलने का काल।

मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयत्।

अर्थ--काटे हुए पुरुषके दंशस्थान में सौ मात्रा काल तक विष ठहर के देह में फैलने लगताहै और रुधिरादि धातुओं को दूषित करदेता है।

दंशका उत्कर्तन।

एतस्मिन्नंतरे कर्म दंशस्योत्कर्तनादिकम्। कुर्याच्छीघ्रं यथा देहेविषवल्ली न रोहति।

अर्थ--इसी अवसर में अर्थात् विषके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दंशस्थान में रहते रहते दंशस्थान को कतर डाले, इस काममें बहुत शीघ्रता करनी चाहिये जिससे विष की बेल देहमें न फैलने पावै।

दष्टपुरुष का कर्तव्य ॥

दष्टमात्रो दशेदाशु तमेव पवनाशिनम्।
लोष्टमहीं वा दशनैश्छित्त्वा वाऽनु ससंभ्रमम्
निष्ठीवेन समालिपेद्दंशं कर्णमलेन वा।

अर्थ--जिस सर्पने काटा हो उसी सर्पको तत्क्षण डसा हुआ आदमी काट खावै। अथवा लोष्ट वा भूमिको दंश द्वारा छेदन करके शीघ्रही उस थूक से दंशस्थान पर लेपन करदे। अथवा घाव पर कान का मैल लगाने से भी विष नष्ट होजाता है।

दंशस्थान पर बंधन ॥

दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टां चतुरंगुले।
क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मन्त्रैश्च मंत्रवित्
अंबुवत्सेतुबंधेन बंधेन स्तभ्यते विषम्।
न वहंतिसिराश्चाऽस्याविषं बंधाभिपीडिताः

अर्थ-दंशस्थानके चार अंगुल ऊपर रेशमी आदि वस्त्रसे वा वेणीसे पट्टी बांधदेवे और सिद्ध मंत्रों को पढ पढकर फूंक मारदे। जैसे बंद बांधने से पानी रुकजाता है वैसेही बंद बांधनेसे विष भी रुकजाताहै। बंद लगादेने से सिराओं में रुधिरका दौडना बन्द होजाताहै

दंशका उद्धरण ॥

निष्पीडधानूष्मरेहंशं मर्मसंध्यगतं तथा।
न जीर्यते विषावेगो बीजनाशादिवांऽकुरः

अर्थ--तत्पश्चात् चारों ओर से भींचकर मर्मस्थान को छोडकर अन्यत्र सब जगह से शस्त्रद्वारा दंशको निकाल कर फेंकदे, ऐसा करनेसे विषका आवेग रुकजाता है, जैसे बीजका नाश होनेसे अंकुर नहीं जमताहै।

दंशदहनादि ॥

दंशं मंडलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम्
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ४५
करोतिभस्मसात्सद्योवह्निःकिंनाम न क्षणात्

अर्थ--मंडली सर्पों की प्रकृति पैत्तिक होती है, इनके दंशमें अग्निका प्रयोग करने से अनर्थ होजाता है। अन्य सर्पोंके दंशमें अग्नि से प्रतप्त किये हुए सुवर्ण वा लोहे आदि किसी धातुसे अथवा जलते हुए कोयलों से दग्ध करदेना चाहिये। अग्नि संपूर्ण वस्तुओं को जलाकर शीघ्र भस्म कर देती है, फिर यह क्षतस्थ विषको शीघ्र भस्मीभूत करदेती है, इसमें आश्चर्य ही क्या है।

अगद से बारबार लेपन।

आचूषेत्पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः
प्रच्छायांतररिष्टायां मांसले तु विशेषतः।
अंगं सहैव दंशेन लेपयेदगदैर्मुहुः ॥ ४७ ॥
चंदनोशीरयुक्तेन सलिलेन च सेचयेत्।

अर्थ--जो पित्तकी अधिकतावाले सर्पने काटा हो तो बंधनों के बीचमें पछने लगाकर मुखमें मृत्तिका, भस्म, विषनाशक औषध वा गोबर भरकर दंशस्थान को चूसना चाहिये। यदि दंशस्थानका मांसपुष्ट हो तो विशेषकरके चूसना चाहिये, तथा दंशस्थान का बार बार विषनाशक औषधियों से लेपन करना चाहिये। तथा चंदन और खसके जलसे देहको सेचन करे।

विषफैलने पर सिराव्यध।

विषे प्रविसृते विध्येत्सिरां सा परमा क्रिया
रक्ते निर्हियमाणे हि कृत्स्नं निर्हियते विषम्

अर्थ--विषके देहमें फैलने पर सिराका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेधन करके रक्तमोक्षण करना चाहिये। इसमें रक्तमोक्षण उत्तम चिकित्सा है, क्योंकि रक्तके निकलने के साथसाथ विषभी निकल जाता है।

सविषरुधिर के लक्षण।

दुर्गंधं सविषं रक्तमग्नौ चटचटायते ४९
यथादोषं विशुद्धं च पूर्ववल्लक्षयेदसृक्।

अर्थ–सविषरुधिर दुर्गंधित होता है, अग्निमें डालने से इसमें से चट चट शब्द निकलता है। विशुद्धरक्त दोषानुसार पूर्ववत् सिराव्यधविधि अध्याय में कहे हुए लक्षणों द्वारा जाना जाता है।

अदृश्यसिराओं से रक्तमोक्षण।

सिरास्वदृश्यमानासु योज्याः शृंगजलौकसः

अर्थ–शोथादि द्वारा यदि सिरा दिखाई न देती हो तो सींगी वा जोक लगाकर रक्त निकालना चाहिये।

स्रुतशेषरक्तका स्तंभन।

शोणितं स्रुतशेषं च प्रविलीनं विषोष्मणा
लेपसेकैस्तु बहुशः स्तंभयेद्धृशशीतलैः।

अर्थ–विषकी गरमी के कारण टपकने से बचे हुए और प्रलीन रक्तको बार बार शीतल लेप और परिषेक द्वारा रोकना उचित है

अस्कन्नादि रक्तमें मूर्च्छा।

अस्कन्ने विषवेगाद्धि मूर्छायमदहृद्रवाः।
भवंति तान् जयेच्छीतैर्बीजैश्चारोमहर्षतः

जो रुधिर न निकाला जाय तो विषके वेग से मूर्च्छा, मद और हृदयद्रव उपस्थित होते हैं। इसलिये शीतल प्रलेप और परिषेकादि द्वारा इन सब रोगोंको शांत करके जब तक रोमांच खडे न हों तब तक ठंडे पंखे से हवा करता रहै।

स्कन्नरुधिर में शांति।

स्कन्ने तु रुधिरे सद्यो विषवेगः प्रशाम्यति

अर्थ–रुधिर के निकल जाने पर विषका वेग शीघ्र शांत हो जाता है।

विषशांत होनेपर घृतपान।

विषं कर्षति तीक्ष्णत्वाद् हृदयं तस्यगुप्तये
पिबेद्घृतं घृतक्षौद्रमगदं वा घृताप्लुतम्।
हृदयावरणे चास्य श्लेष्मा हृद्युपचीयते॥

अर्थ–विष तीक्ष्ण होने के कारण हृदय को खींचता है। इसलिये हृदय की रक्षा के लिये घी, शहत और घी अथवा घृतप्लुत औषध पान करना चाहिये, इस रोगी के हृदय का आवरण होने पर हृदय में कफ इकट्ठा होजाता है॥

विषार्त को वमन।

प्रवृत्तगौरवोत्क्लेशहृल्लासं वामयेत्ततः।
द्रवैः कांजिककौलत्थतैलमद्यादिवर्जितैः॥
वमनैर्विषघ्नद्रव्यैश्च नैषं व्याप्नोति तद्वपुः।

अर्थ–विष पीडित रोगी को गुरुता, उत्क्लेश और वमन वेग उपस्थित होने पर कांजी, कुलथी, तेल और मद्यादिको छोडकर अन्य विषनाशक औषधियों द्वारा वमन कराना चाहिये, विषनाशक वमनों के कारण विषदेह में व्याप्त नहीं हो सकता है॥

भुजंगदोषानुसार क्रिया॥

भुजंगदोषप्रकृतिस्थानवेगविशेषतः॥ ५६॥
सुसूक्ष्मं सम्यगालोच्य विशिष्टां चा-
ऽऽचरेत्क्रियाम्।

अर्थ–सर्प की जाति, दोष, प्रकृति, दष्टस्थान और विषका वेग इन सब बातों पर बहुत सूक्ष्म रूप से विचार करके चिकित्सा करनी चाहिये॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दर्वीकर दष्ट में पानादि ॥

सिंतुबारिलमूलानि श्वेता च गिरिकर्णिका ॥
पानं दर्वीकरैर्दष्टे नस्यं मधु सपाकलम् ।

अर्थ-दर्वीकर सर्पद्वारा काटे जाने पर संभालू की जड और सफेद गिरिकर्णिका, कूठ और शहत इनसे बनाया हुआ पानक देना चाहिये ।

कालेसांप की दवा ।

कृष्णसर्पेण दष्टस्य लिपेद्दंशं हृतेऽसृजि ॥
शारटीनाकुलीभ्यां वा तीक्ष्णमूलविषेण वा
पानं च क्षौद्रमंजिष्ठागृहधूमयुतं घृतम् ॥

अर्थ-काले सर्पके काटने पर दंश-स्थान से रक्त निकालकर चिरमिठी और नाकुलीको पीसकर लेप करे, अथवा तीक्ष्ण मूल विषका लेप करे अथवा शहद, मजीठ गृहधूम मिलाकर घीका पान करे ।

राजिमान् सर्पों की दवा ॥

तंदुलीयककाश्मर्यकिणिहीगिरिकर्णिकाः ।
मातुलुंगी सिता सेलुः पाननस्यांजनैर्हिताः ॥
अगदः फणिनां घोरे विषे राजीमतामपि ।

अर्थ-चौलाई, खंभारी, किणही, विष्णुक्रांता, बिजौरे की जड, मिश्री, और सेलू इन सब द्रव्यों को जलमें पीसकर पान, नस्य और अंजनद्वारा प्रयोग करने से फणधारी और राजिमान् सर्पोंका दारुण विष दूर होजाता है ।

मण्डली सर्पों की औषध ॥

समाः सुगंधा मृद्वीका श्वेताख्या गजदंतिका
अर्धांशं सौरसं पत्रं कपित्थं बिल्ववाडिमम्
सक्षौद्रो मंडलिविषे विशेषाद्गदो हितः ॥

अर्थ-रास्ना, दाख, श्वेत अपराजिता, और गजदंती ये सब समान भाग ले तुलसी के पत्ते, कैथ, बेलागिरी, अनार, प्रत्येक आधा भाग । इन सब द्रव्यों को शहत के साथ सेवन कराने से मंडली सर्पों का विष दूर होजाता है ।

हिमवान औषध ।

पंचवल्कवरायष्टीनागपुष्पैलबालुकम् ।
जीवकर्षभकोशीरं सितापद्मकमुत्पलम् ॥
सक्षौद्रो हिमवान्नाम हंति मंडलिनां विषम् ।
लेपात्सूवयथुर्वीसर्पविस्फोटज्वरदाहहा ॥

अर्थ-पंचवल्कलता (वड, गूलर, पीपल, बेत और सिरसकी छाल), त्रिफला, मुलहटी, नागकेसर, एलुआ, जीवक, ऋषभक, खस, मिश्री, पद्माख, नीलोत्पल, इन सब द्रव्यों को पीसकर शहत के साथ मिलाकर चाटने से मंडली सर्पों का विष दूर हो जाता है, इसका लेप करने से सूजन, विसर्प, विस्फोटक, ज्वर और दाह जाते रहते हैं । इस औषधका नाम हिमवान अगद है ।

मंडलीदष्ट पर पान ।

काश्मर्यवटशुंगानि जीवकर्षभकौ सिता ।
मंजिष्ठा मधुकं चेति दष्टो मंडलिना पिबेत् ॥

अर्थ-खंभारी, बटके अंकुर, जीवक, ऋषभक, मिश्री, मजीठ, मुलहटी, इन सब द्रव्यों को जलमें घोटकर पान कराने से मंडली सर्पोंका विष दूर होजाता है ।

गोनसविष की औषध ॥

वंशत्वग्बीजकंटुकापाटलीबीजनागरम् ।
शिरीषबीजातिविषे मूलं गायेषुकं वचा ॥
पिष्टो गोधारिणाष्टांगो हंति गोनसजं विषम

अर्थ-बांस की छाल और बीज, कुटकी, पाटला के बीज, सोंठ, सिरस के बीज, अतीस, खरैटी की जड़, वच, इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अष्टांग औषधको गोमूत्र में पीसकर प्रयोग करने से गुहेरे का विषदूर होजाताहै।

राजिमान् सर्पों की दवा।

कटुकातिविषाकुष्ठगृहधूमहरेणुकः ॥ ६७ ॥
सक्षौद्रश्चोषतगरा हंति राजीमतां विषम्।

अर्थ-कुटकी, अतीस, कूठ, गृहधूम, हरेणु, मधु, त्रिकुटा, तगर। इन सब द्रव्यों का सेवन करने से राजिमान् सर्पोंका विष दूर होजाता है।

कांडचित्रा का दंश।

निजनेत्रकांडचित्राया दंशं यामद्वयं भुवि।
खनित्वा प्रक्षितं सर्पिर्धान्यमृद्भ्यां प्रलेपयेत्।
पिबेत्पुराणं च घृतं वराचूर्णावचूर्णितम् ॥
जीर्णे विरिक्ते भुंजीत यवान्नं सूपसंस्कृतम्।

अर्थ-कांडचित्रानामक सर्पके काटने पर काटे हुए स्थानको दोपहर तक धरती में गाढ दे। पीछे निकालकर घी और धान्य-मृतिका से लेप करे और त्रिफला का चूर्ण मिलाकर पुराना घी पान करावै। इसके पचजाने पर विरेचन होजाने के पीछे दाल से संस्कार किया हुआ जौके अन्नका पथ्य देवै।

व्यंतरदष्ट की चिकित्सा।

करवीरार्ककुसुममूललांगलिकाकणाः ॥
कलकेयंवारनालेन पाठामरिचसंयुताः।
एष व्यंतरदष्टानामगदः सार्वकार्मिकः ॥

अर्थ-कनेर के फूल, आककी जड, कलहारी, पीपल, पाठा और कालीमिरच इन सबको कांजी के साथ पीसले। यह औषध व्यंतरनामक सर्पों के विष दूर करने में परमोपयोगी है।

भुजंगदष्ट पर पानादि।

शिरीषपुष्पस्वरसे ससप्ताहं मरिचं सितम्।
भावितं सर्पदष्टानां पाने नस्यांजने हितम् ॥

अर्थ-सिरस के फूलके रसमें सफेद मिरचों को सात दिन तक भावना देकर सर्प से काटे हुए रोगीको पान, नस्य और अंजन द्वारा देना हित है।

तक्षकदष्ट पर पान।

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुष्पलम्।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥

अर्थ-तगर, कूठ दो दो पल, घी और मधु चार चार पल इन से तयार की हुई औषध तक्षकके काटे हुए पर हित है।

दर्वीकर के प्रथमवेग की चिकित्सा।

अथ दर्वीकृतां वेगे पूर्वं विस्राव्य शोणितम्।
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं त्वरितं पिबेत् ॥

अर्थ-दर्वीकर के प्रथम वेग में रुधिर को निकालकर मधु और घृत से युक्त औषध बहुत शीघ्र देनी चाहिये।

द्वितीयवेग की चिकित्सा।

द्वितीये वमनं कृत्वा तद्वदेवागदं पिबेत्।

अर्थ-दर्वीकरके दूसरे वेगमें वमन कराके फिर तद्वत् औषध का प्रयोग करे।

तृतीयादि वेगकी चिकित्सा।

विषापहैः प्रयुंजीत तृतीयेऽजननाधने ॥
पिबेच्चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूं वमने कृते।
षष्ठपंचमयोः शीतैर्दिग्धं सिक्तमभीक्ष्णशः ॥
पाययेद्वमनं तीक्ष्णं यवागूं च विषापहैः।
अगदं सप्तमे तीक्ष्णं युंज्यादंजननस्ययोः ॥
कृत्वावगाढं शस्त्रेण मूर्ध्नि काकपदं ततः।
मांसं सरुधिरं तस्य चर्म वा तत्र निक्षिपेत् ॥

अर्थ-दर्वीकरके तीसरे वेगमें विषनाशक अंजन और नस्य का प्रयोग करे। चौथे वेगमें वमन कराके पूर्वोक्त यवागू पान करावे पांचवें और छटे वेगमें अधिकतर शीतल लेप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और शीतल परिषेक करके तीक्ष्ण वमन देकर विषनाशक यवागू पान करावे । सातवें वेगमें तीक्ष्ण अगद की नस्य और अंजन देवे । तत्पश्चात् शस्त्रद्वारा मस्तक पर गाढतर काकपद चिन्ह करके उसमें रुधिर सहित मांस और चमडा लगावे ।

मंडलीसर्पके वेगोंका उपाय ।

तृतीये वमितः पेयां वेगे मंडलिनां पिबेत् ।
अतीक्ष्णमगदं षष्ठे गणं वा पद्मकादिकम् ॥

अर्थ–मंडली सर्पके तीसरे वेगमें वमन कराके पेया पान करावे । छटे वेगमें अतीक्ष्ण अगद और पद्मकादिगण का प्रयोग करना चाहिये ।

राजिमान के वेगोंमें कर्तव्य ।

आद्येवगाढं प्रच्छाय वेगे दष्टस्थ राजिलैः ।
अलाबुना हरेद्रक्तं पूर्ववच्चागदं पिबेत् ॥
षष्ठेऽजनं तीक्ष्णतममवपीडं च योजयेत् ।

अर्थ–राजिमान सर्पोंके प्रथम वेगमें शस्त्रद्वारा दंशस्थान को चीरकर अलाबू यंत्र द्वारा रक्त निकाल डाले तदनंतर पूर्ववत् अगद पान करावे । छटे वेगमें अत्यन्त तीक्ष्ण अंजन और अवपीडन का प्रयोग करे ।

अनुक्त वेगोंमें कर्तव्य ।

अनुक्तेषु च वेगेषु क्रियां दर्वीकरोदिताम् ॥

अर्थ–जिन वेगों का वर्णन नहीं किया गया है उनमें दर्वीकर सर्पके कहे हुए उन उन वेगों के सदृश चिकित्सा करे ।

गर्भिण्यादि की चिकित्सा ।

गर्भिणीबालवृद्धेषु मृदुं विध्येत्सिरां न च ।

अर्थ–गर्भिणी स्त्री, बालक वा वृद्ध को सर्प ने काटा हो तो मृदु क्रिया करना चाहिये, इनका सिराव्यध कदापि न करे ।

सर्वविषनाशक पान ।

त्वक्मनोहानिशे वक्रं एसः शार्दूलजो नखः ॥
तमालः केसरं शीतं पीतं तंडुलवारिणा ।
हंति सर्वविषाण्येतद्वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥

अर्थ–दालचीनी, मनसिल, हलदी, दारुहलदी, तगर, गंधरस, व्याघ्रनख, तमाल और नागकेसर इनै सबको ठंढे पानी में पीसकर तंडुल जल के साथ पान करे । यह औषध सम्पूर्ण विषों को इस तरह दूर करदेती है जैसे इन्द्र का वज्र असुरों का नाश करदेता है ।

आर्तों को अञ्जन ।

विल्वस्य मूलं सुरसस्य पुष्पं
फलं करंजस्य नतं सुराह्वम् ।
फलत्रिकं व्योषनिशाद्वयं च
वस्तस्य मूत्रेण सुसूक्ष्मपिष्टम् ॥
भुजंगलूतोंदुरवृश्चिकाद्यै-
र्विषूचिकाजीर्णगरज्वरैश्च ।
आर्तान्नरान् भूतविधर्षितांश्च
स्वस्थीकरोत्यंजनपाननस्यैः ॥ ८५ ॥

अर्थ-बेलकी जड़, तुलसी की मंजरी, कंजा, तगर, देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, दोनों हलदी, इन सबको बकरी के मूत्र में बारीक पीस ले, इसका अंजन, पान और नस्यद्वारा प्रयोग करने से सर्प, मकड़ी, चूहा, बिच्छू, इनके विष तथा विसूचिका अजीर्ण, विषज्वर और भूतवेग से पीडित रोगी स्वस्थ होजाते हैं ।

प्रलेपादि ।

प्रलेपाद्यैश्च निःशेषं दंशाद्दष्युद्धरेद्विषम् ।
भूयो वेगाय जायेत शेषं दूषीविषाय वा ॥

अर्थ–प्रलेपादि द्वारा दंशस्थान ही से नहीं किंतु सब देह से विषको निकालडाले,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्योंकि शेष रहजाने पर वह बचाहुआ विष फिर वेग धारण करता है, अथवा दूषी विष होजाता है।

विषापगम में कर्तव्य।

विषापायेऽनिलं कुद्धं स्नेहादिभिरुपाचरेत्। तैलमद्यकुलत्थाम्लवर्जयैः पवननाशनैः ८७
पित्तं पित्तज्वरहरैः कषायस्नेहवस्तिभिः। समाक्षिकेण वर्गेण कफमारग्वधादिना।

अर्थ—विष के दूर होजाने पर भी विष से कुपित हुए वायु का तेल, मद्य, कुलथी, और खटाई से रहित वातनाशक स्नेहादि के प्रयोग से शमन करे, पित्तज्वर नाशक कषाय, और स्नेहवस्ति द्वारा विष से कुपित हुए पित्तका का शमन करे, तथा मधुसयुंक्त आरग्वधादि गणोक्त द्रव्यों के काथ से विष से कुपित हुए कफ का शमन करे।

शंकाविष में कर्तव्य॥

सिता वैगंधिको द्राक्षापयस्या मधुकं मधु। पाने समंत्रपूतांबुप्रोक्षणं सांत्वहर्षणम् ८९
सर्पांगाभिहतेयुंज्यात्तथा शंकाविषार्दिते।

अर्थ—सर्पांगाभिहत (सर्प के देह से-चोट लगाहुआ) रोगी के तथा शंका विष से पीडित रोगी को मिश्री, गोंदी, दाख, दूधी, मुलहटी और शहत इन सब द्रव्यों से तयार किया जल मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करके पान करावे, उसी जल से प्रोक्षण करे, आश्वासन वाक्य कहै और रोगी को प्रसन्न करने का प्रबन्ध करै।

कर्केतनादि धारण।

कर्केतनं मरकतं वज्रं वारणमौक्तिकम् ९०
वैदूर्यगर्दभमणिं पिचुकं विषमूषिकाम्।
हिमवद्गिरिसंभूतां सोमराजीं पुनर्नवाम् ९१
तथा द्रोणां महाद्रोणां मानसीं सर्पजंमणिम्
विषाणि विषशांत्यर्थं वीर्यवंति च धारयेत्

अर्थ—कर्केतननामक मणि विशेष, मरतकमणि, हीरा, गजमुक्ता, वैदूर्यमणि, गर्दभमणि, पिचुक, विषदूषिका, हिमालय पर उत्पन्न हुई सोमराजी, पुनर्नवा, द्रोण, महाद्रोण, मानसी, सर्पमणि आदि उग्रवीर्यवाली मणियों को विषकी शांति के निमित्त धारण करे।

छत्रादि धारण।

छत्री जर्जरपाणिश्च चरेद्रात्रौ विशेषतः। तच्छायाशब्दविस्त्रस्ताः प्रणश्यंति भुजंगमाः

अर्थ—सब समय और विशेष करके रात्रिमें जो छत्री लगाकर और ताली फटकार कर विचरते हैं उनकी छत्री की छाया से और ताली के शब्दसे डरकर सर्प भाग जाता है।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थानेसर्पविषप्रतिषेधोनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः कीटलूतादिविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से कीटलूतादि विषप्रतिषेध नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

चारप्रकार के कीट।

सर्पाणामेव विण्मूत्रशुक्रांडशवकोथजाः। दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च युक्ताः कीटाश्चतुर्विधाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-सर्पोंके विष्ठा, मूत्र, वीर्य, अंड, सडेहुए शबसे जो कीडे पैदा होते हैं, वे चार प्रकार के होते हैं, यथा—वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज।

वातजकीट के लक्षण।

दष्टस्य कीटैर्वायव्यैर्दंशस्तोदरुजोल्बणः।

अर्थ-इन कीडोंमें से यदि वातज कीडा काट खाय तो काटे हुए स्थानमें तोद और वेदना की अधिकता होती है।

पैत्तिककीटदष्ट के लक्षण।

आग्नेयैरल्पसंस्रावो दाहरागविसर्पवान् २
पक्वपीलुफलप्रख्यः खर्जूरसदृशोऽथवा।

अर्थ-पैत्तिक कीडेके काटने से दंश-स्थानमें अत्यन्त स्राव, दाह, ललाई, और विसर्पता होती है, तथा यह पके हुए पीलु के फल और खिजूर के फलके सदृश हो जाता है।

कफजकीट के दंशके लक्षण।

कफाधिकैर्मंदरुजः पक्वोदुंबरसंनिभः ॥ ३ ॥

अर्थ-श्लैष्मिक कीडेके काटने पर मंद वेदना और पके हुए गूलर कासा आकार होजाता है।

सान्निपातिक कीटका लक्षण।

स्रावाढ्यःसर्वलिंगस्तुविवर्ज्यःसान्निपातिकैः

अर्थ-त्रिदोषाधिक्य कीडे के काटने पर तीनों दोषों के कीडों के काटने के लक्षण उपस्थित होते हैं, दंशस्थानमें से स्राव अधिक होता है, यह असाध्य होता है।

कीटदष्ट के वेगोंका वर्णन।

वेगास्तत्र सर्पवच्छोफो वर्धिष्णुर्विस्फोटरक्तता
विस्रंसिनौ च मूर्छाभ्रमः श्वासोऽतिवेदना

अर्थ-कीडों के काटने पर भी सर्प के डसने के से वेग होते हैं, इसमें बढनेवाली सूजन, रुधिर में दुर्गन्धि, सिरा और नेत्रों में भारापन, मूर्च्छा, भ्रम, श्वास और वेदना की अधिकता होती है।

सब दंशों में कर्णिकादि।

सर्वेषां कर्णिकाशोफो ज्वरः कंडूररोचकः

अर्थ-संपूर्ण दंशों में मांसकी कर्णिका, सूजन, ज्वर, कंडू और अरुचि होती है।

वृश्चिकदंश के लक्षण।

वृश्चिकस्य विषं तीक्ष्णमादौ दहति वह्निवत्
ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति।
दंशःसद्योऽतिरुक्श्यावस्तुद्यतेस्फुटतीव च

अर्थ-बीछू का विष अति तीक्ष्ण होता है, प्रथमही यह अग्नि के समान जलन पैदा करता है और शीघ्रही ऊपरको चढ कर फिर दंशस्थान में आकर ठहर जाता है बीछू के डंक में तत्काल बडी वेदना होने लगती है। इसमें श्यामवर्णता, सोद और फटने की सी पीडा होती है।

तीन प्रकार के बिच्छू।

ते गवाश्विशकृत्कोथाद्विग्धदष्टादिकोथतः।
सर्पकोथाच्च संभूता मंदमध्यमहाविषाः।

अर्थ-गौ आदि पशुओं के सडे हुए गोबर से, विषसे लिप्त वा विषधर प्राणियों के काटी हुई वस्तुओं की सडाहटसे अथवा सडे हुए सर्प से जो बीछू पैदा होते हैं वे तीन तरह के होते हैं, यथा—मंदविष, मध्य विष और महाविष।

मंदविष बिच्छूओं के लक्षण।

मंदाः पीताः सिताःश्याराःक्षकर्बुरमेचकाः
रोमशा बहुपर्वाणो लोहिताः पांडुरोदराः।

अर्थ-मंदविष वाले बिच्छू सब पीले,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सफेद, श्याव, विचित्र, काले वा लाल देह के होते हैं, इनके देह रूक्ष, रोमयुक्त बहुत से जोड़ वाले और पीले पेट वाले होते हैं।

मध्यमविष बिच्छूओं के लक्षण।

धूम्रोदराक्षिपर्वाणो मध्यास्तु कपिलारुणाः
पिशंगाः शबलाश्चित्राः शोणिताभा

अर्थ–मध्य विषवाले बिच्छू धूम्रोदर, तीन जोडवाले, कपिल, अरुण वा पिंगल वर्ण होते हैं, ये अनेक प्रकार के वर्णों से चित्रित और रुधिर की रंगत के से होतेहैं।

महाविष बिच्छूओं के लक्षण।

महाविषाः।

अन्याभा द्व्येकपर्वाणो रक्तासितसितोदराः

अर्थ–महाविष वाले बिच्छू संपूर्ण अग्नि की आभा के सदृश, एक वा दो जोडवाले होते हैं, इनके पेट रक्त, कृष्ण वा सफेद होते हैं।

महाविष दष्ट लक्षण।

तैर्दष्टः शूनरसनः स्तब्धगात्रो ज्वरार्दितः।
क्लेदमन् शोणितं कृष्णमिंद्रियार्थासंविदन्
स्विद्यन्मूर्छन् विशुष्कास्यो विह्वलोवेदनातुरः
विशीर्यमाणमांसश्च प्रायशो विजहात्यसून्

अर्थ–इन महाविषवाले बिच्छुओं के डंक मारने पर जीभ में सूजन, गात्रमें स्तब्धता ज्वर, मुख नस्यादि द्वारा काले रंग के रुधिर की वमन, इन्द्रियों की रूपरसादि विषयों के ग्रहण में असामर्थ्य, स्वेद, मूर्च्छा मुख में सूखापन, विह्वलता, वेदना, मांस में विशीर्णता, ये लक्षण उपस्थित होते हैं और प्रायः रोगी मर भी जाता है।

उष्ट्र धूपक बिच्छू।

उच्चिर्टिंगस्तु वक्त्रेण दशत्यभ्यधिकव्यथः
साध्यतोवृश्चिकात्स्तंभशोफसोद्दष्टरोमताम्
करोति सेकमंगानां दंशः शीतांबुनेव च।
उष्ट्रधूमः स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः

अर्थ–उच्चिर्टिंग नामका बिच्छू मुख से काटता है, इस में साध्य बिच्छू की अपेक्षा अधिक व्यथा होती है, इससे लिंगेन्द्रिय में स्तब्धता और रोमहर्षण होता है। इसके दंशस्थान में शीतल जल का परिषेक हित है। इस बिच्छूका नाम उष्ट्रधूम है,यह रात्रि में निकलता है इससे इसे रात्रिक भी कहते हैं।

कीडों को दोषपरता।

वातपित्तोत्तराःकीटाःश्लैष्मिकाःकर्णमोंदुराः
प्रायो वातोल्बणविषा वृश्चिकाःसोष्ट्रधूमकाः

अर्थ–संपूर्ण कीडे वातपित्त की अधिकता वाले होते हैं, इनमें से कर्णभ नामक चूहे कफकी अधिकतावाले और उष्ट्रधूम नामक वृश्चिक वाताधिक्य विष वाले होते हैं।

दोषानुसार चिकित्सा॥

यस्य तस्यैव दोषस्य लिंगाधिक्यं प्रकर्षयेत्
तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम्

अर्थ-जिस जिस दोष की अधिकता के लक्षण दिखाई दें, उस उसकी चिकित्सा उन उनके विपरीत लक्षणवाली औषधों से करनी चाहिये।

वातिक विष के लक्षण॥

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तंभः शिरायामोस्फिपर्वरुक्
घूर्णमोद्दष्टनं गात्रस्यास्तता वातिके विषे ।७

अर्थ–वातिक विषमें हृदय में पीडा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊर्ध्ववात (हिचकी डकार आदि) की रुकावट, शिरोताप, हड्डी के जोडों में दर्द, घूर्णन, उद्वेष्टन, शरीर में श्यावता, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

पित्तोल्वण विष के लक्षण

संज्ञानाशोष्णनिश्वासौ हृद्दाहः कटुकास्यता
मांसावदरणं शोफो रक्तपीतश्च पैत्तिके१८

अर्थ–पैत्तिक विष में बेहोशी, गरम निश्वास, हृदय में दाह, मुख में कडवापन मांस में विदीर्णता और लाल पीली सूजन होती है ।

कफाधिक्य विषके लक्षण ।

छर्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशपीनसैः ।
सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकंविषम्

अर्थ–कफाधिक्य विष में वमन, अरुचि हृल्लास, प्रसेक, उत्क्लेश, पीनस, शैत्य और मुखमें मीठापन ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ।

वातिक विष का उपाय ॥

पिण्याकेन व्रणालेपस्तैलाभ्यंगश्च वातिके
नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्बृंहणश्च विधिर्हितः

अर्थ–वातिक विष में तिलके कल्कका दंशस्थान पर लेप, तैलाभ्यंग, पुलाकादि द्वारा नाडीस्वेद और बृंहणविधि हित है ।

पैत्तिक विषमें उपाय ।

पैत्तिकं स्तंभयेत्सेकैः प्रदेहैश्चानिशीतलैः ।

अर्थ–पैत्तिक विषका शीतल परिषेक और शीतल प्रलेपों द्वारा स्तंभन करे ।

श्लैष्मिक विषमें उपाय ।

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ।

अर्थ–कफाधिक्य विषमें लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये ।

त्रिविध कीटोंकी चिकित्सा ।

कीटानां त्रिःप्रकाराणां वैविध्येन प्रतिक्रिया
स्वेदालेपनसेकांस्तुकोष्णान्प्रायोऽवचारयेत्
अन्यत्र मूर्छिताद्दंशपाकतः कोथतोऽथवा ।

अर्थ–ऊपर कहे हुए तीन प्रकार के कीडोंका प्रतीकार तीन प्रकार से करे । इस में प्रायःईषदुष्ण स्वेद, लेप और परिषेक का प्रयोग करना उचित है, परन्तु ये क्रिया मूर्च्छित रोगी, दंशपाक और दंशकोथ में नहीं करना चाहिये ।

विषघ्न धूपन ।

नृकेशाः सर्षपाः पीता गुडोजीर्णश्चधूपनम्
विषदंशस्य सर्वस्य काश्यपः परमब्रवीत् ।

अर्थ–संपूर्ण प्रकार के विषदंशों में मनुष्य के बाल, पीली सरसों, और पुराना गुड इन की धूनी देनी चाहिये, यह कश्यपजी का बताया हुआ प्रयोग है ।

विषनाशक विधि ।

विषघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्संशोधनानि च

अर्थ–सब प्रकार की विषनाशिनी क्रिया तथा वमन विरेचनादि संशोधन का प्रयोग करना हित है ।

कीटवृश्चिक का उपाय ।

साधयेत्सर्पवद्दष्टान् विषोग्रैः कीटवृश्चिकैः

अर्थ–उग्र विषवाले कीडे और बिच्छू के काटने पर सर्पवत् चिकित्सा करनी चाहिये ।

कीटविष में पान ।

तंदुलीयकतुल्यांशां विवृतां सर्पिषा पिबेत्
याति कीटविषैः कंपं न कैलास इवानिलैः

अर्थ–चौलाई और निसोथ को समान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाग लेकर घी के साथ पीने से कीटविष-द्वारा देह ऐसे क्षुभित नहीं होता है, जैसे पवन कैलासपर्वत को कंपायमान नहीं कर सकते हैं।

कीटविषनाशक लेप।

क्षीरिवृक्षस्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः २३

अर्थ--वमन विरेचनादि द्वारा शोधन करके दूधवाले वृक्षोंका लेप करने से कीट-विष नष्ट हो जाता है।

अन्य लेप।

मुक्ता लेपो वरः शोफतोदृदाहज्वरप्रणुत्।

अर्थ--मोतियों का लेप करने से सूजन, सोद, दाह और ज्वर जाते रहते हैं।

विषनाशक औषध पान।

वचा हिंगुविडंगानि सैंधवं गजपिप्पली।
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम्
दशांगमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत्।

अर्थ--वच, हींग, बायविडंग, सेंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, त्रिकुटा, इस दशांग औषध को पीने से सब प्रकार के कीटविष जाते रहते हैं, यह कश्यपजी का बताया हुआ प्रयोग है।

वृश्चिक दंशपर चक्रतैल।

सद्यो वृश्चिकजं दंशं चक्रतैलेन सेचयेत्।
विदारिगंधासिद्धेन कवोष्णेनेतरेण वा।

अर्थ--बीछू के डंक पर घानी का तेल तत्काल डालना चाहिये, अथवा विदारीगंध (शालपर्णी) डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ गरम तेल डाले॥

घृत परिषेक।

लवणोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनः पुनः।
सिंचेत्कोष्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा।

अर्थ--सेंधानमक डालकर बार बार घी का सेचन करे, अथवा दूध और सेंधानमक मिलाकर थोड़ी गरम की हुई कांजी से परिषेक करे।

दंश पर उपनाह॥

उपनाहोधृते भृष्टः कल्कोऽजाज्याः ससैंधवः

अर्थ--सेंधानमक और जीरा इनके कल्क को घी में भूनकर लेप करे।

चूर्णद्वारा प्रतिसारण॥

आवृशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छाय प्रतिसारयेत्
रजनीसैंधवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः।

अर्थ--दंशस्थान के चारों ओर स्वेदन देकर उसको अस्त्र द्वारा थोड़ा २ खुरचकर हलदी, सेंधानमक, त्रिकुटा, सिरस के फल और फूल इनका चूर्ण करके दंशस्थान पर रिगड़ना चाहिये।

दंश पर लेपादि।

मातुलुंगाम्लगोमूत्रपिष्टं च तुरसाग्रजम्।
लेपःसुखोष्णश्चहितःपिण्याकोगोमयोऽपि वा
पाने सर्पिर्मधुयुतं क्षीरं वा भूरिशर्करम्॥

अर्थ--तुलसी की मंजरी को बिजौरे के रस वा गोमूत्र में पीसकर लेपकरे, अथवा तिल के कल्क वा गोबर को कुछ गरम करके लेप करना हित है, मधुयुक्त घी वा अधिक शर्करा डालकर दूध पिलाना भी हितकारी है।

वृश्चिक विषनाशक औषध।

पाराधतशकृत्पथ्यातगरं विम्बमेषजम्।
बीजपूररसोन्मिश्रः परमो वृश्चिकागदः।
सशैवलोष्टदंष्टा च हंति वृश्चिकजं विषम्

अर्थ-कबूतर की बीट, हरड, तगर, और सोंठ इन सबको बिजौरे के रस में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घोटकर लेप करना चाहिये । यह बिच्छू का बिष दूर करने की प्रधान औषध है । ऊँट का दांत और शैवाल पीसकर लगाने से बिच्छू का बिष दूर होजाता है ।

अन्य गोली ।

हिंगुना हरितालेन मातुलुंगरसेन च ३५
लेपांजनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा

अर्थ-हींग और हरिताल को बिजौरे के रस में घोटकर लेप और अंजन द्वारा प्रयोग करे, ये गोलियां बिच्छू का बिष दूर करने में परमोत्तम है ।

दंशलेपन ।

करंजार्जुनशैलूनां कदम्ब्याः कुडजस्य च :
शिरीषस्य पुष्पाणि मस्तुना दंशलेपनम् ।

अर्थ--कंजा, अर्जुन, लहसुआ, गोकर्णी, कुडा और सिरस के फूल इनको दही के तोड में घोटकर दंशस्थान पर लेप करे ।

दारुण पीड़ा पर लेप ।

यो मुह्यति प्रश्वसिति प्रलपत्युग्रवेदनः ३७
तस्य पथ्यानिशाकृष्णामंजिष्ठातिविषोषणम्
सालानुवृंतं वार्ताकरसपिष्टं प्रलेपनम् ३८

अर्थ--जो बिषरोगी मूर्छित होजाताहै, लम्बे २ श्वास लेने लगता है, वृथा प्रलाप करता है और उग्रवेदना से हाथ २ करताहै, उसको हरड, हलदी, पीपल, मजीठ, अतीस, कालीमिरच, तूंबी का डण्ठल, इन सबको बैंगन के रस में पीसकर दंश थान पर लेप करे ॥

उग्रबिष पर घृतपान ।

सर्वत्र चोग्रालिविषे पाययेद्घृतसर्षपैः ।
विध्येत्सिरां विदध्याच्च वमनांजननावनम्
उष्णस्निग्धाम्लमधुरं भोजनं चानिलापहम्

अर्थ--सब तरह के बीछू के दारुण बिषों पर दही और घी पान कराना चाहिये। सिराव्यध, वमन, अंजन और नस्यका प्रयोग करना चाहिये तथा वातनाशक उष्ण, स्निग्ध, अम्ल और मधुर द्रव्य भोजन के लिये देवे ।

बीछूकेबिष पर लेप ।

नागरं गृहकपोतपुरीषं
बीजपूरकरसो हरितालम् ।
सैंधवं च विनिहंत्यगदोऽयं
लेपतोलिकुलजं विषमाशु ॥ ४० ॥

अर्थ--सोंठ, पालतू कबूतर का विष्ठा, बिजौरे का रस, हरताल, और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को पीसकर लेप लगाने से सब प्रकार के बिच्छुओं का विष शीघ्र दूर होजाता है ।

उच्चटिंग की चिकित्सा ।

अंते वृश्चिकदष्टानां समुदीर्णे भृशं विषे ।
विषेणालेपयेद्दंशमुच्चिटिंगेऽप्ययं विधिः ।

अथ--बिच्छू के काटे हुए के अंतमें जो विष अत्यन्त उदीर्ण हो तो उस स्थान पर विषका ही लेप करदेना चाहिये। उच्चिटिंग के विषमें भी यही उपाय किया जाता है ।

अन्य उपाय ।

नागपुरीषच्छत्रं रोहिषमूलं च शेलुतोयेन
कुर्याद्वटिकां लेपाद्वियमलिविषनाशनीश्रेष्ठा

अर्थ--हाथी के विष्ठा से उत्पन्न हुआ छत्र, रोहिषतृण और लिसौडे को जल में पीसकर गोली बनावे । इसका लेप करने से बिच्छूका विष दूर होजाता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य प्रयोग।

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं
त्रिर्भावितं पिप्पलिचूर्णमिश्रम्।
एषो गदो हंति विषाणि कीट-
भुजंगळूतोंदुरवृश्चिकानाम् ॥ ४३ ॥

अर्थ--सिरसके बीजोंको आक के दूध की तीन भावना देकर उसमें पीपल पीसकर मिलादे। इस अगद का प्रयोग करनेसे कीट, भुजंग, मकडी, चूहा और बिच्छू इनका विष दूर हो जाता है।

विषसंक्रांतिकृत अगद।

शिरीषपुष्पं सकरंजबीजं
काश्मीरजं कुष्टमनःशिला च।
एषो गदो रात्रिकवृश्चिकानां
संक्रांतिकारी कथितो जिनेन ॥ ४४ ॥

अर्थ--सिरस के फूल, कंजाके बीज, खंभारी के बीज, कूठ, और मनसिल इन सब द्रव्यों का अगद सेवन करने से रात्रिक बिच्छुओं का विष दूर होजाता है। यह जिन भगवान का बताया हुआ प्रयोग है।

मकडियों की संख्या।

कीटेभ्यो दारुणतरा लूताः षोडश ता जगुः
अष्टाविंशतिरित्येके ततोऽप्यन्ये तु भूयसीः
सहस्ररश्म्यनुचरा वदंत्यन्ये सहस्रशः।
बहूपद्रवरूपा तु लूतैकैव विषात्मिका ४६

अर्थ--सब प्रकार के कीडों में मकडी बहुत भयानक होती है। कोई इसे सोलह प्रकार की, कोई अट्ठाईस प्रकार की और कोई अनेक प्रकार की मानते हैं, कोई यह कहते हैं कि सूर्यकी किरणों के साथ साथ विचरनेवाली सहस्रों मकडियां हैं। अस्तु, ये कितनीही हों वा कितनेही रूपवाली हों पर इनमें से सबही विषात्मक और अनेक उपद्रवों से युक्त होती हैं।

उक्त विषय में हेतु।

रूपाणि नामतस्तस्या दुर्ज्ञेयान्यतिसंकरात्
नास्ति स्थानव्यवस्था च दोषतोऽतः प्रचक्षते

अर्थ--अति संकर के कारण मकडियों की जाति के भेदों की गिनती कर लेना बहुत कठिन है इनके स्थानकी कोई व्यवस्था भी नहीं है, इसलिये वातादि दोष भेद से इनका वर्णन करते हैं।

लूताविष का साध्यासाध्यत्व।

कृच्छ्रसाध्या पृथग्दोषैरसाध्यानिचयेन सा

अर्थ--वातादि पृथक् २ दोष वाली मकडी कष्टसाध्य और त्रिदोषज असाध्य होती है।

पैत्तिक दंश के लक्षण।

तद्दंशः पैत्तिको दाहतृट्स्फोटज्वरमोहवान्
भृशोष्म रक्तपीताभः क्लेदी द्राक्षाफलोपमः।

अर्थ--मकडी के पैत्तिक दंश में दाह, तृषा, स्फोटक, ज्वर, मोह, अत्यन्त गर्मी और क्लेद होता है। यह दंश रक्तपीत वर्ण से युक्त क्लेदवाला और दाख के फलके सदृश होता है।

कफज दंश के लक्षण।

श्लैष्मिकः कठिनः पांडुः परूषकफलाकृतिः
निद्राशीतज्वरं कासकंडूं च कुरुते भृशम्

अर्थ--कफज दंश कठोर, पांडुवर्ण, और फालसेके फल समान आकृति वाला होता है तथा इसमें नींद, शीतज्वर, खांसी और खुजली की अधिकता होती है।

वातिक दंश के लक्षण।

वातिकः परुषः श्यावः पर्वभेदज्वरप्रदः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--वातिक दंश छूने में खरदरा और श्यावर्ण होता है इसमें पर्वभेद और ज्वर भी होता है ।

दोषानुसार विभाग लक्षण ।

तद्विभागं यथास्वं च दोषलिंगैर्विभावयेत्

अर्थ--वातादि दोषों के लक्षणों के अनुसार इनके यथायोग्य लक्षणों का विभाग करना चाहिये ।

असाध्य के लक्षण ।

असाध्यायां तु हृन्मोहश्वासहिध्माशिरोरुजः
श्वेताःपीताःसितारक्तापिटिकाःश्वयथूद्भवाः
वेपथुर्धूमधूर्दाहस्तृड्नांध्यं वक्रनासता ५२
ष्ठ्यावोष्ठपक्वभ्रंतत्वं पृष्ठग्रीवाभंजनम् ।
पक्वजंबूसवर्णं च दंशात्स्रवति शोणितम् ।

अर्थ--असाध्य मकडी के काटने से हृदय में मोह, श्वास, हिचकी, शिरोवेदना देह में सफेद, पीली, काली वा काले रंग की सूजनको उत्पन्न करने वाली फुंसियां पैदा होजाती हैं, कंपन, हल्लास, दाह, तृषा आंखों के आगे अंधेरी, नाक का टेढापन, ओष्ठ मुख और दांतों में कालापन, पीठ और ग्रीवा में टूटने कीसी वेदना होती है, तथा दंश में से पकी हुई जामन के रंगका रक्त निकलता रहता है ।

असाध्य के तीन भेद ।

सर्वापि सर्वजा प्रायो व्यपदेशस्तु भूयसा ।

अर्थ--सब प्रकारकी मकडियां त्रिदोषज होती हैं, परन्तु दोषकी अधिकता से इन के तीन भेद होगये हैं, यथा—वातिक, पैत्तिक और कफज ।

मकडी के दंश के लक्षण ।

तीक्ष्णमध्यावरत्वेनसा त्रिधा हंत्युपेक्षिता ।
सप्ताहेन दशाहेन पक्षेण च परं क्रमात् ।

अर्थ--तीक्ष्णादि भेद से मकडी तीन प्रकार की होती है, जैसे तीक्ष्ण विष मध्य-विष और मृदुविष । इसकी चिकित्सा में उपेक्षा करने से काटा हुआ मनुष्य क्रम से सात, दस वा पन्द्रहदिन में मरजाताहै ।

मकडी के श्वास से विष ।

लूतादंशश्च सर्वोऽपि वृत्तमंडलसंनिभः ।
सितोसितोरुणःपीतः श्यावो वा मृदुरुन्नतः
मध्ये कृष्णोऽथवा श्यावः पर्यंतेजालकावृतः
विसर्पवांश्छोफयुतस्तप्यते बहुवेदनः ।
ज्वराशुपाकविक्लेदकोथावदरणान्वितः ।
क्लेदेन यत्स्पृशत्यंगं तत्राऽपि कुरुते व्रणम् ।

अर्थ--सब प्रकारकी मकडियोंसे काटा हुआ स्थान दादके चकत्ते के समान होजाताहै यह सफेद, काला, लाल पीला वा श्यावर्ण का होता है, यह कोमल, ऊंचा, बीच में काला वा श्यावर्ण, किनारों पर जाल से आवृत, होता है । यह विसर्पवान्, शोथयुक्त उत्तप्त, बहु वेदनान्वित, तथा ज्वर, शीघ्र पाकता, विक्लेद, सडाहट और अवदरण से युक्त होता है । लूताके डंकका चेप शरीरमें जहां जहां लगता है वहांही व्रण होजाता है।

मकडीकेश्वास से विषवमन ।

श्वासदंष्ट्राशकृन्मूत्रशुक्रलालानखार्तवैः ५८
अष्टाभिरुद्वमत्येषा विषं वक्त्रैर्विशेषतः ।

अर्थ--मकडी श्वास, डाढ, विष्ठा, मूत्र, वीर्य, लार, नख और आर्तव इन आठ पदार्थ द्वारा और विशेषकर के मुखसे विष का वमन करती है । अर्थात् इन आठ रीति से मकडी का विष निकला करता है ।

मकडीआदि के दंशस्थान ।

लूता नाभेर्दशत्यूर्ध्वमूर्ध्वं वाऽधश्च कीटकाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सदूषितं च वस्त्रादिदेहे पूर्वं विकारकृत्।

अर्थ–मकडी नाभि के ऊपर काटती है, अन्य कीडे नाभि से ऊपर और नीचे दोनों जगह काटते हैं। इनके विषों से दूषित हुआ वस्त्र देहके लगजाने पर विकार करता है।

मकडीकेप्रथमदिन का लक्षण।

दिनार्धं लक्ष्यते नैवं दंशो लूतविषोद्भवः।
सूचीव्यधवदाभाति ततोऽसौ प्रथमेऽहनि।
अव्यक्तवर्णःप्रचलः किंचित्कंडूरुजान्वितः।

अर्थ–मकडी का विष चार पहर तक दिखाई नहीं देता है, फिर उसमें सुईके छिदने कासा चिन्ह अव्यक्तवर्ण, चलायमान तथा कुछ खुजली और वेदना से युक्त होता है।

दूसरेदिन का लक्षण।

द्वितीयेऽभ्युन्नतोतेषु पिटकैरिव याचितः।
व्यक्तवर्णो नतो मध्ये कंडूमान् ग्रंथिसन्निभः

अर्थ–दूसरे दिन दंशस्थान के किनारे बहुत ऊंचे, बीचमें नीचा, फुंसियों से व्याप्त, अव्यक्तवर्ण, खुजली से युक्त और गांठके आकार का होता है।

तीसरेदिन का प्रकार।

तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमंडलः।
शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु संस्रवः।

अर्थ–तीसरे दिन दंशस्थान लाल,सरवे की आकृति कासा होजाता है, तथा ज्वर रोमांच, सुई छिदने कीसी पीडा, और रोमकूपों से स्राव होने लगता है।

चतुर्थदिन का प्रकार।

महांश्चतुर्थे श्वयथुस्तापश्वासभ्रमप्रदः।

अर्थ–चौथे दिन अत्यन्त सूजन,संताप, श्वास और भ्रम ये सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पंचमदिन का प्रकार।

विकारान् कुरुतेतांस्तान्पंचमेविषकोपजान्

अर्थ–पांचवें दिन विषके प्रकोप से ऊपर कहे हुए सब रोग पैदा होजाते हैं।

छठे सातवें दिन का प्रकार।

षष्ठे व्याप्नोति मर्माणि सप्तमे हंति जीवितम्।

अर्थ–छठे दिन सब मर्मस्थानों में विष फैल जाता है और सातवें दिन रोगी मर जाता है।

तीक्ष्णविष के उक्तलक्षण।

इति तीक्ष्णं विषं मध्यं हीनं च विभजेद्बुधः

अर्थ–इन लक्षणों से तीक्ष्ण, मध्यम और हीन विष की विवेचना करनी चाहिये।

विषशमनका काल।

एकविंशतिरात्रेण विषं शाम्यति सर्वथा।

अर्थ–इक्कीस दिन में विषकी सर्वथा शांति हो जाती है।

मकडीका दंशोद्धरण।

अथाशुलूतादष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत्।
दहेच्च जांबवौष्ठाद्यैर्न तु पित्तोत्तरं दहेत्।

अर्थ–मंगलाचरण करके मकडी के दंशके चारों ओर काटकर दंशको निकाल डाले। और जांबवौष्ठ यंत्रसे दंशस्थान को दग्ध करे देवै किंतु पित्तोत्तर दंश को दग्ध न करना चाहिये।

दंशछेदनका निषेध।

कर्कशं भिन्नरोमाणं मर्मसंध्यादिसंश्रितम्।
प्रसृतं सर्वतो दंशं न छिंदीत दहेच्च न।

अर्थ–जो दंश कर्कश, भिन्नरोम, मर्म और संधियों में आश्रित तथा चारों ओर को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्याप्त हो उसे न काटना चाहिये, न दग्ध करना चाहिये ।

दग्धदंशका लेप ।

लेपयेद्दग्धमगदैर्मधुसैंधवसंयुतैः ॥ ६८ ॥
सुशीतैः सेचयेच्चानु कषायैः क्षीरिवृक्षजैः

अर्थ–दग्ध दंश पर शहत और सेंधेनमक से मिलीहुई अगद का लेप करे । तत्पश्चात् दूधवाले वृक्षोंके शीतल कषायका परिषेक करे

रक्त हरणादि ।

सर्वतोपहरेद्रक्तं शृंगाद्यैः सिरयाऽपि वा ।
सेकालेपास्ततः शीता वोधिश्लेष्मातकाक्षकैः

अर्थ–सींगी आदि लगाकर वा फस्द खोलकर सब तरह से रक्त निकालना चाहिये । तत्पश्चात् पीपल, लिसौडा और बहेडा इन का ठंडा लेप और परिषेक काम में लाना चाहिये ।

पद्मक नाम अगद ।

फलिनीद्विनिशाक्षौद्रसर्पिर्भिः पद्मकाह्वयः ।
अशेषलूता कीटानामगदः सार्वकार्मिकः ।

अर्थ–प्रियंगु, हलदी, दारुहलदी, शहत और घी । यह औषध सब प्रकार की मकडी और कीडों के विषमें हितकारी है । इसका नाम पद्मक है । यह सेक लेपादि सब प्रकार से व्यवहार में लाई जा सकती है ।

चंपक नाम औषध ।

हरिद्राद्वयपतंगमंजिष्ठानतकेसरैः ॥ ७१ ॥
सक्षौद्रसर्पिः सर्वस्मादधिकश्चंपकाह्वयः ।

अर्थ–हलदी, दारुहलदी, पतंग, मजीठ, तगर, केसर, शहत और घी, यह अगद पद्मक नाम औषध से भी अधिक गुणकारी है

अन्य प्रयोग ।

तद्वद्गोमयनिष्पीडाशर्कराघृतमाक्षिकैः ७२ ।

अर्थ--गोबर का रस, शर्करा, घी और शहत, यह औषध पूर्ववत् गुणकारी है ।

मंदर और गंधमादन ।

अपामार्गमनोह्वालादार्वीध्यामकगैरिकैः ।
नतैलाकुष्ठमरिचयष्ट्याह्वघृतमाक्षिकैः ॥
अगदो मंदरो नाम तथाऽन्यो गंधमादनः ।
नतरोध्रवचाकट्वीपाठैलापत्रकुंकुमैः ॥७४॥

अर्थ--ओंगा, मनसिल, हरताल, दारुहलदी, रोहिषतृण, गेरू, तगर, इलायची, कूठ, कालीमिरच, मुलहटी, घी और शहत इनसे बनाई हुई दवा को मंदर कहते हैं । तथा तगर, लोध, वच, कुटकी, पाठा, इलायची, मोअपत्र और कुंकुम । इनसे बनाया हुआ अगद गंधमादन कहलाता है ।

विषनाशक विशोधन ॥

विषघ्नं बहुदोषेषु प्रयुंजीत विशोधनम् ।

अर्थ--बहुत दोषों से व्याप्त विषार्त व्यक्ति को विषनाशक वमन विरेचनादि शोधन देना चाहिये ।

कफ में वमन ॥

यष्ट्याह्वमदनांकोल्लजालिनीसिंदुवारिकाः ॥
कफे श्रेष्ठांबुना पीत्वा विषमाशु समुद्वमेत् ।

अर्थ–कफ की अधिकता में मुलहटी, मैनफल, अँकोल, देवताड़, सभाङ्ग । इन सब द्रव्यों का तंडुल जल के साथ पान कराके विष की वमन करादेनी चाहिये ।

उक्त रोग में विरेचन ॥

शिरीषपत्रत्वक्मूलफलं वांकोल्लमूलवत् ॥
विरेचयेच्च त्रिफलानीलिनीत्रिवृताविभिः ।

अर्थ–सिरस के पत्ते, छाल, जड़ और फल तथा अँकोल इन द्रव्यों को तंडुल जलके साथ पान कराके वमन करावे । अथवा त्रिफला,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नीलनी और निसोत आदि विरेचन द्रव्यों को देकर विरेचन करावे।

दाह निवृत्ति में कर्तव्य ॥

निवृत्ते दाहशोफादौ कर्णिकां पातयेत्ततः व्रणात्

अर्थ–दाह और शोफादिके शांत होने पर व्रण से कर्णिका को दूर करदेना चाहिये।

अन्य प्रयोग ॥

कुसुंभपुष्पं गोदंतः स्वर्णक्षीरी कपोतविट्।
त्रिवृतासैंधवं दंतीकर्णिकापातनं तथा ॥
मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखसंयुतम्।

अर्थ–कुसुम, गोदंत, स्वर्णक्षीरी, कबूतर की बीट, निसोथ, सेंधानमक, दन्ती। इन दवाओं से कर्णका गिरजाती है। अथवा इन्द्रायण की जड़ में बांस का निर्लेख मिलाकर प्रयोग करने से भी कर्णका गिरजाती है।

सैंधवादि प्रयोग ॥

तद्वच्च सैंधवं कुष्ठं दंतिकटुकदीप्तिकम् ॥
राजकोशातकीमूलं किणो वा मथितोद्भवः।

अर्थ–सेंधानमक, कूठ, दंती, कुटकी, दुद्दी, राजकोशातकी की जड़, अथवा तक्र का झाग। इनको लगाने से कर्णिका गिर पड़ती है।

कर्णिका पात में बृंहण ॥

कर्णिकापातसमये बृंहयेच्च विषापहैः ॥

अर्थ–कर्णिका के गिरने के समय विष नाशक बृंहण क्रिया का प्रयोग करना चाहिये।

लूताविष में स्नेहन।

स्नेहकार्यमशेषं च सर्पिषैव समाचरेत्।
विषस्य वृद्धये तैलमग्नेरिव तृणोलुपम् ॥

अर्थ–मकड़ी के विष में सब प्रकार के स्नेहन कर्म घृत द्वारा करनाही उचित है, घृत के सिवाय और किसी प्रकार का स्नेहन न करे। तेल से विष ऐसे बढ़ता है जैसे तृण के समूह से अग्नि बढ़ती है।

लूताविष पर तीन प्रयोग ॥

हींवेरवैकंकतगोपकन्या-
मुस्ताशमीचंदनटिंटुकानि।
शैवालनीलोत्पलवक्रयष्टी-
त्वग्नाकुलीपद्मकराठमध्यम् ॥ ८२ ॥
रजनीध्यमसर्षपलोचना-
कणशुंठीकणमूलाचित्रकाः।
वरुणागुरुबिल्वपाटली-
पिचुमंदाभयशेलुकेसरम् ॥ ८३ ॥
बिल्वचंदननलोत्पलशुंठी-
पिप्पलीनिचुलवेतसकुष्ठम्।
शुक्तिशाकवरपाटलिभार्गी-
सिंदुवारकरघाटवरांगम् ॥ ८४ ॥
पित्तकफानिललूताः पानांजननस्यलेपसेकैस्तम्
अगदवरा वृत्तस्थाः कुमतीरिव वारयंत्येते ॥

अर्थ–(१) नेत्रबाला, विकंकत, अनन्त मूल, मोथा, शमी, चन्दन, श्यामा, शैवाल, नीलोत्पल, तगर, मुलहटी, दालचीनी, नाकुली, पदमाख, मेनफल का गूदा, (२) हलदी, नागरमोथा, सर्वाक्षी, पीपल सोंठ, पीपलामूल, चीता, बरना, अगर, बिल्व, पाटली, नीम, हरड, शेलु और केसर। (३) बेलगिरी, चन्दन, तगर, भांडगी, संभालू, करघाट और दालचीनी, एक एक श्लोक में कहेहुए ये तीनों प्रयोग पान, अंजन, नस्य, प्रलेप और परिषेक द्वारा प्रयोग कियेजाने पर यथाक्रम, पित्ताधिक्य, कफाधिक्य और वाताधिक्य वाले मकड़ी के विष को दूर करते हैं, जैसे सदाचरण वाला मनुष्य कुमति को रोक देता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लूतानाशक पानादि ।

रोध्रं सेव्यं पद्मकं पद्मरेणुः
कालीयाख्यं चंदनं यच्च रक्तम् ।
कांतापुष्पं वुग्धिनीकां मृणालं
लूताः सर्वा घ्नंति सर्वक्रियाभिः ॥८६॥

अर्थ=लोध, खस, पद्माख, कमलकेसर पीतचन्दन, लालचन्दन, प्रियंगु, लालओंगा और कमलनाल, ये सब औषधें पानादिद्वारा व्यवहार में लाने से सब प्रकार की मकड़ियों के विषों को दूर कर देते हैं ॥

इतिश्रीअष्टांगहृदयसंहितायांभाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थाने कीटलूतादिविषप्रतिषेधोनाम सप्तात्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मूषिकालर्कविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब हम यहां से चूहे और बावले कुत्ते के विष के रोकने का वर्णन करेंगे ।

चूहों के अठारह भेद ।

लालनश्चपलःपुत्र-
श्चोहसिराश्चिक्किरोजिरः ।
कषायदंतः कुलकः कोकिलः कपिलोसितः ।
अरुणः शबलः श्वेतः कपोतः पतितोंदुरः ।
छुच्छुंदरो रसालाख्यो दशार्धौ चेति मूषिकाः

अर्थ–चूहे अठारह प्रकार के होते हैं । यथा- लालन, चपल, पुत्र, हसित, चिकिर, अजिर, कषायदंत, कुलक, कोकिल, कपिल, असित, अरुण, शबल, श्वेत, कपोत, पतितोन्दुर, छुछुन्दर और रसाल ।

चूहों के विष की प्राप्ति ।

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रदिग्धैः स्पृशंति वा ।
यद्गमंगैस्तमन्ने दूषिते पांडुतां गते ॥ ३ ॥
ग्रंथयः श्वयथुः कोथो मंडलानि श्रमोऽरुचिः
शीतज्वरोऽतिरुक्सादो वेपथुः पर्वभेदनम् ॥
रोमहर्षः स्रुतिर्मूर्छादीर्घकालानुबंधनम् ।
श्लेष्मानुबद्धबह्वाखुपोतकच्छर्दनं सतृट् ॥

अर्थ–इन सब चूहों का वीर्य जिस अंग पर गिरजाता है, और यह शुक्रदिग्ध अंग जिस दूसरे अंग से जा लगता है, उस अंग का रक्त दूषित होकर पांडु वर्ण होजाता है, उस से देह में गांठ, सूजन, सडाहट, और गोल चकत्ते पड़जाते हैं । तथा अरुचि, शीतज्वर, अतिशय, वेदना, शिथिलता, कम्पन, पर्वभेद, रोमांच, स्राव, मूर्च्छा, और दीर्घकाल तक रोग का अनुबन्ध तथा कफानुबन्धी मूषक पोतक नाम कृमियों का निकलना और तृषा, ये लक्षण उपस्थित होते हैं ।

चूहे के विषका सब देह में फैलना ।

व्यवाय्याखुविषं कृच्छ्रं भूयो भूयश्च कुप्यति

अर्थ--चूहे का विष सब शरीर में फैल-जाता है. यह कठिनसाध्य और बारबार प्रकुपित होता है ॥

मूषक विष के असाध्य लक्षण ॥

मूर्छागशोफवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ॥
शिरोगुरुत्वंबलासस्रक्छर्दिश्चासाध्यलक्षणम्

अर्थ–मूर्च्छा, सूजन, विवर्णता, क्लेद, बहरापन, ज्वर, सिर में भारापन, लालास्राव और रक्त की वमन । ये सब लक्षण असाध्य के हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आखुदूषितवर्ज्य के लक्षण।

शूनबस्ति विवर्णौष्ठमाखवाभैर्ग्रंथिभिश्चितम्
छुछुंदुरसगन्धम् च वर्जयेदाखुदूषितम्।

अर्थ-चूहे के विष से बस्ति फूल जाती है, ओष्ठ विवर्ण होजाते हैं, गात्र में चूहे की आकृति के समान ग्रंथियों की उत्पत्ति और छछूंदरकीसी दुर्गंधि इन लक्षणों के उपस्थित होनेपर चूहे का विष दुश्चिकित्स्य होताहै।

बावले कुत्ते के लक्षण।

शुनः श्लेष्मोल्बणादोषाः संज्ञांसंज्ञावहाश्रिताः
मुष्णंतः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम्।
लालावानर्धबधिरः सर्वतः सोऽभिधावति
स्रस्तपुच्छहनुस्कंधशीरोदुःखी नतानन:।

अर्थ-कुत्तेके वातादि दोष कफाधिक्य होनेके कारण संज्ञावाही धमनियों का आश्रय लेकर उनकी धातुओं को भयानक रीतिसे क्षुभित करदेते हैं। इससे कुत्ते की लार गिरने लगती है तथा अंधा, बहरा, ढीली-पूंछका, स्रस्तहनु होजाता है और कंधोंको झुकाकर नीचा मुख करके चारों ओर दौडता है।

बावलेकुत्ते के काटने के लक्षण।

दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं स्रवत्यसृक्
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तंमस्तृष्णामूर्छोद्भवोनु च

अर्थ-ऐसे बावले कुत्तेके काटने से वह जगह सुन्न पडजाती है, और दंशस्थान से काला रुधिर झरने लगता है। तत्पश्चात् हृद्रोग, शिरोरोग, ज्वर, स्तब्धता, तृषा और मूर्च्छा। ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं।

बावले शृगालादि।

अन्येनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राप्रहारिणः

अर्थ-डाढ को मारनेवाले अन्यबावले शृगालादि के भी ऊपर कहे हुए लक्षण होते हैं।

सविषदंश के लक्षण।

कंडूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः।
विदाहरागरुक्पाकशोथग्रंथिविकुंचनम्।
दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिकामंडलानि च।
सर्वत्र सविषे लिंगं विपरीतं तु निर्विषे।

अर्थ-विषयुक्त सब प्रकार के दंशोंमें खुजली, निस्तोद, विवर्णता, सुन्नता, क्लेद, ज्वर, भ्रम, विदाह, ललाई, वेदना, पाक, सूजन, गांठ, आकुंचन, दंशका विदीर्ण होना, स्फोटक, कर्णिका, और चकत्ते। ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। विषरहित दंशमें इनसे विपरीत लक्षण होते हैं।

रोगी का मरण॥

दष्टो येन तु तच्चेष्टा रुतं कुर्वन्यिनद्यति।
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु॥

अर्थ-बावले कुत्ते आदि जो जानवर काटते हैं, रोगी उन्हीं के सदृश काम करने लगता है, वैसीही बोली बोलने लगता है, और दर्पण वा जलमें अपनी वैसीही सूरत देखता हुआ मरजाता है।

त्रासंसंज्ञदष्ट का निषेध॥

योऽदष्टस्यास्यदष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः।
जलसंत्रासनामानं दष्टं यमपि वर्जयेत्॥

अर्थ-बिना काटा हुआ मनुष्य भी यदि बावले शृगालादि के शब्द, स्पर्श और दर्शन से जलको देखकर भयखाता हो, ऐसे रोग को जलसंत्रास कहते हैं, यह रोग भी वर्जित है। काटे हुए मनुष्यको भी जलसंत्रास होने पर याग देना चाहिये॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आखुविष पर दाह ॥

आखुना दष्टमात्रस्य दंशं कांक्षेन दाहयेत् ।
दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकान्यथा ।

अर्थ–चूहेके काटतेही दंशस्थानको तप्त शलाका वा दर्पण द्वारा दग्ध करदेना चाहिये । ऐसा न करने से भयंकर वेदना कारक कर्णिका पैदा होजाती है ॥

दग्धदंशका विस्राव ॥

दग्धं विस्रावयेद्दंशं प्रच्छिन्नं च प्रलेपयेत् ।
शिरीषरजनीयुक्तकुंकुमामृतवह्लिभिः ॥

अर्थ–दंशको दग्ध और अस्त्रद्वारा प्रछिन्न अर्थात् थोडा थोडा खुरचकर उसमें सिरस के बीज, हलदी, तगर, कुंकुम और गिलोय का लेप करना चाहिये ॥

चूहेका विषनाशक लेप ।

अगारधूमसंजिष्टारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनः ॥

अर्थ–गृहधूम, मजीठ, हलदी, सेंधानमक इनका लेप करने से चूहेका विष नष्ट और कर्णिका निपतित हो जाती है ।

दंशका धोना ।

ततोऽम्लैः क्षालयित्वाऽनु तोयैरनु च लेपयेत् ।
पालिंदीश्वेतकटभीबिल्वमूलगुडूचिभिः ॥
अन्यैश्च विषशोफघ्नैः सिरां वा मोक्षयेद्द्रुतम् ।

अर्थ–तदनंतर पहिले कांजी आदि खट्टे पदार्थ से और फिर जलसे धोकर निसोथ, श्वेत अपराजिता, बेलगिरी की छाल, और गिलोय द्वारा अथवा विष और शोधनाशक अन्य किसी औषधद्वारा लेप करे और शीघ्र ही सिरावेध करके रक्तमोक्षण करना चाहिये

उक्तरोग में वमन ।

छर्दनं नीलिनीकाथैः शुक्राख्यांकोल्लयोरपि ॥

अर्थ–नीलिनी का काथ अथवा कौआ टोंटी वा अंकोल का काथ पान कराके वमन करावै ।

वमनकारक चूर्ण ।

कोशातक्याः शुकाख्यायाः फलं जीमूतकस्यच ।
मदनस्य च संचूर्ण्य दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ।

अर्थ–कडवी तोरई, सिरस, देवताड, इन के बीज और मेनफल का चूर्ण दही के साथ पान कराके वमन करावै ।

अन्य चूर्ण ।

वचामदनजीमूतकुष्ठं वा मूत्रपेषितम् ।
पूर्वकल्पेन पातव्यं सर्वोदरविषापहम् २२

अर्थ–वच, मेनफल, देवदाली, और कूठ इनको गोमूत्र में पीसकर दहीके साथ पान करावे । इसके पीनेसे सब प्रकारके चूहोंका विष दूर हो जाता है ।

उक्त रोगपर विरेचन ।

विरेचनं त्रिवृच्छीलीत्रिफलाकल्क इष्यते ।

अर्थ–इसमें निसोथ, नील और त्रिफला का कल्क देकर विरेचन कराना चाहिये ।

उक्तरोग में अंजन ।

अंजनं गोमयरसो व्योषसूक्ष्मरजोन्वितः २३

अर्थ–त्रिकुटा के चूर्णको महीन पीसकर गोबरके रसमें मिलाकर आंखमें लगाना चाहिये । इससे चूहेका विष दूर हो जाता है

उक्तरोग पर अवलेह ।

कपित्थगोमयरसो मधुमाक्षवलेहनम् ।

अर्थ–कैथ और गोबर के रसमें शहत मिलाकर पीना चाहिये ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पक्वघृतपान ।

तंदुलीयकमूलेन सिद्धं पाने हितं घृतम् ।
त्रिनिशाकटभीरक्तायष्ट्याह्वैर्वाऽमृतान्वितैः
आस्फोतमूलसिद्धं वा पंचकापित्थगर्भ वा

अर्थ–चौलाई की जड के साथ पकाया हुआ घी पीना हितकारी है। अथवा दोनों हलदी, सफेद गोकर्णी, मजीठ, मुलहटी, गिलोय से अथवा कैथकी जड, छाल, पत्ते, फल और पुष्प से सिद्ध किया हुआ घी पान करना हित है ॥

अन्यकाथ ।

सिंदुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।
वचाश्ववदंष्टाजीमूतमेषां क्वाथं समाक्षिकम् ।
पिबेच्छलीधीदनंदध्नाभुंजानोमूषिकार्दितः

अर्थ–संभालू, तगर, सहजना, बेलपत्र की जड, सांठ, बच, गोखरू और देवताड के काथमें शहत मिलाकर पान करे। इसपर दही के साथ शालीचांवलों का पथ्य करना चाहिये ।

उक्तरोग पर चूर्ण ।

तक्रेण शरपुंखाया बीजं संचूर्ण्य वा पिबेत्

अर्थ–सरफोंका के बीजों का चूर्ण तक्र के साथ पान करना हित है ।

आखु विषनाशक कल्क ।

अंकोल्लमूलकल्को वा वस्तमूत्रेण कल्कितः
पानालेपनयोर्युक्तः सर्वाखुविषनाशनः २८

अर्थ–अंकोल की जड को बकरे के मूत्र में पीसकर पान और लेप द्वारा प्रयुक्त करने से सब प्रकार के चूहों का विष दूर होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

कपित्थमध्यतिलकातिलांकोल्लजटाः पिबेत्
गवांमूत्रेण पयसा मंजरीं तिलकस्य वा ।

अर्थ–कैथ का गूदा, तुलसी, तिल और अंकोल की जड, इन सब द्रव्यों को गोमूत्र के साथ अथवा तुलसी की मंजरी को दूध के साथ पीसकर पान करे ।

अन्य उपाय ।

अथवा सैर्यकाम्मूलं सक्षौद्रं तंदुलांबुना ।

अर्थ–सफेद कुरंटा की जड में शहत मिलाकर चौलाई के जलके साथ पानकरे ।

अन्य प्रयोग ।

कटुकालाबुबिन्यस्तं पीतं यांबुनिशोषितम्

अर्थ–कडवी तोरई को रातभर जल में भिगो देवे । दूसरे दिन प्रातःकाल उस जल को पीनेसे चूहे का विष नष्ट होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

सिंदुवारस्य मूलानिबिडालास्थिविषंनतम्
जलापिष्टो गदो हंति नस्याद्यैराखुजं विषम् ॥

अर्थ–संभालू की जड और बिलाव की अस्थि, मीठा विष और तगर। इन सबको जल में पीसकर नस्यादि द्वारा प्रयोग करने से चूहे का विष नष्ट होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

सशेषं मूषिकविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने ।
यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु ॥

अर्थ–चूहेका विष जो शेष रहजाता है वह बादलों के होने पर फिर प्रकुपित होजाता है । अथवा जिस चूहे के विषमें जिस दोष की अधिकता होती है उस दोष के प्रकोपन काल में वह विष प्रकुपित होजाता है ।

चिकित्सा की विधि ।

तत्र सर्वे यथावस्थं प्रयोज्याः स्युरुपक्रमाः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथास्त्र ये च निर्दिष्टास्तथा दूषीविषापहाः

अर्थ–चूहे के विष में अवस्थानुसार विवेचना करके सब प्रकार की क्रिया करनी चाहिये । तथा दूषी विषनाशक जो जो चिकित्सा कहीगई है वह भी करनी आवश्यकीय है ।

कुत्ते के काटने पर लेप ।

दष्टं सालर्कदष्टस्य दग्धमुष्णेन सर्पिषा ।
अदिह्यादगदैस्तैस्तैः पुराणं च घृतं पिबेत् ॥

अर्थ–कुत्ते के काटेहुए स्थान पर गरम घी से दग्ध करै, पीछे पूर्वोक्त औषधों का लेपकरे और पुराने घी को पीवै ।

उक्त रोग पर विरेचन ।

अर्कक्षीरप्लुतं चाऽस्य शोऽयमाशु विरेचनम्

अर्थ–इस रोग पर विरेचनादि द्रव्यों में आक का दूध मिलाकर शीघ्र विरेचन देना चाहिये ।

अन्य उपाय ।

अंकोल्लोत्तरमूलाबु त्रिफला सहविः पलम् ॥
पिबेत्सधत्तूरफलां श्वेतां वाऽपि पुनर्नवाम् ।

अर्थ–अंकोल और इन्द्रायण की जड़ का क्वाथ, तीन पल और घी एक पल इन को मिलाकर अथवा धतूरे का फल और सफेद अपराजिता अथवा धतूरे का फल और सांठ इनको जल में पीसकर पान करै ।

विषमालर्क भेदक पान ।

पेलाभ्यं पललं तैलं क्षीरिकायाः पयो गुडः ॥
भिनत्ति विषमालर्कं घनवृन्दमिवानिलः ।

अर्थ–भुने हुए तिलों का चूर्ण, तेल, आक का दूध, गुड, इन सब द्रव्यों को मिलाकर जल के साथ पान कराने से बावले कुत्ते का विष ऐसे नष्ट होजाता है जैसे हवा के वेग से बादलों के समूह ।

रोगी को स्नान ।

समंत्रं सौषधीरक्तं स्नपनं च प्रयोजयेत् ॥

अर्थ–सर्वौषधी, महौषधी, रक्तसंयुक्त अभिमंत्रित जल से कुत्ते से काटेहुए रोगीको स्नान करावै ।

चतुष्पदादिकों का दंश ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदंतपरिक्षतम् ।
शूयते पच्यते रागज्वरस्रावरुजान्वितम् ॥

अर्थ–हाथी घोड़े आदि चौपाये जानवर, मनुष्य और मुर्गे आदि दो पैरवाले जीव इनके नख और दांत द्वारा जो घाव होजाताहै, उसमें सूजन और पाक पैदा होजाता है । तथा ललाई, ज्वर, स्राव और वेदना से युक्त होता है ।

उक्त रोगपर लेप ।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदंतविषापहः ॥

अर्थ–सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी, हंसपदी, हलदी, दारुहलदी, और गेरू इन का लेप करने से नख और दांत के विष दूर होजाते हैं ।

इतिश्री अष्टांगहृदयसंहितायां भाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थानेमूषिकालर्कविषप्रतिषेधनाम अष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो रसायनाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब हम यहां से रसायनाध्याय की व्याख्या करेंगे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसायन से दीर्घ जीवनादि।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेंद्रियबलोदयम् ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कांतिमवाप्नोतिरसायनात्
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनांरसायनम्

अर्थ–रसायन से दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण, स्वर की निर्मलता, देह, इन्द्रिय और बल की वृद्धि, वाक्सिद्धि, वीर्य की अधिकता और कांति प्राप्त होते हैं, इससे रसरक्तादि श्रेष्ठ धातुओं की प्राप्ति होती है इस लिये इसे रसायन कहते हैं।

रसायन प्रयोग।

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः।
स्निग्धस्य कृतरक्तस्य विशुद्धस्य च सर्वथा

अर्थ–जो मनुष्य स्नेहन और रक्तमोक्षण से शुद्ध हो चुका हो और जिसको वमन विरेचन भी देदिया गयाहो, तथा जितेन्द्रियतासे रहताहो, उसे प्रथमावस्था और मध्यावस्था में रसायन का सेवन कराना चाहिये ॥

रसायन का निष्फल होना।

अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रसायनो विधिः
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रंग इवाफलः ॥

अर्थ–वमनविरेचनादि से शुद्ध किये विना रसायन वा वाजीकरण का सेवन ऐसे निष्फल हो जाता है, जैसे मैलेवस्त्र पर रंग चढाना निष्फल होता है।

रसायनके दो प्रयोग।

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः।
कुटीप्रावेशिकं मुख्यं वातातपिकमन्यथा ॥

अर्थ–ऋषियों ने रसायन के दो प्रयोग कहे हैं, इनमें से कुटीप्रावेशिक मुख्य है। और वातातपिक अप्रधान है।

रसायन में स्थान।

निर्वाते निर्भये हृद्ये प्राच्योपकरणे पुरे।
दिश्युदीच्यां शुभेदेशे त्रिगर्भासूक्ष्मलोचनाम्
धूमातपरजोव्यालस्त्रीमूर्खाद्यावलीयंताम्।
सज्जवैद्योपकरणां सुमृष्टां कारयेत्कुटीम् ॥

अर्थ–उत्तर दिशाकी ओर किसी शुभ स्थान में एक ऐसा स्थान बनवावे, जिसमें हवा का प्रवेश न हो सकता हो और किसी प्रकारका भय भी न हो, इस घरमें संपूर्ण आवश्यकीय सामग्री एकत्रित करदेनी चाहिये यह घर त्रिगर्भ अर्थात् घरके भीतर घर और फिर उस घर के भीतर घर हो जिसमें छोटे छिद्रवाले जालीदार झरोखे लगे हुए हों, इस घरमें सफेदी करादेनी चाहिये। इस कोठरी के भीतर वैद्योपयोगी सब सामान एकत्रित करे और ऐसा यत्न करे कि धूआं, धूप, धूलि, वा किसी प्रकार का कोई हिंसकजीव, स्त्री वा मूर्ख प्रवेश न कर सके।

रसायनारंभ में कर्तव्य।

अथ पुण्येऽहिंसपूज्यपूज्यांस्तांप्रविशेच्छुचिः
तत्र संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ॥
ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्दधानो जितेंद्रियः।
दानशीलदयासत्यव्रतधर्मपरायणः ॥ ९ ॥
देवतानुस्मृतौ युक्तो युक्तस्वप्नप्रजागरः
प्रियोषधः पेशलभाक् प्रारभेत रसायनम् ॥

अर्थ–शुभदिनमें स्नानादि द्वारा पवित्र होकर स्वस्तिवाचनपूर्वक देव द्विज गुरु आदि पूज्यों की पूजा करके उस घरमें प्रवेश करे। तदनंतर विरेचनादि संशोधन क्रिया द्वारा शुद्ध देह तथा सर्वरोगनाशक शिलाजीत और च्यवनप्राशादि औषधों का सेवन करके निरोग होकर बलको प्राप्त करे। तदनन्तर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्रह्मचर्य, धैर्य, श्रद्धा, जितेन्द्रियता, दानशीलता, सत्स्वभाव, दया, सत्यव्रत, धर्मपरायणता देवभक्ति, यथासमय शयन करना और जागना औषधप्रियता और मधुरभाषण । इन सब कामों को रसायन के आरंभके समय करे ।

विरेचन विधि ।

हरीतकीमामलकं सैंधवं नागरं वचाम् ।
हरिद्रां पिप्पलीं वेल्लं गुडं चोष्णांबुना पिबेत् ।
स्निग्धः स्विन्नो मद्यः पूर्वं तेन साधु विरिच्यते

अर्थ–स्निग्ध और स्विन्न होकर प्रथम ही हरड, आमला, सेंधानमक, सोंठ, बच, हलदी, पीपल, बायबिडंग और गुड इन सब द्रव्यों को गरम जलके साथ पान करे । इस से उत्तम विरेचन हो जाता है ।

यावक प्रयोग ।

ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ॥
त्रिरात्रं पंचरात्रं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम्
दद्याद्यावकमाशुद्धेः पुराणशकृतोऽथवा ॥

अर्थ–विरेचनद्वारा शरीर के अच्छी तरह शुद्ध होने पर संसर्जनकी व्यवस्था करे फिर तीन, पांच, वा सातदिन तक अथवा जब तक पुराने मलकी शुद्धि न हो तब तक घृतयुक्त यावक देना चाहिये ।

रसायन प्रयोग ।

इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनमुपाहरेत् ।
यस्यर्द्धयौगिकंपश्येत्सर्वमालोच्यसात्म्यवित्

अर्थ–इस तरह कोष्ठ का संस्कार कर के सात्म्यवित् वैद्यको उचित है कि संपूर्ण बातों पर ध्यान देकर यौगिक रसायनों की सात्म्यता का विचार करे । और उसीको संग्रह करे ।

ब्राह्मरसायन ।

पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम् ।
पंचानां पंचमूलानां सार्धं पलशतद्वयम् ॥
जले दशगुणे पक्त्वा दशभागावशेषिते रसे ।
आपोथ्य कृत्वा व्यष्ठीनि विजयामलकान्यथ
विनीय तस्मिन्निर्यूहे योजयेत्कुडवांशकम् ।
स्वगेलामुस्तरजनीपिप्पल्लधगुरुचंदनम् ॥
मंडूकपर्णीकनकशंखपुष्पीवचाप्लवम् ॥
यष्ट्याह्वयं विडंगं च चूर्णितं तुलयाधिकम्
सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः
द्वे च तैलात् पचेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम्
अवतीर्णं हिमे युंज्यादृद्धौ क्षौद्रशतैकेभिः
ततः खजेन मथितं निदध्याद् घृतभाजने ॥
यानेपरुध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता
षष्टिकः पयसा चाऽत्र जीर्णे भोजनमिष्यते
वैखानसावालखिल्यास्तथाचाऽन्येतपोधनाः
ब्रह्मणा विहितं घन्यमिदं प्राश्य रसायनम् ।
तेद्राश्रमफलमवलीपलितामयवर्जिताः ।
मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः ॥

अर्थ–हरड एक सहस्र, आमला तीन सहस्र, पांचों प्रकार के पंचमूल २५० पल इन सबसे दसगुना पानी डालकर औटावे, जब दसवां भाग शेष रहजाय तब उतार कर छानले । तदनंतर हरड और आमले की गुठलियों को दूर करके छिलकों को सिल पर पीसले । और दालचीनी इलायची मोथा, हलदी, पीपल, अगर, रक्तचंदन, मंडूकपर्णी, नागकेसर, शंखपुष्पी, बच, क्षुद्रमोथा, मुलहटी, वायबिडंग । ये सब द्रव्य प्रत्येक एक कुडव, शर्करा ग्यारह तुला, घी तीन पात्र, तेल दो पात्र । इन सबको पूर्वोक्त काढे में मिलाकर फिर पकावे, जब चाटने के योग्य गाढा होजाय तब उतार कर रखले और ठंडा होने पर तीनसौ बीस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पल शहत मिलावे । फिर इसको रई से मथ कर घी की हांडी में भरदे । इसकी इतनी मात्रा सेवन करनी चाहिये जो सायंकाल के भोजन में बाधक न हो । औषध के पचने पर दूधके साथ सांठी चांवलोंका भात खाने को दे । ब्रह्मा की बनाई हुई इस रसायन को सेवन करके वैखानस और बालखिल्यादि तपोधन मुनि तन्द्रा, श्रम, क्लान्ति, वली और पलितादि रोगोंसे रहित होगये, तथा उनको मेधा, स्मृति, बल, और दीर्घजीवन का लाभ हुआ था ।

अन्य रसायन ।

अभयामलकसहस्रं निरामयं पिप्पलीसहस्रयुतम् ।
तरुणपलाशक्षारद्रवीकृतं स्थापयेद्भाण्डे ॥
उपयुक्ते तक्षारे छायासंशुष्कचूर्णितंयोज्यम्
पादांशेनसिताया श्चतुर्गुणाभ्यांमधुघृताभ्याम्
तद्घृतकुंभे भूमौनिधायषण्मासलंबमुद्धृत्य
प्राहे प्राह्ययथानलमुचिताहारोभवेत्सततम्
इत्युपयुञ्जाऽशेषवर्षशतमनामयोजरारहितः
जीवति बलपुष्टियुतः स्मृतिमेधाद्यन्वितो-
विशेषेण ॥ २७ ॥

अर्थ–एक पात्र में नवीन ढाकके क्षार से द्रवीभूत की हुई एक एक हजार हरड आमला और पीपल रक्खे । फिर इनको छाया में सुखाकर बारीक पीसले । फिर इसमें चौथाई भाग शर्करा मिलाकर एक कलश में भरकर छः महिने तक भूमि में गाढदे । तदनन्तर औषधको निकाल कर जठराग्नि के अनुसार इसकी मात्रा प्रातःकाल के समय सेवन करे । इस पर हितकारी आहार का पथ्य करता रहे । नियमानुसार इस औषधका सेवन करने से मनुष्य निरोग और वृद्धावस्था से रहित होता है । तथा विशेष करके बल, पुष्टि, आयु, स्मृति और मेधादि युक्त होकर सौ वर्ष का जीवन लाभ करता है ।

अन्यरसायन ।

बिल्वार्द्रपलाशस्य छिन्ने शिरसि तत्क्षतम
मंतर्द्विहस्तं गंभीरं पूर्यमामलकैर्नवैः ॥२८॥
आमूलं वेष्टितं दर्भैः पद्मिनीपत्रलेपितम् ।
आदीप्य गोमयैर्वन्यैर्निर्वाते स्वेदयेत्ततः ।
स्विन्नानि तान्यामलकानि तृप्त्या
खादेन्नरः क्षौद्रघृतान्वितानि ।
क्षीरं शृतं चाऽनु पिबेत्प्रकामं
तेनैव वर्तेत च मासमेकम् ॥ ३० ॥
वर्ज्यानि वर्ज्यानि च तत्र यत्ना-
त्स्पृश्यं च शीतांबु न पाणिनाऽपि ।
एकादशाहेऽस्य ततो व्यतीते
पतंति केशा दशना नखाश्च ॥ ३१ ॥
अथाऽपकैरेव दिनैः सुरूपः
स्त्रीष्वक्षयः कुंजरतुल्यवीर्यः ।
विशिष्टमेधाबलबुद्धिसत्त्वो
भवत्यसौ वर्षसहस्रजीवी ॥ ३२ ॥

अर्थ–कीटादि द्वारा अप्रतिहत एक हरे ढाक के वृक्षका मस्तक दूर करके उस में दो हाथका गढा करके उसमें हरे आमले भरदे, उसके ऊपर से नीचे तक कुशा लपेट कर कमलकी कोचड लेहसदे । फिर उसको निवातस्थान में आमले ऊपलों की आग से स्वेदित करे । इन आमलों को घी और शहत के साथ तृप्तिपर्यन्त खाकर ऊपर से दुग्धपान करे और एक महिने तक केवल दूध पीकर रहे । तथा रसायनविधि में जो क्षारादि निषेध किये गये हैं, उनका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परित्याग करदेवे । ठंडे जलको हाथसे भी छूना वर्जित है । इस तरह ग्यारह दिनतक रहने से केश, नख और दांत सब गिर पड़ेंगे । और थोडेही दिन पीछे सुंदर केश, नख और दांत पैदा होजायंगे। इस रसायन के सेवन करने से मनोहर कांति, स्त्रीसंगम की यथेष्ट सामर्थ्य, हाथी के समान वीर्य, तथा मेधा बल बुद्धि और सत्वकी अधिकता होती है । इस रसायन का सेवन करनेवाला सहस्रवर्ष की आयुलाभकर सकता है ।

च्यवनप्राश ।

दशमूलबलामुस्तजीवकर्षभकोत्पलम् ।
पर्णिन्यौ पिप्पली शृंगीमेदायामलकीत्रुटिः
जीवंतो ऑग कं द्राक्षा पौष्करं चंदनं शठी।
पुनर्नवाद्विकाकोलीकाकनासामृताह्वयाः ।
विदारीवृष्यमूलं च तदैकध्यं पलोन्मितम् ।
जलद्रोणे पचेत्तत्पधात्रीफलशतानि च ३५
पादशेषं रसंतस्मादुधरीभ्यामलकानि च।
गृहीत्वा भर्जयेत्तैलघृतापूपादक्षभिः पलैः ।
मरस्यंडिकातुलार्धेन युक्तं तल्लेहवत् पचेत्
स्नेहार्धं मधुसिक्ते तु लवक्षीर्यार्धरक्षतुष्पलम्
पिप्पल्या द्विपलंदद्याच्चतुर्जातकणार्धितम् ।
अतोऽवलेहयेन्मात्रां कुटीस्थः पथ्यभोजनः
इत्येष च्यवनप्राशो यं प्राप्य च्यवनो मुनिः
जराजर्जरितोऽप्यासीन्नारीनयननंदनः ।
कासं श्वासं ज्वरंशोषहृद्रोगंवातशोणितम्
मूत्रशुक्राशयान् दोषान्वैस्वर्यं च व्यपोहति
बालवृद्धक्षतक्षीणकृशानामंगवर्धनः ४०
मेधां स्मृतिं कांतिमनामयत्व-
मायुःप्रकर्षं पवमानुलोम्यम्
स्त्रीषु ग्रहर्षं बलमिंद्रियाणा-
मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्तः ॥ ४१ ॥

अर्थ—दशमूल, खरैटी, मोथा, जीवक, ऋषभक, नीलोत्पल, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, काकडासिंगी, मेदा, भूम्यामलकी, छोटीइलायची, अगर, दाख, पुष्करमूल, रक्तचन्दन, कचूर, सांठ, काकोली, क्षीरकाकजंघा, गिलोय, विदारीकंद, और अडूसेकी जड, प्रत्येक एक पल, ढीली पोटली में बंधेहुए ५०० आमले । इन सब द्रव्यों को एक साथ एकद्रोण जलमें पकावे । चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले । और उस पोटलीमें से आमलों को खोलकर उनकी गुठली तो फेंकदे और उनको छः छः पल मिले हुए घी और तेलमें भूनकर शिलापर पीसले । फिर ५० पल मिश्री, ऊपरवाला काढे का जल, और पिसे हुए आमलों को मिलाकर पकावे । लेहई की तरह गाढा होजाने पर वंशलोचन ४ पल, पीपल २पल, दालचीनी, इलायची, तेजपात नागकेसर ४ तोले इन सबका चूर्ण मिलाकर रखले । ठंडा होने पर इसमें छः पल शहत मिलाकर घी की हांडी में भरकर रखदे । इसके सेवन से खांसी, श्वास, ज्वर, शोष, हृद्रोग, वातरक्त, मूत्र और शुक्रगतदोष तथा स्वरविकृति नष्ट होजाते हैं । इससे मेधा, स्मृति, कांति, स्वास्थ्य, आयुर्वृद्धि, वायुका अनुलोमन, मैथुनशक्ति, इन्द्रियबल और अग्निबल की वृद्धि होती है । जरावस्था से पीडित च्यवनमुनि इस रसायन के सेवन करने से दिव्यमूर्ति होगये थे । इसकी मात्रा दो तोले है । इस पर दूधका अनुपान है ।

त्रिफला रसायन ।

मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिंधुजन्मना ।
पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ४२
सितया वा समायुक्ता समायुक्तारसायनम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रिफला सर्वरोघ्नी मेधायुः स्मृतिबुद्धिदा

अर्थ—मुलहटी, वंशलोचन, पीपल, सेंधानमक, रूपा, तांबा, सीसा, रांग, लोहा, सुवर्ण, वच, मिलाहुआ घी शहत शर्करा। इसमें से प्रत्येक के साथ त्रिफला का सेवन करने से सबरोग नष्ट होजाते हैं। तथा मेधा, आयु, स्मृति और बुद्धि बढती हैं। यह रसायन बहुत उत्तम है।

अन्य रसायन।

मंडूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्नि
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्।
रसं गुडूच्याः सहमूलपुष्प्याः
कल्कं प्रयुञ्जीत च शंखपुष्प्याः ॥ ४४ ॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरधर्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्यां विशेषेण तु शंखपुष्पीं ॥ ४५ ॥

अर्थ—अग्निबल के अनुसार मंडूकपर्णी का स्वरस। दूधके साथ मुलहटी का चूर्ण जड और पुष्पसहित गिलोय का रस। तथा शंखपुष्पी का कल्क प्रयोग करे। इनमें से हर एक आयुको बढानेवाला, रोगनाशक, बल अग्नि वर्ण और स्वरको बढाने वाला और मेधाजनक है। शंखपुष्पी का कल्क तो बहुतही मेधावर्द्धक है।

अन्य प्रयोग।

नलदं कटुरोहिणी पयस्या
मधुकं चंदनसारिवोत्पलंधाः।
त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे
सपटोलं लवणं च तैः सुपिष्टैः ॥ ४६ ॥
त्रिगुणेन रसेन शंखपुष्प्याः
सपयस्कं घृतमत्र पक्वमेयम्।
उपयुज्य भवेन्नरोऽपि मेधावी
श्रुतधारी प्रतिभानधानरोगः ॥ ४७ ॥

अर्थ—बालछड, कुटकी, दुधका, मुलहटी चंदन, अनन्तमूल, वच, त्रिफला, त्रिकुटा, हलदी, दारुहलदी, पर्वल और सेंधानमक। इन सब द्रव्यों को समानभाग लेकर अच्छी तरह से पीसकर इस कल्क से तिगुना शंखपुष्पीका रस मिलावे। तथा दूध और घी एक एक प्रस्थ मिलाकर पकावे। इस रसायन के सेवन करने से जड मनुष्यभी वाचाल, श्रुतधारी सुनीहुईबातको याद रखनेवाला) प्रतिभाशाली और रोगरहित होताहै।

पंचारविंद रसायन।

पेष्यैर्मृणालबिसकेसरपत्रबीजैः
सिद्धं सहेमशकलं पयसा च सर्पिः।
पंचारविंदमिति तत्प्रथितं पृथिव्यां
प्रभ्रष्टपौरुषबलप्रतिभैर्निषेव्यम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—कमलनाल, कमलकंद, कमलकेसर, कमलपत्र, कमलबीज, इस पंचांगको अच्छी तरह पीसकर इसमें सुवर्ण की भस्म, दूध और घी के साथ पाक करे। यह पंचारविन्द रसायन उसको देनी चाहिये जो पौरुषबल और प्रतिभा से हीन होगया है॥

अन्य प्रयोग।

यच्चाब्जकंददलकेसरबीजपक्वं
नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम्
सर्पिश्चतुःकुडवयं सहिरण्यपत्रं
मेध्यं गवामपि भवेत् किमु मानुषाणाम्

अर्थ—नीलकमल का नाल, कंद, पत्र और केसर इन चारों को अच्छी तरह पीसकर इसमें सोनेकी भस्मको दूध और घीके साथ पकाकर सेवन करनेसे मेधाकी अत्यन्तवृद्धि होती है॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वार्द्धक्यनाशक रसायन।

ब्राह्मीवचासैंधवशंखपुष्पी-
मत्स्याक्षकब्रह्मसुवर्चलेंद्रयः।
वैदेहिका च त्रियवाः पृथक्स्यु-
र्यवौ सुवर्णस्य तिलो विषस्य ॥ ५० ॥
सर्पिषश्च पलमेकत एत-
द्योजयेत्परिणते च घृताद्यथम्।
भोजनं समधु सत्सरमेवं
शीलयन्नधिकधीस्मृतिमेधः ॥ ५१ ॥
अतिक्रांतजराव्याधितंद्रालस्यश्रमक्लमः।
जीवत्यब्दशतं पूर्णं श्रीतेजःकांतिदीप्तिमान्
विशेषतः कुष्ठकिलासगुल्म-
विषज्वरोन्मादगरोदराणि
अथर्वमंत्राविकृताश्च कृत्याः
शाम्यंत्यनेनातिबलाश्च वाताः

अर्थ-ब्राह्मी, वच, सेंधानमक, शंखपुष्पी, मत्स्याक्षक, ब्रह्मी, इन्द्रायण, पीपल प्रत्येक तीन यव, सुवर्ण भस्म दो यव, विष एक तिल, घृत एक पल, इन सब द्रव्योंको एकत्रकरके मात्रानुसार सेवन करे। औषधके पचने पर घृतप्लुत मधुमिश्रित हितकारी भोजन करना चाहिये। नियमपूर्वक एक वर्षतक इस औषधका सेवन करनेसे बुद्धि, स्मृति और मेधाकी अधिक वृद्धि होती है। जरा, व्याधि, तंद्रा, आलस्य, थकावट, और क्लांति जाते रहते है और आयुभी पूरे सौ वर्षकी होजाती है, शरीर की श्री, तेज, कांति और दीप्ति होती है। कुष्ठ, किलास, गुल्म, विषज्वर और गरोदर नष्ट होजाता है। अथर्ववेदोक्त मंत्रोद्भूत कृत्या और अति प्रबल वातप्रकोप शांत होजाते हैं।

अन्य अवलेह ॥

शरन्मुखे नागबलां पुष्ययोगे समुद्धरेत्।
अक्षमात्रं ततो मूलाच्चूर्णितात्पयसा पिबेत्
लिह्याद्घृतयुताभ्यां वा क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्
एवं वर्षप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं नरः ॥

अर्थ-शरत्काल के प्रारंभमें पुष्य नक्षत्र के दिन नागबला की जड उखाडे। इस जड का चूर्ण करके एक तोला दूध अथवा घी और शहत के साथ सेवन करे। इस पर केवल दूधका पथ्य दे। अन्न न दे। इस नियम से एक सालतक औषधका सेवन करने से मनुष्य बलवान और शतायु होता है।

शक्तिवर्द्धक प्रयोग ॥

फलोन्मुखो गोक्षुरकः समूल-
च्छायाविशुष्कः सुविचूर्णितांगः।
सुभावितः स्वेन रसेन तस्मा-
न्मात्रां परां प्रासृतिकी पिबेद्यः ॥ ५६ ॥
क्षीरेण तेनैव च शालिमश्नन्
जीर्णे भवेत्सर्पितुलोपयोगात्।
शक्तः सुरूपः सुभगः शतायुः
कामी ककुद्मानिव गोकुलस्थः ॥ ५७ ॥

अर्थ जिसमें फल निकलने ही को हों ऐसे गोखरूके वृक्षको जड समेत उखाडकर छायामें सुखाकर बारीक पीसले, इस चूर्णको गोखरू के रसकी ही भावना देवे और इसमें से एक प्रसृति दूधके साथ सेवन करे। औषधके पचने पर दूधके साथ शालीचांवलों का भात सेवन करे। इस नियम से जो मनुष्य क्रमसे दो सौ पल इस औषधका सेवन कर लेता है, वह कार्यपटु, सुरूप, सौभाग्यशाली, शतायु, और गोकुलस्थ सांडकी तरह कामी होजाता है

अन्य प्रयोग ॥

वाराहीकंदमार्द्रार्द्रं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत्।
मासं निरन्नो भक्षं च क्षीरान्नादो जरां जयेत्

अर्थ-गीले वाराहीकंद को एक महिने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तक दूधके साथ सेवन करें। इस पर केवल दूध पीकर रहे। अन्न का सेवन न करे। दूसरे महिने में औषध के सेवन कालमें दूध और अन्नका सेवन करे तो बुढापा नष्ट हो जाता है।

अन्य प्रयोग।

तत्कंदस्य हरणचूर्णं वा स्वरसेन सुभावितम्
घृतक्षौद्रप्लुतं लिह्यात्तत्पक्वं वा घृतं पिबेत्

अर्थ—बाराहीकंद की जडको महीन पीसकर इसमें इसीके रसकी भावना देवे। इस औषधको घी और शहतके साथ सेवन करे। अथवा बाराहीकंद के कल्क के साथ घृत पकाकर पान करे।

अन्य प्रयोग।

तद्वद्विदार्यतिबलाबलामधुकवायसीः।
श्रेयसी श्रेयसीयुक्तापथ्याधात्रीस्थिराभृताः
मंडुकीशंखकुसुमावाजिगंधाशतावरीः।
उपयुंजीत मेधावी वयःस्थैर्यबलप्रदाः॥

अर्थ—विदारीकंद के सदृश ही अतिबला, बला, मुलहटी, काकमाची, पीपल, हरड, आमला, शालपर्णी, गिलोय, मंडूकपर्णी, शंखपुष्पी, असगंध, सितावर, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण घी और दूधके साथ सेवन करे। इससे मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है, तथा वयकी स्थिरता और बलकी वृद्धि होती है।

चीते का प्रयोग।

यथासंधं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयःपीतसितासितैः।
यथोत्तरं स गुणवान् विधिना च रसायनम्

अर्थ—पीले, सफेद और काले फूलोंसे चीतेकी पहचान होती है, ये उत्तरोत्तर गुणकारी है अर्थात् पीले से सफेद और सफेद से काले फूलवाला चीता गुणकारक है। इस का विधिपूर्वक सेवन करने से यह रसायन का काम देता है

चीते का प्रयोग।

छायाशुष्कं ततो मूलं मासं चूर्णीकृतं लिहन्
सर्पिषा मधुसर्पिर्भ्यां पिबन् वा पयसा यतिः
अंभसा वा हिताशी शतं जीवति नीरुजः
मेधावी बलवान् कांतो वपुष्मान् दीप्तपावकः

अर्थ—चीतेकी जडको छायामें सुखाकर और अच्छी तरह पीसकर एक महिने तक घीके साथ अथवा घी और शहत के साथ सेवन करे और जितेन्द्रिय होकर दूधके साथ पीवे। अथवा हितकारी पथ्य करता हुआ पानी के संग पीवे। इसके सेवन से मनुष्य निरोग होकर सौ वर्षतक जीता है। तथा मेधा, बल, कांति, सुन्दरता और जठराग्निकी वृद्धि ये भी बढते हैं।

अन्य अवलेह।

तैलेन लीढो मासेन वातान् हंति सुदुस्तरान्
मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान्॥

अर्थ—चीते के चूर्ण को एक महिने तक तेल के साथ सेवन करने से दारुण वातरोग जाते रहते हैं, गोमूत्र के साथ सेवन करने से श्वित्रकुष्ठ और तक्र के साथ सेवन करने से अर्शरोग जाता है।

भल्लातक प्रयोग।

भल्लातकानि पुष्टानि धान्यराशौ निधापयेत्
ग्रीष्मे संगृह्य हेमंते स्वादुस्निग्धहिमैर्वपुः॥
संस्कृत्य तान्यष्टगुणे सलिलेऽष्टौ विपाचयेत्
अष्टांशशिष्टं तत्काथे सर्पीरं शीतलं पिबेत्
वर्धयेत्प्रत्यहं चात्र तत्रैकैकमरुष्करम्।
सप्तरात्रत्रयं यावत् त्रीणि त्रीणि ततः परम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचत्वारिंशतस्तानि ह्रासयेद्वृद्धिवत्क्रमः ।
सहस्रमुपयुञ्जीत सप्ताहैरिति सप्तभिः ॥
यंयंत्रितात्मा घृतक्षीरशालिषष्टिकभोजनः ।
तद्वन्निगुणितं कालं प्रयोगांतेऽपि चाचरेत् ॥
आदिशेषो लभतेऽपूर्वा बहूदोषांश्च विशेषतः ।
प्रमेहकृमिकुष्ठार्शो मेदोदोषविवर्जितः ॥

अर्थ—गर्मी की ऋतु में मोटे २ भिलावे लाकर नाज के ढेर में गाढ दे. फिर हेमंत ऋतु में स्वादु, स्निग्ध और शीतल पदार्थों के सेवन से देह को संस्कृत करके उन भिलावों मेंसे आंठ लेकर अठ गुने जल में पकावे, जब अष्टमांश शेष रहजाय तब उतारकर छान ले, इस क्वाथ को ठंडा करके दूध के साथ सेवनकरे, फिर प्रति दिन एक एक भिलावा बढाता रहै, इकीस दिन तक इसी तरह करे, इकीस दिन पीछे प्रति दिन तीन तीन बढावै. इस तरह ४० भिलावे पर पहुंचकर जैसे बढाये थे उसी क्रम से घटावै, इस तरह सात सप्ताह में बढाने घटाने के क्रम से १००० भिळावों का प्रयोग करे, तथा संयतात्मा होकर घी, दूध, शाली और साठी चांवलों का पथ्य करे। भिलावे के प्रयोग के पीछे भी २१ सप्ताह तक इसी तरह से हितकारी भोजनों को करता रहै, इस भल्लातक रसायन के सेवन करने से अपूर्व आशीर्वादों को प्राप्त करता हुआ जठराग्नि की वृद्धि को प्राप्त करताहै तथा प्रमेह, कृमि, कुष्ठ, अर्श और मेदो दोष नष्ट होजाते हैं ॥

भल्लातकस्वरस प्रयोग ।

पिष्टस्वेदनभरुजैः पूर्णं भल्लातकैर्विजर्जरितैः ।
भूमिनिखाते कुंभे प्रतिष्ठितं कृष्णमृत्तिकया ॥
परिवारितं समंतात्पचेत्ततो गोमयाग्निना मृदुना ।
तत्स्वरसोयश्च्यवतेगृह्णीयात्तंदिनेऽन्यस्मिन्
अमुमुपयुञ्जन्स्वरसमष्टमभागिकं-
द्विगुणसर्पिः ।
पूर्वविधियंत्रितात्मा प्राप्नोति गुणान्स तानेव

अर्थ—एक पिष्टस्वेदन पात्र जिसमें शालि धान्यका चूर्ण स्वेदित किया जाता है लेवे और इसमें दृढ तथा जर्जरतासहित भिलावों को भरकर ऊपर काली मृत्तिका लपेटकर पेंदे में छेद करके एक पात्र में रखदे जो भूमिमें गढा हो, और इस पात्रके चारों ओर आरने ऊपलों की मंदी आग जलादेवै । ऐसा करने से उस छेदमें होकर जो रस टपके उसको दूसरे दिन लेकर उसमें अठगुना शहत और दुगुना घी मिलाकर पूर्वोक्त रीति से सेवन करने से उक्तफल की प्राप्ति होती है । इसमें नियमपूर्वक रहना आवश्यकीय है ।

अमृतरसतुल्य पाक ।

पुष्टानि पाकेन परिच्युतानि
भल्लातकान्याढकसम्मितानि ।
घृष्टेष्टिकाचूर्णकणैर्जलेन
प्रक्षाल्य संशोष्य च मारुतेन ॥ ७५ ॥
जर्जरीकृतानि विपचेज्जलकुंभे
पादशेषधृतगालितशीते ।
तद्रसं पुनरपि श्रपयेत
क्षीरकुंभसहितं चरणस्थे ॥ ७६ ॥
सर्पिः पक्वं तेन तुल्यप्रमाणं
युंज्यात्स्वेच्छं शर्कराया रजोभिः ।
एकीभूतं तत्क्षणक्षोभणेन
स्थाप्यं भाण्डे सप्तरात्रं सुगुप्तम् ॥
तममृतरसपाकं यः प्रगे प्राशमश्नन्
अनु पिबति यथेष्टं वारि दुग्धं रसं वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्मृतिमतिबलमेधासत्त्वसारैरुपेतः
कनकनिचयगौरः सोऽश्नुते दीर्घमायुः ॥

अर्थ–वे भिलावे जो पेडपर ही फूलकर और पककर अपने आप गिर पडते हैं उन को एक आढक लेकर ईंटके चूर्ण के साथ घिसकर जलसे धोकर हवामें सुखाले। फिर इन भिलावों को पीसकर एक कुंभ जलमें पकावे चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । ठंडा होने पर फिर इस काढेको एक कुंभ दूधके साथ पकावे और चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । फिर इसके साथ समानभाग घीको पकावे फिर इसमें उचित प्रमाण से शर्करा मिलाकर हाथ से मथकर किसी पात्रमें भर नाजके ढेरमें गाढदे । सात दिन पीछे निकाल ले। यह अमृतरसपाक है । इसको प्रातःकाल के समय सेवन करके यथेष्ट जल, दुग्ध वा मांसरस का अनुपान करे । इससे स्मृति, मति, बल, मेधा, सत्य, सार और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है । और शरीर भी सुवर्ण की शलाका कासा होजाता है ।

कुष्ठनाशक तैल ।

द्रोणेऽमसो व्रणकृतां त्रिशताद्विपक्वात् ।
काथाढके पलसमैस्तिलतैलपात्रम् ।
तिक्ताविषाद्वयवरागिरिजन्मताक्ष्यैः ।
सिद्धं परं निखिलकुष्ठनिबर्हणाय ॥ ७९ ॥

अर्थ–पके हुए तीनसौ भिलाये एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, और इसमें एक पात्र तेल तथा कुटकी, दोनों प्रकार के अतीस, त्रिफला, शिलाजीत और रसौत प्रत्येक एक पल मिलावे और इसको पकाले । यह औषध सब प्रकार के कुष्ठ रोगों को दूर करतीहै ।

अन्य भल्लातक प्रयोग ।

सहामलकशुक्तिभिर्दधिसरेण तैलेन वा ।
गुडेन पयसा घृतेन यवसक्तुभिर्वा सह ।
तिलेन सह माक्षिकेण पललेन सूपेन वा
वपुष्करमरुष्करं परममेध्यमायुष्करम् ॥

अर्थ–आमले की छाल, दही की मलाई तेल, गुड, दूध, घी, जौ का सत्तू, तिल, मधु, मांसरस, वा सूप इनमें से किसी के साथ सिद्ध किया हुआ भिलावा सेवनकरने से शरीर में सुन्दरता तथा मेधा और आयु की वृद्धि होती है ।

अमृतकल्प भल्लातक ।

भल्लातकानितीक्ष्णानिपाकान्यग्निसमानिच
भवंत्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ॥

अर्थ–पका हुआ भिलावा तीक्ष्णवीर्य और अग्नि के समान होता है, इसका विधि पूर्वक सेवन करना अमृतकल्प होता है ।

भिलावे की प्रशंसा ।

कफजो न स रोगोऽस्ति न विवंधोऽस्ति-
कश्चन ।
ये न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रमग्निबलप्रदम् ॥

अर्थ–कोई कफज रोग ऐसा नहीं है, और ऐसी कोई विबद्धता नहीं है, जो भिलावे से नष्ट न हो सकती हो, यह शीघ्र अग्निबल को बढानेवाली है ।

भल्लातक में वर्जित द्रव्य ।

वातातपविधानेऽपि विशेषेण विवर्जयेत् ।
कुलत्थदधिसूक्तानि तैलाभ्यंगाग्निसेवनम् ॥

अर्थ–वात और आतप के विधान में भी विशेष करके कुलथी, दही, शुक्त,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तैलाभ्यंग, और अग्नि सेवन, ये सब त्याग देने चाहियें।

सर्वकुष्ठनाशक तैल।

वृक्षास्तुवरका नाम पश्चिमार्णवतीरजाः।
वीचीतरंगविक्षोभमारुतोद्धूतपल्लवाः॥
तेभ्यः फलान्याददीत सुपक्वान्यवुदागमे।
मज्जाफलेभ्यश्चादायशोषयित्वाऽवचूर्ण्य च
तिलवत् पीड़येद् द्रोण्यां क्वाथयेद्वाकुसुंभवत्
तत्तैलं संस्रुतं भूयः पचेदासलिलक्षयात्॥
अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत्।
स्निग्धस्विन्नो हृतमलः पक्षादुद्धृत्य तत्ततः॥
चतुर्थभक्तांतरितः प्रातः पाणितलं पिबेत्।
मंत्रेणानेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे।
मज्जासार महावीर्य धातून् सर्वान् विशोधय
शंखचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः।
तेनाभ्यक्तशरीरस्य दोषा यांत्यसकृत्ततः।
सायमस्नेहलवणां यवागूं शीतलां पिबेत्।
पंचाहानि पिबेत्तैलमित्थं वर्ज्यानि वर्जयेत्
पक्षं मुद्गरसाश्यासी सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते।

अर्थ—पश्चिमीय समुद्र के किनारों पर तुवर नामक वृक्ष होते हैं, इनके पत्ते समुद्र की लहरों से क्षुभित हुए वायु द्वारा हिलते रहते हैं। वर्षाऋतु के आगमन काल में इनके पके हुए फलों को एकत्रित करें। इनके गूदे को सुखाकर पीसले। और इसको तिलों की तरह द्रोणी में पीडित करके अथवा कसूमकी तरह काढा करके तेल निकालले और इस तेलको अग्नि पर पका कर जलरहित करदें। इस तेलको किसी पात्र में भरकर सूखे हुए गोबर के ढेर में पन्द्रह दिनके लिये गाढ देवें। और फिर निकाल कर रखछोडे। फिर स्निग्ध और स्विन्न होकर तथा वमन विरेचन से शुद्ध होकर किसी शुभदिन में चौथे भोजन के अंत में हथेली भर इस तेलको पान करे। पान करने से पहिले मज्जासारादि इस मंत्र से उक्त तेलको अभिमंत्रित करे। इस तेल के सेवन करने से शरीरस्थ दोष बारबार ऊपर या नीचे के मार्ग से निकल जाते हैं सायंकाल के समय चिकनाई और नमक से रहित ठंडी यवागू का पान करे। इस नियम से पांच दिन तक यह तेल पीना चाहिये तथा वर्जित द्रव्यों का सर्वथा त्याग करदेना चाहिये। इस तेल के पीने से सब प्रकार के कुष्ठ जाते रहते हैं।

अन्य प्रयोग।

तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधु साधितम्।
निहितं पूर्ववत्पक्षं पिबेन्मासं सुयंत्रितः।
तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वन्नाहारमीरितम्।
अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत्कुष्ठिनं नरम्।

अर्थ—ऊपर लिखे हुए तेल को खैर के तिगुने क्वाथ में उत्तम रीति से पकाकर पूर्वोक्त रीत के अनुसार सूखे गोबरमें गाढदे फिर पन्द्रह दिन पीछे निकाल कर नियम पूर्वक एक महिने तक पान करे, इस तेल को देह पर लगाकर पूर्वोक्त मुद्गरस और अन्नादि का भोजन करे। इस औषध से कुष्ठरोग शांत होजाता है।

द्विशतायुष्कर तेल।

सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिराम्बुना।
पक्षं मांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम्।

अर्थ—इस तुवर मज्ज के तेल को खैर के क्वाथ में सिद्ध किये बिना घी और शहत के साथ पन्द्रह दिन तक पान करे, और मांसरस का अहार करै, इससे दोसौ वर्षकी आयु होजाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रिशतायुष्कर प्रयोग।

तदेव नस्ये पंचाशद्दिवसानुपयोजितम्।
वपुष्मंतं श्रुतधरं करोति त्रिशतायुषम्।

अर्थ=उक्त तेल का पचास दिन तक नस्यकर्म द्वारा प्रयोग करने से शरीर की सुन्दरता, स्मृतिशक्ति की वृद्धि, और तीन सौ वर्ष की आयु होजाती है।

पिप्पल प्रयोग।

पंचाष्टौ सप्तदश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्।

अर्थ–पांच, आठ, सात वा दस पीपल घी और शहत के साथ एक बरस तक सेवन करे, इससे रासायनिक फलकी प्राप्ति होती है।

अन्य प्रयोग।

तिस्रश्चित्रास्तुपूर्वाण्हेभुक्तवाग्रे भोजनस्य च
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा।

अर्थ–कुछ पीपल लेकर पलाशके खारकी भावना देकर और घी में भूनकर रखछोड़े, इनमें से तीन पीपल प्रातःकाल, तीन भोजन करने से पहिले और तीन पीछे मधु मिलाकर प्रति दिन सेवन करे, इससे रसायन गुणों की वृद्धि होती है।

अन्य प्रयोग।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि पृथक् पैप्पलिकं दिनम्
वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः।
जीर्णोपभक्त भुंजीत पयसैकं क्षीरसर्पिषा।
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम्
पिष्टास्ता बलिभिः पेया शृतामभ्यबलैर्नरैः
तद्वच्च छागदुग्धेन द्वे सहस्रेप्रयोजयेत्।

अर्थ–प्रथम दिन दस पीपल दूध के साथ सेवन करे, फिर प्रति दिन दस बढ़ाकर दसवें दिन सौ का सेवनकर फिर दस दस घटाकर कम करे, इस तरह एक सहस्र पीपलके सेवन से रसायन होतीहै, बलवान मनुष्य इन सब पीपलों को पीसकर और मध्य बलवाला सेंगी कांच करके सेवनकरे, औषध पचनेपर घी और दूधके साथ शाली चांवलों का भात खाने को दे, इस नियम से बकरी के दूध के साथ दो सहस्र पीपल तक सेवन करने का विधान है।

कासादिनाशक प्रयोग।

एभिः प्रयोगैःपिप्पल्यःकासश्वासगलग्रहान्
यक्ष्मामेहग्रहण्यर्शः पांडुत्वविषमज्वरान्।
श्लीपदं शोफंवर्मिदिग्मांसीहानंवातशोणितम्

अर्थ–उक्त नियम से पीपल का सेवन करने पर खांसी, श्वास, गलग्रह, यक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, अर्श, पांडु, विषमज्वर, सूजन, वमन, हिचकी, प्लीहः और वातरक्त जाते रहते हैं।

अन्य प्रयोग।

बिल्वार्धमात्रेण च पिप्पलीनां
पात्रं प्रलिपेदयसो निशायाम्।
प्रातः पिबेत्तत्सलिलांजलिभ्यां
वर्षं यथेष्टाशनपानचेष्टः॥ १०६॥

अर्थ–रात्रि के समय दो तोले पीपल पीसकर एक लोहे के पात्र पर लेप दे, दूसरे दिन प्रातःकाल ये पीपल दो अंजलि जलके साथ पीसकर यथेच्छ पान भोजनकरे यह रसायन भी पूर्ववत् गुणकारी है।

शुंठी प्रयोग।

शुंठीविडंगत्रिफलागुडूची-
पट्टीहारिद्रातिबलाबलाश्च।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुस्ताधुराम्हागुरुचित्रकाश्च
सौगंधिकं पंकजमुत्पलानि ॥ १०४ ॥
धवाम्बकर्णासनबालपत्र-
सारास्तथा पिप्पलिवत्प्रयोज्याः ।
लोहोपलिप्ताः पृथगेव जीवे-
त्समाः शतं व्याधिजराविमुक्तः १०५

अर्थ–सोंठ, बायविडंग, त्रिफला, गिलोय, मुलहटी, हलदी, गंगेरन, खरैटी, नागरमोथा, देवदारु, अगर, चीता, तथा कल्हार, पद्म, नीलोत्पल, धायके फूल, साल और असन इनके कोमल पत्तोंका सार । इनसे अलग अलग पीपल की तरह रात्रिके समय लोहे के पात्रको लींपदे और प्रातःकाल दो अंजली जलके साथ सेवन करे । इससे मनुष्य व्याधि और वृद्धावस्था से रहित होकर सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है ।

रसायनको द्विगुण प्रकर्ष ।

क्षीरांजलिभ्यां च रसायनानि
युक्तान्यमुन्यायसलेपनानि ।
कुर्वंति पूर्वोक्तगुणप्रकर्ष-
मायुःप्रकर्षं द्विगुणं ततश्च ॥ १०६ ॥

अर्थ–लोहेके पात्रपर लेपित की हुई उक्त रसायनों को आठ पल दूधके साथ सेवन करने से पूर्वोक्त गुणसे अधिक गुण होता है और आयु भी दूनी हो जाती है ।

वाकुची अवलेह ।

असनखदिरयूषैर्भावितां सोमराजीं-
मधुघृतशिखिपथ्यालोहचूर्णैरुपेताम् ।
शरदमवलिहानः पारिणामान् विकारां-
स्त्यजति मितहिताशी तद्वदाहारजातान्

अर्थ–असन और खैर के काथमें भावना दी हुई वाकुची को मधु, घृत, चीता, हरड और लोहचूर्ण के साथ एक वर्षतक सेवन करने से बुढापे के सब रोग जाते रहते हैं तथा हितकारी और परिमित भोजन करनेसे आहार से उत्पन्न हुए सब रोग मिट जाते हैं

अन्य प्रयोग ।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्ति-
र्यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
ससोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥ १०८ ॥

अर्थ–नियमपूर्वक एक वर्षतक काले तिलों के साथ वाकुची का सेवन करने से तीव्र कुष्ठ दूर होकर चन्द्रमा के समान कांतियुक्त हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

ये सोमराज्या वितुषीकृतायाः
क्षुण्णैरुपेतात्पयसः सुजातात् ।
उधृत्य सारं मधुना लिहंति
तक्रं तदेवानुपिबंति चांते ॥ १०९ ॥
कुष्ठिनः कुथ्यमानांगास्तेजातांगुलिनासिकाः
भांति वृक्षा इव पुनः प्ररूढनवपल्लवाः ।

अर्थ–छिली हुई वाकुची को पीसकर दूधमें मिलाकर दही जमादे और इस दही में से निकले हुए माखन को शहत के साथ गलितांग कुष्ठरोगी को सेवन करावे और ऊपर से उसी दही का तक्र पान करादेवे । जैसे गलितपत्रवाला वृक्ष फिर नवीन पत्तों के उगने से सुशोभित हो जाता है, वैसेही गलितांग कुष्ठरोगी भी इस प्रयोग के सेवन करने से नई उंगली और नासिका प्राप्त करके फिर सुशोभित हो जाता है ।

लहसनकीविधि ।

शीतवातसहिमदग्धसनूनां
स्तब्धभुग्नकुटिलव्यधितास्थ्नाम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भेषजस्य पवनोपहतानां
वक्ष्यते विधिरतो लशुनस्य ॥ १११ ॥

अर्थ–जिसका देह शीत वा वायु और हिमसे दग्ध हो गया है, जिसकी हड्डियां स्तब्ध, भुग्न, कुटिल, और व्याधित हों, उन वातोपहत रोगियों के लिये लहसन के सेवन की विधि यहांसे आगे वर्णन करेंगे ।

लहसनको श्रेष्ठत्व ।

राहोरमृतचौर्येण लूनाद्ये पतिता गलात् ।
अमृतस्य कणा भूमौ ते रसोनत्वमागताः
द्विजा नाश्नंति तमतो दैत्यदेहसमुद्भवम् ।
सात्मादमृतसंभूतेर्ग्रामणीः स रसायनम् ।

अर्थ–जब राहु चोरी से अमृतपान कर रहा था उस समय भगवानने सुदर्शनचक्र से उसका गला काटा था उस वक्त अमृत के कण निकल निकल कर पृथ्वी पर पडे थे उन्हीं से लहसन पैदा हुआ था-दैत्यकी देहसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण लोग इसे नहीं खाते हैं, परन्तु यह अमृत से उत्पन्न होने के कारण सब रसायनों में उत्तम है ।

लहसन के सेवनका काल ।

शीलयेल्लशुनं शीते वसंतेऽपि कफोल्बणः
प्रायोदयेऽपि वातार्तःसदा वा प्रायमंडलीया
स्निग्धशुद्धतनुः शीतमधुरोपस्कृताशयः ।
तनुसंस्रावतंसाभ्यां चर्चितानुचरान्वितः ।

अर्थ–लहसन हेमन्त और शिशिरऋतुओं में सेवन करना चाहिये । कफाधिक्यवाला रोगीवसंतकाल में भी इसका सेवन करे । वाताधिक्यरोगी वर्षाऋतुमें भी सेवन करे । अथवा स्निग्ध और शुद्धदेहवाला मनुष्य शीतल और मधुर भोजन द्वारा कोष्ठ को शुद्ध करके सब ऋतुओं में इसका सेवन कर सकता है । इस मनुष्यके अनुचरगण लहसन के कर्णाभूषण धारण करके उसके आंगनमें विचरते रहें ।

लहसन का प्रयोग ।

तस्य कंदान् वसंतांते हिमवच्छकदेशजान्
अपनीतत्वचो रात्रौ तीमयेन्मदिरादिभिः
तत्कल्कस्वरसं प्रातः शुचितांतघपीडितम्
मदिरायाः सुरूढायास्त्रिभागेन समन्वितम्
मद्यस्यान्यस्यतैलस्यमस्तुनःकांजिकस्य वा
सत्काल एव वा युक्तं युक्तमालोच्य मात्रया
तैलसर्पिर्वसामज्जक्षीरमांसरसैः पृथक् ।
काथेन वा यथाव्याधि रसं केवलमेव वा
पिबेद्गंडूषमात्रं प्राक् कंठनाडीविशुद्धये ।

अर्थ–वसंतऋतु में उत्पन्न हुआ वा शीतल देशमें उत्पन्न हुआ अथवा शकदेश में पैदा हुआ लहसन लेकर छीलडाले, फिर इसे मदिरामें वा बिजौरे के रसमें भिगोकर क्लेदित करे । फिर इसका कल्क करके धुले हुए वस्त्रमें निचोडकर रस निकाल ले । उस रसको देश काल और पात्रके अनुसार सुरूढ मद्य वा अन्य किसी मद्यके तीन भाग के साथ अथवा तेल,दहीका तोड़ वा कांजी के साथ मिलाकर तेल, घी, वसा मज्जा, दूध और मांसरस इनमें से प्रत्येक के साथ योग करके व्याधिके अनुसार किसी उपयुक्त द्रव्यके काढेके साथ वा केवल इसी रसको कंठकी विशुद्धिके निमित्त प्रथम गंडूष मात्र पान करे ।

वेदना में स्वेदनादि ।

ततं स्वेदनं चानु वेदनायां प्रशस्यते ।
शीतांबुसेकः सहसा घर्मिमूर्छाययोर्मुखे ।

अर्थ–वेदना में निरंतर इसका स्वेदन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करना चाहिये । वमन और मूर्च्छा होनेपर मुखपर शीतल जलके सहसा छींटे मारना उत्तम है ।

शेषरस का पान ।

शेषपिबेत्क्रमात्पार्श्वेस्थिरतांगतओजसि

अर्थ–क्लांति दूरहोने पर और ओजो पदार्थ के स्थिर होनेपर बचा हुआ रसपान करना चाहिये ।

शीतल लेपादि ।

विदाहपरिहाराय परं शीतानुलेपनः ।
धारयेत्सांबुकणिका मुक्ताः कर्पूरमालिकाः ।

अर्थ–विदाह की शांति के निमित्त शीतल लेप, जलसे भीगी हुई मोतियों की माला, और कपूरकी माला धारण करनी चाहिये ।

लहसन की मात्राका परिमाण ।

कुडवोऽस्य परा मात्रा तदर्धं केवलस्य तु ।
पलं पिष्टस्य तन्मज्ञः समक्षं प्राक् च-
शीलयेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ–मदिरा सहित लहसन के रसकी पूर्णमात्रा एक कुडव है । केवल लहसन के रसकी मात्रा आधा कुडव है । लहसन के कल्ककी परा मात्रा एक पलहै । इसका अभ्यास भोजनसे पहिले करना चाहिये ॥

लहसन पर पथ्य ।

जीर्णेशाल्योदनं जीर्णे शंखकुंदेंदुपांडुरम् ।
भुंजीत यूषैः पयसा रसैर्वा धन्वचारिणाम् ।

अर्थ–लहसन के पचनेपर शंखकुंद के समान सफेद पुरानेशाली चांवलों का भात मुद्गादि यूष, दूध वा जांगल मांसरसके साथ भोजन करे ।

तृषार्में मद्यादि सेवन ।

मद्यमेकं पिबेत्तत्र तृट्प्रधाने जलान्वितम् ॥
अमद्यपस्त्वारनालं फलांबुपरिसिस्थिकाम् ॥

अर्थ–प्यासकी अधिकतामें जल मिलाकर शराब पिलानी चाहिये । जो रोगी शराब पीनेका अभ्यास न रखता हो तो उसे धान्याम्ल और फलांबु की परिसिक्थिका पान कराना चाहिये । (खट्टे फलोंसे जो सट्टक विशेष तयार होता है उसे फलांबुपरिसिक्थि का कहते हैं, किसी किसी देशमें इसे किट्टी भी कहते हैं ।

लहसनके कल्ककका सेवन ।

तत्कल्कं वा समघृते धृतपात्रे विमाहतम् ।
स्थितं दशाहादश्नीयात्तद्वद्वा वसया समम् ॥

अर्थ–लहसन के कल्क के समान घी मिलाकर घी के पात्रमें रईसे मथकर रखदे । दस दिन पीछे इसका सेवन करे अथवा वसा मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे सेवन करे ।

लहसन सेवनका अन्य प्रकार ।

विकंचुकप्रायरसोनगर्भान्
सशूल्यमांसान् विविधोपदंशान् ।
विमर्दकान्वा घृतशुक्तयुक्तान्
प्रकाममश्नाल्लघु तुल्यमश्नन् ॥ १२७ ॥

अर्थ–त्वचासे रहित बहुतसा लहसन डालकर शूलपर भुने हुए मांसके साथ अनेक प्रकारकी चटनियां बनाकर अथवा घी और शुक्त मिलाकर तद्वत् अन्य खाद्य पदार्थ के साथ थोडा थोडा भोजन करे ।

लहसन की उत्तमता ।

पित्तरक्तकफानिर्मुक्तसमस्तावरणावृते ।
गुल्मे वा विद्यते वायौनद्रव्य लघुमात्परम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–पित्त और रक्तके सिवाय अन्य आवरणों से आवृत वायुमें अथवा आवरण रहित केवल शुद्ध वायुमें लहसन के समान और कोई दूसरी औषध नहीं है।

लहसन को विषज्जनकत्व।

प्रियांबुगुडदुग्धस्य मांसमद्याम्लविद्विषः।
अतितिक्षोरजीर्णे च रसोनोव्यापदे ध्रुवम्।

अर्थ–जल, गुड और दूधसे प्रेम रखने वाले को तथा मांस, मद्य और अन्न से द्वेष रखने वालेको और अजीर्ण रोगीको लहसन अवश्य ही व्याधिकारक है।

लहसनके प्रयोगमें विरेचन।

पित्तकोपभयादंते युंज्यान्मृदु विरेचनम्।
रसायनगुणानेवं परिपूर्णान्समश्नुते॥

अर्थ–पित्तके प्रकोपको दूर करनेके निमित्त लहसन के प्रयोग के पीछे मृदु विरेचन देना चाहिये। ऐसा करने से रसायन के संपूर्ण गुणों की प्राप्ति हो जायगी।

शिलाजीत का कल्क।

ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमंति यत्
हेमादिषड्धातुरसं प्रोच्यते तच्छिलाजतु॥

अर्थ–ग्रीष्मऋतु में पर्वतों के अत्यन्त गरम होजाने से जतु के समान जो पदार्थ निकलता है, वह सुवर्णादि छः प्रकार की धातुओं का रस होता है। इसी रस को शिलाजतु कहते हैं।

शिलाजीत के लक्षण।

सर्वं च तिक्तकटुकं नात्युष्णं कटुपाकतः।
छेदनं च विशेषेण लौहं तत्र प्रशस्यते॥

अर्थ–सब शिलाजीत छः प्रकार की धातुओं से उत्पन्न होने पर भी तिक्तकटु, नात्युष्ण, पाक में कटु और अतिशय छेदनकर्ता होता है। इन में से लोहज शिलाजीत सब से उत्तम होता है।

उत्तम शिलाजीत के लक्षण।

गोमूत्रगंधि कृष्णंगुग्गुल्वाभंविशर्करंमृत्स्नम्
स्निग्धमनम्लकषायं मृदु गुरु च शिलाजतु-
श्रेष्ठम्॥ १३४॥

अर्थ-जो शिलाजीत गोमूत्र की सी गंध से युक्त, काला, देखने में गूगल के सदृश, शर्करारहित, मिट्टी से मिला हुआ, स्निग्ध, खटाई से रहित, कषायरसयुक्त मृदु और गुरु होता है, वही श्रेष्ठ होताहै।

शिलाजीत की भावना विधि।

व्याधिव्यथितसात्म्यं
समनुस्मरन् भावयेद्रसःपात्रे।
प्राक् केवलजलधौतं
शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम्॥ १३४॥

अर्थ–शिलाजीत को लोहे के पात्र में रखकर प्रथम जल से धोडाले, फिर इसको सुखाकर रोग और रोगी दोनों को अनुकूल हो उसी तरह से क्वाथ के द्रव्यको स्थिर करके उनके काढे की भावना देवै।

भावना की विधि।

समगिरिजमष्टगुणिते निःक्वाथ्यं भावनौपयं
तोये।
तस्मिंस्तेऽष्टांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम्॥
तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः
स्वैः स्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त॥

अर्थ–जितना शिलाजीत हो, उतना ही क्वाथ द्रव्य लेकर उसको अठगुने जल में औटावे, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छानले और इस गरम काढे में शिला-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीत डालदे जब शिलाजीत घुलकर एक रस होजाय तब इसको सुखाकर फिर उक्त काढे में डाल देवै । इस तरह उपयुक्त काढे सात की भावना देवै ।

शिलाजीत का प्रयोग ।

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्यघृततिक्तकसाधितम्
त्र्यहं युंजीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥
फलत्रयस्य चूर्णेन पटोल्या मधुकस्य च ।
योगयोग्यं ततस्तस्य कालापेक्षं प्रयोजयेत् ॥
शिलाजमेव देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ।
गुणान्सप्तमप्रान् कुरुते सहसा व्यापदं न च ॥

अर्थ–उक्त रीति से शिलाजीत को भावना देकर रोगी को स्नेह द्वारा स्निग्ध और विरेचनादि द्वारा शुद्ध करके तिक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी तीनदिन तक पान करावै । तत्पश्चात् तीन दिन तक त्रिफला के काढे के साथ, तीन दिन तक पर्वल के काढे के साथ और तीन दिन तक गुलहटी के काढे के साथ, उक्त भावना दिये हुए शिलाजीत का प्रयोग करे। शिलाजीत का प्रयोग करने के पीछे देशकालादि की विवेचना करके यथोपयुक्त औषध देना चाहिये । इस नियमसे शिलाजीत का प्रयोग करने पर शरीरको उपकारी होगा, तथा सब प्रकार के गुण करेगा और किसी प्रकार की विपद उपस्थित न होने देगा ।

शिलाजीत का त्रिविध प्रयोग ।

एकत्रिसप्तसप्ताहं कर्षमर्धपलं पलम् ।
हीनमध्योत्तमो योगः शिलाजस्य क्रमान्मतः

अर्थ–अवस्थानुसार एक, तीन वा सात सप्ताह तक शिलाजीत का प्रयोग करे इसकी हीनमात्रा एक कर्ष की, मध्यमात्रा आधेपल की और उत्तम मात्रा एक पल की होती है ।

शिलाजीत को रसायनत्व ।

संस्कृतं संस्कृते देहे प्रयुक्तं गिरिजाह्वयम् ।
युक्तं व्यस्तैः समस्तैर्वा ताम्रायोरूप्यहेमभिः
क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रसायनं फलम्
कुलत्थां काकमाचींचकपोतांश्चसदात्यजेत्

अर्थ–स्नेहन और शोधनद्वारा शरीर को शुद्ध करके वातादि दोषों को नाश करने वाले द्रव्यों से भावना दिये हुए शिलाजीत को दूध में मिलाकर इसको तांबे लोहे, रूपे और सोने इनमें से किसी एक के साथ वा सबके साथ प्रयोग करे । इससे शीघ्रही रसायन का फल होता है । इस पर कुलथी, मकोय और कबूतर का मांस वर्जित है ।

शिलाजीत को सर्वरोगनाशकता ।

न सोस्ति रोगो भुवि साध्य रूपो
जत्यद्दमजं यं न जयेत्प्रसह्य।
तत्कालयोगैर्विधिवत्प्रयुक्तं
स्वस्थस्य चोर्जां विपुलां दधाति। १४३।

अर्थ–पृथ्वीपर साध्यलक्षणों से युक्त कोई ऐसा रोग नहीं है,जिसको शिलाजीत शीघ्र पराजय न कर सकता हो, इसका ठीक समय में विधिवत् प्रयोग करने से स्वस्थ मनुष्य अत्यन्त बलशाली होजाताहै।

कुटीप्रवेश विधि ।

कुटीप्रवेशः क्षणिनां परिच्छदवतां हितः।
अतोऽन्यथा तु येतेषां सूर्यमारुतिकोविधिः

अर्थ–जो मनुष्य कुटीप्रवेश रूप व्यापार के साधन में स्वतंत्र और सकुटुंबी है उनके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिये कुटीप्रवेश विधि हित है। इनसे अतिरिक्त व्यक्तियों के लिये वातातप विधि उत्तम होती है।

वातातपविधि।

वातातपसहा योगा वक्ष्यंतेऽतो विशेषतः।
सुखोपचारा क्लेशेऽपि ये न देहस्य बाधकाः

अर्थ—अब यहांसे वातातप योग की विधि विशेषरूप से वर्णन की जाती है। इस योग में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। इसमें व्यापत्ति होने परभी शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

ठंडेजल का पीना।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक् पीतं स्थापयेद्वयः

अर्थ—ठंडा जल, दूध, शहत, घी इन में से एक एक अथवा दो दो अथवा तीन तीन अथवा सब मिलाकर भोजन से पहिले पीना वय को स्थापन करने वाला है।

हरीतकी सेवन।

गुडेन मधुना शुंठ्या कृष्णया लवणेन वा।
द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी॥

अर्थ—गुड, शहत, सोंठ, पीपल और सेंधानमक इनमें से किसी के साथ दो दो हरड का प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जी सकता है।

अन्य प्रयोग।

हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य
समश्नतस्तत् पिबतो घृतं च।
भवेच्छिरस्थायि बलं शरीरे
सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे॥ १४८॥

अर्थ—कृतज्ञ के साथ में उपकार करने से जैसे वह बहुत दिन तक कृतज्ञता स्वीकार करता है। इसी तरह हरड को घी में तलकर खानेवाला और उस घी को पीने वाला सबल और दृढ हो जाता है।

जराविकारनाशकलेह।

धात्रीरसक्षौद्रसिताघृतानि
हिताशनानां लिहतां नराणाम्।
प्रणाशमायांति जराविकारा
ग्रंथा विशाला इव दुर्गृहीताः॥ १४९॥

अर्थ—अच्छी तरह न पढे हुए जैसे बडे ग्रंथ भूले जाते हैं वैसे ही पथ्य से रहने वाले के बुढापे से उत्पन्न हुई सब व्याधियां आमले का रस, शहत, चीनी और घी पान करने से नष्ट हो जाती हैं।

तारुण्यादि कारकयोग।

धात्रीकृमिघ्नासनसारचूर्णं
सतैलसर्पिर्मधुलोहरेणु
निषेवमाणस्य भवेन्नरस्य
तारुण्यलावण्यमधिप्रणष्टम्॥ १५०॥

अर्थ—जो मनुष्य आमला, बायविडंग, असनसार चूर्ण, तेल, घी, शहत और लोह, चूर्ण को मिलाकर सेवन करता है उसकी गई हुई युवावस्था, और नष्ट हुआ लावण्य फिर पैदा हो जाता है।

बलकारक अवलेह।

लोहं रजो वेल्लभवं च सर्पिः
क्षौद्रद्रुतं स्थापितमब्दमात्रम्।
सामुद्रके वीजकसारकुप्ते
लिहन् बली जीवति कृष्णकेशः॥

अर्थ—लोह और बायविडंग के चूर्णको घी और शहत में सानकर बरस दिन तक निर्जेसार के संपुट में रक्खे, फिर इसके सेवनसे मनुष्य बलवान और काले बालों वाला होकर दीर्घकाल तक जीता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विडंग प्रयोग ।

विडंगभल्लातकमागधानि
येऽश्नंति सर्पिर्मधुसंयुतानि ।
जरानदीं रोगतरंगिणीं ते
लावण्ययुक्ताः पुरुषास्तरंति ॥ १५२ ॥

अर्थ–जो मनुष्य बायविडंग, भिलावा और सोंठ को पीसकर घी और शहत में सानकर सेवन करता है वह लावण्ययुक्त होकर जरारूपनदी की रोग रूप लहरों के पार विना प्रयास ही हो जाताहै ।

अन्य प्रयोग ।

खदिरासनयूषभाविताया-
स्त्रिफलाया घृतमाक्षिकप्लुतायाः ।
नियमेन नरा निषेवितारो
यदि जीवंत्यरुजः किमत्र चित्रम् ॥

अर्थ–जो मनुष्य खैर और असनके काथ की भावना दी हुई त्रिफला को घी और शहत में मिलाकर सेवन करता है, वह निश्चय निरोगी होकर जीता है ।

जरानाशक प्रयोग ।

बीजकस्य रसमंगुलिहार्यं
शर्करामधुघृतं त्रिफलां वा ।
शोधयत्सु पुरुषेषु जरता
स्वागतापि विनिवर्तत एव ॥ १५४ ॥

अर्थ–विजैसार के गाढे रसमें शर्करा, घी और शहत मिलाकर जो नित्य सेवन करता है अथवा जो प्रतिदिन त्रिफला खाता है उसका स्वाभाविक बुढापा भी दूर हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य
पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम् ।
मासद्वयं तद्विगुणं समां वा
जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥

अर्थ–देशकाल और पात्रके अनुसार पन्द्रह दिन, दो महिने, छः महिने या बरस दिन तक जो मनुष्य आधा पळ नई सांठ पीसकर प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करे तो जीर्णदेह वाला मनुष्य भी फिर यौवन को प्राप्त करलेता है ।

मूर्वादि प्रयोग ।

मूर्वावृहत्यंशुमतीबलाना-
मुशीरपाठासनसारिवाणाम्
कालानुसार्यागुरुचंदनानां
वदंति पौनर्नवमेव कल्पम ॥ १५६ ॥

अर्थ–ऊपर लिखे हुए सांठ के कल्क की तरह मूर्वा, कटेरी, शालपर्णी, खैरटी, खस, पाठा, असन, अनन्तमूल, कालीयक, अगर और चन्दन इनकी भी कल्पना की जाती है ।

विकारनाशक घृत ।

शतावरीकल्ककषायसिद्धं
ये सर्पिरश्नंति सिताद्वितीयम् ।
तान् जीविताध्वानमभिप्रपन्ना-
न विप्रलुंपंति विकारचौराः ॥ १५७ ॥

अर्थ–सितावर के कल्क और कषाय के साथ सिद्ध किये हुए घी में चीनी मिला कर सेवन करनेसे विकार रूपी चोर मनुष्यों के जीवन मार्ग का आश्रय लेकर भी नाश नहीं कर सकते हैं ।

असगंध का प्रयोग ।

पतिश्वगंधापयसार्धमासं
घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ–अच्छी वृष्टिसे जैसे नई खेती हरी भरी रहती है, वैसेही दूध, घी तेल वा गरम जलके साथ असगंध का सेवन करनेसे कृश शरीर पुष्ट रहता है।

कालेतिलों का प्रयोग।

दिने दिने कृष्णतिलप्रकुंचं
समश्नतां शीतजलानुपानम्।
पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो
दृढीभवंत्यामरणाच्च दंताः॥ १५९॥

अर्थ–जो मनुष्य प्रतिदिन एक पल काले तिल चबाकर ऊपर से ठंडा पानी पीलेताहै उसका शरीर अत्यन्त पुष्ट होजाता है और उसके दांत सब मरने तक दृढ रहे आते हैं।

बालों को काला करनेवाला अवलेह।

चूर्णं भृंगामलकामृतानां
लिहन्ससर्पिर्मधुभागमिश्रम्।
वृषः स्थिरः शांतविकारदुःखः
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः॥

अर्थ–गोखरू, आमला और गिलोय इनका चूर्ण घी और शहत में मिलाकर चाटने से शुक्र की वृद्धि, शरीर की दृढता रोगजनित क्लेशकी शान्ति, केशोंका कालापन और सौ वर्षकी आयु होती है।

अन्य प्रयोग।

सार्धं तिलैरामलकानि कृष्णैः
रक्षांसि संक्षुद्य हरीतकीर्वा।
येऽद्युर्मयूरा इव ते मनुष्या
रम्यं परीणाममवाप्नुवंति॥ १६१॥

अर्थ–जो काले तिलों के साथ आमला बहेडा और हरड खाताहै वह मोर की तरह दिन प्रतिदिन शरीर की रमणीयता को प्राप्त होता है।

शिलाजतु प्रयोग।

शिलाजतुक्षौद्रविडंगसर्पि-
र्लोहाभयापारदतार्क्ष्यभक्षः।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातु-
र्विपंचरात्रेण यथा शशांकः॥ १६२॥

अर्थ–जिनके देह और धातु दुर्बल होगये हैं उनको शिलाजीत, शहत, वायविडंग, घी, लोहचूर्ण, हरड, पारा और रूपा सेवन कराने से चन्द्रमा की तरह पन्द्रह दिन में देह और धातु पूर्ण होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

ये मासमेकं स्वरसं पिबंति
दिने दिने भृंगरजःसमुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवंति॥

अर्थ–जो भांगरे के रसको प्रतिदिन एक महिने तक पीता है और ऊपर से दूध पीताहै वह बल और वीर्यको प्राप्त करके सौ वर्षतक जीता है।

अन्य प्रयोग।

मासं वचामप्युपसेवमानाः
क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि।
भवंति रक्षोभिरधृष्यरूपा
मेधाविनो निर्मलसृष्टवाक्याः॥

अर्थ–जो मनुष्य दूध, तेल और घी के साथ एक महिने तक वच का सेवन करताहै वह राक्षसों के भयसे छूटकर मेधावी और स्वच्छ मिष्टभाषी होजाताहै।

मंडूकपर्णी प्रयोग।

मंडूकपर्णीमपि भक्षयंतो
भृष्टां घृते मासमनन्नभक्ष्याः।
जीवंति कालं विपुलं प्रगल्भा-
स्तारुण्यलावण्यगुणोपपन्नाः॥ १६५॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--जो मनुष्य अन्न का सेवन न करता हुआ घी में भुनी हुई मंडूकपर्णी को एक महिने तक सेवन करताहै वह पराक्रमी तथा तरुणाई और लावण्य से युक्त होकर दीर्घ कालतक जीता है ।

अन्य प्रयोग ।

लांगलीत्रिफलालोहपलपंचाशतीकृतम् ।
मार्कवस्वरसे षष्टया गुटिकानां शतत्रयम्
छायाविशुष्कं गुटिकार्धमथा-
त्पूर्वं समस्तामपि तां क्रमेण ।
भजद्विरिक्ताः क्रमशश्च मंडं
पेयां विलेपीं रसकौदनं च ॥ १६७ ॥
सर्पिः स्निग्धं मासमेकं यतात्मा
मासादूर्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः ।
वर्ज्यं यत्नात्सर्वकालं त्वजीर्णं
वर्षेणैवं योगमेतोपयुंज्यात् ॥ १६८ ॥
भवति विगतरोगो योऽप्यसाध्यामयार्तः ।
प्रबलपुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः ।
उपचितपृथुगात्रश्चोन्नतेक्षादियुक्त-
स्तरुण इव समानां पंच जीवेच्छतानि १६९

अर्थ--कलहारी, त्रिफला, लोहा, इनको ५० पल लेकर भांगरे के रसमें पीसकर ३६० गोलियां बना लेवे । इन सब गोलियों को छाया में सुखाकर पहिले आधी आधी गोली खाय, फिर पूरी गोली खानेका अभ्यास करे । इससे विरेचन होनेपर क्रमसे मंड, पेया, विलेपी, और मांसरस का पथ्य देवे । इस तरह एक महिने तक संयतात्मा होकर घृत सहित स्निग्ध अन्नका भोजन करै । एक महिने पीछे इच्छानुसार खाना पीना करै । इसमें अजीर्ण भोजन सदा वर्जित है । इस तरह एक वर्षमें सब गोलियों को खा लेवे । इन गोलियों का सेवन करनेवाला मनुष्य असाध्य रोग से आक्रान्त होनेपर भी रोग रहित, बुड्ढा होनेपर भी प्रबल पुरुषार्थ कारी, और युवा की तरह गठीली देहवाला और कान आंखसे युक्त होकर पांचसौ वर्ष तक जीता है ।

नरसिंह घृत ।

गायत्रीशिंशिरीशिंशिपासनशिग्वाधेलाक्षकार-
रुष्करान्
पिष्टवाष्टादशसंगुणेभसि घृतान् खंडैः-
सहायोमयैः ॥ १७० ॥
पात्रे लोहमये ऽयहंरविकरैरालोडयन्पाचयं
दग्नौ चानुमृदौ सलोहशकलं पादस्थितं-
तत्पचेत् ॥ १७१ ॥
पूतस्यांशः क्षीरतोयस्तथांशौ
भार्गान्निर्यासाद् द्वौ वरायास्त्रयोंशाः ।
अंशाश्चत्वारश्चेह हैयंगवीना-
देकीकृत्यैतत्साधयेत्कृष्णलोहे १७२
विमलखंडसितामधुभिः पृथ-
ग्युतमयुक्तमिदं यदि वा घृतम् ।
स्वरुचिभोजनपानविचेष्टितो
भवति नो पलशः परिशीलयन् १७३
श्रीमान्निर्धूतपाप्मा वनमहिषबलो
याज्ञिवेगः स्थिरांगः
केशैर्भृंगांगनीलैर्मधुसुरभिमुखो
नैकयोषिन्निषेवी ।
षाड्मेधाधीसमृद्धः सपदुद्धतबहो
मासमात्रादयोगाद्
धत्तेऽसौ नारसिंहं वपुरनलशिखा-
तप्तचामीकराभम् ॥ १७५ ॥
अस्तारंनारसिंहस्वव्याधयोनस्पृशंत्यपि
चकोज्वलभुजंभीतानारसिंहमिवासुराः

अर्थ--जावित्री, चीता, शीसम, असन, हरड, बावविडंग, बहेडा और भिलावा इन सब द्रव्यों को शिला पर पीसकर अठारह गुने पानी में घोलकर उसमें थोडे से लोहे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के टुकड़े मिलाकर किसी लोहे के पात्र में भरकर तीन दिन धूप में रक्खे फिर मृदु अग्नि पर पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले। इस क्वाथ के बराबर दूध, दूना भांगरे का रस, तिगुना त्रिफला का क्वाथ, और चौगुना घी मिलाकर कृष्ण लोहे के साथ पकावै, पाक समाप्त होनेपर इस घृत में से एक पल खांड, मिश्री, और शहत के संग मिलाकर सेवन करे, अथवा केवल इसी घी का पान करे। इसके सेवन से एक महिने के भीतरही देह को सुंदरता पाप का नाश, अरना भैंसा के समान बल, घोड़े के समान वेग, अंग में दृढता, केशों में कालापन, मुख में मधुवत सुगंधि, बहु स्त्री संगम में सामर्थ्य, वाकशक्ति और मेधा शक्तिकी अधिकता, अग्नि की वृद्धि, नरसिंह के समान दृढ शरीर, और तप्त कांचन की तरह वपु होजाता है। इस नरसिंह नामक घी पीनेवाले को कोई रोग स्पर्श नहीं करसकता है और उसको दैत्यों का भय भी नहीं होसकता है।

अन्य प्रयोग।

भृंगप्रक्षालनमुनैव भृष्टान्
घृतेन यः खादति यंत्रितात्मा।
सिद्धः शुद्धकोष्ठोऽसनसारसिद्ध-
दुग्धानुपस्तत्कृतभोजनार्थः॥ १७६॥
मासेनयोगात् लभते जीवत्यब्दशतद्वयम्
गृह्णाति सकृदप्युक्तमविलुप्तस्मृतींद्रियः।

अर्थ—जो मनुष्य संयतात्मा होकर ऊपर वाले नरसिंह घृत में भांगरे के पत्तों को भूनकर एक महिने तक खाय और भोजन करके असनसार के साथ सिद्ध किया हुआ दूध पीवै और उसी दूधके साथ अन्न खाय वह निरोग होकर दो सौ वर्ष जीता है। और अविलुप्त स्मरण शक्तिवाला होकर एकबार कहीहुई बात को ग्रहण करलेता है

अन्य प्रयोग।

अनेनैव च कल्पेन यस्तैलमुपयोजयेत्।
तानेवाप्नोति स गुणान् कृष्णकेशश्च-
जायते॥ १७८॥

अर्थ—उक्तरूप विधि के अनुसार जो मनुष्य तेल का सेवन करता है, उसको सम्पूर्ण पूर्वोक्त गुणों की प्राप्ति होती है और सब बाल काले पडजाते हैं।

साध्यासाध्य रसायन!

उक्तानि शक्यानि फलान्वितानि
युगानुरूपाणि रसायनानि।
महानुशस्तान्यपि चापराणि
प्राप्त्यादिकष्टानि न कीर्तितानि १७९

अर्थ=जो सब रसायन सुसाध्य, फलप्रद, और युगानरूप है उनका वर्णन किया गया है और असाध्यों का वर्णन छोडदिया गया है यद्यपि वे बहुत फल देनेवाली है।

भृष्ट रसायन में कर्तव्य।

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्व्याधयोयदि
यथास्वमौषधंतेषांकार्यमुक्तंरसायनम्

अर्थ-रसायन की विधि के भृष्ट होजाने पर यदि कोई रोग पैदा होजाय, तो रसायन क्रियाका त्याग करके जो रोग पैदा होगया है उसी की चिकित्सा सब प्रकार से करनी चाहिये।

रसायन रूप पुरुष।

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेंद्रियम्।
शांतं सद्वृत्तनिरतं विद्याद्रसायनम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-जो मनुष्य सत्यवक्ता, क्रोधरहित, जितेन्द्रिय, शांत और सदाचाररत होताहै उसको निरंतर रसायनरूप समझना चाहिये

रसायनसेवी के लक्षण ॥

गुणैरेभिः समुदितः सेवते यो रसायनम्।
स निर्मुक्तात्मा दीर्घायुः परत्रेह च मोदते।

अर्थ-उक्त सत्यभाषणादि गुणवाला मनुष्य रसायन सेवन करे तो वह चित्त की वृत्तियों से निवृत्त और दीर्घायु होकर इस लोक और परलोक में परम सुख भोगता है।

शास्त्रानुसारी रसायन ।

शास्त्रानुसारिणी चर्याचिन्तज्ञःपार्श्वगोतमः
बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णे रसायनम्।

अर्थ-रसायन के परिपूर्ण होनेपर चेष्टा शास्त्रानुसारिणी होजाती है, पास बैठनेवाले आदमियोंके मन की बात का बोध होजाता है और बुद्धिअर्थों के जानने में अस्खलित होजाती है।

इतिश्रीअष्टांगहृदयसंहितायांभाषाटीकान्वितायां उत्तरस्थानेरसायनाध्यायेनाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वाजीकरणाध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब हम यहां से वाजीकरण नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे-

वाजीकरण औषधका फल ।

वाजीकरणमग्र्यिक्लेत्सततं विषयी पुमान्
तुष्टिः पुष्टिरपत्यं च गुणवत्तच संश्रितम्।
अपत्यसंतानकरं यत्सद्यः संग्रहर्षणम्।

अर्थ-विषयी पुरुष को उचित है कि वाजीकारण औषधों का निरंतर सेवन करता रहै क्योंकि वाजीकरणमें तुष्टि, पुष्टि और गुणवान् संतान होती है वाजी कारण औषध संतान को स्थिर करनेवाली और सदा आनन्द देनेवाली होती है।

वाजीकरण का अर्थ ।

वाजी वाऽतिबलो येन यात्यप्रतिहतोंगनाः
भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन चोपचीयते।
तद्वाजीकरणं तद्धि देहस्योर्जस्करं परम्।

अर्थ-जिसके द्वारा पुरुष बलवान् और अप्रतिहत सामर्थ्यवाला होकर घोड़े की तरह स्त्रीसंगम में समर्थ होता है जिसके द्वारा कामिनीगणों का अति प्रियपात्र होजाता है और जिसके द्वारा शरीर का उपचय होता है उसीको वाजीकारण कहते हैं वाजीकरण देह को परम ओजस्कर है।

ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठता ।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकांतनिर्मलम् ॥ ४॥

अर्थ-ब्रह्मचर्य धर्मयुक्त यशस्कर, आयुष्कर, इस लोक और परलोक दोनों में रसायनरूप, और सर्वथा निर्मल है, ऐसे ब्रह्मचर्य का हम अनुमोदन करते हैं। स्वदारा के साथ संतानोत्पत्ति के निमित्त संगमन निर्मल ब्रह्मचर्य कहलाता है। मार्ग दो प्रकार का होता है एक नैश्रेयसिक दूसरा आभ्युदयिक। नैश्रेयसिक ब्रह्मचर्य का वर्णन किया गया है अब आभ्युदयिक मार्ग का वर्णन करते हैं।

स्निग्धको निरूहणादि ।

अल्पसत्त्वस्य तु क्लैब्यौपाध्यमानस्य रागिणः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीररक्षणरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ—जो अल्पसत्ववाले हैं, जो सांसारिक क्लेशों से पीडित हैं, और जो कामी हैं, उनकी शरीररक्षा के निमित्त वाजीकरण करना चाहिये।

व्यवायकाल।

कल्पस्योद्यद्वयसो वाजीकरणसेविनः।
सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवायो न निवार्यते ॥ ६

अर्थ—जो समर्थ, युवावस्था में भरपूर, और निरंतर वाजीकरण औषधों का सेवन करता रहता है उसको सब ऋतुओंमें अहर्निश स्त्रीसंगमका निषेध नहीं है।

स्निग्धको निरूहणादि।

अच्छस्निग्धविशुद्धानांनिरूहान्सानुवासनान्
घृततैलरसक्षीरशर्कराक्षौद्रसंयुतान् ॥ ७ ॥
योगविद्योजयेत्पूर्वं क्षीरमांसरसाशिनम्।
ततोवाजीकरान्योगानशुक्रापत्यविवर्धनान्

अर्थ—जिसको वाजीकरण करना हो स्निग्ध और विशुद्ध करके प्रथम घी, तेल, मांसरस, दूध, शर्करा और मधुसंयुक्त निरूहण और अनुवासन देना चाहिये। और दूध तथा मांसरसका पथ्य देवै। तत्पश्चात् योगवित् वैद्य शुक्र और अपत्यवर्द्धक सब वाजीकरण योगों का प्रयोग करे।

अपत्यहीन की निंदा।

अच्छायः पुतिकुसुमः फलेन रहितो द्रुमः
यथैकश्चैकशाखश्च निरपत्यस्तथा नरः

अर्थ—जो मनुष्य संतानरहित होता है वह छायाहीन, फलपुष्प रहित और एक शाखा वाले वृक्ष की तरह निंदित होता है।

अपत्यलाभ का महत्व।

स्खलद्गमनमव्यक्तवचनं धूलिधूसरम्।
अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकं।
अपत्यं तुल्यता केन दर्शनस्पर्शनादिषुः९
किं पुनर्यद्यशोधर्ममानश्रीकुलवर्धनम् ११

अर्थ—संतान चलने में बार बार गिर पडने वाली, तोतली वाणी वाली, धूल में लिपटे हुए अंग वाली तथा मुख से लार आदि टपकने वाली इन गुणों से युक्त होने पर भी हृदय में अल्हादोत्पादक होती है। ऐसी संतान के संसार में दर्शन स्पर्शनादि विषयों में किस पदार्थ की तुलना हो सक्ती है अर्थात् उक्त गुणविशिष्ट संतान भी सांसारिक सब पदार्थों से तुलनीय नहीं हो सकती है जिसके द्वारा यश धर्म, मान, श्री और कुल की वृद्धि होती है। उसके साथ समानता करने के योग्य संसार में कौनसा पदार्थ है।

वाजीकरण के योग्य देह।

शुद्धकाये यथाशक्ति वृष्ययोगान् प्रयोजयेत्

अर्थ—शरीर को संशोधित कर के जठराग्नि के बल के अनुसार आगे आने वाले संपूर्ण वृष्ययोगों का प्रयोग करना चाहिये।

वाजीकरण प्रयोग।

शरेक्षुकुशकाशानां विदार्या वीरणस्य च
मूलानि कंटकार्याश्च जीवकर्षभकौ बलाम्
मेदे द्वे द्वे च काकोल्यौ शूर्पपर्ण्यौ शतावरीम्
अश्वगंधामतिबलामात्मगुप्तां पुनर्नवाम्।
वीरां पयस्यां जीवंतीमृद्धिं रास्नां त्रिकंटकम्
मधुकं शालिपर्णीं च मार्गास्त्रिपलिकान् पृथक्
माषाणामाढकं चैतद् द्विद्रोणे साधयेदपाम्
रसेनाढकशेषेण पचेत्तेन घृताढकम्।
दत्त्वा क्षीरीधात्रीक्षुरसानामाढकाढकम्।
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं पेष्याणीमानि चावपेत्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वीरां स्वगुप्तां काकोल्यौ यष्टीं फल्गूनि-
पिप्पलीम् ॥ १७ ॥
द्राक्षां विदारीं खर्जूरं मधुकानि शतावरीम्
तत्सिद्धपूतं चूर्णस्य पृथक् प्रस्थेन योजयेत्
शर्करायास्तुगायाश्च पिप्पल्याः कुडवेन च
मरिचस्य प्रकुंचेन पृथगर्धपलोन्मितैः १९
त्वगेलाकेसरैः श्लक्ष्णैःक्षौद्राद् द्विकुडवेन च
पलमात्रं ततः खादेत् प्रत्यहं रसदुग्धभुक्
तेनारोहति वाजीव कुलिंग इव हृष्यति ।

अर्थ–सर, ईख, कुश, काश, विदारी और वीरण (खस) इनकी जड, कटेलीकी जड, जीवक, ऋषभक, खरैटी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, सितावर, असगंध, अतिबला, कौंच, सांठ, भूम्यामलक, दुग्धिका, जीवंती, ऋद्धि, रास्ना, गोखरू, मुलहटी और शालपर्णी, प्रत्येक तीन पल, उरद एक आढक, इन सबको दो द्रोण जल में पकावे, एक आढक शेष रहने पर उतार ले, इस क्वाथ में एक आढक घी, विदारीकन्द का रस एक आढक, आमले का रस एक आढक, ईख का रस एक आढक, दूध चार आढक, तथा भूम्यामलक, कौंच, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहटी, काकोडुम्बर, पीपल, दाख, भूमिकूष्माण्ड, खिजूर, महुआ, सितावर इनको पीसकर छानकर सब एक प्रस्थ मिला देवे, और पाकविधानोक्त रीति से पकावै, पाक हो-जाने पर घी को छानकर उसमें शर्करा एक प्रस्थ, वंशलोचन एक प्रस्थ, पीपल एक कुडव, कालीमिरच एक पल, दालचीनी इलायची और नागकेसर प्रत्येक आधा पलं और शहत दो कुडव इनको मिलादेवै, इस घृतमें से प्रतिदिन एक पल सेवन करे और मांसरस तथा दूध का अनुपान करे । इस घृत का सेवन करने से घोड़े और चिरौंटेके सदृश स्त्रीसंगम में प्रवृत्त हो सकता है ।

अन्य चूर्ण ।

विदारीपिप्पलीशालिप्रियालेक्षुरकाद्रजः ।
पृथक् स्वगुप्तामूलाच्च कुडवांशं तथा मधु
तुलार्धशर्कराचूर्णात् प्रस्थार्धं नवसर्पिषः ।
सोऽक्षमात्रमतः खादेत् यस्यरामाशतं गृहे

अर्थ–विदारीकन्द, पीपल, शालीचांवल चिरौंजी, तालमखाना और कैंच की जड़, प्रत्येक एक कुडव, शहत एक कुडव, शर्करा आधा तुला, ताजा घी आधा प्रस्थ, इन द्रव्यों को मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करने से सौ स्त्रियों के साथ संभोग की शक्ति हो जाती है ।

अन्य प्रयोग ।

सात्म्यगुप्ताफलान् क्षीरे गोधूमान्साधितान्
हिमान् ॥ २३ ॥
माषान्वा सघृतक्षौद्रान्खादेन्नृष्टिपयोऽनुपः
जागर्ति रात्रिं सकलामाखिन्नः खेदयन्स्त्रियः

अर्थ–जो मनुष्य गेहूं और कैंचके बीजों को दूधमें पकाकर ठंडा करके खाय, अथवा उरद, घी और शहत मिलाकर खाय । ऊपर से पहिले ब्याही हुई गौ का दूध पान करे, ऐसा करने से वह मनुष्य रात्रि भर स्वयं खेद को अप्राप्त हुए स्त्रियों को खेदित करता हुआ रति में प्रवृत्त रहता है ।

अन्य प्रयोग ।

वस्तांडसिद्ध पयसि भावितानसकृत्तिलान्
यः खादेत्ससितान्गच्छेत्सस्त्रीशतमपूर्ववत्

अर्थ–बकरे के अंडों के साथ दूध को पकाकर उस दूध की काले तिलों में बार बार भावना देवै । इन तिलोंको जो मनुष्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शर्करा के साथ सेवन करता है उस में शतस्त्री संभोग की शक्ति बढजाती है, और वह प्रथम समागम कासा सुख अनुभव करता है।

अन्य प्रयोग।

चूर्णं विदार्या बहुशः स्वरसेनैव भावितम्। क्षौद्रसर्पिर्युतं लीढ्वा प्रमदाशतमृच्छति।

अर्थ-विदारीकंद के चूर्णको विदारीकंद के रससे ही बहुत बार भावना देकर उस चूर्णको घी और शहत के साथ चाटने से शत- स्त्रीगमन की सामर्थ्य होजाती है।

अन्य चूर्ण।

कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभावितम्। शर्करामधुसर्पिर्भिर्लीढ्वा योऽनु पयःपिबेत् स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिदृष्यते।

अर्थ--पीपल और आमले का चूर्ण करके उसमें आमले के रसकी भावना दे और इसको शर्करा, मधु और घी के साथ चाटकर ऊपर से दूधका अनुपान करे तो अस्सी वर्षका वृद्ध भी तरुण की तरह स्त्री संगम में समर्थ होजाता है।

अन्य प्रयोग।

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम्॥ पयोऽनुपानं योलिह्यान्नित्यवेगः स नाभवेत्

अर्थ--मुलहटी का चूर्ण एक कर्ष लेकर उसमें घी और शहत मिलाकर चाटे ऊपर से दूधका अनुपान करे, उस मनुष्य का मैथुनवेग कभी प्रनष्ट नहीं होता है।

अन्य प्रयोग॥

कुलीरशृंग्या यःकल्कमालोड्य पयसा पिबेत्। सितासर्पिःपयोभाशी स नारीषु वृषायते।

अर्थ--काकडासींगी के कल्क को दूधमें मिलाकर पान करे और शर्करा, घृत और दूधके साथ अन्नका भोजन करे, इससे मैथुनकी अत्यन्त सामर्थ्य बढजाती है।

अन्य प्रयोग।

यः पयस्यांपयःसिद्धांखादेन्मधुघृतान्विताम् पिबेद्वाष्टकषणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः।

अर्थ--जो मनुष्य दूधके साथ क्षीरकाकोली को पकाकर घी और शहत के साथ पान करै ऊपर से बहुत दिनकी ब्याही हुई गौ का दूध पीवै तो उसका शुक्र क्षीण नहीं होने पाता है।

अन्य प्रयोग॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ३१ धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासमायते

अर्थ--कैंच और तालमखाने के बीजों को पीसकर चूर्ण करके और शर्करा मिलाकर धारोष्ण दूधके साथ पान करने वाला मनुष्य गधे की तरह मैथुनोन्मत्त हो जाता है।

अन्य प्रयोग॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं शतावर्याश्च योजयेत्॥

अर्थ--उक्त रीतिसे भूम्यामलक और शतावरी के चूर्णका प्रयोग करने से भी उक्त फल होता है।

दही की मलाई का प्रयोग।

चन्द्रशुभ्रं दधिसरं ससिता षष्टिकौदनम्। पटे सुमार्जितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते

अर्थ--चन्द्रमाके समान सफेद वस्त्रमार्जित दहीकी मलाईके साथ शर्करा मिला हुआ शाली चांवलों का भात खानेसे वृद्ध भी तरुण के समान आचरण करने लगता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य प्रयोग ॥

श्वदंष्ट्रेक्षुरमापात्मगुप्ताबीजशतावरीः ।
पिबन्क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम्

अर्थ--गोखरू, तालमखाना, उरद, कैंच के बीज, सितावर इनके चूर्णको दूधके साथ सेवन करने से वृद्ध भी शतस्त्री संभोग की सामर्थ्य प्राप्त करलेता है ।

पौष्टिक प्रयोग ॥

यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम् ।
मनसो हर्षणं यच्च तत्सर्वं वृष्यमुच्यते ॥

अर्थ--जो जो पदार्थ मधुर, स्निग्ध, बृंहण, बलवर्द्धक और मनमें हर्षोत्पादक हैं वे सबही वृष्य होते हैं ।

संभोगविधि ।

द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्दर्पितःप्रमदां व्रजेत् ।
आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः

अर्थ--ऊपर कहे हुए पौष्टिक द्रव्यों के सेवन से दर्पित होकर आत्मवेग से उदीर्ण और स्त्रियों के गुणोंसे प्रहर्षित होकर स्त्री संगम में प्रवृत होना चाहिये ।

शब्दस्पर्शादि का सेवन ।

सेव्याः सर्वेंद्रियसुखा धर्मकल्पद्रुमांकुराः ।
विषयातिशयाः पंच शराः कुसुमधन्वनः ॥

अर्थ--धर्मरूप कल्पवृक्ष का अंकुर, तथा कामदेवका पंचबाणरूप, संपूर्ण इन्द्रियों को सुखदेनेवाले अत्यन्त मनोहर रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का सेवन करना चाहिये ।

शब्दादियुक्त स्त्रीसेवन ।

इष्टा होकैकशोऽप्यर्था हर्षप्रीतिकराः परम् ।
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये संघातेन प्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ--शब्दादि विषयों का अलग अलग सेवन करने से ही परम हर्ष और प्रीति उत्पन्न होती है । फिर जिस स्त्री के शरीर में ये पांचों ही शब्दादि विद्यमान है उसका सेवन करने से कितना हर्ष और कितनी प्रीति होती है ।

योग्यस्त्री क लक्षण ।

नामापि यस्या हृदयोत्सवाय
यांपश्यतां तृप्तिरनाप्तपूर्वा ।
सर्वेंद्रियाकर्षणपाशभूतां
कांतानुवृत्तिव्रतदीक्षिता या ॥ ३९ ॥
कलाविलासांगवयोविभूषा
शुचिः सलज्जा रहसि प्रगल्भा ।
प्रियंवदा तुल्यमनःशया या
सा स्त्री वृषत्वाय परं नरस्य ४०

अर्थ--जिस स्त्री का नाम सुनने वा लेने ही से हृदय प्रफुल्लित होजाता है, जिस स्त्री के देखनेसे अपूर्व तृप्ति उत्पन्न होती है, जो स्त्री संपूर्ण इन्द्रियों का आकर्षण करने में रज्जु-पाश (फांसी) के सदृश है, जिसे स्त्री ने अपने पति का चित्त प्रसन्न करने की दीक्षा पाई है, जिस स्त्री का नृत्यगीतादि ६४ कला, विलास (हावभाव), अंगलावण्य और यौवन ही आभूषण है । जो स्त्री भीतर और बाहर से पवित्र है, जो लज्जावती है, जो सुरत में प्रौढ है, जो स्त्री प्रियभाषिणी है, जिस स्त्रीका कामोद्दीपन समान है, वह वाम-लोचना स्त्री सब प्रकार से पुरुषकी सर्वप्र-धान वृष्यकारिणी है ।

कामशास्त्रोक्त रतिचर्या ।

आचरेच्च सकलां रतिचर्यां
कामशास्त्रविहितामनवद्याम् ।
देशकालबलशक्त्यनुरोधा-
द्वैचतश्च समयोक्तयविरुद्धाम् ॥ ४१ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--कामशास्त्र में विहित अनिंद्य, देश काल बल और शक्ति के अनुसार, वैद्यक-शास्त्रमें कहे हुए आचार से अविरुद्ध रतिचर्या का आचरण करना चाहिये।

बाजीकरण प्रयोग।

अभ्यंजनोद्वर्तनसेकगंध-
स्रक्पत्रवस्त्राभरणप्रकाराः।
गांधर्वकाव्यादिकथाप्रवीणाः
समस्वभावा वशगा वयस्याः।
दीर्घिकास्वभवनांतनिविष्टा
पद्मरेणुमधुमत्तविहंगा।
नीलसानुगिरिकूटनितंबे
काननानि पुरकंठगतानि ॥ ४३ ॥
दृष्टिसुखा विविधा तरुजातिः
श्रोत्रसुखः कलकोकिलनादः।
अंगसुखर्तुवशेन विभूषा-
चित्तसुखः सकलः परिवारः ॥ ४४ ॥
तांबूलमच्छमदिरा
कांता कांता निशा शशांकांका
यच्चान्य किंचिदिष्टं
मनसो बाजीकरं तत्तत् ॥ ४५ ॥

अर्थ--अभ्यंजन, उद्वर्तन, परिषेक, गंधमाला, पत्र, वस्त्र, आभरण, गान, काव्यादि, उत्तमोत्तम कथा, समान स्वभाववाले वशवर्ती मित्रगण, अपने घर के पासवाली क्रीडापुष्करिणी, पद्मरेणु, मधुमत्त विहंग, नगर के बाहर हरितवर्ण समधरातल भूपृष्ठ, शृंगयुक्त पर्वतों की तलहटीमें स्थित कानन समूह, दृष्टि को सुख देनेवाले अनेक प्रकार के वृक्ष, कानों को सुख देनेवाला कोकिलरव अंगों को सुखदायक और ऋतुके अनुकूल भूषण, चित्तको सुखदेनेवाला कुटुंब, तांबूल, अच्छ मदिरा, कमनीय कांता, निर्मल चांदनी से युक्त रात्रि, तथा मनको प्रसन्न करने वाले अन्यान्य विषय, ये सबही बाजीकरण होते हैं।

कामोत्पादक प्रयोग।

मधुमुखमिव सोत्पलं प्रियायाः
कलरणना परिवादिनी प्रियेव।
कुसुमचयमनोरमा च शय्या
किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा ॥
देशे शरीरे च न काचिदर्ति-
रर्थेषु नाल्पोऽपि मनोविघातः।
बाजीकराः सन्निहिताश्च योगाः
कामस्य कामं परिपूरयंति ॥ ४७ ॥

अर्थ--प्रियाके मुखके समान कमल सहित माद्वीक मद, प्रियाके सदृश मधुर ध्वनिवाला बीणा, तथा कुसुमप्रधानलता की तरह फूलों की रमणीय शय्या। ये सब पदार्थ प्रधान बाजीकरण है। इनसे कामदेवकी भी कामना परिपूर्ण होती है। जिस स्थान में इन सबका समावेश होता है वहां उसपुरुष के किसी प्रकार की पीडा उत्पन्न नहीं होती है, और किसी विषय में कुछ भी मनोविघात नहीं होता है।

आत्मसंग्रह।

मुस्तापर्पटकं ज्वरे तृषि जलं मृद्भृष्टलोष्टोद्भवं
लाजाच्छर्दिषु वस्तिजेषु गिरिजं मेहेषु-
धात्रीनिशे।
पांडौ श्रेष्ठमयोमयानिलकफेष्वीहामये पिप्पली
संधाने कृमिजा विषे शुकतरर्मेदोऽनिले-
गुग्गुलुः ॥ ४८ ॥
वृषोऽस्रपित्ते कुटजोऽतिसारे
भल्लातकोऽर्शःसुगरेषु हेम।
स्थूलेषु तार्क्ष्यं कृमिषु कृमिघ्नं
शोषे सुराच्छागपयोऽनुमांसम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अक्ष्यामयेषु त्रिफला गुडूची
वातास्रारोगे मथितं ग्रहण्याम् ।
कुष्ठेषु सेव्यः खदिरस्य सारः
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥ ५० ॥

उन्मादे घृतमनवं शोके मद्यं विंसस्मृतिब्राह्मी निद्रानाशे क्षीरं जयति रसाला प्रतिश्यायम् मांसं कार्श्ये लशुनः प्रभंजनं स्तब्धगात्रतां. स्वेदः ।

गुडमंजर्याः खपुरो नस्यं स्कंधांसबाहुरुजम नवनीतखंडमर्दितमौष्ट्रं मूत्रं पयश्च हंत्युदरम् नस्यं मूर्धविकारान्विद्रधिमचिरोत्थमस्रविस्रावः ॥

नस्यैकबलमुखजानस्यांजनतर्पणानिमेत्ररुजः वृद्धत्वं क्षीरघृते मूर्छा शीतांबुमारुतच्छायाः समशुक्तार्द्रकमात्रा मंदे वह्नौश्रमेसुरास्नानम् दुःखसहत्वे स्थैर्ये व्यायामो गोक्षुरुर्हितःकृच्छ्रे कासे निदिग्धिका पार्श्वशूले पुष्करजा जटा। वयसः स्थापने धात्री त्रिफला गुग्गुलुर्व्रणे ॥

बस्तिर्वातविकारान्
पैत्तान् रेकः कफोद्भवान् वमनम् ।
क्षौद्रं जयति बलासं
सर्पिः पित्तं समीरणं तैलम् ॥ ५७ ॥

इत्यन्यं यत्प्रोक्तं रोगाणामौषधं शमायालम् । तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम् ॥

अर्थ—ज्वरमें नागरमोथा और पित्तपापडा श्रेष्ठ है । तृषारोग में प्रतप्त मिट्टीके ढेले को डालकर बुझा हुआ पानी पिलाना श्रेष्ठ है । यह तृषारोग की प्रधान औषध है । वमनरोग में धानकी खील । वस्तिरोगों में शिलाजीत । प्रमेह में आमला, हलदी और दारुहलदी, पांडुरोग में लोह, वातकफ में हरड़ । प्लीहारोग में पीपल, उरःसंधानमें लाख । विषरोग में सिरस । मंद और अनिलरोगमें गूगल । रक्तपित्त में अडूसा । अतिसार में कुडा । अर्शरोग में भिलावा । संयोगज विषमें सुवर्ण । स्थौल्यरोगमें रसौत । कृमिरोग में वायविडंग । शोषरोग में सुरा, बकरी का दूध और बकरे के मांस का अनुपान । नेत्ररोग में त्रिफला । वातरक्तरोग में गिलोय । ग्रहणीरोग में निर्जल मठा । कुष्ठरोग में खैरसार । सर्व प्रकार रोग में शिलाजीत । उन्माद में पुराना घी, शोक और मद्य । अपस्मार में ब्राह्मी शाक, निद्रानाश में दूध । प्रतिश्यायरोगमें रसाला, कृशरोग में मांस । वातरोग में लहसन । स्तब्धगात्रता में स्वेद । कंधेकी जकडन और बाहुवेदना में काले सेमर के गोंद का नस्य । अचिरोत्पन्न विद्रधिरोग में रक्तमोक्षण । मुखजरोग में नस्य और कवल । नेत्ररोग में नस्य, अंजन और नेत्रतर्पण । बुढापे में दूध और घी । मूर्छारोग में शीतलजल, वायु और छाया । अग्निमांद्य में समानभाग शुक्त और अदरख । परिश्रम में सुरापान स्नान । दुखके सहसकने और स्थिरतामें व्यायाम । मूत्रकृच्छ्र में गोखरू । खांसी में कटेरी । पार्श्वशूलमें पुष्करमूल । वयःस्थापनमें आमला और त्रिफला । व्रणमें गूगल । वातरोग में बस्ति । पैत्तिकरोग में विरेचन । कफजरोग में वमन । कफमें शहत । पित्तमें घृत । और वातमें तेल । ये सबरोग रोगके प्रति प्रधान औषध है । विज्ञवैद्यको उचित है कि देशकाल और बलकी विवेचना करके यथोपयुक्त योगों की कल्पना करे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

इत्यात्रेयादागमय्यार्थसूत्रं
तत्सुक्तानां पेशलानिमेतृघः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भेडादीनां संमतो भक्तिनम्रः
पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ॥ ५९ ॥

अर्थ-भक्ति से नम्र अग्निवेशने पुनर्वसु के शिष्य भेड जातुकर्णादिक की संमति से पूर्वोक्त रीति से भगवान् आत्रेय के मुख से युक्तियुक्त अर्थों से प्रतिपादित मधुर सूत्रों की व्याख्या से अतृप्त होकर और भी अधिक ज्ञान प्राप्ति की कामना से नीचे लिखा हुआ प्रश्न किया।

प्रश्न का स्वरूप।

दृश्यंते भगवन् केचिदात्मवंतोऽपि रोगिणः
द्रव्योपस्थातृसंपन्ना वृद्धवैद्यमतानुगाः ॥
क्षीयमाणामयप्राणा विपरीतास्तथापरे।
हिताहितविभागस्य फलं तस्मादनिश्चितम्
किं शास्ति शास्त्रमस्मि-
न्निति कलुषतोऽग्निवेशमुख्यस्य।
शिष्यगणस्य पुनर्वसु-
राचख्यौ कात्स्न्यतस्तत्त्वम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-अग्निवेशने पूछा, हे भगवान् पुनर्वसो! हमारे देखने में आता है कि कितने ही लोग हितकारी आहार विहार करते करते भी रोगग्रस्त होते हैं। अनेक उपयोगी औषध, कार्यकुशल परिचारक, और बहुदर्शी सुशिक्षित चिकित्सक उपस्थित होने पर भी रोग की शान्ति नहीं होती है। और यह भी देखने में आता है कि कितने ही लोग विपरीत आहार विहार के करते रहने पर भी रोग से मुक्त होजाते हैं, कितने ही मर भी जाते हैं। इन सब बातों के देखने से हिताहित विभाग का फल अत्यन्त अनिश्चित और संशयात्मक प्रतीत होता है। और यदि फल अनिश्चित है और आयुर्वेद शास्त्र क्या आज्ञा देता है। इसलिये काकदंतपरीक्षा शास्त्रवत् इसका आरंभ निष्फल है। ऐसे प्रश्न के करनेवाले अग्निवेश प्रमुख संपूर्ण शिष्यों को महर्षि पुनर्वसु ने यथार्थ तत्व का इस भांति उपदेश दिया।

प्रश्न का उत्तर।

नचिकित्साऽचिकित्साचतुल्यामवितुमर्हति
विनापि क्रियया ऽस्वास्थ्यं गच्छतां षोडशां
शया ॥

अर्थ-चिकित्सा और अचिकित्सा कभी षोडशांश में भी समान नहीं होसकती हैं। चिकित्सा के बिना भी जिस जगह रोगकी शांति देखने में आती है उस जगह भी चिकित्सा करने पर रोग शीघ्र शांत हो जाता है। तथा रोहिणीकादि कितने ही ऐसे रोग हैं जहां बिना चिकित्साके किसी तरह शांति नहीं होसकती है। इसलिये चिकित्सा और अचिकित्सा कभी बराबर नहीं होसकते हैं।

उक्त उत्तर में दृष्टांत।

आतंकपंकमग्नानां हस्तालंबा भिषग्जितम्।
जीवितं म्रियमाणानां सर्वेषामेव नौषधात्॥

अर्थ-रोगरूप कीचड में फंसे हुए मनुष्यों के लिये औषध को हस्तावलंबके के सदृश जानना चाहिये अर्थात् जैसे कीचड में फंसे हुए मनुष्य को हाथका सहारा देकर निकालने का यत्न किया जाता है, वैसे ही रोग में फंसे हुए आदमी को भी औषध देकर उसे रोगमुक्त करने का यत्न किया जाता है। और सो सब तरह से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

म्रियमाण अर्थात् असाध्य होचुके हैं उनका जीवन औषध से भी नहीं होसकता है ।

उपायसाध्यों को सिद्धत्व ।

नह्युपायमपेक्षंते सर्वे रोगा न चान्यथा ।
उपायसाध्याःसिध्यंति नाहेतुर्हेतुमान् यतः
यदुक्तं सर्वसंपत्तियुक्तयापि चिकित्सया ।
मृत्युर्भवति तत्रैवं नोपायेऽस्त्यनुपायता ।

अर्थ–वे सब रोग जो असाध्य होतेहैं वे चिकित्सा की अपेक्षा नहीं करते हैं, अर्थात् चिकित्सा द्वारा उनका प्रतीकार नहीं होसकता । किन्तु रोहिणी आदि रोग जो चिकित्सासाध्य होते हैं,उनकी चिकित्सा न करने पर किसीसे भी उनकी शांति नहीं हो सकती है, क्योंकि जो हेतु है वह किसी तरह हेतुमान् नहीं हो सकता है । इसलिये तुम जो यह कहते हो कि चिकित्सा बिना भी रोगकी शान्ति देखने में आती है, और सर्वसंपत्तियुक्त चिकित्सा करने पर मृत्यु होजाती है । तुम्हारा ऐसा हेतुवाद युक्ति विरुद्ध है,क्योंकि उपायमें अनुपायता नहीं हो सकती है । जिस युक्तिद्वारा जिसका जो उपाय कहागया है, वह उपाय किसी तरह भी उसका अनुपाय नहीं होसकता है, जैसे घटके कारणभूत मृत्तिका, दंड और चक्रादि सामिग्री कभी घटके अनुपाय नहीं होसकते हैं।इसी तरह चतुष्पात् चिकित्सा साध्यरोग का उपायही चिकित्सा है, अनुपाय नहींहै।

दैववैगुण्य से सिद्धत्व न होना ।

अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचित्क्रिया ।
न सिध्येद्दैववैगुण्यान्न त्वियं षोडशात्मिका

अर्थ–उपाययुक्त बुद्धिमान् मनुष्यके भी यह षोडशात्मिका चिकित्सा दैवापराध से कदाचित् सिद्ध नहीं होती है, इस पर भी जो उपाय जहां कहागया है वह वहां अनुपाय नहीं होसकता है । चिकित्सक,औषध, पारिचारक और रोगी ये चिकित्साके चार पाद हैं और इनमें से हरएक के चार चार गुण होते हैं । इसीको षोडशात्मिका चिकित्सा कहते हैं, इसीको पहिले विस्तारपूर्वक वर्णन करचुके हैं ॥

उक्तसिद्धांतका प्रतिपादन ।

कस्यासिद्धाऽग्नितोयादिस्वेदस्तंभादिकर्मणि
न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरंगवेधुकम् ॥
कस्य माषात्मगुप्तादौवृष्यत्वेनास्तिनिश्चयः
विण्मूत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यथे ॥
विषं कस्य जरां याति मंत्रतंत्रविवर्जितम् ।
कः प्राप्तः कल्पतां पथ्याद्ऋते रोहिणिकादिषु

अर्थ–किस पुरुष के स्वेदकर्म में अग्नि और स्तंभनादि कार्य में ठंढा जल असिद्ध होते हैं ? दूध किस मनुष्य को पुष्ट नहीं करता है ! गवेधुक धान्य किसको कृश नहीं करता है ? उरद और केंचके बीजों का पौष्टिक गुण किसको वृष्यत्व करने में अनिश्चित है ? जौ के भोजन से मलमूत्र के उत्पादन और प्रवर्तन में किसको संशय है ? मंत्रतंत्रादि से रहित किसका विष शांत होता है ? तथा रोहिणी आदि रोगों में पथ्य के विना किसको कल्पता प्राप्त हुई है । इसलिये चिकित्सा को निश्चित फल जानना चाहिये । इसका फल किसी तरह अनिश्चित नहीं हो सकता है तथा चिकित्साशास्त्र में भी किसी तरह काकदंत परीक्षा शास्त्रवत् निष्फलारंभ नहीं है । अवश्यही इसका आरंभ सफल होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चिकित्सातंत्रके फलत्वमें हेतु।

अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धान्तनिश्चितम्
महताप्ि प्रयत्नेन वार्यतां कथमन्यथा ॥

अर्थ-संपूर्ण सिद्धान्तों से निश्चित अकाल मृत्यु भी चिकित्सा के सिवाय किसी महाप्रयत्न से भी निवारित नहीं हो सकती है अर्थात् अकालमृत्यु को भी चिकित्सा ही निवारण कर सकती है।

ज्वरमें लंघनादिका शास्त्रसिद्ध होना।

छेदनाद्यपि दाहादौ रूढमागमपूर्वकम्।
शास्त्रादेव गतं सिद्धं ज्वरे लंघनबृंहणम् ॥

अर्थ-शास्त्रके अनुकूल प्रयुक्त किये जानेपर छेदनादि संपूर्ण औषध दाहादि को शांत कर देती हैं। इसीतरह आयुर्वेद के अनुसार लंघन और बृंहण क्रियाओं से ज्वररोग की निवृत्ति हो जाती है।

चिकित्सा में संशयत्याग।

चतुष्पादुपसंपन्ने सम्यगालोच्य योजिते।
मा कृथा व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां-
चिकित्सिते ॥

अर्थ-आयुष्कामीयाध्याय में कहे हुए चिकित्सा के जो चार पाद वर्णन किये गये हैं उन चारों पादों से युक्त चिकित्सा तथा देश काल और पात्रके अनुसार जो चिकित्सा प्रयुक्त की जाती है वह कदापि निष्फल नहीं हो सकती है। इसमें संशय नहीं करना चाहिये

शस्त्रको अकांडमृत्युपाश छेदनत्व।

एतद्धि मृत्युपाशानामकांडे छेदनं दृढम्।
रोगोद्वासितभीतानां रक्षासूत्रमसूत्रकम् ॥

अर्थ-अकालमें जो ज्वरादिक मृत्युके पाशस्वरूप उपस्थित होते हैं उनके छेदन के लिये यह चिकित्साशास्त्र दृढ छेदन है। तथा उत्पन्न हुए ज्वरादिक रोगों से संत्रस्त मनुष्यों के लिये यह चिकित्सा शास्त्रही सूत्ररहित रक्षासूत्र है। इसलिये चिकित्साशास्त्रको अवश्य पढना चाहिये।

चिकित्साशास्त्र को अमृतत्व।

एतत्सदमृतं साक्षाज्जगत्यायासवर्जितम्।
याति हालाहलत्वं च सद्यो दुर्भाजनस्थितम्

अर्थ-यह चिकित्साशास्त्र मृत्युके जीतने के लिये साक्षात् अमृतरूप है। वह अमृत तो क्षीरसागरके मथनकाल में देवासुरके आयास से उत्पन्न हुआथा यह आयास रहित है। किन्तु अयोग्य चिकित्सक के हाथ में यह अमृत भी हलाहलत्व को प्राप्त होता है, अर्थात् यह विषके समान मारात्मक होता है ॥

भिषक्पाश का त्याग ॥

अज्ञातशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान्
त्यजेद्दूराद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव

अर्थ-जो चिकित्सक चिकित्सा शास्त्रके सद्भावों को नहीं जानते हैं, जिन्हों ने शास्त्र का केवल पाठमात्र किया है और उसका अनुष्ठान नहीं किया है उन यमपाशस्वरूप भिषकों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

सुवैद्यों की भद्रता ॥

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्

अर्थ-शास्त्रार्थ के जाननेवाले, क्रियाकुशल, हितकी कामना करनेवाले, साधुवृत्त वैद्यों का सर्वदा कुशल होता है अर्थात् वे सर्वत्र कृतकार्य होकर धन, मान, यश और धर्मलाभ करते हैं और जो पुत्रमित्रादिरूप से संपूर्ण प्राणियों का कल्याण चाहते हैं, उनका भी कल्याण होता है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चिकित्साशास्त्र का मंत्रवत्प्रयोग ।

इति तंत्रगुणैर्युक्तं तंत्रदोषविवर्जितम् ।
चिकित्साशास्त्रमाखिलं व्यापठ्य परितः स्थितम् ॥ ७७ ।
विपुलामलविज्ञानमहामुनिमतानुगम् ।
महासागरगंभीरसंग्रहार्थोपलक्षणम् ॥
अष्टांगवैद्यकमहोदधिमंथनेन
योऽष्टांगसंग्रहमहामृतराशिराप्तः ।
तस्मादनल्पफलमल्पसमुद्यमानां
प्रीत्यर्थमेतदुदितं पृथगेव तंत्रम् ॥ ८० ॥
इदमागमसिद्धत्वात्प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
मंत्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथंचन ८१

अर्थ–तंत्रके गुणोंसे युक्त और तंत्रके दोषोंसे विवर्जित विपुल विमल विज्ञान से संपन्न आत्रेयादि महामुनियों के मतके अनुसार, तथा महासागररूप गंभीर संग्रह के निमित्त उपायभूत, अल्प उद्यमवाले मनुष्यों को महत् फलका देनेवाला शल्यशालाक्यादि अष्टांगसंपन्न आयुर्वेदरूप महासमुद्र के मंथन से समुद्भूत, अमृतराशि स्वरूप इस अष्टांगहृदय नामक पृथक् ग्रंथका अच्छी तरह पठन पाठन करना चाहिये । यह ग्रंथ आयुर्वेदिक ग्रंथों के मतके अनुकूल है और प्रत्यक्ष फलको देनेवाला है, इसलिये मंत्रवत् इसका प्रयोग करना चाहिये इसमें किसी प्रकार का विचार करनेका प्रयोजन नहीं है ।

उक्तग्रंथ का फल ।

दीर्घजीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः ।
पाठावबोधानुष्ठानैराधिगच्छत्यतो ध्रुवम् ।

अर्थ–इस अष्टांगहृदय नामक ग्रंथका पाठ, अवबोध और अनुष्ठान करने से निश्चयही दीर्घजीवन, आरोग्य, धर्म, अर्थ, सुख और यशकी प्राप्ति होती है ।

इस ग्रंथको श्रेष्ठत्व ।

एतत्पठन् संग्रहबोधशक्तः
स्वभ्यस्तकर्मा भिषगप्रकंप्यः ।
आकंपयत्यन्यविशालतंत्र-
कृताभियोगान्यदि तत्र चित्रम् ॥ ८२ ॥

अर्थ–जो वैद्य इस अष्टांगहृदय को पढकर इसके विषयों पर गूढ दृष्टि से आलोचना करके तदनुसार कर्ममें अभ्यास करता है वह कभी किसी कार्यमें प्रकंपित नहीं होता है । तथा चरकादि बडे बडे ग्रंथों के पढनेवालों को प्रकंपित करदेता है । इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ।

उक्तकथन में हेतु ॥

यदि चरकमधीते तद्ध्रुवं सुश्रुतादि
प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः
अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिव खलु करोतुव्याधितानांवराकः

अर्थ–चरकादि ग्रंथ बडे विशाल हैं तथापि इनमें संपूर्ण विषयों का समावेश नहीं है । जो केवल चरक को पढताहै वह सुश्रुत में कहे हुए नेत्र रोगाधिकार में वर्त्मगत, संधिगत, श्वेतमंडलगत, और कृष्णमंडलादिगत चक्षुरोगों के विशेष वर्णन को नहीं जान सकता है क्योंकि चरक में इन रोगों के केवल नाममात्र दिये गयेहैं, इनके हेतु, लक्षण और चिकित्सा का विशेषरूप से वर्णन नहीं किया गयाहै । चरकग्रंथ में जिस रीतिसे खांसी श्वास आदि रोगों का विशेषरूप से वर्णन किया गयाहै, सुश्रुत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में वैसा नहीं है, इसलिये जो चरकको न पढकर केवल सुश्रुत को पढताहै वह सुश्रुत में कही हुई प्रक्रिया के अनुसार दोष दूष्य-काल शरीर सत्व और सात्म्यादि लक्षणों में पारगामी होकर भी खांसी श्वासादि की चिकित्सा में कुछ भी करने को समर्थ नहीं है। और हमारे इस अष्टांगहृदय ग्रंथमें सभी विषयों का सविस्तर वर्णन किया गया है।

आद्यग्रंथों के पाठ से लाभ न होना।

अभिनिवेशवशाद्यभियुज्यते
सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः।
पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं
स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८४ ॥

अर्थ–जो मूढ मति आर्षवैद्यक ग्रंथों का पक्षपाती होकर इस कविके बनाये हुए सुभाषित ग्रंथका अनादर करता है वह यत्नपूर्वक निर्वेदरहित होकर यावज्जीवन शतसाहस्री ब्रह्मसंहिता को पढता रहै। इसका यह भावार्थ है कि उस ग्रंथको पढते पढते उसकी बुद्धि, मेधा और जीवनशक्ति का नाश हो जाय तब भी उस शास्त्रका चिन्तन, अवबोधन और अनुष्ठानादि कुछ भी न कर सकेगा, इसलिये यह दीर्घकालका परिश्रम उन के लिये निरर्थक होगा ॥

उक्तकथन में कारण।

वाते पित्ते श्लेष्मशांतौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
का निर्मेऽत्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः

अर्थ–तैल स्वाभाविकही वातको शमन करने वाला है, घी पित्तको शमन करने वाला और शहत कफनाशक है। यह बात ब्रह्मा ने कही है और ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमारादि ने भी यही कहा है। तैलादि की जो वातादि प्रशमक ऐसी स्वाभाविक शक्ति है, व्यक्ति विशेष की उक्ति से उसकी कोई और शक्ति हो सकती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता है। जो जिसकी स्वाभाविक शक्ति है वह अवश्य ही होती है, इसलिये पूर्वऋषियों के ग्रंथही पढने के योग्य हैं, आधुनिक कवियों के ग्रंथ पढने योग्य नहीं हैं, यह विचारना मूर्खों का काम है।

उक्तकथन में अन्य युक्ति

आभिधातृवशात् किंवाद्रव्यशक्तिर्विशिष्यते
अतो मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलंब्यताम्

अर्थ–जब वक्ताविशेष की उक्ति से तैलादि द्रव्यों में शक्ति विशेष नहीं हो सकती है तो मत्सरता को त्याग कर के माध्यस्थ का अवलंबन करना चाहिये। अर्थात् आर्ष ऋषिप्रणीत ग्रंथही पढने चाहियें आधुनिक ऋषियों के ग्रंथ न पढने चाहिये यह कभी मन में न विचारना चाहिये। अपनी बुद्धि से ग्रंथ की उपकारिता वा अनुपकारिता पर ध्यान देकर जो सुभाषित और अल्प परिश्रम से साध्य हो उस को अवश्यही पढना चाहिये।

सुभाषित ग्रंथका आदर।

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चे-
न्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यंते
तस्माद् ग्राह्यंसुभाषितम् ॥ ८७ ॥

अर्थ–यदि ऋषिप्रणीते ग्रंथमात्र के पढने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही में प्रीति हो तो चरकसुश्रुत को छोडकर भेड जातुकर्णादि मुनियों के बनाये हुए ग्रंथों को वैद्यलोग क्यों नहीं पढते हैं, ये ग्रंथ भी ऋषियोंही के बनाये हुएहैं । परन्तु सुभाषित होने के कारण चरकसुश्रुत को बाहुल्यभाव से पढतेहैं, भेडजातुकर्णादि कृत ग्रंथोंको नहीं पढतेहैं, इसलिये यह निश्चयहुआ कि सुभाषित ग्रंथही आदरणीय और ग्राह्य होते हैं । इसलिये यद्यपि यह ग्रंथ अनार्ष है तथापि चरकसुश्रुतवत् सुभाषित होने के कारण मतिमान्वैद्य इसको अवश्य ग्रहण करें ।

संसार की मंगलकामना ॥

हृदयमिव हृदयमेतत्सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः
दृष्ट्वा यच्छुभमाप्तंशुभमस्तुपरंततोजगतः

अर्थ—यह हृदय नामक ग्रंथ संपूर्ण आयुर्वेदरूप वाणीमय पयोनिधि का हृदयस्वरूप है । अर्थात् जैसे हृदय शरीर का एक देश होनेपर भी दशमूल सिराओं के द्वारा संपूर्ण शरीर में व्याप्त होता है, उसी तरह यह भी सूत्रशारीरादि छः स्थानों द्वारा शल्य शालाक्यादि अष्टांग से संपन्न वाणीमय संपूर्ण आयुर्वेद में व्याप्त होकर स्थित है । ऐसे हृदय के विधान द्वारा जो परम कल्याण प्राप्त हुआ है उस शुभसे जगत का कल्याण हो ।

इतिश्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भट विरचितायां अष्टांगहृदय संहितायां मथुरा निवासि श्रीकृष्णलाल कृत भाषा टीकान्वितायांउत्तरस्थाने वाजीकरणनामचत्वारिंशोऽध्यायः ।

समाप्तम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ श्रीः ॥

सुश्रुतसंहिता।

मूलसंस्कृतटीका भाषाटीका शारीरिकके चित्र और अंगरेजी कोष सहित छपकर तयार हैं।

हे प्रियवरो—आज इस सहर्ष आप लोगों का चित्त इधर खींचते हैं क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि "एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत" चाहै जैसी प्रिय वस्तु क्यों नहो तन्दुरुस्ती के बिगडतेही वह अप्रिय मालूम होने लगतीहै यहांतक तो है कि मनुष्य इस प्यारी से प्यारी देह से भी ग्लानि करके मृत्यु की बाट देखने लगता है अस्तु यह देह रक्षा आयुर्वेद के प्राचीन सद्ग्रन्थों में कहे हुए नियमों का पालन करने सेही होसकती है वे नियम जैसे पूर्णरूप से इस ग्रन्थ में दिये हैं किसी दूसरे ग्रन्थ में दर्शन को भी नहीं है। इसी ग्रन्थका आशय लेले कर अथवा ज्यों के त्यों प्रकरणों को लेकर बहुत से नवीन वैद्यों ने अपने २ नाम से ग्रन्थ रचदिये हैं। वैद्यक के इस अखिल भंडार में चिकित्सा सम्बन्धी कोई भी ऐसा विषय नहीं छोडागया है जिससे दूसरे ग्रन्थों की आवश्यकता हो यदि पांचसौ रुपये की कीमत के अन्यग्रन्थ खरीदलो तौभी इसकी समता नहीं करसकते हैं क्योंकि यह तो स्वयम् धन्वन्तरिजी के मुखका उपदेश है, इसग्रन्थ की अनुक्रमणिका ९० पृष्ठ में है शारीरिक सम्बन्धी चित्र ४० पृष्ठ में हैं सम्पूर्णग्रन्थ १४८० पृष्ठ में समाप्त है कागज पुष्ट अक्षर बम्बई बिलायती कपडे की सुनहरी अक्षरों की जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) रु० है।

प्रतिष्ठापत्र

हिन्दीबंगवासी कलकत्ता

१५ जून सन् १८९६

यह ग्रन्थ वैद्यक शास्त्र के प्राचीन प्रामाणिक तथा उत्तम बडे ग्रन्थोंमें से है। इसके जाने बिना वैद्य वैद्य नहीं होसकता वैद्यक चिकित्सा आदिका यह अगाध समुद्र है। इसके कर्त्ता सुश्रुताचार्य्य ने जो कुछ किया वह आजतक किसीसे नहीं हुआ। वैद्य के घरकी यह ग्रन्थ परमनिधि है। आजकल श्रीमथुरापुरी से यह भाषानुवाद सहित छपकर निकला है। अनुवादकर्त्ता श्रीकृष्णलाल वैश्यहैं। इन्हीं के मित्र श्यामलालजी ने इसे मथुरा में छपवाकर प्रकाशित किया है। मूल्य १०) रुपया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूरे ९० पृष्ठमें इस पुस्तक की अनुक्रमणिका है। इसके पीछे ४० पृष्ठ में वैद्यक के आचार्य्य ऋषिमुनियों का तथा कई प्रकार के वैद्यक शस्त्रसम्बन्धी यन्त्रों की तसवीरें दी हैं यन्त्रों के बनाने की विधि इस देश से लुप्त होगई है, इसीसे इन यन्त्रों की शकल अंगरेजी यन्त्रों से कागज पर तराशी गई है। शायद कोई बुद्धिमान चेष्टा करेगा तो धातु से भी बनाकर दिखा सकेगा। खैर कागज पर यन्त्रों की तसवीर की कल्पना पहिले बंगालियोंने की, पीछे यह और हुई। परन्तु इस महान् ग्रन्थको सम्पूर्ण हिन्दी में अनुवाद सहित छाप-कर पहिले पहल प्रकाश करने का यश मथुरापुरी के हिस्से में आया है इसके लिये लाला श्यामलालजी बधाई के पात्र हैं। इससे आगे मुख्य ग्रन्थ मूल संस्कृत और भाषानुवाद सहित है। १३४० पृष्ठ में समाप्त हुआ है। इस प्रकार सारा ग्रन्थ मिलजुल कर १४७० पृष्ठ तक पहुंचता है छापा कागज अच्छे हैं। जिल्द भी खासी बंधी है अनुवाद ठीक शब्दार्थ या भावार्थही करके बस नहीं, की, वरञ्च मौके मौके पर व्याख्या भी अनुवादकर्ता महाशय करते चले आते हैं। यह व्याख्या संस्कृत जाननेवाले लोग तो अर्थ से अलग पहचान ही लेंगे परन्तु कोरी भाषा का भरोसा रखनेवाले पृथक् करने में सहजही समर्थ न होंगे वह उसे भी अनुवाद के अन्तर्गत समझेंगे अनुवाद की भाषा समझने के योग्य है, अच्छी है जहांतहां नोटभी ग्रन्थकार ने लगाये हैं। बडा परिश्रम ग्रन्थकर्त्ता का सब विषयों को पृथक् २ करके उनकी तालिका बना देने में हुआ है। ९० पृष्ठकी लम्बी तालिका ग्रन्थ के सब विषय अलग अलग दिखा देती है। यह न होती तो इतने बडे ग्रन्थ में कोई बात ढूंढ निकालना बडाही कठिन होता।

अनुवाद ग्रन्थकर्त्ता ने ध्यानसे किया है। और यह अच्छा किया है, कि जिन दवाओं के हिन्दी नाम में शक है, उनका संस्कृत नाम रहने दिया है। पुस्तक अच्छी हुई है।

राजस्थान समाचार

अजमेर १८ सितम्बर सन् १८९७

भगवान् धन्वन्तरजी ने कई शिष्यों सहित सुश्रुत नामक शिष्य को आयुर्वेद का उपदेश किया और सुश्रुत ने फिर ग्रन्थ रचा उसका नाम सुश्रुत संहिता है जो इस समय तक आर्य्यों के आयुर्वेद का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। हमारे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जो अबतक यूरोप के अत्यन्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खोज करने वाले विद्वान् भी नहीं जानसकते । ऐसी अनेक बातें इस सुश्रुत संहिता में भी हैं । यह ग्रन्थ अत्यंत गंभीर और कठिन है इससे संस्कृतके उत्तम कोटिके विद्वानों के सिवाय दूसरे लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते थे । इसी कारण से इसकी भाषाटीका का होना अत्यंत आवश्यक था सो ईश्वर कृपा से मथुरानिवासी श्यामलालजी ने करवाकर बडा उपकार किया । यह ग्रन्थ हमारे पास समालोचना के किये आया है ।

इस ग्रंथ में ऊपर मूल और नीचे पंडित कृष्णलालजी की कीहुई भाषा है । मुम्बई के टाइप और उत्तम कागज में अच्छे ढंग से ग्रंथ छपा है ।

भाषान्तर शुद्ध हिन्दी भाषा में जैसा चाहिये वैसा किया है । केवल सीधा भाषांतर करने से प्रयोजन न खुले ऐसे स्थानों में भले प्रकार से अभिप्राय खोला गया है, वह भी ऐसा कि व्यर्थ ग्रंथ नहीं बढायागया । अनेक स्थलों पर मूल ग्रंथसे विशेष बातें दूसरे ग्रंथों से भी उठाकर रखदीं और उनका भाषांतर भी करादिया । आवश्यक्तानुसार अनेक स्थानों में नोट अर्थात् टिप्पणी भी कीगई है । प्रयोजन यह कि इस बहुमूल्य ग्रंथका सब कार्य्य एक विद्वान पंडित के हाथ से हुआ है जो इस विषयको भी जानता है कहीं २ भाषांतर करने में असावधानी रही प्रतीत होती है परन्तु ऐसे भारी ग्रंथमें होना सम्भव है । मूल बडे अक्षरों में और भाषाटीका उससे थोडे छोटे अक्षरों में है ।

ग्रंथके आदि में इससे सम्बन्ध रखनेवाले चित्र दिये हैं जिनमें डाक्टरी चित्रों से सहायता ली जान पडती है । यह कहना कठिन है कि ये चित्र सुश्रुत के कथनसे कितने मिलते हैं । आदि में बहुत बडी और सविस्तर सूची दीगई है जिसमें सब बातों के निकालने में बडी सहायता मिले । बिलायती कपडे की स्वर्णाक्षर सहित उत्तम जिल्द बंधी है । ग्रन्थ सब प्रकार से उत्तम और प्रत्येक के संग्रह करने योग्य है । मोल १०) रुपये ।

गर्गसंहिता ।

मूल बृजभाषा टीका सहित ।

यह ग्रंथ श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के कुल पुरोहित श्रीगर्गाचार्य्यजी का बनाया हुआ है इसमें भगवान के अनेकानेक ऐसे गूढ रहस्य हैं जो श्रीमद्भागवतादिक ग्रंथों में भी नहीं हैं इसका श्रवण और पठन भक्तिशून्य मनुष्य के हृदय में भी भक्तिका संचार करते हैं इसके श्लोकों की रचना ऐसी कर्णप्रिय है कि सुनते सुनते जी नहीं भरता है जो श्रीकृष्णचन्द्र के भक्त हैं वह इस ग्रन्थ को लिये बिना कदापि नहीं रहेंगे मुम्बई के मोटे अक्षरों में छपा हुआ मू० ६) रु०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चरक संहिता ।

मूल भाषाटीका आयुर्वेदिक इतिहास सहित ।

यह ग्रंथ आयुर्वेद के ग्रंथों में सबसे प्राचीन चिकित्सा का अखिल भंडार और अर्य्यावर्त्त का गौरवस्वरूप हैं यदि आकाश के तारागण समुद्र की बालू के कण और मेघके बिंदु किसी प्रकार गणना में आसक्ते हों तो इस ग्रन्थ के गुण भी गिनने में आसक्ते हैं इसकी प्रशंसा से पत्रको भरना वृथा है क्योंकि ऐसा कोई हिन्दू नहीं है जिसने इसका नाम न सुना हो इसके निघंट भाग में ५०० द्रव्यों के अंग्रेजी, फारसी, अर्बी, बंगला, हिन्दी, गुजराती, मरहटी आदि भाषाओं के नामान्तर हैं जिससे सबको उपयोगी होगा ग्रंथ के प्रारम्भ में आयुर्वेदी इतिहास है जिसमें चरक, सुश्रुतादि सम्पूर्ण आयुर्वेद के ग्रंथकारों का जीवन चरित्र भी है इसके विषयों की अनुक्रमणिका ८० पृष्ठ में है इस तरह इस ग्रंथमें सब मिलाकर १२००पृष्ठ हैं यह ग्रंथ १०पौंडके मोटे चिकने विलायती कागज पर मुंबई के अक्षरों में बहुत स्पष्ट छापागया है सुनहरी जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) रुपया है ।

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

किशनलाल द्वारकाप्रसाद

"बंबई भूषण" छापाखाना

मथुरा ।

For Private And Personal Use Only

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

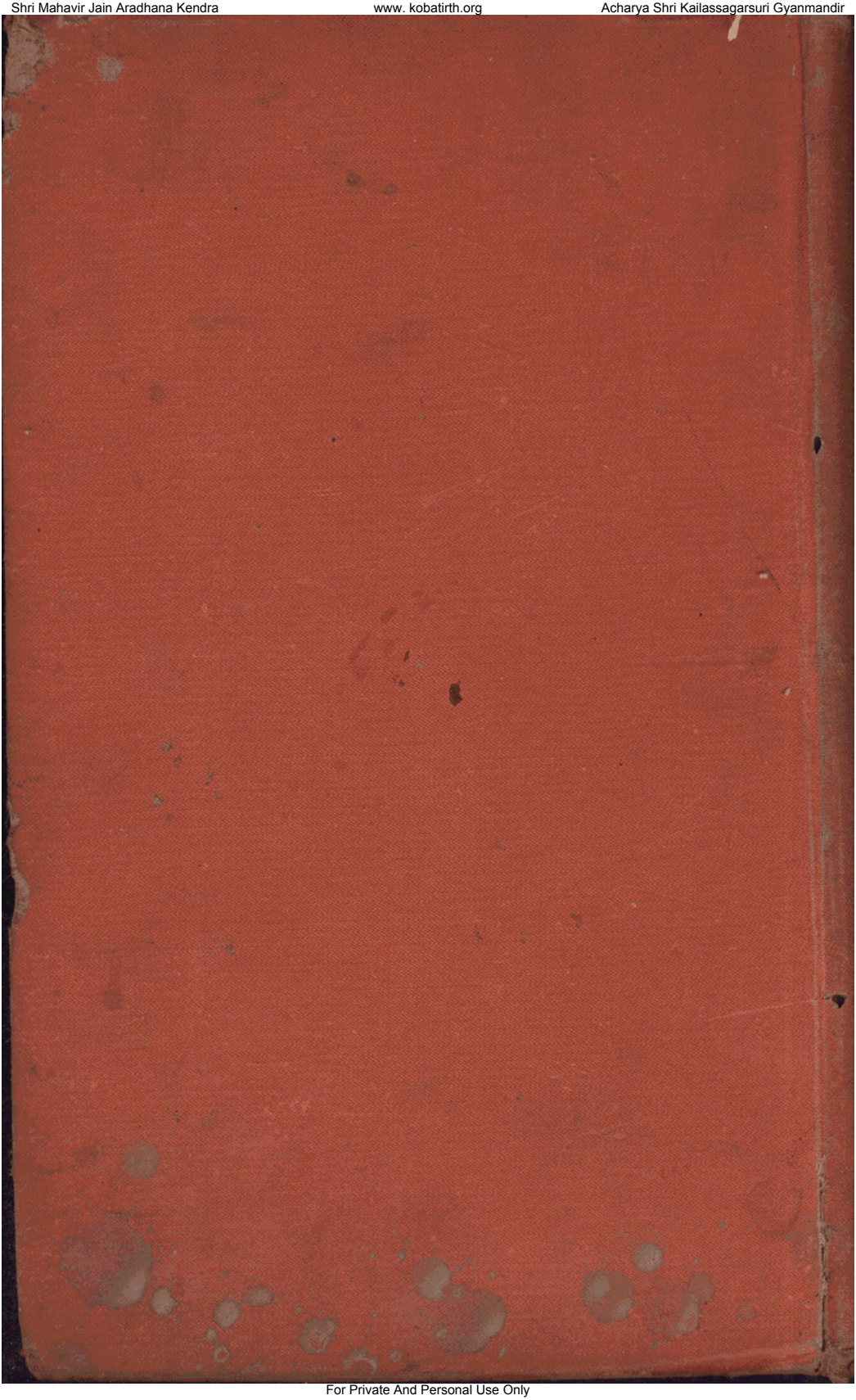

For Private And Personal Use Only